THE

JAIKRISHNADAS KRISHNADAS PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

4

*****

RĀJATARANGINI

OF

JONARĀJ

(Translation, with critical introduction, historical, cultural and geographical notes in Hindi)

By

DR RAGHUNĀTH SINGH M A, LL B, Ph D

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1972

स्वं रूपं चिदचिद्भिरेभिरभितो व्यञ्जत्स्वयं निर्मितै-
र्यस्योन्मीलति देशकालकलनाकल्लोलितं तन्महः।
आत्मा वास्तु शिवोऽस्तु वास्त्वथ हरिः सोऽप्यात्मभूरस्तु वा
बुद्धो वास्तु जिनोऽस्तु वास्त्वथ परस्तस्मै नमः कुर्महे॥

(जोनराज : ३०८)

विषय-सूची

संकेत-सूची

संकेत	विवरण
अ०	अध्याय
अकबर०	अकबरनामा
अग्नि०	अग्निपुराण
अथ०	अथर्ववेद
अरण्य०	अरण्य काण्ड
अर्थ०	अर्थशास्त्र
अनु०	अनुशासन पर्व
अमर०	अमरकोश
अर०	अरण्यकाण्ड
अल्बेरूनी	अल्बेरूनीज इण्डिया
आ०	आदिपुराण
आई० ई०	इण्डियन एपिग्राफी
आइने०	आइने अकबरी
आदि०	आदिपर्व
आश्व०	आश्वमेधिक पर्व
ई० आई०	इपिग्राफिया इण्डिका
उत्तर०	उत्तरकाण्ड
उ०	उर्दू अनुवाद
उ० तै०	उत्तर तैमूर कालीन भारत।
उद्योग०	उद्योगपर्व
उप०	उपनिषद्
ऋ०	ऋग्वेद
एम० एज०	खरोष्ठी इन्सक्रिप्शन्स
ए०	ऐतरेय ब्राह्मण
क०	कल्हण
कर्ण०	कर्णपर्व
कनिंघम	एन्शेन्ट ज्याग्रफी आफ इण्डिया
कश्मीर	जी डी एम सूफी
कालिका	कालिकापुराण
कि०	किष्किन्धाकाण्ड
ख०	खण्ड
गरुड	गरुडपुराण
छा०	छान्दोग्योपनिषद्
जरेट	आइने अकबरी अंग्रेजी अनुवाद
जे० ए० एस० बी०	जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल
जैन०	श्रीवरकृत राजतरंगिणी
जोन०	जोनराजकृत राजतरंगिणी
डाक्टर	डाक्टर संस्करण, नागरी अक्षर
ट्रोयर०	एम० ए० ट्रोयर कृत, फ्रान्सीसी अनुवाद राजतरंगिणी
ड्रयु०	जम्मू एण्ड काश्मीर टेरीटोरीज
तबकात	तबकाते अकबरी
तारीखे रशीदी	मिर्जामुहम्मद हैदर दुघलात
तुर्किस्तान	बर्टहोल्ड कृत
तै०	तैत्तिरीय संहिता
दत्त०	जोगेशचन्द्र दत्त
दे० भा०	देवी भागवत
द्रो०	द्रोण पर्व
नाइट	विग्ने नाइट डायरी आफ ए पेडेस्ट्रियन
नारद	स्मृति
नारायण कौल०	तारीखे काश्मीर
नील०	नीलमत पुराण वेद रोमन अक्षर
पंच०	पंचतन्त्र

तीर्थ०	तीर्थसंग्रह साहिबराम कृत
पर्चविश०	पर्चविश ब्राह्मण
पण्डित०	रणजीत सीताराम पण्डित
पद्म०	पद्मपुराण
परमू०	डा० आर० के० परमू–हिस्ट्री आफ मुसलिम रूल इन काश्मीर
परशियन०	फ़ारसी मूल
पाण्डु	पाण्डुलिपी
पाणिनि	अष्टाध्यायी
पीरहसन	पीर गुलाम हसन तारीखे काश्मीर
पु०	पुराण
फिरिस्ता	मुहम्मद कासिम फिरिस्ता ब्रिग्गस्
फ़ैकी	फ़ैकी, ए० एच० एण्टीक्वेरी आफ इण्डिया एण्ड तिब्बत
वन०	वनपर्व।
बमजायी०	पी० एन० के० बमजायी हिस्टारी ऑफ काश्मीर
बर्नियर०	ट्रेवेल्स इन मोगल इम्पायर
ब० शा०	बहारिस्तान शाही
बा० रा०	वाल्मीकीय रामायण
बेट्स	बेटस गजेटियर
ब्रह्म०	ब्रह्मवैवर्तपुराण
ब्रह्मा०	ब्रह्माण्ड पुराण
ब्रिग्गस०	व्हीन ब्रिग्गस् हिस्ट्री ऑफ राइज ऑफ मोहम्मडन पावर इन इण्डिया
भा०	भागवतपुराण
भीष्म०	भीष्मपर्व
भृति०	भृतिहरि शतक
म०	महाभारत
मत्स्य०	मत्स्य पुराण
मनु०	मनुस्मृति
माहा०	माहात्म्य
मार्क०	मार्कण्डेय पुराण
मूरक्राफ्ट	ट्रेवेल्स् इन हिमालयन प्रोविन्सेज ऑफ हिन्दुस्तान आदि
मोहवी०	काश्मीर अण्डर सुल्तान
मौ०	मौसल पर्व
म्युनिख०	म्युनिख पाण्डुलिपि, तारीखे काश्मीर
याज्ञ०	याज्ञवल्क्य स्मृति
यु०	युद्धकाण्ड
योग०	योगदर्शन पतंजलि
योग० वा०	योगवासिष्ठ रामायण
रघु०	रघुवंश
रा०	राजतरंगिणी कल्हण
रासो०	पृथ्वीराज रासो
ला०	लारेन्स–दी वैली आफ काश्मीर
लोक०	लोक प्रकाश
लौ०	लौकिक या सप्तर्षि संवत्
वन०	वनपर्व
वाइन०	जी० टी० वाइन, ट्रेवेल्स
वायु०	वायुपुराण
विक्र०	विक्रमांकदेवचरित, बिल्हण,
विराट०	विराट पर्व
विलसन०	हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर
विष्णु०	विष्णुपुराण
विष्णुधर्मो०	विष्णु धर्मोत्तरपुराण
वॉ०	वॉल्यूम
श०	शल्य पर्व
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शा०	शान्तिपर्व
शि०	शिव पुराण
शिशु०	शिशुपाल वध
शुक	शुक कृत राजतरंगिणी
श्रीकण्ठ०	श्रीकण्ठचरित
श्रीवर०	श्रीवर कृत राजतरंगिणी
स०	संहिता
समय०	समय मातृका
सभा०	सभापर्व
सियूकी०	हुएनसांग अनुवाद बील

सी० आई०	: कॉरपस इन्सक्रिप्शोनम इण्डिकारम	स्तीन०	: मार्क औरेल स्तीन: क्रोनिकल्स ऑफ किंग्स ऑफ काश्मीर
सी० एम. आई	: क्वाइन्स ऑफ मीडीवल इण्डिया	हसन०	: हसन बिन अली काश्मीरी
सूफी०	: जी० डी० एम० सूफी	ह० पु०	: हरिवंश पुराण
सौप्तिक०	: सौप्तिक पर्व	है० म०	: हैदर मल्लिक
स्कन्द०	: स्कन्द पुराण	हुगेल	: बैरन वॉन हुगेल

धरातल

गत बीस वर्षों से काश्मीर मेरे अध्ययन का विषय रहा है । मैं काग्रेस संसदीय दल के काश्मीर अध्ययन मण्डल का संयोजक दश वर्षो तक रहा हूँ । अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे काश्मीर विवादास्पद विषय बना है । अतएव यह विषय निरन्तर अध्ययन की अपेक्षा रखता था । मै काग्रेस संसदीय दल का चार बार मन्त्री था । मुझे भारत के तीन प्रधान मंत्री स्वर्गीय सर्वश्री जवाहरलाल जी, लालबहादुर शास्त्री जी तथा श्रीमती इन्दिरा गान्धी के साथ कार्य करने का अवसर मिला है । मुझे आन्तरिक एवं बाह्य दोनों बातें ज्ञात होती रही है । इनमे कुछ प्रकाश मे आयी है, कुछ मेरे साथ ही शेष हो जायेगी । इस विषय पर सविस्तार कल्हण—राजतरंगिणी के प्रथम खण्ड के प्राक्कथन मे प्रकाश डाल चुका हूँ ।

इस रचना के पूर्व मैं प्राय: प्रतिवर्ष काश्मीर यात्रा के लिए जाता रहा हूँ । इसके अतिरिक्त ५ बार संसदीय शिष्टमण्डल के नेता के रूप मे वहाँ जा चुका हूँ । जोनराजतरंगिणी के रचना काल मे ६ बार स्थानो को देखने, शंका समाधान तथा अध्ययन हेतु गया हूँ । जोनराज ने सन् ११४९ ई० से १३३९ ई० तक हिन्दू तथा सन् १३३९ ई० से १४५९ ई० तक काश्मीर के सुल्तानो का इतिहास लिखा है । जोनराज की इस रचना काल का संस्कृत मे कोई दूसरा ग्रन्थ उपलब्ध नही है । भारत के अनेक पाण्डुलिपि संग्रहालयो मे अभी तक पुस्तको की तालिका विषयानुसार नही बनी है । इसलिये मैं उनकी खोज मे लद्दाख, नेपाल, सिक्किम तथा भूटान की भी यात्रा की है ।

पर्वतीय क्षेत्र मुझे बाल्यकाल से अच्छा लगता है । काशी से विन्ध्याचल समीप है । वहाँ मैंने प्रथम बार पर्वत का दर्शन किया । मुझे पर्वत आकर्षित करता है । कालेज जीवन मे ग्रीष्मकाल का अवकाश मसूरी मे व्यतीत करता था । वहा मुझे हिमालय का अपूर्व दर्शन मिलता था । कितनी ही घड़ियाँ देवदार की छाया मे बैठ कर, घाटियो को देखते बिता दी है । इसमे मुझे आनन्द मिलता था ।

जब सन् १९४६ ई० मे ब्रिटिश भारत सरकार की तरफ से नेपाल संविधान बनाने के लिये शिष्टमण्डल मे जाने का अवसर मिला, तो मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया । तत्कालीन सरकार ने प्रस्थान से पूर्व नेपाल सम्बन्धी कुछ पुस्तकें तथा साहित्य दिया था । उनके अध्ययन से अनेक ऐसी जातियो एवं उपजातियो का ज्ञान हुआ, जिनका पहले नाम भी नही सुना था । बौद्ध तथा हिन्दू दोनो धर्म किस प्रकार बिना संघर्ष एक दूसरे के साथ रहते हैं, इसका भी उदाहरण मिला ।

नेपाल मे काष्ठ मण्डप (काठमाण्डू) भक्त गाव, पाटन आदि की काष्ठ एवं पाषाण स्थापत्य शैली का दर्शन मेरे लिये एक नवीन अनुभव था। बौद्ध जनता तथा उसके रहन-सहन को देखने का अवसर मिला। वहाँ की मूर्तिकला, हिन्दुओ के रीति-रिवाज अपने मौलिक रूप में मिले, जिनका रूप उत्तर भारत मे विदेशी शासन तथा धर्म प्रभाव के कारण विकृत हो चुका था।

काश्मीर चौदहवीं शताब्दी तक पूर्णतया हिन्दू था, विदेशी शासन से मुक्त था। नेपाल आज भी स्वतंत्र है। काश्मीर की यात्रा मे मैंने अनुभव किया है, जैसे काष्ठ स्थापत्य नेपाल से चलकर, अपना मौलिक रूप लम्बी यात्रा मे खोते हुए काश्मीर पहुँच गया है। जोनराज को समझने के लिये नेपाल का यह ज्ञान सहायक हुआ। मैंने पाण्डुलिपियो के अन्वेषण मे सिक्किम तथा भूटान की यात्रा दो बार की। परन्तु वहाँ से वर्णन योग्य कोई सामग्री प्राप्त नही हुई। नेपाल के समान काश्मीर हिमालय कुक्षि मे पर्वतीय प्रदेश है। नेपाल इतिहास का वर्णन मैंने अपनी पुस्तक 'जागृत नेपाल' मे किया है।

काश्मीर सन् १३३९ ई० तक स्वशासित हिन्दू राज्य था। तत्पश्चात् विदेशी शाहमीर वंश, चक वंश, मुगल, पठान, सिख और डोगरो का अधिकार हुआ। अन्त मे काश्मीर मे लोकतन्त्र स्थापित हुआ। आदि काल से ही काश्मीर भारत का अंग रहा है।

नेपाल भारत का अंग नही था। काश्मीरी शुद्ध आर्यवंशीय है। नेपाल मे मंगोल रक्त एवं रूप का प्रभाव अधिक है। यद्यपि भारत के संसर्ग से आर्य प्रभाव वहाँ दिन-प्रतिदिन बढता गया। बृटिश काल मे वही एकमात्र स्वतंत्र हिन्दू राष्ट्र था।

कल्हण की राजतरंगिणी का अनुवाद करते तथा उस पर भाष्य लिखते समय, जोनकृत द्वितीय राजतरंगिणी कई बार पढ गया। मुसलिम शासन काश्मीर मे स्थापित होने पर, काश्मीर को भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा इतिहास से अलगकर, उसे महात्मन् मूसा, सुलेमान, ईसा तथा काश्मीर निवासियो को यहूदियो से जोडकर, शामी जाति एवं संस्कृति की एक शाखा मनवाने का प्रयास गत पाँच शताब्दियो से हो रहा है। काश्मीर का नाम 'कसीर' तथा 'बागे-सुलेमान' रख दिया गया। प्राचीन हिन्दू वंश का सम्बन्ध भी तुर्किस्तान से जोड दिया गया। यह क्रिया किस प्रकार काश्मीर मे प्रारम्भ हुई, इसका मूलस्रोत जोनराज-तरंगिणी मे मिलता है। विदेशी तथा परशियन लेखको ने जगत के सम्मुख एकांगी चित्र ही रखा है।

जोनराज कृत राजतरंगिणी पर, अबतक कोई पुस्तक प्रकाशित नही हुई है। उसका किसी भाषा मे श्लोकानुवाद भी उपलब्ध नही है। जोनराज के अध्ययन के समय मुझे अनुभव हुआ कि वह काव्य की अपेक्षा इतिहास अधिक है। उसकी शैली प्रांजल है। ऐतिहासिक घटना बहुल है। घटना को विस्तार की अपेक्षा संक्षेप मे वर्णन करने की शैली अपनायी गयी है।

कल्हण पर कार्य समाप्त करने के पश्चात्, अनायास विचार उत्पन्न हुआ कि जोनराजकृत राज-तरंगिणी की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सामग्री पर ग्रन्थ लिखूँ। जोनराज की तरंगिणी आधुनिक शैली के निकट लिखा गया प्रथम संस्कृत इतिहास है। वह काव्य अवश्य है, परन्तु काव्य की अपेक्षा इतिहास अधिक है।

कल्हण की राजतरंगिणी का हिन्दी अनुवाद बाल्यावस्था मे पढ़ा था। राजनीति एवं वकालत मे व्यस्त रहने के कारण काश्मीर के विषय मे रुचि होने पर भी, अध्ययन आगे बढ़ न सका।

कल्हण की राजतरंगिणी ज्ञान का स्रोत है। काश्मीर के भूगोल, इतिहास आदि के साथ महाकाव्य है।

नीलमतपुराण, योगवासिष्ठ रामायण तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण मे काश्मीर-विषयक सामग्री मिलती है। नीलमतपुराण काश्मीर का इतिहास तथा भूगोल है।

राजतरंगिणी मे वर्णित स्थानो को देखने की जिज्ञासा हुई। राजकीय साधनो की उपलब्धि के कारण मैंने प्रायः सभी स्थानो का भ्रमण एवं अध्ययन किया है। उन्हे कल्हण की राजतरंगिणी भाष्य मे प्रथित किया है। उसका प्रथम खण्ड प्रकाशित हो चुका है, द्वितीय मुद्रित हो रहा है। तृतीय खण्ड की पाण्डुलिपि तैयार है।

कल्हण वर्णित स्थानो के पूर्व नाम, गत तीन शताब्दियो मे बदल गये हैं। उन्हे जोनराज वर्णित स्थानो से मिलाने मे कठिनता हुई है।

जिस समय मैंने लेखन कार्य आरम्भ किया, हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड उदयपुर (राजस्थान) सरकारी प्रतिष्ठान का अध्यक्ष था। मझगाव डाक लिमिटेड (जल युद्धपोत निर्माण) सरकारी प्रतिष्ठान बम्बई तथा युनाइटेड कमर्शियल बैंक लिमिटेड कलकत्ता के संचालक मण्डल का सदस्य था। प्रति सप्ताह उदयपुर तथा कलकत्ता जाना पडता था। इस काल मे कलकत्ता राष्ट्रीय पुस्तकालय, संग्रहालय, ईरान सोसाइटी लाइब्रेरी, धर्मतल्ला स्ट्रीट कलकत्ता, बम्बई सेण्ट्रल लाइब्रेरी, दिल्ली के आरकाइव, पुरातत्व विभाग तथा संसदीय पुस्तकालय के सद् उपयोग का अवसर मिल गया था। अवसर आने पर जम्मू तथा श्रीनगर की यात्रा भी कर लेता था।

सन् १९६९–१९७० ई० मे भारतीय राजनीतिक परिस्थितियाँ इतनी तेजी के साथ बदली कि उनसे अछूता नही रह गया। बैंको के राष्ट्रीयकरण के कारण युनाइटेड कमर्शियल बैंक का संचालकत्व समाप्त हो गया। प्रतिपदा कलकत्ता जाना समाप्त हो गया। साथ ही आर्थिक हानि भी हुई। सन् १९७० ई० मे हिन्दुस्तान जिंक से इस्तीफा दे दिया। मझगाव डाक से भी सम्बन्ध छिन्न हो गया। मैं जितना ही गतिशील था, भगवान की दया से उतनी ही अब मेरी गति काशी मे अपने निवासस्थान तक ही सीमित रह गयी। चारो ओर से मन खींच लिया। पुस्तक रचना मे ध्यान लगाया। अनेक चुनाव हुए। कितने ही आमन्त्रण आये, प्रलोभन मे फँस नही सका। कही जाने का मन नहीं किया। लोगो ने समझा राजनीतिक दृष्टि से मैं मर गया। मैंने लोगो का आक्षेप स्वीकार कर लिया। इसमे एक प्रकार का सन्तोष हुआ। वह सन्तोष वैसा ही था, जैसे राजसुख त्याग कर कुटी निवास मे मिलता है।

जोनराज पर अबतक कोई पुस्तक प्रकाशित नही हुई है। उसका किसी भाषा मे श्लोकानुवाद भी उपलब्ध नही है। मुझे श्रीस्तीन का कठिन अथक परिश्रम स्मरण आया। उन्होने कल्हण की राजतरंगिणी का अध्ययन कर अपनी ऐतिहासिक पुस्तक कल्हण राजतरंगिणी अनुवाद तथा 'एशेन्शियल आँफ किंग्स आफ काश्मीर' भाष्य आंग्ल भाषा मे लिखा है। उनकी दिशा मेरी पथप्रदर्शक हुई। श्रीस्तीन अपने समय के पुरानी परम्परा के पण्डित थे। यह लगभग एक शत वर्ष पूर्व की बात है। इस काल मे अंग्रेजी के प्रचार के कारण संस्कृत की ओर लोगो की रुचि कम होती गयी है।

पुरानी परम्परा के पण्डितो का लोप होता गया, जो दुरूह पदो मे स्थानीय महत्व के वर्णनो पर कुछ प्रकाश डाल सकते थे। तथापि श्रीनगर की मैंने कई बार यात्रा की। जो भी लोग शेष रह गये थे, उनसे शंका निवारण का प्रयास किया।

जोनराजकालीन संस्कृत पुस्तकें नगण्य हैं। जोनराज के काल पर किसी संस्कृत ग्रन्थ से प्रकाश नहीं पडता। जोनराज ने 'पृथ्वीराजविजय' तथा 'श्रीकण्ठचरित' महाकाव्यो पर तरंगिणी की रचना के पूर्व भाष्य

लिखा था। उनका अध्ययन जोनराज को समझने के लिए आवश्यक है। कल्हण की राजतरंगिणी जोनराज के अध्ययन के पूर्व पढ लेने पर अध्ययन की भूमिका तैयार हो जाती है। जोनराज मुसलिमकालीन लेखक है। उनके समय काश्मीर की राजभाषा संस्कृत से परशियन तथा जनता हिन्दू से मुसलिम बहुत होगई थी। मन्दिर, मठ शाला, विहार आदि सब नष्ट हो गये थे। जोनराज के समय काश्मीर विशाल ध्वंसावशेषो का खडहर था।

फारसी राजभाषा होने के कारण इतिहास ग्रन्थ फारसी मे लिखे जाने लगे। 'स्रोत' मे मैंने उन सब उपलब्ध अथवा अनुपलब्ध फारसी ग्रन्थो का उल्लेख किया है। जिनके कारण जोनराज की राजतरंगिणी पर प्रकाश पडता है। पाण्डुलिपियो के माइक्रो फिल्म हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्राप्त किये गये है। श्रीनगर रिसर्च विभाग मे भी पाण्डुलिपिया है। उनका अध्ययन करने मे एक पुस्तकाकार नोट ही तैय्यार हो गया। फारसी पाण्डुलिपियो के अध्ययन के बिना जोनराजकृत राजतरंगिणी पर यथेष्ट प्रकाश नही पडेगा।

जोनराजकृत राजतरंगिणी की पाण्डुलिपिया वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय मे है। उनसे मैंने सहायता ली है। 'राजतरंगिणी संग्रह' की प्रति जो भारत मे अप्राप्य थी अकस्मात् राजतरंगिणी की पाण्डुलिपि मे लगी पाण्डुलिपियो के मध्य वारणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय पाण्डुलिपी विभाग मे मिल गयी। इस पुस्तक का किसी को ज्ञान नही था। वह एक ही बडल मे बँधी थी। उसमे भी जोनराज की तरंगिणी पर प्रकाश पडता है। यद्यपि वह कलकत्ता राजतरंगिणी सस्करण सन् १८३५ ई० के अन्त मे मुद्रित भी है।

मुद्रित ग्रन्थो मे कलकत्ता तथा बम्बई की प्रतियो के अतिरिक्त होशियारपुर से भी जोनकृत राजतरंगिणी प्रकाशित हुई है। श्रीकण्ठ कौल का परिश्रम स्तुत्य है। होशियार पुर विश्वेश्वरानन्द सस्थान इस संस्करण के लिये बधाई का पात्र है। मेरे संस्करण का आधार कलकत्ता की प्रति है। बम्बई की प्रति मे प्रक्षिप्त पद अत्यधिक है। कलकत्ता एव होशियारपुर की प्रतियो मे जहाँ भी कही नाममात्र का पाठभेद मिला है, वहाँ मैंने होशियारपुर की प्रति को ही मान्यता दी है। बम्बई की प्रति के प्रक्षिप्त पदो का अनुवाद पाद-टिप्पणी मे दिया गया है। उनसे कुछ तथ्यो पर प्रकाश पडता है। किन्तु उन्हे पूर्णतया सत्य मानना कठिन है।

अपनी प्रथम जेलयात्रा (सन् १९२१ ई०) के पूर्व मैंने फारसी तथा सस्कृत तत्कालीन परम्परा के अनुसार पढा था। उस समय मेरी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। किन्तु सन् १९२६ म पुन जेल जाना पडा। फारसी और सस्कृत दोनो का अध्ययन बन्द हो गया। यह स्थिति तृतीय जेलयात्रा (सन् १९३०) तथा उसके पश्चात् जेलयात्राओ तक बनी रही।

बनारस जिला जेल से मथुरा जेल मे भेज दिया गया। वहाँ मुझे फासी घर मे रखा गया। सभी पढने-लिखने की सुविधाये छिन गयी। केवल बैठा-बैठा समय काटता रहा। कुछ समय पश्चात् अक्टूबर मे जेल मे निरीक्षक डाक्टर हाफिज हफीजुल्ला नियुक्त हुए। उन दिनो जिले का सिविल सर्जन ही जेल का सुपरिण्टेडेण्ट होता था। वे आजमगढ के निवासी थे। काशी मे उनकी शिक्षा हुई थी। उनसे कुछ धार्मिक ग्रन्थ पढने के लिये मागा। जेल पुस्तकालय मे रामायण, बाइबिल तथा कुरान शरीफ की प्रतियाँ थी। कुरान शरीफ का मूल अरबी के साथ उर्दू अनुवाद था। पुस्तक लाहौर से प्रकाशित हुई थी। मैं बाइबिल और कुरान शरीफ पढ गया। हाफिज जी ने फारसी का आमदनामा अपने पास से खरीद कर मुझे दिया। जेल के मुसलिम जमादार की सहायता से उसे भी याद कर गया। वह अध्ययन इस समय मेरे काम आया है।

मुझे ख्वाजा हसन निजामी द्वारा हिन्दी में अनूदित कुरान शरीफ मिल गयी। उसमें औरंगजेब बादशाह के हाथों लिखी मूल कुरान की फोटो कापी भी छपी थी। जोनराज काल के मुसलिम प्रचार और प्रसार, मुसलिम दर्शन एवं तत्कालीन मुसलिम मनोवृत्ति, समझने मे सरलता हुई। कुरान शरीफ तथा हदीस का साधारण अध्ययन मुसलिम भावना, दर्शन और आचार-विचार को समझने के लिये आवश्यक है।

सन् १९४० ई० की जेलयात्रा मे पठन-पाठन की सुविधायें मिली। इस समय योगवासिष्ठ एवं वाल्मीकि रामायण पढ गया। संस्कृत का ज्ञान बढा। मेरी पुस्तकें 'रामायण कथा' तथा 'योगवासिष्ठ कथा' इस काल की रचनायें हैं। सन् १९४२ ई० की लम्बी जेलयात्रा मे संस्कृत ग्रन्थो के अध्ययन का अवसर मिला। राजनीतिक बन्दी एक साथ रखे जाते थे। उनमे हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई तथा पारसी थे। रातदिन उनके साथ रहते-रहते, उनके आचार विचार तथा उनकी मन.दशा का ज्ञान प्राप्त हो गया।

काश्मीर पर अध्ययन आरम्भ किया तो मेरी यह धारणा दृढ हो गयी कि योगवासिष्ठ रामायण काश्मीर मे लिखी गयी थी। उसमे काश्मीर के इतिहास एवं भूगोल का वर्णन है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के विषय मे भी मेरी यही धारणा है।

जेल से निकलने के पश्चात् संस्कृत तथा फारसी का अभ्यास छूट गया। उर्दू पूर्ववत् पढता रहा। क्योकि उत्तर प्रदेश की अदालतो मे काम उर्दू मे ही होता था। फारसी दस्तावेज भी पढने का कभी-कभी अवसर मिल जाता था।

फारसी पाण्डुलिपियो का अनुवाद काशी विश्वविद्यालय के रीडर डाक्टर श्री जी० डी० भटनागर पी० एच-डी० की सहायता से कर सका। उन्होंने महीनों साथ बैठकर माइक्रोफिलम से पाण्डुलिपि का अनुवाद काशी विश्वविद्यालय गायकवाड पुस्तकालय मे किया। उनका अथक परिश्रम स्तुत्य है। उनका धैर्य अद्भुत है। उनके इस ऋण से उऋण होना कठिन है।

पीर हसन की तारीखे काश्मीर का उर्दू अनुवाद श्रीनगर से प्रकाशित हो चुका है। मैंने श्रीनगर से प्रति खरीदी थी। एक सज्जन पढने के लिये ले गये, परन्तु आजतक लौटाई नही। बहुत परिश्रम के पश्चात् श्री जगद्दर जाडू एम० ए०, एम० ओ० एल० ने श्रीनगर से दूसरी प्रति प्राप्त कर भेज दी। श्री जाडू ने नील मत पुराण का सम्पादन कर प्रथम बार लाहौर से सन् १९२४ ई० मे प्रकाशित किया था। मूल पुस्तक फारसी मे होने के कारण जहाँ मुझे सन्देह हुआ, श्री डाक्टर भटनागर तथा डाक्टर श्री अमृतलाल इशरत से सहायता ली है। डाक्टर श्री इशरत ने तेहरान विश्वविद्यालय फारस मे अध्ययन किया है। उन्हें आधुनिक फारसी का अच्छा ज्ञान है। जहाँ मुझे उर्दू अनुवाद ठीक लगा वहाँ उर्दू अनुवाद से उद्धरण दिया है और जहाँ सन्देह हुआ है, वहाँ उक्त दोनो महानुभावो के अनुवाद का उपयोग किया है।

जोनराज को समझने के लिये फारसी ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है। काश्मीर की राजभाषा फारसी होने के कारण हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ने इतिहास का प्रणयन फारसी में किया है। प्रायः सभी ग्रन्थ पाण्डु-लिपी रूप मे ही हैं। उनके छपने पर अत्यधिक लोग लाभ उठा सकते हैं। फारसी ग्रन्थों की तालिका 'स्रोत' अध्याय मे दी गई है।

शारदा लिपि की सहस्रों पाण्डुलिपियाँ काशी विश्वविद्यालय पुस्तकालय मे हैं। उनकी तालिका आदि बनाने के लिये भारतीय पुरातत्व विभाग नई दिल्ली से श्रीसर्वानन्द शास्त्री पुत्र स्वर्गीय श्री मधुसूदन शास्त्री श्रीनगर की सेवा विश्वविद्यालय ने ली है। शास्त्री जी स्वयं काश्मीरी हैं। पुरानी शैली के संस्कृत विद्वान हैं।

वे श्रीनगर मुहल्ला गणपत यार के निवासी है। सनातनी शैली पर उनकी शिक्षा हुई है। मैने जोनराज का अनुवाद उन्हें दिखाया है। महीनो परिश्रम कर उसे ठीक किया गया है। जोनराज ने स्थानीय तथा अप्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है। अरबी तथा परशियन शब्दो को तोड-मडोर कर संस्कृत मे लिखा है। काश्मीर मे संस्कृत का उच्चारण कुछ भिन्न किया जाता है। उच्चारणो के अन्तर के कारण लिपिबद्ध करते समय भी अन्तर हो गया है। काश्मीरी उच्चारणो के अनुसार जोनराज ने नाम लिखे है। जैसे काश्मीरी मे 'ति' को 'ती' 'वी' को 'वे', 'प्रिया' को 'प्रेया' 'विष्णु' को 'विष्णे' आदि उच्चारण करते है। कितने ही शब्दो का वास्तविक अर्थ समझने के लिये महीनो शास्त्री जी के साथ परिश्रम करना पडा है। शब्दो का अर्थ तथा भाव उस समय क्या था, इसके भी समझने की आवश्यकता पडती रही है। अन्यथा अर्थ अस्पष्ट रह जाता। शास्त्री जी के साथ मिलकर एक फारमूला बना लिया गया। उससे नामो का वास्तविक रूप तथा शब्दो का अर्थ समझने मे सहायता मिली है। शास्त्री जी के कारण काश्मीर सम्बन्धी अनेक बातें ज्ञात हुई है। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

काश्मीर के सुलतानो के इतिहासो के सम्बन्ध मे प्रोफेसर श्री मोहिबुल हसन साहब ने प्रशंसनीय कार्य किया है। उनकी अंग्रेजी पुस्तक 'काश्मीर अण्डर दी सुलतान' अपने शैली की प्रथम ऐतिहासिक रचना है। निष्पक्ष इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उनकी उक्त पुस्तक प्रारम्भ मे मुझे प्राप्त नही हो सकी थी। उसका प्रथम संस्करण सन् १९५९ ई० मे हुआ था। मैने उसका अध्ययन ईरान सोसाइटी धर्मतल्ला स्ट्रीट, जहाँ से वह प्रकाशित हुई थी, वहीं किया था। पुस्तक अप्राप्य थी अतएव उसे वही बैठकर, पढा और नोट बनाया।

कुछ समय पश्चात् श्री मोहिबुल हसन साहब का पता मुझे लग गया। वे जामिया मिल्लिया मे अध्यापक हो गये थे। वहाँ के पुस्तकालय में बैठते थे। मै नई दिल्ली उनके निवास स्थान पर पहुँचा। उनके पास उनकी अंग्रेजी पुस्तक नही थी। उसका उर्दू अनुवाद प्राप्य था। उन्होने सहज स्नेह से मुझे दे दिया। फिर तो कितने ही दिन उनके साथ रहकर अध्ययन एवं शंका समाधान करने का अवसर मिला। उनके जैसे सरल चित्त, परिश्रमी तथा उदार विद्वान मुझे कम देखने को मिले है। उनके स्नेह तथा सहायता को भूलना मेरे लिये कठिन है। मैं उनके प्रति सादर आभार प्रकट करता हूँ।

काश्मीर-राज डॉ० श्रीकर्ण सिंह का मैं ऋणी रहूँगा। उन्होंने पीरहसन की मूल परशियन मुद्रित प्रति 'तारीख हसन' तथा डोगरा साहित्य की अनेक ऐतिहासिक पुस्तकें देकर मेरा ज्ञान बढाया है। श्रीकर्ण सिंह जी सर्वदा मुझे राजतरंगिणी के कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहित करते रहे हैं। उनके अनेक सुझावो के लिये मैं सादर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री कालूराम श्रीमाली जी का अत्यन्त कृतज्ञ रहूँगा। उनके कारण शारदा पाण्डुलिपियो का अध्ययन करने का मुझे पूरा अवसर मिला है। उनके कारण श्री सर्वानन्द शास्त्री की सहायता मुझे प्राप्त हो सकी है। हिन्दू विश्वविद्यालय की बिखरी पाण्डुलिपियो की तालिका भी उनके कारण पूर्ण हुई है। यह कार्य कठिन था। पाण्डुलिपियो का यदि आदि एवं अन्त का पृष्ठ न मिले तो उनका पता लगाना कठिन हो जाता है। क्योकि प्राचीन परम्परा के विद्वान अपना नाम ग्रन्थ का नाम, तथा परिचय प्राचीन शैली के अनुसार आरम्भ तथा इति पाठ मे ही देते हैं उन्हें वे ही ढूढ निकाल सकते हैं, जिन्हे संस्कृत साहित्य का अगाध ज्ञान होता है। श्रीमाली जी के कारण इस दिशा मे प्रगति हुई है और अनेक

अप्राप्य पाण्डुलिपिया प्रकाश मे आई है। इस तालिका से काश्मीर सम्बन्धी ग्रन्थो के अध्ययन मे सहायता मिली है। मेरे पास आभार प्रकट करने के लिये ढूढते भी शब्द नही मिलते।

ज्योतिष सम्बन्धी तथा कालगणना के सम्बन्ध मे मैं स्वयं ज्योतिष ज्ञाता न होने के कारण श्री डॉ० राजमोहन उपाध्याय पुत्र स्वर्गीय पण्डित भागवत उपाध्याय ग्राम बनौली, डाक नोहट्टा, जिला शाहाबाद, ज्योतिषाचार्य, एम० ए०, पी० एच० डी०, विभागाध्यक्ष काशी विश्वविद्यालय एवं प्रधान सम्पादक विश्वपंचाग से परामर्श लेता रहा हूँ। उनकी अमूल्य सम्मतियो को यथा स्थान पुस्तक मे स्थान दिया गया है।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के प्रोफेसर डाक्टर श्रीलल्लन जी गोपाल ने कल्हण की राजतरंगिणी के समान इस ग्रन्थ लेखन मे मेरा मार्ग प्रदर्शन किया है। उनका धैर्य तथा परिश्रम स्तुत्य है। उनके कारण अनेक आधुनिक अनुसन्धानो, मुख्यत. 'मुद्रा' आदि के ज्ञान पर प्रकाश पडा है, अनेक नवीन बातें मालूम हुई हैं। उनके प्रति आभार प्रकट करने के लिये मुझे शब्द खोजना पडेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थो का उल्लेख पाद टिप्पणी मे किया गया है। श्लोको के सम्बन्ध मे पाद टिप्पणी है, अतएव सन्दर्भ ग्रन्थो को पुनः पाद टिप्पणी के बाद टिप्पणी मे बनाकर देना अशोभनीय लगता तथा साथ ही यह प्रचलित शैली भी नही है। मैंने कल्हण राजतरंगिणी की ही भाष्य एवं टिप्पणी का इसमे अनुकरण किया है।

मैंने कल्हण, जोनराज, श्रीवर तथा शुक सभी राजतरंगिणियो का भाष्य लिखने की योजना बनायी है। अतएव उनकी शैली भी पाठको की सरलता के लिये एक ही जैसी रखी है।

मैंने इस ग्रन्थ की शैली श्रीस्तीन द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक कल्हण राजतरंगिणी के आदर्श पर ही रखी है। श्रीस्तीन से भारत तथा काश्मीर कभी उऋण नही हो सकते। उन्होने काश्मीर को विश्व के सम्मुख उसके उज्ज्वल गौरवशाली रूप मे उपस्थित किया है।

उस समय काश्मीर मे संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान उपस्थित थे। काश्मीर ने आधुनिक कलेवर नहीं बदला था। कुछ ध्वसावशेष आदि अपने मूलरूप मे थे। उनके समय और आज के समय मे अन्तर हो गया है।

कितने ही ध्वसावशेष लुप्त हो चुके हैं। लोग उन्हें भूल भी चुके हैं। तथापि मैंने उन्हें पुनः देखा है अध्ययन कर लिखा है।

पादटिप्पणी मे स्थानो का मूल तथा वर्तमान नाम, उनकी भौगोलिक स्थिति तथा इतिहास दिया गया है। श्रीदत्त ने पाठ की अशुद्धि के कारण जहाँ अनुवाद ठीक नही दिया है, उसका भी उल्लेख कर दिया गया है। अर्थ स्पष्ट करने के लिये जिन अतिरिक्त शब्दो की आवश्यकता पडी है। उन्हे कोष्ठ मे दिया है। अनुवाद मे कठिनता का बोध होने पर काशी के गणमान्य संस्कृत विद्वानो से सहायता ली है। जहाँ सन्तोष नहीं हुआ है, वहाँ सभी अनुवादो को लिख दिया है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता, ईरान सोसाइटी लाइब्रेरी, धर्मतल्ला, कलकत्ता, एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी कलकत्ता, रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, जम्मू, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उदयपुर विश्वविद्यालय, श्रीनगर राजकीय रिसर्च विभाग, प्रतापसिंह संग्रहालय श्रीनगर, पुरातत्व विभाग श्रीनगर, सर्वभारतीय काशिराज न्यास रामनगर दुर्ग, काशी, बम्बई सेंट्रल लाइब्रेरी, काशी

विद्यापीठ पुस्तकालय, पुरातत्व विभाग लाइब्रेरी, नई दिल्ली, संसदीय पुस्तकालय, नई दिल्ली आदि के व्यवस्थापकों तथा कर्मचारियों के प्रति सादर आभार प्रकट करता हूँ, जिनके कारण सर्व प्रकार की सुविधायें हमें मिलती रही हैं।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के व्यवस्थापक तथा ग्रन्थालय के कर्मचारियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनके कारण यह पुस्तक प्रस्तुत रूप ले सकी है। श्री पशुपतिनाथ द्विवेदी आचार्य एम० ए० प्राध्यापक उत्तर रेलवे कालेज वाराणसी कैण्ट, तथा श्री सातकडि मुखोपाध्याय बंगीय के अथक परिश्रम के लिये उन्हें धन्यवाद देता हूँ। श्री अलखनाथ यादव, पुत्र स्वर्गीय बहादुर सरदार, जद्दूमण्डी काशी इस काल में मेरे एक मात्र मित्र रहे हैं। मन उचटने पर हम कहीं बैठ कर विचार विनिमय कर लेते थे। मन हलका हो जाता था। चौखम्बा प्रकाशन के प्रमुख संचालक श्री मोहनदास तथा श्री बिट्ठलदास जी गुप्त का मैं किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करूँ जिनके कारण पुस्तक का मुद्रण-प्रकाशन सुचारु रूप से हुआ है।

डी० ५२।१९७ पीहट्टा
वाराणसी, नगर
काशी

रघुनाथ सिंह

उद्गम

परम्परा : इतिहास की प्राचीनता एवं उसकी परम्परा पर कल्हण की राजतरङ्गिणी प्रथम भाग के आमुख मे विचार किया है। शारदा देश काश्मीर एवं काशी से विद्वानो की एक बहुत बड़ी परम्परा जुटी है, अति प्राचीन काल से। काश्मीर भूमि ने केवल केसर-कुङ्कुम की सुगन्धि ही कन्याकुमारी तक प्रसारित नही की, बल्कि बुद्धिविलास का वैभव भी देश के कोने कोने मे पहुँचाया है। महनीय संस्कृत महाकवियो के विषय मे विचार करने पर आपाततः यही मालूम पडता है कि संस्कृत वाङ्मय काश्मीर-कविमय है। उन्हे अलग कर देखने पर बहुत हल्कापन आजाता है।

काश्मीर मे कवि राज्याश्रय प्राप्त कर काव्यादि के क्षेत्र मे प्रभावशाली बनते थे। अधिक कवि ऐसे ही हुए हैं। वैसे यह, भारतीय परिपाटी रही है। ऐसी स्थिति मे कवियो का राजाओ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना, अधिकाधिक कृतज्ञ रहना, स्वाभाविक ही है। चाहे वह किसी भी रूप मे क्यो न हो। कल्हण ने एक श्लोक मे लिखा है—"जिन राजाओ की छत्रछाया मे पृथ्वी निर्भय रही, वे राजा भी जिस कवि-कर्म के बिना स्मृति पथ पर नही आते उस कवि-कर्म को नमन है (रा० तं० : १ । ४६)।" यह सूक्ति अविकल रूप से सत्य है।

काश्मीर का इतिवृत्त ग्रथित करने का प्रयास सर्वप्रथम सुव्रत, क्षेमेन्द्र, नील मुनि, हेलाराज, छविल्लाकर आदि ने किया था। यह प्रयास आदिम होने के कारण दोषपूर्ण होने पर भी स्तुत्य है। इनमे नीलमत पुराण के अतिरिक्त प्रायः सब कृतिया अप्राप्य है। उक्त कवियो ने जिस इतिवृत्त लिखने की परम्परा चलायी, उसे सुन्दर ढग से पल्लवित करने का गौरव महाकवि कल्हण को प्राप्त है। इस प्रकार दिवंगत राजाओ को आकलन रखने की एक नवीन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। पूर्व के ऐतिह्य विच्छिन्न थे, उनमे कोई अच्छा क्रम नही था। प्रामाणिकता का अभाव था। सम्भवतः सब लोककथाओ पर ही आधारित थे।

कल्हण ने इतिवृत्त के समस्त स्रोतो, दानपत्र, शिलालेख, लोककथा, परम्परा आदि से तथ्य संगृहीत कर, पुनः नवीन ढंग से राजतरगिणी लिखना प्रारम्भ किया। राजा जयसिह तक कल्हण राजतरगिणी की अजस्र धारा प्रवाहित रही। तत्पश्चात् शुष्क होने की स्थिति आ गयी। किन्तु परवर्त्ती राजाओ के पुण्य से जैनुलाबदीन के राज्यकाल मे महाकवि जोनराज हुए थे। उन्होने जैनुलाबदीन के मन्त्री शिर्यभट्ट की आज्ञा प्राप्त कर, कल्हण के पश्चात् से तरङ्गिणी को पुनः प्रवाहित किया। जोनराज ने कल्हण के उत्तराधिकार का सुन्दर ढंग से निर्वाह किया है। उन पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कल्हण का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। जोनराज ने कल्हण की वाणी को रसमयी कहा है। अतः सिद्ध है, स्वय भी अपनी वाणी रसमयी बनाने मे कोई प्रयास छोडा नहीं है।

राजतरङ्गिणी इतिहास ग्रन्थ है। काव्य में केवल इतिवृत्त मात्र का निर्वाह करने से सफलता नहीं मिलती। इतिहास मे रस अलंकार आदि काव्य के गुणधर्मों का होना अनिवार्य नही होता। तथापि यदि कवि अपने प्रतिभाबल से उस इतिवृत्त मरुस्थल मे धारा प्रवाहित अथवा यत्रतत्र पुष्पवाटिका का सृजन कर दे, तो इससे अधिक उसकी सफलता और क्या होगी? एक कवि, काव्य निर्माण मे रस के आधीन होता है, तथापि रस का सब कुछ कवि पर ही निर्भर रहता है। वह अपने काव्य का प्रजापति है। सरस को नीरस एवं नीरस को सरस बना देना, कवि की रुचि पर निर्भर है। इसीलिये कहा है—

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मैं रोचते विश्व तथेदं परिवर्तते॥

राजानक जोनराज : जोनराज के पिता का नाम नोनराज था। उसके पितामह का नाम लोलराज था। वह काश्मीरी भट्ट ब्राह्मण था। उसे राज्य की सर्वश्रेष्ठ उपाधि राजानक प्राप्त थी। जोनराज का अपर नाम ज्योत्स्नाकर था।

जोनराज अपना नाम स्वयं राजतरंगिणी (श्लोक ७) मे देता है। इतिपाठ उसका लिखा नहीं— है तथापि उसमे भी नाम जोनराज दिया गया है। जोनराज ने पृथ्वीराजविजय मे पिता का नाम पण्डित भट्ट जोनराज तथा पितामह का लोलराज दिया है।

श्रीकण्ठचरित की विवृति मे जोनराज अपने को नोनराज का पुत्र तथा लोलराज का पौत्र लिखता है। वह स्वयं अपना परिचय देकर, अपनी विवृति का उद्देश्य सन्त परोपकार, यश एवं पुण्यवृद्धि लिखा है। प्रथम सर्ग से २४ सर्ग के इतिपाठ मे 'श्रीजोनराज कृतया टीका समेतः' लिखा गया है। किन्तु अन्तिम सर्ग के इतिपाठ मे लिखता है—'इति श्रीपण्डित लोल तनय पण्डित नोनराज तनय राजानक श्रीजोनराज कृतया—'

किरातार्जुनीय की जोनराज कृत टीका प्राप्त नही है। उसमे जोनराज ने अपने विषय में क्या सूचना दी है, कहना कठिन है।

राजानक : पृथ्वीराजविजय टीका के इतिपाठ मे राजानक पदवी नहीं लिखी है। जोनराज की राजतरंगिणी मे भी राजानक पदवी जोनराज के साथ नही मिलती। श्रीकण्ठचरित मे अवश्य मिलती है। जोनराज की राजतरंगिणी अधूरी है। उसने स्वयं उसका इतिपाठ नहीं लिखा है। उसमे राजानक शब्द का न होना आश्चर्य की बात नही है।

जोनराज की अन्तिम रचना राजतरंगिणी है। पृथ्वीराजविजय तरंगिणी के पूर्व की रचना है। उस समय उसने ख्याति नहीं प्राप्त की थी। किरातार्जुनीय की टीका अप्राप्य है। परन्तु श्रीकण्ठचरित मे वह स्वयं राजानक उपाधि अपने नाम के साथ लिखता है। राजानक काश्मीर की सर्वश्रेष्ठ राजकीय उपाधि थी। हिन्दू राजाओ के पश्चात् मुसलिम सुलतानो ने यह पदवी देने की प्रथा जारी रखी। बारहवीं शताब्दी का कवि जयानक भी राजानक था। पृथ्वीराजविजय, श्रीकण्ठचरित और किरातार्जुनीय की टीका के पश्चात् लिखा गया था। पृथ्वीराजविजय के सर्ग ७, ८, ९, १०, ११ से इसकी पुष्टि होती है।

शुक ने राजानक पदवी के साथ नहीं बल्कि श्रीवर (१ : ६) का अनुकरण करते हुए 'जोनराज विबुध'—मात्र लिखा है (शुक १ : ६)। निःसन्देह जोनराज तत्कालीन राजानक उपाधि से विभूषित था। वह पदवी कालान्तर मे ब्राह्मणो की एक उपजाति के लिये अभिहित होने लगी। राजानक का अपभ्रंश ही राजदान है। राजानक, राजनयक, राजनीक अथवा रानक अभिजातकुलीन सामन्तों की पदवियां हैं।

सामन्त कभी-कभी शासक भी होते थे। लोकप्रकाश मे राजानक की परिभाषा दी गयी है—'स्थैर्यं स्थाणु राज्ञो द्वार मुद्वहति यः स राजानक.'।

जोनराज–योनराज–यवनराज : कतिपय फारसी इतिहासकारो ने 'योनराज' तथा 'यवन राज' नाम दिया है। यह गलत है। फारसी लिपि की गलती के कारण यह भ्रम हुआ है। 'जोन' तथा 'योन' के लिखने मे बहुत कम अन्तर है। 'जे' के नीचे का एक नुक्ता योन भी घसीट मे पढ लिया जाता है। घसीट लिखते समय कभी नुक्ता दिया भी नही जाता। जैसे 'आस्ता ची' शुद्ध है परन्तु पाण्डुलिपियो मे 'ची' को भ्रम से 'जी' पढ लिया गया है। कतिपय इतिहासकार 'जी' ही पाठ लगाते रहे हैं। फारसी मे 'योन' लिखने पर 'यवन' भी पढा जा सकता है। इसी प्रकार 'जोन' को 'जवन' भी पढा जाता है। भाषा मे 'ज' को 'य' भी पढ तथा बोल और काश्मीरी मे 'ज' का उच्चारण 'य' तथा 'य' का 'ज' भी कर लेते हैं। जोनराज का नाम 'योनराज' तथा 'यवनराज' नही था। उसका शुद्ध नाम जोनराज ही था।

जाति : जोनराज भट्ट ब्राह्मण थे। वह कुलीन तथा प्राचीन शैली के सस्कृत पण्डित थे। कल्हण चम्पक महामात्य का पुत्र था, चम्पक राजा का अमात्य था, कुलीन था। इसी प्रकार जोनराज भी राजानक था, कुलीन था, उसकी समाज में प्रतिष्ठा थी। अन्यथा राजानक उपाधि के साथ श्रद्धापूर्वक उसका उल्लेख न किया जाता।

जन्मस्थान . जोनराज के जन्मस्थान के विषय मे लिखित प्रमाण नही मिलता। उसने शारिका पर्वत तथा श्रीनगर का वर्णन बहुत किया है। आज शारिका पर्वत तक वर्तमान श्रीनगर फैल गया है। श्रीनगर तथा शारिका पर्वत के स्थानो का जोनराज ठीक भौगोलिक परिचय देता है। वह राजकवि भी था। अतएव सम्भावना यही है कि उसका जन्म एवं कार्यक्षेत्र श्रीनगर ही रहा है।

जन्म-मृत्यु वर्ष : जोनराज की जन्म तिथि अभी तक किसी ग्रन्थ मे निश्चित नही मिली है। एक मत है कि सिकन्दर बुतशिकन जिस वर्ष काश्मीर का सुलतान (सन् १३८९ ई०) हुआ था, उसी वर्ष जोनराज का जन्म हुआ था। सिकन्दर आठ वर्ष की अवस्था मे सुलतान हुआ था। उसने सन् १४१३ ई० तक राज्य किया था। जोनराज सिकन्दर के अभिषेक का निश्चित समय देता है। श्रीवर ने जोनराज की मृत्यु का समय सप्तर्षि सम्वत ४५३५ = सन् १४५९ दिया है। राजतरगिणी की रचना अकस्मात समाप्त हो जाती है। अतएव यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जोनराज ७० वर्ष की अवस्था प्राप्त कर चुका था, उसकी मृत्यु भी अकस्मात हो गयी थी।

शिक्षा : श्रीकण्ठचरित, किरातार्जुनीय एवं पृथ्वीराजविजय की टीकाओ से प्रतीत होता है कि उसने अलकारशास्त्र, सस्कृत साहित्य आदि का गम्भीर अध्ययन किया था। वह अपने गुरु का नाम नहीं देता, किससे उसने अध्ययन किया था। उल्लेख भी नही करता जब कि शुक ने स्पष्ट अपने गुरु का नाम बुद्ध-भट्ट (१ - ३७१०) लिखा है। श्रीवर ने जोनराज को अपना गुरु स्वीकार किया है (१ : ७)।

जोनराज सिद्धहस्त लेखक था। वह काव्य व्यंजना जानता था। रसो तथा अलकारो का यथास्थान सुन्दरतापूर्वक प्रयोग करना, काव्यमर्मज्ञ होना प्रमाणित करता है। सस्कृत साहित्य का उसे विशद ज्ञान था। उसकी टीकाओ से अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने रामायण, महाभारत, भास, माघ, कालिदास, जयानक आदि कवियो की रचनाओ का अध्ययन किया था। उनका यथास्थान उल्लेख किया है।

प्राप्य आधारो पर अनुमान किया जा सकता है कि उसने किसी एक गुरु से शिक्षा नहीं ग्रहण की थी। अन्यथा वह एक का नाम सस्कृत लेखकों की पुरातन परंपरा का अनुसरण करता अवश्य देता।

जोनराज इतिहास लिख रहा था। उसने कल्हण की राजतरंगिणी तथा नीलमत पुराण के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है। निःसन्देह बहुश्रुत था, अनेक विषयो का पण्डित था। उसने साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, ज्योतिष और आयुर्वेद का अध्ययन किया था। उसने विमलाचार्य ज्योतिषविद् का उल्लेख किया है। उसने शाहमीर तथा अन्य लोगो की बीमारियो के प्रसंग मे जिन निदानो का उल्लेख किया है, वे आयुर्वेदिक दृष्टि से सत्य ठहरते हैं। गरुडशास्त्र का भी उसे ज्ञान था। शिर्यभट्ट एवं जैनुल आबदीन के प्रसंग मे इसका उल्लेख करता है (श्लोक ८११–८१२)। जोनराज ने इसी प्रकार रामायण तथा महाभारत के कथानको से उपमा देकर, प्रमाणित किया है कि उसने उनका गम्भीर अध्ययन किया था। (श्लोक ६९)।

षड्शास्त्रों के अध्ययन के साथ उसने योगवासिष्ठ का भी अध्ययन किया था। शहाबुद्दीन के प्रसंग मे कलेवर बदलने की घटना योगवासिष्ठ के लीला उपाख्यान से मिलती है। जैनुल आबदीन योगवासिष्ठ पढवा कर सुनता था। उसने उसे आधार मानकर 'शिकायत' नामक पुस्तक की स्वयं रचना की थी। जोनराज सुलतान का राजकवि था। उसने सुलतान को योग मे प्रवृत्त तथा अभ्यास का उल्लेख किया है। जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है। जोनराज को योगशास्त्र तथा उसकी क्रियाओ का ज्ञान था।

भौगोलिक वर्णन : जोनराज ने शहाबुद्दीन की विजय-यात्रा के प्रसग मे भौगोलिक वर्णन किया है यद्यपि उसने उन स्थानो का स्वयं पर्यटन नही किया था। इसी से उसका भौगोलिक वर्णन अस्पष्ट है। वह त्रिगर्त का उल्लेख करता है (श्लोक २०)। परन्तु त्रिगर्त किस अंचल का नाम था, उसकी क्या सीमा थी आदि प्रश्नो पर कुछ प्रकाश नही डालता। त्रिगर्तराज सुशर्मा का उल्लेख महाभारत मे है। अतएव जोनराज त्रिगर्त निवासी मल्लचन्द्र को सुशर्मा के वंश से जोड देता है। वह यवन भूमि का भी उल्लेख करता है (श्लोक ३२)। किन्तु यह स्पष्ट नही करता कि यवन भूमि से उसका तात्पर्य किस अंचल से था वहाँ के राजा का नाम न देकर, केवल यवनेश्वर तथा तुरुष्केश्वर लिख कर, विषय समाप्त करता है (श्लोक २५)। राजपुरी-पति का उल्लेख कर चुप हो जाता है। उसका नाम नही देता (श्लोक ८५)। इसी प्रकार उसने गान्धार (श्लोक ३७५), उदभाण्डपुर (श्लोक ३७२), सिन्ध (श्लोक ३७४), पुरुषवीर (श्लोक ३७९) नग्रहार (श्लोक ३८०), गजनी (श्लोक ३७७), दिल्ली (श्लोक ३८३), काष्टवाट (श्लोक ७६), राजपुरी (श्लोक ९५), लोहर (श्लोक ८१), पचगह्वर (श्लोक १३२), योगिनीपुर (श्लोक ३८४), पारसी (श्लोक ३८६) तथा अएनगर आदि का नाम दिया है। उक्त स्थान काश्मीर मण्डल के सीमावर्ती देश एवं प्रदेश हैं। जोनराज ने नाम ठीक दिया है। उनके सम्बन्ध, उनकी दिशा, उनकी स्थिति के विषय मे निश्चित सूचना नही देता। इन नामो के कारण आधुनिक अनुसन्धानो तथा मध्ययुगीय इतिहास की सहायता से उन स्थानो का पता लगाया जा सकता है।

जोनराज ने शिग (श्लोक ३७६), गोग्ग (श्लोक ८३३), हिन्दुघोष (श्लोक ३८२), सुशर्मपुर (श्लोक ३८६), नगराग्रहार (श्लोक ३८०), शयदेश (श्लोक ८३०), सलूत (श्लोक ८३५) और मद्र (श्लोक ७१४, ७१७, ७३०) का उल्लेख किया है। किन्तु उनकी वास्तविक भौगोलिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, अन्य साधनो का मुखापेक्षी बना देता है।

मुग्धपुर (श्लोक २३२) जैसे संस्कृत नाम वाचक शब्द का बिल्कुल पता नही चलता। उसने मक्कदेश अर्थात् मक्का का उल्लेख किया है (श्लोक ८४१)। मुसलमानो मे मक्का शब्द हज तथा कुरान के अवतरण के कारण प्रसिद्ध है। अतएव जोनराज ने सुनकर उसका उल्लेख किया है।

जोनराज का प्रादेशिक भौगोलिक वर्णन प्रायः ठीक है। वह वामपार्श्व (श्लोक ७६), शमाला (९२), उत्पलपुर (१०७, ३२२), वारवल (१५९), वानवल (१८५), भीमानक (२३४), बहुरूप (२५२), कराल (२५३), विजयेशपुर (२५४), चक्रधर (२५५) अवन्तिपुर, देवसरस (३३०), द्रक्षिका (३३५), क्रमराज (३३६), सुय्यपुर (३४०) तथा शारिका शैल (४१०) का ठीक वर्णन करता है।

काश्मीर के भेदादेवी, भूतेश्वर, गम्भीर सगम, अमरनाथ आदि प्रसिद्ध स्थानो के उल्लेख का अभाव खटकता है।

जोनराज ने उपत्यका का भूपरिचय दिया है। पर्वतो, नदियो, स्रोतस्विनियो, कुल्याओ, नागो, सरो, वनो, क्षेत्रो का यथार्थ वर्णन किया है। उसका वर्णन कल्हण के समान सविस्तार न होकर संक्षिप्त है। सरो मे सुरेश्वरी सर, अच्छोद सर मनसावल तथा महापद्मसर का विस्तार के साथ वर्णन किया है। नीलमत पुराण एवं कल्हण वर्णित नाम तथा जोनराज के समय प्रचलित नाम आज बदल गये हैं। उनका यथास्थान इस ग्रन्थ मे उल्लेख किया गया है।

पर्यटन : कल्हण के समान जोनराज भारत का पर्यटन नही कर सका था। कल्हण के समय मे काश्मीर तथा भारत मे हिन्दू राज्य था। कल्हण कही भी जा सकता था। संस्कृत का विद्वान् होने के कारण उसका सर्वत्र स्वागत हो सकता था। जोनराज के विषय मे यह नही कहा जा सकता। उसके समय किसी भी ब्राह्मण को काश्मीर के बाहर जाने के लिये पासपोर्ट अर्थात् मोक्षाक्षर प्राप्त करना आवश्यक था। काश्मीर मे क्रान्ति हो रही थी। ऐसी परिस्थिति मे जोनराज घर छोडकर, कही जा भी नहीं सकता था।

पृथ्वीराजविजय मे पुष्कर, अजमेर, मरुस्थल आदि पर उसकी लिखी टीका से उन स्थानो पर कुछ और प्रकाश नही पडता। उसका ज्ञान प्रत्यक्ष नही अपरोक्ष मालूम होता है। योगिनीपुर का नाम ठीक देकर उसे दिल्ली सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु दिल्ली किंवा योगिनीपुर वहाँ के मार्गों, स्थानो एव भूगोल आदि पर वह कुछ प्रकाश नही डालता। इसी प्रकार उसका सीमान्त देशो का वर्णन तथा उनका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं अप्रत्यक्ष था। सीमान्त के जिन स्थानो का उसने उल्लेख किया है, उससे भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश नही पडता।

इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि वह बहुश्रुत अवश्य था, परन्तु बहुपर्यटक नही था। उसका पर्यटन काश्मीर उपत्यका तक सीमित था। काश्मीर उपत्यका के स्थानो का भौगोलिक परिचय कल्हण के समान ठीक नहीं देता। वह केवल स्थानो का नाम दे देता है। श्रीनगर, शारिकापर्वत, वारहमूला, विजयेश्वर, सुय्यपुर आदि काश्मीर उपत्यका के प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन ठीक किया है। उसने काश्मीर के बाह्य देशो, प्रदेशो एवं नगरो का उल्लेख मालूम पडता है, सुन सुनाकर किया है।

काश्मीर : जोनराज नीलमत के इस सिद्धान्त—'काश्मीर पार्वती स्वरूप है, सतीसर है, वहाँ का राजा हरांश है' विश्वास करता है (श्लोक १३४)। क्षेमेन्द्र एव कल्हण जैसे इतिहासकार नीलमत मे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कहे गये, इस वचन पर अन्धविश्वास करते थे। जोनराज ने काश्मीर को पार्वती माना है। सती किंवा पार्वती जो सर्वशक्तिशालिनी है, काश्मीर की रक्षा करती है। राजा देव अश है। इस देवाधिराज तंत्र में विश्वास करने के कारण काश्मीर के सुलतानों को भी हरांश मानना पडता है। जोनराज ने सुलतान जैनुल आबदीन को हरि अवतार तक लिख दिया है।

रचना : जोनराज ने तीन टीकायें पृथ्वीराजविजय, श्रीकण्ठचरित एवं किरातार्जुनीय पर लिखी हैं। उसने इसे अपने ग्रन्थों में स्वीकार भी किया है। किरातार्जुनीय की टीका अप्राप्य है। उसके विषय मे कुछ

विस्तार के साथ लिखना संभव नहीं है। उसने टीका सम्भवतः सन् १४४९ ई० में समाप्त की थी। जोनराजतरङ्गिणी उसकी अधूरी अन्तिम रचना है।

पृथ्वीराजविजय : जोनराज की मानसिक स्थिति समझने के लिये, पृथ्वीराजविजय टीका ध्यान-पूर्वक पढ़ना आवश्यक है।

श्री बुहलर को संस्कृत पाण्डुलिपियों के अन्वेषण काल में काश्मीर में सन् १८७५ ई० में पृथ्वीराजविजय महाकाव्य की एक प्रति प्राप्त हुई थी। यही एकमात्र पाण्डुलिपि विश्व में उपलब्ध है। पाण्डुलिपि के आधार पर रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। केवल उसके ११ सर्ग प्राप्त हैं। शेष सर्ग अप्राप्य हैं। अनुमान लगाया गया है कि उसमें १८ सर्ग थे। मुद्रित ग्रन्थ में मुद्रक अथवा सम्पादक की कोई भूमिका या प्राक्कथन नहीं है। मुझे इसकी प्रति गलित स्थिति में मिल गयी। यह राजानक जोनराज की टीका सहित मूल है। पाण्डुलिपि शारदालिपि में भोजपत्र पर लिपिबद्ध थी।

ग्रन्थ में रचनाकार का नाम नहीं दिया है। केवल सर्ग समाप्त ऐसा लिखा गया है। यह संस्कृत ग्रन्थों की इतिपाठ रचना परम्परा के प्रतिकूल है। आदि तथा अन्त कहीं भी काव्यकार का नाम नहीं दिया गया है। जोनराज ने इतिपाठों में अपना परिचय दिया है परन्तु मूल रचनाकार का नाम नहीं दिया है। इससे प्रकट होता है कि जोनराज को भी मूल लेखक का नाम नहीं ज्ञात था। जोनराज ने पृथ्वीराज-विजय की रचना (सन् ११९१–११९३ ई०) के लगभग, २६० वर्ष पश्चात् अपनी टीका लिखी थी। उस समय भी लेखक का नाम जोनराज को ज्ञात नहीं था। अन्यथा वह अवश्य अपनी टीका में कहीं न कहीं रचनाकार का नाम, जिसकी वह टीका कर रहा था, आदर के साथ अवश्य देता। उस समय कोई वैयक्तिक तथा राजनीतिक कारण नहीं था कि वह नाम प्रकाशित न करता।

संस्कृत साहित्य का इतिहास देशी तथा विदेशी दोनों विद्वानों ने लिखा है। श्री कीथ का मत है कि लेखक काश्मीरी था। अन्य विद्वानों में से किसी ने लेखक का नाम चन्द और किसी ने जयानक दिया है। श्रीकण्ठ कौल ने लेखक का नाम जयानक ही दिया है, यह सब अनुमान पर ही आधारित है।

ग्रन्थ में पृथ्वीराज चौहान की विजय का वर्णन है। उसने मुहम्मद गोरी को पराजित किया था। यह विजय उसने सन् ११९१ ई० में की थी। सन् ११९३ ई० में गोरी के साथ युद्ध करते समय पृथ्वीराज की मृत्यु हो गयी थी। अस्तु यह ग्रन्थ सन् ११९१ एवं ११९३ ई० के मध्य लिखा गया था। इस ग्रन्थ में मुहम्मद गोरी के गुजरात द्वारा पराजित होने का भी उल्लेख है।

काश्मीरी पण्डित जयरथ बारहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ था, पृथ्वीराजविजय का उल्लेख किया है। उसने भी रचनाकार का नाम नहीं दिया है। पृथ्वीराजविजय में काश्मीरी कवि जयानक की उपस्थिति दिखायी गयी है। आधुनिक विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि रचना जयानक की है। ग्रन्थ में रचनाकार अपना केवल इतनाही परिचय देता है कि वह उपमन्यु के वंश में उत्पन्न हुआ था। शारदा ने मातृवत् उसका पालन किया था। शारदा काश्मीर का प्राचीन नाम है। काश्मीर को शारदा क्षेत्र तथा शारदापीठ भी कहते थे। शारदा-देवी का मन्दिर इस समय पाकिस्तान में अनधिकृत रूप से है। शारदा ने उसे आशीर्वाद दिया था कि एक जन्म में पृथ्वीराज जो हरि का अवतार होगा उसकी गौरवगाथा की रचना करेगा।

श्री हरविलास शारदा ने सन् १९१३ ई० में रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल (पृष्ठ १६३) में प्रथम लेख लिखा था। उसे मैंने पढ़ा है। संवत् १९८१ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका (पृष्ठ १३५–१८३) में लेख सविस्तार मुद्रित है। श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने भी इस विषय पर लेखनी उठायी है। श्री हरविलास

शारदा ने भी लेखक का नाम नही दिया है। ग्रन्थकार के विषय मे कोई विशेष सूचना नही मिलती। श्री बी० एस० पाठक ने एशिएण्ट हिस्टोरियन ऑफ इण्डिया (सन् १९६६ ई०) अध्याय पाच पृथ्वीराजविजय पर लिखा है। उन्होने लेखक के जयानक होने का अनुमान किया है।

रचनाकार ने रामायण की शैली पर पृथ्वीराज का चरित लिखने का प्रयास किया है। यह निःसन्देह विजयशैली महाकाव्य है। चार सर्गो मे चाहमान वंश की प्रशस्ति है। इसी वंश वर्णन के आधार पर बुहलर के शिष्य श्री मोरिस ने एक लेख वियना के ओरियण्टल जर्नल मे छपाया था।

पृथ्वीराजविजय काव्य से पता चलता है कि पूर्वमध्यकाल मे इतिहास लिखने की परम्परा प्रचलित थी। उसमे पृथ्वीभट्ट का उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि उसने सैकडो इतिहासो की रचना की थी।

जोनराज की टिप्पणी से जोनराज की शैली तथा उसके ज्ञान पर प्रकाश पडता है। जोनराज इतिपाठ मे अपना नाम, पिता तथा पितामह के नाम के अतिरिक्त अपने विषय मे और कोई सूचना नही देता। उसने तत्कालीन कवि विश्वरूप, कृष्ण एवं जयानक का उल्लेख किया है।

पृथ्वीराजविजय पर टीका लिखने से ही पता चलता है कि जोनराज के समय मे यह ग्रन्थ प्रसिद्ध था। यद्यपि उसमे काश्मीर का वर्णन न होकर, अजमेर तथा चाहमान वंश की प्रशस्ति है, तथापि काव्य के कारण वह सर्वप्रिय था। जोनराज ने इस पर क्यो टीका लिखी ? इसका भी कारण है।

जोनराज की आँखो के सम्मुख काश्मीर मे हिन्दुओ का भयंकर उत्पीडन, दमन एवं संहार हुआ था। मन्दिर तथा प्रतिमाओ का खण्डन किया गया था, मुसलिम धर्म जबर्दस्ती लोगो पर लादा गया था, जजिया केवल हिन्दू धर्म मानने वालो को ही अदा करना पडा था, मुसलिमो के इस अत्याचार के प्रति जोनराज अपनी आवाज उठाना चाहता था। पृथ्वीराज ने पूर्वकाल में भारत विजयी प्रथम मुसलिम सुलतान मुहम्मद गोरी को पराजित किया था। जोनराज का मन प्रसन्न हो उठा था। देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर हिन्दुओ के पराजय काल मे, अन्धकारमय काल मे, हिन्दुओं की विजयगाथा पर टिप्पणी लिखकर, अपनी भावना की तुष्टि करते हुए, उसने यह भी दिखाया है कि विदेशी मुसलिम पराजित भी किये जा सकते थे, । वे पराजित हुए भी थे। इस आशा-संदेश से भरी उसे और कोई दूसरी गाथा मिली नही, जिसे अपना भाव व्यक्त करने के लिये चुनता। महमूद गजनी से अपने समय तक जोनराज को भारत पर केवल मुसलिम विजय-ही-विजय का प्रसंग मिलता है। पृथ्वीराज ही अकेले अपवाद थे, जिन्होंने गोरी को पराजित किया था। जोनराज पृथ्वी-राजविजय को प्रचारित कर, हिन्दुओ मे आशा उत्पन्न कर, उन्हे उनके पुराने, गौरव की ओर प्रेरित करता है।

पृथ्वीराजविजय ऐतिहासिक काव्य है। उस पर टिप्पणी लिखकर, जोनराज ने राजतरंगिणी लिखने की भूमिका तैयार की थी।

पृथ्वीराजविजय लिखने का एक दूसरा कारण भी था। अर्णो राज के समय अजमेर पर सर्वप्रथम मुसलिम आक्रमण हुआ था, सर्वप्रथम प्रतिमा तथा मन्दिर नष्ट किये गये थे। परन्तु राजपूत उठे, तुरुको को हटना पडा। अजमेर मे पुनः यथावत पूजा होने लगी, प्रतिमायें बनीं, मन्दिर बने। सिकन्दर के समय सर्वप्रथम काश्मीर मे प्रतिमाएँ सार्वजनिक रूप से भंग की गयी। उस समय जोनराज को कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता था, जो अजमेर के समान काश्मीर से यवनो को हटाकर, पूर्ववत पूजादि आरम्भ कराकर, म्लेच्छ उपद्रव को शान्त करता। उसने पृथ्वीराजविजय को पुनः जनता के सम्मुख लाकर, आशा दिखाई कि जो अजमेर मे हुआ था, उसकी पुनरावृत्ति काश्मीर मे भी हो सकती थी।

किरातार्जुनीय : श्री जोनराज की किरातार्जुनीय टीका प्राप्य नही है। अभी तक इस ग्रन्थ का पता नहीं चल सका है। मैने काश्मीर, भारत तथा विदेश के संग्रहालयो से जानकारी प्राप्त की। किन्तु यहाँ भी जोनराज की किरातार्जुनीय पर टीका, पाण्डुलिपि या मुद्रित रूप मे नही मिलती।

किरातर्जुनीय भारवि कृत १८ सर्गों का महाकाव्य है। किरात भेषधारी शिव से अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। महाभारत की लघुकथा को ऋतु, जलकेलि, प्रभात, रात्रि, आदि के विस्तृत वर्णनो से मण्डित कर परिबृहीत किया गया है। अर्थ गौरव के लिये किरातार्जुनीय प्रसिद्ध है। इसका रचना-काल सन् ६३४ ई० है। संस्कृत काव्य को अलंकृत शैली मे ढालने का श्रेय भारवि का है। तत्पश्चात् उसका अनुकरण, माघ, रत्नाकर आदि ने किया है। यह शास्त्रीय रीतिबद्ध काव्य है। किरातर्जुनीय पर अनेक टीकायें प्राप्त हैं। राजा दुर्विनीत ने भी इस पर एक टीका लिखी है। बारहवी शताब्दी मे किरातार्जुनीय के आधार पर चहमानवंशीय राजा विग्रहदेव या वीसल देव ने हरकेलि 'नाटक' लिखा था। वत्सराज ने किरातर्जुनीय व्यायोग लिखा है।

संस्कृत की विकसित महाकाव्य परम्परा मे कालिदास एवं अश्वघोष के पश्चात भारवि कवि का स्थान आता है। भारवि पुलकेशिन् द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन (सन् ६१५ ई०) के सभापण्डित थे। वे भावणकोर निवासी थे। भारवि के वाङ्मयश को अक्षुण्ण रखने का एकमात्र श्रेय किरातर्जुनीय को है। इसकी गणना संस्कृत बृहत्त्रयी (शिशुपालवध, नैषधचरित तथा किरातर्जुनीय) मे की गयी है।

धुर उत्तर काश्मीर के पण्डित जोनराज ने अपने से लगभग ८०० वर्ष पूर्व हुए, लगभग २००० मील दूर धुर दक्षिण कुमारी अन्तरीप समीपस्थ प्रदेश के कवि की रचना पर टीका लिखकर, तत्कालीन भारतीय सांस्कृतिक एकता का अद्भुत भावात्मक रूप, उस समय प्रस्तुत किया, जब भारत एवं काश्मीर मुसलिम शासन के अधीन थे।

श्रीकण्ठचरित : काश्मीर कवि मंखक की प्रसिद्ध रचना श्रीकण्ठचरित है। यह महाकाव्य है, साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित है। ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काव्य है। मंखक के अग्रज काश्मीर-राज जयसिंह के मन्त्री थे, कल्हण के समकालीन थे। मंखक कोशकार भी थे। उनका कोश प्रसिद्ध है। मंखक के गुरु रुय्यक थे, काश्मीरराज जयसिंह के सभापण्डित थे। मंखक का कोश काश्मीरी कवियो द्वारा व्यवहृत शब्दो का संग्रह है। अन्य साधनो के अभाव मे यही एकमात्र साधन है, जिसमे काश्मीरी कवियो द्वारा व्यवहृत शब्दो का वास्तविक अर्थ मिलता है।

श्रीकण्ठचरित मे पदविन्यास के साथ भावो का मिश्रण काव्य की विशेषता है। जोनराज की अद्भुत कल्पना उसके टीका ग्रन्थो के चयन मे लक्षित है। मंखक धुर उत्तर काश्मीर कवि था। पृथ्वीराज विजय का कथानक अजमेर राजस्थान और दिल्ली से सम्बन्धित है तथा किरातार्जुनीय धुर दक्षिण के कवि का महाकाव्य है। उसके सम्मुख उत्तर, मध्य तथा दक्षिण भारत के तीनो भागो की रचनायें थी। उसने पूर्ण भारत का दर्शन जैसे कर लिया था।

जोनराज श्रीकण्ठचरित की टीका के अवसर पर लक्ष्य व्यग्यार्थों को प्रधानता न देने की प्रतिज्ञा करता है। वाच्यार्थ-विवृति उपस्थित करना उसका ध्येय है। तथापि विषय को सुबोध बनाने के लिये उन सब अर्थों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत कर चरित जैसे ग्रन्थ को बोधगम्य बना दिया है। स्थान-स्थान पर व्याकरण एवं दर्शन सम्बन्धी वातो पर विचार किया है। अलकारादि के विषय मे उसके निर्भ्रान्त बुद्धि का विलास द्रष्टव्य है।

संस्कृत भाषा वश्या की तरह कवि के भावानुसार गमन करती है। मंख की यह उक्ति इन पर सटीक घट रही है कि कवि वही है—

यस्येच्छयैव पुरतः स्वयमुज्जिहीते
द्राग्वाच्यवाचकमयः पृतनानिवेशः। श्रीकं० २।३९

इनकी भाषा मे पूर्ण प्रवाह है। कही गतिरोध नही है। यह कवि सरल शब्दो द्वारा घटना का प्रतिपादन करता है। शब्द शय्या घटना के अनुरूप होती है। शब्द काठिन्य नही होता। लम्बे लम्बे समासो का नितरां अभाव है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे वैदर्भी रीति अपनाई गई है, वही ऐसी रचना के लिये प्रशस्त है। यह ग्रन्थ प्रसादगुणपूर्ण है। पढ़ने मात्र से विषय स्पष्ट हो जाता है। ऐसा नहीं है कि 'कोपं पश्यन्पदे पदे" को चरितार्थ करे। केवल बत्तीस अक्षर वाले अनुष्टुप्छन्द मे कवि ने ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जो इतिवृत्त के विस्तार के अनुरूप है।

राजतरंगिणी : जोनराज ने कल्हण की तरंगिणी को प्रवाहित रखा है। तरंगिणी शब्द कल्हण के उर्वर मस्तिष्क की अद्‌भुत मौलिक देन है।

कल्हण के पूर्व इतिहास ग्रन्थो के लिये राजावली, राजकथा, नृपावली, पृथ्वीपावली, राजउदंत कथा आदि नाम प्रचलित थे। सभी राज शब्द से सम्बन्धित थे। ग्रन्थ का शीर्षक कथावस्तु का द्योतक होता है। राजतरंगिणी शब्द अनोखा है। कर्णप्रिय होने के साथ ही, यह कुछ विचार हेतु उन्मुख करता है।

राजा मनुष्य है। तरंगिणी नदी है, सरिता है, प्रकृति की देन है। राजा चेतन है, तरंगिणी अचेतन है। राजा पुरुष है, तरंगिणी प्रकृति है। किन्तु तरंगिणी निरी अचेतन नहो है—उसमे भी जीवन है।

सूखी तरंगिणी जड है। जीवनहीन पुरुष जड है। जलमय तरंगिणी चेतन है। जीव से पुरुष चेतन है। राजसिंहासन जड है। मानव युक्त सिंहासन चेतन है। वह सब कुछ मानव तुल्य करता है।

तरंगिणी मे तरंगें हैं। वे उठती हैं, गिरती हैं, बहती हैं, रूप बदलती हैं, निर्मल होती हैं, मलिन होती हैं, समरूप होती हैं। वे शीतल होती हैं, उष्ण होती हैं, शीतोष्ण होती हैं। उनका एक जैसा रूप सर्वदा नही रहता। वे मानव समान कभी दुर्बल, कभी सबल, कभी उग्र, कभी शान्त होती हैं। वे मानव सदृश उफनने पर सर्वनाश करती हैं, जलप्लावन करती है, साथी, सहयोगी करारो को निसंकोच तोड डालती हैं, हरित, सुरभित पादपो पर दया नहीं करती, उखाड़ फेंकती हैं।

राजा यही करता है। क्रोधित होने पर अपना-पराया नही देखता। सब कुछ कर बैठता है। उग्र होने पर तरंगिणी जलविप्लव करती है, उग्र होने पर राजा क्रान्ति करता है, विप्लव करता है। अतएव तरंगिणी जल होने पर चेतन तुल्य व्यवहार करती है।

चेतन मरता नही, केवल कलेवर बदलता है। जड शरीर मे चेतन प्रवेश करता है, क्रियाशील होता है। चेतनहीन शरीर शव है। इसी प्रकार तरंगिणी जड चेतन, पुरुष-प्रकृति, आध्यात्म—भौतिकता का अद्‌भुत समन्वय है। उसमे आध्यात्म है, भौतिकता भी है। आध्यात्म बिना भौतिकता जड है, शक्ति बिना शिव शव है।

आत्मा तुल्य तरंगिणी अक्षय है, अमर है। आत्मा जिस प्रकार भिन्न कलेवरों मे भिन्न-भिन्न धर्म चक्षुओ द्वारा दिखायी देती है, किन्तु रहती है, सर्वदा एक स्वरूप, वही अवस्था तरंगिणी की है। प्रकृति संयोग से जल, नीहार, कुहरा, मेघ, वर्षा तुषार, हिम, कूप, तड़ाग, सरिता सागर का रूप ले लेता है।

परन्तु जल सर्वदा मूलतः रहता है जल। उसी प्रकार राजाओं की तरंगें हैं, शासकों की तरगें हैं। वे राजतन्त्र, अभिजाततन्त्र, कुलीनतन्त्र, दैवतन्त्र, सैनिकतन्त्र, लोकतन्त्र में मूलतः सर्वदा रहते हैं मानव।

तरंगिणी अनवरत बहती है अथवा धारा चलती रहती है। ऊपर से सूख जाने पर भी भूमिस्थ जल संजोये रखती है। उसकी धारा देखकर दर्शक समझता है, धारा एक ही है, जल एक ही है। चिरकाल से यह रूप तरंगिणी प्रस्तुत करती आयी है। किन्तु एक क्षण का जल, दूसरे क्षण नहीं रहता। एक जल-बिन्दु आता है, दूसरा जाता है, प्रवाह जीवित रखता है।

परन्तु प्रवाह के साथ गया जल लौटकर आता नहीं। उसकी यात्रा महासमुद्र में, संगम में समाप्त होती है। अपना रूप विराट में मिला देता है। तथापि धारा की शृंखला, धारा की गति, टूटती नहीं।

राजा आते हैं, जाकर पुनः नहीं लौटते। तथापि सिंहासन शून्य नहीं रहता। देश राजाशून्य नहीं होता। राज-परम्परा की तरंगिणी प्रवाहित रहती है, गतिशील रहती है। क्रम टूटता नहीं। चाहे वर्षा जल तुल्य-वह उत्पीडक, शरद जल तुल्य-शान्तिदायक, शीतल हिम तुल्य-कठोर अथवा ग्रीष्म ऋतु तुल्य-अमृत क्यों न हो।

देश का शासन चलता रहता है, कभी मरता नहीं। राजा नहीं मरता, मरता है शासक, राजा पद-भूषित व्यक्ति। वह गिरता है, माला के एक दाने के समान। वहाँ नवीन दाना आकर गुँथ जाता है। माला पूर्ण बन जाती है।

तरंगिणी के जलबिन्दुओं की भाँति राजपरम्परा चलती रहती है। जलबिन्दु झंझावात में उछलते हैं, स्थिर पवन में शान्त होते हैं। मृदु मरुत में लहरें गाती हैं। उनकी गति रुकती नहीं। चलते जाते हैं। एक जलबिन्दु दूसरे का स्थान ग्रहण करते जाते हैं।

श्मशान पर चिता की अग्नि शान्त होते ही, दूसरी ओर तुर्य नाद होता है, मंगल गान होता है, राजपद पर दूसरा अभिषिक्त होता है, शोक उत्साह में परिणत हो जाता है।

तरंगिणी सृष्टि के उदय के साथ स्रोत से चलती है। वह प्रलय तक चलती रहेगी। किसी जलबिन्दु का रहना न रहना महत्वहीन है। अपने उदय काल से तरंगिणी जल बहाती, समुद्र को भरती रहती है। किन्तु समुद्र का न तो गर्भ कभी भरा और न तरंगिणी श्रान्त हुई। राजशासन, राजपद का उदय, जगत के उदय के साथ, सभ्यता के उदय काल से हुआ है। वह सभ्यता के अस्तकाल तक रहेगा। राजा की, राज्य की, यह परम्परा, यह प्रवाह, तरंगिणी धारा की भाँति कभी लुप्त न होगी, कभी सूखेगी नहीं। तरंगिणी के वर्षाऋतु जल तुल्य-कभी उग्र, शरद जल तुल्य निर्मल, शीत ऋतु तुल्य-शीतल, वसन्त ऋतु तुल्य-शीतोष्ण ग्रीष्म तुल्य उष्ण, राजा का रूप काल के प्रभाव से बदलता आया है, बदलता रहेगा।

कल्हण की राजतरंगिणी इतनी सजीव है कि उसका स्रोत उद्गम काल से चार शताब्दियों तक प्रवाहित रहा है। कवि आये, लिखे और गये।

तरंगों की चंचलता कभी समाप्त नहीं होती। तरंगें मिलकर तरंगिणी बनाती हैं। राजा तरंगिणी के तरंगों तुल्य है। तरंगों की भाँति वे उठते हैं, गिरते हैं। तरंगें कभी उत्तान होती हैं, भीषण गर्जन करती हैं, कभी शान्त होती हैं। यही दशा राजाओं की है। ऋतु अनुसार तरंगिणी प्रकृति के संसर्ग से नाना रूप धारण करती है। राजा भी प्रकृति जनों के संसर्ग से, प्रजा के संसर्ग से, जन संसर्ग से, नाना रूप धारण करता है।

अनेक रसो का सृजन करता है। अनेक भावो का जनक होता है। उसी प्रकार इस तरंगिणी मे नाना रस, अलंकारो का समावेश मिलेगा।

होमर के महाकाव्य 'इलियड' तथा 'ओडेसी' की गणना इतिहास एवं महाकाव्य दोनो मे की गई है। आधुनिक विद्वानो का मत है कि होमर महाकाव्य केवल एक होमर की रचना नही है, एक व्यक्ति की रचना नही है। उसके रचनाकार अनेक हुए है। उन्होने होमर के काव्य को निरन्तर आगे बढाया है। यही बात राजतरंगिणी के विषय मे कही जायेगी। राजतरंगिणी कल्हण ने प्रवाहित की। किन्तु उस प्रवाह को जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट एव शुक शताब्दियो तक नवीन जल डालकर गति देते रहे। उन्होने प्रवाह को जलपूर्ण बनाया है, उसे सूखने नहीं दिया है। गगा की धारा मे मिलने पर, सभी जल गगाजल कहे जाते हैं। यही स्थिति राजतरंगिणी की रही है। जल आकर मिलते गये, वे तरंगिणी नाम प्राप्त करते गये। यद्यपि विभिन्न रचना का रूप दिखाने के लिये, उनमे जोन, जैन, शुक आदि नाम और जोड दिये गये। वे नाम जैसे विशेषण बन गये। मूल नाम तरंगिणी ही रहा।

जोन-राजतरंगिणी : जोनराज ने ग्रन्थ का कोई दूसरा नाम न देकर राजतरंगिणी ही दिया है। इतिपाठ मे "श्री जोनराज कृता राजतरंगिणी समाप्ता" से स्पष्ट होता है कि ग्रन्थ का नाम राजतरंगिणी है। यदि इतिपाठ दूसरे का लिखा मान लिया जाय, तथापि ग्रन्थ के श्लोक सख्या १४ मे 'पार राज तरंगिण्याय' लिखकर ग्रन्थ का नामकरण जोनराज ने किया है, यद्यपि उसने श्लोक सख्या १२ मे 'राजावलि' शब्द का प्रयोग किया है। श्रीवर (जैन : १ : १ : ६) जोनराज के विषय मे लिखता है—'श्रीजोनराज विबुध कुर्वन् राजतरङ्गिणीम् ।' उससे भी यही स्पष्ट होता है कि जोनराज के ग्रन्थ का नाम 'राजतरंगिणी' था, न कि 'जोनराज तरंगिणी' जैसा कुछ लेखक लिखते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का शीर्षक ही है—'जोनराज-कृता राजतरंगिणी'। इसको द्वितीय राजतरंगिणी भी कहते हैं।

रचना काल : जोनराज अपने ग्रन्थ का रचना काल स्वयं देता है। जोनराज की रचना का काल सुलतान जैनुल आबदीन का समय है। सुल्तान ने सन् १४१९ से १४७० ई० तक राज्य किया था। जोनराज स्वय लिखता है 'जैनुल आबदीन के प्रियपात्र शिर्यभट्ट से आज्ञा प्राप्त कर, उसने राजतरंगिणी की रचना प्रारम्भ की।' जैनुल आबदीन भी बीमार पडा। शिर्यभट्ट का प्रवेश सुलतान के दरबार मे उसी समय हुआ था। शिर्यभट्ट के कारण वह स्वस्थ हुआ था। शिर्यभट्ट के विवरण से प्रतीत होता है कि हिन्दुओ के उत्पाटन तथा काश्मीर मे जैनुल आबदीन के सुलतान होने के कुछ समय पश्चात् उसका प्रवेश राज दरबार मे हुआ था।

श्रीवर रचना काल स्पष्ट कर देता है। वह लिखता है—राजतरंगिणी की रचना करते हुए विद्वान जोनराज ने सप्तर्षि ४५३५=सन् १४५९ ई० = विक्रमी १५१६ = शक १३८१ सवत में शिव सायुज्यता प्राप्त की (श्रीवर : १ : १ : ६)।

जैनुल आबदीन के चरित वर्णन एवं घटना क्रम से सहज अनुमान किया जा सकता है कि जोनराज ने अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व लेखनी उठायी थी। क्योकि उसकी मृत्यु काल के समय ग्रन्थ अपूर्ण था। यह समय सन् १४५९ ई० के कुछ पूर्व सन् १४५५ ई० के पश्चात् सन् १४५९ ई० तक रखा जा सकता है। जोनराज शिर्यभट्ट की मृत्यु का भी वर्णन करता है। कल्हण के समान उसने दो वर्षों म अपनी रचना नही समाप्त की। सुल्तान के जीवन मे जिस प्रकार घटनाये घटती गयी उसी क्रम म उन्हे अपनी पुस्तक मे जोडता गया।

जोनराज ने जैनुल आबदीन के अन्तिम इग्यारह वर्षों का इतिहास नही लिखा है। उसे श्रीवर ने अपनी तृतीय राजतरंगिणी में लिपिबद्ध किया है।

उद्देश्य : कल्हण की राजतरंगिणी उपदेशात्मक है। कल्हण स्वयं अपनी रचना का उद्देश्य उपस्थित करता है—'उसकी राजतरंगिणी भविष्य के राजाओं का मार्ग निर्देशन करेगी' (रा : १ : २१)। जोनराज की रचना का उद्देश्य सर्वथा भिन्न है। काश्मीर मे मुसलिम शासन था, जनता मुसलिम थी, भाषा फारसी हो रही थी। उपदेश का कार्य फारसी तथा अरबी ग्रन्थों से अपेक्षित था। वे मुसलिम आचार, विचार तथा संहितामय थे। उनके लिये संस्कृत काव्य, संस्कृत उपदेशात्मक ग्रन्थ की आवश्यकता नही थी। जनता की रुचि सुल्तानों के चरितो में थी।

जोनराज अपना उद्देश्य स्वयं लिखता है—'राजपथिकों के दर्पग्लानि से समुत्पन्न ताप परम्परा को हरने के लिये, भविष्य मे फलप्रद काव्यद्रुम समारोपित किया है। सज्जन विनय रूपी अमृत से शीतल सम्पूरक रस प्रक्षिप्त कर महान यत्न से वर्धित करे (श्लोक ८, ९)।

'कवियो के उपयोग्य मेरी वाणी स्वान्तःसिद्धि के लिये ही है (श्लोक १६)।' साथ ही वह इच्छा प्रकट करता है कि साधुजन उसके काव्य को देखेंगे (श्लोक १९)। इसी मे जोनराज को अपने फल की प्राप्ति होगी।

जोनराज ने केवल इतिहास लिखने के लिये लेखनी उठाई थी। उसकी एकान्त इच्छा थी कि उसने जिस राजउदंत कथाओ का प्रारम्भ किया है, उन्हें भविष्य के कविगण वर्धित करेंगे। उसने राजतरंगिणी को काव्यद्रुम लिखा है। सज्जन रूप विनय रूपी अमृत जल से सींचकर उसे प्रवृद्ध करेंगे। उसने अनुभव किया कि कल्हण के पश्चात् इतिहास लेखन की परम्परा लुप्त प्राय हो गयी थी। काश्मीर का प्रामाणिक इतिहास नही था, उसने अपने इतिहास की रचना इसी दृष्टि से की थी।

उसने अपने काव्य-पादप प्रवृद्धि की कामना की है। निःसन्देह उसकी कामना फलवती हुई है। उसके काव्यद्रुम को श्रीवर, प्राज्यभट्ट एवं शुक ने शताब्दियों तक सींचा है।

दृष्टिकोण : पश्चिम अर्थात् ईरान, तुर्किस्तान, अरब अर्थात् शामी संस्कृत प्रभावित देशो मे क्रमबद्ध, कालगणना के अनुसार इतिहास लिखने की परम्परा थी। पुरातन बाइबिल जेनिसस से इसका आभास मिलता है। कुरान शरीफ मे भी पुरातन बाइबिल की शैली अपनायी गयी है। उसमे वंश परम्परा का उल्लेख किया गया है।

जोनराज के समय मे मुसलिम देशो अरब, ईरान, तुर्किस्तान तथा अफगानिस्तान से अनेक विद्वान और दार्शनिक पुस्तकों के ढेर के साथ काश्मीर मे प्रवेश कर, आबाद हो गये थे। जैनुल आबदीन के समय फारसी मे राजतरंगिणी तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। साथ ही साथ फारसी में मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये। इतिहास रचना भी फारसी मे हुई। फारसी की यह शैली पाश्चात्य इतिहास शैली के समीप थी। पाश्चात्य सम्पर्क से अरबी तथा फारसी विद्वानो ने इतिहास लेखन की प्रेरणा ली है। यह शैली भारतीय शैली से अलग थी। कल्हण की शैली जो भारतीय तथा सनातनी थी उससे यह अधिक ऐतिहासिक थी।

जोनराज अरबी तथा ईरानी इतिहास रचना की शैली से परिचित हो गया था। वह अनुभव कल्हण को नही प्राप्त था। यही कारण है कि कल्हण तथा जोनराज की रचना शैली मे स्पष्ट अन्तर प्रतीत होगा।

जोनराज प्रथम भारतीय लेखक है, जिसने पुरातन शैली के स्थान पर, नवीन शैली मे जो आधुनिक एवं पाश्चात्य शैली के अत्यन्त निकट है, अपनी रचना कर, वास्तविक इतिहास काल क्रम के अनुसार प्रस्तुत किया है। उसकी शिक्षा पुरातन सनातनी सस्कृत शैली पर हुई थी, अतएव जोनराज मे पुरातन तथा नवीन दोनो शैलियो का मिश्रण मिलता है। उसने पुरातन शैली का त्याग न करते हुये, भारतीय इतिहास रचना मे, नवीन शैली प्रारम्भ की है। उसने इतिहास को इतिहास के ढग से लिखा है। उसे रीतिबद्ध अलकार एव रस से बोझिल महाकाव्य का रूप नही दिया है। उसने चरित, कथा, आख्यायिका और इतिवृत्तो का सग्रह नही किया है। उसने क्रमागत राजाओ एव सुलतानो के शुद्ध इतिहास लिखने का स्तुत्य प्रयास किया है।

जोनराज का दृष्टिकोण प्रादेशिक था। उसने अपनी रचना काश्मीर उपत्यका के इतिहास तक ही सीमित रखा है। जोनराज काश्मीर के विषय म अत्यधिक सूचना देता है। उसने भारत, मध्य एशिया ईरान तथा अफगानिस्तान के इतिहासो का प्रसगानुसार स्पर्श मात्र किया है।

काश्मीर मे उस समय केवल ब्राह्मण ही हिन्दू थे, शेष मुसलमान हो गये थे। अतएव जोनराज की दृष्टि उच्च वर्ण तक ही सीमित रही। उसने हिन्दुओ की जाति एव उपजाति के विषय मे कुछ सकेत भी नहीं किया है। उसके इस एकागी दृष्टिकोण के कारण तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा अन्य वर्गों की स्थिति का कुछ भी ज्ञान नही प्राप्त होता। उसने बौद्ध धर्म के विषय म भी कुछ प्रकाश नही डाला, जो कि हिन्दूधर्म के साथ ही काश्मीर मे था।

जोनराज का दृष्टिकोण उदार है। उसने किसी की व्यर्थ आलोचना तथा प्रत्यालोचना नही की है। उसने घटनाओ पर बिना अपना रग चढाये, उन्हें यथावत रख दिया है। राजाओं तथा सुलतानो ने क्या बुरा-भला किया, उन पर विहगम दृष्टि डाल कर, वह पाठको को किसी निष्कर्ष पर पहुचने के लिये प्रेरित करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह उसकी यह बहुत बडी देन है।

तत्कालीन रचना शैली पद्यात्मक थी। यदि जोनराज की रचना गद्य मे होती, तो वह आधुनिक इतिहास तुल्य हो जाती। पद्य मे काव्य, अलकार, रसादि का स्थान अनिवार्य है। अतएव जोनराज उनसे बच नही सका है। उसकी रचना ने इतिहास के साथ ही साथ महाकाव्य का भी अनायास रूप ले लिया है।

निरपेक्ष चिन्तनिद्' जोनराज भावव्यजना एव वर्णनो मे निरपेक्ष है। वह मत-मता-तरो, सम्प्रदायो, दर्शनो, तन्त्र-मन्त्र तथा धार्मिक उलझनो मे फँसता नही है। उसने किसी का न तो समर्थन किया है न विरोध। इसी प्रकार मुसलमानो के सम्प्रदायो के विषय मे वह अपना मत नही प्रकट करता, समालोचना नही करता। वह किसी धर्म की निन्दा-स्तुति से विरत है।

जोनराज ने अन्य कवियो की भाँति अपनी मगलकामना के लिये किसी देवी या देवता की प्रार्थना नहीं की है। उसने मगलाचरण के प्रथम श्लोक म कल्हण की राजतरगिणी शैली का अनुकरण कर अर्धनारीश्वर से लोक के सद्भाव एव सम्पत्ति प्राप्ति के लिये वन्दना की है। कल्हण ने अपने मगलाचरणो मे पाठको के 'यश' 'जय' 'रक्षा' एव 'पापक्षय' 'प्रसन्नता' की कामना की है। जोनराज 'सद्भाव' एव 'सम्पत्ति' की कामना करता है। त्रस्त हिन्दू जनता के लिये मुसलिम बहुल काश्मीरी जनता की सद्भावना अपेक्षित थी। हिन्दुओ की सम्पत्ति आदि नवमुसलिमो को दी जा रही थी। हिंदू घर-बार, काम-काजहीन हो गये थे। विधर्मियो मे सद्भाव, हिन्दुओ के प्रति विरोध एव द्वेष भाव दूर होकर, अपने

पडोसी के लिये स्नेह उत्पन्न हो, उस समय की यही सबसे बडी माग थी। हिन्दुओ की सम्पत्ति छिन गयी थी। उसके प्रभाव का मार्मिक वर्णन जोनराज करता है।

मंगलाचरण के द्वितीय श्लोक मे उसने गणेश की पाठको के कल्याण एवं विघ्न शान्ति के लिये प्रार्थना की है। धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक विघ्नो के कारण काश्मीर का पूर्व रूप नष्ट हो चुका था। नवीन दर्शन के बोझ से जनता बेमन, जबर्दस्ती लद गयी थी। जो कुछ लोग बच गये थे, उनके विघ्न का नाश कर गणेश कल्याण करे, यह भावना जोनराज के काव्य मे सर्वत्र मिलती है।

धर्म : जोनराज शैव था। उस विपत्ति काल मे जब लोभ, दण्ड, छल, कपट, दमन आदि उपायो का अवलम्बन कर हिन्दू मुसलमान बनाये जा रहे थे, जोनराज हिन्दू रहकर अपनी वीरता का परिचय देता है। वह उनकी प्रशंसा करता है, जो अपने धर्म को सासारिक वैभवो से ऊँचा समझकर, कष्ट सहन के लिये तत्पर थे। उसने उनकी प्रशंसा की है, जो भोग के स्थान पर त्याग मार्ग का अनुसरण धर्म के लिये किये थे।

जोनराज शैवमतानुयायी होते हुये भी सनातनी कवियो के समान गणेश की स्तुति की है। शिव योगी हैं। जोनराज स्वयं योगी था, इसका आभास मंगलाचरण मे प्रयुक्त शब्द 'आशय' से मिलता है। मुसलिम दर्शन की आस्था अन्ततोगत्वा भक्ति मार्ग मे है। वह एकेश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास की अपेक्षा करता है। वह मध्यम मार्ग जानता नही। गणेश की वन्दना मे 'भक्त' शब्द से यह भाव लक्षित होता है। जोनराज मुसलिम दर्शन से परिचित था। वही उस समय राज्य धर्म था। उसकी रचना मे एकेश्वरवाद झलकता है।

कल्हण के समय मे बौद्ध धर्म काश्मीर मे प्रचलित था। जोनराज के समय मे बौद्ध धर्म लुप्त हो गया था। वह तत्कालीन हिन्दू-मुसलिम मत-मतान्तरो, सम्प्रदायो, दर्शनो को जैसे मथकर, अपना विश्वास प्रकट करता है—'स्वयं निर्मित चिद एवं अचिदो से अपना रूप व्यक्त करते हुए, देश काल कलना जिसका तेज, उन्मीलित से कल्लोलित होता है—वह आत्मा हो, शिव हो, हरि हो, आत्मम् हो, बुद्ध हो, जिन हो अथवा परे हो, उसे हम नमस्कार करते है (श्लोक–३०८)।' जोनराज उस एकमात्र शक्ति मे विश्वास करता है, जो जगत् का स्रष्टा है, चालक है, जिससे जगत् उत्पन्न होता है और जिसमे जाकर लीन हो जाता है।

तत्कालीन हिन्दुओ मे संकीर्णता आ गयी थी। उनके सकीर्ण एवं असहिष्णु भाव के कारण रिंचन को शिवस्वामी ने शैवी दीक्षा नही दी। उसका परिणाम हुआ कि समस्त काश्मीर मुसलिम धर्म मे दीक्षित हो गया। जोनराज हिन्दुओ की इस मनोवृत्ति का जो उनके विनाश का कारण हुई, समर्थन नही करता। जोनराज उदार था, सहिष्णु था, वह कट्टरपन्थी नही था।

भाग्यवादी : जोनराज भाग्यवादी है। वह इस जीवन के कार्यों को पूर्व जीवन के कर्म एवं संस्कारो का फल मानता है। वह कर्म पर विश्वास नही करता। कर्म भाग्य की गति नही बदल सकता है। ज्योतिष का ज्ञान होने के कारण, उस पर विश्वास होने के कारण, जोनराज इस विचार से दूर नही हट सका। वह काश्मीर मे मुसलिम राज्य की स्थापना तथा हिन्दू राज्य का लोप पूर्व कल्पित भाग्य का विधान मानता है। कुरुशाह प्रसंग का वर्णन कर उसे प्रमाणित करने का प्रयास करता है (श्लोक १३३–१३५)। विधाता ने कुरुशाह के वंशज शाहमीर को काश्मीर का राजा बनाया। यह पूर्व निश्चित था। कोटा रानी की हत्या कर, हिन्दू राज्य समाप्त कर, शाहमीर सुलतान बन गया। इसकी प्रेरणा विधाता ने ही उसे दी थी।

विपत्तियाँ दैव के कारण आती हैं। इस विश्वास को जोनराज ने बलवती भाषा में सर्वत्र व्यक्त किया है (श्लोक ४०४)। कल्हण भाग्यवादी था, किन्तु कर्म में भी विश्वास करता था। जोनराज कर्म का प्रतिपादन न कर, भाग्य या विधान सब कुछ मानता है।

जोनराज के पूरे काव्य में देश या जनता या मानव कर्म से अपना भाग्य बदल सकता है। इस दर्शन का पूरा अभाव पाते हैं। हिन्दू राज्य के अन्त पर उसने अपना जो विचार प्रकट करते हुए कारण उपस्थित किया है, वह उसके दैव दर्शन को प्रकट करता है—'स्वयं अपने चिद् एवं अचिदों से अपने रूप को व्यक्त करते हुए, देश, काल, कलना जिसका तेज उन्मीलित से कल्लोलित होता है। वह आत्मा हो, शिव हो, हरि हो, आत्मभू हो, जिन हो अथवा पर हो, उसे हम नमस्कार करते हैं।'

मानवीय प्रवृत्ति इसका कारण है। जोनराज काश्मीर की दुरवस्था देखकर, निराश हो गया था। काश्मीर का परिवर्तन, उसे रोकने में असमर्थता का अनुभव कर, उसका हताश हो जाना स्वाभाविक था। निराश एवं हताश व्यक्ति किंवा जाति भाग्यवादी बन जाती है। अपनी पंगुता अनुभव कर, वह भाग्य पर, सब कुछ छोड़कर, सन्तोष करती है। जोनराज इसका अपवाद नहीं था।

जोनराज अव्यक्त शक्ति पर विश्वास करता है, उस शक्ति का विश्वास करता है, जो अनजाने, अपनी सुनिश्चित योजनानुसार, कर्त्ता के समानान्तर अपना भी कार्य करती रहती है। कर्त्ता करना चाहता है कुछ, और होता है, कुछ और। वह शक्ति मानवकृति को अकस्मात् व्यर्थ बना देती है। इस अव्यक्त शक्ति पर विश्वास चाहे जिस नाम से कहा जाय, जोनराज ने किया है।

पाप-पुण्य-दोष : कल्हण ने एक विचित्र दर्शन का प्रतिपादन किया है। जोनराज भी भाग्यवाद के साथ ही कल्हण के इस दर्शन को बिना संशोधन के स्वीकार कर लेता है। प्रजा की विपत्ति का कारण प्रजा का दोष होना है। प्राक्तन एवं इस जन्म में किये पाप एवं पुण्य होते हैं (रा : १ : ८७; ४ : ३०)।

जोनराज लिखता है—'पुण्यराज ने यह सुभिक्ष अंकुरित किया था। उस समय से बहुत से राजाओं के अतीत हो जानेपर भी प्रजाओं के अल्प पुण्य के कारण थोड़ा भी वह नहीं बढ़ सका। और तपोबल से भी पल्लवित, पुष्पित, फलित नहीं हुआ (श्लोक ८७५–८७६)। पूर्व जन्म के पुण्यक्षय होने पर अन्य राजा गिर जाते हैं। किन्तु उस राजा को जन्मान्तर में राज्य प्राप्ति के लिये राज्य था (श्लोक ८७८)।' 'अविचारान्धकार में मग्न प्राणियों का उद्धार करने के लिए प्रकाश के उत्कर्ष हेतु ईश्वर (राजा) प्रजा के पुण्य से होते हैं (श्लोक ३५५)।' 'प्रजा के पुण्योदय से सूहभट्ट को काल ने सोख लिया (श्लोक ६८०)।'

देश की अव्यवस्था एवं धर्म के लोप का कारण वह कलि को मानता है। कलि के प्रभाव के कारण धर्म का नाश होता है, अधर्म पनपता है, देश पर विपत्तियाँ आती हैं (श्लोक २९७)। प्रजा का पाप एवं पुण्य तथा कलि का प्रभाव इतिहास को गति को बदल देते हैं। काश्मीर में यदि दुराचारी राजाओं का उदय होता है, दुर्भिक्ष पड़ता है, तो उसका कारण प्रजा का दोष है, पाप है (श्लोक ३५८)। काश्मीर में मन्दिर टूट गये, प्रतिमायें भंग हुई। यह भी पूर्व कल्पित योजनानुसार प्रजा के दोष के कारण प्रतिमाओं ने स्वतः अपनी शक्ति त्याग दी। महापद्मसर में नगर लुप्त हो जाने का कारण भी वह राजा एवं प्रजा के दोष एवं पाप को देता है (श्लोक ९२६–९३१)।

देशभक्ति : काश्मीर के कण-कण से कल्हण प्रेम करता था। काश्मीर की बोधात्मा का जैसे उसने दर्शन किया था। काश्मीर के लिये उसे गर्व था, वह सगौरव काश्मीर का वर्णन करता है। उसके लिए काश्मीर केवल जन्मभूमि ही नहीं, पुण्यभूमि थी। काश्मीर के लिये उसकी श्रद्धा एवं भक्ति पूर्ण गरिमा के साथ प्रकट

हुई है। मध्ययुगीय राजस्थानी चारण, वन्दी, मागध, सुतो ने देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर, राजपूतो को उठाया था। कवियो ने वीर रस काव्य की रचना द्वारा राजस्थानियो मे नवजीवन फूंका था, जनता के मनोबल को ऊँचा किया था।

जोनराज मे इस भाव का अभाव है। जोनराज के समय मे काश्मीर म्लेच्छो का देश था। काश्मीर पहले का काश्मीर नही था। राजा तुरुष्क थे, काश्मीरी उनके नही थे। जनता हिन्दू नही थी, मुसलमान थी। काश्मीर मन्दिरो, मठो, शालाओ से मण्डित नही खण्डित देश था। उस श्मशान स्वरूप काश्मीर ने जोनराज मे प्रेरणा उत्पन्न नही की, उसे क्रान्तिकारी नही बनाया। वह क्रान्ति करता किसके लिये ? उनके लिये, जिन्होने स्वय क्रान्ति कर काश्मीर की काया पलट दी थी। यदि जोनराज मुसलमानो को विदेशी कह कर, उन्हे बाहर, कर काश्मीरियो का राज्य स्थापित करने की बात करता, तो उसकी बात सुनता कौन ? जहाँ की आबादी ९० प्रतिशत से ऊपर मुसलमान थी, वहाँ मुसलिम राज्य का विकल्प, मुसलिम काश्मीर का विकल्प, वह और क्या रख सकता था ?

उसकी वाणी समझने वाले थोडे ब्राह्मण रह गये थे, वे भी त्रस्त थे। तत्कालीन कुव्यवस्था एव शासन के प्रति विरक्त थे। मुसलिम राज देवाधि तन्त्र होता है। उसमे देशभक्ति का स्थान कहाँ था ? काश्मीर दारुल हरब से दारुल इसलाम हो चुका था। वह विशाल इसलामी मिल्लत का एक अग था। उस मिल्लत का नेता खलीफा था। सुलतान उसका प्रतिनिधि था। बादशाह आदि की कल्पनाएँ भारत मे मुगलो का शासन स्थापित हो जाने पर उत्पन्न हुई थी। अन्यथा मुगलो के पूर्व भारत के मुसलिम शासक सुलतान कहे जाते रहे। वे अपने सल्तनत की, अपने अधिकार की मान्यता खलीफा से प्राप्त करने का प्रयास करते थे।

जोनराज इस परिस्थिति मे, इस भयावह वातावरण मे, किससे देशभक्ति की अपील करता ? कैसे देश के नाम पर उठने के लिये प्रेरित करता ? काश्मीर मे किसका शासन स्थापित कराने का प्रयास करता ? जोनराज मे देशभक्ति की भावना दबी रह गयी। उसका प्रदर्शन उस समय विद्रोह माना जाता। अतएव उसने कही भी देशभक्ति की भावना व्यक्त नही की है। यदि कुछ लिखा भी है, तो दबी भाषा मे। सुलतान जैनुल आबदीन के राजकवि से इससे अधिक अपेक्षा की भी नही जा सकती।

जोनराज की दृष्टि निरपेक्ष थी। उसने किसी जाति पर, किसी धर्म पर, निरर्थक आक्षेप नही किया है। हिन्दू मुसलिम भावना उसमे नही थी। वह समन्वयवादी था। तथापि उसकी आलोचनात्मक प्रखर बुद्धि का स्थान-स्थान पर दर्शन मिलता है। उसने राग-द्वेष रहित होकर रचना की है, जो उस काल के इतिहास लेखक के लिये कठिन था। उसका मन्तव्य ऐतिहासिक घटनावलियो का यथावत वर्णन कर देना था। इस दृष्टि से वह सफल रचनाकार सिद्ध हुआ है।

पूर्णता कल्हण की राजतरगिणी मे कुछ अभाव खटकते है। उसने भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओ का समावेश अपने इतिहास मे नही किया है। पोरस, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, शशाङ्क, पुलकेशिन् आदि जैसे महान भारतीय व्यक्तियो के उल्लेख का अभाव अखरता है।

दार्शनिको मे शकराचार्य, का अभाव चकित करता है, जिनके नाम पर शकराचार्य पर्वत का श्रीनगर में नामकरण किया गया है।

इसी प्रकार लिच्छवि, वज्जी, पजाब तथा सीमान्त प्रदेशो के अनेक गण राज्यो मालव, यौधेय आदि का उल्लेख भी कल्हण नही करता। अफगानिस्तान मे मुसलिम धर्म का उदय, अरबो द्वारा ईरान और तुर्किस्तान की विजय आदि पर कल्हण की लेखनी शान्त है।

किन्तु जोनराज कल्हण से इस दिशा में बहुत आगे है। जिन घटनाओं ने काश्मीर की राजनीति एवं इतिहास को प्रभावित किया है, उनका वर्णन करने से वह चूकता नहीं। उसने तुगलक, लोदी वंश के साथ ही साथ तैमूर के आक्रमण का विस्तार से उल्लेख किया है। तुर्कों के उदय, उनके काश्मीर प्रवेश तथा उनके कार्य कलापों का कुशलता से वर्णन किया है।

काश्मीर के सुल्तानों का दिल्ली के सुल्तानों तथा तैमूरलंग से क्या सम्बन्ध था, इस पर प्रकाश डालता है। उसके उल्लेखों का अभी तक मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विद्वानों ने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन नहीं किया है। यह अछूती ऐतिहासिक सामग्री है। इसमें भारत के मध्ययुगीय इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

कालगणना : कल्हण की कालगणना स्थान-स्थान पर त्रुटिपूर्ण एवं भ्रामक कही जायगी। परन्तु जोनराज की कालगणना भ्रामक नहीं है। भ्रम केवल उन स्थानों पर होता है, जहाँ वह राजाओं का राज्य-काल तो देता है, परन्तु सप्तर्षि सम्वत, मास एवं दिन नहीं देता। जोनराज ने सर्वत्र लौकिक किंवा सप्तर्षि संवत तथा तिथि दिया है।

फारसी इतिहासकारों के कारण कालगणना भ्रामक हो गयी है। उन्होंने हिजरी सन् का प्रयोग किया है। सप्तर्षि वर्ष, मास एवं दिन को हिजरी बनाने में कठिनता हुई है। ये गणनायें कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण हैं। हिजरी को जिन इतिहासकारों ने सन् में परिवर्तित किया है, उनमें भी प्रायः इस प्रकार की त्रुटियाँ रह गयी हैं। सप्तर्षि सौर सवत है, वह चैत्र से आरम्भ होता है। चान्द्र एवं सौर मास के कारण, उनकी गणना पद्धति भिन्न होने के कारण, गलतियाँ अभी तक होती आई हैं। जोनराज ने जहाँ राज्यकाल देकर सप्तर्षि संवत नहीं दिया है, वहाँ समझ लेना चाहिए कि जोनराज स्वयं तिथि, वार, संवत, वर्ष प्रामाणिक देने में असफल था। अतएव उसने अनुमान पर आधारित वर्ष, मास एवं दिन कहीं भी नहीं दिया है। जिसका उसे निश्चय था, उसे उसने लिपिबद्ध किया है।

जोनराज जयसिंह के राज्यकाल के अन्तिम पाँच वर्षों के काल से अपना इतिहास आरम्भ करता है। जयसिंह की मृत्यु का समय वह ठीक देता है। उसने जयसिंह से अपनी मृत्यु तक की काल गणना दी है। जो लेकर सौर एवं चान्द्रमास की गणना पद्धति जानते हैं, उसमें पटु हैं, उनसे गणना में गलती नहीं हो सकती। फारसी इतिहासकारों का निजी ज्ञान इस दिशा में स्वल्प था। अतएव वे सप्तर्षि सम्वत, मास तथा दिन को हिजरी में परिणत करने में कहीं-कहीं गलती कर गये हैं।

सुल्तानों की काल गणना में जोनराज ने त्रुटि कर दी है। सप्तर्षि ४४१५ श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को कोटा रानी की कथा शेष हुई थी और शाहमीर प्रथम सुल्तान बना था। उसके ३ वर्ष, ५ दिन बाद अर्थात् सप्तर्षि ४४१८ वर्ष आषाढ़ पूर्णिमा को शाहमीर का देहान्त हुआ था। यह समय जोनराज ठीक देता है। उसका पुत्र जमशेद १ वर्ष, १० मास राज्य कर सप्तर्षि ४४२० वैशाख पूर्णिमा को दिवंगत हुआ था। जोनराज ने उसकी मृत्युकाल का मास, वर्ष अथवा दिन नहीं दिया है। किन्तु गणना से उक्त समय आता है। प्रतीत होता है, जोनराज स्वयं दिन, मास एवं वर्ष के विषय में निश्चय नहीं कर सका था। अन्यथा वह अवश्य लिखता। अलाउद्दीन ने १२ वर्ष, ८ मास १३ दिन राज्य किया था। इसके अनुसार अलाउद्दीन का मृत्युकाल सप्तर्षि ४४३२ वर्ष माघ कृष्ण १३ आता है। मूल पाठ में जोनराज ने सप्तर्षि ४४३० वर्ष चैत्र मास दिया है। उसी चैत्र की तिथि नहीं दी है, जिससे संगति गणना-विधि से नहीं बैठती।

सम्भवतः यहाँ पाठभेद है। यदि पाठभेद न माना जाय, तो यह मानना पड़ता है कि जोनराज की गणना वहाँ त्रुटिपूर्ण है।

जोनराज ने शिहाबुद्दीन का मृत्युकाल सप्तर्षि ४४४९ ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी दिया है। इसके अनुसार अलाउद्दीन का राज्यकाल १५ वर्ष, ४ मास, १५ दिन आता है। तत्पश्चात् पाँचवाँ सुलतान कुतुबुद्दीन हुआ। उसका राज्यकाल सप्तर्षि ४४६५ भाद्र कृष्ण द्वितीया तक कुल १६ वर्ष, ३मास २ दिन था। उसके पश्चात् सिकन्दर का राज्य काल सप्तर्षि ४४८९ ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी अर्थात् २३ वर्ष, ८ मास, ६ दिन था। जोनराज की काल गणना स्वतः कल्हण के समान शोध की अपेक्षा रखती है। इतिहासकार काल-गणना के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। मैंने सभी इतिहासकारों की काल-गणना पाद टिप्पणी में दे दी है।

जातियों का ज्ञान—जोनराज तत्कालीन जातियों का उल्लेख करता है। उनका समर्थन मध्य-कालीन एवं आधुनिक इतिहास से होता है। कल्हण के समय में अनेक पर्वतीय तथा सीमान्त जातियाँ थीं। किन्तु मुसलिम धर्म के उदय तथा बारहवीं शताब्दी में भारत पर मुसलिम राज्य स्थापित होने पर, अनेक पर्वतीय तथा सीमान्त जातियों ने मुसलिम धर्म में दीक्षित होकर नवीन नामकरण प्राप्त कर लिया था। वे सैय्यद, शेख, पठान तथा मुगल आदि नामों से जानी जाने लगी थीं। तथापि अनेक जातियाँ इसलाम को स्वीकार करने पर भी अपने पूर्व नाम को त्याग न सकीं।

जोनराज ने दरद, भौट्ट, खस, तुरुष्क, पारसी, मद्र, शाही, ठक्कुर, लवण्य, डामर आदि जातियों का उल्लेख किया है। उसका वर्णन संक्षिप्त है। शाही तथा ठक्कुर अर्थात् ठाकुर मुसलमान हो गये थे। दरद भी मुसलमान हो गये थे। यही अवस्था डामर तथा लवन्यों की थी। आजकल पर्वतीय ठक्कुर या ठाकुर तथा खस हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हैं। भौट्ट अभी तक बौद्ध हैं, यद्यपि उनमें भी बहुतों ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया है।

इतिहास—जोनराज ने इस चिरप्रचलित आक्षेप का कि भारतीयों में ऐतिहासिक बुद्धि का अभाव था प्रतिकार किया है। कल्हण की रचना इतिहास के बहुत समीप है। जोनराज की राजतरंगिणी इतिहास है।

जोनराज के पूर्व कथा, गाथा, चरित-काव्य, इतिवृत्त, आख्यान आदि रचना शैलियाँ प्रचलित थीं। इन सभी पद्धतियों में काव्यमय रचनाएँ हुई हैं, उन्हें काव्य का रूप दिया गया है। वीरयुग में विकसनशील साहित्य द्वारा महाकाव्य, कथा काव्य एवं इतिहास का विकास हुआ है। उत्तर मध्ययुग में भारत ही नहीं विश्व में कथायें पद्यात्मक लिखी गयी हैं, यद्यपि गद्य का भी विकास हो चला था।

बृहत्कथा, जातक कथा, पंचतन्त्र, *वेताल पंचविंशति*, *सिंहासनद्वात्रिंशिका*, *शुकसप्तति* आदि प्रसिद्ध हैं। संस्कृत में पुराण, रामायण, महाभारत आदि की कथाओं पर कथा साहित्य का विकास हुआ है। राजाओं के चरितों के आधार पर भी कथायें लिखी गयी हैं।

कथा श्रव्य काव्य है। इतिवृत्तात्मक कथा रसात्मक एवं अलंकृत शैली उसकी अपनी विशेष-तायें हैं। इसका अपना भिन्न अस्तित्व है। मन्दिरों, देवस्थानों, धर्मशालाओं, जलाशयों के समीप और निज गृहों में भी कथावाचक की प्राचीन परम्परा आज भी प्रचलित है,। कथा किसी घटना का वर्णन करती है। वह एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचाती है। किसी घटना का, जिसका सम्बन्ध किसी विशेष परिस्थिति से होता है और जिसका प्रारम्भ से अन्त तक वर्णन किया जाता है, समावेश कथा साहित्य

मे हो जाता है। कथोपकथन की दृष्टि से कथावस्तु के कई भेद किये गये हैं। उनमे प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र हैं।

इतिवृत्त, अभिनय प्रख्यात, इतिहास, पुराणादि से प्राप्त किया जाता है। जनमेजय का नागयज्ञ पौराणिक तथा चन्द्रगुप्त का इतिवृत्त ऐतिहासिक है। उत्पाद्य इतिवृत्त लेखक की कल्पना द्वारा प्रसूत प्रसूत होता है। मिश्र वस्तु के इतिवृत्त की पृष्ठभूमि प्रख्यात होती है। किन्तु उनमे कथायें कल्पना-होती हैं। जोनराज की राजतरंगिणी इस वर्ग मे नही आती।

आख्यान का अर्थ कथन है, निवेदन है। पूर्ववृत्त का कथन ही आख्यान है। आख्यानो का सकलन पुराण एवं सहिताओ मे मिलता है। वैदिक साहित्य मे पुरूरवा, सपर्णादि के आख्यान प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार की रचना रामोपाख्यान एवं नलोपाख्यान हैं।

जोनराज ने कुछ आख्यानो का वर्णन राजतरंगिणी मे किया है। इनमे महापद्मसर का आख्यान प्रसिद्ध है (श्लोक ९५०) किन्तु वह प्रसग के कारण लिखा गया है। उसके कारण ग्रन्थ आख्यान वर्ग मे नही रखा जा सकता।

गाथा लोकसाहित्य है। उसमे गेयता के साथ कथानक की प्रधानता रहती है। गाथा का अर्थ ही गान किवा गीत है। मन्त्रो के गानकर्ता को वैदिक भाषा मे 'गाथिन' कहा गया है। इसी प्रकार 'ऋजुगाथ' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'गाथा' पारसियो का प्रख्यात धार्मिक ग्रन्थ है। गाथासप्तशती मे शृङ्गार रस का अद्भुत दर्शन मिलता है। कथाप्रधान छन्दबद्ध साहित्य को गाथा सज्ञा दी गयी है। 'गाहा' शब्द 'गाथा' का ही अपभ्रश है। गाथा प्राकृत का सर्वप्रमुख छन्द है। जोनराज की राजतरंगिणी इस वर्ग मे नही आती।

चरितकाव्य मे प्रबन्धकाव्य, कथाकाव्य तथा इतिवृत्तात्मक कथा तीनो का समावेश मिलता है। चरितकाव्यो को कभी कथा तथा कभी पुराण कहा गया है। 'बुद्धचरित', 'श्रीकण्ठचरित',' नैषध-चरित', 'दशकुमारचरित', 'हर्षचरित' प्रसिद्ध हैं। चरितकाव्य पुराण, इतिहास, इतिवृत्त तथा कथा से भिन्न प्रबन्धकाव्य है। उनकी शैली शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा कल्पना-बहुल है। पौराणिक शैली के चरितकाव्य 'पद्मचरित' तथा 'पार्श्वनाथचरित' हैं। ऐतिहासिक शैली के चरितकाव्य— 'पृथ्वीराज विजय', 'विक्रमाङ्कदेवचरित', 'कुमारपालचरित', 'हम्मीर महाकाव्य' एव 'गउडवहो' आदि हैं। कल्पनाबहुल चरितकाव्य जिन्हे आधुनिक भाषा मे साहित्यिक रोमान्स कहते हैं। 'नवसाहसाङ्कचरित', 'चन्द्रप्रभ-चरित' हैं। चरितकाव्य जीवनचरित शैली पर लिखा जाता है। उसमे प्रेम, वीरता, धर्म, वैराग्य आदि भावनाओ का समन्वय होता है। कथानक शैली काव्य से उदात्त होती है। चरितकाव्य मे किसी व्यक्ति-विशेष का वर्णन होता है। कथा साहित्य के समान उसका प्रयोजन केवल मनोरजन नही होता। चरित-ग्रन्थ उपदेशात्मक, प्रचारात्मक तथा प्रशस्तिमूलक होते हैं।

राजतरंगिणी को कुछ विद्वान् चरितकाव्य मानते हैं। यह भ्रम है। चरितकाव्य व्यक्ति किवा वशविशेष की प्रशस्ति होता है। किन्तु जोनराज की राजतरंगिणी सर्वांगीण इतिहास है।

कल्हण की राजतरंगिणी मे चरित की झलक मिलती है। परन्तु कल्हण इतिहास परम्परा मे प्राचीन तथा मध्ययुगीय शैलियो को जोडता है। उसने मध्ययुगीय तत्पश्चात आधुनिक शैली के लिये भूमिका प्रशस्त की है। किन्तु जोनराज की राजतरंगिणी इतिहास है। यह क्रमबद्ध, वर्ष, मास, तिथि, वार घटनाओ, राजाओं तथा सुल्तानों का वर्णन है। यह हिन्दू एवं मुसलिम दो कालो के शताब्दियो के हुए राजाओ और सुल्तानो का इतिहास प्रस्तुत करती है। राजा तथा सुल्तानो के जन्म, राज्य, मृत्यु, उपलब्धि, रचना,

और दोष-गुणमय घटनाओं को उपस्थित करती है। उसका रूप आधुनिक इतिहास तुल्य है। वह प्राचीन इतिहास की परम्परा तोड़कर मध्ययुगीय इतिहास का कलेवर पहनती हुई, आधुनिक इतिहास रचना का अध्याय खोलती है। अन्तर केवल यह है कि यह पद्यात्मक है। पद्यात्मक होने के कारण उसमे रस, अलंकार तथा छन्दशास्त्र का अनुसरण अनिवार्य हो गया है।

जोनराज और इतिहास : जोनराज के पूर्व रचित इतिहास ग्रन्थ मिलते हैं। उन रचनाकारो मे काश्मीरियो का प्रमुख स्थान है। काश्मीरी पण्डित शंकुक ने 'भुवनाभ्युदय' काव्य लिखा था। उसमे मम्म तथा उत्पल के भयंकर युद्ध का वर्णन है। तत्पश्चात काश्मीरी पण्डित विल्हण ने विक्रमाकदेवचरित (सन् १०६४–१०९४ ई०) लिखा। उसके पश्चात् ही कल्हण ने राजतरंगिणी (सन ११४८–११५० ई०) लिखी। अनन्तर जल्हण ने सोमपालविलास लिखा, जिसमे काश्मीरी राजा सुस्सल एवं राजपुरी के राजा सोमपाल का वर्णन है। कल्हण की रचना के अतिरिक्त जितने चरित आदि लिखे गये, वे किसी राजा किंवा व्यक्तिविशेष अथवा वंश के चरितों से सम्बन्धित थे।

जोनराज ने वास्तव मे पुरानी परम्परा से निकल कर आधुनिक शैली के सदृश परिमार्जित इतिहास लिखा है। वह तत्कालीन फारसी इतिहास परम्परा से अधिक परिमार्जित है, प्रामाणिक है, स्पष्ट है, निरपेक्ष है। सुनिश्चित कालगणना युक्त है।

कल्हण ने अनुसन्धान कर इतिहास लिखा था। उसके समय मे साधन उपस्थित थे। जोनराज के समय साधन नष्ट हो चुके थे। जोनराज ने किसी भी सन्दर्भ ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है। पूर्वकालीन किसी इतिहासकार तथा उसकी रचना का नाम नही दिया है।

उसने हिन्दू राजाओ के इतिहास का किस आधार पर प्रणयन किया था, इस विषय पर वह मौन है। हिन्दू राजाओ को उसने क्यों जड तथा मूर्ख लिखा है, इसका प्रमाण वह उपस्थित नहीं करता।

वह प्रथम पांच हिन्दू राजा जयसिंह, प्रमाणुक, वान्तिदेव, बुप्पदेव, एवं जगदेव के काल की बहुत कम सूचना देता है। उनका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन इस बात का प्रमाण है कि इतिहास रचना के लिये उसे अति स्वल्प सामग्री प्राप्त थी।

उसने जगदेव, राजदेव, सहदेव, संग्रामदेव, रामदेव, लक्ष्मदेव, सिंहदेव, सूहदेव के राज्यकाल की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। राजा सूहदेव के पश्चात् जोनराज का वर्णन कुछ विस्तार के साथ होने लगता है।

जोनराज ने काश्मीर के २३ शासकों का वर्णन किया है। उनमे १३ हिन्दू, एक भोट्ट तथा ९ सुलतान हैं। जोनराज ने काश्मीर पर आक्रमण एवं प्रवेश करने वाले कज्जल, दुलचा, अचल तथा मंगोलो का वर्णन तो उपस्थित किया है, परन्तु वे कौन थे, उनका स्वरूप क्या था, किधर से आये आदि का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है।

उसने सैय्यद अली हमदानी तथा लल्लेश्वरी का उल्लेख तक नही किया है। तथापि उसके राजतरंगिणी की महत्ता है। उसने हिन्दूराज्य के पतन तथा मुसलिम राज के उदय एवं उसकी स्थापना का चित्र सुललित भाषा मे उपस्थित किया है।

जोनराज सिकन्दर, अलीशाह तथा जैनुल आबदीन सुलतानो के काल का प्रत्यक्षदर्शी था, जब कि फारसी के अन्य काश्मीर सम्बन्धी ऐतिहासिक ग्रन्थ शताब्दियो पश्चात लिखे गये थे। इस दृष्टि से उसकी राजतरंगिणी का ऐतिहासिक महत्व है।

इतिहास प्रयोजन : जोनराज राजतरंगिणी की रचना का प्रयोजन स्वयं उपस्थित करता है—'धर्म को सम्मुख करने वाली गोनन्दादि प्रमुख गुणशाली भूपो ने कलियुग से काश्मीर काश्यपी का शासन किया। कल्हण द्विज ने जयसिंह पर्यन्त उनकी वृद्धा कीर्ति को रसमयी वाणी द्वारा तारुण्य युक्त कर दिया। तदुपरान्त देशादि के दोष के कारण अथवा तत्कालीन राजाओं के अभाग्य के कारण, किसी कवि ने वाक्सुधा से अन्य नृपो को जीवित नही किया। जैनुल आबदीन के पृथ्वी पर रक्षा करते समय, जोनराज उनके वृत्त वर्णन हेतु उद्यत हुआ। विस्मृत पाथोदि मे मग्न जयसिंह आदि भूपतियो के करुणभाव से उद्धारेच्छुक जैनुल आबदीन के धर्माधिकारी श्री शिर्यभट्ट से सादर आज्ञा प्राप्त कर, इस समय राजावली को पूर्ण करने के लिये बुद्धि अनुरूप मेरा यह उद्यम है।' (श्लोक ५–१२)

उसने पुनः लिखा है—'मैंने राज उदंत कथाओ का सूत्रपात्र मात्र किया है। इस विषय पर चतुर कवि शिल्पी रचना करे' (श्लोक १७), जोनराज के समय इतिहास ग्रन्थ लुप्त थे। सिकन्दर बुतशिकन द्वारा ग्रन्थो की होली हुई थी। उन्हे जल-समाधि दी गयी थी। कल्हण की राजतरंगिणी अवश्य उपलब्ध थी। उसका अनुवाद जोनराज के समय मे ही जैनुल आबदीन ने फारसी मे करने के लिये आदेश दिया था। इससे स्पष्ट है कि उसके समय मे कल्हण की रचना नष्ट होने से किसी प्रकार बच गयी थी। यही कारण है कि जोनराज राजतरंगिणी मे कल्हण के छोडे प्रकरण से आरम्भ कर, अपनी मृत्यु काल तक का इतिहास लिखता है।

जोनराज ने कल्हण से अपने काल तक के ४१९ वर्षों का इतिहास लिखा है। उसकी महत्ता यह है कि उसने इस काल के इतिहास को लुप्त होने से बचा लिया है। भारतीय इतिहास एवं विश्व साहित्य मे जोनराज का यह सबसे बडा योगदान है। उसने नव सुलतानो का भी इतिहास लिखा है। फारसी और अंग्रेजी भाषाओ मे लिखे काश्मीर के सभी इतिहासो का स्रोत जोनराज की राजतरंगिणी ही है। क्योकि उसके प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण, उसके वर्णन को साधिकार न मानने का कोई कारण, नही प्रतीत होता।

जोनराज ने ऐतिहासिक तथ्यो को यथावत् लिख दिया है। उन पर आलोचना, टिप्पण एवं भाष्य नही किया है। उसने बडी से बडी घटनाओ का वर्णन केवल एक पद मे लिखकर छोड दिया है।

आधुनिक युग मे इतिहास की कल्पना मध्ययुगीय इतिहास शैली से ही विकसित हुई है। मध्यकाल तथा उसके पूर्ववर्ती काल मे आख्यान, इतिवृत्त, चरित, वीरकाव्य आदि लिखने की परम्परा थी। आधुनिक इतिहास की परिभाषा की तुला पर जोनराज का इतिहास तौला जा सकता है। वर्तमानकाल विशेषीकरण का काल है। आर्थिक इतिहास, सामाजिक इतिहास, राजनैतिक इतिहास, धार्मिक इतिहास अनेक शाखा-प्रशाखाओ मे इतिहास का अध्ययन एवं प्रणयन बँट गया है। पूर्व समय मे सबका समावेश एक इतिहास मे ही हो जाता था।

किन्तु एक विषय मे मतैक्य है। इतिहास परिवर्तन का अध्ययन करता है। यदि यह व्यापक परिभाषा स्वीकार कर ली जाय, तो जोनराज की राजतरंगिणी इस परिभाषा के अन्तर्गत आ जाती है।

महाभारत काल से सन् १३३९ ई० तक काश्मीर का इतिहास हिन्दू राजाओ का काल था। एक धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित थी। कालान्तर मे राजाओ के स्वरूप परिवर्तन के कारण किस प्रकार केवल ८१ वर्षों मे साढे चार हजार वर्षों के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक इतिहास का अध्याय बन्द हो गया यह इतिहासशास्त्रियो के लिये गहन अध्ययन का स्वतः विषय है।

काश्मीर की वर्तमान अवस्था समझने के लिये, उसके अतीत का ज्ञान आवश्यक है। वर्तमान ही

आने वाला कल का अतीत है, और बीते हुये कल का भविष्य ही आज का वर्तमान है। मानव जीवन के लिये वर्ष दो वर्ष भी कम नही है। परन्तु देश किंवा राष्ट्र के जीवन मे काल की गणना शताब्दियो मे होती है। किसी देश किंवा प्रदेश की संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं इतिहास का परिचय प्राप्त करने के लिये शताब्दियो मे, युगो मे, जो परिवर्तन हुए हैं, उनका हेतु क्या था, उनका परिणाम क्या और किस प्रकार हुआ, वे किन घटनाओ के परिणाम थे ? आदि प्रश्नो का अध्ययन कर, वर्तमान के नियोजन द्वारा सुन्दर भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

इस दृष्टि से जोनराज चार शताब्दियो का संक्षिप्त इतिहास उपस्थित करता है। वह स्पष्ट कारण उपस्थित करता है कि अतीत का काश्मीर किस प्रकार वर्तमान काश्मीर हो सका है।

अनुभव के आधार पर उपदेश का नाम इतिहास है, यह भी एक परिभाषा की गयी है। यह परिभाषा कल्हण ने स्वीकार कर अपनी राजतरंगिणी को उपदेशात्मक धरातल पर स्थापित कर, शान्त रस को अपने काव्य का स्थायीभाव रखा है।

जोनराज के इतिहास की परिभाषा अधिक व्यापक है। वह वास्तव मे इतिहास के सर्वांगीण रूप को प्रकट करता है, आधुनिक शैली मे लिपिबद्ध करता है। यदि विगत घटनाओ, एवं गतियो का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना है, तो उसके लिये इतिहास एक प्रधान साधन है।

जोनराज के इतिहास का अध्याय अकस्मात बन्द हो जाता है। तरंगिणी पूर्ण ग्रन्थ नही हो सकी है। वह अधूरी है। उसमे सर्ग नही हैं, तरंग भी नही है। जोनराज के इतिहास रचना की पूर्ण योजना का दर्शन नही मिलता। उसकी क्या योजना थी, वह क्या वास्तविक उद्देश्य ग्रन्थ पूर्ण होने पर प्रकट करता, यह ग्रन्थ पूर्ण होने पर ही साधिकार लिखा जा सकता था। अपूर्ण ग्रन्थ के सम्बन्ध मे जो कुछ सम्मुख है, उसी पर मत प्रकट करना श्रेयस्कर है।

अन्त मे जोनराज के ही मर्मस्पर्शी शब्द को यहाँ दुहरा देना, उसके काव्य किंवा इतिहास प्रयोजन के लिये अलम् होगा—'प्रार्थना के बिना ही साधुजन मूर्ख के काव्य को देखते हैं। क्या प्रार्थित होकर ही शशि सुधासार से विश्व को सिंचित करता है। अनुनीत किये जाने पर भी खल काव्य कालुष्य देखना नही त्यागता, क्योकि सुधाधौत अंगार कभी शुभ्र नही हो सकता। मेरे काव्य को लोग देखें, यह परमुखापेक्षिता की दयनीय कदर्थता, इससे बहुत पहले ही कवि जोनराज से दूर हो चुकी है। अप्रवीणो के लिये गीत एवं संस्कृत रस सम होना है। क्योकि शीतकाल मे बानर वह्नि कण के भ्रम से गुञ्जा का सेवन करता है। सुना हुआ काव्य अबोधो के लिये प्रीतिकर नही होता। क्योकि दन्तवज्र-रहित के मुख मे इक्षु क्या करता है ? पदार्थ सुन्दर काव्य के प्रदर्शित करने पर निर्मलात्मा गुणी रत्नो से भी मात्सर्य का प्रतिबिम्ब दुर्वार हो जाता है (श्लोक १९–२४)।'

काव्य : जोनराज स्वयं अपनी रचना को काव्यद्रुम लिखता है (श्लोक ८)। वास्तव मे जोनराज की तरंगिणी काव्य है। वह श्रव्यकाव्य है। ब्रह्मा आदि कवि हैं। वाल्मीकि रामायण आदि काव्य है। महाभारत काव्य माना गया है। कवि द्वारा रचित ग्रन्थ काव्य होता है।

कविकर्म के लिये नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं वर्ण निपुणता के साथ ही साथ रस, अलंकार, छन्दशास्त्र का ज्ञान परमावश्यक है। मौलिकता कवि की आत्मा है। शब्द कलेवर है। मौलिकताहीन कवि केवल तोता है, जो पुराने रस, अलंकारों एवं शब्दजालो को दुहराता है। वह नूतनता एवं मौलिकता का स्पर्श नही करता। वह कवि नही है, जिसमे प्रेरकशक्ति का अभाव है। कवि तो स्रष्टा तथा प्रजापति

की उपमा दी गयी है। जहाँ सूर्य का प्रवेश नही होता, वहाँ कवि कल्पना प्रवेश करती है। वह अपने साथ जगत को लेकर चलता है। दूसरे के हृदय मे प्रवेश कर, उसे अपना बना लेता है। पाठक को खींचता अपने साथ ले चलता है।

काव्य दोष-रहित पदावली है। जहाँ अलकार गुण युक्त एव अभीष्ट अर्थ सक्षेप तथा बोधगम्य सरल शैली मे प्रकट किया जाता है। व्यंग्यात्मक काव्य उत्तम, लाक्षणिक मध्यम एवं वाचक अधम माना गया है। काव्य मे रस की स्थिति सर्वोपरि होती है।

काव्य प्रयोजन मे व्यावहारिक दृष्टि को प्राथमिकता दी गयी है। सनातनी दृष्टि मे काव्य का प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति है। किन्तु मध्ययुगीय एव वर्तमान ऐतिहासिक काव्य प्रयोजन की दृष्टि, इससे सर्वथा भिन्न है, यद्यपि भारतीय इतिहासकारो मे उनकी झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

जोनराज ने अपना काव्य प्रयोजन उपस्थित किया है। उसने पुरातन परम्परा का सर्वथा त्याग न कर, शुद्ध राजकथा लिखी है। उसने अपने इतिहास को धर्म, संस्कृति, तन्त्र, मन्त्र, मत मतान्तर तथा दार्शनिक सिद्धान्तो से बोझिल नही किया है।

जोनराज ने कल्हण की राजतरगिणी को काव्य माना है। उसी परम्परा मे होने के कारण यह भी काव्य है। अत. उसमे भी काव्योत्कर्ष हेतुओ पर भी कुछ विचार आवश्यक है। यद्यपि काव्यो के उन गुण-धर्मों रसालंकारादि की प्रधानता यहाँ पर अपेक्षित भी नही है, फिर भी गौणरीत्या उन्हे भी यहाँ देखना उचित होगा।

कवि जोनराज बहुत सरल ढग से वस्तुविन्यास करता है। इसके लिये कोई पूर्वपीठिका नही तैयार करता। घटनाचक्र मे सुन्दर प्रवाह होता है। रोचकता का अभाव नही, स्वाभाविकता झलकती है। बलात् कल्पित नहीं मालूम पडता है। यह कवि घटना को बढाता नही। सक्षेप मे विषय को समाप्त करता है। कही पर अपेक्षित की उपेक्षा अथवा अनपेक्षित का विस्तार नही है। कवि का मत है कि जिस प्रकार चित्र मे तीनो लोक दिखाया जाता है, उसी प्रकार यहाँ पर राजाओ के गुणादि का वर्णन है। यद्यपि लौकिक मान्यताओ का आधार प्रचुर मात्रा मे लिया है। तथापि उसम अतिरेक नही दिखाई पडता। प्रस्तुत ग्रन्थ काश्मीर के राजाओ का इतिवृत्त मात्र न होकर, तत्कालीन समाज को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है। यह कल्हण की राजतरगिणी की तरह विशालकाय ग्रन्थ नही है, तथापि स्वयं मे पूर्ण एक कृति है। काश्मीर की सुगन्धि प्रसारित कर रही है।

काव्य रस, भाव, विचार, चमत्कार तथा परिहाससूलक होता है। जोनराज की राजतरगिणी मे, घटना वर्णनो मे चारो का दर्शन मिलता है। उनमे भाव एव बुद्धि दोनो का समन्वय है। काव्य हृदय एव मस्तिष्क दोनो का सृजन है। कोटा रानी का भावपूर्ण वर्णन एव जैनुल आबदीन का प्रसग जोनराज की प्रखर बुद्धि का परिचायक है।

अलकारो का चयन बहुत सुन्दर ढग से किया गया है। अलकार विषय को सुस्पष्ट करने मे सहायक हुये हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि सादृश्यमूलक अलकारो का बाहुल्येन प्रयोग हुआ है। अन्य अलंकार भी स्वाभाविक रूप से आये हैं। प्रयास करके उन्हें नही बैठाया गया है।

श्लेष अलंकार का चमत्कार अनेकत्र प्राप्त है। इस प्रकार एकैकश विचार करने पर, सब अलकार दृष्टिपथ पर आ जायेंगे। एतावता अलंकारशास्त्र मे कवि की पूर्ण प्रवीणता स्वयंसिद्ध हो जाती है।

मानव सदैव नये-नये के लिये लालायित रहा है और रहेगा भी। यही उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यही प्रवृत्ति ही मनुष्य के प्रत्येक क्षेत्र में अबाध प्रगति का मूल कारण है। मनुष्य को जो प्राप्त होता हैं, उसमे भी अपने नव-नव प्रयोगो द्वारा वह नवीनता लाता है।

लोक मे मधुर, अम्ल लवण, कटु, कषाय, तिक्त ये छ: स्वाद्य रस हैं। सब को प्रिय हैं। उसका किसी एक के प्रति अधिक लगाव होने पर भी अन्यो की अपेक्षा उसे बनी रहती है। इससे सिद्ध होता है कि किसी एक से पूर्ण आनन्द या तृप्ति नही होती। मनुष्य चाहता है। उसे एकत्र अनेक स्वाद प्राप्त हो तो अच्छा है। शायद उसी कारण प्रपाणक रस मे अनेक स्वाद्य रसो का समिश्रण किया जाता है, और सर्वप्रिय होता है।

काव्यक्षेत्र मे भी रसो की स्थिति कुछ इसी प्रकार है। महाकाव्य या नाटक मे वीर-श्रृङ्गारादि रस की प्रधानता होने पर भी अन्य रस अङ्गरूप मे आते है। इससे प्रधान रस परिपुष्ट होता है। उसकी उत्कृष्टता मे वृद्धि होती है।

रस के परिप्रेक्ष्य मे, जोनराज की राजतरंगिणी पर विचार करने पर, हम सहसा इस स्थिति पर नही पहुचते कि प्रधान रस कौन है। कारण यह है कि अनेक राजा आये, गये और वे अनेक तरह की प्रवृत्ति वाले थे। अत: उसी प्रकार के कार्य वे किये, ऐसी स्थिति मे किसी एक रस की एकसूत्रता नही रह गयी है। युद्ध के प्रसङ्ग बहुश: उपस्थित हुए है। इसमे अपने अपने पक्ष की विजय हेतु लोगो के उत्साह का वर्णन किया गया है।

व्यंग्य की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो शान्त रस का स्थायित्व कल्हण की राजतरंगिणी के समान झलकता है। यद्यपि वर्णन-क्रम मे इसकी प्रधानता नही है। अच्छे से अच्छे या बुरे से बुरे राजा ठीक तरङ्ग के समान आते है, जाते है। कुल मिला कर उनका पर्यवसान ही सत्य सिद्ध होता है—और सब मिथ्या। इस तरह उसके प्रभाव मे कुछ स्थिरता मालूम पडती है। प्रभाव भी अच्छा पडता है। 'क्वचिद्वीणा वाद्यं क्वचिदपि च हा हेति रुदितम्' इस तरङ्गिणी मे सर्वत्र प्राप्त है।

गुण मिहिर कुल ने लाखो स्त्रियो का वध करा दिया, इस तरह के अन्यान्य प्रसग है, जिसे पढकर मानव मन चीत्कार कर उठता है। राजाओ के प्रसग मे श्रृङ्गार क्यो नही उपस्थित होगा? उसकी प्रधानता भले ही न हो। कोटा रानी के वर्णन के अवसर पर (श्रृगार) रसाभास भी द्रष्टव्य है। रसाभास की स्थिति अनेकश: प्राप्त है। उस तरह सभी रसो की स्थिति किसी न किसी प्रकार है ही।

यहाँ पर जिसे हमने रस के नाम से अभिहित किया है, उसकी स्थिति पूर्ण रसावस्था तक नही पहुँच पायी है, भाव की ही दशा मे रह गयी है, तथापि उपचारात् यह कहा गया है।

भाव का स्रोत हृदय है। मस्तिष्क उसे आलंकारिक रसात्मक पदावली मे ढाल देता है। काव्य का बहिरङ्ग रीति, गुण, औचित्य एवं शब्दालंकार है। काव्य निर्माण मे देश-काल का बिम्बभाव तथा संस्कार विशेष महत्त्व रखता है। कवि कला को, काव्य के बाह्यांग को, परिस्थितियाँ, घटनाएँ, युग के परिवर्तित वातावरणो के साथ प्रभावित करती हैं।

ऐतिहासिक अध्ययन के अभाव मे काव्य व्यवस्था एकागी किंवा अपूर्ण रह जाती है। अतएव जोनराज के काव्य अध्ययन के लिये तत्कालीन काश्मीर, भारत, अफगानिस्तान, ईरान, तुर्किस्तान तथा सीमावर्ती पर्वतीय अंचलों के इतिहास का कुछ ज्ञान आवश्यक है। वहाँ की परिस्थितियाँ काश्मीर को सर्वदा प्रभावित करती रही हैं।

काव्य कला म अनुभूति की प्रधानता होती है। अनुभूति ही अभिव्यजना है। जोनराज के काल की पृष्ठभूमि का विचार आवश्यक है। कवि के काव्य का एक प्रयोजन होना है, एक योजना होती है। उनके अन्तर्गत लेखनी उठाकर, विचारो एव घटनाओ को वह लिपिबद्ध करता है।

कल्हण का स्थायी रस रस शात है। जोनराज का स्थायी रस करुण है। जोनराज ने हिन्दू राज्य को गिरते, सहस्रो वर्षों की सचित सस्कृति एव सभ्यता के भवनो को धराशायी होते, देखा था, उसका काल सक्रमणकाल था,—हिन्दू काश्मीर से मुसलमान काश्मीर हो रहा था। एक अध्याय का पटाक्षेप हो रहा था, दूसरा खुल रहा था। मानवो की होली, आत्महत्या, निर्दय अत्याचार दैनिक कर्म था। क्रूरता की चरम सीमा और जोनराज के शब्दो म सभी मर्यादाओ का उल्लघन कर दिया गया था। इस परिस्थिति ने जोनराज को रुला दिया था। वह किसी ओर से आशा की किरण आती न देखकर, निराश हो जाता है। कारुणिक भगवान की करुणा का आश्रय लेता है। जोनराज के पदो म करुणा छलकने लगती है। करुण रस के व्यापक एव स्थायी प्रभाव को भवभूति भली भाँति जानते थे। वह करुण रस को ही एकमात्र रस मानते थे। शेष रसो को करुण रस का रूपान्तर मानते थ

> एको रस करुण एव निमित्तभेदाद्
> भिन्न पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्।
> आवर्तबुद्बुदतरगमयान् विकारान्
> अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम्॥

उत्तररामचरित . ३ ४७

यदि वर्णन शैली रुचिकर न हुई, तो अलकार एव रस की दृष्टि से काव्य उत्तम होकर भी, अधम हो जाता है। वर्णन शैली पाठको को आकर्षित करती है, रुचि पढने की ओर जाती है। जोनराज की वर्णन-शैली रोचक है। पढने म मन लगता है। कही भी मन ऊबता नहीं। कवि प्रसगात्मक चित्र को मूर्तमान चित्रित कर देता है। शब्द रसात्मक चित्र द्वारा पाठक तत्कालीन परिस्थिति म, वातावरण म, अपने को रखकर, उस काल का अनुभव करता है। जोनराज चरित्र एव शब्द चित्रण म सफल रहा है।

पुनरावृत्ति का पूर्णतया अभाव जोनराज के काव्य की सबस बडी विशेषता है। उसने विषय को लेकर पुन नहीं दुहराया है। एक उपमा देकर पुन उसे स्पर्श नहा किया है। सर्वदा नवीनता का अनुभव पाठक करता है। योगवासिष्ठ रामायण अद्भुत ग्रन्थ है। किन्तु उसम इतनी पुनरावृत्तियाँ हैं कि मन ऊब जाता है। वाल्मीकि रामायण मे भी अरण्य का एक ही जैसा वर्णन पढते-पढते मन शिथिल हो जाता है। पृष्ठ उलटकर आगे बढने की इच्छा नहीं होती है।

जोनराज एक बात लिखकर, आगे बढ जाता है। सकेत कर, घटनावली बदल देता है। उनके स्पष्टीकरण करने का प्रयास नहीं करता। पाठक को छोडे हुए प्रसग की ओर पुन ले जाने का प्रयास नहीं करता। उनके स्पष्टीकरण का भार पाठक पर छोड देता है। पाठक इस भार का वहन करने म प्रसन्न होता है।

जोनराज मे काव्य दोष का नितान्त अभाव मिलता है। कवि की विफलता के कारण काव्य म दोष आते हैं। द्वेष उद्वेग के कारण आते हैं। काव्यदोष काव्य के सौष्ठव को नष्ट करता है। जोनराज की रचना, उसके जीवन के उत्तरार्ध की रचना है, जब यह पृथ्वीराजविजय, किरातार्जुनीय एव श्रीकण्ठचरित

जैसे महाकाव्यो का गम्भीर अध्ययन कर, उन पर टीका लिख चुका था। जोनराज काव्यदोष को जानता था। काव्य के गुण से परिचित था, उसकी यह रचना परिष्कृत है, सुसस्कृत है।

जोनराज का काव्य परिपक्व है। उसमे रागो की स्फुटता और पूर्णता है। उसने अभ्यास के द्वारा शब्द एव वाक्य के प्रयोग मे परिपक्वता प्राप्त की है।

सारस्वत, आभ्यासिक एव औपदेशिक कवि के भेद त्रय माने गये है। पूर्व सस्कार के कारण जिन कवियो को कवित्वशक्ति होती है, उन्हे सारस्वत कहते हैं। यह देवी सरस्वती का पूर्व पुण्यो के कारण प्रसाद माना जाता है। दूसरे वर्ग मे वे कवि आते है, जो इस जन्म के पठन पाठन, शिक्षा, एव अभ्यास के कारण कवि बन जाते है। तृतीय वर्ग उन कवियो का होता है, जिनमे प्राक्तन सस्कार एव अभ्यास का अभाव होता है। परन्तु जो तन्त्र मन्त्र, अथवा साधु सन्त, गुरु के आशीर्वाद से कवि बन जाते है। जोनराज सारस्वत कवि के साथ आभ्यासिक कवि भी था। जोनराज के पदो को देखकर, यह नही कहा जा सकता कि उसे किसी स्थान पर भावव्यजना के लिये शब्द ढूँढने की आवश्यकता पडी थी। उसके पद एक के पश्चात् दूसरे तरगिणी के तरगो की भाँति अनायास स्वत आते रहते हैं। साथ ही घटना बहुल काव्य होने के कारण घटनाओ के अध्ययन मे अभ्यास का भी प्रभाव परिलक्षित होता है।

कल्हण की राजतरगिणी का जोनराज ने गहन अध्ययन किया था। इसे वह स्वीकार भी करता है। कि तु काव्य हरणदोष जोनराज मे नही आने पाया है। उसने कल्हण की राजतरगिणी पृथ्वीराज विजय, किरातार्जुनीय एव श्रीकण्ठचरित की शब्दावली एव भाव को अपने शब्दो मे रखने का कही प्रयास नहीं किया है।

जोनराज ने जो कुछ लिखा है, मौलिक है, उसकी अद्भुत प्रतिभा का अनोखा चमत्कार है। उसमे कही उद्वेग, शिथिलता, क्रोध, हर्षातिरेक, ईर्षा एव द्वेषभाव नही मिलेगा। उसने सिकन्दर बुतशिकन, अलीशाह अथवा सूहभट्ट के प्रति, धर्मद्वेषी, पीडक होने पर भी, अश्लील शब्दो का प्रयोग नही किया है। उसने कटु शब्दों के प्रयोग से भी अपनी रचना को असतुलित नही होने दिया है। जोनराज की प्रतिभा नैसर्गिक है।

व्युत्पत्ति की पूर्णता जोनराज मे मिलती है। उसने उचित एव अनुचित को विवेक तुला पर तोला है। यदि उसने सुलतानो तथा उनके शासको की प्रशसा की है, तो उनके अवगुणो को छिपाने का प्रयास भी नही किया है। उसने इसी प्रकार हि दू राजाओ के उचित एव अनुचित कार्यों की सराहना एव आलोचना की है।

जोनराज ने पात्रो के चित्रण मे अशिष्ट शब्दो भावो एव शैलियो का बहिष्कार किया है। उसने प्राञ्जल शैली का आश्रय लिया है। वह कवि मर्यादा से कही भी विमुख नही हुआ है। उसकी रचना म असन्तुलित भाषा का कही भी दर्शन नही मिलता। जिन बातो को परिस्थितियो की विषमता के कारण लिखना उसने असम्भव एव कठिन समझा उ हे छोड दिया है।

काव्य रसात्मक होता है। काव्य के प्रयोजन मुख्य एव गौण माने गये हैं। मुख्य प्रयोजन सद्य अनुभूति एव जीवन दर्शन है। गौण प्रयोजन यश, अर्थ, व्यवहार, ज्ञान एव अमगल निवारण है। काव्य विकसनशील तथा अलकृत दो वर्गों म विभाजित किया जा सकता है। विकसनशील म पूर्ण विकसित तथा अर्ध विकसित काव्य आते हैं। अलकृत काव्य शास्त्रीय, पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, रोमाचक, रूपात्मक एव स्वच्छन्दतामक है। ऐतिहासिक काव्य का भी वर्गीकरण चरितकाव्य तथा प्रशस्ति काव्य मे किया

गया है। चरितकाव्य किसी एक राजा के चरित तक ही सीमित रहता है। प्रशस्ति काव्य किसी वंश किंवा राजा की प्रशस्ति तक अपनी सीमा निर्धारित कर लेता है।

जोनराज की तरंगिणी इतिहास है। वह न तो चरित काव्य है और न प्रशस्ति। वह दैशिक इतिहास न होकर, प्रादेशिक इतिहास है। वह काश्मीर का उसी प्रकार इतिहास है, जिस प्रकार यूरोपीय देश हालैण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रिया, हंगरी, बवेरिया, स्काट तथा वेल्स का पृथक इतिहास है। पुरातन भारतीय इतिहास की परिभाषा की अपेक्षा जोनराज की राजतरंगिणी आधुनिक इतिहास की परिभाषा के अधिक समीप है।

यदि काव्य-लक्षण की तुला पर जोनराज की तरंगिणी तौली जाय, तो वह महाकाव्य ठहरती है, चाहे जोनराज ने भले ही अपनी रचना को केवल काव्य ही क्यो न कहा है। काव्य-लक्षण वहिरंग एव अंतरग होते हैं। बहिरग लक्षण मे शब्द एव अर्थ दोनो का सुन्दरतापूर्वक समावेश होना अभीष्ट माना गया है। जो दोषरहित है, जो गुणो से मण्डित है, अलंकार युक्त है, वही दोष रहित काव्य माना जाता है। इसमे गुणो का सद्भाव रहता है, सर्वत्र अलंकार की स्थिति रहती है।

अन्तरङ्ग लक्षण मे काव्य की व्यञ्जना है। रसात्मक वाक्य ही काव्य है। रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द, काव्य है। ऐसी कोई वस्तु किंवा अवस्तु नही है, जो कवि की भावना के माध्यम से रस रूप प्राप्त नही करती। रस ही काव्य की आत्मा है अलकार काव्य का कलेवर है। काव्य की उद्भावक-शक्ति, निपुणता एव अभ्यास है। काव्य मे प्रतिभा का होना आवश्यक है। अर्थो का उन्मीलन करने वाली प्रज्ञा का नाम, दण्डी के मत से प्रतिभा है। प्रतिभा ही काव्य की शक्ति है। कुन्तक के अनुसार पूर्व एवं वर्तमान जन्म के सस्कार परिपाक से पुष्ट होने वाली विशिष्ट कवित्वशक्ति, प्रतिभा है। वामन ने प्रतिभा को प्रतिमान शब्द द्वारा व्यक्त किया है। उसे ही वह काव्य की शक्ति मानता है। प्रतिभा के माध्यम से कवि काव्य-जगत् की सृष्टि करता है। कवि की इस सृजनात्मक शक्ति का ही नाम, प्रतिभा है। जोनराज की मौलिक प्रतिभा का दर्शन पृथ्वीराजविजयादि पर उसकी टीकाओ मे न होकर राजतरंगिणी मे मिलता है। श्रीवर जोनराज का शिष्य था। तृतीय राजतरंगिणीकार था। वह स्वयं जोनराजकृत राजतरंगिणी को काव्य लिखता है (१ : १ : ८)।

काव्य या महाकाव्य : यदि कल्हण की राजतरंगिणी महाकाव्य है, तो जोनराज की राजतरंगिणी भी महाकाव्य की श्रेणी मे रखी जा सकती है। जोनराज ने अपनी रचना को काव्य ही लिखा है, उसे महाकाव्य नही। यह उसकी सौजन्यता का परिचायक है। यह उसका विनय है, शालीनता है। तीन महाकाव्यो की टीका लिखकर, उसने अपने काव्य को महाकाव्य न कहकर, पूर्व महाकाव्यकारो के प्रति आदर प्रकट किया है और साथ ही अपनी महानता का परिचय दिया है।

यहाँ महाकाव्य के लक्षणो की दृष्टि से यह देखना उचित होगा कि जोनराज की तरंगिणी काव्य है अथवा महाकाव्य। पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार प्राचीनतम महाकाव्य होमर के 'इलियड' तथा 'ओडेसी' है। इसी प्रकार इंगलैण्ड का 'बियोवुल्फ', जर्मनी का 'निबुल गेन लीड' तथा फ्रान्स का 'साँग आफ दि रोला' है। भारत का पुरातन महाकाव्य रामायण तथा महाभारत है। महाकाव्य की परिभाषा भारत मे परिवर्तित होती रही है। कालिदास, भवभूति, भारवि, बाण, भास, माघ आदि के काव्यो की गणना महाकाव्यो मे की गयी है।

यदि महाकाव्य के लक्षण के अनुसार जोनराज की तरंगिणी तौली जाय तो उसमे महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा तथा काव्यप्रतिभा मिलती है। उसमे गुरुत्व है, गाम्भीर्य है, मर्यादा है, वस्तु प्रतिपादन की सरलता तथा

पद-लालित्य की विशेषता है। उसमें हलकेपन का कहीं अनुभव नहीं होने दिया है। वह राज-कथा का वर्णन गम्भीर एवं संयत भाषा में करता है। उसने भयङ्कर विप्लव देखा था, धार्मिक क्रान्ति देखी थी, पुरातन काश्मीर को नष्ट होते देखा था। किन्तु उसकी भाषा सर्वदा सन्तुलित एवं संयत रही है। उसकी शैली में गरिमा है और शैली उदात्त है। पदों में औचित्य के साथ प्रतिभा है। नवीन उपमाओं का समावेश एवं जोनराज की रस-व्यंजना गम्भीर है। वह रस एवं अलंकारों में उलझता नहीं है। उसने स्थान-स्थान पर, अपना पाण्डित्य दिखाने अथवा उपदेश देने का प्रयास नहीं किया है। रसों एवं अलंकारों को वह भाव प्रकट का साधन मात्र बनाता है। उसके रस, अलंकार एवं पदों में प्राण है, शक्ति है। उसकी राजतरंगिणी महाकाव्य है— संस्कृत का एकमात्र आधुनिक शैली के समीप लिखा गया, प्रथम इतिहास है।

प्रबन्ध-काव्य को महाकाव्य की कोटि में रखा जाता है। जोनराज की तरंगिणी सुन्दर तथ्यपूर्ण प्रबन्ध-काव्य है। उसमें पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण एवं प्रकृति चित्रण के साथ पदों में आध्यात्मिक भावना पिरो दी गयी है, जिसके कारण इस ग्रन्थ के अनेक पद सूक्तिसंग्रह में संकलन योग्य हैं।

तेरहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक संस्कृत में काव्य रचना का श्रेय मुख्यतः काश्मीर एवं दक्षिण के विद्वानों को रहा है। जोनराज ने कल्हण के तीन शताब्दी पश्चात् इस काव्य की रचना कर, सूखती काव्यधारा को पुन: जीवित किया है। उसने धारावाहिक इतिहास की उस शृङ्खला को टूटने नहीं दिया है, जो काश्मीर में सातवीं शताब्दी से अविच्छिन्न चली आई थी। तत्कालीन काव्य-प्रवाह तथा इतिहास को जानने के लिये, जोनराज के अतिरिक्त और कोई साधन भी नहीं है।

राजाश्रय : कल्हण का काव्य एक स्वतन्त्र चिन्तक की कृति है। उसने राजतरंगिणी की रचना किसी के आश्रय किंवा आदेश पर नहीं की थी। जोनराज कृत राजतरंगिणी, उसी प्रकार की राजाश्रय-प्राप्त रचना है, जिस प्रकार बाण का 'हर्ष' एवं बिल्हण का 'विक्रमांकदेवचरित' है।

जोनराज सुलतान जैनुल आबदीन का राजाश्रय प्राप्त कवि था। उसे सर्वोत्तम राजकीय उपाधि राजानक प्राप्त थी। इस मौलिक भेद के कारण, कल्हण एवं जोनराज की राजतरंगिणी की योजना, कथावस्तु, दृष्टिकोण, लेखन शैली में अन्तर परिलक्षित होगा।

कल्हण की तरंगिणी उत्ताल तरंगें लेती मुक्त बहती है। जोनराज की तरंगिणी नियन्त्रित धारा है। कल्हण की तरंगिणी यदि गंगा का प्रवाह है, तो जोनराज की तरङ्गिणी नियन्त्रित जलपूर्ण गंगा-कुल्या है। सरिता की धारा न होकर कुल्या की धारा है। वह कुल्या जैनुल आबदीन एवं शिर्यभट्ट के आदेश पर, अवतरित हुई थी। उसमें जड़ जोनराज की पदावली है।

आदर्श राजा : कल्हण के आदर्श राजा, अशोक, कनिष्क एवं मेघवाहन थे। उसके दिग्विजयी आदर्श राजा ललितादित्य एवं जयापीड थे। जोनराज का आदर्श राजा जैनुल आबदीन तथा दिग्वजयी सुलतान शिहाबुद्दीन था।

जोनराज ने अशोक, कनिष्क तथा मेघवाहन की तुलना जैनुल आबदीन से नहीं की है परन्तु उसे हरि अवतार मानकर, उनसे भी ऊपर उठा दिया है। शिहाबुद्दीन की तुलना, वह निःसन्देह ललितादित्य एवं जयापीड से करता है।

जैनुल आबदीन की प्रशस्ति में लिखता है—'नष्ट काश्मीर के पुन योजित करने के लिये इच्छुक हरि के तुम अवतार हो (श्लोक : ९३५)' 'इसके राज्य में अद्भुत पदार्थों का संग्रह हुआ था, नहीं तो यह नारायण का अवतार कैसे जाना जाता (श्लोक : ९७३)।' उसने अवतार के साथ ही सुलतान को महान्

योगी भी माना है—'योग के कारण वशी एवं पलित विकार का त्याग करते हुये, श्री मद्दर्शननाथ (जैनुल आवदीन) ने अपना विभुधत्व (दैवत्व) प्रकाशित कर दिया (श्लोक : ९७५)।'

परिषद : महाभारत काल से चली आती विश्व की सबसे प्राचीन संस्थाएँ द्विज परिषद, पुरोहित परिषद तथा मन्त्रि परिषद थी। हिन्दू काल मे उनका अस्तित्व था।

सुलतानो के काल मे लुप्त हो गयी थी। उस समय ब्राह्मण ही नही रह गये थे। अतएव द्विज परिषद का प्रश्न नही उठता। पुरोहित परिषद का स्थान मुल्ला, मौलवियो ने ले लिया था। हिन्दू-काल मे मन्त्रि-परिषद के अधिकार व्यापक थे। उसे राजा को भी राजच्युत एव निर्वासित करने का अधिकार था (श्लोक : ६६)। सुलतानो के काल मे मन्त्रि परिषद का उल्लेख जोनराज नही करता।

सभा : हिन्दू राज्यकाल मे सभा थी। उसके सदस्यो को सभ्य कहा जाता था। सभा सर्वसत्ता-सम्पन्न थी। राजा सन्धिमति ने राज्य त्याग कर कार्यभार सभा को दिया था (रा : २ : १२७)। जयापीड की सभा का सभापति भट्टोभट्ट था (रा : ४ : ४९५)। सभा मे संगीत होता था (रा : ५ : ३६१)। सुलतानो के समय सभा समाप्त हो गयी। हिन्दूराज्यकाल मे पौरजनो द्वारा राज्याभिषेक का उल्लेख जोनराज करता है।

सुलतानो के शासन के विषय म केवल काजी शेखुल इसलाम आदि मन्त्रणा दे सकते थे। उनका भी सुझाव सुल्तान मानने के लिये बाध्य नही था। वह निरकुश शासक था।

जनता हिन्दूकाल मे राजा का निर्वाचन भी करती थी। उसका निर्वाचन वैध माना जाता था (द्रष्टव्य : रा : २ : १२७, १५९; ३ : १३९, १४६, १५८, २०४, ४ : ४९५, ५ : ३६१)। किन्तु सल्तनत स्थापित होने के पश्चात् यह पद्धति समाप्त हो गयी थी।

अभिषेक : हिन्दूकाल मे राजा का राज्याभिषेक हिन्दू संस्कार के अनुसार होता था। सल्तनत कायम होने के पश्चात् सुलतानो का अभिषेक प्रथम मुसलिम सस्कार के साथ, तत्पश्चात हिन्दू संस्कार के अनुसार होता था। उसे हिन्दू पद्धति के अनुसार छत्र एव चमर लगता था। अभिषेक की यह परम्परा बहुत दिनो तक प्रचलित रही। सुलतान राजसिंहासन पर मुकुट धारण कर, बैठता था। सिकन्दर बुतशिकन के समय मे सिंहासन तो कायम रहा परन्तु मुकुट का स्थान ताज ने ले लिया था।

विदेशी प्रवेश : विदेशियो के मुक्त आगमन एवं काश्मीर मे उनके उपनिवेश बनने के कारण परिस्थिति दिन-पर-दिन बिगडती गई। अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, ईराक, ईरान, अरब, पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश तथा सिन्ध पर मुसलमानो का अधिकार तथा वहा के लोगो मे धर्म परिवर्तन के कारण पूर्व स्थिति बदल गई। राजनीतिक कारणो से उक्त देशो से उत्पाटित, उद्वासित, ताडित, शासन-विरोधी, सैनिक, भगोडे व्यक्तिगत किवा सामाजिक कारणो से आश्रय एव रक्षा हेतु काश्मीर मे प्रवेश करने लगे।

काश्मीर की सेना मे विदेशी शताब्दियो पूर्व प्रवेश पाने लगे थे। जब तक विदेशी सैनिक हिन्दू थे कोई समस्या नही उत्पन्न हुई। परन्तु सीमान्त तथा दक्षिण-पश्चिम पर्वतीय क्षेत्रो के लोगो के इसलाम ग्रहण करने पर सेना मे मुसलमान भरती होने लगे। इस प्रकार सेना मे उन लोगो को स्थान मिल गया जिनकी निष्ठा विभाजित थी। ऐसे तो वे अपने धर्म तथा राजा दोनो के प्रति निष्ठावान् थे। किन्तु समय पडने पर, उनकी निष्ठा केवल उनके धर्म तक सीमित रह जाती थी। हिन्दू और मुसलिम सैनिको की रहन-सहन मे अन्तर था। वे अपनी भिन्नता के कारण पहचान लिये जाते थे। उनका सम्पर्क विदेशी सजातियो से हो

गया था। काश्मीर की कोई बात, कोई सैनिक नीति गुप्त नही रह सकती थी। हिन्दू सैनिक का दृष्टिकोण इसके सर्वथा विपरीत था। उसके लिये धर्म व्यक्तिगत बात थी। वह धर्म परिवर्तन मे विश्वास नही करता था। समाज धर्म परिवर्तन को स्वीकार भी नही करता था। परन्तु प्रत्येक मुसलमान स्वय धर्म प्रचारक था। वह किसी को भी अपने धर्म मे दीक्षित करने मे उत्साहित था,—रुचि लेता था। रोमन साम्राज्य मे ईसाइयो के प्रवेश के पश्चात्, जो स्थिति हो गयी थी, वही काश्मीर की हुई। रोमन साम्राज्य मे स्थित ईसाइयो की स्वामिभक्ति चर्च तथा राज्य म विभाजित थी। अवसर आने पर वे राजा को त्यागकर चर्च के प्रति निष्ठावान् बन गये। फल यह हुआ कि रोमन साम्राज्य टूटा, जनता ईसाई हो गई। काश्मीर मे भी हिन्दू राज्य टूटा—जनता मुसलिम हो गयी। आपत्ति एव विपत्ति के समय, जैसे रोमन जगत् ईसाई चर्च का मुखापेक्षी था, वही स्थिति काश्मीर के मुसलमानो तथा मुसलिम सैनिको की थी।

काश्मीर मे मुसलिम राज्य कर्मचारियो तथा सैनिको का उपनिवेश बन गया था। वे राज्य मे प्रभावशाली थे। यहाँ तक कि मुसलिम शासन स्थापित होने के पूर्व वे गणनापति जैसे स्थानो पर प्रतिष्ठित हो गये थे। दरगा गणनापति ने काश्मीर के राजा सिहदेव की हत्या तक कर (श्लोक १२८) दी थी।

काश्मीर पर प्रथम विदेशी आक्रमण तुर्क कज्जल का सन् १२८७ ई० मे हुआ था। यह प्रथम अवसर था जब विदेशी सेना ने काश्मीर म प्रवेश पाया था।

जोनराज वर्णन करता है कि दिगन्तर से वृत्ति लिप्सा से प्रवेश किये, अनेक लोगो ने राजा का आश्रय ग्रहण किया था। यह घटना सन् १३०? ई० की है। राजा की उदारता से आश्रय एव शरण प्राप्त विदेशी विषवृक्ष काश्मीर मे पनपने लगा। इसके पूर्व हिन्दू राजाओ की नीति थी कि वे किसी विदेशी को काश्मीर मे न प्रवेश करने देते थे और न आबाद। इस नीति त्याग का कारण हिन्दू राजाओ का दुर्बल होना तथा सीमान्तो से काश्मीर मे मुसलिम लोगो का प्रवेश और दबाव था।

इस प्रकार प्रवेश करने वालो मे स्वात प्रदेश का निवासी एक साहसी शाहमीर था। उसने अपने दल के साथ काश्मीर म सन् १३१३ ई० मे प्रवेश कर राजाश्रय प्राप्त किया था (श्लोक १४०)। रानी कोटा देवी की हत्या के पश्चात् वह सन् १३३९ ई० म काश्मीर का सुलतान बन बैठा था। दुल्चा (श्लोक १४२ सन् १३१९ ई०,) रिंचन भोट्ट (सन् १३२० ई० श्लोक १७४) तथा अचल (सम्भावित काल सन् १३२३ ई० श्लोक २३२—२५५) ने विदेशी सेना के साथ काश्मीर मे प्रवेश किया था। उनके साथ आये, कितने ही लोग काश्मीर मे रह गये, उनका उपनिवेश बन गया।

पूर्व काल म काश्मीर मे ब्राह्मण उपनिवेश थे। उनका उपनिवेश श्रीनगर, वशिक खासटा तथा भूक्षीर वाटिका म था। वे स्थानीय ब्राह्मणो म मिलकर, एकाकार हो गये थे। मुसलिमो एव विदेशियो के प्रवेश एव निवास के कारण उनके उपनिवेश स्थान-स्थान पर बन गये थे। आर्यदेशीय ब्राह्मणो के समान वे काश्मीरियो मे विदेशी मुसलमान उपनिवेश मिल नही सके। उन्होने अपना केन्द्र अलग रखा। वह षड्यन्त्रो तथा विदेशी हितो के केन्द्र बन गये थे। उनम क्या मन्त्रणा होती थी, इसका पता पाना कठिन था। उन्होने काश्मीर की सामाजिक व्यवस्था म आमूल परिवर्तन कर दिया। काश्मीरी एव विदेशी मुसलिम सघटित थे, एकमत थे। उनकी काश्मीर को मुसलिम धर्म म दीक्षित करने की निश्चित, सुनियोजित योजना थी। वे शनै शनै अपना प्रभाव स्थापित करते जा रहे थे, जब कि हिन्दू समाज पारस्परिक ईर्षा द्वेष के कारण, विभाजित तथा परस्पर विरोधी होता जाता था।

धार्मिक क्रान्ति ' कल्हण ने चार धार्मिक क्रान्तियों का उल्लेख किया है। उनका विस्तारपूर्वक वर्णन मैंने कल्हण राजतरंगिणी भाष्य के प्रथम खण्ड मे किया है। जोनराज ने हिन्दूकाल म बौद्ध तथा हिन्दू संघर्ष का संकेत भी नही किया है। तन्त्रो का नि सन्देह प्रभाव हो गया था। अनेक मत-मतान्तर, सम्प्रदाय एव दर्शनो मे जनता उलझी थी। जोनराज केवल एक ही धार्मिक क्रान्ति का उल्लेख करता है। वह सिकन्दर बुतशिकन तथा अलीशाह के समय हुई थी। जिसके कारण समस्त जनता हिन्दू से मुसलमान बन गयी थी।

क्रान्तियां जनता द्वारा की जाती हैं। परन्तु काश्मीर की धार्मिक क्रान्ति का आधार राज्यशक्ति, राजतन्त्र था। हिन्दूकाल म इसलाम काश्मीर मे मुसलिम धर्म प्रचारको, सन्तो तथा फकीरो द्वारा फैला था। वे जनता के दैनिक जीवन मे प्रवेश कर उसे प्रभावित करने लगे थे। जनता उनके सरल एव सामान्य त्यागपूर्ण जीवन तथा धर्म की सादगी से आकर्षित हुई थी। हिन्दू राजाओ ने उनके धर्म प्रचार मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही की थी। कालान्तर मे धार्मिक प्रचार ने जेहाद का रूप धारण कर लिया।

समाज कल्हण ने तत्कालीन समाज का उत्साहमय, आह्लादमय, सुखमय, साहित्य, संगीत और विद्या के अनुरागी आदर्श समाज का चित्रण किया है। उस समय संस्कृत राज्य भाषा थी। संस्कृत प्राय सभी बोल और समझ लेते थे। उसने अपने समय के समाज के आहार विहार, आमोद प्रमोद, खान पान, वेष-भूषा, रीति रिवाज, संस्कार-कुसंस्कार, रूढि-जडता, अन्धविश्वास आदि का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

जोनराज के समय मे पुरातन समाज टूट गया था। पुरानी मान्यताओ, आचार-विचारो का लोप हो रहा था। नवीन मान्यताएँ, नवीन विधियाँ स्थान ग्रहण कर रही थीं। समाज का कलेवर हिन्दू से मुसलिम हो रहा था। वह न तो पूरा हिन्दू था और न पूरा मुसलमान, हिन्दू से मुसलिम मे परिणत हो रहा था। वह हिन्दू समाज का गिरता हुआ अंतिम रूप एव मुसलिम समाज का उदयकालीन दृश्य उपस्थित करता था। यह संक्रमण काल था। जनता मुसलिम होने पर भी पुरातन परम्परा से बिल्कुल बाहर नही निकल सकी थी।

काश्मीरी समाज तन्त्र, मन्त्र और कुसंस्कारो से घुन गया था। घुन ने भीतर ही भीतर समाज की प्रतिरोधक शक्ति को चाल डाला था। बाहर से ढाँचा खडा था। भीतर से पोला था। तथापि काश्मीरी २०० वर्षों तक विदेशी शक्तियो का सामना सफलतापूर्वक करते रहे, उनसे अपनी रक्षा कर सके। किन्तु मुसलिमदर्शन कठोर एकेश्वरवादी था, एकाकी था। सैनिक एव देवाधि राजतन्त्र का सामना करने मे काश्मीरी असफल हो गये।

आन्तरिक षड्यन्त्र चलता रहा, पारस्परिक द्वेष एव ईर्षा से राजन्य वर्ग जलते रहे। परन्तु उनकी तुलना सुल्तानो के काल से की जाय तो वे नगण्य थे। विष द्वारा हत्या करा देना (श्लोक ६३), पारस्परिक अविश्वास (श्लोक ६९) तथा कल्हण के वशजो के द्रोह का वर्णन जोनराज करता है। उन्होंने भी राजा की हत्या करने मे सकोच नही किया (श्लोक ९५-१०१)। तथापि जोनराज द्वारा वर्णित हिन्दूकाल के लम्बे २०० वर्ष मे इस प्रकार की घटनाएँ अत्यन्त स्वल्प थी। सुल्तानो का शासन होते ही द्वितीय सुल्तान के समय से हत्या, विद्रोह, गृहयुद्धो का जो क्रम चला, उसकी पूर्णता काश्मीर पर मुगलो के शासन मे जाकर होती है। धर्म परिवर्तन के कारण जनता के स्तर एव सामाजिक स्थिति म कुछ विशेष सुधार हुये, यह बात देखने मे नहीं आती।

विदेशी स्वामी के आते ही, विश्वासघात, वचनभग, आदि अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये।

समाज इतना गिर गया था, देशभक्ति की भावना का इतना लोप हो गया था कि रिंचन के विरुद्ध काश्मीरियों ने नहीं बल्कि उसके साथी भौट्टो ने ही विद्रोह किया था। जनता ने न तो विद्रोह किया और न पुनः राज्य-प्राप्ति का प्रयास।

कोटा रानी रिंचन भौट्ट के पश्चात् हिन्दू शासन स्थापित करने में सफल हुई थी। इसका श्रेय उसे देना ही होगा। कोटा रानी की हत्या कर, शाहमीर सुलतान बन बैठा। समाज उसका मूकद्रष्टा बना रहा। समाज की प्रतिरोधात्मकशक्ति का जैसे लोप हो गया।

सुलतानों के समय में भी सामाजिक, आर्थिक उन्नति नहीं हुई। केवल सुलतान जैनुल आबदीन का काल इसका अपवाद है। कोई सुधारवादी अथवा रचनात्मक कार्य नहीं किया गया था।

दास प्रथा : काश्मीर में दास प्रथा नहीं थी। मानव क्रय-विक्रय की सामग्री नहीं था। मुसलमानों में दास प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा को मुसलिम समाज मान्यता देता है। दिल्ली के सिंहासन को कभी के दास सुलतान सुशोभित कर चुके थे। मुसलिम विजय के साथ ही साथ, यह प्रथा विजित देशों में फैल गई। वे विधर्मियों का संग्रह दासरूप में करते थे। पराजित सैनिकों का संग्रह दासरूप में करते थे। उन्हें अपने धर्म में दीक्षित कर, अपने धर्म एवं कार्यक्षेत्र की सीमा बढ़ाते थे।

विदेशियों तथा मुसलमानों के काश्मीर में प्रवेश के साथ यह प्रथा काश्मीर में भी फैल गई। यद्यपि हिन्दू दासों का क्रय विक्रय नहीं करते थे परन्तु काश्मीर में निवसित मुसलिम समाज दासों के व्यापार में रुचि लेता था। इसके दो परिणाम हुए। दास खरीद कर उन्हें स्वामी का धर्म स्वीकार करा कर, मुसलिम आबादी बढ़ायी गयी। दुलचा, भौट्टों तथा अन्य विदेशियों के आक्रमण काल में काश्मीरी युवक दास बनाकर बेचे गये (श्लोक : १५८)। उनके मूल्य से भौट्टों, विदेशियों एवं मुसलमानों ने धन अर्जन किया और उसी धन को काश्मीर को पराधीन एवं शक्तिहीन बनाने में लगाया। हिन्दू राजा तथा समाज इस प्रथा को जडवत् देखता रहा। काश्मीरी युवकों की बिक्री से काश्मीर स्थित विदेशी शक्तिशाली हुये। उसी धन से वे काश्मीर को हिन्दू राज्य से मुसलिम राज्य बनाने में सफल हुए।

वेशभूषा : हिन्दूकाल में हिन्दू वेशभूषा थी। महिलाएँ नील निचोल (रा : २ : २४७) तथा कंचुकी पहनती थी (रा: २ : २९४)। मूर्धा पर शीर्षांशुक रखती थी। बालक काक पक्ष लगाते थे (रा : १ : ८१)। महिलाएँ नुपूर तथा स्वर्ण सूत्र धारण करती थी। पुरुष मणि मुक्ता-सज्जित मुकुट धारण करते थे (रा २ : १६५ ३ : ५२९)। महिलाएँ आलता लगाती थी (रा : ३ : ४१५), शृङ्गार करती थी। शृङ्गार में केशर, चन्दन-चूर्ण, पुष्प एवं सुगन्धियों का प्रयोग किया जाता था। पुरुष उष्णीष धारण करते थे। धौत वस्त्र पवित्रता का प्रतीक माना जाता था। रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों का प्रयोग अधिक किया जाता था। रुई के वस्त्र भारत से मँगाये जाते थे। छीटे तथा बेल-बूटे किये वस्त्र भी पहने जाते थे।

मुसलिम काल के प्रारम्भ से कुतुबुद्दीन काल तक हिन्दू तथा मुसलिम वेशभूषा में अन्तर नहीं था। कुतुबुद्दीन के समय में ईरानी वेशभूषा का प्रचार आरम्भ हुआ। सुलतान राजकीय चिह्न छत्र, चामर, ध्वजा, पताका एवं मुकुट धारण करते थे। सुलतान कुतुबुद्दीन (सन् १३७३-१३८९ ई०) के काल में सुलतान स्वयं ईरानी वेश-भूषा धारण करने लगा। वह वेशभूषा, अरब, ईरान तथा तुर्किस्तान की शैली पर बनी होती थी। मुसलिम शासनकाल में कुलीनों का यही वस्त्र हो गया था। सामान्य जनता पूर्ववत वेश-भूषा धारण करती रही। शाह मुहम्मद हमदानी काश्मीर म नवीन वेश-भूषा चलाने वाले हुए। ईरानी शैली पर लोग अबा, कबा, कुल्हा, पाजामा आदि धारण करने लगे। सिकन्दर के समय हिन्दू लोग मुसलमानों

जैसा वस्त्र नही धारण कर सकते थे। इस समय से हिन्दू एवं मुसलिमो के वस्त्रो, व्यवहारो तथा प्रचलनो मे अन्तर पड गया, स्पष्ट मालूम हो कि दोनो दो भिन्न दिशा के लोग हैं, एक ही काश्मीर की सन्तान होने पर भी भिन्न है।

विवाह : काश्मीरियो मे विवाह स्वजातियो तक सीमित नही था। अन्तर्जातीय विवाह राजाओ ने किये हैं। उन्होने कल्पपाल, डोम्ब, वैश्य एवं ब्राह्मण स्त्रियो से भी विवाह किये थे। उसे समाज बुरी दृष्टि से नही देखता था। उनकी सन्तानें भी राजा हुई हैं। परजाति मे विवाह करने के कारण कोई जातिच्युत नही होता था। ये सामाजिक बाते थी। उनका राजनीति एवं धर्म से सम्बन्ध नहीं था।

इस प्रथा का लाभ शाहमीर ने उठाया। अकबर ने हिन्दू-मुसलिम परस्पर विवाह की प्रथा दो सौ वर्ष पश्चात् चलायी थी। किसी भी समाज अथवा उसके मनोबल को तोडने के लिये स्त्रियो का प्रयोग सुदूर प्राचीनकाल से होता रहा है (जोन : श्लोक : २५०—२५९)।

स्त्रिया माता होती हैं, पुत्रो का वर्धन करती हैं, उनके संस्कार बनाती हैं। शाहमीर काश्मीर की शक्ति को बाहर से नही तोड सकता था। उसने भीतर से उसे तोडने का प्रयास किया। इस प्रयास मे वह सफल हुआ। उसने मुसलिम कन्याओ का विवाह काश्मीरी सैनिक तथा कुलीन वर्गों मे करना आरम्भ किया और उनकी कन्याओ का विवाह मुसलिम सरदारो आदि के साथ किया।

काश्मीरी इस प्रपंच मे, इस षड्यन्त्र मे, फँस गये। उन्होने यह नही समझा, मुसलिमो को कन्या देने का अर्थ उन्हें विधर्मी बना देना था। उनकी सन्तानें हिन्दू नही मुसलमान होती थी। हिन्दुओ के घरो की मुसलिम स्त्रियाँ अपनी सन्तानो पर अपना संस्कार डालती थीं। मुसलिम कन्यायें हिन्दूओ से विवाह होने पर भी अपना पूर्व धर्म त्याग न सकी। वे अपनी निष्ठा पूर्ववत् मुसलिम धर्म मे रखती थीं। ममता के कारण हिन्दू पुरुष तथा मुसलिम मे भेद हो गया। यह एक अमिट गोत्रीय मुहर थी। जोनराज काश्मीरियो की इस मूर्खता पर आँसू बहाता है—'लब्न्य लोगो ने उनकी पुत्रियो को माला के समान धारण किये किन्तु यह नही जान सके कि वे घोर विषैली सर्पिणियाँ है। अन्त मे प्राणहरण करने वाली होती है (जोन : श्लोक २५९)।'

शाहमीर ने हिन्दुओ का मनोबल उनका, सुन्दर गार्हस्थ्य वातावरण तोड दिया। इस प्रकार अकबर ने भी इस नीति को स्वीकार कर, हिन्दू राजाओ का मनोबल तोडकर, उनकी प्रतिरोधात्मक शक्ति का नाश कर दिया था, मुसलिम बादशाहो, नवाबो एवं सरदारो को डोला देने की प्रथा निकल पडी। केवल मेवाड इसका अपवाद था।

राजधानी परिवर्तन : हिन्दूकाल मे श्रीनगर तथा उसके आस-पास राजधानी थी। पण्द्रेथन इस समय श्रीनगर का उपनगर है। प्राचीन काल मे पुराधिष्ठान नाम से राजधानी थी। तत्पश्चात् अशोक ने श्रीनगर मे राजधानी बनाई और प्रवरसेन ने उसका विस्तार किया। महाभारतकाल से सन् १३३९ ई० तक श्रीनगर को ही राजधानी बने रहने का श्रेय प्राप्त था।

मुसलिम काल में राजधानियो का परिवर्तन प्रायः होता रहा। प्रथम सुल्तान शाहमीर ने अन्दरकोट को जहाँ कोटा रानी की हत्या कर वह राजा बना था, अपनी राजधानी बनायी। उसका पुत्र जमशेद राजधानी श्रीनगर लाया, अलाउद्दीन द्वितीय सुल्तान राजधानी जयापीडपुर ले गया। यही अवस्था जैनुल आबदीन के समय मे हुई। उसने भी अपनी दूसरी राजधानी का निर्माण कराया।

दिल्ली के सुल्तानो ने भी प्रायः यही किया है। गुलाम वंश, तुगलक वंश, लोदी वंश एवं मुगल राजधानियो का परिवर्तन समय-समय पर करते रहे हैं। राजधानी हटाने का मुख्य कारण मुसलिम कुलो तथा राजप्रासादो का षड्यन्त्र था। षड्यन्त्रों के कारण वे सर्वदा अपने को अरक्षित समझते थे। षड्यन्त्रों

से बचने के लिये वे दूषित समाज से अलग हटकर, नवीन समाज का, अपने समर्थक समाज का, संगठन करते रहे हैं।

फारसी भाषा : प्रथम तीन सुल्तानों के समय काश्मीर की राजभाषा संस्कृत थी। सुल्तानों के काल में मुसलिम धर्म के प्रसार के कारण, काश्मीर उपत्यका में सूफी और फकीर मध्यएशिया, तुर्किस्तान और ईरान से प्रवेश करने लगे तथा इसलाम प्रचार के साथ संस्कृत के स्थान पर फारसी पढ़ने पर जोर दिया जाने लगा। मुसलिम अपनी भाषा का भी प्रचार करने लगे। शारदा लिपि के स्थान पर फारसी लिपि के प्रयोग पर जोर दिया गया। काश्मीरी मुसलिम अपनी धार्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए हेरात, मर्व, समरकन्द, बुखारा आदि जाने लगे। वे वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हुये। शिहाबुद्दीन सुलतान ने फारसी विद्वानों को प्रश्रय देकर, उनके काश्मीर आगमन का स्वागत किया था। सुलतान शिहाबुद्दीन ने प्रथम मदरसातुल-कुरान स्थापित किया। पूर्वकालीन हिन्दू ने मुसलमान बनकर मशाइस नाम धारण किया। इस मदरसे में शिक्षा ग्रहण कर, वह इमामुल कुरान नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुतुबुद्दीन के समय में आयुर्वेद के स्थान पर तिब का प्रचार आरम्भ किया गया। प्रथम तिब की पुस्तक 'सिफाउल मर्ज' सन् १३८८ ई० में लिखी गयी। इसके लेखक शिहाबुद्दीन अब्दुल करीम थे। सुलतान ने एक मदरसा कुतुबुद्दीनपुर में खोला। यह मदरसा सिख शासन के आगमनकाल तक चलता रहा। अली हमदानी के साथ जमालुद्दीन आये। श्रीनगर में आबाद होकर, वे अरबी और फारसी की शिक्षा देने लगे।

सिकन्दर बुतशिकन ने ईराक, खुरासान और मावरा उन्नहर से मौलवी और मुल्लाओं को बुलाकर, अरबी और फारसी का काश्मीर में प्रचार आरम्भ किया। इस समय हदीस के मुख्य विद्वान् मुहम्मद अफजल बुखारी, दर्शन के मुल्ला मुहम्मद यूसुफ, गणित के मुल्ला सदरुद्दीन तथा नैयायिक सैय्यद हुसेन मिन्तकी थे।

बादशाह जैनुल आबदीन ने दारुल उलूम नौशहर में स्थापित किया। यह स्थान श्रीनगर के समीप था। मुल्ला कबीर नहवी शेखुल इसलाम इस विद्यालय के कुलपति थे। इस समय के प्रमुख मुल्ला अहमद काश्मीरी, मुल्ला हाफिज बगदादी, मुल्ला पारसा बुखारी, मुल्ला जमालुद्दीन खारिजामी, मीर अली बुखारी तथा मुल्ला युसुफ राशीदी थे। इस समय अरबी तथा संस्कृत पुस्तकों का फारसी तथा काश्मीरी में अनुवाद किया गया।

जैनुल आबदीन के काल में मुल्ला अहमद, सैयद मुहम्मद अमीन, मन्तिकी, मुल्ला फसी, मुल्ला मलीही, मुल्ला जामिल, मुल्ला अहमद रूमी, मुल्ला नुरुद्दीन, मुल्ला अली शिराजी, मुल्ला नादिरी, मौलाना हुसेन गजनवी के कारण फारसी भाषा तथा साहित्य ने काश्मीर में जड़ जमाई। इस समय से फारसी कवियों की परम्परा आरम्भ होती है। उन्होंने फारसी में साहित्य रचना कर, उसे प्रोत्साहित किया।

स्थापत्य हिन्दू स्थापत्य पत्थरों तथा पकी ईंटों द्वारा निर्मित किये गये थे। सिकन्दर के समय हिन्दू निर्माण नष्ट कर दिये गये। उनके स्थान पर लकड़ी की इमारतें अविलम्ब खड़ी कर दी गयी। पुराने देवस्थानों को जियारतों आदि में रूपान्तरित कर, उन पर अधिकार स्थापित कर लिया गया। पत्थरों एवं ईंटों की इमारत बनाने में समय लगता है। काश्मीर में लकड़ी प्रचुर मात्रा में प्राप्त थी। अतएव लकड़ी का प्रयोग निर्माणों में किया जाने लगा। इस प्रयोग के कारण निर्माण की एक नवीन शैली का विकास हुआ, जो अपने ढंग की अनोखी थी। यह हिन्दू, बौद्ध और मुसलिम स्थापत्य का विचित्र समन्वय है। शाह हमदान इस स्थापत्य के प्रश्रयदाता थे। काश्मीर के काष्ठ निर्माण, नेपाल, नार्वे तथा आस्ट्रिया के टाइरोल शैली के सदृश लगते हैं।

सिकन्दर के समय मे सैयद मुहम्मद मदनी काश्मीर मे मदीना से आया था। उसने मदनी मसजिद का निर्माण कर, काश्मीर में एक नवीन स्थापत्य शैली का आरम्भ किया। मसजिद तथा जियारतें सरल वर्गाकार शैली पर बनायी जाती थी।

हिन्दूकाल मे भुवन रचना पत्थर तथा ईटो से होती थी। उनमे काष्ठ का भी प्रयोग किया जाता था। शिलाओ द्वारा निर्मित भवन भव्य होते थे। ईटो का प्रयोग लघु निर्माणो मे किया जाता था। मैंने भेदा देवी मे ईंटों के निर्माण का भग्नावशेष देखा था। वे सहस्रो वर्ष पुराने थे।

पाषाण वेश्म का अत्यधिक उल्लेख मिलता है। काश्मीर के ध्वंसावशेषो मे लगे विशाल शिलाखण्डों को देखकर, आश्चर्य होता है। भवन निर्माण की अनेक शैलियाँ थी। विद्या वेश्म आधुनिक स्कूलो एवं कालेजो के समान बनाये जाते थे। सौध, नाग भवन, हर्म्य और गुहागृह का भी उल्लेख मिलता है।

सुलतानो के समय मे निर्माणशैली बदल गयी। शिलाओ का प्रयोग प्राय समाप्त हो गया। लकडी का अत्याधिक प्रयोग मसजिदो, जियारतो, खानखाहो मे किया जाने लगा। जैनुल आबदीन ने अपना पूरा राजप्रासाद ही काष्ठ का निर्मित कराया था। उसने प्रथम स्थायी काष्ठसेतु का निर्माण श्रीनगर मे कराया था।

कुल्या : हिन्दू राजा कुल्या अथवा नहरो के निर्माण के प्रति जागरूक रहते थे। जैनुल आबदीन प्रथम सुलतान था, जिसने हिन्दू राजाओ के समान रचनात्मक कार्यों एव प्रजाहित की ओर ध्यान दिया था। उसने उत्पलपुर कुल्या (श्लोक : ८६१), नन्द शैल कुल्या (श्लोक : ८६२), कराल कुल्या (श्लोक : ८६३), अवन्ति पुर कुल्या (श्लोक : ८३५), पद्दर कुल्या (श्लोक : ८३८), जैनगङ्गा (श्लोक : ८७०, ८७१) आदि का निर्माण कराया था।

नगर निर्माण : हिन्दू राजाओ के पश्चात् विदेशी शासक रिंचन ने अपने नामपर रिंचनपुर नगर आबाद किया था (श्लोक : २१५), मुसलिम सुलतानो मे शहाबुद्दीन के पश्चात् केवल जैनुल आबदीन ने जैनपुरी (श्लोक : ८६४), सफरा (श्लोक : ८६७), जैन नगरी (श्लोक : ८६९), जैन गिरी (श्लोक : ८७२), सुरत्राणपुर (श्लोक . ९४७) और जैनपत्तन (श्लोक ९५०) का निर्माण कराया था। इनके अतिरिक्त उसने जैनसेतु (श्लोक · ८८७-८८८), जैन कुण्डल (श्लोक : ९५०) जैनकोट (श्लोक : ९४८) और जैनलङ्का (श्लोक · ९४१) का भी निर्माण कराया था। निर्माणो का विस्तृत एव भौगोलिक विवरण प्रसग स्थान पर किया गया है।

संस्कृत . काश्मीर की राजभाषा फारसी होने पर संस्कृत का क्षेत्र सीमित हो गया। हिन्दू पण्डितो के दो वर्ग हो गये। एक फारसी तथा दूसरा संस्कृत का पठन-पाठन करने लगा। जोनराज प्रथम संस्कृत लेखक है, जिसका उल्लेख कोटारानी हत्या के पश्चात मिलता है। श्रीवर ने तृतीय राजतरंगिणी लिखने के साथ ही, जामी के युसुफ जुलेखा का अनुवाद संस्कृत मे किया। उसने सुभाषितावली भी लिखी, उसमे ३५० कवियो की सूक्तियो का उद्धरण दिया गया था। जयधर भट्ट ने स्तुति कुसुमाजलि की रचना सन् १४५० ई० मे की थी। सितकण्ठ ने बालबोधिनी सन् १४७५ ई० मे लिखी थी। वरदराज ने शिवसूत्रवर्तिका की रचना की। संस्कृत तथा फारसी दोनो मे दस्तावेज वगैरह लिखे जाते थे। मुसलिम कब्रो के पत्थरो पर संस्कृत और फारसी दोनो मे ही अभिलेख लिखे जाते थे। लिपि शारदा थी। फारसी शब्दो का संस्कृत साहित्य मे जैसे गजवर, दबिर, आदि का प्रयोग तथा संस्कृत भाषा मे फारसी शब्दो का मिश्रण होने लगा। लोक प्रकाश के सुलतान-कालीन संस्करण मे खवास, सिलहदार, सुरत्राण आदि अपभ्रंश शब्दो का मूलरूप म प्रयोग होने लगा। अन्य

संस्कृत ग्रन्थो म महानय प्रवाश शितकण्ठ ने लिखा था। नोण सोम ने जैनचरित योधभट्ट ने जैनप्रकाश तथा भट्ट वसर ने जैन विलास लिखा।

काश्मीर की सबसे बडी देन है कि काव्य एव महाकाव्य लिखने की परम्परा जारी रही। जब कि भारत मे इस परम्परा का प्राय लोप हो चुका था। भारत म मुसलिम शासन स्थापित होने पर संस्कृत जैसे रूठकर दक्षिण भारत तथा उत्तर काश्मीर म निवास करने चली आयी थी। काश्मीर म काव्य एवं रचना का काम पूर्ववत बारहवी शताब्दी से १७ वी शताब्दी तक चलता रहा।

भास्कर एव मूर्ति कला हिन्दूकाल मे मूर्तिकला तथा पत्थर की नक्काशी का काम अत्यन्त विकसित था। मुसलिमकाल म पत्थरो पर फूल पत्ती, अरबी तथा फारसी म अभिलेख तथा नक्काशी के काम प्रचलित रहे, परन्तु मूर्तिकला का लोप हो गया।

सगीत अबुलफजल के अनुसार ईरानी तथा तूरानी संगीतज्ञो ने काश्मीर मे सल्तनत स्थापित होने पर प्रवेश किया था। हिन्दूकाल म शास्त्रीय सगीत एव नृत्यकला प्रचलित थी। सुलतानो के समय मे तुर्किस्तान, ईरान, मध्य एशिया तथा भारत से सगीतज्ञो का काश्मीर मे प्रवेश होने लगा। जैनुल आबदीन ने सगीतज्ञो को प्रश्रय दिया। उसके यहाँ सगीत सभा होती थी। उसका पुत्र हैदरशाह वाद्ययन्त्र वादन मे प्रसिद्ध था। उसका पौत्र हसन शाह भी सगीतप्रेमी था। उसने दक्षिण से सगीतज्ञो को बुलाया था। कवि श्रीवर सगीत विभाग का अध्यक्ष था। काश्मीर उपत्यका मे ईरानी तथा तुर्किस्तानी सगीत विकास की ओर बढे। सुलतानकाल का पुरातन सगीत सुफियाना कलाम नाम से प्रसिद्ध था। उसके राग तथा ताल, गत, फारसी शैली पर आधारित थे। उनमे ५४ मकामात थे। उनमे स कुछ भारतीय रागो के समान थे। कुछ पुराने सस्कृत नाम भैरवी, ललित, कल्याण आदि नामो से चलते रहे। कुछ ईरानी नाम पर इस्फहानी, दुगाह, पजगाह, नीमदूर, दुरी खफीक तथा तुर्की जख, कहलाते थे। ईरानी ताल भारतीय ताल से भिन्न थे। सुफियाना कलाम वृन्दगान मे गाया जाता था। वह काश्मीर की अपनी विशेषता थी। धुकरा, सत्तर, साज सितार, मिजमार तथा तम्बूर मुख्य वाद्ययन्त्र थे। रबाब काश्मीर का प्रसिद्ध वाद्य है। काश्मीर के रबाबिया आज भी प्रसिद्ध हैं। ईरान से काश्मीर मे इसका प्रवेश हुआ था। उद भी सुलतान जैनुल आबदीन के समय प्रचलित हुआ था।

सगीत वास्तव मे जैनुल आबदीन के प्रश्रय मे विकासित हुआ था। सिकन्दर बुतशिकन के काल तक पुरातन हिन्दू सगीत प्रचलित था। उसने सगीत पर बन्धन लगा दिया था। इसी प्रकार औरगजेब के समय मे सगीतकला मृतप्राय हो गयी थी। काश्मीर की पुरातन राग रागिनिया के स्थान पर नवीन रागो का प्रवेश हुआ। चारशाह, ईराक, नवा, रहबी, शाहनवाज नौरूजका, यमन, खमाच, हुसेनी आदि प्रमुख थे।

नृत्य शाहमीर वश के सुलतान सिकन्दर बुतशिकन के पूर्वकाल तक काश्मीर मे भारतीय शास्त्रीय नृत्य प्रचलित न था। विदशी मुसलमानो के काश्मीर मे प्रवेश के साथ ईरानी, खुरासानी आदि नृत्यकला भी काश्मीर म आयी। प्रारम्भिक शाहमीर वशीय सुलतानो के समय भारतीय तथा मुसलिम नृत्यकला दोनों साथ ही साथ चलती रही। सिकन्दर ने नृत्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। गायिका उत्सवा इस कला मे प्रवीण थी। वह ४९ प्रकार के भावो को प्रकट कर सकती थी।

रेशम-शाल काश्मीर मे अत्यन्त प्राचीन काल से रेशम एव शाल का व्यापार होता रहा है। जैनुल आबदीन के समय मे शाल की आकल्पना मे परिवर्तन किया गया। रेशमी वस्त्र बुखारा होते हुये, तुर्किस्तान तक पहुँचते थे। मुसलिम रुचि के अनुसार उन पर बेल बूटे काढे जाने लगे।

कागज : काश्मीर मे कागज का प्रयोग जैनुल आबदीन के काल में आरम्भ हुआ। उसने समरकन्द से कागज बनाने वालो को काश्मीर मे बुला कर, कागज निर्माण कला को प्रोत्साहित किया। उसके समय मे नौशहर तथा गान्दरबल कागज बनाने के मुख्य केन्द्र थे। इसके पूर्व भोजपत्र पर लेखन का कार्य होता था। कागज निर्माण का विस्तार सिन्ध्य उपत्यका तथा दच्छी अचल मे खूब हुआ। अफगानिस्तान तथा काश्मीर के कागज उस समय बहुत अच्छे माने जाते थे।

पाण्डुलिपियो के लिये काश्मीरी कागज भारत मे बहुत आता था। मैने काश्मीरी पाण्डुलिपियो का विशेष अध्ययन किया है। कागज से ही पता चल जाता है। वे काश्मीरी पाण्डुलिपियाँ हैं। काश्मीर का कागज टिकाऊ, चमकीला तथा समथल होता है। वह मुडने पर टूटता नही। शताब्दियो तक उसकी पालिश कायम रहती है। काश्मीर मे चियडो को कूटकर कागज बनाया जाता था। उस पर चावल के माड की माडी चढायी जाती थी। अन्त मे चिकने पत्थर से रगडकर उस पर पालिश की जाती थी।

मन्दिर-विहार : पुरातन काश्मीर आश्रमो, गुरुकुलो, विहारो, मन्दिरो, मठो, शालाओ से मण्डित था। मुसलिमकालीन काश्मीर मे उक्त स्थानो पर जियारते, मजारें, खनकाह, मदरसा तथा मसजिदें बन गयी। काश्मीर के प्रत्येक ग्राम मे जैसे हिन्दूकाल मे देवस्थान आदि थे, उसी प्रकार आज प्रत्येक ग्राम मे मुसलिम स्थापत्य शैली पर बनी जियारते और मसजिदे मिलेंगी। उनसे काश्मीर भरा है।

परिशिष्ट मे, मन्दिर, विहार, स्तूप, मठ तथा आश्रमो की प्रामाणिक तालिका दी गयी है। भविष्य के अनुसन्धानकर्ताओ के लिये वह सहायक सिद्ध होगी।

मुसलिम धर्म प्रचार : प्राय. सभी पुरातन फारसी लेखको ने काश्मीर के मुसलिम हो जाने पर विशेष महत्व दिया है। वे उसे चमत्कार मानते है। जोनराज ने विस्तार के साथ इस विषय पर प्रकाश डाला है। इसका यथास्थान वर्णन किया गया है। इस विषय पर परिशिष्ट 'त' द्रष्टव्य है।

हकीम : हिन्दू वैद्यो के मुसलिम धर्म मे दीक्षित हो जाने पर आयुर्वेद आदि का अनुवाद फारसी मे किया जाने लगा। आयुर्वेदीय, सस्कृत शब्दो के स्थान पर फारसी शब्दावली व्यवहृत की जाने लगी। वैद्य एवं भिषग् के स्थान पर वे हकीम कहे जाने लगे। जैनुल आबदीन के समय मे शिर्यभट्ट का प्रसग द्रष्टव्य है। सुलतान के बीमार होने पर दण्ड के भय से कोई वैद्य उपचार करने नही आया। उनका इस नाम से लोप हो गया था। उनकी विद्या तथा अनुभव को फारसीलिपिबद्ध किया गया था। सस्कृत के स्थान पर फारसी लिपि तथा भाषा माध्यम थी। तुलसी, ताम्बूल, परजाता, चन्दन, कस्तूरी आदि के स्थान पर, बादयान, बनफशा, गावजुबा आदि नाम प्रयुक्त होने लगे थे। बनफशा सबसे अच्छा होता है। वह समुद्र की सतह से ५००० फीट की ऊँचाई पर होता है। इसी प्रकार गावजुबा १० हजार फीट की ऊँचाई पर गुरेज मे होता है। संस्कृत का वनपुष्प ही फारसी का बनफसा बन गया है।

तिब पर काश्मीर में मौलिक रचनायें भी की गयी। काश्मीरी हकीम समस्त भारत मे तिब के लिये प्रसिद्ध हो गये। उन्होने भारत मे तिब का प्रचार किया।

महिलाओं का स्थान : काश्मीर मे सतीप्रथा प्रचलित थी। सिकन्दर बुतशिकन के समय यह बन्द कर दी गयी थी। जैनुल आबदीन ने सतीप्रथा पर से बन्धन हटा लिया था। तथापि यह प्रथा प्रचलित नही हो सकी। काश्मीर मे बहुत कम हिन्दू रह गये थे। शताब्दियो के मुसलिम प्रभाव से वे प्रभावित हो गये थे। कल्हण ने भी सतीप्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया है (रा० : ५ : २२; ७ : १०३, ४७८)। काश्मीरी

इतिहास के अनुशीलन से पता चलता है कि प्रथम सती होने वाली महिला रानी देवी वाक्पुष्टा थी। राजस्थान मे महिलाओ के सती होने का प्रमाण सन् १९४८ ई० तक मिलता है।

अर्धनारीश्वर रूप मे नर-नारी दोनो की स्तुति कल्हण एवं जोनराज ने की है। कल्हण ने अर्धनारीश्वर स्तोत्र भी लिखा है। विष्णु पूजा काश्मीर मे इसलिये अधिक प्रचलित नही हुई कि उसका स्वरूप एकांगी था। वह केवल पुरुष शक्ति के प्रतीक हैं। अर्धनारीश्वर मे नर-नारी, पुरुष-प्रकृति दोनो की वन्दना की जाती है।

काश्मीर मे महिलाओ ने शासिका और अभिभाविका रूप मे राज सिंहासनो को सुशोभित किया है। महिलाये काश्मीर मे पूजा एवं आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। महिलायें अधिदेवता थी, देवी थी, पटरानी थी, गृह तथा भू की स्वामिनी थी।

विवाह दूतो के माध्यम से भी होता था। काश्मीर मे स्त्रियाँ केवल गृहो की शोभा नही थीं। वे सहचरी थी, अर्धांगिनी थी, सामाजिक कार्यों मे पुरुषो के साथ भाग लेती थीं। उनकी अपनी वैयक्तिक स्थिति थी। परदा प्रथा का प्रचलन नही था।

मुसलिमकाल मे महिलाओ की स्थिति मे परिवर्तन हो गया। वे परदो के पीछे चली गयी। सिकन्दर बुतशिकन के समय तक महिलायें राज-काज मे भाग लेती दिखलायी पडती हैं। उसके पश्चात् वे राजकार्य मे भाग लेती हुई नही मिलती। वे हरम की शोभा बन गयी। सिकन्दर के समय तक सुलतानो की स्त्रियो का नाम सुसंस्कृत मिलता है। वे प्राय. हिन्दुओ के कुलीन वंशो की कन्याये थीं। वे हिन्दू संस्कृति तथा रीति-रिवाज को त्याग नहीं सकी थीं। मुसलिम शासन तथा जनता के मुसलिमबहुल होने पर भी काश्मीर मे परदा प्रथा पीरो आदि धार्मिक वर्गों तक ही सीमित रह गयी।

सिकन्दर के समय मे मुल्ला तथा मौलवियो के कारण स्त्रियो की स्वतंन्त्रता नियन्त्रित हो गयी। वे समाज तथा राज-दरबार से दूर रहने लगी। उनके अधिकार तथा उनकी स्वतन्त्रता पर शरह के अनुसार बन्धन लगा दिये गये।

काश्मीर मे सुलतान सिकन्दर प्रथम शासक था, जिसने गैरकाश्मीरी मुसलिम महिला मेरा से विवाह किया था। इस समय से काश्मीर के सुलतानो की बेगमो का नाम सुनाई नही पडता है। हिन्दूकाल मे महिलायें प्राय नंगे सिर रहा करती थी। वे केश विन्यास करती थी, उन्हे पुष्पो से सजाती थीं। यद्यपि शिरो-वेष्ठन का भी उल्लेख मिलता है। हरवान तथा अन्य स्थानो पर प्राप्त महिलाओ की मूर्तियो तथा चित्रो पर परदा प्रथा का अभाव मिलता है। वे खुले मस्तक महाराष्ट्र तथा दक्षिण की स्त्रियो के समान रहती थी।

शामी अर्थात् यहूदी, ईसाई एवं मुसलिम प्रथा स्त्रियो को मस्तक ढकने के लिये अनुशासित करती है। वे चर्च तथा मसजिदो मे अथवा धार्मिक स्थानो मे बिना मस्तक ढके प्रवेश नही कर सकती। काश्मीरी मुसलिम महिलायें मस्तक पर ओढ़नी तथा रूमाल बाँधे रहती है।

यथा : जोनराज ने राजाओ तथा सुलतानो के वंश का वर्णन किया है। जोनराज की वंशावली कतिपय फारसी इतिहासकारो से नही मिलती। उदाहरणार्थ गुहरा शाहमीर की कन्या थी। उसका विवाह हिन्दू से हुआ था। गुहरा का नाम किसी वंशावली मे पुरातन फारसी तथा आधुनिक अंग्रेजी इतिहासकारो ने नही दिया है। वे इस प्रकार के प्रसंग का वर्णन भी नही करते। यथास्थान हमने इस विषय पर प्रकाश डाला है।

कोटा रानी : काश्मीर की अन्तिम हिन्दू शासिका तथा रानी कोटा देवी थी। मैंने विस्तार के साथ इसका वर्णन किया है। जोनराज ने भी १३३ श्लोकों में कोटा का वर्णन रिंचन सन् १३२० ई० से शाहमीर काल सन् १३३९ ई० तक किया है। केवल कोटा देवी के शासनकाल का वर्णन ४३ श्लोकों में किया है।

इस महान वीर, विचक्षण, नारी के चरित को कलंकित करने तथा गिराने का फारसी इतिहासकारों ने प्रयत्न किया है। वास्तविकता इसके विपरीत है। इस महान् महिला का इतिहास एवं पूर्ण चरित अब तक अन्धकार में है। मैंने कोटा रानी के विषय में विस्तार के साथ नवीन दृष्टिकोण से यथास्थान वर्णन किया है।

राजतरंगिणीसंग्रह : कोटा रानी के उत्तरार्ध काल एवं वध के विषय में मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ उसी निष्कर्ष पर राजतरंगिणीसंग्रहकार पहुँचा था। राजतरंगिणीसंग्रह की एक प्रति इस पुस्तक की रचना तथा मुद्रण समाप्त होने पर अकस्मात् वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में पाण्डुलिपियों के अन्वेषण के समय मुझे मिल गयी। उसका कहीं कैटलाग में अलग उल्लेख नहीं था। पुस्तक-तालिका में नाम भी नहीं था।

संग्रह में चारों राजतरंगिणियों के राजाओं तथा सुलतानों का अति संक्षिप्त वर्णन है। उसमें राजाओं के वर्षकाल का भी उल्लेख किया गया है। उसका उद्धरण प्रस्तुत संस्करण में नहीं दिया जा सका है। द्वितीय संस्करण में समावेश किया जायगा। उसमें नवीन मौलिक बातें नहीं हैं। परन्तु वह मेरे इस मत का समर्थन करती है कि कोटा रानी का वध शाहमीर द्वारा किया गया था।

निर्माण : हिन्दू राजा निर्माणों के प्रेमी थे। उन्होंने अपने विलास एवं सुख के लिये राजप्रासादों, दुर्गों का निर्माण न कर केवल देवस्थानों के निर्माणों में अपनी पूरी शक्ति लगायी थी। हिन्दूकाल में पूर्ववत् निर्माण परम्परा जारी रही। जोनराज ने हर्षेश्वर (श्लोक : ७३), नृसिंह प्रतिष्ठा (श्लोक : १२७) का उल्लेख किया है। हिन्दू राजा शाला, मठ, सत्र का निर्माण कराते रहे। राजा संग्रामदेव ने २१ शालाओं का निर्माण ब्राह्मणों के लिये केवल विजयेश्वर में कराया था। इसके अतिरिक्त बलाढ्य मठ (श्लोक : ८२), सिंहदेव मठ (श्लोक : ११०), अहुला मठ (श्लोक : ११५), सुभद्र मठ (श्लोक : १११), दत्तमठ (श्लोक : १२३) आदि नूतन निर्माणों का उल्लेख जोनराज करता है। उसने प्राचीन शाला, मठ, देवस्थानों का वर्णन किया है। उसने हिन्दूकाल में विष्णु मन्दिर के जीर्णोद्धार की भी चर्चा की है (श्लोक : १०२)। सल्लर कोट (श्लोक . १०६), राजपुरी, राजलोक आदि के निर्माण का भी उल्लेख मिलता है (श्लोक : ८६)।

मुसलिमकाल में निर्माणों का कम उल्लेख मिलता है। शाहमीर ने कोई निर्माण कार्य नहीं किया था। उसके पुत्र द्वितीय सुलतान जमशेद ने सुय्यपुर में सेतु निर्माण कराया था (श्लोक : ३४०)। साथ ही पर्वत सीमा पर पथिकों के निवास हेतु स्वनामांकित मठ (सराय) का निर्माण कराया (श्लोक : ३४२)।

जोनराज मुसलिम सुलतानों में मठ निर्माणों का उल्लेख करता है। मठ का अभिप्राय यहाँ खानखाह से लगाना चाहिए। तृतीय सुलतान अलाउद्दीन ने बुद्धगिर (श्लोक २४१), चतुर्थ सुलतान शहाबुद्दीन ने लक्ष्मीपुरी (श्लोक : ४१०), शहाबुद्दीनपुर (श्लोक · ४११) तथा लोल डामर ने लोलपुरी (श्लोक : ४१२) का निर्माण कराया था।

मुसलिमकाल में केवल सिर्यभट्ट द्वारा निर्मित मठ का उल्लेख मिलता है (श्लोक : ८८९)। यह हिन्दुओं द्वारा मुसलिमकाल के निर्माण का प्रथम उल्लेख है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि जैनुल आबदीन के सचिवों ने धर्मशालाओं का निर्माण कराया था। मुसलिमों द्वारा निर्मित शाला का तात्पर्य सराय से लगाना चाहिये।

सत्र : जैनुल आबदीन ही एकमात्र मुसलिम सुलतान था जिसने हिन्दुओं में तीर्थस्थान, विजय-क्षेत्र, साराक्षेत्र, सुरपुर आदि स्थानों में सत्र स्थापित किये थे।

हिन्दू शासनकाल में सार्वजनिक निर्माणों को बहुत महत्व दिया जाता था। कृषि के लिये कुल्या बनाने का प्रचुर उल्लेख मिलता है।

अनुवाद : अनुवाद की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं। राजकीय भाषा हिन्दी तथा अंग्रेजी हो जाने के पश्चात् और दोनों भाषाओं में एक दूसरे का अनुवाद होने के कारण, इस दिशा में यथेष्ट प्रगति हुई है। अनुवादों की एक नवीन शैली विकसित हुई है। कभी-कभी अनुवाद बोधगम्य भी नहीं होते।

छायानुवाद, भाषानुवाद, सारानुवाद, शब्दानुवाद, भावान्तर, रूपान्तर, अनुकरणादि अनेक अनुवाद-शैलियाँ प्रचलित हो गयी हैं। अनुवाद पर कुछ ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। कुछ ग्रन्थों का रूपान्तर भी किया गया है। कर्पूरमंजरी (सन् १७८६ ई०) सामान्य रूपान्तर है। परावर्ती रचनाएँ, हृदयरामकृत हनुमन्नाटक (सन् १६२३ ई०) तथा बदरीनाथ भट्ट का कुरुवन दहन (सन् १९१२ ई०) है।

शब्दानुवाद की शैली ने मध्ययुगीय यूरोप में प्रगति की थी। बाइबिल का अनुवाद इसका एक उदाहरण है। आंग्ल कवि श्री जॉन ड्राइडन ने शब्दानुवाद, भावानुवाद तथा अनुकरण में अनुवादों की शैलियों का वर्गीकरण किया है। महाकवि गेटे ने अनुवादों को परिचयात्मक रूपान्तर तथा पुनर्सर्जन तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है।

समीक्षक बेन गेटे क्रोसे के मत में—कामिनी के समान यदि अनुवाद सुन्दर है तो सत्य नहीं हो सकता। यदि सत्य है, तो सुन्दर नहीं हो सकता। उत्तम अनुवाद को मौलिक रचना के तुल्य माना गया है। यह मौलिकता फिट्जराल्ड के रुबाइयात उमर खय्याम में परिलक्षित होती है। क्रोसे लिखता है—अनुवाद मूल का पुन सर्जन नहीं है। किन्तु मूल की अभिव्यक्ति के समान अभिव्यक्ति का सृजन हो सकता है।

जोनराज के अनुवाद में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। आज तक विश्व की किसी भाषा में इस तरंगिणी का श्लोकानुसार अनुवाद नहीं किया गया है। विश्व की किसी भाषा में इस दृष्टि से यह प्रथम अनुवाद है।

कल्हण का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच, हिन्दी, मराठी, बंगला आदि अनेक भाषाओं में हो चुका है। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुवाद के समय मैंने कठिनाइयों का अनुभव नहीं किया। उस पर अंग्रेजी में सर्वश्री दत्त, स्तीन तथा सीताराम रणजीत पंडित का अनुवाद उपलब्ध है। उनसे कल्हण का अभिप्राय समझने में सहायता मिलती है। वे दिशा-निर्देशन के लिये पर्याप्त है। केवल हिन्दी में कल्हण की राजतरंगिणी के तीन अनुवाद उपलब्ध हैं।

जोनराज की तरंगिणी का अनुवाद कठिन है। कल्हण की संस्कृत परिष्कृत एवं काव्यमय है। उसमें अप्रचलित शब्दों का प्रयोग कम मिलता है। जोनराज की राजतरंगिणी में अनेक स्थानीय एवं अप्रचलित शब्द हैं। पद-पद पर कठिनता का बोध होता है। कल्हण का अनुवाद करना आज जितना सरल है, उतना ही जोनराज का अभिप्राय समझकर करना कठिन है।

सर्वश्री दत्त, स्तीन तथा पण्डित ने काश्मीर का पर्यटन किया था। श्रीस्तीन ने अपने जीवन का पर्याप्त समय काश्मीर में व्यतीत किया था। अतएव श्रीस्तीन का अनुवाद अपनी मौलिकता रखता है, श्रीदत्त का श्लोकानुवाद नहीं भावानुवाद है, श्री पण्डित ने साहित्यिक अनुवाद किया है।

जोनराज का अनुवाद करने तथा उसका तात्पर्य समझनेके लिये काश्मीर का भौगोलिक तथा ऐतिहासिक ज्ञान होना आवश्यक है। मुझे काश्मीर का अध्ययन करते लगभग १८ वर्ष हो रहे हैं। मैंने काश्मीर का कोई कोना अछूता नही छोड़ा है। अपने अध्ययन के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन मैंने कल्हण की राजतरंगिणी भाष्य मे किया है। उसकी पुनरुक्ति यहाँ दोष माना जायगा।

यह जोनराज का प्रथम अनुवाद है। मैंने भविष्य के अनुवादकों तथा भाष्यकारो के लिये मार्ग प्रशस्त किया है। प्रथम मौलिक कार्य मे त्रुटि रह जाती है। यह अनुवाद तथा भाष्य इसका अपवाद नही है।

कल्हण मे जिस अनुवादशैली का मैंने अनुकरण किया है, उसी आधार पर प्रस्तुत अनुवाद भी किया है। कल्हण के अनुवाद तथा प्रस्तुत अनुवाद मे कुछ भिन्नता प्रकट होगी। मुझे प्रत्येक शब्द नाप तौल कर रखना पड़ा है। मेरा दायित्व प्रथम अनुवादक एवं भाष्यकार होने के कारण गुरु हो गया है। कल्हण का अनुवाद एवं भाष्य करने मे मुझे जितना समय लगा है, उसका चौगुना समय प्रस्तुत भाष्य एवं अनुवाद करने मे व्यतीत हुआ है।

प्रत्येक पद जिसमे क्रिया मिल गई है, उसका अनुवाद एक ही पद मे किया गया है। यदि क्रिया दूसरे पद मे मिली है, तो पद तोड़कर, अनुवाद किया गया है। अनेक संस्कृत शब्द जिनका भाव हिन्दी मे व्यक्त नही हो सकता था, उन्हें यथावत रख दिया गया है। कठिन अप्रचलित शब्दो का भाव एवं अर्थ पादटिप्पणी मे स्पष्ट किया गया है।

क्रिया, वचन एवं लिंग के मूलरूप का ही अनुवाद किया गया है। प्रत्येक शब्द का अर्थ भाव के साथ किया गया है। उस समय उन शब्दो से क्या तात्पर्य लगाया जाता था, इसे स्पष्ट करने का यथाशक्ति प्रयास किया गया है। पर-पूर्वा एवं प्रसंग का ध्यान रखकर, प्रसंग से बाहर न होने की चेष्टा की गयी है।

कितने ही तत्कालीन शब्द आज अप्रचलित हो गये हैं। कितने ही शब्दो का आज वह अर्थ नही रह गया है, जो पूर्वकाल मे था। जोनराज ने अनेक अप्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है। रचनाकाल मे शब्दो का जो सम्भाव्य अर्थ किया जाता था, वही मैंने किया है।

स्थान परिचय : किसी भी मौलिक ग्रन्थ के अनुवाद के लिये रचनाकार के वातावरण, परिस्थिति, निवास, समाज, भूपरिचय, इतिहास, वंश, कुल और राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना तथा इनका पूर्णरूपेण अध्ययन करने के लिये ग्राम, कसबा, तीर्थ, जियारत तथा नगरो मे जनता के बीच रहना आवश्यक है। मैंने कितने ही दिन ग्रामीणो, तथा पर्वतीय आबादी मे व्यतीत किये हैं।

मारताण्ड, शारिका शैल, परिहासपुर, विजयेश्वर, बारहमूला, अनन्तनाग तथा सीमावर्ती अंचल मे भ्रमण तथा निवास किया है। वहाँ के लोगो से मिलकर, उनमे रहने के कारण जनश्रुतियो तथा रीति-रिवाजो के अध्ययन म सहायता मिली है। उनके प्रसंग मे जोनराज ने उनके इतिहास का वर्णन किया है। इन भ्रमणो एवं निवास के कारण घटनाक्रमो एवं अन्य इतिहासकारो के इतिहास से उन्हे मिला कर समझने मे सरलता का अनुभव हुआ है।

भौट्टदेश अर्थात लद्दाख, तिब्बत, मानसरोवर, हिमाचल, काँगड़ा, जम्मू, किश्तवार, भद्रवा, राजौरी, पूछ आदि काश्मीर सीमावर्ती क्षेत्रो मे मैंने भ्रमण किया है। जोनराज का वर्णन इन स्थानो के प्रसंग मे अधूरा है। मैंने उन्हे अपने भाष्य मे पूर्ण किया है।

मैंने तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, स्वात, पेशावर, तक्षशिला तथा रावलपिण्डी अंचल का भ्रमण पाकिस्तान बनने के पूर्व किया था। भारत विभाजन के पश्चात गजनी, कन्धार, बामियान, तथा अरगन्धाव उपत्यका, मजारे-शरीफ, कपिशा आदि तथा काबुल से खैबर तक की यात्रा की है। उसका वर्णन 'आर्याना' शीर्षक अपनी पुस्तक में मैंने किया है। मेरी यह यात्रा राजतरंगिणी में वर्णित स्थानों को समझने की दृष्टि से की गई थी। यदि उन्हे न देखता, तो उनके विषय मे एवं जोनराज के भौगोलिक वर्णन पर प्रकाश डालना कठिन था।

कल्हण एवं जोनराज पर भाष्य लिखते समय अफगानिस्तान के पूर्वीय अंचल, सीमांत पश्चिमोत्तर प्रदेश, काफिरिस्तान, गिलगिट, स्करदू, आदि जाने की इच्छा प्रबल हुई, राजनीतिक कारणो से वहाँ जाना सम्भव नहीं हो सका। यदि वहाँ की कभी यात्रा कर सका, तो वहाँ की निवसित प्राचीन जातियो पर जिनका संकेत कल्हण तथा जोनराज ने किया है, कुछ प्रकाश डाल सकूँगा। पर्वतीय जातियाँ जो प्रायः लोप हो गयी हैं, उनके इतिहास तथा उनके परिचय पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। मैंने काश्मीर उपत्यका तथा इस समय भारत की सीमावर्ती जातियो मे भ्रमण किया है। जोनराज वर्णित स्थानो को जो इस समय भारत तथा काश्मीर में हैं, मैंने स्वयं देखा है, अतएव अनुवाद एवं भाष्य लिखते समय सरलता का बोध हुआ है।

कल्हण ने जिन भौगोलिक स्थानों के नाम दिये हैं, और जिनकी खोज श्री स्तीन तथा अन्य विद्वानो ने अथक परिश्रम से की है, उनके नामो मे परिवर्तन हो गया है। वे अपनी पूर्वस्थिति मे नहीं रह गये हैं। फारसी तथा अरबी प्रभाव के कारण नाम बदल गये हैं। उच्चारणो मे भेद हो गया है। नवीन जियारतो, मजारों, खानकाहों के नाम पर उनके नाम पड गये हैं। उनका पता लगाने मे कठिनाई होती है। तथापि जिनका पता लगा कर लिखा गया है, वे अपनी समझ से ठीक हैं। जहाँ ठीक पता नही लग सका है, वहाँ इस बात का संकेत कर दिया गया है। उनके शुद्ध रूप तथा उनके इतिहास जानने के लिये स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है।

अनुवाद की रोचकता बढाने के लिये अपनी तरफ से मैंने कुछ नही जोड़ा है। अर्थ स्पष्ट करने के लिये जहाँ शब्दो की आवश्यकता हुई है, वहाँ उन्हे कोष्ठ मे रख दिया है। मूल रचना के सौष्ठव को अक्षुण्ण रखने के लिये जोनराज का ही अनुकरण किया गया है।

प्रसाद गुण का अनुवाद मे महत्व है। दुरूह स्थल, भाव एव अर्थ को समझने मे जहाँ कठिनाई हुई है अथवा जिन पदों के दो अर्थ हो सकते हैं, वहाँ दोनो या तीनो अर्थ टिप्पणी मे दिये गये हैं। पाद-टिप्पणी में ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक महत्व की सभी प्राप्त सामग्रियो को देने का प्रयास किया गया है। यह जोनराज पर लिखी प्रथम रचना है। जिन विषयो पर विशेष विवेचन की आवश्यकता हुई है, उन्हें परिशिष्ट में दिया गया है।

स्रोत

जोनराज के पश्चात श्रीवर ने सन् १४५९ ई० से १४८६ ई० के बीच के इतिहास की रचना की है। प्राज्यभट्ट का इतिहास अप्राप्य है। तत्पश्चात शुक ने सन् १५९६ ई० तक का वर्णन किया है। यह अन्तिम एव चौथी राजतरगिणी है। विश्व मे ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता, जहा ३४८ वर्षो तक राजतरगिणी जैसे ग्रन्थ की रचना अबाध गति से चलती रही है।

शुक के पश्चात काश्मीर मे राजतरगिणी रचना विशृङ्खलित हो गयी और फारसी मे इतिहास लेखन का युग आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र मे १९ वी शताब्दी तक भारतीय एव विदेशी इतिहासकारो ने इतिहास ग्रथो का प्रणयन किया।

जोनराज, श्रीवर तथा शुक समकालीन घटनाओ के प्रत्यक्षदर्शी थे। उनके तथ्य वर्णन पर अविश्वास करने का कोई कारण नही हो सकता। जोनराज की मृत्यु जैनुल आबदीन के समय मे हुई थी। वह सिकन्दर तथा जैनुल आबदीन के ७० वर्षो के जीवनकाल की घटनाओ का प्रत्यक्षदर्शी था। उसे किसी अन्य स्रोत की आवश्यकता नही थी।

श्रीवर जैनुल आबदीन के बाद तक जीवित रहा। वह भी उसके शासनकाल का प्रत्यक्षद्रष्टा था। उसने जोनराज की अपेक्षा विस्तृत वर्णन किया है। सन् ११४८ ई० से १३३९ ई० तक १९१ वर्षों के हिन्दू नरेशो का इतिहास अति सक्षिप्त है।

प्रथम विदेशी रिंचन सन् १३२० ई० मे काश्मीर का शासक हुआ। उसके ६९ वर्ष पश्चात् सन् १३८९ ई० म जोनराज का जन्म हुआ। उसी वर्ष सिकन्दर सिंहासनारूढ हुआ था। जोनराज के समय में ७० से ९० वर्ष के वृद्ध अवश्य जीवित रहे होगे। वे वृद्ध रिंचन से सुलतान कुतुबुद्दीन के शासनकाल तक के व्यक्तियो तथा घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे। इन्ही बुजुर्गो से जोनराज ने उस समय की घटनाओ का वर्णन सुना होगा। हिन्दू नरेशो के शासनकाल की सामग्री शेष नही रह गयी थी, जिसके आधार पर वह इतिहास प्रणयन करता। रिंचन से कुतुबुद्दीन तक के काल का प्रत्यक्षदर्शी न होने पर भी उसका वर्णन प्रमाण दृष्टि से गौण साक्ष्य के आधार पर प्रत्यक्ष तुल्य ही प्रामाणिक माना जा सकता है। साक्ष्य के अभाव के कारण ही २७२ वर्षों तथा १२ नरेशो का इतिहास वह केवल १३० श्लोको मे समाप्त कर देता है। प्रत्येक नरेश का वृत्तान्त सामान्यत १० श्लोको से अधिक नही होता। रिंचन से कुतुबुद्दीन तक, ६८ वर्षों के दो नरेशो एव एक रानी तथा पाँच सुलतानो के इतिहास का वर्णन भी गौण साक्ष्य के आधार पर वह २९० श्लोको मे करता है। इस समय के प्रत्येक नरेश का उल्लेख सामान्यत ३० श्लोको म होता है।

प्रत्यक्षदर्शी के रूप में उसने सुलतान सिकन्दर, अलीशाह तथा जैनुल आबदीन केवल दो सुलतानों के ४० वर्षों के इतिहास लेखन के लिए २१५ श्लोक अर्पित किये हैं। प्रत्येक सुलतान का वर्णन उसने सामान्यतः ८६ श्लोकों में किया है। इस प्रकार तीनों शासनकालों का वर्णन सामान्यरूप में १०, ३० तथा ८६ श्लोकों तक सीमित है। यह अन्तर श्रुत, गौण प्रमाण तथा प्रत्यक्ष प्रमाण के कारण पड़ गया है। निश्चय ही जिस काल का उसे अप्रत्यक्ष किंवा गौण ज्ञान नहीं था, उस काल के हिन्दू नरेशों के विषय में किसी किसी का वर्णन तो केवल एक श्लोक मात्र में समाप्त कर दिया है। परन्तु अप्रत्यक्ष किंवा गौण साक्ष्य उपलब्ध होने पर उसका वर्णन भी विस्तृत होता चला गया है, क्योंकि यह वृत्तान्त उसने प्रत्यक्षदर्शियों के वर्णन के आधार पर लिखा है। अपने जीवनकाल की घटनाओं का वर्णन उसने अत्यन्त विस्तार के साथ किया है। रिंचन के पश्चात वह विस्तृत वर्णन देना आरम्भ करता है।

फारसी में इतिहास ग्रन्थ

१ । फारसी इतिहासकारों ने अनेक इतिहास ग्रन्थ काश्मीर पर लिखे हैं। किन्तु किसी की रचना जोनराज के पूर्व की नहीं है। सबकी रचनायें जैनुल आबदीन के समय से आरम्भ होती है। अनेक ग्रन्थों की रचना मुगलकाल तथा उसके पश्चात उन्नीसवीं शती तक हुई है। फारसी इतिहासकारों का सबसे बड़ा दोष यह है कि उन्होंने अपने इतिहास ग्रन्थों में आधार किंवा सन्दर्भ-ग्रन्थों अथवा ज्ञानस्रोत का उल्लेख नहीं किया है।

जैनुल आबदीन के समय कल्हण की राजतरंगिणी का अनुवाद फारसी में हो चुका था। परन्तु जोनराज की राजतरंगिणी का अनुवाद सम्राट अकबर के शासन के समय होने का प्रमाण अथवा उल्लेख नहीं मिलता। कुछ फारसी इतिहासकारों ने यदि जोनराज का अनुवाद सुन या पढ़कर, इतिहास लिखा है, तो वह त्रुटिपूर्ण अनुवादों के कारण वस्तुस्थिति से हट गये हैं। जितने फारसी लेखकों ने इतिहास लिखा है उनमें शाह मुहम्मद शाहाबादी तथा बदायूनी के अतिरिक्त शायद ही कोई संस्कृत जानता था। शाह मुहम्मद के अनुवाद का सम्पादन बदायूनी ने किया था। उसने रामायण तथा महाभारत का भी फारसी में अनुवाद किया था। इससे प्रतीत होता है कि शाह मुहम्मद चाहे संस्कृत न भी जानता रहा होगा, तथापि बदायूनी को संस्कृत का कुछ ज्ञान अवश्य था। यह तत्कालीन वर्णनों से प्रकट होता है।

फारसी इतिहास, सुलतानों के राज्यकाल पर अधिक प्रकाश डालते हैं। जोनराज जिन स्थानों पर शान्त है, अथवा वर्णन अस्पष्ट है, वहाँ जोनराज का वास्तविक अभिप्राय समझने के लिये फारसी ग्रन्थ आवश्यक है। उन्हें जोनराज का पूरक मानना चाहिए। उन्हें जोनराज का पक्षपाती अथवा विपक्षी मानना उचित नहीं होगा। यदि सन्तुलित बुद्धि से फारसी इतिहासों को पढ़ा जाय, तो उनमें प्रचुर सामग्री मिलेगी। वे काश्मीर के इतिहास पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

संस्कृत ग्रन्थों के अभाव में वास्तविकता पर पहुँचने लिये फारसी इतिहासकारों का द्वार खटखटाना पड़ता है। यह परिस्थिति कल्हणकाल में नहीं थी। कल्हण के लिये पूर्व इतिहास तथा प्रचुर इतिहास सामग्री उपलब्ध थी परन्तु जोनराज के समय कोई भी संस्कृत ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं था। ऐतिहासिक सामग्री नष्ट हो चुकी थी। यदि यह सामग्री प्राप्य होती, तो जोनराज का वर्णन समझने तथा जहाँ अस्पष्टता है, उसे स्पष्ट करने के लिये सहायता ली जा सकती थी।

जोनराज के वर्णन की सत्यता स्वतः फारसी इतिहास ग्रन्थों से प्रमाणित होती है। फारसी में लिखे गये ग्रन्थों में सच्चाई है तथा संस्कृत रचनाओं में प्रामाणिकता का अभाव है, यह धारणा करना इतिहास

को विकृत करना होगा। किसी भी भाषा मे लिखे ग्रन्थ से यदि सत्य अन्वेषण मे अथवा किसी निष्कर्ष पर पहुँचने मे सहायता मिले, तो उसे पक्षपातरहित होकर लेना चाहिए। इस दृष्टि से अध्ययन करने के लिये फारसी स्रोत एवं रचनायें अनिवार्य हैं।

क्षेमेन्द्र के लोकप्रकाश का रचनाकाल यद्यपि सन् १०६६ ई० है, तथापि उसका समय-समय पर परिवर्धन एवं संशोधन होता रहा है। यह मूलरूप मे प्राप्त नही है। इसका वर्तमान संस्करण शाहजहाँ-कालीन है। इसमे जैनुल आबदीन तथा शाहजहाँ दोनो का उल्लेख मिलता है। वह तत्कालीन सरासर नवीसी का एक नमूना है। प्राचीन संस्कृत, न्यायालय एवं राजकीय भाषा मे किस प्रकार अरबी तथा फारसी शब्दो का समावेश होने लगा था, लोकप्रकाश से इस पर प्रकाश पडता है। इससे तत्कालीन भौगोलिक नामो मे परिवर्तन तथा हिन्दू नामो का मुसलिमीकरण किस प्रकार धीरे-धीरे हो रहा था, इस पर भी प्रकाश पडता है।

फारसी इतिहासकारो तथा साहित्यिको की रचनाओ से काश्मीर के इतिहास पर प्रकाश पडता है। उनसे जोनराज की ऐतिहासिकता तथा सत्यता का प्रमाण मिलता है। यह जोनराज के पदो की व्याख्या एवं उनको समझने मे भी सहायक होते हैं। इनसे पूर्वापर का ज्ञान हो जाता है। इस रूप मे फारसी इतिहास जोनराज के इतिहास के पूरक हैं। इसी प्रकार जोनराज की राजतरंगिणी के कारण फारसी इतिहासकारो के भाव एवं उनकी मानसिक स्थिति समझने मे सरलता होती है। बिना इनका अध्ययन एवं मनन किये जोनराज के पदो का गूढ अर्थ, जहाँ उसने अति संक्षेप मे किसी कारणवश सकेत मात्र किया है, समझना कठिन है।

फारसी ग्रन्थो की प्रामाणिकता अनेक स्थलो पर सन्दिग्ध है। इनमे कहीं-कहीं एकांगी वर्णन हैं और लेखक का पक्षपात दृष्टिगत होता है। तथा उनकी सत्यता पर सन्देह होने लगता है।

जोनराज के हिन्दूकालीन इतिहास पर फारसी इतिहासो से प्रकाश नही पडता। वे जोनराज के त्रुटिपूर्ण अनुवाद मात्र हैं। जोनराज को तथा उसके अभिप्राय को समझने का प्रयास नही किया गया है। इस काल का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त एवं अस्पष्ट है। वह इतना संकुचित एवं सक्षिप्त है कि वह न तो किसी निश्चित दिशा की ओर ले जाता है और न उससे कोई और संकेत मिलता है।

जोनराज के अतिरिक्त अभी तक कोई अन्य रचना नहीं प्राप्त हो सकी है, जो हिन्दूकालीन १९१ वर्षों के इतिहास तथा घटनाओं पर प्रकाश डाल सके।

जोनराज के अतिरिक्त किसी अन्य इतिहासकार ने उक्त काल का प्रामाणिक इतिहास लिखने का प्रयास नही किया है।

कल्हण के समान जोनराज ने किसी भी सन्दर्भ एवं पूर्वकालीन ग्रन्थ का उल्लेख नही किया है। यदि हिन्दूकाल मे किसी इतिहास की रचना हुई भी तो वह धार्मिक उन्माद मे नष्ट हो गयी होगी। मैंने भारतीय तथा विदेशी सभी पुस्तकालयो एवं संग्रहालयो से सम्पर्क स्थापित किया, परन्तु किसी ग्रन्थ की सूचना तो दूर—संकेत मात्र भी नही मिला। यदि भविष्य मे कभी कोई ग्रन्थ प्रकाश मे आया, तो जयसिंह परवर्ती अन्धकारमय हिन्दूकाल को प्रकाशित कर सकेगा। वह प्रकाश केवल काश्मीर तक ही सीमित नहीं होगा परन्तु भारतीय इतिहास को भी दीप्तिमान करेगा।

संस्कृत कवियो के समान, जैनुल आबदीन की राजसभा मे फारसी, दरबारी कवि एवं लेखक थे। उनमे मुल्ला अहमद तथा मुल्ला नादिरी महत्वपूर्ण हैं। उनकी रचनायें अब प्राप्य नही हैं। केवल उनका उल्लेख किसी किसी ग्रन्थ मे मिलता है। यदि उनके ग्रन्थ मिल जाँय, तो जोनराज के समकालीन रचनाकार होने के कारण, उनका वर्णन प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण, जोनराज के वर्णन जैसा ही प्रत्यक्ष एवं गौण

साध्य होने के कारण तत्कालीन इतिहास पर प्रामाणिक प्रकाश डाल सकेगा। संस्कृत तथा फारसी दोनों इतिहासकारों के विचारों को विवेक तुला पर रखकर स्वतन्त्र निष्कर्ष निकाला जा सकेगा।

काजी इब्राहीम ने सुलतान फतहशाह (सन् १४८६—१५१५ ई०) के समय एकमत से सम्भवतः सन् १५३०—१५३७ तथा अन्य मतानुसार सन् १५०४—१५१४ ई० के मध्य अपने इतिहास की रचना की थी। यह ग्रन्थ भी अप्राप्य है। मुल्ला हसन करी ने भी चकवंश (सन् १५६१—१५८८ ई०) का इतिहास लिखा है। वह भी अप्राप्य है। फारसी में यही दो ग्रन्थ है, जो जोनराज की मृत्यु के एक शताब्दी के अन्दर लिखे गये थे। यदि उनका कभी पता चला, तो जोनराज के अस्पष्ट स्थलों के भाष्य में सुविधा होगी। उनके आधार पर मिर्जा हैदर मलिक (सन् १६२०–१६२१) हसन के पुत्र अली (सन् १६१६ ई०) तथा मुहम्मद आजम ने (सन् १७३५–१७३६ ई०) अपने इतिहासों की रचना की है। ये तीनों ही ग्रन्थ प्राप्य हैं। हैदर मलिक ने अपने इतिहास में अनेक रचनाओं का अन्य फारसी रचनाओं के साथ उल्लेख किया है। तारीखेहसन में कुछ अन्य ग्रन्थ तथा हसन बेग की तारीख का भी उल्लेख मिलता है (हसन . पाण्डु० : १५३०)।

सुलतानों के समय काश्मीर हिन्दू से मुसलिम साँचे मे ढल रहा था। सुलतानों के पारस्परिक कलह, राज्य प्राप्ति की लिप्सा तथा उनके अन्तर्द्वन्द्वों के कारण देश मे शान्ति नहीं थी। परन्तु मुगलों के आक्रमण (सन् १५८८ ई०) तथा काश्मीर पर उनका शासन स्थापित होने के पश्चात् स्थायी तथा शक्तिशाली सरकार की स्थापना हुई। प्रथम मुगल शाहन्शाह अकबर स्वयं विद्यानुरागी था। उसके शक्तिमय शासनकाल मे विद्यानुराग काश्मीर में उन्मुख हुआ और फारसी इतिहास लेखकों की बाढ आ गयी।

इस बाढ का कारण अकबर द्वारा विद्वानों का संरक्षण एवं आदर था। उसकी धर्मनिरपेक्ष, सहिष्णु नीति थी। सुलतानों के मुसलिमदेवाधिराज के स्थान पर लौकिक राज्य की सुहावनी किरणों ने पुनः प्रस्फुटित होकर हरे-भरे सुन्दर काश्मीर को सुहावना बना दिया। मध्येशिया का इतिहास, दिल्ली के सुलतानों का इतिहास, काश्मीर के मुसलिम एवं हिन्दू सन्तों के जीवनवृत्त, उनकी रचनायें मुगल राज्य परवर्ती फारसी साहित्य, लोककथायें एवं विदेशी पर्यटकों के संस्मरण द्वारा आधुनिक अनुसन्धान तथा पुरातत्व सम्बन्धी कार्यों से काश्मीर इतिहास पर नवीन प्रकाश पडा है।

मुगलकाल परवर्ती इतिहास लेखकों मे हिन्दू तथा शाहमीर वंश के राजाओं का इतिवृत्त—रेखाचित्र मात्र हैं। मूल स्रोत ढूँढकर अनुसन्धानपूर्वक इतिहास लिखने का प्रयास नहीं किया गया है। मुगलकालीन रचनाओं ने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन पर बहुत कम प्रकाश डाला है। अकबरनामा, आईने अकबरी, तबकाते अकबरी तथा फरिश्ता मे काश्मीर का भौगोलिक वर्णन ठीक मिलता है। उनमे काश्मीर पर एक अध्याय लिखा गया है। तुजुके-जहाँगीरी मे काश्मीर का अच्छा दर्शन मिलता है।

मध्येशिया सम्बन्धी पुस्तकों में जफरनामा (सन् १४२४-१४२५ ई०) के अतिरिक्त मलफूजाते तैमूरी (तैमूरलंग का आत्मचरित) है। तारीखे रशीदी भी मध्येशिया के इतिहास पर प्रकाश डालती है। उसमे मुगलिस्तान तथा मगोल शासकों का वर्णन है। अन्य फारसी रचनायें मुख्यतः काश्मीर सम्बन्धी हैं। ह्दीकतुल अकालीम काश्मीर के विषय मे भौगोलिक कोश मात्र है। यह पुस्तक मुर्तजा हुसेन बिलग्राम ने लिखी है। वह नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से छपी है।

काश्मीर मे इस्लाम धर्म प्रवेश के पश्चात् मुसलिम ऋषि, सूफी, सन्तों की परम्परा आरम्भ होती है। अनेक मत-मतान्तरों तथा शिया सम्प्रदाय का भी उदय होता है। उनके सम्बन्ध मे अनेक ग्रन्थ लिखे गये

है। उनमें काश्मीर में इस्लाम धर्म की स्थापना, मुस्लिम संस्कृति का विकास तथा उसके प्रचार का स्वरूप यह सब विषय स्पष्ट होते हैं। उसमें तत्कालीन जनता की मानसिक भावनाओं की भी झलक मिलती है।

उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास ग्रन्थों कि रचनायें हुई। वे पुरानी फारसी पुस्तकों पर आधारित हैं। उनमें नवीन सामग्री नहीं मिलती। फारसी म तवारीखों की पुनरावृत्ति है। इनमें कोई भी अनुसन्धान पर आधारित नहीं है। केवल तारीखे-पीरहसन में कुछ अनुसंधान की झलक मिलती है। उसने तत्कालीन पुस्तकों तथा प्राचीन प्राप्य पुस्तकों का अध्ययन कर कई भागो में तारीखे काश्मीर की रचना की है। उसकी तारीख काश्मीर जनप्रिय और प्रसिद्ध है। उसने स्वयं काश्मीर, भारत तथा अफगानिस्तान का भ्रमण कर, सामग्री एकत्रित की थी। अपनी साधनसीमा के अन्दर उसने जो कुछ लिखा है, वह प्रशंसनीय है। यद्यपि हिंदुओ के दृष्टिकोण से उसकी रचना एकांगी ही कही जायगी। अपने आप स्वयं पीरहसन ने पक्षपात करने का प्रयास नहीं किया है। मुस्लिम लेखक जिन्हे संस्कृत एवं अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है, उनकी ज्ञान एवं अनुसन्धान सीमा संकुचित होती है। पीरहसन भी इसका अपवाद नहीं कहा जा सकता।

काश्मीर का तत्कालीन इतिहास समझने के लिये भारतीय इतिहास का गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। भारत, अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान के इतिहासो का बिना अध्ययन किये, तत्कालीन इतिहास लिखने का प्रयास करना केवल एक साहसिक कार्य माना जायगा। काश्मीर की सीमायें, भारत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, पाकिस्तान तथा तिब्बत तक फैली हुई हैं। लद्दाख तथा तुर्किस्तान के लोगो ने काश्मीर पर शासन किया था। स्वयं शाहमीर के वंश ने स्वात उपत्यका से आकर काश्मीर पर राज्य किया था। उनके इतिहास के पूर्वापर पर विचार एवं तत्कालीन परिस्थितियाँ जिनसे काश्मीर की राजनीति प्रभावित होती रही है, इनका अध्ययन करना आवश्यक है। अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, लद्दाख, तिब्बत, स्कर्दू और गिलगित अंचल का इतिहास अभी पूर्णरूपेण प्रकाश म नहीं आया है। उसके प्रकाश म आने पर काश्मीर इतिहास पर मुख्यतया शाहमीर तथा चकवंशीय सुलतानो के इतिहास पर प्रकाश पड़ेगा।

जोनराज ने सीमावर्ती राज्यो का काश्मीर इतिहास के प्रसंग मे वर्णन किया है। राजौरी, सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश, किश्तवार, मद्र, कांगड़ा, जम्मू, पंजाब के पर्वतीय राज्यो का इतिहास बिखरा तथा सूत्रवत् मिलता है। जोनराज जम्मू, उदभाण्डपुर, राजपुरी, काष्टवाट, गान्धार आदि का भी वर्णन करता है। उन स्थानो के इतिहास से काश्मीर के इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन का बहुत प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं ही मिली। उक्त स्थानो के इतिहास स्रोत अभी तक फारसी ग्रन्थ ही हैं, जो सुनी सनायी बातो पर आधारित हैं। इन ग्रन्थो म भौगोलिक तथा वंशीय वर्णन एवं नाम ठीक मिलते हैं। भविष्य जब उक्त पर्वतीय क्षेत्रो के सविस्तार प्रामाणिक इतिहासो के पृष्ठो को खोलेगा, तो जोनराज के संकेत तथा अस्पष्ट स्थलो का अर्थ सर्वथा स्पष्ट हो जायगा।

मद्र का वर्णन तथा वहाँ के राजाओ का उल्लेख जोनराज ने बहुत किया है। मद्र की भौगोलिक स्थिति वह नहीं है, जो पूर्वकाल मे थी। मद्र को जम्मू से मिलाकर फारसी तथा अर्वाचीन इतिहासकारो ने गलती की है। इस कारण इतिहास की गुत्थी सुलझने की अपेक्षा उलझती गयी है। मैंने इस प्रकार के स्थलो पर अपने विचार प्रकट कर, शेष कार्य भविष्य मे शोध एवं अनुसन्धानकर्ताओ के लिये छोड दिया है।

फारसी इतिहासकार संस्कृत हिन्दी नामो तथा भौगोलिक स्थानो के हिज्जे (फारसी) लिपि की अपूर्णता के कारण ठीक नहीं कर सके हैं। इससे उच्चारण त्रुटिपूर्ण हो गया है। एक ही नाम का उच्चारण

भिन्न-भिन्न इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न रूप से किया है। यहा तक कि उनके हिज्जे भी भिन्न-भिन्न रूप में मिलते हैं। एक ही नाम अनायास दो व्यक्तियों के नाम समझ लिये जाते है। इससे भ्रम उत्पन्न होता रहा है।

संस्कृत मे भी मुसलिम नामो की वर्तनी अर्थात् हिज्जे इसी प्रकार दोषपूर्ण रही है। जोनराज, श्रीवर तथा शुक ने मुसलिम, फारसी तथा अरबी नामो का संस्कृतीकरण किया है। इस कारण से किंचित असावधानी से भयंकर गलती हो सकती है। महम्मद, मुहम्मद, महमूद तीनो ही नामो का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिये किया गया है। मुझे संस्कृत मे त्रुटिपूर्ण लिखे गये नामो तथा शब्दो को पुनः शुद्ध अरबी तथा फारसी मे लिखने के लिये बहुत परिश्रम करना पड़ा है। इसके लिये एक नियम अन्त मे बन पाया है। इसके द्वारा संस्कृत ग्रन्थो मे दिये गये नामो को फारसी तथा अरबी मे शुद्ध रूप से लिखना संभव हो सका है। परन्तु फिर भी कही-कही त्रुटि रह गयी है, उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

निम्नलिखित संस्कृत तथा फारसी ग्रन्थो की तालिका का सीधा सम्बन्ध प्रस्तुत ग्रन्थ से है। वही इस भाष्य के आधार हैं। *शेष सहायक एवं सन्दर्भ ग्रन्थो की तालिका अन्त मे दी गयी है।*

मौलिक संस्कृत ग्रन्थ :

जोनराजतरंगिणी : (सन : १४५९ ई०)। इसका लेखक जोनराज है। उसकी मृत्यु सन् १४५९ ई० मे हुई। जोनराज की अनेक पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हैं। जोनराज का भौगोलिक वर्णन एवं कालगणना ठीक है। फारसी इतिहास लेखको ने वर्ष गणना हिजरी तत्पश्चात उसे संवत् आदि परिवर्तित करने मे त्रुटिया की है। कालगणना मे ये त्रुटिया आज तक चली आ रही है। मैंने सभी लेखको की कालगणनाओ के साथ जोनराज की भी कालगणना दी है।

जोनराज की शारदा तथा देवनागरी दोनो लिपियो मे पाण्डुलिपिया मिलती हैं। उन प्रतिलिपियो की संक्षिप्त तालिका निम्नलिखित है।

शारदा पाण्डुलिपियाँ :

(१) पूना भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट : संख्या १७२, : सन् १८७५–१८७६, कैटलाग संख्या ६२५।

(२) पूना भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट संख्या १७१, : सन् १८७५–१८७६, कैटलाग सं० ६२३।

(३) पूना भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीटयूट संख्या १७० ए०, : सन् १८७५–१८७६, कैटलाग सं० ६१९।

(४) श्रीनगर रिसर्च विभाग, जम्मू-काश्मीर सरकार सं० २१३ : शक १७८५ = सन् १८३३ = संवत् १९२० विक्रमी।

(५) श्रीनगर रिसर्च विभाग स० १०४६।

(६) राजतरंगिणी : जोनराज आक्सफोर्ड स० १४७।३।

देवनागरी पाण्डुलिपियाँ :

(१) राजतरंगिणी : कल्हण, जोनराज, श्रीवर, शुक, सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी। पंजीकृत भाग ७३९६५ ए० संवत् १९११।

(२) राजतरंगिणी : कल्हण, जोनराज, श्रीवर, शुक। परिग्रहण संख्या ९५९८६ प्रतिलिपि सन् १८६४ ई० सयाजीराव गायकवाड लाइब्रेरी काशी विश्वविद्यालय, पाण्डुलिपि संवत १८६४ सन् १३२१ ई०।

(३) राजतरंगिणी संग्रह : पंजीकृत संख्या ७३९६५ बी० सवन १९१९, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी, देवनागरी लिपि पाण्डुलिपि : संवत् १८६४ (सन् १९२१ ई०)।

(४) यूरोपियन पर्यटक श्री मूरक्राफ्ट ने श्रीनगर में देवनागरी लिपि की प्रतिलिपि सन् १८२३ ई० में करायी थी। यह कलकत्ता से देवनागरी में सन् १८३५ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसमें कल्हण, जोनराज, श्रीवर तथा शुक की राजतरंगिणियाँ एकसाथ एक ही ग्रन्थ के रूप में छपी हैं। यही संस्करण इस पुस्तक का मुख्य आधार है।

राजतरंगिणी जोनराज, श्रीवर, शुक : बम्बई संस्कृत एवं प्राकृतिक सीरीज, काव्यमाला : संस्करण सन् १८९६ ई०।

राजतरंगिणी जोनराज : सम्पादित श्रीकण्ठ कौल, होशियारपुर, विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूट संस्करण सन् १९६७ ई०।

राजतरंगिणी कल्हण : (१) कलकत्ता संस्करण १८३५, (२) स्तीन संस्करण बम्बई, १८९२ ई०, (३) काव्यमाला—बम्बई, १८९२–१८९६, (४) रामतेज शास्त्री, काशी, संस्करण १९६०, (५) होशियारपुर, संस्करण सन् १९६५ ई०। (६) रघुनाथ सिंह, काशी, संस्करण १९७०।

मौलिक फारसी ग्रन्थ—

तारीखे फिरोज शाही : (सन् १२८५–१२८६ ई०) लेखक जियाउद्दीन बरनी है। इसका जन्म दिल्ली सुलतान बलबन के समय बरन (आधुनिक बुलन्दशहर) में हुआ था। माता सैय्यद कैथल वंश की थी। पिता मुवैयिदुल-मुल्क सैय्यद जलाउद्दीन कैथली वंश की एक पुत्री का नाती था। उसका नाना हुसामुद्दीन सुलतान बलबन का एक सिपहसालार था। उसका चाचा अलाउलमुल्क वजीरजादा था। अलाउद्दीन खिलजी आदि के काल में उसने सुखपूर्वक समय व्यतीत किया था। अमीर खुसरो तथा अलीहसन उसके मित्र थे। वह मुम्मद तुगलक का विश्वासपात्र था। फिरोज तुगलक के ६ वर्षों का वर्णन तारीखे-फिरोजशाही में किया है। उसकी मृत्यु ७५ वर्ष की अवस्था में हुई थी। उसने ८ पुस्तकों की रचना की है। उक्त पुस्तक से तत्कालीन भारत के साथ काश्मीर के सम्बन्ध पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

मलफूजाते तैमूरी या तुजुके तैमूर : मूल पुस्तक चगताई तुर्की भाषा में लिखी गयी थी। फारसी में इसका अनुवाद अबूतालिब हुसैन ने किया। अनुवाद शाहजहाँ मुगल बादशाह को समर्पित किया गया था। यह ब्रिटिश म्यूजियम में है। कैटलाग की संख्या १६६८६ है। मूल तुर्की प्रति जफर हकीम यमन के पास है। यह तैमूर के सातवें वर्ष से ७४ वें वर्ष की आत्मकथा है। पुस्तक से तैमूरलंग तथा सिकन्दर बुतशिकन के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। इसकी एक प्रतिलिपि एशियाटिक सोसाइटी तथा दूसरी रजा लाइब्रेरी रामपुर में है। ब्रिटिश म्यूजियम प्रति की प्रतिग्रहण संख्या १५८ है। सन् १७८३ ई० की एक प्रतिलिपि इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में है। उसकी प्रतिग्रहण संख्या सन् १९४३ है। एक दूसरी सन् १७६६ ई० की प्रतिग्रहण संख्या ७२२ है। तीसरी प्रतिलिपि सन् १६८१ ई० की है। उसकी प्रतिग्रहण संख्या १७१४ है। उक्त चारों प्रतिलिपियों की प्रतिलिपियाँ उन्नीसवीं शताब्दी की लिखी हैं।

सियरुल औलिया : (उत्तर चौदहवीं सदी) लेखक सैय्यद मुहम्मद बिन मुबारक अलवी किरमानी है। यह मीर या अमीर खुर्द के नाम से अधिक विख्यात है। यह निजामउद्दीन औलिया दिल्ली का शिष्य

था। उसके दादा सैय्यद मुहम्मद महमूद किरमान से लाहौर आये थे। वह व्यापारी थे। उनकी मृत्यु सन् १३११–१३२७ ई० के बीच हुई थी। उसका ज्येष्ठ पुत्र नूरुद्दीन मुबारक था। उसीका पुत्र अमीर खुर्द था। यह पुस्तक सुलतान फिरोज तुगलक के समय की रचना है। फिरोज तुगलक का शासनकाल सन् १३५१—१३८८ ई० था।

सियरुल औलिया मे चिश्ती सन्तो के वृतान्त है। इसका एक दिल्ली संस्करण सन् सन् १८८५ ई० का प्राप्य है।

मनकबतुल जवाहिर : (सन् १३७८ ई०) लेखक नूरुद्दीन जाफर बदख्शी है। सैय्यद अली हमदानी का फारसी मे जीवनचरित है। इसकी पाण्डुलिपि रिसर्च विभाग श्रीनगर मे है।

जखीरतुल-मुल्क : (सन् १३८० ई०) लेखक सैय्यद अली हमदानी है। इसकी एक प्रति एशियाटिक सोसाइटी बंगाल मे है।

ज़फरनामा : (सन् १४२४–१४२५ ई०) लेखक शरफुद्दीन अली यजदी है। इसका जन्म यजद मे हुआ था। वह सुलतान शाहरुख (सन् १४०५–१४४७ ई०) का विश्वासपात्र था। इसकी मृत्यु सन् १४५४ ई० मे हुई थी। इसने तैमूर के जन्म से मृत्यु तक का इतिहास प्रस्तुत किया है। तैमूरलंग तथा सिकन्दर बुतशिकन का उल्लेख जोनराज की राजतरंगिणी मे विस्तारपूर्वक किया गया है। तैमूरलग तथा सिकन्दर बुतशिकन के सम्बन्धो पर प्रकाश पडता है। कलकत्ता : सन् १८८७–१८८८ ई० : प्रकाशन। इण्डिया आफिस मे इसकी विभिन्न कालो की १८ प्रतिलिपियाँ हैं।

तारीखे मुबारकशाही : (सन् १४३४ ई०) इसका लेखक यैहया बिन अब्दुल्ला सरहिन्दी है। इसने अलीशाह सुलतान काश्मीर (सन् १४१३–१४२० ई०) तथा जसरथ खोखर के युद्ध का उल्लेख किया है। प्रकाशन : कलकत्ता सन् १९३१ ई० अंग्रेजी अनुवाद : बडौदा सन् १९३१ ई०।

तारीखे कलगरा : (सन् १५०५–१५१४ ई०) लेखक क़ाजी बिन इब्राहीम काजी है। विश्वास किया जाता है कि मुहम्मद शाह के शासनकाल सन् १५३६–१५३७ ई० मे लिखा गया था। ग्रन्थ अप्राप्य है।

तोफतुल अहबाब : लेखक अज्ञात है। इसका लेखन काल विद्वानो ने मध्य पन्द्रहवी शताब्दी माना है। यह भी शमशुद्दीन का जीवनचरित है। वह काश्मीर मे नूरबख्शी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। लेखक *का पिता शमशुद्दीन का शिष्य था। लेखक स्वयं कट्टर नूरबख्शी था। शमशुद्दीन का जिस समय काश्मीर* मे आगमन हुआ था, उस समय लेखक बालक था। इसने शमशुद्दीन के सान्निध्य मे वार्धक्य प्राप्त किया। काश्मीर मे इसलाम धर्म का विकास किस प्रकार हुआ, लेखक इस पर प्रकाश डालता है। अत्यन्त संक्षेप मे राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डालता है। पुस्तक की एक प्रति शिया मुजाहिद आगा सैय्यद महमूद युसुफ श्रीनगर, जो अपने को शमशुद्दीन का वंशज मानते हैं, उनके पास है। दूसरी प्रति स्कर्दू मे उनके दूसरे वंशज के पास है। स्कर्दू इस समय पाकिस्तान मे हैं। इसके चतुर्थ अध्याय का ट्रान्सक्रिप्ट श्रीनगर रिसर्च एव पब्लिकेशन विभाग मे है। उसकी संख्या ५५१ है।

तारीखेरशीदी : (सन् १५४६ ई०) लेखक मिर्जा हैदर दूगलात है। वह मुहम्मद हुसेन कुरकान का पुत्र था। उसका जन्म सन् १४९९ या १५०० ई० मे माना जाता है। दूगलात कबीले का था। अपनी माता खूब निगार खानम की ओर से वह मुगल बादशाह बाबर का मौसेरा भाई था। बाबर की माता कुतलग निगार खानम खूब निगार खानम की छोटी बहन थी।

मिर्जा हैदर ने दो बार काश्मीर पर आक्रमण कर उसे जीता था। पहला आक्रमण सन् १५३३ ई० मे हुआ था। द्वितीय बार हुमायूँ बादशाह की प्रेरणा से २२ नवम्बर सन् १५४० ई० मे उसने लोहर से काश्मीर पर चढ़ाई की। वह पूंछ के मार्ग से बिना अवरोध काश्मीर पहुँचा और अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अगस्त, १३ सन् १५४१ ई० तक उसने काश्मीर पर पूरा अधिकार कर लिया था। उसकी मृत्यु सन् १५५१ ई० मे काश्मीर मे ही हुई और वह वहीं दफनाया गया। इस पुस्तक के दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड सन् १५४६ ई० मे लिखा गया था। इसे काश्मीर मे लिखा था। उसने अपने प्रथम आक्रमण का विस्तृत वर्णन किया है। उसमे जता तथा मुगलिस्तान तथा काशगर के अमीरों का वर्णन है। दूसरा भाग ९४८ हिजरी सन् = १५४१–१५४७ ई० मे लिखा था। उसमे उसके जीवनकाल सन् १५४१ ई० तक की घटनाओ का उल्लेख है।

इलियट तथा रोस ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है। सन् १८९८ ई० मे लण्डन से प्रकाशित हुई है। इसकी एक फारसी पाण्डुलिपि इण्डिया आफिस लाइब्रेरी मे संख्या २८४८ है।

तारीखे काश्मीर : (सन् १५७९ ई०) लेखक सैय्यद अली। यह इतिहास युसुफ शाह (सन् १५७८–१५८६ ई०) के समय की रचना है। युसुफ शाह के काल तक का वर्णन इसमे दिया गया है। लेखक बैहाकी सैय्यद था। वह अपना सम्बन्ध शाहमीर के वंश मे अपनी माता के कारण, जो सुल्तान नाजुक शाह (सन् १५२१—१५५२ ई०) की बहन थी जोड़ता है। उसका पिता सैय्यद मुहम्मद था। उसने मिर्जा हैदर की सेना मे सेवा की थी। इसकी पुस्तक की पाण्डुलिपि श्रीनगर रिसर्च विभाग मे है। एक दूसरी पाण्डुलिपि मुहम्मद अमीन इब्ने मशहूर मुन्शी के पास श्रीनगर मे थी।

यह इतिहास सहसा सुलतान शहाबुद्दीन (सन् १३५४–१३७३ ई०) के समय ताजुद्दीन के श्रीनगर मे प्रवेशकाल से आरम्भ होता है। यह कहा है। लेखक को सैय्यद अली हमदानी ने काश्मीर भेजा था। इतिहास मे सैय्यद अली के कार्यों का अत्यधिक वर्णन है। वह सुलतान शहाबुद्दीन की सेवा मे था। सैय्यद अली हमदानी के काश्मीर प्रवेश आदि का सांगोपांग वर्णन करता है। काश्मीर मे किस प्रकार इसलाम फैला तथा सैय्यद अली हमदानी और उसके पुत्र मीर मुहम्मद हमदानी ने इस सम्बन्ध मे क्या किया, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। उनका सुलतान कुतुबुद्दीन (सन् १३७३–१३८९ ई०) तथा सिकन्दर बुतशिकन (सन् १३८९–१४१३ ई०) से क्या सम्बन्ध था, इस पर विशेष तथा गैरमुसलमानो के साथ सिकन्दर की क्या नीति थी, प्रकाश डाला गया है। सुलतान जैनुल आबदीन (सन् १४२०–१४७० ई०) तथा हसन शाह का (सन् १४७२–१४८४ ई०) वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।

मिर्जा हैदर के सम्बन्ध मे उसका वर्णन प्रामाणिक माना जायगा। वह उसका समकालीन था। चक वंश के इतिहास का वर्णन संक्षिप्त है। तृतीयांश पुस्तक काश्मीर के सूफियो एवं ऋषियो के वर्णन से भरी है। राजनीतिक इतिहास की अपेक्षा उसे धार्मिक इतिहास कहना उचित होगा। काश्मीर मे इसलाम की स्थापना का इतिहास कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। यह प्रथम फारसी रचना है, जो काजी इब्राहीम की तारीखे काश्मीर पर आधारित है। इसकी पाण्डुलिपि श्रीनगर रिसर्च विभाग मे संख्या ७३९ है।

तारीखे-काश्मीर : (सन् १५८० ई० सम्भाव्य) लेखक मुल्ला हुसैन कारी है। विश्वास किया जाता है कि यह मुहम्मदशाह के पाँचवें शासनकाल मे लिखी गयी थी। वाकयाते काश्मीर मे इस तारीख का उल्लेख मिलता है। उसमे इतना ही लिखा है कि यह हैदर मलिक के पूर्व की रचना है।

तज़किरातुल आफ़रीन : (सन् १५८७ ई०) लेखक मुल्ला अली रैना है । यह शेख हमज़ा
जीवनचरित है । तत्कालीन काश्मीर के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर लेखक प्रकाश डालता है । प
लिपि रिसर्च विभाग श्रीनगर में है ।

तारीखे काश्मीर : (म्युनिख पाण्डुलिपि) सन् १५९० ई० । लेखक अज्ञात है । इसका उल्लेख फ
कैटलाग (औमेर) में है । जोनराज के पश्चात् यह प्रथम फारसी ग्रन्थ है, जिसमें प्राचीन
से शमसुद्दीन द्वितीय सुलतान काश्मीर (सन् १५३७–१५४० ई०) तक का इतिहास है । उसका स्रोत ज
राज, श्रीवर तथा शुक की राजतरंगिणियाँ एवं पूर्वकालीन फारसी इतिहास है ।

जोनराज की भाँति इसमें भी सैय्यद अली हमदानी के काश्मीर आगमन का उल्लेख नहीं मिल
हैदर मलिक चादुरा तथा बहारिस्तान शाही जिन विषयों पर प्रकाश नहीं डालती, उन पर इससे प्र
पड़ता है । यह पाण्डुलिपि म्युनिख में है और कहीं दूसरी पाण्डुलिपि नहीं प्राप्य है । इसकी मा
फिल्म के आधार पर मैंने इसका उद्धरण अपने ग्रन्थ में दिया है । जोनराज के १३१ वर्ष पश्चात् की
रचना है । एक मत है कि यह सन् १५३७–१५४० ई० में लिखी गयी है । इसकी माइक्रो फिल्म मुझे काश
रिसर्च विभाग से प्राप्त हुई थी ।

राजतरंगिणी : (सन् १५९०–१५९१) कल्हण की राजतरङ्गिणी का अनुवाद है । सम्भावना
कि यह प्रति मुल्ला शाह मुहम्मद (सन् १५९०) का फारसी अनुवाद है । जिसे बदायूनी ने (सन् १५
ई०) में ठीक कर लिखा था । इण्डिया आफिस लाईब्रेरी ५०८ तथा ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या
२४०४२ है । अकबर जब सन् १५८८ ई० में काश्मीर आया तो उसने राजतरंगिणी का फारसी अनुवाद क
के लिये आज्ञा दी । मूल शाह मुहम्मद की प्रति अप्राप्य है । शाहमुहम्मद ने अनुवाद दुभाषिये की सहा
किया था ।

हफ्त इकलीम : (सन् १५९४ ई०) लेखक अमीन बिन अहमद राजी है । उसका निवासस्थ
राय था । इसमें मिर्जा हैदर दुगलात की काश्मीर विजय का संक्षिप्त वर्णन है । उसमें काश्मीर के सन
ऋषियों, सूफियों तथा शासकों का भी संक्षिप्त वर्णन है । (एशियाटिक सोसायटी बंगाल परिग्रहण संख्या २८
ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या २०३) ।

बहारिस्तान शाही : (हिजरी : ९९४–१०२३ = सन् १५८६—१६१४ ई०) लेखक अज्ञ
है । इसमें रिचन के अभिषेक काल सन् १३२० ई० से १६१४ ई० तक का इतिहास है । पुस
सन् १६२५ ई० में लिखकर पूर्ण हुई थी । हिन्दू राजाओं का चरित दो-चार पंक्तियों में लिखकर समा
कर दिया गया है । लेखन शैली एवं वर्णन से प्रकट होता है कि लेखक बैहाकी सैय्यदों की सेवा में था । उन
वर्णन विस्तार से किया गया है ।

पुस्तक का आधार जोनराज, श्रीवर, शुक, मुल्ला अहमद, मुल्ला नादीरी, काजी इब्राहीम तथा हसनक
की रचनायें है । उत्तरकालीन शाहमीर वंश तथा चक सुलतानों के समय की घटनाओं का लेखक प्रत्यक्षद
है । उसका तत्कालीन इतिहास वर्णन प्रामाणिक माना जा सकता है । पुस्तक में हिजरी सन् के साथ लौकि
संवत् दिया गया है, जिसके कारण कालगणना में सुविधा होती है । शाहमीर (सन् १३३९ ई०) से हस
शाह (सन् १४७२ ई०) तक का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है । मुहम्मद शाह (सन् १४८४ ई०) के पश्चा
का वर्णन विस्तार के साथ लिखा गया है । मुगल विजय का वर्णन सविस्तार दिया गया है । यह ए
पुस्तक है, जिसमें युसुफ शाह (सन् १५७८—१५८६ ई०) तथा याकूब शाह (सन् १५८६—१५९० ई०

तीसरे भाग मे शेखो, विद्वानो, हकीमो तथा कवियो की संक्षिप्त जीवनियाँ हैं। बदायूनी ने लगभग १९ ग्रन्थों की रचना की थी। उसने महाभारत, सिंहासन बत्तीसी, कथा सरित्सागरादि का अनुवाद फारसी मे किया था। इससे प्रकट होता है कि वह संस्कृत-ज्ञाता भी था। हिजरी ९९९=सन् १५९० ई० मे मुल्ला शाह मुहम्मद शाहाबादी द्वारा अनूदित राजतरंगिणी अनुवाद के आधार पर संक्षिप्त फारसी अनुवाद प्रस्तुत किया था। यह अनुवाद अप्राप्य है।

सुलतान जैनुल आबदीन के आदेश पर कथासरित्सागर की कुछ कथाओं का फारसी मे अनुवाद किया था। इसकी रचना हिजरी १००३=सन् १५९५ ई० मे हुई थी। अकबर ने सन् १५८८ ई० मे काश्मीर की प्रथम यात्रा की थी। उस समय काश्मीरियो ने राजतरंगणी की एक प्रति उसे भेंट की थी। सम्राट ने शाहमुहम्मद शाहाबादी को उसका अनुवाद करने का आदेश दिया। उसने दुभाषिये द्वारा समझकर अनुवाद किया था। सम्राट को उसका अनुवाद आलंकारिक लगा। तत्पश्चात् सम्राट ने बदायूनी को सरल फारसी अनुवाद प्रस्तुत करने का आदेश दिया। उसने दो भाग में नवीन संस्करण प्रस्तुत कर दिया। यह ग्रंथ सन् १५९० ई० मे शाही पुस्तकालय मे रख दिया गया। शाह मुहम्मद का अनुवाद अप्राप्य है। बदायूनी का अंग्रेजी अनुवाद डब्लू० एच० लो ने किया है। इसकी एक पाण्डुलिपि ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या ६५८१ है।

इन्तखाबे-तारीखे-काश्मीर : (सन् १६०५-१६०७ ई०) बादशाह जहाँगीर के आदेश पर लिखी गयी थी। पुस्तक के संग्रहकर्ता का नाम अज्ञात है। यह कल्हण से शुक तक की राजतरंगिणियो का फारसी में संग्रह है। इसमे मुसलमानो के विरुद्ध लिखी बातें प्रायः संग्रह से निकाल दी गयी है। बरनीयर इसका उल्लेख करता है।

गुलशने-इब्राहिमी : तारीखे-फिरिश्ता : (सन् १६०६-१६०७) लेखक मुहम्मद कासिम हिन्दू शाह अस्तराबादी है। इसके पिता का नाम मौलाना गुलाम अली हिन्दू शाह है। वह अहमदनगर मे आबाद हो गया था। तत्पश्चात् सुलतान के पुत्र मीरान हुसेन का शिक्षक नियुक्त किया गया। फिरिश्ता मुर्तजा निजाम शाह अहमदनगर के यहाँ बड़ा हुआ था। बाद मे वह अहमदनगर त्याग कर बीजापुर आया। तत्पश्चात् इब्राहीम आदिलशाह ने उसे बुला लिया और उसे इतिहास लिखने का आदेश दिया। पुस्तक मे काश्मीर के विषय मे विस्तार से लिखा गया है। तबकाते अकबरी तथा तारीखे-रशीदी से इसमे अधिक सामग्री नही है। अंग्रेजी अनुवाद जोन ब्रिग्स ने किया है। कलकत्ता संस्करण सन् १९०८—१९१० ई० है। इसके पूर्व रोजर्स का संस्करण सन् १८८५ ई० मे प्रकाशित हो चुका था। पाण्डुलिपि ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या ६५६७-६५७१ है।

तवारीखे काश्मीर : (सन् १६१६ ई०) लेखक हसन बिनअली काश्मीरी है। प्रायः इतिहास लेखको ने इस हसन को पीर हसन से मिला कर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। हसन बिन अली तथा पीर हसन दो भिन्न व्यक्ति हैं। इस पुस्तक मे हसन बिन अली के लिये हसन तथा पीरहसन के लिये पीर हसन नाम दिया गया है। दोनो के इतिहास फारसी मे है। इस ग्रन्थ मे काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास सुदूर प्राचीन काल से हिजरी १०२४=सन् १६१५-१६१६ ई० तक दिया गया है। इसकी रचना जलालुद्दीन मलिक मुहम्मद नाजी की प्रेरणा पर हुई थी। कुछ लेखको का अनुमान है कि यह हैदर मलिक चादुरा इतिहासकार का पितामह अर्थात् दादा था। इसमे उसका नाम कमालुद्दीन लिखा गया है। लिपिको की गलती से जमालुद्दीन शब्द ही कमालुद्दीन हो गया है।

हसन ने उत्तरकालीन शाहमीर वंश तथा चक सुलतानो का इतिहास नाममात्र लिखा है। याकूबशाह

द्वारा अकबर की आधीनता स्वीकार करने का उल्लेख किया गया है। उसने सन् १५८६ ई० तक के सुलतानो का वर्णन सविस्तार दिया है।

मूल पाण्डुलिपि बोदलीन मे परिग्रहण संख्या ३१५ है। ए० एस० स्टोरी ने इसे हैदर मलिक के दादा होने की सम्भावना व्यक्त की है।

तारीखे काश्मीर : (सन् १६२०–१६२१ ई०) लेखक हैदर मलिक चादुरा है। पिता का नाम हसन मलिक चादुरा बिन मालुद्दीन मुहम्मद नाजी बिनमलिक नसरत है। काश्मीर मे चादुरा उसका निवासस्थान था। फारसी इतिहासकारो ने लिखा है कि रिचन विदेशी से काश्मीर की स्वतन्त्रता की रक्षा करने वाले रामचन्द्र के वंशज चादुरा मे निवास करते थे। वे कालान्तर मे मुसलमान हो गये थे। फारसी इतिहासकारो का यह मत भ्रामक है। उस पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है।

हैदर मलिक ने युसुफ शाह चक पुत्र हुसेन शाह चक (सन् १५५३–१५७० ई०) की सेवा मे २४ वर्ष व्यतीत किये थे। इसने युसुफ खा के पक्ष से युद्ध मे भाग लिया था। युसुफ शाह के साथ ही काश्मीर पर मुगल विजय के पश्चात् भारत चला आया था। जब जहाँगीर बादशाह हुआ, तो उसने युसुफ शाह को बंगाल मे जागीर देकर भेज दिया। फौजदार की हैसियत से उसने राजा बसचन्द्र के विरुद्ध सैनिक अभियान किया था। उसे शेर अफगन को दबाने के लिये कुतुबुद्दीन के साथ बगाल भेजा गया था। शेर अफगन की मृत्यु का हैदर मलिक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है। उसकी मृत्यु के पश्चात् नूरजहाँ को (सन् १६०७ ई०) उसने आश्रय दिया था। युसुफ खा की मृत्यु के पश्चात् हैदर मलिक ने जहाँगीर की सेवा स्वीकार कर ली। जहाँगीर ने उसे रइसुल-मुल्क की पदवी से विभूषित किया था। उसे काश्मीर का सूबेदार भी नियुक्त किया था।

हैदर मलिक ने तारीखे-काश्मीर सन् १६१८ ई० मे लिखनी आरम्भ की। इसका नाम 'रइसुल मुल्क' वाक्याते काश्मीर के अनुसार था। इसे उसने सन् १६२०–१६२१ ई० मे लिखकर समाप्त किया। उसने बहारिस्तान शाही तथा हसन की तारीखो से सहायता ली थी। चक शीया सुलतानो के समय का वह प्रत्यक्षदर्शी लेखक था। इस काल का उसका इतिहास प्रामाणिक तथा सत्य मानना चाहिये।

हैदर मलिक का भौगोलिक वर्णन त्रुटिपूर्ण है। उसकी कालगणना तथा तिथिक्रम भी त्रुटिपूर्ण है। उसने अपने दादा मुहम्मद नाजी के साहस एवं गुणो का वर्णन किया है। मुगल आक्रमण का वर्णन भी सविस्तार किया है।

इस तारीख की एक पाण्डुलिपि इण्डिया आफिस मे है। तारीख मे शाहमीर वंश तथा चक सुलतानो का विस्तृत वर्णन किया गया है। रिसर्च विभाग काश्मीर की प्रति उसका संक्षिप्त रूप है। वह बिबलियोथेक नेशनेल पेरिस की प्रति के संक्षिप्तीकरण की पुनरावृत्ति है। उसकी कालगणना तथा घटना क्रम मूल पुस्तक से नहीं मिलती। हैदर मलिक की शैली सरल है। उसने युसुफ शाह तथा याकूब शाह के बन्दी जीवन पर प्रकाश नहीं डाला है।

कुछ विद्वानो का मत है कि पुस्तक दो खण्डो मे थी। प्रथम खण्ड मे काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास तथा द्वितीय मे खुरासान तथा तूरान के वंशों का इतिहास था। इस पुस्तक मे अन्तिम घटना सन् १६१९ ई० को दी गयी है। श्रीनगर की पाण्डुलिपि संग्रह संख्या ३९ तथा माइक्रो फिल्म भी वही है। इसकी प्रतिलिपि इण्डिया आफिस लाइब्रेरी मे परिग्रहण संख्या ५१०–२८४६ तथा कैटलाग मे कालम २०२ तथा १५४३ पर दर्ज है। श्रीनगर रिसर्च विभाग से माइक्रो फिल्म प्राप्त कर मैंने लिखा है। ब्रिटिश म्यूजियम प्रतिग्रहण संख्या ८९०६ है।

मजलिस-उस्-सलातीन : (सन् १६२८–१६२९ ई०) लेखक मुहम्मद शरीफ अनजानी है। यह भारत का संक्षिप्त इतिहास है। इसका एक भाग रिचन के मुसलिम धर्म में दीक्षित होने का विस्तृत वर्णन करता है। काश्मीर के सम्बन्ध में इसका निष्कर्ष अंग्रेजी में लिखा गया है। इसकी पाण्डुलिपि ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या ३०, ७७९ है।

नूरनामा . (सन् १६३०–१६३१ ई०) लेखक बाबा नसीबुद्दीन गाजी है। इस पुस्तक में नूरुद्दीन ऋषि का जीवनचरित लिखा गया है। पाण्डुलिपि रिसर्च विभाग श्रीनगर में है।

इक्बाल नामये जहांगीरी : (सन् १६३९ ई०) लेखक मुहम्मद शरीफ बिन दोस्त मुहम्मद है। वह ईरान के एक साधारण वंश से सम्बन्धित था। उसने जहांगीर की बहुत सहायता की थी। जहांगीर ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष में उसे अहदियो का बख्शी नियुक्त किया तथा 'मोतमद खां' की उपाधि से विभूषित किया। जहांगीर ने अस्वस्थ हो जाने के कारण दक्षिण से लौटते समय हिजरी १०३१ = सन् १६३२ ई० में आदेश दिया कि वह उसकी तुजुक को जारी रखे। शाहजहां के राज्यकाल के दूसरे वर्ष में वह दूसरे श्रेणी का बख्शी तथा १०वें वर्ष में मीर बख्शी नियुक्त किया गया। उसकी मृत्यु हिजरी १०४९ = सन् १६३९ ई० हुई। उसने हिजरी १०२९ = सन् १६२० ई० जहांगीर के १५ वें शम्सी वर्ष में अपनी पुस्तक की पाण्डुलिपि को काश्मीर की हरी-भरी सुहावनी भूमि में पुस्तक का रूप दिया। वह तीन भागो में है। प्रथम भाग में अकबर के पूर्वजो का वर्णन है, द्वितीय भाग में अकबर के सिंहासनारोहण से मृत्यु तक का वृत्तान्त तथा तीसरे भाग में जहांगीर का हाल लिखा गया है। ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या २६२१८ है।

जहांगीरनामा तथा तुजुके जहांगीरी बादशाह जहांगीर की आत्मकथा है। पाण्डुलिपि ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहणसंख्या २६२१५ है।

पंचमसनवी : (सन् १६४७–१६६२ ई० सम्भाव्य) फारसी की पांच मसनवियो का संग्रह है। उनमे काश्मीर के सौन्दर्य एवं उसके गुणो का हृदयस्पर्शी वर्णन है। इसके लेखक फारसी के पांच प्रसिद्ध कवि हैं। सलीम (मृत्यु : १६४७), कलीम (मृत्यु सन् १६५२ ई०), खशाली हदवी (मृत्यु : १७ वी सदी), मीर इलाही (मृत्यु : १३५३) और हसन (मृत्यु १६६३ ई०) है। इस पुस्तक की नक्ल पीर गुलाम हसन के हाथो की लिखी रिसर्च विभाग श्रीनगर पुस्तकालय मे है।

असरारुल अबरार : (सन् १६५५ ई०) लेखक बाबा दाऊद मिश्की है। काश्मीर मे इसलाम किस प्रकार फैला उसका विस्तृत वर्णन है। फारसी भाषा की रचना है। इसकी पाण्डुलिपि काश्मीर रिसर्च विभाग मे है। काश्मीर के सूफियो का इसमे वर्णन है। इसमे काश्मीरी तसव्वुफ की बौद्ध, शैव और इसलामी खयालात के इम्तजाज की झलक मिलती है। इसकी पाण्डुलिपि श्रीनगर रिसर्च विभाग मे है।

खबारकुल सालिकीन लेखक अहमद बिन अलसबूर कश्मीरी है। हिजरी ११०९ की रचना है। तारीख फारसी भाषा मे है। इसकी एक प्रतिलिपि रिसर्च विभाग श्रीनगर मे है।

मुन्तखबुत तवारीख : (सन् १७१०–१७११ ई०) लेखक नारायण कौल आजिज है। यह प्रथम हिन्दू लेखक है जिसने फारसी में काश्मीर का इतिहास लिखा है। काश्मीर मे गत ३७० वर्षों के मुसलिमकाल मे संस्कृत भाषा का स्थान फारसी ने ले लिया था। संस्कृत मे इतिहास लिखने की परम्परा का सर्वथा लोप हो गया था। हिन्दू ब्राह्मण भी फारसी पढने और लिखने लगे थे। माइक्रो फिल्म रिसर्च विभाग श्रीनगर मे है।

इस इतिहास में सुदूर प्राचीनकाल से सन् १७१० ई० तक की घटनाओं एवं इतिहास का समावेश किया गया है। हैदर मलिक चादुरा के इतिहास से अधिक सामग्री इसमें नहीं मिलती।

इसकी रचना आरिफ खां नाजिम नायब तथा दीवान सूबा काश्मीर (सन् १७१०–१७११ ई०) शाहआलम के चतुर्थ वर्ष शासनकाल की प्रेरणा पर हुई है। नारायण कौल ने मलिक हैदर की तारीख और आरिफ खां की जमा की हुई सामग्री को संस्कृत से मिलाकर, अपनी तारीख की रचना की थी। इसकी पाण्डुलिपि संख्या ८७६१ प्रताप सिंह पब्लिक लाइब्रेरी श्रीनगर का माइक्रो फिल्म काश्मीर रिसर्च विभाग में है। मैंने उसे वहाँ से प्राप्त किया है। मूल ब्रिटिश म्यूजियम में है। इसकी एक पाण्डु प्रतिलिपि बुहर लाइब्रेरी में संख्या ८० है। इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में परिग्रहण संख्या ५११ तथा फारसी कैटलाग में कालम २०३ पर दर्ज है। इसकी दूसरी प्रति भी संख्या ५१२ कालम २०४ पर तथा एक और प्रति संख्या २८४ कालम १५४४ पर दर्ज है। श्री० ए० सी० स्टोरे का मत है कि पण्डित बीरबल कचरू (सन् १८५१ ई०) के तारीख का अनुवर्तन है। एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में परिग्रहण संख्या १९६३१ है।

नवादिरुल अखबार : (सन् १७२३ ई०) लेखक अबू रफीउद्दीन अहमद काश्मि बिन अब्दुस्सबूर बिन ख्वाजा मुहम्मद बलखी काश्मीरी है। यह काश्मीर का इतिहास है। शाहजहानाबाद में लिखकर, सन् १७२३ ई० में समाप्त किया गया था। लेखक के पूर्वज बल्ख से आये थे। किन्तु वह स्वयं काश्मीरी था। हिन्दूकाल का अत्यन्त संक्षिप्त एवं मुस्लिम काल का विस्तृत वर्णन किया है। बहारिस्तान शाही तुल्य रचना है। इसकी कालगणना अपूर्ण है। काश्मीर में गृहयुद्धों का कारण काश्मीर में व्याप्त साम्प्रदायिकता मानता है। यह मिर्जा हैदर के काल की परिस्थिति पर प्रकाश डालता है। जिस पर हैदर मलिक की पुस्तक में विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। यह हिन्दुओं के प्रति सुल्तानों के दृष्टिकोण का वर्णन करता है। इसने युसुफ खां चक का नाम युसुफ शाह से मिला कर, उलझन पैदा कर दी है। यह सुन्नी परम्परा का लेखक है। रचना में काश्मीर की सुन्नी परम्परा का दर्शन मिलता है। शाहरुख तथा जैनुल आबदीन के सम्बन्ध तथा गाजी शाह की धार्मिक नीति पर इस पुस्तक से यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। पाण्डुलिपि ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण संख्या २४०२९ है।

वाकियाते काश्मीर (सन् १७३५–१७३६ ई०) लेखक : ख्वाजा मुहम्मद आजम पुत्र खैर–उज्–जमा खां है। काश्मीर का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास है। उसकी मृत्यु सन् १७६५ ई० में हुई थी। पुस्तक में सन् १७४७ ई० तक की घटनायें लिखकर समाप्त की गयी हैं। सुल्तानों के साथ तत्कालीन सन्तों, सूफियों, विद्वानों का भी इसमें उल्लेख है। लेखक ने सुरुचिपूर्ण शैली एवं चतुराई से काश्मीर के औलिया तथा कवियों का वर्णन किया है। इसी कारण मुसलिम जगत् में पुस्तक सर्वप्रिय है। इस पुस्तक का उल्लेख भारत के उल्माओं के चरित में भी मिलता है। 'तजकिरे उलामाये हिन्द' और 'तारीखे [illegible] आलम' में इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। पुस्तक की प्रतिलिपियाँ बड़े पुस्तक संग्रहालयों में मिलती हैं। इसका एक संस्करण सन् १८८६ ई० में लाहौर में हुआ था। सन् १८४६ ई० देहली कालेज के मुन्शी अशरफ अली ने इसका अनुवाद उर्दू में प्रकाशित किया था। पाण्डुलिपि एशियाटिक सोसाइटी बंगाल परिग्रहण संख्या ४१ है। मुझे माइक्रो फिल्म श्रीनगर रिसर्च विभाग से मिली थी। इसकी एक पाण्डु प्रतिलिपि बुहर लाइब्रेरी में संख्या ८१ है। एक और प्रति इण्डिया आफिस लाइब्रेरी पाण्डु परिग्रहण संख्या ५१३ तथा कैटलाग में कालम २०४ पर दर्ज है। एक प्रतिलिपि ब्रिटिश म्यूजियम में परिग्रहण संख्या २६२८२ है।

फुतुहाते कुबरवया (सन् १७४९ ई०) लेखक अब्दुल वहाब नूरी है। इसलाम की रिचन के समय से अकबर-काल तक की प्रगति का इसमें वर्णन है। फारसी रचना है। असरारुल अबरार शैली पर लिखी गयी है। पाण्डुलिपि रिसर्च विभाग काश्मीर में है।

तारीखे शाहनामा ' (सन् १७६५ ई०) लेखक शाह मुहम्मद तौफीक शायक वगैरह है। दीवान सुखजीवन सूबेदार काश्मीर (मृत्यु १७६५ ई०) ने शाहनामा फिरदौसी की शैली पर काश्मीर का इतिहास लिखवाने का प्रयास किया था। उसने सात फारसी शमी, नवीद, रहज, मनीन, हसन, तौफीक तथा शायक लेखकों को यह कार्यभार दिया था। किन्तु कुछ मास पश्चात् उनका देहान्त हो गया। इसकी पाण्डुलिपि की एक प्रति रिसर्च विभाग श्रीनगर म है। पाण्डुलिपि पजाब यूनिवर्सिटी लाहौर संख्या कैटलाग १७४ पृष्ठ ११८ है।

तहकीकाते-अमीरी (सन् १७६५ ई०) लेखक अमीरुद्दीन पखली वाले हैं। लेखक की मृत्यु सन् १७६५ ई० मे हुई थी। अतएव यह रचना उसके पूर्व की है। ग्रन्थ अप्राप्य है।

गौहरे आलम (सन् १७८६ ई०) लेखक बदीउद्दीन अबुल कासिम है। इस पाण्डुलिपि मे कोई समय नही दिया गया है। इसम काश्मीर का प्रारम्भ से सन् १७७७ ई० तक का वर्णन है। इसमे कोई नवीन तथ्य नही प्राप्त होता। लेखकों का मत है कि उसने नूरनामा तथा हसनकारी और मुहम्मद आजम की घटनावलियो के वर्णन से सहायता ली है। उसमे कुछ बातें निराधार लिखी गयी हैं। पाण्डुलिपि एशियाटिक सोसाइटी बगाल परिग्रहण सख्या १८९ है।

तारीख (सन् १७८७ ई०) लेखक हिदायतुल्ला मतो है। यह वास्तव म मलिक हैदर चादुरा की तारीखे काश्मीर का "ततम्मा" (उपसहार) है। उसने सन् १७८७ ई० मे जुमा खा अफगान सूबेदार काश्मीर (सन् १७८७–१७९३ ई०) के शासन काल तक के इतिहास का वर्णन किया है। लेखक का देहावसान हिजरी १२०६ में हुआ था। जिनके पास यह पुस्तक है, वे इसे दिखाते नही। अतएव इसकी गणना अप्राप्य पुस्तको मे की जानी चाहिए। हसन के इतिहास की भूमिका मे लेखक की मृत्यु सन् १७६१ ई० दी गयी है। यह सन् १७९० ई० होना चाहिए।

बागे सुलेमान (सन् १७८७ ई०) लेखक मीर सादुल्ला शाहाबादी काश्मीरी है। यह पुस्तक अफगान सूबेदार जमा खा (सन् १७८७–१७९३ ई०) के समय मे लिखी गयी थी। पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि रिसर्च विभाग श्रीनगर मे है। श्री सी० ए० स्टोरे ने रचनाकाल हिजरी १२७८ = सन् १८६१–६२ ई० दिया है।

वकाय निजामिया या निजामुल वका (सन् १८२५ ई०) लेखक हजरत मुल्ला निजामुद्दीन इब्न शैखुल इसलाम मुल्ला कबामुद्दीन है। इसे वाकयाते काश्मीर का 'ततम्मा' समझना चाहिए। इसमे दीवान कृपाराम सिख सूबेदार (सन् १८२७–१८३१ ई०) के पूर्व का इतिहास लिखा है। लेखक की मृत्यु हिजरी १२४० = सन् १८२४ ई० मे हुई थी। इसकी एक पाण्डुलिपि मुफ्ती कबामुद्दीन श्रीनगर के सग्रह मे है।

लबउत तवारीख (सन् १८२८ ई०) लेखक बहाउद्दीन है। फारसी मे काश्मीर का सक्षिप्त इतिहास है। प्राचीन काल से सन् १८२८ ई० तक का इतिहास इसमे लिखा गया है। यह तीन भागो मे है। प्रथम भाग म भूगोल है। द्वितीय भाग मे राजनीतिक इतिहास है। तृतीय भाग मे सन्तो और सूफियो का वर्णन है। प्रथम तथा द्वितीय खण्ड की पाण्डुलिपि काश्मीर रिसर्च विभाग म सगृहीत है। तृतीय भाग अप्राप्य है।

मजमूए तवारीख (सन् १८३५ ई०) लेखक बीरबल काचरू काश्मीरी है। यह फारसी मे लिखी गयी है। इसमे सन् १८३५ ई० तक की घटनाओ का उल्लेख मिलता है। सिखो के काल के अध्ययन के लिये इसका विशेष महत्व है। पाण्डुलिपि श्री प्रताप पब्लिक लाइब्रेरी श्रीनगर सख्या ८७६२ है।

तारीखे राजगाने जम्मू—राजदर्शनी (सन् १८४७ ई०) लेखक गणेश दास बधरा है पाण्डुलिपि इण्डिया आफिस लाइब्रेरी संख्या ५०७ है। पुस्तक के इतिपाठ के कारण लेखक का पता चलता है। इसमे हिजरी तथा सवत् दोनो वर्ष दिये गये हैं। इसकी प्रतिलिपि मुहम्मद अली नामक व्यक्ति ने की है। पुस्तक लाहौरसे सन् १८७०-१८७१ ई० मे प्रकाशित हुई है।

हशमते काश्मीर : (सन् १८५० ई०) लेखक अब्दुल कादिर खा है। यह पुस्तक मेरे पवित्र नगर काशी (वाराणसी) मे लिखी गयी है। काश्मीर का इतिहास है। पुस्तक का आधार ग्रन्थ गौहरे आलम प्रतीत होता है। इसमे तिब्बत, बदखशां आदि समीपवर्ती प्रदेशो का वर्णन है। पाण्डुलिपि एशियाटिक सोसाइटी बंगाल परिग्रहण संख्या ४२ है।

गुलज़ारे काश्मीर : (सन् १८६४ ई०) लेखक दीवान कृपाराम है। इसकी रचना डोगरा राजा रणवीर सिंह के वजीर कृपाराम ने की थी। दीवान कृपाराम अमीनाबाद, जिला गुजरान वाला पजाब के प्रसिद्ध वंशजो मे से हैं। यह वंश महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल से ही दीवान बना रहा। लेखक अपने पिता ज्वालासहाय दीवान की मृत्यु के पश्चात् सन् १८६५ ई० मे दीवान बना और उसकी मृत्यु ४८ वर्ष की आयु मे सन् १८७६ मे हुई। मृत्युकाल तक वह दीवान बना रहा। पुस्तक मे सुदूर प्राचीन-काल से सन् १८५७ ई० तक की घटनाओ का उल्लेख है। यह सन् १८७१ ई० मे प्रकाशित हुई थी। इसकी शैली आइने-अकबरी तुल्य है। यह राबर्टस, जुडिशियल कमिश्नर पजाब की प्रेरणा पर लिखी गयी थी।

तहकीकाते अमीरी : (सन् १८६५ ई०) लेखक अमीरुद्दीन पखली वाले है। इनकी मृत्यु सन् १८६५ ई० मे हुई थी। यह वाकियाते काश्मीर, वाकियाते निजामिया तथा ख़ुलासतुत्तवारीख बहाउद्दीन खुशनवीस पर आधारित है।

अहवाले मुल्के किश्तवार : (सन् १८८२-१८८३ ई०) लेखक पण्डित शिवजी दर हैं। इसकी प्रति रिसर्च विभाग श्रीनगर मे है।

गुलदस्तये काश्मीर : (सन् १८८३ ई०) लेखक पण्डित हरगोपाल 'खस्ता' है। यह उर्दू मे लिखी गयी है। लाहौर से सन् १८८३ ई० मे आर्य प्रेस से प्रकाशित हुई है।

वजीज-उत्-तवारीख : (सन् १८८४ ई०) लेखक अब्दुल नबी है। काश्मीर का अत्यन्त सक्षिप्त फारसी मे इतिहास है। इसमे उल्लिखित घटनायें राजा रणवीर सिंह के समय की हैं। इसकी पाण्डुलिपि काश्मीर के रिसर्च विभाग मे है।

तारीखे-काश्मीर : (सन् १८८५ ई०) लेखक पीर हसन है। पीर हसन की तारीख भी फारसी मे है। मेरे पास फारसी तथा उर्दू अनुवाद दोनो है। उर्दू अनुवाद सन् १९५७ ई० मे श्रीनगर से प्रकाशित हुआ है। काश्मीर उपत्यका के उत्तर-पश्चिम एक छोटा परन्तु अति सुहावना ग्राम गम्रू है। यह शताब्दियो से उलर लेक को अनवरत देखता चला आया है। उलर का दृश्य गम्रू से बड़ा हृदयग्राही है। बान्दीपुर से डेढ मील दूर होगा। हसन के इतिहास का उर्दू अनुवाद मुझे सन् १९५९ म मिल गया था। तत्पश्चात् काश्मीर की यात्रा मे इस ग्राम मे जाने की इच्छा हुई। वह इच्छा भगवान् की दया से पूर्ण हुई थी।

लेखक पीर हसन उपनाम हसन शाह का जन्म सन् १८३३ ई० मे हुआ था। उसके पिता का नाम हाफिज गुलाम रसूल शैदा या शैवा था। उसकी मृत्यु सन् १८७१ ई० मे हुई। वह फारसी तथा अरबी भाषा का विद्वान् था। इस वंश के पूर्वपुरुष गणेश कौल दत्तात्रेय थे। वे सन् १५७६ ई० मे मखदूम शाह हमजा

द्वारा इसलाम म दीक्षित किये गये थे। उनका मुसलिम नाम गाजीउद्दीन पीर पड़ा। इनके वंश मे शेख मुहम्मद फाजिल थे। उनकी मृत्यु सन् १७३७ ई० म हुई थी। उन्हें मुगलो के समय म जागीर मिली थी। वह मुहल्ला अर्द्धनार श्रीनगर म निवास करते थे। काश्मीर म सिख राज के समय इस कुटुम्ब के दिन बिगड़ गये। सिखों ने जागीर जब्त कर ली। कुटुम्ब श्रीनगर त्याग कर गम्‍मू म जाकर आबाद हो गया।

पीर हसन ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की थी। तत्पश्चात् उसने तिब का अध्ययन किया। कालान्तर म पीर हसन ख्वाजा मुहम्मद ताशवन्दी द्वारा नूर बख्शिया सम्प्रदाय मे दीक्षीत हो गये।

पीर हसन ने पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर और उसके समीपवर्ती क्षेत्रो का पर्यटन किया था। तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्तियो से इन्होने भेट की थी।

पीर हसन को इस भ्रमणकाल म जैनुल आबदीन के राजकवि, अल्लामा अहमद द्वारा रचित तफ़ाय काश्मीर की एक प्रति मिली। अल्लामा किन्हारी ग्राम जिला रावलपिण्डी के निवासी थे। इस समय यह पश्चिमी पाकिस्तान म है। पीर हसन का कथन है कि यह ग्रन्थ 'रत्नाकरपुराण' का अनुवाद था। उसमे कल्हण द्वारा लिखे पैंतीस लुप्त राजाओ का इतिहास था। (जे० ए० एस० बी० ९.५ सन् १९१३ पृष्ठ १९५) रत्नाकरपुराण के विषय म मैं कल्हण की राजतरंगिणी भाष्य खण्ड एक म अपना मत प्रकट कर चुका हूँ। उसकी एतिहासिकता पर मुझे सन्देह है।

पीर हसन ने तारीखे काश्मीर के अतिरिक्त 'गुलिस्ताने इखलाक', 'ख़रीतए असरार', 'इजाज़े गरीबा' लिखा है। ख़रीतए असरार' तथा 'इजाज़े गरीबा' प्रकाशित हो चुके है। जब सर, डब्लू० आर० लारेन्स काश्मीर म सेटल्मेण्ट कमिश्नर नियुक्त हुए, तो पीर हसन के ज्ञान का उपयोग स्थानीय परिस्थितियो को जानने के लिये किया गया। लारेन्स ने 'वेली ऑफ काश्मीर' म पीर हसन शाह का आभार प्रदर्शन किया है। काश्मीर के डोगरा राजा के दीवान अनन्तराम ने पीर हसन शाह को काश्मीर भूगोल संग्रह करने का भार सौंपा। पीर हसन ने यह कार्य समाप्त किया। तारीखे हसन के प्रथम भाग मे मुसलिम स्मारकों, जातो, कबीलो और धार्मिक सम्प्रदायो का वर्णन है। पीर हसन शाह की अभिरुचि काश्मीर इतिहास लिखने की ओर विकसित हुई और महाभारत काल से उन्होने राजा रणवीर सिंह के समय तक का इतिहास लिपिबद्ध किया है। पुस्तक का द्वितीय भाग काश्मीर का राजनैतिक इतिहास है। भाग तृतीय तथा चतुर्थ म संतो, सूफियो तथा कवियो का वर्णन है। यह 'तजकिरा' तथा जनश्रुतियो एवं परम्पराओ पर आधारित है। चौथे भाग मे फारसी के कवियो का वर्णन है जो सुल्तानो और मुगलो के समय म हुए थे। पीर हसन ने तत्कालीन काश्मीर म प्राप्य फारसी तवारीखो और राजतरंगिणियो के अनुवादो को आधार मान कर अपनी रचना की है। सन्दर्भ ग्रन्थो का नाम तथा उनका उद्धरण दिया है। उन पर मैने अपनी राजतरंगिणी खण्ड प्रथम (कल्हण) मे अपना मत प्रकट किया है जो द्रष्टव्य है। द्वितीय भाग फारसी मे सन् १८८५ ई० मे तथा उर्दू अनुवाद सन् १९५७ म प्रकाशित हुआ है। पीर हसन की मृत्यु १३ नवम्बर सन् १८९८ ई० को गमरू मे हुई। वही बीबी खातून के घेरे म दफन किये गये और वहीं मजार भी बना।

तारीखे कबीर (सन् १९०४ ई०) लेखक हाजी मुईउद्दीन मिसकीन है। इसमे काश्मीर के सन्तो, सूफियो तथा सम्प्रदायो का वर्णन है। यह सन् १९०४ ई० म प्रकाशित हो चुकी है।

तारीखे राजगान राजोरी (सन् १९०७ ई०) इसम राजोरी अर्थात् राजपुरी के राजाओ का वर्णन है।

तरंग

हिन्दू काल (सन् १०२८–१३३९ ई०)

१. जयसिंह : (सन् ११२८–११५५ ई०, श्लोक संख्या २७-३८) जयसिंह की तीन ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। जयसिंह का पिता राजा सुस्सल था। द्वितीय लोहरवंशी प्रतिभाशाली जयसिंह राजा हुआ है। कल्हण की दृष्टि मे राजा जयसिंह श्रेष्ठ राजा था। उसके २२ वर्षों के राज्यकाल का वर्णन कल्हण ने १९७८ श्लोको मे किया है। कल्हण राजा जयसिंह के राज्यकाल का प्रत्यक्षदर्शी था। भारतीय साहित्य मे जयसिंह का वर्णन जितने विस्तार के साथ मिलता है, उतना किसी राजा का नही मिलता। कल्हण ने जयसिंहाभ्युदय काव्य की भी रचना की थी। यह ग्रंथ उपलब्ध नही है। जोनराज ने जयसिंह के ६ वर्षों का इतिहास केवल १२ श्लोको मे समाप्त कर दिया है।

जयसिंह ने विदेशी मुसलमानो की वृद्धि रोकने के लिये, पर्वतीय राजाओ का संघ बनाया था। उसने भारतीय राजाओ का आह्वान, विदेशी मुसलमानो का सीमान्त पर होते आक्रमण रोकने के लिये किया था। मंख के श्रीकण्ठचरित (२५ : ११०) से पता चलता है कि जयसिंह की राजसभा मे कन्नोज के गहरवाल नरेश गोविन्द चन्द्र (सन् १११४–११५४ ई०) तथा कोकन राजा अपरादित्य के राजदूत उपस्थित थे। फारसी इतिहासकार भी इस बात का समर्थन करते है कि जयसिंह की मुसलमानो के विरुद्ध सहायता करने के लिये नगरकोट के राजा मल्लचन्द्र ने ५०० अश्वारोही तथा पंजाब के अन्य राजाओ ने सेना भेजी थी (वाकियाते काश्मीर पाण्डु० २४ तथा पीर हसन २ : १५२)। जयसिंह ने गजनीवंशीय सुल्तानो के विरुद्ध सैनिक संघटन किया था। फारसी इतिहासकारो का मत है कि मुसलमानो के विरुद्ध जयसिंह ने युद्ध करते वीरगति प्राप्त की थी। जोनराज जयसिंह की मृत्यु पर कुछ प्रकाश नही डालता।

२. परमाणुक : (सन् ११५५–११६४ ई०, श्लोक ३९-४८)। परमाणुक राजा जयसिंह का पुत्र था। उसका अभिषेक जनता ने किया था। कल्हण ने राजा जयसिंह की जो वंशावली उपस्थित की है, उसमे परमाणुक नाम नही मिलता (रा० : १६०९) तापर मे प्राप्त शिलालेख पर राजा का नाम श्रीमत परमाण्ड लिखा है। उसका समय लौकिक वर्ष ४२३३ = सन् ११५७ ई० है। परमाण्ड को ही इतिहासकार जोनराज वर्णित परमाणुक मानते हैं। शिलालेख के अनुसार वही उस समय काश्मीर का राजा था। आईने अकबरी मे नाम परमाणुक के स्थान पर हरमानेक तथा राज्यकाल सन् ११५४—११६४ ई० दिया गया है। पीर हसन परमाणुक को राजा जयसिंह का पुत्र तथा राज्य-प्राप्ति-काल विक्रमी संवत् १२१६ देता है। वाकयाते काश्मीर (पाण्डु : २४) तथा तारीखे हसन से प्रकट होता है कि पखली, किश्तवार, राजौरी, जम्मू तथा तिब्बत के

राजा जो एक प्रकार से काश्मीर के अधीन थे स्वतंत्र हो गये थे। जोनराज ने परमाणुक के ११ वर्षों का वर्णन केवल ११ श्लोकों में समाप्त किया है। भिवायक, जनक तथा प्रयाग की धूर्तता प्रसंग का वर्णन कर, जोनराज ने राजा को जड एवं मूर्ख प्रमाणित करने का प्रयास किया है। राजा ९ वर्ष, ६ मास, १० दिन पृथ्वी का भोग कर लौकिक संवत् ४२४० = सन् ११६४ ई० में दिवंगत हुआ था।

३. वन्तिदेव : (सन् ११६४–११७१ ई० श्लोक ४९)। राजा वन्तिदेव राजा परमाणुक का पुत्र था। जोनराज ने केवल एक श्लोक में उसकी मृत्यु का वर्णन किया है। सैंतालीसवें वर्ष (सप्तर्षि वर्ष, ४२४७ सन् ११७१ ई०) वान्तिदेव का भाद्र शुक्ल दशमी को देहावसान हुआ। आईने अकबरी में नाम कुजी तथा राज्यकाल सन् ११६४ से ११७१ ई० दिया है। पीर हसन राज्य-प्राप्ति काल विक्रमी, संवत् १२२५ तथा राज्यकाल ७ वर्ष देता है।

एक मुद्रा अवन्तिदेव अभिलेख के साथ प्राप्त हुई है। जनरल कनिंघम ने उसे वन्तिदेव का माना है। वह ताम्रमुद्रा है। मुख्य भाग पर आसीनस्थ लक्ष्मी वाम पार्श्व में 'अ' तथा दक्षिण पार्श्व में 'वन्ति' एवं पृष्ठ-भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'देव' शब्द टंकित है।

४. वोपदेव : (सन् ११७१–११८१ ई०, श्लोक ५०-५५)। वन्तिदेव का उत्तराधिकारी किसी के न मिलने पर पौरगणों द्वारा राजा बनाया गया। जोनराज ने राजा का नाम वोपदेव तथा श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी में नाम बुप्पेदेव (जैन० ४ : ४१३) दिया है। इतिहासकारों ने उसका चरित्र बालकों तुल्य चित्रित किया है। शिला को दूध पिलाकर वर्धित करने की बात राजा की जडता प्रमाणित करती है। उसने पाप रचित भिवायक तुल्य पूजा ग्रहण की। स्थूल शिलाओं को देखकर मूढ़, राजा प्रसन्न हुआ। उसने मन्त्रियों को आदेश दिया। अन्य लघु शिलायें दुग्धपान द्वारा वर्धित की जायें। सुरेश्वरी का माहात्म्य सुनकर, वह मूर्ख मन्त्रियों के साथ नाव द्वारा वहाँ गया। जल में मुखाकृति विकृत करते हुए, क्रोध से स्वप्रतिबिम्ब पर थपेड़ा देते समय उसकी मणिमुद्रिका जल में गिर गयी। 'राजा की मणिमुद्रा कहाँ है—?' इस जिज्ञासा पर उसने उत्तर दिया—'जल में गिर गयी।' उसने तरंगों की ओर संकेत किया। आइने अकबरी ने राज्यकाल ९ वर्ष, ४ मास, १७ दिन दिया है। पीर हसन उसका राज्यारोहण समय विक्रमी संवत् १२३२ देता है। जोनराज ने राज्यकाल ९ वर्ष, चार मास, १५ दिन दिया है।

५. जस्सक : (सन ११८१–११९९ ई०, श्लोक संख्या ५६—६४)। वोपदेव का भ्राता जस्सक था। प्रतीत होता है, जस्सक पुत्रहीन था। *यशस्क शब्द का जस्स काश्मीरी अपभ्रंश है। 'य' का उच्चारण* 'ज' के समान होता है 'यश' का 'जस' उच्चारण ग्रामीणों में किया जाता है। 'यश' का 'जस' होकर उसका लौकिक रूप 'जस्स' हो गया है। काश्मीर म नामों के अन्त में प्राय 'क' लगा देते हैं। इस प्रकार नाम जस्सक बन गया है। बहारिस्तान शाही ने जस्सक को वोपदेव का पुत्र लिखा है। परन्तु जोनराज उसे स्पष्टतया भाई लिखता है।

लवन्यों ने जस्सक को राजा बनाया था। श्रीवर (जैन० ४ : ४१५) के वर्णन से इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। लवन्यों ने सर्वप्रथम वोपदेव के उत्तराधिकारियों को काश्मीर मण्डल से राजपुरी निर्वासित कर दिया। तत्पश्चात् जस्सक को राजसिंहासन पर बैठाया था।।

प्रतापसिंह संग्रहालय में इस काल की तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक कास्य प्रतिमा रक्षित है। उस पर शारदा के साथ नागरी में अभिलेख है। इससे प्रकट होता है कि उस समय नागरी का प्रचार हो गया था।

जोनराज ने राजा के १२ वर्षों के राज्यकाल का इतिहास केवल ९ श्लोकों में किया है। उसके प्रसंग मे सहोदर भ्राता क्षुक्ष एवं भीम की धूर्तता का रोचक वर्णन किया गया है। राजा के चरित्र के विषय मे जोनराज एक शब्द भी नही लिखता। सामाजिक अवस्था की कुछ झलक इस राजा के प्रसंग वर्णन मे मिलती है। राजा अट्ठारह वर्ष, तेरह दिन पृथ्वी का भोग कर, माघान्त दशमी लौकिक सम्वत् ४२७४=सन् ११९९ मे दिवंगत हुआ। आईने अकबरी ने राज्यकाल १८ वर्ष, १३ दिन दिया है। पीर हसन राज्यप्राप्ति-काल विक्रमी संवत् १२४१ देता है।

६. जगद्देव : (सन् ११९९–१२१३ ई०, श्लोक ६५-७५) जस्सक का पुत्र राजा जगदेव सन् ११९९ ई० मे काश्मीर का राजा हुआ। वह विनयी था। जनता का प्रशंसापात्र अपने कार्यों से बन गया था। राजा जगदेव की एक मुद्रा रोजर्स के मत से मिली है। रोजर्स ने सम्मुख भाग की ओर 'जवा' शब्द पढा है। उसके अनुसार वह मुद्रा जगदेव की है। संस्कृत मे टंकण की त्रुटि के कारण 'जग' शब्द 'जवा' भी पढा जा सकता है। मुद्रा के सम्मुख भाग पर लक्ष्मी तथा वाम पार्श्व मे 'ज' तथा दक्षिण पार्श्व मे 'ग' और पृष्ठभाग पर दण्डायमान राजा तथा 'देव' शब्द टंकित है।

जगदेव के १४ वर्षों का वर्णन जोनराज ने केवल ११ श्लोको मे किया है। जोनराज ने इस राजा के विषय मे अपेक्षाकृत जयसिंह के ८५ वर्ष के लम्बे काल केपश्चात् कुछ अधिक प्रकाश डाला है—'इस राजा ने भूतल की दुर्व्यवस्था उसी प्रकार हर लिया, जिसप्रकार शल्यहर शल्य हरता है। मनःशल्य का आचरण करता हुआ असामान्य गुणशाली वह नृप षड्यन्त्रकारियो के बल से मन्त्रियो द्वारा देश से निर्वासित कर दिया गया। उसका मन्त्री गुणराहुल उसी प्रकार सचिव था, जैसे भगवान् राम के सुग्रीव थे। निर्वासन के कुछ समय पश्चात् राजा ने सचिव के साथ पुनः काश्मीर मे प्रवेश किया। शत्रु हतोत्साह हो गये। सामना नही कर सके। राजा ने राज्य जीतकर शासन किया। उसने हर्षेश्वर मन्दिर की स्थापना की।' जोनराज लगभग एक शताब्दी के हिन्दूकाल मे प्रथम मन्दिर स्थापित होने का वर्णन करता है। किसी प्रकार के निर्माण का प्रथम उल्लेख इस राजा के प्रसंग मे किया है। राजा की हत्या विष से द्वारपति दुरात्मा पद्म के द्वारा कर दी गयी। राजा ने १४ वर्ष, ६ मास, ३ दिन राज्य कर वैशाखान्त चतुर्दशी लौकिक सवत् ४२८९=सन् १२१३ ई मे दिवंगत हुआ। आईने अकबरी ने राज्यकाल १४ वर्ष, २ मास तथा पीर हसन ने राज्याभिषेक-काल विक्रमी संवत् १२५९ दिया है।

७. राजदेव : (सन् १२१३–१२३६ ई०, श्लोक संख्या ७६–८७) राजा जगदेव का पुत्र राजदेव था। राजा राजदेव की एक ताम्रमुद्रा प्राप्त हुई है। मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा वाम पार्श्व मे 'श्री' और दक्षिण पार्श्व मे 'राज' एव पृष्ठभाग पर दण्डायमान राजा एव 'देव' टंकणित है।

जोनराज ने राजा के २३ वर्षों का वर्णन केवल १२ श्लोको मे किया है। कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख जोनराज ने किया है। उससे तत्कालीन समाज का धुंधला चित्र मिलता है। वर्णन से प्रकट होता है कि पिता जगदेव के भय से राजदेव काष्ठवाट चला गया था। पिता की मृत्यु के समय वह काश्मीर मे नहीं था। द्वारेश तथा वामपार्श्व के विरोधियो द्वारा वह पुनः काश्मीर बुलाया गया था। सल्हण दुर्ग मे राजदेव ने प्रवेश किया, तो दुष्ट चेष्टावान पद्म ने उसे घेर लिया। द्वारेश की युद्ध मे किसी चाण्डाल ने हत्या कर दी। तत्पश्चात् भट्टों ने भेरी संनादपूर्वक राजा का अभिषेक किया। असामान्य उस पृथ्वीपाल ने परस्पर लड़ाकू लवन्यो को एक कुटुम्बी बना दिया। लहरेश बलाध्यचन्द्र ने श्रीनगर पर आक्रमण कर, आधा श्रीनगर ले लिया। राजा सामना करने मे असमर्थ था। बलाध्यचन्द्र ने स्वनामांकित बलाध्य मठ का निर्माण कराया।

राजा ने भट्टों को अपमानित कर दिया था। भट्ट षड्यन्त्र कर किसी कुलीन गंग को राजा बनाने का षड्यन्त्र करने लगे। राजा ने भट्टों को लूटने का आदेश दिया। भट्ट भयभीत हो गये। 'मैं भट्ट नहीं हूँ, मैं भट्ट नहीं हूँ' चारों तरफ से यही आवाज सुनायी पडने लगी। इसी समय शक संवत् ९५० मे विमलाचार्य प्रसिद्ध ज्योतिषी ने शक संवत् ९७६ के मलमास का भ्रम दूर किया। राजदेव ने राजपुरी एवं राजकोश का निर्माण कराया। राजा २३ वर्ष, ३ मास, २७ दिन राज्य कर दिवंगत हुआ। आईने अकबरी मे राज्यकाल २३ वर्ष, ३ मास, ७ दिन दिया गया है।

८. संग्रामदेव : (सन् १२३६–१२५२ ई०, श्लोक संख्या ८८-१०४) राजदेव का पुत्र संग्रामदेव पिता की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर मण्डल का राजा हुआ। संग्रामदेव के इतिहास पर अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। उसने काश्मीर मण्डल की रक्षा विदेशी शक्तियों से कर, काश्मीर की स्वतन्त्रता की रक्षा की थी।

जोनराज ने संग्रामदेव जैसे इतिहास-प्रसिद्ध राजा के १६ वर्षों का वर्णन केवल १७ श्लोकों मे किया है। सूर्य राजा का अनुज था। सूर्य को राजा ने अपना प्रतिनिधि बनाया था। उसने राजा से द्रोह किया। जोनराज इस समय लोहर के राजा का नाम राजा चन्द्र देता है। सूर्य लोहर के राजा के पास सहायता हेतु गया। षड्यन्त्र एवं द्रोहकार्यों का भेद खुल जाने पर सूर्य भयभीत हो गया। लहरेश चन्द्र के मण्डल मे प्रविष्ट हुआ। उस दारुण रणकाल मे स्वर्भानु राहु के समान भूभान ने चन्द्रान्वित सूर्य के साथ गृहीत किया। क्षमालाधिपति तुङ्ग जिस समय सूर्य को अपने पार्श्व मे ले जा रहा था। उसी समय राजा संग्रामदेव ने सैनिक अभियान द्वारा उसका दमन कर दिया। राजा संग्रामदेव ने विटों द्वारा परित्यक्त सूर्य की हत्या करा दी।

जोनराज कल्हणवंशजों की सूचना देता है। कल्हण के वंशज कल्हण की प्रसिद्धि के कारण कल्हणवंशज कहे जाते थे। कल्हणवंशज इतने शक्तिशाली हो गये कि राजा ने बाध्य होकर राजपुरी के राजा का आश्रय ग्रहण किया। राजा के काश्मीर मण्डल त्याग के पश्चात् डामर प्रबल हो गये। उन्होने जनता को खूब लूटा। राजपुरी त्याग कर राजा ने पुनः काश्मीर मण्डल मे प्रवेश किया। राजपुरी से प्रत्यागत राजा ने समर मे शत्रुओं को जीतते, ब्राह्मण होने के कारण, कल्हणवंशियों की रक्षा करते हुए, राज्य एवं पुण्य प्राप्त किया। राजा ने विजयेश्वर मे गो एवं द्विजों के निवास हेतु श्रीसम्पन्न इक्कीस शालाओं का निर्माण किया। कल्हणवंशजों का राजा संग्रामदेव द्वेषी था। कल्हण वंशजों ने षड्यन्त्रों तथा शक्ति का आश्रय लेकर, राजा संग्रामदेव की हत्या करा दी। कवि पण्डित यस्सक ने राजा संग्रामदेव को नायक बनाकर अपनी उक्तिरूपी हारलता को विद्वानों का कण्ठाभरण बना दिया। राजा का स्वर्गवास १६ वर्ष, १० दिन राज्य करने के पश्चात् लौकिक संवत् ४३२८ = सन् १२५२ ई० भाद्रपद पचमी को हो गया। आईने अकबरी मे भी राज्यकाल १६ वर्ष, १० दिन दिया गया है। पीर हसन संग्रामदेव के राज्याभिषेक का काल विक्रमी संवत् १२९८ देता है।

९. रामदेव : (सन् १२५२–१२७३ ई०, श्लोक संख्या १०५-११२) राजा संग्रामदेव का पुत्र रामदेव था। रामदेव की एक मुद्रा जनरल कनिंघम को मिली है। उसने 'राम' के स्थान पर 'राज' पढ लिया है। रामदेव के २१ वर्षों का वर्णन जोनराज ने केवल ८ श्लोकों मे किया है। उसके काल की किसी ऐतिहासिक घटना एवं राज्यस्थिति का वर्णन नहीं किया है। जोनराज के वर्णन से तत्कालीन काश्मीर के इतिहास पर प्रकाश नहीं पडता। रामदेव ने पितृघातकों अर्थात् कल्हणवंशजों से पिता का बदला लिया। उसने लेदरी

नदी के दक्षिण तट पर यल्लर मे स्वनामाङ्कित कोट निर्माण कराया। समाला विजयोशम अवसर पर उत्पलपुर मे प्रमाद से भग किया गया विष्णु प्रासाद का जीर्णोद्धार कराया। राजा सन्तानहीन था। भिषायकपुर स्थित किसी ब्राह्मण के लक्ष्मण नामक पुत्र को भूपति ने दत्तक पुत्र बनाया। पिता तथा दत्तक पुत्र मे अपार मैत्री एव प्रेम था। समुद्रा देवी ने श्रीनगर के अन्तर्गत स्वनामाकित समुद्र मठ का निर्माण कराया। वह स्थान वर्तमान मुहल्ला सुद्रमर है। इक्कीस वर्ष, १ मास, १३ दिन पृथ्वी का राज्य कर, लौकिक सवत् ४३४९=सन् १२७३ ई० मे स्वर्ग गमन किया। आईने अकबरी भी यही समय राज्यकाल का देता है। पीर हसन ने रामदेव का अभिषेककाल विक्रमी सवत् १३१३ दिया है।

१० लक्ष्मदेव : (सन् १२७३–१२८६ ई०, श्लोक सख्या ११३–११७) लक्ष्मदेव रामदेव का दत्तक पुत्र था। इस घटना से स्पष्ट होता है कि क्षत्रिय भी ब्राह्मण पुत्रो को गोद ले सकते थे। रामदेव क्षत्रिय था। लक्ष्मदेव ब्राह्मण का पुत्र था। जोनराज ने राजा के १३ वर्षों के राज्य काल का वर्णन केवल ५ श्लोको मे समाप्त किया है। क्षत्रिय राजकर्म करने पर भी लक्ष्मदेव ने ब्राह्मणो के स्वधर्म का त्याग नही किया था। उसकी महिषी का नाम अहला था। अहला ने वितस्ता तटपर स्वश्रू मठ के समीप नवीन मठ निर्माण कराया था।

काश्मीर मे प्रथम बार विदेशी सेना ने इस समय प्रवेश किया। दुष्ट तुरुष्क कज्जल बाहर से काश्मीर मण्डल मे आकर, प्रजा को उत्पाटित कर, देश को दुखी कर दिया। कज्जल या खज्जलक मगोल का आक्रमण काल आधुनिक विद्वानो ने सन् १२८७ ई० दिया है। राजा ने १३ वर्ष, ३ मास, १२ दिन राज्य कर, लौकिक सवत् ४३६२ मे स्वर्गवास किया। आईने अकबरी मे भी यही राज्यकाल दिया गया है। पीर हसन ने अभिषेककाल विक्रमी सवत् १३३४ दिया है।

११. सिंहदेव : (सन् १२८६–१३०१ ई०, श्लोक सख्या ११८–१२९) कज्जल के आक्रमण तथा उपद्रव के कारण लक्ष्मदेव का राज्य लेदरी तक सीमित रह गया था। सिंहदेव तथा लक्ष्मदेव का क्या सम्बन्ध था, इस पर जोनराज प्रकाश नही डालता। सिंहदेव पर सग्रामदेव ने आक्रमण किया था। तारीखे नारायण कौल तथा बहारिस्तान शाही से पता चलता है कि लक्ष्मदेव का सिंहदेव पुत्र था। परन्तु उन्होंने किस आधार पर लिखा है, स्पष्ट नही किया है। जोनराज लिखता है कि नगर के अन्दर मठ निर्मित कर लहरेन्द्र की मृत्यु पर नृसिंह सिंहदेव ने भयाकुल क्ष्मा की रक्षा की। गुरु सिंह के साथ सिंहदेव ध्यानोद्धार मे सिंहलग्न के समय श्रीनृसिंह की प्रतिष्ठा की थी। कर्ता, कार्य, लग्न एव विद्वान् गुरु ये सब सिंह समन्वित थे। ससार मे उसके लिये सिंह की परम्परा आ पडी थी।

एक लाख निष्क द्वारा क्रीत दुग्ध से श्री विजयेश्वर को स्नान कराते हुए, नृप ने एक ही दिन मे व्रत शुद्धि प्राप्त की। राजा ने याजक मन्त्रोपदेशकारी गुरु श्रीरकर स्वामी को मठो का ऐश्वर्य दक्षिणा मे देकर, पूजित किया। वह नृप परलोक विजय का उपायभूत वाग्देवीरूप, उपहार स्वरूप, स्वय कृत इस श्लोक को शय्या से उठकर, पढा करता था— पावक जिनकी निर्मल दृष्टि है, विबुधगण जिसके चरण की अर्चना करते हैं। शशिखण्ड जिनका दर्पण है। उस गौरीश शकर को मैं वन्दना करता हूँ।' दुहिता की दुश्चरित्रता के कारण पिता पर जो दण्ड पड रहा था, उसे इन्द्राणी नर्तकी की प्रार्थना पर राजा ने निवारित कर दिया। दुर्जनो के ससर्ग के कारण वह आस्तिक बुद्धिरहित हो गया था। उसने धात्री पुत्री रूप कामदर्पण मे अपने को प्रतिबिम्बित कर दिया। काम सूह द्वारा उपबृहित दरिया (दर्यी) नामक गणना स्वामी ने छद्म से प्रजाप्रेम एव विनयरहित राजा की हत्या कर दी। राजा १४ वर्ष, ५ मास, २७ दिनो तक

शासन कर, लौकिक ४३७७ = सन् १३०१ ई० में स्वर्गगामी हुआ। आईने अकबरी ने भी यही राज्यकाल दिया है। पीरहसन अभिषेक काल विक्रमी सवत् १३४८ देता है।

१२. सुहदेव : (सन् १३०१–१३२० ई०, श्लोक संख्या १३०–१७३) सिंहदेव का भाई सुहदेव था। कामराज की सहायता से उसने राज्य प्राप्त किया था। उसके काल में बहुत से विदेशियों ने वृत्तिलिप्सा के कारण काश्मीर में प्रवेश किया। इसी समय लौकिक सवत् ४३८९ = शक १२३५ सन् १३१३ ई० में शाहमीर ने भी सपरिवार काश्मीर में प्रवेश किया और काश्मीर में मुसलिम राज्य स्थापित कर, प्रथम सुल्तान हुआ था। राजा सुहदेव ने शाहमीर को राजाश्रय दिया, वृत्ति प्रदान कर, विष बेल का रोपण किया—जिसने उसके वंश के साथ पुरातन काश्मीर को समाप्त कर दिया। इसी समय चक्रवर्ती कर्मसेन का चमूपति दुलचा ने सिंह के मृग गुफा में प्रवेश करने तुल्य काश्मीर मण्डल में प्रवेश किया। उसकी सेना में ६० हजार अश्वारोही थे। राजा दुलचा का सामना करने में असमर्थ था। अतएव उसने दुलचा को धन देकर, वापस लौटाने के लिये जनता पर कर लगाया। ब्राह्मणों ने इस कर के विरुद्ध प्रायोपवेशन आरम्भ किया।

इसी समय शत्रुहन्ता काल मान्य भोट्ट व्याजपूर्वक बन्धु वंशज सहित वक्तव्य का हनन किया। मान्य, असामान्य धी कालमान्य का पुत्र रिंचन (रत्न) दैवात् उस संहार से बच गया था। रिंचन ने व्याल टुक्क आदि प्रमुख लोगों के साथ सहतिबद्ध होकर उन जड कालमान्यों को जीतने की इच्छा की। उसने आततायियों के पास सन्देश भेजा। वे परिलुण्ठित कोष वाले उसको भृत्य रूप में सेवक रख ले। नृसिंह रिंचन नदी तट पर बालू में आयुध छिपाकर, उन्हें रक्तपिपासु की दृष्टि से देखा, न कि कोशपान (मैत्री) करने की कामना से। कालमान्य निरस्त्र आये। व्याल आदि छिपे आयुधों को अविलम्ब निकाल कर, कालमान्य आदि पर आक्रमण कर दिया। शत्रुओं की हत्या कर दी गयी। किन्तु इस हत्याकाण्ड के पश्चात् रिंचन भयभीत हो गया। प्राणरक्षा हेतु सबन्धु-बान्धव काश्मीर मण्डल में प्रवेश किया।

काश्मीर के लिये रिंचन राहु प्रमाणित हुआ। उसने काश्मीर को ग्रस लिया। दुलचा एवं रिंचन दोनों काश्मीर का दमन तथा उत्पीडन करने लगे। दुलचा और रिंचन द्वारा प्राची एवं उदीची दिशा के रुद्ध हो जाने पर, काश्मीरी जन नगरों से काल दिशा दक्षिण तथा अन्धकार की दिशा पश्चिम की ओर भागने लगे। जिस प्रकार चील्ह झपट कर, स्थानच्युत पक्षिशावक को हर लेता है, उसी प्रकार वेगशालिनी रिंचन की बल-श्री ने काश्मीरी लोक का अपहरण कर लिया।

रिंचन किसी नीति तथा आचरण का पालन नहीं करता था। वह विश्वासघात एवं कपटाचार का प्रतिमूर्ति था। उसने काश्मीरी लोगों को दास बनाया। उन्हें विदेशी यवनों आदि के हाथों बेच कर, यथेष्ठ धनार्जन किया। काश्मीरी दुलचा तथा रिंचन दोनों का सामना करने में असफल रहे। दुलचा ने भी यथेष्ट लूट पाट कर, धन संग्रह किया। अत्यन्त शीत के कारण तारबल मार्ग द्वारा काश्मीर मण्डल का त्याग किया।

दुलचा दिल्ली के चले जाने पर, काश्मीरी जन मूसकों के समान, अपने बिलों से बाहर निकले। जो लोग दुलचा तथा रिंचन द्वारा दास तथा बन्दी नहीं बनाये जा सके थे, वे ही शेष रह गये थे। दुलचा का उपद्रव समाप्त होने पर, कोई पुत्र पिता को, पिता पुत्र को, तथा भाई ने भाई को नहीं पाया। काश्मीर की जनसख्या क्षीण हो गयी। खेतों में फसल नहीं रह गयी। काश्मीर मण्डल सर्ग के आरम्भिक काल तुल्य लगता था। दुलचा ने सामर्थ्यवानों को बन्दी बनाया था। अतएव रिंचन अपनी शक्ति के कारण अनायास प्रबल हो गया।

दुलचा राहु के चले जाने पर भी, रिंचन के द्वारावरोध के कारण, राजा स्वाधीनता नही पा सका। गगनगिर के आगे भास्वान रिंचन को देखकर, राजा के आसन्न विपत्ति एवं नाश की शंका सब लोग करने लगे।

रामचन्द्र आदि कुछ वीर देशभक्त थे। रामचन्द्र ने विदेशी रिंचन का प्रबल प्रतिरोध पद-पद पर किया। रामचन्द्र का सामना कर, रिंचन उसे पराजित नही कर सकता था। अतएव वचनोद्योगी रिंचन ने षड्यन्त्र का आश्रय लिया।

रिंचन रामचन्द्र के निवासस्थान लहरकोट मे कपड़ा बेचने के व्याज से प्रतिदिन भौट्टो को भेजता रहा। शनैः शनैः कपड़े के व्यापारी के रूप मे अस्त्र-शस्त्र सहित भौट्ट लहर मे प्रचुर सख्या मे प्रवेश पा गये। अवसर मिलते ही रिंचन ने एक दिन रामचन्द्र की हत्या कर, लहर पर अधिकार कर लिया। उसने रामचन्द्र के कुलरूपोद्यान की कल्पवल्ली कोटा देवी को भी प्राप्त किया।

राजा सुहदेव इस समय श्रीनगर मे था। रिंचन के भय से वह त्रस्त हो गया और नगर त्याग दिया। जोनराज ने लिखा है कि उसने शृगाल प्रमण्डल गुफा मे प्राणरक्षा हेतु प्रवेश किया था। आधुनिक इतिहास लेखको ने प्रमण्डल का अर्थ सोपोर स्थान लगाया है। राजा सुहदेव ने १९, वर्ष ३, मास २५ दिनो तक राज्य किया। आईने अकबरी ने राज्यकाल १९ वर्ष, ३ मास, २५ दिन दिया है। पीर हसन राज्याभिषेककाल विक्रमी संवत् १३६२ देता है।

१३. रिंचन : (सन् १३२०-१३२३ ई०, श्लोक संख्या १७४-२२२) रिंचन ने राज्य प्राप्त करने पर, शत्रुओ का दमन किया। रिंचन काश्मीर के राजाओ के समान सरल नही था। उसने षड्यन्त्रो द्वारा लवन्यो की शक्ति तोड़ दी, उन पर दया नही दिखाई, समस्त देश को संघटित किया। राज्य-व्यवस्था एवं शासन सुचारु रूप से चलाया, प्रजा का हितकार्य भी किया। उसने पुत्र, मन्त्री, मित्र अथवा दुष्ट किसी को क्षमा नहीं किया। शत्रुओं का काश्मीर से उच्छेद कर दिया। राजा आच्छोदन हेतु जा रहा था, तो टुक्क के भ्राता ने मार्ग मे एक गोपाली का दुग्ध जबर्दस्ती पान कर लिया। रिंचन ने उसे अविलम्ब दण्ड दिया। रिंचन की न्यायप्रियता का विशद वर्णन जोनराज तथा फारसी इतिहासकारो ने किया है। उन्हे यथास्थान दिया गया है।

रिंचन मूलत: बौद्ध था। काश्मीर मे शैव मत प्रचलित था। राजा ने देवस्वामी से शैवी दीक्षा की याचना की। भौट्ट होने के कारण, अपात्रत्व होने की आशंका से, देवस्वामी ने राजा को दीक्षित नही किया।

इस समय मुसलमान यथेष्ट सख्या मे श्रीनगर मे थे। उनके छोटे-छोटे उपनिवेश बन गये थे। धर्म प्रवर्तक होने के कारण मुसलमान सर्वदा अपना धर्म फैलाने का प्रयास करते थे। मुसलमानो ने अवसर से लाभ उठाया। रिंचन को मुसलिम धर्मम दीक्षित कर लिया। उसका नवीन नाम सदरुद्दीन रखा गया। जोनराज रिंचन के मुसलमान धर्म मे दीक्षित होने का उल्लेख नही करता। किन्तु सभी फारसी इतिहासकार रिंचन के इसलाम धर्म मे दीक्षित होने का उल्लेख करते हैं। उसे काश्मीर का प्रथम मुसलिम सुलतान मानते हैं। उनके मत से रिंचन ने पहली मसजिद का नमाज पढ़ने के लिये निर्माण कराया था। रिंचन की समाधिस्थल श्रीनगर मे है।

उदयनदेव इस समय काश्मीर के बाहर था। रिंचन से विरुद्ध टुक्कादि का एक भौट्ट वर्ग विरुद्ध हो गया था। उदयनदेव काश्मीर मे पुन हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहता था। उसने षड्यन्त्र का आश्रय लिया। टुक्कादि को रिंचन की हत्या करने के लिये प्रेरित किया। राजा विश्रामार्थ मे गया था।

टुक्कादि ने उस पर आक्रमण कर, आहत कर दिया। रिंचन मृतक का स्वांग बना कर भूमि पर गिर पड़ा। विद्रोही उसे मृत जानकर, श्रीनगर की ओर अग्रसर हुए। रिंचन शत्रुओं के चले जाने पर, उठ खड़ा हुआ। वह राजभवन की ओर चला। विद्रोही उसे जीवित छोड़ देने के लिये एक दूसरे पर दोषारोपण करते, परस्पर लड़ गये। रिंचन ने स्थिति नियन्त्रित कर ली और उसने विद्रोहियों को शूली पर चढ़ा दिया। उसने भौट्ट शत्रुओं एवं अपने जाति की गर्भवती स्त्रियों का गर्भ फड़वाकर क्रूर बदला लिया।

षड्यन्त्र मे शाहमीर सम्मिलित नही था। वह रिंचन का विश्वासपात्र बन गया। रिंचन ने कोटा देवी से उत्पन्न पुत्र चन्द्र (हैदर) को उसे पालने के लिये सौंप दिया। शाहमीर हैदर का अभिभावक बन गया। रिंचन ने अपनी सुरक्षा की दृष्टि से परिखा-वेष्ठित रिंचननगर निर्माण कराया किन्तु आघात से वह अच्छा न हो सका। उसकी शिरोव्यथा शीत ऋतु आते ही बढ़ती गयी। वह ३ वर्ष, ११ दिन कम २ मास राज्य करने के पश्चात् लौकिक सम्वत् ४३९९ = सन् १३२३ ई० मे दिवंगत हो गया। वे इतिहासकार जो यह मानते है कि वह मुसलमान हो गया था, वे उसकी कब्र श्रीनगर मे अलीकदल तथा नवकदल के बीच वितस्ता के दक्षिण तट पर मुहम्मद अमीन उवेशी की जियारत के नीचे बताते है। यह स्थान सन् १९४१ ई० मे राज्य सरकार द्वारा रक्षित स्थान घोषित किया गया है। सन् १९०९ ई० के पूर्व कोई जानता भी नही था कि रिंचन की कब्र किस स्थान पर है। तिब्बत विषय सम्बन्धी विद्वान फ्रैन्की ने ही इसे रिंचन की कब्र होने की घोषणा की थी। यह घोषणा किस ठोस आधार पर की गई थी, इसका उल्लेख नही किया गया है। रिंचन मुसलमान हो गया था या नही, यह विवादास्पद विषय है। उस पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है।

१४. उदयनदेव : (सन् १३२३-१३३९ ई०, श्लोक संख्या २२३—२६३) रिंचन की मृत्यु के समय उदयनदेव काश्मीर के बाहर था। उसने राज्य प्राप्त किया। कोटा रानी से विवाह कर लिया। सुहदेव तथा उदयनदेव का पारस्परिक क्या सम्बन्ध था तथा उदयनदेव को किस प्रकार राज्य प्राप्त हो गया, इस पर परशियन इतिहासकार तथा जोनराज दोनो ही चुप है। कुछ परशियन इतिहासकारो का मत है कि उदयनदेव दिवंगत राजा सुहदेव का भाई था। एक मत है कि सुहदेव ने उदयनदेव को दुलचा को द्रव्य देने के लिये गान्धार भेजा था। परशियन इतिहासकारो का मत है कि उदयनदेव स्वात मे था। वहां से बुलाकर राज्य दिया गया। निस्सन्देह उदयनदेव काश्मीर के बाहर रहकर, रिंचन को राज्यच्युत करने का षड्यन्त्र कर रहा था। उस षड्यन्त्र के कारण रिंचन को आघात लगा और उसकी मृत्यु भी कुछ समय पश्चात् हो गयी।

काश्मीर मे विदेशी शासन तत्कालीन देशभक्त काश्मीरियो को खलता था। अतएव कोटा रानी ने न तो स्वयं काश्मीर की शासिका बनना पसन्द किया और न अपने पुत्र के लिये राज्य की कामना की। उसने उदयनदेव के साथ विवाह कर, कुशल नीति का परिचय दिया। उत्तराधिकार का प्रश्न उठ नही सकता था। रिंचन का पुत्र कोटा रानी से था। कोटा से विवाह करने पर, उदयनदेव उस पुत्र का सौतेला पिता हो गया था।

शाहमीर ने रिंचन के समय प्रसिद्धि पा ली थी। शक्तिशाली हो गया था। काश्मीरस्थ मुसलिम आबादी की शक्ति का वह प्रतीक था। उसका भी साहस उस समय नही हुआ कि उदयनदेव के विरुद्ध आवाज उठाता।

राजा की सरलता का लाभ उठाकर, शाहमीर ने अपने दोनो पुत्र जमशेद तथा अलीशाह को क्रमराज आदि दिला दिया। कोटा रानी उदयनदेव की सर्वाधिकारिणी तुल्य थी।

राजा उदयनदेव काश्मीर के बाहर मुसलिम शक्ति का उदय तथा प्रभाव देख चुका था। परन्तु वह राजकार्य की अपेक्षा धर्म की ओर अधिक प्रवृत्त होता गया। वह श्रोत्रिय के समान स्नान, तप, जप आदि में समय व्यतीत करता था। राजा सन्धिमति के समान अत्यन्त धार्मिक हो गया। सन्धिमति की इस प्रवृत्ति के कारण जनता ने उसे काश्मीर राज्यपद से हटाया था और उदयनदेव की इस धर्मध्वजी प्रवृत्ति के कारण काश्मीर का राज्य स्वतः हिन्दूराज्य से मुसलिम राज्य बनाने की भूमिका प्रस्तुत करने लगा।

राजा इतना अधिक धार्मिक हो गया था कि अश्वों के कण्ठों में घण्टा बँधवा दिया था, उसकी आवाज से मार्ग के कृमि, पशु, पक्षी हट जायें, निरर्थक जीवहत्या न हो सके। राजा ने कोश के अलंकारभूत सम्पूर्ण द्रव्य से स्वर्णमय कण्ठाभरण एवं मुकुट आदि बनवाकर, भगवान् चक्रधर को समर्पित किया।

काश्मीर एक ओर अहिंसा की चरम सीमा अपनी अदूरदर्शी नीति के कारण पार कर रहा था और दूसरी ओर विदेशी शक्तियाँ काश्मीर पर अधिकार करने का प्रयास कर रही थी। इसी समय मुग्धपुर के स्वामी द्वारा प्रदत्त सेना सहित अचल ने काश्मीर में प्रवेश किया। उसके आक्रमण की तुलना दुलचा आक्रमण से की जा सकती है। अचल से काश्मीर-मण्डल आशान्त हो गया। परन्तु राजा उदयनदेव ने इस कारण विदेशी आक्रमण का सामना नहीं किया कि प्राणिहत्या होगी, भाई-बन्धु मारे जायेंगे। अचल को अपनी सेना के साथ भीमानक स्थान पर पहुँचते ही भयभीत और त्रस्त उदयनदेव प्राण-रक्षा हेतु भौट्ट देश चला गया।

कोटारानी ने अपने व्यक्तित्व एवं प्रखर बुद्धि का यहाँ पुनः परिचय दिया है। उसने अचल से निवेदन किया कि व्यर्थ रक्तपात से क्या लाभ—'उसे अपनी सेना वापस कर लेना चाहिये'। उत्सव के व्याज से कोटा-रानी काश्मीरी सहयोगियों की सहायता से अचल को मार्ग में रोक लिया, ताकि अचल श्रीनगर आदि स्थानों में पहुँचकर लूट-पाट न करने लगे। उदयनदेव के अभाव में कोटारानी ने खे रिंचन नामक भौट्ट को राजपद पर प्रतिष्ठित कर दिया। अचल कोटा रानी की विलक्षण बुद्धि तथा उसका परिणाम देखकर खिन्न हो गया।

अचल के हटने पर, राजा उदयनदेव तुषार लिंग पूजा कर, वापस लौट आया। राजा उदयनदेव ने कोटा रानी द्वारा उत्पन्न पुत्र जट्ट को गन्त्री भिक्षण को वर्धन हेतु उसके अभिभावकत्व में रख दिया। इस प्रकार कोटा रानी के एक पुत्र चन्द्र (हैदर) का अभिभावक शाहमीर तथा दूसरे जट्ट का भट्ट भिक्षण था। उदयनदेव शाहमीर से सतर्क रहता था। शाहमीर राजा का कृपापात्र नहीं रह गया था। शाहमीर को शिरः शाटक या शीरअशमाक तथा हिन्द या कुतुबुद्दीन अर्थात् हिन्दल या हिन्दू खा नामक दो पौत्र थे। इस समय द्वारपति प्रतीत होता है, स्वयं शाहमीर था। वह राजाज्ञा का उल्लघन करता था। उपेक्षा करता था, द्वारपति का पद सेनापति तुल्य था।

शाहमीर ने विवाह बन्धनों से काश्मीर के प्रमुख अधिकारियों को अपने षड्यन्त्र में लेने का सफल प्रयास किया। उसने अल्लेश्वर अर्थात् अलीशेर की कन्या का विवाह अधिकारी कुम्हा के साथ कर दिया। वह राजा को तृणमात्र नहीं समझता था। वह शकरपुर स्वय जीत कर स्वामी बन गया। काश्मीरके राजा का द्वारपति एवं अधिकारी स्वय राजा के विरुद्ध सैन्य सहत कर खड़ा हो गया। दोनों सेनाओं का व्यय राजकोश से दिया जाता था। दोनों सेनायें राजा की मानी जाती थीं। परन्तु एक पर शाहमीर का अधिकार था। वह राजा के नियन्त्रण से मुक्त थी। उसकी सेना में अधिक विदेशी मुसलिम थे।

भागिल परगना का ऐश्वर्यभाजन लैलाक शूर से शाहमीर ने अपने पौत्री जमशेद की कन्या का विवाह कर दिया। उसने समाला पर भी अधिकार कर लिया। उसने अपनी शक्ति के आधार पर कर लगाना भी

आरम्भ किया। कराल परगना के लोगो पर कर लगा कर वसूली करने लगा। काश्मीर राज्य इन सब बातो का मूकद्रष्टा था। काश्मीर राज्य मे ही दो राज्य तथा दो शासन चलने लगे।

शाहमीर ने अपनी सैनिक स्थिति सुदृढ करने के लिये, विजयेश्वर समीपस्थ चक्रधर स्थान पर, अपनी शक्ति एकत्रित की। उसने सेनापतियो को अपनी ओर मिलाने का कार्य वैवाहिक सम्बन्ध से आरम्भ किया। जो कुछ शक्ति काश्मीर मे शेष रह गयी थी, उस पर भी वह अधिकार करना चाहता था। कम्पनेश्वर अर्थात् काश्मीर राज्य के सेनापति लक्ष्म ने अपनी कन्या का विवाह शाहमीर के पुत्र अल्लेश–(अलाउद्दीन) से कर दिया। शाहमीर ने अपनी कन्या गुहरा का विवाह कोटराज के साथ कर दिया। लवन्य काश्मीर का सैनिक वर्ग था। उन्हे शाहमीर ने साम, भेद, दान तथा भय के द्वारा अपने आधीन कर लिया।

लवन्यो अर्थात् काश्मीर सैनिक कृषक वर्ग को उसने विवाह सम्बन्धो से वश मे कर लिया। जोनराज ठीक लिखता है—'लवन्यो ने उसकी पुत्रियो को माला के समान धारण किया, किन्तु यह नही जाना कि वे घोर विषैली सर्पिणियाँ अन्त मे प्राणहरण करने वाली होगी, शेष लवन्यों को उसने मन्त्र एवं षड्यन्त्रो द्वारा निर्बल कर दिया। काश्मीरराज उदयनदेव चारो ओर से मिट्टी के टेर पर लगे पेड तुल्य जलप्लावन से आक्रान्त कर लिया गया। उसके गिरने मे किसी को सन्देह नही रह गया था। श्रीनगर मात्र का राजा अन्तिम मुगल सम्राटो के समान रह गया था। जिनकी हुकूमत दिल्ली के कुछ मीलो तक ही सीमित थी।

राजा उदयनदेव ने लौकिक सवत् ४४१४, (शिवरात्रि) त्रयोदशीके दिन शरीर त्याग किया। साथ ही हिन्दू परम्परा ने, हिन्दूराज्य के अन्तिम राजा ने भी अपना अन्तिम श्वास तोड दिया।

१५. कोटा देवी : (सन १३३९ ई०, श्लोक संख्या २६४–३०६) शाहमीर प्रबल हो गया था। कोटा रानी शकित थी। शाहमीर के हाथो मे राज्य जा सकता था। यह बात कोटा रानी जैसी चतुर स्त्री से छिपी नही थी—राजा के मरते ही शाहमीर राज्य प्राप्त करने का प्रयास, अपने उन काश्मीरी हिन्दू सामन्तो तथा अधिकारियो के सहयोग से करेगा, जिनके वैवाहिक सम्बन्धो से सम्बन्धित कर, उन पर प्रभाव स्थापित कर चुका था।

रानी ने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये चार दिनो तक राजा के मृत्यु की बात छिपा रखी शाहमीर उसके ज्येष्ठ पुत्र द्वारा जिसका वह अभिभावक था, साम्राज्य प्राप्त कर लेगा, इस भय से उसने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य नही दिया। द्वितीय पुत्र शिशु था। उसे यह भी भय था कि शाहमीर उसे बन्दी बनाकर काश्मीर के सिंहासन पर अविलम्ब बैठ सकता था। रानी ने लवन्यो को सगठित कर, उनका समर्थन प्राप्त कर लिया। वह स्वयं काश्मीर की शासिका बन गयी। शाहमीर का साहस नही हुआ कि तत्काल वह कोटा पर आक्रमण कर, उसे हटा देता। शाहमीर अवसर देखने लगा।

कोटा रानी प्रजा के उपकार तथा राज्य के सघटन मे लग गयी। उसने शाहमीर की शक्ति क्षीण करने का प्रयास किया। भट्टभिक्षण जैसे चतुर व्यक्ति को उसने अपना मन्त्री बनाया। शाहमीर सतर्क हो गया। वह कोटा की चतुरता तथा उसकी विलक्षण बुद्धि को जानता था। उसने भट्टभिक्षण आदि के सर्वनाश का षड्यन्त्र आरम्भ किया।

विश्व का सबसे बड़ा विश्वासघात शाहमीर ने किया। उसने बीमारी का बहाना बनाया। प्रचार करा दिया कि मरणासन्न है। कोटा रानी ने औतार तथा भट्टभिक्षण को शाहमीर की बीमारी जानने के लिये भेजा। शाहमीर के कक्ष मे औतार एवं भिक्षण उसके स्वास्थ्य के विषय मे पूछ रहे थे। उन्हे निहत्था देखकर, शाहमीर ने सहसा उन दोनो की वही हत्या कर दी।

कोटा रानी ने शाहमीर को दण्ड देना चाहा, परन्तु उसके अनेक मन्त्री जो शाहमीर के षड्यन्त्र में सम्मिलित थे, उन्होंने उसे बन्दी नहीं बनाने दिया। अन्यथा इस समय कोटा रानी समर्थ थी। वह शाहमीर को समाप्त कर, काश्मीर के इतिहास को बदल सकती थी।

कम्पनाधिपति जो काश्मीर का सेनापति था, शाहमीर के पुत्र अलीशाह की कन्या से विवाह सम्बन्ध से सम्बन्धित था। वह रानी की आज्ञा का उल्लंघन करने लगा। उसने अपनी स्थिति राजसेवक की अपेक्षा स्वतंत्र तुल्य कर ली थी। रानी ने उस पर आक्रमण किया। रानी कम्पनेश द्वारा पकड़ ली गयी। बन्दीगृह में डाल दी गयी।

रानी का सचिव कुमारभट्ट था। उसने रानी को बन्दीगृह से मुक्त कराया। कोटराज जान भी नहीं सका कि रानी मुक्त हुई। जोनराज दुःख प्रगट करता है कि कोटा देवी के कुछ अनुपकार न करने पर भी शाहमीर रानी से शत्रुता रखता था। रानी को अपदस्थ कर स्वयं काश्मीर का राजा बनना चाहता था। कोटा रानी शाहमीर पर न तो प्रसन्न हुई और न रुष्ट। उस समय वह इस स्थिति में नहीं थी कि कुछ ठोस कदम उठाती। वह चारों ओर षड्यन्त्रों से घिर गयी थी। बहुत कम काश्मीरी रह गये थे, जिनमें देशभक्ति की भावना थी। सब शाहमीर के षड्यन्त्र में सम्मिलित थे। शाहमीर प्रबल होता गया। कोटा रानी तथा काश्मीर की शक्ति क्षीण होती चली गयी। काश्मीर की बागडोर किसी सम्भ्रान्त कुल या काश्मीरी के हाथ में न होकर, शाहमीर के हाथों में थी। उसके संकेत पर सब नाचने लगे।

कार्यानुरोध से कोटा रानी जयापीडपुर अर्थात् अन्दरकोट गयी थी। शाहमीर ने उपयुक्त अवसर पाकर श्रीनगर पर अधिकार कर लिया। काश्मीरी सेना ने शाहमीर का प्रतिरोध नहीं किया। काश्मीरी इस नाटक के मूकद्रष्टा बने रहे। उनका मनोबल तथा साहस दोनों टूट चुका था। शाहमीर ने अन्दरकोट घेर लिया। कोट द्वार निरुद्ध कर लिया। कोटा रानी कोट में बन्द हो गयी। कथा चलती है। शाहमीर रानी से विवाह करने का सन्देश भेजा। उस समय शाहमीर ७० वर्ष से ऊपर वृद्ध था। कोटा की आयु ४० वर्ष से अधिक नहीं थी। उसने अपने देश में, आये एक शरणार्थी, किसी दिन के सेवक से विवाह करना उचित नहीं समझा। शाहमीर ने बन्दी कोटा की रात्रि में बधिको द्वारा हत्या करा दी। उसके शव को या तो जल में बहवा दिया या नष्ट कर दिया। उसके दोनों पुत्रों जिनमें एक का वह अभिभावक था, शैशवावस्था में ही पालकर बड़ा किया था। उन्हें समाप्त कर, काश्मीर का प्रथम सुल्तान बन गया।

शाहमीर वंश : (सन् १३३९–१५६१ ई०)

१. शाहमीर : (सन् १३३९–१३४२ ई०, श्लोक संख्या ३०७-३१५) शाहमीर शमशुद्दीन नाम धारण कर, काश्मीर का प्रथम मुसलिम सुलतान हुआ। उसने कोटा तथा उसके पुत्रों की हत्या करवा दी। हिन्दूराज नष्ट हो गया। आश्चर्य है—काश्मीर में किसी ने शाहमीर के इन कार्यों के विरुद्ध चूँ तक नहीं किया। शाहमीर का षड्यन्त्र सफल हुआ। उस षड्यन्त्र में सहयोग करने वालों में एक एक का दमन शाहमीर ने किया। उनमें प्रमुखों का नाश किया। जिन लवन्यों ने शाहमीर का साथ दिया था, उनका ही शाहमीर ने सर्वप्रथम दमन किया। काश्मीर में व्याप्त अराजकता को तिरोहित किया। शाहमीर के भय से किस्तवार राजस्थानीय भाग गये थे, उनका पीछा कर वहाँ भी उनका दमन किया। अपने दोनों पुत्रों पर राज्यभार देकर, सुखपूर्वक शासन करने लगा। शाहमीर ३ वर्ष, ५ दिन राज्य भोगकर, लौकिक संवत ४४१८ = सन् १३४२ में मर गया।

२. जमशेद : (सन् १३४२–१३४४ ई०, श्लोक ३१६–३३८) शाहमीर की मृत्यु के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र जमशेद सामन्तो द्वारा आज्ञा मान लिये जाने पर, काश्मीर का द्वितीय सुलतान हुआ। उसके सुलतान बनते ही, कनिष्ठ भ्राता अलीशेर का विचार बदल गया। वह स्वयं राज्य-प्राप्ति की कामना करने लगा। जमशेद भ्राता से शंकित हो गया। अलीशेर भी दान, आदान, प्रदान, अनुग्रह, विहार, आहार सुलतान से कम नहीं करता था। राजस्थानीय युवराज अलीशेर के पास पहुँचे। राजस्थानियो का समर्थन प्राप्त हो जाने पर अलीशेर उनके मूलस्थान अवन्तीपुर पहुँचा। जमशेद भ्राता का द्रोहभाव जानकर, ससैन्य उत्पलपुर पहुँचा। सन्देश भेजा, पिता के आदेश का पालन करते हुए, प्रेम से रहना चाहिये। साथ ही जमशेद ने कम्पनाधिपति को मारने के लिये अपने पुत्र को भेजा। अलीशेर पर सुलतान के सन्देश का कोई प्रभाव नही हुआ। उसने भ्राता-पुत्र को मारने के लिये प्रस्थान किया।

सुलतान जमशेद ने अवन्तिपुर ससैन्य पहुँचकर, अलीशेर के सैनिको के साथ युद्ध किया। अलीशेर अपने भतीजा को पराजित कर लौट आया। जमशेद युद्ध से खिन्न होगया था। वह पीछे लौट पडा।

अलीशेर ने सुलतान के पास सन्धि सदेश भेजा कि परस्पर युद्ध न किया जाय। परन्तु अलीशेर अपने योद्धाओ तथा अवन्तिपुर को भी छोडते हुए, क्षीरीपथ से इक्षिका गया। उस समय श्रीनगर की रक्षा का भार जमशेद ने सय्यराज को दिया था। सय्यराज को अलीशेर ने फोडकर अपनी ओर मिला लिया। उसने षड्यन्त्र का आश्रय लेकर, श्रीनगर पर अधिकार कर लिया। हतभाग्य निराश जमशेद ने २ मास कम २ वर्ष राज्य किया।

३. अलाउद्दीन (सन् १३४४–१३५५, श्लोक संख्या ३३९-३५९) जमशेद ने यद्यपि कनिष्ठ भ्राता से मेल कर लिया था, परन्तु राजलिप्सा कठिनता से छूटती है। उसने पुन राज्य प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने सुय्यपुर में वितस्ता पर सेतु निर्माण कराया। पर्वत सीमा पर पथिकों के निवास हेतु स्वनामांकित कक्ष्या विभाग सहित मठ निर्मित कराया। अलाउद्दीन ने शिरशाटक शहाबुद्दीन को द्वारपति का पद दिया।

कदाचित् लीलारस से वाकूटवी मे घूमते हुए, राजपुत्र ने गिरिगह्वर मे योगिनीचक्र देखा। सुलतान के वल्लभ उदयश्री, चन्द्र डामर ने भी चक्र देखा। वे कुतूहलवश अश्वो से उतर कर योगिनी के पास गये। उस योगिनी नायिका ने दूर से नृपात्मज को जानकर, पुष्टा आशीर्वादपूर्वक अभिमन्त्रित शीधु चषक प्रेषित किया। तृप्त राजा ने पान से अवशिष्ट, उस अमृत को चन्द्र को दिया। उदयश्री का ध्यान कर, चन्द्र ने उसे समाप्त नही किया। अश्वपाल का ध्यानकर, विस्मृत कर उदयश्री सब पी गया। निमित्त को जानने वाली आश्चर्यमयी *योगिनी ने बद्धांजलि हो राजपुत्र से कहा—'तुम्हारा राज्य अखण्ड होगा। चन्द्र तुम्हारे विभव का अंशभागी* होगा। जीवन पर्यन्त उदयश्री अखण्ड लक्ष्मी से मण्डित होगा। मेरे अनुग्रह से रहित, यह अश्वपाल अविलम्ब मर जायगा।' योगिनिया अंर्तहित हो गयी और तुरगपाल तुरन्त मर गया।

उस समय एक बडा सामाजिक दोष था। पति पुत्र रहित पुंश्चली वधू श्वशुर से पतिभाग ले रही थी। इस दुराचारमय नियम को सुलतान ने हटा दिया।

सुलतान ने जयापीडपुर मे राजधानी बनाई। रिंचनपुर मे बुद्धगिर स्थापित किया। लौकिक सम्वत् ४४१९ = सन् १३४३ ई० मे महान् दुर्भिक्ष काश्मीर मे पडा। सुलतान १२ वर्ष, ८ मास, १३ दिन पृथ्वी का भोग कर, लौकिक ४४३० = सन् १३५४ ई० मे दिवंगत हुआ।

४ शहाबुद्दीन (सन् १३५५–१३७३ ई०, श्लोक संख्या ३६०–४६८) जोनराज की दृष्टि मे विगत तीनो सुलतान मन्द थे। शहाबुद्दीन तीक्ष्ण प्रतापी था। उसने ललितादित्य एवं जयापीड जैसे प्रतापी

राजाओं से उसकी तुलना की है। शहाबुद्दीन अपने पिता के काल मे द्वारपति जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण सैनिक पद पर था। उसे सेना तथा युद्ध का अनुभव था। उसने राज्यप्राप्ति करते ही सैनिक अभियान दिग्विजय के लिये किया। उसने सर्वप्रथम पारसिक कुलसंकुल उत्तर दिशा के विजय हेतु प्रस्थान किया। उसके सहायक चन्द्र, लोलक तथा शूर सेनापति थे। उदभाण्डपुर (ओहिन्द) जिसका राजा गोविन्द खान था, सुलतान ने उसके राज्य मे प्रवेश किया। शैलश्रृंग पर पहुँच कर, सिन्धुपति की कन्या से विवाह किया। उसकी सेना की शक्ति देखकर, गान्धार निवासी नतमस्तक हो गये। शौर्यशाली शिगो की राजा ने परास्त किया। सुलतान की सेना देखते ही गजनी मद रहित एवं स्खलित हो गयी। अष्टनगर (हस्तनगर) के श्रोत्रिय भयभीत होकर रोने लगे। उसने पुरुषवीर (पेशावर) भी जीत लिया। उसने नगराग्रहार पर भी विजय प्राप्त किया। वह विजय करता, हिन्दूघोष तक पहुँच गया। वहाँ से पराभूत होकर शतद्रु तट पहुँचा। दिल्ली लूटकर आते, उदकपति का सुलतान ने मार्गावरोध कर दिया। उसने सुशर्मापुर के राजा तथा भौट्टो को भी जीता। दिग्विजय के पश्चात् समर्थ सुलतान ने काश्मीर मे प्रवेश किया।

शहाबुद्दीन के विजय के पश्चात् उसकी प्रेम लीला का जोनराज ने वर्णन (श्लोक ३९२-४००) मे किया है। शहाबुद्दीन के समय धर्मनिरपेक्ष भावना थी। उसने स्वदेश प्रशासन का उत्तरदायित्व कोटभट्ट एवं उदयश्री पर रखा था। युद्ध मे वह चन्द्र, डामर तथा लोठ पर निर्भर रहता था। कोट शर्मा त्यागी था। उसने राजवैभव त्याग कर वनगमन किया।

लौकिक सम्वत् ४४३६ = सन् १३६० ई० मे काश्मीर मे पुनः जलप्लावन हुआ। यह बाढ भयंकर था। श्रीनगर जलमग्न हो गया था। शंकराचार्य, चश्माशाही, शालीमार तथा शारिका पर्वत उस महाबाढ से तट-प्रान्त बन गये थे। सभी कुछ जलमग्न हो गया था। सुलतान को हट कर, स्वयं शारिका पर्वत पर जाना पडा था। जलप्लावन से नगर की रक्षा करने के लिये, उसने शारिका शैल पर नगर निर्माण किया। अपनी महिषी के नाम पर लक्ष्मीनगर नाम रखा। वितस्ता तथा सिन्धु संगम पर शहाबुद्दीनपुर जिसका वर्तमान नाम शादीपुर है, आबाद किया। लोठ डामर ने भी स्वनामांकित नगर बसाया। यह आज सम्बल के समीप एक ग्राम मात्र रह गया है।

लक्ष्मी की भगिनीपुत्री का नाम लासा था। महिषी ने उसे अपने ही यहाँ रख कर, पाला-पोसा था। सुलतान की कामदृष्टि लासा पर पड गयी। लक्ष्मी सुलतान पर क्रुद्ध हो गयी। वह अपने मायके चली गयी। सुलतान लोकलज्जा के कारण उसे पुनः बुला लाया। इसी प्रसंग मे धातु मूर्ति खण्डित कर धन प्राप्ति का सुझाव सुलतान को दिया गया, परन्तु सुलतान ने प्रतिमा भंग करना स्वीकार नहीं किया।

शहाबुद्दीन अपने सेवकों तथा उपकारियों का ध्यान रखता था। उसने मदन लाविक को राज्य-कर्मचारियों के कोप तथा ईर्ष्याग्नि से बचाने के लिये दिल्ली भेज दिया।

जोनराज का शहाबुद्दीन आदर्श विजयी राजा था। अतएव उसने उसकी मृत्यु भी अलौकिक ढंग से चित्रित की है। एक समय शंकर गृह ने कांचनमय पुरी स्वप्न मे देखी। उस नगर का प्रत्येक घर जनशून्य था। वहाँ उसने एक कान्तिमय स्त्री देखी। उसे आश्चर्य हुआ। उसने जिज्ञासा की—वह कैसे विशाल महापुरी मे एकाकी निवास करती है? स्त्री ने उत्तर दिया—'यह गन्धर्वराज की नगरी है। यहाँ कलेवर स्थापित कर वे अमात्यों के साथ काश्मीर मेदिनी की रक्षा हेतु गये हैं। मैं उनके कलेवर की यहाँ रक्षा करती हूँ। वे तीन मास के अन्दर यहाँ लौटकर आने वाले हैं।'

जागने पर उसने स्वप्न वृत्तान्त राजा से कहा। राजाने उत्तर दिया—'स्वप्न के असत्य होने पर भय ही क्या है ? और सत्य होने पर ऐश्वर्य मैं भोग कर ही रहा हूँ। सुलतान ने अपने पुत्रो को बुलाने के लिये सन्देशवाहक भेजा। उसके पुत्र समय पर नही पहुँच सके। अतएव उसने सुलतान पद पर हिन्दू खा को अभिषिक्त किया। उसकी मृत्यु लौकिक वर्ष ४४४९ = सन् १३७३ ई० मे हो गयी।

५. कुतुबुद्दीन : कुद्देन = हिन्दू खाँ = (सन् १३७३-१३८९, श्लोक संख्या ४६४ ५३७) पूर्व भूपति शहाबुद्दीन ने जिन लोगो पर लोहर की रक्षादि का भार दिया था, वे लोहराधिपति के भय से भाग गये थे। कुतुबुद्दीन सुलतान ने लोहर पर अधिकार करने के लिये लोल डामर को भेजा। लोल ने ससैन्य लोहराद्रि को घेर लिया। लोहरपति दुर्ग की रक्षा कठिन जानकर, लोल के पास ब्राह्मण दूतो को भेजा। लोल ने उन ब्राह्मणो को बन्दी बना लिया। ब्राह्मणो के साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार सुनकर, लोहरेन्द्र ने दुर्ग-रक्षा तथा जीवन की आशा त्याग दी। उन्होने जौहर करने का निश्चय किया। वे लोहराद्रि का द्वार खोल कर दुर्ग से नीचे उतरे। लोल डामर युद्ध मे हत हुआ। दुर्ग से फेके पत्थरो द्वारा उसका शरीर ढँक गया।

सुलतान ने दिवंगत सुलतान शहाबुद्दीन के पुत्र को काश्मीर आने के लिये आमन्त्रित किया। राजपुत्र हस्सन निर्विघ्न मद्रराज तक पहुँच गया था। उसने वही पिता की मृत्यु का समाचार सुना। वह लौट जाना चाहता था, परन्तु सुलतान का पत्र मिलने पर, पुन काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। सुलतान का मन दरबारियो के कारण राजपुत्र हस्सन की ओर से विरक्त हो गया।

हस्सन राज्य प्राप्त करने की कामना करता था। सुलतान ने राजपुत्र की यह अभिलाषा जानकर भी उसे बन्दी नही बनाया। उदयश्री राजपुत्र से स्नेह करता था। लोल डामर की भार्या राजपुत्र की धात्री थी। उससे राजपुत्र के जीवन शंका की बात कही। दोनो ने मिलकर षड्यन्त्र किया। सुलतान को धन देने के व्याज से बुलाया जाय। धात्री के घर आने पर सुलतान की हत्या कर दी जाय। दैवात् षड्यन्त्र का भेद खुल गया। उदयश्री भयभीत हुआ। उसने हस्सन को काश्मीर से भगा दिया। सुलतान ने पुरानी सेवाओ का ध्यान कर, उदयश्री को न तो बन्दी बनाया और न उसका वध किया।

उदयश्री राजपुत्र हस्सन से मिलना चाहता था। सुलतान ने यह बात जानते ही उदयश्री को बन्दी बना दिया। राजा ने उसकी हत्या करा दी। उदयश्री के मृत्यु होने पर राजपुत्र हस्सन निरावलम्ब हो गया। खशो ने राजपुत्र हस्सन को बन्दी बनाकर, उसको हत्या हेतु सुलतान के पास भेज दिया।

षड्यन्त्रो आदि से खाली होने पर, सुलतान निर्माण-कार्यो मे लग गया। उसने वितस्ता पर स्वनामांकित पुरी कुतुबुद्दीनपुर बसाया। इस समय इस स्थान पर श्रीनगर के दो मुहल्ले लगरहट्टा तथा पीर मुहम्मद हाजी स्थित हैं। दुर्भिक्ष के अवसर पर, सुलतान ने जनता की यथाशक्ति सहायता की थी। राजा पर वृद्धावस्था ने प्रभाव जमाया। उसके कानो के समीप केश धवल होने लगे। किन्तु प्रौढ़ावस्था बीत जाने और वृद्धावस्था के आगमन पर भी सुलतान को कोई पुत्ररत्न नही हुआ था।

काश्मीर मे योगी ब्रह्मनाथ का आगमन हुआ। योगी की कृपा से सुलतान को सन् १३८१ ई० मे पुत्र हुआ। पुत्र का नाम शृंगार रखा गया। वही कालान्तर मे सिकन्दर बुतशिकन के नाम से प्रख्यात हुआ। कारागार से बन्दियो की रिहाई पुत्रोत्सव के दिन की गयी। कुतुबुद्दीन का देहान्त लौकिक सवत् ४४९० = सन् १३८९ ई० मे हो गया। इस समय सिकन्दर की आयु केवल ८ वर्ष की थी।

६. सिकन्दर बुतशिकन : (सन् १३८९-१४१३ ई०, श्लोक संख्या ५३८-६१२) सिकन्दर की माता सुभटा पुत्र सिकन्दर की अभिभाविका होकर, राजमन्त्रियों उद्र तथा राहुक की सहायता से शासन

करने लगी। सिकन्दर की रजत मुद्रायें प्राप्त हुई है। यह प्रथम मुसलिम सुलतान है, जिसकी रजत मुद्रायें मिलती हैं। सिकन्दर का एक और कनिष्ठ भ्राता था। उसका नाम हैबत खां था। उत्तराधिकार के कारण राज्य को किसी प्रकार का भय न हो इसलिये रानी सुभटा के सुझाव पर उद्दक ने पत्नी सहित अपने दामाद की छल से हत्या करा दी। उद्दक इस हत्या के पश्चात् भयभीत हो गया। अपने सहयोगी मन्त्री साहक की भी हत्या करवा दी।

सिकन्दर कुछ शंकित हो गया। उसे स्वयं अपने वध की सम्भावना प्रतीत होने लगी। वह अपना पक्ष स्वयं शक्तिशाली बनाने लगा। उद्दक ने इसी समय भौट्टदेश जाकर और भौट्टो को जीतकर, अपनी शक्ति और बढा ली। उसने श्रीनगर लौटकर रानी सुभटा के भ्राता खुज्या राजा की हत्या करा दी।

वह सुलतान से शंकित होकर, होलडा चला गया। सुलतान के अनुयायी लब्धराज आदि पद्मपुर धन्वा (पामपुर) पर उद्दक से युद्ध करने के लिये जम गये। इसी समय उद्दक के सैनिक वल्लामठ (दिदमर मुहल्ला श्रीनगर) गये थे। उन्होने रात्रि मे वितस्ता पार भैंसो का समूह देखा। उन्होने समझा, वे सैनिक अश्वारोहियो के घोडे हैं। वे भय से भाग गये। राजा सिकन्दर ने विद्रोहियो का पीछा किया। उन्हे बन्दी बनाकर, श्रीनगर लौट आया। उद्दक बन्दी बना दिया गया। राजा ने तत्काल उसकी हत्या नहीं की। परन्तु उसने स्वयं अपने हाथो अपना गलोच्छेद कर लिया। सुलतान ने पालो पर विजय प्राप्त की।

राज्य शत्रुओ से खाली तथा शान्ति स्थापित कर, सिकन्दर ने विजययात्रा आरम्भ की। किन्तु इसी समय तैमूरलग ने दिल्ली पर आक्रमण कर उसे लूट लिया। तैमूरलग ने दो हाथी सिकन्दर बुतशिकन को भेंट मे भेजा। सिकन्दर का जीवन इस समय तक पूर्व सुलतानो की परम्परा तुल्य चल रहा था। वह खूब दान-पुण्य करता था। उसके दान-मान का गुण सुनकर विदेशी मुसलमानो का झुण्ड का झुण्ड काश्मीर मे प्रवेश कर राजाश्रय प्राप्त करने लगा और काश्मीर की विपत्ति का कारण हुआ। उनके संसर्ग मे सुलतान की रुचि दिन-प्रतिदिन मुसलिम धर्म मे बढने लगी। यह विदेशी मुल्ला, मौलवी, पीर, दरवेश तथा फकीरो के प्रभाव मे आ गया। इसी समय मीर सैय्यद मुहम्मद हमदानी ने खतलान से ३०० शिष्यो के साथ काश्मीर मे प्रवेश किया। सुलतान सिकन्दर उसे भृत्यवत् नमन करता और शिष्यवत् नित्य उससे शिक्षा ग्रहण करता था। सिकन्दर ने उदभाण्डपुर विजय कर वहाँ के शासक की पुत्री मेरा से विवाह किया। वह शाही कुल की कन्या थी। जोनराज रासायनिक धूर्त महादेव की क्रिया का वर्णन करता है। वह स्वर्ण बनाने का स्वाग रचता था। सिकन्दर के लद्दराज, वैद्यशाकर एव सूहभट्ट सर्वकालिक मन्त्री तथा अन्तरग सलाहकार बन गये थे।

सिकन्दर को मेरा देवी से तीन पुत्र मेर खा, शाहिखान तथा खान मुहम्मद हुए थे। सिकन्दर ने अपनी हिन्दू स्त्री शोभा देवी के पुत्रो मे पीरुज अर्थात् फिरोज के अतिरिक्त सबको निष्कासित कर दिया।

जोनराज देवताओ के शक्ति का लोप होना वर्णन करता है। उनमे केवल शिलाभाव रह गया था। सूहभट्ट की प्रेरणा पर, सिकन्दर ने प्रतिमा नष्ट करने की आज्ञा दे दी। प्रतिमा भग विप्लव लवन्यो के दारुण पद्मन्त्र, म्लेच्छराज दुलचा के विप्लव की तुलना मे भयकर था। मार्तण्ड, विजयेश, ईशान, चक्रभृत्, त्रिपुरेश्वर आदि नष्ट कर दिये गये। इसी प्रकार सुरेश्वरी, वाराह आदि की प्रतिमायें नष्ट कर दी गयी। कोई पुर, पत्तन, ग्राम या वन शेष नही रह गया था, जहा प्रतिमायें नष्ट न कर दी गयी हो। प्रतिमा विनष्टि के पश्चात् हिन्दू लोग मुसलमान बनाये जाने लगे, जजिया लगा दिया गया।

राजाके प्रासाद लोभ से भृत्यों ने हिन्दू धर्म शीघ्र ही त्याग दिया। इस काल मे भी कुछ हिन्दू थे, जो धन एवं पद से नही खरीदे जा सकते थे। उनमे यशस्वी सिहभट्ट एवं कस्तूट थे। श्रीनिर्मलाचार्य भी उनमे एक थे। जिन्होने विपत्तियो का सामना किया परन्तु धर्म परिवर्तन स्वीकार नही किया। निर्मलाचार्य ने जाति रक्षा हेतु सर्वस्व त्याग दिया। दोनो वणिको ने अनेक प्रकार का दण्ड स्वीकार किया परन्तु धर्म-पथ पर अडिग रहे।

भृत्य के अपराध के कारण राजा भी दोषी होता है। वह अपराध चाहे सूहभट्ट ने किया हो अथवा विदेशी मुसलमानो ने। परन्तु राजा उसके लिए उत्तरदायी था। सिकन्दर लौकिक वर्ष ४४८९ = सन् १४१७ ई० मे अपने ज्येष्ठ पुत्र को अभिषिक्त कर ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को मर गया।

७. अलीशाह : (सन् १४१३–१४१९ ई०, श्लोक संख्या ६१३–७०७ प्रथम बार) पिता सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् अलीशाह शाहमीर वंश का सातवां सुलतान बना। उसके समय मे सूहभट्ट अधिक शक्तिशाली तथा प्रमुख मन्त्री बन गया। सूहभट्ट ने लद्दमार्गपति को उसके पुत्रो सहित बलात् बन्दी बना लिया। मुहम्मद जीवन भय से भागिला चला गया। वैद्यशंकर सूहभट्ट के साथ सार्वकालिक मन्त्री था। सूहभट्ट के कारण उसे प्राण त्याग करना पडा। महम्मद को पकडने की चिन्ता मे सूहभट्ट व्याकुल रहने लगा। गोविन्द खस के यहां महम्मद ने शरण ली थी। मार्गपति महम्मद के प्रति खस का मन साफ नही था। वह वचन देकर, विश्वास देकर भी, सूहभट्ट के आदमियो के पहुँचते ही, महम्मद को बन्दी बनाकर, उन्हे दे दिया। महम्मद श्रीनगर लाया गया। उसे बहुरूप किला मे बन्दी बना दिया गया।

शाह नामक दासी तथा उसके पुत्रो के प्रयास से पर्वत से कूद कर महम्मद ने प्राण रक्षा की। शाह दासी के पुत्रो ने उसकी बेणियो को काटकर, उसे मुक्त कर दिया। महम्मद के मुक्त होते ही सूहभट्ट ने मार्गेश का वध करा दिया। मार्गेश सर्वप्रिय था। प्रजा दु:खित हुई। महम्मद पलायन कर गया। सूहभट्ट उसके बचकर निकल जाने पर अत्यन्त दुःखी हुआ।

सिकन्दर ने शोभा देवी से उत्पन्न अपने पुत्र फिरोज को निर्वासित कर दिया था। महम्मद ने उसके साथ काश्मीर विजय हेतु प्रवेश किया। उसके साथ तुर्कों की सेना थी। सूहभट्ट ने श्री लद्द तथा गोरक को सामना करने के लिये भेजा। महम्मद की सेना पराजित हो गयी। सूहभट्ट ने लद्दराज को कम्पनाधिपति एवं गोरभट्ट को क्रम-राजेश्वर बना दिया।

सिकन्दर के समय अत्याचार, उत्पीडन, उत्पाटन एवं दमन की भी एक मर्यादा थी। परन्तु अलीशाह के समय सूहभट्ट ने सब मर्यादाओ का अतिक्रमण कर दिया। सूह ने नागयात्रा, याग आदि भी रोक दिया। ब्राह्मण काश्मीर से भाग कर प्राण रक्षा करेंगे, इसलिये इसने मोक्षाक्षर (पासपोर्ट) का नियम बनाया। कोई भी काश्मीर का त्याग बिना राजाज्ञा के नही कर सकता था। ब्राह्मण कष्ट से व्याकुल हो गये। जो अपनी जाति रक्षा हेतु काश्मीर त्यागना चाहते थे, वे भी काश्मीर त्याग नही कर सके।

ब्राह्मण दमन भय से, अग्नि मे कूदकर प्राण विसर्जन करने लगे। कुछ ने विष द्वारा प्राण त्याग किया। कुछ फांसी लगाकर मर गये। कुछ पर्वत से कूदकर मर गये। कुछ जल मे डूब मरे। सूहभट्ट ब्राह्मणो का क्रन्दन सुनकर, प्रसन्नता से फूल उठता था। उस आपत्तिकाल मे पिता ने पुत्र को और पुत्र ने पिता को त्याग दिया। जिसे जहाँ प्राणरक्षा हेतु स्थान एवं मार्ग मिल सका, वे विदेशो मे पलायन का प्रयास करने लगे।

ब्राह्मणों की वृत्ति हरण कर ली गयी। ब्राह्मण समाज पिण्ड लोभ से श्वानों के समान प्रत्येक गृहों के सम्मुख भूख से जीभ निकालते घूमने लगे। सूहभट्ट ने हिन्दुओं को समाप्त करने पर मुसलिम उग्रवादियों पर भी हाथ साफ किया। मुसलमानों के परम गुरु मलानोदीन (मुल्ला नुरद्दीन) को बन्दी बना दिया। वास्तव में काश्मीर में छत्र-चामरहीन उसका राज्य था। अलीशाह केवल नाम के लिये राजा था।

शाही खां अर्थात् जैनुल आबदीन अलीशाह का मझला भाई था। उससे सूहभट्ट शंकित रहता था। किन्तु उसका कुछ बिगाड नहीं सकता था। तीन-चार वर्ष तक द्विजाति पीडा, शास्त्र-निन्दा, द्रोह-चिन्ता में व्यतीत होता गया। वह क्षय रोग से मर गया।

उसके मरते ही हंस एवं गौरभट्ट ने लद्दराज को पकड लिया। हंस एवं गौरभट्ट राज-शक्ति प्राप्ति के लिये संघर्ष-रत हो गये। हंस ने अपना पक्ष शक्तिशाली बनाने के लिये लद्दराज को मुक्त कर दिया। गौरभट्ट संघर्ष में मारा गया। शाहिखान को यह सब अच्छा नहीं लगा। उसने हंसभट्ट का वध करा दिया। प्रजा शाहिखान के प्रति स्नेह रखने लगी। सुलतान ने शाहिखान को युवराज बना दिया। अलीशाह ने अपनी स्थिति सुदृढ़ न देखकर, तीर्थयात्रा अर्थात् मक्का जाने की इच्छा प्रकट कर, राजत्याग दिया। शाहीखान नवीन नाम जैनुल आबदीन धारण कर सुलतान हुआ।

८. जैनुल आबदीन : प्रथम बार (सन् १४१९ ई०, श्लोक संख्या ७०७-७१८) अलीशाह ने जैनुल आबदीन को सुरत्राण उपाधि देकर काश्मीर का सुलतान बनाया। अलीशाह काश्मीर से बाहर चला गया। युवराज से जैनुल आबदीन सुलतान हो गया। जैनुल आबदीन ने अलीशाह को कोश से रत्न तथा उत्तम अश्व दिया। अलीशाह की यात्रा में दो-तीन दिन तक साथ रहा।

९. अलीशाह पुनर्राज्य प्राप्ति ! (सन् १४१९-२० श्लोक ७१८-७५३) मार्ग में सालों ने तीर्थयात्रा मार्ग के क्लेश तथा तीर्थयात्रा की अपेक्षा सुलतान बना रहना अधिक अच्छा है, कहकर अलीशाहका विचार बदलवा दिया। मद्रेन्द्र ने जमाता अलीशाह को तीर्थयात्रा से विरत कर दिया। शरद ऋतु आते ही मद्रेन्द्र जामाता अलीशाह को लेकर काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। जैनुल आबदीन भ्राता अलीशाह के आगमन से प्रसन्न हुआ। किन्तु मद्र सैनिकों का आना, उसे अच्छा नहीं लगा। जैनुल आबदीन ने रक्तपात बचाने के लिये स्वयं राज त्याग दिया।

जैनुल आबदीन ठक्कुरों के साथ काश्मीर से बाहर निकल गया। मद्र सेना के साथ काश्मीर में अलीशाह ने प्रवेश किया। जिन तुरुष्कों की सहायता से अलीशाह सिंहासन पर बैठा था, वे राज्य का शोषण करने लगे। मीर केसर ने काश्मीर मण्डल में महान उपद्रव किया। अलीशाह मूकद्रष्टा बना, सब कुछ देखता रहा। स्त्रियों के सतीत्व नष्ट करने में भी कुछ उठा नहीं रखा गया। अराजकता फैल गयी। शासन पूर्ण शिथिल हो गया। राजा का धन एवं सम्पत्ति यवनों ने ग्रहण कर लिया।

जसरथ ने जैनुल आबदीन को काश्मीर लौटने के लिये प्रेरित किया। क्योंकि जसरथ खोखर मद्रेन्द्र से द्वेष करता था। उसे मद्रेन्द्र का काश्मीर में प्रभाव जमाना अच्छा नहीं लगा। अलीशाह ने जसरथ को दण्ड देने का विचार किया। उसके मन्त्री कायर थे। उनकी निष्ठा विभक्त थी। अलीशाह के सेवक तथा सैनिक जैनुल आबदीन की बढ़ती शक्ति के कारण आतंकित थे। वे अधिक से अधिक लाभ उठाने के अभिप्राय से अलीशाह की चापलूसी करते थे। अलीशाह अपनी शक्ति का मूल्यांकन न कर सका। उनके बहकावे में आकर, जसरथ पर आक्रमण करने के लिये काश्मीर से प्रस्थान किया। राजपुरी के राजा तथा मद्रेन्द्र ने अलीशाह को सहायता का वचन दिया।

अलीशाह मुद्गर व्याल नामक स्थान पर पहुँचा तो राजा मद्र ने सन्देश भेजा—छलयुद्ध प्रवीण खुखरो से सुलतान सावधान रहे। जब तक पूरी सेना तथा शक्ति न आ जाय, पर्वत से नीचे उतरना उचित नही होगा, किन्तु कायर और आत्मश्लाघा से मत्त अलीशाह के मन्त्रणादाताओ ने इस सन्देश को कायरता समझा और जसरथ पर आक्रमण करने की सलाह दी। अलीशाह पर्वत से उतर आया। छलयुद्ध-प्रवीण खुखर सेना ने अवसर मिलते ही अलीशाह पर आक्रमण कर, उसे परास्त कर दिया। अलीशाह की मृत्यु होगयी। विजयी जैनुल आबदीन ने काश्मीर मण्डल मे प्रवेश किया।

१०. जैनुल आबदीन पुनर्राज्यप्राप्ति : (सन् १४२०-१४७० ई०, श्लोक ७५३-९७६) जैनुल आबदीन के अभिषेक और उसके छत्र धारण करने पर, शत्रु हतपौरुष हो गये। काश्मीरेन्द्र का सहोदर भ्राता मुहम्मद खा सुलतान का भोग मे सखा, नय मे मन्त्री, शास्त्र-निर्णय मे विवेकता हो गया था। जोनराज के शब्दो मे महम्मद खा छत्र-चामररहित राजा था। जैनुल आबदीन का स्नेह खुखराधिपति जसरथ से पूर्ववत बना रहा। सुलतान की नीति का प्रभाव यह हुआ कि जनता म आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ और जनता ने स्वय राज, देश, समाज द्रोहियो को दण्ड देना आरम्भ किया। स्वल्पकाल मे ही अराजकता लुप्त हो गयी। सुलतान ने उदार तथा कठोर दोनो नीतियो का अवलम्बन किया।

उसने ब्राह्मणो के साथ उदार एव हिन्दुओ के साथ सहिष्णु नीति का अनुकरण किया। उसके राज्यकाल मे सदाचार का पुन काश्मीर मण्डल मे उदय होने लगा। उसने उग्र सम्प्रदायवादियो के उग्र विचारो मे साम्यभाव लाने का प्रयास किया। न्याय का दर्शन पुन काश्मीर मण्डल म बहुत समय के पश्चात् होने लगा। उसने शक्तिशाली विद्रोहियो को दबाया। उसने पुन, मन्त्री अथवा मित्रो को भी दोप करने पर क्षमा नही किया। सतमार्ग का कभी त्याग नही किया। दिल्ली के सुलतान ने जसरथ को जब त्रस्त करना आरम्भ किया तो सुलतान ने उसे प्रश्रय दिया। उसकी सहायता कर, उसके पूर्व उपकारो से उऋण होने का प्रयास किया। उसने मुसलमानो को भी अपराध करने पर वध दण्ड दिया। घूसखोर न्यायकर्ताओ के भ्रष्टाचार को रोका। वह योगियो का आदर करता था।

जोनराज ने सुलतान की न्यायप्रियता के अनेक उदाहरण उपस्थित किये है। उनका वर्णन करता सुलतान की प्रशसा करता है।

इसी समय कष्टकर विषैला फोडा सुलतान के प्रकोष्ट मे हो गया। सिकन्दर बुतशिकन और अलीशाह की हिन्दू-विरोधी तथा दमन नीति के कारण वैद्यो का अभाव काश्मीर मे हो गया था। जो पुरातन शास्त्र जानने वाले थे वे, भी प्राणभय से अपनी विद्या गोपनीय रखते थे। अति अन्वेषण के पश्चात् गारुडशास्त्रज्ञाता शिर्यभट्ट मिला। किन्तु शिर्यभट्ट ने चिकित्सा के पूर्व अपने जीवन रक्षा का विश्वास राजा से प्राप्त किया। अभय प्राप्त कर, शिर्यभट्ट ने राजा को स्वस्थ कर दिया। शिर्यभट्ट से सुलतान प्रभावित था। उसकी कीर्ति बढ़ी। राजा सुखी हुआ, प्रजा हर्षित हुई। सुलतान ने शिर्यभट्ट को धन से सन्तुष्ट करना चाहा। उसने सुलतान से हिन्दूओ पर लगे जजिया को माफ कराकर, नाममात्र के लिये रखवा दिया। ब्राह्मण केवल एक माशा रजत जजिया प्रतिवर्ष देने लगे। अलीशाह के समय १२ तोला चाँदी जजिया रूप मे प्रत्येक व्यक्ति को देना पडता था।

सुलतान ने चोरी बन्द करने का एक विचित्र उपाय निकाला, जो आजकल के सामूहिक जुर्माने के तुल्य था। यदि किसी ग्राम या वन मे कोई पथिक लुट जाता था, तो उसका हर्जाना ग्राम तथा वनस्वामियो को देना पडता था।

हिन्दू लोग भी राज्य सेवा में लिये जाने लगे। राजा ने तिलकाचार्य को महत्तम पद दिया। उसके राज्यकाल में सिर्यभट्ट, तिलक तथा सिंह गणनापति थे। कर्पूरभट्ट ने सुलतान की प्राण रक्षा किया था। सुलतान ने गुणियों का संग्रह किया। सभ्य भट्ट अपने समय का श्रेष्ठ ज्योतिषविद् था। उसे भी सुलतान का आश्रय प्राप्त था। श्री रामानन्द पाद ने इसी समय भाष्य लिखा था।

राजनीतिक क्षेत्र में जैनुल आबदीन काल में सीमा तथा समीपवर्ती राजाओं में सम्पर्क वृद्धि हुई। गान्धार, सिन्धु, मद्र राजागण सुलतान के मित्र थे। खुखुरों द्वारा विजित मद्रेश मालदेव को राजा ने मुक्त कराया। सुलतान ने राजपुरी के राजा रणसूह को पराजित किया। उद्भाण्डपुर के राजा का भी मद-मर्दन किया। उसने भौट्टों के देश गोगदेश पर तथा वायदेश पर विजय प्राप्त किया। उसने सलूत नगर भी जीता।

सुलतान ने दण्ड व्यवस्था भी सन्तुलित की। वह अकारण किसी को दण्ड नहीं देता था और प्रतिहिंसा से दूर था। उसने लद्दराज के पुत्र नुसरत को विद्रोही जानकर भी, उसकी हत्या न कर, देश-निर्वासन का दण्ड दिया। यह उस समय की स्थिति देखते बड़ी बात कही जायगी।

जैनुल आबदीन के समय विदेशों से अनेक विद्वान् तथा कलाविदों ने प्रवेश किया। मक्का से सादुल्ला अपने पाण्डित्य का बखान करता, पुस्तकों के ढेर के साथ आया, उस आत्मश्लाघी के पास सुलतान धर्म उपदेश ग्रहण करने के लिये जाता था। किन्तु उसकी अन्तःसार-विहीनता को सुलतान ने परख लिया। तथापि उस पर विरक्त नहीं हुआ।

इसी समय एक जितेन्द्रिय योगिराज काश्मीर में आया था। वह एक ऊँचे स्तम्भ पर आरूढ़ रहता था। स्तम्भ पर निराहार नव दिन तक स्थित रहकर उसने सुलतान को आशीर्वाद दिया। राजमहिषी ने उस आशीर्वाद के प्रभाव से पुत्ररत्न प्राप्त किया। सादुल्ला योगी की बढ़ती सर्वप्रियता के कारण ईर्ष्या करने लगा। उसने योगी की हत्या बाणों से कर दी। सुलतान ने सादुल्ला को दण्ड देना चाहा। विधि-शास्त्रियों ने उसे प्राणदण्ड देने का सुझाव दिया। सुलतान ने उसकी हत्या न कर, उसकी दाढ़ी मानव मूत्रों से सींचकर, मुड़वा दी और गदहा पर उल्टे बैठाकर, अँतड़ी से उसका हाथ बँधवा कर, बाजार में घुमवाया। उस पर लोग थूकते थे।

सुलतान ने मद्रराज की दो कन्याओं से विवाह किया था। उनसे चार पुत्र आदम खाँ, हाजी खाँ, जसरथ खाँ तथा बहराम खाँ हुए। राजा ने अत्यधिक निर्माणकार्यों को किया था। उसने उत्पलपुर में नहर निकलवाई। उसने नहर नदी का उपयोग कृषी के लिये करने की योजना बनाई। इसी प्रकार नन्दशैल, चक्रधर, मराल, अवन्तिपुर में नहर निकाल कर कृषी की उन्नति तथा उत्पादन की वृद्धि की। इस प्रकार सुलतान ने देवमातृका पृथ्वी को नदीमातृका बना दिया था।

कराल देश में जैनपुरी, शफला, शारिका पर्वत से अमरेश (अम्बुरहर) पुर तक जैननगरी को मठों, मण्डपों एवं हाटों से भर दिया। सुय्यपुर के पार जैन नाम्नी नगरी सुलतान ने बसाई। उसने गुरेशकी में सिद्धपुरी राजधानी बनाई। उसने मार्तण्ड तथा अमरनाथ के प्रासाद-शिखरों का निर्माण कराया।

वाराह (बारहमूला), विजय (बिजबोर) तथा ईशानादि (ईशाबर) में उसने यवनों को विहार सहित अग्रहार दिया। उसने विजय, वाराह तथा सोपोर में अन्नसत्र खोला। वहाँ गरीबों को निःशुल्क भोजन दिया जाता था।

सुल्तान ने रजिस्ट्री विभाग भी खोला। विक्रय पत्रादि की रजिस्ट्री की जाती थी। उसने खानो से ताम्र प्राप्त कर, ताम्र मुद्राये टंकणित कराई। उसने खानो से मणियो के निकालने का व्यवसाय चलाया। इन मणियो का नाम जैनमणि पडा। स्वर्ण पिप्पिलिका का वर्णन पुरा साहित्य मे बहुत आता है। सुलतान ने इस व्यवसाय को बडे पैमाने पर आरम्भ कराया। नदियो के बालू से स्वर्ण रेत निकाली जाने लगी। उनसे काश्मीर का स्वर्ण व्यवसाय चमक उठा। वह स्वर्ण निकालने वालो से केवल छठा हिस्सा कर मे लेता था।

सुल्तान के सहयोगियो ने भी निर्माणकार्यों मे रुचि ली। कॉन्त डामर ने श्रीनगर के अन्दर लगभग एक कोश तक शिलामय सेतु निर्माण कराया। इसी प्रकार नगर के मध्य सेतु का निर्माण किया गया। शिर्यभट्ट ने परगनो मे मठो का निर्माण कराया। राजा के अन्य सचिवो ने अनेक धर्मशालाओ का निर्माण कराया।

सुलतान के धातृपुत्र मसोद, (मसूद) तथा शूर थे। राजा ने उनके विवादो को शान्त कर, उन्हे परस्पर ईर्ष्या द्वेष त्याग देने के लिये जोर दिया। मसूद ने शूर के कारण शस्त्र सन्यास ले लिया।

एक दिन मसोद ठाकुर कुछ सेवको के साथ निरस्त्र रात्रि मे जा रहा था। सुअवसर देखकर शूर ने मसोद ठाकुर को मार डाला। शूर की यह क्रूरता और निरस्त्र पर आक्रमण से चिढकर विन्नादि ठाकुरो ने सुल्तान पर जोर दिया कि शूर को मृत्यु दण्ड दिया जाय। विन्न ठाकुर ने अनुचर सहित शूर की हत्या कर दी।

जैनुन आबदीन योगियो का आदर करता था। उन्हे दानादि बहुत देता था। ज्यो-ज्यो वह वार्धक्य प्राप्त करता गया, उसकी प्रवृत्ति धर्म एवं दर्शन की ओर बढती गयी। वह मनसा, वाचा, कर्मणा काश्मीरी था। वह अन्य चिन्ताओ को त्याग कर, नीलमतपुराण पण्डितो से सुनता था। जोनराज काश्मीर के विषय में उसका मत व्यक्त करता है—'शरीर के मुख सदृश त्रैलोक्य का मुख क्षिति मण्डल है। उसके नेत्र के समान काश्मीर मण्डल है। जहाँ पर्वतराज की शिखाये पक्ष तुल्य है। उसमे यहाँ पद्मसर तारा मण्डल सदृश है। और महापद्मास्पद ज्योतिर्मण्डल का सहोदर है (श्लोक ९०८–९१०)।'

सुल्तान ने महापद्मसर मे जैन लंका का निर्माण कराया। इस प्रसंग मे जोनराज ने एक पुरातन आख्यान का वर्णन किया है। जिसमे पूर्वकाल मे महापद्मसर के स्थान पर नगर होने का उल्लेख किया गया है। वह नगर जल कम होने पर, दिखाई पडता था। इस प्रसग का वर्णन जोनराज साहित्यिक भाषा मे करता है।

जोनराज जैनुल आबदीन के विषय मे अपना मत प्रकट करता है—'नष्ट काश्मीर को पुनः योजित करने के लिये इच्छुक हरि के तुम अवतार हो (श्लोक ९३५)।' उसके जैन लका बनाने का उद्देश्य जोनराज देता है—'उल्लोलसर (उलरलेक) के मध्य मे वर्तमान पवित्र एव विजन महास्थल पर साधक लोग सिद्धि प्राप्त करेंगे। यह चिन्तन कर राजा ने दृढ शिलाओ से प्रवहणो द्वारा उल्लोलसर का अगाध जल पाट दिया (श्लोक ९३९–९४०)।' निर्माणकाल सन् १४४३–१४४४ ई० वहाँ से प्राप्त शिलालेख से मिलता है।

सुलतान ने सुरत्राणपुर (सुलतानपुर) जैनकोट, जैनपत्तन, जैनकुण्डल निर्माण कराया। साथ ही प्रसिद्ध शिल्पी सुय्यभाण्डपति द्वारा उसने अनेक निर्माण तथा जीर्णोद्धार का कार्य किया था।

सिकन्दर बुतशिकन के समय हिन्दू दाह संस्कार नहीं कर सकते थे। डोम भी मुसलमान हो गये थे। इन्होंने काम करना अस्वीकार कर दिया था। जैनुल आबदीन ने डोमो को पकड़वाकर, पूर्ववत् उनसे हिन्दुओ का मृतक कर्म करवाया। सुलतान दयालु प्रकृति का व्यक्ति था। उसने अनेक पवित्र सरोवरो पर पक्षियो तथा मछलियो के मारने पर प्रतिबन्ध लगा कर, जीवहत्या वर्जित कर दी थी।

सुलतान के सन्दर्भ मे जोनराज ने अमात्य परिषद का उल्लेख किया है। यह पहला स्थल है, जहाँ परिषद का उल्लेख जयसिंह से जैनुल आबदीन तक के काल मे किया गया है। इससे प्रकट होता है कि पुरातन शासन पद्धति को भी सुलतान ने चलाने का प्रयास किया था।

क्रूरदण्ड मे सुलतान विश्वास नहीं करता था। वह अपराधियो के सुधार पर विशेष जोर देता था। उसने गौरक गणनापति की पदोन्नति उसके उचित दण्ड देने के कारण की थी। वह प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार तथा अन्याय होना बर्दाश्त नहीं कर सकता था। जिन राज्य-कर्मचारियो पर घूस लेने का सन्देह अथवा उनके विरुद्ध प्रमाण प्राप्त था। उनसे घूस लिया धन घूस देने वालो को वापस दिला दिया। जोनराज मौलाना मुल्ला इसहाक का एक उदाहरण उपस्थित करता है, जिसे घूस का धन वापस करना पड़ा था।

जैनुल आबदीन के जीवन के अन्तिम चरण मे उसके सहयोगी महम्मद खां, ठक्कुर महिम, दिव्य, शिर्यभट्ट, प्रायः एक साथ ही दिवंगत हो गये। राजा उनके चले जाने पर अपने पुण्यकार्यों से विरत नहीं हुआ। उसकी धार्मिक सहिष्णु प्रवृत्ति मे अन्तर नहीं पड़ा। राजा इतना दानी था कि एक ही दिन एक करोड़ दीनार बाल्वो को दे दिया। जोनराज अन्तिम तीन श्लोको मे लिखता है—'इसके राज्य मे अद्भुत पदार्थों का सग्रह हुआ था, नहीं तो यह नारायण का अवतार कैसे जाना जाता? हिमांशु का पीयूष प्रवाह, जिसके नित्य भिक्षुक बने रहते, ऐसे इक्षुओ को मारतण्ड देश की भूमि मे उसने आरोपित किया। योग माहात्म्य के कारण बली एव पालित विकार का त्याग करते हुए, श्रीमद्दर्शननाथ (सुलतान) ने अपना विबुधत्व प्रकाशित कर दिया। बाद के समय शस्य सम्पत्ति को नष्ट करने वाली सिन्धु नदी को तूलमूल से खींचकर भराखागामिनी बना दिया (९७३-९७६)।' जोनराज के ये अन्तिम श्लोक हैं। जोनराज ने राजतरंगिणी लिखकर समाप्त नहीं की थी। उसके वर्णनक्रम तथा अकस्मात् एक घटना, जिसके पश्चात् कुछ और लिखा जाना चाहिए था, समाप्त हो जाने से प्रतीत होता है कि ग्रन्थ बिना पूर्ण किये अकस्मात् कवि की मृत्यु हो गयी। अतएव यह ग्रन्थ अपूर्ण रह गया है।

काश्मीर के राजा

नाम राजा	श्लोक	सन् इस्वी	राज्य काल		
			वर्ष	मास	दिन
१. जयसिंह	२७–३८	११२८–११५५	२६	११	२७
२. परमाणुक	३९–४८	११५५–११६४	९	६ (७)	१०
३. वन्तिदेव	४९	११६४–११७१	९	६	×
४. वोपदेव	५०–५०	११७१–११८१	९	४	१७
५. जस्सक	५६–६४	११८१–११९९	१८	×	१३
६. जगदेव	६५–७५	११९९–१२१३	१४	२	३
७. राजदेव	७६–८७	१२१३–१२३६	२३	३	२७
८. संग्रामदेव	८८–१०४	१२३६–१२५२	१६	×	१०
९. रामदेव	१०५–११२	१२५२–१२७३	२१	१	१३
१०. लक्ष्मदेव	११३–११७	१२७३–१२८६	१३	३	१२
११ सिंहदेव	११८–१२९	१२८६–१३०१	१४	५	२७
१२. सूहदेव	१३०–१७३	१३०१–१३२०	१९	३	२५
१३. रिंचन	१७४–२२२	१३२०–१३२३	३	१	१९
१४. उदयनदेव	२२३–२६३	१३२३–१३३९	१५	२	२
१५. कोटारानी	२६४–३०६	१३३९–१३३९	×	५	१२

काश्मीर के सुलतान

नाम सुलतान	श्लोक	राज्य प्राप्ति	राज्य काल		
			वर्ष	मास	दिन
१. शमसुद्दीन (शाहमीर)	३०७–३१५	१३३९–१३४२	३	×	५
२. जमशेद	३१६–३३८	१३४२–१३४३	१	१०	×
३. अलाउद्दीन	३३९–३५९	१३४४–१३५४	१२	८	१३
४. शिहाबुद्दीन	३६०–४६३	१३५४–१३७३	१५	४	१५
५. कुतुबुद्दीन	४६४–५३७	१३७३–१३८९	१६	२	३
६. सिकन्दर	५३८–६१२	१३८९–१४१३	२३	८	६
७. अलीशाह	६१३–७०६	१४१३–१४२०	६	९	×
८. जैनुल आबदीन	७०७–७१८	१४१९	—	—	—
९. अलीशाह (द्वितीय बार)	७१८–७५२	१४१९–१४२०	५	६	×
१०. जैनुल आबदीन (द्वितीय बार)	७५३–९७६	१४२०–१४७०	—	—	—

(द्वितीय लोहर वंश) वंशावली

(१) जयसिंह (सिंहदेव)

(२) परमाणुक

(३) वन्तिदेव (अवन्तिदेव)

......

(४) वोपदेव

(५) जस्सक (जस्सदेव)

(६) जगदेव

(७) राजदेव

(८) संग्रामदेव

(९) रामदेव

(१०) लक्ष्मदेव (लक्ष्मणदेव) (दत्तक पुत्र)

.. ...

(११) सिंहदेव

(१२) सूहदेव (सहदेव)

......

(१३) रिंचन (भोट्ट) ∞ कोटारानी

हैदर (चन्द्र)

......

(१४) उदयनदेव ∞ कोटारानी

जट्ट (बालरत्न)

......

(१५) कोटारानी

(शाहमीर) वंशावली
पार्थ
बभ्रु वाहन
कुरुशाह
ताहराल
(१) शाहमीर
(२) जमशेद(ज्यंसर)
(३) अलाउद्दीन(अल्लेश्वर) = कम्पनेश्वर लक्ष्म की कन्या
गुहरा = कोटराज
पुत्र
कन्या = तैलाक शूर
(४) शिहाबुद्दीन = लक्ष्मी पुत्री अवतार शिर शाटक, शीर अशामक
(५) कुतुबुद्दीन (कुद्देन, हिन्दल, हिन्द, हिन्दूखा) = पत्नी सुभटा
कन्या = पति छुत्सा (कम्पनेश्वर)
हसनखा
अलीखा
(६) सिकन्दर बुतशिकन = पत्नी (१) शोभा (२) मेरा
हैबत
कन्या = मुहम्मद
फिरोज (शोभा पुत्र)
मुहम्मद (शोभा पुत्र)
(७) अलीशाह (मेरखान) (मेरा पुत्र)
(८) जैनुल आबदीन (मेरा पुत्र) = बोधा खातून
मुहम्मद खां (मेरा पुत्र)
आदम खान
(९) हैदर शाह (हाजी खान)
बहराम खान
जसरथ

श्रीजोनराज-कृता

राजतरङ्गिणी

सिद्धे यत्र सति त्रपाकुलमिव स्पर्धाभिलापाहते-
रन्तर्धिं वहति त्रिलोकमहितं शेषं निजार्धद्वयम् ।
स्नेहैकीभवदाशयद्वयजयाकाङ्क्षीव गाढं मिल-
द्देहार्धद्वयमस्तु तद्भगवतोः सद्भावसम्पत्तये ॥ १ ॥

१ परस्पर-अतिशय स्पर्धाभिलापा के क्षीण होने से त्रिलोकमहित शेष निज-अर्धद्वय त्रपाकुल-सा होकर अन्तर्हित हो गया है। मानो आशय[2] द्वय (सुख-दु:ख का कारणभूत) के जयाकांक्षी होकर, स्नेह से एकाकार एवं दृढता से मिलता हुआ, शिव तथा पार्वती का देहार्धद्वय,[3] सद्भाव सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये हो।

पाद-टिप्पणी :

१. (१) उक्त श्लोक मे पुनरुक्ति है। 'अन्तर्धि,' 'स्नेहैकीभव', एवं 'गाढं मिलद्देहा' तीनो ही प्रायः समानार्थक है।

(२) आशय = आशय का अर्थ सुख एवं दुःख होता है। ईश्वर की परिभाषा करते हुए पातंजल योग दर्शन ने आशय शब्द का प्रयोग किया है। क्लेश, कर्म, विपाक एवं आशय सम्बन्धरहित, पुरुषविशेष को ईश्वर माना गया है। (योग दर्शन : १ : २४) आशय कर्मों के संस्कारो का नाम है। क्लेशमूलक, धर्म संस्कारो का समुदाय दृष्ट एवं अदृष्ट दोनो प्रकार के जन्मों में भोगा जाने वाला है। (योग दर्शन : २ : १२) अविद्यादि क्लेशो के गत हो जाने पर किये हुए कर्मों से कर्माशय की उत्पत्ति नही होती।

(३) देहार्धद्वय : पार्वती एवं शिव के अर्ध शरीर मिलकर संयुक्त होने से अर्धनारीश्वर का रूप बनता है। यह भगवान का प्रतीकात्मक रूप है। इस स्वरूप की व्यंजना स्पष्ट है। द्यावा-पृथिवी लोको की मध्यवर्ती सृष्टि है। वह माता-पिता है, योषा-वृषा प्राण है। अग्नि-सोम, पुरुष-स्त्री, पति-पत्नी के द्वन्द्व से ही यह सृष्टि उत्पन्न होती है।

प्रजापति आदि मे एक था। उसमे सृष्टि की इच्छा हुई। उसने अपने शरीर का दो खण्ड किया। अर्ध मे स्त्री तथा अन्य अर्ध मे पुरुष भाव का निर्माण किया। सृष्टि के लिये पुरुष तत्व एवं स्त्रीतत्व दोनो के मैथुन धर्म की आवश्यकता है। प्राणी मात्र की उत्पत्ति का यही मूलस्रोत है। मातृ एव पितृ भाव को पुराणो की प्रतीकात्मक भाषा मे पार्वती परमेश्वर कहा जाता है। वैदिक साहित्य मे शिव-पार्वती ही रुद्र एवं अंबिका है। (शत० ब्रा० ' ५ ' ३:१:१०)

अन्न अन्नादि है। सोम उसका अन्नरूप मे संभरण करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे (१ : १ : ५ : ८-९) रुद्र को अग्नि माना गया है। अग्नि का अंशभूत सोम है। सोम एवं अग्नि ही जगत के मूलभूत माता-पिता हैं। वेद की अद्भुत कल्पना है। जहाँ अग्नि है वही अर्धभाग मे सोम है। पुरुष मे अग्नितत्व प्रधान है। स्त्री मे सोमतत्व प्रधान है। स्त्री मे पुरुष का अर्धभाग विद्यमान रहता है। स्त्री का शोणित आग्नेय एवं पुरुष का शुक्र सोमभाव से युक्त है। शुक्र वृष है, नर है। शोणित योषा है, मादा है। (ऋ० : १ ' १६४ : १६)

पुरुष नारी मे बीज वपन करता है। आश्रित गर्भ की सृष्टि को विराज कहते हैं। प्रत्येक उत्पन्न होने वाला प्राणी विराट् का ही स्वरूप है। अग्नि लक्षणान्तर सोम लक्षण नारी को गर्भित करता है। नारी अग्निकण को गर्भ मे धारण करती है, संवर्धन करती है। बीज विराटभाव प्राप्त करता है। वही प्रजा है। पिता-माता, शिव एवं शक्ति-पार्वती का रूप है। रुद्र का विरहित रूप घोर है। शक्ति के साथ यह शिव हो जाता है। अग्नि मे सोम की आहुति ही *याग है। यज्ञ का स्वस्तिभाव शिव एवं* शक्ति है। वह अग्नि एव सोम के समन्वय पर निर्भर है। यह समन्वित रूप ही अर्धनारीश्वर है।

कथा है : ब्रह्मा ने सृष्टि की इच्छा की। उन्हें केवल पुरुष भाव से सफलता नहीं मिल सकी। उन्होंने शिव की आराधना की। शिव ने उन्हें अर्धनारीश्वर रूप मे दर्शन दिया। ब्रह्मा को सृष्टि विधान की युक्ति का उस समय ज्ञान हुआ। भारत मे ही नहीं मैंने थाईलैण्ड, कम्बोडिया आदि दक्षिण-पूर्व के देशो मे अर्धनारीश्वर की मूर्तियाँ देखी है। ऐंग्लोरवाट कम्बोडिया अर्थात् कम्बुज मे अर्धनारीश्वर की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा मैंने देखी है। एलोरा के कैलाश मन्दिर मे अर्धनारीश्वर की प्रभावशाली मूर्ति है। सबमे प्राचीन अर्धनारीश्वर की मूर्ति कुषाणकालीन प्रथम सदी की है। वह मथुरा मे प्राप्त हुई है।

पौराणिक कथाएँ अर्धनारीश्वर के सम्बन्ध मे प्रचलित है। ब्रह्मा ने प्रजोत्पत्ति के लिये तप किया। शंकर प्रसन्न हुये। इनके शरीर से अर्धनारीश्वर रूप प्रकट हुआ। (शिव : शत ३) पार्वती की आज्ञा से दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध हुआ। पार्वती अरुणाचल पर तपस्या कर रही थी। शंकर पार्वती के पास आये। देवी को वामाक पर लिया। पार्वती शंकर के वामाक मे लीन हो गयी। शिव का अर्ध रूप शुभ्र तथा अर्ध ताम्र छटा युक्त, अर्ध भाग चोली, अर्ध मे हार, इस प्रकार शिव पार्वती-अर्धनारी नटेश्वर रूप मे दिखायी देने लगे। (स्कन्द० : १ ' २ : ३-२१)

पौराणिक साहित्य मे एक और कथा स्वयंभुव मनु के सम्बन्ध मे प्राप्त होती है। वे ब्रह्मा के पुत्र थे। सृष्टि एवं प्रजा-वृद्धि के लिये ब्रह्मा ने उनकी उत्पत्ति की। (मत्स्य० . ३ : ३१) इनका विराज नामान्तर भी मिलता है। (मत्स्य० : ३ : ४५) जन्मकाल मे अर्धनारी देहधारी थे। कालान्तर मे ब्रह्मा ने शरीर से नर एवं नारी दो भाग किये। उसके पुरुष भाग से वह स्वयं तथा स्त्री भाग से पत्नी शतरूपा बन गयी। (मार्क० : ५०; विष्णु० : १ : ७२, भा० : ३ : १२ : ५३, वायु० : १ : १ : १०)

यह कथा बाइबिल वर्णित आदम एवं हौवा की कथा से मिलती है। भगवान ने सर्वप्रथम आदम को बनाया। तत्पश्चात् उसके शरीर की एक पसली

दातुं भक्ताय कल्याणं गर्भं बिभ्रदिवान्वहम् ।
तुन्दिभो गणराजः स विघ्नशान्तिं करोतु वः ॥ २ ॥

२ भक्त को देने के लिये सर्वदा कल्याण गर्भ धारण करते, वे लम्बोदर गणराज[1] (गणेश) आपलोगों का विघ्न शान्त करें।

से हौवा बनाया। इस प्रकार पुरुष एवं नारी एक ही शरीर के अंग हैं।

मनुस्मृति में भी इसी प्रकार की एक कथा दी गयी है। हिरण्यगर्भ को सृष्टि-रचना की इच्छा हुई। उसने अपने शरीर के दो भाग किये। अर्धभाग से नारी तथा द्वितीय अर्धभाग से पुरुष हुए। (मनु० : १ . ३२) देवीभागवत में कथा दी गयी है। ईश्वर स्वयं अपनी इच्छा से दो भागों में विभक्त हो गया। दक्षिण भाग पुरुष तथा वाम भाग नारी का हुआ। यह कार्य उसने सृष्टि रचना की दृष्टि से किया था। (दे० भा० . २ : २७) रामायण किष्किन्धा काण्ड में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि स्त्री का मूल पुरुष से भिन्न नहीं है। (वा० रा० कि० . ३४ : ३८) हिन्दू वाङ्मय में केवल पुरुषाकार ईश्वर की ही कल्पना नहीं की गयी है। उसके साथ नारी की भी कल्पना की गयी है।

काश्मीर निवासी मुख्यतया शिव के उपासक थे। शैवदर्शन उनके रोम-रोम में मिल गया था। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी के प्रत्येक सर्ग में अर्धनारीश्वर का ध्यान किया। मंगल-कामना उनके नाम के साथ की है।

जोनराज ने कल्हण की राजतरंगिणी लिखने का क्रम जारी रखा। यद्यपि देशकाल में जमीन-आसमान का अन्तर पड़ गया था। कल्हण काल में जनता हिन्दू थी। काश्मीर उपत्यका में सहस्रों मन्दिरों में सन्ध्या-आरती की ध्वनि जाग्रत उठती थी। घण्टे घनघना उठते थे। शंखध्वनि से उपत्यका गूँज उठती थी। नारियाँ आरती के साथ मंगल गीत गाती मन्दिरों में पूजा के लिये जाती थीं। वह एक समय था जब भारतीय संस्कृति का दर्शन मिलता था। जिस समय जोनराज ने द्वितीय राजतरंगिणी लिखी थी उस समय काश्मीर खण्डहरों का प्रदेश था। खण्डित शिला-खण्डों की श्मशान भूमि था। सभी मन्दिर नष्ट हो गये थे। ध्वंसावशेषों का काश्मीर संग्रहालय था। जनता हिन्दू से मुसलमान हो गयी थी। नवीन धर्म, नवीन संस्कृति के उन्माद में सभी पुरानी चीजें व्यर्थ हो गयी थीं। उन्हें भूलने एवं भुलाने का महा प्रयास आरम्भ हो गया। काश्मीर अतीत की कहानी होकर, नवीन अध्याय अपने जीवन में खोज रहा था। ध्वंसावशेषों के मध्य बैठकर, पूर्व को विस्मृत करता भविष्य की नवीन कल्पना कर रहा था। जोनराज की रचना में अर्धनारीश्वर के प्रति वह उद्वेगमयी, उत्साहमयी, ओजमयी वाणी नहीं निकलती जो कल्हण के मुख से प्रकट हुई थी। कल्हण के समय सुरेश्वरी में अर्धनारीश्वर की पूजा होती थी। जोनराज के समय सुरेश्वरी के अन्य मन्दिरों के साथ अर्धनारीश्वर की मूर्ति एवं मन्दिर खण्डित हो चुके थे। उस उदासी की छाया, निराशा की छाया जोनराज के पदों में मिलती है।

पाद-टिप्पणी

२ (१) गणराज : गणपति, गणेश, गजानन से यहाँ अर्थ है। लम्बोदर गणेश के लिये रूढ़ हो गया है। ज्ञानेश्वरी गीता की टीका में सन्त ज्ञानेश्वर ने गणेश के रूप का सुन्दर वर्णन किया है। मुझे गणेश सम्बन्धी सब रूपकों में यह रूपक अत्यधिक अच्छा लगा है। गणपति शब्द की व्याख्या तथा इतिहासादि के लिए द्रष्टव्य है : रा० : १ : ३०१।

श्रीगोनन्दमुखैर्धर्मसंमुखैरा कलेः किल ।
कश्मीरकाश्यपी भूपैरपालि गुणशालिभिः ॥ ३ ॥

३ धर्म को सम्मुख करने वाले गोनन्द प्रमुख गुणशाली भूपों ने कलियुग से लेकर (अब तक) काश्मीर काश्यपी[1] पर शासन किया ।

तेषामभाग्यहेमन्तनिशातमसि तिष्ठति ।
नैव कश्चिदपश्यत्तान्काव्यार्कोनुदयाच्चिरम् ॥ ४ ॥

४ उनके अभाग्यरूपी[1] हेमन्त[2] निशान्धकार (लम्बे अन्धकार) के रहते, चिरकाल तक काव्य रूपी सूर्योदय न होने के कारण उन्हे किसी ने नहीं देखा ।

पाद-टिप्पणी :

३. (१) काश्यपी : कल्हण ने काश्मीर के लिये काश्यपी शब्द का प्रयोग किया है। (रा० : ३ : ४५) काश्यपी पृथ्वी के २७ नामो मे से एक है। कल्हण ने 'नृपतिः काश्यपी' काश्मीर के राजाओ के लिये प्रयोग किया है (रा० : १ : १९१) कल्हण 'काश्यपी भुजाम्' (रा० : १ : ४५) मे काश्मीर शब्द का प्रयोग किया है।

पाद-टिप्पणी :

४. (१) अभाग्य : कल्हण के पूर्व, सुव्रत, क्षेमेन्द्र, नीलमत पुराण, हेलाराज, पद्ममिहिर श्रीच्छविल्लाकर के अतिरिक्त अन्य ग्यारह इतिहास लेखको की रचनायें उपलब्ध थी। (रा० १ : १४) कल्हण उन सब की तालिका तथा नाम नहीं देता। तथापि ५२ राजाओ का इतिहास लुप्त था। कल्हण स्पष्ट कहता है : कौरव एवं पाण्डवो के कलियुग समकालीन तृतीय गोनन्द के पूर्व हुए काश्मीर मण्डल के राजाओ का इतिहास नष्ट हो गया है। (रा० : १ : ४४) गोनन्द द्वितीय के पश्चात् हुए ३५ राजाओ का भी इतिहास लुप्त हो गया है। श्री हसन ने एक तालिका पैंतीस राजाओ की दी है। परन्तु वह कृत्रिम है। (द्रष्टव्य० रा० : १ : परिशिष्ट : 'प' : पृष्ठ १३३)

जिस राजा को कवि स्मरण नहीं करता, जिसका जीवन चरित लिखने के लिये लेखनी नही उठती, उन्हे जोनराज अभागा मानता है। वह दूसरा कारण यह भी उपस्थित करता है कि कोई कवि नही उत्पन्न हुआ, काव्य का सूर्योदय नही हुआ। जिसके कारण उनका जीवनवृत्त लिखा जाता। जोनराज कवियो को भी दोष देता है। उस काल मे ऐसे कवियो का अभाव था जो काव्यरचना करने मे समर्थ होते, उन राजाओ का इतिहास लिखते। जोनराज ने इतिहास के अभाव का दोष राजा तथा कवि दोनो को दिया है। यदि राजा श्रेष्ठ होता है तो उसकी राजसभा कवियो मे पूर्ण होती है। एक दूसरा कारण और है। देश मे संस्कृत काव्य-सृजन की परम्परा लुप्त हो गयी थी। जिसके कारण किसी कवि की लेखनी लिखने के लिये नही उठी।

कल्हण पूर्वकालीन राजाओ के इतिहास लुप्त होने का कारण उनका 'कुरत्य' देता है। जोनराज विनम्रतापूर्वक दोष भाग्य को देता है।

(२) हेमन्त : मार्गशीर्ष एव पौष मास।

रसमय्या गिरा वृद्धां नित्यतारुण्यमापिपत् ।
अथ श्रीजयसिंहान्तं तत्कीर्तिं कल्हणद्विजः ॥ ५ ॥

५ तदनन्तर द्विज कल्हण ने जयसिंह पर्यन्त उनकी वृद्धा कीर्ति को रसमयी वाणी द्वारा तारुण्ययुक्त कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

५ (१) कल्हण : जोनराज कवि कल्हण की यहाँ प्रशंसा करता है। कल्हण के कारण उन लोगों की कीर्ति जो वृद्ध किंवा पुरानी हो गयी थी, वृद्धत्व के कारण लुप्त हो जाती, उसे कल्हण ने नवीन जीवन-दान देकर, उनकी वृद्ध कीर्ति को तरुण बनाया था। यदि कल्हण न होता, तो उस कीर्ति को जीवित रखना कठिन होता।

कल्हण कवि ने महाभारत काल से राजा जयसिंह के सन् ११४९ ई० तक के राजाओं का वर्णन किया है। राजा जयसिंह के शेष पाँच वर्षों का वह वर्णन नहीं कर सका। उस समय से राजा जयसिंह के पाँच वर्षों का इतिहास जोनराज ने वर्णन किया है। श्री जोनराज ने काश्मीर के राजाओं का वर्णन अपने मृत्युकाल १४५९ ई० तक का किया है। जोनराज द्वितीय राजतरंगिणी का रचनाकार है।

कल्हण का जन्म काश्मीर में परिहासपुर में हुआ था। उसके पिता का नाम चम्पक था। कल्हण का चाचा कनक था। वह चम्पक महाप्रभु का कनिष्ठ भ्राता था। कनक काश्मीर के राजा हर्ष का शिष्य और प्रिय पात्र था। राजा ने उसे गान-विद्या सिखायी थी। राजा हर्ष गीतकार, संगीतज्ञ एवं शास्त्र पारंगत था। कनक पर प्रसन्न होकर राजा ने उसे एक लाख स्वर्ण मुद्रा दिया था।

कल्हण जाति का ब्राह्मण था। जोनराज एवं चतुर्थ राजतरंगिणी के लेखक शुक ने उसका ब्राह्मण होना स्वीकार किया है। कल्हण स्वतन्त्र कवि था, राजकवि नहीं था। राजा का कभी प्रश्रय पाने का प्रयास नहीं किया। उसका पिता निःसन्देह राजा का मन्त्री था, महामात्य था, द्वारपति था, मण्डलेश था। कल्हण अभिजात कुल का था। कल्हण की निश्चित जन्म-तिथि ज्ञात नहीं है। परन्तु गणना से उसका जन्म सन् १०९८ ई० के लगभग ठहरता है। उसने सन् ११४८-११४९ ई० में राजतरंगिणी लिखी थी। राजतरंगिणी में आठ तरंग हैं। कुल ७८२६ श्लोक हैं। प्रथम से षष्ठ तरंग का वर्णन उसने ३०४५ श्लोकों में किया है। तरंग सात की कुछ घटनायें उसकी आँखों देखी थी। इस काल के ९८ वर्षों का वर्णन १७३२ श्लोकों में तथा तरंग आठ में ४८ वर्षों का वर्णन ३४४९ श्लोकों में किया है।

कल्हण शिवभक्त था। किन्तु भगवान बुद्ध का भी उपासक था। कल्हण ने अपने सम-सामयिक ऐतिहासिक व्यक्तियों का वर्णन किया है। रिल्हण, अलंकार, राजवदन, कवि मंख कल्हण के सम-सामयिक थे। कल्हण का शुद्ध संस्कृत नाम कल्याण था। इसी नाम से मंख ने कल्हण के विषय में लिखा है। कल्हण ने वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, व्याकरण, ज्योतिष, कालिदास, बाण एवं बिल्हण आदि के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उनका उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है। उसे अलंकारशास्त्र एवं ज्योतिष का ज्ञान था। भारत के पर्यटन के साथ समुद्रपर्यन्त यात्रा किया था। काशी, कन्नौज, मथुरा, अवन्ति का वर्णन किया है। उसका चाचा कनक राज्यकार्य से अवकाश लेकर काशीवास करने लगा था।

कल्हण ने भारत तथा काश्मीर का भौगोलिक वर्णन किया है। काश्मीर के भौगोलिक वर्णन के कारण इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। उस समय की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का जो वर्णन कल्हण ने किया है उनसे तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। उनके अध्ययन से भारतीय इतिहास की अनेक गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं।

ततो देशादिदोषेण तदभाग्यैरथापि वा।
कविर्वाक्सुधया कश्चिन्नाजिजीवत्पराऩ्नृपान् ॥ ६ ॥

६ तदुपरान्त देश आदि के दोष अथवा उन (राजाओं) के अभाग्यो[1] के कारण किसी कवि ने वाक्सुधा से अन्य नृपों को जीवित नही किया।

नवीन बाते ज्ञात होगी, जो अभी तक अन्धकार के गर्भ मे है। तत्कालीन काश्मीर, उसके सीमावर्ती तथा भारत मे निवसित जातियो, उनके धर्म, रीति-रिवाज पर प्रकाश पडता है। शासन-पद्धति तथा परिषदो, सभा के विकास एव उनकी कार्य-प्रणाली का ज्ञान होता है। काश्मीर मे धर्म-विकास, धार्मिक क्रान्तियाँ, तन्त्र-मन्त्रादि का विशद वर्णन राजतरगिणी मे मिलता है।

कल्हण निरपेक्ष चिन्तविद् था। भाग्यवादी था, परन्तु कर्म मे विश्वास करता था। धर्मभीरु था, परन्तु रूढिवादी नही था। क्षणभगुरता मे विश्वास करता था। देशप्रेम उसके पदो मे झलकता है। इतिहास को उसने एक नवीन शैली एव दृष्टि से लिखा है, जो आधुनिकतम प्रतीत होता है। कल्हण का ग्रन्थ प्रचारात्मक एव उपदेशात्मक है। उसने अपने समय के राजाओ को उपदेश तथा भविष्य के राजाओ के लिये राजसहिता लिखी है। उसने आदर्श सम्राट, राजा, जनता के अधिकार, राजा एव प्रजा का अधिकार, कर्तव्य, पारस्परिक सम्बन्ध, मन्त्री परिषद, पुरोहित परिषद, सभा, समाज, परिषद, उपनिषेद, महिलाओ का समाज मे स्थान, उनके अधिकार एव कर्तव्यो पर व्याख्या एव मत प्रकट किया है।

कल्हण ने राजतरगिणी वैदर्भी शैली मे लिखी है। समासो का बाहुल्य नही है। घटनाओ के उतार-चढाव मे भाषा अनुरूप रहती है। सूक्तियो के निबन्धन मे सचेष्ट है। उसके काव्य मे आदि से अन्त तक शिखरिणी छन्द का नर्तन, स्रग्धरा का गर्जन वर्तमान है। कल्हण की तरगिणी के पठन-पाठन मे नीरसता किंवा एकरसता नही आती। वह वर्णन एव घटनाओ के मध्य अनेक सामान्य मनोरजक बातो का समावेश कर देता है। सम्पूर्ण कल्हणकृत राजतरंगिणी अनुष्टुप छन्द मे निबन्धित है। मन्दाक्रान्ता एवं वसन्ततिलका का प्रचुर समावेश किया गया है। छन्द-ज्ञान मे कल्हण निर्भ्रान्त है। उसके अलंकार, उपमा, सुललित छन्द महाकवि कालिदास का स्मरण दिलाते है। वह अलकारो का मर्मज्ञ है। उपमा का प्रयोग नवीन शैली मे किया है। रसवादी कवि है।

कल्हण की राजतरगिणी महाकाव्य है। उसकी शैली वैज्ञानिक है। विद्वानो ने उसकी कालगणना त्रुटिपूर्ण मानी है। उस पर साधिकारिक मत प्रकट करना अनुचित होगा। राजतरगिणी के आठ तरंग तीन वर्गों मे विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग मे प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय तरग रखे जा सकते है। वह गाथा कालीन इतिहास है। वर्णन अस्पष्ट है। द्वितीय वर्ग मे तरग चार, पाँच और छह अर्ध इतिहास गाथा कालीन कहे जायगे। कल्हण की राजतरगिणी का अध्ययन कभी बन्द नही हुआ। उसका फारसी, उर्दू, फ्रेन्च, अग्रेजी मे अनुवाद किया गया है। फारसी म अनुवाद पन्द्रहवी शताब्दी से होने लगा है। प्रथम अनुवाद जैनुल आबदीन बडशाह के समय हुआ था। तत्पश्चात् अकबर के समय किया गया। बीसवी शताब्दी मे भारतीय भाषा बगला, मराठी, हिन्दी आदि मे भी किया गया है।

पाद-टिप्पणी :

६ (१) अभाग्य : कल्हण ने गोनन्द प्रथम पूर्व के हुए राजाओ के लोप होने का दोष उन राजाओ के कुकृत्यो को दिया है। (रा० : ३१ : ४५) जोनराज जयसिंह से हुए राजाओ का इतिहास न प्राप्त होने का कारण कल्हण के समान पूर्व राजाओ का कुकृत्य न देकर उनका दोष तथा भाग्य देता है।

श्रीजैनोल्लाभदेने क्ष्मां संभृत्यक्षति रक्षति।
जोनराजाभिधस्तेपासुद्यतो वृत्तवर्णने ॥ ७ ॥

७ श्री जैनोल्लाभदेन[1] (जैनुल आबदीन) के पृथ्वी पर रक्षा करते समय जोनराज उनके वृत्त-वर्णन हेतु उद्यत हुआ।

हिन्दू राज्य मे विचार-स्वातन्त्र्य था। कल्हण कुछ भी लिख सकता था। परन्तु जोनराज के समय मुसलिम राज्य था। वह राजकवि था। पूर्व राजाओ मे हिन्दू तथा मुसलमान दोनो सम्मिलित थे। मुसलिम राजाओ को कुकृती कहकर अपने ऊपर विपत्ति नही बुलाना चाहता था। उसने दबी भाषा मे भाग्य अथवा किस्मत को जिस पर मुसलमान भी विश्वास करते हैं, लगभग तीन शताब्दियो तक इतिहास न लिखे जाने का कारण कहा है।

कल्हण की राजतरंगिणी के पूर्व भी इतिहास लिखने की परम्परा थी। अनेक पूर्वकालीन इतिहास उपस्थित थे। उनके आधार पर कल्हण ने इतिहास लिखा था। कल्हण के पश्चात जोनराज की राजतरंगिणी मिलती है।

जोनराज की मृत्यु का वर्ष श्रीवर (जैन राज १ : ६) के अनुसार लौकिक ४४३५=सन् १४५९ ईस्वी आता है। कल्हण ने राजतरंगिणी सन् ११४९ मे समाप्त की थी। इस प्रकार ३१० वर्षों तक किसी ने काश्मीर म राजतरंगिणी एवं पूर्व इतिहास लिखने का प्रयास नही किया।

इससे एक महत्वपूर्ण बात पर प्रकाश पडता है। जोनराज के पूर्व किसी भी इतिहास ग्रन्थ का सस्कृत, काश्मीरी तथा फारसी भाषा मे अस्तित्व नही था। जोनराज का इतिहास तथा उसमे वर्णित घटनावली काश्मीर पर प्रथम प्रकाश डालती है। जोनराज के पश्चात् फारसी तथा काश्मीरी भाषा मे ग्रन्थ लिखे गये।

जोनराज का समय सिकन्दर बुतशिकन के पश्चात का है। जोनराज के पूर्व १८० वर्ष से मुसलिम शासन काश्मीर मे स्थापित था। हिन्दू राजाओ का समय केवल १५० वर्ष का कल्हण के समय से छोटा देवी तक आता है। किसी मुसलिम ईरानी या फारसी या काश्मीरी लेखक ने भी १८० वर्ष का इतिहास नही लिखा था। यदि वे लिखे होते तो सिकन्दर बुतशिकन द्वारा फारसी किवा काश्मीरी मे लिखे होने के कारण नष्ट नही किये जाते। किसी हिन्दू या काश्मीरी पण्डित के लिये इस काल मे सस्कृत मे इतिहास लिखना कठिन था। क्योकि मुसलिमीकरण के उन्माद मे सभी बातें नष्ट कर दी जाती थी। यदि किसी ने सस्कृत या काश्मीरी मे हिन्दू राजाओ का १५० वर्ष का इतिहास लिखा भी होगा तो उनके नाम का कोई चिराग जलाने वाला न होने के कारण नष्ट हो गया होगा। सिकन्दर बुतशिकन के समय सभी सस्कृत ग्रन्थ नष्ट कर दिये गये थे।

पाद-टिप्पणी

७ (१) जैनोल्लाभदीन काश्मीर मे मुसलिम राज्य के सस्थापक शाहमीर के वंश का यह आठवाँ राजा था। वह सन् १४२० ई० म राजा हुआ था। उसने सन् १४७० ई० तक राज्य किया था। उसे काश्मीर का सम्राट अकबर कह सकते हैं। अकबर तथा औरगजेब के समान उसने ५० से अधिक वर्ष शासन किया था। काश्मीर मे प्रथम विदेशी राजा रिंचन सन् १३२० ई० मे हुआ था। उसके ठीक एक शताब्दी पश्चात जैनुल आबदीन राजा हुआ था। हिन्दू इस काल में मुसलिम शासन के मजबूत राजनीतिक शिकजे को ढीला नहीं कर सके। सिकन्दर बुतशिकन के समय उसके मन्त्री सुहभट्ट के कारण हिन्दुओ का जो जबर्दस्ती मुसलिमीकरण तथा उन पर जो अत्याचार हुआ उसने हिन्दुओ के विरोध किंवा किसी प्रकार की विरोधक शक्ति का लोप कर दिया।

दर्पग्लानिभवां राजपान्थानां तापसन्ततिम् ।
हर्तुं संरोपितः काव्यद्रुमो भाविफलोदयः ॥ ८ ॥

८ राजपथिकों की दर्पग्लानि से समुत्पन्न तापपरम्परा को हरने के लिये भविष्य में फलप्रद काव्यद्रुम[1] समारोपित किया ।

उपस्काररसं क्षिप्त्वा विनयामृतशीतलैः ।
सज्जनैर्वर्धनीयोऽयमपि यत्नेन भूयसा ॥ ९ ॥

९ सज्जन विनयरूपी अमृत से शीतल सम्पूरक रस (जल) प्रक्षिप्त (डाल) कर महान यत्न से इसे वर्धित[1] करें ।

इस भयंकर तूफान के पश्चात् श्मशान शान्ति आना स्वाभाविक था। जैनुल आबदीन ने इस शान्ति से लाभ उठाया। अपना राज सुदृढ़ किया। विस्तृत विवरण जैनुल आबदीन के प्रसंग में आगे दिया गया है।

पाद-टिप्पणी :

८. (१) काव्यद्रुम : पद में रूपक अलंकार है। जोनराज इस पद में अपने पूर्वगामी राजाओं के दर्प वर्णन की ओर ध्यान आकर्षित करता है। सिकन्दर बुतशिकन की ओर गौण रूप से संकेत करता है। पथिक राजाओं की दर्पग्लानि से जो ताप परम्परा अर्थात् प्रजापीडन की परम्परा उत्पन्न हुई थी उस ताप की भविष्य में रक्षा करने के लिये जैनुल आबदीन ने फल देने वाले काव्य पादप की अवली का आरोपण किया था। पादपों की छाया में राज-पथिक आतप से रक्षा करते हुए शीतलता प्राप्त कर सके थे।

राजाओं के विकास एवं ह्रास के समय मेरी कथा देश काल के अनुसार उनके लिये उत्साह एवं भैषज रूप होगी—कल्हण ने ऐसा अपना मन्तव्य प्रकट किया (रा० : १ : २१) जोनराज के समय मुसलिम शासन था। भाषा फारसी थी। अतएव कल्हण के समान ग्रन्थ का उद्देश्य उपदेश तथा भविष्य के राजाओं के लिये मार्ग दर्शन किंवा औषधि तुल्य नहीं था। उस समय उपदेश देने वाले मुल्ला मौलवी थे। चाणक्य एवं मनु के स्थान पर मुसलिम राजनीति शास्त्र आदर्श बन गया था। जोनराज ने अपना उद्देश्य बहुत ही सीमित उदासीन भाषा में प्रदर्शित किया है।

पाद-टिप्पणी :

९. (१) वर्धित : जोनराज एवं कल्हण दोनों ही ने कामना की है कि 'रस' का सज्जन वृन्द, सुहृद वृन्द पान करें। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। कल्हण शान्त सुन्दर रसधार का आनन्द पूर्वक उन्मुक्त भाव से परिपूर्ण रसास्वादन करने के लिये कहता है। वह मानता है : उसकी तरंगिणी काव्य है। (रा० : १ . २४) तब काश्मीर की जनता संस्कृतप्रिय थी। स्त्रियाँ भी संस्कृत बोलती थी। संस्कृत राजभाषा थी, सभ्यों के बोलचाल की भाषा थी। अतएव जनता उस रस का स्वाद ले सकती थी। परन्तु जोनराज के समय में संस्कृत राजभाषा, बोल-चाल की भी भाषा नहीं रह गयी। फारसी किंवा परसियन शब्दों के कारण काश्मीर में एक नयी भाषा अंकुरित हो रही थी। जिस प्रकार भारत में उर्दू अनायास राजाश्रय प्राप्त कर पनप उठी थी। जोनराज काश्मीरियों से रसा-स्वादन की अपेक्षा नहीं रखता था। इसलिये वह यही कहकर सन्तोष करता है कि सज्जन सम्पूरक रस डालकर उसे वर्धित करें। इस काव्य-पादप को बढ़ायें।

मग्नान् विस्मृतिपाथोधौ जयसिंहादिभूपतीन् ।
श्रीजैनोल्लाभदेनस्य कारुण्यादुज्जिहीर्षतः ॥ १० ॥

१० विस्मृति-पाथोधि में मग्न जयसिंहादि भूपतियों को करुण भाव से उद्धारेच्छुक[1] जैनोल्लाभदेन के—

सर्वधर्माधिकारेषु नियुक्तस्य दयावतः ।
मुखाच्छ्रीशिर्यभट्टस्य प्राप्याज्ञामनवज्ञया ॥ ११ ॥

११ सभी धर्माधिकारों[1] पर नियुक्त दयालु श्री शिर्यभट्ट[2] के मुख से सादर आज्ञा प्राप्त कर—

पाद-टिप्पणी :

१० (१) उद्धार : कल्हण तथा जोनराज के इतिहास लिखने का प्रयोजन सर्वथा भिन्न है ।—"सर्वाङ्गीण पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ जहाँ पुरातन इतिहास लेखकों की रचनाएँ विशृंखलित हैं"—कल्हण के लेखन का यही इतिहास प्रयोजन है। (रा० : १ : १०)

कल्हण के समय पूर्व इतिहास ग्रन्थ थे । किन्तु वे विशृंखलित थे। उन्हे शृंखलित कर कल्हण ने काव्यमयी ललित भाषा मे राजतरंगिणी की रचना की है।

जोनराज के समय पूर्वकालीन कोई इतिहास ग्रन्थ संस्कृत, काश्मीरी तथा फारसी मे उपलब्ध नहीं था। काश्मीर के इस उथल-पुथल-काल मे किसी ने हिन्दू तथा मुसलिम राजाओ का इतिहास लिखने का भी प्रयास नही किया।

जैनुल आबदीन के लम्बे राज्यकाल मे शान्ति का दर्शन काश्मीर-मण्डल को हुआ था। लोगो का ध्यान इतिहास, साहित्य एवं कला की ओर गया। उस समय निश्चय ही यह विचार राजदरबार मे उठा होगा कि इतिहास प्रस्तुत किया जाय। जैनुल आबदीन की स्वयं इच्छा रही होगी कि उसके पूर्व पुरुषो का इतिहास लिखा जाय ताकि वे भूले न जा सकें। केवल उसके वंशजो का इतिहास लिखना एकांगी होता अतएव विचार उठा होगा कि जयसिंह के समय से जैनुल आबदीन के काल तक का इतिहास लिपिबद्ध किया जाय।

जोनराज दुःख के साथ लिखता है कि जयसिंह आदि राजा विस्मृति-सागर मे लुप्त हो गये हैं। उन पर करुणा कर, उनके उद्धार की इच्छा से इतिहास लिखने का प्रसग उठा था। जोनराज आँसू बहाता है कि काश्मीर के प्रतिभाशाली राजाओ का इतिहास लुप्त हो गया है। कभी के करुणा करने वाले उन राजाओ के उद्धार के लिये आज दूसरे उन पर करुणा कर रहे है। यह पद मार्मिक है।

पाद-टिप्पणी :

११ (१) धर्माधिकार राजा जयापीड ने सर्वप्रथम धर्माधिकरण का पद बनाया था। उसका कार्य न्याय करना तथा न्याय विभाग देखना था।

कर्णश्रीपटमाबध्य श्रीराज्यार्जिताद्भुतम् ।
धर्माधिकरणाख्यं च कर्मस्थानं विनिर्ममे ॥
(रा० ४ : ५८८)

(२) शिर्यभट्ट—जैनुल आबदीन का धर्माधिकारी था। काश्मीर के 'बट' पूर्वकालीन भट्ट ब्राह्मण थे।

इस पद से स्पष्ट होता है कि जोनराज राज कवि था। उसकी सेवा राजतरंगिणी लिखने के लिए ली गयी थी। वह राजाश्रय प्राप्त कवि था अतएव वह धर्माधिकारी के आदेश का सहर्ष पालन कर राजतरंगिणी की रचना मे सलग्न हो गया। कल्हण स्वतन्त्र विचारक, स्वतन्त्र कवि था, राजा अथवा

राजावलिं प्रथयितुं सम्प्रति प्रतिभासमः।
कविनामाभिलाषेण न तु स्वस्मान्ममोद्यमः॥ १२॥

१२ इस समय राजावली[1] को पूर्ण करने के लिये (अपनी) बुद्धि अनुरूप मेरा यह उद्यम है, न कि कवि (होने की) अभिलाषा[2] से—

क चुण्ठीजलवन्मद्वाक् क च काव्यं तरङ्गितम्।
छायामात्रानुकारेण किं नडं पुण्ड्रकायते॥ १३॥

१३ कहाँ चुल्लू के जल सदृश मेरी वाणी और कहाँ तरङ्गित काव्य[1]? छायामात्र का अनुकरण करने से क्या नरकुल (नड) पुण्ड्रक[2] हो सकता है?

किसी राज्य-अधिकारी एवं सामन्त का मुखापेक्षी नहीं था। परन्तु जोनराज राज्य का मुखापेक्षी था। जोनराज ने राजतरंगिणी की रचना राज्यादेश से आरम्भ की थी।

पाद टिप्पणी

१२ (१) राजावली यहाँ पर अर्थ है राजतरंगिणी अर्थात् राजतरंगिणी काल सन् ११४० ई० से जोनराज तक के राजाओं की आवली, उनके वृत्तान्तों को पूर्ण करने की इच्छा से है। राजावली पिटक प्राज्यभट्ट की रचना है। वह अप्राप्य है। वह जोनराज के लगभग ४० वर्ष पश्चात् सन् १५१३–१४ ई० में लिखी गयी थी। तत्पश्चात् शुक ने सन् १५९६ ई० में राजतरंगिणी लिखी थी। वह राजतरंगिणी का अंतिम (चौथा) ग्रन्थ है। यदि प्राज्यभट्ट की कृति मिल जाय तो वह पाँचवीं राजतरंगिणी हो जायगी।

(२) अभिलाषा जोनराज रचना के तात्पर्य का उल्लेख करता है। उसने कवि बनने, होने या कहे जाने के लिये राजतरंगिणी की रचना नहीं की है। उसने राजावली अर्थात् राजतरंगिणी को पूर्ण करने का प्रयास किया है। कल्हण ने जहाँ तक राजाओं का वर्णन किया था वहीं से जोनराज ने परिश्रम कर अपने समय तक के हुए भूपालों का इतिहास लिखकर कल्हण के छोड़े हुए काम को पूरा किया है। वह अपने को कवि आदि न कहकर अत्यन्त विनीत भाव से कहता है कि अपनी बुद्धि के अनुसार उससे जो कुछ हो सका है, सपरिश्रम किया है। उसने अपने ग्रन्थ को महाकाव्य नहीं कहा है।

हेलाराज ने काश्मीर इतिहास ग्रन्थ 'पार्थिवावली' की रचना की थी। जोनराज ने 'राजावली' काव्य का यहाँ प्रयोग किया है। किन्तु कल्हण की राजतरंगिणी को पूर्ण करने की भावना से उसने नवीन नाम न रखकर ग्रन्थ का नाम पुरातन राजतरंगिणी ही रखा है। कल्हण ने अपने पूर्वगामी विद्वानों द्वारा रचित इतिहास को 'राजकथा' शब्द की संज्ञा दी है। जोनराज ने पूर्व राजाओं के इतिहास को 'राजावली' शब्द से अभिहित किया है। (राज० १ : १४, १७)

पाद टिप्पणी

१३ (१) तरंगित काव्य जोनराज ने अपने काव्य की तुलना कल्हण की राजतरंगिणी से नहीं की है। तरंगिणी को वह काव्य मानता है। उसने अति विनम्र शब्दों में अपने को कल्हण के सम्मुख अति लघु प्रकट कर उसके प्रति महान आदर प्रकट कर तरंगिणी के गौरव एवं काव्यक्षमता को स्वीकार किया है। वह अपनी राजतरंगिणी को कल्हण की तरंगिणी की छायामात्र मानता है।

(२) पुण्ड्रक उत्तम कोटि का इक्षु (ऊख) विशेष।

अन्तःशून्यां लघुं प्रज्ञां तुम्बीमिव वहन्नहम् ।
पारं राजतरङ्गिण्या गन्तुं हन्तोद्यमं गतः ॥ १४ ॥

१४ तुम्बी सदृश अन्तःशून्य एवं लघु प्रज्ञायुक्त मैंने राजतरङ्गिणी के पार जाने के लिये कष्टकर (हन्त) उद्यम[1] किया है।

पृथ्वीनाथगुणाख्याने चापलं मे न दूषणम् ।
अलङ्कारैरहङ्काराल् कुरूपाऽपि हि वल्गति ॥ १५ ॥

१५ पृथ्वीनाथों के गुण-वर्णन की मेरी यह चपलता दूषण नहीं है। क्योंकि अलंकारों के कारण कुरूपा भी उछलती (वल्गति) चलती है।

कवीनामुपयोग्या वा मद्वाक् स्वान्तरसिद्धये ।
गङ्गाजलं जलं तेषां यैर्न पीतं जलान्तरम् ॥ १६ ॥

१६ कवियों के उपयोग्य मेरी वाणी स्वान्तः[1]सिद्धि के लिये ही है। (क्योंकि) उनके लिये गंगाजल (केवल) जल है जिन्होंने अन्य जल का पान नहीं किया है।

पाद-टिप्पणी :

१४. (१) उद्यम : कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी लिखने के लिये क्या उद्यम किया था उसका वर्णन करता है। उसने पूर्वकालीन इतिहासों का संग्रह अध्ययन किया था। नीलमत पुराण से कुछ सामग्री ली थी, मन्दिरों के प्रतिष्ठाकालीन एवं दान-सम्बन्धी प्रतिष्ठा तथा वस्तु, प्रशस्तिपट्टों एवं शास्त्रों का अध्ययन कर सामग्री प्राप्त की थी। (रा० : १ : १४, १५-२०)

जोनराज ने इतिहास लिखने के लिये किन सामग्रियों का संचय किया तत्कालीन शिलालेख, प्रशस्तिपट्ट अथवा ग्रन्थों का अध्ययन किया था वह इस पर प्रकाश नहीं डालता। उसके इतिहास वर्णन का क्या आधार है, उसने किन आधारों पर निष्कर्ष निकाल कर प्रस्तुत इतिहास ग्रन्थ लिखा है, इस विषय पर मौन है। अतएव उसका इतिहास साधिकार है या नहीं, सन्देहास्पद हो जाता है। उसके अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन से प्रकट होता है कि उसके समय में या तो इतिहास उपलब्ध नहीं था अथवा उसने कल्हण के समान अध्ययन करने का प्रयास न कर अपने समय में प्रचलित जनश्रुतियों का आश्रय लिया होगा। उसने इस ग्रन्थ को लिखने में क्या उद्यम किया, यह प्रकट नहीं होता। यदि उसने इतिहास सामग्री एकत्रित की होती अथवा ग्रन्थों का अध्ययन किया होता तो कल्हण के ग्रन्थ का जिसकी छाया वह अपने ग्रन्थ को मानता है अवश्य उल्लेख किया होता।

पाद-टिप्पणी :

१६. (१) स्वान्त : तुलसीदास ने रामायण में इस भाव को बड़ी उत्तमता के साथ अभिव्यक्त किया है :

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

राजोदन्तकथासूत्रपातमात्रं कृतं मया ।
कुर्वन्तु रचनामत्र चतुराः कविशिल्पिनः ॥ १७ ॥

१७ मैंने राज-उदत[1] कथाओं का सूत्रपात मात्र किया है; (अब) इस विषय में चतुर कवि शिल्पी रचना करें।

मणीनां घर्षणायैव महाशाणस्य नैपुणम् ।
कान्तिप्रणयने तेषां मुखसारमणेस्तु तत् ॥ १८ ॥

१८ महाशाण की निपुणता मणियों के घर्षण मात्र के लिये होती है, उनके कान्ति-सम्पादन में मुखसार मणि का उपयोग होता है।

विनैव प्रार्थनां काव्यं कवेः पश्यन्ति साधवः ।
किमर्थितः शशी विश्वं सुधासारेण सिञ्चति ॥ १९ ॥

१९ प्रार्थना[1] के बिना ही साधुजन कवि के काव्य को देखते (पढ़ते) हैं। क्या प्रार्थित होकर ही शशी सुधासार से विश्व को सिञ्चित करता है?

अनुनीतोऽपि कालुष्यं खलः काव्ये न मुञ्चति ।
सुधाधौतोऽपि नाङ्गारः शुभ्रतामेति जातुचित् ॥ २० ॥

२० अनुनीत (सन्तुष्ट) किये जाने पर भी खल काव्य में कालुष्य देखना नहीं त्यागता क्योंकि सुधा-धौत अङ्गार (कोयला) कभी शुभ्र नहीं हो सकता।

पाद-टिप्पणी :

१७. (१) उदत : वार्ता, वृत्तान्त वर्णन—यहाँ अभिप्राय राजाओं के वर्णन किंवा वृत्तान्त से है।

पाद-टिप्पणी :

१९ (१) प्रार्थना : कल्हण गर्व के साथ कहता है—'कौन ऐसा चेतन-हृदय व्यक्ति होगा जो अनन्त व्यवहारों से परिपूर्ण मेरे इस काव्य को नहीं पढ़ेगा?' (रा० : १ २२)। कल्हण 'सुचेता' व्यक्तियों को सम्बोधित करता है परन्तु जोनराज विनम्र भाव से 'साधव.' साधुजनों से प्रार्थना करता है। उसके पद में विनम्रता है। उसके चारों ओर दरबारी थे जिन्ह संस्कृत के लिये मोह नहीं था। संस्कृत काव्य का रस समझ नहीं सकते थे। अतएव जो भी संस्कृतज्ञ उस विपत्ति एवं भयावह काल में शेष रह गये थे उनसे ही वह अपना काव्य पढ़ने की प्रार्थना करता है। उन्हें वह साधुजन कहता है जो उस देश के फारसीकरण के समय भी संस्कृत पढ़ कर काव्य समझ कर संस्कृत कवियों पर अनुग्रह करते थे। कम से कम स्मरण कर लेते थे। यदि वह पढ़ने के लिये प्रार्थना न भी करे तो क्या साधुगण कृपा कर, दया कर, अनुग्रह कर उसका काव्य न पढ़ेंगे? कल्हण यह गर्वोक्ति कर सकता था। उसके समय काश्मीर की जनता संस्कृत जानती थी, काश्मीर में संस्कृत कवियों एवं लेखकों का बाहुल्य था। परन्तु जोनराज के समय परिस्थिति भिन्न थी। समस्त काश्मीरी जनता में फारसी एवं अरबी पढ़ने की ओर रुझान हो गया था। संस्कृत विधर्मियों की भाषा समझी जाने लगी थी।

पश्यन्तु मत्काव्यमिति चिरं दूरं गता कवेः ।
अतः परमुखप्रेक्षिभावदैन्यकदर्थना ॥ २१ ॥

२१ (लोग) मेरे काव्य को देखें यह परमुखापेक्षिता[1] की दयनीय कदर्थना इससे बहुत पहले कवि (जोनराज) से दूर हो गयी है।

समः स्यादप्रवीणानां गीतसंस्कृतयो रसः ।
वानरा गुञ्जते गुञ्जाः शीते वह्निकणभ्रमात् ॥ २२ ॥

२२ अप्रवीणों के लिये गीत एवं संस्कृत का रस सम होता है क्योंकि शीतकाल मे वानर वह्नि (अग्नि) कण के भ्रम से गुञ्जा का सेवन करता है।

काव्यं श्रुतमपि प्रीत्यै नावोधोपहतात्मनाम् ।
हीनदन्तवलस्येक्षुर्मुखे न्यस्तः करोति किम् ॥ २३ ॥

२३ सुना हुआ भी काव्य अबोधों के लिये प्रीतिकर नहीं होता क्योंकि दन्तवलरहित के मुख मे न्यस्त इक्षु (ईख) क्या करता है ?

पदार्थसुन्दरे काव्ये दर्शिते निर्मलात्मनाम् ।
दुर्वारं गुणिरत्नानां मत्सरप्रतिबिम्बनम् ॥ २४ ॥

२४ पदार्थसुन्दर काव्य के प्रदर्शित करने पर निर्मलात्मा गुणी रत्नों मे भी मात्सर्य का प्रतिबिम्बन दुर्वार हो जाता है।

लक्ष्मणा दूषयन्निन्दुं बुधं मत्सरयक्ष्मणा ।
विधाता वाच्यतामेति परोद्रेकासहाग्रणीः ॥ २५ ॥

२५ लक्षण (चिह्न) से इन्दु को और मत्सर यक्ष्मा से बुध को दूषित करते हुये, परोत्कर्ष असहिष्णुओं मे अग्रणी विधाता, निन्दनीय बनता है।

मद्वाक् कल्हणकाव्यान्तःप्रवेशादेतु चर्वणम् ।
नड्वलाम्बु सरित्तोये पतितं पीयते न किम् ॥ २६ ॥

२६ कल्हण के काव्य मे प्रविष्ट होने से मेरी वाणी[1] चर्वण को प्राप्त करे (आस्वाद्य बने), सरिता जल मे निपतित नड्वल का जल क्या नहीं पिया जाता ?

पाद-टिप्पणी :

२१. (१) परमुखापेक्षिता : जनता मेरे काव्य को पढ़े, इसकी चिन्ता जोनराज कहता है कि उसके मन से दूर हो गयी है। वह कवि की इस भावना को ही दयनीय मानता है कि कवि अपने काव्य-अध्ययन के लिये परमुखापेक्षी हो। यदि उसके काव्य म गुण है तो उसका काव्य सर्वप्रिय होगा, पाठक स्वयं पढ़ेंगे। जोनराज ने अपने को यहाँ अत्यन्त विनम्र एवं अकिंचन रूप म चित्रित किया है।

पाद-टिप्पणी

२६ (१) वाणी : जोनराज स्पष्ट कहता है कि वह कल्हण के काव्य राजतरंगिणी मे द्वितीय राजतरंगिणी की रचना कर राजतरंगिणी की महत्ता म प्रविष्ट हो रहा है। महात्मा के नाम के कारण

जगदानन्दनो देवद्विजातिकृतवन्दनः ।
क्षितिसङ्क्रन्दनः साक्षादासीत् सुस्सलनन्दनः ॥ २७ ॥

द्वितीय लोहर वंश :

जयसिंहः[1] (सन् ११२८–११५५)

२७ देव द्विजों की वन्दना करने वाला जगत नन्दन सुस्सल[2]-पुत्र पृथ्वी पर साक्षात सङ्क्रन्दन (इन्द्र) था।

उनके सखा, मित्र तथा साथी भी महत्ता पाते है। उसी प्रकार महान काव्यकार कल्हण की राजतरंगिणी के सम्बन्ध एवं प्रसंग से उसकी वाणी भी महानता प्राप्त करेगी। लोग उसके रस का भी पान कल्हण की राजतरंगिणी के व्याज से कर सकेंगे।

पाद-टिप्पणी :

२७. (१) राज्याभिषेक काल श्री जोगेशचन्द्र दत्त के अनुसार कलि:४२२८=शक १०४९,=लौकिक ४२०३=सन् ११२७ ई० और राज्यकाल २६ वर्ष ११ मास २७ दिन तथा स्तीन के अनुसार ४२०३ फाल्गुन वदी १५ तदनुसार सन् ११२८ ई० तथा राज्यकाल २२ वर्ष दिया गया है। स्तोन ने यह गणना कल्हण काल तक की दी है। जोनराज ने लगभग ५ वर्ष का वर्णन और किया है। इस प्रकार यह गणना लगभग २७ वर्ष होती है। आइने-अकबरी ने राज्य काल २७ वर्ष दिया है।

भारत मे राजा जयसिंह के काल मे सन् ११२८ ई० में विक्रमादित्य षष्ठ चालुक्य की मृत्यु हुई तथा सोमेश्वर तृतीय राजा हुआ। ग्वालियर से कछवाहो को परिहारो ने निकाल दिया। कछवाहो ने अम्बर मे अपना राज्य स्थापित किया। सन् ११३८ ई० मे सोमेश्वर तृतीय की मृत्यु तथा जगदेकमल्ल चालुक्य का राजा हुआ। सन् ११४१ ई० मे नरसिंह होयसल राजा हुआ। सन् ११४३ ई० मे गुजरात के सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु हो गयी। सन् ११४९ ई० मे बहराम गजनी ने सैफुद्दीन गोरी को पकड कर मार डाला। सन् ११५० ई० मे जगदेकमल्ल का देहावसान तथा उसके स्थान पर तैलप तृतीय चालुक्य का राजा हुआ। सन् ११५१ ई० मे अलाउद्दीन हुसेन ने गजनी को फूँक दिया। सन् ११५२ ई० मे बहराम शाह की मृत्यु हो गयी। खुशरव राजा हुआ।

(२) सुस्सल : गुङ्ग का पुत्र मल्ल (सन् ११०१) था। उसके पुत्र उच्चल, सुस्सल (सन् ११२८ ई०), सल्हण, लोठन, रल्ह तथा जुल्ला थे। सुस्सल के पुत्र जयसिंह (सन् ११५५), मल्लार्जुन, यशस्कर तथा विग्रहराज थे। कल्हण को राजतरंगिणी में द्वितीय लोहर वंश (सन् ११०१–११४९–११५० ई०) के राज्यकाल का वर्णन किया है। शेष काल का वर्णन श्री जोनराज ने द्वितीय राजतरंगिणी में किया।

मल्ल के पुत्रो मे ज्येष्ठ उच्चल काश्मीर के राजा हर्ष की हत्या के पश्चात् काश्मीर का राजा (सन् ११०१–११११ ई०) हुआ। उसका राज्य-काल अति शोचनीय कहा जायगा। डामरों के कारण उच्चल ने राज्य पाया था। वह उनके हाथ की कठपुतली हो गया था। कनिष्ठ भ्राता सुस्सल ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खडा किया। कूटनीति से अपने शत्रुओ का अवसान कर वह डामरो के दमन के लिए तत्पर हुआ था। दोनो भ्राताओं की शत्रुता का अन्त जयसिंह के जन्म के कारण हो गया था। षड्यन्त्रकारियो के षड्यन्त्र के कारण उच्चल की मृत्यु ८ दिसम्बर सन् ११११ ई० को हो गयी।

छुड्ड का भ्राता रड्ड एक दिन के लिये राज-सिंहासन पर बैठ गया। किन्तु गर्गचन्द्र जो लोहर जिला के डामरो का सरदार था उसने अपने स्वामी उच्चल के रक्त का बदला लिया। उच्चल की रानी के सती होने का प्रबन्ध कर गर्गचन्द्र उच्चल का

उत्तराधिकारी खोजने लगा। उच्चल के शिशु का संरक्षक होकर किसी को राज्य करने योग्य न पाकर गर्गचन्द्र ने उच्चल के सौतेले भाई सल्हण को काश्मीर का राजा बना दिया।

सुस्सल ने यह समाचार सुनकर अपनी सेना सहित राज्य हस्तगत करने के लिये श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। हुस्कपुर मे गर्गचन्द्र की सेना का उससे सामना हुआ। सुस्सल के पास थोडी सेना थी अतएव वह भाग निकला। वह वितस्ता की उपत्यका से चलता काश्मीर की सीमा के बीरानक स्थान पर पहुँचा। वहाँ से कठिनाई के साथ पहुँच कर उसने लोहर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। सल्हण कठपुतली था। वास्तविक शक्ति गर्गचन्द्र के हाथो मे थी। सल्हण अपने भ्राता लोठन के साथ कुपथ की ओर फिसलता गया। राजा सल्हण की प्रेरणा पर गर्गचन्द्र पर आक्रमण किया गया। परन्तु गर्गचन्द्र का कुछ बिगड नही सका। गर्गचन्द्र सिन्ध उपत्यका मे जहाँ उसकी शक्ति का केन्द्र था, चला गया। वहीं से वह सुस्सल से सम्पर्क स्थापित करने लगा।

सुस्सल ने अवसर नही खोया। उसने काश्मीर उपत्यका मे वाराहमूला से प्रवेश किया। सल्हण ने उसका सामना करने के लिए सेना भेजी। उसने गर्गचन्द्र की दो कन्याओ से स्वयं तथा जयसिंह का विवाह किया। सुस्सल ने श्रीनगर पर अधिकार कर लिया और राजभवन पर अधिकार करने के लिए अग्रसर हुआ। सल्हण वैशाख मास (सन् १११२ ई०) में बन्दी बना लिया गया। उसका राज्यकाल पूरा चार मास तक भी नही रह पाया।

सुस्सल के कठोर जीवन की घटनाओ के उतार-चढ़ाव ने उसे कठोर बना दिया था। वह सशंकित दृष्टि से अपने चारो ओर देखता था। वह राज्यकोश अपने वंशीय दुर्ग लोहर मे संरक्षित रखने लगा। उसके इस कार्य के कारण उसकी कुख्याति होने लगी।

एक मास ही के अन्दर गर्गचन्द्र तथा उसके प्रभावशाली सम्बन्धी लोहर के बाहर विद्रोह के लिये सन्नद्ध हो गये। उसने गर्गचन्द्र की मोर्चेबन्दी पर घेरा डाल दिया। वहाँ से वह लोहर दुर्ग पहुँचा। सल्हण तथा लोठन को वहाँ दुर्ग मे बन्दी बना दिया। उसने पर्वतीय सामन्तो से सुलह तथा मैत्री कर ली। सहस्रमंगल तथा अन्य सामन्त जिन्हे सुस्सल ने निर्वासित कर दिया था संघटित होकर चेनाब उपत्यका से सुस्सल को उखाड फेंकने के लिये अभियान एवं प्रयास करने लगे। उनके प्रयास का महत्व भिक्षाचर ने, जो राजा हर्ष का पौत्र था, काश्मीर के रंगमंच पर राज्य प्राप्ति हेतु प्रवेश किया।

युवक राजकुमार भिक्षाचर मालवा के राजा नरवर्मा के यहाँ चला गया था। कुरुक्षेत्र तीर्थ मे उसकी पर्वतीय राजाओ, वल्लपुर, चम्बा तथा समीपवर्ती पर्वतीय सामन्तों से भेंट हुई। राजाओ तथा सामन्तो ने युवक राजकुमार से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उन लोगो ने काश्मीर राज्यप्राप्ति मे उसे सहायता देने का वचन दिया। किन्तु काश्मीर का अभियान पारस्परिक विभिन्नताओ के कारण असफल प्रमाणित हुआ। सुस्सल ने अपना समय अपनी शक्ति संघटित करने मे लगाया। उसने कायस्थ गौरक को प्रधानमन्त्री बनाया। गौरक के कारण उसके कोश की वृद्धि हुई परन्तु राजा जनता में अप्रिय हो गया। सन् १११७ ई० तक सुस्सल इतना शक्तिशाली हो गया कि गर्गचन्द्र का खुल कर मुकाबला कर सकता था। उसने मल्लकोष्ठ को गर्गचन्द्र का विरोधी खडा कर दिया। वह लोहर का डामर था। मल्लकोष्ठ ने गर्गचन्द्र की स्थिति डावाँडोल कर दी। सन् १११८ में राजा सुस्सल ने गर्गचन्द्र, उसके तीनों पुत्रो तथा उसके बहनोई के साथ उनका गला घोटकर वध करवा दिया।

राजा सुस्सल ने इसी वर्ष राजपुरी अर्थात् राजौरी के राजा सोमपाल के विरुद्ध अभियान किया। उसने राजेच्छुक भिक्षाचर को आमन्त्रित किया था। सुस्सल का अभियान सफल रहा परन्तु वह सोमपाल

के भ्राता नागपाल को राजपुरी मे सत्तारूढ नही कर सका। सात मास वहाँ रहने के पश्चात् सन् १११९ के वसन्त मे वह पुन काश्मीर लौट आया।

राजा के विरुद्ध डामर लोग उठने लगे। लहर जिला मे विद्रोह स्पष्ट प्रकट होने लगा। पृथ्वीहर डामर काश्मीर उपत्यका के पूर्वीय भाग मे शक्तिशाली हो गया। ब्राह्मणो ने राजा के विरुद्ध प्रायोपवेशन आरम्भ कर दिया और डामरो से वह पीछे हटने लगा। श्रीनगर पर खतरा बढने लगा तो सुस्सल ने उन सभी डामरो का वध करवा दिया जो उसके यहाँ न्यास रूप मे रखे गये थे। मल्लकोष्ठ भिक्षाचर को चेनाब उपत्यका से काश्मीर मे लाया। विद्रोही भिक्षाचर के आने के पश्चात् सुसघटित होने के साथ ही साथ विद्रोहियो मे एकता भी स्थापित हो गयी। श्रीनगर की जनता राजेच्छुक भिक्षाचर को राजा बनाने के लिए उत्सुक हो गयी। पृथ्वीहर की विजयो से भयभीत होकर सुस्सल ने अपना कुटुम्ब लोहर दुर्ग मे रक्षा के लिए भेज दिया। श्रावण मास मे सिन्ध उपत्यका मे मल्लकोष्ठ ने भिक्षाचर से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। सुस्सल श्रीनगर की रक्षा करने लगा। परन्तु ब्राह्मण परिषद के प्रायोपवेशन तथा अपने साथियो के विश्वासघात के कारण उसकी स्थिति खराब होने लगी। मार्गशीर्ष वदी ६ सन् ११२० ई० को उसने श्रीनगर त्याग दिया। मार्ग मे विद्रोहियो आदि को घूस देकर मार्ग प्राप्त करता लोहर कोट पहुँच गया। भिक्षाचर काश्मीर का राजा सन् ११२० ई० मे घोषित कर दिया गया। भिक्षाचर डामरो पर आश्रित था। राजसत्ता के भूखे डामर सामन्त मल्लकोष्ठ एव पृथ्वीहर परस्पर झगडने लगे। राज्य मे अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। इसी समय भिक्षाचर के प्रधानमन्त्री बिम्ब ने लोहर के विरुद्ध अभियान किया। उसने राजपुरी के राजा सोमपाल तथा मुसलिम सल्लार अर्थात सालार विस्मय की सेना की सहायता प्राप्त की।

वैशाख सन् ११२१ ई० मे सुस्सल उनकी सम्मिलित सेना से युद्ध मे मिला और उन्हे पराजित कर दिया। बिम्ब की काश्मीरी सेना पराजित होते ही सुस्सल से मिल गयी। सुस्सल ने श्रीनगर की ओर सशक्ति प्रस्थान किया। पुरोहित परिषद ने भिक्षाचर के विरुद्ध प्रायोपवेशन आरम्भ कर दिया था। सुस्सल के आने की बात जानकर भिक्षाचर के कितने ही साथी उसका साथ त्याग कर सुस्सल से मिल गये। भिक्षाचर सुस्सल का सामना करने मे असमर्थ था। वह सुस्सल का प्रवेश श्रीनगर मे नही रोक सका। ज्येष्ठ सन् ११२१ ई० मे सुस्सल पुन लगभग ६ मास के पश्चात् काश्मीर का राजा बन गया।

भिक्षाचर पृथ्वीहर से रक्षित होकर सोमपाल की राज्यसीमा मे चला गया। वह पुष्पनाद अर्थात् पुशियान मे पीर पजाल के दक्षिणी मूल मे जाकर स्थित हो गया। पृथ्वीहर ने उन डामरो को जिन्हे सुस्सल प्रसन्न नही कर सका था सघटित कर राजकीय सेना पर विजयेश्वर मे आक्रमण कर दिया। चक्रधर के मन्दिरो मे अनेक लोगो ने शरण ली थी। उसमे डामरो ने आग लगा दी। कितने ही लोग जीते जी भस्म हो गये। किन्तु भिक्षाचर को अधिक सफलता नही मिल सकी। सुस्सल ने भिक्षाचर को पुन शीतऋतु मे पुष्पनाद मे वापस चले जाने के लिये बाध्य कर दिया। सुस्सल ने इस अवसर से लाभ उठाकर विश्वासघातियो एव विद्रोहियो का वध करवा दिया अथवा उन्हे देश से निर्वासित कर दिया। उसने अपनी सेना के प्रमुख स्थानो से काश्मीरियो को हटाकर उन पर विदेशी सैनिक अधिकारियो को नियुक्त कर दिया।

भिक्षाचर ने सन् ११२२ ई० के आरम्भ मे पुन विजयेश्वर पर आक्रमण किया। सुस्सल ने प्रारम्भ मे कुछ सफलता प्राप्त की परन्तु उसने पीछे हटते हुए श्रीनगर की ओर पलायन किया। गम्भीरा नदी के समीप उसे बहुत सैनिक हानि उठानी पडी। श्रीनगर मे सुस्सल ने अपने राजपूत सैनिको के कारण जो काश्मीर के दक्षिणी अथवा पजाब से आये थे, जब डामरो

गजराजैकवाहत्वप्रसिद्धिमपि बिभ्रती ।
जयसिंहाभिधाने श्रीश्चित्रं यस्मिन्सदाऽवसत् ॥ २८ ॥

२८ एकमात्र गजराज ही वाहन है, इस प्रसिद्धि को धारण करती हुई भी लक्ष्मी, आश्चर्य है कि, जिस जयसिंह[1] में सर्वदा वास करती थी।

ने नगर के दक्षिण पूर्व से आक्रमण किया तो गोपादि (शंकराचार्य पर्वत) के समीप भिक्षाचर के सैनिकों को परास्त कर दिया।

सन् ११२३ ई० मे डामरो ने पुन श्रीनगर को घेर लिया। श्रीनगर मे संरक्षित अन्न भण्डार में आग लग गयी। बाहर डामरो ने नाकाबन्दी कर श्रीनगर मे अन्न नहीं आने दिया। नगर मे मानवनिर्मित अकाल व्याप्त हो गया। इसी समय राजा की प्रिय रानी मेघमजरी का देहावसान हो गया। राजा इतना उदास हो गया कि वह राज्य-त्याग का विचार करने लगा।

राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह को लोहर से लाकर आषाढ सन् ११२३ ई० मे उसका राज्याभिषेक कर दिया। किन्तु उसे अपने पुत्र पर स्वयं शंका होने लगी। वह सब सत्ता अपने हाथो मे रखकर पुत्र पर सतर्क दृष्टि रखने लगा। डामरो की एकता टूटने लगी। स्वत राज्यत्याग के कारण उसके प्रति जनता में जो क्षोभ था वह कम होने लगा। भिक्षाचर पामला जिला मे अपने समर्थक डामरो के पास रहने लगा।

सुस्सल ने देवसरस जिला के शक्तिशाली सामन्त टिक्क के सेवक उत्पल से गुप्त सन्धि की। उत्पल ने प्रतिज्ञा की कि वह भिक्षाचर की हत्या कर देगा। किन्तु उसने भिक्षाचर को षड्यन्त्र की सूचना दे दी और सुस्सल की हत्या का षड्यन्त्र करने लगा। सुस्सल को उत्पल पर विश्वास हो गया था। वह उत्पल के विश्वासघात का स्वयं शिकार बन बैठा। राजा के स्वामिभक्त भृत्यो ने राजा को सावधान किया परन्तु राजा ने उनकी बातों की उपेक्षा की। फाल्गुन सुदी १ सन् ११२८ ई० को षड्यन्त्रकारियो ने राजा को घेर लिया, उसकी हत्या कर दी गई। उसका मस्तक काट डाला गया। षड्यन्त्रकारी उसका छिन्न मस्तक तथा मृत शरीर भी उठा ले गये।

(३) सङ्क्रन्दन . यह शब्द इन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध आदि का वाचक है किन्तु यहाँ इन्द्रार्थ ही अभिप्रेत है।

पाद-टिप्पणी :

२८ (१) जयसिंह राजा जयसिंह की तीन ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। जनरल कनिंघम का मत है कि जयसिंह देव नाम के दो राजा थे। उनमे प्रथम का राज्यकाल सन् ११२७–११३० ई० तथा द्वितीय का सन् ११३२ से ११४५ ई० तक था। वह 'श्रीजयसिंह' सम्मुख तथा 'देव' पृष्ठ भाग पर टंकणित मुद्रा को जयसिंह प्रथम की मुद्रा मानता है। जयसिंह द्वितीय की मुद्रा के सम्मुख 'श्रीविजय-सुत' तथा पृष्ठभाग 'सिंहदेव' टंकणित को मानता है। वह जयसिंह देव तथा राजा प्रमानुक (सन् ११५५–११६४ ई०) के मध्य म श्री जय सिरतान देव रखता है और मुद्रा के सम्मुख टंकणित अभिलेख का स्पष्टीकरण करता है।

कनिंघम की बात एक तरह से ठीक भी हो सकती है। क्योंकि जयसिंह सर्वप्रथम अपने पिता राजा सुस्सल द्वारा सन् ११२३ ई० मे अभिषिक्त किया गया था। किन्तु वास्तविक सत्ता पिता की मृत्यु सन् ११२८ ई० के पश्चात् उसके हाथो मे आई। पाँच वर्षों तक वह नाममात्र के लिए राजा था। किन्तु जयसिंह नाम के दो व्यक्ति राजा नहीं हुए थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् सन् ११२८ ई० से सन् ११५४–११५५ ई० तक उसने निरन्तर बिना किसी व्यवधान के राज्य किया था। कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि इस लम्बे राज्य काल मे राजा कल्हण के भाई लोठन ने कुछ समय के लिए लोहर पर अधिकार कर लिया था। जयसिंह का विमातृ भ्राता मल्लार्जुन

वाग्देव्या लालिते मात्रा श्रियो भोक्तरि भूपतौ ।
तयोः श्वश्रूस्नुषात्वेन नैवादर्शि विरोधिता ॥ २९ ॥

२९ माता वाग्देवी द्वारा लालित एवं लक्ष्मी के भोक्ता भूपति[1] में श्वश्रू एवं पुत्रवधू के कारण उन दोनों (सरस्वती-लक्ष्मी) का विरोध भाव नहीं दिखायी दिया।

कुछ समय के लिये लोहर कोट का राजा बन बैठा था। जयसिंह ने लोहर पर आक्रमण कर उसे ले लिया और मल्लार्जुन राजपुरी भाग गया। वहाँ वह सन् ११३५ ई० में पकड़ लिया गया था।

प्रथम मुद्रा पर सम्मुख आसीन देवी, वाम भाग में 'श्री जय' तथा दक्षिण भाग में 'सिंह' (रा) तथा पृष्ठभाग में दण्डायमान राजा तथा ज (देव) टंकणित (C. M. I V. 28 V. I.) है द्वितीय मुद्रा पर सम्मुख आसीन देवी, वाम पार्श्व में 'श्री' दक्षिण पार्श्व में 'जय' तथा पृष्ठभाग पर दण्डायमान राजा दक्षिण पार्श्व में 'सिंह' तथा वाम पार्श्व में 'देव' शब्द टंकणित है। (क्वाइन्स ऑफ मिडीवल इण्डिया : २८ : ५ : १, २, ए. २) थी कनिंघम ने द्वितीय मुद्रा के सम्मुख भाग के लेख को 'श्री विजय सुत' पढ़ा है। परन्तु यह स्पष्ट 'सुत' नहीं 'जय' है। 'श्री' के पश्चात् तीन अक्षर हैं। वे 'विजय' नहीं हो सकते। वे जय के पद हैं। इस मुद्रा के पृष्ठभाग में वाम पार्श्व में सिंह तथा दक्षिण पार्श्व में देव है। अत एव यह मुद्रा भी राजा जयसिंह की होनी चाहिये। यद्यपि उनका लेख समान नहीं है। तृतीय मुद्रा कनिंघम ने काश्मीर राजा 'श्रीजय सुरतान देव' की निश्चित किया है। काश्मीर में इस नाम का कोई राजा नहीं हुआ है। इस मुद्रा के सम्मुख भाग पर आसीन देवी है। वाम पार्श्व में 'श्री' तथा दक्षिण 'रत्नदेव' तथा पृष्ठभाग पर केवल दण्डायमान राजा है (C M I. V. 29. A V. 3)। वह राजा कनिंघम के अनुसार द्वितीय जयसिंह तथा प्रमाणुक के मध्य नहीं हो सकता। प्रमाणुक राजा जयसिंह के पश्चात् राजा बनता है। उनके मध्य किसी भी दूसरे राजा का किंचित् मात्र भी उल्लेख नहीं मिलता। कनिंघम इस मुद्रा के पृष्ठभाग पर अपना कोई मत प्रकट नहीं करता। सम्मुख भाग पर लेख 'श्रीजयसिंहदेवे' वाम तथा 'रत्नदेव' दक्षिण पार्श्व में टंकणित है। यह मुद्रा भी जयसिंह की समझनी चाहिए। राजा जयसिंह की 'रत्नदेव' पदवी उसके उत्तम कार्यों के कारण दी गयी प्रकट होती है। (क्वाइन टाइप ऑफ नार्दर्न इण्डिया, पृष्ठ : २७; डॉ० लल्लन जी गोपाल)

राजा जयसिंह के काल में बौद्धों में नवीन चेतना का उदय हुआ।

पाद-टिप्पणी :

२९. (१) भूपति जयसिंह : राजा जयसिंह कल्हण की दृष्टि में एक श्रेष्ठ राजा था। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी राजा जयसिंह के काल में लिखकर समाप्त की थी। राजा जयसिंह के चरित्र का वर्णन कल्हण ने आठवीं तरंग में किया है। उसके २२ वर्षों के राज्यकाल का वर्णन उन्होंने १९७८ श्लोकों में किया है। प्रथम तरंग ३७३, द्वितीय १७१, तृतीय ५३०, चतुर्थ ७१९, पंचम ४८३, षष्ठ ३६८, सप्तम १७३२ तथा अष्टम का ३४४९ श्लोकों में किया है। कल्हण राजा जयसिंह के काल का प्रत्यक्ष-दर्शी था। उसने आँखों-देखा वर्णन किया है। उसकी सत्यता में सन्देह के लिए स्थान नहीं है। प्राचीन हिन्दूकालीन राजाओं में जितना विस्तृत, घटनाबहुल वर्णन जयसिंह का उपलब्ध है उतना विशद वर्णन विश्व के किसी साहित्य में किसी राजा का नहीं मिलता। लगभग दो सहस्र श्लोकों में लिपिबद्ध जयसिंह के राज्यकाल का वर्णन इतिहास की अनुपमेय निधि है। कल्हण ने जयसिंहाभ्युदय काव्य की भी रचना की थी जो अप्राप्य है। यदि वह प्रकाश में आ जाय तो इस राजा के चरित्र पर और प्रकाश पड़ सकता है। जोनराज ने इस महान राजा के ११४९ से

११५५ ई० तक का शेष इतिहास केवल १२ श्लोको मे समाप्त कर दिया है। इससे प्रकट होता है कि जोनराज ने कल्हण के ३०० वर्षो पश्चात् द्वितीय राजतरंगिणी की रचना की थी। वह बादशाह जैनुल आबदीन का राजकवि था। बादशाह तथा तत्कालीन दरबारियों को मुसलिम बादशाहो के चरित अध्ययन की विशेष रुचि थी। समस्त काश्मीर-मण्डल के मन्दिर नष्ट हो चुके थे। एक भी मन्दिर, मठ, देवस्थान एवं विहार नही बचे थे। अत्यधिक जियारत, मजार, मसजिदों मे परिणित कर दिये गये थे। जनता सर्वथा मुसलिम हो गयी थी। कठिनता से दो प्रतिशत लोग हिन्दू कहीं बचे-खुचे अथवा बाहर से आकर आबाद हुए होंगे। क्योंकि सिकन्दर (स० १३८९–१४१३ ई०) के समय केवल ११ घर ब्राह्मण शेष रह गये थे। जोनराज ने जैनुल आबदीन (सन् १४१९–१४५९ ई०) के समय राजतरंगिणी लिखना आरम्भ किया था। काश्मीर के हिन्दुओ का महासंहार हुए कठिनता से दश से पन्द्रह वर्ष बीता था। अतएव जोनराज ने केवल राजतरंगिणी को पूर्ण करने की दृष्टि से जयसिंह का वर्णन कर इतिहास रचना की पूर्णता की छूत छुड़ाई थी।

प्रतीत होता है कि जयसिंह अपने पिता सुस्सल की हत्या के समय श्रीनगर मे ही था किन्तु राजप्रासाद से कुछ दूर पर था। अपनी रक्षा की दृष्टि से उसने बन्दियों तथा द्रोहियो को क्षमादान की घोषणा कर दी और अपनी सहायता के लिये गर्गचन्द्र के पुत्र पंचचन्द्र को उसकी रियासत लोहर से बुलाया। हत्या के दूसरे दिन भिक्षाचर ने श्रीनगर की ओर अभियान किया। परन्तु वर्षा तथा तुषारपात के कारण वह श्रीनगर नहीं पहुँच सका। इसी समय पंचचन्द्र अपनी सेना सहित राजा जयसिंह से आकर मिल गया। इस घटना तथा भिक्षाचर पर आकस्मिक आक्रमण के कारण भिक्षाचर के पैर उखड़ गये। उसके साथी भाग निकले। श्रीनगर पर राजा जयसिंह का पूर्ण अधिकार हो गया। राजा सुस्सल के विश्वास-पात्र अधिकारी स्वयं श्रीनगर की ओर बढ़ रहे थे। उन्होने डामरो का मार्गावरोध कर दिया। इस कारण जयसिंह को ओर सफलता मिल गयी।

हिम गलने के पश्चात् भिक्षाचर जब श्रीनगर पर आक्रमण करने के लिये चला तो राजा सुस्सल के विदेशी सेना के प्रधान सुज्जी ने गम्भीरा पर भिक्षाचर को पराजित कर दिया। जयसिंह का मन्त्रणादायक लक्ष्मक ने डामरो के सरदारो को घूस देकर मिला लिया। बाध्य होकर भिक्षाचर ने काश्मीर त्याग दिया। सुस्सल की मृत्यु के चार मास के अन्दर ही जयसिंह नाम के लिये काश्मीर मण्डल का राजा हो गया। किन्तु डामर लोग शक्तिशाली रहे क्योंकि शक्ति एवं राजकोष अनेक युद्धो के कारण समाप्त हो चुका था। विद्रोह के कारण मल्लवश काश्मीर के सिंहासन पर बैठा था। काश्मीर में बड़े बड़े सामन्तों एवं सरदारों को अर्ध किंवा पूर्ण स्वतन्त्र स्थिति में रख छोड़ा था। राजा का अधिकार सीमित हो गया था। डामरो के मोर्चेबन्दीपूर्ण स्थान जिन्हें उपवेशन कहते थे, किलो के समान प्रत्येक डामर सरदार की शक्ति के केन्द्र थे। यह व्यवस्था हिन्दू राज्य के लोप का कारण हुई तथा वह मुसलिम तथा डोगरा काल मे भी ग्रामो म किसी न किसी रूप मे प्रचलित थी।

राजा जयसिंह ने अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिये कुटिल नीति तथा षड्यन्त्रो का आश्रय लिया था। जयसिंह की वीरता के स्थान पर कल्हण उसकी कौटिल्य नीति का अधिक वर्णन करता है। उसमे स्थिरता तथा निर्णयपरक बुद्धि का अभाव पाया जाता है। लक्ष्मक राजा सुस्सल के हत्यारे उत्पल को बन्दी बनाने मे सफल हुआ। उत्पल का वध कर दिया गया। इसी वर्ष के शरदऋतु मे पुनः भिक्षाचर दक्षिण से द्रुतगति से चलकर काश्मीर म आ गया। किन्तु सुज्जी के कारण उसे पुन. पलायन करना पड़ा। लक्ष्मक ने ईर्ष्या के कारण सुज्जी को निर्वासित करा दिया। सुज्जी के पास जयसिंह के विरोधी एकत्रित होने लगे। भिक्षाचर इस आशा मे कि डामर लोग विद्रोह करेंगे और सुज्जी भी राज

के विरुद्ध हथियार उठायेगा, उतावलेपन से काश्मीर सीमा की ओर दक्षिण से बढ़ा। राजसेना के कारण उसे पुनः अपनी रक्षा के लिये बनिहाल के दक्षिण खस सरदार के बाणशाला दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। सन् ११३० ई० में राजसेना ने दुर्ग घेर लिया। लक्ष्मक ने घूस देकर खस सरदार को मिला लिया। खश सरदार ने भिक्षाचर को उसके भाग्य पर छोड़ दिया। भिक्षाचर के साथियों ने भी उसका साथ त्याग दिया। भिक्षाचर ने राजकीय सेना का वीरतापूर्वक सामना करते हुए वीर गति प्राप्त की।

लोठन अपने भ्राता सल्हण के साथ लोहर कोट में वन्दी था। सल्हण मर गया। लोठन षड्यन्त्र का आश्रय लेकर मुक्त हो गया। दूसरे दिन वह लोहर का राजा बन गया। राजा सुस्सल का कोष तथा शक्ति उसके हाथों में आ गयी। जयसिंह ने लक्ष्मक को सेना सहित लोहर विजय के लिए भेजा। लक्ष्मक असफल रहा और काश्मीरी सेना (सन् ११३० ई० में) पराजित हो गयी।

लोठन ने सुज्जी को अपना मन्त्री बनाया और वह लोहर पर शासन करने लगा। किन्तु फाल्गुन (सन् ११३१ ई०) में मल्लार्जुन जो जयसिंह का विमातृ बन्धु था और लोहर में बन्दी था षड्यन्त्रकारियों द्वारा लोहर का राजा घोषित किया गया। मल्लार्जुन ने राजा को कर देना स्वीकार किया तथा दुर्बल राजा प्रमाणित हुआ। लोठन ने शक्तिशाली डामर सरदार कोष्ठेश्वर से जो पृथ्वीहर का पुत्र था सहायता ली। चचा और भतीजा के संघर्ष का लाभ उठा कर कोष्ठेश्वर ने लोहर के समीप वर्ती क्षेत्र में अपनी प्रभुता स्थापित कर ली। मल्लार्जुन की स्थिति भी कोष्ठेश्वर ने लोहर कोट में भयप्रद बना दी। जयसिंह ने कोष्ठेश्वर को मिला लिया और सुज्जी को जिसे उसने पुन. सेवा में रख लिया था लोहर विजय के लिये भेजा। मल्लार्जुन अपनी स्थिति विपदग्रस्त देखकर राजपुरी भाग गया। दरबारी लोगों की चुगली के कारण सुज्जी से राजा पुनः विमुख हो गया। सुज्जी को हवा का रुख मिल गया वह अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयास करने लगा परन्तु राजा ने सन् ११३३ ई० में अपने एक अधिकारी से सुज्जी की हत्या करा दी। उसने सुज्जी के साथियों तथा सम्बन्धियों की भी हत्या करा दी ताकि वे प्रतिहिंसा की भावना से उसके विरुद्ध उठ न सकें। सुज्जी का हत्यारा कुलराज को राजा ने नगराधिकारी तथा सेजपाल को कम्पनेश बना दिया।

जयसिंह कोष्ठेश्वर का भी वध करवाना चाहता था किन्तु वह भागकर कुरुक्षेत्र चला गया। वहाँ उस तीर्थ में उसकी मल्लार्जुन से भेंट हुई। उन्होंने पुनः काश्मीर में विप्लव करने की योजना बनायी। वे काश्मीर पहुँचे, परन्तु राजा ने कोष्ठेश्वर को अपनी ओर मिला लिया और मल्लार्जुन भाग खड़ा हुआ। कालान्तर में मल्लार्जुन ने भी आत्मसमर्पण कर दिया और श्रीनगर में नवमठ में वन्दी बना कर रख दिया गया। जयसिंह ने चतुराई से कोष्ठेश्वर तथा चतुष्क को वन्दी बनाकर मरवा दिया। इसी प्रकार शक्तिशाली कल्याणपुर के डामर विजय को भी उसने मरवा दिया। इसी समय चित्ररथ जो राजा का प्रभावशाली मन्त्री था मर गया और उसके स्थान पर शृङ्गार नियुक्त किया गया।

जयसिंह ने अनेक पुण्यकार्य किये। उसने अनेक देवस्थानों का जीर्णोद्धार एवं निर्माण कराया। उसके मन्त्रियों तथा अधिकारियों ने भी पुण्यकार्य किये। राजा जयसिंह ने काश्मीर के बाहरी राजाओं से भी सम्पर्क स्थापित किया। कन्नौज राजा गोविन्दचन्द्र का दूत जयसिंह की सभा में उपस्थित था। अपरादित्य जो कोकन के राजा सिलहर का दूत था वह भी जयसिंह की सभा में उपस्थित था। इस प्रकार प्रकट होता है कि राजा जयसिंह ने उत्तरापथ में कन्नौज से धुर दक्षिणापथ कोकन तक के राजाओं से सम्पर्क स्थापित किया था।

दरद देश काश्मीर के उत्तर में स्थित है। वहाँ के राजा यशोधर की मृत्यु के पश्चात् देश की स्थिति बिगड़ गयी। इस परिस्थिति से लाभ उठाने के विचार से राजा ने वहाँ अभियान किया। परन्तु

असफल रहा। दरद देश का राजा विद्यासिंह बन बैठा। दरद जयसिंह के विरुद्ध हो गये थे। लोठन इस समय काश्मीर के बाहर पर्वतीय क्षेत्र में था। उसे दरदों ने विद्रोह के लिये उत्साहित किया। उर्धो कृष्ण गंगा उपत्यका के जिला करनाह का डामर अलंकार चक्र अत्यन्त प्रभावशाली हो गया था। सन् ११४३ ई० मे लोठन ने अलंकार चक्र से सम्बन्ध स्थापित किया। वह समीपवर्ती दरदों से विवाहादि सम्बन्धो से सम्बन्धित था। उसने लोठन के लिये राजा के विरुद्ध नाममात्र का विद्रोह किया। कृष्णगंगा उपत्यका से विप्लव की लहर काश्मीर उपत्यका मे पहुँची। राजा जयसिंह सतर्क हो गया। राजकीय सेना के समीप आने पर लोठन, जयसिंह के सौतेले भाई विग्रहराज तथा भोज ने जो राजा सल्हण का पुत्र था शिरह शीलाकोट्ट मे शरण ली। यह अलंकारचक्र का दुर्ग शारदी तीर्थ से कुछ मील दूर कृष्णगंगा के अधोभाग मे दरद भाग की उपत्यका की सीमा पर था। राजसेना ने जयसिंह के मन्त्री धन्य के नेतृत्व मे दुर्ग का घेरा डाल दिया। कुछ समय पश्चात् अन्न एवं जल समाप्तप्राय हो गया। फाल्गुन सन् ११४४ में डामर अलंकारचक्र ने विग्रहराज तथा लोठन को धन्य के सुपुर्द कर दिया किन्तु भोज को अपने पास रोक लिया।

भोज का विश्वास डामरो परसे उठ गया और वह अपने साथियों के साथ दुर्ग से निकलकर दरद देश पहुँच गया। दरदराज विद्यासिंह ने भोज का सत्कार कर उसे अपने यहाँ रखा। प्रभावशाली राजा जयसिंह का अधिकारी राजवदन राजा से चिढ़ा था। उसे भोजादि ने काश्मीर मे विद्रोह करने के लिये प्रेरणा दी। भोज ने इस विप्लव मे शक्तिशाली डामर त्रिल्लक तथा चतुष्क का समर्थन प्राप्त किया। सेना में मदाक्रमता फैलने लगी। भोज उत्तर दिशा मे राजसिंहासन प्राप्ति के लिये अग्रसर हुआ। उसके साथ दरदराज तथा उर्ध्व सिन्धु उपत्यका के म्लेच्छ सरदार भी थे। राजवदन के नेतृत्व में यह सेना अलर लेक तक पहुँच गयी। किन्तु पारस्परिक अविश्वास के कारण वह विप्लवी सेना वापस लौट गयी और भोज शरदऋतु सन् ११४४ ई० में अलंकारचक्र के हाथो मे पड गया। सुस्सल के पुराने शत्रु पृथ्वीहर के पुत्र लोठक को तिलकादि डामरो ने राजवदन के स्थान पर नेता चुना। राजसेना पर आक्रमण किया गया किन्तु स्वामिभक्त मन्त्री रिल्हण के कारण डामर लोग पराजित हो गये।

राजवदन तथा विद्रोही डामर लोगो ने राजा से सन्धि कर ली तथा भोज को राजा के विरुद्ध प्रयोग करने के लिए लखो के क्रमराज के पश्चिम स्थित दुर्ग मे बन्दी बनाकर रख दिया। सन् ११४४–११४५ ई० के शीतऋतु मे राजवदन ने भोज को अपना भृत्य बनाकर राजा और अपने बीच मे रखा। डामर लोग विद्रोह करने के लिये कटिबद्ध हो गये थे। भोजराज भागकर राजकीय सेना मे ज्येष्ठ सन् ११४५ ई० मे आ गया। राजा के साथ भोज की सन्धि होने पर डामर विप्लव स्वतः शान्त हो गया। तिलक ने प्रथम राजसेना पर आक्रमण किया परन्तु पराजित होकर राजा के आगे मस्तक झुका दिया। राजवदन भी पराजित हो गया और राजा के द्वारा मरवा डाला गया।

राजा जयसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गुल्हण को जो शिशु मात्र था लोहर का राजा बना दिया। कल्हण इस विषम परिस्थितियों का उल्लेख करता है। वह स्थानीय सम्थाओं की भी झलक उपस्थित करता है। कल्हण राजा जयसिंह के २२ वर्षों के शासन (सन् ११२८–५०) का वर्णन कर प्रथम राजतरंगिणी समाप्त करता है।

जोनराज ने राजा जयसिंह के ५ वर्षों के इतिहास का वर्णन किया है। इस काल मे यवनों के विरुद्ध जयसिंह ने अभियान किया था। जोनराज ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति तथा जयसिंह के काल का वर्णन किया है कि जयसिंह के अन्तिम दिन किस प्रकार बीते।

त्रिगर्ताधिपतेर्वंश्यं मल्लं जातु सुशर्मणः।
वैरिनिर्वासितं प्राप्तं वृत्तिकामं नृपोऽग्रहीत् ॥ ३० ॥

३० कदाचित् 'वैरि-निर्वासित, वृत्ति कामना से आगत, 'त्रिगर्ताधिपति—सुशर्मा' के वंशीय मल्ल (मल्लचन्द्र)' को नृप ने ग्रहण किया।

पाद-टिप्पणी :

३० (१) वैरिनिर्वासित : जयसिंह ने भारतीय राजाओं का संघटन कर सीमान्त पर होने वाले विदेशी मुसलिम आक्रमण से देश की रक्षा के लिये भारतीय राजाओं का आवाहन किया था। मंख के श्रीकंठचरित (२५ : ११०) से ज्ञात होता है कि जयसिंह की राजसभा में कन्नौज के गहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र (सन् ११९४–५४ ई०) और कोकन के राजा अपरादित्य के राजदूत उपस्थित थे। वाकियात–इ–काश्मीर (पृष्ठ २४) इस तथ्य का समर्थन करती है। उसके अनुसार नगरकोट का राजा मल्लचन्द्र ५०० अश्वारोही तथा पंजाब के राजा लोगों ने जयसिंह को सैनिक सहायता तुरुष्कों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये भेजी थी (तारीख हुस्सन : २ : १५२)।

जोनराज द्वितीय राजतरंगिणी की पहली घटना का वर्णन करता है।

(२) त्रिगर्त : महाभारत में त्रिगर्त का नाम एक जनपद के रूप में आया है (भीष्म : ५१ : ७)। अर्जुन तथा नकुल ने दिग्विजय के समय त्रिगर्त पर विजय प्राप्त की थी (सभा : २७ : १८ ; ३२ : ७)। महाभारत में नकुल द्वारा हत त्रिगर्तराज सुरथ का नाम आता है (वन २७१ · १९–२२)। पाँच त्रिगर्तों के साथ युद्ध का भार द्रौपदी के पाँचों पुत्रों पर पड़ा था (उद्योग : १६४)। त्रिगर्तगण भीष्म-निर्मित गरुडव्यूह के मस्तक स्थान की रक्षा कर रहे थे (भीष्म · ५६)। कर्ण तथा श्रीकृष्ण ने त्रिगर्तों को जीता था (द्रोण : ४ , ११, कर्ण : ८)। परशुराम ने त्रिगर्तों का संहार किया था। सात्यकि से उनका युद्ध हुआ था। युधिष्ठिर ने त्रिगर्तों को हत किया था (द्रोण ७० ; १४१ ; १५७)। त्रिगर्तों ने अर्जुन एवं कृष्ण पर आक्रमण किया था (शल्य : २७)। मारकण्डेय तथा वायु पुराण में त्रिगर्त तथा मालव का उल्लेख मिलता है। मत्स्य तथा वामन पुराण में भी त्रिगर्त का वर्णन किया गया है।

प्राचीन त्रिगर्त प्रदेश वर्तमान कांगड़ा है। इस भूभाग में तीन नदियाँ रावी, सतलज एवं व्यास बहती हैं। इसकी राजधानी जालन्धर तथा दुर्ग कोटनगर अर्थात् नगरकोट में था। (आर्क · सर्वे : रिपोर्ट : ५ : १४५, १४८; हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स : १ : ५०, १०२, १०३)

(३) सुशर्मा : त्रिगर्त के राजा थे। मत्स्य-देशाधिपति विराट ने इनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। राज्यच्युत होने पर यह दुर्योधन राज के आश्रय में गये। राजा विराट का सेनापति कीचक था। कीचक की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन ने विराट के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करने का आदेश सुशर्मा को दिया। सुशर्मा के आक्रमण पर विराट ने रक्षात्मक युद्ध आरम्भ किया। सुशर्मा विराट को बन्दी बना अपने स्वदेश की ओर प्रत्यावर्तित हुआ। पाण्डव इस समय विराट देश में अज्ञातवास कर रहे थे। युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम ने सुशर्मा को युद्ध में पराजित कर दिया (विराट : ३३ : २५–४८)। महाभारत के प्रथम दिवस के युद्ध में सुशर्मा ने चेकितान से युद्ध किया था (भीष्म ४५ : ६०–६२)। अर्जुन, भीमसेन, धृष्टद्युम्न के साथ सुशर्मा का घोर युद्ध हुआ था (भीष्म : ८४ : ५३, १०२ : १०–१८, द्रोण : १४ : ३७–३९, १७ : ११–१८)। संशप्तक सेना सहित की प्रतिज्ञा की थी (द्रोण : १७ : २९–३६)। कुरुक्षेत्र युद्ध में अट्ठारहवें दिन सुशर्मा ने अर्जुन से लड़ते हुये वीरगति प्राप्त की थी (विराट :

सर्वत्रौषधयस्तृणानि मणयो ग्रावाण एवाखिलै-
र्मन्यन्ते गुणिनो दिगन्तरगतास्तावज्जनाः प्राकृताः।
यावन्नैव नयन्ति कर्मभिरभिख्येयप्रकर्षप्रथै-
श्चित्रप्रायदशैश्च निर्मलमतिस्फारं जनं रञ्जनम् ॥ ३१ ॥

३१ सर्वत्र निखिल लोगों द्वारा ओषधियाँ, तृण एवं मणियाँ पत्थर ही मानी जाती हैं। इसी प्रकार दिगन्तर गत गुणी तब तक प्राकृत जन माने जाते हैं, जब तक (वे) आश्चर्यजनक एवं प्रशंसनीय उत्कर्ष की प्रसिद्धि से समन्वित कार्यों द्वारा अत्यधिक लोगों का सुन्दर रञ्जन नहीं करते।

वसुधावासवे याते जेतुं यवनमेदिनीम्।
सैन्यस्य वल्लभो मल्लः शौर्योद्रेकादधाऽभवत् ॥ ३२ ॥

३२ पृथ्वीन्द्र के विजय हेतु यवनभूमि[1] जाने पर शौर्योद्रेक के कारण मल्ल सेना का प्रिय हो गया।

३०, ३२, ३३)। त्रिगर्तराज पाँच भाई थे। उनमे प्रधान सत्यरथ था। पाँचो त्रिगर्त वीर संशप्तक नाम से प्रसिद्ध थे (द्रोण : १७; १९)।

(४) मल्लचन्द्र : फारसी इतिहासकारों का कथन है कि मल्लचन्द्र सुशर्मा का पुत्र था। यह केवल किंवदन्ती पर आधारित प्रतीत होता है। इसी प्रकार उसे नगरकोट का राजा कहा गया है। यह इतिहास की तुला पर ठीक नहीं उतरता। मुसलमानो के विरुद्ध लड़ने के लिये जयसिंह के आवाहन पर ५०० अश्वारोहियो के साथ सम्मिलित हुआ था।

पाद-टिप्पणी :

३२. (१) यवनभूमि : भारतवर्ष पर सन् ७१२ ई० मे मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हो चुका था। मुल्तान विजय कर वह काश्मीर की सीमा पर पहुँच गया था। मेजरशहित मकरान होता, देवल पहुँचा था। देवल विजय के पश्चात्, जिन युवकों ने इस्लाम कबूल नहीं किया, वे तलवार के घाट उतार दिये गये। देवल से ७५ मील उत्तर पूर्व निरुन नगर था। वहाँ की जनता सामना करने में असमर्थ थी। उसे अरबों ने जीत लिया। रावर स्थान पर सिन्धराज दाहिर ने अरबो का सामना किया। दाहिर ने वीरगति प्राप्त की। स्त्रियाँ सती हो गयी, रावर पर मुसलमानो का आधिपत्य हो गया। रावर के दुर्ग मे ६००० व्यक्ति मार डाले गये। मुहम्मद बिन कासिम ने ब्राह्मणाबाद जीतते हुए मुल्तान पर आक्रमण किया और उसका सिन्ध पर अधिकार हो गया। देवल, नीरुन, आरोर, ब्राह्मणाबाद, मुल्तान आदि के मन्दिर नष्ट कर दिये गये और मसजिदों तथा जियारतो का उनके स्थान पर निर्माण किया गया। नव मुस्लिमो की एक जमात तैयार हो गई। भारत मे प्रथम बार शक्ति के आधार पर धर्मपरिवर्तन किया गया। भारतीय धर्म के स्थान पर विदेशी धर्म का प्रवेश हुआ। यह धर्म प्रवर्तक धर्म था। हथियार का साधन एवं राजशक्ति का आश्रय लेकर वह अपनी वृद्धि पर विश्वास करता था। यह विचारधारा भारतीय विचारधारा के विपरीत थी। एक बार मुस्लिम धर्म किसी भी प्रकार स्वीकार करने पर उस धर्म का त्याग इच्छा किंवा अनिच्छा से नहीं किया जा सकता था। वह निर्वं था, जिसकी सजा मौत थी। बौद्ध हिन्दू हो सकता था। हिन्दू बौद्ध हो सकता था। यह काश्मीर में निरन्तर होता रहा। परन्तु काश्मीरी सीमा पर उत्पन्न होते इस धर्म का, उसके प्रभाव का, उसके

हतशेषं तुरुष्केशसैन्यं तुलयितुं निशि।
शिबिरं मल्लचन्द्रोऽगाद्रिपूणां साहसोर्जितः ॥ ३३ ॥

३३ हतावशेष तुरुष्केश-सैन्य को जानने के लिये साहसोर्जित मल्लचन्द्र रिपुओं के शिबिर में गया।

उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का अनुमान काश्मीरी जनता नहीं लगा सकी।

पाद-टिप्पणी :

३३. (१) तुरुष्केश : उत्तर पश्चिम सीमा से उठते खतरे को देखकर राजा जयसिंह सतर्क हो गया। सन् १००० ई० में महमूद गजनी का भारत पर आक्रमण हो चुका था। वह गजनी से चलकर दिल्ली होता सोमनाथ पहुँच चुका था। महमूद गजनी के पश्चात् अफगानिस्तान में गजनी तथा गोरियों में संघर्ष हो रहा था। अतएव वे भारत की ओर नहीं आ सके। मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुए लगभग ४५० वर्ष बीत चुके थे। इतने लम्बे काल में उत्तर पश्चिम सीमा पर मुसलिम शक्ति प्रबल हो उठी थी। सिन्ध का सम्बन्ध आठवीं शताब्दी तक मुसलिम जगत के खलीफा से बना रहा। तत्पश्चात् सिन्ध के शासक स्वतंत्र हो गये। पंजाब गजनी शासन के अन्तर्गत हो गया था। महमूद गजनी अपने साम्राज्य की व्यवस्था ठीक नहीं रख सका। उसके पश्चात् शासन क्षीण होता चला गया।

गोर के अफगान प्रबल होने लगे। गोर का राज्य गजनी तथा हिरात के मध्य स्थित था। सन् ११५० ई० में गजनी के सुलतान बहराम को पराजित कर मुइज्जुद्दीन गजनी का बादशाह बना। उसने अपना नाम शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी रखा। जोनराज ने राजतरंगिणी तथा जयसिंह के राज्य-काल का वर्णन सन् ११५० ई० से करना आरम्भ किया है। पंजाब के गजनवी शासकों ने भारत के भीतर प्रवेश करने का प्रयास किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। गजनी पर गोरियों का अधिकार हो जाने पर महमूद गजनी के वंशज गजनी से भाग कर लाहौर चले आये थे। मुहम्मद गोरी ने सन् ११७५ ई० में मुलतान पर आक्रमण कर विजय कर लिया। तत्पश्चात् उच्छ का दुर्ग भी उसने विजय किया। सन् ११७८ ई० में गजनी ने सिन्ध के मरुस्थल से होकर गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात के राजा द्वारा उसे पराजित होना पड़ा और वह लौट गया। सन् ११७९ ई० में पेशावर पर आक्रमण कर गोरी ने ले लिया। सन् ११८६ ई० में मुहम्मद गोरी ने जब पंजाब पर आक्रमण किया तो उस समय वहाँ महमूद का वंशज खुसरो शासन कर रहा था।

हिन्दू राजाओं का संघटन तुर्कों के विरुद्ध देखकर तारीख हैदर मलिक तथा तारीख नारायण कौल से प्रतीत होता है कि काबुल क्षेत्र से तुर्कों की सेना चली थी और नीलाब अर्थात् सिन्धु नदी के तट पर युद्ध हुआ था।

यहाँ तुरुष्कों से तात्पर्य सम्भवतः उन गजनी वंशज राजाओं से लगाया जा सकता है जो कि इस काल में गोरी वंश के उदय एवं उत्कर्ष के कारण उनसे पराजित हो रहे थे और गजनी, काबुल तथा अफगानिस्तान से भाग कर भारत में प्रवेश कर रहे थे।

मुलतान खुसरो बिन बहराम : वह गजनी त्याग कर लाहौर की ओर इस काल में बढ़ा। गजनी पर अलाउद्दीन गोरी का अधिकार हो गया था। सात दिन तक गजनी में कत्लेआम होता रहा। अलाउद्दीन गोरी के गजनी से गोर लौट जाने पर खुसरो ने लाहौर में सुलतान सुनजुर सुलजुकी की सहायता से गजनी लेने का प्रयास किया। वह गजनी की सीमा पर पहुँचा तो उसे ज्ञात हुआ कि सुलतान सुनजुर पराजित हो गया। वह घिजा के तुर्कमानों द्वारा बन्दी बना लिया गया था। वे गजनी की

यत्र न प्राविशद्वायुर्भीत्येव सुभटैर्वृते ।
ध्रुवं मन्त्रौषधिबलात् प्रविश्यान्तर्बलान्तरे ॥ ३४ ॥

३४ जहाँ पर मानो भय से वायु भी प्रवेश नहीं कर सकता था, सुभटों से रुद्ध उस सैन्य मध्य निश्चय ही मन्त्र एवं औषधि बल से प्रविष्ट कर—

सुप्तद्रोहांहसो भीतेरनिघ्नन् यवनेश्वरम् ।
उपानहौ स्वनामाङ्के निनायास्य शिरस्त्रताम् ॥ ३५ ॥

३५ सुप्त द्रोह के पाप भय से यवनेश्वर को न मारकर, स्वनामाङ्कित दो पादत्राण (जूते) को उसका शिरस्त्राण बना दिया ।

उपानहौ परिज्ञाय गृहीत्वा चाथ सोऽप्यरिः ।
भूपतेः शिबिरं यातः श्रिय कीर्तिमिवाददत् ॥ ३६ ॥

३६ वह शत्रु जूतों को पहचान कर एवं लेकर भूपति के शिविर में गया और कीर्ति तुल्य श्री को भी समर्पित कर दिया ।

द्वे मूर्ती तपनानलावथ तथा शम्भोः शशाङ्काम्भसी
नेता हन्त मिथो गतानुगतिको लोकस्तुलां तां द्वयीम् ।
सूर्यचन्द्रमसोर्यथास्वमुपलैः कान्तैर्विशेषं परं
तेषां तत्प्रतियोगिसम्भविगुणैर्लब्धा जनो रोचकी ॥ ३७ ॥

३७ शम्भु की दो मूर्तियाँ—तपन-अनल एवं चन्द्रमा-जल । हन्त ! गतानुगतिक यह लोक उन दोनों की परस्पर तुलना करता है । जिस प्रकार सूर्य एवं चन्द्रमा से उनके उपल अर्थात् सूर्यकान्त तथा चन्द्रमणि द्वारा विशेष कान्ति होती है, उनके उस प्रतियोगिता से समुत्पन्न गुणों के प्रति लोग लोलुप होते हैं ।

और एक बड़ी सेना के साथ बढ़े । वे गजनी पर अधिकार करने का प्रयास कर रहे थे । खुसरो लाहौर लौट आया और शान्ति से राज्य करने लगा । इसी समय खिजा के तुर्कमानों ने गोरियों की सेना को खदेड़ दिया तथा गजनी पर दो वर्षों तक अधिकार रखे रहे । तत्पश्चात् गोरियों ने उन्हें गजनी से निकाल दिया । किन्तु गोरी भी सुल्तान खुसरो के सेनापति अहमूद द्वारा गजनी से हटा दिये गये । (फरिश्ता ८७, ८८)

जोनराज ने तुरुष्क शब्द तुर्क, मगोल, विदेशी मुसलिमों के लिये व्यवहृत किया है । तुरुष्केश का नाम जोनराज ने नहीं लिखा है । यह बहराम शाह गजनवी (सन ११११–११५२ ई०) अथवा उसका कोई सिपहसालार हो सकता है ।

तुरुष्क अर्थात् मुसलमानों को काश्मीरियों ने पराजित किया था । जोनराज प्रचलित शब्द मुसलमान तथा इस्लाम का इन शब्दों में उल्लेख नहीं करता । उसने लिये तुरुष्क, म्लेच्छ तथा यवन शब्दों का प्रयोग किया है ।

त्रिंशेऽब्दे फाल्गुणे कृष्णद्वादश्यां भूमिवल्लभः ।
स्वसौभाग्येन दिव्यस्त्रीदृशमप्रीणयत्तराम् ॥ ३८ ॥

३८ तीसवें (लौ० ४२३० = सन् ११५५ ई०) वर्ष के फाल्गुन कृष्ण पक्ष द्वादशी (तिथि) को स्वसौभाग्य से भूमिवल्लभ दिव्यांगनाओं के नेत्र को प्रसन्न (स्वर्गप्रयाण) किया ।[1]

पाद-टिप्पणी :

३८. (१) मृत्यु : हसन का मत है कि राजा जयसिंह तुर्कों द्वारा मार डाला गया था। यह इतिहास मे तथा प्राप्य ग्रन्थो मे प्रमाणित नही होता। यदि 'दा' को 'दो' मान लिया जाय तो उसका अर्थ काटना होता है। मैंने अर्थ 'दिया' ही किया है।

जयसिंह के भाई मल्लार्जुन तथा विग्रहराज थे। वह सुस्साल का पुत्र था। सुस्सल मल्ल का पुत्र था। मल्ल के उच्चल, सुस्सल, सल्हण, लोठन तथा रल्ह कुल पांच पुत्र थे। उच्चल की केवल एक कन्या थी। उसका विवाह सोमपाल के साथ हुआ। मल्हन का पुत्र भोज था। लोठन के पुत्र डिल्हन की कन्या पद्मलेखा थी। रल्ह की किसी सन्तान का उल्लेख नही मिलता। जयसिंह को पर्माण्डि, गुल्हन, अतराज, ललितादित्य, जयापीड, यशस्कर पुत्र तथा अम्बापुत्रिका कन्या थी। श्री स्तीन ने यही वंशावली दी है (रा० १ : अपेण्डिक्स २)। श्लोक (रा० : ८ : ३३७१-३३८२) से निम्नलिखित वंशावली निकलती है। रड्डादेवी से राजा जयसिंह को गुल्हन के अतिरिक्त जो लोहर मे शासन करता था, अपरादित्य, जयापीड, ललितादित्य तथा यशस्कर पुत्र थे। राजा को चार कन्यायें—मेनिला, राजलक्ष्मी, पद्मश्री एवं कमला थी। वंशावली मे स्तीन ने अम्बापुत्रिका का विवाह राजपुरी किंवा राजौरी के राजा सोमपाल से हुआ था लिखा है। (रा० : ८ : १६४८) मेनीला का विवाह भूपाल जो सोमपाल का पुत्र था, उसके साथ हुआ था। राज्यश्री का विवाह राजा घटोत्कच के साथ हुआ था। श्लोक रा : ८ : ३८० मे नाम राजलक्ष्मी तथा ३३९९ मे राज्यश्री दिया गया है। दोनो का शाब्दिक अर्थ एक ही है।

श्लोक (रा० : ८ : १६०८, २९५३) से पता चलता है कि राजा का एक पुत्र पर्माण्डि था। उसका नाम गुल्हन के साथ लिया गया है।

समसामयिक घटनायें : भारत के राजाओं मे इसके समय कल्याणी के चालुक्य तैलप्पा तृतीय (सन् ११४९-११६३ ई०) तथा जगदेकमल्ल (सन् ११६३-११८३ ई०), त्रिभुवन मल्ल वज्जल (सन् ११४५-११६७ ई०) राजा थे। विग्रहराज चतुर्थ (सन् ११५३-११६४ ई०) तथा बल्लालसेन (सन् ११५८ ई०) थे। इसी के समय हेनरी द्वितीय इङ्गलैण्ड का राजा हुआ था। कन्नौज के राजा इस समय विजयचन्द्र थे (सन् ११५६-११७० ई०)। चौहान राजा विक्रमराज (वीसल देव) ने दिल्ली पर अधिकार किया था। सन् ११५७ ई० मे तुर्कमान की घुज्ज ने खुरासान पर आक्रमण किया। उसने उसके सुलतान संजर को पराजित कर मार डाला। खुरासान से तुर्कमानो ने गजनी पर आक्रमण किया। खुशरव वहाँ से भाग कर लाहौर आया। सन् ११६३ ई० मे गयासुद्दीन बिन शाम ने गोर पर अधिकार कर लिया। सन् ११६० ई० मे खुशरव की मृत्यु हो गयी और खुशरव मल्लिक राज हुआ। लंदन का पुल पत्थर का इसी वर्ष निर्माण किया गया था। गजनी पर तुर्कमानो का दस वर्ष तक राज रहा। सुबुक्तगीन के वंशज पंजाब आदि स्थानो पर राज्य करते रहे।

अथाभ्यषेचि तत्पुत्रो जडैः स परमाणुकः।
अणीयःपत्रविस्फारः कुन्दो माघदिनैरिव ॥ ३९ ॥

परमाणुक (सन् ११५५-११६४ ई०)[1]

३९ अनन्तर उसका पुत्र परमाणुक जनों द्वारा अभिषिक्त किया गया जैसे माघ दिवसों से कुन्द स्वल्प पत्र प्रसार वाला हो जाता है।

अवधूय प्रजात्राणमवधीर्य च दिग्जयम्।
कर्तुं प्रारभताखिन्नं राजा कोशस्य सञ्चयम् ॥ ४० ॥

४० राजा ने प्रजात्राण त्याग कर, दिग्विजय की अवहेलना[1] कर, अक्षीयमाण कोश सचय करना आरम्भ किया।

पाद-टिप्पणी

श्री दत्त . राज्याभिषेक काल सवत् ४२५५= शक १०७६=सन् ११५४ ई०=लौकिक ४२३० तथा राज्य काल ९ वर्ष ६ मास १० दिन एव मास ठीक ७ होता है क्योंकि लौ० ४२४० मे अधिक मास वैसाख सन् ११६४-११६५ मे पड़ा था। डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया म सन् ११५४-५५ ई० दिया है। आइने अकबरी ने राज्य-काल ९ वर्ष ६ मास १० दिन दिया है।

३९ (१) परमाणुक कल्हण ने जयसिंह की वशावली म परमाणुक नामक जयसिंह के किसी पुत्र का उल्लेख नही किया है। जोनराज न पर्मांडि को ही परमाणुक लिखा है। (रा० ८ १६०८) तापर शिलालेख (लौकिक सवत् ४२३३ सन् ११५७ ई०) मे उल्लिखित परमाण्ड देव को इतिहासज्ञ इसी परमाणुक मानते हैं। आइने अकबरी मे परमाणुक का नाम हरमानेक तथा राज्यकाल सन् ११५४ से ११६४ ई० दिया गया है। काश्मीरी शब्द परमान है। उसका सस्कृत रूप परमाणुक है। परमान शब्द पर्मांडि से उच्चारण भेद के कारण प्रतीत होता है। जोनराज के समय कल्हण की राजतरंगिणी के अतिरिक्त जिसका अनुवाद फारसी म जैनुल आबदीन के समय हुआ था अन्य कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिससे वास्तविक नामादि का पता चल सके। जोनराज ने भी किसी ऐतिहासिक सामग्री के सग्रह का प्रयास नहीं किया। उसने मन्दिरों, प्रशस्ति पट्टों आदि का अन्वेषण नही किया। उसने यह भी नही लिखा है कि उन राजाओ के विषय म उस समय क्या कथा चाहे कितनी ही धुँधली क्यो न हो, प्रचलित थी। उसने तत्कालीन प्रचलित और अपभ्रंश बिगड़े हुए नामो को यथावत देकर यद्यपि लिखने मे उद्यम किया है परन्तु वह वास्तव मे अपने किसी उद्यम का परिचय नही देता।

राजा परमाणुक किंवा कल्हण के पर्मांडि की मुद्रा प्राप्त हुई है। यह ताम्र मुद्रा है। उसके मुख भाग पर आसीन देवी लक्ष्मी वाम पार्श्व मे 'श्री प' तथा दक्षिण पार्श्व म 'र' (मानुक) तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'देव' टकणित है। (क्वाइन्स आफ मीडीवल इण्डिया ३० ५ ५)

तापर का शिलालेख प्रतापसिंह सग्रहालय श्रीनगर मे रक्षित है। उस पर अकित है—'ओ स० ३३ आषाढ़ शुदि १२ श्रीमत्परमाण्डदेव राज्ये वा (ब्रा) ह्मणभागवताचार्यजयराजस्य स्वपुत्रजल्हेन प्रतिपादितम्।'

'पादितम् (?) या (?त्य) पतिजल्हणम् (?)'

पाद-टिप्पणी

४० (१) अवहेलना जोनराज दुःख प्रकट करता है। राजोचित कर्म दिग्विजय त्यागकर, राजा ने धन सचयकरना आरम्भ किया। राजा अत्यन्त

दातुं भोक्तुमनीशस्य श्रोत्रियस्येव सम्पदम् ।
प्रयागजनकौ धूर्तौ राज्ञो मुमुषतुः श्रियम् ॥ ४१ ॥

४१ देने एवं भोगने में असमर्थ श्रोत्रिय (वैदिक) की सम्पत्ति तुल्य राजा की लक्ष्मी को प्रयाग एवं जनक धूर्तों ने परिमुषित किया।

तौ हि स्वभृत्यैर्निःसत्त्वं कारितै राक्षसाकृतिम् ।
तमत्रासयतां रात्रौ रात्रौ चित्रेण कर्मणा ॥ ४२ ॥

४२ वे दोनों राक्षसाकृति किये गये स्वभृत्यों द्वारा निःसत्व उसे विचित्र कार्य से प्रति-रात्रि त्रस्त करते थे।

मिथ्यात्मनीनतां तस्य नाटयन्तौ कुमन्त्रिणौ ।
रक्षासूनिति तौ वित्तं त्याजयामासतुर्नृपम् ॥ ४३ ॥

४३ उसकी मिथ्या आत्मनीनता प्रदर्शित करते हुए वे दोनों कुमन्त्री प्राणरक्षा हेतु राजा से धन त्याग कराये।

स्थाने भिपायकस्यैतावादिश्य स्वानुजीविनम् ।
तृणच्छन्नं महारत्नैश्चैत्र्यां पूजयतः स्म तौ ॥ ४४ ॥

४४ चैत्र पूर्णिमा को इन दोनों ने स्वानुजीवी को भिपायक के स्थानपर करके तृणों से आच्छन्न उसे महारत्नों से पूजित किया।

स पुनः कृतसङ्केतः पश्यत्स्वथ जनेष्वहो ।
राज्ञः कृत्वाऽऽशिषं रात्रौ सालङ्कारो ययौ वनम् ॥ ४५ ॥

४५ जब लोग देख रहे थे, वह संकेत प्राप्तकर, आशीर्वाद प्रदान कर, रात्रि में राजा के अलंकार सहित वन में चला गया।

भिपायको बलिं यत्ते गृहीत्वा व्यधिताशिषः ।
निर्विघ्नं भावि तद्राज्यमिति तौ भूपमूचतुः ॥ ४६ ॥

४६ 'आपकी बलि ग्रहण कर भिपायक ने जो आशीर्वाद दिया है, अतः राज्य निर्विघ्न होगा'—इस प्रकार वे दोनों राजा से बोले।

दुर्बल था। वाक्याते काश्मीर (पृष्ठ २४) तथा तारीख–ए–हसन (२ : १५३) से प्रकट होता है। पखली, किश्तवार, राजौरी, जम्मू तथा तिब्बत के राजा, जो जयसिंह के समय काश्मीर के आधीन एक प्रकार से थे स्वतन्त्र हो गये। कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि राजौरी का राजा जिससे उसने अपनी कन्या का विवाह किया था उसके अधीन नहीं था। (रा० : ८ : १६४८)

एवं कदीश्वरस्यास्य बालस्येव विभीषिकाः ।
संदर्श्य कोशं निःशेषं लुण्ठयाञ्चक्रतुर्विटौ ॥ ४७ ॥

४७ इस प्रकार बाल सदृश इस कुनृपति को भय प्रदर्शित कर (इसके) निःशेष कोश को दोनों विट लूट लिये[१] ।

राजा सार्धान् नवाब्दान् स क्ष्मां भुक्त्वा दिवसान् दश ।
चत्वारिंशाब्दनाभस्यसिताष्टम्यां लयं ययौ ॥ ४८ ॥

४८ नव वर्ष ६ मास १० दिन पृथ्वी का भोग कर चालीसवें वर्ष (लौ० ४२४०=सन् ११६४ ई०) के भाद्रपद शुक्लाष्टमी को दिवंगत हुआ ।

वन्तिदेवाभिधः सप्तचत्वारिंशेऽथ वत्सरे ।
भाद्रशुक्लदशम्यां स तस्य पुत्रो व्यपद्यत ॥ ४९ ॥

वन्तिदेव : (सन् ११६४-११७१ ई०)[१]

४९ सैतालीसवें वर्ष (लौ० ४२४७) उसका पुत्र वन्तिदेव भाद्र शुक्ल दशमी को मरा ।

पाद-टिप्पणी :

४७. (१) श्लोक ४१-४७ तक के वर्णन द्वारा जोनराज ने राजा को मूर्ख तथा जड चित्रित किया है। उसने किस आधार पर उसे जड कहा है इसका वह कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करता। काश्मीर में इस समय कोई निर्बल राजा रह नहीं सकता था। जयसिंह ने उत्तर-पश्चिम भारत के राजाओं को मुसलमानों के विरुद्ध संघटित किया था। उन पर आक्रमण किया था। उन्हें पराजित किया था। परमाणुक जयसिंह का पुत्र था। मुसलिम राजा भारत में क्रमशः शक्तिशाली होते जाते थे। वे काश्मीर की उत्तरी एवं पश्चिमी सीमा पर राज्य स्थापित कर चुके थे। उत्तरी तथा पश्चिमी पंजाब में भी उनका राज्य कायम हो चुका था। केवल पूर्वीय भाग तिब्बत एवं लद्दाख की ओर से काश्मीर को इस समय भय नहीं था।

जयसिंह ने काश्मीर के सीमान्त के राजाओं के साथ वैवाहिक आदि सम्बन्ध कर काश्मीर राज्य की शक्ति सुदृढ़ बना ली थी। इस समय मुसलिम राजा अपनी हार का बदला लेने के लिये अथवा काश्मीर विजय के लिये अवश्य प्रयत्न किये होंगे।

जोनराज ने परमाणुक के ११ वर्षों का वर्णन केवल ९ श्लोकों में समाप्त किया है। प्रथम श्लोक (३९) अभिषेक, अन्तिम श्लोक (४८) मृत्यु, श्लोक (४०) कोशसंचय, (४७) कोश अपव्यय, श्लोक ४१, ४२, ४३, प्रयाग जनक की धूर्तता तथा ४४, ४५, ४६ में भिषायक की कहानी लिखी गयी है। राजा के ११ वर्षों के राज्यकाल में केवल दो घटनाओं का वर्णन जोनराज करता है। वह भी जनक तथा प्रयाग की धूर्तता भिषायक के प्रसंग में कही गयी है। श्लोक ४० से ४७ में प्रयाग जनक द्वारा राजा को भिषायक प्रसंग में मूर्ख साबित किया गया है।

जोनराज ने आश्चर्य है कि किसी भी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं किया है। राजा परमाणुक की सन्तानों तक का उल्लेख नहीं किया गया है। इन बातों से प्रकट होता है कि राजा के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक जानकारी जोनराज को नहीं प्राप्त थी। राजाओं को मूर्ख, अयोग्य, दुष्ट साबित करने का प्रयास जोनराज ने किया है।

पाद-टिप्पणी :

४९. (१) श्री दत्त राज्याभिषेक काल : कलि ४२६५, = शक १०८६ = लौकिक ४२४० सन् ११६४

ई० राज्यकाल ९ वर्ष ६ मास डाइनेस्टिक हिस्ट्री मे सन् ११६४-११६५ ई० दिया गया है। आइने अकबरी मे ७ वर्ष २० दिन राज्यकाल दिया गया है।

आईने अकबरी मे नाम कुजी तथा राज्यकाल सन् ११६४ ई० से ११७१ ई० से दिया गया है।

समसामयिक घटनायें　वन्तिदेव के समसामयिक परमादि देव चन्देल तथा कन्नौज के गहड्वाल नरेश विजयचन्द्र (सन् ११५६–११७० ई०) तथा जयचन्द्र (सन् ११७०–११९४ ई०) थे।

एक मुद्रा अवन्तिदेव के अभिलेख के साथ मिली है। जनरल कनिंघम ने उसे वन्तिदेव का माना है। वन्तिदेव शब्द अवन्तिदेव शब्द का सक्षिप्त रूप है (क्वाइन्स ऑफ मिडीवल इण्डिया पृष्ठ ४६ प्लेट : V मुद्रा ३१)। यह ताम्र मुद्रा है। इसके मुख भाग पर आसीन (लक्ष्मी) देवी, वाम पार्श्व मे अ (?– श्री) तथा दक्षिण पार्श्व मे 'वन्ति' तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'देव' टकणित है। प्रतीत होता है कि राज्य की वंशावली काश्मीर मे किसी ब्राह्मण से जोनराज ने प्राप्त की थी। जोनराज ने 'श्रुत' अर्थात् मौखिक परम्परा से भी इतिहास सामग्री ली थी। किस आधार पर सुनी बातो पर विश्वास कर उन्हें इतिहास का रूप दिया गया कहना कठिन है। उसने इसे कहीं स्पष्ट किया भी नही है। कल्हण ने जहाँ जनश्रुति अथवा लोककथा के आधार पर कुछ लिखा है, वहाँ उसने उनका स्पष्ट निर्देश किया है।

जोनराज ने वन्तिदेव के ७ वर्षों के राज्यकाल का वर्णन केवल एक श्लोक मे लिखकर समाप्त कर दिया है। उसका राज्याभिषेक कब हुआ था ? उसके राज्यकाल मे क्या घटनायें घटी ? देश की तथा सीमान्त की क्या अवस्था थी ? इस पर एक शब्द भी नही लिखता। वन्तिदेव का चरित्र तथा उसका कुटुम्ब कैसा था ?

जोनराज के समय मे लोग, प्रतीत होता है, राजाओ का इतिवृत्त भूल गये थे। जनता के मुसलिम हो जाने के कारण उसकी हिन्दू राजाओ के प्रति कोई रुचि नही रह गई थी। जोनराज ने भी इतिहास लिखने मे लिये, प्रतीत होता है कि कोई सामग्री एकत्रित तथा जानकारी प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। तत्कालीन कोई इतिहास किंवा ग्रन्थ भी नही प्राप्त है कि उससे कुछ निष्कर्ष निकाला जा सके।

समसामयिक घटनायें : इस राजा का समकालीन कन्नौज नरेश जयचन्द्र (सन् ११७०–११९४ ई०) तथा गुजरात नरेश भीमदेव द्वितीय (सन् ११७९–१२४२ ई०) थे। दोनो ही से मुहम्मद गोरी का युद्ध हुआ था। सन् ११७३ ईसवी मे इसके समय मे मुइजुद्दीन मुहम्मद बिन शाम गजनी का सूबेदार अपने भाई गयासुद्दीन द्वारा नियुक्त हुआ। इसी समय नरसिंह होयसल की मृत्यु हो गयी और वीरवल्लाल द्वितीय राजा हुआ। हेनरी द्वितीय राजा इंगलैण्ड ने सन् ११७३ ई० मे आयरलैण्ड विजय किया। सन् ११८० ई० में फ्रान्स का फिलिप द्वितीय राजा हुआ। सन् ११७५ ई० मे मुहम्मद गोरी ने पंजाब पर आक्रमण किया और मुलतान तथा ऊच्चर को अपने राज्य में मिलाया। मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। इसी समय विजय सेन के पश्चात् नदिया मे लक्ष्मण सेन राजा हुआ। सन् ११७८ मे मुहम्मद गोरी ने गुजरात पर आक्रमण किया और पराजित हुआ। इसके समय सन् ११७० मे कन्नौज का राजा जयचन्द था। गुजरात मे राजा भीमसेन द्वितीय सन् ११७९ ई० मे राज कर रहा था।

वन्तिदेव का उपयुक्त उत्तराधिकारी न होने के कारण राजसिंहासन बोपदेव ने सुशोभित किया।

आइने अकबरी मे नाम वेहती देव तथा राज्यकाल सन् ११७१–११८० ई० दिया है।

जोनराज ने राजा का नाम बोपदेव उक्त पद मे दिया है। जैन राजतरंगिणी म श्रीवर ने नाम वुप्पेदेव दिया है। (जैन रा० ४ . ४१३)

फारसी इतिहासकारो ने, बोपदेव का स्वभाव लडको जैसा चित्रित किया है। प्रौढ मस्तिष्क तथा

बोपदेवाभिधः पौरैर्योग्यालाभान्नृपः कृतः ।
प्रापितो घासरचितः पूजामिव भिपायकः ॥ ५० ॥

बोपदेव : (सन् ११७१–११८१ ई)

५० योग्य के अभाव में पौरों[1] द्वारा बोपदेव नृप बनाया गया। (उसने) घास रचित भिपायक सदृश पूजा प्राप्त की।

राजोचित उसका रूप चित्रित नही किया गया है। हसन कहता है कि शिला को दूध पिलाना उसी प्रकार लड़कपन है जैसे कि राजा ने मान लिया कि पत्थर ही शैल की सन्तान है।

श्री रोजर ने शंकित भाव से एक मुद्रा राजा बोप्पदेव की मानी है। (जे० ए० एस० बी० १२९७ : २७८ तथा प्लेट १२ : चित्र २१)

पाद-टिप्पणी :

श्री दत्त राज्याभिषेक काल कलि ४२७२ वर्ष = शक १०९३ = सन् ११७१ ई० = लौकिक ४२४७, राज्यकाल ९ वर्ष ७ मास २ दिन, किन्तु श्री कण्ठ कौल ने राज्यकाल ९ वर्ष ४ मास १ दिन तथा आईने अकबरी मे राज्यकाल ९ वर्ष ४ मास १७ दिन दिया गया है।

काश्मीर की सीमा पर इसके समय काफी उथल-पुथल थी। गोरियो ने महमूद गजनी के वंशजो को हटाकर अपना राज्य सन् ११७६ ई० मे स्थापित कर लिया था।

५०. (१) पौरों द्वारा राज्याभिषेक : बोपदेव का राजवंश से क्या सम्बन्ध था इस पर जोनराज कोई प्रकाश नही डालता। वह क्यो और कैसे राजा बनाया गया एवं किस कुल अथवा वंश का था इस पर किसी दिशा से कोई प्रकाश नही पड़ता। यदि वह लोहर वंश का नही था तो मान लेना चाहिए कि राज्य लोहर वंश से दूसरे वंश मे चला गया।

काश्मीर मे जनता को राजा चुनने का अधिकार था और यह अधिकार काश्मीर मे जनता गत ४२५० वर्षों से निरन्तर प्रयोग करती रही। विश्व के इतिहास एवं राजनीति-विज्ञान मे यह महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

भारत मे गणतन्त्रो का लोप समुद्रगुप्त के पश्चात् हो गया था। यूरोप तथा विश्व मे भी उसके पश्चात् गणतन्त्र उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व नही हुए। काश्मीर राजतन्त्र एवं गणतन्त्र का समन्वय था। काश्मीर मे जनता सभा, मन्त्रिपरिषद, ब्राह्मण-परिषद एवं पुरोहित-परिषद के निश्चित अधिकार थे। राजा उनका अतिक्रमण नहीं कर सकता था। सभा का सभापति होता था। उसका उल्लेख बराबर मिलता है। परिषदो का भी उल्लेख बराबर मिलता है। वे कभी लोप नही हो सके थे।

जनता किंवा पौरगणो का भी अधिकार था। वे अपने अधिकारो का प्रयोग समय आते ही करते थे। यह अधिकार किसी भी शताब्दी में समाप्त नही हुआ। वह तरंगिणी की धारा के समान सर्वदा चलता रहा। उसका प्रयोग होता रहा। जनता ने मेघवाहन को गान्धार से लाकर काश्मीर का राजा बनाया था (रा० : ३ : २)। वक का जनता ने राजा चुना था (रा० १ : ३२५)। सन्धिमति को काश्मीर की जनता ने अपना राजा स्वीकार किया था (रा० : २ . ११६)। मातृगुप्त ने राजा बनने के पूर्व काश्मीर की जनता का मन जानना चाहा था (रा० : ३ : १८८)।

कल्हण द्विज-परिषद, पुरोहित-परिषद तथा मन्त्री-परिषद का उल्लेख करता है। उनके अधिकार-क्षेत्र तथा कर्तव्य पर विस्तृत वर्णन (रा० : क : १ : ५० २१, ३३) किया गया है।

दृष्ट्वा स्थूलशिला हृष्टो मूढः सोऽथ स्वमन्त्रिणः ।
आदिशत् स्तन्यपानेन वर्ध्यन्तामितरा इति ॥ ५१ ॥

५१ स्थूल शिलाओं को देखकर, वह मूढ़ प्रसन्न हुआ और मन्त्रियों को आदेश दिया कि अन्य (लघु-शिलायें) दुग्ध (स्तन-क्षीर) पान द्वारा वर्धित की जाँय।

श्रुत्वा तत्स्थानमाहात्म्यं बालिशो मन्त्रिभिः सह ।
आगात्सुरेश्वरीक्षेत्रं नौपथेन स जातुचित् ॥ ५२ ॥

५२ किसी समय, सुरेश्वरी[1] क्षेत्र का माहात्म्य सुनकर, वह मूर्ख मन्त्रियों के साथ नाव पथ से वहाँ गया।

पादटिप्पणी :

५२. (१) सुरेश्वरी क्षेत्र : डल लेक सुरेश्वरी सर नाम से पुरातन काल मे सम्बोधित होता था। आज भी सुरेश्वरी की पूजा होती है। सुरेश्वरी मूलतः दुर्गा है।

एक ऊँची बलुइ भूमि ईशावर ग्राम से ऊपर उठती है। वह डल लेक को पूर्वीय भाग की ओर से घेरती है। इस भूमि के ऊपर एक प्राकृतिक चट्टान है। उसे शिव का रूप माना जाता है।

असुर वध की कथा सुरेश्वरी माहात्म्य मे मिलती है। यहाँ पर शिव एवं देवी का निवास स्थान था। यात्रा-मार्ग का भी वर्णन माहात्म्य मे विस्तार से दिया गया है। यात्रा शतधारा नामक स्थान से आरम्भ होती है। यह स्थान ईशावर (ईशेश्वर) ग्राम के समीप है।

सुरेश्वरी क्षेत्र का उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी मे (रा० : ५ : ३७, ४०, ४१, ६ : १४ ८ : ५०६, ७४४, २३४४, २३६३, २४१८ तथा ८ : ३३६५) किया है। सुरेश्वरी क्षेत्र वर्तमान निशात बाग के उत्तर तथा शालीमार के दक्षिण का खण्ड है। इसके पूर्व पर्वत तथा पश्चिम प्राचीन हस्तवजिका तथा वर्तमान उत्तरीय डल लेक है। राजा ने वर्तमान नगरी, बल बडाडल तथा हस्तवजिका होते सुरेश्वरी क्षेत्र की यात्रा श्रीनगर से नाव द्वारा की होगी।

जैन राजतरंगिणी मे श्रीवर ने (जैन : १ : ५, ३३) सुरेश्वरी क्षेत्र का उल्लेख किया है। जोनराज ने सुरेश्वरी का उल्लेख श्लोक ६०२ तथा ८७३ मे किया है। ईशावर अर्थात ईशेश्वर के समीप इस क्षेत्र के होने की बात कही गयी है। क्षेमेन्द्र ने समयमातृका (२ : २९) मे शतधारा जलस्रोत के साथ सुरेश्वरी का उल्लेख किया है। इस स्थान पर मरना पवित्र माना जाता है। काशी के समान यहाँ मरने के लिये आने की प्रथा थी। (रा० : ६ : १४७, ८ : २३४४, २४१८)। सर्वावतार के पचम अध्याय मे इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। सुरेश्वरी स्थान का उल्लेख नीलमतपुराण भी करता है। (नी० 611 = ७३२)

अर्धनारीश्वर का मन्दिर कल्हण के समय तक सुरेश्वरी क्षेत्र मे था। (रा० : ८ : ३३६५) सुरेश्वरी क्षेत्र मे यह मन्दिर कहाँ था इस समय पता लगाना कठिन है। यद्यपि सुरेश्वरी जलस्रोत के निकट प्राचीन अलंकृत शिलाखण्ड मिलते है। ईशाबर (ईशेश्वर) के कितने ही मकानो मे भी अलंकृत पत्थर लगे आज भी दिखायी पडते हैं।

मैं सुरेश्वरी क्षेत्र की, चार बार यात्रा कर चुका हूँ।

अप्सु स्वप्रतिबिम्बेऽस्य कुर्वतो मुखवैकृतम् ।
रुषा चपेटां ददतो न्यपतन्मणिमुद्रिका ॥ ५३ ॥

५३ जल में मुख विकृत करते हुए, क्रोध से स्वप्रतिबिम्ब पर, चपेटा देते समय, (इसकी) मणि-मुद्रिका गिर गयी।

राज्ञः क्व मणिमुद्रेति पृच्छतः सोऽभ्यधादिति ।
पतिता सा जले रेखां तत्राभिज्ञानमाचरम् ॥ ५४ ॥

५४ 'राजा की मणि-मुद्रा कहाँ है ?'—इस प्रकार पूछने वालों से उसने कहा—'वह जल में गिर गयी—' और उसने तरगों को दिखाया।

एवं निदर्शनीभूय मूर्खाणां नामराजताम् ।
नवाब्दांश्चतुरो मासान् सार्धान् द्वे च दिने व्यधात् ॥ ५५ ॥

५५ महान मूर्खों का निदर्शन बन कर, उसने नव वर्ष, साढ़े चार मास, दो दिन[1], राज्य किया।

पाद-टिप्पणी :

५५ (१) श्री दत्त ने दो दिन के स्थान पर ढाई दिन अनुवाद किया है।

आश्चर्य है कि जोनराज ने भारत तथा भारत की सीमा पर होने वाले उपद्रवों का किंचित मात्र वर्णन नही किया है। इसी समय गजनी पर गोरियों ने सन् ११७६ ई० में राज्य स्थापित किया था।

मुहम्मद गोरी ने मुलतान पर सन् ११७५ ई० में आक्रमण किया। वहाँ अपना सूबेदार नियुक्त कर लौट गया। उसने सन् ११७८ ई० में गुजरात पर आक्रमण किया परन्तु पराजित हो गया। सन् ११७९ ई० में पुनः काश्मीर की सीमा के समीप पेशावर पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की।

मुहम्मद गोरी ने ऊच पर आक्रमण किया। वहाँ के राजा तथा रानी से पटरी नही खाती थी। मुहम्मद गोरी ने सन्देश भेजा कि यदि वह दुर्ग जितवा दे तो उसे अपने हरम की प्रधान रानी बना लेगा। रानी ने अस्वीकार कर दिया। परन्तु अपनी कन्या देने पर उद्यत हो गयी। रानीने पति राजा को गुप्त रूप से हत्या कर दी गयी। रानी ने किला मुहम्मद गोरी को समर्पित कर दिया।

रानी को कुछ लाभ नही हुआ। रानी तथा उसकी कन्या मुसलिम धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिये गजनी भेज दी गयी। रानी वहाँ अपनी कन्या राजकुमारी द्वारा बहिष्कृत तथा निन्दित होकर मर गयी। राजकुमारी को रानी ने पति के प्रति उठती प्रतिहिंसाग्नि की शान्ति के लिये एक प्रकार से गोरी के हाथों बेच दिया था। राजकुमारी कभी मुहम्मद गोरी की स्त्री नही बन सकी। उसकी दो वर्ष के पश्चात् मृत्यु हो गयी।

सन् ११७८ ई० में मुहम्मद गोरी ने मुलतान तथा ऊच होते हुए, अनहिलवाड़ा अर्थात् पाटन पर आक्रमण किया। भीम वहाँ का युवक राजा था। उसने गोरी से युद्ध किया। किन्तु मुहम्मद गोरी वहाँ सफलता प्राप्त नही कर सका।

भारत की विषम परिस्थिति तथा विदेशी आक्रमण की लपट काश्मीर तक निःसन्देह पहुँची होगी। जोनराज कोटदेव के १० वर्षों के राज्यकाल का वर्णन केवल ६ श्लोकों में देकर समाप्त करता है। उससे सम्बन्धित प्रथम श्लोक ५० अभिषेक तथा श्लोक ५६ मृत्यु सम्बन्धी है। शेष श्लोक ५१ से ५४ तक

तस्यानुजोऽथ भूभारमनिच्छन्नपि जस्सकः ।
स्ववृद्धिकामैरत्यज्ञो लवन्यैरभ्यषिच्यत ॥ ५६ ॥

जस्सक : (सन् ११८१–११९९ ई०)

५६ भूभार को न चाहने वाले, अति अज्ञ[२] उसके भाई जस्सक[१] को स्ववृद्धि की कामना से, लवन्यों[३] ने अभिषिक्त किया ।

केवल ४ श्लोको मे १० वर्ष के किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं किया है ।

उक्त ४ श्लोको में उसे महान मूर्ख प्रमाणित करने के लिये, छोटी शिला को दूध पिलाकर, बडा करना तथा जल मे पडती अपनी परछाईं को मारना है । राजा मूर्ख था । इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण जोनराज ने उपस्थित नही किया है । किंवदन्तियो के आधार पर राजा की मूर्खता प्रमाणित करने वाली दो घटनाओ को देकर कथा समाप्त की है ।

सामयिक घटनाये : सन् ११८१ ई० मे मुहम्मद गोरी ने पंजाब पर आक्रमण कर स्यालकोट में अपना केन्द्र बनाया । सन् ११८२ ई० मे पृथ्वीराज चौहान ने महोबा पर आक्रमण कर पर्माल चन्देल को पराजित किया । सन् ११८३ ई० मे सोमेश्वर चतुर्थ पुनः राजा हुआ । सन् ११८६ मे मुहम्मद गोरी ने पुनः पंजाब पर आक्रमण किया और खुरशेव मलिक को परास्त कर वन्दी बनाया ।

सन् ११८७ मे सलादीन ने जरुशलम हस्तगत किया । सन् ११८९ मे तृतीय क्रुसेड हुआ । रिचार्ड प्रथम इंगलैण्ड का राजा बना ।

भागिनी वंश का इसी वर्ष लोप हो गया । सन् ११८९ ई० मे सोमेश्वर चतुर्थ चालुक्य की मृत्यु हो गयी । इसके समकालीन कन्नौज के राजा जयचन्द्र (सन् ११७० ई० से ११९६ ई०) तथा हरिश्चन्द्र थे ।

सन् ११९० ई० मे वीर वल्लाल द्वितीय ने भिल्लम यादव को पराजित किया । सन् ११९०–११९१ ई० में मुहम्मद गोरी ने भटिण्डा पर अधिकार कर लिया । किन्तु पृथ्वीराज चौहान ने उसे तरौरी मे पराजित कर दिया । सन् ११९२ ई० मे तरौरी का दूसरा युद्ध हुआ । पृथ्वीराज की पराजय हुई । गोरी ने हान्सी, सामाना तथा गुहराम पर अधिकार कर लिया । उसने कुतुबुद्दीन ऐबक को सूबेदार नियुक्त किया । सन् ११९२–९३ ई० मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली विजय किया । उसे अपनी राजधानी बनाया । इसी वर्ष इख्तियार उद्दीन ने बिहार विजय किया । सन् ११९४ ई० मे अजमेर पर हिन्दुओं ने आक्रमण कर जीत लिया । परन्तु कुतुबुद्दीन ऐबक ने उसे पुनः ले लिया । सन् ११९५ ई० मे ऐबक ने गुजरात पर आक्रमण कर अनहिलवाडा लूटा । ऐबक भारत के मुसलिम राज्य का प्रतिनिधि बनाया गया । सन् ११९६ ई० मे मुहम्मद ने पुन. भारत पर आक्रमण कर बयाना विजय किया और ग्वालियर तक बढ गया । मुहम्मद गोरी सन् ११९६ ई० मे पुनः भारत आया और बयाना, ग्वालियर कालपी, बदायूँ तथा कालिंजर विजय किया । सन् ११९७ ई० मे गुजरात के राजा भीम ने ऐबक को हटाया । उसने अजमेर मे शरण ली । सन् ११९७ ई० मे ऐबक गुजरात पर आक्रमण कर अनहिलवाडा लूटा ।

पाद-टिप्पणी :

श्रीदत्त ने जस्सक का राज्याभिषेक काल=४२८१ =शक ११०२=सप्तर्षि ४२५६=सन् ११८० ई० तथा राज्यकाल : १८ वर्ष १० दिन, किन्तु श्रीकण्ठ कौल सन् ११८१ ई० तथा राज्यकाल १८ वर्ष १३ दिन देते हैं । डाइनेस्टिक हिस्ट्री मे सन् ११८० ई० दिया है । आईने अकबरी मे भी राज्यकाल १८ वर्ष १३ दिन दिया है ।

५६. (१) जस्सक : यशस्क शब्द का काश्मीरी शब्द जस्स अपभ्रंश है । जस्सक नाम जस्स का संस्कृत रूप है । काश्मीर मे यशस्कर राजा हुआ है । मुसलिम शासन के एक शताब्दी मे

वध्यन्ते न शुका इवोदितवचःसंवादिनो वायसा
भूमिः शर्करिलोर्वरेव भजते नो घर्षणक्षोदनम् ।
अश्मा सैन्धववन्न जातु गमितो निष्पिष्य चूर्णीकृतिं
केषांचिद् गुणवद् गुणाय महते दोषोऽपि सञ्जायते ॥ ५७ ॥

५७ वायस मधुर भाषी शुकों के समान बन्धन नहीं प्राप्त करते, कङ्कड़ीली भूमि उपजाऊ (भूमि) के समान घर्षित एवं क्षोदित नहीं की जाती, पत्थर लवण तुल्य पीसकर चूर्णित नहीं किया जाता, ठीक है, कुछ (लोगों) का दोष भी गुण तुल्य महान लाभप्रद होता है[1]।

फारसी तथा अरबी के प्रभाव के कारण मूल शब्दो के रूप विगड गये हैं। प्राय. 'य' का उच्चारण 'ज' जैसा होने लगता है। यही बात यहाँ हुई है। 'यश' का रूप 'जस' और लौकिक जस्स होगया है। जोनराज ने स्वयं यशस्कर का श्लोक १०४ मे 'यस्शक' नाम लिखा है। यशस्कर व्यक्तिवाचक नाम कारमीर के राजा का रह चुका है अतएव बाल्यावस्था म राजा का नाम यशस्क अथवा यशस्कर रख दिया गया होगा। कालान्तर मे इसका पुकारने का नाम 'जस्स' हो गया होगा।

(२) भ्रात : बहारिस्तानशाही मे जस्सक को बोपदेव का पुत्र लिखा गया है। जोनराज ने स्पष्ट उसे बोपदेव का भाई कहा है।

जोनराज ने लिखा है कि लवन्यो ने स्ववृद्धि-कामना से राजा का अभिषेक किया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह बोपदेव के सिंहासन का अधिकारी किंवा उत्तराधिकारी नही था। उत्तराधिकारी कोई और था। परन्तु लवन्यो ने अपने कार्यसाधन के लिये जस्सक को राजसिंहासन पर बैठाया था। जस्सक न तो उत्तराधिकार से राज-सिंहासन पर बैठा था और न पौरगणो ने बोपदेव के समान उसे राजा चुना था। जोनराज जस्सक के विषय मे कुछ भी सूचना नहीं देता।

श्रीवर इस विषय पर कुछ प्रकाश डालता है (जैन: ४: ४१५)। उससे प्रकट होता है कि लवन्यो ने सर्वप्रथम बोपदेव के उत्तराधिकारियो को काश्मीर मण्डल से राजपुरी मे निर्वासित कर दिया था। तत्पश्चात् जस्सक को सिंहासन पर बैठाया था।

प्रतापसिंह संग्रहालय मे इस राजा के काल की एक जैन कास्य मूर्ति रखी है। उस पर नागरी मे लेख है। मूर्ति-निर्माण काल का ज्ञान उससे होता है। यह मूर्ति तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की है। इस समय शारदा लिपि के साथ ही साथ नागरी लिपि का प्रचलन हो गया था। जैन धर्म से काश्मीर अनभिज्ञ नहीं था।

(३) द्रष्टव्य - टिप्पणी श्लोक : १७६

पाद-टिप्पणी :

५७ (१) जोनराज ने राजा जस्सक के १८ वर्षों के राज्यकाल का वर्णन केवल ९ श्लोको मे किया है। प्रथम श्लोक ५६ मे अभिषेक तथा श्लोक ६४ मे उसके अवसान का काल दिया गया। श्लोक संख्या ५७ सूक्ति संग्रह मे रखने योग्य उपदेशात्मक है। शेष ७ श्लोको मे द्विज सहोदर भ्राता शुक्र एव भीम की धूर्तता तथा दुश्चरित्रता का वर्णन किया गया है। राजा जस्सक के विषय मे जोनराज एक शब्द भी नही लिखता। शुक्र एव भीम के चरित्र द्वारा राजा को मूर्ख, दुर्बल रूप मे चित्रित किया है। यदि वन्तिदेव के समान केवल १ श्लोक देकर ही चरित्र शेष कर देता तो कोई विशेष हानि न होती।

सोदरौ क्षुक्षभीमाख्यौ द्विजौ तस्य महीभुजः ।
धूर्तत्वेन प्रियावाज्ञामचिरादुदलङ्घताम् ॥ ५८ ॥

५८ द्विज सहोदर क्षुक्ष एव भीम धूर्तता से उस महीभुज के प्रिय थे, थोड़े समय में (अचिरात्) राजा की आज्ञा का उल्लघन किय ।

समार्थावतिसामर्थ्यौ स कथं नौ सहिष्यते ।
भूपं मत्वापि सामर्थं नान्यं बभ्रतुरित्यमू ॥ ५९ ॥

५९ समान अर्थ एव अति सामर्थ्यशाली (राजा) हम दोनों को कैसे नियन्त्रित करेगा, (इस प्रकार) भूपति को समर्थयुक्त जानकर भी वे दोनों और किसी को अपने में नहीं मिलाये ।

स्वयं यच्च न संभेजे तयोरेको नृपश्रियम् ।
लवन्योत्सिक्तता हेतुर्न त्वनौचित्यशङ्किता ॥ ६० ॥

६० उन दोनों में एक भी जो नृपश्री को नहीं प्राप्त कर सके, इसमें लवन्यों[1] की शक्ति (उत्कर्ष) हेतु थी न कि अनौचित्य भीति ।

यान्त्यङ्गसङ्गमनङ्कुशमङ्कयन्ति
रागं प्रदर्श्य हृदि कम्पमुदञ्चयन्ति ।
व्यापादयन्ति विषवेदनया विशेषा-
द्विश्वास्य दुष्टपिटिका युवतिश्च हा धिक् ॥ ६१ ॥

६१ हा ! धिक् !! विश्वास उत्पन्न कर, दूषित अन्न (पिटिका) एव युवती अग ससर्ग प्राप्त करती है, निरङ्कुश बना देती है, राग प्रदर्शित कर, हृदय में कम्पन पैदा करती एव विष-वेदना से व्यापादित कर देती है ।

वार्द्धक्यक्षीणशक्तित्वाद्विरक्ता स्ववधूरपि ।
हत्वा क्षुक्षं विषेणाशु भीमं भोगमकारयत् ॥ ६२ ॥

६२ वार्धक्य से क्षीण शक्ति होने के कारण विरक्त उसकी वधू ने भी क्षुक्ष की शीघ्र ही विष द्वारा हत्या कर, भीम का भोग-भाजन बनी ।

पाद टिप्पणी

६० (१) जोनराज का तात्पर्य यहाँ यह है कि क्षुक्ष एव भीम राजा की प्रियपात्रता प्राप्त कर स्वय शक्तिशाली हो गये थे। राजा को हटाने तथा उसकी आज्ञाओं का उल्लघन करने में उचित एव अनौचित्य का भय नहीं था। वे लवन्यों से भयभीत

सा देवरस्य सङ्गेन श्वित्रसञ्चित्रिता सती।
दानेन माधवादीनां स्वपापं पर्यणीनमत् ॥ ६३ ॥

६३ देवर के सङ्ग से श्वित्र[1]-चित्रित, उसने माधव आदि देवों को दान देकर, अपने पाप का शमन किया।

सोऽष्टादशाब्दान् क्ष्मां भुक्त्वा सत्रयोदशवासरान्।
युगागाङ्काब्दमाघान्त्यदशम्यां प्रलयं ययौ ॥ ६४ ॥

६४ वह अट्ठारह वर्ष तेरह दिन पृथ्वी का भोग कर, माघान्त दशमी ७४ (लौ० ४२७४) को दिवंगत हुआ।[1]

थे। लवन्यो के हाथ मे राजा को पदच्युत करने पर शक्ति न आ जाय इस भय से वे राजसत्ता हस्तगत करने से विरत रहे।

पाद-टिप्पणी :

६३. (१) श्वित्र = श्वेत कुष्ठ बीमारी का नाम श्वित्र है। काव्यादर्श मे भी इसी अर्थ मे इसका प्रयोग किया गया है। (१ : ७)

पाद-टिप्पणी :

६४. (१) जोनराज ने काश्मीर की सीमा पर यहाँ तक कि जम्मू, आदि मे हुए सघर्ष का उल्लेख नही किया है। इसी के समय मे दिल्ली का पतन हुआ। पृथ्वीराज की पराजय हुई और मुसलिम शासन भारत मे स्थापित हुआ। जोनराज को ढिल्ली अर्थात् दिल्ली का ज्ञान था। उसका उल्लेख भी श्लोक ३८३, ४५०, ५६१ आदि मे किया है। दिल्लीश का भी वह उल्लेख श्लोक ७८५ मे करता है। जोनराज के वर्णन मे भारत मे उठते आँधी-तूफान का सकेत मात्र नही मिलता। इतिहास रचनाकार की लेखनी मे यह अभाव खटकता है।

महमूद गजनी के वंशज तथा भारत म उसके उत्तराधिकारी निर्बल होते गये। मुहम्मद गोरी के उदय, गजनी मे गोर वश के शासन-स्थापन के पश्चात् गजनी वंशजों का हिन्दुओ से अलग रहकर रहना कठिन हो गया।

जम्मू का राजा विदेशियो का घोर विरोधी था। मुसलिम सामन्त जो भारत मे रह गये थे, गोरी की शक्ति का सामना करने मे असमर्थ थे। मुसलिम शासक खोखरो से सम्पर्क स्थापित करने के लिये बाध्य हो गये। खुरशेव मल्लिक ने खोखरो को जम्मू के राजा के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये उत्तेजित किया।

राजा चन्द्रदेव इस स्थिति मे परेशान हो गया। उसने मुहम्मद गोरी को पजाब पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित किया। गोरी ने पजाब पर आक्रमण किया। खुरशेव को अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। मुहम्मद गोरी के भारत से लौटते ही खुरशेव मल्लिक ने स्यालकोट पर आक्रमण कर दिया। किन्तु उसे विजय नही मिल सकी।

सन् ११८६ मे गोरी ने पुन: पजाब पर आक्रमण किया। चन्द्रदेव के पुत्र विजयदेव ने उसकी सहायता की। मल्लिक हार गया। मुलतान के सूबेदार को लाहौर का सूबेदार मुहम्मद गोरी ने नियुक्त किया।

महमूद गजनी आँधी की तरह आया और निकल गया। गोरी मन्द-मन्द वायु के समान आया। उसने धीरे-धीरे जहाँ विजय की वहाँ राज्यव्यवस्था सुव्यवस्थित करता गया। उन्हें छोडा नहीं। अपने साम्राज्य का अंग बनाकर उनपर शासन सुदृढ किया।

ततः श्रीजगदेवस्तत्तनयो विनयोर्जितः ।
ततान जनताहर्षं मधुमास इवाधिकम् ॥ ६५ ॥

जगदेव : (सन् ११६६–१२१३ ई०)

६५ तदनन्तर उसके अतिविनयी पुत्र जगदेव ने मधु मास सदृश जनता में अधिक हर्ष प्रसृत किया[1] ।

सन् ११९०–११९१ ई० में गोरी ने लाहौर से पूर्व बढने की योजना बनायी। पृथ्वीराज के अधीन भटिण्डा का दुर्ग था। गोरी ने उस पर आक्रमण किया। काजी जियाउद्दीन के नेतृत्व मे १२०० अश्वारोहियों ने आक्रमण किया। भटिण्डा गोरी के साम्राज्य का अग बन गया। मुहम्मद भटिण्डा से लौट रहा था। पृथ्वीराज ने उसका सामना किया। पृथ्वीराज के भाई गोविन्द राय पर आक्रमण कर गोरी ने अपने बर्छा से उसका दांत तोड दिया। गोविन्द राय ने उलट कर वार किया। गोरी की बाहु मे बर्छा घुस गया।

पाद-टिप्पणी :

६५ (१)श्री दत्त अभिषेक कलिसम्वत् ४२९९ = शक् ११२० = लौकिक ४२७४ = सन् ११९८ ई० राज्यकाल १४ वर्ष ६ मास ३ दिन तथा श्रीकण्ठ कौल सन् ११९९ ई० देते है। राज्य काल १४ वर्ष २ मास ३ दिन दिया है। डाइनेस्टिक हिस्ट्री मे सन् ११९८ ई० दिया है। आईने अकबरी ने राज्यकाल १४ वर्ष २ मास दिया है।

सामयिक घटनायें: चौथा क्रुसेड इसी समय किया गया। इसी समय इख्तियारुद्दीन ने सन् १२०२ ई० मे नदिया पर अधिकार कर लिया। उसने लखनावती को अपनी राजधानी बनाया। इसी सन् मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर विजय प्राप्त की। सन् १२०३ ई० मे गयासुद्दीन की मृत्यु हो गयी और निजामुद्दीन मुहम्मद बिन साम एकमात्र शासक हो गया। सन् १२०५ ई० मे मुहम्मद की तुर्कमान से पराजय हुई। उसने भारत की ओर अभियान किया। इख्तियारुद्दीन ने इसी समय तिब्बत पर आक्रमण करने का प्रयास किया। सन् १२०६ ई० मे इख्तियारुद्दीन की बंगाल मे मृत्यु हो गयी। मुहम्मद गोरी की भी इसी सन् मे मृत्यु हो गयी और कुतुबुद्दीन ऐबक गुलाम वंश का प्रथम दिल्ली का बादशाह हुआ। सन् १२०८–१२०९ ई० मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने गजनी पर आक्रमण किया किन्तु ताजुद्दीन इलजीद ने उसे हटा दिया। सन् १२१० ई० मे कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु हो गई और आरामशाह दिल्ली का बादशाह हुआ। इसी समय नासिरुद्दीन कुबेचा ने मुलतान मे अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। वीरवर परिहार ने ग्वालियर का किला हस्तगत कर लिया। सन् १२११ ई० मे दिल्ली का बादशाह आरामशाह गद्दी से उतार दिया गया। शमसुद्दीन अल्तमश दिल्ली का बादशाह हुआ। सन् १२१२ ई० मे शिहाजी राठौर ने मारवार पर अधिकार स्थापित किया।

जगदेव राजा की एक मुद्रा रोजर्स के मत से मिली है (जे० ए० एस० बी० सन् १८७९ ई०: २७८, २८१, तथा प्लेट १२ : चित्र १९, २३, २४, क्वाइन्स आफ मिडीवल इण्डिया : ४६ तथा प्लेट ५ : मुद्रा: ३२) रोजर्स ने मुद्रा के सम्मुख भाग की ओर (चित्र २०) 'जवा' शब्द पढा है। उसके अनुसार यह मुद्रा जवदेव राजा की है। वह जगदेव का समसामयिक है। उसने या तो सिंहासन हडप लिया था अथवा किसी और नाम से शासक हुआ था।

'जग' शब्द संस्कृत लिपि मे गलती से 'जव' भी पढा जा सकता है। जवदेव नाम का काश्मीर मे कोई राजा नही हुआ था।

कारजव मे मुद्रा के सम्मुख भाग पर लक्ष्मी तथा वाम पार्श्व मे 'ज' तथा दक्षिण भाग मे 'ग' टङ्कित

परस्परविरुद्धानां भृत्यानां तुल्यवृत्तिता ।
तत्राभूदुत्पलाब्जानामिव सन्ध्याक्षणागमे ॥ ६६ ॥

६६ उस समय परस्पर विरुद्ध भृत्यों की तुल्य वृत्तियाँ इस प्रकार समान हो गयीं, जिस प्रकार सन्ध्याकाल आने पर, (सभी) उत्पलाब्ज समान हो जाते हैं।'

उज्जहार महीनाथः पृथुविज्ञानकौशलः ।
भूतले दुर्व्यवस्थानं शल्यं शल्यहरो यथा ॥ ६७ ॥

६७ महान् विज्ञान-कुशल महीनाथ ने भूतल की दुर्व्यवस्था उसी प्रकार हर ली, जिस प्रकार शल्यहर' शल्य को।

है। पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा 'देव' तथा टंकणित है।

जोनराज जगदेव के १४ वर्ष के राज्यकाल का वर्णन केवल ११ श्लोकों मे करता है। श्लोक ६५-७५ इस राजा के विषय मे कुछ प्रकाश डालता है। श्लोक ६५ तथा ७५ मे उसके अभिषेक तथा मृत्यु का वर्णन किया गया है। श्लोक ६६-६७ मे राजा के कार्य की प्रशंसा की गयी है। श्लोक ६८ मे मन्त्रियो के षड्यन्त्र तथा उसके निर्वासन का उल्लेख है। राजा कहाँ निर्वासित किया गया था, इस पर जोनराज कुछ प्रकाश नही डालता। श्लोक ६९ मे राहुल सचिव को मित्र तथा श्लोक ७० मे काश्मीर प्रवेश का वर्णन है। श्लोक ७१ मे शत्रुओं की पराजय, तथा श्लोक ७२ मे विजय एवं राहुल का लक्ष्मीभोग, श्लोक ७३ मे हर्षेश्वर मन्दिर का निर्माण तथा श्लोक ७४ मे दुरात्मा पद्म द्वारा उसे विष देकर हत्या करने का उल्लेख किया गया है। राजा के १४ वर्ष के लम्बे राज्यकाल का केवल इतना ही वर्णन किया गया है।

पाद-टिप्पणी :

६६ (१) कवि का आशय यह है कि भृत्यो के परस्पर विरोधी दोनो दल राजा के काल मे उसी प्रकार एक सदृश हो गये, जिस प्रकार सन्ध्या काल आने पर सब कमल-समान रूप से खिले एवं अखिले-एकाकार हो जाते हैं।

जोनराज ने जयसिंह से जगदेव तक वर्णित राजाओ के लम्बे ८५ वर्ष के काल मे केवल जगदेव के विषय मे कुछ अच्छे शब्दो का प्रयोग किया है। प्रतीत होता है राजा ने राज्य-व्यवस्था सुधारने का प्रयास किया था। उसने भृत्यों एवं राजपुरुषो के परस्पर द्वेष एवं वैमनस्य के स्थान पर उनमे नवीन चेतना का संचार कर, उन्हे जागरूक एवं स्थिर-बुद्धि का बनाया था।

पाद-टिप्पणी :

६७. (१) शल्यहर : शल्य का अर्थ काँटा, बाण, बर्छा, होता है। शल्यहर अस्त्र चिकित्सा द्वारा काँटा या बाण निकालना। काँटे से काँटा निकालना हिन्दी का मुहावरा यहाँ ठीक बैठता है। तत्कालीन स्थिति पर जोनराज प्रकाश नहीं डालता। क्या दुर्व्यवस्था व्याप्त थी उस पर कुछ नही लिखता। राजा ने क्या सुधार किये थे, उनका भी कुछ वर्णन नही किया है। तथापि वह राजा को विज्ञानकुशल रूप मे चित्रित करता है। राजा जगदेव के इस संक्षिप्त वर्णन से प्रतीत होता है कि अन्य राजाओ की अपेक्षा वह गुणी तथा कुशल शासक था।

लोकप्रकाश (पृष्ठ ४) मे शल्यहार वैद्य, भिषक्, स्पष्टीक किंवा माष्टीक व्यक्तिवाचक नामो के साथ शल्यहार भी नामवाचक शब्द रूप मे दिया गया है।

मनःशल्यायमानः स निस्सामान्यगुणो नृपः ।
कुचक्रिकाबलाद्देशान्मन्त्रिभिर्निरवास्यत ॥ ६८ ॥

६८ (विरोधियों के मन में) मनःशल्य[1] का आचरण करता हुआ, असामान्य गुणशाली वह नृप, कुचक्रिका (षड्यन्त्र) के बल से मन्त्रियों द्वारा देश से निर्वासित[2] कर दिया गया ।

निग्रहानुग्रहाधायिमन्त्रज्ञं गुणराहुलम् ।
स प्रापत् सचिवं मित्रं कपीन्द्रमिव राघवः ॥ ६९ ॥

६९. उसने निग्राहानुग्रहधायी- मन्त्रवेत्ता, गुणराहुल[1] सचिव को उस प्रकार मित्र प्राप्त किया, जिस प्रकार राम[2] ने सुग्रीव[3] को—

पाद-टिप्पणी :

६८. (१) मनःशल्य : हृदय का काँटा सर्वदा व्यथा पहुँचाता है। शल्य शरीर में चुभा काँटा होता है। पीडा पहुँचाता रहता है। शल्य का अर्थ कील, बाण एवं काँटा होता है। कोई भी कारण जो अत्यधिक मनोवेदना पहुँचाने वाला होता है उसे मनःशल्य कहते हैं।

(२) निर्वासन : जोनराज के केवल एक ही श्लोक के उल्लेख से प्रकट होता है। राजा ने सुधार का प्रयास किया था। उसका सुधारवादी कार्य या तो राज्यश्री से अधिकाधिक लाभ उठाने वाले मन्त्रीगणों को पसन्द नहीं आया था या राजा से *बिगड़ गये थे अथवा राजा के दोषों के कारण मन्त्रियों* ने उसे निर्वासित कर दिया था।

मन्त्रिपरिषद महाभारतकाल से ही बड़ी शक्तिशाली संस्था रही है। मन्त्रिपरिषद का लोप काश्मीर में किसी भी काल में नहीं हुआ था। मन्त्रियों का यह क्रम महाभारत काल से कोटा रानी के काल तक निरन्तर चलता रहा। विश्व के इतिहास में कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि लगभग साढ़े चार हजार वर्ष तक अविच्छिन्न रूप से एक परम्परा चलती रही।

षड्यन्त्र के बल से राजा को निर्वासित कर दिया। इस शब्द से स्पष्ट होता है। राज-विद्रोह, रक्तपात एवं विप्लव नहीं हुआ था। मन्त्रियों ने मिलकर अथवा मन्त्रिपरिषद ने उसे देशत्याग के लिये बाध्य कर दिया था।

पाद-टिप्पणी :

६९. (१) गुणराहुल : गुणराहुल प्रतीत होता है, राजा के निर्वासन-काल में राजा का मन्त्रदाता था। गुणराहुल कौन था ? राजा कहाँ निर्वासित हुआ था ? कहाँ जीवन व्यतीत किया ? राजा की अनुपस्थिति में काश्मीर में कौन राजा हुआ ? काश्मीर में मन्त्रिगण मन्त्रिपरिषद द्वारा शासन करते थे अथवा कोई और शासन-पद्धति अपनायी गयी थी ? यह सब भूतकाल के गर्भ में छिपा है।

सुग्रीव के उद्धरण से स्पष्ट होता है कि जोनराज ने कल्हण के समान रामायण का अध्ययन किया था। उसने कल्हण के समान ही रामायण की उपमा अपनी तरंगिणी में दी है।

(२) राम : यहाँ पर दाशरथि भगवान् राम से तात्पर्य है। उत्तरकालीन साहित्य में रामचन्द्र नाम से राम दाशरथि का निर्देश प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में सर्वत्र राम शब्द का ही *व्यवहार किया गया है। एक स्थान पर* राम की उपमा 'चन्द्र' से दी गयी है (वा० : यु० : १०२ : ३२) सम्भव है चन्द्र के इस सादृश्य के कारण उत्तरकालीन साहित्य में रामचन्द्र नाम राम का दिया

जाने लगा। पौराणिक साहित्य में राम को विष्णु का अवतार माना गया है। उत्तरकालीन साहित्य में रामभक्ति की कल्पना का विकास होने लगा। साथ ही राम के अवतारवाद की कल्पना दृढ होने लगी। रामपूर्वतापनीय तथा रामोत्तरतापनीय, रामरहस्य उपनिषदों से अध्यात्म रामायण तक समस्त रामविषयक भक्तिवादी ग्रन्थों में राम को परमब्रह्म का अवतार माना गया है (अध्यात्म रा० बा० : १)। महाभारत, मार्कण्डेयपुराण तथा हरिवंश के अनुसार विश्वामित्र के अंश से इनके जन्म की बात कही जाती है। देवीभागवत में राम एवं लक्ष्मण को नर-नारायण का रूप माना गया है।

राम का चित्रण एक पत्नीव्रती महान् व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। तिब्बती, खोतानी, सिंहली, थाई, चीनी, मलय, कम्बोडिया, जावा आदि भाषाओं में राम-कथा मिलती है।

राम के दो पुत्र लव एवं कुश थे। लव उत्तर कोशल के तथा कुश दक्षिण कोशल के राजा हुए थे। राम के द्वितीय भ्राता भरत के तक्ष एवं पुष्कल दो पुत्र थे। उन्होंने गन्धर्व देश विजय किया। तक्ष ने तक्षशिला तथा पुष्कल ने पुष्कलावती नामक राजधानियों की स्थापना की। पुष्कलावती आधुनिक चारसद्दा अर्थात् कुभा एवं सुवास्तु नदियों के सङ्गम पर पेशावर से उत्तर पश्चिम ७ मिल पर स्थित है। तृतीय भ्राता लक्ष्मण के अङ्गद एवं चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र थे। अङ्गद हिमालय समीपस्थ कारुपथ तथा चन्द्रकेतु मल्लदेश का राजा हुआ। चतुर्थ भ्राता शत्रुघ्न के सुबाहु एवं शत्रुघातिन् दो पुत्र थे। सुबाहु ने मथुरा एवं शत्रुघातिन् ने वैदिश नगर पर राज्य किया।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में रामकथा का वर्णन मिलता है। विश्व की प्रत्येक भाषाओं में राम की कथा का समावेश हो गया है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त संस्कृत में, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, महारामायण, तत्त्वसंग्रह रामायण, पुरातन रामायण (जामवन्त रामायण) संक्षेप रामायण, मन्त्र रामायण, भुशुण्डी रामायण, वेदान्त रामायण आदि प्रचलित ग्रन्थ हैं। हिन्दी में तुलसीदास की रामायण सर्वप्रिय ग्रन्थ है। भारत की प्रत्येक भाषाओं में रामायण का पद्य तथा गद्य में अनुवाद हुआ है। महाभारत वनपर्व में 'रामोपाख्यान' नामक एक पर्व है। उसमें उन्नीस अध्याय हैं (म० व० २५८-२७६)। संक्षेप रामायण भी वनपर्व में प्राप्त है (म० व० १४७ २३-३८)। लगभग १४ पुराणों में रामकथा का वर्णन मिलता है।

(३) सुग्रीव : सुग्रीव के पिता का नाम महेन्द्र तथा माता का नाम विरजा था (ब्रह्माण्ड : ३ : ७ : २१४-२४८, भा० : ९ : १० : १२)। वह वाली का कनिष्ठ भ्राता था। सुन्दर ग्रीवा होने के कारण नाम सुग्रीव पड़ा था। सुग्रीव सूर्यपुत्र एवं अंशावतार माना गया है (भा० : १० : ६७ : २)। रामकथा के कारण सुग्रीव का नाम अमर हो गया है। उसकी जाति वानर थी। स्थान किष्किन्धा था। अमात्य का नाम द्विविद था। राम की लङ्कापति रावण के विरुद्ध सुग्रीव ने सक्रिय सहायता वानर सेना द्वारा की थी। ज्येष्ठ भ्राता वाली के कारण सुग्रीव राज्य से निकाल दिया गया था। इसने समस्त भूमण्डल का भ्रमण किया था। उसके भौगोलिक ज्ञान एवं वर्णन से तत्कालीन भूगोल तथा देश निर्धारण करने में सहायता मिलती है। वह चतुर सैन्य सञ्चालक था। वह ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा था (वा० कि० ४ : १७-२९, ४१ : ७-४५, ४२ : ६-४९३-४६)। राम तथा सुग्रीव की मैत्री अग्नि को साक्ष्य देकर हुई थी। राम ने वाली का वध किया। सुग्रीव किष्किन्धा का राजा बन गया। वालिपुत्र अंगद को युवराज पद दिया गया (वा० कि० १६)। सुग्रीव को अपनी पत्नी रूमा तथा वाली की पत्नी तारा प्राप्त हुई। इसकी एक और पत्नी मोहना का उल्लेख पद्मपुराण में मिलता है

उदयप्राप्तिलोभेन शरद्विजपती समम् ।
अगातामथ कश्मीरदेशं तौ विस्मयावहौ ॥ ७० ॥

७० सूर्य-शशि-सदृश, उदय प्राप्ति के लोभ से, विस्मयावह[1] वे दोनों काश्मीर देश में आये ।

चिरं भुक्तां श्रियं त्यक्तुमनीशाः समरोद्यताः ।
तन्मन्त्रौजोहुताशान्तः प्रापुः शलभतां द्विषः ॥ ७१ ॥

७१ चिरभुक्त लक्ष्मी को त्यागने में असमर्थ अतएव समरोद्यत शत्रु उन (दोनों) के मन्त्र एवं ओज-रूप[1] अग्नि में शलभता प्राप्त किये (जल मरे) ।

(पद्मपु० : ६०)। राम-रावण युद्ध मे सुग्रीव ने कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ, रावण सेनापति विरूपाक्ष महोदर को पराजित कर उन्हें मारा था (बा० : पु० : ७५, ७, ६, ९)। राम के राज्याभिषेक के समय राम ने अयोध्या मे युद्ध विजय का श्रेय सुग्रीव को दिया था (बा० : १२३–१२८, कि० ७ : १२–१८)। राम के स्वर्गारोहण काल मे अयोध्या मे उपस्थित था। तत्पश्चात् सुग्रीव ने भी किष्किन्धा का राज्य अंगद को देकर स्वर्गगमन किया था। (ब्रह्माण्ड० : ३ . ७ : २१५–२२१, भाग : ९ : १० : १६, १९, ४३ : वा० पु० : ३ : ७ : १०८, १८, २१, २२, २५, ११० : २२)।

पाद-टिप्पणी :

७०. (१) विस्मयावह = विस्मयपूर्वक राजा तथा गुणाकरराहुल ने काश्मीर मे प्रवेश किया था। इससे प्रकट होता है उन्होंने काश्मीर मण्डल से बाहर रहकर राज्य प्राप्ति करने का षड्यन्त्र किया था। काश्मीर उपत्यका मे यदि राजा होता तो, मन्त्रियों को उसके गतिविधि का पता रहता। प्रतीत होता है राजा काश्मीर के बाहर था। काश्मीर मण्डल मे द्वार पार कर आया था। द्वारपति को पता नहीं लग सका। कोई बाहर से काश्मीर मण्डल मे प्रवेश किया था। इसे उसका काश्मीर मण्डल मे अकस्मात् प्रकट होना लोगो के विस्मय का विषय बनना स्वाभाविक था। इसीलिए जोनराज ने यहाँ विस्मयावह शब्द का प्रयोग किया है।

पाद-टिप्पणी :

७१. (१) मन्त्र एवं ओज : राजा जगदेव ने गुणराहुल किंवा गुणाकर राहुल के साथ मन्त्र अर्थात् बुद्धि शक्ति जिसका सरल अर्थ कूटनीति है, लोगो को मिलाकर, षड्यन्त्र कर, साथ ही ओज अर्थात् शक्ति से भी, युद्ध के लिए उद्यत, मन्त्रियो का सामना किया था। भेदनीति का आश्रय राजा ने लिया था। इसी ओर जोनराज सङ्केत करता है।

मन्त्र शब्द 'मन् चिन्तने' से निष्पन्न है। ऋग्वेद एवं परवर्ती काल मे ऋचा को मन्त्र कहा गया है। वे मनन के परिणाम थे अतएव नाम मन्त्र पड़ा (ऋ० : १ : ३१ : १३, १ : ४० : ५, १ : ६७ : ४, १ : ७४ : १; १ : १ : १५२ : २, २ : ३५ : २; अवे० : १५ : २ : १; १९ : ५४ : –३; तै० स० १ : ४ : ४ : ९, १ : ५ : ५ : १)। यज्ञ सम्बन्धी यजुओ को मन्त्र कहा गया है (ऐ० : ब्रा० : ५ : १४ : २३, ६ : १; कौ० ब्रा० : २६ : ३ : ५; श० ब्रा० : १ : ४ : ४ : ६, ११ : २ : १ : ६;

जित्वा क्ष्मां बुभुजे भूपश्छत्रचामरहासिनीम् ।
लक्ष्मीमराजलक्ष्मां तु श्रीगुणाकरराहुलः ॥ ७२ ॥

७२ पृथ्वी को जीतकर, भूपति (जगदेव) ने छत्र-चामर से सुहासिनी राजलक्ष्मी का तथा श्री गुणाकर-राहुल ने राजचिह्न (छत्रादि) रहित राजलक्ष्मी का भोग किया।

राजा रज्जुपुरे राजद्राजतच्छत्रधारिणम् ।
हर्षेश्वरस्य प्रासादं निर्ममे निर्ममेहितः ॥ ७३ ॥

७३ निस्पृह नृप ने रजत-छत्र युक्त शोभमान श्री हर्षेश्वर[1] मन्दिर का निर्माण कराया।

निरुक्त : ७ : १, छा० उ० : ७ : १ : ३)। कहा गया है—'ब्रह्म वै मन्त्र.' (श० ब्रा० : ७ : १ : १ : ५)–'वाग् वै मन्त्रः' (श० ब्रा० ६ : ४ : १ : ७)।

आदि काल से मनुष्यो का मन्त्र मे विश्वास रहा है। युक्ति एवं प्रयास से काम न होने पर मन्त्र का शरण मानव लेता रहा है। मन्त्र का उद्‌भव भय एव विश्वास दोनो से हुआ है। धर्म एव मन्त्र म सम्बन्ध रहा है। प्रार्थना को एक प्रकार का मन्त्र माना जाता था। प्रार्थना के द्वारा कार्यसिद्धि का विश्वास करते थे। अतएव कालान्तर में प्रार्थना की गणना मन्त्र में होने लगी। उसके शुद्ध उच्चारण पर जोर दिया जाने लगा। प्राचीन काल मे वैद्य औषधि एवं मन्त्र दोनो का प्रयोग एक साथ करते थे। हिन्दुओ मे बीमार होने पर दुर्गापाठ किंवा मृत्युञ्जय का पाठ बैठाया जाता है। औषधियो को अभिमन्त्रित किया जाता था। मैंने स्वय अपनी बाल्यावस्था मे देखा है कि पुरानी शैली के वैद्य मन्त्र पढकर औषधि देते थे।

मन्त्रो के अनेक भेद हैं। कुछ का प्रयोग देवी-देवता एवं कुछ का भूत-प्रेत का आश्रय लेकर किया जाता है। कुछ मन्त्र भूत एवं पिशाच के विरुद्ध किया जाता है। कुछ भूत, प्रेत एव पिशाचो की सहायता प्राप्ति हेतु किया जाता है। पुरुषो एव स्त्रियो को वश मे करने के लिये वशीकरण मन्त्र का प्रयोग होता था। पशु के दमन एव सहार के लिये किये जाने वाले मन्त्र को मारण कहते हैं। भूत-प्रेतादि के निवारण के लिये जिन मन्त्रो का प्रयोग करते हैं उन्हे उचाटन एवं शमन मंत्र कहते हैं। मंत्र मे दैवी शक्ति मानी जाती है। ईसाई, मुसलमान आदि सभी अपने-अपने धर्म-ग्रन्थो के पदो किंवा लेखो का जप अथवा उच्चारण दैवी शक्ति की सहायता के लिये करते हैं।

यहाँ पर मन्त्र शब्द के राजनीतिक अर्थ से सबन्ध है। मत्र का प्रयोग राजनीतिक प्रसंग मे षड्‌यन्त्र के लिये जोनराज ने किया है। इसी अर्थ मे श्लोक १७७ तथा ५१५ मे मत्र का पुनः प्रयोग जोनराज ने किया है।

पाद-टिप्पणी :

७२ (१) गुणाकरराहुल—श्लोक ६९ मे वर्णित गुणराहुल तथा इस श्लोक मे उल्लिखित गुणाकर राहुल एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं। राजमन्त्री होने के पूर्व केवल गुणराहुल नाम से सम्बोधन जोनराज ने किया है। जगदेव के राज्य प्राप्ति के समय तथा पश्चात मन्त्री होने पर उसने अपने जिन गुणो का प्रदर्शन किया था, उन्हीं से प्रभावित होकर, जोनराज ने नाम मे ही विशेषण बना दिया है। गुण के साथ आकर शब्द जोड कर उसने गुणराहुल की प्रशसा की है।

पाद-टिप्पणी :

७३ (१) हर्षेश्वर . यह मन्दिर कहाँ पर था पता नही चलता। जोनराज भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं डालता। इसका पुन. उल्लेख जोनराज ने नहीं किया है। जयसिंह से अबतक वर्णित ६ राजाओं मे

वाल्लभ्याद् द्वारपतितां पद्मेनाप्तवता ततः ।
दुरात्मनाऽवधिच्छन्नविपदानेन भूपतिः ॥ ७४ ॥

७४ द्वारपति[1] पद प्राप्त दुरात्मा पद्म ने अत्यन्त प्रिय बनकर गुप्त-रूपेण विष प्रदान कर भूपति (जगदेव) को मार डाला ।

वह प्रथम अवसर है जब जोनराज ने किसी राजा के पुण्य कार्य का वर्णन किया है ।

कवि बिल्हण की जन्मभूमि खोनमुष है । वर्तमान काल में इसको खुनमोहं कहते हैं । विक्रमाङ्कदेव-चरित में बिल्हण अपनी जन्मभूमि की सुन्दरता का वर्णन करता है । वह इसके समीप केसर की खेती का भी उल्लेख करता है । वहाँ पर दामोदर नाग जल-स्रोत है । वहाँ पर कुछ प्राचीन करनोल शिलाखण्ड पड़े मिलते हैं । ग्राम के ऊपर पर्वत की तरफ एक दूसरा जलस्रोत भुवनेश्वरी नाम का है । इस नाग की यात्रा हर्षेश्वर तीर्थ की यात्रा के समय की जाती है । हर्षेश्वर तीर्थ पर्वत के ऊँचे बाहुमूल पर है । यह पर्वत ग्राम के उत्तर तरफ ऊँचा उठता है । यहाँ पर एक स्वयंभू लिंग है, जो एक गुफा में है । हर्षेश्वर नाम का दूसरा स्थान नहीं मिलता । सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि राजा ने वहीं पर हर्षेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था । उसने अपने नाम से मन्दिर का निर्माण नहीं कराया था । तीर्थों में मन्दिर का निर्माण कराया जाना पुण्य कार्य समझा जाता था और आज है भी । स्वाभाविक है कि उसने हर्षेश्वर क्षेत्र में हर्षेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया होगा । हर्षेश्वर तीर्थ माहात्म्य में तीर्थ का वर्णन मिलता है ।

पाद-टिप्पणी :

७४ (१) द्वारपति : द्वार शब्द काश्मीर में दर्रों के लिये प्रयुक्त होता रहा है । यद्यपि संस्कृत में दर्रा का नाम सकट दिया गया है । काश्मीर उपत्यका चारों ओर पर्वत-मालाओं से आवेष्टित है । उपत्यका किंवा काश्मीर मण्डल में प्रवेश का एकमात्र साधन दर्रे हैं । प्रत्येक दर्रों के प्रवेश द्वार पर सैनिक चौकियाँ प्राचीन काल से रखी जाती थीं । कोई भी विदेशी बिना अनुमति प्रवेश नहीं पा सकता था । आजादी के पूर्व बारहमूला से काश्मीर में प्रवेश किया जाता था । वह सरल मार्ग था । आजादी के पूर्व बनिहाल में भी सुरंग बनाकर मार्ग बनाया गया था । किन्तु वह मार्ग शीतकाल में तुषारपात के कारण बन्द हो जाता था । अब बनिहाल पर दुहरी सुरंग और नीचे बनायी गयी है । वह सर्वदा खुली रहती है । तुषारपात कम निचाई होने के कारण नहीं होता । इस समय पाकिस्तान के कारण बारहमूला का मार्ग बन्द हो गया है । काश्मीर में आवागमन का एकमात्र मार्ग पठानकोट-जम्मू-बनिहाल सड़क है । वह सड़क बनिहाल से श्रीनगर पहुँचती है । बनिहाल की सुरंग मेरे सामने बनी है । सुरंग न बनने के पूर्व पुरानी सुरंग से, बनने पर नयी सुरंग से तीन बार काश्मीर जा चुका हूँ । अल्बेरूनी ने बारहमूला का द्रंग किंवा द्वार का उल्लेख किया है । (अल्बेरूनी : २: ३६२)

द्वारपति, द्वाराधिपति, द्वाराधिकारी, द्वाराधिप, द्वारनायक, द्वाराधीश्वर, एक ही शब्द द्वारपति किंवा द्वारेश के पर्यायवाची नाम है । इस शब्द का प्रयोग हिन्दू एवं मुसलिम दोनों काल की लिखी राज-तरंगिणियों में बहुलता से आता है । कल्हण, जोनराज तथा श्रीवर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि द्वारपति काश्मीर के द्वार किंवा संकटों अथवा दर्रों का रक्षक होता था । द्वार का अर्थ ही फाटक होता है । काश्मीर में बाहर से आने वाले दर्रे काश्मीर उपत्यका के द्वार का कार्य करते थे । उनके बन्द कर देने पर काश्मीर स्वयं दुर्ग के समान हो जाता था । काश्मीर की सुरक्षा व्यवस्था में द्वारपति का पद सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था । द्वारों की रक्षा से सम्पूर्ण काश्मीर

रक्षित्वा क्षितिमब्दान् स सप्यहर्तुश्चतुर्दश।
नन्दाष्टाङ्काब्दचैत्रान्त्यचतुर्दश्यां लयं ययौ ॥ ७५ ॥

७५ राजा १४ वर्ष ६ माह ३ दिन राज्य कर चैत्रान्त चतुर्दशी ८६ (लौ० ४२८६ सन् १२३१ ई०) मे मर गया।

की रक्षा हो जाती थी। द्वारपति का पद अनुभवी सेनानायको को दिया जाता था। वे सैन्यशास्त्र मे पटु, साहसी, कठिनाई झेलने वाले, योद्धाओ को दिया जाता था (रा० : ८ : ४२२)। द्वारपति से देश-भक्ति तथा देश के लिये जीवन उत्सर्ग करने की अपेक्षा रखी जाती थी। यह उसका सबसे बड़ा गुण माना जाता था (रा० ७ : २१७)। द्वारपति युद्ध करता था। बाहर से आने वाले शत्रुओ से लडता था (रा० : १ : ३१७)। वे समर अभियानो मे भाग लेते थे (रा० : ७ . ५, ६, ९७१)। वे धन से सैनिको का सग्रह बनाये रखते थे (रा० : ७ ५९९)।

द्वारपति का सैनिक कार्यक्षेत्र सीमान्त प्रदेश था (रा० : ८ : ५,४, ५९२, ७४६, १००५, १९२७, २२८१, ३५०३)। कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि द्वारपति का स्थानान्तर शीघ्रता से होता था। द्वारपति को उदासीनता किंवा शिथिलता के कारण समस्त काश्मीर मण्डल पर सकट आ सकता था। सीमान्त-स्थित विदेशी सर्वदा काश्मीर प्रवेश के इच्छुक रहा करते थे (रा० . ७ . ५, ८, ५९७, ८ : ६३३ । २३५४)।

द्वारपति एक समय केवल एक ही व्यक्ति हो सकता था। मार्गेश तथा द्वारपति के पदो, कर्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो मे अन्तर था। मार्गेश को मार्गप, अध्वप, अध्वेश कहते थे। इनका उल्लेख बहुवचनो मे मिलता है। इससे प्रकट होता है कि एक ही समय अनेक मार्गेश होते थे। भिन्न भिन्न मार्गों के लिये भिन्न-भिन्न मार्गेश नियुक्त होते थे। श्रीवर ने जैन राजतरगिणी म उनका उल्लेख किया है (जैन० . ८८, ३ ३७८, ३८९, ४१८, ४५७, ४६२, ४७६, ४ ५७८)। मुसलिम काश्मीर काल म मार्गपति का भी उल्लेख मिलता है (जैन० . ३ : ३७५, ४४०, ४४४, ४६१, ४६३, ४७५, ४८८, ४ : १७७, ४२६, ४२७)। मार्गेश का उल्लेख जोनराज ने भी किया है (६३९)। मार्गप शब्द का उल्लेख श्रीवर ने किया है (जैन० : १ . २०१, २ . ६, ९, ७५)। अध्वप का उल्लेख श्रीवर ने किया है (जैन० · १ · २३९)। मार्गेश्वर का भी उल्लेख श्रीवर द्वारा मिलता है (जैन० · २ : ३०)। श्रीवर तथा शुक ने अपनी राजतरगिणियो मे मार्गेश शब्द का प्रयोग मुसलिमकालीन मालेक अधिकारी के समान माना है।

द्वारपति का पद प्रधान मन्त्री (सर्वाधिकार), कम्पन (सेनापति), प्रधान न्यायाधीश (राजस्थान), के समान पदाग्र किंवा समकक्ष था (रा० : ७ : ३६४, ८८७, ८ . ५७३, १९६४)। द्वारपति का पद मण्डलेश मुसलिमकालीन सूबेदारो अर्थात् वर्तमान राज्यपालो के पदो की अपेक्षा ऊँचा था (रा० : ७ · ११७८)। द्वारपति के शब्द के लिए प्राय' उसका सक्षिप्त रूप द्वार प्रयुक्त किया गया है (रा० . ७ ३६४, ५७८, ५९५, ८८७, ११७८, ८ २१, १७९, ४५१, १६३०, १६३४, १६६४)। द्वाराधिकारी शब्द का भी प्रयोग किया गया है (रा० : ७ २१६)।

लोकप्रकाश मे द्वाराधिप एव कम्पनापति की परिभाषा दी गयी है—

द्वाराधिप :

> नृणा षष्टिसहस्राणामधिपत्यो यथा जगु ।
> राज्ञीश्वरमुद्वहति स द्वाराधिप उच्यते ॥ १ ॥

× × ×

कम्पनापति .

> प्रजाना परम कपो मोहकम्प निवारयेत् ।
> गजाङ्ग च समारुयत स ज्ञेय कम्पनापति. ॥ २ ॥

(पृष्ठ ५९)

तत्पुत्रो राजदेवोऽथ काष्टवाटं भयाद्गतः।
आनिन्ये वामपार्श्वस्थैर्द्वारेशस्य विरोधिभिः॥ ७६ ॥

राजदेव[1] (सन् १२१३-१२३६ ई०)

७६ उसका पुत्र राजदेव भय से काष्टवाट[2] गया था। द्वारेश[3] का वामपार्श्व[4] विरोधियों द्वारा (पुनः) लाया गया।

पाद-टिप्पणी :

राज्याभिषेक काल : श्रीदत्त कलि ४३१३ = शक ११३५=लौकिक ४२८९=सन् १२१३ ई० तथा राज्य काल २३ वर्ष, ३ मास, २७ दिन देते है। आईने अकबरी ने राज्य काल २३ वर्ष ३ मास ७ दिन दिया है। डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे सन् १२१२-१२१३ ई० दिया गया है।

समसामयिक घटनायें : ताजुद्दीन इल्दौज् ने पजाब पर सन् १२१५ ई० मे आक्रमण किया। इङ्गलैण्ड मे किंग जार्ज ने इसी वर्ष मेगना कार्टा पर हस्ताक्षर किया। सन् १२१६ ई० मे इलजिद नरौरी मे अल्तमश द्वारा परास्त किया गया। कुलोत्तुङ्ग चोल की मृत्यु हो गयी। राजराज तृतीय राजा हुआ। इसी समय मारवर्मन सुन्दर पाण्ड्य ने राज्य ग्रहण किया। सन् १२१६ ई० मे हेनरी तृतीय इङ्गलैण्ड का राजा हुआ। सन् १२१७ में अल्तमश ने लाहौर तथा उत्तरी पजाब नासिरुद्दीन कवाचा से हस्तगत किया। सन् १२१९ ई० मे रावल छछक देव जैसलमेर का राजा हुआ। सन् १२२० ई० मे वीरवल्लाल की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर होयसल नरसिंह देव राजा हुआ। सन् १२२१ ई० मे जलालुद्दीन मगवर्ती रवार्जम ने लाहौर मे शरण ली। वहाँ से हटाये जाने पर कवाचा से कर लिया। सन् १२२४ ई० म जलालुद्दीन परसिया लौट गया। सन् १२२५ ई० मे हिसामुद्दीन इवाज बंगाल ने अल्तमश की अधीनता स्वीकार कर ली। अल्तमश ने इसी वर्ष रणथम्भोर का किला विजय किया। सन् १२२६ ई० मे अल्तमश ने मन्दावर जीतकर नवाप के क्षेत्र पर आक्रमण किया। मुल्तान तथा ऊच जीत लिया। कवाचा सिन्ध नदी में डूब गया। अल्तमश ने सिन्ध मे अपना अधिकार स्थापित किया। सन् १२२७ ई० मे नासिरुद्दीन महमूद जो अल्तमश का पुत्र था बगाल मे इवाज का विद्रोह दबाया और उसका वध करवा दिया। सन् १२२८ ई० मे आसाम पर अहोम लोगो ने विजय प्राप्त की। सन् १२२९ मे नासिरुद्दीन महमूद राजा बिर्नू को पराजित कर उसकी हत्या कर दिया। महमूद की इसी वर्ष मृत्यु हो गयी।

सन् १२३०-१२३१ ई० अल्तमश ने बंगाल मे बलका का विद्रोह दबाया। सन् १२३१-३२ ई० मे कुतुबमीनार का निर्माण हुआ। सन् १२३२ ई० मे मगल भवन देव परिहार से अल्तमश ने ग्वालियर ले लिया। सन् १२३३ ई० मे नरसिंह द्वितीय की मृत्यु हो गयी और सोमेश्वर होयसल राजा हुआ। सन् १२३४ ई० मे अल्तमश ने मालवा पर आक्रमण किया। भिलसा पर अधिकार कर लिया, उज्जैन लूट लिया। सन् १२३५ ई० में अल्तमश ने खोखरो के विरुद्ध अभियान किया। सन् १२३६ ई० मे अल्तमश की मृत्यु हो गयी।

७६ (१) राजदेव के नाम की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है। उसके सम्मुख भाग पर लक्ष्मी अर्थात् आसीन देवी तथा वाम पार्श्व मे 'श्री' तथा दक्षिण पार्श्व मे 'राज' और पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा एव 'देव' टकणित है। (क्वाइन्स आफ मिडीवल इण्डिया, ४६ : ५ : ३३, ५ : ८)

जोनराज ने इस समय तक के राजाओ का सक्षिप्त वर्णन किया है। उसने राजा के २३ वर्षो के राज्य काल का वर्णन केवल १२ श्लोकों मे किया है। राज्याभिषेक तथा मृत्यु सम्बन्धी श्लोक ७६

तं सल्हणाख्यदुर्गान्तः प्रविष्टं दुष्टचेष्टितः ।
अवेष्टयद्बलैः पद्मो मण्डलैरिव पन्नगम् ॥ ७७ ॥

७७ सल्हण नामक दुर्ग में प्रवेश करने पर, दुष्ट चेष्टावान पद्म उसे सेनाओं (बल) द्वारा घेर लिया, जिस प्रकार पन्नग (मन्त्र) मण्डलों से घेर लिया जाता है ।

उपायनीकृतापूर्वपादुकालोककौतुकात् ।
प्रसक्तं कोऽपि चण्डालो द्वारेशमवधीद्रणे ॥ ७८ ॥

७८ उपायनीकृत, (उपहार में प्राप्त) अपूर्व पादुका को कौतुक वश देखने में प्रसक्त द्वारेश की रण (भीड़ भाड़) में किसी चाण्डाल ने हत्या कर दी ।

तथा ८७ शेष कर दिये जायें तो केवल १० श्लोकों में अर्थात् एक वर्ष के लिए २ श्लोक भी घटना वर्णन के लिये नहीं लिखा है । राजा के काल की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख जोनराज ने किया है । उनमें काश्मीर के इतिहास का धुंधला चित्र मिलता है ।

(२) काष्ठवाट : यह वर्तमान किस्तवार उपत्यका है । काष्ठवाट का अपभ्रंश किस्तवार हो गया है । यह चिनाब नदी के ऊर्ध्व भाग मे है । यह काश्मीर उपत्यका एवं चम्बा के मध्य स्थित है । किस्तवार कसबा है । यह समुद्र की सतह से ३२३५ फिट की ऊँचाई पर स्थित है । इस दर्रा से यहाँ पर आया जाता है । इस समय यहाँ पर ब्लाक का आफिस भी है । अनन्तनाग से ७४ मिल दूर पर स्थित है । मारवल कल्हण ने काष्ठवाट को एक मित्रराज मानकर वर्णन किया है । इस राज्य की स्थापना के विषय मे अनुमान किया जाता है कि १० वीं शताब्दी मे हुई थी । औरंगजेब के राजसत्ता ग्रहण करने के समय तक यह हिन्दू राज था । औरंगजेब के पिता शाहजहाँ के समय सैयद फरीदुद्दीन जो बगदाद से किस्तवार आये थे, उनके कारण औरंगजेब के समय राजा ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया । राजा तथापि अपनी अलग सत्ता बनाये रखे क्योंकि पंजाब एवं दिल्ली मे मुसलिम शासन था परन्तु राजा गुलाबसिंह ने किस्तवार विजय कर काश्मीर मे मिला लिया । काश्मीर के मुसलिम चकवंशी अन्तिम राजा याकूब शाह चक किस्तवार मे शरण लिये थे जब कि सम्राट अकबर ने सन् १५८६ ई० उसे ग्रसित किया । उसकी मजार किस्तवार मे शीरकोट मे चोगान पर है ।

किस्तवार की उपत्यका अण्डाकार है । इसके मैदानी क्षेत्र के चारो ओर उत्तुंग पर्वतमाला है । वे घास तथा शूलपर्णी की पादपावली से आच्छादित है । घने चीड तथा देवदार के हरित वृक्षश्रेणी ने वनश्री की अद्भुत शोभा उपस्थित करती है । शिखर तुषार मण्डित रहता है । मैं यहाँ दो बार आ चुका हूँ । यह प्राकृतिक दृश्य देखते ही बनता है ।

किस्तवार की अधित्यका ६ मील लम्बी तथा ६ मिल चौडी है । भूमि उपजाऊ है । उपज अच्छी होती है । यहाँ के गाय सफेद तथा चिनार के वृक्षो से ढँके आकाश मे स्थित नाले की तरह लगते हैं । वदेवन नदी वर्दवन उपत्यका मे बहती चिनाब अर्थात चन्द्रभागा मे जाकर मिल जाती है ।

सम्राट जहाँगीर को किस्तवार की केसर काश्मीर की अपेक्षा अच्छी लगती थी । इसे हमरा बगदाद भी कहते हैं । क्योंकि यहाँ सैय्यद फरीदुद्दीन बगदादी तथा उनके पुत्र इशाहद्दीन की जियारतें हैं । श्रीवर ने (जैन : १: ४३) तथा जोनराज ने पुन: उल्लेख श्लोक ३१३ में किया है ।

(३) द्वारेश=द्वारपती । द्रष्टव्य—टिप्पणी श्लोक ७४ ।

(४) वाम पार्श्व : लिदर उपत्यका के पूर्वीय

अभिषिक्तस्ततो भट्टैः सभेरीशङ्खनिःस्वनम् ।
प्रणतानन्तसामन्तः सेवकानन्वजिग्रहत् ॥ ७९ ॥

७९. उसके पश्चात भट्टों[1] ने भेरी-शंखनाद पूर्वक अनन्त सामन्तों द्वारा कृतप्रणाम उसे अभिषिक्त किया और उसने सेवकों को अनुग्रहीत किया।

असामान्यो लवन्येन्द्रान् स वास्तव्यकुटुम्बिताम् ।
निन्ये क्षोणीपरिवृढो रूढभारोढिमादिशन् ॥ ८० ॥

८० असामान्य वह पृथ्वीपति लवन्य-प्रधानों को एक कुटुम्बी बना दिया और प्रवृद्ध कार्यभार को उनमे वितरित कर दिया।

माल्लेर्बलाढ्यचन्द्रस्य बलिनो लहरेशितुः ।
हरतः श्रीनगर्यर्धस्वाम्यं न प्राभवत्तु सः ॥ ८१ ॥

८१ बली, लहरेश माल्लि[1] बलाढ्यचन्द्र,[2] जब आधे श्री नगर[3] का अपहरण कर रहा था, उस समय उसका सामना करने मे राजा असमर्थ रहा।

अंचल मे खोपुर पीर परगना है। वाम पार्श्व का अर्थ ही होता है बायी तरफ। वाम पार्श्व का उल्लेख लोकप्रकाश में भी मिलता है। इस क्षेत्र के नागो (झरनो) के पास कहीं-कहीं अलंकृत शिलाखण्ड तथा खण्डित मूर्तियाँ मिल जाती हैं।

पाद-टिप्पणी :

७९ (१) भट्ट : यह शब्द वीरो, सैनिको तथा ब्राह्मणो भट्ट जाति के लिये प्रयुक्त किया गया है। जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि भट्ट लोग प्रबल हो गये थे। डामर तथा लवन्यो के समान वे भी आतंक के कारण बन गये थे।

पाद-टिप्पणी :

८० (१) वास्तव्य कुटुम्बिता : वाक्यात-ए-काश्मीर ने इसका अर्थ कृषि उपयोगी भूमि मे आबाद होना दिया है।

(२) रूढ़ या रोढ़ि : यह बेगार प्रथा थी। राजा ने लवन्यो को भूमि पर आबाद कर उनपर राजकीय बेगार लगा दिया था। उक्त पद मे रूढ़ या रोढ़ि का अर्थ यदि बेगार शब्द से लगाया जाय तो अनुवाद एवं अर्थ मे अन्तर पड जायगा। उसका अभिप्राय होगा कि लवन्यो पर उसने सहायक सैनिक प्रथा तुल्य उन्हें सैनिक रखकर सैनिक आवश्यकता मे समय उनसे सैनिक देने का नियम बनाया। इस प्रथा के कारण राजा का सैन्य व्यय कम हो गया। डामरो की सैन्य शक्ति इस प्रथा से बढना अवश्यम्भावी था। राज्य मे दो प्रकार के सैनिक संघटन हो गये। एक राजकीय सैनिक तथा डामरो के सैनिक। डामरो के सैनिको पर राजा का नियन्त्रण नही था। राजपूताने के जागीरदारो के समान सैनिक रख सकते थे। समय पर राजा की सहायता करना उनका कर्तव्य था किन्तु वे बाध्य नही किये जा सकते थे।

लार्ड वेलेसूली ने भारत मे सहायक सन्धि सब-सिडियरी एलायेन्स की प्रथा जारी की थी। उसने भारतीय राजाओ की रीढ तोड दी। भारतीय राजा पंगु हो गये और समय आते ही अंग्रेजो के सम्मुख सर तक झुका दिये। काश्मीर की प्रथा सहायक सेना की प्रथा नहीं थी किन्तु परिणाम दोनो का एक ही हुआ। भारत के राजा शक्ति से हीन हो गये और काश्मीर के राजा देश मे गठित इस प्रकार के सैन्य दल से स्वयं नष्ट हो गये।

पाद-टिप्पणी :

८१. (१) 'माल्ले' मानकर अनुवाद किया गया है। यदि 'माल्लेः' माना जाय तो वह बलाढ्यचन्द्र के

पुण्यं राशीभवन्मूर्तमिवाथ स्वाभिधाङ्कितम् ।
बलाढ्यचन्द्रः सान्द्रौजा नगरान्तर्मठं व्यधात् ॥ ८२ ॥

८२ महान ओजस्वी बलाढ्यचन्द्र ने नगर मध्य राशीभूत; मूर्तिमान् पुण्य सदृश स्वनामांकित मठ[1] निर्मित किया ।

कोऽयं खशो मृदुः कश्चिदस्माभिरभिषिच्यते ।
अमन्त्रयन्निदं भट्टा राज्ञावगणिताश्चिरात् ॥ ८३ ॥

८३ राजा द्वारा अपमानित भट्ट[1] लोग चिरकाल तक मन्त्रणा करते रहे कि हम लोग किसी मृदु खश (नरमस्वभाव खश) को अभिषिक्त कर रहे हैं ।

न भट्टोऽहं न भट्टोऽहं न भट्टोऽहमिदं वचः ।
अश्रूयतापि भट्टेभ्यो निर्दिष्टे भट्टलुण्ठने ॥ ८४ ॥

८४ भट्टों को लूटने का निर्देश होने पर 'मैं भट्ट नहीं हूँ'—'मैं भट्ट नहीं हूँ'[1] यह बात भट्टों से सुनायी पड़ी ।

सेनादि के अर्थ मे आ जायगा । जिसके द्वारा वह नगर का हरण कर रहा था ।

(२) बलाढ्यचन्द्र : वाकयाते कश्मीर मे बलाढ्चन्द (बलाढ्यचन्द्र) को गगचन्द (गर्गचन्द्र) का तथा गर्गचन्द को मलचन्द (मल्लचन्द्र) का पुत्र लिखा गया है ।

लहरेश का अर्थ यहाँ लहर का राजा होता है । लहर वर्तमान लार परगना है । (स्तीन : ५ : ५१ एन.)

(३) श्रीनगर : बलाढ्यचन्द्र ने राजा के रहते हुए आधे श्रीनगर पर अधिकार कर लिया । श्रीनगर का प्रथम बार उल्लेख जोनराज ने किया है । मुसलिम काल मे श्रीनगर के स्थान पर नगर को कश्मीर नाम से ही अभिहित किया जाने लगा था । यही कारण है कि जोनराज ने राजधानी, नगर आदि शब्द का प्रयोग श्रीनगर के लिये किया है । अगले श्लोक मे ही वह श्रीनगर के स्थान पर केवल नगर शब्द का प्रयोग किया है (श्लोक ८२) । श्री हिन्दू धर्म की देवीस्वरूप मानी जाती है अतएव मुसल्मान श्री शब्द का उच्चारण करने मे सकोच करते थे । यही बात काशीराज के सम्बन्ध मे हुई । काशीराज की राजधानी रामनगर है । बनारस के मुसलमान उसे रामनगर न कहकर 'रामनगर' कहते थे ।

पाद-टिप्पणी :

८२. (१) बलाढ्य मठ : वर्तमान बलन्दियर मुहल्ला प्राचीन बलाढ्य मठ का स्थान है । पुराने छठवें पुल के समीप श्रीनगर मे यह स्थान है । वह दिदयर के ऊपर है । स्तीन का मत है कि सम्भवत: बलन्दिर यह शब्द बलाढ्य मठ शब्द का अपभ्रंश है (स्तीन : भाग २ : ४०७) ।

पाद-टिप्पणी :

८३. 'कश्चित्' मानकर अनुवाद किया गया है । 'कच्चित्' मानकर अनुवाद करने पर केवल प्रश्नवाचक बन जायगा—'क्या मृदु खश अभिषिक्त कर रहे हैं ?'

(१) भट्ट=वर्तमान काश्मीरी बट ब्राह्मण ही पुरातन भट्ट ब्राह्मण हैं । 'बट' मुसलिम भट्ट ब्राह्मणों की सन्तानें हैं ।

पाद-टिप्पणी :

८४. (१) न भट्टोऽहं : 'मैं भट्ट नहीं हूँ । मैं भट्ट नहीं हूँ ।' यह पुकार उस समय की है जब ब्राह्मणों पर मुसलमानो का घोर अत्याचार उन्हे मुसलिम बनाने के लिये होने लगा था । यह स्थानीय भाषा मे—'न बट्ट'—'न बट्ट' कहा जाता है । यह पुकार हैदरशाह के समय (१४७०–७२) पुनः सुनायी पडी थी (श्रीवर : रा० : २ : १२५) ।

तदैव विमलाचार्यः शाके खेपुनवाङ्किते ।
षड्द्रिनन्दमासस्य मलभ्रममवारयत् ॥ ८५ ॥

८५ उसी समय शक सम्वत् ६५० में विमलाचार्य ने ६७६ वें मास का मल[1] भ्रम दूर किया।

निर्ममे निर्ममो राजपुरीं राजलोकं तथा ।
राजदेवः स राजेन्दुराजन्मार्जितमङ्गलः ॥ ८६ ॥

८६ यशस्वी निर्मम राजेन्दु, उस राजदेव ने राजपुरी[1] एवं राजलोक[2] का निर्माण कराया।

अहानि सप्तविंशानि त्रयोविंशांश्च वत्सरान् ।
मासत्रयीं च राजा स क्ष्मां रक्षित्वा क्षयं ययौ ॥ ८७ ॥

८७ तेइस वर्ष ३ मास २७ दिन वह राजा पृथ्वी की रक्षा कर समाप्त हुआ।

पाद-टिप्पणी :

८५. (१) मल : मलमास—अधिक मास = एक चान्द्रमास मे यदि दो सक्रान्ति पड जाय तो उसे क्षय मास कहते हैं। जिस मास मे सक्रान्ति नही वह मलमास (अधिमास) कहा जाता है। कभी-कभी गणित के कारण मे भ्रम हो जाने से मलमास के ज्ञान मे भ्रम हो जाता है। सम्भव है उस वर्ष मलमास लगा होगा। विभिन्न गणितज्ञो की गणना के कारण भ्रम उत्पन्न हो गया होगा जिस भ्रम का निराकरण विमलाचार्य ने किया है।

विमलाचार्य : इस नाम के ज्योतिषशास्त्री की कोई रचना प्रकाश मे नही आयी है। उनका नाम भी ज्योतिष ग्रन्थो मे नही मिलता। अनुसन्धान का विषय है।

पाद-टिप्पणी :

८६. (१) राजपुरी : कल्हण ने राजपुरी शब्द वर्तमान राजौरी के लिये प्रयोग किया है। यहाँ खसो की आबादी थी और है। ह्वएनत्साग के समय काश्मीर के अधीन यह राज्य था। कल्हण ने इसका उल्लेख (रा० ६ . २८६, ३४८, ३५०, ३५१, ७ : १०५,२६७, ५३३, ५३९, ५४१, ५४६, ५७४, ५७८, ५८९, ९७२, ९७६,-९७८, ९९१, १०१७, ११५०, १२५६, १२९३; ८: २८९, ८८४, १२३६, १२७१, १४६३, १४६५, १६३२, २०४४, २०४६), जोनराज (९५, ९९, ७२९, ८३१), श्रीवर (जैन : १०७, १ : ३ : ४०, १ : ७ : ८०, त : २ : १४, १४५ त : ३ : २००, ३१३; ४ : ३९८, ४१०, ४११, ४९३, ५४९, ५५१, ५५४, ५५५, ५६९, ५८३) ने किया है।

यहाँ राजपुरी का अर्थ उक्त वर्णित राजपुरी से नही बैठता। राजपुरी नगर का निर्माण तो हुआ ही था। पुराना नगर था। सम्भव है कि अपने नाम पर राजा ने नगर बसाया, उसके बसाने के कारण राजपुरी अर्थात् राजा का पुर नाम प्राप्त किया। राजपुरी या पुर का अर्थ ही होता है राजा का नगर।

(२) राजलोक : पंजथ (पंचहस्त) के दक्षिण एक सुन्दर उपत्यका खुलती है। उपत्यका अपने मुख्य ग्राम रजुल नाम से प्रख्यात है। यह शब्द राजलोक का अपभ्रंश है। रजुल ही राजलोक प्रतीत होता है। इस उपत्यका से तीन मील पर नाग वासुकी है। पंचहस्त का उल्लेख नीलमत पुराण मे मिलता है—

रसातलं जगामासौ पुनस्तामेव कश्यपः ।
प्रसाद्योत्यज्जयामास पञ्चहस्तसमीपतः ॥
२५५ = ३४५,३४६

× × ×

गव्यूतिमात्रमायाता कृतघ्नी ता ददर्श वै ।
सा च दृष्टा कृतघ्नेन ह्यन्तर्धानं गता पुनः ॥
२५७ = ३४७

LIBRARY 61913

सङ्ग्रामदेवस्तत्पुत्रो गोत्रसुत्रामतां भजन् ।
त्रासमासूत्रयद्राजसिंहः शात्रवदन्तिनाम् ॥ ८८ ॥

संग्रामदेव : (सन् १२३६-१२५२ ई०)[1]

८८ पृथ्वी का इन्द्र अर्थात पृथ्वीपति होकर, उसका पुत्र राजसिंह संग्रामदेव ने शत्रुरूपी गजों में त्रास उत्पन्न किया।

पाद-टिप्पणी :

८८. (१) अभिषेक काल श्रीदत्त ने कलि० ४३३७ = शक ११५८ = लौ० ३८१२ = सन् १२३६ ई०, राज्यकाल १६ वर्ष १० दिन तथा डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया मे सन् १२३५ ई० दिया है। आइने-अकबरी ने राज्य काल १६ वर्ष १० दिन दिया है।

जोनराज संग्रामदेव के १६ वर्षों के राज्य काल का वर्णन केवल १७ श्लोको मे किया है। यदि श्लोक ८८ राज्याभिषेक तथा श्लोक १०४ मृत्यु सम्बन्धी छोड़ कर दिये जायँ तो १५ श्लोको मे १६ वर्ष के इतिहास को लिखने का प्रयास जोनराज ने किया है। राजा संग्राम के सन्दर्भ मे कुछ ऐतिहासिक घटनाओ के वर्णन का प्रयास किया गया है।

जोनराज के वर्णन से प्रतीत होता है—सूर्य राजा का अनुज था। सूर्य के अतिरिक्त और किसी वंशज का उल्लेख जोनराज ने नही किया है। अनुज सूर्य को राजा ने अपना प्रतिनिधि बनाया था। किन्तु सूर्य द्रोह पथ का अनुसरण करने लगा। श्लोक ९० मे वह लोहर के राजा चन्द्र का नाम देता है।

सूर्य लहर के राजा के पास सहायता हेतु गया। षड्यन्त्र एवं द्रोह का पता चल जाने के कारण सूर्य भयभीत हो गया था। सूर्य के साथ संघर्ष की बात श्लोक ९१ मे जोनराज ने लिखी है। श्लोक ९२ महत्वपूर्ण है। इससे पता चलता है कि धामाला का राजा तुंग था। तुंग ने सूर्य की सहायता की थी। वह राजा संग्रामदेव से पराजित हो गया था। श्लोक ९३ मे राजा द्वारा सूर्य का वध कर दिया उल्लेख किया गया है।

जोनराज कल्हण के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण सूचना देता है। कल्हण के वंशज, कल्हण की प्रसिद्धि के कारण, कल्हण वंशज कहे जाते थे। वे शक्तिशाली हो गये थे। कल्हण वंशज इतने बली हो गये थे कि राजा काश्मीर मण्डल त्यागकर राजपुरी मे शरण लिया था (श्लोक ९४-९५)। प्रतीत होता है कि कल्हण वंशजो के हाथ राजशक्ति नही आई उस पर डामरो का अधिकार हो गया (श्लोक ९६-९७)। राजा पुनः काश्मीर मण्डल मे आया (श्लोक ९८)। उसने राज्य जीत कर ब्राह्मण कल्हण वंशो की रक्षा की (श्लोक ९९)।

जोनराज ने संग्रामराज द्वारा निर्मित द्विजो के निवास हेतु विजयेश्वर मे २१ शालाओ के निर्माण की बात की है (श्लोक १००)। किन्तु कल्हण वंशज राजा से द्वेष करने लगे। कल्हण पुत्रो द्वारा राजा मार डाला गया (श्लोक १००-१०२)। जोन० राज संग्रामदेव के समकालीन कवि यशस्क पण्डित का उल्लेख करता है (श्लोक १०३)।

समसामयिक घटनायें : सन् १२३६ ई० मे अल्तमश ने खोखरो पर आक्रमण किया। इसी वर्ष वह मर गया। सन् १२३६ ई० मे रुक्नुद्दीन फिरोज दिल्ली का बादशाह हुआ। सन् १२३७ ई० मे उसकी बहन रजिया बेगम उसे हटाकर दिल्ली के तख्त पर बैठी। वह मार डाला गया। सन् १२३७ ई० मे इस्माइलियो का विद्रोह दबाया गया। तातारों ने रूस पर आक्रमण किया। सन् १२३९ ई० मे अयाज का विद्रोह पंजाब मे शान्त किया गया। इसी समय मारवर्मन सुन्दर पाण्डय का देहान्त हो गया। रजिया अल्तूनिया द्वारा बन्दी बना ली गयी। उसने अल्तूनिया से विवाह कर लिया। रजिया का भाई बहराम शाह दिल्ली का बादशाह बन बैठा।

विस्रम्भात् सूर्यमनुजं चक्रे प्रतिनिधिं स यम्।
कुचक्रिकः स भोगेभ्यो लुभ्यन् द्रोहमचिन्तयत् ॥ ८९ ॥

८९. उसने विश्वास पूर्वक जिस अनुज सूर्य को प्रतिनिधि[1] बनाया वह कुचक्री भोग की अभिलाषा से द्रोह का चिन्तन करने लगा।

रजिया सन् १२४० ई० मे अपने पति अलतूनिया के साथ मार डाली गयी। सुनकर ने विद्रोह किया। सन् १२४१ ई० मे सुनकर की मृत्यु हो गयी। मुगलो ने लाहौर विजय किया। इसी समय जैसलमेर में राजा छाछदेव की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर करणसिंह राजा हुआ। सन् १२४२ ई० में बहराम राज्यच्युत कर दिया गया। तत्पश्चात् अलाउद्दीन मसऊद ने राज्य किया। वह रुकनुद्दीन का पुत्र था। सन् १२४३ ई० मे गुजरात के राजा भीम की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर बीशलदेव गुजरात का राजा बनाया गया। सन् १२४४ ई० में कटक के हिन्दुओ द्वारा बंगाल के तुघरिल की पराजय हुई। इसी वर्ष मुगलो ने बंगाल पर तिब्बत की ओर से आक्रमण किया। सन् १२४५ ई० मे मुगलो ने भारत पर आक्रमण किया। वे मुलतान तथा ऊच तक पहुँच गये थे। सन् १२४६ ई० मे मसूद राज्यच्युत कर दिया गया। नासिरुद्दीन महमूद दिल्ली का बादशाह हुआ। सन् १२४७ ई० मे नासिरुद्दीन ने खोखरो से पंजाब वापस लिया। सन् १२४७–१२४८ ई० मे बलबन ने दोआब मे विद्रोह शान्त किया। सन् १२४८ ई० मे पाँचवाँ क्रुसेड सन्त लुडस के नेतृत्व में किया गया। सन् १२४९ ई० मे बलवन ने मेवातो का विद्रोह शान्त किया। सन् १२५१ ई० मे जटावर्मन सुन्दर पाण्ड्य राजा हुआ। सन् १२५१–१२५२ ई० मे बलबन ने मालवा पर आक्रमण किया। उसने चन्देरी तथा नरवर के राजाओ को परास्त किया।

पाद-टिप्पणी :

८९. (१) प्रतिनिधि : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति मे प्रतिनिधि का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। उसकी गणना मन्त्रियों मे होती थी। शुक्राचार्य ने १० मन्त्रियो मे दूसरा स्थान प्रतिनिधि को दिया है। प्रथम स्थान पुरोहित और दूसरा प्रतिनिधि का था। इसका कार्य राजा की अनुपस्थिति में राजा के नाम से सब कार्य करना था। वयस्क होने पर युवराज को यह पद मिलता था। जातको मे उल्लिखित 'उवराजा' का पद शुक्र के प्रतिनिधियो तुल्य था। किन्तु मनु प्रतिनिधि नहीं अपितु प्रधान मन्त्री (अमात्य मुख्य) को राजा की अनुपस्थिति मे कार्य सम्हालने वाला मानते हैं (मनु० : ७ : १४१)।

प्रतिनिधि का उल्लेख सामन्तो के सन्दर्भ मे भी मिलता है। सामन्तो के दरबार मे सम्राट किंवा राजा की हित-रक्षा के लिये सम्राट का प्रतिनिधि रहता था। यह वर्तमान रेसिडेण्ट, किंवा पोलिटिकल एजेण्ट के समान थे। सामन्त राज्यों को नियन्त्रण एवं संरक्षण का अधिकार था। सुलेमान सौदागर का कथन है कि सामंतगण प्रतिनिधियो का सम्मान सम्राट किंवा राजा के समान करते थे। बनवासी के सामंत शासक वैरोप ने राष्ट्रकूट सम्राट तृतीय अमोघवर्ष (सन् ८५० ई०) के राज्यसभा मे गणपति नामक व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि रखा था (एपि० इ० ६ : ३३)।

प्राचीन गणतन्त्र राज्यो ग्रीस तथा भारत मे प्रतिनिधि शासन पद्धति मे जनता प्रतिनिधि निर्वाचित करती थी। परन्तु वह गणतन्त्र छोटे होते थे। नगर राज्य किंवा मण्डल राज्य तक ही यह प्रणाली प्रचलित थी।

प्राचीन काल मे युवराज को राजा नियुक्त करता था। रामायण तथा महाभारत मे इस प्रकार के प्रसंग बहुत मिलते है। जोनराज ने युवराज नियुक्ति की भी बात मुसलित शासन काल मे लिखी है। परन्तु

श्रुतद्रोहो महोभर्त्रा भीतः स लहरेशितुः ।
चन्द्रस्य मण्डलं सूर्यः प्राविक्षदुदयेच्छया ॥ ९० ॥

९० महीपति के द्रोह का वृतान्त सुन लेने पर, भय भीत वह सूर्य[1] उदय की इच्छा से लहरेश[2] चन्द्र[3] के मण्डल मे प्रविष्ट हुआ।

दारुणे रणकाले स सूर्यं चन्द्रान्वितं तदा ।
स्वर्भानुरिव भूभानुश्चित्रं सममभीमिलत् ॥ ९१ ॥

९१ उस दारुण रण काल मे स्वर्भानु (राहु) की तरह भूभानु ने चन्द्रान्वित सूर्य को साथ ही गृहीत किया।

शमालाधिपतिस्तुङ्गः सूर्यं पार्श्वं नयन्मदात् ।
कृतयात्रेण राज्ञाथ नोचभावमनीयत ॥ ९२ ॥

९२ शमालाधिपति तुङ्ग जबकि सूर्य को मद से अपने पार्श्व मे ले जा रहा था, उसी समय राजा ने प्रयाण कर उस (तुग) को दबा दिया।

मार्गैः स वीन्दुरविभिश्चौरवद्रजनौ भ्रमन् ।
विटत्यक्तस्ततः सूर्यो बद्ध्वा राज्ञा व्यपाद्यत ॥ ९३ ॥

९३ रजनी मे सूर्य चन्द्र रहित मार्ग से चोर की तरह जाते हुए विटों[1] द्वारा परित्यक्त वह सूर्य राजा द्वारा बाँध कर मरवा दिया गया।

वहाँ उसने 'प्रतिनिधि' शब्द का उल्लेख किया।

राजा का भाई सूर्य था। उस पर विश्वास कर अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था। उसका कार्य राजा जिन कार्यों को नही देख सकता था अथवा उसकी अनुपस्थिति मे राजतुल्य कार्य राजा के प्रतिनिधिस्वरूप करना था।

पाद टिप्पणी

९० (१) सूर्य सूर्य के च द्रमण्डल म प्रवेश कर उदय प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है। यह श्लिष्ट है। सूर्य चन्द्रमण्डल म प्रविष्ट होकर पुन उदित होता ही है। सूर्य यहाँ सग्राम का भ्राता तथा च द्र वलाध्य है। जोनराज ने उत्तम काव्य चित्रण किया है।

(२) लहर श्री जोनराज ने पुन लहर का उल्लेख (१६७-१६८) तथा श्रीवर (जैन ४ ३४७ २ १२, ५१) ने किया है—पाद टिप्पणी श्लोक १६७ द्रष्टव्य है। क्षेमे द्र के अनुसार लहर एक विषय था (लोक० पृष्ठ ६०)।

(३) चन्द्र यह शब्द श्लिष्ट है। च द्र का अर्थ च द्रमा तथा च द्रडामर दोनो यहाँ लगाया गया है।

पाद टिप्पणी

९३ (१) विट काश्मीरक कवि दामोदरगुप्त कृत काव्य कुट्टनीमतम् मे विट का विशद वर्णन किया गया है। उसमे विट को कामुक लम्पट, वेश्यागामी, प्रेमियो के स देशवाहक रूप म चित्रित किया गया है। वह वेश्या तथा सु दरी स्त्रियो से उनके प्रेमियो के मध्य स देशवाहक का कार्य करता है। विषय भोग म विट अपनी सम्पत्ति का नाश कर देता है। अ त मे धूर्त बन जाता है। प्रेमी तथा प्रेमिका को एक को दूसरे के स्थान पर ले जाने की व्यवस्था करता है। उन्ह अभिगमन के लिये प्रेरित करता है।

स्वलक्ष्मीं रक्षितुं साक्षात्तस्मिन्नार्तक्षणे प्रभौ ।
अकारयन्नहिभयं स्तेनाः कल्हणनन्दनाः ॥ ९४ ॥

९४ उस क्षण में स्व आर्त लक्ष्मी की रक्षा के लिये समुद्यत प्रभु (राजा) में स्तेन[1] कल्हण-नन्दन[2] सर्प का भय उत्पन्न कर दिये थे ।

गोत्रजेषु बलिष्ठेषु नष्टाशः सोऽथ भूपतिः ।
शिष्टमिष्टं च शरणमगाद्राजपुरीपतिम् ॥ ९५ ॥

९५ (कल्हण) वंशजों के बलिष्ठ हो जाने पर निराश वह भूपति शिष्ट (सज्जन)—इष्ट (प्रिय) राजपुरी[1] पति की शरण में गया ।

विटों के चार मुख्य लक्षण हैं । वह वेश्योपचार मे कुशल होता है । मधुरभाषी होता है । गीतप्रिय, कविताप्रिय, रागयानुसार पदों को कहने में दक्ष होता है । रसमय गीतों से कामुकों की कामभावना उत्तेजित करता है । वाक् प्रलोभन से चित्त को हरने का प्रयास करता है । उसका तृतीय गुण—ऊहा-पोह मे दक्ष होता है । चतुर्थ गुण वाग्मी होता है । शब्दजाल मे फँसा कर अपनी इच्छानुसार काम करा लेता है । पवित्र एवं पुण्यात्मा व्यक्ति को भी अपवित्र एवं पतित करने मे सफलता प्राप्त करता है । किसी को भी आचरण-भ्रष्ट करने मे उत्साहित होता है । विट का लक्षण साहित्यदर्पण मे दिया गया है :—

वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिण कवि ।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥
(२४ . १०४)

कलाविलास मे क्षेमेन्द्र ने विट लक्षण दिया है :

भक्षित-निज-बहुविभवाः पर-
विभव-क्षपण-दीक्षिताः पश्चात् ।
अनिशं वेश्यावेशः स्तुविमुखा
मुखा विटाश्चिन्त्याः ॥

पाद-टिप्पणी :

९४. (१) स्तेन : चोर : मनुस्मृति (७ : ८३) ने चोर के अर्थ मे ही इस शब्द का प्रयोग किया है ।

(२) कल्हण-नन्दन : यहाँ पर कल्हण के वंशजो तात्पर्य है । जोनराज ने कल्हण वंशजों के लिये 'काल्हणि' (श्लोक ९९), 'काल्हण' (श्लोक १०१) तथा 'कल्हणात्मज' शब्दों का प्रयोग किया है ।

पाद-टिप्पणी :

९५. (१) राजपुरी : चिंगस के उत्तर राजौरी पडता है । सडक का मार्ग जम्मू से अखनूर, नौशेरा, चिंगस होते राजौरी पहुँचता है । जम्मू पूंछ सडक पर है । यह सडक लगभग २०० मील लम्बी है । अखनूर, चौकी चूरा, ठण्डापानी, नौशेरा राजौरी से मीण्डर होती पूंछ तक पहुँचती है । जम्मू से लगभग १०० मिल दूर स्थित है, प्राचीन नगर है । पुरानी मुगल सडक या रोड पर स्थित है । यहाँ पर मुगल काल की सराय अभी तक कुछ ठीक हालत मे खडी है । काश्मीर का पश्चिमी भाग पाकिस्तान के पास चले जाने के पश्चात् पूंछ पहुँचने के लिये जम्मू से इसी मार्ग से जाया जाता है । यहाँ की कंधियाँ, लकडी का सामान, घी, अखरोट एवं बनफसा प्रसिद्ध है । इस समय हाई स्कूल तथा अस्पताल है । कुछ समय तक नगर पाकिस्तान आक्रमकों के अधिकार मे चला गया था । युद्ध के कारण उजड गया था । वहाँ पर लोग पुनः आबाद हुए हैं । यहाँ से एक मार्ग बहराग गल्ला से होता सूपियान काश्मीर को जाता है । पुराने मुगल मार्ग की मरम्मत हो गयी है । राजौरी के दो तरफ नदियाँ बहती हैं । इसका रूप त्रिकोणीय हो गया है । शिलानी पर नया पुल बना है । वह मुगल मार्ग तथा पूंछ जाने वाले मार्ग को जोडता है । डाक बँगला के समीप डोगरा, राजाओं द्वारा निर्मित झूला पुल है । यह पुल मुगल मार्ग तथा राजौरी नगर

से सम्बन्ध स्थापित करता है। थिलानी पुल के पूर्व यही एक मात्र साधन मुगल मार्ग तथा राजौरी को जोडने का है। थिलानी पुल से एक फरलाग ऊपर नियार नदी एक दूसरी नदी से मिलती है। जिसे सक्तो नाला कहते हैं। नगर के दक्षिण दिशा मे एक नदी है। सक्तो नदी के तट से होता मार्ग पूछ तक गया है। वाम भाग वाली नदी मे यथेष्ट जल रहता है। राजौरी से पूछ तक शाली की खेती होती है। नदी तट पर कहीं-कहीं घाट बने हैं। घाटो पर मुझे ५ मन्दिर तथा मसजिदें दिखायी दी। डाक बगला तथा नगर के बीच नदी के मध्य द्वीप पर एक बडा मन्दिर बना है। मन्दिर के साथ ही निवास के लिये एक मकान बना है। बडे मन्दिर के पास एक छोटा मन्दिर भी बना है। दोनो मन्दिर भग्नावस्था मे है। उन पर पेड उग आये है। वर्षाऋतु मे मन्दिर मे जाना सम्भव नही होता। नदियो के तटो पर दोनो ओर मकान बने है। वे दूर से काशी के घाटो के समान लगते हैं। नगर पुराना है। गलियाँ सँकरी हैं। नगर निर्माण तथा विकास के कारण नगर का रूप बदल रहा है। राजौरी अचल का एक भाग पाकिस्तान तथा दूसरा हिन्दुस्तान मे है। पाकिस्तान की सीमा यहाँ से दूर पर है। मुसलिम जनता यहाँ से पाकिस्तान चली गयी है। पाकिस्तान के हिन्दू यहाँ आकर आबाद हो गये है। उनकी आबादी यहाँ अधिक है। जहागीर अपनी आत्मकथा मे लिखता है -

'बुधवार ८ वीं को राजौर मे पडाव हुआ। यहाँ के लोग पूर्वकाल मे हिन्दू थे और वहाँ के जमीदार राजा कहे जाते थे। सुलतान फिरोज ने इन्हे मुसलमान बनाया। ये अब भी राजा कहलाते हैं। अभी तक इनमे मूर्खता काल की प्रथाएँ बची हुई हैं। इनमे एक यह है कि जिस प्रकार हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति के साथ सती होती हैं उसी प्रकार यहाँ की स्त्रियाँ अपने पतियो के साथ कब्र मे गाड दी जाती है। हमने सुना कि अभी इधर ही एक दस-बारह वर्ष की लडकी को उसके इसी अवस्था के पति के शव के साथ गाड दिया है। यह भी है कि जब किसी दरिद्र मनुष्य की लडकी होती है तो उसे गला घोटकर मार डालते हैं। ये हिन्दुओ से सम्बन्ध करते हैं और लडकी लेते-देते हैं। लेना तो अच्छा है पर देना तो ईश्वर न करे। हमने आज्ञा दी कि अब से वे ऐसा न करे और जो भी ऐसा करेगा उसे प्राणदण्ड दिया जायेगा। यहाँ एक नदी है उसका जल वर्षाऋतु मे विषैला हो जाता है। यहाँ के बहुत से आदमियो का घेघा निकल आता है और पीली तथा निर्बल हो जाते हैं। राजौरी का चावल काश्मीर के चावल से बहुत अच्छा होता है। यहाँ पहाडियो के तलहटी मे सुगन्धित स्वत. लगे हुए बनफसा के पौधे बहुत है।' (६९०-६९१)

राजौरी पीर-पंजाब पर्वतमाला के मध्यवर्ती भाग के दक्षिण दिशा मे स्थित है। तोही नदी तथा उसके शाखा नदियो द्वारा सिंचित भाग का नाम राजौरी है। काश्मीरी नाम राजवीर है। राजपुरी अर्थात राजौरी से काश्मीरी राज्य का बहुत ही निकट राजनीतिक सम्बन्ध रहा है। एक स्थान का राजनीतिक स्थान दूसरे स्थान से प्रभावित हुआ है।

सन् १८४६ मे उसके वश से राजा गुलाबसिंह ने राज्य अपने वश मे लिया।

ह्वेनत्साग के पर्यटन काल मे राजौरी काश्मीर के अधीन था (सियूकी : १६३)। रानी दिद्दा के राज्यकाल मे राजौरी स्वतन्त्र था। काश्मीर के दक्षिण मार्ग स्थान होने के कारण इसका भौगोलिक महत्व रहा है। काश्मीर के राजा सर्वदा इसपर शासन करने का प्रयास करते रहे हैं। अल्बेरूनी ने भी इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि मुसलमान व्यापारियो के काश्मीर मे व्यापार करने की यह अन्तिम मजिल है। (द्रष्टव्य : वाइन : ट्रेवेल . १ : २२५ तथा ड्रयू : जम्मू : १५५)

राजपुरी जिले का क्षेत्रफल करीब ४० मील होगा। इसके उत्तर मे पीर पचाल पर्वतमाला, पश्चिम मे पुछ, दक्षिण मे भीमवर तथा पूर्व मे रिहासी व

तस्मिन् दण्डधरे दूरं याते डामरफेरवः ।
अन्त्राण्यपि विशामाशुरशेषं रक्तपायिनः ॥ ९६ ॥

९६ उस दण्डधर (राजा) के दूर चले जाने पर, रक्तपायी डामर फेरुओं[1] ने प्रजाओं के आँतों[2] को भी निकाल लिया ।

राज्ञा सुमनसा त्यक्तं द्विजश्वस्पर्शदूषितम् ।
भोज्यं डामरडोम्भानां तद्राज्यान्नमभूच्चिरम् ॥ ९७ ॥

९७ सुमनस राजा द्वारा त्यक्त, द्विज[1]-श्व-स्पर्श दूषित, उसका राज्य रूपी अन्न चिर काल तक डामर डोम्भों[2] का भोज बना रहा ।

अकनूर हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी तक हिन्दू वंश का यहाँ शासन था। इसके पश्चात् काश्मीर के मुस्लिम राजा का पुत्र यहाँ राजा हुआ। ह्वेनत्साग पूंछ से राजौरी आया था। वह इस जिले का क्षेत्रफल चार हजार ली अथवा ६६७ मील देता है। यह क्षेत्रफल यदि रावी नदी तक का फैला क्षेत्रफल जोड दिया जाय तो बैठता है।

पाद-टिप्पणी :

९६ (१) फेरु : इस शब्द का पर्यायवाची पिशाच, शृगाल, राक्षस होता है। यहाँ पर पिशाच एवं शृगाल विशेषण ठीक बैठता है। शृगाल पशुओ का आँत निकाल-निकाल और नोच-नोच कर खाते हैं। पिशाच कच्चा मास खाते हैं। शृगाल कच्चा मांस खाते ही हैं। शृगाल अर्थ मे मालतीमाधव नाटक (५.१०) मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है। यही अनुवाद ठीक प्रतीत होता है।

(२) आँत : डामरो ने प्रजा को आर्थिक दृष्टि से चूस लिया। प्रजा की सम्पत्ति का शोषण किया। उपमा यहाँ बीभत्स हो गयी है। मनुष्य घात-प्रतिघात किंवा किसी अग के क्षय होने से जीवित रह सकता है। आत निकल जाने पर मर जाता है। आत खायी नही जाती। पशु-पक्षी भी पहले मृत के माम को खाते हैं, अन्त मे आँत निचोड़ते हैं। भक्षणीय पशुओं तथा पक्षियो का आत निकाल कर फेंक दिया जाता है। वह अखाद्य माना जाता है। डामरों ने इतना अधिक धन चूसा जितना वैसे नहीं चूसना चाहिए था।

पाद-टिप्पणी :

९७ (१) द्विज : 'द्विजैश्च' पाठ मान लेने पर द्विजो द्वारा परित्यक्त अर्थ होगा। अस्पृश्य द्वारा स्पृष्ट अन्न को जैसे द्विज त्याग देता है, और उसे डोम्बादि खाते है, उसी प्रकार उस राज्यरूपी अन्न को डामर डोम खाने लगे जिसे राजा ने त्याग दिया था।

(२) डोम्भ : काश्मीरी मे डोम्ब को 'दुम्ब' कहते हैं। संस्कृत शब्द डोम्भ का वह अपभ्रंश है। हिन्दी मे डोम कहते हैं। लारेन्स ने लिखा है कि ग्राम का यह वर्ग अन्य निम्न वर्गों से स्वभावतः अधिक चतुर होते है (वैली ३११)।

डुम अथवा डोम्ब या डोम काश्मीर मे ख्याति प्राप्त जाति बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक रही है। गावो मे वे काफी शक्ति रखते थे। गाँव का चौकीदार हमेशा डूम या डोम्ब रहता था। राज्य सरकार की ओर से चौकीदारो के अतिरिक्त वह फसल की भी देख भाल करता था। डोम्ब यद्यपि बहुत इमानदार नही माने जाते थे तथापि राज्य कोष जिसे वह तहसीलो से श्रीनगर के खजाने मे जमा करने के लिये लाते थे एक पैसा कभी इधर उधर नहीं हुआ था राजाओ एवं मुसलिम राज्य काल मे डोम्बो को गाँव वाले अच्छी दृष्टि से नही देखते थे। राज कर्मचारी होने के कारण सीधे-सादे गाँव वाले लोग उससे भयभीत रहते थे। डोम्बो के पश्चात गाँवो में बीसवी शताब्दी के उदय के पश्चात पडित लोग गाँव मे चौकीदारी पर भी लगाये जाने लगे। इससे

स्वमण्डले विशीर्णेऽथ परमण्डलमाविशन् ।
न कैरनुमतो राजा प्रत्यासन्ननवोदयः ॥ ९८ ॥

९८ स्वमण्डल के विशीर्ण हो जाने पर, पर मण्डल में प्रवेश करते हुए, राजा के समीपवर्ती अभ्युदय का किसी ने अनुमान नहीं किया।

प्रत्यागतो राजपुर्याः स रिपून् समरे जयन् ।
ब्राह्मण्यात् काल्हणीन् रक्षन् राज्यं पुण्यं च लब्धवान् ॥ ९९ ॥

९९ राजपुरी से प्रत्यागत, उसने समर में शत्रुओं को जीतते, ब्राह्मण होने के कारण कल्हणवंशियों की रक्षा करते, राज्य एवं पुण्य प्राप्त किया।

एकविंशतिशालं स श्रीविशालं विशांपतिः ।
गोद्विजानां निवासाय चकार विजयेश्वरे ॥ १०० ॥

१०० उस विशांपति[1] ने विजयेश्वर में गो एवं द्विजों के निवास हेतु श्रीसम्पन्न इक्कीस शालायें[2] बनवायीं।

डोम्बो को अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी। डोम्ब लोग अपने को काश्मीर मे हिन्दू राज्य की सन्तान कहते हैं। राजा ने अपने पुत्रो को समस्त उपत्यका मे फैला दिया था। अधिक सम्भावना यही है कि डोम्ब काश्मीर मे मूलतः शुद्र वंश के थे।

अल्बेरुनी ने डोम्ब जाति के विषय मे लिखा है। नवी शताब्दी के अरब लेखक इब्न खुर्दाज्बा ने भारत की डोम्ब (जम्ब) जाति का उल्लेख किया है। उनका पेशा संगीत, वाद्य एवं नृत्य था। अल्बेरुनी ने यह भी लिखा है कि डोम्ब बाँसुरी बजाते एवं गाते थे (अल्बेरुनी १ : १०)। कल्हण ने चाण्डाल एवं डोम्ब अर्थात् डोम का वर्णन (रा : ४ : ४७५, ५ : ३५४, ३५९, ३६१—३९६, ६ : ६९, ८४, १८२, १९२) किया है।

कल्हण ने डोम्ब एवं चाण्डाल जाति को काश्मीर के इतिहास मे प्रमुख भाग लेते हुए चित्रित किया है। राजा जयापीड के समय श्रीदेव चाण्डाल ने तत्कालीन छलपूर्वक काश्मीर के सिंहासन पर बैठने वाले जज्ज को रणभूमि मे मारा था (रा० ४ : ४७५)। राजा चक्रवर्मा (सन् ९३६–९३७ ई०) ने डोम्ब गायक रङ्ग को कारुपाली में गाने के लिए बुलाया था। डोम्ब काश्मीर मे एक गायक जाति थी। वे अपने गीत एवं वाद्य से जनता का मनोरञ्जन कर भी जीविकोपार्जन करते थे (रा० ५ : ३५४)। राजा की सभा मे रङ्ग के साथ उसकी सुन्दर कन्यायें हंसी तथा नागलता भी आयी थीं (रा० ५ : ३५९)। राजा ने हंसी तथा नागलता को अपने अन्तःपुर मे प्रवेश की आज्ञा दी थी और कालान्तर मे हंसी को महादेवी बना दिया था। डोम्बों को अक्षपटल आदि का कार्यस्थान भी दिया गया था (रा० : ५ : ३६१–३९६)। डोम्ब लोग शिकार खेलने मे पटु थे। वे राजाओ के साथ शिकार खेलने जाते थे। यद्यपि कुलीन समाज मे डोम्बो का संसर्ग अच्छा नही समझा जाता था (रा० : ६ : ६९, ८४, १८२)।

डोम्बों के नाम यथा श्री चन्द्रदेव, रङ्ग, हंसी, नागलता शुद्ध संस्कृत नाम हैं। उनका नाम कुलीनो के समान रखा जाता था। इससे प्रकट होता है कि उनका समाज मे स्थान था।

पाद-टिप्पणी :

१०० (१) विशांपति : काश्मीर के राजशासन का प्रकार समय-समय पर परिवर्तित होता

काल्हणप्रणिधीनां स द्विषां लुण्ठनकाङ्क्षिणाम् ।
चौराणामिव दीपोऽभूद् द्वेषणीयो महीपतिः ॥ १०१ ॥

१०१ द्वेषी लुंठनाकांक्षी काल्हण प्रणिधियों के लिये, चोरों को दीपक सदृश, वह महीपति, द्वेषणीय हो गया था।

शाखाक्रान्तदिगन्तः स सद्दुराशैर्दुराशयैः ।
कविकल्पद्रुमो राजा विच्छिन्नः कल्हणात्मजैः ॥ १०२ ॥

१०२ शाखाओं द्वारा दिशाओं में व्याप्त, कविकल्पद्रुम[1], वह राजा दुष्ट आशा एवं हृदय वाले कल्हण पुत्रों द्वारा विच्छिन्न कर दिया गया।

रहा है। प्रथम इकाई देश थी। उसके पश्चात् राज्य, तत्पश्चात् मण्डल, नगर, एवं सबसे छोटी इकाई ग्राम था। काश्मीर में विशय किंवा विषय, विष परगना कहा जाता था। लोकप्रकाश मे क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि २७ विषयो में काश्मीर राज्य विभाजित था (७७)। उसने १९ विष: किंवा विशो का नाम भी लोकप्रकाश मे दिया है।

वैदिककाल मे विषय, विश', विश्य एक समिति थी। समिति का अर्थ एक स्थान पर एकत्रित होना था। एक समिति जनसाधारण की 'विशः' थी। राष्ट्रीय सभा थी। वैदिककाल मे समाज जनो अथवा वर्गों मे विभाजित था। वर्गों के लोग 'विश' कहे जाते है। इसी से वैश्य शब्द निकला है।

यूनानी लेखकों ने राज एवं विश. को एक ही माना है। वे प्रत्येक राज के नागरिकों को विशः की सज्ञा देते हैं। सिन्ध तथा पंजाब के प्राय. सभी राजाओ के विषय मे उन्होंने यही लिखा है। भारतीय लेखकों उन्हें जनपद तथा देश कहते है (पाणिनि: ४ : १ : १६८–१७७)। लोकप्रकाश मे विषयो का उल्लेख पृष्ठ ६० पर दिया है।

(२) शाला : सङ्गीतशाला, रंगशाला, पाकशाला आदि का प्रचुर प्रयोग मिलता है। शाला का अर्थ एक कमरा, एक कक्ष किंवा एक हॉल होता है। शिशुपालवध (३ : ५०) तथा रघुवंश (१६ : ४१) मे उक्त अर्थों मे प्रयोग किया गया है।

कम्बुज तथा थाईलैण्ड के अपने भ्रमण मे मैंने सड़कों के पार्श्व मे बने स्थानो को देखा। वहाँ के लोग उन्हें शाला ही कहते थे (द्रष्टव्य : दक्षिण पूर्व एशिया)। यहाँ इक्कीस शालाओ के निर्माण का तात्पर्य यह है कि विजयेश्वर मे ब्राह्मणो के निवास हेतु राजा ने २१ कोठरियो युक्त धर्मशाला का निर्माण कराया। मठो तथा धर्मशालाओ मे प्रत्येक व्यक्ति के निवास हेतु कोठरियाँ बनाने की शैली आज भी प्रचलित है।

लोकप्रकाश मे क्षेमेन्द्र ने २० प्रकार की शालाओ का वर्णन किया है—चतु', गज, अश्व, गो, उष्ट्र, महिष, सूद, भोजन, पर्ण, धान्य, पाठ्य, सर्वायुध, आप्त, विनापाठ्य, व्याख्यायिक, गृह, श्मश्रु, त्रेताग्नि, यज्ञयाजन तथा यजन (पृष्ठ ११)।

पाद-टिप्पणी :

१०२. (१) कवि-कल्पद्रुम : जयसिंह से सग्रामदेव तक लम्बे १२४ वर्ष काल म काश्मीर मे ८ राजा हुए थे। केवल इस राजा द्वारा जोनराज ने कवियो के आदर-सत्कार की बात कही है। सग्रामदेव काल का ऐतिहासिक वर्णन पूर्वगामी राजाओ की अपेक्षा जोनराज ने अधिक किया है। किसी भी कवि की काव्यकृति जोनराज को उपलब्ध रही होगी। उसके आधार पर ही जोनराज ने कुछ घटनाओ का वर्णन किया है। दुःख है, किसी काव्य का उसने उल्लेख नही किया है।

नायकीकृत्य तं भूपं कविः पण्डितयश्शकः ।
स्वोक्तिहारलतां विद्वत्कण्ठभूपात्वमानयत् ॥ १०३ ॥

१०३ कवि पण्डित यश्शक[1] ने उस भूपति को नायक बनाकर अपनी उक्ति रूपी हारलता को विद्वानों का कण्ठाभरण बना दिया ।

षोडशाब्दान्दशाहानि स भुक्त्वा क्ष्मां व्यपद्यत ।
जगद्भद्रोऽथ पञ्चम्यां भाद्रेऽष्टाविंशवत्सरे ॥ १०४ ॥

१०४ जगद्भद्र (विश्वकल्याण-कारी) वह अट्ठाइसवें वर्ष (लौ० ४३२८=सन् १२५२ ई०) १६ वर्ष, १० दिन पृथ्वी का भोग कर भाद्र पंचमी को गत हुआ ।

रामदेवोऽथ तत्पुत्रो हत्वा स्वपितृघातकान् ।
पृथ्वीराजे प्रजाभारं सर्वमेव समार्पिपत् ॥ १०५ ॥

रामदेव (सन् १२५२-१२७३ ई०)[1]

१०५ उसका पुत्र रामदेव स्वपितृघातकों को मारकर, सब प्रजाभार पृथ्वीराज को समर्पित किया ।

पाद-टिप्पणी :

१०३ (१) यश्शक : यश्शक ने काव्य लिखा था । उसमे राजा को नायक बनाया था । उस काव्य के कारण राजा संग्रामदेव की स्मृति काश्मीर मे बनी रही । जोनराज ने इसी ओर संकेत किया है । इनकी कोई कीर्ति प्रकाश मे अब तक नही आयी है ।

कवि किसी की यश काया, उसकी स्मृति तथा उसका कार्य जीवित रखने मे सफल होते है । जोनराज ने यही भाव प्रकट किया है । इसी को और भी सुन्दर भाषा मे कल्हण ने अभिव्यक्त किया है .—

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः ।
येन याति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥
(रा० १ : ३)

पाद-टिप्पणी :

१०५ (१) श्रीदत्त राज्याभिषेक कलि ४३५३=शक ११७४=सन् १२५३ ई० = लौ० ४३२८ राज्यकाल २१ वर्ष १३ दिन । जोनराज ने स्वयं संग्रामदेव की मृत्यु का दिन, संवत आदि श्लोक १०४ मे दे दिया है ।

आइने-अकबरी भी यही राज्यकाल दिया है । राजा रामदेव की एक मुद्रा कनिंघम को मिली है । गलती से उसने राम के स्थान पर राज पढ़ा है । वह राम होना चाहिए (क्वाइन्स ऑफ मिडीवल इण्डिया : ४२) ।

रामदेव के २१ वर्षों का वर्णन जोनराज ने केवल ८ श्लोको मे समाप्त किया है । श्लोक संख्या १०५ तथा ११२ अभिषेक एवं मृत्यु-सम्बन्धी है । केवल ७ श्लोको मे २१ वर्षो के लम्बे राज्यकाल का वर्णन किया है । श्लोक १०६, १०७ मे कोट तथा मन्दिर जीर्णोद्धार, १०८ मे नि सन्तान होने का उल्लेख, १०९, ११० से लक्ष्मदेव को गोद लेने का वर्णन, १११ मे देवी समुद्रा द्वारा स्व-नामांकित मठ बनाने का उल्लेख किया है । उसने किसी भी ऐतिहासिक घटना एवं राज्य की स्थिति का वर्णन नही किया है । जोनराज के वर्णन से तत्कालीन काश्मीर के इतिहास पर कुछ भी प्रकाश नही पडता ।

समसामयिक घटनायें : सन् १२५१-१२५२ ई० मे बलबन ने मालवा पर आक्रमण किया । चन्देरी तथा नरवर के राजा को परास्त किया । सन्

लेदर्या दक्षिणे पारे सल्लरे स महीपतिः ।
स्वनामाङ्कं व्यधात्कोट्टं यशोराशिमिवापरम् ॥ १०६ ॥

१०६ उस महीपति ने लेदरी[1] के दक्षिण पार सल्लर[2] में अपर यशोराशि सदृश एवं नामांकित कोट[3] बनवाया।

१२५३ ई० बलबन अपमानित किया गया। सन् १२५४ ई० मे कटेहर पर सैनिक अभियान किया गया। सन् १२५५ ई० मे बलबन पुनः दिल्ली के सम्राट् का प्रियपात्र बना। सन् १२५६-१२५७ ई० मे कुतलुग खा (किशलू खा) का विद्रोह दबाया गया। बंगाल का सूबेदार जलालुद्दीन मसूद जानी सन् १२५८ ई० मे था। मुगलो ने इसी वर्ष पंजाब पर पुनः आक्रमण किया। मुगलो को पीछे हटना पड़ा। सरसेन साम्राज्य इसी समय समाप्त हो गया। सन् १२५९ ई० मे दोआबा मे व्याप्त अराजकता दूर की गयी। इसी वर्ष इज्जुद्दीन बलबन तथा अरसलन खा बंगाल के सूबेदार थे। काकतीय वंशजा रानी रुद्रदेवी दक्षिण (चालुक्य) की शासिका थी। सन् १२६० ई० मे मेओ को दण्ड दिया गया। सन् १२६१ ई० मे कुस्तुनतुनिया यूनानी सम्राटो ने पुनः प्राप्त किया। मुहम्मद तातार खा बंगाल का सूबेदार बना। सन् १२६४ ई० मे होयसल सोमेश्वर की मृत्यु हो गयी। इङ्गलैण्ड मे वरो के प्रतिनिधिगण प्रथम बार पार्लियामेन्ट मे उपस्थित होने के लिये आमन्त्रित किये गये। सन् १२६५ ई० म सिहल मे पराक्रमबाहु द्वितीय राजा हुआ। सन् १२६६ ई० मे महमूद की मृत्यु हो गयी। गयासुद्दीन बलबन दिल्ली का बादशाह हुआ। सन् १२६८ ई० मे मारवर्मन कुलशेखर पाण्ड्य राजा हुआ। इसी वर्ष भुवनेकबाहु राजा हुआ। सन् १२६८-१२६९ ई० मे पजाब मे व्याप्त अराजकता समाप्त की गयी। सन् १२७० ई० मे पजाब पुन दिल्ली के अधीन आ गया। यहाँ पर सूबेदार की नियुक्ति की गयी। सन् १२७१ ई० मे जैसलमेर के राजा कर्णसिह का देहान्त हो गया। सन् १२७२ ई० मे प्रथम एडवर्ड इङ्गलैण्ड का राजा हुआ। सन् १२७३ ई० मे आस्ट्रिया का प्रथम कुल जर्मनी का सम्राट् हुआ।

पाद-टिप्पणी :

१०६ (१) लेदरी : शुद्ध नाम लेदर्य किंवा लम्बोदरी है। आजकल लिदर कहते हैं। इसका उल्लेख नीलमत पुराण में आता है :

> रवेडः शपालः रवेरीशी लाहुरो लेदिरात्तथा।
> रवेडश्च करडाख्च, जपतश्च सयस्तथा ॥
> नील : ८८७ = १०५७

कल्हण ने इसका उल्लेख (रा० : १ : ८७) किया है। वह स्थान निर्धारण मे सहायक होता है।

लेदरी नदी वितस्ता की मुख्य सहायक नदी है। ऊर्ध्व सिन्ध उपत्यका के दक्षिणी क्षेत्र का जल ग्रहण करती है। वितस्ता मे विजब्रोर (विजयेश्वर) तथा अनन्तनाग के मध्य मिलती है। नदीतट पर पर्यटको का प्रसिद्ध स्थान पहलगांव आबाद है। स्थान रम्य तथा आकर्षक है। स्वाधीनता के पश्चात् स्थान की अभूतपूर्व उन्नति हुई है। यात्री यहाँ से अमरनाथ की यात्रा आरम्भ करते हैं। मैंने इस यात्रा का हृदयग्राही दृश्य यहाँ पर देखा है। सर्वप्रथम चाँदी की छड़ी चलती है। सहस्रो यात्री पैदल तथा टट्टुओ पर उसका अनुसरण करते हैं।

लिदर उपत्यका को लेदरी, लिदर आदि नामो से पुकारते हैं। यह दच्छुनपोर जिला का अन्तिम अंचल है। पहलगांव के समीप लिदर उपत्यका दो भागो मे विभाजित हो जाती है। इस स्थान पर मामल ग्राम है। काश्मीरी शैली का यहाँ एक मन्दिर है। अमरनाथ यात्रा के समय यहाँ दर्शन एवं पूजा करने आते हैं। वह मन्दिर एक जलस्रोत के तट पर है। अमरेश्वर कल्प माहात्म्य मे इसे अम्मेश्वर कहते हैं।

प्रमादाद्भङ्गमानीतः शमालाविजयोद्यमे ।
तेनोत्पलपुरे विष्णोः प्रासादो नूतनीकृतः ॥ १०७ ॥

१०७ शमाला[1] विजयोद्यम अवसर पर, उत्पलपुर[2] में प्रमाद से भंग किया गया, विष्णु प्रासाद को उसने नूतन (जीर्णोद्धार) किया।

पुष्पं चन्दनवृक्षस्य फलं चम्पकभूरुहः ।
अपत्यं तस्य राज्ञश्च हन्त नाकारि वेधसा ॥ १०८ ॥

१०८ दुःख है,—विधाता ने चन्दन वृक्ष को पुष्प, चम्पक वृक्ष को फल और उस राजा को अपत्य (सन्तान) नहीं दिया।

कल्हण ने (रा० : १ : ८७) तथा श्रीवर ने (जैन : ३ : ८) लेदरी का उल्लेख किया है।

लेदरी कई शाखाओं में दच्छिनवोर तथा खोवुरखोर परगना की चौड़ी उपत्यका में बहती है। प्राचीन समय में एक नहर पर्वत के पूर्व की ओर से निकाल कर मार्तण्ड अर्थात् मठन की सूखी भूमि को सींचने के लिये निकाली गई थी।

(२) सल्लर : सल्लर दक्षिणपार परगना में है। काश्मीरी में इसे दच्छुनपोर कहते हैं। श्रीवर ने इसे दक्षिणपार लिखा है (जै : ४ : ४४०७)। यह वर्तमान गाँव सलुर है। इसका अर्थ है कि यह लेदरी नदी के दक्षिण तट पर है। लोकप्रकाश तथा मार्तण्ड माहात्म्य में दक्षिण पार्श्व इसको कहा गया है।

(३) स्वनामाङ्कित कोट : रामदेव कोट होना चाहिए परन्तु नाम 'रामकोट' भी एक मत से था।

पाद टिप्पणी :

१०७ (१) शमाला : यह हमल अथवा हुम्मेल जिला है। करमराज अथवा कमराज में सेटपुर के पश्चिम में है। समाला का यही प्राचीन नाम था। उच्चारण भेद से 'स' का 'ह' हो जाता है। सिन्ध का हिन्द हो गया है। उसी प्रकार समाला का 'स' बिगड़ कर 'ह' हो गया है। हमल किंवा हुम्मेल शमाला शब्द का अपभ्रंश है। यह जिला ऊहिन से लगा है। कल्हण की राजतरङ्गिणी के तरङ्ग ७ एवं ८ में इसका बहुत उल्लेख उसके डामरों सरदारों के कारण बहुत किया गया है, जिन्होंने काश्मीर के इतिहास तथा आगे होने वाले गृह युद्धों में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था (रा० : ७ : १५९, १०२२, ८ : ५९१, १००३, १०११, ११३२, १२६४, १५१७, १५८७, २७४९, २८११, ३१३०)। जोनराज ने (९२, १०७, २५२) तथा श्रीवर ने (जै : ४ : १०७) शमाला का उल्लेख किया है।

(२) उत्पलपुर : भैरवपालपद्धति में उत्पलपुरस्य भैरव का वर्णन है। राजानक रत्नकण्ठ द्वारा वर्णित उत्पलपुर यही है। उसे काकपुर भी कहते हैं। यदि यह ठीक है तो उत्पल स्वामी का मन्दिर यही पर होना चाहिये। जोनराज ने इसका उल्लेख (३२२, ८६१) किया है। कल्हण भी इसका उल्लेख करता है (रा० : ४ : ६९५)। किन्तु दोनों ने ही यह किस स्थान पर होना चाहिये प्रकाश नहीं डाला है। भैरवपालपद्धति स्वर्गीय स्तीन को लाहौर में पं० जगमोहन के पास देखने को मिली थी। उस पाण्डुलिपि के अन्त में लिखा गया था कि यह स्थान काकपुर है। यह स्थान वितस्ता नदी पर वर्तमान ग्राम काकपोर है। सुपियान का एक प्रकार से सामानादि ले जाने ले आने का नाविक परिवहन का घाट है। नवीं शताब्दी के अन्त में उत्पलपुर की स्थापना चिप्पट जयापीड के चचा उत्पल ने किया था।

काकपुर में एक मन्दिर का ध्वंसावशेष मिलता है। कनिंघम ने इस स्थान को पहचाना था। उत्पलपुर

भिपायकपुरस्थस्य कस्यचिद् ब्राह्मणस्य सः ।
पुत्रं लक्ष्मणनामानं पुत्रीयामास भूपतिः ॥ १०९ ॥

१०९. भिपायक[1]पुरस्थित किसी ब्राह्मण के लक्ष्मण नामक पुत्र को भूपति ने (अपना) पुत्र बनाया ।

अकृत्रिमपितापुत्रप्रीतिं प्रीतिः प्रथीयसी ।
वस्त्विवोचितमालेख्यं तयोरतुलयत्तराम् ॥ ११० ॥

११० उन दोनों की प्रथीयसी (प्रचुर) प्रीति उसी प्रकार अकृत्रिम पिता-पुत्र की प्रीति थी, जिस प्रकार उचित आलेख्य यथार्थ (प्रतीत होता है) ।

श्रीसमुद्राभिधा देवी विमुद्रितसमुद्रजा ।
वितस्तायां स्वनामाङ्कं नगरान्तर्मठं व्यधात् ॥ १११ ॥

१११ विमुद्रित समुद्रजा[1] समुद्रानाम्नी देवी ने वितस्ता पर नगर के अन्तर्गत स्वनामांकित मठ[2] निर्माण कराया ।

त्रयोदशदिनं मासं वत्सरांश्चैकविंशतिम् ।
क्ष्मां भुक्त्वैकोनपञ्चाशे वर्षे स द्यामगात् स्वयम् ॥ ११२ ॥

११२ इक्कीस वर्ष, एक मास, तेरह दिन पृथ्वी का भोग कर राजा ४९ (४३४९)वें वर्ष स्वर्ग गया ।

के विष्णु उत्पल स्वामी का यही मन्दिर रहा होगा । इसीके जीर्णोद्धार की बात जोनराज यहाँ कहता है । श्रीवर उत्पल एवं उत्पलस्वामी का वर्णन करता है (जैन : ४ : ६९५) । इस मन्दिर का जीर्णोद्धार लौकिक सम्वत् ४३३० वैशाख मास शुक्लपक्ष द्वादशी में हुआ था ।

पाद-टिप्पणी :

१०९ (१) भिपायकपुर : इसका उल्लेख कल्हण, श्रीवर एवं शुक ने नहीं किया है । यह स्थान कहाँ पर था अनुसन्धान का विषय है ।

पाद-टिप्पणी :

१११ (१) समुद्रजा : विमुद्रित-समुद्रजा का अर्थ यहाँ या तो—पूर्ण लक्ष्मी ही थी अथवा लक्ष्मी को भी मात करने वाली थी—होगा ।

(२) समुद्र मठ : श्रीनगर का वर्तमान मुहल्ला सुद्रमर है । सुद्रमर में ही प्राचीन सोमतीर्थ था । समुद्र मठ के ठीक दूसरी तरफ नदी के पार सदाशिवपुर था । समुद्रमठ का स्थान दूसरे पुल के अधोभाग में नदी के दक्षिण तट पर है । नदी के वाम तटपर इसके दूसरी तरफ जैनपोर, पुदपथार, वरफक, मलिकयार है । यह सब जिला नासवान में है । श्रीवर ने इसका उल्लेख (जैन : ४ : १२१ १६९) में किया है ।

कथञ्चिल्लक्ष्मदेवोऽथ पाट्यमानाङ्गविह्वलः।
नग्नः कण्टकिनीं वल्लीमिव क्षोणीं बभार सः॥ ११३॥

लक्ष्मदेव (सन् १२७३-१२८६ ई०)[1]

११३ पाट्यमान (छिलते-कटते) अङ्गों से विह्वल वह लक्ष्मदेव (लक्ष्मणदेव) किसी प्रकार से पृथ्वी को उसी प्रकार धारण किया जैसे नग्न कण्टकिनी लता को।[2]

पाठ-टिप्पणी :

११३. (१) राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि ४३७४=शक ११९५=लौ० ४३४९=सन् १२७३ ई० राज्य काल १३ वर्ष, ३ मास, १२ दिन। आइने-अकबरी में भी राज्यकाल १३ वर्ष, ३ मास, १२ दिन दिया है।

श्रीदत्त ने इसका अनुवाद किया है—'उसका उत्तराधिकारी छओ विद्याओं में पारङ्गत लक्ष्मणदेव ने कठिनतापूर्वक राज्यभार ग्रहण किया।'

उक्त अनुवाद त्रुटिपूर्ण है। दत्त के अनुवाद का अनुकरण कर इतिहासकारों ने लक्ष्मणदेव को षड्-शास्त्रज्ञाता मान लिया है। अर्थात् वह शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष का ज्ञाता था। 'पाटयमान' को 'पाठ्यमान' मानकर अनुवाद किया गया है। किन्तु नग्न का विशेषण पाट्यमान अंगों से विह्वल होता है। विह्वल एवं शास्त्रज्ञाता दोनों का एक साथ होना कठिन प्रतीत होता है।

राजा का शुद्ध संस्कृत नाम लक्ष्मण होना चाहिए। संक्षिप्त नाम लक्ष्म दिया गया है। लक्ष्म काश्मीरी लौकिक शब्द है। लक्ष्मण का अपभ्रंश है।

समसामयिक घटनायें : सन् १२७९ ई० सिंहल के राजा भुवनेकबाहु प्रथम की मृत्यु हुई। भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। सन् १२७९ ई० में मुगलों का भारत पर आक्रमण विफल रहा। तुग्रिल ने इसी वर्ष बंगाल में विद्रोह किया। सन् १२८० ई० में तुग्रिल का विद्रोह दबाया गया। बलबन का द्वितीय पुत्र बुघरा खाँ बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया गया। सन् १२८० ई० में भगवान बुद्ध की दन्तधातु को आर्य चक्रवर्ती ने जाफना हटाया और उसे मारवर्मन त्रिभुवन चक्रवर्ती कुलशेखरदेव पाण्ड्य को दिया। सन् १२८० ई० में बर्मा में तुगू राज्य की स्थापना हुई। सन् १२८१ ई० में वरेरू मर्तवान बर्मा में राजा बन गया। सन् १२८१ ई० में पराक्रमबाहु तृतीय सिंहल का राजा हुआ तथा भगवान की दन्तधातु पुनः प्राप्त किया। सन् १२८२ ई० में रणथम्भौर के राजा जैत्रसिंह ने राज त्याग किया। उनके स्थान पर हमीर राजा हुआ। सन् १२८५ ई० बलबन का ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद खाँ मुगलों द्वारा मार डाला गया। चंगेज खाँ के साम्राज्य से भागे १३ शरणार्थी राजाओं को दिल्ली दरबार में शरण दी गई।

(२) जोनराज ने लक्ष्मदेव के १३ वर्षों के राज्यकाल का वर्णन केवल पाँच श्लोकों में किया है। श्लोक ११३ तथा ११७ अभिषेक तथा मृत्यु सम्बन्धी है। श्लोक ११४ में ब्राह्मण वृत्ति का न त्यागना, श्लोक ११५ रानी महला द्वारा मठ निर्माण तथा श्लोक ११६ काश्मीर मण्डल में कज्जल विदेशी के सेना सहित प्रवेश का उल्लेख किया गया है। राजा के इतिहास सम्बन्धी १३ वर्षों की घटनाओं में केवल एक ही श्लोक में एक घटना कज्जल के आक्रमण का उल्लेख कर जोनराज ने अपने इतिहास लिखने के कर्तव्य का निर्वाह किया है।

उस लक्ष्मदेव ने पृथ्वी को कठिनाई से उसी प्रकार धारण किया जिस प्रकार छिले-कटे (पाट्यमान) अङ्गों से विह्वल नग्न व्यक्ति कण्टकिनी लता को धारण करता है।

क्षत्रीकृतोऽपि नामुश्चत् स्वधर्मं द्विजभूपतिः।
न माणिक्यश्रियं धत्ते रञ्जितोऽश्मापि जातुचित्॥ ११४ ॥

११४ क्षत्रिय[1] बनाये जाने पर भी वह द्विज भूपति स्वधर्म नहीं त्यागा,—(ठीक है) रंगा गया पत्थर कभी माणिक्य-शोभा नहीं धारण करता।

वितस्तायास्तटे श्वश्रूमठोपान्ते मठं नवम्।
निष्पङ्का निजनामाङ्कमहलामहिषी व्यधात्॥ ११५ ॥

११५ निष्पङ्का (निष्कलंक) अहला[1] नाम्नी महिषी ने वितस्ता तट पर श्वश्रू-मठ[2] के समीप नवीन मठ बनवाया।

पाद-टिप्पणी :

११४ (१) क्षत्रिय : जोनराज के इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि क्षत्रिय ब्राह्मण बालक को गोद ले सकते थे। ब्राह्मण की जाति क्षत्रिय हो सकती थी। जोनराज ने राजाओं की जाति नहीं दी है। इस पद से प्रकट होता है कि रामदेव का वंश क्षत्रिय था।

भारतीय दत्तक विधि के अनुसार मनु का स्पष्ट आदेश है कि कोई पुरुष केवल अपनी ही जाति का लड़का गोद ले सकता है। ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय बालक को गोद नहीं ले सकता था। गोद दो प्रकार का होता है। दत्तक एवं कृत्रिम। कृत्रिम गोद केवल मिथिला में प्रचलित था। मुसलमान तथा पारसियों में गोद की प्रथा नहीं है। केवल हिन्दुओं में प्रचलित है। यदि एक ही पुत्र अपने पिता का है तो उसकी स्थिति द्वैमुष्यायण की होती थी। हिन्दू विधि में १२ प्रकार के पुत्रों का वर्णन है। उनमें ५ प्रकार के दत्तक पुत्र होते थे। पुरुष अथवा विधवा स्त्री निःसन्तान होने पर गोद ले सकती थी। आज-कल 'दि हिन्दू लॉ ऑफ एडॉपसन् एण्ड मेन्टेनेन्स सन् १९५६ ई०' के अनुसार जाति-पाँति का भेद मिटा दिया गया है। कोई भी हिन्दू किसी हिन्दू को गोद ले सकता है (धारा १०)। किन्तु दूसरी जाति वालों को भी जाति में प्रचलित रीति रिवाज Custom किंवा लोकाचार के अनुसार दत्तक लिया जा सकता था। प्रतीत होता है काश्मीर में वह प्रथा प्रचलित थी कि ब्राह्मण क्षत्रिय तथा क्षत्रिय ब्राह्मण के पुत्र को दत्तक ले सकते थे। इसी प्रथा के अनुसार राजा ने ब्राह्मण पुत्र को अपनी सन्तान बनाया था। अन्यथा समाज उसे स्वीकार नहीं करता। काश्मीर ने ७ शती पूर्व वही किया जिसे आज भारत ने कानून बनाकर किया है।

पाद-टिप्पणी :

११५ (१) श्वश्रू-मठ : मेरे मत से श्वश्रू-मठ का तात्पर्य यहाँ महला की सास के बनवाये हुए समुद्रा मठ से है। श्रीकण्ठ कौल ने 'श्वश्रू-मठ' नाम वाचक शब्द माना है। श्वश्रू यहाँ नाम न होकर महला के श्वशुर की रानी समुद्रा का अर्थ लगाना उचित प्रतीत होता है। इसका अपर नाम समुद्रा मठ हो सकता है। समुद्रा मठ का उल्लेख श्रीवर ने (जैन : ४ : १२१ तथा १६८) में किया है।

यह वर्तमान महल्ला श्रीनगर में सुद्रमर है। यह वितस्ता के दक्षिण तट पर स्थित है। दूसरे पुल के अधोभाग में है। इसकी दूसरी तरफ नदी के पार जेन्द्र महल, कुरस्यार, करफल, महाल, मल्लियार है।

(२) अहला मठ समुद्रा मठ के नाम पर वर्तमान मोहल्ला सुदरमर है। सुदरमर के ऊपर मोहल्ला अहलमर है। वर्तमान अहलमर मोहल्ला ही प्राचीन अहला मठ का स्थान है। अहला के नाम पर ही अहलमर मोहल्ला का नाम पड़ा है। यह

कज्जलेन तुरुष्केण बहिरेत्याथ मण्डले।
मलिनेन प्रजादृष्टिम्त्पाट्यास्रवताहृता ॥ ११६ ॥

११६ मलिन (दुष्ट) तुरुष्क कज्जल[1] बाहर से मण्डल में आकर प्रजा दृष्टि (नृप) को उत्पाटित कर अश्रुपूर्ण कर दिया।

स्थान वितस्ता के दक्षिण तट पर श्रीनगर के पुराने पहले और दूसरे पुल के मध्य स्थित है।

पाद-टिप्पणी :

११६ (१) कज्जल : काश्मीर मण्डल की यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दुःखान्त ऐतिहासिक घटना है। यह प्रथम अवसर था जब तुर्की सेना का प्रवेश काश्मीर में हुआ था। जिन काश्मीरियों ने महमूद गजनी आदि को परास्त किया था, वे ही इस समय दुर्बल हो गये थे। तुरुष्क सेना काश्मीर मण्डल में प्रवेश करती श्रीनगर तक पहुँच गई थी। विदेशी सेना को रोकने का लक्ष्मदेव ने कोई प्रयास नहीं किया। काश्मीरी सेना के जिस शौर्य के कारण विदेशी आँख नहीं उठा सकते थे, वे ही काश्मीर मण्डल में प्रवेश पा गये। मुसलिम प्रभाव काश्मीर में जम गया। अल्पमत मुसलिम जनता में विश्वास उत्पन्न हो गया कि उनका भी शासन हो सकता था। साथ ही विदेशियों का भी साहस खुल गया। वे काश्मीर प्रवेश को अभेद्य नहीं मानने लगे। यही कारण है कि आगामी ४० वर्षों में डुल्चा, रिंचन, अचला आदि काश्मीर में प्रवेश कर काश्मीर को उत्पाटित करते रहे। विदेशी रिंचन का राज्य काश्मीर में स्थापित हुआ। तत्पश्चात् शाहमीर काश्मीर में मुसलिम राज एवं धर्म दोनों स्थापित करने में सफल हुआ।

जोनराज तुरुष्क अर्थात् तुर्क कज्जल के आक्रमण का वर्णन करता है (श्लोक ११६, ११८)। कज्जल कौन था ? इस पर अमीर खुसरो ने 'किरान उस् सदैन' में भारत पर मंगोल आक्रमण का वर्णन किया है। यह आक्रमण सन् १३८७ ई० = हिजरी ८६६ में हुआ था। दिल्ली का बादशाह कैकोबाद था। मंगोल सेना का नेतृत्व, सारमक, कीली, खज्जलक, बैदू कर रहे थे। एक मत है खुसरो उल्लिखित खज्जलक ही जोनराज वर्णित कज्जल है। यूल प्रथम व्यक्ति है, जिसने काश्मीर आक्रमक कज्जल के सन्दर्भ में खुसरो उल्लिखित खज्जलक की ओर ध्यान आकर्षित किया है। दोनों एक ही व्यक्ति थे—मानने को प्रेरित किया है (मार्कोपोलो : १ : १०४ नोट : ४)। नामों की समता तथा आक्रमणकाल की सामीप्य उन्हें एक मानने की ओर उत्साहित करता है। काश्मीरी नामों को संस्कृत रूप तथा संस्कृत नामों को काश्मीरी लौकिक रूप दे दिया करते थे। जैसे गगनगेर का संस्कृत रूप गङ्गगिरि, परमान का प्रमाणुक कर दिया गया है। उसी प्रकार खज्जलक का संस्कृत रूप कज्जल जिसका अर्थ काजल होता है दे दिया गया है। कज्जल शुद्ध संस्कृत शब्द है।

लक्ष्मदेव की मृत्यु सन् १२८६ ई० में हुई थी। मंगोल आक्रमण जिसमें कज्जल ने भाग लिया था उसकी सूचना सन् १२८७ ई० में बादशाह कैकोबाद को दी गयी। खुसरो ने इसी सूचना के आधार पर खज्जलक के समय तथा उसके नाम का उल्लेख किया है।

लास्सेन का मत जो यूल के मार्कोपोलो (भाग १ : १०४) पर आधारित है कहता है कि लक्ष्मदेव कज्जल के विरुद्ध युद्ध करता हुआ वीरगति प्राप्त किया था। कज्जल सन् १२८७ ई० तक काश्मीर में रहा। यह मत केवल अनुमान पर आधारित है।

जोनराज के वर्णन से इतना स्पष्ट है कि लक्ष्मदेव को कज्जल ने 'उत्पाटित' कर दिया था। कज्जल काश्मीर उपत्यका में उपस्थित था। लक्ष्मदेव उसका सामना करने में असमर्थ था। अतएव लक्ष्मदेव काश्मीर उपत्यका से उत्पाटित हो गया था। लक्ष्मदेव का उत्पाटन के पश्चात् क्या हुआ ? कुछ पता नहीं

त्रयोदशाब्दान् मासांस्त्रीन् द्वादशाहं च भूपतिः ।
भुक्त्वा द्वाषष्टवर्षेऽथ पौषान्ते स व्यपद्यत ॥ ११७ ॥

११७ वह भूपति तेरह वर्ष, तीन मास, बारह दिन, भोग कर, बासठवें वर्ष (४३६२ लौ०) पौषान्त में मर गया ।

कज्जलोपद्रवात्तस्माल्लेदरीमात्रनायकः ।
सिंहदेवोऽथ सङ्ग्रामचन्द्रेणाक्षोभि भूपतिः ॥ ११८ ॥

सिंहदेव (सन् १२८६-१३०१ ई०)[१]

११८ उस कज्जल के उपद्रव से लेदरी[१]मात्र के नायक सिंहदेव को संग्रामचन्द्र ने क्षुब्ध किया ।

चलता । फार्सी इतिहासकार भी उस पर कुछ प्रकाश नहीं डालते ।

एक अनुमान और लगाया जा सकता है । खिलजी अफगानिस्तान की सीमा पर रहने वाली एक जाति थी । खिलजियों का शासन भारत मे सन् १२८८ ई० से १३२१ ई० तक था । फरिश्ता निजामुद्दीन अहमद का उद्धरण देते हुए लिखता है कि खुलीची अथवा कलिजी कबीला खुलीची के वंशज थे । खुलुची खाँ चंगेज खाँ का दामाद था । खिलजी कबीला के लोग भारत में दल बनाकर प्रवेश किये और दिल्ली तक पहुंच गये थे । खिलजी अथवा कलिजी कबीला के लोग तुर्क थे । जोनराज भी कज्जल को तुर्क ही मानता है । इस विषय पर और अनुसन्धान की *आवश्यकता है ।*

पाद-टिप्पणी :

११८. (१) राज्याभिषेक काल श्रीदत्त ने कलि ४३८७ = शक १२०८ = लौ० ४३६२ = सन् १२८६ ई०, राज्यकाल १४ वर्ष, ५ मास, २७ दिन दिया है । आईने-अकबरी ने भी १४ वर्ष, ५ मास, २७ दिन राज्यकाल दिया है ।

समसामयिक घटनायें : सन् १२८७ ई० मे बलबन की मृत्यु हो गई । उसके स्थान पर मुइजुद्दीन कैकोबाद दिल्ली का बादशाह हुआ । वह बुघरा खाँ का पुत्र था । मुगलो ने भारत पर आक्रमण किया । वे पीछे हटा दिये गये । इसी समय नव मुसलिमो तथा मुगलो का हत्याकाण्ड हुआ । वे मुगल आक्रमण के समय बन्दी बनाये गये मुगल जबरदस्ती मुसलमान बना लिए गये थे । अतएव उन्हे नव मुसलिम कहा जाता था । उन पर विश्वास नहीं था । वे सेना तथा सरकारी नौकरी मे थे परन्तु उन्हे मार डाला गया । पगान मे छ स्वा ने उत्तराधिकार प्राप्त किया । वरेरू ने मर्तबान नगर की स्थापना किया । पेगू मे तेलङ्ग राजा का राज्य हुआ । सिंहल मे भुवनेकबाहु द्वितीय राजा बना । सन् १२८८ ई० मे कैकोबाद दिल्ली के बादशाह तथा उसके पिता बुघरा खाँ बंगाल से भेंट हुई । सन् १२९० ई० मे कैकोबाद की मृत्यु हो गई । उसके स्थान पर जलालुद्दीन खिलजी बादशाह हुआ । सन् १२९१ ई० मे क्रुसेडों का अन्त हुआ । इसी वर्ष भारत मे अकाल पड़ा । सन् १२९१-१२९२ ई० मे छहज्जू का विद्रोह दबाया गया । इसी समय नासिरुद्दीन बुघरा खाँ की मृत्यु हो गई । रुक्नुद्दीन कैकौस बङ्गाल का राजा हुआ । सन् १२९१ ई० मे सिंहल के भुवनेकबाहु द्वितीय की मृत्यु तथा पराक्रमबाहु चतुर्थ राजा हुआ । सन् १२९२ ई० मे० मुगलो ने पुनः भारत पर आक्रमण किया । उनकी संख्या एक लाख थी । वे पराजित हो गये । उगलू खाँ तथा उसके ३००० मुगल मुसलमान होकर भारत मे रह गये । अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण किया । भिलसा

नगरान्तर्मठं कृत्वा लहरेन्द्रे मृते सति।
सिंहदेवो नृसिंहोऽथ क्ष्मां ररक्ष क्षयाकुलाम् ॥ ११९ ॥

११६ नगर[1] के अन्दर मठ[2] निर्मित करके लहरेन्द्र[3] की मृत्यु[4] पर नृसिंह[5] सिंहदेव ने क्षयाकुल क्षमा की रक्षा की।

(विदिशा) विजय किया। नरसिंह तृतीय के पश्चात् वल्लाल तृतीय होयसल राजा हुआ। सन् १२९४ ई० मे अलाउद्दीन ने देवगिरि पर आक्रमण किया। सन् १२९५ ई० मे दूदासिंह भाटी जैसलमेर का रावल निर्वाचित किया गया। सन् १२९६ ई० मे जलाउद्दीन खिल्जी की हत्या कर दी गई। अलाउद्दीन खिलजी तीसरी अक्तूबर सन् १२९६ ई० मे दिल्ली का बादशाह बना। सन् १२९६ ई० मे मुगलो ने एक लाख फौज के साथ भारत पर आक्रमण किया। उन्हे सफलता नही मिली। खिलजी ने गुजरात विजय सन् १२९७ ई० मे किया। इसी वर्ष मुगलो ने पुन. भारत पर आक्रमण किया। उनका नेता दाऊद था चीन के सम्राट् ने सन् १२९७ ई० मे क्र स्वा को राजा की मान्यता दी। सन् १२९८ ई० मे साल्दी के नेतृत्व मे मुगलो ने पुनः भारत पर आक्रमण किया। उनकी सख्या दो लाख थी। मुगलो ने इसी वर्ष पुनः आक्रमण किया। उनका नेता कुतलग खाँ था। सन् १२९८ ई० मे तीन शान बन्धुओ ने उत्तरी बर्मा मे राज्य स्थापित किया। इसी वर्ष चीन सम्राट् ने पेगु के तेलङ्ग राज्य को मान्यता दी। सन् १२९९ ई० मे तुर्कों ने ओटोमन साम्राज्य की स्थापना की। इसी वर्ष रणथम्भौर पर शाही सेना ने आक्रमण किया। सेना पराजित हो गई। पुनः सन् १३०१ ई० मे रणथम्भौर पर आक्रमण किया गया।

सिंहदेव के १४ वर्षो के राज्यकाल का वर्णन जोनराज ने केवल १२ श्लोको मे किया है।

लक्ष्मदेव की मृत्यु के पश्चात् सिंहदेव राजा हुआ। किन्तु वह समस्त काश्मीर का राजा नही था। वह लेदरी मात्र का राजा था। सिंहदेव पर सग्राम देव ने आक्रमण किया था (श्लोक ११८)। सिंहदेव लक्ष्मदेव का सम्बन्धी या अथवा पूर्व राजा रामदेव का वंशज था अस्पष्ट है। यदि सिंहदेव किसी भी प्रकार से रामदेव अथवा लक्ष्म का वंशज होता तो जोनराज अवश्य लिखता। उसका यहाँ पर मौन रहना खलता है। इतिहास की शृङ्खला टूट जाती प्रतीत होती है। सिंहदेव किसी प्रकार लेदरी नदी की उपत्यका मे अपना राज्य किंवा अधिकार रखने मे समर्थ हुआ था। लक्ष्मदेव कब भागकर लेदरी गया था। इसका भी कोई उल्लेख नही मिलता।

तणिव नारायण कौल तथा बहारिस्तान शाही से प्रकट होता है कि सिंहदेव लक्ष्मदेव का पुत्र था। परन्तु इस मत के समर्थन मे उन्होने कोई प्रमाण उपस्थित नही किया है। पिता के पश्चात् पुत्र राज्य ग्रहण करता है। लक्ष्म एवं सिंह दोनो नामो के अन्त मे 'देव' है। इसी साम्यता के आधार पर, फार्सी इतिहासकारो ने रामदेव लक्ष्मदेव का पुत्र था—यह अनुमान कर निष्कर्ष निकाला है। यह केवल अनुमान है। किसी तथ्य पर आधारित नही है। लक्ष्मदेव, रामदेव का वंशज भी सिंहदेव हो सकता है और नही भी।

जोनराज वर्णन करता है सग्रामचन्द्र ने राजा सिंहदेव को क्षुब्ध किया। हसन लिखता है कि काश्मीर के सामन्त आदि के सहयोग से सग्रामचन्द्र ने कज्जल को काश्मीर से बाहर निकाल दिया था। अपनी इस शक्ति के कारण संग्रामचन्द्र ने सिंहदेव को त्रस्त करना आरम्भ किया था। वह स्वाभाविक भी था। क्योकि राजा ने कज्जल को काश्मीर मण्डल से बाहर निकालने का कोई प्रयास नहीं किया था।

पाद-टिप्पणी :

११९ (१) नगर : श्रीनगर।

(२) मठ—इस मठ का पता नहीं चलता।

सिंहदेवो नृसिंहस्य सिंहेन गुरुणान्वितः।
प्रतिष्ठां सिंहलग्नेऽथ ध्यानोड्डारेऽकरोत् कृती ॥ १२० ॥

१२० गुरु सिंह के साथ सिंहदेव ने ध्यानोड्डार' में सिंहलग्न के समय श्रीनृसिंह की प्रतिष्ठा की।

इसका नाम सम्भवतः संग्राम मठ होगा। नाम पर मठ स्थापित करने की परम्परा पड गई थी।

(३) लहरेन्द्र : लहर का डामर सरदार बलाढ्यचन्द्र लहर का राजा था। उसी का पुत्र संग्रामचन्द्र था।

(४) मृत्यु : संग्रामचन्द्र की मृत्यु के विषय मे दो मत है। यदि 'मठं' शब्द 'युद्धं' पढा जाय तो मृत्यु युद्ध मे हुई थी। किन्तु किसी भी पाण्डुलिपि तथा प्रतिलिपि मे 'मठं' का पाठभेद 'युद्धं' नहीं मिलता। 'युद्धं' से छन्दोभङ्ग दोष भी होगा। जोनराज किंवा फार्सी इतिहास लेखक इस पर कुछ प्रकाश नही डालते कि संग्रामचन्द्र की मृत्यु स्वाभाविक थी अथवा युद्ध मे हुई थी। श्रीकण्ठ कौल का मत है कि ठीक पाठ 'मठ' का 'युद्धं' होना चाहिये। यदि यह मान लिया जाय तो अनुवाद होगा—'नगर के अन्दर युद्ध करके लहरेन्द्र की मृत्यु पर—'। इससे दूसरी घटना और निकल आती है। संग्रामचन्द्र का श्रीनगर पर अधिकार था। श्रीनगर के लिए नगर शब्द का प्रयोग किया गया है। नगर का अर्थ श्रीनगर लेना चाहिये। राजा सिंहदेव ने लेदरी से संग्राम पर आक्रमण किया होगा। वह श्रीनगर पहुँचा होगा। वहाँ घोर संघर्ष हुआ होगा। उसमे संग्रामचन्द्र ने वीरगति पाई होगी।

जोनराज के 'नृसिंह' विशेषण से प्रतीत होता है कि सिंहराज अपनी वीरता के कारण भूमि का स्वामी हुआ था। इससे यह भी ध्वनि निकलती है कि पाठ 'युद्धं' ठीक होना चाहिये। क्योकि युद्ध मे वीरता प्रदर्शित करने एवं विजय प्राप्त होने पर ही उसके लिए नृसिंह विशेषण का प्रयोग किया गया है। विजय पश्चात् वह श्रीनगर का राजा हो सका था। 'मठं कृत्वा' पाठ यदि ठीक है तब भी प्रकट होता है कि संग्रामचन्द्र श्रीनगर का स्वामी था। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही सिंहराज श्रीनगर का स्वामी हो सकता था। वह दो ही प्रकार से हो सकता था। युद्ध किंवा संग्रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसके वंशजो का स्वतः श्रीनगर राज्य सिंहदेव को अर्पण कर देना—जिसकी सम्भावना कम प्रतीत होती है।

(५) नृसिंह : मनुष्यो मे सिंह उत्तम है यह विशेषण जोनराज ने यहाँ सिंहदेव का लगाया है। सिंहदेव की वीरता प्रकट करने के लिए इस शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है।

पाद-टिप्पणी :

१२०. (१) ध्यानोड्डार : सिंहदेव ने ध्यानोड्डार में भगवान् नरसिंह की प्रतिष्ठा की। उसके निर्माण कार्य से प्रकट होता है कि सिंहदेव के राज्यकाल मे शान्ति थी।

इस स्थान का उल्लेख कल्हण ने (रा० : ८ : १४३१, १५०८, १५०) किया है। श्रीवर ने भी 'उड्डार' दामोदरोड्डार का प्रयोग किया है (जैन : ४ : ६१५)। उडर शब्द करेवा बलुयी भूमि की अधित्यका के लिए काश्मीर उपत्यका मे प्रयोग किया गया है। लोचनोड्डर, गुविकोड्डर, दामोदरोड्डर आदि उड्डर जोड कर नामवाचक शब्द बनाने के कतिपय उदाहरण हैं। मूल नाम ध्यान है। उसमे उड्डर जोड देने से सन्धि मे ध्यानोड्डर हुआ है। इतना निश्चय है कि नाम के कारण यह करेवा किंवा उड्डर होना चाहिये। अधित्यका बलुई भूमि पर यह आबाद रहा होगा। स्थान का निश्चित पता नहीं लगता। इसे काश्मीर उपत्यका के पूर्वीय भाग मे होना चाहिए।

कर्ता कार्यं च लग्नं च गुरुः सिंहश्च कोविदः।
पतितेयं भवे तस्य बत सिंहपरम्परा ॥ १२१ ॥

१२१ कर्ता, कार्य, लग्न एवं विद्वान गुरु ये सब सिंह[१] समन्वित थे। संसार में उसके लिए सिंह की परम्परा आ पड़ी थी।

स निष्कलक्षविक्रीतक्षीरेण विजयेश्वरम्।
एकाह्न एव स्नपयन् व्रतशुद्धिं ययौ नृपः ॥ १२२ ॥

१२२ एक लाख निष्क द्वारा क्रीत दुध से श्रीविजयेश्वर[१] को स्नान कराते हुए, वह नृप एक ही दिन में व्रत शुद्धि प्राप्त किया।

पाद-टिप्पणी :

१२१. (१) सिंह = तात्पर्य है कि सिंह लग्न में बृहस्पति के विद्यमान रहने पर इस नरसिंह ने यह सिंह परम्परा चलाई। चौबीस घण्टे मे १२ लग्न व्यतीत होते हैं। प्रायः दो घण्टे का एक लग्न होता है। अतः जब सिंह लग्न का उदय था उसी समय शौर्य पराक्रम का कार्य आरम्भ किया। यही सिंह परम्परा है। राजा स्वयं सिंह था। लग्न भी सिंह था। बृहस्पति भी सिंह मे थे एवं कार्य भी सिंह किंवा बहादुरी का था। अतएव नाम सिंह परम्परा पड़ी। राजा का नाम भी सिंहदेव था। इसलिए उसकी बनायी परम्परा सिंह परम्परा कही गयी।

पाद-टिप्पणी :

१२२. (१) विजयेश्वर : काश्मीर का प्राचीन नाम शारदापीठ है। प्राचीन ग्रन्थो मे शारदा नाम से काश्मीर अभिहित होता रहा है। काश्मीर मे शारदी अर्थात् शारदा स्थान जो कृष्णगङ्गा पर है तथा विजयेश्वर दो विद्या, संस्कृति एवं सभ्यता के केन्द्र रहे हैं। विजयेश्वर माहात्म्य (रा० : ७ : ४७३) मे विजयेश्वर, विजयेश्वर क्षेत्र तथा विजयेश्वर तीर्थ का सांगोपांग वर्णन है (रा० : १ : ३८)। नील-मत पुराण मे विजयेश्वर का उल्लेख तीर्थों के सन्दर्भ मे आता है :

विशोका विजयेशं च वितस्ता सिन्धुसङ्गमम्।
एतान् सर्वानतिक्रम्य प्रययौ भरतं गिरिम् ॥
१०५० = १२४०

× × ×

विजयी साग्रतः स्नात्वा वितस्ताया महीपते।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलयुद्धरते स्वकम् ॥
१३०३ = १५१६

× × ×

विजयेश नाम का अपभ्रंश विजबेहरा, विजब्रोर आदि है। काश्मीरी शब्द ब्रोर का अर्थ देवी होता है। यह अत्यन्त प्राचीन मन्दिर एवं स्थान है। विजयेश्वर माहात्म्य एवं हरचरितचिन्तामणि मे इसके सम्बन्ध मे अनेक गाथाओ का वर्णन मिलता है। राजा विजय ने विजयेश्वर नगर का निर्माण कराया था (रा० : २ : ६२)।

सम्राट् अशोक ने विजयेश्वर का जीर्णोद्धार कराया था (रा० : १ : १०५)। उसने अशोकेश्वर की स्थापना यहाँ किया था (रा० : १ : १०६)। यह स्थान बनिहाल श्रीनगर सडक पर स्थित श्रीनगर से २९ मिल दूर तथा वितस्ता के बाएँ तट पर है। इस समय नगर की उन्नति हो गई है। मैं यहाँ चार बार आ चुका हूँ। बिजली तथा जलकल की यहाँ व्यवस्था हो गई है। प्राचीन समय मे एक पुल था। इस समय यातायात एवं परिवहन की अधिकता के

कारण बडा पुल वितस्ता पर बन गया है। पुराना डोगराकालीन पुल भी यथावत् है। पुराने पुल से गाडियाँ नही जा सकती।

नगर बडा और पुरानी शैली का है। गलियो मे पत्थर के फर्श लगे हैं, सडकें पक्की है। नगर की भूमि ऊँची-नीची है। पुराने पुल से नगर का सुन्दर दृश्य मिलता है। नगर वितस्ता तट पर ऊँचे करार पर आबाद है।

प्राचीनकाल मे यहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय था। संस्कृत भाषा का पठन-पाठन होता था। शारदापीठ के पश्चात् संस्कृत का यह दूसरा संस्कृत विद्या का केन्द्र था।

सम्राट् अशोक ने यहाँ दो मन्दिरो का निर्माण किया था। मन्दिर का नाम अशोकेश्वर सम्राट् अशोक के नाम पर पडा था। यहाँ के खनन कार्य द्वारा कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई है वे इतनी खण्डित एव विरूप कर दी गई हैं कि उन पर साधिकार यहाँ कुछ मत प्रकट करना अप्रासङ्गिक होगा।

विजयेश-माहात्म्य मे विजयेश क्षेत्र के अनेक तीर्थस्थानो का उल्लेख मिलता है। क्षेत्र की तीर्थयात्रा का वर्णन है। इस समय चक्रधर तथा गम्भीर सङ्गम के अतिरिक्त और किसी तीर्थस्थान का पता नही चलता। नवीन निर्मित मन्दिर के प्रागण मे मैंने पूर्व मन्दिर के आमलक, अलंकृत शिलाखण्ड पडा देखा था।

पुराने पुल के समीप एक मन्दिर ही नवीन निर्माण है। साथ ही धर्मशाला है। 'विजयेश्वर' सुधार समिति यहाँ पर स्थापित है। प्राचीनकाल मे नगर मन्दिरो से भरा था। मन्दिरो के अधिष्ठान ऊँचे बनाये जाते थे। मन्दिरो को तोडकर उन पर जियारत, मकान, मसजिदें बन गई हैं। टूटे मन्दिरो के मलबों को पाट कर उन पर इमारत बन गई हैं। अतएव नगर में ऊँची नीची जमीन बहुत मिलेगी। इस समय आबादी पुराने नगर से उठकर बनिहाल श्रीनगर के सडक पर आबाद हो रही है।

विजयेश्वर मन्दिर के ध्वसावशेष की खोज की इच्छा हुई। घूमता हुआ बाबा साहब की जियारत मे पहुँचा। बहुत बडा घेरा है। बडी-बडी कब्रे घेरे के दो तिहाई भाग पर अत्यधिक बनी हैं। शेष स्थान पर छोटी कब्रे हैं। जियारत चौकोर है। जियारत मे एक मसजिद है। जियारत एवं मसजिद मे प्राचीन मन्दिरो के अलंकृत पत्थर लगे है। जियारत के दक्षिण पार्श्व मे मन्दिर का एक विशाल आमलक पडा था। एक कलश एक ओर लुढका पडा था। विशाल शिलाखण्ड चौपहले तथा गोले यहाँ बहुत पड़े हैं। स्तम्भो का अधिष्ठान जियारतो एवं मसजिदो मे लगा बहुत मिलेगा। यह निश्चय करना कठिन है कि यह मन्दिर विजयेश्वर का है अथवा अशोकेश्वर का।

रतन हाजी की मसजिद के बाहर भद्रपीठ का विशाल शिलाखण्ड पडा था। मसजिद के अन्दर मन्दिरो के स्तम्भ लगे है। बाहर मन्दिरो के खण्डित टुकडे बिखरे पडे है। स्थानीय पुरोहितो के अनुसार प्राचीन मन्दिर वितस्ता तट से १०० गज नदी तट से दूर स्थित था। काश्मीर के राजा रणवीर सिंह ने नवीन मन्दिर निर्माण हेतु बहुत शिलाखण्ड यहाँ से उठवा ले गये थे। विजयेश्वर का मन्दिर राजा अनन्त देव के समय भस्म हो गया था। राजा कलश ने उसका जीर्णोद्वार कराया था (रा० : ७ : ५२४)। प्राचीन आकार बिना सुधामय सम्भवतः ईंट एवं पत्थरो से बना था। कल्हण के अनुसार विजयेश्वर मन्दिर की स्थापना विजयराज ने किया था (रा० : २ : ६२)। यह मन्दिर सिकन्दर बुतशिकन द्वारा नष्ट कर दिया गया था।

कल्हण ने (रा० १ : ३८, १०५, १०६, ११३, १३१, ३१४, २ : ६२, १२३, १२५, ५ : ४६; ६ : ९८, ७ : १८३, १८४, ३५४, ३६९, ४०२, ४०३, ४५२, ४५९, ४६३, ४८६, ४८७, ४९१, ५२४, ९५२, १५०४, १५०६, १५१४, १५१५, ८ : ५०९, ५६१, ६५२, ७४६, ७४७, ८०९, ९०८, ९७०, १०६२, ११४०, १४८८, १५०९, १५७६, १६७६, १७११, २२२२, २३७०, २७३३) जोनराज ने (१००, ३२२, २५४, ६०१, ८८०, ८८१) तथा श्रीवर ने (१ : ३ : १३;

राजा श्रीशङ्करस्वामी गुरुर्मन्त्रोपदेशकृत् ।
यष्टा दशमठैश्वर्यदक्षिणाभिरपूज्यत ॥ १२३ ॥

१२३ राजा ने याजक मन्त्रोपदेशकारी गुरु श्रीशंकर स्वामी[1] को दश[2] मठों[3] के ऐश्वर्य (सम्पत्ति) की दक्षिणा से देकर पूजित किया।

परलोकजयोपायं वाग्देवीप्राभृतं नृपः ।
आत्मोपज्ञमिमं श्लोकं शय्योत्थायं सदापठत् ॥ १२४ ॥

१२४ वह नृप[1] परलोक विजय का उपायभूत वाग्देवी[2]रूप उपहारस्वरूप स्वयं-कृत इस श्लोक को शय्या से उठकर पढ़ता था—

पावकनिर्मलदृष्टिं विबुधगणैरर्च्यमानपादमहम् ।
शशिशकलादर्शयुतं गौरीशं शङ्करं वन्दे ॥ १२५ ॥

१२५ 'पावक जिनकी निर्मल दृष्टि है, विबुधगण जिनके चरण की अर्चना करते हैं, शशि-खण्ड जिनका दर्पण है, उस गौरीश शंकर[1] की मैं वन्दना करता हूं।'

दुहितुर्दुश्चरित्रेण योऽभूद्दण्डः पितुः पतन् ।
इडागल्यार्थितो राजा नर्तक्या तं न्यवारयत् ॥ १२६ ॥

१२६ दुहिता (लड़की) की दुश्चरित्रता के कारण (उसके) पिता पर जो दण्ड पड़ रहा था उसे इडागली[1] नर्तकी द्वारा प्रार्थित राजा ने निवारित कर दिया।

१:४:४, १:५·९५, ३·१७९, ३·२०२, ३:२०३, ४:५३२) में उल्लेख किया है।

पाद-टिप्पणी :

१२३ (१) शङ्कर स्वामी : इनका पता नहीं चलता। अभी तक किसी पाली ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख मैं नहीं पा सका हूं।

(२) अष्टादश : अनुवाद 'यष्टा दश' के स्थान पर अन्य प्रतियों में उल्लिखित 'अष्टादश' पाठ मानकर किया जाय तो 'अट्ठारह मठ' अर्थ हो जायगा।

(३) मठ : शिवदेव ने मठों का निर्माण किस स्थान पर कराया था, इस पर जोनराज कुछ प्रकाश नहीं डालता। मठों का नाम भी नहीं देता।

पाद-टिप्पणी :

१२४ (१) राजा स्वयं कवि था। काश्मीर के राजा हर्ष के समान राजा सहदेव काव्य, कला का प्रेमी था, धार्मिक था, विद्वानों का आदर करता था। सम्भवतः काश्मीर का अन्तिम कवि राजा था।

(२) वाग्देवी : सरस्वती, वागीश्वरी।

पाद-टिप्पणी :

१२५ (१) शङ्कर : राजा शिव का उपासक था। राजा सन्धिमति के समान वह पूर्णतया शैव था। उसके उक्त पद से शिव के प्रति उसकी भक्ति तथा उसके कवित्व शक्ति का भी परिचय मिलता है। शङ्कर की पत्नी गौरी थी। कोनमोपाधिप प्रजज विजय की कन्या थी। शङ्कर में गौरी तुल्य भक्ति रखती थी। मडवाश्रम ग्राम के समीप शङ्कर भार्या गौरी ने अपने अलङ्कार दान द्वारा पथिकों को पानी देने के लिये, पितरों के तर्पण के लिये, दम्पति के पाप नाश के लिए एवं धर्मसंवर्धन के लिए निपान बनवाया था।

पाद-टिप्पणी :

विशेष : उक्त श्लोक का भावार्थ होगा—लड़की के भावभ्रष्टा होने के कारण उसके पिता पर राजा ने जो दण्ड लगाया, उसे इडागली नामकी नर्तकी ने राजा से प्रार्थना करके क्षमा करा दिया।

१२६ (१) इडागली : यह नाम मुस्लिम मालूम पड़ता है। इड+गली दोनों शब्द फार्सी

स दुर्जनपरिष्वङ्गादास्तिकप्रज्ञयोज्झितः।
धात्रीपुत्र्यां स्मरादर्शे स्वात्मानं प्रत्यबिम्बयत् ॥ १२७ ॥

१२७ दुर्जनों के संसर्ग के कारण वह आस्तिक-बुद्धि रहित हो गया[1]। उसने धात्रीपुत्री-रूप कामदर्पण में अपने को प्रतिबिम्बित कर दिया।

है। अली शब्द मुसलिम नामो के अन्त मे लगाया जाता है। इदाली का मैं समझता हूँ कि बिगड़ा रूप इडागली है। काश्मीर मे उस समय मुसलिम जन संख्या पर्याप्त हो गई थी। कज्जल के आक्रमण के साथ मुसलिम सेना भी काश्मीर मे आ गई थी। काश्मीर राजा की सेना मे विदेशी तुर्कादि रखे जाते थे। काश्मीरी सैनिक परस्पर षड्यन्त्रादि कर राजा के लिए एक समस्या बन जाते थे। इससे बचने के लिए लगभग एक शती वर्ष पूर्व से विदेशी काश्मीरी सेना मे रखे जाने लगे थे। इडागली या तो काश्मीरी होने पर अपने अथवा पूर्व पुरुषो के धर्म-परिवर्तन के कारण मुसलिम थी अथवा वह किसी सैनिक या मुसलिम कुटुम्ब के साथ काश्मीर आयी थी। मुसलिम फौज के साथ नर्तकियाँ एवं वेश्याएँ रहती हैं। मुसलिम धर्म मुता शादी का आज्ञा देता है। मुता विवाह शिया लोगो मे प्रचलित है। सैनिको तथा किसी के साथ एक या दो दिन या दो घडी के लिए वे शादी कर रहती हैं।

काशी में अपने वकालत के समय मैंने देखा कि मुसलिम नर्तकियाँ एवं वेश्यायें प्रायः शिया थी। सुन्नी वेश्या कम मिलती थी। क्योंकि शिया वेश्या बिना पाप किये परपुरुष के साथ कुछ समय के लिए मुता शादी पर रह सकती है। अली, हसन, हुसेन शब्द प्रायः शिया लोगो के नाम के अन्त मे लगता है। सुन्नियो मे भी लगता है अपेक्षाकृत कम। इडागली नर्तकी थी। उसका पेशा लोगो का रञ्जन था। उसका नाम तथा पेशा दोनो को मिलाने से यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि वह मुसलिम स्त्री थी।

आगामी श्लोक १२९ से स्पष्ट होता है कि दर्या नामक व्यक्ति ने इडागली से सम्बन्ध होने के कारण राजा की हत्या कर दी। दरया नाम मुसलिम है। दरया शब्द फार्सी है। हिन्दू का उन दिनों नाम मुसलिम नहीं रखा जाता था। मुसलिम हो जाने पर बहुत दिनो तक काश्मीरी मुसलिम अपने नाम के साथ पुराना पद गौरव जोड़ते रहे है। उसी श्लोक मे 'कामसूह' नाम आया है। वह भी राजा की हत्या मे गौण रूप से सम्मिलित था। 'कामसूह' शब्द 'कामशाह' की संस्कृत रूप प्रतीत होता है। जोनराज ने अनेक मुसलिम नामो को संस्कृत रूप दे दिया है। इसी प्रकार 'कामशाह' शुद्ध मुसलिम नाम है जो कामसूह हो गया है। इडागली सम्बन्धित कामशाह एवं दरया थे। अतएव मेरा अनुमान ठीक हो सकता है कि इडागली मुसलिम नर्तकी थी।

पाद-टिप्पणी :

१२७ (१) राजा सिंहदेव एवं हर्ष की तुलना यदि कवि रूप मे की जा सकती है तो दोनो के चरित्रो की भी तुलना की जा सकती है। दोनों ही वीर थे, यशस्वी थे, कवि थे, कवियो का संग्रह करते थे, परन्तु दोनो ही कामुक थे। दोनो राजाओ की हत्या उनके मित्रो द्वारा हुई थी।

(२) धात्री पुत्री : श्रीदत्त ने अनुवाद किया है कि 'दुर्जनो के ससर्ग के कारण राजा ईश्वर विश्वास से विरत हो गया। उसकी धात्री की एक कन्या थी। उसके दर्पण मे राजा का रूप प्रतिबिम्बित हुआ था।' जोनराज ने धात्री-पुत्री का नाम नहीं दिया है। यह सम्भवतः इडागली नहीं थी। क्योंकि वह नर्तकी थी। उसका निवास राजप्रासाद मे होना कठिन था। कुछ लोगो ने इडागली को ही धात्री-पुत्री मानने का सुझाव दिया है परन्तु यह स्पष्ट नहीं है।

दर्याख्यो गणनास्वामी कामसूहोपबृंहितः ।
तं विरक्तप्रजं मुक्तविनयं छद्मनावधीत् ॥ १२८ ॥

१२८ कामसूह[1] द्वारा उपबृंहित (बढ़ाया गया) दर्य (दरिया ?)[1] नामक गणना[3]-स्वामी ने छद्म से प्रजा-प्रेम एवं विनय-रहित उसे मार[3] डाला ।

चतुर्दशाब्दान् पण्मासांस्त्र्यहन्यूनान्महीपतिः ।
भूत्वा शुचौ दिवमगात् स वर्षे सप्तसप्तते ॥ १२९ ॥

१२९ चौदह वर्ष पांच मास सत्ताइस दिन शासन कर, वह महीपति सतहत्तरवें (४३७७) वर्ष, ग्रीष्म ऋतु (आषाढ़ मास)[1] में स्वर्ग गया ।

पाद-टिप्पणी :

श्रीदत्त ने इसका अनुवाद किया है—'उसके पति दर्य कामसूह की सहायता से उस उद्धत राजा को मार डाला जिससे उसकी प्रजा चिढ गयी थी ।' श्री दत्त का अनुवाद कि धात्री पुत्री के पति दर्य ने राजा की हत्या कर दी, ठीक नही है । स्वामी का अर्थ दत्त ने पति लगाया है । यह शब्द गणनास्वामी है । एक राजकीय अधिकारी का पद था ।

१२८. (१) कामसूह : कामसूह का दर्य किंवा दरिया मित्र था । नाम से वह मुसलिम मालूम होता है ।

(२) दर्य = यह नाम दरिया का है । यह भी मुसलिम मालूम होता है । दरिया का संस्कृतकरण जोनराज ने दर्य अन्य मुसलिम नामो के समान किया है । इसका पाठभेद दर्प भी मिलता है । परन्तु यह लिपिक की गलती के कारण 'य' का 'प' हो गया है । यह लिखने मे प्रायः होता रहता है ।

(३) गणना : यह एक अधिकारी था । गणना पत्रिका को काश्मीर मे 'गनत वतर' कहते हैं । हिन्दी मे बही खाता कहा जाता है । अंग्रेजी मे 'एकाउन्ट बुक' कहते हैं । गणनास्वामी का भाव प्रचलित शब्द मुनीम तथा एकाउन्टेण्ट मे आ जाता है ।

कल्हण (रा० : ६ : ३६) मे गणना पत्रिका का उल्लेख किया है । गणनास्वामी शब्द गणना अर्थात बही-खाता रखने से सम्बन्ध रखता है । हिसाब-किताब रखने वाले अधिकारी से गणनास्वामी का अर्थ लगाना उचित होगा । क्षेमेन्द्र ने गणना स्थान-मण्डप का उल्लेख लोकप्रकाश (पृ० ३) मे किया है । गणना स्थान वर्तमान ट्रेजरी आफिस के समान एक विभाग था । उसका स्थान तथा कार्यालय अलग होता था । उसे गणना-मण्डप कहते थे । इसी प्रकार युद्ध-मण्डप, मन्त्री-मण्डप आदि का भी उल्लेख मिलता है ।

यदि गणना का पाठभेद 'भगिनी' ठीक मान लिया जाय तो इदगली के बहन का स्वामी दरिया ठहरता है । इदगली स्वयं नर्तकी थी । अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि या तो इदगली से दरिया का भी सम्बन्ध था अथवा राजा की हत्या के षडयन्त्र मे इदगली एक प्रमुख नायिका थी । जोनराज इस विषय पर कुछ और प्रकाश नहीं डालता अतएव यह विषय केवल अनुमान मा है ।

पाद टिप्पणी :

१२९ (१) शुचि = आषाढ़ मास । ऋतु के अनुसार ग्रीष्म होगी ।

राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि ४४०२ = शक १२३३ = लौ० ४३७७ = सन् १३०१ ई० राज्य-काल १९ वर्ष, ३ मास, २५ दिन, आइने अकबरी मे राज्यकाल ११ वर्ष, ३ मास, २६ दिन दिया है । वोलसिले हेग ने सुहदेव तथा सिहदेव को एक मान लिया है (केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : ३ : २७७)।

आइने अकबरी मे सुहदेव तथा सिहदेव का नाम एक समान लिखा गया है। जिससे उनके एक होने का भ्रम उत्पन्न होता है (२ : ३७८)। सुहदेव के स्थानपर शुद्ध नाम सहदेव होना चाहिए। फार्सी लिपि मे सुहदेव तथा सहदेव एक तरह से लिखा जाता है। फिरिस्ता ने नाम सेनदेव दिया है। (पृष्ठ ४५१ कलकत्ता)

समसामयिक घटनायें : सन् १३०२–१३०३ ई० मे अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौर विजय किया। पद्मिनी चित्तौर मे सती हुई। राजपूतो ने जौहर किया। चित्तौर का नाम बदलकर खिजिराबाद रख दिया गया। वरंगल पर शाही अभियान असफल रहा। सन् १३०४ ई० मे ४० हजार मुगलो ने भारत पर आक्रमण किया। दिल्ली मे वस्तुओ का मूल्य निर्धारण किया गया। कैकोश की मृत्यु हो गयी। शमसुद्दीन फिरूज शाह बगाल का मालिक बन गया। सन् १३०५ ई० मे ५७ हजार मुगल दिल्ली तक पहुँच गये। किन्तु पलायन करते हुए मार डाले गये। सन् १३०६ ई० मे मुगलो ने भारत पर पुनः आक्रमण किया। उन्हें भगा दिया गया। सन् १३०६–१३०७ मे मलिक काफूर ने देवगिरि पर सैनिक अभियान किया। मारवाड मे अलाउद्दीन खिलजी ने अपना अधिकार स्थापित किया। सन् १३०७–१३०८ ई० में भारत पर मुगलो ने आक्रमण किया। वे पीछे हटा दिये गये। सन् १३०८ ई० मे वरगल पर शाही सेना ने आक्रमण किया। प्रताप रुद्रदेव द्वितीय ने अधीनता स्वीकार कर ली। सन् १३१० ई० मे मलिक काफूर द्वारावतीपुर तथा मदुरा पहुँच गया। रामेश्वर मे प्रथम मसजिद बनायी गयी। पाण्ड्य तथा केरल राज्यो ने अधीनता स्वीकार कर ली। इसी वर्ष गयासुद्दीन बहादुर पूर्व बगाल मे स्वतन्त्र राजा बन गया। सन् १३११ ई० में मारवर्मन कुलशेखर पाण्ड्य की मृत्यु हो गयी। तेरह हजार मंगोल जो मुसलमान बन गये थे एक ही दिन मे दिल्ली के बादशाह की आज्ञा से मार डाले गये। सन् १३१२ ई० मे तीन भ्रात-बन्धुओ मे से एक पिहयू ने पिन्या मे राज्य स्थापित किया। सन् १३१४ ई० मे इंग्लैण्ड का राजा एडवर्ड द्वितीय बेनोर बरने मे पराजित हो गया।

सन् १३१६ ई० मे अलाउद्दीन की मृत्यु हो गयी। शहाबुद्दीन उमर बादशाह बना। मालिक काफूर की मृत्यु हो गयी। उमर राज्यच्युत कर दिया गया। कुतुबुद्दीन मुबारक बादशाह बना। सन् १३१७ ई० मे मुबारक ने देवगिरि पर अभियान किया। देवगिरि हस्तगत किया गया। हरपाल की मृत्यु हो गयी। सन् १३१८–१३३१ ई० मे असउद्दीन ने विद्रोह किया। फिरूज की मृत्यु हो गयी। शहाबुद्दीन बुघरा पश्चिम बङ्गाल की गद्दी पर बैठा। कालान्तर मे बुघरा गद्दी से बहादुर द्वारा उतार दिया गया।

सन् १३२० ई० मे मुबारक की हत्या कर दी गयी। नासिरुद्दीन खुसरू मालिक बन बैठा। खुसरू पराजित हुआ और मर गया। गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली का बादशाह बना। सन् १३२१ ई० मे मुहम्मद जौना ने वरंगल पर अभियान किया। उसका अपर नाम उलुघ खान था। मुहम्मद ने विद्रोह किया।

सन् १३२३ ई० मे द्वितीय अभियान वरंगल पर मुहम्मद जौना ने किया। प्रतापरुद्रदेव द्वितीय पकड लिया गया। वरगल का नाम बदल कर सुलतानाबाद रख दिया गया। मुगलो ने भारत पर आक्रमण किया। नासिरुद्दीन पश्चिम बङ्गाल की गद्दी पर बैठा। सन् १३२४ ई० मे फिरूज शाह ने बङ्गाल पर अभियान किया। फिरूज की मृत्यु पर मुहम्मद गद्दी पर बैठा। गयासुद्दीन बहादुर ने पुन: बङ्गाल प्राप्त किया। सन् १३२६ ई० मे सागर के सूबेदार बहाउद्दीन गुरशाप ने विद्रोह किया। कादिर खाँ बङ्गाल का गवर्नर हुआ। सन् १३२७ ई० म मुहम्मद तुगलक राजधानी दिल्ली से दौलताबाद ले गया। इसी सन् मे काम्पिली का पतन हुआ। सन् १३२८ ई० मे किशलू खाँ ने मुलतान मे विद्रोह किया। इसी वर्ष अलाउद्दीन, नरमा शिरीन मुगल ने भारत पर आक्रमण किया। सन् १३२९ ई० मे दिल्ली के लोग दौलताबाद ले जाये गये।

तद्भ्राता सूहदेवोऽथ कामसूहोपबृंहितः ।
जडोऽपि सकलामेव कश्मीरक्ष्मां वशे व्यधात् ॥ १३० ॥

सूहदेव (सन् १३०१–१३२० ई०[१])

१३० कामसूह की सहायता से उसका भाई सूहदेव जड़ होकर भी सकल काश्मीर को वश में कर लिया।

दिगन्तरादुपागत्य बहवो वृत्तिलिप्सया ।
तमाश्रयन्महीपालं पुष्पद्रुममिवालयः ॥ १३१ ॥

१३१ दिगन्तर से वृत्ति लिप्सा से बहुत से लोग उस राजा का आश्रय[१] उसी प्रकार प्राप्त किये जिस प्रकार भ्रमर द्रुम का।

इसी समय कागज की मुद्रा जारी हुई। सन् १३३० ई० में बहराम ने पूर्वी बङ्गाल का शासन लिया।

सन् १३३४ ई० में मदुरा में विद्रोह हुआ। इसी वर्ष मुहम्मद बिन तुग्लक ने अनीगुण्डी पर अधिकार किया। सन् १३३६ ई० में विजयनगर साम्राज्य की नींव पड़ी।

पाद-टिप्पणी :

१३० (१) सूहदेव : जोनराज ने सूहदेव के राज्यकाल का वर्णन लगभग ४४ श्लोकों में किया है। जोनराज इस स्थान से विस्तृत वर्णन देना आरम्भ करता है। सूहदेव के समय से मुस्लिम प्रभाव काश्मीर में प्रबल होने लगा। उसके मृत्यु के ठीक १९ वर्ष पश्चात् काश्मीर में मुस्लिम शासन स्थापित हो गया। मुस्लिम शासन की झलक भी दिखाई पड़ने लगी। दरबारी कवि जोनराज मुस्लिम जनता की रुचि के अनुकूल इस काल से सविस्तार घटनावली देने लगा है। जोनराज के समय प्रायः सभी काश्मीरियों ने मुस्लिम धर्म ग्रहण कर लिया था। मुस्लिम जनता की रुचि हिन्दू राजाओं के वर्णन की अपेक्षा किस प्रकार इस्लाम ने काश्मीर में प्रवेश किया इस ओर अपेक्षाकृत अधिक हो गई थी। काश्मीरी राजा विदेशियों से जो प्रायः बाहरी मुसलमान थे किस प्रकार लड़ते रहे और भारत पर मुस्लिम शासन स्थापित होने पर भी वे कैसे अपनी स्वतन्त्रता लगभग तीन शताब्दियों तक कायम रखे रहे, कैसे विदेशियों को बाहर निकालते रहे, इस पर किंचित प्रकाश नहीं डालता। उस पर प्रकाश डालना विदेशी मुसलमानों की विफलता का वर्णन करना था, जिसे पढ़ने और सुनने के लिए तत्कालीन जनता धार्मिक उन्माद में प्रस्तुत नहीं थी। शाहमीर ने काश्मीर में प्रवेश किया। उसने सिंहदेव राजा की नौकरी कर ली।

पाद-टिप्पणी :

१३१ (१) आश्रय : भारत में तत्कालीन परिस्थिति अव्यवस्थित थी। उत्तर भारत उत्तर-पश्चिम से होने वाले मुगलों के आक्रमण से त्रस्त रहता था। अलाउद्दीन खिलजी दक्षिण विजय में व्यस्त था। उत्तर भारत में खैबर दर्रे से आकर चाहे जब कोई आक्रमण कर सकता था। उत्तर-पश्चिम की जनता प्राय मुसलमान हो चली थी। किन्तु मुसलमान होने पर भी मुगलों ने उन पर दया न की। अराजकता व्याप्त थी। ऐसी स्थिति में काम की तलाश में सैनिक तथा अन्य लोग उपयुक्त स्थान ढूंढ़ रहे थे। जहाँ वे सुरक्षित रह सकें। युद्धों में पकड़कर दास बनाये, लोगों का भी एक समूह बन गया था। यदि वे हिन्दू होते तो उनके सामने दो ही विकल्प थे। या तो मुसलमान धर्म स्वीकार करते अथवा तलवार की धार मरते। इस प्रकार नव-मुस्लिमों की विचित्र परिस्थिति हो गयी

थी। वे धर्म-त्याग के कारण अपने पुराने घर वापस जाकर पुराने सामाजिक जीवन मे मिल नहीं सकते थे। उन पर विदेशी पठान मुगल मुसलिमो का भरोसा भी नही था। अतएव वे यत्र-तत्र अपने जीवकोपार्जन के लिये घूमने लगे।

काश्मीर मे हिन्दू राज्य था। वे विश्व की नवीन चेतना, नवीन नीति, नवीन धार्मिक उन्माद, प्रवर्तक धर्मो के प्रचार से अनभिज्ञ थे। भारत मे आने वाले विदेशियो का स्वागत किया करते थे। धार्मिक स्वतन्त्रता देते थे। उस समय उत्तर-पश्चिम मे केवल काश्मीर स्वतन्त्र हिन्दू राज्य बच गया था। काश्मीर की सीमा पर त्रस्त तथा नौकरी के इच्छुक पारस्परिक झगडो से भयभीत अन्य जातियाँ काश्मीर मे प्रवेश करने लगी। काश्मीर भगोडों, साहसी व्यक्तियो के लिये आदर्श स्थान हो गया। उनके प्रवेश पर रोक नही लगा। राजा ने शरणार्थियों को आश्रय ओरजीविका दी। नव-मुसलिमों में पूर्वकालीन हिन्दू सीमान्तवर्ती जातियाँ भी थी।

राजा की इस मुक्त-आश्रय नीति के कारण काश्मीर की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था बिगडने लगी। विदेशियो का एक अलग संघटन बन गया। उन्हे काश्मीर की संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास से प्रेम नही था। वे जीविका के अन्वेषण मे आये थे। उनका एक मात्र पेशा काश्मीर से अधिकाधिक लाभ उठाना था। इस नीति ने काश्मीर का सर्वनाश कर दिया। स्थिति दिन पर दिन बिगडती गयी। उनमे एक शाहमीर भी था। जिसके वंश का वर्णन जोनराज करता है।

राजा सहदेव के समय एक और अभूतपूर्व घटना घटी। इसी राजा के समय अलंकार चक्र (लंकर चक्र) ने भी वृत्ति की आकाक्षा से काश्मीर मे प्रवेश किया। वह दरद-मण्डल किंवा दरददेश अथवा दर्दिस्तान का निवासी था।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामनपुराणो मे दरद का नाम काम्बोज के साथ लिया गया है। वायु तथा ब्रह्माण्डपुराणों मे 'दरदांश्च स काश्मीरान्' अर्थात् दरद का काश्मीर के साथ उल्लेख मिलता है। दरद जाति तथा देश का वर्णन पुराणो तथा महाभारत में अत्यधिक मिलता है। दरद देश का काश्मीर के साथ उल्लेख वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणो में किया गया है। दारदिक तथा पैशाची भाषा आर्य भाषा की एक शाखा है। दरदी भाषा ने काश्मीरी भाषा को प्रभावित किया है। दरद को दरस भी कहते हैं। यह काश्मीर-मण्डल की सीमा पर है। काश्मीर राजा गोनन्द के साथ दरद नरेश ने भगवान् कृष्ण के विरुद्ध जरासन्ध की ओर से युद्ध किया था। स्कन्दपुराण के देशों की तालिका मे दरद का क्रमस्थान १० वाँ तथा ग्राम संख्या ३ लाख ५ हजार दी गयी है। पूर्वोत्तर दिशा का देश महाभारत मे माना गया है। दरद किंवा दर्दुर पर्वतमाला मे निवास करने के कारण उनका नाम दरद पडा था। श्रीस्ट्राबो ने उन्हें दरदायी तथा श्रीप्लिनी ने दरदेयी कहा है। श्रीपिरीज़ उसे दरदामी कहता है। वह लम्पक (लगमान) स्यात तथा सिन्धु उपत्यका के अधोभाग में उसका स्थान बताते हैं।

दरद आज भी काश्मीर का एक प्रदेश है। काश्मीर मण्डल के उत्तर मे है। उसे दर्दिस्तान कहते है। इसमे वर्तमान चित्राल, चिलास, गिलगिट, दारेल अर्थात् पाकिस्तान आदि स्थान आ जाते हैं।

जातको मे इसकी स्थिति हिमवा अर्थात् हिमालय मे बतायी गयी है। जातको मे उपचर के पाँचवें पुत्र के दद्दरपुर नगर बसाने का उल्लेख किया गया है। मारकण्डेयपुराण मे वर्णित हिमालय के अन्तर्गत दर्दुर पर्वत है, दद्दर है। यहाँ पर्वतो के मध्य रगड द्वारा दद्दर ध्वनियाँ उठती रहती है। इसलिए इसका नाम दरद पड गया है। दरेल सिन्धु नदी के दक्षिण अर्थात् पश्चिमी तट की एक उपत्यका है। वहाँ दरदुस अर्थात् दरद जाति निवास करती है। फाहियान उसे तो-नी कहता है। फाहियान के समय वह एक अलग राज्य था। वे तीन स्थानीय भाषाओ

पार्थोऽन्य इव पार्थोऽभूत् पञ्चगह्वरसीमनि ।
यो गर्भरपुरं चक्रे तत्पुत्रो बभ्रुवाहनः ॥ १३२ ॥

१३२ पच गह्वर[1] की सीमापर वह पार्थ (पृथ्वीपति) दूसरा पार्थ[2] (अर्जुन) हो गया था। उसका पुत्र बभ्रुवाहन[3] गर्भर[4] पुर का निर्माण किया।

में विभक्त हो गये है। अरनिया बोली बोलने वाले उत्तरी-पश्चिमी पासीन तथा चित्राल अचल के जिला मे रहते हैं। खजुनाह बोली बोलने वाले उत्तर पूर्वीय हुजा एव नागर के जिलो मे रहते हैं। शिना बोली बोलने वाले गिलगिट, चिलास, दरेली, कोहली, पालस, उपत्यका मे सिन्धु नदी के किनारे किनारे रहते है।

राजा सहिष्णु था। पुरातन शरण देने की राजकीय प्रथा एव धर्मनिरपेक्ष भावना अथवा विधि की आज्ञा किंवा प्रेरणा के कारण उसने अलङ्कार चक्र का वश जो भविष्य मे काश्मीर का राजा होने वाला था, दरद देश से वृत्ति हेतु आया था और जो, उसे क्रमराज्य मे त्राह नामक ग्राम निवास हेतु दिया था। लकर चक्र वहीं निवास करता अपनी शक्ति सचय करता रहा। यह काश्मीर के मुसलिम राजा चक्र वश का पूर्व पुरुष था। उसके वश ने काश्मीर का राज्य सन् १५५१ से १५८६ ईसवी तक किया था। अलङ्कार चक्र के पिता का नाम चरण्ड चक्र दिया गया है। इस वश का प्रथम राजा गाजीशाह सन् १५६१–१५६३ ई० तक शासन किया था। हुसेनशाह चक सन् १५६३–१५७० ई०, अलीशाह चक सन् १५७०–१५७८, युसुफशाह चक सन् १५७८, लोहरशाह चक सन् १५७९–१५८०, युसुफशाह चक १५८०–१५८६ ई० तथा याकूबशाह चक सन् १५८६ ई०। हुसेनशाह सन १५८६ तथा याकूबशाह १५८६ से १५८८ ई० तक काश्मीर मे शासन किये थे। सन् १५८८ ई० में मुगलो का काश्मीर मे आधिपत्य स्थापित हो गया। काश्मीर के इतिहास म प्रथम बार विदेशी सत्ता स्थापित हुई। अन्यथा हिंदू अथवा मुसल्मान दोनों ही राजा काश्मीरी ही थे। सन् १७५२ ई० म काश्मीर पर अफगानों का आधिपत्य स्थापित हो गया। अफगानो का शासन काश्मीर पर सन् १८१९ ई० तक रहा। तत्पश्चात् सिखो का अधिकार काश्मीर मे हुआ। उनका राज्य सन् १८४६ ई० तक कायम रहा। अनतर डोगरा वश का राज्य सन् १८४६ ई० म स्थापित हुआ। इस वश के पश्चात् सन् १९४८ ई० मे भारतीय गणतन्त्र का एक इकाई बन गया। काश्मीर म लोकतन्त्रीय प्रणाली स्थापित हुई।

पाद-टिप्पणी

१३२ (१) पच गह्वर यह पज गब्बर की उपत्यका है। खस जाति का निवासस्थान है। श्रीवर ने पचगह्वर का उल्लेख किया है उसके समय पन्द्रहवी शताब्दी तक यही नाम प्रचलित था।

पचगह्वरराजा केचित् सिधुपत्य क्रमोदिता ।
खशा म्लेच्छास्तथान्येऽपि दधु सर्वतो दिश॥

४ २१२

खशो को इस समय खख्खा कहा जाता था। खख्ख मुसलमान भी थे। उन्हें अब भी राजपूत मुसलमान कहा जाता है। राजौरी का शासक खश नाम से प्राय अभिहित हुये हैं। उनकी सेना को खशा कहा गया है। राजपुरी से पूर्व और ऊपर चलने पर बास नदी की अधो ग्रामीय उपत्यका मिलती है। इस नदी को इस समय पजगब्बर कहते है। श्रीवर ने इस नदी को पचगह्वर लिखा है। उसे खशो का निवासस्थान माना है। उसने पूर्व दिशा म स्थान [illegible] किया बतलाता है। राजौरी अर्थात राजपुरी के पूर्व अचल की सभा [illegible] स्थानो पर पचगह्वर नाम [illegible] दी गयी है। पच गह्वर का श्रीवर ने देश भी कहा है (जैन ३ १०१)।

आरेल स्टीन के अनुसार [illegible] किया गया

सरदार वितस्ता नदी की अधोभागीय उपत्यका तथा कुनिहर नदी के नैऋर्त्य दिशा काश्मीर मे निवास करते थे। इस समय वे सब मुसलमान हो गये है। पूर्व समय अफगान आक्रमण से भयभीत होकर इस अचल मे भाग कर आ गये थे। खस लोग ही खखा किंवा परसियन इतिहासकारो द्वारा वर्णित खुखुर जाति के पूर्व पुरुष थे। खख तथा हतमाल जाति राजपूत थी। वे झेलम के वाम तट पर बारहमूला तथा कोहाला के मध्य निवास करते थे। सुलतान जैनुल आबदीन के समय मुसलिम धर्म स्वीकार किये थे। खख तथा हातिम उनके नेता थे। उनका नाम खखू खा तथा हातिम खा पड गया था। सुलतान जैनुल आबदीन ने उन्हे बारहमूला तथा मुजफ्फराबाद के मध्यवर्तीय भूभाग मे जागीर दिया था।

(२) पार्थ. जोनराज काव्य भाषा मे वर्णन करता है—'पार्थोऽन्यइव पार्थोऽभूत्' पार्थ दूसरा पार्थ हो गया था। फार्सी मे इसका गलत अनुवाद किया गया है कि अर्जुन जो पाण्डव था। अर्थात् आइने अकबरी मे (२ ३८६) तथा तबकाते अकबरी (३ : ४२४) मे वर्णन उक्त गलत अनुवाद पर आधारित है। जहाँ कहा गया है कि शाहमीर ने अपना वंश अर्जुन से जोडा है। कुयर मे प्राप्त शारदा लिपी का अभिलेख प्रतापसिंह सग्रहालय श्रीनगर मे रक्षित है। वह लौकिक सम्वत ४४४५= सन् १३६९ ई० क। है। उसकी नवी पक्ति मे शाहबुद्दीन को पाण्डव वशज लिखा गया है। उक्त अभिलेख से पता चलता है कि काश्मीर का चौथा मुसलिम शाहमीर के वशज सुलतान ने अपने को पाण्डव वंशज माना है। शाहबुद्दीन का राज्य-काल सन् १३५५–१३७३ ई० है। 'एक पाण्डव वंशज' तथा 'पाण्डवो का एक वशज' दो विवृति हो सकती है। प्रथम विवृति ठीक मालूम होती है। क्योंकि पाण्डव मालूम होता है कि शाहमीर के पूर्वजो में एक नाम था। यह बात अलिखित है। एक-मात्र जोनराज के पूर्व का प्रमाण उक्त शिलालेख है। यह शिलालेख जोनराज के राजतरगिणी लिखने के ६४ वर्ष पूर्व का प्रतीत होता है। जोनराज ने उक्त शिलालेख एव तत्कालीन प्रचलित जनश्रुति के आधार पर शाहमीर के वश को पाण्डव वश लिखा है। पाण्डव वश एव महाभारतकालीन पाण्डव को एक मानना भ्रामक होगा।

फिरिश्ता ने दूसरी वशावली दी है। शाहमीर ताहिर का पुत्र शाहमीर था। अल्ल का पुत्र ताहिर था। कुरशास्प का पुत्र अल्ल था। नीकोदुर का पुत्र कुरशास्प था। नीकोदुर अर्जुन का वशज था। (पृष्ठ ४५२ कलकत्ता) शाहमीर परसियन नाम है। ताहिर अरब नाम है। अर्जुन हिन्दू नाम है। कुरशास्प पारसी नाम है। निकोदुर भी पारसी नाम है। अल्ल का अर्थ नही लगता। इस प्रकार परसियन, हिन्दू, सबसे सम्बन्ध जोडा गया है।

(३) बभ्रुवाहन. चित्रवाहन की पुत्री चित्रागदा थी। अर्जुन का चित्रागदा से विवाह हुआ था। बभ्रुवाहन अपने नाना की मृत्यु के पश्चात राजा हुआ। चित्रवाहन ने विवाह के समय ही यह शर्त रख दिया था—इसके गर्भ से जो पुत्र होगा वह मणिपुर मे ही रहकर कुल परम्परा का प्रवर्तक होगा। इस कन्या के विवाह का यही शुल्क आपको देना होगा।

बभ्रुवाहन अर्जुन के पुत्र थे। मणिपुर की राजकन्या चित्रागदा इनकी माता थी। नाना की मृत्यु के पश्चात मणीपुर का राजा हुआ। नागकन्या उलूपी उनकी विमाता थी। उसकी प्रेरणा पर युधिष्ठिर के अश्वमेध अश्व को इसने पकड लिया। अर्जुन के साथ घोर युद्ध हुआ। अर्जुन की सघर्ष मे मणिपुर के समीप उसकी मृत्यु हो गयी। चित्रागदा रणभूमि में आयी। उसने नागकन्या उलूपी तथा बभ्रुवाहन को बहुत धिक्कारा। पति अर्जुन के साथ सती होने के लिये तत्पर हो गयी। बभ्रुवाहन का सत्य जान लेने पर विलाप तथा आमरण अनशन की प्रतिज्ञा करना। उलूपी ने सजीवनी मणि का स्मरण किया। मणि प्राप्त हुई। उलूपी के आदश पर बभ्रुवाहन ने मणि

तद्वंश्यः कुरुशाहोऽभूद् यद्बाहूदयपर्वते ।
ज्याकिणच्छद्मना भेजे यशःशुभ्रत्विषं निशा ॥ १३३ ॥

परशाह :

१३३. तद् वंशीय कुरुशाह[1] था। जिसके बाहुरूपी उदय पर्वत पर ज्या[2] (प्रत्यंचा) चिह्न के छद्म से यशः चन्द्र समन्वित निशा राजती थी।[3]

कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः ।
इत्येतत्प्रत्ययायेव यस्यासीच्चक्षुषां त्रयम् ॥ १३४ ॥

१३४ काश्मीर पार्वती[1] है, वहाँ का राजा हरांश है, इसी के विश्वास हेतु ही मानो उसके तीन नेत्र थे।

पिता अर्जुन के वक्षस्थल पर रख दिया। अर्जुन जीवित हो गये। अपनी माता चित्रांगदा तथा उलूपी के साथ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुए थे। वह कुन्ती के भवन में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण ने बभ्रुवाहन को दिव्य अश्वों से योजित सुवर्ण रथ प्रदान किया।

(आदि . २१६ . २४, २१४ : २४–२६, आश्व-पर्व ७९, ८०, ८१, ८६, ८७, ८८, तथा ८९।

(४) गर्भरपुर : श्री राजानक रत्नकण्ठ ने गरभरपुर को वर्तमान गुभर माना है। श्रीस्तीन के प्राचीन काश्मीर मानचित्र में वुदिल क्षेत्र में पज गब्बर के पूर्व गब्बर लिखकर दिखाया गया है।

पाद-टिप्पणी :

१३३ (१) कुरुशाह : जोनराज ने अपने दरबारी कवि का रूप यहाँ प्रकट किया है। भाटों एवं चारणों के समान उसने शाहमीर के पूर्व पुरुषों का सम्बन्ध बभ्रुवाहन से जोड़कर उसे उच्चवंशीय प्रकट करने का प्रयास आरम्भ किया है। यदि कुरुशाह बभ्रुवाहन के वंश का था तो वह अथवा उसके पूर्वज मुसलमान हो गये थे।

(२) ज्या = अर्जुन का प्रिय धनुष गाण्डीव है। उसके प्रत्यंचा का चिह्न अर्जुन के शरीर पर था। यही समानता दिखाने के लिए गाण्डीव धनुष के समान कुरुशाह भी धनुष बाण में निपुण था। प्रत्यंचा का चिह्न उसके शरीर पर था, जोनराज ने तुलना के लिए यह प्रसङ्ग जोड़ा है।

(३) जोनराज ने पौराणिक गाथाशैली यहाँ अपनाई है। वह कुरुशाह की वंश परम्परा दैवी प्रमाणित करने के लिए गाथा का आश्रय लिया है। वह किस आधार पर कुरुशाह को बभ्रुवाहन का वंशज लिखता है कोई प्रमाण नहीं उपस्थित करता। नाम 'कुरु' देकर वह कुरुशाह को कुरुवंश के नाम तथा बभ्रुवाहन से सम्बन्धित करता है।

पाद-टिप्पणी :

१३४ (१) काश्मीर पार्वती : जोनराज ने नील-मत पुराण, क्षेमेन्द्र तथा कल्हण की राजतरङ्गिणी के निम्नलिखित श्लोकों के आधार पर इस पद की रचना की है—

काश्मीराया तथा राजा त्वया ज्ञेयो हरांशजः ॥
नील० : २३७–३१४

× × ×

काश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेय: शिवांशजः ॥
रा० त० : १ : ७२

× × ×

कश्मीरेषु हि साम्राज्यं कुरुशाहस्य सन्ततिः ।
शंशदेनमुखी मुख्या ख्यातकीर्तिः करिष्यति ॥ १३५ ॥

१३५ प्रख्यात कीर्ति शशदेन[1] (शमसुद्दीन) प्रमुख कुरुशाह की सन्तति कास्मीर पर राज्य करेगी[2]—

सती च पार्वती ज्ञेया राजा ज्ञेयो हराशजः ॥
लोक . ४ : ३ : पृष्ठ ६१

× × ×

(२) त्रिनेत्र = कुरुशाह का गौरव प्रकट करने के लिए उसकी तुलना शिव से की गई है। शिव त्रिनेत्र है। कुरुशाह भी त्रिनेत्र था। जोनराज प्रमाणित करना चाहता है। शाहमीर के पूर्व पुरुष तथा उसके वंशज वास्तव मे 'हराशज' अर्थात् शिव के ही अंश थे। काश्मीर हिन्दू समय मे भी हराशज राजाओ द्वारा शासित होता रहा और मुसलिम काल मे भी हराशज मुसलिम बादशाहो द्वारा शासित हो रहा था। अतएव मुसलिम शासन हो जाने से कोई अन्तर नही पडा। हराशज काश्मीर राजा यथावत हिन्दू एवं मुसलिम काल मे वर्तमान था। जोनराज इस प्रकार जनता मे शाहमीर तथा उसके वंशजो के शासन मे काश्मीरियो की जनता का विश्वास उत्पन्न कराता है। वह काश्मीरी जनता को इसका अनुभव नही कराना चाहता कि विदेशी शासन काश्मीर मे स्थापित हो गया था। उनके देश आदि पर वह शीतल जल छिडक कर, यदि स्वाभिमान की किंचित् मात्र ज्योति वही टिमटिमाती भी थी उसे शान्त कर देता है।

पूर्व श्लोक मे उसे बभ्रुवाहनवंशीय और इस श्लोक मे उसे त्रिनेत्र साक्षात् भगवान् शिव रूप मे जोनराज ने चित्रित किया है। इस कथा का आधार क्या है? जोनराज नही देता।

पाद-टिप्पणी :

१३५ (१) शशदेन = शमसुद्दीन काश्मीर मे कुरुशाह वंश का प्रथम राजा हुआ। उसका मूल नाम शाहमीर था। कोटा रानी के वध के पश्चात् हिन्दू काल समाप्त होकर मुसलिम वंश का क्रम आरम्भ होता है। राजा होने पर शाहमीर ने अपना नाम शमसुद्दीन रखा। शंशदेन शब्द शमसुद्दीन का संस्कृत रूप है। शमसुद्दीन ने सन् १३३९ से १३४२ ई० तक शासन किया था। इसके वंश मे राज्य सन् १३४२ ई० के सन् १५६० ई० तक रहा। तत्पश्चात् चक वंश का राज्य १५६० से १५८८ ई०, मुगल शासन १५८८ से १७५२ ई०, अफगान शासन सन् १७५२ ई० से १८१९ ई० तक काश्मीर मे था। इस प्रकार मुसलिम शासन काश्मीर मे शाहमीर से सिख काल तक ५८० वर्ष तक, शाहमीरी, चक, मुगल तथा अफगानो के शासन मे था। तत्पश्चात् सिख तथा डोगरा राज सन् १९४७ ई० तक काश्मीर मे था। सन् १९४७ ई० के पश्चात् भारतीय गणराज्य का एक अंश है।

(२) राज्य करेगी : जोनराज ने भविष्यद्‌वाणी भी करा दिया है। काश्मीर की जनता मे किंचित् मात्र भी सन्देह न रह जाय कि उस पर विदेशी सत्ता एवं धर्म लादा गया है। उस भ्रम को मिटाने के लिए भविष्यद्‌वाणी का आश्रय जोनराज ने लिया है। जनता यह समझ जाय। काश्मीर मे जो हुआ है, वह भाग्य का खेल था। विधाता का विधान था। वह होने ही वाला था। ईश्वर की ही इच्छा से हिन्दूराज के स्थान पर मुसलिम राज्य काश्मीर मे स्थापित हुआ था। इसलिए चिन्ता की कोई बात नही थी।

जोनराज ने भविष्यद्‌वाणी की शैली भविष्य-पुराण तथा पृथ्वीराज रासो मे उल्लिखित भविष्यद्‌वाणी के आधार पर किया है। दिल्ली की स्थापना

ताहरालोऽजनिष्टास्मायस्य चापलताश्रिता ।
मुहुर्मुहुरहो मौर्वी श्रुत्यन्तमगमत्तराम् ॥ १३६ ॥

१३६ इसी से ताहराल[1] उत्पन्न हुआ। आश्चर्य है ! जिसकी चपल मौर्वी बार-बार कानों तक आती थी—

शहमेरः स्वशौर्योष्माग्रीष्मो भानुस्ततोऽजनि ।
यस्य वैरिवधूबाष्पैः प्रतापाग्निरदीप्यत ॥ १३७ ॥

१३७ उससे शहमेर (शाहमीर) उत्पन्न हुआ। जो अपनी शौर्य-उष्मा से ग्रीष्म ऋतु का भानु था। वैर वधू के वाष्पों (अश्रुओं) से जिसकी प्रतापाग्नि जलती थी।

वने विहरतस्तस्य शहमेरस्य कदाचन ।
मृगया प्रथमं दृष्टिं पश्चान्निद्रा व्यलोभयत् ॥ १३८ ॥

१३८ किसी समय वन में विहार करते, उस शाहमीर की दृष्टि को पहले मृगया, पश्चात् निद्रा ने लुभाया।

राज्यमा संततेर्भावि कश्मीरेषु तवेति सः ।
स्वप्ने वाक्सुधया तत्र महादेव्याभ्यषिच्यत ॥ १३९ ॥

१३९ 'काश्मीर में राज्य लक्ष्मी-तुम्हारी सन्तति की होगी—' वहाँ पर वाक्-सुधा से महादेवी[1] ने स्वप्न में उसे अभिषिञ्चित किया।

के समय वीरभद्र ने भविष्यद्वाणी की थी। दिल्ली पर किस प्रकार अन्य वंशजों का अधिकार होगा। जोनराज का वर्णन उसी का स्मरण दिलाता है। जो दिल्ली में हुआ वही काश्मीर में हुआ। सब भाग्य एवं निश्चित दैवी योजना के कारण हुआ। इस भावना ने दिल्ली एवं काश्मीरवासियों में विदेशी सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति का सर्वथा लोप कर दिया था। इसका ठीक उलटा मेवाड़ में हुआ। जहाँ स्वतन्त्रता एवं देश के लिए युद्ध संघर्ष एवं त्याग करने के लिए *त्याग*, उत्सर्ग एवं स्वकर्म पर विश्वास करने की बात निरन्तर कही जाती रही।

पाद-टिप्पणी :

१३६ (१) ताहराल : शाहमीर की वंशावली जोनराज देता है : कुरुशाह का पुत्र ताहराल तथा ताहराल का पुत्र शाहमीर था।

अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन था। बभ्रुवाहन का पुत्र जगवाहन था। जगवाहन का पुत्र शातवाहन था। शातवाहन का पुत्र नागवाहन था। नागवाहन का पुत्र नीलवाहन था। नीलवाहन का पुत्र चित्रवाहन था। उसका पुत्र नेकरोज था। नेकरोज का पुत्र ताहराल था। ताहराल का पुत्र शमसुद्दीन किंवा शाहमीर था।

पाद-टिप्पणी :

१३९ (१) *महादेवी : महादेव की पत्नी* महादेवी अथवा पार्वती है। जोनराज ने प्राचीन परम्परा की ओर संकेत किया है। काश्मीर भूमि

पञ्चाग्न्यर्कमिते शाके नवाष्टाङ्कितवत्सरे ।
ततः सपरिवारः स कश्मीरानविशच्छनैः ॥ १४० ॥

१४० उन्यासीवे (४३८६)[1] वर्ष शक १२३५ में वहाँ से वह सपरिवार काश्मीर में शनैः शनैः प्रवेश किया ।

सतीसर है, पार्वतीस्वरूप है। अतएव पार्वती ने, काश्मीर ने स्वयं राजा को, शाहमीर को स्वप्न में अभिषिक्त किया था। महादेवी द्वारा आशीर्वाद तथा अभिषिक्त कराकर जोनराज ने शाहमीर की अलौकिकता सिद्ध की है। देवी पार्वती ने स्वयं शाहमीर का अभिषेक किया था। काश्मीर में शाहमीर तथा उसके वंशजों की राज्य प्राप्ति होना दैवी विधान था। उसका प्रतिरोध अनुचित था। यदि काश्मीर में विदेशी वंश का शासन स्थापित हो गया तो इससे कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। महादेवी पार्वती की स्वयं यही इच्छा थी। इस प्रकार इस मनोवृत्ति ने काश्मीरियों का मनोबल तोड दिया। वे शाहमीर तथा मुसलिम शासन का प्रतिरोध कभी नहीं कर सके। नीलमत पुराण ने काश्मीर को सती अर्थात् पार्वती किंवा महादेवी का देश कहा है।

नौदेहेन सती देवी भूमिर्भवति पार्थिव ।
मयतं तु भयो भवति सरस तु विमलोदकम् ॥ ५३

यश्यो जगापतम् रम्यं तदर्धेन च विस्तृतम् ।
सतीदेश इति ख्यातं देवाक्रीडं मनोहरम् ॥ ५४

कल्हण कहता है—कल्प का आरम्भ था। छ. मन्वन्तर बीत चुके थे। उस पुराकाल में हिमाद्रि कुक्षि में अर्णवपूर्ण सतीसर था।

पुरा सतीसरः कल्पारम्भात् प्रभृति भूरभूत् ।
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट् ॥
(रा० : १ : २५)

× × ×

सतीसर का जल वारहमूला के समीप पर्वत विदारित कर निकाल दिया गया। भूमि सूख गयी। काश्मीर उपत्यका बन गयी। देवी गौरी अर्थात पार्वती किंवा महादेवी या सती द्वारा काश्मीर मण्डल पालित है। इसका उल्लेख कल्हण करता है—

गुहोन्मुखा नागमुखापीतभूरिपया क्वचित् ।
गौरीपत्रवितस्तार्थं याताऽप्युज्ज्ञति नोचिताम् ॥
(१: २९)

क्षेमेन्द्र ने भी काश्मीर को सतीसार नाम की संज्ञा लोकप्रकाश में तीन स्थानों पर दी है।

श्रीमत्सतीसरासा शारिका शैल विभूषितम् ॥
(पृ० ३४)

× × ×

त्रिविष्टपस्य सारं तत्पार्थिवं क्षेत्रमीश्वरम् ।
तत्रापि सारं हिमवास्तत्र सारं सतीसरः ॥
(२ ॥ पृ० ६०)

× × ×

मनुवा रजमित्युचुः पूतनात्कथ्यते किल ।
सतीसरसि ग्रामाणा पद्र प्रमाण मुदीरितम् ॥
(३ ॥ पृ० ६०)

सोलहवी शताब्दी तक काश्मीर का नाम सतीसर भी प्रचलित था। काश्मीर पर मुगलों के आक्रमण की चर्चा करते हुए पुनः वह सतीसार देश का उल्लेख करता है।

पाद-टिप्पणी :

१४०. (१) उन्यासीवें वर्ष : हमारी काल गणना के अनुसार सप्तर्षि ४३८९ वर्ष = सन १३१३ ई० = शक १२३५ वर्ष = विक्रमी सम्वत् १३७० होगा।

सकुटुम्बं तमायान्तं वृत्तिदानेन भूपतिः।
अनुजग्राह सोत्कर्षं चूतद्रुम इवालिनम्॥ १४१॥

१४१ उत्कर्ष सहित सकुटुम्ब आते हुए, उसे वृत्ति[1] प्रदान कर, उसी प्रकार भूपति ने अनुगृहीत किया, जैसे आम्र वृक्ष भ्रमर को।

डुलचाख्यः कर्मसेनचक्रवर्तिचमूपतिः।
कश्मीरान् स तदैवागात् सिंहो मृगगुहामिव॥ १४२॥

१४२ उसी समय चक्रवर्ती कर्मसेन[1] का चमूपति डुलच[2], सिंह के मृग गुफा में प्रवेश करने तुल्य, काश्मीर में प्रवेश[3] किया।

पाद टिप्पणी

१४१ (१) वृत्ति राजा सहदेव किंवा सुहदेव ने शाहमीर तथा उसके कुटुम्ब को आश्रय प्रदान किया था। उसे वृत्ति भी दी। शाहमीर शरणार्थी था। राजा ने जीविकोपार्जन हेतु गाव दिया था। गाव का परसियन इतिहासकारों ने भिन्न भिन्न नाम दिया है। एक मत है कि वह दारावतर ग्राम था। यह शब्द दारावती किंवा द्वारावती है। द्वारावत में ही अन्दरकोट था। अन्दरकोट एक दुर्ग था। एक मत है कि अन्दरकोट में ही शाहमीर को स्थान दिया गया था। इसी अन्दरकोट में शाहमीर ने कोटा देवी की हत्या कर काश्मीर का राजा बन बैठा था।

मोहिबुल हसन लिखते हैं—सहदेव इन दिनों काश्मीर का हुक्मरां था। उसने शाहमीर को मुलाजिमत दे दी। बारहमूला के पास इसको एक गाँव बतौर जागीर अता किया (मोहीबु उर्दू पृ० ६० बहारिस्तान शाही ९ बी) तबकात अकबरी (३ ४२४,) गाव का नाम नहीं दिया गया है।

पाद टिप्पणी

(१) कर्मसेन=यह नाम भारतीय प्रतीत होता है। मङ्गोलियन नाम नहीं है। हिमाचल प्रदेश में सेन वंशीय क्षत्रियों का राज्य था। एक मत है कि किसी मङ्गोल किंवा तुर्क नाम का यह संस्कृतकरण है। दूसरा मत है कि यह भौगोलिक नाम है। यदि इसे भौगोलिक नाम मान लिया जाय तो यह तुर्किस्तान के कर्मुंचिन अथवा कर्मंचिन क्षेत्र का संस्कृत रूप हो सकता है।

शारदा लिपि काश्मीर की लिपि है। आज भी काश्मीरी पञ्चाङ्ग शारदा लिपि में छपता है। ब्राह्मी के पश्चात् शारदा तत्पश्चात् नागरी लिपि का प्रसार पश्चिमोत्तर भारत में हुआ था। शारदा लिपि में लिपिकों की असावधानी से 'च' तथा 'स' एक सदृश लगते हैं। यदि लेखक की शिथिलता के कारण 'स' को 'च' मान लिया जाय या पढ़ा जाय तो 'कर्मंचिन' नाम 'कर्मसिन' पढ़ा जायगा। उसी का रूप कर्मसेन हो सकता है।

डुलचा तुर्किस्तान से आया था। यदि वह किसी राजा का सेनापति था तो वह 'कर्मसिन' हो सकता है। जिसने तुर्किस्तान की प्रबल अश्वारोही शक्ति के साथ काश्मीर में प्रवेश किया था।

(तुर्किस्तान १४०)

१४२ (२) डुलच जोनराज ने डुलच का उल्लेख श्लोक १४२ १४५ १५४ १८५, १८६, १५९, १६०, १६१, १६३, २३२ तथा २९९ आदि में किया है। जोनराज परवर्ती लेखकों ने इस शब्द का उच्चारण भिन्न भिन्न रूपों में किया है। डुल्चू शब्द का प्रयोग डुलच के लिए पारसियन इतिहासकारों ने किया है। डुल्चा, डुलचा, डुल्च्छा, का नाम रूप तथा [illegible] नाम [illegible] भी दिया गया है।

(वाकियात काश्मीर २७, तारीख ई नारायण कौल पाण्डु ३९६ तारीख हसन २ १६२ ।)

दुलच कौन था ? विवादास्पद है। एक मत है वह मङ्गोल था। मङ्गोल खानो की सेवा मे था। उसका पद दरुकचेन अर्थात् दु लु हुश ची राजकीय प्रशासक था। (युअन चओ पी शी १७६ तथा मिडीवल रिसर्चेज २ ११) दूसरा मत है। वह सैनिक अधिकारी अथवा कलक्टर था (तुर्किस्तान पृष्ठ ४०१)। यह पद उन लोगो के लिए दिया जाता था, जो मङ्गोल शक्ति का प्रतिनिधित्व विजित प्रान्तो मे करते थे (फोर स्टडीज १ १११)। श्री ब्रिस्टस्चेनरीदर इस पद को तू हू हुश पढते है। उनका मत है—पद दरुगा अथवा राज्यपाल के समकक्ष था। (मिडीवल रिसर्चेज् १ १३८, नोट ३६८)। बाइजेण्टाइन लोग इस पद को 'दारेगस समझते थे। पश्चिमी मङ्गोल कलमुक उसे दरघुई कहते थे (हिस्ट्री आफ मङ्गोल ३ १५३)। श्री नीलकण्ठ कौल का अनुमान है कि दुलच शब्द दु लु-हुश ची का भारतीयकरण जोनराज द्वारा किया गया है। (जोन ६५)। चीनियो ने मङ्गोल शब्द दरुवचेन से इसे लिया है। इस प्रकार दुलचा किसी आक्रमक व्यक्ति का नाम नही परन्तु वह मङ्गोलियन प्रशासन म एक कार्यस्थानीय नाम था।

पारसियन इतिहासकार इसे जुलजू कहते है। उसका नाम जो जलचा-दुलचा भी मिलता है। सर्वश्री नारायण कौल एव आजम ने इस नाम का परसियन-करण कर जुल्कदर खाँ बना दिया है। अबुल फजल ने उसे क दहार के शाह का सेनापति बताया है (आइने अकबरी जरेट २ ३८१)। फिरिश्ता तथा नाजिमुद्दीन ने उसे क दहार क सुल्तान का मीर बख्शी बनाया है। किन्तु कन्दहार मे इस समय कोई राजा नही था। कन्दहार गयासुद्दीन तुर्क के अधीन था। वह परसिया के इलखानो के मातहत था (तारीख-नाम ई हेरात ३६९)। गयासुद्दीन उस समय स्वय शक्तिशाली नहीं था कि सैनिक अभियान के लिए विदेश मे सेना भेजता। वह स्वय मसूर (निकल्री) के कारण परेशान था। यह कहना गलत है कि जुलचू कन्दहार से आया था। अबुल फजल उसे दुलजू लिखता है। फिरिश्ता ने दुलचू नाम दिया है (पृष्ठ ३८८)। बहारिस्तान शाही लिखती है कि सहदेव के समय दुलचा का आक्रमण हुआ था (पाण्डु १०)। काश्मीरी में दुलचू कहते हैं। जुलजू मङ्गोल थे। तुर्किस्तान से आये थे। उस समय चगत्या सरदारो का वहाँ प्राबल्य था। उसकी सेना मे तुर्क तथा मङ्गोल दोनो थे। वह मुसलमान नही था। इस समय तक कुछ ही चगत्या सरदार मुसलमान हुए थे।

दुलचा जोजिला पास द्वारा काश्मीर मे प्रवेश किया था। कुछ लेखको प्रमुखतया श्री स्तीन ने यह मत प्रकट किया है। कि तु यह ठीक नही है। दुलचा तुर्किस्तान से आया था। (तारीख हैदर मलिक पाण्डु ३५ वाकियात काश्मीर २७, तारीख नारायण कौल पाण्डु एफ ३९)।

वह काबुल होता, काश्मीर पहुँचा था (तारीख हसन २ १६२)। झलम उपत्यका द्वारा काश्मीर म प्रवेश किया था। काश्मीर की पश्चिमीय दिशा बारहमूला से काश्मीर मे ससैन्य अग्रसर हुआ था। आइने अकबरी का मत भ्रामक है कि वह कन्दाहार राज का सेनापति था (आइन अकबरी २ ३८६)। परासियन लेखक तथा आज भी अनेक विद्वान प्राचीन गा धार क्षेत्र को नाम की समता के कारण कन्दहार मान लेते हैं। यह भ्रम है। गा धार काश्मीर के दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर था। उसकी राजधानी तक्षशिला थी।

दुलचा मङ्गोल प्रतीत होता है। उसका नाम मुसलमानी नही है। उस समय मङ्गोल काश्मीर म उत्तर तथा पश्चिम सीमा पर प्रबल थे। समस्त क्षेत्र पर उनका नियन्त्रण था। जिन लेखको ने दुलचा को तिब्बती मान लिया है, उ होने यही अनुमान लगाया है कि उसने जोजिला दर्रे स काश्मीर म प्रवेश किया

षष्टिग्रामसहस्रेषु स्वाम्यं दातुमिवात्र सः ।
तावत्संख्यसहस्राणि स्वसैन्ये सादिनोऽवहत् ॥ १४३ ॥

१४३ साठ सहस्र[1] ग्रामों पर स्वामित्व प्रदान हेतु ही वह मानों अपनी सेना में उतने ही सहस्र अश्वारोही रखे थे।

डुल्च धनप्रयोगेण निविवर्तयिषुर्नृपः ।
सर्वेषामेव वर्णानां दुर्वर्णो दण्डमक्षिपत् ॥ १४४ ॥

१४४ धन प्रदान[1] द्वारा डुल्च को परावर्तित करने के लिये इच्छुक दुर्वर्ण[2] नृपति सभी वर्णों पर दण्ड[3] (कर) लगाया।

था। तिब्बत एवं लद्दाख से काश्मीर में आने का एक मात्र मार्ग जोजिला दर्रा ही है। अतएव यह अनुमान लगाना स्वाभाविक था कि, वह जोजिला दर्रे से आया था। यदि वह मङ्गोल था, तो उसका तिब्बत एवं लद्दाख जाना, वहाँ से जोजिला दर्रे से काश्मीर में प्रवेश तर्कसम्मत नहीं ठहरता। यह उलटा एवं दुरूह मार्ग पड़ता है। मङ्गोलों तथा तुर्कों ने कभी भारत पर आक्रमण जोजिला दर्रे की दिशा से नहीं किया था। मङ्गोलों का आक्रमण सर्वदा तुर्किस्तान, अफगानिस्तान से होते सीमान्त उत्तर-पश्चिमोत्तर प्रदेश द्वारा भारत पर होता रहा है। डुलचा ने वारहमुला द्वार से काश्मीर में प्रवेश किया था। यही तर्कसम्मत है।

मङ्गोल लोग भारत पर इस काल में निरन्तर आक्रमण करते रहे। अल्तमश के समय उन्होंने भारत पर आक्रमण किया था। तत्पश्चात् सन् १२४१ ई० में उन्होंने लाहौर ले लिया। बलबन के समय उन्होंने आक्रमण किया था। सन् १२९१ ई० में पुनः आक्रमण किया। जलालुद्दीन खिलजी से वे परास्त हो गये। दिल्ली के आसपास बसा दिये गये। सन् १२९७ ई० में मङ्गोलों ने पुनः भारत पर आक्रमण किया। अलाउद्दीन खिलजी ने उन्हें पीछे हटाया। सन् १३०२ ई० में उन्होंने पुनः आक्रमण कर पंजाब में खूब लूटपाट की। दिल्ली पर घेरा डाल दिया। फिर लौट गये। काश्मीर विजय करने की योजना मङ्गोलों की थी। चंगेज का तृतीय पुत्र ओगते था। मुसलिम धर्म स्वीकार करने पर उसका नाम हलाकू पड़ गया था, वह काश्मीर लेना चाहता था। (हिस्ट्री ऑफ मङ्गोल हौवर्थ : ३ : १८४-१८५)

(३) प्रवेश : डुलचा आक्रमण का समय सन् १३१९ ई० माना जाता है। पीर हसन वह समय हिजरी ७३४ देता है। (पृष्ठ : १६२) सन् १३२० ई० में रिंचन काश्मीर का राजा हुआ था। रिंचन के काल में डुलचा का प्रवेश हुआ था। डुलचा आठ मास काश्मीर में रहा था। तत्पश्चात् काश्मीर का त्याग किया था। डुलचा काश्मीर त्याग के कुछ मास पश्चात् रिंचन काश्मीर का राजा बना था। अतएव डुलचा आक्रमण काल सन् १३१९ ई० में रखना उचित होगा।

पाद-टिप्पणी :

१४३. (१) साठ सहस्र ग्राम : जोनराज ने कवि क्षेमेन्द्र के निम्नलिखित श्लोक के भाव पर ही उक्त श्लोक की रचना की है।

षष्टिर्ग्रामसहस्राणि षष्टिग्रामशतानि च ।
षष्टि ग्रामास्त्रयो ग्रामा इयेतत्कश्मीर मण्डलम् ॥
लोक : पृ० ७८

जोनराज ने पदलालित्य वृद्धि हेतु साठ सहस्र ग्रामों के साथ साठ सहस्र अश्व जोड दिया है। जैसे प्रति ग्राम पीछे एक अश्वारोही डुलचा के साथ थे। यह कवि कल्पना है। डुलचा अश्वारोहियों के साथ अवश्य आया था। परन्तु वे साठ हजार ही थे या अधिक या कम केवल अनुमान का विषय है।

पाद-टिप्पणी :

१४४. (१) धन प्रयोग : उस समय मंगोल

अत्यन्त प्रबल थे। तुर्किस्तानी भी शक्तिशाली थे। अश्वारोही तुर्क सैनिक प्रसिद्ध थे। पश्चिम मे नवीन युद्ध-शैली विकसित हो रही थी। उस शैली से भारतीय अनभिज्ञ थे। दसवी शताब्दी पश्चात उत्तर-पश्चिम से आती सैनिक विदेशी शक्तियों से भारत के निरन्तर हारने का एक मुख्य कारण यह भी था। वे समय की गति से पीछे रह गये थे। समय ने उनका साथ छोड दिया था। मंगोल, पठान एवं तुर्क अवसर मिलते ही भारत पर आक्रमण करते थे। लूट-पाटकर चले जाते थे। काश्मीर इस समय उत्तर, पश्चिम एवं दक्षिण शत्रुओ तथा आक्रमको से घिरा था। सेना का एकाकी सामना करने मे असमर्थ था।

जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि राजा सुहदेव ने मगोल आक्रमण की गम्भीरता को समझा था। उनका सामना करने का प्रयास किया था। साथ ही उसने अपनी असमर्थता एवं दुर्बलता का अनुभव किया था। काश्मीर मण्डल मे विदेशी यथेष्ट संख्या मे आबाद हो गये थे। वे काश्मीरी सेना मे भी थे। वे शुद्ध पेशेवर सैनिक थे। उनमे देशभक्ति की भावना नही थी। उनका धर्म भी विदेशी था। उन पर विश्वास करना कठिन था। वे अन्त तक विदेशी शक्ति का सामना कर, उत्सर्ग उसी प्रकार करते जैसे एक देशभक्त सैनिक करता है, इसमे सन्देह था। उनका उद्देश्य धनार्जन था। राजा ने इन सब बातो का विचार किया। सन्धि कर लेना उचित समझा। चाणक्य का भी यही कथन था। शक्तिशाली से सन्धि, दुर्बल शत्रु से युद्ध तथा समान बल वाले से मैत्री किया अवसर देखकर कार्य करना चाहिए। राजा ने दुलचा को धन देकर लौटा देना उचित समझा। किन्तु दुलचा ने धन लेकर लौटना पसन्द नही किया। वह लूट-पाट मे लग गया (बहारिस्तान शाही पाण्डु: ११, तारीख हैदरमलिक २३)। अन्य मंगोल आक्रमकों तुल्य दुलचा काश्मीर मे राज्य करने नही आया था। उसका उद्देश्य लूट-पाट, धन संग्रह था। यदि वह राज्य करना चाहता तो काश्मीर राज की कोई शक्ति उसके मार्ग मे बाधक नही हो सकती थी। उसका प्रयोजन लूट-पाट से पूर्ण हो गया था। अतएव वह सन्तुष्ट था। अनेक इतिहासकारो ने राजा के इस कार्य को अच्छा नही माना है। यदि वे तत्कालीन भारतीय तथा पश्चिम एवं मध्य एशिया की परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे तो उन्हे अपना मत परिवर्तन करना पड़ेगा।

(२) दुर्वर्ण : जोनराज राजा की निन्दा करता है। उसने सभी वर्णों पर दण्ड (कर) लगाया था। किन्तु यह अस्थायी अथवा विशेष कर था। विशेष कार्य के लिये लगाया गया था। देश पर आयी विपत्ति के निवारणार्थ लगाया गया था। जोनराज स्वयं ब्राह्मण था। पूर्व मुसलिमकालीन राजाओ को मुसलिम राजाओ की अपेक्षा निम्न चित्रित करने का उसने प्रयास किया है। युद्ध के समय देश सब कुछ उत्कर्ष करने के लिए उद्यत हो जाता है। मेवाड के लोगो ने लगभग सात शताब्दी तक सर्वस्व त्याग किया था। स्त्रियाँ सती होती रही, पुरुष जौहर करते रहे। मेवाड ने स्वाधीनता की रक्षा कर अपना धर्म बचाया, जाति बचायी। आज वे जीवित हैं। सीमान्त के हिन्दुओ ने सर्वस्व लगाकर तीन शताब्दियो तक मुसलिम शक्ति भारत मे नही बढ़ने दी। उनकी स्त्रियाँ चरखा कातती रही, काम करती रही। पुरुष युद्ध करते रहे। उन्होने खतरे का अनुभव किया था।

काश्मीर स्वतन्त्रता की अपेक्षा वहाँ के ब्राह्मणो को कुछ देना अखरने लगा। स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करना तो दूर रहा, स्वतन्त्रता रक्षा मे वे बाधक हुए, काश्मीर मण्डल को दुर्बल बनाने मे सहायक हुए। उन्होंने वही असंतोष राज्य मे उत्पन्न किया जिसे पैदा कर विदेशी आबादी अपने हाथो सत्ता लेना चाहती थी।

ब्राह्मण अवध्य माने गये हैं। परन्तु धर्म शास्त्र यह नहीं स्वीकार करता कि उनका किसी प्रकार का उत्तरदायित्व देश के प्रति नही था। यदि अन्य वर्ण देश की स्वतन्त्रता के लिये, दुरुच के अत्याचार से बचने के लिये, कर देने के लिये, उद्यत थे तो कोई

कारण नहीं मालूम होता कि, ब्राह्मण क्यों कर देने से मुक्त किये जाते ?

(३) दण्ड-कर : राजा को परम्परागत भारतीय कर-प्रणाली सिद्धान्त के अनुसार अतिरिक्त, विशेषकर, आकस्मिक कर संकट उपस्थित होने पर लगाने का अधिकार था। साम्राज्य विस्तार के साधन संग्रह हेतु भी इस प्रकार कर लगाने का अधिकार राजा को प्राप्त था। वह विहित माना जाता था। महाभारत यद्यपि अतिरिक्त कर लगाने के सिद्धान्त का समर्थन नहीं करता, परन्तु स्पष्ट निर्देश देता है। इसके अतिरिक्त आकस्मिक सङ्कट, आपद एवं विशेष परिस्थितियों मे इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय भी नहीं था। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि ऐसे अवसर पर जनता को कर का औचित्य समझाना चाहिये (शान्ति . ८७ : २६–३९)।

कौटिल्य ने इस प्रकार के करों को 'प्रणय' कहा है। विधान किया गया है कि कृषकों से २५ प्रतिशत तथा व्यापारियों से उनके सम्पत्ति के अनुसार ५ से ५० प्रतिशत आयकर लिया जाना चाहिये (भा० : ५ अ० १२)।

रुद्रदामा के उत्कीर्ण अभिलेख मे गर्वोक्ति की गई है। 'विशाल सुदर्शन सर जनता से बिना अतिरिक्त कर लिए निर्माण की गई है।' वीर राजेन्द्र ने वेंगी के शत्रुओं के विरुद्ध, युद्ध के साधन संग्रह के लिए, प्रति वेलि भूमि पर कलंजु सुवर्ण कर लगाया था (सो : इं० ए० दि : १९२० सं० ५२०)।

'तुरुष्क दण्ड' भी भारतीय राजाओं ने लगाया है। गहड़वाल राज्य मे यह कर मुसलिम आक्रमणों का सामना करने के लिए लगाया गया था (एपि० इं० १४ पृष्ठ १९३)।

स्मृतियों मे श्रोत्रिय ब्राह्मणों को कर से मुक्त करने पर जोर दिया है। इसका एक नैतिक आधार था। श्रोत्रिय विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देते थे। उनका कार्य समाजसेवा था। विद्वान ब्राह्मण असंग्रही थे। अतएव राज्य उन्हें अग्रहार देती थी। किन्तु प्राचीन काल मे करमुक्त श्रोत्रियों की संख्या कम थी।

कतिपय ब्राह्मण वर्ग को कर से मुक्त करने का आदेश कुछ स्मृतियों ने दिया है। महाभारत मे स्पष्ट कहा गया है—'जो ब्राह्मण अच्छे वेतन पर सरकारी पदों पर किया वाणिज्य, कृषि या पशुपालन जैसे अर्थकारी वृत्ति मे लगे हों, उनसे पूरा कर लिया जाय।' ब्राह्मण कर से सर्वथा मुक्त नहीं थे। उन्हें कर से मुक्त करने का उदाहरण विशेष परिस्थितियों मे मिलता है। दक्षिण भारत के लेखों से यह बात प्रमाणित होती है। जिनमे कर न दे सकने के कारण ब्राह्मण भूस्वामियों के भूमि का नीलाम किये जाने का उल्लेख है। सन् १२२९ ई० के एक लेख से ज्ञात होता है कि अग्रहार भोगने वाले ब्राह्मण को भी बकाया भूमि कर पर ब्याज देना पड़ता था। यह बकाया तीन महीने से अधिक नहीं रह सकता था। इस अवधि के समाप्त होने पर न देने वाले की भूमि को बेचकर बकाया वसूल कर लिया जाता था। पूरे ब्राह्मण वर्ग को कर मुक्त किये जाने का उदाहरण प्राचीन भारत मे विरल ही थे। साधारण ब्राह्मण को भी कर देना पड़ता था। विद्वान ब्राह्मण अर्थात श्रोत्रिय, निर्धन और जिन्हें राज्य से कोई वृत्ति नहीं मिलती थी वही कर से मुक्त थे। देवालयों पर उनकी भूमि से भी कर लिया जाता था। जिन मन्दिरों की आय कम होती थी उनसे आंशिक कर लिया जाता था। राज्य कर चुकाने के लिए मन्दिरों द्वारा अपनी भूमि के कुछ अंश बेचने के भी उदाहरण मिलते हैं। कभी-कभी तो बकाया चुकाने के लिए राज्य द्वारा मन्दिरों की भूमि बेचे जाने के उदाहरण मिले हैं।

प्राणाहुत्या प्रभोः कोपे तत्प्रतिग्रहसांहसः ।
प्रायस्था ब्राह्मणाः प्रायश्चित्तीयांचक्रुरक्रमम् ॥ १४५ ॥

१४५ उसका दान लेने से पापान्वित प्रायोपवेशन[1] (उपवास द्वारा प्राण त्याग) हेतु बैठे ब्राह्मण स्वामी के कोप मे प्राणाहुती द्वारा प्रायश्चित किये।

पाद-टिप्पणी

उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या १५६ अधिक है। उसका भावार्थ है—'दण्ड दु ख के कारण विप्रो ने जो शाप दिया कि—राजा के वश का विच्छेद हो जायगा—निश्चय यह उसी का फल है।'

१४५ (१) प्रायोपवेशन : इस आपत्ति काल मे राजा की सहायता करने की अपेक्षा विरोध कर, राष्ट्र को निर्बल बनाने की नीति का ब्राह्मणो ने अनुसरण किया। राज्यादेश मानना अस्वीकार किया। प्रायोपवेशन पर तत्पर हो गये।

राज्य के प्रति विरोध भावना उत्पन्न कर दिये। ब्राह्मणो के प्रति श्रद्धा भक्ति होनी चाहिए इसमे दो मत तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को देखते हुए नही हो सकता। परन्तु देश एव जाति के प्रति भी कुछ कर्तव्य था। ब्राह्मणो ने अपने कार्यों से देश के सम्मुख एक समस्या उपस्थित कर दी। नेतृत्व करना दूर रहा वे देश के आपद काल मे राज्य के लिये स्वय आपद बन गये।

बम्बई सस्करण के श्लोक सख्या १५६ से प्रकट होता है कि तत्कालीन समाज कितना गिर गया था। राजा की सहायता करने की अपेक्षा राजा के नाश का ब्राह्मणो ने शाप दिया। राजा तथा काश्मीर राज तो नष्ट हुआ ही किन्तु उन शाप देने वाले ब्राह्मणो के घरो मे भी कोई चिराग जलाने वाला नही रह गया और मुसलिम शक्ति के सम्मुख मुसलिम धर्म उन सभी ने स्वीकार कर लिया। उस समय उनका प्रायोपवेशन, ब्राह्मणत्व, अभिचार आदि शक्तियाँ कुछ काम न आयी।

मुसलिम शक्ति के उदय के साथ यह विश्वास कि दण्ड दु ख के कारण ब्राह्मणो ने जो शाप दिया था राजा के वश का विच्छेद हो गया किन्तु वही शाप उस समय काम न आया जब मुसलिम दण्ड के कारण ब्राह्मण धर्म त्याग कर मुसलमान हो गये और काश्मीर के मन्दिरो का विनाश होने लगा।

जोनराज प्रायोपवेशन शब्द का प्रयोग यहाँ नही करता परन्तु उसके लिखने का तात्पर्य यही है। जोनराज के समय प्रायोपवेशन की प्रथा मुसलिम शासन होने के कारण समाप्त हो गयी थी। ब्राह्मणो की सख्या काश्मीर मे नगण्य रह गयी थी।

कश्मीर इतिहास की यह विचित्र पहेली है। जैसे जैसे काश्मीर दुर्बल होता गया, वैसे-वैसे ब्राह्मणो का प्रायोपवेशन तथा राजा पर दबाव बढने लगा। अर्थलाभ किंवा काम निकालने की प्रवृत्ति बढती गयी।

किसी स्थान पर किसी कार्यसिद्धि हेतु ब्राह्मण एव पुरोहित बैठकर उपवास आरम्भ करते थे। वे अपनी प्राण आहुति भी इस प्रकार दे देते थे। धरना पर बैठ जाते थे। प्रायोपवेशन साधारण बात हो गयी थी। राज्य ने एक प्रायोपवेशन अधिकारी राजा यशस्कर के समय म रखा था। उसका नाम प्रायोपवेशाधिकृत था।

प्रायोपवेशन का शाब्दिक अर्थ किसी सकल्प के साथ अनशन पर बैठ जाना है। आज भी ब्राह्मण लोग ग्राम मे किसी कार्य की पूर्ति के लिये किसी के द्वार पर अन्न-जल त्याग कर धरना देते हैं। भारत मे राजनीतिक आन्दोलन के समय किसी कार्य की पूर्ति के लिये अनशन या भूख हडताल करना साधारण

तदैव कालमान्याख्यैर्भौट्टैर्हतवैरिभिः ।
सबन्धुर्गोत्रजो व्याजाद् वक्कतन्यो न्यहन्यत ॥ १४६ ॥

१४६ उसी समय शत्रु हन्ता कालमान्य[1] नामक भौट्ट[2] व्याजपूर्वक बन्धु वंशज सहित वक्कतन्य[3] का हनन कर दिया ।

व्यात हो गयी थी । यह बात यहाँ तक बढ़ गयी थी कि दिल्ली तथा अन्यस्थानों में भूख हड़ताल करने वाले जेल में रख दिये जाते थे । वहाँ उन्हें अनशन तोड़ने के लिये बाध्य किया जाता था । अंग्रेजी में यह प्रचलित शब्द हंगर-स्ट्राइक है ।

इस प्रथा ने राज्य को दुर्बल कर दिया था । कल्हण ने इस प्रथा को स्वस्थ परम्परा नहीं माना है । (रा० . ५ : ४६८, ६ : १४, २५, ३३६, ३४२, ७ : १३, १०८८, ११५७, १६११, ८ : ५१, ११०, ६५८, ७०९, ७६८, ८०८, ९२९, २२२४, २७३३, २७३९) ।

बम्बई संस्करण श्लोक संख्या १५६ में ब्राह्मणों की मनोवृत्ति का पता चलता है । क्रोध के वशीभूत उन्होंने राजवंश के नाश का शाप दिया । परन्तु शाप देने वाले ब्राह्मण स्वयं केवल ५० वर्षों के पश्चात नष्ट हो गये । शाप देने वालों में से अनेक उस समय जीवित रहे होंगे परन्तु उनका शाप कुतुबुद्दीन, सिकन्दर बुतशिकन, अलीशाह तथा सूहाभट्ट का कुछ न बिगाड़ सका ।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक १५७ दिया गया है । उसका भावार्थ है—'अपने देश में भोजन का अभाव कथनम माना गया ।'

(२) भौट्ट : तिब्बती तथा लद्दाख के रहने वालों को भौट्ट या भुट्ट कहा जाता रहा है । काश्मीर के उत्तर-पूर्व कृष्णगङ्गा एवं दरद नदी के मध्यवर्ती भू-भाग में तिब्बत वंशीय जाति रहती है । उनकी संस्कृति भी तिब्बती है । सुदूर प्राचीन लेखकों तथा कतिपय मध्ययुगीय लेखकों ने छोटे तथा बड़े तिब्बत नाम से उनका निर्देश काश्मीर इतिहास में किया है । बड़े तिब्बत की संज्ञा लद्दाख तथा छोटे तिब्बत की संज्ञा बाल्तिस्तान से दी गयी है । जगत् में चंगेज खां के आक्रमण एवं विजयों के कारण मंगोल जाति में नवीन जीवन तथा जागृति उत्पन्न हो गई थी । वे आक्रमक जाति के रूप में बारहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक प्रसिद्ध रहे हैं । भारत पर उनके अनेक आक्रमण हुए हैं । स्वयं बाबर तथा उसके वंशज मुगल बादशाह मङ्गोल वंशीय थे । मङ्गोल आक्रमणों तथा शासन के कारण निकटवर्ती देशों की राजनीतिक स्थिति तथा व्यवस्था बिगड़ गयी थी । लद्दाख तथा तिब्बत इसका अपवाद नहीं था । चंगेज खां ने सन् १२०३ ई० में तिब्बत विजय किया था । तत्पश्चात् कुबलाई खां (सन् १२६०-१२९४) तिब्बतादि पर शासन किया । उसने शासन न्याय तथा दृढ़ता पूर्वक किया था । कुबला खां के समय सा-स्क्य-पा-ग्रो-द्रग (सन् १२६०-१२६३ ई०) उस

अव्यवस्थित हो गई। स्थानीय सरदार तथा सामन्त स्वतन्त्र होने का प्रयास करने लगे। उन्ही जातियों मे लद्दाखी तथा बाल्ती थे। जो क्रमशः कालमोन या मान्य तथा वक्तन्य कहे जाते थे। वक्तन्यो का सरदार ल्ह-चेन-द्नोस-ग्रुब था। वह कालमान्यो द्वारा पारस्परिक संघर्ष मे मार डाला गया था। विशेष द्रष्टव्य टिप्पणी : श्लोक २३४।

(३) वकतन्य : वकतन्य लद्दाखी थे। बाल्ती तथा लद्दाखी जाति मे प्रायः संघर्ष होता रहता था। बाल्ती संघर्ष मे जीत गये थे। परसियन इतिहासकार बाल्ती तथा लद्दाखी जाति का उल्लेख नही करते। वे केवल यही लिखते हैं कि रिंचन के पिता तथा सम्बन्धी मार डाले गये।

श्री वोगेल तथा फ्रेन्की कालमान्य को खरमंग जाति से सम्बन्धित करने का प्रयास करते है। मखरमन बाल्ती जाति के एक गोत्र की राजधानी थी। (हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न तिब्बत एपेण्डिक्स : १ : १७९; इण्डियन एण्टीक्वेरी १९०८, जुलाई ' १८७, एण्टीक्वेरी ऑफ इण्डियन तिब्बत : २ : ९८)। इसके विपरीत पिटेव का सुझाव है कि काल्यमान हे-ले-गोन (कालमोन) है। पर 'गूंज' गाथाकालीन लोग थे। (स्टॉडी ऑन दी क्रॉनोलॉजी ऑफ लद्दाख १५; ११२; नोट १८)

दो राजा ल्ह-चेन-द्नोस-ग्रुव (सन् १२९०-१३२० ई०) तथा रग्यल-बु-रिन-चेन (सन् १३२०-१३५० ई०) लद्दाख इतिवृत्त के अनुसार ले-द्वगस्-रग्यल-रबुस प्रथम लद्दाख वंश के तेरहवें तथा चौदहवें राजा थे (एण्टीक्विटी ऑफ इण्डिया-तिब्बत)।

श्री फ्रैन्की का यह काल्पनिक समन्वय है। ल-द्वग्स-रग्यल-रबुस का समय तथा घटनाओ के काल का मेल नहीं खाता।

वक्तनय तथा ल्ह-चेन-एग्यल्वुए रिनचेन नामो की पहचान ध्वनिसाम्य के आधार पर करना सर्वदा ठीक नही होता।

किन्तु मेवी समय सन् १३२५-१३५० ई० देता है (हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न तिब्बत : ६८)। जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि रिंचन सन् १३२३ ई०) मे मर गया था (जोन : १०४)। लद्दाखी सरदार ल्ह-चेन-द्रोस-ग्रूब् ने लद्दाखपर सन् १२९० ई० से १३२० ई० तक शासन करता था। वह रिंचेन का पिता कहा जाता है (एण्टीक्विटीज् ऑफ इण्डिया : तिब्बत : २ : ९८)।

रग्यल बू-रिंचेन जो चौदहवी पीढी मे लद्दाख का राजा था उसने जोनराज के वर्णित रिंचन के कारण एक समस्या उत्पन्न कर दी है। फ्रेंकी का मत है कि काश्मीरी रिंचन का राज्यकाल सन् १३२० ई० से सन् १३२३ ई० तक है। यह लद्दाखी राजा रिंचन नहीं है। अनुमान किया गया है कि ल-द्व-ग-स-रग्यल रबूस मे रिंचन लद्दाखी का चरित जोड दिया गया है (ए स्टॉडी-ऑन-दि क्रॉनिकल्स ऑफ लद्दाख, पृष्ठ ११४-११५)।

इस वंश की चौदहवी पीढी का राजा रग्यल-बु-रिंचेन (सन् १३२०-१३५०) पन्द्रहवाँ शेस ख (सन् १३५०-१३८०), सोलहवाँ श्री ग्रुग्स ल दे (सन् १३८०-१४१०), सत्तरहवाँ ग्रगस-बुम-ल्दे (सन् १४१०-१४४०) तथा अन्तिम अट्ठारहवाँ राजा ल्वो-ग्रोस मकोग ल्देन (सन् १४४०-१४७० ई०) तक हुआ था। तत्पश्चात् राज्यवंश बदल गया। द्वितीय राजवंश का प्रथम राजा अर्थात् लद्दाख का उन्नीसवाँ राजा भगन (सन् १४७० से १५०० ई०) तक हुआ था। लद्दाख का राजा रिंचन सन् १३२० से १३५० ई० तक शासन करता था जब कि काश्मीरी रिंचन सन् १३२३ ई० मे मर चुका था। दोनो एक व्यक्ति नही हो सकते। द्रष्टव्य (ए सिक्रेट ऑफ तिब्बत, पृष्ठ १०३-१०६)।

कालमान्य जोनराज के अनुसार शासकीय वंश का प्रतीत होता है। (जोन : १४७) वक्तन्य जैसा कि योगेल का सुझाव है उसका कोई न कोई सम्बन्ध वक्तन्य जाति से था। यह जाति मुलवे के समीप निवास करती थी। वह वर जाति थी (इण्डियन

मान्योऽसामान्यधीः कालमान्यवंशदवानलः।
अवाशिष्यत तत्पुत्रो दैवादेकः स रिञ्चनः॥ १४७॥

१४७ मान्य, असामान्य-धी, कालमान्य वंश-दवानल, उसका पुत्र रिंचन[1] दैवात् बच गया।

व्यालदुक्कमुखैर्मन्त्रसूत्रसंयोजितैरथ।
बद्ध्वा संहतिकन्थां स ताञ्जडाञ्जेतुमिष्टवान्॥ १४८॥

१४८ मन्त्र सूत्र संयोजित व्याल, दुक्क प्रमुख लोगों के साथ संहति बद्ध होकर, वह उन जड़ों (कालमान्य) को जीतने की इच्छा किया।

निपात्यमानकोशं मां भृत्यत्वे वृणुतेति सः।
तान्प्रत्यश्रावयद् दूतमुखेन स्वाततायिनः॥ १४९॥

१४९ उसने अपने उन आततायियों के प्रति दूत मुख द्वारा सन्देशा भेजा कि, (वे) परिलुंठित कोप वाले मुझे भृत्य रूप में रख लें।

नृसिंहः स नदीतीरे सिकतास्थगितायुधः।
तान्प्रत्यैक्षत रक्तस्य न तु कोशस्य पीतये॥ १५०॥

१५० वह नृसिंह (रिंचन) नदी तीर पर सिकता में आयुध स्थगित[1] (आच्छादित) कर, उन्हें रक्त पीने की इच्छा से देखा, न कि कोशादि पीने की कामना से।

एण्टीक्वेरी : जुलाई : १९०८ : १८७)। कालमान्य निसन्देह भौट्ट अर्थात् लद्दाखी है। आइने अकबरी ने रिंचन को तिब्बत के राजा का पुत्र माना है। म्युनिख पाण्डु लिपि पृष्ठ ४७ बी द्रष्टव्य है। इण्डियन एण्टीक्वेरी (१९०८ : १८७; तथा १९०९ : ५९) से प्रकट होता है कि रिंचन के लद्दाख से काश्मीर आने के समय की एक लोकगीति प्रचलित है।

पीर हसन नाम रटेञन तथा पिता का नाम बुगैन देता है। लिखता है कि चाचा की मुखालिफत में शिकस्त खाकर काश्मीर में आया (परसियन : पृष्ठ : १६४)।

पाद-टिप्पणी :

१४७. (१) रिंचन = इसका नाम रत्नचू, रंजूशाह, रेंचन, रैंचन, रैनचनशाह तथा रंजपोत मिलता है। रिंचन वास्तव में संस्कृत नाम रतन का अपभ्रंश है। श्री कौशिक बकुल मन्त्री जम्मू काश्मीर राज्य लेह निवासी ने बताया कि रिंचन वंश का नाम है। लद्दाख में अब तक प्रचलित है।

पाद-टिप्पणी :

१५० (१) स्थगित = यहाँ स्थगित के दो अर्थ हो सकते हैं। प्रथम स्थगन (सीज-फायर) किया आयुध छिपा कर रिंचन ने धोखा दिया। युद्ध समाप्त हो गया। हथियार रख दिया गया। आयुध रख ही नहीं दिया गाड़ दिया गया। इससे शत्रु के मन में किसी प्रकार का सन्देह रिंचन के प्रति नहीं रह गया था। उसकी ईमानदारी पर शत्रु ने विश्वास किया।

व्यालाद्यैरागतास्तत्र कालमान्या निरायुधाः ।
सिकतान्तर्निविष्टस्य परश्वग्नेस्तृणीकृताः ॥ १५१ ॥

१५१ व्याल[1] आदि के द्वारा सिकता-अन्तर्निविष्ट परशु रूपाग्नि में निरस्त्र आये कालमान्य[2] (लोग) तृण बना दिये गये।[3]

प्रक्षाल्य वैरिरक्तेन पितृद्रोहरजोमलम् ।
शेषानेकारिभीत्यागात् कश्मीरान् बन्धुभिः सह ॥ १५२ ॥

१५२ वैरियों के रक्त से पितृद्रोह रूप रजोमल प्रक्षालित कर, शेष अनेक शत्रु का भय त्याग कर, बन्धुओं के साथ काश्मीर चला गया।

पाद-टिप्पणी :

१५१ (१) व्याल . डॉ० परमू लिखते हैं कि व्याल मुसलिम इतिहासकारो द्वारा वर्णित बुलबुलशाह ही था (पृष्ठ ४६६) केवल कल्पना मात्र है।

(२) कालमान्य : बलती अर्थात् बालतिस्तान के रहने वाले कालमान्य है वकतन्य लद्दाखी है। (म्युनिख पाण्डुलिपि ७४० बी०) लद्दाख की लोक-कथाओ के एक गीत है। जिसमे राजकुमार रिंचन के लद्दाख से जाने का वर्णन है। (इण्डियन एण्टीक्वेरी : सन् १९०८ पृष्ठ १८७) वह गीत इण्डियन एण्टीक्वेरी (सन् १९०९ ई०) के पृष्ठ ५९ पर मुद्रित है।

ह-ले-मोन लद्द-गूस रयल-रब्स गाथा के व्यक्ति हैं तथा वकतन्य व-क-ल मोन गुज गाथा के है। गुज ही वर्तमान जसकर अञ्चल है (ए स्टडी ऑन दी क्रॉनिकल्स ऑफ लद्दाख : ११४, ११५, दी सिक्रेट ऑफ लद्दाख · तुसी १०३, १०४, १०६) किन्तु फ्रैंकी का मत है कि यह तिब्बती शब्द वक है।

(३) रिंचन के विश्वासघात का यह प्रथम उदाहरण है। विश्वास उत्पन्न कर, घात करना, प्रतिज्ञा कर, उसे तोड देना, रिंचन के लिए साधारण बात थी। उसने इसी नीति का चतुरतापूर्वक अनुसरण कर काश्मीर का राज्य प्राप्त किया था।

पाद-टिप्पणी :

१५२. तृतीय चरण को–'शेषारि भयतो यात.'– मानकर अर्थ किया जाय तो अनुवाद होगा—'शेष शत्रुओ के भय से बन्धुओ के साथ काश्मीर चला आया।'

विश्वासघात द्वारा पितृद्रोहियो की हत्या कर, उसने अनुभव किया। प्रतिहिंसा की अग्नि मे शत्रुओ द्वारा वह स्वयं भस्म किया जा सकता था। अतएव वह बन्धु बान्धवो सहित, शरण हेतु, काश्मीर मण्डल मे प्रवेश किया। एक मत है कि वह निर्वासित कर दिया गया था (तारीख-ए आजम : पाण्डु : २२)।

रिंचन काश्मीर मे जोजिला पास से प्रवेश किया था। लद्दाख तथा तिब्बत से काश्मीर म प्रवेश करने के लिए, सुदूर प्राचीन काल से जोजिला पास प्रमुख मार्ग रहा है। वह भारत के काश्मीर द्वारा प्रवेश पाने के लिए, बनिहाल तथा बारहमूला मार्गों के समान प्रसिद्ध था। जोजिला पास के पश्चात् भौट्ट देश तथा भौट्टो की आबादी प्रारम्भ हो जाती है।

तिब्बतियो को काश्मीरी पुराकालीन लेखो मे भौट्ट की संज्ञा दी गई है। ओ-कुग पहला व्यक्ति है। जिसने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। जोजिला पास को वह पूर्व का द्वार मानता है। तिब्बत को तो-फान लिखता है। कल्हण ने जोजिला पार के देश को काश्मीर राजाओ के अन्तर्गत प्रायः नही रखा है। भौट्ट राष्ट्राध्वन कल्हण वर्णित जोजिला पास है (रा . ८ : २८८) इसके द्वारा काश्मीर मण्डल मे सफलतापूर्वक प्रवेश कर, विदेशियो ने आक्रमण किया है। मण्डल को त्रस्त किया है। रिंचन

पूर्णस्य रामचन्द्रस्य रुचिहान्यै धरार्यमा।
नीलाशाभ्रे रिञ्चराहोरुदयं सोऽथ सोढवान्॥ १५३॥

१५३ पूर्ण रामचन्द्र[1] की रुचि (कान्ति) हानि हेतु, नीलाशाभ्र[2] पर, जिस रिंच (रिंचन) राहु का उदय हुआ, उसे धरा के अर्यमा (सूर्य राजा) ने सहन किया।

के अतिरिक्त मिरजा मुहम्मद हैदर ने अपने मङ्गोल दल के साथ सन् १५३२ ई० में काश्मीर में इसी मार्ग से लड़कर प्रवेश किया था।

बहारिस्तान-इ-शाही तथा तारीख हैदर मलिक दोनों परशियन इतिहासकारों ने मत प्रकट किया है कि रामचन्द्र ने रिंचन को संरक्षण दिया था। यदि यह बात ठीक मान ली जाय, तो रिंचन का विरोध न तो राजा और न रामचन्द्र ने किया। दोनों उसकी शक्ति तथा काश्मीर मण्डल में उसकी उपस्थिति से एक तृतीय एवं दोनों के मध्य सन्तुलन स्वरूप उससे लाभ उठाना चाहते थे।

किन्तु परिणाम विपरीत हुआ। रिंचन ने दोनों को निकाल बाहर किया। अपनी चतुरता एवं शक्ति से काश्मीर का राजा बन बैठा।

मोहूरे आज़म की यह आलोचना वस्तुतः सत्य है कि राजा अपने कुछ पूर्व राजाओं के समान सीमारक्षा से उदासीन हो गया था जिसपर काश्मीर की सुरक्षा आधारित थी। फल यह हुआ कि मुसलमान, शाहमीरी लोग तथा शत्रुओं का काश्मीर में मुक्त प्रवेश होने लगा (पाण्डु : ९६ बी)। यह उपेक्षा कालान्तर में काश्मीर की पराधीनता का कारण हुई।

पाद-टिप्पणी :

१५३. (१) रामचन्द्र : वाकियाते काश्मीरी में रामचन्द्र को लार (लहर) का ठाकुर और शीलाचन्द्र का पुत्र माना है। किसी सन्दर्भ ग्रन्थ का उल्लेख नहीं करता (पृष्ठ २१)।

(२) नीलाशाभ्र = श्री दत्त ने इसका अनुवाद नील गगन किया है। किन्तु श्रीकण्ठ कौल ने नीलाश नाम वाचक शब्द माना है।

परगना लार में नीलाह (नील) ग्राम की पहचान नीलाश से की गयी है। इसे नीलग्राम स्थानीय जन कहते हैं। कल्हण ने नीलाश्व शब्द का प्रयोग किया है। नीलाश काश्मीर का एक क्षेत्रीय विभाग था। उसकी पहचान आज करना कठिन है। लोकप्रकाश में क्षेमेन्द्र ने नीलाशविषय (पृष्ठ ६०) काश्मीर के परगनों की तालिका में दिया है। कल्हण ने नीलाश्व शब्द का प्रयोग डामरों के सन्दर्भ में (रा : ७ : १६२१ : दा० ८ : ४२४ : १११५, ३१३१) किया है। श्रीवर ने (जैन : ४ : १०९) नीलाश्व का उल्लेख किया है। यहाँ पर दुग्धाश्रम अर्थात् दुदर होम ग्रामसभा के विषय में वर्णन किया गया है। अबुल फजल के आईने अकबरी में नीलाश्व परगने का उल्लेख नहीं मिलता।

जोनराज काश्मीर की आन्तरिक फूट का वर्णन करता है। राजा सूहदेव ने रामचन्द्र का उत्कर्ष सहा नहीं किया। विदेश से आये शक्तिशाली रिंचन का सामना कर, उसे देश से निकालने का प्रयास नहीं किया। यदि इस समय काश्मीर राजा रिंचन को देश से निकाल देता, तो काश्मीर में हिन्दू राजवंश का आकस्मिक लोप न हो जाता। रिंचन उस समय सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली नहीं था। वह स्वयं निराश्रय था। काश्मीर में जीवनरक्षा के लिए महत्त्वाकांक्षी आया था। इस सुअवसर से लाभ न उठाकर, ईर्ष्या, द्वेष के कारण रिंचन की वृद्धि देखता राजा ने स्वीकार किया, जो उसी के सर्वनाश का कारण हुआ।

धनाम्बु प्राप्य भौट्टेभ्यः कश्मीरजनविक्रयात् ।
गर्जन्नाशाः प्यधात्सर्वास्तदा रिञ्चनवारिदः ॥ १५८ ॥

१५८ उस समय काश्मीर-जन के विक्रय से भौट्टों[1] द्वारा धन रूप जल प्राप्त कर, रिंचन वारिद गरजते हुये, सभी दिशाओं को आच्छन्न कर दिया।[2]

पाद-टिप्पणी :

१५८ (१) भौट्ट : द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक १४६ तथा २३४।

बम्बई संस्करण श्लोक संख्या १७० से संकेत मिलता है कि दुलचा के साथ तुरुष्क, ताजिक एवं म्लेच्छ सैनिकों ने काश्मीर में प्रवेश किया था। म्लेच्छ उन सब भारतीय मुसलमानों के लिए प्रयोग किया जाता है जो हिन्दू से मुसलमान हुए थे। तुरुष्क शब्द तुर्किस्तान के मुसलमानों के लिए प्रयोग प्रारम्भ में किया जाता था। कालान्तर में यह शब्द मुसलमानों के लिये रूढ हो गया।

ताजिक शब्द : प्रारम्भ में ताजिक शब्द से अरब के मुसलमानों का बोध होता था। तुर्कों का जब मध्य एशिया पर अधिकार हो गया तो विजित ईरानी वहाँ के रहने वालों को भी ताजिक कहने लगे। ईरान के मुसलमानों को भी प्रारम्भ में तुर्किस्तान एवं मध्य-एशिया के मुसलमान अरब ही कहते थे। कालान्तर में गैर तुर्क मुसलमानों के लिये ताजिक शब्द का व्यवहार होने लगा। ईरानी मुसलमान ताजिक कहे जाने लगे। ताजिक शब्द तातार में व्यापारियों के लिये भी सम्बोधित किया जाता था। आधुनिक काल में ताजिक शब्द पूर्व ईरानियों के लिए व्यवहृत किया जाता है। अस्तराबाद एवं यज्द का मध्यवर्ती भूखण्ड ताजिकों की भूमि की अन्तिम सीमा मानी जाती है। उजबकों ने शक्ति द्वारा तुर्किस्तान के ताजिकों को मैदानों से पर्वतीय क्षेत्र में खदेड दिया था। इससे तुर्किस्तान के सभी ईरानियों को ताजिक कहते हैं। ताजिक भाषाभाषी के अतिरिक्त 'पंज' तथा 'जरफसा' के पर्वतीय अचल के निवासियों को ताजिक जाति के लोग स्वयं शुगनान रोशनादि के निवासियों को ताजिक कहते हैं। ताजिकिस्तान की आबादी बाइस लाख से ऊपर है। उसमे ७५ प्रतिशत ताजिक जनसंख्या है।

ताजिक गणतन्त्र सन् १९२४ ई० मे स्थापित हुआ है। यह गणतन्त्र सोवियत रूसी मध्यवर्ती एशिया का दक्षिणी पूर्वी भाग है। पूर्व मे इसकी सीमा चीन के सिकियाग प्रान्त तथा दक्षिण मे अफगानिस्तान से मिलती है। यहाँ का मुख्य नगर स्टालिनाबाद अथवा दुशबे है। स्टालिनाबाद की जनसंख्या लगभग पचीस हजार है। यह नगर तबरेज से रेलवे लाइन से सम्बन्धित है।

उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि दुलचा काश्मीर के उत्तर पश्चिम से अफगानिस्तान, उत्तरी पश्चिमी पजाब होते काश्मीर मे दक्षिण पश्चिम से प्रवेश किया था। वह विदेशी तुर्क अथवा मगोल था।

(२) रिंचन : उसने काश्मीरियों को पकडना आरम्भ किया। उनमे जो बिक सकते थे, उन्हे बेच कर, धन संग्रह किया। काश्मीर मे दास प्रथा प्रचलित नहीं थी। दास प्रथा मुसलमानो मे प्रचलित थी। उनके द्वारा भारत मे फैली। रिंचन ने काश्मीरियों के विक्रय से धन संग्रह किया। उसी धन से अपनी शक्ति को मजबूत किया। उसीसे काश्मीर की स्वतन्त्रता का हरण किया। दास खरीदने वाले निस्सदेह मुसलमान थे। मुसलमानो को इससे लाभ हुआ। उन्होने कुछ को विदेशी दुलचा के अनुयायियों आदि के हाथो बेच दिया। अथवा काश्मीर के बाहर, मुसलिम अधिकृत क्षेत्रो मे बेच कर धन प्राप्त किया। काश्मीर की उत्तरी-पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमा पर, इस समय मुसलिम राज्य थे। मुसलमानो मे दास रखने की प्रथा प्रचलित थी। वे विधर्मियों का दास एवं नौकर

नाशिताशेषदेशोऽथ स्फीतशीतभयाकुलः ।
दुल्चः कश्मीरतः तारवलमार्गेण निर्ययौ ॥ १६९ ॥

१६९. अशेष देश नाशित कर के स्फीत शीत भय[1] से आकुल, दुल्च काश्मीर से तारवल[2] मार्ग द्वारा निर्गत[3] हो गया ।

रूप में संग्रह करते थे। मुसलिम धर्म में दीक्षित कर अपनी संख्या बढाते थे।

विदेशी मुसलमानो का साथ काश्मीरी नव मुसलिमो ने दिया। एकही घर मे एक भाई मुसलमान तथा दूसरा हिन्दू था। स्वामी का धर्म दासो का हो जाता था। मुसलमानो जैसी उत्साही धर्म प्रवर्तक जाति कभी यह सहन नही कर सकती थी कि विधर्मी जन इनके अधीन किंवा कुटुम्बो के संसर्ग मे रहें। सनातनी और मुख्यतः शिया मुसलमान भारत मे अब भी हिन्दुओं का स्पर्श किया जलादि ग्रहण नही करते। क्योकि हिन्दू गैर किताबिया और काफिर समझे जाते हैं। वे यहूदी तथा ईसाई से स्पर्श किया जल एवं खाद्य ग्रहण कर लेते हैं। वे किताबिया है। महात्मा मूसा तथा ईसा उनके नबियो की परम्परा मे से हैं। भारत की आजादी के पश्चात् मुसलमानो की एक जमात जो हकूमते इलाही मे विश्वास करती थी सरकारी राशन शाप से अन्न नही लेती थी। क्योकि वह गैर मुसलिम राजा की दुकान थी। उनकी दृष्टि मे हकूमते इलाही ही एक मात्र हुकूमत धर्मानुसार रहने योग्य होती है। मैंने स्वयं काशी मे मुसलमानो का एक बड़ा समुदाय देखा। युद्ध के समय अंग्रेजी सरकार तथा आजादी के पश्चात भारत सरकार के द्वारा चलायी गयी राशन की दुकानो से अन्न नही लेते थे।

बम्बई संस्करण मे उक्त श्लोक के पश्चात् श्लोक संख्या १७०-१९० तक दी गयी है। उनमे १७०-१७४ तक श्लोक से घटनाओ पर प्रकाश पडता है। उनका भावार्थ निम्नलिखित है।

१७०. तुरुष्क, साजिर, म्लेच्छ सैन्य से भूतल को व्याप्त करके दुल्च नगर को उसी प्रकार प्राप्त किया जिस प्रकार अगस्त्य ने सागर को।

१७१ : जिस प्रकार मृग उग्र सिंह को, सर्प गरुड को देखकर भागते हैं उसी प्रकार उसे आते देखकर पुरवासी पलायित हो गये।

१७२ : उसने भागने वालो को उसी प्रकार बांध लिया जिस प्रकार मान्त्रिक सर्पो को बाँध लेता है। कुछ लोग भय से भाग कर गिरि गह्वर मे प्रविष्ट हो गये।

१७३ : वह राजा भी भय से उलूक की तरह कही छिपकर स्थित हो गया फिर वहाँ के निवासी लोगो की बात ही क्या ?

१७४ : नरेन्द्रो को दिया गया विप्रशाप कभी वृथा नही गया। सल्लक्षण राजयक्ष्मा बिना प्राणान्त किये निवर्तित नही होता।

शेष श्लोको मे आलंकारिक वर्णन है।

पाद-टिप्पणी :

१६९ (१) शीत भय : इस वर्णन से स्पष्ट होता है। नवम्बर किंवा दिसम्बर का मास था। अक्तूबर के पश्चात् काश्मीर मे शीत बढ़ने लगती है। दिसम्बर एवं जनवरी मे तुषारपात होता है। नवम्बर मास के प्रारम्भ मे वृक्षो की पत्तियाँ झडने लगती हैं। शीतकाल मे घास मिलना कठिन हो जाता है। घास एक प्रकार से सूख जाती है। भूमि तुषारमण्डित रहती है। अश्वो के लिए चारा के अभाव एवं शीत बाधंक्य के कारण, न चाह कर भी, दुलचा काश्मीर उपत्यका त्यागने के लिए बाध्य हो गया। मैं काश्मीर मे स्वयं अनुभव कर चुका हूँ। अक्तूबर के पश्चात् जो वहाँ के ऋतु एवं जलवायु के आदी नही हैं, वे वहाँ नहीं रह सकते।

दुलचा ने काश्मीर उपत्यका मे आठ मास रहने के पश्चात्, भारत के लिए पचास हजार काश्मीरी दासों

हेतिभिस्तापयत्याशा दुलचे कृष्णवर्त्मनि ।
काश्मीरिकैर्जनैः सर्वैः शलभत्वमलभ्यत ॥ १५४ ॥

१५४ जब कि दुलच[1] कृष्णवर्त्मा (अग्नि) ज्वालाओं से जिस समय दिशाओं को तपा रहा था, उस समय सब काश्मीरी-जन उसमें शलभ बने ।

रुद्धयोर्दुल्चरिञ्चाभ्यां प्राच्युदीच्योर्बहुर्जनः ।
वसतेः पश्चिमामाशां प्राग्यमाशामथागमत् ॥ १५५ ॥

१५५ दुल्च एवं रिंचन[1] द्वारा प्राची एव उदीची दिशा के रुद्ध हो जाने पर, लोग वसती (ग्राम-नगर) से पश्चिम तथा दक्षिण दिशा से गये ।

पाद-टिप्पणी :

१५४ (१) दुलच = बम्बई संस्करण श्लोक सख्या १७० से प्रगट होता है कि उसकी सेना मे उसके साथ तुर्क, ताजिक एव अन्य विदेशी थे । वह काश्मीर मण्डल मे प्रवेश कर श्रीनगर मे पहुँच गया था । उसे देखकर नागरिक भय एवं त्रास से भाग गये । नागरिकों को दुलचा ने भागने नही दिया, उन्हे पकड लिया । उन्हे उसी प्रकार बाँध लिया जिस प्रकार मान्त्रिक सर्पों को मोहित कर लेता है । उनमे प्रतिरोध की शक्ति नहीं रह गई । वे जीवन भय से मोहित हो गये थे । कितने ही गिरि गह्वर मे जाकर शरण लिए । उस भयङ्कर काल मे राजा ने प्रजा-रक्षा का ध्यान त्याग दिया । दिन मे छिपे उलूक तुल्य छिप गया था । सर्वसाधारण की दुर्दशा की बात फिर क्या कही जा सकती है । काश्मीरी बन्दी बना लिए गए । तत्पश्चात् तुरुष्कों अर्थात् मुसलमानों के हाथ बेच दिये गये ।

हैदर मल्लिक ठीक ही कहता है कि इस समय काश्मीरियो का स्तर बड़े या छोटे सबका निम्न हो गया था । परस्पर अविश्वास, षड्यन्त्र तथा मिथ्या चरण, व्याप्त था । वे बुराइयो के शिकार हो गये थे (पाण्डु : ९३वीं ९४वी) ।

पाद-टिप्पणी :

१५५ (१) दुलच एव रिंचन : दोनो ने एक मुट नही बनाया । दोनो ने मिलकर आक्रमण नही किया था । दुलच ने बारहमूला पश्चिम और रिंचन ने जोजिला पास पूर्व दिशा से प्रवेश किया था । पश्चिम और पूरब दोनो ओर से काश्मीर मण्डल की जनता त्रस्त होने लगी । वह दो चक्कियो के पाट के बीच जैसे दबती पिस उठी । लद्दाख अर्थात् पूर्व एवं उत्तर दर्दिस्तान एवं बालती प्रदेश मे भागना कठिन था । काश्मीरी पश्चिम की ओर पहले भागे । पर्वतीय द्वारो से निकल कर अपनी रक्षा करना चाहते थे । परन्तु वहाँ दुलच की उपस्थिति देखकर, प्राणरक्षा हेतु दक्षिण बनिहाल एवं जम्मू प्रदेश की ओर पलायन किये ।

यहाँ पश्चिम एव दक्षिण शब्दो का प्रयोग जोनराज ने साभिप्राय किया है । पश्चिम मे सूर्य अस्त होता है । वह अन्धकार की, अवसान की, दिशा है । दक्षिण काल की दिशा है । यमलोक है । जोनराज ने काव्यमयी भाषा मे वर्णन किया है । काश्मीर निवासियो के पीछे मृत्यु दौड रही थी । वे प्राणरक्षा के लिए व्याकुल थे, सन्त्रसित थे । उनकी अवस्था अत्यन्त दयनीय एव करुण हो गई थी ।

हसन (८७ बी), बहारिस्तान शाही (१० ए), हैदर मल्लिक (९२ बी) का यह लिखना कि रिंचन ने और दुलचा ने एक साथ आक्रमण किया था ।

अधो दुल्चाम्बुपूराद्रीगिरौ रिञ्चनमारुतात्।
छायाजुषां फलाढ्यानां पुन्नागानामभूत्तदा ॥ १५६ ॥

१५६ नीचे दुल्च जल प्रवाह से एवं पर्वत पर रिंचन वायु (मारुत) से, छाया युक्त एवं फल पूर्ण पुन्नाग[1] (पुरुष श्रेष्ठ किंवा वृक्ष) भयभीत हो गये थे।

पक्षिशावमिव स्थानच्युतं चिल्लोल्लसद्रया।
बलश्री रैञ्चनी लोकं काश्मीरिकमपाहरत् ॥ १५७ ॥

१५७ जिस प्रकार झपट कर, चील्ह स्थानच्युत पक्षि-शावक को हर लेती है, उसी प्रकार वेग-शालिनी रिंचन की बलश्री ने काश्मीरी लोक का अपहरण कर लिया।[1]

श्री महबुबुल हसन के मत से गलत है। इसी प्रकार म्युनिख पाण्डुलिपि का यह वर्णन कि जुलचू की तरह रिंचन ने भी बँदी बनाया और लूटमार की यह भी गलत मानते हैं। (महवी : पृष्ठ ५३) वे लिखते हैं—'जुलजू (दुल्चा) के हमले के दौरान रिंचन जिला लार में मौजूद था और रामचन्द्र ने इसको अमन व अमान कायम करने और वाशिन्दों को डाकुओं से महफूज रखने के लिये मुलाजिम रख लिया था। इसने अपने फरायज बड़ी तन्देही और लियाकत से अन्जाम दिये। जिसकी वजह से इसका हलकए असर बढ़ता गया और अवाम का एतमाद हासिल हो गया। (पृष्ठ ५२) अगर चे जुलजू के हमलों के दौरान और इसके बाद रिंचन जिला लार में काफी मकबूल हो गया था। लेकिन रामचन्द्र से मुकाबर लड़ने की इतनी ताकत नहीं थी (पृष्ठ ५३)।'

पाद-टिप्पणी :

१५६. (१) पुन्नाग : इस वृक्ष से छाया एवं फल दोनों प्राप्त होता है। किन्तु जल एवं वायु दोनों उसे नष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार उदार एवं धनी लोग दुल्चा एवं रिंचन से भयभीत हो गये।

जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि दुल्चा काश्मीर उपत्यका में आ गया था। यह समतल काश्मीर भूमि जो आकस्मिक जलप्लावनों एवं भयंकर तूफानों से उजड़ जाती है। उसकी उपस्थिति में नाश हो गयी। रिंचन एवं दुल्चा के समय काश्मीर उपत्यका ने जलप्लावन एवं तूफान दोनों की भयंकरता का अनुभव किया। अन्तर यह था। दुल्चा एवं रिंचन से उद्भूत प्लावन मनुष्यों के विरुद्ध था। रिंचन पर्वत तक ही सीमित था। दुल्चा के संघर्ष से बचना था। दुल्चा की अपेक्षा निर्बल था। काश्मीर उपत्यका की समतल भूमि पर नहीं उतरा। इस समय काश्मीरी दुल्चा एवं रिंचन दोनों द्वारा उपत्यका एवं पर्वत पर सत्रसित थे।

हसन ने यह भी लिखा है कि रामचन्द्र की ओर से रिंचन लगान वसूल कर, अपना हिस्सा ले लेता था। शुक ने जुल्जुच्य विप्लव को दुल्चा के अत्याचार की संज्ञा दी है (२ ७४)। पुनः ने जुल्जुच्य की उपमा क्रूर वधिकों से दी है (२ . ५५)।

पाद-टिप्पणी :

१५७ (१) जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है। दुल्चा ने राजा सहदेव द्वारा प्राप्त धन से अपनी कार्यविधि सीमित कर ली थी। रिंचन को राजा प्रसन्न नहीं कर सका। जोनराज ने रिंचन की उपमा चील्ह से दी है। चील्ह आकाश में ऊपर उड़ती रहती है। भूमि पर मांस खण्ड किंवा भोज्य पदार्थ देखते ही, अकस्मात झपट कर नीचे उतरती है। यही अवस्था रिंचन की थी। वह पर्वत पर था। चील्ह के सदृश काश्मीरी जनता पर नीचे झपटता टूट पड़ा। उन्हें भग्न करने लगा।

जनाः काश्मीरिका दुर्गबिलेभ्यो मूषका इव ।
दुलचोतौ गते वन्दीकृतशेषा विनिर्ययुः ॥ १६० ॥

१६० दुल्च मार्जार के चले जाने पर, बन्दी होने से शेष, काश्मीरी-जन, दुर्ग बिलों से मूषक[1] सदृश निकले ।

के साथ, प्रस्थान किया । पञ्च सहस्र काश्मीरी दासो के साथ दुलचा परगना दिवसर मे तुषारपात के कारण नष्ट हो गया (व० शा० : ११ ए०, है० म० ९६वी, ९७वी) ।

दिवसर परगना पीर पतसल पर्वत माला, कोसर नाम शिखर से आरम्भ होता है । बनिहाल पर्वत-माला के समीप समाप्त होता है । दिवसर परगना पर्वतमालाओ की सुदृढ पंक्ति से परिवेष्टित है ।

एक मत है कि दिल्ली मे उस समय मुबारक शाह सुलतान (सन् १३१६–१३२० ई०) था । उसकी हत्या ९ जुलाई, सन् १३२० ई० को कर खुसरो सिंहासन पर बैठ गया । दिल्ली का शासन कमजोर था । अतएव सम्भावना यही प्रतीत होती है कि दिल्ली लेने के लिए ही काश्मीर से दिल्ली पहुँचने वाले सबसे नजदीक के मार्ग बनिहाल द्वारा लौटना चाहा । अन्यथा वह बारहमूला के मार्ग से लौटता ।

(२) तारबल : तारबल एक सकट या दर्रा अथवा पास का नाम है । यह पर्वतीय क्षेत्र मे है । श्रीवर ने इसका उल्लेख किया है । (जैन : १ : ७ - २०६ : २०७) उससे प्रकट होता है । इसके ऊपर से मार्ग विशाल्टा की ओर जाता है । विशाल्टा को श्री स्तीन ने (रा : १ · ३१७ : ८ · १७७) विचलारी नदी की उपत्यका लिखा है । विचलारी उपत्यका परगना दिवसर के दक्षिण है । स्तीन का मत कि तारबल राज दियनमन पास है । यह सन्देहास्पद है । श्रीवर ने तृतीय राजतरङ्गिणी मे तारबल मार्ग का उल्लेख किया है (जैन १ : ७ : २०५) ।

(३) निर्गत : दुलचा तथा उसकी सेना ने बाध्य होकर काश्मीर छोडा था । शीत ऋतु मे काश्मीर उपत्यका श्वेत-तुषार चादर ओढ लेती है, तो खाद्य पदार्थ की आशा नही रह जाती । वह चाहे मानव के लिए हो अथवा पशु । दुलचा बारहमूला तथा पखली से बाहर गया था । यह भी एक मत है ।

हसन का दूसरा मत है । दुलचा को ब्राह्मणो ने ब्रिनाल के भयङ्कर मार्ग से लौटने के लिए कहा । यह कुलगाँव तहसील मे है । काश्मीर उपत्यका के दक्षिण है । विरनाल से मार्ग बनिहाल होकर बाहर जाता है । मङ्गोल सेना पर्वत शिखर पहुँची तो भयङ्कर तुषारपात हुआ । दुलचा अपनी सेना, अश्व तथा बन्दियो के साथ वही श्वेत तुषार कफन मे लिपट कर मर गया (हसन : ९४ ए०, बी०) । नवादरुल-अखबार का मत है कि अपने सलाहकारो के सुझाव पर वह किस्तवार विजय करने के लिए प्रस्थान किया (ने० अ० : १४ ए) । हसन का मत है कि वह बारहमूला तथा पखली के मार्ग से लौटा । उसी मार्ग से उसने काश्मीर मे प्रवेश किया था । वह शीत काल मे भी सुगम तथा अन्य मार्गो से अपेक्षाकृत छोटा पडता था (हसन : ९४ ए० बी०) ।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या १९२ और मिलता है । उसका भावार्थ है— 'बिडाल के समान उसके चले जाने पर मरने से अवशिष्ट काश्मीरी मूषक सदृश बिल से धीरे-धीरे निकले ।'

१६०. (१) मूषक : जोनराज काश्मीरियो की कायरता पर व्यंग करता है । ब्राह्मणो के प्रायोपवेशन, उनका अभिचार, ब्रह्मशक्ति आदि दुलचा एवं रिंचन के सम्मुख कुण्ठित हो गये । जो ब्राह्मणो का आदर करते थे, उनकी पूजा करते थे, उन्ही पर ब्राह्मणों ने अपनी शक्ति का प्रहार किया था । क्योंकि उनके प्रति आदर के कारण वे प्रतिरोध नही कर सकते थे ।

नालब्ध पितरं पुत्रः पिता तं च न कंचन।
भ्रातृंश्च भ्रातरो दुल्चराक्षसोपप्लवात्यये ॥ १६१ ॥

१६१ दुल्च राक्षस का उपद्रव समाप्त होने पर, कोई पुत्र पिता को, पिता पुत्र को, तथा भाई ने भाई को नहीं पाया।[1]

काश्मीरियो की उपमा मूसो से जोनराज ने दी है। बिल्ली के किंचित मात्र भय एवं दर्शन से मूषक बिलो म घुस जाते है। छिप जाते हैं। यही अवस्था काश्मीरियो की थी। वे छिप गये। प्राण भय से भाग गये। दुल्चा बिल्ली के जाते ही, पुन: बाहर निकल आये।

परसियन इतिहासकारो ने लिखा है कि दुल्चा के चले जाने पर हिन्दू बङ्करवाल जिन्हे गद्दी कहा जाता है, किश्तवार से काश्मीर उपत्यका मे लूटमार के लिये प्रवेश किये। उस समय रामचन्द्र सहदेव का सेनापति था। उसने उन्हे काश्मीर उपत्यका से बाहर निकाल दिया (सूफी : ९८)। किन्तु जोनराज इस घटना का उल्लेख नही करता। डॉ० सूफी भी कोई प्रमाण नही देते। किस आधार पर उन्होंने गद्दियों के आक्रमण की बात लिखी है।

बम्बई संस्करण के कारण घटनाक्रमो मे थोडा अन्तर आ जाता है। जोनराज का लिखना है कि बन्दी होने से बचे लोग दुर्ग तुल्य बिलो से बाहर निकले। बम्बई प्रति के अनुसार मरने से बचे हुए काश्मीरी बिल से बाहर निकले। बम्बई संस्करण म 'बन्दी' के स्थान पर 'मरने' से बचे काश्मीरी बिल से बाहर, चूहो की तरह निकले। अर्थ निकलता है। इससे यह आभास मिलता है कि दुल्चा ने लूट-पाट हत्या व्यापक रूप से की थी। बन्दी बनाये लोगो को तो वह साथ ले गया, परन्तु जिन्हे बन्दी नही बनाया था, उनकी हत्या भी किया।

पाद-टिप्पणी :

१६१ (१) जोनराज दुल्चा के काश्मीर त्याग की परवर्ती परिस्थितियों का करुण वर्णन करता है। आठ मास दुल्चा काश्मीर म उपस्थित था। उस समय पचास हजार काश्मीरी दास बना लिये गये थे। रिंचन ने भौट्ट दास व्यापार से अत्यधिक आर्थिक लाभ उठाया था। दुल्चा काश्मीरी दासो को भारत मे बेचकर धन संग्रह करना चाहता था। उनका विशाल मानव कारवां लेकर, काश्मीर से प्रस्थान किया। यदि दस सहस्र भी काश्मीरी उत्सर्ग के लिये उद्यत हो जाते, तो काश्मीर का इतिहास उनके उत्सर्ग की कहानी से गौरवान्वित होता। काश्मीर स्वातन्त्र्य संघर्ष इतिहास का स्वर्ण पृष्ठ खुलता। सम्भव था भविष्य की होने वाली घटनाओ का प्रवाह बदल जाता।

प्रत्येक घर से कोई न कोई प्राणी दास बनकर बन्दी हो गया था। दास प्राय युवक बनाये जाते थे। पशुओ की तरह उन्हे देखकर, खरीदने वाला खरीदता था। उनका मूल्य उनके स्वस्थ शरीर तथा कार्य करने की क्षमता पर आँका जाता था। दुल्चा के चले जाने पर, पचास सहस्र दासो के नष्ट होने पर, सम्भव नहीं था कि कोई कुटुम्ब दुल्चा त्रास से अछूता बच गया होगा। लोग दुल्चा मार्जार के चले जाने के पश्चात बाहर निकले। कुटुम्ब छिन्न भिन्न हो गये थे। कोई एक सम्बन्धी दूसरे को नहीं पा सका था।

जगत के इतिहास म यह महान आश्चर्यजनक घटना है। विदेशी शक्ति का प्रतिरोध देश म नहीं किया गया। लोग चुपचाप अत्याचार का शिकार बनते गये। मरते गये। प्रतिरोध नहीं कर सके। नैतिक मनोबल के पतन के कारण काश्मीरी व्यष्टि-वादी हो गये थे। अपनी अपनी रक्षा में लग गये थे। उन्हे अपनी पड़ी थी। संघ शक्ति, सामूहिक शक्ति, देशभक्ति की प्रेरक भावना का लोप हो गया था।

मितलोका खिलक्षेत्रा निर्भोज्या दर्भनिर्भरा।
सर्गारम्भ इव प्रायस्तदा काश्मीरभूरभूत् ॥ १६२ ॥

१६२ उस समय काश्मीर भूमि सर्ग के आरम्भ काल सदृश निर्भोज्य, दर्भपूर्ण, शून्य खेतों एवं परिमित लोगों वाली हो गयी थी।[1]

सामर्थ्यान्न्यगृहीद् डुल्चो रिञ्चनः प्राभवत् पुनः।
विश्वमन्धयति ध्वान्ते सुखभाजोऽभिसारिकाः ॥ १६३ ॥

१६३ डुलच ने सामर्थियों को निगृहीत किया। रिंचन पुनः प्रभावशाली[1] हो गया। अन्धकार द्वारा विश्व को अन्धकाराच्छन्न करने पर अभिसारिकायें[2] प्रसन्न होती हैं।

स्वचिन्ता में देशचिन्ता भूल गये थे। प्रतिरोध की भावना तिरोहित हो गयी थी। प्रत्येक व्यक्ति का केन्द्र वह स्वयं था। वह अपने लिये चिन्तित था। वंश, कुटुम्ब, समाज, जाति एवं देशभक्ति की प्रेरक भावना सो गयी थी। जैसे उसका अवसान हो गया था। परिणाम अवश्यम्भावी था। पचास सहस्र युवक दास बनकर, बन्दी बनकर, काश्मीर में मर गये। किन्तु डुलचा के विरुद्ध जबान खोलने का साहस नहीं कर सके। किसी प्रकार का प्रतिरोध सघटित नहीं कर सके।

प्रतिरोध के अभाव में डुलचा एवं रिंचन दोनों को मैदान साफ मिला। दोनों ने काश्मीर भूमि को रौंद डाला। जिन प्राणों के मोह ने उन्हें कायर बना दिया था, उन प्राणों को नहीं रख सके। धन एवं जन दोनों ही नष्ट हुये। काश्मीर में उपस्थित विदेशियों के सघटनों ने काश्मीर का द्वार दासता के स्वागतार्थ प्रशस्त कर दिया। उसमें पहले रिंचन तत्पश्चात् शाहमीर ने प्रवेश किया। वे और उनके वंशज राजभवन की शोभा बढ़ाते हुए, शंखध्वनि के स्थान पर, अजां की आवाज बुलन्द करते हुए, काश्मीर की संस्कृति, सभ्यता, धर्म, कर्म, आचार, व्यवहार की परम्परा की होली में उस सुख का अनुभव किया, जो मानव की सहिष्णुता, उदारता, धर्मनिरपेक्षता को भुला देती है।

परसियन इतिहासकारों का मत है कि परिस्थितियों के कारण कुछ स्थानों पर जनता स्वयं सघटित हुई। उसने किलों का आश्रय लिया, शक्तिशाली व्यक्तियों को अपना नेता चुना: (हसन: ९५ ए०, हैदर मल्लिक ७८ बी०, बहारिस्तान शाही: १२ ए०)।

पाद टिप्पणी:

१६२ (१) उक्त पद से प्रकट होता है। काश्मीर उजड़ गया था। शीत काल था। खेतों में फसल नहीं थी। वृक्षों में फल नहीं थे। कुछ भी शेष नहीं रह गया था। कुछ दास काश्मीर में रह गये थे। वे विदेशियों के गुलाम थे। इस प्रकार की दारुण परिस्थिति का काश्मीर ने कभी सामना नहीं किया था।

भीषण परिस्थिति ने, काश्मीर के सुनहले इतिहास को बन्द कर दिया। उसने वह पृष्ठ खोला, जिसमें विदेशियों के आक्रमण, आवागमन, उनकी दया पर निर्भरता, निर्दयता की कहानी श्वेत पृष्ठों पर काली स्याही से लिखी जाने लगी।

केवल लार जिला डुलचा तथा रिंचन की तबाही से बच गया था। कुछ लेखकों ने मत प्रकट किया है। मंगोलों ने खेतों में आग लगा दी थी। फसल नष्ट हो गयी थी। डुलचा आठ मास काश्मीर में रहा। इस काल में काश्मीर के खेत नहीं बोये जा सके थे।

हसन तथा हैदर मल्लिक का मत है कि इस समय अकाल भी पड़ा था (हसन: ९४ ए० ९५ बी, है० म० ३१ ए ३२ बी)।

पाद-टिप्पणी:

१६३ (१) प्रभावशाली: बहारिस्तान शाही

डुल्चराहुविनिर्मुक्तं राजानं तुङ्गिमस्पृशा।
अरुरुत्सत्स शृङ्गेण रिञ्चनास्ताचलस्ततः ॥ १६४ ॥

१६४ डुल्च राहु[1] से मुक्त राजा (चन्द्रमा)[2] को उस रिंचन अस्ताचल ने उत्तुङ्ग शिखर द्वारा अवरुद्ध कर दिया।

का मत है कि रिंचन काश्मीर के अन्य सामन्तों के समान स्वतन्त्र होकर राजप्राप्ति का प्रयास करने लगा (व० शा : १२ वी)।

(२) अभिसारिका : यहाँ अर्थ कुछ विद्वानों ने दर्वाभिसार क्षेत्र लगाया है। यदि उनका मत मान लिया जाय, तो डुल्चा के चले जाने के पश्चात अभिसार के लोगों ने डुल्चा एवं रिंचन द्वारा काश्मीर की बिगड़ी परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिये, काश्मीर में प्रवेश किया।

अभिसार का अर्थ यहाँ अभिसारिका स्त्री से लगाया गया है। अभिसारिका स्त्री उसे कहते हैं जो प्रेमी से मिलने के लिये निर्धारित स्थल पर जाती है। अभिसारिका नायिका अवस्थानुसार दस भेदों में एक है। अभिसारिकायें दो प्रकार की होती हैं। शुक्ल अभिसारिका चाँदनी रात में प्रिय से मिलने के लिए जाती है। कृष्ण अभिसारिका अँधेरी रात में जाती है। यहाँ कृष्ण अभिसारिका से अभिप्राय है। वह सर्वदा जगत की आँखों से छिपती घोर से घोर अन्धकार को पसन्द करती है।

दार्वाभिसार का प्रयोग एक साथ पुराणसाहित्य में मिलता है। दर्व एक जाति का नाम है। यह जाति चन्द्रभागा तथा जम्मू में रहती थी। दर्व जाति के साथ ही अभिसार जाति निवास करती थी। यही कारण है कि दोनों का नाम प्रायः एक में मिलाकर एक साथ लिया जाता है। प्रदेश का नाम दर्वाभिसार पड़ गया था। चेनाब तथा रावी के मध्य का भाग दर्व जनपद था (सभापर्व : ५१ : १३, ४८ : १२ : १३)।

उशीनर की पत्नी का नाम दर्वा था। मार्कण्डेय पुराण में दर्व एवं अभिसार दो जनपद माने गये हैं (५७ : ५६–५७)। उन्हें पर्वतवासी जाति लिखा गया है। भीष्म पर्व में दर्वा तथा अभिसार दो भिन्न जातियों का उल्लेख किया गया है (भीष्म : ९ : ५४)। दर्व जाति के निवास के कारण देश का नाम दार्व पड़ गया था (सभा : २७ : १९)। दार्व क्षत्रिय जाति थी (सभा : ५२ : १३)।

अभिसार का उल्लेख बृहत् संहिता में वराह-मिहिर ने किया है। अभिसार प्रदेश भी झेलम तथा चनाब नदियों के मध्य था। पर्वतीय क्षेत्र है। पुँछ तथा नौशेरा इस क्षेत्र के मुख्य भाग थे। सभा-पर्व महाभारत में अभिसारी शब्द मिलता है। अभिसार प्रदेश एवं जनपद का बोधक है (सभा : २७ : १९, ९३ : ५४)। कल्हण ने दार्वाभिसार का उल्लेख (रा : १ : १८०, ४, ५, १२, ५, १४१, २०९, ७ : १२९२, ८ : १५३१, २४४०) किया है। श्रीवर ने भी अभिसार का उल्लेख (जैन : १ : ५ २२ : १४१) किया है। इन उल्लेखों से प्रकट होता है। मूल नाम दार्वाभिसार सोलहवीं शताब्दी तक प्रचलित था।

डुल्चा ने काश्मीर के सामर्थ्यवान लोगों को दबाया था। निगृहीत किया था। डुल्चा के पश्चात् रिंचन पुनः प्रभावशाली हो गया। अपनी स्थिति मजबूत करने लगा। काश्मीरी जन दुःखों में पड़े थे। अव्यवस्था, कुव्यवस्था, दुर्दशा अत्याचार की पीड़ा के कारण, लोग त्रस्त एवं विघटित हो गये थे। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर, रिंचन अपने साथियों को एकत्रित कर प्रबल हो गया।

पाद-टिप्पणी :

१६४ (१) राहु : एक दानव का नाम है। ग्रहों में एक ग्रह है। सूर्य को ग्रसित करने वाले दानव के रूप में इसका निर्देश अथर्ववेद में प्राप्त है (अवे : १९ : ९–१०, कौशिक सूत्र : १००)। पुराणों की मान्यता के अनुसार कश्यप दिति एवं दनु माता का

पुत्र है। कुछ पुराणों ने इसे कश्यप पिता एवं सिंहिका माता का पुत्र माना है (आ : ५९–३०, विष्णुधर्म १ : १०६; पद्म : सृ : ४०)। भागवत एवं ब्रह्माण्ड पुराण में इसको विप्रचित्ति पिता एवं सिंहिका माता का पुत्र कहा गया है (भा० ६ : ६ : ३७,१८,१३, ब्रह्माण्ड : ३ : ६ : १८–२०)।

स्वर्भानु नामक एक असुर का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है। उसे प्रकाश रोकने वाला माना है। वह सूर्य के प्रकाश को आकाश में रोकता है (ऋ० : ५ : ४०)। राहु गण ऋग्वेद (१ : ७८ : ५) में बहुवचन में प्रयुक्त किये गये हैं। वह एक वैद्य था। यहाँ नाम है। निर्दिष्ट स्वर्भानु का स्थान वैदिकोत्तर पुराकथा शास्त्र में राहु के द्वारा लिया गया है। इसलिये इसे चन्द्रार्क प्रमर्दन कहा गया है (भा : ५ : २३ : ७)। पुराणों में इसका नामान्तर स्वर्भानु बताया गया है (ब्रह्माण्ड ३ : ६ : २३)। शिशुमार के कण्ठ में इसका स्थान है।

समुद्र मन्थन किंवा अमृत मन्थन के पश्चात् देवता अथवा सुरगण अमृत पान करने लगे। राहु ने छद्म रूप धारण किया। अमृत पान किया। अमृत राहु दानव के कण्ठ तक पहुँच पाया था। सूर्य एवं चन्द्रमा ने भेद जान लिया। दैत्य किंवा दानव राहु द्वारा अमृत पान की सूचना विष्णु भगवान को दी। विष्णु ने तत्काल राहु का शिरश्छेद कर दिया। मस्तक भूमि पर लुण्ठित हो गया (आ० १७–४६)। इसके मस्तक से राहु का निर्माण हुआ। राहु बिना धड़ घूमने लगा। सूर्य एवं चन्द्रमा को कभी क्षमा नहीं कर सका। सर्वदा सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रास करने लगा। इस कारण सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण लगता है (पद्म : ब्रा : ब्र १०)।

राहु ग्रह का आकार वृत्ताकार है। इसका व्यास बारह हजार योजन है। सीमा बयालिस हजार योजन है। शङ्कर एवं जालन्धर के पारस्परिक संघर्ष में वह राजदूत बनकर शङ्कर के समीप गया था (पद्म : उ० : १०)। किन्तु शङ्कर की क्रोधाग्नि से भयभीत हो गया। पलायन कर गया (पद्म : उ० १९)। इसकी कन्या का नाम सुप्रभा था (पद्म : सृ : ६)। भागवत में उसे स्वर्भानु कहा गया है। कुछ पुराणों में इसकी कन्या का नाम प्रभा दिया गया है।

(२) राजा : राजा शब्द पद में श्लिष्ट है। राजा का अर्थ भूपति तथा चन्द्रमा दोनों होता है। राजा चन्द्र को राहु ने त्याग दिया। अर्थात् ग्रहण से चन्द्रमा का मोक्ष हो गया। उसका प्रकाश फैल गया। परन्तु अस्ताचल रिचन के कारण चन्द्रमा का प्रकाश नहीं फैल सका।

असूया तथा अत्रि का पुत्र सोम किंवा चन्द्रमा है (भा० ४ : १३ : शा० २०० : २४)। इसको सूर्य तथा भद्रा का भी पुत्र माना गया है। यह स्वायंभुव मन्वन्तर में उत्पन्न हुआ था (आ० ६०–१४)। चन्द्रमा के जन्म सम्बन्धी अनेक कथायें प्रचलित हैं। अत्रि ने इसे दशों दिशाओं में उत्पन्न किया था (विष्णुधर्म : १ : १०६ : स्कन्द : ४ : १ : १४)। यह अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न हुआ था (ह : व : १ : २५ : ७ : ९ वायु ९० : ५)। दक्ष प्रजापति की २७ कन्यायें, इसको पत्नी स्वरूप दी गई थी। वहीं आकाशस्थ २७ नक्षत्र हैं (आ० ६०–१२, १५, ह० व० १ : २५ : ३३ स्कन्द ७ : १ : २०)।

पृथ्वी की ओषधियाँ चन्द्रमा से प्रभावित होती हैं। तपस्या के प्रभाव द्वारा इसके नेत्रों से सोम गिरने लगा। उससे ओषधियों की उत्पत्ति हुई है (स्कन्द ७ : १ : २०)। इसका उदय न होने पर, पृथ्वी की ओषधियाँ एवं वनस्पतियाँ सूख गयीं (श० : ३४)। अमृत द्वारा चन्द्रमा ने अनाथ मारिषा की रक्षा किया था। इसको २७ दी गयी कन्याओं में इसका रोहिणी (नक्षत्र) पर अधिक स्नेह था। दक्ष अप्रसन्न होकर चन्द्रमा को क्षय व्याधि का शाप दिया। इस शाप के कारण ओषधियों का होना बन्द हो गया। देवताओं की प्रार्थना पर दक्ष ने उसे आशीर्वाद दिया—'पन्द्रह दिन तक क्षय एवं पन्द्रह दिन, तक वृद्धि होगी।' अतएव चन्द्र मास में कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष होने लगे।

दृष्ट्वा गगनगिर्यग्रे भास्वन्तं रिञ्चनं स्थितम् ।
अशङ्कयत न कै राज्ञः प्रत्यासन्नोऽस्तसंस्तवः ॥ १६५ ॥

१६५ गगनगिरि[1] के आगे भास्वान रिंचन को स्थित देखकर, राजा के आसन्न यश अवसान की शंका किसे नहीं हुई ।

रिञ्चनश्येनराजस्य जिहीर्षोर्नगरामिषम् ।
कुलचन्द्रो रामचन्द्रो विघ्नं चक्रे पदे पदे ॥ १६६ ॥

१६६ नगरामिष का हरणेच्छुक रिंचन श्येनराज का, कुलचन्द्र रामचन्द्र[1] ने पद-पद पर विघ्न[2] (प्रतिरोध) किया ।

चन्द्र पिता एवं तारा माता से उत्पन्न पुत्र बुध है । यही से चन्द्र वंश का आरम्भ हुआ है (भा० : ९ : १४, ह० व० : १ : २५, पद्म : पा० : १२, ब्रह्म : ९ : मत्स्य २३, दे० भा० १ : ११ : वायु : ९० : २-९) । सोम वंश का प्रथम राजा सोम था । पत्नी रोहिणी थी । राजधानी प्रयाग थी (पद्य उ० १५६) ।

भारत के प्राचीन राजवंश सूर्य एवं सोम वंश हैं । सूर्यवंश वैवस्वत मनु के पुत्र और सोमवंश उनकी पुत्री इला से आरम्भ होता है । वैवस्वत मनु की कन्या इला सोम पुत्र इला की पत्नी थी । उससे पुरुरवस, आयु, नहुष, ययाति का वंश विस्तार हुआ था । जोनराज ने सोम वंश की ओर प्रतीत होता है, इस पद में संकेत किया है ।

पाद-टिप्पणी :

१६५. (१) गगनगिरि : इसका प्राचीन नाम गङ्गनगिर है । इस समय लारपरगना में छोटा गाँव सिन्ध उपत्यका में है । नदी के दक्षिण तट पर सुन्दर दृश्यों को समेटे स्थित है । सोन मर्ग से १० मील पश्चिम है । सोन मर्ग उपत्यका पार करने पर दुरुनर पश्चात् पड़ता है ।

उसका संस्कृत रूप गगनगिरि बिगड कर गगनेर अथवा गङ्गनगिर ग्राम हो गया है । जोनराज का तात्पर्य इससे पूर्वीय पर्वतमाला प्रतीत होता है । गङ्गनगिर ग्राम सिन्ध उपत्यका में है । बुक राजतरङ्गिणी बम्बई की प्रति में गलती से—'गमन' शब्द गगन के स्थान पर छप गया है । श्रीस्तीन का मत है । गगनगिर सिन्ध उपत्यका का ही उक्त जोनराज वर्णित गगनगिरि है । (राज भाग : २ : ४९०)

काश्मीर में लद्दाख की ओर से जोजीला पास से होने वाले दोनों आक्रमणों के सन्दर्भ में इसका वर्णन किया गया है । प्रथम आक्रमण भोट्ट रिंचन तथा द्वितीय मिर्जा हैदर (सन् १५३२ ई०) का हुआ था । मिर्जा हैदर के आक्रमण के सन्दर्भ में गगनगिर का उल्लेख किया गया है । गगनगिरि ७४०० फीट ऊँचाई पर स्थित है । आबादी वर्षपर्यंत रहती है । पूर्व काल में आबादी का यह अन्तिम स्थान था । आधुनिक साधनों के कारण अब आबादी और आगे तक बढ़ गयी है । इससे २५ मील और दूर ऊपर जाने पर जोजिला पास मिलता है । यह काश्मीर उपत्यका का अन्तिम छोर है । लद्दाख दिशा से काश्मीर उपत्यका का प्रवेश मार्ग है ।

मैं जोजिला पास दो बार आ चुका हूँ । श्रीनगर सड़क जब बन रही थी । उस समय आया था । अन्तिम बार श्रीनगर लेह सड़क पूरी बन जाने पर श्रीनगर-लेह तक की मोटर यात्रा किया था । जोजिला पास का दृश्य भयङ्कर है । मार्ग कठिन है । खड्डों एवं गर्तों की ओर देखने से साहस टूट जाता है ।

पाद-टिप्पणी :

१६६ (१) रामचन्द्र : रामचन्द्र कौन था इस पर जोनराज प्रकाश नहीं डालता । एक मत है ।

रामचन्द्र सूहदेव किंवा सहदेव का सेनापति था। किन्तु कोई साधारण प्रमाण अब तक नहीं मिल सका है।

(२) विघ्न : काश्मीर मे उस समय भी देश भक्त एव स्वाधीनता प्रेमियो का दर्शन मरुस्थल मे शाद्वल समान मिल जाता है। वे काश्मीर की रक्षा करना चाहते थे। दुलचा का प्रतिरोध उसकी अपार शक्ति के कारण करना कठिन था। काश्मीर मे शरणार्थी बनकर, प्रवेश करने वाले रिंचन की शक्ति एकत्रित कर, राज्य प्राप्त की महत्वाकाक्षा से काश्मीरियो का एक वर्ग सतर्क हो गया था।

रामचन्द्र रिंचन के प्रतिरोध हेतु सन्नध हो गया। हसन का मत है। रामचन्द्र ने अपने को राजा घोषित कर दिया। उसने रिंचन को इस कार्य के लिये नियुक्त किया था, कि वह खसो को जो काश्मीर उपत्यका मे आ गये थे, और जिन्हे अभिसार भी कहते थे, वाहर निकाल दे।

परसियन लेखको का मत है। कि रिंचन ने अभिसारो अर्थात खसो से सफलता पूर्वक युद्ध किया था। तत्पश्चात श्रीनगर पर अधिकार करने का प्रयास करने लगा (हसन : ३ १६०, ३ १६४)।

हसन की कल्पना साधारण नहीं है। क्योकि श्लोक १७० मे जोनराज ने स्पष्ट लिखा है। राजा सहदेव ने श्रीनगर का त्याग कर दिया था। रामचन्द्र लहर म था। रिंचन ने उस पर आक्रमण किया।

जोनराज ने रिंचन की उपमा श्येन अर्थात वाज से दी है। श्रीनगर को मास माना है। वाज मास प्राप्ति के लिये झपटता, आकाश से टूटता, दुर्बल पक्षियो को धर दबोचता है। रिंचन काश्मीरियो की दुर्बलता का लाभ उठाया।

जोनराज सकेत भी नहीं करता। रामचन्द्र की सेवा रिंचन ने ग्रहण की थी। रिंचन की वीरता, तथा उसे श्रेष्ठ वीर प्रमाणित करने के लिये, परसियन इतिहासकारो ने उक्त प्रसङ्ग जोड दिया है। उस पर विश्वास करना सम्भव नहीं है।

रामचन्द्र का चरित्र निखरता है। वीरता प्रकट होती है। काश्मीर भूमि के सुपुत्र देशभक्त तुल्य रिंचन का पद-पद पर प्रतिरोध करता है। किसी भी अवस्था मे एक साहसी विदेशी के हाथो मे देश का शासन नही जाने देना चाहता था। मेवाड के राजपूतो सदृश देश रक्षा हेतु रिंचन श्येन से रामचन्द्र कृत-सङ्कल्प हो गया था। जोनराज ने कम से कम इतना तो सकेत किया है कि रिंचन का प्रतिरोध पद-पद पर किया गया। काश्मीरी जनता विदेशी दुलचा से त्रस्त हो चुकी थी। रिंचन से त्रस्त हुई थी। स्वाभाविक था। रिंचन का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए उद्यत नही थी। नि सन्देह कुछ देशभक्त रामचन्द्र के नेतृत्व मे देश रक्षा की भावना से प्रेरित होकर, एकत्रित हो गये थे। राजा की क्लीवता के कारण रामचन्द्र ने स्वय नेतृत्व ग्रहण किया था।

हसन किस आधार पर लिखता है कि रामचन्द्र ने स्वय अपने को राजा घोषित किया था पता नही चलता। उसने अपना इतिहास उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे लिखा था। उसने कोई प्रमाण उपस्थित नही किया है। सबसे पूर्व का प्रमाण केवल जोनराज का इतिहास ही प्राप्त है। उस पर किसी अन्य प्रमाण के अभाव म विश्वास करना उचित है।

जोनराज ने रामचन्द्र का परिचय नही दिया है। उसकी वशपरम्परा नही देता। कौन था ? किस प्रकार शक्तिशाली हो गया ? एव अनुमान लगाया गया है। वह सहदेव अर्थात् सूहदेव का सेनापति था।

हसन के अनुसार रामचन्द्र ने अपने को स्वय राजा घोषित किया था। और रिंचन पर यह भार दिया था कि वह खसो अर्थात् दर्वाभिसारियो को काश्मीर उपत्यका से निकाल दे। परसियन इतिहासकारो का झुकाव इस ओर अधिक है कि, रिंचन ने आक्रमक खसो से युद्ध किया था। उन्हें निकाल दिया था। तत्पश्चात् वह श्रीनगर हस्तगत करने मे तत्पर हो गया। किन्तु हसन तथा परसियन इतिहासकार कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करते।

भौट्टाल्लँहरकोट्टान्तः पट्टविक्रयकैतवात् ।
प्रत्यहं वञ्चनोद्योगो रिञ्चनोऽथ विसृष्टवान् ॥ १६७ ॥

१६७ वंचनोद्योगी[1] रिंचन पट्ट बेचने के व्याज से, लहर कोट[2] के अन्दर, प्रतिदिन भौट्टों को भेजता रहा।

पाद-टिप्पणी :

१६७ (१) वचनोद्योगी : जोनराज का वर्णन अधूरा है। अस्पष्ट है। रिंचन के प्रयास का रामचन्द्र पद पद पर विरोध करता था। इस वर्णन के तुरन्त पश्चात्, जोनराज श्रीनगर से दूर लहर में रामचन्द्र को पहुँचा देता है। इस बीच क्या घटनायें घटी ? रामचन्द्र के प्रतिरोध का क्या रूप था ? प्रतिरोध का क्या परिणाम होता रहा ? जनता की भावना क्या थी ? लहर कैसे रामचन्द्र पहुँच गया ? इस पर जोनराज कोई प्रकाश नहीं डालता। उसका वर्णनक्रम, घटनाक्रम, टूटता, शिथिल दिखाई देता है।

रामचन्द्र निःसन्देह शक्तिशाली था। दुर्बल नहीं था। राजा सूहदेव सदृश देशत्याग नहीं किया था। रिंचन स्वयं उसका खुलकर सामना करने में असमर्थ था। उसने छल एवं षड्यन्त्र से रामचन्द्र को मारने का प्रयास किया।

रिंचन के साथ भौट्ट थे। उनमें जो उसके साथ नहीं भी थे, उनका भी रिंचन के शक्तिशाली होने पर, उसके नेतृत्व में संघटित हो जाना स्वाभाविक था। भौट्ट लोगों को, पट्ट बेचने के बहाने, रिंचन उनका प्रवेश, लहर में कराता रहा। व्यापार करने के व्याज से, लहर में काफी भौट्ट सैनिक व्यापारी रूप में एकत्रित हो गये थे। रामचन्द्र ने स्वाभाविक राज-सहिष्णुता का परिचय दिया। उसने भौट्टों को व्यापारी समझ कर, उनके विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया। भौट्ट प्रायः ऊनी सामान पट्टरों पर बेचते दिखायी देते हैं। काश्मीर में भौट्टों का व्यापार करना, कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। वे सीमान्त निवासी थे। आज भी लद्दाख काश्मीर राज्य का भाग है। तिब्बत तथा लद्दाख का ऊन प्रसिद्ध होता है। उसी से पशमीना बनता है। तिब्बत पर चीनियों का जबसे अधिकार हो गया है, पशमीना बनना तथा उसका *व्यापार प्रायः बन्द हो गया है। तिब्बत से याता-*यात, व्यापार तथा किसी प्रकार का सम्बन्ध, इस समय भारत-चीन-युद्ध सन् १९६२ ई० के कारण नहीं रह गया है।

मोहिबुल हसन बहारिस्तान शाही के आधार पर लिखते हैं—लिहाजा वह एक चाल चला। उसने अपने लद्दाखी साथियों को ऊनी कपड़ों के ताजिरों के भेष में कसबा लार में भेजा। वह कुछ दिन कारबार में मशगूल रहे। और इनके मुतल्लिक किसी को भी शक व शुबहा नहीं हुआ। एक दिन कारबार के बहाने से किला के अन्दर दाखिल हुए। उन्होंने वस्त्रों असलहा छिपा रखा था (पृ० ४३ बहारिस्तान शाही : १२ बी)।

(२) लहरकोट : लहर शब्द लार उपत्यका के लिये प्रयोग किया गया है। यहाँ एक कोट था। क्षेत्र के नाम पर उसकी लहर संज्ञा दी गयी थी। श्रीनगर जोजिला पास मार्ग पर यह कोट पड़ता था। काश्मीर की अन्य सैनिक चौकियों के समान यह भी कोट स्वरूप सैनिक चौकी थी। इसके निश्चित स्थान का पता नहीं चलता। लहर ही लार जिला है। इसमें वे सभी क्षेत्र हैं, जिसमें सिन्ध नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ प्रवाहित होती उस क्षेत्र का जलग्रहण करती हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी में लहर का जो वर्णन किया है, वह आज भी मिलता है (रा : ७ : ९ : ९११, ११९०, ८:४३७, ७२९, ७९१, ११२२)। श्रीवर ने भी लहर का उल्लेख किया है (जैन ४ : १४७ १ : ५ : १२)। शुक ने अपनी राजतरंगिणी श्लोक २२६ में इसका उल्लेख किया है।

तथैव लहरस्यान्तर्भुट्टलोके प्रवेशिते ।
अपीप्यद् रामचन्द्रास्रमधु शस्त्राणि रिञ्चनः ॥ १६८ ॥

१६८ इस प्रकार लहर के अन्दर भुट्ट लोगों को प्रविष्ट कर देने पर, रिंचन ने शस्त्रों को रामचन्द्र[1] के रुधिर मधु का पान कराया ।

लोकप्रकाश मे क्षेमेन्द्र ने (पृष्ठ ६०) लहर को विषय अर्थात् परगना कहा है। लहर तथा लोहर पाण्डुलिपियो के लिपिको के असावधानीपूर्ण लेखन के कारण भ्रम उत्पन्न करती है (रा : ५ : १७७, ७ : ९६५, ८ : ३८, ९१४)। कोट शब्द काश्मीर मे प्रचलित नही रह गया है। कोट को किला कहने की जनता आदी हो चुकी है।

पीर हसन बिल्कुल दूसरी बात लिखता है। उसने रामचन्द्र का स्थान अन्दर कोट लिखा है। लिखता है—'कोयला की बोरियो मे शस्त्र रखकर अन्दर कोट पहुचा दिये गये। इस प्रकार उसके आदमी, रामचन्द्र जब अपने शयनगृह मे सो रहा था, वहाँ सशस्त्र प्रवेश कर, उसे मार डाले। रावणचन्द्र को गिरफ्तार कर लिया—शहर मे आकर शाही तख्त पर बैठ गया (परसियन पृष्ठ : १६४)।

सभी इतिहासकारो ने रामचन्द्रका स्थान लहर लिखा है। केवल पीर हसन ने स्थान अन्दर कोट लिखा है। जोनराज स्पष्ट लिखता है कि वह घटना लहर कोट में हुई थी।

पाद-टिप्पणी :

१६८ (१) रामचन्द्र की हत्या : लहर मे यथेष्ट संख्या मे भौट्टो के पहुँच जाने पर, किसी प्रकार का प्रतिरोध न होने पर, काश्मीरियो की असावधानी का लाभ उठाकर निस्सन्देह सशस्त्र विद्रोह किंवा भौट्ट सैनिको के आक्रमण द्वारा, रिंचन ने लहर पर अधिकार कर लिया। रामचन्द्र के रुधिर मधु का पान शस्त्र को कराया। इस वर्णन से स्पष्ट होता है रामचन्द्र ने वीरगति प्राप्त की। उसकी हत्या छल से रिंचन ने की थी, इसकी सम्भावना अधिक प्रतीत होती है। यह घटना अक्तूबर सन् १३२० ई० की कही जाती है।

डॉ० सूफी ने रावणचन्द्र को रामचन्द्र का पुत्र तथा कोटा देवी का भाई माना है। रिंचन ने राजा होने पर रावणचन्द्र को सेनापति नियुक्त किया था। उसे लार की जागीर दी। तारीख-ई-काश्मीर मे लिखा है—रिंचन ने रावणचन्द्र को 'जो दोस्त का लकब' दिया था' (कसीर पृष्ठ १२१)।

जोनराज रावणचन्द्र अथवा कोटा देवी के किसी भाई का उल्लेख नही करता। डॉ० सूफी ने यह भी लिखा है—'रावणचन्द्र ने इस्लाम कबूल कर लिया' (कसीर १२५)। किन्तु किस आधार पर लिखा है, इसका उल्लेख किंवा किसी सन्दर्भ ग्रन्थ का नाम नहीं देता।

मोहिबुल हसन गौहरे आलम का उद्धरण देकर लिखते है—'रामचन्द्र ने आदमियो पर अचानक धावा बोल दिया। इसी असना मे पहले से शुदा वक्त पर, रिंचन ने भी किला पर हमला कर दिया। रामचन्द्र की फौजे हार गयी। और वह खुद भी मारा गया। इसका बेटा रावणचन्द्र पूरे खान्दान के साथ गिरफ्तार हुआ' (मोहिबुल: उर्दू ५३)। गौहरे आलम ने वर्णन किया है—'रिंचन को उसके (रामचन्द्र के) भाई ने जो दरद का हुक्मरा था मदद दी'। लेकिन मोहीबुल हसन का मत है। यह गलत है (गौहरे आलम पृष्ठ ९९ ए)।

रामचन्द्रकुलोद्यानकल्पवल्लीं स रिञ्चनः ।
वक्षःस्थले महाबाहुः कोटादेवीमरोपयत् ॥ १६९ ॥

१६९ महाबाहु उस रिंचन ने वक्षस्थल पर, रामचन्द्र के कुल-रूपोद्यान की कल्पवल्ली, कोटा[1] देवी को आरोपित किया ।

पाद-टिप्पणी :

१६९ (१) कोटा : श्री दत्त ने अनुवाद नवीन कोटा अर्थात् कोटा रानी किया है । जोनराज ने कोटा देवी शब्द का प्रयोग किया है । उक्त अनुवाद इतिहासकारों के भ्रम का कारण हुआ है । इस भ्रम के कारण कोटा का दो बार विवाहित होना मान लिया गया है । यही भ्रम दिल्ली सल्तनत के लेखक को हुआ है । वह लिखता है—जोनराज ने जो भाव प्रकट किया है, उससे कोटा रामचन्द्र की कन्या की अपेक्षा पत्नी अधिक प्रतीत होती है (पृष्ठ ४२९) । विद्वान लेखक ने कोटा की परिभाषा करते कल्ह एवं कल्प शब्दों का प्रयोग कर उसका अर्थ 'श्वेत कमल' किया है । आधुनिक सभी इतिहास लेखकों ने दत्त के अनुवाद पर ही अपना मत एवं निर्णय स्थिर किया है । कोटा कुल कल्प वल्ली शब्द से स्पष्ट होता है । वह रामचन्द्र के वंश की थी । किन्तु रामचन्द्र की कन्या नहीं थी ।

जोनराज इसमे सन्देह का स्थान नही छोडता । किसी प्रमाण किंवा उल्लेख से प्रमाणित नही होता । *विजातीय के साथ अभिजात, मुख्यतः राजकुल की कन्यायें नहीं दी जातीं ।* भगवान बुद्ध के समय विड्डभ की माँ को बुद्धवंशीय शाक्य राजकन्या कहकर, कोसलराज से विवाह किया गया था । बात प्रकट हुई । महान रक्तपात हुआ था । मुसलिम काल में राजपूत राजागण वंचनापूर्वक दासीपुत्री तथा कुल की अन्य कन्याओं को मुसलिम बादशाहों एवं नवाबों के साथ विवाह कर अपने सम्मानकी रक्षा करते थे । रामचन्द्र के कुल उद्यान की कोटा वल्ली अर्थात् कन्या थी । इससे प्रकट होता है कि वह *रामचन्द्र की कन्या नहीं* थी । राजकन्या नहीं थी । लहरकोट में रहनेवाले किसी कुल की कन्या थी । उसका कोटा नाम इस बात को प्रकट करता है कि कोट में पैदा होने के कारण नाम कोटा रख दिया गया होगा । काश्मीर के राजवंशीय राजकन्याओं का नाम राजवंश के अनुरूप संस्कृत आधारित मधुर शब्दों पर रखा जाता था ।

एक अनुमान और किया जा सकता है । कोटा का कोई और सुसंस्कृत नाम रहा होगा । वह अन्दर कोट में मारी गयी थी । वह काश्मीर के प्राचीन इतिहास का दुःखान्त अध्याय बन्द हुआ था । अतएव कोट के कारण उसका पुकारने का नाम कोटा पड़ गया होगा । कोटा शब्द रानी नाम के अनुरूप नहीं मालूम होता । उसके प्रति उपेक्षा एवं निरादर की भावना से जनता उसे कोटा नाम से पुकारने लगी । जोनराज के समय सभी काश्मीरी मुसलमान हो गये थे । अत एव प्राचीन नाम आदि विस्तृत सागर में डूब गये थे । यह उपेक्षित नाम प्रचलित *रह गया होगा । अत एव जोनराज ने उसे ही बिना और पता लगाये एवं शोध कार्य किये लिख दिया ।*

यह गलत लिखा गया (*इस्तखाब : पाण्डुलिपि :* ४८०) है कि कोटा रामचन्द्र की स्त्री थी । प्रायः परसियन तथा अनेक भारतीय लेखकों ने कोटा को रामचन्द्र की स्त्री मानकर गलती की है । (म्युनिनः पाण्डु : ४८ए) में कोटा को निम्नकोटि तथा आचरणहीन प्रमाणित करने की कहानी गढ़ ली गई है कि उसका तीन बार विवाह हुआ था । चौथी बार शाहमीर ने *लिया था ।*

कोटा नाम काश्मीर के राजवंशीय महिलाओं के *अनुरूप नहीं है । मुसलिम काल में भी मुसलमान सुल्तानों की महिलाओं का नाम सुसंस्कृत श्री शोभा*

आदि रूप मे मिलता है। कोट विजय के पश्चात कोट मे प्राप्त कन्या से रिंचन ने विवाह किया। इसलिये कोटा नाम रख दिया गया होगा। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है। उसका पूर्व सुसंस्कृत नाम कुछ और रहा होगा। फिरिस्ता ने नाम कवल देवी दिया है। यह स्पष्टत कमला देवी नाम है। यद्यपि फिरिस्ता ने कोई सन्दर्भ ग्रन्थ का नाम नही दिया है तथापि उसका नाम साभिप्राय है। आश्चर्य है श्रीवर एवं शुक ने कोटा देवी का उल्लेख तक नहीं किया है।

मुसलिम विजेताओ की नीति रही है। जिस स्थान अथवा दुर्ग किंवा कोट को जीतते थे वहा के सरदार, राजा की स्त्री किंवा कन्या से विवाह अपना गौरव प्रकट करने के लिये करते थे। प्रथम मुसलिम आक्रमक मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्धराज दाहिर की स्त्री से विवाह कर लिया था। अलाउद्दीन खिलजी आदि ने अवसर पाने पर यही किया है। यह प्रथा अकबर के समय तक चलती रही। इस प्रकार का विवाह विजय एव गौरव का प्रतीक माना जाता था। राजाओ की कन्या से बादशाह विवाह करते थे। इसे राजपूत डोला देना कहते थे।

शाहमीर आदि चतुर मुसलिम थे। मुसलिम आबादी काश्मीर मे बढती ही थी। रिंचन के पुत्र का अभिभावक भी शाहमीर था।

शाहमीर ने कोटा रानी से अन्दरकोट जीतने पर विवाह करने का प्रयास किया था। रिंचन मालूम होता है कि काश्मीर मे व्याप्त मुसलिम तथा शाहमीर आदि के प्रभाव के कारण कोटा से विजय प्रतीक स्वरूप विवाह किया था। भारत के मुसलिम बादशाहो ने हिन्दूराजाओ को जीतकर उनकी कन्याओ से स्वेच्छया या जबर्दस्ती विवाह करने का सर्वदा प्रयास किये है जिसके कारण सहस्रो सहस्रो ललनाये सती हुई है। अनेक सग्रामो की शृखलाओ का सृजन हुआ है।

विजेताओ को दो लाभ होता था। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर, विजित देश की गुप्त बातें वे जान जाते थे। दूसरे जनता तथा शासको का मनोबल टूट जाता था। देश तथा जनता का मस्तक कन्या देने के कारण झुक जाता था। वे सम्बन्धी हो जाते थे। उनके विरुद्ध तलवार नही उठा सकते थे। उनके वंश की कन्या ही रानी है, उनकी सन्तान भावी शासक हो सकती है, इस मानवीय दुर्बलता के कारण, राजवश के लोग प्रतिरोध करने मे असमर्थ हो जाते थे। मेवाड के राणाओ एवं वहाँ की जनता का मनोबल सात शताब्दियो तक इसी लिये बना रहा कि वे इस नीति का विरोध करते रहे। डोला नही दिये। अपना मस्तक नत नही किये। तख्त पर बैठने की अपेक्षा चिता पर बैठना उन्होंने श्रेयस्कर समझा था।

श्री बमजायी ने लिखा है—'रिंचन ने कोटा रानी के भाई रावण चन्द्र को लार का राज्यपाल नियुक्त किया था।' (काश्मीर हिस्ट्री : २८८) लेखक ने कोई प्रमाण उपस्थित नही किया है। सूफी ने लिखा है—'रामचन्द्र के पुत्र रावणचन्द्र को रिंचन ने अपना सेनापति बनाया तथा पश्चिमी तिब्बत तथा लार की जागीर दे दी।' (पृष्ठ १२१) सूफी ने किसी आधार ग्रन्थ का नाम नही दिया है। मोहिबुल हसन ने लिखा है—सबसे पहले इसने रावणचन्द्र से दोस्ती की। कैद से रिहा करके इसको रैना का खिताब दिया, इसको अपना सिपहसालार बनाया और परगना लार और सूबा लद्दाख इसको बतौर जागीर अदा किया। इसने रावणचन्द्र की बहन कोटा रानी से शादी कर ली। (बहारिस्तान शाही : १२ बी, हसन ९६-ए, हैदर मल्लिक ९९ बीं,) जोनराज के अनुसार यह गलत है।

'दि वैली ऑफ काश्मीर' के सुयोग्य लेखक श्री वाल्टर लारेन्स का भी मत है। कोटा रानी रामचन्द्र की कन्या थी (पृष्ठ १९०)। उन्होने केवल अपना मत प्रकट किया है। किसी आधार ग्रन्थ का सन्दर्भ नही दिया है। डॉ० परमू ने भी कोटा को रामचन्द्र की कन्या तथा रावणचन्द्र को पुत्र माना है। उन्होने परसियन लेखको का ही अनुकरण किया है (पृष्ठ ७८)।

श्रीरिञ्चनभयाद्राजा नगरं त्यक्तवांस्ततः ।
विप्रशापाग्निदग्धानां कुतः स्यादुदयाङ्कुरः ॥ १७० ॥

१७० तत्पश्चात श्री रिचन भय से राजा ने नगर[1] त्याग दिया। विप्र-शापाग्नि से दग्ध लोगों का उदयाङ्कुर कहाँ ?

प्रमण्डलगुहां राजजम्बुर्भीतोऽविशत्ततः ।
पापस्य तादृशो मृत्युः संमुखस्य रणे कथम् ॥ १७१ ॥

१७१ भीत राज शृगाल प्रमण्डल[1] गुफा मे प्रवेश किया[2]। उस जैसे पापी की मृत्यु रण[3] सम्मुख कैसे होती ?

कोई नवीन या मौलिक प्रमाण उपस्थित नही किया है।

पीर हसन भी अन्य परसियन इतिहासकारो का अनुकरण कर उनका समर्थन करता है। उसने 'कोटा रेन' कोटा रानी के स्थान पर अपने परसियन तारीखे काश्मीर मे लिखा है। उसने भी कोटा रेन को दुख्तर रामचन्द्र और बिरादर रावनचन्द्र लिखा है। उसने यह भी लिखा है—'उसने कोट रेन से विवाह कर लिया और तिब्बत और लार रावणचन्द्र को जागीर के साथ रैना का खिताब दिया ताकि उसके दिल से बाप का बदला लेने का ख्याल निकल जाय।' पीर हसन कोई प्रमाण उपस्थित नही करता। उसने अपने इतिहास की रचना सन् १८८५ ई० मे की थी। उसने पुरातन परसियन इतिहासो का उद्धरण नही दिया है। उसने काश्मीरी जनता मे सुनी-सुनाई बातो पर अपना मत व्यक्त किया है। उस पर विश्वास करना कठिन है। तिब्बत पर कभी रिचन का अधिकार नही था। वह लद्दाख से भाग कर आया था और पुन. जाने का प्रयास नही किया। तिब्बत किंवा लद्दाख पर उस समय दूसरे राजा राज्य करते थे। यदि लद्दाख को हसन का उल्लिखित तिब्बत मान लिया जाय तो उस समय प्रथम राजवंश का १७ वा राजा ल्हचन-ङ-रिंचेन (सन् १३२०–१३५० ई०) वहाँ का राजा था।

पाद-टिप्पणी :

१७०. (१) नगर त्याग : नगर का अर्थ यहाँ श्रीनगर है। जोनराज के वर्णन से आभास मिलता है। रिचन ने श्रीनगर लेने के पूर्व रामचन्द्र को समाप्त करना अच्छा समझा था। रिचन ने नीति से काम लिया। यदि वह श्रीनगर लेकर, राजा को निर्वासित अथवा मार डालता, तो जनता के विद्रोह किंवा काश्मीरियों के संघटित होकर, उससे युद्ध करने की परस्थिति उत्पन्न हो सकती थी। उसने रामचन्द्र को समाप्त कर, काश्मीरियो का मनोबल एवं शक्ति दोनो तोड़ दिया। जनता साहस एव उत्साहहीन हो गयी। रिचन की राज प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया।

मोहिबुल हसन ने लिखा है—'रिचन को अपनी हुकूमत सम्हालते ही दो खतरों का सामना करना पड़ा। एक खतरा तो सहदेव की आमद था जो किश्तवार से वापस आकर अपनी हुकूमत की वापिसी का दावा कर रहा था। जिसको वह शर्मनाक तरीका से छोड़ कर चला गया था। लेकिन सहदेव को अपने मकसद मे नाकामी हुई और इसको फौरन किश्तवार वापस जाना पड़ा।' उनके वर्णन का आधार बहारिस्तान (शाही १३ ए, हसन : ९६, वीं हैदर : मालिक : १०० ए) है।

पाद-टिप्पणी

१७१. (१) प्रमण्डल : प्रमण्डल की पहचान मोमोर से की गयी है। कल्हण ने मण्डल एव मण्डलेच शब्द का प्रयोग किया है। मण्डल वर्तमान गुर्यो तथा

वैरिधाराधरश्चित्रं रणे राजास्त्रवर्षणैः ।
दण्डदानां द्विजातीनां चक्रे नेत्रेष्ववग्रहम् ॥ १७२ ॥

१७२ वैरियों के लिये उस धाराधर[1] ने (तलवार या बादल) राजरुधिर वर्षण से दण्ड प्रदाता द्विजातियों के नेत्रों मे सूखा कर दिया—आश्चर्य है !

पञ्चाहोनांश्चतुर्मासान् वर्षांश्चैकोनविंशतिम् ।
स राजरासो रक्षाव्याजात् क्षोणीमभक्षयत् ॥ १७३ ॥

१७३ उस राजा राक्षस[1] ने उन्नीस वर्ष[2], तीन मास, पच्चीस दिनों तक, रक्षण व्याज से पृथ्वी का भक्षण किया[3] ।

प्रदेशों तुल्य थे । उनके शासको को मण्डलेश कहते थे । मुसलिम काल मे वे सूबेदार कहे जाते थे । आजकल उन्हे राज्यपाल कहा जाता है (रा : ६–७२ : ७–९९६ : ११७८, १२२७, १२३१, ८ : १२२८, १८१४, २०२९) । मण्डल शब्द का प्रयोग कल्हण ने राज्य के लिये भी किया है । शुक्र ने राज्य का विभाग सामन्त, माण्डलिक, राजन्, महाराज, स्वराज, सम्राज, विराज, सार्वभौम वर्गों मे किया है । मण्डल के अधिकारी को माण्डलिक कहते थे । लोक प्रकाश मे काश्मीर को मण्डल भी कहा गया है । (पृष्ठ : ७८, श्लोक : ४) ।

षष्टि ग्राम सहस्राणि षष्टि ग्राम शतानि च ।
षष्टि ग्रामास्त्रियो ग्रामा ह्येतत्काश्मीरमण्डलम् ॥

(२) प्रवेश : परसियन इतिहास लेखको ने लिखा है कि सुहदेव किश्तवार (काष्टवाट) भाग गया था । वहाँ का राजा सुहदेव वैवाहिक सम्बन्ध से सम्बन्धित था ।

(३) रण : जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है । सुहदेव ने रिंचन से युद्ध किया था । यह कहना गलत होगा कि वह नितान्त कायर था । रिंचन का प्रतिरोध किवा सामना न कर भाग गया था । इस पद से सिद्ध होता है कि रण किवा युद्ध हुआ था । जोनराज उसे इसलिये पापी कहता है कि राजा युद्ध मे लडता वीरगति प्राप्त न कर, पलायन कर गया ।

पाद टिप्पणी :

१७२ (१) धाराधर : धाराधर शब्द यहाँ श्लिष्ट है । धाराधर का अर्थ कृपाण धारण करने के कारण राजा धाराधर कहा जाता है । कृपाण के आघात से ही रुधिर वर्षण होता है । बादल भी जल वर्षण करता है । रुधिर वर्षण कृपाण से संभव है, जोनराज ने यहाँ अपने कवित्व का परिचय दिया है ।

यहाँ विरोधाभास है । वर्षण से सूखा दूर होता है । किन्तु राज-रुधिर के वर्षण से नेत्रो मे सूखा कैसे सभव हुआ ? परिहार यह है । राजा को दुःख दिये जाने से द्विजातिगण सन्तुष्ट हुये । अत. उनका अश्रुपात बन्द हो गया ।

पाद-टिप्पणी :

१७३ (१) राक्षस : जोनराज सुहदेव को राक्षस सम्बोधित करता है । श्लोक १७१ मे उसे पापी कहता है । काश्मीर का जब से इतिहास मिलता है, किसी विदेशी ने शासन नही किया था । सुहदेव की नीति के कारण जोनराज दुखी था । राक्षस सम्बोधन कर राजा की भर्त्सना करता है । राजा का कर्तव्य पृथ्वी की रक्षा करना था । रक्षा के व्याज से वह उस काश्मीर का भक्षण कर गया, जो काश्मीर पुरातन काश्मीर होने वाला नही था ।

प्राचीन वैदिक साहित्य मे राक्षस शब्द दानवो के लिये प्रयोग किया गया है (ऋ : १ : २१ : ५ : १ :

श्रीरिञ्चनसुरत्राणो भुजवातायने महीम्।
व्यशिश्रमदथ श्रान्तां दौःस्थ्याद् दुःस्थितिविप्लवैः ॥ १७४ ॥

रिंचन : (सन् १३२०–१३२३ ई०)[1]

१७४ सुरत्राण[2] रिंचन ने दुःस्थिति विप्लवों के कारण श्रान्त पृथ्वी को दुरवस्था मुक्त कर, भुज वातायन पर विश्राम किया।

३० : १५ १७,७ : १०४ : १–२)। यह एक जाति-विशेष थी। वैदिक साहित्य मे राक्षस प्राय सर्वत्र मनुष्य जाति के शत्रुओ के रूप में चित्रित किए गये हैं। असुरों, राक्षसों एव पिशाचों को मनुष्यो एवं पितरो का विरोधी माना गया है (तै स २ : ४ : १)। इन्द्र के शत्रुओ को असुर एवं यज्ञो के विनाशको को राक्षस कहा गया है। पाणिनी के अष्टाध्यायी मे असुर, राक्षस एव पिशाच तीन स्वतंत्र मानव जातियाँ मानी गयी हैं। उनके आयुधजीवी सघों का निर्देश प्राप्त है। कालान्तर मे पुराण, रामायण एव महाभारत मे राक्षस, असुर, दैत्य एवं दानव शब्द समानार्थक मानकर प्रयुक्त किये गये हैं। उपनिषदों में मानव शरीर को ही आत्मा मानने वालो को राक्षस कहा गया है। ऋग्वेद के देवताओ का आह्वान राक्षसो का नाश करने के लिये किया गया है। ऋग्वेद के दो सूत्रो मे इनका 'यातु' नामान्तर दिया गया है। (ऋ० ७ . १०४-१०, ८७) यजुर्वेद मे यतः शब्द का प्रयोग एक दुष्ट जाति के रूप म किया गया है। इन्हें राक्षसों की एक उपजाति माना है। इनके विचित्र भयावने स्वरूप का वर्णन (अ० वे० : ८ . ६, १९ : २३, ५ : २३) किया गया है। इनके नाना रूपों का उल्लेख (अ० वे : ७० : १०४, १०, १६२) मिलता है। इनके आहार का उल्लेख (ऋ० १०-८७) किया गया है। मानवो के पीडक रूप मे इनका उल्लेख (अ० वे० : ५–२९) मिलता है। दिव्ययज्ञो मे राक्षस विघ्न डालते थे। (अ० वे० : १८ . २) इनके विवरण का वर्णन (अ० वे० : ८ : ६ : १ : १६ २ : ६) किया गया है राक्षस अग्नि एव अग्नि के प्रतीक यज्ञों के विरोधी रहे हैं। अग्नि भी इन्हें भगाने एव नष्ट करने का कार्य करता है (ऋ० : १०-८७) अत-एव अग्नि का नाम 'रक्षोहन्' अर्थात राक्षसो का नाश करने वाला पड गया है। 'रक्ष' का अर्थ ही क्षति पहुँचाना है। 'राक्षस' शब्द की व्युत्पत्ति होगी—वह जिससे रक्षा करनी चाहिये। इन्हे मनुष्यो को त्रस्त करने वाले दुरात्माओ के रूप मे चित्रित किया गया है। उत्तरी बलोचिस्तान के चगायी प्रदेश के निवासी जाति रक्षानी जाति के कहे जाते हैं। एक मत है पूर्वकालीन राक्षस जाति के ये वंशज हैं।

कालान्तर मे राक्षस एवं दैत्य जाति तथा वंश-वाचक न होकर, किसी भी दुष्ट, धर्मविहीन, खल-प्रवृत्त, आचरणहीन राजा एव व्यक्ति के लिये घृणा-सूचक उपाधि रह गयी। जोनराज ने इसी अर्थ मे यहा राक्षस शब्द का प्रयोग किया है।

(२) मृत्यु काल . हमारी काल गणना से यह समय कलि गताब्द ४४२१ = लौ० ४३९६ = सम्वत् १३७७ = सन् १३२० = शक १२४२ आता है।

पाद-टिप्पणी :

१७४ (१) राज्य प्राप्ति काल श्री दत्त, लौ० = ४४२१ कलि : शक = १२४२ लौकिक ३३९६ = सन् १३२० ई० एव राज्य काल ३ वर्ष, १ मास, १९ दिन देते हैं। अबुल फजल आईनेअकबरी मे राज्य काल १० वर्ष तथा कुछ मास देता है। डॉ० परमू का मत है कि रिंचन ने ६ अक्तूबर सन् १३२० ई० मे रामचन्द्र को मार कर अपने को राजा घोषित किया था। (हिस्टोरी ऑफ मुसलिम रूल इन काश्मीर (पृष्ठ ७९-८०) पीर हसन अभिलेख का समय हिजरी ७२५ = विक्रमी सम्वत १३८१ देता है। यह सन् १३२४ ई० होता है। मोहिबुल हसन सन् १३२० ई० देते हैं।

पूर्वदृष्टमिवाशेषं तिमिरापगमे पुमान्।
कश्मीरमण्डलं पूर्वराजसौख्यं तदैक्षत ॥ १७५ ॥

१७५ तिमिरापगम हो जाने पर, जनता ने पूर्व दृष्टि सदृश, अशेष काश्मीर मण्डल को पूर्व राज सुख युक्त[1] देखा।

समसामयिक घटनायें : रिंचन के समय दिल्ली का सुलतान गयासुद्दीन तुगलक था।

सन् १३२० ई० में मुबारक की हत्या कर दी गयी। नासिरुद्दीन खुसरू मालिक बन बैठा। खुसरू पराजित किया गया, मर गया। गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली का बादशाह बना। सन् १३११ ई० में मुहम्मद जैना ने वारंगल पर सैनिक अभियान किया। उसका अपरनाम 'उलघू खाँ' था। मुहम्मद ने इसी समय विद्रोह किया।

काश्मीरी मुसलिम सन् १३२४ ई० से आरम्भ होता है। यह सन् मुगलों के आक्रमण तथा आधिपत्य के पूर्व तक चलता रहा। काश्मीर का मुसलिमकरण करने के लिये पूर्वकालीन परम्पराओं एवं सभी कार्यों को विस्मृत कराने का प्रयास किया जाने लगा। उसी का यह प्रथम चरण था। लौकिक सम्वत के स्थान पर मुसलिम शासन काल के आरम्भ से नवीन सन की परम्परा डाली गयी। मुसलिम इतिहासकारों के अनुसार पहली मसजिद जिसका नाम रिंचन मसजिद था सन् १३२४ ई० में बनी थी। इसी वर्ष रिंचन का देहान्त हुआ था। इसी वर्ष ईराक के शेख सर्फुद्दीन अबू अली कलन्दर का देहान्त पानीपत में हुआ। भारतवर्ष के बाहर तुर्की में उसमान प्रथम, हेरात में गयासुद्दीन कुर्त, मिश्र में सुलतान नासिर, इंगलैण्ड में एडवर्ड द्वितीय, स्काटलैण्ड में राबर्ट प्रथम, फ्रान्स में चार्ल्स चतुर्थ तथा लुडविग बवेरिया में राज्य करते थे। पोप जान २२ वें की मृत्यु के पश्चात बेनडिक्ट द्वादश पोप हुआ था।

(२) **सुरत्राण :** सुरत्राण शब्द के आधार पर इतिहास लेखकों ने अनुमान लगाया है कि रिंचन मुसलमान हो गया था। सुरत्राण निसन्देह सुलतान शब्द का संस्कृत रूप है। सुरत्राण शब्द मुसलिम बादशाह, नवाब तथा लेखक हिन्दू राजाओं के आगे अलङ्कार किया पदवी स्वरूप लगा देते थे। वे यह पदवी भी हिन्दू राजाओं को देते थे।

राणा कुम्भ के नाम के साथ भी सुरत्राण शब्द लगा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि राणा कुम्भ मुसलमान हो गये थे। जीवन पर्यन्त वे मुसलिम बादशाहों तथा सूबेदारों के विरुद्ध लड़ते रहे।

'प्रबल पराक्रमाक्रान्त ढिल्ली मण्डल गुर्जर सुरत्राण विरुदस्य ७–(एनुअल रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया सन् १९०७-१९०८ ई० पृष्ठ २१४–२१५)।

जयपुर राजा के आगे मिर्जा राजा लगाया जाता रहा है। यह पदवी आजादी के पूर्व तक लगती रही है। इसी प्रकार बंगाली हिन्दुओं के नामों के साथ एक वर्ग में खान शब्द लगा मिलता है। आज भी प्रचलित है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि मुसलमान हो गये हैं।

मलयेशिया के मुसलिम शासकों के नामों के आगे राजा तथा उनके पुत्रों के अन्त में पुत्र शब्द जोड़ा जाता रहा है। राजा शब्द जोड़ने से वे गैर मुसलमान नहीं मान लिये जायेंगे।

पाद-टिप्पणी :

१७५ (१) **सुखयुक्त :** जोनराज के दरबारी कवि का रूप यहाँ स्पष्ट होता है। रिंचन विदेशी था। उसे काश्मीर निवासी अल्पसंख्यक मुसलमानों का सहयोग प्राप्त था। जोनराज मुस्लिम बादशाहों की प्रशस्ति आरम्भ करता है। उसने हिन्दू राजाओं को, निर्बल, जड, मूर्ख, पापी, राक्षस रूप में चित्रित किया है। उनके सम्बन्ध में अत्यन्त स्वल्प लिखा है।

दीपैरिव प्रतिस्थानं यैर्लवन्यैः स्थिरं स्थितम् ।
अकम्प्यन्त प्रभातस्य ते राज्ञो बलवायुना ॥ १७६ ॥

१७६ दीपक के समान प्रतिस्थान पर, जो लवन्य[1] सुस्थिर हो गये थे, वे राजा के बल (सेना) से उसी प्रकार प्रकम्पित हुये, जिस प्रकार प्रभात-वायु से, दीप कम्पित होते हैं।

जो लिखा भी है, वह नगण्य है। रिंचन के समय से जोनराज की रचना घटना-बहुल हो गयी है। विस्तार क्रमशः बढ़ता गया है। अपने संरक्षक सुल्तानों की प्रसन्नता हेतु उनका गुण वर्णन करता है। उन्हें आदर्श राज चित्रित करने में कोई प्रयास उठा नहीं रखता। उसने हिन्दू काल के १३ राजाओं को १० मुसलिम राजाओं की अपेक्षा निम्न प्रमाणित करने का प्रयास किया है। जिसका उसने खाया है उसी का गीत गाया है।

पाद टिप्पणी :

१७६ (१) लवन्य : डामर, लवन्य काश्मीर राजाओं की सहिष्णुता, उदारता, व्यवहार, सम्बन्धादि के कारण नाजायज फायदा उठाते थे। काश्मीर राजाओं के लिये सरदर्द थे। रिंचन विदेशी था। उसे लवन्य अथवा किसी काश्मीरी सामन्तादि से स्नेह किंवा सहानुभूति नहीं थी। उनके प्रति आस्था नहीं थी। निःसंकोच भय से उन्हें दबा दिया। पराक्रम से उन्हें आतंकित किया। हिन्दू राजा लवन्यों के अपराधों को क्षमा कर सकते थे। उन पर दया भी कर सकते थे। क्योंकि सभी काश्मीरी थे। एक दूसरे से सम्बन्ध सूत्र में बंधे थे। सामना होने पर आँख में शील आ जाना स्वाभाविक था। परन्तु रिंचन के लिये यह सब सुपा था। उसने शक्ति से उन्हें दबाया। स्वभावतः रिंचन से दया, सहानुभूति, किंवा स्नेहादि की आशा न देखकर, धन एवं जन हानि की आशंका से, कम्पित हो उठे। जहाँ थे वहीं रह गये। विदेशी शासन स्थापित होते ही, उनका गर्व, दर्पादि, नष्ट हो गये। चारों राजतरंगिणियों के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है।

कल्हण ने लवन्य शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख राजा हर्ष (सन् १०९९–११०१ ई०) के प्रसंग में किया है (रा० ७ . ११७१)। इस स्थल पर लहर के सन्दर्भ में लवन्यों का उल्लेख किया गया है। लहर में लवन्य थे। कल्हण राजतरंगिणी में तरंग ७, ८ से जोनराज एवं श्रीवर के समय तक उनका उल्लेख मिलता है। श्रीवर ने उनका केवल एक बार उल्लेख (जैन . ३ : ६९) किया है। शुक ने लवन्यों का उल्लेख किया ही नहीं है। इससे प्रकट होता है कि हिन्दू राज्य में लवन्यों का जो प्राबल्य था, वह मुसलिम काल में समाप्त हो गया। वे चार शताब्दी तक मुसलिम हो जाने पर भी प्रबल रहे। कल्हण ने तरंग ७ एवं ८ में लवन्यों के आतंक एवं उत्पात का अत्यधिक वर्णन किया है। जोनराज ने हिन्दू काल में उन्हें अराजक रूप में चित्रित किया है। मुसलिम शासन काश्मीर में स्थापित होते ही उनकी शक्ति का क्रमशः लोप हो जाता है। कल्हण के वर्णन काल से, जोनराज तक, काश्मीर के राजनीतिक जीवन में लवन्यों ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। अनेक गृहयुद्धों और अन्त में काश्मीर के हिन्दूराज के विघटन एवं लोप होने के कारण हुए हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी में ये ग्रामीण थे। कृषक थे। शनैः शनैः प्रबल हो गये। तन्त्रियों के समान उनका नाम अब तक ग्रामों में प्रचलित है। उनका बोध 'टुन' शब्द से हो जाता है। 'लुन' शब्द लवन्य का अपभ्रंश है। लवन्यों का मूल स्रोत क्या था? पता नहीं चलता। कल्हण भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं डालता। किन्तु वर्णन से प्रकट होता है। वे महत्वपूर्ण स्थान ग्रामीण क्षेत्र तथा समाज में रखते थे। भूमि स्वामी थे। उनका एक समाज बन गया था।

स विवादं तयोः श्रुत्वा स्वान्तिकं स्वीयमानुषैः ।
वडवे च किशोरं च राजाभ्यानाययत्ततः ॥ १८८ ॥

१८८ उन दोनों के विवाद को सुनकर, वह राजा अपने भृत्यों द्वारा दोनों अश्वाओं तथा (अश्व) किशोर को अपने समीप मंगाया।

तस्मिन्किशोरके बाल्याद् दूरं धावति लीलया ।
माता धात्री च नितरामस्निह्यच्चाप्यहेपयत् ॥ १८९ ॥

१८९ उस अश्व किशोर के शिशुता से लीला पूर्वक दौड़ने पर, माता एवं धात्री नितरां स्नेह प्रकट एवं हर्ष ध्वनि की।

सभ्येष्वनेलमूकेषु वादिनोः क्षोभसज्जयोः ।
अश्वे नावानयन्मध्येवितस्तं सकिशोरके ॥ १९० ॥

१९० (वह राजा) सभासदों के गूंगा बहरा (सा) होने पर, दुःखी दोनों वादियों के किशोरक सहित, दोनों अश्वाओं को, नाव द्वारा वितस्ता मध्य ले गया।

बालाश्वं पातितं नद्यां नावो राज्ञा महाधिया ।
हठादन्वपतन्माता परा परमहेपयत् ॥ १९१ ॥

१९१ महाबुद्धि राजा द्वारा नाव से बाल अश्व को नदी में निपतित कर देने पर पीछे ही माता हठ पूर्वक (जल में) कूद पड़ी एवं दूसरी ने केवल हेषा ध्वनि की।

संदिग्धव्यवहाराणामेवं निश्चयकर्तरि ।
तस्मिन्राज्ञि जनोऽमंस्त कृतं युगमिवागतम् ॥ १९२ ॥

१९२ संदिग्ध व्यवहारों का इस प्रकार राजा के निश्चय करने पर, लोगों ने समझा, सतयुग[1] ही आ गया है।

पाद-टिप्पणी :

१९२. (१) सतयुग : रिंचन काल को सतयुग प्रमाणित करने का प्रयास जोनराज ने किया है। पहले न्याय की दो घटनायें देकर, उसके न्यायप्रिय तथा व्यवस्था स्थापित करने वाला होने के कारण गुणी राजा होना प्रमाणित किया है। उसे सतयुगीय मानव मान लिया है। रिंचन पूर्व हिन्दू राज्य काल को जोनराज कलयुग अप्रत्यक्ष रूप से कहता है। क्योंकि उसने हिन्दूकाल के अधिकांश राजाओं को जड़, मूर्ख, पापी एवं राक्षस कहा है।

श्रीदेवस्वामिनं शैवीं दीक्षां याचन्नराधिपः।
नान्वग्राहि स भौट्टत्वात्तेनापात्रत्वशङ्कया ॥ १९३ ॥

१९३ राजा ने श्रीदेवस्वामी[1] से शैवी दीक्षा[2] की याचना की। उसने भौट्ट होने के कारण, अपात्रत्व होने की आशंका से, उसे अनुगृहीत नहीं किया।

पाद टिप्पणी :

१९३. (१) देवस्वामी : एक देवस्वामी का उल्लेख संस्कृत रचनाकारो मे मिलता है। परन्तु वह देवस्वामी यही थे, इसमे सन्देह है। एक देवाचार्य की भक्ति कल्पना तथा दूसरे ग्रन्थो मे हेमाद्रि माधवाचार्य पुरुषोत्तम ने उसका उद्धरण दिया है। डॉ० परमू ने देवस्वामी को ब्राह्मण मुख्य पुरोहित लिखा है। (परमू : पृ० : ७९) परन्तु स्वामी शब्द से प्रतीत होता है, देवस्वामी सन्यासी थे। सन्यासी पुरोहित नहीं हो सकता। जोनराज ने देवस्वामी को कहीं भी पुरोहित नहीं लिखा है।

(२) शैवी दीक्षा : रिंचन लद्दाखी होने के कारण बौद्ध था। उसने काश्मीर मे व्याप्त शैव मतावलम्बी होकर काश्मीरियो मे मिलना चाहता था। एतदर्थ वह देवस्वामी के पास गया। परन्तु देवस्वामी उसे शैव मत मे दीक्षित नहीं कर सके। कारण यह दिया गया। वह भौट्ट था। हिन्दुओ ने धर्म प्रवेश द्वार बन्द कर सबसे बड़ी गलती की है। यह धर्म उस बैंक के समान हो गया था, जिसमे रुपया जमा होता नहीं था, निकलता जाता था। इस प्रकार का बैंक कब तक चल सकता था। इसी दुर्नीति के कारण भारत मे मुसलिम तथा ईसाई धर्म बढ़ गया। हिन्दू एक बार ईसाई अथवा मुसलमान होने के पश्चात पुनः हिन्दू नहीं हो सकता था। कोई चाहकर भी हिन्दू नहीं हो सकता था। इसलिये हिन्दुओ से अलग होकर ही काश्मीर मे ९० प्रतिशत तथा पाकिस्तान विभाजन के पूर्व ३० प्रतिशत मुसलमान भारत मे हो गये। यही अवस्था नागालैण्ड मे हुई। वहाँ के लोग ईसाई हो गये। केरल मे लगभग ३० प्रतिशत जनता जो पहले हिन्दू थी ईसाई हो गयी। हिन्दुओ ने अपनी दुर्नीति के कारण अपने लिये समस्या खड़ी कर ली है। उस समस्या का हल न होने पर पाकिस्तान बन गया। नागालैण्ड बन गया।

काश्मीर के ब्राह्मणो ने रिंचन को न तो अपने समाज मे और न अपने धर्म मे स्वीकार किया। जिस धर्म की, रक्त की, पवित्रता वे रखना चाहते थे, वह अनायास लुट गया। जोनराज यह नहीं लिखता। रिंचन ने किस धर्म को स्वीकार किया था? अथवा वह अन्त तक भौट्ट ही बना रहा?

परशियन इतिहासकार स्पष्ट गौरव से लिखते हैं। रिंचन ने इसलाम कबूल किया था। उसका नाम सदरुद्दीन रखा गया था। उसे प्रथम मुसलिम सुलतान काश्मीर का माना गया। हसन आदि लिखते हैं—'रिंचन को शान्ति नहीं मिलती थी। वह रात्रि मे सो भी नहीं सकता था। रात मे रोता भी था।' (हसन : १४ ए ; हैदर मल्लिक . १०१ ए. तथा १०२ बी)।

बहारिस्तान शाही जोनराज के पश्चात पहली रचना है जो रिंचन के धर्म परिवर्तन की चर्चा करती है। उसमे उल्लेख मिलता है। रिंचन कोई भी धर्म स्वीकार करने के लिए तैयार था। वह काफिर (हिन्दू) तथा अहले इसलाम दोनो के पास धार्मिक शिक्षा के लिये पहुँचा। हैदर मल्लिक तथा वाकयाते काश्मीर, दोनो इस बात का समर्थन करते हैं। परन्तु दोनो का स्रोत बहारिस्तान शाही है (पाण्डु · १७)। श्री हरगोपाल कौल खस्ता ने लिखा है–'श्री देवस्वामी ने उसे अपने मत में लेने से अस्वीकार कर दिया।' (गुलदस्ता-ए-काश्मीर सन् १८८३ : ? १०१)। डॉ० परमू तक (सन् १९६९ ई०) सभी कश्मीरी इतिहास लेखकों ने बहारिस्तान शाही का ही अनुकरण

मडव राज्य में उनके दमन के वर्णन से प्रकट होता है कि वे वास्तव में डामर थे (रा० : ७ : १२२७)।

इस समय लुन काश्मीर में केवल नामवाचक शब्द रह गया है। काश्मीर की समस्त ग्रामीण जनता मुसलिम है। अतएव 'काम' तथा 'लुन' नामक व्यक्तियों की वेशभूषा में कोई अन्तर नहीं मिलता। 'लुन' समस्त काश्मीर उपत्यका में फैले हैं। जनश्रुति के आधार पर विलसन ने लिखा है कि वे 'निलास' से आये थे। किन्तु स्तीन का मत है। लवन्यों अर्थात् 'लुन' में इस प्रकार की प्रचलित कोई परम्परा नहीं मिलती जिससे प्रमाणित हो सके कि कभी वे निलास से आये थे। विभाजन के पूर्व पश्चिमी पंजाब में सभी दुकानदार 'लाला' कहे जाते थे। उन्हें सभी मान लिया जाता था। आज कल सभी जाति के क्लर्क बाबू कहे जाते हैं। इसी प्रकार लवन्यों की कोई एक जाति नहीं थी। सभी जाति के भूमि-स्वामी लवन्य कहे जाते थे। जमींदारी उन्मूलन के पूर्व हिन्दू मुसलमान सभी जमींदार, ताल्लुकेदार, जागीरदार कहे जाते थे। वे सब भूमि से सम्बन्धित थे। यही अवस्था उस समय काश्मीर में होगी। यही तक नहीं, बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ काल तक (करनाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर पृष्ठ ३५) प्रत्येक सरकारी अधिकारी दिल्ली के आसपास तुर्क कहा जाता था। चाहे वह हिन्दू था या मुसलमान। यह प्रथा मुगलों के समय से प्रचलित हुई थी। अब तक वही चली आती थी। लवन्य सोलहवीं शताब्दी के फ्यूडल लार्डों के समान शस्त्रधारी होते थे। आतंक करते थे। फ्यूडल लार्ड सभी वर्ग के लोग होते थे। यही अवस्था सत्रहवीं शताब्दी तथा अट्ठारहवीं शताब्दी के पिण्डारों की थी। कल्हण ने (रा० : ७ : १७१, १२२९, १२३०, १२३१, १२३३, १२३७ १३७८ तथा ८ : ७४७, ७७६, ९१०, ९२६, १०१०, १०१२, १२६८, १५४१, २५३८, ३४४), श्री जोनराज ने (५६, ८०, १७६, १७७, २४२, २२७, २२९, २५२, २५८-२६०, २६७, ३०१, ३०९, ३३०, ५९९) तथा श्रीवर ने (१ : ३ : ६९) लवन्यों का उल्लेख किया है। हिन्दूराज लुप्त होने पर लवन्यों के उग्र रूप का अन्त हो गया। वे मुसलिम राजाओं द्वारा दबा दिये गये। साहसहीन हो गये। कालान्तर में मुसलमान बना लिये गये। अथवा स्वतः हो गये। धर्म परिवर्तन के साथ उनका पुराना रूप बदल गया। इसी लिये उनका उल्लेख केवल एक बार और जोनराज ने किया है। श्रीवर ने अपनी सपूर्ण राजतरंगिणी में केवल एक बार उनका उल्लेख किया है (जैन० : ३ : ६९)। शुक की राजतरंगिणी में उनका उल्लेख नहीं मिल सका है।

जोनराज ने राजा रिंचन की गरिमा प्रमाणित करने के लिये लवन्यों के दमन का वर्णन किया है। तात्कालिक परिणाम अवश्य हुआ था। देखने में वे दब गये थे। परन्तु उनकी शक्ति अक्षुण्ण थी। वे अवसर मिलते ही किसी कारण, किसी न किसी एक उद्देश्य को लेकर, मिल जाते थे। कार्य समाप्त होनेपर बिखर जाते थे। मोहिबुल हसन ने रिंचन के दूसरे खतरे का कारण लवन्यों को बताया है। वे लिखते है—'दूसरा खतरा कबीला लून (लवन्य) से था। जो जुलचू के हमले के दौरान अपनी खुद मुख्तारी का एलान कर चुका था। और अब रिंचन को अपने फरमा रवाँ मानने से इनकार कर रहा था। रिंचन मुख्तलिफ सरदारों को एक दूसरे से लड़ाकर इन्हें भी कमजोर करने में कामयाब हुआ। इस तरह सारी वादी को इसने जेर नगीं कर लिया' (पृष्ठ ५४)। आधार जोनराज के दत्त का अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। परन्तु अनुवाद की त्रुटि के कारण यह मत प्रकट किया गया है। दत्त का अनुवाद है—'आश्चर्य है ! इस प्रकार लवन्यों की एकता ढीली हो गयी' (पृष्ठ : १९)।

मन्त्रसूच्या कृते भेदे वाणसूत्रे प्रवेशिनि।
अभूल्लवन्यकन्थायाश्चित्रं विश्लथता तदा ॥ १७७ ॥

१७७ उस समय मन्त्र (षड्यन्त्र)[1] रूपी सूची द्वारा भेद कर के, वाण रूप सूत्र के प्रवेश करने पर, लवन्य रूप कन्था में विचित्र प्रकार की विश्लथता (शैथिल्य) हो गयी थी।

वने कण्टकिनीवाङ्गनग्नो यात्राकुलोऽभवत्।
तत्रैव व्योम्नि पत्रीव देशे समचरन्नृपः ॥ १७८ ॥

१७८ काँटों के जिस बन मे नग्नांग आकुल हो जाता है, वही आकाश में जिस प्रकार पक्षी निर्विघ्न विचरता है, उसी प्रकार उस देश में उस नृप ने विचरण किया।

तस्य दाक्षिण्यदक्षस्य प्रजानां हितहेतुना।
पुत्रे मन्त्रिणि मित्रे वा दुष्टे नालक्ष्यत क्षमा ॥ १७९ ॥

१७९ प्रजाओं के हित हेतु उपस्थित होने पर पुत्र, मन्त्री, मित्र अथवा दुष्ट के ऊपर (भी) उस दाक्षिण्य दक्ष की क्षमा नहीं देखी गयी।

पाद-टिप्पणी :

१७७. (१) मन्त्र : मन्त्र शब्द यहाँ षड्यन्त्र के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। जोनराज ने मन्त्र शब्द का पुनः उल्लेख ५१५ तथा ६४८ श्लोकादि मे किया है। काश्मीरी भाषा मे इस समय भी मन्त्र शब्द षड्यन्त्र के अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। काश्मीरी मे मुहावरा है—(मन्त्र फुकनस कनस यज)।

रिंचन भारतीय राजनीति दर्शन का भक्त नहीं था। काश्मीर इतिहास अध्ययन से सहज ही निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भेदनीति का काश्मीरियो ने कम आश्रय लिया है। अचल आक्रमण के समय केवल कोटा रानी ने किया था। परन्तु वह मुसलिम दर्शन का प्रभाव था। रिंचन किसी आचरण संहिता से बंधा नही था। वह अद्‌भुत साहसी व्यक्ति था। शरणार्थी बनकर आया था। भेदनीति, विश्वासघातादि का आश्रय ले कर काश्मीर पर अधिकार कर लिया।

काश्मीरी भेदनीति एवं विश्वासघात मे पटु नही थे। वे कल्पना नही कर सकते थे। राजनीति विश्वासघात पर आधारित की जा सकती थी। राजपूतो के समान वे स्पष्ट नीति मे विश्वास करते थे। रिंचन के सलाहकार विदेशी थे। मुख्यतया मुसलिम थे। विदेशी होने के कारण रिंचन का काश्मीरियो पर कम विश्वास होना स्वाभाविक था। उसने काश्मीर मे उपस्थित मुसलमानो की सहायता लिया। मुसलमान हिन्दुओ की अपेक्षा भेद नीति मे पटु थे। राजनीति मे छल, कपट को दोष नहीं मानते थे। उनकी सफल नीति के वे साधन थे। लवन्यो का संघटन नही था। वे बिखरे थे। परस्पर ईर्षा-द्वेष रखते थे। मध्ययुगीन फ्यूडल लार्ड्‌स के समान थे। राजस्थान के जागीरदारो की तरह थे। रिंचन ने भेदनीति का आश्रय ग्रहण किया। उनके संघटन को तोड दिये। वे भय मे तत्पश्चात भेदनीति के कारण बिखर गये। उनकी वही अवस्था हुई, जो काश्मीरियो की दुलचा आक्रमण के समय हुई थी। सभी चूहो की तरह भय से, आतंक से, बिलो मे घुस गये थे।

छेदं यच्छन्नतुच्छानां वैरिणामुच्छलच्छ्रियाम् ।
आच्छोदनमगच्छत्स छत्रशाली कदाचन ॥ १८० ॥

१८० महान (अतुच्छ) एवं प्रचुर सम्पत्तिशाली वैरियों का उच्छेद करते हुये, वह छत्रशाली कभी आच्छोदन (आखेट,)[1] हेतु गया।

टुक्कभ्राता तिमिर्नाम मार्गे सन्तापखेदतः ।
गोपाल्याः कुत्रचिद् ग्रामे क्षीरं निष्पीतवान् हठात् ॥ १८१ ॥

१८१ टुक्क[1] के भ्राता तिमि[2] मार्ग में सन्ताप खेद से, कहीं ग्राम में हठ से, गोपाली[3] का क्षीर पान[4] कर लिया।

पाद-टिप्पणी :

१८०. (१) आच्छोदन : शिकार, मृगया, आखेट। आच्छो का पाठभेद अच्छो मिलता है। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो रिचन या आच्छोदन सरोवर जाना माना जायेगा। मत्स्य पुराण (मत्स्यः १४ : ३ : ७ तथा अ० ७८) मे अच्छोद सरोवर का उल्लेख मिलता है—'कैलाश पर्वत के पूर्व दिशा मे दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला जाज्वल्यमान चन्द्रप्रभा गिरि है। उसके समीप अच्छोद सरोवर है। उस सर से अच्छोद नदी निकली है। नदी के तट पर चैत्ररथ वन है। उसके समीप पर्वत पर मणिभद्र क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति गुह्यकों से रक्षित निवास करता है। बर्हिपद पितरों की मानस कन्या अच्छोदा थी। उसी के द्वारा अच्छोद सरोवर बना था (ह० वं० : १ : १८ : २६, २७, ब्रह्माण्ड : ३ : १० : ५४-६४, आ० ७)।

एक अनुमान और लगाया जा सकता है। बाणभट्ट की कादम्बरी तथा विक्रमाकदेवचरित (८ : ५३) मे अच्छावट का उल्लेख मिलता है। काश्मीर के मार्तण्ड मन्दिर से ६ मिल दूर अच्छावट नामक झील है। सम्भव है, इसी को जोनराज ने आच्छोद लिखा है। रिचन बादशाह था। वहा घूमने के लिये धुर उत्तर पूर्व स्थित पुराण-वर्णित आच्छोद नही गया होगा। मार्तण्ड से कोई व्यक्ति श्रीनगर जाकर उसी दिन लौट सकता है। अधिक सम्भावना यही मालूम होती है कि रिचन इसी स्थान-पर गया होगा। मृगया के लिये जलाशय उपयुक्त स्थान समझा जाता है। जहाँ पशु पक्षी जल पीने आते हैं। पशु हरी दूब की तलाश मे भी जलाशय के समीप आते हैं। अतएव अच्छोद जलाशय था। पुराण वर्णित आच्छोद नही बल्कि काश्मीर स्थित अच्छोद सरोवर से यहाँ तात्पर्य है।

कवि बिल्हण सुरम्य काश्मीरस्थ अच्छोद सरोवर का वर्णन करता है—"मृत्युलोक के एकाकी चन्द्रमातुल्य आनन्ददायक राजा कलश के दिक् यात्रा मे स्फटिक सदृश निर्मल अच्छोद सर के समीप आकर बाणभट्ट रचित कादम्बरी वर्णित चन्द्रापीड के इन्द्रायुध अश्व के खुरों द्वारा खुदी भूमि पर भ्रमण करते हुए कादम्बरी नायिका के परिजनों को चन्द्रापीड नामक कादम्बरी नायक की प्रशंसा मे कम आनन्द प्राप्त होनेवाला बना दिया।" विक्रमाङ्कदेव चरित १८।५३।

पाद-टिप्पणी :

१८१. (१) टुक्क : लद्दाखी नाम है। तिमि उसका भ्राता था। एक मत है। टुक्क तिब्बती शब्द बुगला, जिसका उच्चारण दुगया अथवा तुगया किया जाता है उसी का अपभ्रंश है। मोहिबुल हसन ने उसे रिचन का वज़ीर आजम लिखा है (उ : पृष्ठ ५६)। टुक्क एक भूखण्ड का भी नाम है। यह सिन्ध तथा झेलम के मध्य है। तुरानी जात यहा आबाद है। उन्हे तक्क किंवा टक्क कहा जाता है। यह अनुसन्धान

का विषय है कि टक वास्तव मे लद्दाखी है अथवा तुरानी ।

टक शब्द काश्मीरी मे ,मजबूत और गठित शरीर वालो को कहते हैं । गुणो के कारण कभी-कभी शब्द पारिभाषिक हो जाते है । गत शताब्दी मे एक तैलङ्ग दक्षिण निवासी काश्मीर मे आया था—राजकीय सेवा मे था । उसकी कुशाग्र बुद्धि को देखकर काश्मीर मे तेज दिमाग को तैलङ्ग कहने लगे । यद्यपि उससे दक्षिण का कोई सम्बन्ध नही था । तैलङ्ग के दिवगत हुए बहुत समय बीत गए ।

इसी प्रकार पटेल शब्द है । एक गुजराती डी० आई० जी० पुलिस काश्मीर में थे । स्वर्गीय महाराज हरिसिंह जब सड़क पर निकलते थे तो मोटर साइकिल पर पाइलट के समान आगे-आगे चलते थे । कालान्तर मे पटेल काश्मीर से चले गए। उसके स्थान पर काम दूसरे करने लगे थे । उसे दीनानाथ पटेल अथवा पटेल कहने लगे । यद्यपि दीनानाथ अथवा दीनू का कोई सम्बन्ध गुजरात से नही था । यह भी एक अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि टुक हृष्ट-पुष्ट मजबूत व्यक्ति रहा होगा । उसके शरीर गठन मे उसके समान मजबूत व्यक्ति को टक कहने लगे होगे । कालान्तर मे टक्क शब्द टुक्क हो गया होगा ।

लद्दाखी प्रवेश के पश्चात काफी सख्या मे धीरे धीरे काश्मीर मे आ गये थे । लद्दाख का व्यक्ति काश्मीर का राजा था । इस गर्व भावना से रिंचन को केन्द्र बनाकर, काश्मीर मे लद्दाखियो का सघटित हो जाना स्वाभाविक था । रिंचन अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये लद्दाखी सैनिको तथा साथियो से शक्तिशाली सेना बना ली । भौट्टो का नि सन्देह इस समय काश्मीर मे प्राबल्य हो गया था । तिमि लद्दाखी था । जोनराज के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि लद्दाखी लोग एक मत नहीं थे । उनमे भी दल था । अपने सजातीय लद्दाखियो को दण्ड देने मे भी रिंचन नही चूकता था । यही मन्तव्य जोनराज का यहाँ प्रकट होता है । परसियन इतिहासकारो का मत है कि टुक्क राजा रिंचन से अप्रसन्न था । राजा ने उसको हटाकर व्याल राज को मन्त्री बनाया था (म्युनिख पाण्डु : १४८ बी० , इण्डियन एण्टीकेरी : जुलाई : सन् १९०८ १८७)।

(२) तिमि : फ्रैन्की का मत है कि यह तिब्बती शब्द खिम है । उसका उच्चारण 'थिम' होता है ।

(३) गोपाली : यह व्यक्तिवाचक नाम नही है । जातिवाचक शब्द है । गाय पालक योषिता से यहा तात्पर्य है । श्लोक १८२ मे गोपालयोषिता तथा श्लोक १८३ और १८४ मे गोपी शब्द का प्रयोग जोनराज ने किया है । नि सन्देह गोपाली को काश्मीर मे गुरिवाय् तथा गोपाल को 'घोरिवाय्' कहते हैं ।

जोनराज ने राधा-कृष्ण की कथा पढी होगी । अतएव प्रचलित एव सर्वप्रिय शब्द गोपी का यहा प्रयोग किया है । इस प्रयोग का एक दूसरा तात्पर्य और हो सकता है । भगवान कृष्ण ने गोपियो को प्रसन्न करने के लिये अनेक चमत्कारिक कार्य किये थे । जोनराज रिंचन की तुलना भगवान कृष्ण से करने मे सकोच करता है । गौण रूप से यह भाव प्रकट करना चाहता है । जिस प्रकार गोपियो को प्रसन्न करने के लिये श्रीकृष्ण ने कार्य किया था, उसकी पुनरावृत्ति रिंचन ने काश्मीर में किया है । गोपी शब्द श्रीमद् भागवत एव कृष्ण सम्बन्धी लीलाओ, काव्यो एव साहित्यो मे उन ब्रज-कन्याओ के लिये प्रयोग किया गया है, जो भगवान कृष्ण के साथ स्नेह करती थीं । उनके साथ बाल तथा अन्य लीलायें की थीं । जिन्हे प्रसन्न करने, जिनकी रक्षा करने के लिये भगवान ने अनेक अद्भुत कार्य किये थे । यहां भी जोनराज गोपी के साथ किये गये अत्याचार का बदला लेने के कारण रिंचन की प्रशसा करता है ।

मुझे एक गूजर वृद्ध से विचित्र बात, सोनमर्ग मार्ग जाते समय मालूम हुई । उसे यहाँ लिखना अप्रासगिक होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से अच्छा

छेदं यच्छन्नतुच्छानां वैरिणामुच्छलच्छ्रियान् ।
आच्छोदनमगच्छत्स छत्रशाली कदाचन ॥ १८० ॥

१८० महान (अतुच्छ) एवं प्रचुर सम्पत्तिशाली वैरियों का उच्छेद करते हुये, वह छत्रशाली कभी आच्छोदन (आखेट)[१] हेतु गया ।

टुकभ्राता तिमिर्नाम मार्गे सन्तापखेदतः ।
गोपाल्याः कुत्रचिद् ग्रामे क्षीरं निष्पीतवान् हठात् ॥ १८१ ॥

१८१ टुक[१] के भ्राता तिमि[२] मार्ग में सन्ताप खेद से, कहीं ग्राम में हठ से, गोपाली[३] का क्षीर पान[४] कर लिया ।

पाद-टिप्पणी :

१८०. (१) आच्छोदन : शिकार, मृगया, आखेट । आच्छो का पाठभेद अच्छो मिलता है । यदि यह ठीक मान लिया जाय तो रिंचन का आच्छोदन सरोवर जाना माना जायेगा । मत्स्य पुराण (मत्स्य: १४ : ३ : ७ तथा अ० ७८) में अच्छोद सरोवर का उल्लेख मिलता है—'कैलाश पर्वत के पूर्व दिशा में दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला जाज्वल्यमान चन्द्रप्रभा गिरि है। उसके समीप अच्छोद सरोवर है। उस सर से अच्छोद नदी निकली है। नदी के तट पर चैत्ररथ वन है। उसके समीप पर्वत पर मणिभद्र क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति गुह्यकों से रक्षित निवास करता है। बर्हिषद पितरों की मानस कन्या अच्छोदा थी। उसी के द्वारा अच्छोद सरोवर बना था (ह० वं० : १ : १८ : २६, २७; ब्रह्माण्ड . ३ : १० : ५४–६४, आ० ७)।

एक अनुमान और लगाया जा सकता है। बाणभट्ट की कादम्बरी तथा विक्रमाकदेवचरित (८ : ५३) में अच्छावट का उल्लेख मिलता है। काश्मीर के मार्तण्ड मन्दिर से ६ मिल दूर अच्छावट नामक झील है। सम्भव है, इसी को जोनराज ने आच्छोद लिखा है। रिंचन बादशाह था। वहा घूमने के लिये धुर उत्तर पूर्व स्थित पुराण-वर्णित आच्छोद नही गया होगा। मार्तण्ड से कोई व्यक्ति श्रीनगर जाकर उसी दिन लौट सकता है। अधिक सम्भावना यही मालूम होती है कि रिंचन इसी स्थान-पर गया होगा। मृगया के लिये जलाशय उपयुक्त स्थान समझा जाता है। जहाँ पशु पक्षी जल पीने आते हैं। पशु हरी दूब की तलाश में भी जलाशय के समीप आते हैं। अतएव अच्छोद जलाशय था। पुराण वर्णित आच्छोद नही बल्कि काश्मीर स्थित अच्छोद सरोवर से यहाँ तात्पर्य है।

कवि बिल्हण सुरम्य काश्मीरस्थ अच्छोद सरोवर का वर्णन करता है—"मृत्युलोक के एकाकी चन्द्रमातुल्य आनन्ददायक राजा कलस के दिक् यात्रा में स्फटिक सदृश निर्मल अच्छोद सर के समीप आकर बाणभट्ट रचित कादम्बरी वर्णित चन्द्रापीड के इन्द्रायुध अश्व के खुरों द्वारा खुदी भूमि पर भ्रमण करते हुए कादम्बरी नायिका के परिजनों को चन्द्रापीड नामक कादम्बरी नायक की प्रशंसा में कम आनन्द प्राप्त होनेवाला बना दिया।" विक्रमाङ्कदेव चरित १८।५३ ।

पाद-टिप्पणी :

१८१. (१) टुक : लद्दाखी नाम है। तिमि उसका भ्राता था। एक मत है। टुक तिब्बती शब्द युगला, जिसका उच्चारण दुगया अथवा तुगया किया जाता है उसी का अपभ्रंश है। मोहिबुल हसन ने उसे रिंचन का वजीर आजम लिखा है (उ : पृष्ठ ५६)। टुक एक भूखण्ड का भी नाम है। यह सिन्ध तथा झेलम के मध्य है। तुरानी॰ जात यहा आबाद है। उन्हे तक्क किंवा टक्क कहा जाता है। यह अनुसन्धान

का विषय है कि टक्क वास्तव में लद्दाखी है अथवा तुरानी।

टक्क शब्द काश्मीरी में ,मजबूत और गठित शरीर वालों को कहते हैं। गुणों के कारण कभी-कभी शब्द पारिभाषिक हो जाते हैं। गत शताब्दी में एक तैलङ्ग दक्षिण निवासी काश्मीर में आया था—राजकीय सेवा में था। उसकी कुशाग्र बुद्धि को देखकर काश्मीर में तेज दिमाग को तैलङ्ग कहने लगे। यद्यपि उससे दक्षिण का कोई सम्बन्ध नहीं था। तैलङ्ग के दिवंगत हुए बहुत समय बीत गए।

इसी प्रकार पटेल शब्द है। एक गुजराती डी० आई० जी० पुलिस काश्मीर में थे। स्वर्गीय महाराज हरिसिंह जब सड़क पर निकलते थे तो मोटर साइकिल पर पाइलट के समान आगे-आगे चलते थे। कालान्तर में पटेल काश्मीर से चले गए। उसके स्थान पर काम दूसरे करने लगे थे। उसे दीनानाथ पटेल अथवा पटेल कहने लगे। यद्यपि दीनानाथ अथवा दीनु का कोई सम्बन्ध गुजरात से नहीं था। यह भी एक अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि टुक्क हृष्ट-पुष्ट मजबूत व्यक्ति रहा होगा। उसके शरीर गठन में उसके समान मजबूत व्यक्ति को टक्क कहने लगे होंगे। कालान्तर में टक्क शब्द टुक्क ही गया होगा।

लद्दाखी प्रवेश के पश्चात काफी संख्या में धीरे धीरे काश्मीर में आ गये थे। लद्दाख का व्यक्ति काश्मीर का राजा था। इस गर्व भावना से रिंचन को केन्द्र बनाकर, काश्मीर में लद्दाखियों का संघटित हो जाना स्वाभाविक था। रिंचन अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये लद्दाखी सैनिकों तथा साथियों से शक्तिशाली सेना बना ली। भौट्टों का निःसन्देह इस समय काश्मीर में प्राबल्य हो गया था। तिमि लद्दाखी था। जोनराज के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि लद्दाखी लोग एक मत नहीं थे। उनमें भी दल था। अपने सजातीय लद्दाखियों को दण्ड देने में भी रिंचन नहीं चूकता था। यही मन्तव्य जोनराज का यहाँ प्रकट होता है। परसियन इतिहासकारों का मत है कि टुक्क राजा रिंचन से अप्रसन्न था। राजा ने उसको हटाकर व्याल राज को मन्त्री बनाया था (म्युनिख पाण्डु : १४८ बी०, इण्डियन एण्टीक्वेरी 'जुलाई : सन् १९०८ १८७)।

(२) तिमि : फ्रैंकी का मत है कि यह तिब्बती शब्द थिम है। उसका उच्चारण 'थिम' होता है।

(३) गोपाली - यह व्यक्तिवाचक नाम नहीं है। जातिवाचक शब्द है। गाय पालक योषिता से यहाँ तात्पर्य है। श्लोक १८२ में गोपालयोषिता तथा श्लोक १८३ और १८४ में गोपी शब्द का प्रयोग जोनराज ने किया है। निःसन्देह गोपाली को काश्मीर में गुरिवाय् तथा गोपाल को 'गोव्रिवाय्' कहते हैं।

जोनराज ने राधा कृष्ण की कथा पढ़ी होगी। अतएव प्रचलित एवं सर्वप्रिय शब्द गोपी का यहाँ प्रयोग किया है। इस प्रयोग का एक दूसरा तात्पर्य और हो सकता है। भगवान कृष्ण ने गोपियों को प्रसन्न करने के लिये अनेक चमत्कारिक कार्य किये थे। जोनराज रिंचन की तुलना भगवान कृष्ण से करने में संकोच करता है। गौण रूप से यह भाव प्रकट करना चाहता है। जिस प्रकार गोपियों को प्रसन्न करने के लिये श्रीकृष्ण ने कार्य किया था, उसकी पुनरावृत्ति रिंचन ने काश्मीर में किया है। गोपी शब्द श्रीमद् भागवत एवं कृष्ण सम्बन्धी लीलाओं, काव्यों एवं साहित्यों में उन ब्रज-कन्याओं के लिये प्रयोग किया गया है, जो भगवान कृष्ण के साथ स्नेह करती थीं। उनके साथ बाल तथा अन्य लीलायें की थी। जिन्हें प्रसन्न करने, जिनकी रक्षा करने के लिये भगवान ने अनेक अद्भुत कार्य किये थे। यहाँ भी जोनराज गोपी के साथ किये गये अत्याचार का बदला लेने के कारण रिंचन की प्रशंसा करता है।

मुझे एक गूजर वृद्ध से विचित्र बात, सोनमर्ग मार्ग जाते समय मालूम हुई। उसे यहाँ लिखना अप्रासंगिक होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से अच्छा

राज्ञा विज्ञापितेनाथ सद्यो गोपालयोषिता ।
अनुयुक्तस्तिमिर्भीत्या व्यधात्सर्वस्य निह्नवम् ॥ १८२ ॥

१८२ तुरन्त गोपाल योषिता द्वारा विज्ञापित, राजा के पूछने पर, भय से तिमि ने सब (बातों) को छिपा दिया।

असत्ये भाविता गोपी यदा धैर्यान्न सास्खलत् ।
पानाशयं तिमेरेव स सत्यैषी व्यदारयत् ॥ १८३ ॥

१८३ गोपी असत्य ठहरायी जाने पर भी, जब विचलित नहीं हुई, तब वह सत्यैषी तिमि का उदर विदारण[1] कर दिया।

तस्य पानाशयाद्दीर्णान्निर्यान्त्या क्षीरधारया ।
राज्ञः कीर्तिर्मुखश्रीश्च गोप्याः प्रापत्प्रसन्नताम् ॥ १८४ ॥

१८४ उसके विदीर्ण पानाशय (उर) से निकलती क्षीर धारा[1] से राजा की कीर्ति बढ़ी और गोपी की मुख श्री प्रसन्न हो गयी।

होगा। मैं एक स्थान पर पानी पीने लगा। गूजर लोग अपने पशुओं के साथ पहाड़ से नीचे उतर रहे थे। अक्तूबर में बर्फ से बचने के लिये गूजर पर्वत से उतर आते हैं।

मैं उनसे बातें करने लगा। मेरे साथी मुझे ठाकुर साहब नाम से पुकारते थे। गूजर ने मेरी ओर देखा। वह कुछ उर्दू समझ लेता था। बोलता भी था। बात ही बात में उसने कहा 'हम कृष्णजी के वंशज हैं। बहुत दिन पहले काश्मीर में हमलोग आये थे। हम और कृष्ण जी गोपी की सन्तान हैं। काश्मीर के ब्राह्मणों ने हमें माना नहीं। हम अलग रहे। मुसलमानों के बीच में रहने से उनसे मिल गये। कुछ हिन्दू गूजर बच गये थे। वे भी करीब ३० या ३४ वर्ष पूर्व मुसलमान हो गये। शेख अब्दुल्ला ने हमलोगों में कुछ मौलवी भेजे थे। उनसे मदद मिली। हमें किसी ने बात नहीं पूछी। हमारी जात गुजरात (गुर्जर) पंजाब और मेरठ वगैरह की तरफ है। उनमें हिन्दू भी हैं। मुसलमान भी हैं। आप ठाकुर हैं। हम लोग भी किसी समय अपने को क्षत्री कहते थे। अब मुसलमान हैं।'

इससे निष्कर्ष निकलता है कि गूजर, जो पशु पालन का काम करते थे, अपनी स्त्रियों को गोपी या गोपाली पूर्व काल से कहते थे।

(३) क्षीर पान : राजकवि जोनराज ने राजा रिंचन की प्रशंसा, उसे अत्यन्त न्यायप्रिय, जनप्रिय, प्रमाणित करने लिये, क्षीरपान की घटना देकर उसके नाम के साथ एक और गौरव गाथा जोड़ दिया है।

पाद-टिप्पणी :

१८३ (१) उदरविदारण : रिंचन की गौरव गरिमा वृद्धि हेतु इस गाथा की रचना की गयी है। उदर विदारण आदेश उसकी क्रूरता, कठोरता, बर्बर न्याय प्रणाली का एक दृश्य उपस्थित करता है।

पाद-टिप्पणी :

१८४. (१) क्षीरधारा : कवि जोनराज रिंचन की न्यायप्रियता प्रमाणित करने के लिये, वैज्ञानिक बातों को भूल कर, यह पद लिखा है। पेय दूध शरीर में जाते ही पाँच सात मिनटों में फट जाता है। लगभग ४५ मिनटों में दूध छेना तथा जल रूप में परिणत हो जाता है। पाचन क्रिया में मिल जाता है। तिमि

वानवाले निवसतोरसुचातां कयोश्चन ।
अश्वे किशोरकौ तुल्यौ कस्मिन्नपि वनान्तरे ॥ १८५ ॥

१८५ वानवाल[1] में निवास करते किन्हीं दो व्यक्तियों की दो अश्वाओं ने किसी वनान्तर में तुल्य किशोरकों को जन्म दिया।

सिंहसंज्ञपितापत्या तयोरन्यतरा वने ।
अश्वसादृश्यवात्सल्यादपुपुत्रीयिपत्परम् ॥ १८६ ॥

१८६ उन दोनों में से एक, जिसके बच्चे को सिंह मार डाला था, (वही) दोनों बच्चों की समानता के कारण वात्सल्य वश, दूसरे बच्चे को अपना पुत्र समझने लगी।

मदीयोऽयं मदीयोऽयमित्यसञ्जातनिश्चयौ ।
वडवाधिपती क्षोभाद्राजान्तिकमगच्छताम् ॥ १८७ ॥

१८७ 'यह मेरा है'–'यह मेरा है'–उस प्रकार निर्णय न कर पाने पर, दोनों अश्वाओं के स्वामी क्षुभित होकर, राजा के पास गये।

ने दुग्धपान मार्ग के किसी ग्राम में बलात् किया था। निःसन्देह, गोपी ने सरलता से दूध न दिया होगा। अन्यथा वह राजा के यहाँ फरियाद लेकर न आती। कुछ समय गाँव में लगा होगा। रिचन के पास गोपी के पहुँचने में कुछ समय और लगा होगा। रिचन ने तिमि को बुलाया होगा। उभय पक्षों का विवाद सुना होगा। इसमें कम से कम एक या डेढ़ घण्टे का समय अवश्य लगा होगा। उदर विदारण करने पर, क्षीर धारा का निकलना असंभव है। रिचन की महानता प्रमाणित करने के लिये यह कथा जोड़ दी गई है (मोहिबु : पृष्ठ ५६; नोट, म्युनिख : पाण्डुलिपि १४८ बी०, १४९ ए; इंडियन एण्टीक्वेरी जुलाई, सन् १९०८ ई०)।

पाद-टिप्पणी :

१८५. (१) वानवाल : 'वान' का पाठभेद 'वार' भी मिलता है। यदि 'वार' मान लिया जाय तो नाम 'वारवाल' होगा। कल्हण ने (रा० : १ : १२१) 'वार बाल' का उल्लेख किया है। उसका भी पाठभेद 'वारवाला', 'वनवाल', 'वारवलो' मिलता है। यदि 'न' का 'र' पाठभेद मान लिया जाय तो वारवाल स्थान का पता चल जाता है। इसके अनुसार यह वर्तमान ग्राम 'बार बुल' है। सिन्धु तथा कंकणी नदी के संगम से एक मील ऊर्ध्व भाग में दक्षिण तट पर स्थित है। भूतेश्वर जाने वाले मार्ग पर पड़ता है। मैं इस ग्राम में सन् १९६४ ई० में आ चुका हूँ। यह स्थान वनश्री से पूर्ण है। वन घना है। जोनराज ने 'वनान्तर' शब्द का प्रयोग किया है। इससे भी प्रतीत होता है कि यही स्थान रहा होगा। प्राचीन काल में स्थान प्रसिद्ध था। सन् १८९१ ई० में स्तीन ने यहाँ की यात्रा की थी। उन्हें यहाँ के मार्ग के समीप शिवलिंग का एक विशाल पाषाण अलंकृत भद्रपीठ मिला था। स्तीन ने ग्राम में और अन्वेषण किया था। उन्हें एक और बड़ा अलंकृत पाषाण खण्ड खेत में एक मकान के नीचे लगा दिखाई दिया था।

यह अग्रहार था। तत्पश्चात् श्रीनगर के एक पीरजादा को जागीर हो गया। वारबल के दक्षिण पश्चिम, सिन्धु तट पर, प्राचीन वीर मोचन, पूर्व दक्षिण, वंगनपुर तथा पश्चिम दक्षिण मय ग्राम है।

स विवादं तयोः श्रुत्वा स्वान्तिकं स्वीयमानुषैः ।
वडवे च किशोरं च राजाभ्यानाययत्ततः ॥ १८८ ॥

१८८ उन दोनों के विवाद को सुनकर, वह राजा अपने भृत्यों द्वारा दोनों अश्वाओं तथा (अश्व) किशोर को अपने समीप मंगाया ।

तस्मिन्किशोरके बाल्याद् दूरं धावति लीलया ।
माता धात्री च नितरामस्निह्यचाप्यहेषयत् ॥ १८९ ॥

१८९ उस अश्व किशोर के शिशुता से लीला पूर्वक दौड़ने पर, माता एवं धात्री नितरां स्नेह प्रकट एवं हर्ष ध्वनि की ।

सभ्येष्वनेलमूकेषु वादिनोः क्षोभसज्ञयोः ।
अश्वे नावानयन्मध्येवितस्तं सकिशोरके ॥ १९० ॥

१९० (वह राजा) सभासदों के गूंगा बहरा (सा) होने पर, दुःखी दोनों वादियों के किशोरक सहित, दोनों अश्वाओं को, नाव द्वारा वितस्ता मध्य ले गया ।

बालाश्वं पातितं नद्यां नावो राज्ञा महाधिया ।
हठादन्वपतन्माता परा परमहेषयत् ॥ १९१ ॥

१९१ महाबुद्धि राजा द्वारा नाव से बाल अश्व को नदी में निपतित कर देने पर पीछे ही माता हठ पूर्वक (जल में) कूद पड़ी एवं दूसरी ने केवल हेषा ध्वनि की ।

संदिग्धव्यवहाराणामेवं निश्चयकर्तरि ।
तस्मिन्राज्ञि जनोऽमंस्त कृतं युगमिवागतम् ॥ १९२ ॥

१९२ संदिग्ध व्यवहारों का इस प्रकार राजा के निश्चय करने पर, लोगों ने समझा, सतयुग[1] ही आ गया है ।

पाद-टिप्पणी :

१९२. (१) सतयुग : रिंचन काल को सतयुग प्रमाणित करने का प्रयास जोनराज ने किया है। पहले न्याय की दो घटनायें देकर, उसके न्यायप्रिय तथा व्यवस्था स्थापित करने वाला होने के कारण गुणी राजा होना प्रमाणित किया है। उसे सतयुगीय मानव मान लिया है। रिंचन पूर्व हिन्दू राज्य काल को जोनराज कलयुग अप्रत्यक्ष रूप से कहता है। क्योंकि उसने हिन्दूकाल के अधिकांश राजाओं को जड, मूर्ख, पापी एवं राक्षस कहा है।

श्रीदेवस्वामिनं शैवीं दीक्षां याचन्नराधिपः।
नान्वग्राहि स भौट्टत्वात्तेनापात्रत्वशङ्कया॥ १९३॥

१९३ राजा ने श्रीदेवस्वामी[1] से शैवी दीक्षा[2] की याचना की। उसने भौट्ट होने के कारण, अपात्रत्व होने की आशंका से, उसे अनुगृहीत नहीं किया।

पाद टिप्पणी :

१९३ (१) देवस्वामी : एक देवस्वामी का उल्लेख संस्कृत रचनाकारों में मिलता है। परन्तु वह देवस्वामी यही थे, इसमें सन्देह है। एक देवाचार्य की भक्ति कल्पना तथा दूसरे ग्रन्थों में हेमाद्रि माधवाचार्य पुरुषोत्तम ने उसका उद्धरण दिया है। डॉ० परमू ने देवस्वामी को ब्राह्मण मुख्य पुरोहित लिखा है। (परमू : पृ० : ७९) परन्तु स्वामी शब्द से प्रतीत होता है, देवस्वामी सन्यासी थे। सन्यासी पुरोहित नहीं हो सकता। जोनराज ने देवस्वामी को कहीं भी पुरोहित नहीं लिखा है।

(२) शैवी दीक्षा : रिंचन लद्दाखी होने के कारण बौद्ध था। उसने काश्मीर में व्याप्त शैव मतावलम्बी होकर काश्मीरियों में मिलना चाहता था। एतदर्थ वह देवस्वामी के पास गया। परन्तु देवस्वामी उसे शैव मत में दीक्षित नहीं कर सके। कारण यह दिया गया। वह भौट्ट था। हिन्दुओं ने धर्म प्रवेश द्वार बन्द कर सबसे बड़ी गलती की है। यह धर्म उस बैंक के समान हो गया था, जिसमें रुपया जमा होता नहीं था, निकलता जाता था। इस प्रकार का बैंक कब तक चल सकता था। इसी दुर्नीति के कारण भारत में मुसलिम तथा ईसाई धर्म बढ़ गया। हिन्दू एक बार ईसाई अथवा मुसलमान होने के पश्चात पुनः हिन्दू नहीं हो सकता था। कोई चाहकर भी हिन्दू नहीं हो सकता था। इसलिये हिन्दुओं से अलग होकर ही काश्मीर में ९० प्रतिशत तथा पाकिस्तान विभाजन के पूर्व ३० प्रतिशत मुसलमान भारत में हो गये। यही अवस्था नागालैण्ड में हुई। वहाँ के लोग ईसाई हो गये। केरल में लगभग ३० प्रतिशत जनता जो पहले हिन्दू थी ईसाई हो गयी। हिन्दुओं ने अपनी दुर्नीति के कारण अपने लिये समस्या खड़ी कर ली है। उस समस्या का हल न होने पर पाकिस्तान बन गया। नागालैण्ड बन गया।

काश्मीर के ब्राह्मणों ने रिंचन को न तो अपने समाज में और न अपने धर्म में स्वीकार किया। जिस धर्म की, रक्त की, पवित्रता वे रखना चाहते थे, वह अनायास सूख गया। जोनराज यह नहीं लिखता। रिंचन ने किस धर्म को स्वीकार किया था? अथवा वह अन्त तक भौट्ट ही बना रहा?

परसियन इतिहासकार स्पष्ट गौरव से लिखते हैं। रिंचन ने इसलाम कबूल किया था। उसका नाम सदरुद्दीन रखा गया था। उसे प्रथम मुसलिम सुलतान काश्मीर का माना गया। हसन आदि लिखते हैं—'रिंचन को शान्ति नहीं मिलती थी। वह रात्रि में सो भी नहीं सकता था। रात में रोता भी था।' (हसन : १४ ए, हैदर मल्लिक १०१ ए तथा १०२ बी)।

बहारिस्तान शाही जोनराज के पश्चात पहली रचना है जो रिंचन के धर्म परिवर्तन की चर्चा करती है। उसमें उल्लेख मिलता है। रिंचन कोई भी धर्म स्वीकार करने के लिए तैयार था। वह काफिर (हिन्दू) तथा अहले इसलाम दोनों के पास धार्मिक शिक्षा के लिये पहुँचा। हैदर मल्लिक तथा वाकयाते काश्मीर, दोनों इस बात का समर्थन करते हैं। परन्तु दोनों का स्रोत बहारिस्तान शाही है (पाण्डु : १७)। श्री हरगोपाल कौल खस्ता ने लिखा है—'श्री देवस्वामी ने उसे अपने मत में लेने से अस्वीकार कर दिया।' (गुलदस्ता-ए-काश्मीर सन् १८८३ : २ : १०१)। डॉ० परमू तक (सन् १९६९ ई०) सभी कश्मीरी इतिहास लेखकों ने बहारिस्तान शाही का ही अनुसरण

किया है। श्री पीरबल कचरू ने भी मत प्रकट किया है—'रिंचन को अपना धर्म समझाने का प्रयास किया गया, परन्तु हिन्दू धर्म मे वह प्रभावित नही हो सका' (तारीख-ए-काश्मीर : ६५)।

दोनो धर्मों के लोगो ने अपने-अपने मतो को उसे समझाने का प्रयत्न किया। दोनो ने उसे हिन्दू किंवा मुसलिम धर्म स्वीकार करने के लिये कहा। किन्तु वह किसी से प्रभावित नही हुआ। उसने इस समस्या का निराकरण अलौकिक प्रकार से करने का निश्चय किया। उसने निर्णय लिया। प्रातःकाल जिसे वह सर्व प्रथम देखेगा, उसी का धर्म स्वीकार कर लेगा। उसने प्रातः काल दरवेश बाबा बुलबुल कलन्दर को देखा और उसका धर्म इसलाम स्वीकार कर लिया (बहारिस्तान शाही : १४ बी०, तारीख हसन : १ : १२६ बी)।

कलन्दर ने राजा सुहदेव के समय काश्मीर मे प्रवेश किया था (वाक्याते काश्मीर : ३०)। बुलबुल शाह का नाम शर्फुद्दीन था। वह शाह नियामुतुल्ला फारसी सुहरावर्दी के सूफी मत का अनुयायी था (ब शाः १४ बी, मजमूआ-दर-अन्साब मशाएते ९९ काश्मीर : पाण्डु. १०६ ए; हसन १२६बी तथा २ : ८४बी)। तुर्कीस्तान से आया था। उसके साथ एक हजार मंगोल शरणार्थी काश्मीर मे प्रवेश किये। तुर्कीस्तान मे मुसलिम धर्म उस समय व्याप्त हो गया था (मुसलिम वर्ल्ड : सन् १९१४ ई० पृष्ठ ३४०)।

मंगोल मुसलमान नही थे। मंगोलो के निरन्तर आक्रमणो के कारण तुर्किस्तान, अफगानिस्तान तथा सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश त्रस्त रहता था। मंगोल बौद्ध थे। प्रतीत होता है। बुलबुल शाह अपने अनुयायियो के साथ अपने धर्म एवं धन-जन की रक्षा के लिये हिन्दूराज सिंहदेव की शरण लिया था।

हिन्दू धर्म-परिवर्तन मे विश्वास नही करते थे। विधर्मी को धर्म मे स्वीकार नहीं करते थे। अतएव बुलबुल शाह के लिये काश्मीर आदर्श स्थान था। काश्मीर प्रवेश एवं आबाद होने मे कोई बन्धन नही था। परसियन इतिहासकारों ने इस पर जोर दिया है। इसलाम जातिहीन संप्रदाय, मत-मतान्तरहीन, पुरोहितवादहीन, सरल धर्म था। इसी से आकृष्ट होकर रिंचन ने इसलाम कबूल किया था। परसियन इतिहासकार रिंचन का मुसलमान होना एक अलौकिक घटना मुसलिम जगत मे मानते हैं। हसन लिखता है-'इसलाम की बातें खूब समझकर रिंचन ने इसलाम कबूल किया था' (पाण्डु ९९बी, है० म० : १०२-१०३ ए)। परसियन इतिहासकार और लिखते हैं। रिंचन के पश्चात् कोटा देवी का भाई अर्थात् रिंचन का साला इसलाम स्वीकार किया। उसका नाम रावणचन्द्र था। उसे रिंचन का सेनापति कहा गया है। इस प्रकार इसलाम को काश्मीर मे राजकीय संरक्षण मिला।

हिन्दू राजा किसी धर्म को संरक्षण नही देते थे। किसी धर्म, संप्रदाय, मत-मतान्तर को मानने के लिये लोग स्वतन्त्र थे। राजकीय संरक्षण के अभाव मे हिन्दू धर्म अवनति की ओर ढलता गया। मुसलिम धर्म राजकीय संरक्षण प्राप्त कर पनप उठा। मुसलिम दर्शन के अनुसार धर्म एवं राजनीति को अलग करना कठिन है। बीसवी शताब्दी के आधुनिक युग मे विश्व के सभी मुसलिम राष्ट्रों ने अपने राष्ट्र का धर्म इसलाम घोषित कर उसे अपने विधि का अंग बनाया है।

रिंचन ने बुलबुल शाह का निवास स्थान झेलम पर अपने प्रासाद के सम्मुख निर्माण कराया था। परसियन इतिहासकार लिखते हैं कि खानकाह पर गाँव चढाया। पीर हसन लिखता है कि रिंचन शाह ने परगना नागाम के चन्द गाँव लंगर के लिये दिया। यह लंगर मुगलो के समय तक चलता रहा। मुहल्ला का नाम बुलबुल लंगर पड गया। इसने जामा मसजिद का भी निर्माण कराया था। पहली मसजिद जल गयी। बाद मे पत्थर को बनायी गयी। रिंचन के इसलाम कबूल करने का समय हिजरी सन् ७२६ है (परसियन : पृष्ठ १६६-१६७)। यह खानकाह

कालान्तर में बुलबुल लंकर नाम से प्रसिद्ध हो गया। हैदर बादुरा इस खानकाह के विषय में लिखता है—'यहाँ की आबादी बढ रही है। खानकाह की भी तरक्की है। इसका जीर्णोद्धार हाल ही में हुआ है। वह अपने मूल रूप में वर्तमान है।' एकमत है कि जोनराज वर्णित रिंचनपुर स्थान इसी आबादी के आस-पास स्थान था (सूफी : १२५)।

रिंचन ने एक मसजिद का निर्माण कराया। वह काश्मीर में बनी प्रथम मसजिद थी। उसका नाम परसियन इतिहासकारों ने रिंचन मसजिद दिया है। रिंचन मुसलमान हो जाने पर मुसलमानों के साथ नमाज पढता था (बहारिस्तान शाही : १५ ए बी०, हसन : १००बी १०१ ए; हैदर मल्लिक : १३० ए०)।

जोनराज ने कहीं नहीं लिखा है कि रिंचन मुसलमान हो गया था। अथवा उसकी रानी कोटा देवी ने मुसलिम धर्म स्वीकार किया था। परसियन इतिहासकार केवल दो प्रमाण जोनराज से उद्धृत करते हैं। दोनों प्रमाण अनुमान पर आधारित हैं। पहला प्रमाण वे यह देते है कि जोनराज ने रिंचन को 'सुरत्राण' लिखा है। 'सुरत्राण' शब्द सुलतान का संस्कृत रूप है। मुसलिम राजा के अतिरिक्त हिन्दू राजाओं ने इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है। किन्तु यह गलत है। हिन्दू राजा यहाँ तक कि मेवाड के राणा के लिये भी सुरत्राण शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरा प्रमाण वे देते हैं कि रिंचन के पुत्र का नाम हैदर था। किन्तु हैदर का वास्तविक नाम चन्द्र था।

यदि चन्दर और हैदर शब्द परसियन लिपी में लिखा जाय तो चन्दर को हैदर पढा जा सकता है। प्रायः लिखते समय नुक्ता देना भी लोग भूल जाते हैं। दो नुक्ता को तीन भी पढा जाता है। 'नून' अर्थात् अनुस्वार लिखने का प्रयोग कम होता है। यद्यपि पढने में उसे पढ़ लेते हैं। मुझे स्वयं इसका अनुभव है। जिस समय मैंने वकालत आरम्भ किया, काम काज उर्दू में होता था। मुझे भी उर्दू तथा परसियन पढना पडा। कचहरी में पसीट उर्दू लिखी जाती थी। नुक्ता एक है, दो हैं या तीन हैं, इसका पता लगाना कठिन होता था। केवल अभ्यास से पढा जाता था। अभ्यास से अर्थ लगाया जाता था। परसियन लिपि में जिस प्रकार उच्चारण करते हैं, उस प्रकार लिखना कठिन है। यह गुण केवल भारतीय लिपि में है। अतएव पूर्वकालीन किसी पारसियन लिपि में नाम 'चन्दर' लिखा था, जिसे रिंचन की मृत्यु के १३६ वर्ष पश्चात् हैदर पढ लिया गया। इस समय परसियन लिपि प्रचलित हो गयी थी। जनता पूर्णतया मुसलिम हो चुकी थी। रिंचन को मुसलिम प्रमाणित करने का प्रयास आरम्भ हो गया था। अतएव जोनराज ने 'चन्दर' को 'हैदर' पढा। उस समय तक हैदर नाम सम्भवतः प्रचलित हो गया था। यही कारण है कि वाकयाते कश्मीरी में 'हैदर' नाम न देकर 'चन्द्र' नाम रिंचन के पुत्र का दिया है। जोनराज ने यह भी नहीं लिखा है कि राजा होने पर रिंचन का नाम सदरुद्दीन हो गया था। केवल परसियन इतिहास लेखकों ने सदरुद्दीन सुलतान रिंचन का नाम दिया है (तारीख हसन : २ . १६६)। जोनराज ने प्रत्येक मुसलिम सुलतान का नाम जब वह बादशाह होने पर अपना नाम बदलता था तो अपर नाम भी दिया है। रिंचन का नाम मुसलिम प्रथा के अनुसार, धर्म परिवर्तन के पश्चात्, यदि बदल दिया गया होता, तो कोई कारण नहीं है कि जोनराज अपर नाम अन्य राजाओं के समान क्यों न देता? कोटा रानी का भी नाम रिंचन के मुसलिम होने पर बदल दिया जाता। कोटा रानी मुसलिम हुई थी यह किसी इतिहासकार ने नहीं लिखा है। वह अन्त तक हिन्दू थी। यदि वह मुसलिम होती या शाहमीर से शादी करने के पश्चात् मुसलिम हो गयी होती तो उसकी भी कब्र कहीं बनती। उसका भी पता लगता। किन्तु कोटा रानी का वध होने के पश्चात् वह फूंकी गयी या गाडी गयी कुछ पता नहीं चलता।

जोनराज धर्म परिवर्तन के विषय में कुछ नहीं लिखता। केवल एक श्लोक में ही रिंचन के धर्म के सम्बन्ध में घटना का वर्णन करता है। उसकी इस सूचना के आधार पर निष्कर्ष निकलना कि रिंचन मुसलान हो गया, कठिन है। काश्मीर ही नहीं समस्त भारत में हिन्दुओं ने अपने धर्म का द्वार दूसरों के लिये बन्द कर, महान अदूरदर्शिता का परिचय दिया है। जब तक हिन्दुओं ने अपना धर्म द्वार मुक्त रखा, उनकी उन्नति होती गयी। शक, हूण, पह्लव आदि अनेक जातियां हिन्दू धर्म में मिलकर, सागर जल तुल्य हो गयी थी। काश्मीर में भी मिहिर कुल तथा नरेन्द्रादित्य-खिखिल आदि हूण थे। वे काश्मीर के सम्राट थे। परन्तु उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार किया था। शक राजा हिन्दू धर्म के पोषक एवं संरक्षक थे। हिन्दू जाति समुद्र में हूण, शक, पह्लव आदि जातियों की स्रोतस्विनियाँ आकर मिलती रही। सागर जल को बढाती रही। अदूरदर्शिता के कारण स्रोतस्विनियों का जल बँध गया। उनका जल प्रवाह विपरीत दिशा में बहने लगा। सर का जल निरन्तर निकलते रहने के कारण स्वरूप होता-होता एक दिन पूर्णतया सूख गया। यही क्रिया प्रतिक्रिया काश्मीर में हुई थी। हिन्दू धर्म का द्वार एक तरफ बन्द कर दिया गया। दूसरी तरफ सामाजिक जाति बन्धन के नियमादि अत्यन्त कठोर बना दिये गये। हिन्दू जाति अनेक जातियों में विभक्त हो गयी। मुसलिम जगत का दर्शन इसके सर्वथा विपरीत था। वे बढते गये। इतने बढे कि कश्मीर में हिन्दू नाममात्र के लिये रह गये। जिस धर्म की रक्षा के लिये द्वार बन्द किये गये थे, सामाजिक नियमों को कठोर बनाया गया था, जाति पांति की सुदृढ प्राचीर खड़ी कर, जात-पात के रक्षा की कल्पना की गयी थी—वे हिन्दू राज्य के लोप के साथ स्वत लोप हो गये। धर्म कर्म के साथ विलीन हो गये। जब हिंदू धर्म को मानने वाले न रहे, तो उनका महत्व भी समाप्त हो गया।

रिंचन के मुसलमान होने का कोई राजनीतिक कारण नही प्रतीत होता। उस समय काश्मीर की जनता हिन्दू थी। मुसलमानो के कुछ उपनिवेश मात्र काश्मीर मे थे। रिंचन के लिये स्वाभाविक था कि वह हिन्दू जनता का समर्थन प्राप्त करता। रिंचन भौट्ट था। वह बौद्ध था। काश्मीर मे बौद्ध एव हिन्दू धर्मों मे वैमनस्य नही था। दोनो साथ चलते थे। दोनो धर्मों के देवताओ की पूजा होती थी। यह हो सकता है कि शैव लोग बौद्धो से कुछ खिंच गये हो।

भारत मे शंकराचार्य के कारण बौद्ध मत का अस्तित्व लोप हो गया था। शकर के अनुयायी प्राय शैव थे। इस शैव सम्प्रदाय की दीक्षा रिंचन लेना चाहता था। प्रत्येक हिन्दू गुरुमुख अथवा गुरु से दीक्षित होना चाहता है। विश्वास है बिना गुरुमुख किया दीक्षा लिये मुक्ति नहीं मिलती। रिंचन देवस्वामी से कुछ इसी प्रकार के दीक्षा की आकांक्षा करता था। देवस्वामी ने उसे अस्वीकार किया था। अतएव रिंचन का उनके सम्प्रदाय से विमुख होना स्वाभाविक था। हिन्दुओ का सहयोग इस प्रकार न प्राप्त करने पर, अधिक सम्भावना यही है, कि रिंचन का झुकाव अपने ही जैसे विदेशी जाति मुसलमानो की ओर हो गयी होगी। अबुल फजल ने आइने अकबरी मे अपना मत प्रकट किया है। शाहमीर के साथ मैत्री तथा मुसलमानो के सहयोग के कारण उसने इसलाम कबूल किया था (आइने अकबरी २ ३८६)। प्रत्येक परसियन इतिहासकार यह मानकर चलता है कि रिंचन ने इसलाम कबूल किया था। यद्यपि उसका कोई ठोस प्रमाण कभी उपस्थित नहीं किया गया है।

हसन जोनराज का वर्णन सत्य नही मानते, वे आलोचना करते है—जमाना कदीम मे बुद्ध मत से हिन्दू धर्म और हिन्दू धर्म से बुद्ध मत इख्तियार करने का चलन था। फिल हकीकत रिंचन ने सिर्फ इस वजह से शिवमत को कबूल नहीं किया कि इससे इसकी रूहानी तसकीन न हो सकती थी। जोनराज ने शायद इस बात से चिढकर लिख दिया है कि रिंचन

अनुजस्तनुजो बन्धुर्मन्त्री सहचरः सखा।
व्यालराजो नृपस्याभूत्सत्यैकव्रतनिष्ठया ॥ १९४ ॥

१९४ एक मात्र सत्य व्रत की निष्ठा के कारण, व्यालराज राजा का अनुज, तनुज, बन्धु, मन्त्री, सहचर, सखा हो गया था।

के शिव मत के मानने से इन्कार कर देने की वजह से बरहमनो ने इसको हिन्दू धर्म मे कबूल नही किया। रिंचन के मुसर्रफ व इसलाम हो जाने की वजह से जोनराज ने चिढ़कर इसका जिक्र अपनी तारीख मे बहुत कम किया है (मोहिबी : पृष्ठ ५६)।'

पीर हसन लिखता है—रिंचन बौद्धधर्म मानने वाला था। वह शैव धर्म मे दीक्षित होना चाहता था। लेकिन लोगो ने उसे नही लिया। दूसरे दिन जिसे देखेगा उसका धर्म स्वीकार कर लेगा। निश्चय किया। दूसरे दिन प्रात.काल झेलम के दूसरे तट पर बुलबुल शाह नमाज पढ रहा था। उसे पसन्द किया। अपने बीबी बच्चो के साथ उसका मजहब अख्तियार कर इसलाम का तौक़ पहन लिया। रावनचन्द्र और दूसरे सरदार भी इसलाम कबूल कर लिये। यह घटना हिजरी ८२६ मे हुई थी, (पृष्ठ १६६)।'

डॉ० परमू ने अपनी पुस्तक के परिशिष्ट 'सी' (पृष्ठ ५६५–५६६ तथा पृ० ७८–७९) मे रिंचन के इसलाम मे दीक्षित होने की पुष्टि की है। उन्होंने परसियन इतिहासकारो के पुराने तर्कों को दुहराया है। बहारिस्तान शाही (सन् १६१४ ई०), तारीख हैदर मल्लिक (सन १६१८ ई०), तारीख आजम, (सन् १७६५ ई०), तारीख हसन (सन् १६१६ ई०), तारीख नारायण कौल (सन् १७१० ई०), तारीख बीरबल कचरू (सन् १८३५ ई०) को अपने मतपुष्टि मे आधार माना है। यह सब रचनाएँ घटना के लगभग ३०० वर्ष पश्चात की हैं। इन रचनाओ मे किसी आधार ग्रन्थ का उल्लेख नही किया गया है। मालूमे-अफसरी का आधार भी परसियन इतिहास है। अतएव न तो कोई नवीन तर्क उपस्थित किया गया है और न कोई नवीन प्रमाण। उनका मत किसी स्वतंत्र आधार ग्रन्थ पर आधारित नहीं है। परसियन इतिहासकार निरपेक्ष नही कहे जा सकते। उन्होने अपना आधार गलत संस्कृत अनुवादो तथा मुसलिम जनता मे प्रचलित जनश्रुति एवं काश्मीर के मुसलिम करण के पक्षपाती तथा प्रचारक परसियन लेखको को माना है।

उनका मत स्वीकार करने मे असमर्थ हूँ। उनका यह तर्क की लद्दाखी गीत 'बोडरो मसजिद' रिंचन से सम्बन्धित है भ्रामक है। 'बड मसीद' एक बौद्ध धर्म स्थान पर बनायी गयी थी। लद्दाखी बौद्धो का यह धार्मिक स्थान पूर्व काल से था। उसके नष्ट हो जाने पर भी बौद्ध उस स्थान की पूजा करते रहे। यहूदी लोग 'वीपिंग वाल' की पूजा हजारो वर्ष से करते आ रहे हैं। हिन्दू आज भी काशी के लाट, विश्वनाथ, अयोध्या के जन्मस्थान तथा वृन्दावन मे जन्मभूमि की पूजा मसजिद बन जाने पर भी करते हैं। यही बात बडमसीद के सम्बन्ध मे भी हुई होगी। बौद्ध धर्म स्थान पर मसजिद बन जाने पर भी लद्दाखी बौद्ध वहाँ पूजा करते रहे होगे। फैन्की का मत साधिकार नहीं माना जायगा। उसने यह भी लिखा है कि हैदर मल्लिक के दो शिलालेख इस मसजिद के सम्बन्ध मे मिले थे। किन्तु हैदर मल्लिक की पाण्डुलिपि मे इन शिलालेखो का कोई उल्लेख नहीं मिलता। जामा मसजिद के शिलालेख मे रिंचन तथा उसके मसजिद बनाने का उल्लेख नही है (द्रष्टव्य. डा० परमू : पृष्ठ ८०)।

पाद-टिप्पणी :

१९४ (१) व्याल : श्री फैन्की का मत है कि व्याल शब्द तिब्बती शब्द 'ब्लेस' है। जोनराज ने और परसियन तथा असंस्कृत शब्दो को संस्कृत रूप देने का प्रयास किया है, मुख्यतः नामो को। 'ब्लेस' शब्द को भी सम्भवतः 'व्याल' संस्कृत रूप दे दिया है।

जहौ व्यालः कृतं राज्ञा न स व्यालकृतं पुनः ।
मनो हि कायिकं हन्ति तत्कृतं न वपुः पुनः ॥ १९५ ॥

१९५ नृप कृत्य को व्याल ने त्याग दिया, किन्तु व्याल कृत का त्याग राजा न कर सका। क्योंकि मन कायिक को दूर करता है न कि शरीर मन-कृत को।

कलानिधौ रसमये व्याले भूलोकभास्वतः ।
मूर्छिता रुचिरच्छैत्सीदच्छेद्यं जगतां तमः ॥ १९६ ॥

१९६ रसमय कलानिधि व्याल में भूलोक भास्वान[1] (राजा) की रुचि (प्रभा) निपतित होकर, संसार का अच्छेद्य तम दूर की।

श्रीमानुद्यानदेवोऽथ रन्ध्रप्रहरणोद्यतः ।
समादिक्षत टुक्कादीन्गान्धारस्थो भयादिति ॥ १९७ ॥

१९७ रन्ध्र प्रहरणोद्यत गान्धार स्थित श्रीमान् उदयन (उद्यान)[1] देव ने भय से टुक्क[2] आदि को आदेश दिया—

पाद-टिप्पणी :

१९६ उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या २२९–२३० अधिक है। उनका भावार्थ है—'प्रवेशोत्सुक दुलच को धन प्रयोग द्वारा काश्मीर से शीघ्र परावृत्त करने के लिये राजा ने जिसे भेजा, दुलच के प्रवेश करने पर भय से उद्यान देव गन्धार चला गया।'

इसी श्लोक के आधार पर परसियन इतिहास कारों ने लिखा है कि उदयन देव भागकर गान्धार चला गया था। उसे राजा सहदेव ने दुलच को धन देकर वापस करने के लिये भेजा था। परन्तु इस क्षेपक श्लोक से भी पता नहीं चलता कि उदयन देव तथा राजा सहदेव में क्या सम्बन्ध था ?

(१) भास्वान : भास्वान का अर्थ सूर्य होता है। भूलोक का सूर्य राजा रिंचन था। जिस प्रकार सूर्य की किरणें चन्द्रमा में पड़कर, संसार के अच्छेद्य तम को दूर करती है, उसी प्रकार भूलोक भास्वान राजा की रुचि अर्थात् कान्ति, गुण, कला, निधि कलावेत्ता व्याल में प्रतिबिम्बित होकर, लोक के अज्ञानादि के तिरोहित करने में समर्थ हुई।

पाद-टिप्पणी :

१९७ (१) उदयनदेव उद्यानदेव : एक मत है राजा सिंहदेव का भाई उदयनदेव था। गान्धार-राज के महा दुलच आक्रमण के समय शरण लिया था। राजा सूहदेव ने उदयनदेव को धन प्रयोग द्वारा दुलच का काश्मीर में प्रवेश से रोकने के लिये भेजा था। किन्तु मन्त्रणा करने पर भी, जब दुलच ने काश्मीर में प्रवेश किया, तो उद्यान किंवा उदयन-देव भयग्रस्त होकर, गान्धार भाग गया।

(२) टुक्क : म्युनिख पाण्डुलिपि में दर्ज है—'टुक्का को उदयान देव बिरादर सहदेव ने भड़का दिया था क्योंकि वह खुद तख्तशाही का ख्वाहा था।' (मोहिबुल ५६ नोट, म्युनिख पाण्डुलिपि १४८ बी, १४९ ए, इण्डियन एण्टीक्वेरी जुलाई; सन् १९०८ ई०, पृष्ठ १८७)

जीवतामेव गन्तव्यं जाने तन्नरकान्तरम् ।
यत्सेव्यतेऽविशेषज्ञः स्वामी सम्मानलिप्सया ॥ १९८ ॥

१९८ उस नरक (नगर)[1] राजा के जीवित रहते, जाना चाहिए। क्योंकि सम्मान लिप्सा से अविशेषज्ञ[2] स्वामी सेवित होता है।

भुङ्क्ते व्यालः श्रियं प्राणपणैर्युष्माभिरर्जितान् ।
करौ साधयतो यत्नाद्रसना भोगभागिनी ॥ १९९ ॥

१९९ व्याल तुम लोगों के प्राणपण से अर्जित श्री (लक्ष्मी) का भोग कर रहा है। यत्न पूर्वक दोनों हाथ[1] जिसे सिद्ध करते हैं, रसना (उसीका) भोग करती है।

ईश्वरो भूतिलिप्ताङ्गो व्यालं हारीचिकीर्षति ।
अनास्थां तु सुवर्णेषु युष्मासु विदधाति सः ॥ २०० ॥

२०० भूति (भस्म-ऐश्वर्य) लिप्तांग शिव जिस प्रकार व्याल (नाग) को आभूषण बनाकर, सुवर्ण में अनास्था प्रकट करते हैं, उसी प्रकार ईश्वर (राजा) व्याल को (हार) प्रमुख बनाने की इच्छा से तुम लोगों में अनास्था प्रकट करता है।

क्षीरमात्रैकपायित्वं निमित्तीकृत्य भूपतिः ।
युष्मच्छौर्याभिशङ्कित्वात् तिमिं तिमिमिवावधीत् ॥ २०१ ॥

२०१ केवल दुग्धपान मात्र को निमित्त करके, तुम लोगों के शौर्य-आशंकित (तिमिंगिल-सदृश)[1] राजा, तिमि मत्स्य तुल्य तिमि का वध कर दिया।

एवं सन्देशनिर्भिन्नाः टुक्काद्याः शुक्लङ्किताः ।
विशप्रस्थे कदाचित्ते प्रजहुरथ भूभुजम् ॥ २०२ ॥

२०२ इस प्रकार संदेश से पृथक हुये, शुक्लकित एवं टुक आदि किसी समय विशप्रस्थ[1] में राजा पर प्रहार किये।

पाद-टिप्पणी :

१९८. (१) नरक : व्यंग से नरक शब्द नगर के विशेषण रूप मे लिया गया है। 'नरकं' का पाठभेद 'नगरं' भी मिलता है।

(२) विशेषज्ञ : विशे का पाठभेद 'विशं' भी मिलता है। यदि 'विशं' मान लिया जाय तो अर्थ मे अन्तर हो जायगा। दूसरे देश का अज्ञ अर्थात् मूढ़ स्वामी भी सेवित होता है। स्वामी का अर्थ राजा नहीं साधारण साधु किंवा संन्यासी लगाया जा सकता है।

पाद-टिप्पणी :

१९९. (१) हाथ : भावार्थ है कि हाथ कर्म करता है। किन्तु उसका फल एवं स्वाद बिना प्रयास जिह्वा उठाती है।

पाद-टिप्पणी :

२०१. (१) तिमिंगिल : समुद्रस्थ एक विशाल मत्स्याकार जीव है। यह बड़ा मत्स्य जो तिमि को भी उदरस्थ कर जाता है। सम्भवतः ह्वेल मछली से तात्पर्य है।

पाद-टिप्पणी :

२०२. (१) विशप्रस्थ : श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी मे विशप्रस्थ का उल्लेख किया है। (जैन० ४ : ९८)। महारिस्तान शाही के लेखक ने विशप्रस्थ

तत्खड्गधारासंपातैर्व्यालस्तेषां हृदन्तरात्।
स्वैश्वर्यतापमनुदद् राजाऽमूर्च्छत्तु केवलम् ॥ २०३ ॥

२०३ उनके खड्ग धारा सम्पात से, व्याल ने उनके हृदय गत ऐश्वर्य ताप को दूर कर दिया और राजा केवल मूर्छित हो गया।

तेऽथ लब्धजयम्मन्यास्तद्वधापोढमन्यवः।
नगरान्तर्ययू राज्यग्रहणार्थमहङ्कृताः ॥ २०४ ॥

२०४ विजय प्राप्ति से अहम्मन्य, उसके वधसे क्रोध रहित, अहंकार पूर्वक (वे) राज्य ग्रहण हेतु नगर प्रवेश किये।

क्षणं मृत इव स्थित्वा भूयो घातभयान्नृपः।
दूरं गतान्रिपून्दृष्ट्वा राज्ये राजोदतिष्ठत ॥ २०५ ॥

२०५ पुनः घातभय से, नृपति क्षणमात्र में मृत-तुल्य स्थित हो, शत्रुओं को दूर गया देखकर, खड़ा हो गया।

आरुक्षन् राजधानीं ते यावत्तावन्नराधिपम्।
अपेतमूर्च्छमायान्तमद्राक्षुः क्षुद्रबुद्धयः ॥ २०६ ॥

२०६ जबतक कि वे राजधानी में प्रवेश कर रहे थे; उसी समय उन क्षुद्रबुद्धियों ने मूर्छा-रहित नृपति को आते देखा।

त्वया किं न त्वया किं न हतो राजेत्यनीतयः।
परस्परविवादात्ते तत्कालं चुक्षुभुर्जडाः ॥ २०७ ॥

२०७ 'तुमने राजा को क्यों नहीं मारा-?' 'तुमने राजा को क्यों नहीं मारा-?' इस प्रकार अनीतिगामी, वे जड़ परस्पर विवाद के अन्त में तत्काल क्षुब्ध होने लगे।

स्थान को मैदाने-ईदगाह माना है। यह श्रीनगर का वर्तमान ईदगाह मैदान है। इससे प्रकट होता है कि भौट्ट लोग श्रीनगर में मौजूद थे। ट्रुक आदि ने ईदगाह के मैदान के समीप, जो राज प्रासाद से बहुत दूर नहीं था, आक्रमण किया था। उन दिनों वहाँ तक नगर नहीं फैला था। श्लोक २०७ से प्रकट होता है। राजा भृत्यों अथवा सैनिकों सहित उस समय कहीं गया था। आघात लगने पर, मूर्च्छित होकर, गिरकर, मरने का बहाना किया था। उसे मरा समझ कर, व्याल आदि चले गये। उनके जाने पर राजा रिंचन उठकर, खड़ा हो गया।

पाठ-टिप्पणी :

२०७. (१) श्री मोहिबुल हसन उनके पारस्परिक झगड़े का अन्य कारण देते है—'रिंचन को मुरदा तसव्वुर करके श्रीनगर पर कब्जा करने की गरज से धावा किया। उन्होंने शहर को खूब लूटा। लेकिन माले-गनीम की तकसीम पर इनमें झगड़ा हो गया। इसी असना में रिंचन को होश आ गया। इसने ग़नीम की सफों में नाइत्तफाकी से फायदा उठाकर अचानक हमला कर दिया। इसने इनको गिरफ्तार किया और फाँसी हुक्म सादिर किया' (पृष्ठ ५७)। जोन-राज ने शूली चढ़ाने का वर्णन किया है (श्लोक २०९)। लूट पाट आदि बातों का क्या आधार है इसके समर्थन में किसी आधार ग्रन्थ का सन्दर्भ नहीं दिया गया है।

सान्योन्यमन्यवोऽन्योन्यलोठनाद्राजसद्मनः ।
कर्तव्यं मारणं राज्ञो व्यधुः स्वस्य स्वयं जडाः ॥ २०८ ॥

२०८ एक दूसरे के प्रति क्रुद्ध वे जड़ राजभवन में परस्पर घात द्वारा नृप करणीय मरण स्वयं कर लिये।

शेषान्राजाथ दुःशीलाञ्छूलारोपेण केवलम् ।
उच्चैस्तामनयन्मानी सर्वथाधोगतिं पुनः ॥ २०९ ॥

२०९ अवशिष्ट दुःशीलो को राजा शूलारोपण[1] से, उच्चावस्था में कर, पुनः सर्वथा अधोगति कर दिया।

सगर्भा वैरिभौट्टस्त्री रोषवान्स व्यदीदरत् ।
असिभिर्भूपतिर्गर्भशालिशिम्बीर्नखैरिव ॥ २१० ॥

२१० क्रोधी उस भूपति ने भौट्ट (कोट ?) वैरियों की सगर्भास्त्रियों को, खड्ग से उस प्रकार विदारित कर दिया, जैसे शालिशिम्बियों (छीमियों) को नख से विदीर्ण कर दिया जाता है।

तद्द्रोहरोपजा पीडा राज्ञस्तत्कुलमारणात् ।
चित्ते शान्तिमगात्खड्गघातोत्था न तु मूर्धनि ॥ २११ ॥

२११ उनके द्रोह के कारण रोषवशोत्पन्न, राजा के चित्त की पीड़ा, उनके कुल विनाश से शान्त हो गयी किन्तु खड्ग प्रहार से उत्पन्न शिरोव्यथा नहीं दूर हुई।

पाद टिप्पणी :

२०९ (१) शूल : शूली की प्रथा प्राचीन भारत के साथ समस्त विश्व मे प्रचलित थी। स्थान-भेद के कारण शूली पर चढ़ाने की प्रक्रिया मे अन्तर था। शूली पर चढ़ाने के लिये कल्हण ने समारोप शब्द का प्रयोग किया है (रा० : २ : ७९)। हिन्दी भाषा मे शूली को सूली लिखते हैं। मूल संस्कृत शब्द शूल है। कठोर प्राणदण्ड देने की यह अति प्राचीन प्रक्रिया थी। दण्डित व्यक्ति एक नुकीले लोहे के दण्ड पर बैठा दिया जाता था। व्यक्ति की मूर्धा पर आघात मुगरा अर्थात् लकड़ी के हथौड़ा से किया जाता था। तीक्ष्ण लौहदण्ड अधोभाग गुदा स्थान से घुसता ऊर्ध्व भाग की ओर चलता था। दण्डित व्यक्ति ऊर्ध्व भाग से अधोभाग की ओर उसी प्रकार खसकता था जिस प्रकार माला का दाना सूयी मे ऊपर जाकर नीचे की ओर जाता है।

पाद-टिप्पणी :

२१० (१) भौट्ट : पाठभेद कोटा, कोटि, कोट्ट, भोट्ट मिलता है। रिंचन स्वयं भौट्ट था। वह अपने जाति की स्त्रियो को क्यो मारता ? यदि उसने भौट्ट स्त्रियो को मारा तो विद्रोही उसके साथी भौट्ट थे। वे उसके साथ लद्दाख से आये थे, साथ रहते थे। उनसे सहयोग की अपेक्षा करता था। विद्रोही टुक इससे प्रकट होता है। लद्दाखी था।

रिंचन कितना क्रूर था। इस बात से पता चलता है। प्रतिहिंसा आवेग मे शत्रुओं की निर्दोष स्त्रियो का गर्भ फाड दिया था। इस कार्य से उसकी न्याय-प्रियता पर जिसका वर्णन जोनराज करता नहीं थकता, आघात पहुँचता है—प्रकट करता है कि जोन-राज ने रिंचन का गौरव बढ़ाने के लिये अरबी एवं फारसी की कथा जोड दी है।

दुःस्वप्नमिव तद्दृष्ट्वा दुक्षादिचरितं क्षणात्।
प्रबुद्धेव पुनः प्रापदभयेन सुखं मही॥ २१२॥

२१२ दुक्षादि के उस चरित्र को क्षणमात्र दुःस्वप्न तुल्य देखकर, प्रबुद्ध सी मही पुनः अभय से सुख प्राप्त की।

अद्रोहमध्यगे राजा शाहमेरे प्रसन्नधीः।
सकोटामातृकं वृद्ध्यै स्वपुत्रं हैदरं ददौ॥ २१३॥

२१३ द्रोह मध्य न रहने से शाहमीर पर प्रसन्न राजा ने (उसे) कोटा-मातृ सहित अपने पुत्र हैदर[1] को वृद्धि (पालन) हेतु दे दिया।

पाद-टिप्पणी

२१३ (१) हैदर जोनराज, श्रीवर एवं शुक ने मुसलिम नामो का संस्कृत रूप दिया है। उनके समझने मे दिक्कत होती है। किन्तु हैदर नाम शुद्ध दिया गया है। इससे प्रकट होता है। कोटा देवी के पुत्र का वास्तव मे नाम 'चन्द्र' था। वह परसियन मे लिखे रहने के कारण हैदर पढा गया। यदि हैदर मुसलिम था, तो कोई कारण नही मालुम होता, कि शाहमीर उसे क्यो कोटा रानी के पश्चात बन्दी बनाता। कोटा रानी की मृत्यु के पश्चात हैदर का उल्लेख पुनः नही मिलता। कोटा देवी की मृत्यु के समय हैदर की आयु १७ या १९ वर्ष के मध्य रही होगी। रिंचन ने केवल ३ वर्ष १ मास १९ दिन राज्य किया था। यही समय कोटा के साथ विवाह का माना जाता है। वह समय सन् १३२० ई० होता है। रिंचन की मृत्यु सन् १३२३ मे हो गयी थी। अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि हैदर की उम्र उस समय दो वर्ष से अधिक नही थी।

रिंचन किसी काश्मीरी पर विदेशी होने के कारण विश्वास नही कर सका था। अतएव अपने ही जैसे एक विदेशी शाहमीर पर उसन विश्वास किया। उसके नियन्त्रण म युवती कोटा तथा पुत्र हैदर को रख दिया। टुक्क एवं व्याल के षड्यन्त्र मे शाहमीर सम्मिलित नही था। उसके विरुद्ध कोई कार्य नही किया था। उसपर अनायास भरोसा कर लेना आश्चर्य नहीं मालूम होता। परसियन इतिहासकार हैदर का अभिभावक शाहमीर को लिखे हैं (म्युनिख ५० ए)।

जिस समय कोटा रानी का विवाह रिंचन के साथ हुआ था, उस समय रिंचन मुसलमान नही था। सभी इतिहास लेखक इसे स्वीकार करते हैं। रिंचन बौद्ध था। बौद्ध एवं हिन्दुओ मे विवाह सम्बन्ध प्रचलित था। कोटा रानी का पुत्र हिन्दू स्त्री का पुत्र था। उसका मुसलिम नाम रखा जाना असम्भव था।

काश्मीरी भगवान बुद्ध एवं हिन्दू देवी देवताओ की उपासना करते थे। उनमे विवाह सम्बन्ध होता था। आज भी बौद्ध तथा सिखो के साथ हिन्दू विवाह सम्बन्ध करते हैं।

रिंचन एवं देवस्वामी का वर्णन जोनराज श्लोक १९३ मे करता है। रिंचन एवं कोटा के विवाह की बात श्लोक १६९ से प्रकट होती है। रिंचन आख्यान जोनराज श्लोक १४६ से आरम्भ तथा मृत्यु का उल्लेख श्लोक २२० मे करता है। यदि जोनराज के वर्णन का क्रम ठीक माना जाय तो रिंचन एवं कोटा का विवाह मुसलिम होने पर नही हुआ था। दोनो भारतीय धर्मावलम्बी थे। उनका पुत्र मुसलमान नही था। जब वे मुसलमान नही थे तो मुसलमानी नाम रखना सगत नही लगता। उसका 'चन्द्र' नाम हिन्दू है। बौद्धो मे भी चन्द्र नाम रखा जाता है। देवस्वामी प्रसग के पश्चात् रिंचन मुसलमान हो सकता था। उसके पूर्व रिंचन के मुसलमान होने की कोई भी बात स्वीकार नही करता। यदि घटना क्रम वर्णन मे सत्यता हो, तो उसने तीन वर्ष राज्य किया था। देवस्वामी की घटना उसके राज्य काल के अन्तिम चरण मे हो सकती है। कोटा का दो पुत्र होना माना

वर्धितः कोटया देव्या प्रावृषेव महीरुहः।
सच्छायत्वं स्फुरत्पत्रः शाहमेरो न्यषेवत ॥ २१४ ॥

२१४ प्रावृष (वर्षा ऋतु) द्वारा प्रवृद्ध महीरुह (वृक्ष) तुल्य कोटा से वर्धित शाहमीर सच्छायता एवं स्फुरत्पत्रता से युक्त हो गया।

परिखाच्छलतोऽकीर्त्या स्वपराजयजातया।
परितो वलितं राजा स्वनामाङ्कं पुरं व्यधात् ॥ २१५ ॥

२१५ राजा ने परिखा के व्याज से, स्वपराजय से उत्पन्न अकीर्ति द्वारा चारों तरफ से आवेष्ठित, अपने नाम का नगर[1] निर्मित किया।

जाता है। अतएव हैदर किंवा चन्द्र के उत्पन्न होने पर ही देवस्वामी वाली घटना हो सकती है।

यदि मान लिया जाय कि रिंचन मुसलमान हो गया तो कोटा स्वतः क्यो मुसलमान होती? कोटा के मुसलमान होने का कोई वर्णन नही मिलता। यदि पुत्र का नाम बदल कर मुसलमान हैदर रखा गया तो कोटा का भी मुसलमानी नाम क्यो नही रखा गया? कोटा देवी के हिन्दू रहते भी, रिंचन मुसलमान होकर, उसे अपनी स्त्री रूप मे रख सकता था। मुसलिम *कानून के अनुसार तीन प्रकार के विवाह, सही,* फासिद तथा वातिल माने गये है। एक मुसलमान पुरुष विवाह किताबिया अर्थात् यहूदी तथा ईशायी से कर सकता है। परन्तु बुत तथा आतिश परस्त से किया विवाह सही नही बल्कि फासिद होगा। वह नियमित नही केवल फासिद अर्थात अनियमित होगा। कारण यह है कि अनियमित किसी घटना के कारण होती है। अतएव यह गैरकानूनी विवाह नही कहा जा सकता। फासिद विवाह मे हुआ *सन्तान जायज* होता है। केवल पति एवं पत्नी को इस प्रकार के विवाह के कारण एक दूसरे का उत्तराधिकार नही मिलता।

परसियन इतिहासकारो ने लिखा हैं—रिंचन ने केवल एक पुत्र छोडा था जो शाहमीर के अभिभावकत्व मे था। बहारिस्तान शाही (१५ बी), हसन (११० ए), हैदरमल्लिक (१०४ ए), *तवक्काते अकबरी* (३ : ४२५) मे हैदर का चन्द्र नाम दिया गया है।

कोटा रानी उस समय नव युवती थी। अनुमान है कि उस समय वह २१ वर्ष से अधिक नही थी। उसका पुत्र भी उम्र मे दो वर्ष या इससे छोटा था।

खेरिंचन के वर्णन से प्रकट होता है कि लद्दाखी श्रीनगर मे मौजूद थे। रिंचन ने अपने सम्बन्धी लद्दाखियो के अभिभावकत्व मे कोटा तथा शिशु को नही रखा। यह भी एक पहेली है।

जोनराज के वर्णन से कही भी प्रकट नही होता कि शाहमीर ने रिंचन की सहायता की थी। रिंचन का शाहमीर पर क्यो विश्वास *हो गया था,* इसका भी कोई कारण जोनराज नहीं देता। शाहमीर लद्दाखियो के षड्यन्त्र मे सम्मिलित नही था। यही एक कारण रिंचन के विश्वास का दिया गया है। परसियन इतिहासकार लिखते हैं कि कोटा रानी का भाई रावणचन्द्र था। वह रिंचन का शाला था। मुसलमान हो गया था। यदि यह बात ठीक है तो पुत्र का मामा स्वाभाविक अभिभावक होता है। वह अपने साले को अपनी स्त्री कोटा तथा पुत्र का *अभिभावक बनाता।* किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व यह विषय अभी और अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है।

पाद-टिप्पणी :

२१५ (१) रिंचन नगर : लवन्य प्रबल थे। उनसे राज्य को सर्वदा भय लगा रहता था। रिंचन विदेशी था। उसका विरोध उसके स्वदेशवासी कर चुके थे। *मरणासन्न कर छोड दिया गया था।* ऐसी परिस्थिति मे रिंचन का अपनी रक्षा के लिये प्रबन्ध

पौपदुर्दिनमार्तण्डसन्निभो धरणीपतिः ।
मासांश्च कतिचिद् भूयः प्रकाशमकरोद् भुवः ॥ २१६ ॥

२१६ पौष मास के दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिन) के मार्तण्ड तुल्य, धरणीपति ने कतिपय मास पुनः भूमि पर प्रकाश किया।

हेमन्ते शैत्यपारुष्यदोषेण धरणीपतेः ।
मरुत्कोपन नैविड्यं शिरःपीडाऽग्रहीत्तराम् ॥ २१७ ॥

२१७ हेमन्त में शैत्य पारुष्य के दोष के कारण मरुत्कोप (वायु विकार) से धरणीपति की शिरोव्यथा बढ़ गयी।

सदाऽनेकोत्तमाङ्गानां पीडाहरगुणश्रियः ।
भूपतेरुत्तमाङ्गस्य पीडा कष्टमवर्धत ॥ २१८ ॥

२१८ सर्वदा अनेक उत्तमांगों की पीड़ा हरण करने के कलाविद भूपति के उत्तमांग की पीड़ा बढ़ती गयी।

एकादश्यां ततः पौषे नवनन्दाङ्कवत्सरे ।
निरस्ता मृत्युवैद्येन भूपतेर्मूर्धवेदना ॥ २१९ ॥

२१९ तदनन्तर निन्नानवे (४३९९) वर्ष के पौष मास की एकादशी को मृत्युवैद्य ने भूपति की मूर्धवेदना दूर कर दी।

एकादशदिनैरूनौ मासौ त्रीन्वत्सरानपि ।
क्ष्मां संरक्ष्य स स्वर्गं ययौ रिञ्चनभूपतिः ॥ २२० ॥

२२० वह रिंचन भूपति तीन वर्ष, ग्यारह दिन न्यून दो मास, क्ष्मा (पृथ्वी) संरक्षण कर, स्वर्ग प्राप्त किया।

करना स्वाभाविक था। परिखा आवेष्ठित नगर निर्माण वर्णन से स्पष्ट होता है। रिंचन भयभीत रहता था। अपने नवनिर्मित नगर की किलेबन्दी मध्ययुगीय शैली पर किया था। रिंचनपुर मुहल्ला बोग्डर के समीप था।

श्रीकंठ कौल का मत कि रिंचन स्वल्प काल राज्य करने के पश्चात् जब रिंचनपुरा का निर्माण कराया तो लवन्यों से पराजित हो गया था। स्व-पराजय शब्द रहस्यमय है। जोनराज स्पष्ट नहीं लिखता कि रिंचन लवन्यों से पराजित हो गया था। श्लोक २१० से प्रकट होता है कि उसके वैरी भौट्ट थे जिनकी स्त्रियों का गर्भ चीर कर उसने मार डाला था। रिंचन के विरुद्ध षड्यन्त्र का नेतृत्व उदयनदेव ने बाहर से किया था। वह उस समय गान्धार में था। उसी ने रिंचन के वध तथा उसे हटाने की प्रेरणा टुक आदि लद्दाखियों को दी थी। श्लोक : १९७-२०१।

पाद-टिप्पणी :

२१९. हमारी गणना से कलि ४४२४=लौ० ४३९९=सम्वत् १३८०=सन् १३२३ ई० शके= १२४५ होगा। पौष मास एकादशी को मृत्यु हुई। यह समय जोनराज स्वयं देता है। इसमें सन्देह करना भ्रामक होगा।

पाद-टिप्पणी :

२२०. (१) मृत्यु : डॉ० सूफी मृत्यु का समय शुक्रवार, २५ नवम्बर सन् १३२३ ई० = हिजरी ७२३ देते हैं (कशीर : १ : १२६)। डॉ० परमू ने सूफी

पुत्रं हैदरनामानं बाल्यादनभिषिक्तवान्।
अतथाविधशक्तित्वाद्राज्यं स्वेनाप्यसंवहन् ॥ २२१ ॥

२२१ बालक होने के कारण पुत्र हैदर[1] को अभिषिक्त तथा (शाहमीर) स्वयं भी शक्ति न रहने के कारण राज्य का संवहन (धारण) नहीं किया।

का समय ही दिया है। परन्तु लिखते हैं कि परसियन इतिहासकार हिजरी ७२७ देते हैं। पीर हसन ने राज्य काल ९ साल ७ मास दिया है। जिसके अनुसार रिंचन का राज्य काल केवल २ वर्ष तथा ६ मास आता है। यह विश्वास योग्य नही है। जोनराज ने स्पष्ट मृत्यु काल दिया है। इसमे सन्देह का स्थान नही रह जाता। कुछ लोगो का मत है कि उसकी कब्र खानकाह बुलबुल शाह के दक्षिण, अली कदल तथा नव कदल के मध्य वितस्ता के दक्षिण तट पर, मुहम्मद अमीन उवेसी श्रीनगर की ज़ियारत के नीचे स्थित है। डोगरा राज्य सरकार ने स्थान संरक्षण की घोषणा दो सितम्बर सन् १९४१ ई० मे की थी। इस मजार का पता मोरवियन मिशन के प्रसिद्ध तिब्बत सम्बन्धी विद्वान श्री ए० एच० फ्रैन्की ने सन् १९०९ ई० मे लगाया था। उसके पूर्व कोई जानता भी नहीं था कि वह कहाँ दफन किया गया था (जर्नल ऑफ पंजाब हिस्टोरिकल-सोसाइटी ६ : १७५)। बुलबुल शाह की मृत्यु ७ वीं रजब हिजरी ७२७=सन् १३२६ ई० में राजा उदयनदेव के समय हुई थी।

जोनराज रिंचन के अन्तिम यवन संस्कार का उल्लेख नही करता। यह भी नहीं लिखता कि वह कहाँ दफन किया गया था।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के पूर्व किसी को पता भी नही था कि रिंचन की कब्र कहां पर थी। पूर्वकथित रिंचन मसजिद आग लगने से जल गयी थी। उसके स्थान पर दूसरी मसजिद बनायी गयी थी। उसका नाम रिंचन मसजिद रखा गया। उसमें पूर्वकालीन बनी मसजिद का पत्थर लगा है और उवैसी की ज़ियारत के समीप है। कथित रिंचन की कब्र मुहल्ला बुलबुल लंगर बुलबुल शाह की मसजिद के पश्चिम १०० गज पर होगी। उसका घेरा ६ गज चौड़ा ९ गज लम्बा है। उस पर सरकार की ओर से निम्नलिखित साइनबोर्ड लगा है—'परम्परा से तथाकथित सुलतान सदरुद्दीन उर्फ रिंचन शाह, एक तिब्बती शरणार्थी जिसने काश्मीर पर आक्रमण किया था और काश्मीर के हिन्दू राजा रामचन्द्र को मार कर उसका सिंहासन हस्तगत कर लिया था, दो वर्ष सात मास शासन किया था।' काश्मीर पुरातत्त्व विभाग।

काश्मीर मे डोगरा राज स्थापित होने के पश्चात मुसलमानो मे नवीन जागृति आयी थी। भारतीय मुसलमानों के तुल्य उनमे भी चेतना हुई। उसने आन्दोलन का रूप ले लिया था। मुसलिम लीग के मुसलिमकरण आन्दोलन से काश्मीर अप्रभवित नही था। काश्मीर के मुसलमानो मे अपने इतिहास एवं पूर्वजों के प्रति जिज्ञासा हुई थी। रिंचन की कब्र को कोई सन् १९०९ के पूर्व जानता भी नही था। फ्रैन्की ने इसका पता लगाया था। किस आधार पर यह कब्र रिंचन की करार दी गयी इसके प्रमाण पर कुछ भी प्रकाश नही डाला गया है। उक्त साइनबोर्ड इस बात का प्रमाण है कि गलत, उलटा-पुलटा लिख कर तथाकथित 'सपोज्ड' शब्द जोड़ दिया गया है कि लोगो को सन्तोष हो जाय।

यह कोई नई बात नही है। वैरन वान हुगेल ने अपने यात्रा-विवरण (सन् १८३५ ई०) मे लिखा है कि उन्हें मूर क्राफ्ट की कब्र मजार सलातीन मे वहाँ के मुल्ला द्वारा दिखायी गयी और बताया गया कि मूर क्राफ्ट यहीं दफन किये गये थे। कब्र के शिलालेख का अनुवाद भी बता दिया कि अभागा पर्यटक यहीं पर दफन किया गया था (ट्रेवेल : ११९)। परन्तु वास्तव मे यह कब्र दूसरे की थी। उस पर मूर क्राफ्ट के सुझाव पर लेख लगाया गया था।

पाद-टिप्पणी :

२२१. (१) हैदर : तब्काते-ए-अकबरी (३ : ४२५) मे निजामुद्दीन नाम हैदर न देकर 'चन्द्र'

लवन्यैः कुलनाथत्वाद् रिञ्चने प्रतिवादपि।
अव्याहतप्रवेशाशो मतिमाञ्शह्मेरकः ॥ २२२ ॥

२२२ कुलनाथ[1] होने के कारण तथा लवन्यों द्वारा रिंचन के प्रति विरोध होने से भी अव्याहत प्रवेश की आशा से मतिमान शाहमीर ने—

देता है। केवल एक ही पुत्र का उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि रिंचन से केवल एक पुत्र कोटा रानी को हुआ था। दूसरा पुत्र जट्ट (श्लोक २४२) निःसन्देह उदयनदेव का कोटा रानी द्वारा हुआ था। शाहमीर के अभिभावकत्व मे हैदर इस समय था (बहारिस्तान शाही : १५ बी; हसन : १०१ ए०, है० म० : १०४ ए०)।

पाद-टिप्पणी :

२२२. (१) कुलनाथ : यह शब्द अर्थपूर्ण है। जोनराज ने पहली बार स्पष्ट किया है कि शाहमीर अपने जाति किंवा कुल अर्थात् काश्मीर के मुसलमानो की आबादी का कुलनाथ, सरदार किंवा नेता था। शाहमीर की यही शक्ति शनैः शनैः संघटित होती, उसे सुलतान बनाने मे सहायक हुई।

मूल्यांकन

रिंचन विदेशी, लद्दाखी था। महाभारत से यदि कहे, इतिहास के उषा काल से यदि कहे, काश्मीर पर किसी विदेशी ने आधिपत्य नही किया था। अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल काश्मीर आये—वे वही के हो गये। उन्होने काश्मीर से सीखा। काश्मीर को उन्नत किया। विश्व मानचित्र पर काश्मीर को रख दिया। काश्मीर मुस्कराया। उसकी सुरभि दिगंत मे फैली।

वे गैरकाश्मीरी थे। उन्होने अपने को काश्मीरियो से बढकर काश्मीरी प्रमाणित किया। उन्होने काश्मीर को सजाया। उसका स्तर उठाया। धर्म, संस्कृति, सभ्यता, रहन, सहन, समाज तथा लोक मे मिल गये। काश्मीर उनके लिये गर्व का अनुभव करता है। उन्हे विदेशी मानने के लिये उद्यत न होगा।

रिंचन आया। साहसी तुल्य आया। उसने असंघटित काश्मीर देखा। तन्त्रो के तन्त्र मे उलझा काश्मीर देखा। व्यष्टिवादी समाज देखा। विघटित समाज देखा। अपने सुख की वरीयता दूसरो पर देखा।

विघटन को संघटन जीतता है। रिंचन के साथी संघटित थे। रिंचन लद्दाख से उडता झंझावात की तरह आया। उसने झकझोर दिया काश्मीरी जीवन को। पनप उठा काश्मीर भूमि मे वह अंकुर जिसे रक्त से सींचा, साहस से बढाया, छल से मुकुलित किया। जिसकी सुरभि कृतघ्नता हुई। जिसका फल विश्वासघात था।

वह काश्मीर के धर्म मे, सभ्यता में, परम्परा मे मिल न सका। वह शैव होना चाहता था। तत्कालीन सनातनी समाज ने, उसे शैव धर्म में दीक्षित न होने दिया। देव स्वामी ने उसे दीक्षित करना अस्वीकार कर दिया। परशियन इतिहासकार कहते हैं। उसने इसलाम कबूल किया। बुलबुल शाह ने उसे मुसलिम धर्म मे दीक्षित किया था। रिंचन काल मे श्रीनगर मे गैरकाश्मीरी मुसलिमो का उपनिवेश था। रिंचन मुसलमान राजा हुआ। परसियन इतिहासकार कहते है—दस हजार काश्मीरियो ने मुसलिम धर्म ग्रहण कर लिया। उसने प्रथम काश्मीरी मसजिद बनवायी। दफन किया गया। जोनराज यह सब कुछ नही कहता। उसका क्या मत था। किस धर्म का अनुयायी था। यह भी नही पता चलता। परसियन इतिहासकारों ने उसे काश्मीर का प्रथम मुसलिम सुलतान माना है। उस पर गर्व किया है। तत्कालीन काश्मीरी इतिहासकारो का मौन खलता है।

रिंचन का इतिहास रक्तरंजित है। पारस्परिक संघर्ष के कारण उसे लद्दाख त्यागना पडा। उसने अपने शत्रु, काल्यमान को धोखा देकर निरस्त्र बुलाया।

वे विश्वास कर आये। रिंचन का अस्त्र शस्त्र बालू मे गड़ा था। अकस्मात् बालू से अस्त्र शस्त्र निकले। निहत्थो पर उसने आक्रमण किया। इतिहास ने लिखा। यह उसी विश्वासघात का प्रथम उदाहरण था। वह प्रतिहिंसाग्नि से भयग्रस्त हुआ। उस लपट से दूर भागा। काश्मीर मे बन्धुओ सहित प्रवेश किया। उस समय दुल्च से काश्मीर त्रस्त था। रिंचन आँधी की तरह आया और काश्मीर अन्धकार गर्त मे डूबने लगा।

दुल्च पश्चिम से आये थे। रिंचन उत्तर दिशा से आया। इन दोनो से त्रस्त होकर जोनराज के शब्दो मे काश्मीरी दक्षिण दिशा की ओर, यम दिशा की ओर चले। काश्मीर मण्डल की समतल भूमि पर दुल्च जलप्रवाह ने और पर्वत पर रिंचन वायु ने आक्रमण किया। काश्मीर की पवित्र भूमि, सतीसर जल एव वायु दोनो के कुपित होने पर अप्रकृतिस्थ हो गयी। मास-लोलुप रिंचन चील पक्षी तुल्य काश्मीरी जन के मास पिण्ड को धर दबोचने के लिये झपटा। रिंचन हिंसक पक्षी था। शिकारी था। उसे प्राणियो की क्या ममता होती?

दुल्च न शीत भय से काश्मीर त्याग दिया। उस समय कोई पुत्रपिता को, पितापुत्र को, भाई भाई को नही देख पाया। खेत बिना जोते रह गये। कृषिशून्य थे। विकृत दासत्व प्रथा का प्रवेश काश्मीर मण्डल ने देखा—काश्मीरियो को बेचकर धन अर्जन करते गैरकाश्मीरियो को देखा। काश्मीर राजा सूहदेव दुर्बल था। वह काश्मीर को सघटित न कर सका। स्वय अवसान की शका से शकित हो उठा। तथापि काश्मीर मे वीर थे। रामचन्द्र ने रिंचन का पद पद पर विरोध किया। उसने काश्मीर स्वतन्त्रता की आवाज उठायी। काश्मीर की सेना को खुले युद्ध मे रिंचन परास्त न कर सका।

वचनोद्योगी रिंचन ने नीति का अवलम्बन किया। रामचन्द्र के सुदृढ दुर्ग लहर कोट मे छद्म व्यापारी बनाकर सैनिक भेजता रहा। सरल काश्मीरी विश्वासघात के आदी नहीं थे। उन्हें व्यापारी मात्र समझा। भोट्टा के, अपने सैनिको के, यथेष्ट सख्या मे, लहर मे, उपस्थित हो जाने पर, रिंचन ने कपट से रामचन्द्र की हत्या कर दी। बिना युद्ध लहर विजय रिंचन ने किया। उसे काश्मीर भूमि म पैर रखने का स्थान मिला।

कोटा लहर की कन्या थी। रिंचन ने उस पर अधिकार कर लिया। काश्मीर का कायर राजा सूहदेव परिस्थिति देखकर प्राणभय से श्रीनगर त्याग दिया। रिंचन ने अपने क्रूर स्वभाव से, अपनी तलवार की शक्ति से, काश्मीर मे आतक फैला दिया। किसी को शर उठाने का साहस न हुआ। काश्मीर का विकृत समाज स्वार्थ धनलिप्सा, कामतृष्णा, अर्थलोलुपता, कायरता के कारण काश्मीर स्वाधीनता की रक्षा न करसका। उस पर रिंचन अनायास बिना प्रतिरोध हावी हो गया। काश्मीर मण्डल की व्याप्त अराजकता रिंचन शस्त्रभय, शस्त्र प्रहार आतक से दब गयी। कोई बोल नही सका। शताब्दियों से काश्मीर की अव्य-वस्था के उत्तरदायी लवन्य गण तथा उनकी वीरता, उनकी तलवार मियान म ही रह गयी। रिंचन के पौरुष सम्मुख मस्तक झुका दिये। उनका पौरुष मर्दित हो गया। काश्मीरी राजाओ की सज्जनता उनकी दया, उनके स्नेह का नाजायज लाभ उठा कर लवन्य, डामर जब जो चाहते थे करते थे। उन पर अकुश लगा। शासन अकुशहीन से निरकुश बन गया।

परसियन इतिहासकारो ने रिंचन की न्याय-प्रियता की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। किन्तु वह इतना न्यायप्रिय था कि क्षीरपान के कारण उदर विदीर्ण कर इस लिये देखा कि वास्तव मे तिमिने गोपाली का क्षीरपान किया था या नही।

उदयनदेव ने षड्यन्त्र का उत्तर षड्यन्त्र से दिया। काश्मीरी जनता ने विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह नही किया। रिंचन के प्रति असतोष

समं श्रीकोटया देव्या मूर्तयेव जयश्रिया।
तदोदयनदेवं तं कश्मीरक्ष्मामलम्भयत् ॥ २२३ ॥

उदयनदेव[1] (सन् १३२३-१३३८ ई०)

२२३ उस समय मूर्तिमती जयश्री तुल्य श्री कोटा देवी[2] के साथ काश्मीर भूमि को उदयन देव को प्रदान किया।

प्रकट नहीं किया। किसी देशभक्त ने रिंचन के विरुद्ध उठने का साहस नहीं किया। उस पर प्रहार किया उसके देश वासियों ने। रिंचन पर विश्वस्त मे तुकलंकेत एवं टुक्क आदि ने अचानक प्रहार किया। मन्त्री व्याल मारा गया। रिंचन ने छल का आश्रय लिया। मूर्च्छित होकर गिर गया। मृत्यु का स्वांग रचलिया। आक्रमक उसे मरा जान छोड़कर चले गये। उन्हें दूर जाते देखकर, रिंचन उठ खड़ा हुआ। उसके शत्रु राजधानी मे प्रवेश करने जा रहे थे। रिंचन अपने साथियों सहित राजधानी की ओर अग्रसर हुआ। उसके शत्रुओं ने उसे आते देखा। वे परस्पर एक दूसरे से झगड़ने लगे। एक-दूसरे को दोष देने लगे कि रिंचन को क्यों नहीं मारा। इस विवाद मे शत्रु स्वयं परस्पर लड़कर मर गये। रिंचन यथावत राजा बना रहा। रिंचन ने शेष शत्रुओं को शूली पर चढ़ाकर मार डाला। वह क्रूरता की सीमा उस समय उल्लघन कर गया जब सजातीय भौट्ट शत्रुओं की स्त्रियों का पेट तलवार से चीर कर मरवा डाला।

रिंचन खड्ग प्रहार आघात से सम्हल नहीं सका। वह उसकी मृत्यु का कारण हुआ। रिंचन अपना अन्त समय निकट देखकर अपने पुत्र तथा कोटा रानी को शाहमीर के संरक्षकत्व मे रख दिया। उसने अपने जीवन के अन्तिम चरण मे परिखावेष्टित रिंचनपुरी का निर्माण सैनिक एवं सुरक्षा की दृष्टि से करवाया।

रिंचन न तो वीर था और न पराक्रमी। उसने काश्मीर मे अराजकता जो दुलच मंगोल आक्रमण के कारण व्याप्त हो गयी थी और काश्मीरियों को विघटित कर दिया था, उसका लाभ उठाया था। वह शरणार्थी बनकर आया और अपने विश्वासघात, छल, कपट एवं नीति के कारण राजा बन गया था। उसने सार्वजनिक निर्माण तथा सार्वजनिक हित का कोई कार्य नहीं किया था। उसने काश्मीर में कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसके कारण वह स्मरण किया जा सके। वह गैरकाश्मीरी था और काश्मीर मे आबाद गैरकाश्मीरियों का सहयोग एवं विश्वास प्राप्त किया था। उसने काश्मीरियों की सहायता एवं सहानुभूति से काश्मीर पर शासन नहीं किया था। बल्कि गैरकाश्मीरियों की सहानुभूति समर्थन तथा तलवार के जोर से सिंहासन पर आसीन था। वह दूरदर्शी भी नहीं था। उसके मरते ही उसका राज्य नष्ट हो गया। भौट्ट लोग विघटित हो गये। भौट्टों का भी समर्थन वह जीवन के अन्तिम चरणों मे खो दिया था। क्योंकि वह विदेशी मुसलिमों की ओर अधिकाधिक झुकता गया और उनका विश्वासपात्र बनता गया। उसने जिस शाहमीर पर विश्वास कर अपने पुत्र को उसके हाथों मे सौंपा था, उसी शाहमीर ने समय आते ही उसके पुत्र का ध्यान त्याग दिया। पुत्र के लिये कुछ नहीं किया। बल्कि कोटा देवी के पश्चात ही उसके पुत्र को बन्दी बना कर सम्भवतः मरवाकर स्वयं राजा बन बैठा।

पाद-टिप्पणी :

राज्याभिषेक काल श्री दत्त कलि ४४२४ = शक १२४५ = लौकिक ४३९९ = सन् १३२३ एवं राज्य काल नहीं देते। श्री कण्ठ कौल राज्य काल १५ वर्ष २ मास २ दिन देते हैं। किन्तु नोट मे वे १२ दिन भी लिखते हैं (पृष्ठ : ४९)।

क्रोनोलोजी ऑफ काश्मीर हिस्ट्री रिकन्स्ट्रक्टेड मे श्री वेंकटाचालम ने राज्य काल सन् १३२७–१३४३ ई० दिया है। आइने अकबरी मे राज्य काल सन् १३२३–१३३८ ई० एव समय १५ वर्ष २ मास १० दिन दिया है। पीर हसन राजा का अभिषेक काल हिजरी ७२८ = विक्रमी १३८४ तथा राज्य काल १५ वर्ष २ मास देता है।

समसामयिक घटनायें :

दिल्ली मे इस राजा का समकालीन गयासुद्दीन तुगलक (सन् १३२०–१३२५ ई०) था। उसकी मृत्यु जमुना तट पर काष्ठ मण्डप गिर जाने के कारण हो गयी। उसकी मृत्यु पर मुहम्मद तुगलक दिल्ली का बादशाह हुआ। निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु इसी समय दिल्ली मे हुई। निजामुद्दीन मे उनकी जियारत बनी। काम्बे (खम्बात) मे जामा मसजिद बनी। वह मसजिद मैंने अपनी खम्बात की यात्रा सन् १९६४ ई० मे देखी थी। यह पूर्वकालीन हिन्दू मन्दिर है। उसे नष्ट कर मसजिद बनायी गयी थी। सन् १३२६ ई० मे मुहम्मद तुगलक दिल्ली से राजधानी हटाकर दक्षिण दौलताबाद ले गया। जिसका पूर्व नाम देवगिरि था। बुलबुल शाह की काश्मीर मे इसी वर्ष मृत्यु हो गयी। पोप ज्हान बाइसवे ने जादूगरी, इन्द्रजाल आदि के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्रसारित की। सन् १३२६ ई० मे श्रीलका के राजा पराक्रमबाहु चतुर्थ की मृत्यु हुई तथा भुवनेकबाहु द्वितीय राजा हुआ। सन् १३३० ई० मे बारूद का आविष्कार हुआ सन् १३३३ ई० मे अबु अब्दुल इब्नबतूता पर्यटक ने भारत की यात्रा की थी। सन् १३३४ ई० मे सैय्यद जलालुद्दीन अहसन शाह स्वतन्त्र सुलतान तुल्य मदुरा मे शासन करने लगा। इसी वर्ष मुसलमानो ने अनेगुण्डी पर आधिपत्य स्थापित किया। वह पुरानी राजधानी थी। वही कालान्तर मे चलकर विजय नगर साम्राज्य मे परिणत हो गयी। इसी वर्ष सेख सफीउद्दीन अर्देबिल की मृत्यु हुई और उसके पश्चात् उनके वश का राज्य ईरान मे सफी वंश के नाम से विख्यात हुआ। सन् १३३५ ई० अशिकग ताोगुनेन जापान मे आरम्भ हुआ। जनश्रुति है कि लगभग इसी समय लल्लेश्वरी अर्थात लल्ला अरिफा का जन्म काश्मीर मे हुआ था। सन् १३३६ ई० मे तैमूर लंग का कश किवा शहरये सब्ज मे जन्म हुआ। इसी वर्ष विजयनगर राज्य की दक्षिण मे स्थापना हुई। सन् १३३७ ई० मे मुहम्मद तुगलक ने चीन पर आक्रमण करने के लिये सेना भेजी जो नष्टप्राय हो गयी। फ्लोरेन्स इटली के प्रसिद्ध कलाकार जिओटो की इसी वर्ष मृत्यु हो गयी।

२२३ (१) उदयनदेव=जोनराज यह स्पष्ट नही करता है कि उदयनदेव का राज वश क्या था? उससे सहदेव का क्या कोई सम्बन्ध था या नही? बहारिस्तान शाही का लेखक उसे सहदेव का भाई मानता है। यही बात डॉ० सूफी ने मानी है। डाईनेस्टिक हिस्ट्री मे उसे रिंचन का भाई कहा गया है (भाग १ · १७९)। नाम तथा ध्वनि के साम्य के कारण सहदेव का एक ही कुल का होना प्रतीत होता है। एक मत है कि सुहदेव ने उदयनदेव को दुलच को कर देने के लिये गान्धार मे नियुक्त किया था। जोनराज इस विषय पर प्रकाश नही डालता। परसियन इतिहास लेखको के अनुसार वह स्वात मे था। वहाँ से बुलाकर उसे राज्य दिया गया जहाँ वह जलजू के आक्रमण के समय चला गया था (बहारिस्तान शाही · १६ ए०, हसन १०१ बी)। पीर हसन लिखता है कि उदयनदेव पखली भाग गया। उसके भागने पर कोटा रानी ने हकूमत की बागडोर सम्हाली और वजीर और सिपहसालार शाह मिरजा तथा पचभट्ट काकपुर को बनाया था। उसे सहदेव का भाई कहता है (पृष्ठ १६७)।

(२) कोटा देवी : रिंचन ने सन् १३२० ई० मे राज्य प्राप्त किया था। इसी समय कोटा देवी को प्राप्त किया था। कोटा उस समय अविवाहित थी कुमारी थी। उसकी आयु लगभग १८ वर्ष की रही होगी। रिंचन की मृत्यु के समय सन् १३२३ मे वह

लगभग २१ वर्ष की युवती थी। जोनराज ने लिखा है कि कोटा सहित शाहमीर ने काश्मीर राज्य उदयनदेव को दिया। यहाँ क्रम कुछ टूटता लगता है। रिंचन भौट्ट था। यदि हैदर किंवा चन्द्र को रिंचन का पुत्र मान लें, तो उसकी अवस्था उस समय दो वर्ष की रही होगी। वह राज्य कर नहीं सकता था। रानी यशोवती का भगवान कृष्ण ने दामोदर की मृत्यु के पश्चात् गर्भ स्थित पुत्र की अभिभाविका रूप मे अभिषेक, अपने मन्त्रियो के विरोध प्रदर्शन करने पर भी किया था।

काश्मीर इतिहास इस गर्भस्थ शिशु गोनन्द के समय से आरम्भ होता है। उस समय विधवा रानी यशोवती राज्य कार्य कर रही थी। घटनायें विचित्र होती हैं। अप्रत्याशित बातें घटती हैं किसी अव्यक्त शक्ति पर विश्वास करने के लिये प्रेरित करती है। राजतरंगिणी का आदि गोनन्द की राज्याधिकारधारिणी रानी यशोमती से आरम्भ होता है। नीलमत पुराण का आदि वर्णन रानी यशोमती से होता है। काश्मीर हिन्दू राज्य का अन्त भी विधवा रानी कोटा देवी से होता है।

विधवा रानी यशोवती के समय काश्मीर इतिहास का सुवर्ण पृष्ठ खुलता है और विधवा रानी कोटा देवी के समय काश्मीर के पवित्र गौरवमय इतिहास का पटाक्षेप विधवा रानी कोटा की हत्या से होता है। दोनो ही के समय उनके पुत्र नाबालिग थे। उनमे राज्य करने की क्षमता नही थी। दोनो ही युद्ध भूमि मे गयी थी। दोनो ही अपने समय की श्रेष्ठ काश्मीरी ललनाओ मे थी। यशोवती अपने पति के साथ भगवान श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने गान्धार गयी थी। कोटा देवी ने भी विदेशियो से युद्ध कर काश्मीर राज्य की रक्षा की थी। गान्धार मे गोनन्द द्वितीय का अभिषेक भगवान कृष्ण ने किया था। उससे काश्मीर का इतिहास आरम्भ होता है और उदयनदेव ने गान्धार से काश्मीर में आकर राज्य प्राप्त किया था। उसके पश्चात् ही काश्मीर के क्रमबद्ध महान राजाओ की परम्परा का अन्त होता है।

जोनराज का वर्णन इस प्रसंग में अस्पष्ट है। रिंचन के लद्दाखी साथियो ने किस प्रकार उदयनदेव का राजा होना स्वीकार कर लिया? उदयनदेव ने किस प्रकार काश्मीर मे प्रवेश किया? शाहमीर ने उसकी क्यो सहायता की? यह सब अनुमान का विषय है।

कोटा रानी का यदि हैदर किंवा चन्द्र पुत्र था तो वह स्वयं शाहमीर की सहायता से रानी यशोवती, दिद्दा आदि काश्मीर की अन्य राजमाताओं किंवा रानियो के समान नाबालिग राजा की अभिभाविका अथवा संरक्षिका बन कर, राज्य कर सकती थी। शाहमीर यदि शक्तिशाली होता और यदि वास्तव मे रिंचन मुसलमान होता और हैदर नामक उसका पुत्र होता, तो एक मुसलिम के नाते वह हैदर को गद्दी पर बैठाकर कोटा को अभिभाविका बनाता। काश्मीर का राज्य मुसलिम से गैरमुसलिम उदयनदेव के हाथो सौंपने का प्रयास न करता।

परिस्थितियाँ यह मानने के लिये बाध्य करती हैं। काश्मीर मे देशभक्ति की भावना ने जोर मारा होगा। लोगो ने अनुभव किया होगा। काश्मीर का राज्य भौट्ट अथवा यवनो के हाथो पुनः चला जा सकता था। यवनो की उपस्थिति, उनके उपनिवेशो, सेना मे उनकी बढ़ती शक्ति के कारण, कोटा रानी तथा उसके सहयोगियो ने बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया था। उन्होंने विदेशी तथा विधर्मी को निकाल कर काश्मीर मे पुनः काश्मीरियो का शासन स्थापित किया था। शाहमीर यदि शक्तिशाली होता तो वह निःसन्देह राज्य प्राप्त करने का प्रयास करता।

ललितादित्य को भी काश्मीर निवासियो ने गान्धार से बुलाकर काश्मीर का राज्य दिया था। यह दूसरा उदाहरण है कि गान्धार से आकर उदयनदेव ने राज्य प्राप्त किया था। यशोवती को भी भगवान कृष्ण ने गान्धार मे ही काश्मीर का राज्य सौंपा था। भगवान द्वारा गोनन्द द्वितीय ने काश्मीर का राज्य प्राप्त किया था। वह राज्य गान्धार से आकर राज्य लेने वाले उदयनदेव के साथ ही समाप्त हुआ। इतिहास की, इस विचित्र गति ने काश्मीर के भाग्य को जैसे गान्धार से जोड़ दिया है।

राज्यलक्ष्मीर्महादोला गुणबद्धा गरीयसी ।
रिञ्चनोच्चैःपदं गत्वा राजाधःपदमाश्रयत् ॥ २२४ ॥

२२४ गरीयसी गुणनिबद्ध राजलक्ष्मी महादोला[1] रिंचन उच्च पद प्राप्त कर पुनः (उदयन देव को प्राप्तकर) अधःपतित हुई ।

कोटा देवी विधवा थी । प्रश्न उपस्थित होता है—विधवा का विवाह उदयनदेव से किस प्रकार हुआ होगा ? काश्मीर के इतिहास में उदाहरण मिलता है कि एक स्त्री दूसरे पति को त्यागकर विवाह कर सकती थी । राजा दुर्लभक प्रतापादित्य (लौ० ३६७७ सम्बत) ने वणिक नोन की पत्नी नरेन्द्र-प्रभा से विवाह किया था (रा० : ४ : १३–३७) । वह अपने समय का अत्यन्त शक्ति एवं गौरवशाली राजा था । कोटा की आयु उस समय कठिनता से २१ वर्ष की रही होगी । वह युवती थी, विवाह योग्य थी । यदि समाज इस प्रकार के विवाह की अनुमति न देता, तो उस समय यह विवाह असम्भव था । काश्मीर मे विधवा कन्या का विवाह प्रचलित था । काश्मीर मे सती प्रथा भारतवर्ष के अन्य स्थानो के समान प्रचलित थी ।

इस से दो अनुमान निकाले जा सकते हैं । कोटा का विवाह सम्भवतया रिंचन से हुआ ही न रहा हो । कालान्तर मे रिंचन को मुसलमान तथा उसके पुत्र हैदर को मुसलमानी नाम देकर गाथा रच दी गयी होगी कि कोटा रानी ने रिंचन से विवाह किया था । विधवा होने पर उसने पुनः द्वितीय बार विवाह किया । तृतीय बार शाहमीर से विवाह किया । कोटा रानी की वीरता उसके अद्भुत चरित्र को गिराने के लिये परशियन इतिहासकारो ने सम्भवत मनगढन्त बात रच ली थी । वे इस प्रकार की धारणा बना सकते थे । मुसलिम बादशाह विजित देशो की रानियों तथा राजपुत्रियो से विवाह कर लेते थे । मुसलिम बादशाहो ने केवल मुसलमानो के साथ ही नही मुसलिम बादशाहो, नबाबो, शाहजादो के भी साथ भी यही किया है । औरंगजेब ने दारा शिकोह की स्त्री से विवाह कर लिया था । निःसन्देह हिन्दुओं मे यह प्रथा प्रचलित नही थी । कोटा रानी के सम्बन्ध मे जोनराज का वर्णन कही-कहीं अत्यन्त भ्रामक, अधूरा, अस्पष्ट तथा विरोधाभास प्रकट करता है । यदि कोटा रानी के सम्बन्ध मे कुछ और तत्कालीन सामग्री प्राप्त हो जाय तो कुछ और प्रकाश पड सकता है ।

डॉ० सूफी का मत है कि उदयनदेव सन् १३१९ ई० मे स्वात किंवा गान्धार दुलच आक्रमण के समय भाग गया था । किन्तु कोई प्रमाण नही उपस्थित करते कि उदयनदेव क्यो और किस प्रकार पलायन कर गया था ।

परिसियन इतिहासकारो का मत है कि शाहमीर ने उदयनदेव को राजा बनाया तथा उससे कोटा देवी का विवाह किया (बहारिस्तान शाही : १६ ए०, हसन : १०१ बी) ।

पाद-टिप्पणी :

२२४ (१) महादोला : हिंडोला, झूला अथवा पालना का अर्थ होता है । हिंडोला रस्सी से झूलता रहता है । वृक्ष अथवा छत की कडी से रस्सी बाँध दी जाती है, झूलती है । वह झूलने वाले के पेंग मारने पर ऊपर जाती तथा पुनः नीचे आती है । यही अवस्था काश्मीर की राज्यलक्ष्मी की हुई । रिंचन के कारण वह ऊपर उठकर गयी और प्रकृति अनुकूल पुनः नीचे आयी । देश, जगत, एव मानव राजलक्ष्मी के इस झूले मे सर्वदा झूलता रहता है । जोनराज ने रिंचन से उदयनदेव को निम्न कोटि मे रखा है । वह कोई कारण अपने मत के समर्थन मे उपस्थित नहीं करता । निःसन्देह उदयनदेव की प्रशंसा किये बिना नही रहा जा सकता । किसी प्रकार उसने विदेशी शासको से काश्मीर को मुक्त कर काश्मीर मे काश्मीरियो का शासन स्थापित किया था ।

राजा शाह्मेरपुत्रौ तौ ज्यंशराल्लेशरौ तदा ।
क्रमराज्यादिदेशानां स्वाम्यदानादरञ्जयत् ॥ २२५ ॥

२२५ उस समय राजा ने शाहमीर के दोनों पुत्रों जमशेद (ज्यंशर) और अलीशाह (अल्लेश्वर) को क्रमराज[1] आदि देशों के दान से रंजित किया ।

धौरिवासीत्तदा कोटादेवी सर्वाधिकारिणी ।
राजा देह इवात्यर्थं तदादिष्टं समाचरत् ॥ २२६ ॥

२२६ उस समय कोटा रानी सर्वाधिकारिणी[1] (प्रधान मन्त्री) धी तुल्य थी । राजा देह के समान उसके आदेश का पूर्णरूपेण पालन करता था ।

तेजसा पिहितान्यासन् यानि रिञ्चनभास्वतः ।
लवन्यज्योतिषां राजप्रदोषेऽभूत्तदोदयः ॥ २२७ ॥

२२७ रिंचन भास्वान के तेज से जो पिहित (आच्छन्न) थे, उन लवन्य ज्योतियों का उस (समय) राज्य प्रदोश में उदय हुआ ।

पाद-टिप्पणी :

२२५. (१) क्रमराज=कामराज : मुसलिम इतिहासकारों का मत है कि जमशेद को कमराज तथा अलीशेर को मराज का राज्यपाल किंवा सूबेदार राजा उदयनदेव ने 'शाहमीर को प्रसन्न करने के लिये बनाया था (म्युनिख पाण्डुलिपि : ५० ए०; मोहिब्बी : ६६) । क्रमराज का ही अपभ्रंश कमराज है । आइने-अकबरी के अनुसार बारहमूला जिला का उत्तरी भाग था (आ० जरेट : २ : ३८८) ।

शाहमीर ने उदयनदेव का विरोध नहीं किया था । कोटा देवी का समर्थन किया था । शाहमीर स्वयं शक्तिशाली होना चाहता था । लवन्यों एवं विदेशी दोनों तत्वों का सामना करने में सम्भवतः उदयनदेव अथवा कोटा शक्तिसम्पन्न नहीं थे । एतदर्थ शाहमीर ने अपनी परिस्थिति एवं काश्मीरियों के अनैक्य का लाभ उठाकर श्रीनगर के अधोभाग क्रमराज्य अर्थात् कामराज तथा अन्य देशों को बड़े पुत्र जमशेद और अन्य पुत्र अलीशाह को दिला दिया था ।

जोनराज ने यहाँ 'दान' शब्द का प्रयोग किया है । काश्मीर में ब्राह्मणों को अग्रहार, ग्रामादि दान देने की चर्चा कल्हणादि ने की है । यवन अर्थात् म्लेच्छ को 'दान' देने का यह प्रथम उदाहरण मिलता है ।

'दान' शब्द से प्रकट होता है । क्रमराज्य आदि देशों का पूर्ण सत्तासम्पन्न राजा शाहमीर के पुत्रों को उदयनदेव ने बना दिया था । दान दिये हुए स्थान से सम्भवतः कर नहीं लिया जाता था । इस प्रकार काश्मीर मण्डल में मुसलिम राज्य का बीजारोपण कर दिया था । क्रमराजादि के आय से शाहमीर सेनादि रखकर शक्तिशाली होने लगा । काश्मीर के राजा तथा कोटा देवी ने अपने राज्य की कब्र स्वयं अपने हाथों खोदकर, अपने मध्य अग्नि रख दिया, जिसमें काश्मीर और वे स्वयं भस्म हो गये ।

पाद-टिप्पणी :

२२६ (१) सर्वाधिकारिणी : सर्वाधिकार का पद आजकल के प्रधान मन्त्री तुल्य था । हैदर मलिक तारीख काश्मीर में कोटा रानी को सर्वसत्ताधारिणी मानते हैं । उनका मत है कि राजा उदयनदेव नाम-

यस्याक्रम्यत सौम्यस्य गृहिण्या कोटया गृहम् ।
विपयाक्रमणं तस्य लवन्यैः किं नु शोच्यते ॥ २२८ ॥

२२८ जिस सौम्य का गृह गृहिणी कोटा द्वारा आक्रान्त कर लिया गया लवन्यों द्वारा उसके देश पर आक्रमण शोचनीय क्यों ?

लवन्यदेशचण्डालगृहस्पर्शविवर्जकः ।
स श्रोत्रिय इवानैषीत्कालं स्नानतपोजपैः ॥ २२९ ॥

२२९ लवन्य देशीय एवं चाण्डाल गृह का स्पर्श त्याग करने वाला वह नृपति श्रोत्रिय के समान स्नान, तप, जप के द्वारा काल व्यतीत करता था।

आस्तिकत्वं कियत्तस्य वर्ण्यते वर्णधारिणः ।
क्रिमिमर्दभयाद् घण्टां योऽवध्नाद्वाजिनो गले ॥ २३० ॥

२३० उस वर्णधारी की आस्तिकता का वर्णन कहाँ तक किया जाय, जिसने कृमि विमर्दन भय से, घण्टा को अश्वों के गले में बँधवा दिया।

तावद् द्रविणतामेव कोशालङ्करणं दधत् ।
कण्ठभूषां समौलिं स चक्रिणेऽदित काञ्चनीम् ॥ २३१ ॥

२३१ उस (राजा) ने कोश के अलंकारभूत सम्पूर्ण द्रव्य से, स्वर्णमय कण्ठाभरण एवं मुकुट आदि बनवाकर, भगवान चक्री[1] को प्रदान किया।

अथ मुग्धपुरस्वामिदत्तानीकिन्यहङ्कृतः ।
कश्मीरानचलोऽविक्षद्बलाद् दुल्च इवापरः ॥ २३२ ॥

२३२ मुग्धपुर[1] के स्वामी द्वारा प्रदत्त सेना से अहंकार युक्त अचल[2] ने काश्मीर में अपर दुलच तुल्य बलात् प्रवेश किया।

मात्र के लिये राजा था (हे० . म० : १०४ ए०, बहारिस्तान शाही १६ ए०)। और हसन (१०१ ए०, १०१ वीं) के अनुसार भी असल हुवमरा कोटा रानी ही थी।

पाद-टिप्पणी :

२३१. (१) चक्री : चक्र धारण करने वाले को चक्री कहते है। चक्री का अर्थ भगवान् विष्णु है। विष्णु के अनेक रूप है। अवतारो के विभिन्न रूपो के अनुसार भगवान् विष्णु की मूर्तियाँ बनायी जाती है। दाहिने हाथ की तर्जनी उँगली मे चक्र घुमाते विष्णु की मूर्ति के इसी रूप को चक्रधर किंवा चक्री कहा जाता है। स्वर्णमय कण्ठाभरण तथा मुकुट से स्पष्ट होता है कि भगवान् की प्रचलित मानव मूर्ति सदृश विष्णु की मूर्ति चक्रयुक्त थी।

पाद-टिप्पणी :

२३२. (१) मुग्धपुर : परसियन इतिहास लेखक मुग्धपुर का मुगलपुर नाम देते है। किन्तु मुग्धपुर किंवा मुगलपुर कहाँ था अभी तक निश्चित पता नही चल सका है। मुगल शब्द उस समय तक काश्मीर मे प्रचलित नही था। मुगल शब्द का प्रयोग शुक ने अपनी राजतरंगिणी मे किया है। जोनराज मे मुगल शब्द नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि मुगलो का ज्ञान उस समय तक काश्मीरियो को नही था।

स्वपक्षैराक्षिपत्याशा बलेनाक्रम्य मेदिनीम्।
नाऽचले गोत्रभित्त्वं स कर्तुमैष्ट महीभुजा॥ २३३॥

२३३ अचल के बलपूर्वक पृथ्वी पर आक्रमण करके स्वपक्षों (सेनाओं) द्वारा दिशाओं को त्रस्त करने पर भी उस पृथ्वी चन्द्र ने गोत्रभित्त्व' करने की इच्छा नहीं की।

(२) अचला : किंवा अचल नाम संस्कृत है। पंजाब तथा सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा काश्मीर में थे। 'अटल' एक गोत्र वंश का अड्ड है। सम्भव है इस जाति का 'अचल' से कुछ सम्बन्ध हो। अचल ही बिगड़ता कालान्तर में अतल अथवा अटल हो गया है।

कुछ इतिहासकार अचल को उरवन किंवा उरदिल लिखते हैं। प्रायः सभी परसियन इतिहास लेखक उसे 'उरदिल' लिखते है (हसन : १०१)। परसियन लेखक उसे तुर्क मानते हैं। दिल्ली के सुलतान ने उसे काश्मीर पर अभियान के लिये भेजा था। इसका प्रमाण नही मिलता। इतिहासकारों ने इसके भिन्न नाम दिये हैं।

किसी प्रमाण से प्रमाणित नही होता कि अचल तुर्क था। तारीख नारायण कौल के अनुसार अचल रावणचन्द्र का पुत्र तथा कोटा देवी का भाई था (तारीख नारायण कौल : पाण्डु० : ४३ जी तथा बहारिस्तान शाही पाण्डु० : ७ ए०)। उसे मुग्धपुर के राजा ने काश्मीर पर आक्रमण करने के लिये भेजा था। वह सोपुर द्वारा बहारिस्तान शाही के अनुसार काश्मीर में प्रवेश किया था (पृष्ठ ७२)। मुग्धपुर संस्कृत नाम है। वह तुर्क अथवा इरानी नाम नही है। मुग्धपुर का राज्य निःसन्देह काश्मीर की दक्षिणी सीमा पर था।

डॉ० सूफी ने अचल के सम्बन्ध में विचित्र मत प्रकट किया है। उनका मत है कि अचलदेव कोटा देवी का भतीजा था। मुसलिम होने पर वह शाहमीर का एक सेनानायक हो गया था—'अचल' या अवदाल रैना या रीना पूर्व का अचलदेव था जो रावणचन्द्र का पुत्र था—(सूफी पृष्ठ : १३७)। डॉ० सूफी कोई प्रमाण उपस्थित नही करते।

मोहिबुल हसन ने उसे तुर्क माना है—'उदयनदेव की तख्त-नशीनी के फौरन ही बाद काश्मीर पर तुर्कों के हमले के खतरे का सामना करना पड़ा। तुर्क मुल्क के अन्दर हीरपुर के रास्तों से दाखिल हो चुके थे।' आगे वे नोट में लिखते हैं—'यह एक किस्म का हमला था। लेकिन यह तुर्क कौन थे ? अगर इन्हें सलातीने देहली ने भेजा था तो इसका कोई रिकार्ड नही मिलता। हल्ला बोलने वालो के सरदार के मुत्तलिक नाम तारीखो में दरज है। फारसी की ज्यादहतर तारीखें इसका नाम उरदिल बताती हैं।' (मोहिबुल : पृष्ठ : ५८-५९; हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ३३ : बी, हसन : १०१ बी)।

डॉ० परमू ने अचल के सम्बन्ध में लिखा है कि वह मंगोल-आक्रमण का नेता था (पृष्ठ ८२)। किन्तु कोई प्रमाण उपस्थित नही किया कि किस आधार पर अचल-आक्रमण को वह मंगोल आक्रमण मानते हैं।

पीर हसन ने अचल का नाम अन्य परसियन इतिहासकारो के समान उरवन दिया है। वह उसे तुर्क मानता है; काश्मीर प्रवेश का काल हिजरी सन् ८३२ देता है। यह भी लिखता है कि वह हीरपुर के मार्ग से बाफौज काश्मीर में दाखिल हुआ था। उसके आने की बात सुनकर उदयनदेव बुजदिली से तिब्बत चला गया। उरवन के चले जाने पर कोटा रानी ने उसे लौट आने के लिए खत लिखा और वह उसके जाने पर लौट आया (पीर हसन : तारीख-ए-काश्मीर : परसियन : पृष्ठ : १६८)।

पाद-टिप्पणी :

२३३. (१) गोत्रभित्त्व : गोत्रभिद् इन्द्र की उपाधि है। पूर्व वैदिक काल में इन्द्र का एक नाम गोत्रभिद् पड़ गया था।

गोत्रीय किंवा गोत्रज सपिंड, वे लोग कहे जाते है, जो पूर्वजो किंवा कुल अथवा वंशो की अविच्छिन्न

प्राप्ते भीमानकं तस्मिन्ससैन्ये दैन्यमाश्रितः ।
भौट्टदेशमगात्तूर्णमुर्वीपरिवृढो भयात् ॥ २३४ ॥

२३४ उसके सेना सहित भीमानक[1] स्थान पहुँचने पर, पृथ्वीपति भय से शीघ्र ही भौट्ट[2] देश चला गया ।

परम्परा से सम्बन्धित रहते हैं। रक्त सम्बन्ध के दूसरे वर्ग को भिन्नगोत्र सपिंड कहा जाता है। उनकी सज्ञा बन्धु से दी गयी है। बन्धु तथा अन्य गोत्रीय वे लोग कहे जाते हैं, जो मातृपक्ष द्वारा सम्बन्धित होते हैं। मिताक्षरा के अनुसार गोत्रीय किंवा गोत्रज सपिंड, भिन्नगोत्र एवं बन्धु होते हैं। गोत्र का शाब्दिक अर्थ पालक, सन्तति, सन्तान, बन्धु, भाई, कुल, वंश तथा पर्वत होता है। आर्यों के किसी कुल अथवा वंश मे यह अल्ल अथवा सज्ञा थी। वह किसी पूर्वज या कुलगुरु ऋषि के नाम पर होती थी, यह वंश नाम भी था। गर्ग, गौतम, शाण्डिल्य, काश्यप, भारद्वाज आदि ऋषियो के नाम पर गोत्र हुए थे। गोत्र-प्रवर्तक ऋषि गोत्रकार कहे जाते हैं। एक ही गोत्र से उत्पन्न हुए लोग गोती किंवा गोत्रज कहे जाते हैं। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री एव वैश्य अपने गोत्र को स्मरण रखते हैं। प्रत्येक सस्कार के समय गोत्र का उच्चारण किया जाता है। विश्व मे कही भी ऐसा नही पाया जाता कि लोग अपने गोत्र को स्मरण रखते हो। सगोत्र मे विवाह वर्जित किया गया है, अतएव गोत्र स्मरण रखना आवश्यक है।

कल्हण ने गोत्रभिद् शब्द का प्रयोग किया है (रा० : १ : ९२)। गोत्र का अर्थ पर्वत तथा वंश दोनो होता है। इन्द्र पर्वत-नाशक था। उसने पर्वतो का पंख काटकर उन्हे एक स्थान पर स्थित कर दिया था। पूर्व वैदिक साहित्य मे इन्द्र को गोत्रभिद् कहा गया है। यहाँ पर जोनराज द्वारा गोत्र शब्द जाति, वश एवं कुल के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। राजा ने जाति को सहार, कुलक्षय से बचाने के लिये, युद्ध नही किया। युद्ध मे कुलक्षय होगा, रक्तपात होगा, जाति का सहार होगा। इस आशंका एवं भय से राजा ने संघर्ष करने का विचार नही किया। राजा उसका सामना करने मे असमर्थ था। यह भी कारण युद्ध न करने का हो सकता है। जोनराज ने यहाँ गीता वर्णित 'कुलक्षयं' की अर्जुन द्वारा उठायी शंका की ओर अप्रत्यक्ष रूप से सकेत किया है।

पाद-टिप्पणी :

२३४. (१) भीमानक : भीमादेवी, भीमद्वीप (*बमझू गुफा*), *भीम केशव* (*बमझू समीपस्थ*), *भीम* स्वामी (गणेश), भीमानिका, भीमवाट आदि स्थानो का *नाम तथा स्थान* का *पता तो लगता है परन्तु* भीमानक स्थान वास्तव मे कहाँ था, अनुसन्धान का विषय है। यह दक्षिण से काश्मीर आनेवाले मार्ग पर होना चाहिए।

(२) भौट्टदेश : लद्दाख एवं तिब्बत का अर्थ भौट्ट देश से लगाया जाता है। भौट्ट तिब्बत वंशीय जाति है। इस समय भी भौट्ट जाति काश्मीर के उत्तर पूर्व तथा उत्तर की पर्वतमालाओ मे निवास करती है। लद्दाख मे अत्यधिक तथा स्कर्दू मे सामान्य रूप से यह जाति रहती है। कल्हण (रा० : ८ : २८८६) के वर्णन से प्रकट होता है कि दरद तथा लद्दाख की उत्तुंग पर्वतमाला भौट्ट तथा काश्मीर के मध्य जलच्छाया बनाते थे। जोनराज ने भौट्टो का वर्णन श्लोक १४६, १५८, २४०, ५४९, ८३३, ८३६ मे किया है। श्रीवर भी तृतीय जैन राजतरंगिणी मे (१ : ७१, ८२ ; ३ : ३२) भौट्टो का उल्लेख करता है। जोनराज ने भुट्टलोक श्लोक १६८, भौट्टस्त्री, ३१० तथा भौट्ट भूपति ३८७ मे उल्लेख किया है। संमोह तंत्र मे ईराक, चीन, महाचीन, नेपाल, कामरूप के समीप भौट्ट देश की स्थिति बतायी गयी है। शक्तिसंगम तन्त्र मे काश्मीर से आरंभ

निवर्तय चमूमन्यां किं मिथ्या देशपीडया।
अराजकास्त्वया पाल्याः कश्मीराः कुलनाथवत् ॥ २३५ ॥

२३५ "अपनी (सेना) चमू को दूसरी तरफ लौटा लो, मिथ्या देशपीड़ा से क्या लाभ? नृप रहित काश्मीर जनों का तुम्हीं कुलनाथ की तरह पालन करना!"'

होकर कामरूप तक के उत्तरीय भूखण्ड को भोट्टदेश कहा गया है (शक्ति संगम तन्त्र : ३ : ७ : ३३)। प्राचीन भोट्ट देश की सीमा उत्तर में मानसरोवर, दक्षिण में नैपाल, पूर्व में कामरूप अर्थात् आसाम और पश्चिम में काश्मीर थी। वर्तमान तिब्बत वा दक्षिणी भाग था। आज भी तिब्बती, लद्दाखी, नेपाली, भूटान तथा सिक्किम के मूल वासियों के लिये भोटिया शब्द का व्यवहार किया जाता है।

पीर हसन का मत है कि अचल ने जिसका नाम उरवन था हीरपुर के मार्ग से सेना के साथ काश्मीर मण्डल में प्रवेश किया था।

पाद-टिप्पणी :

२३५. (१) कोटा. रानी की शक्ति तथा कूटनीतिज्ञता, निर्भीकता एवं साहस का यह एक उदाहरण है। राजा काश्मीर मण्डल त्याग कर भाग गया था। काश्मीर मण्डल पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष से विघटित हो रहा था। तन्त्री तथा अनेक मत-मतान्तरों के कारण लोग अनेक वर्गों में बँट गये थे। केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गयी थी। कुछ वर्ष पूर्व दुलच का आक्रमण हो चुका था। विदेशी मुसलिम काश्मीर में प्रवेश पा चुके थे। वे सेना में भरती होते थे। सेना उनके प्रभाव में थी। काश्मीर में उनका यत्र-तत्र उपनिवेश बन गया था।

शाहमीर के दोनों पुत्र जमशेद एवं अलीशाह क्रम से क्रमराज तथा अन्य स्थानों के राज्यपाल किंवा सूबेदार बन गये थे। काश्मीर में मसजिदों का निर्माण हो गया था। खानकाह, जियारतें बनने लगे थे। हिन्दू अपनी स्वाभाविक धर्म सहिष्णुता के कारण धर्म विरोधी होते भी उन्हें रोक नहीं सके। उन्होंने इसको अपने मतानुसार ईश्वर उपासना का साधन मात्र समझा। उन्हें षड्यन्त्र, संघटन तथा राजनीतिक विचार-विनिमय का केन्द्र नहीं समझा। हिन्दू मन्दिरों में राजनीति नहीं होती, संघ नहीं बनता, षड्यन्त्र नहीं होता। इस तौल से उन्होंने मसजिदों, खानकाहों एवं जियारतों को भी तौला।

मुसलमान काश्मीर में केवल विदेशी पर्यटक अथवा राजसेवक नहीं रह गये थे। वे सरदार तथा सूबों एवं जिलों के राज्यपाल थे। मुसलमानों ने अपनी नीति सुनिश्चित ढंग से चलायी। उन्हें काश्मीरी धर्म, काश्मीरी राज्य, काश्मीरी संस्कृति एवं सभ्यता के लिये मोह नहीं था। वे विदेशी विचारधारा से प्रभावित थे। वे प्रवर्तक धर्म के अनुयायी थे; जबकि हिन्दू धर्म परिवर्तन कर अपना समाज बनाने का आदी नहीं था। वह शुद्ध रूप में धर्म-निरपेक्ष था अन्यथा काश्मीर में मुसलिम धर्म फैलता ही नहीं।

विचित्र परिस्थिति थी। मुसलिम सैनिकों की स्वामिभक्ति बँट गयी थी। एक ओर वे धर्म के प्रति भक्त थे, दूसरी तरफ काश्मीर का अन्न खाकर काश्मीर की राजभक्ति का दावा करते थे। परन्तु ज्योंही दोनों में एक चुनने का समय आया तो धर्म के आदेश को राज्य के ऊपर माना। वे मिल्लत से किसी कीमत पर अलग होने के लिये तैयार नहीं थे। उनका हिन्दुओं के प्रति आदर उसी समय तक था जबतक हिन्दू इतने कमजोर नहीं हो गये कि उनसे किसी प्रकार का भय उन्हें नहीं रह गया और वे मुसलमानों के नीति एवं काम में बाधक नहीं हो सकते थे।

कोटा रानी ने दूरदर्शिता से काम लिया। साम, दान, दण्ड, भेदनीति में उसने दान का आश्रय लिया। उसने अनुभव किया कि भेद जर्जरित काश्मीर

इति श्रीकोटयामात्यैः प्रेरितैर्लेखधारिभिः ।
आसारसैन्यमचलः प्रत्यमुञ्चद्विमोहितः ॥ २३६ ॥

२३६ इस प्रकार श्री कोटा द्वारा प्रेरित लेखधारी आमात्यों[1] से विमोहित अचल ने सैन्य प्रतिसंहृत कर लिया।

अचल का सामना करने मे असमर्थ था। अचल के पूर्व दुलच द्वारा काश्मीर का संहार कोटा देवी देख चुकी थी। वह यह भी देख चुकी थी कि विदेशी रिंचन परिस्थितियों का लाभ उठाकर, काश्मीर का राजा बन चुका था। परिस्थितियो का लाभ उठाकर अचल स्वयं राजा बन सकता था, काश्मीर मे जम सकता था। अथवा अवसर पाकर शाहमीर स्वयं राजसत्ता ग्रहण कर सकता था। ऐसी परिस्थिति मे देश नष्ट हो सकता था। रिंचन की मृत्यु के पश्चात्, उसने पुनः हिन्दूराज काश्मीर मे स्थापित किया था। निसन्देह वह दूसरी बार खतरा उठाने के लिये उद्यत नही थी। उसने साहस, धैर्य एवं नीति से काम लिया था। उसने अपने व्यक्तित्व को बहुत ऊपर उठा दिया है।

दूसरा करण और था। शाहमीर शक्तिशाली हो गया था। वह विधर्मी था, विदेशी था। उसके पुत्रो की शक्ति क्रमराज तथा अन्य स्थानो का अधिकार मिलने पर बढ़ गयी थी। दोनो ही कालान्तर मे काश्मीर के क्रमशः सुलतान हुए थे। यही कारण था कि कोटा ने अमात्यो द्वारा अचल के पास सन्देश भेजा। उन्हें भेजा, जो उसके नीति को, उसके गुप्त-मन्त्रणा को प्रकट न कर सकते थे।

पाद-टिप्पणी :

२३६ (१) अमात्य . अमरकोषकार ने अमात्य का अर्थ—'मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः'—मन्त्री, धीसचिव तथा अमात्य किया है (अमरकोश : २ : क्षत्रिय वर्ग : ४ :)। शुक्रनीति से अमात्य के कर्म पर प्रकाश पडता है। देश मे कितनी भूमि है ? कितनी जोती जाती है, कितना भूमिकर उससे प्राप्त हुआ, कितना बाकी है ? कितना द्रव्य राजभाग का हुआ, कितना बाकी तथा वसूल हुआ, कितनी आय दण्ड से हुई ? कितनी आय बिना जोते खेत से हुई, कितना उत्पादन वन मे हुआ; खानो से कितनी आय हुई, कितना धन कोष मे है, लावारिसो से कितनी आय हुई ? चोरी से कितना नष्ट हुआ ? संचित धन का लेखा-जोखा रखना अमात्य का कर्म था। अमात्य भी मन्त्री तथा मन्त्री भी अमात्य होता था (शुक्र० : २ : १०३–१०७)।

प्रायः लेखको ने मन्त्री एवं अमात्य को समानार्थक मान लिया है। परन्तु उनके कार्यों एवं पदस्थानो मे अन्तर है (मनु : ७ : ५४ ; ६० ;)। कौटिल्य ने मन्त्री को वर्तमान काल के प्रधान मन्त्री तुल्य तथा अन्य मन्त्रियो को अमात्य लिखा है। अमात्य मन्त्री का सहयोगी माना गया है (अर्थ० : १ । १० । १६)। मन्त्री का कार्य मन्त्रणा देना था। अमात्य का कार्य राज्य कार्य चलाना था। मन्त्रिपरिषद के समान अमात्यपरिषद होती थी। वह मन्त्रिपरिषद से निम्न होती थी। महाभारत मे ३६ अमात्य गिनाये गये हैं। अमात्यो का वेतन मन्त्रियो से कम होता था। सातवाहन एवं पल्लव राज्य मे प्रादेशिक शासको एवं विभागो के अध्यक्ष को आमात्य कहते थे।

कोटा देवी तथा उसके मन्त्रियो किंवा अमात्यो की नीति सफल हो गयी। अचल उनके नीति-पाश मे, जोनराज के शब्दो मे, विमोहित हो गया। उसने अपने सैन्य को प्रतिसंहित कर लिया।

परसियन लेखको के अनुसार कोटा रानी काश्मीर की रक्षा के लिये सन्नद्ध हो गयी। उसके मुख्य अधिकारी रावणचन्द्र (उसका भाई), शाहमीर तथा भट्टभिक्षण थे। उसे कोटा रानी का धातृ-भ्राता कहा गया है।

हसन लिखता है कि कोटा रानी के अपील करने

प्रतिमुक्तनिजासारः सारहीनोऽचलः स तैः।
मार्गोत्सवच्छलात्कंचित्कालं मार्गे विलम्बितः॥ २३७॥

२३७ सेना संपात करने से सारहीन, उस अचल को उन लोगों ने उत्सव के व्याज से, मार्ग में कुछ काल तक रोक लिया।

तावच्छ्रीकोटया देव्या तदा पालयितुं प्रजाः।
भौट्टः खेरिश्चनो नाम राजभावे न्ययुज्यत॥ २३८॥

२३८ उस समय कोटा रानी प्रजापालन हेतु खेरिंचन[1] नामक भौट्ट को राज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

पर काश्मीरी संघटित हो गये। तुर्कों के विरुद्ध जोरदार कार्यवाही की गयी, वे पराजित हो गये, काश्मीर मण्डल त्याग कर चले गये (हसन : १०१-१०२)। नारायण कौल का मत है कि तुर्क पराजित होने के पश्चात सन्धि कर पीछे लौट गये।

डॉ० सूफी ने मालिक हैदर चादुरा का उल्लेख करते लिखा है कि कोटा रानी ने इस समय काश्मीरियों की देशभक्ति को जागृत किया। उन्हें अपने देशरक्षा के लिये अनुप्राणित एवं सन्नद्ध किया। काश्मीरियों का दुलच आक्रमण द्वारा उत्पन्न हुई परिस्थितियों की ओर ध्यान आकर्षित कराकर, समयानुसार कार्य करने के लिये प्रेरित किया। काश्मीरी स्वतः कोटा रानी को केन्द्र बनाकर काश्मीर की रक्षा के लिये तत्पर हो गये थे (सूफी : १२९)।

मोहिबुल हसन लिखते है—'कोटा रानी ने हिम्मत न हारी और मौका की नजाकत का ख्याल करते हुये अपने खास अफसरों मसलन, अपने भाई रावणचन्द्र, शाहमीर, भट्ट भिक्षण की मदद से इसने हमलावरों का मुकाबला करने का तहैया किया। उसने उन तमाम सरदारों को जिन्होंने बेरूनी हमला से फायदा उठाकर अपनी खुदमुख्तारी का एलान कर दिया था बागयाना रविश को छोड़कर दुश्मन के खिलाफ इसके झण्डे के नीचे मुतहिद होने के लिये खतूत लिखे और उन पर जाहिर किया कि आपस की नाइत्तफाकी और खुदगरजी का अंजाम तबाही व बरबादी के सिवा कुछ और नहीं होता। जैसा कि जुलजू के हमले से हुआ था। इसने लोगों को जुलजू के हमले की याद दिलायी। जब रहनुमाओं की बुजदिली और मुल्क की अन्दरूनी नाइत्तफाकी के सबब अवाम ने कितने-कितने मुसायब झेले थे। इसने लोगों से कमरबस्ता होने और दुश्मन के खिलाफ सफआरा होने की अपील की। क्योंकि खान्दान और मुल्क के विफा मे जान देना राहे फरार अख्तयार करने, औरतों और बच्चों को कैदी बनाने के लिये छोड़ जाने से हजार गुना बेहतर है। इसकी अपील ने सरदारों को ख्वाबे-गफलत से बेदार कर दिया और वह इसके गिर्द जमा हो गये। अंजाम यह हुआ कि तुर्कों से खूरेज जंग हुई और इन्हें मजबूरन् वादी से वापस जाना पड़ा।' (मोहिबी : उर्दू पृष्ठ ५८-५९)।

बहारिस्तान शाही (पृष्ठ १६ बी), हसन (पृष्ठ १०१ बी, १०२ बी) और हैदर मल्लिक लिखते (पृष्ठ १०४ ए, १०५ ए) है कि तुर्कों ने शिकस्त खाकर सुलह की ओर तब वापस गये। श्रीनारायण कौल ने इस मत की पुष्टी की है। पीर हसन लिखता है कि रानी ने उरवन को खत लिखा (परसियन : पृष्ठ १६७)। जोनराज का विवरण परसियन लेखकों से नहीं मिलता।

पाद-टिप्पणी :

२३८. (१) खेरिंचन : खेरिंचन नाम से प्रतीत होता है कि रिंचन का कोई सम्बन्धी था। रिंचन कुल नाम है। रिंचन संस्कृत रतन किंवा रत्न का अपभ्रंश

प्रमीतभर्तृकोत्पन्नमृतापत्येव सा तदा।
अदूयत निजैः सर्वैश्चिरस्याचलशेमुषी ॥ २३९ ॥

२३९ उस समय अनुचरों सहित अचल की बुद्धि उसी तरह खिन्न हुई थी जिस प्रकार प्रमीतभर्तृका (मृतभर्तृका) एव जन्म के बाद मृत अपत्य वाली (नारी) खिन्न होती है।

है। रिंचन का भी कोई नाम अवश्य रहा होगा। केवल रिंचन नाम की प्रसिद्धि के कारण उसका पूरा नाम विस्मृत हो गया है। रिंचन नाम लद्दाख मे अब भी प्रचलित है। लोगो का नाम रखा जाता है। 'ख का अर्थ शून्य होता है। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि वह बुद्धिशून्य था। उसने रिंचन के पश्चात भौट्ट राजवश जारी रखने का कोई प्रयास नहीं किया। राजपद मिलने पर भी वह कुछ कर न सका। उसका केवल एक बार और उल्लेख श्लोक ३४१ मे आया है। पुन उसका उल्लेख नही मिलता। उदयनदेव राजा हो जाता है। खेरिंचन किसी प्रकार का अवरोध करता दिखायी नही पडता। सम्भव है कि उसकी मूर्खता तथा जडता के कारण उसे खेरिंचन कहा गया है। खेरिंचन से प्रकट होता है कि लद्दाखी दल काश्मीर मे रह गया था। अतएव राजा के अभाव मे कोटा रानी ने उसे राजा बनाया। प्रश्न उठता है, यदि हैदर पुत्र मौजूद था, तो उसे राजा क्यो नही बनाया गया? कोटा देवी सर्वाधिकारिणी थी। वह सर्वसत्तासम्पन्न थी। अभिभावक होकर स्वय राज्य कर सकती थी। यह इतिहास का एक रहस्य है। खेरिंचन लद्दाखी शक्ति का प्रतीक मालूम होता है। अतएव रानी ने काश्मीर मे उपस्थित विदेशी शक्ति भौट्ट एव मुसलमानो मे एक की सहायता लेना उचित समझा। उसे मुसलिम शक्ति पर विश्वास नही था। वह सतर्क थी। यही कारण है कि शाहमीर से सहायता लेकर उसने उसे महत्व देना तथा उसकी और शक्ति बढाना उचित नही समझा। यह कोटा रानी की दूरदर्शिता का परिचायक है।

डॉ० सूफी जैसे एकागी इतिहास लेखक ने स्वीकार किया है कि रानी ने देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर जनता तथा काश्मीरियो से देश रक्षा की अपील की थी। उस अपील मे काश्मीर की भयावह, बिगडती, दयनीय परिस्थितियो की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए जनता को विदशी खतरे का सामना करने के लिये अनुप्राणित किया गया था। इस अपील के कारण काश्मीरियो ने शत्रुओ का सामना किया और उसे पलायित होने के लिये बाध्य कर दिया। शत्रु ने सन्धि की इच्छा प्रकट की और उसे देश से बाहर जाने दिया गया। यह एक बडा भारी महत्वपूर्ण कार्य हुआ उसका श्रेय कोटा रानी को मिला जिसके कारण उसने काश्मीर की साहसी रानी होने का गौरव प्राप्त किया (सूफी १ १२९)। खेरिंचन राजा रिंचन का क्या था तथा उसकी क्या स्थिति समाज, रिंचन कुल तथा प्रशासन मे थी, जोनराज इस पर कुछ प्रकाश नहीं डालता। कोटा रानी से उसका क्या सम्बन्ध था यह भी कुछ स्पष्ट नही होता। परसियन इतिहासकार इस पर कुछ प्रकाश नही डालते। नि सन्देह खेरिंचन मुसलमान नहीं था।

पाद-टिप्पणी

२३९ (१) अचल सभी इतिहासकार एकमत हैं कि अचल काश्मीर से चला गया। परन्तु बमजाई लिखते है कि अचल का शिरश्छेद सार्वजनिक रूप से कोटा देवी ने करा दिया (काश्मीर हिस्ट्री : २९०)। श्री बमजाई ने कोई प्रमाण अपने कथन के समर्थन मे नही उपस्थित किया है।

तुषारलिङ्गपूजाभिः कृतार्थीकृत्य वासरान्।
भौट्टदेशान्निजं देशमागच्छद्वीतभीर्नृपः ॥ २४० ॥

२४० तुषार लिंग की पूजा से दिनों को कृतकृत्य कर विगतभय नृपति[1] भौट्ट देश से स्वदेश आया।

उदयाद्रिभुवा पूर्णः शशीवाथ स कोटया।
खेरिश्चनतमोनाशी शिरसाऽधारि सादरम् ॥ २४१ ॥

२४१ जिस प्रकार उदयाचल भूमि तमोनाशी पूर्णचन्द्र को शिर से सादर ग्रहण करती है, उसी प्रकार खेरिश्चनरूप अन्धकार के विनाशी राजा को भी कोटा ने सादर शिर से धारण (आदर) किया।[1]

यं कोटाऽसूत जट्टाख्यं भिक्षणाख्यस्य मन्त्रिणः।
वर्धनायात्मजं राजा स तं मृत्युमिवादित ॥ २४२ ॥

२४२ जिस जट्ट[1] नामक पुत्र को कोटा ने जन्म दिया था मृत्यु[2] सदृश उस पुत्र को राजा ने वर्धन हेतु भिक्षण[3] को दे दिया।

पाद-टिप्पणी :

२४०. (१) नृपति : राजा उदयनदेव अचल के चले जाने पर पुनः काश्मीर मण्डल में लौट आया। वह लद्दाख की ओर गया था। प्रतीत होता है कि यह काल तुषारपात का था। तुषार लिंग तुषारपात काल ही में बन सकते हैं। राजा अत्यन्त धर्मभीरु था। वह अपना समय पूजा-पाठ में व्यतीत करता था। राजकार्य कोटा रानी करती थी। जोनराज ने उदयनदेव को कायर चित्रित किया है। वह काश्मीर की इस विषम परिस्थिति में राजा होने योग्य नहीं था।

पाद-टिप्पणी :

२४१. (१) आदर : यद्यपि कोटा रानी ने कायर उदयनदेव को लौटने पर पुनः स्वीकार किया किन्तु सम्भावना यही मालूम होती है कि उदयनदेव की कोई प्रतिष्ठा उसके लटरे के समय पलायन करने के कारण, काश्मीर में नहीं रह गयी थी। वास्तव में राज्य का कार्य कोटा रानी करती थी।

पाद-टिप्पणी :

२४२. (१) जट्ट : जट्ट नाम काश्मीर में प्रचलित था। शाब्दिक अर्थ होता है—जटा रखने वाला। जटा अर्थात् केश को जट्ट कहते हैं। कल्हण ने भी जट्ट नाम का प्रयोग किया है। दर्वाभिसार के मन्त्री का नाम जट्ट था (रा० : ८ : २४२७)। जटागंगा माहात्म्य में जटागंगा तीर्थ का उल्लेख किया गया है।

(२) मृत्यु : इस पद का अर्थ समझने के लिये भिक्षण तथा शाहमीर के सम्बन्ध को समझना होगा। शाहमीर भट्टभिक्षण से द्वेष करता था। उसने अपनी बीमारी का बहाना बनाया जब भिक्षण उसे देखने गया तो शाहमीर ने छल से उसे मार डाला था। उदयनदेव ने भिक्षण को वह पुत्र देकर जैसे उसकी मृत्यु ही दे दी थी। क्योंकि इस कार्य तथा मन्त्री बनाने के कारण नाराज होकर शाहमीर ने उसकी हत्या की थी।

(३) भिक्षण : हैदर मल्लिक ने लिखा है कि भट्टभिक्षण कोटा रानी का धात्रेय था। वह उसकी धात्री का पुत्र था। वह अच्छा शासक नहीं था (है० म० : ३३ बी)। हैदर मल्लिक ने तारीखे

शाहमेरः स वीरोऽथ परिपालितरैञ्चनिः ।
अचक्षुष्यः क्षमाभर्तुः पुत्रप्रेमभरादभूत् ॥ २४३ ॥

२४३ वह शाहमीर[1] वीर रिंचन के पुत्र पालन करने के कारण राजा का अप्रिय हो गया ।

काश्मीर सन् १६१८ ई० मे लिखना आरम्भ किया तथा सन् १६२०-१६२१ ई० = १०३० हिजरी मे समाप्त किया । कोटारानी की मृत्यु (सन् १३३९ ई०) के २९१ वर्ष पश्चात् अपना इतिहास लिखा था । जब कि जोनराज का समय सन् १३८९ ई० से १४१९ ई० है । जोनराज का जन्म कोटा की मृत्यु के केवल ५० वर्ष पश्चात् हुआ था । कोटा देवी के समकालीन व्यक्तियो की जो तत्कालीन इतिहास एवं घटनाओ के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे, उसके समय जीवित थे । जोनराज ने सन् १४५९ ई० मे अपने इतिहास को समाप्त किया जिस वर्ष उसकी मृत्यु हुई थी । हैदर मल्लिक ने जोनराज की मृत्यु के २९१ वर्ष पश्चात् इतिहास लिखा, जब काश्मीर के इतिहास को परसियन इतिहासकार अपने रंग विशेष मे ढाल चुके थे । इतिहास को एकागी बनाने का प्रयास किया जा चुका था । परसियन इतिहासकारो ने नाम पच्छभट्ट दिया है । उसे काकपुर का निवासी कहा गया है । काकपुर श्रीनगर के दक्षिण मे था ।

पाद-टिप्पणी :

२४३. (१) शाहमीर : रिंचन के पुत्र का अभिभावक शाहमीर था । जोनराज की इस बात का समर्थन म्युनिख पाण्डुलिपि पृष्ठ ५० ए से होती है । रिंचन के पुत्र पालक होने के कारण शाहमीर एक प्रकार से अपने हाथ मे एक ट्रम्प कार्ड रख छोडा था । वास्तव मे रिंचन के पश्चात् उसका पुत्र ही राज्य का अधिकारी था । परन्तु कोटा देवी ने अपने पुत्र को राजा न बनाकर उदयनदेव को राजा बनाया था । कोटा का यह स्वभाव मानव प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रकट होता है । प्रत्येक माता अपने पुत्र को राज्य देने का प्रयास करती है । पुत्र के वृद्धि की कमना करती है । पुत्र नावालिग था । कोटा के मार्ग मे बाधक नही था तथापि अपने पुत्र की अपेक्षा उसने उदयनदेव को क्यो प्रथम बार गान्धार से बुलाकर, राजा बनाया । तत्पश्चात द्वितीय बार उसे पुनः उसके वापस आनेपर राजा स्वीकार किया, मानव प्रवृत्ति विरोधी घटनायें तथा कोटा का कार्य, इतिहास की मानवीय शृंखला को तोड देता है । जोनराज या तो जान कर कुछ नही लिखता अथवा सत्य बातें लिखने पर, उसके स्वामी मुसलिम राजा, दरबारी, मुसाहब और वे लेखक जो इतिहास को दूसरे रंग मे रंगना चाहते थे, उनके प्रतिकूल पड़ता । अतएव घटनाओ को केवल स्पर्श कर छोड दिया है । वह पाठकों तथा इतिहास-प्रेमियो को अनुमान लगाने के लिये असीमित क्षेत्र छोड देता है । उसके वर्णनशैली से इतिहास की साधारण गुत्थी सुलझती नही अपितु उलझती जाती है। कोटा का चरित्र वीरागना, नीतिज्ञ, साहसी काश्मीरी ललना के रूप मे चित्रित करते-करते अचानक रुक जाता है ।

जोनराज के वर्णन से स्पष्ट होता है कि कोटा शाहमीर से सशंकित थी । उसने अपनी नीति से रिंचन के वंश से राज निकालकर काश्मीरवशीय राजा उदयनदेव को दिया था । उदयनदेव के पलायन कर जाने पर उसने खेरिंचन को चुना न कि शाहमीर अथवा किसी अन्य मुसलिम अथवा मुसलिम प्रभावशाली व्यक्ति को । शाहमीर राजा उदयनदेव का प्रियपात्र नही रह गया था । शाहमीर की अवस्था विचित्र थी । उसके पुत्र, जमराज आदि देशो के धारक थे, शक्तिशाली हो रहे थे। दूसरी ओर शाहमीर का प्रभाव राज-दरबार मे घट रहा था ।

देव्यास्तु समदृष्टित्वात्पुत्रयोरुभयोरपि ।
राज्ञो द्वेष्योऽपि शाह्मेरो न भयेन स पस्पृशे ॥ २४४ ॥

२४४ दोनों पुत्रों[1] पर देवी (कोटा) की सम दृष्टि होने के कारण राजा का द्वेष्य होते हुए भी वह शाहमीर भयग्रस्त नहीं हुआ।

अचलोपप्लवातङ्के भयाल्लोकैः समाश्रितः ।
शाह्मेरश्च स राजानं न तृणायाप्यजीगणत् ॥ २४५ ॥

२४५ अचल के विप्लव आतंक के समय भयभीत लोक के आश्रय प्रदाता[1] उस शाहमीर ने राजा को तृणवत् नहीं गिना।

शाह्मेरो हैदरश्येनं दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ।
अभाययत्तरां राजपक्षिणं तं दिवानिशम् ॥ २४६ ॥

१४६ शाहमीर हैदर-रूपी श्येन (बाज) बार बार दिखाकर, उस राजपक्षी को रात दिन भयभीत करता था।

पाद-टिप्पणी :

२४४. (१) पुत्रों : जोनराज ने रिंचन द्वारा हुए प्रथम पुत्र का नाम हैदर दिया है। यहाँ वह दो पुत्रों का उल्लेख करता है। दूसरे पुत्र का नाम जट्ट देता है।

शाहमीर द्वारा पुत्र-पालन के सम्बन्ध मे 'रैञ्चनिः' शब्द का प्रयोग जोनराज ने किया है। ठीक श्लोक २४३ के पश्चात उक्त २४४ श्लोक मे द्विवचन शब्द 'पुत्रयो' प्रयोग किया गया है। इससे प्रकट होता है कि इस समय कोटा को दो पुत्र थे। प्रथम पुत्र रिंचन से तथा द्वितीय उदयनदेव से था। दो पिता के पुत्र होने पर भी उन पर कोटा का सम-स्नेह था। अतएव रिंचन के पुत्र-पालक होने के कारण शाहमीर से राजा द्वेष करता था। किन्तु कोटा का पुत्रो पर प्रेम होने के कारण शाहमीर भयग्रस्त नही हुआ।

डॉ० सूफी कोटा के दूसरे पुत्र का नाम बोतरत्न देता है। कहता है कि यह पुत्र उदयनदेव का था। कोटा ने उसे भिक्षण भट्ट के नियन्त्रण मे रख दिया था। भिक्षण भट्ट का नाम पचवट कामपुरी देता है (सूफी : १२८)। जोनराज श्लोक २४२ मे स्पष्ट नाम जट्ट देता है।

पाद-टिप्पणी :

२४५ (१) आश्रय प्रदाता : अचल का किस प्रकार शाहमीर ने विरोध किया यह नही प्रकट होता। उसने विल्पव काल मे किस प्रकार लोगो को आश्रय दिया, अस्पष्ट है। कोटा रानी ने अचल के प्रति जो कुशल नीति अपनायी थी, उसमे शाहमीर का कहीं उल्लेख नही मिलता। शाहमीर के दोनो पुत्र शासक थे। उनके पास सेना थी। किन्तु उसका उपयोग कोटा रानी को मजबूत करने के लिये नहीं किया गया। उनका उल्लेख भी कहीं इस प्रसग मे नही आता। दरबारी कवि जोनराज ने शाहमीर के वंशज, काश्मीर के सुलतानो द्वारा प्रशंसा प्राप्त करने के लिये, शाहमीर को जन-पालक रूप मे चित्रित किया है। यह वर्णन अप्रासंगिक मालूम होता है। शाहमीर को महान प्रमाणित करने के उद्यम मे काश्मीरराज उदयनदेव को एकमात्र शाहमीर नही माना, उसकी उपेक्षा किया यह बात कुछ जँचती

रक्षंस्तटस्थानुद्वेगरहितो जलवर्जितः ।
अल्लेश्वराम्बुपूरः स प्रजाश्चित्रमतारयत् ॥ २४७ ॥

२४७ उद्वेग एवं जल रहित, उस अल्लेश्वर[1] (अलीशाह) रूपी जल प्रवाह ने तटस्थानों को रक्षित करते हुये प्रजा को विचित्र प्रकार से तार दिया ।

शिरःशाटकहिन्दाख्यौ समभूषयतामुभौ ।
चन्द्रार्काविव तस्याशां शूरौ पौत्रौ गुणोच्छ्रितौ ॥ २४८ ॥

२४८ (शाहमीर के) शिरःशाटक[1] (शीर अशमाक) तथा हिन्द (हिन्दल-हिन्दुखा) नामक शूर एवं गुणोन्नत दो पौत्र चन्द्रार्क तुल्य उस (की) आशा (दिशा) को भूषित किये ।

द्वारैश्वर्यात् स्फुरद्दर्पो राजाज्ञालङ्घनोद्यतः ।
शह्मेरः स विपद्द्वारम् अभूद्भूपतिसेविनाम् ॥ २४९ ॥

२४९ द्वार[1] के ऐश्वर्य से दर्प युक्त एवं राजाज्ञा के उल्लंघन के लिये उद्यत, वह शाहमीर राज-सेवियों के लिये विपत्ति का द्वार हो गया था ।

नही है । उस समय शाहमीर इस स्थिति मे नही था कि राजा की उपेक्षा करता ।

पाद-टिप्पणी :

२४७. (१) *अल्लेश्वर :* शाहमीर के पुत्र जमशेद तथा अलीशाह (अल्लेश्वर) थे । जमशेद ने क्रमराज का दान प्राप्त कर वहाँ अपना प्रशासन स्थापित किया था । श्लोक २२५ से प्रकट होता है कि क्रमराज आदि देशो को जमशेद तथा अल्लेश्वर को राजा उदयनदेव ने दान मे दिया था । इस श्लोक से प्रकट होता है कि अल्लेश्वर अर्थात् अलीशाह को सीमावर्ती प्रदेशो की रक्षा का भार दिया गया था । उसने सीमा की रक्षा करते हुए प्रजा का पालन किया था । काश्मीर की दक्षिणी, पश्चिमी तथा उत्तरी सीमा पर मुसलिम राज्य था । काश्मीर के आन्तरिक मुसलिम प्रशासकों तथा सीमा स्थित विदेशी मुसलिम शासकों से सम्बन्ध स्थापित हो गया । काश्मीर ने सीमा रक्षा का भार उन्ही जाति के लोगो को दिया, जिनसे उसे भय बना रहता था । जिनसे वह लडाइयां लडता था । भक्षक को रक्षक बनाकर काश्मीर ने अपना भविष्य अन्धकारमय कर लिया ।

पाद-टिप्पणी :

२४८. (१) शिरःशाटक : शाहमीर ने अपने पुत्र जमशेद तथा अलीशाह को शक्तिशाली कर अपने दोनो पौत्र—शिरःशाटक (सुलतान शाहबुद्दीन) तथा हिन्द (हिन्दल या हिन्दूखान या सुलतान कुतुबुद्दीन) को शक्तिशाली बनाना आरम्भ किया । दोनो ही पौत्र कालान्तर मे काश्मीर के सुलतान हुए थे । शाहमीर सुनिश्चित योजना से बढ रहा था । उसे आशा होने लगी थी कि वह अपनी योजना मे सफल होगा ।

पाद-टिप्पणी :

२४९. (१) द्वार : काश्मीर में द्वार-पति का पद विश्वासपात्र, अनुभवी तथा देशभक्त त्यागी सेनापति को दिया जाता था । काश्मीर मे द्वारो का वही महत्व था जो भारत के लिये खैबर तथा बोलन पास का था । द्वार की रक्षा कर, समस्त काश्मीर की रक्षा की जा सकती थी । खैबर पास की उपेक्षा करने के कारण भारतवर्ष पर सर्वदा विदेशी आक्रमण होता रहा । मुगलो ने अफगानिस्तान को अपने अधीन रखकर, बाबर के समय से औरंगजेब काल तक इस नीति का अनुकरण किया था । खैबर तक किसी

विदेशी सेना के पहुँचने की नौबत ही नही आती थी। दिल्ली के बादशाहो द्वारा खैबर की उपेक्षा करने के कारण, पठानो, तुर्कों तथा मुगलो के आक्रमणो का शिकार भारत होता रहा। भारतवर्ष विदेशी आक्रमणो से, महमूद गजनी से अकबर तक विदेशी सेनाओ से आक्रान्त होता रहा। अकबर से शाह आलम तक खैबर की रक्षा करने के कारण पठान, तुर्क, ईरानी अथवा मुगल भारत पर आक्रमण नही कर सके। खैबर रक्षा मे शिथिलता होते ही, नादिरशाह, अहमदशाह अबदाली पुन. भारत पर आक्रमण करते दिल्ली तक पहुच गये थे। यही कारण था कि पंजाब के राजा रणजित सिंह ने पुनः इस नीति का अनुकरण कर, खैबर तथा परवर्ती स्थानो पर अधिकार कर, भारत का द्वार विदेशियो के लिये बन्द कर दिया था। अंग्रेजो ने कालान्तर मे इसी नीति का अनुकरण किया। बृटिश भारतीय सेना की लगभग आधी शक्ति सीमान्त पर लगी रहती थी। अंग्रेज-नीति अफगानिस्तान का शासक अपनी रुचि के अनुसार रखने का प्रयास करती रही है। अमीर अमानुल्ला ने अपनी स्वतन्त्रता दिखाकर भारत पर आक्रमण की तैयारी की तो अंग्रेजी नीति के कारण उसे सिंहासन त्यागना पडा था।

काश्मीर मे द्वारो की रक्षा का भार शाहमीर ने अपने पुत्र अलीशेर को दिला दिया। द्वार की रक्षा अर्थात् काश्मीर की रक्षा का उत्तरदायित्व विदेशी शाहमीर पर पड गया। इसके दो परिणाम हुए। पहला तो द्वार की रक्षा से मुक्त होने पर काश्मीरी देशरक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये। उन्हें अपने देश की रक्षा की चिन्ता नही रह गयी। काश्मीरी सैनिको के स्थान पर विदेशी गैर काश्मीरियो ने जो शताब्दियो से काश्मीर की सेना मे प्रवेश पा रहे थे अपनी शक्ति सघटित और सुदृढ कर ली। काश्मीरी अपने देश की सुरक्षा से पराङ्मुख हो गये। अपने घर मे शत्रु पाल लिये। घर के बाहर घर की रक्षा का भार भी अपने शत्रुओ को दे दिया। समय आते ही घर एवं बाहर दोनो के रक्षकगण एक हो गये। काश्मीर लडखडा कर गिर पडा। उसके गिरने पर कोई दो बूँद आँसू बहाने वाला भी नही रह गया।

इसका दूसरा परिणाम हुआ कि काश्मीरी अपने द्वार तथा सीमा पर होती घटनाओ से अनभिज्ञ हो गये। उनकी सूचना तथा रक्षा का स्रोत शाहमीर रह गया। काश्मीरियो की जागरूक एवं प्रतिरोधात्मक शक्ति नष्ट हो गयी। शाहमीर के राज हस्तगत करने पर भी इसी शक्ति के ह्रास के कारण वे चूँ तक नही कर सके।

शाहमीर शक्तिशाली होते ही, राजा तथा काश्मीरी जनो की उपेक्षा करने लगा, शक्ति का परिचय देने लगा। वह राजा को कुछ नही समझता था। सीमा की रक्षा उसके हाथो मे थी। सेना उसके हाथो मे थी। क्रमराजादि का राज्य एवं शासन उसके पुत्रो के हाथो मे था।

काश्मीरियो ने अपनी पुरातन सुरक्षा-व्यवस्था के मूल सिद्धान्त अर्थात् द्वार की रक्षा की उपेक्षा कर उसे भी शाहमीर के संरक्षण मे दे दिया। शाहमीर को काश्मीर की उस शक्ति का ज्ञान हो गया था जिसके कारण काश्मीर विदेशियो का शिकार न बन सका था। अतएव शाहमीर ने उन शक्तियो तथा यन्त्रो पर शनैः शनैः नियन्त्रण कर लिया। जब समय आया तो काश्मीरी उसके सम्मुख परकटे कबूतर की तरह पंगु हो गये। तत्पश्चात् शाहमीर ने उस कबूतर को पकड लिया, उसका शिकार किया। कबूतर मुक्त होने के लिये फटफटा भी न सका। काश्मीर राज्य की प्रतीक परकटी कपोतनी कोटा रानी को जब उसने धर दबोचा तो वह रो भी न सकी और काश्मीरी अपने-अपने दरबो मे बाज शाहमीर के भय से कबूतर की तरह छिप कर पडे रहे।

शताब्दियो पूर्व अल्बेरूनी ने काश्मीर की उस सामरिक शक्ति, जिसके कारण काश्मीर महमूद गजनी जैसे शक्तिमान को हरा सका था वर्णन करता है—

सोऽल्लेश्वरसुतां दत्त्वा लुस्तस्य तदधीशितुः ।
श्रीशङ्करपुरं जित्वा राज्ञः शङ्कामवर्धयत् ॥ २५० ॥

२५० उसने अल्लेश्वर (अली शाह) की कन्या[1] की शादी वहाँ के अधिकारी लुस्त से कर दिया और शंकरपुर[2] जीत कर राजा की शंका बढ़ा दी ।

'काश्मीरी अपने देश की प्राकृतिक भौतिक शक्ति के प्रति जागरूक हैं । अतएव वे द्वार तथा काश्मीर मे प्रवेश करने वाले मार्गों पर सतर्क दृष्टि रखते हैं । दृढतापूर्वक उनका नियन्त्रण करते हैं । इन कारणो से उनके साथ किसी प्रकार का व्यापार नही हो सकता । पूर्व काल मे वे इक्के-दुक्के विदेशियो को अपने देश मे प्रवेश करने देते थे, मुख्यतः वे यहूदी होते थे । वे इस समय हिन्दू को भी जिन्हे वे नही जानते थे काश्मीर मे प्रवेश नही करने देते थे फिर दूसरो की क्या बात है ?' (अल्बेरूनी १ : २०६) ।

पाद-टिप्पणी :

२५० (१) कन्या निवाह : काश्मीरी राजनीतिज्ञों का सम्बन्ध शेष भारत से छिन्न हो गया था । वे भारत की राजनीति एवं इतिहास से अनभिज्ञ थे । वे भारत तथा भारत के बाहर विस्तारवादी एवं प्रवर्तक मुसलिम नीति से अनभिज्ञ थे । हिन्दू प्रवर्तक धर्म नही था । हिन्दू राजनीति ने धर्म के माध्यम से किसी देश एवं जाति पर शासन करने की कल्पना नहीं की थी । हिन्दुओ ने अपने इतिहास के उषाकाल से अस्त तक उपनिवेशवाद मे विश्वास नही किया । राम ने बालि तथा रावण को जीतने पर भी उनका राज्य उनके सम्बन्धियो को लौटा दिया था । काश्मीरी दिग्विजयकर्ता ललितादित्य एवं जयापीड ने भी साम्राज्य नही बनाया, उपनिवेश नहीं स्थापित किया, अपना धर्म किसी विजातीय पर नही थोपा । मुसलिम नीति एवं दर्शन सर्वथा इसके विपरीत था । मुसलिम दर्शन धर्म प्रवर्तक था । वे अपनी संख्या बढा कर अपना दर्शन फैलाने मे, अपना राज्य कायम करने मे विश्वास करते थे ।

शाहमीर चतुर था । वह अपना समाज, अपना धर्म और अपनी शक्ति बढाना चाहता था । उसने शादीविवाह से काश्मीर के जागीरदारो के घरो मे रिश्ते कायम किये (बहारिस्तान शाही : १६ ए) और जहाँ शादी नही हो सकती थी उन सरदारो को एक दूसरे के खिलाफ भडका कर अपने जेर पुरअसर कर लिया (मोहबी : पृष्ठ ६१) । उसने अपनी पोती–अलीशाह की कन्या की शादी राज्याधिकारी लुस्त से कर दी । उसे कुल कन्या विधर्मी हिन्दू डामर लुस्त को देने में किंचित मात्र सकोच नही हुआ । उसने विवाह सम्बन्ध द्वारा अपनी कुल-कन्या को हिन्दू आर्य जाति तथा उत्तम कुल मे प्रवेश करा दिया । सभी कन्यायें विषकन्या तुल्य थी । शाहमीर का जाल अभी तक बाहर तक ही फैला था । अब वह काश्मीरियो के घरो मे प्रवेश कर उनकी गुप्त से गुप्त बातो एवं रहस्यो को जानने लगा । विवाह सम्बन्ध के कारण उसके विरुद्ध उसके सम्बन्धी आवाज नही उठा सकते थे ।

उसने शकरपुर जीत कर राजा की शका और बढा दी । शकरपुर बारहमूला श्रीनगर राजपथ पर वर्तमान पत्तन नामक स्थान है ।

(२) शकरपुर : राजा शंकरवर्मा (सन् ८८३–९०२ ई०) ने अपने नाम पर शकरपुर आबाद किया था । क्षेमेन्द्र ने शकरपुर का उल्लेख किया है (समय मात्रिका : २ : १३) । कल्हण ने शंकरपुर का उल्लेख (रा० : ५ : १५६, २१३, १६१, ८ : २४८८, ७ : ४९८,) किया है । शंकरवर्मा परिहासपुर से इमारती सामान उठा ले गया था । उन्ही से उसने अपने नाम पर नगर बसाया था । कल्हण के समय मे वह स्थान पाटन

वशो तैलाकशूरोऽस्य भाङ्गिलैश्वर्यभाजनम् ।
ज्यंशरस्य सुतां हस्तेकृत्य कृत्यविदोऽभवत् ॥ २५१ ॥

२५१ भांगिल[1] का ऐश्वर्य भाजन तैलाक[2] शूर कृत्यविद ज्यंशर (जमशेर-जयशोध) की पुत्री को हस्तगत कर के उसके वश में हो गया।

नाम से प्रसिद्ध था। वह ऊनी वस्त्र उत्पादन तथा मवेशियों के क्रय-विक्रय के लिये प्रसिद्ध था। पाटन में मन्दिरों के ध्वंसावशेष मिले हैं। उन्हें शंकरवर्मा तथा तथा रानी सुगन्धा ने निर्माण कराया था। उनका नाम शंकर गौरीश तथा सुगन्धेश था। शंकर वर्मा कल्हण के शब्दों मे उन कवियों के समान था, जो दूसरे की रचना एवं भाव लेकर अपनी रचना करते हैं। शंकरवर्मा ने भी नगर एवं मन्दिर निर्माण परिहासपुर से लिये गये सामानों से कराया था। शंकरवर्मा का स्थान चयन उत्तम कहा जायगा। यह स्थान वराहमूला तथा श्रीनगर के मार्ग पर दोनों के मध्य पड़ता है।

अबुल फजल ने आइने-अकबरी में पाटन को एक परगना माना है। किम्बदन्ती है कि अकबर के मन्त्री टोडरमल ने इस स्थान पर अपना शिविर लगाया था। वह परगनों का विभाजन कर रहा था। पाटन को परगनों की तालिका मे रखना भूल गया। तत्पश्चात् वह अतिरिक्त परगना बना दिया गया। कालान्तर में तिलग्राम परगना का वह मुख्य स्थान बन गया। तहसील का केन्द्र भी हो गया।

शंकरपुर अथवा पाटन के समीप पम्पासर है। पम्पासर का वर्णन रामायण में खूब आया है। उसी पम्पासर के नाम पर इस पम्पासर का नाम रखा गया था (रा० : ७ : ९४०)। यही कल्हण वर्णित पम्पासर है। यह पाटन के पूर्व गोन्द इब्राहीम तथा अदिन सरिता तक विस्तृत है। शुक ने भी इसका उल्लेख किया है।

पाद-टिप्पणी :

२५१ (१) भांगिल : यह वर्तमान परगना बांगिल है। 'ब' और 'भ' का प्रायः एकता उच्चारण काश्मीरी में होता है। परस पोर प्राचीन परिहासपुर कछार के पश्चात सुख नाग तथा अन्य पर्वतीय नदियों के बाद भागिल किंवा बांगिल जिला पड़ता है। राजतरंगिणी में वह भागिल नाम से अभिहित किया गया है (रा० : ७ : ४९८ ; ८ : ९२९, ३११०)। पम्पासर अर्थात् पम्पसर कछारी भूमि पाटन अर्थात् पट्टन के समीप बांगिल है। प्राचीन परिहासपुर के दक्षिण पश्चिमास्थित परगना है। आइने अकबरी (२ : ३६८ , ३७१) मे इसे बंकाल लिखा गया है। क्षेमेन्द्र ने लोकप्रकाश में काश्मोर के २७ विषयों अर्थात् परगनों मे भागिला को भी एक परगना माना है (पृष्ठ ६०)।

भागिलाचल मार्ग के रूप में जोनराज ने इस का पुनः उल्लेख श्लोक० ६१८ में तथा श्रीवर (जैन : ३ : ३८०, ४५८) तथा शुक ने श्लोक (१ : ६८) किया है। इससे प्रकट होता है कि सोलहवी शताब्दी तक वह भागिला नाम से प्रसिद्ध था। बांगिल शब्द भागिला का अपभ्रंश है। मूरक्राफ्ट (ट्रेवेल्स २ : ११६), वैरन हुगेल (काश्मीर : २ : २०६), वाइन (ट्रेवेल्स : १ : २७२), बेट्स (गजेटियर : २) ने भी इस परगने का उल्लेख किया है। इसको विषय अर्थात् परगना माना गया है।

(२) तैलाक शूर : 'ऐ' का उच्चारण काश्मीरी मे 'ई' हो जाता है। इस प्रकार यह शब्द शुद्ध संस्कृत-तिलकशूर हो जायगा। काश्मीर के मुसलिम राजवंश संस्थापक तथा प्रथम सुलतान शाहमीर की पौत्री, द्वितीय सुलतान जमशेद की कन्या, तृतीय सुलतान अलाउद्दीन की भतीजी, चतुर्थ सुलतान शिहाबुद्दीन की चचेरी बहन का पति था। तैलाक शूर का पुनः कहीं उल्लेख नही आता। केवल यही एक बार उसका उल्लेख विवाह प्रसंग मे किया गया है। या तो वह

बहुरूपजयी लक्ष्मीनिधिरच्युततापदम् ।
शमालां स नृसिंहोऽथ दैत्यश्रियमिवाधुनोत् ॥ २५२ ॥

२५२ बहुरूप[1] जयी लक्ष्मीनिधि उस नृसिंह (शाहमीर) ने निरन्तर तापप्रद शमाला[2] को उसी प्रकार पीडित किया जिस प्रकार नृसिंह ने तापप्रद दैत्यश्री[3] को।

मकरालयगाम्भीर्यः करालम्बो जयश्रियः ।
कराले स करालौजाः करमालम्बयज्जनान् ॥ २५३ ॥

२५३ समुद्र समान गम्भीर जयश्री का हस्तावलम्ब एवं भयंकर पराक्रमी उस (शाहमीर) ने कराल[1] मे लोगों पर कर लगाया।

कालान्तर में मुसलिम प्रभाव के कारण मुसलिम हो गया होगा अथवा कोटा रानी और हिंदू राज्य की समाप्ति के पश्चात काट राज के समान समाप्त कर दिया गया होगा।

पाद टिप्पणी

२५२ (१) बहुरूप बीरू परगना का नाम है। बुत जिला के पश्चिम पीर पंजाल पर्वतमाला की दिशा म बहुरूप परगना का क्षेत्र था। बहुरूप नामक एक जलस्रोत् अर्थात नाग है। उसी के नाम पर परगना का नाम पडा है। जलस्रोत् बीरू ग्राम मे है। *नीलमत पुराण ने इस नाग का उल्लेख किया* है। नीलमत वर्णित एक तीर्थ है (नील० २२८, १०५१,१३३७=१०९४,१०९५,१३७० १५५२)। जन श्रुति है। इस जलकुण्ड मे रोग निवारक शक्ति है। आइने अकबरी म इस जनश्रुति का उल्लेख किया गया है। वह नाम विरवा देता है (२ ३६३)। इस ग्राम के समीप कल्हण वर्णित सुवर्ण पार्श्व अग्रहार था। इसका दान ललितादित्य ने किया था (रा० ४ ६७३)। *वर्तमान नाम सुनयाह है।* बीरू परगना का उल्लेख आईने अकबरी (२ ३६८-३७१) मूरक्राफट (ट्रेवेल्स २ ११३) वैरन ह्यूगेल (काश्मीर २ २०६), वेट्स (गजेटियर २) म किया गया है।

(२) शमाला वर्तमान हमल परगना है। हमाल किंवा हुमेल शब्द शमाला का अपभ्रंश है। यह जिला त्रुहिन, क्रमराज मे सोपुर के पश्चिम *है। स्थानीय डामरो ने गृहयुद्ध एवं आतरिक उपद्रवों* में भाग लिया था। भिक्षाचर शमाला के डामरो का शरणागत हुआ था। कल्हण (रा० ७ १५९, १०२२, ८ ५११, १००३, ११३२, १२६४, १५१७ १५८५, २७४१, २८११, ३१३०) तथा जोनराज ने (९२, १०७) उल्लेख किया है। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक १०७

(३) दैत्यश्री हिरण्यकशिपु का भगवान नृसिंह ने वध किया था। जोनराज ने दैत्यश्री शब्द का प्रयोग हिरण्यकशिपु के लिये किया है।

पाद टिप्पणी

२५३ (१) कराल जोनराज ने कराल का उल्लेख श्लोक ८६३ एवं ८६४, श्रीवर ने (जैन ३ १९१ तथा ४ ४५७) मे किया है। अद्विन किंवा अधवन परगना की अधित्यका म रामव्यार नदी के दक्षिणी तटवर्ती अचल के लिये इस का प्राय प्रयोग किया गया है।

दिवसर के उत्तर म अद्विन जिला खुदनार बाब के पश्चिमी छोर से विशोका नदी के अधोभागीय प्रवाह तक कराल विस्तृत है। कराल जिला का वर्तमान नाम उसके एक बडे ग्राम अद्विन पर रखा गया है। यह विशोका के वाम तट पर विजयेश्वर अर्थात् बिजब्रोर से तीन मील दक्षिण पश्चिम है। जोनराज की राजतरगिणी बम्बई स० के श्लोक सख्या १३३० म यह अधवान नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्राचीन नाम कराल था। कल्हण ने

असस्मरत् स्मेरयशा दह्यमानमितस्ततः।
राज्ञः कलशदेवस्य विजयेशपुरं ततः॥ २५४॥

२५४ उस प्रशस्त यशस्वी ने राजा कलशदेव[1] के इधर-उधर से दह्यमान होते, विजयेशपुर का स्मरण किया—(लेना चाहा)—

(रा० : १ : ९७) सुवर्णमणि कुल्या के प्रसंग मे कराल का उल्लेख किया है। सुवर्णमणि कुल्या स्वर्णमय नादो कहलाती थी। उसे इस समय सुथमन कुल कहते हैं। यह अद्विन के एक भाग को सींचती है। जैनपुरी अधित्यका के पूर्वीय अंचल मे निल्लू, परगम, कुजरू आदि ग्रामो मे लगभग बीस मील प्रवाहित होती अदविन गाँव से कुछ दूर पर विशोका किंवा विशाऊ नदी मे मिल जाती है। यह कुल्या किंवा नहर विशोका नदी से ही लागू ग्राम के समीप से निकाली गयी है।

पाद-टिप्पणी :

२५४. (१) कलशदेव : काश्मीरराज कलश ने सन् १०६३-१०८९ ई० तक राज्य किया था। कलश राजा अनन्त का पुत्र था। उसकी माता का नाम सूर्यमती था। सन् १०६३ ई० मे सूर्यमती ने पति से राज्य त्याग कर पुत्र कलश को राजा बनाने के लिये निवेदन किया। राजा अनन्त ने पुत्र को राजा बनाया। सिंहासन त्याग दिया। किन्तु राजा बनने के कुछ ही समय पश्चात माता-पिता दोनो को दुःख हुआ। अनन्त वास्तविक राजा यथावत बन गया। राजा कलश केवल नाममात्र के लिये काश्मीर का राजा बना रहा। अनन्त का सम्बन्धी क्षितिराज इस समय लोहर का शासक था। उसने संसार-त्याग का निश्चय किया। उसने कलश के द्वितीय ज्येष्ठ पुत्र उत्कर्ष को लोहर का शासक बना दिया। इसका परिणाम हुआ कि कालान्तर मे लोहर तथा काश्मीर मण्डल दोनो राज्य मिलकर एक हो गये।

युवक राजा कलश कामी होता गया। वह दुर्वृत्तियों के प्रभाव मे आ गया। सन् १०७६ ई० मे कलश का जनता ने तिरस्कार किया। अनन्त पुत्र को बन्दी बनाना चाहता था परन्तु रानी सूर्यमती ने पुत्र-स्नेह के कारण दुर्बल पति अनन्त को पुनः राजधानी त्याग कर विजयेश्वर तीर्थ मे चलने के लिये राजी कर लिया। अनन्त राजकोश तथा सेना आदि के साथ विजयेश्वर चला आया।

राजा कलश को राजधानी श्रीनगर में धनाभाव का अनुभव होने लगा। उसने पिता पर आक्रमण करने का विचार किया। सूर्यमती ने मातृ-ममता के कारण पिता-पुत्र मे संघर्ष न होने दिया। राजा अनन्त के पास इस समय शक्ति थी। यदि वह चाहता तो कलश को राज्यच्युत कर सकता था। उसने कलश के ज्येष्ठ पुत्र हर्ष को विजयेश्वर बुला लिया और निश्चय किया कि उसे कलश के स्थान पर काश्मीर का राजा बनायेगा। कलश कुछ समय तक शान्त रहा। अनन्तर उसने विजयेश्वर मे अग्निदाह करा दिया। अग्निदाह के कारण राजा अनन्त का कोश भस्म हो गया। राजा अनन्त के साथी कोशाभाव मे राजा का साथ त्यागने लगे। पिता की अशक्ति का अनुभव कर कलश उसे निर्वासित करना चाहा। परन्तु राजा अनन्त ने ६१ वर्ष की अवस्था, सन् १०८१ ई० मे आत्महत्या कर ली। रानी सूर्यमती पति के साथ सती हो गयी।

माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् कलश का आचरण सुधरने लगा। उसने राज्य की व्यवस्था मे सुधार किया। राजपुरी (राजौरी) को पुनः काश्मीर राज्य मे मिला लिया, छोटे छोटे राजाओं को अधीन किया। उसकी शक्ति एवं प्रभाव इतना बढ गया था कि सन् १०८७-१०८८ ई० मे काश्मीर के सीमावर्ती पश्चिम मे उरशा से पूर्व मे काष्टवाट तक के राजा श्रीनगर मे शीत ऋतु मे एकत्रित हुए थे। उसमे चम्बा का राजा असट भी था। राजा कलश का

स्थित्यै प्रकल्प्य चक्रस्य स्वस्य चक्रधराचलम् ।
शाह्मेरोऽचलकार्याणि जनस्य समदर्शयत् ॥ २५५ ॥

२५५ शाहमीर ने अपने चक्र (सेना राज्य) की स्थिति के लिये, चक्रधर पर्वत को चुना तथा उसने प्रजा के समक्ष अपने अचल कार्यों को दिखाया—

अन्तिम दिन अच्छा नही बीता। पिता तथा पुत्र मे सन्देह उत्पन्न हो गया था। हर्ष खर्चीला था। उसके साथियों ने पिता कलश को मारकर राज्य हस्तगत करने का षड्यन्त्र किया। षड्यन्त्र का रहस्य खुल गया, कलश ने हर्ष को बन्दी बनाने का आदेश दिया। हर्ष को अपने साथी षड्यन्त्रकारियो से जीवन भय हो गया। कलश ने हर्ष को राज्य के उत्तराधिकार से हटा दिया। उसने उत्कर्ष को अपना उत्तराधिकारी बनाया। मार्तण्ड मे उसने अपना शरीर त्याग किया। राजा के साथ मम्मनिका तथा ६ अन्य विवाहित रानियाँ तथा उसकी रखैल जयमती सती हो गयी। किन्तु उसकी अत्यन्त प्रिय रखनी कय्या सती नही हुई और विजयक्षेत्र मे एक विप्र राजकर्मचारी की रखनी होकर जीवन यापन करने लगी। कलश का उल्लेख कल्हण ने किया है (रा० : २३३–रा० : ७ : २३१, २४४, २७६, २७३, ३०८, ३६६, ४०८, ५२०४, ५, ५, ६७७, ६९८, ७२३, ११७३, ८ : २०९, १९५९, ३३६४, ३४४०)।

पाद-टिप्पणी :

२५५ (१) चक्रधर : भगवान विष्णु का नाम चक्रधारण करने के कारण चक्रधर पडा है (वायु० : ७ : ६८, स्वर्गा० : ४ : १२७)। चक्रधर तथा विजयेश के मन्दिर समीप थे। चक्रधर मन्दिर एक अधित्यका पर था। उसे आज-कल तस्कदर कहते है। नागराज सुश्रवा के सन्दर्भ मे चक्रधर मन्दिर का उल्लेख कल्हण ने किया है (रा० : १ : २६१, २७०)। यहाँ ललितादित्य ने वितस्ता नदी पर रहट लगवाया था। जिससे जल द्वारा अनेक ग्रामो मे सिंचाई होती थी (रा० : ४ : १९१)। राजा कलश ने यहाँ निवास किया था (रा० : ७ : २५८)। तन्वग ने यहाँ प्राणत्याग किया था। (रा० : ७ : २६१)। हलधर ने भी यहाँ प्राण विसर्जन किया था (रा० : ७ : २६९)। राजा उच्चल ने यहाँ जीर्णोद्धार कराया था। उसके समय स्थान अत्यन्त जीर्णावस्था मे था (रा० : ८ : ७८)। भिक्षाचर संघर्ष के प्रसंग म कल्हण ने वर्णन किया है कि विजयक्षेत्र की जनता ने भयाकुल होकर चक्रधर मन्दिर मे शरण ली थी (रा० : ८ ९७१)। चक्रधर दो बार अग्निदाह से भस्म हुआ था। सर्वप्रथम सुश्रवा ने इसे भस्म किया तत्पश्चात् डामर दस्युओ ने (रा० : ८ : ९९१)। इस मन्दिर के प्रागण मे बहुत से शव जो वितस्ता मे नही फेके जा सके थे उन्हे फूक दिया गया (रा० : ८ : १००४)। चक्रधर का पुन उल्लेख कल्हण ने (रा० : ८ : १०६४) किया है।

हस्तिकर्ण से एक मील दक्षिण वितस्ता नदी एक बडा मोड लेती है। इस प्रकार यहाँ अन्तरीप बन कर उद्र रूप ले लेता है। विजयेश्वर अर्थात् बिजब्रोर वितस्ता के वाम तट पर एक मील दूर अधित्यका अर्थात् उदर पर यह देवस्थान बना था। अधित्यका का नाम आज भी तस्कद उद्र या उदर है। कल्हण ने चक्रधर पहाडी तथा मन्दिर का उल्लेख किया है। यह स्थान सबसे अलग तथा ऊँचाई पर है। अनायास अपनी प्राकृतिक परिस्थिति के कारण लोगो का ध्यान आकर्षित करता है। यही पर भगवान विष्णु चक्रधर का प्राचीन मन्दिर था। चक्रधर का वर्णन माहात्म्यो मे किया गया है। इसका उल्लेख मख के श्रीकण्ठचरित (३ : १२) तथा नीलमत पुराण मे मिलता है (नी० : १०० ' १०६६, ११४९ : १३५९)। जयद्रथ ने हरचरित चिन्तामणि के अध्याय ७ मे इसका वर्णन किया है। जोनराज ने राजतरगिणी (श्लोक ६०१) मे चक्रभृत नाम से इसका उल्लेख किया है। सिकन्दर बुतशिकन ने इसे नष्ट किया था। विजयेश्वर माहात्म्य मे इसका उल्लेख किया गया है।

कम्पनेश्वरलक्ष्मस्य लक्ष्मीमिव सुतां दधत्।
अल्लेशो लब्धवाञ्शुद्धं सुदायमिव सद्यशः॥ २५६॥

१५६ कम्पनेश्वर लक्ष्म[1] की लक्ष्मी तुल्य सुता को ग्रहण करते हुए, अल्लेश (अलाउद्दीन) सुदाय (भाग) के समान शुद्ध यश प्राप्त किया।

वरिङ्गरङ्गशैलूषं कोटराजमथाग्रहीत्।
शाह्मेरस्तनयारत्नगुहरोन्मालकेन सः॥ २५७॥

२५७ उस शाहमीर ने तनयारत्न गुहरा[1] रूप माला के द्वारा बरिंग रूप[2] रंगस्थल के शैलूष[3] कोटराज[4] को ग्रहण कर लिया।

पाद-टिप्पणी :

२५६ (१) लक्ष्म : लक्ष्म कम्पनेश ने अपनी कन्या किंवा सुता का विवाह अल्लेश अर्थात् काश्मीर के भावी तृतीय सुलतान के साथ कर दिया। इस प्रकार वह काश्मीर के प्रथम सुलतान शाहमीर का समधी तथा द्वितीय सुलतान जमशेद के भाई का श्वसुर और तृतीय सुलतान का श्वसुर हो गया। तैलाक शूर के समान इसका भी पुनः उल्लेख नही मिलता। लक्ष्मभट्ट का उल्लेख श्लोक ३२७ मे मिलता है परन्तु वह अन्य व्यक्ति प्रतीत होता है। हिन्दू एवं मुसलमानो मे अन्तर्जातीय विवाह या तो उस समय प्रचलित था अथवा सब विवाह शाहमीर के राजनीतिक षड्यन्त्र के परिणाम थे। जोनराज ने लक्ष्म की कन्या का नाम न देकर केवल उसका विशेषण 'लक्ष्मी तुल्य' दिया है।

यदि लक्ष्म नाम न माना जाय तो वह कम्पनेश का विशेषण हो जायगा। अर्थ होगा—कम्पनेश्वर चिह्न वाले। परन्तु यह अर्थ यहाँ संगत नही प्रतीत होता।

पाद-टिप्पणी :

२५७ भावार्थ जिस प्रकार रंगमंच पर प्रदर्शित नाटक मे किसी नायक को रत्नो की माला से पकड लिये जाने का दृश्य दिखाया जाता है और नायक रत्नमाला के टूटने के भय से स्वतः पकडा जाता है, उसी प्रकार तनयारत्न गुहरा रूप माला के द्वारा शाहमीर ने कोटराज को पकड लिया।

(१) गुहरा : गौहर शुद्ध नाम है। काश्मीर के प्रथम सुलतान शाहमीर की कन्या थी। किसी भी परसियन इतिहासकार ने शाहमीर की कन्या गुहरा का नाम नही दिया है। जहाँ भी कही शाहमीर की वंशावली दी गयी है वहा गुहरा का नाम छोड दिया गया है।

जोनराज ने स्पष्ट लिखा है। शाहमीर की तनयारत्न गुहरा थी। परसियन इतिहासकारो ने 'सुलतान की कन्या की शादी एक हिन्दू से हुई थी' इस पर परदा डालने के लिये इस घटना का वर्णन नही किया है। मुसलिम समाज मे हिन्दू की कन्या लेना ग्राह्य था किन्तु मुसलिम कन्या का विवाह किसी गैर मुसलिम से करना धर्म विरुद्ध माना गया है। मुसलिम समाज मे यह अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता। भारत के सभी मुसलिम शासको एवं प्रशासको ने हिन्दू कन्या को लिया है परन्तु अपनी कन्या कभी दिया हो, इसका उदाहरण नही मिलता। शाहमीर को इस कलंक-कालिमा से बचाने के लिये परसियन इतिहासकारो ने इस घटना का उल्लेख नही किया है। उन्होंने सर्वदा हिन्दू राजाओ की कन्याओ का विवाह मुसलिम बादशाहो, नबाबो एवं सामन्तो से होने का उत्साह के साथ उल्लेख किया है।

आगामी श्लोक २५८ मे नीति का प्रतिपादन किया गया है। उसमे वर्णन किया गया है कुछ चतुर व्यक्ति सामादि द्वारा कार्य सम्पादन करते है। उसमे प्राथमिकता साम को दी गयी है। शाहमीर ने साम

साम्नः केचित्परे भेदाद् दानादन्ते परे भयात् ।
मान्यतामनयन्धन्या लवन्यास्तस्य शासनम् ॥ २५८ ॥

२५८ कुछ तो साम[1] से, दूसरे भेद[2] से, अन्य लोग दान[3] से और कुछ भय[4] के कारण, उन धन्य लवन्यों ने उसका शासन[5] स्वीकार किया ।

नीति का अनुकरण कर कन्यादान किया था । पुनः श्लोक ५५९ मे वर्णन किया गया कि लवन्य लोगो ने कन्याओ को माला की तरह धारण किया । 'गुहरो-न्मालकेन' शब्द से गुहरा माला द्वारा कोटराज और कन्या रूपी मालाओ से लवन्यो को पकड़ लिया था ।

श्रीदत्त ने जो भावानुवाद किया है उसमे लिखा है कि कोटराज ने अपनी कन्या का विवाह शाहमीर से किया था । यह अर्थ किसी प्रकार खीच-तानकर बैठाया गया है । शाब्दिक अर्थ भी नही है । अनुवाद भी नही है ।

जोनराज स्वयं शाहमीर वंशियो का दरबारी कवि था । उसके समय काश्मीर की राजभाषा प्रायः संस्कृत थी । ऐसी स्थिति मे एक दरबारी कवि इसलाम विरुद्ध, मुसलिम समाज के प्रतिष्ठा विरुद्ध इस प्रकार की बात न लिखता ।

(२) वरिंग : यह व्रिग है । व्रिग एक जिला है । व्रिग सरिता की उपत्यका मे यह अचल विस्तृत है । लोकप्रकाश मे 'भृङ्ग' विषय का उल्लेख काश्मीर के २७ विषयो मे किया गया है ।

(३) शैलूष : अभिनेता किंवा नर्तक अर्थ होता है । 'आः शैलूषापसद !', 'एते सर्वमेव शैलूषजन व्याहरन्ति' (वेणीसंहार : १), 'अवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्' (शिशुपालवध : १ : ६९) ।

(४) कोटराज : शाहमीर ने कोटराज से अपनी कन्या का विवाह किया था । कोटराज का उल्लेख तैलाक शूर के समान पुनः नहीं मिलता । कोट-राज प्रथम सुल्तान का दामाद, द्वितीय तथा तृतीय सुल्तान का बहनोई था । यह कालान्तर मे बन्दी बनाकर जेल मे रख दिया गया । वहा या तो उसकी मृत्यु हो गयी अथवा वह मार डाला गया ।

पाद-टिप्पणी :

२५८. (१) साम : सामनीति समझौता, वार्ता, सन्धि, प्रसन्न, सन्तोष आदि नीतिमय कार्यो से शत्रु के मन को जीतने की क्रिया किंवा प्रथम उपाय है । राज्य शासन सुचारु रूप से चलाने के लिये सात उपायो का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो मे किया गया है । किन्तु लेखक उनके वर्गीकरण मे एकमत नही है । चार उपाय साम, दान, भेद, दण्ड मुख्य माने जाते है । राजनीति के चारो उपाय मुख्य अग है । विरोध का समाधान किंवा शमन, सन्धि, मैत्री, मेल-मिलाप, समझौता आदि राजनैतिक उपक्रमो द्वारा शत्रु पर विजय पाना अथवा राज्य कार्य को चलाना सामनीति के अन्तर्गत आता है । जोनराज ने शत्रु पर सफलता प्राप्त करने के लिये चारो उपाय का ही उल्लेख किया है, उसे 'उपाय चतुष्टय' कहा जाता है ।

मनु ने केवल दो उपायो को मुख्य माना है । उनका मत है कि साम एव दण्ड (शक्ति किंवा युद्ध) केवल दो ही उपाय मुख्य हैं । साम के भी पाच भेद माने गये है । (मनु : ८ : १००–१०९, याज्ञवल्क्य : १ : ३४५, मत्स्य० : २२२ : २–३, सभा० : ५ : २१ ६७ : ३, अर्थ० : २ : १० : ७४) । साम उपाय का अभिप्राय है कि शत्रु को प्रसन्नकर, उसे सन्तोष देकर, मधुर एवं आकर्षक प्रिय बातो मे फँसा कर अपने पक्ष मे मिला लेना है ।

(२) भेद : यह द्वितीय उपाय है । शत्रुओ मे अपनी नीति तथा चतुराई से भेद उत्पन्न कर तथा उन्हें परस्पर संघर्षरत कर दुर्बल कर देना भेद माना गया है । शत्रुओ मे मतभेद, वैमत्य, विरोध, विवाद, असहमति तथा फूट डालने की प्रक्रियायें भेदनीति के अन्तर्गत आती हैं । भेद के कारण शत्रुओं मे परस्पर सन्देह, ईर्षा, क्रोध उत्पन्न कर उन्हे शक्तिहीन कर

कम्पनेश्वरलक्ष्मस्य लक्ष्मीमिव सुतां दधत्।
अल्लेशो लब्धवाञ्शुद्धं सुदायमिव सद्यशः॥ २५६॥

१५६ कम्पनेश्वर लक्ष्म[1] की लक्ष्मी तुल्य सुता को ग्रहण करते हुए, अल्लेश (अलाउद्दीन) सुदाय (भाग) के समान शुद्ध यश प्राप्त किया।

वरिङ्गरङ्गशैलूषं कोटराजमथाग्रहीत्।
शाह्मेरस्तनयारत्नगुहरोन्मालकेन सः॥ २५७॥

२५७ उस शाहमीर ने तनयारत्न गुहरा[1] रूप माला के द्वारा वरिंग रूप[2] रंगस्थल के शैलूष[3] कोटराज[4] को ग्रहण कर लिया।

पाद-टिप्पणी :

२५६. (१) लक्ष्म : लक्ष्म कम्पनेश ने अपनी कन्या किंवा सुता का विवाह अल्लेश अर्थात् काश्मीर के भावी तृतीय सुलतान के साथ कर दिया। इस प्रकार वह काश्मीर के प्रथम सुलतान शाहमीर का समधी तथा द्वितीय सुलतान जमशेद के भाई का श्वसुर और तृतीय सुलतान का श्वसुर हो गया। लैलाक शूर के समान इसका भी पुनः उल्लेख नहीं मिलता। लक्ष्मभट्ट का उल्लेख श्लोक ३२७ में मिलता है परन्तु वह अन्य व्यक्ति प्रतीत होता है। हिन्दू एवं मुसलमानों में अन्तर्जातीय विवाह या तो उस समय प्रचलित था अथवा सब विवाह शाहमीर के राजनीतिक षड्यन्त्र के परिणाम थे। जोनराज ने लक्ष्म की कन्या का नाम न देकर केवल उसका विशेषण 'लक्ष्मी तुल्य' दिया है।

यदि लक्ष्म नाम न माना जाय तो वह कम्पनेश का विशेषण हो जायगा। अर्थ होगा—कम्पनेश्वर चिह्न वाले। परन्तु यह अर्थ यहाँ संगत नहीं प्रतीत होता।

पाद-टिप्पणी :

२५७ भावार्थ : जिस प्रकार रंगमंच पर प्रदर्शित नाटक में किसी नायक को रत्नों की माला से पकड़ लिये जाने का दृश्य दिखाया जाता है और नायक रत्नमाला के टूटने के भय से स्वतः पकड़ा जाता है, उसी प्रकार तनयारत्न गुहरा रूप माला के द्वारा शाहमीर ने कोटराज को पकड़ लिया।

(१) गुहरा : गौहर शुद्ध नाम है। काश्मीर के प्रथम सुलतान शाहमीर की कन्या थी। किसी भी परसियन इतिहासकार ने शाहमीर की कन्या गुहरा का नाम नहीं दिया है। जहाँ भी कहीं शाहमीर की वंशावली दी गयी है वहाँ गुहरा का नाम छोड़ दिया गया है।

जोनराज ने स्पष्ट लिखा है। शाहमीर की तनया-रत्न गुहरा थी। परसियन इतिहासकारों ने 'सुलतान की कन्या की शादी एक हिन्दू से हुई थी' इस पर परदा डालने के लिये इस घटना का वर्णन नहीं किया है। मुसलिम समाज में हिन्दू की कन्या लेना ग्राह्य था किन्तु मुसलिम कन्या का विवाह किसी गैर मुसलिम से करना धर्म विरुद्ध माना गया है। मुसलिम समाज में यह अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। भारत के सभी मुसलिम शासकों एवं प्रशासकों ने हिन्दू कन्या को लिया है परन्तु अपनी कन्या कभी दिया हो, इसका उदाहरण नहीं मिलता। शाहमीर को इस कलंक-कालिमा से बचाने के लिये परसियन इतिहास-कारों ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने सर्वदा हिन्दू राजाओं की कन्याओं का विवाह मुसलिम बादशाहों, नवाबों एवं सामन्तों से होने का उत्साह के साथ उल्लेख किया है।

आगामी श्लोक २५८ में नीति का प्रतिपादन किया गया है। उसमें वर्णन किया गया है कुछ चतुर व्यक्ति सामादि द्वारा कार्य सम्पादन करते हैं। उसमें प्राथमिकता साम को दी गयी है। शाहमीर ने साम

साम्नः केचित्परे भेदाद् दानादन्ते परे भयात् ।
मान्यतामनयन्धन्या लवन्यास्तस्य शासनम् ॥ २५८ ॥

२५८ कुछ तो साम[1] से, दूसरे भेद[2] से, अन्य लोग दान[3] से और कुछ भय[4] के कारण, उन धन्य लवन्यों ने उसका शासन[5] स्वीकार किया ।

नीति का अनुकरण कर कन्यादान किया था। पुनः श्लोक ५५९ मे वर्णन किया गया कि लवन्य लोगो ने कन्याओ को माला की तरह धारण किया। 'गुहुरो-न्मालकेन' शब्द से गुहुरा माला द्वारा कोटराज और कन्या रूपी मालाओ से लवन्यो को पकड लिया था।

श्रीदत्त ने जो भावानुवाद किया है उसमे लिखा है कि कोटराज ने अपनी कन्या का विवाह शाहमीर से किया था। यह अर्थ किसी प्रकार खीच-तानकर बैठाया गया है। शाब्दिक अर्थ भी नही है। अनुवाद भी नही है।

जोनराज स्वयं शाहमीर वंशियो का दरबारी कवि था। उसके समय काश्मीर की राजभाषा प्रायः संस्कृत थी। ऐसी स्थिति मे एक दरबारी कवि इसलाम विरुद्ध, मुसलिम समाज के प्रतिष्ठा विरुद्ध इस प्रकार की बात न लिखता।

(२) वरिंगं : यह व्रिग है। व्रिग एक जिला है। व्रिग सरिता की उपत्यका मे यह अचल विस्तृत है। लोकप्रकाश मे 'भृङ्ग' विषय का उल्लेख काश्मीर के २७ विषयो मे किया गया है।

(३) शैलूष : अभिनेता किंवा नर्तक अर्थ होता है। 'आः शैलूषापसद !', 'एवं सर्वमेव शैलूषजन व्याहरन्ति' (वेणीसंहार : १), 'अवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्' (शिशुपालवध . १ : ६९)।

(४) कोटराज : शाहमीर ने कोटराज से अपनी कन्या का विवाह किया था। कोटराज का उल्लेख तैलाक शूर के समान पुनः नही मिलता। कोट-राज प्रथम सुलतान का दामाद, द्वितीय तथा तृतीय सुलतान का बहनोई था। यह कालान्तर मे बन्दी बनाकर जेल मे रख दिया गया। वहा या तो उसकी मृत्यु हो गयी अथवा वह मार डाला गया।

पाद-टिप्पणी :

२५८ (१) साम : सामनीति समझौता, वार्ता, सन्धि, प्रसन्न, सन्तोष आदि नीतिमय कार्यो से शत्रु के मन को जीतने की क्रिया किंवा प्रथम उपाय है। राज्य शासन सुचारु रूप से चलाने के लिये सात उपायो का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो मे किया गया है। किन्तु लेखक उनके वर्गीकरण मे एकमत नही है। चार उपाय साम, दान, भेद, दण्ड मुख्य माने जाते है। राजनीति के चारो उपाय मुख्य अग है। विरोध का समाधान किंवा शमन, सन्धि, मैत्री, मेल-मिलाप, समझौता आदि राजनैतिक उपक्रमो द्वारा शत्रु पर विजय पाना अथवा राज्य कार्य को चलाना सामनीति के अन्तर्गत आता है। जोनराज ने शत्रु पर सफलता प्राप्त करने के लिये चारो उपाय का ही उल्लेख किया है; उसे 'उपाय चतुष्टय' कहा जाता है।

मनु ने केवल दो उपायो को मुख्य माना है। उनका मत है कि साम एव दण्ड (शक्ति किंवा युद्ध) केवल दो ही उपाय मुख्य हैं। साम के भी पाच भेद माने गये है। (मनु : ८ : १००–१०९, याज्ञवल्क्य : १ : ३४५; मत्स्य० : २२२ : २–३, सभा० : ५ : २१ ६७ : ३, अर्थ० : २ : १० : ४७)। साम उपाय का अभिप्राय है कि शत्रु को प्रसन्नकर, उसे सन्तोष देकर, मधुर एवं आकर्षक प्रिय बातों मे फँसा कर अपने पक्ष मे मिला लेना है।

(२) भेद : यह द्वितीय उपाय है। शत्रुओ मे अपनी नीति तथा चतुराई से भेद उत्पन्न कर तथा उन्हें परस्पर संघर्षरत कर दुर्बल कर देना भेद माना गया है। शत्रुओ मे मतभेद, वैमत्य, विरोध, विवाद, असहमति तथा फूट डालने की प्रक्रियायें भेदनीति के अन्तर्गत आती हैं। भेद के कारण शत्रुओ मे परस्पर सन्देह, ईर्षा, क्रोध उत्पन्न कर उन्हे शक्तिहीन कर

दिया जाता था। दुर्योधन ने माद्रीपुत्र सहदेव, नकुल तथा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन मे भेदनीति अपनाने का सुझाव देकर उनकी एकता तोडने का प्रयास किया था (आदि० : २०३)। अजातशत्रु ने लिच्छवियों पर विजय भेदनीति के कारण प्राप्त की थी। उनकी गणतन्त्र शासन प्रणाली को तोड दिया था,–जो एकता, संघटन एवं पारस्परिक विश्वास पर आधारित थी। महाभारत मे भेदनीति के कारण स्वतः विजय प्राप्ति के उदाहरण दिये गये है (शान्ति० : १०७)। कौटिल्य भेद डालने वाले व्यक्तियो की एक तालिका उपस्थित करता है (अर्थ० : १ : १४)। इस प्रकार के षड्यन्त्रकारियो से सावधान रहने तथा उन्हे नष्ट करने की बात बलवती भाषा मे महाभारत तथा अर्थशास्त्र दोनो ने की है(शान्ति० : ५७ : ३ ; अर्थ० : ५ : १)। कौटिल्य भेद फैलाने के विषय मे अन्य उपायो मे एक उपाय बताता है। वह काश्मीर के सम्बन्ध मे ठीक बैठता है—भेद-बीज-रोपण करने के लिये शत्रु के देश मे उस समय जाना चाहिए जब राजा विपत्ति मे पड गया हो अथवा राजा निरंकुश व्यवहार करता हो। उस समय प्रजा को भडकाना चाहिये। राजा से धन, अन्न तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओ की माग करे। यदि राजा अस्वीकार करे, तो जनता को चाहिए कि राजा को भय दिखाये कि वे देश का त्याग कर देंगे। (अर्थ० : १ : १३ : ३९६; शान्ति० : ९० : २२, १५० : ३; अग्नि० : २०० : ४१ : ३५)।

(३) दान : यह तृतीय उपाय है। शत्रु को कुछ देकर किंवा उसके सहयोगियो को उत्कोच, रिश्वत अथवा घूस देकर कार्यसिद्धि करने के उपाय की संज्ञा दाननीति से दी गयी है। धनदान, भूमिदान, रत्नदान तथा कन्यादान द्वारा शत्रु को अथवा किसी व्यक्ति को मिलाकर, उसे अनुकूल कर, कार्य साधन को दान कहते हैं। शाहमीर ने कन्या देकर, काश्मीर के कर्णधारो को अपनी ओर मिला लिया था। शेष को धनादि देकर अपनी तरफ मिला लिया था। शाहमीर ने जो, जिस प्रकार, जो भी कुछ लेकर, उसका पक्ष ग्रहण कर उसके राज्य संस्थापन में सहायक हो सकता था, उसने उन सब साधनों को अपना सम्बल बनाया था।

(४) भय : यह चतुर्थ उपाय है। जोनराज ने दण्ड के स्थान पर भय शब्द का प्रयोग किया है। दण्ड शब्द न प्रयोग करने का कारण यह मालूम होता है कि केवल शाहमीर के भय के कारण काश्मीरी आतंकित हो गये थे। उन्हें किसी प्रकार के प्रतिरोध करने का साहस नही रह गया। शाहमीर के भय के कारण काश्मीरियो का मनोबल टूट गया। कोटा रानी की हत्या के पश्चात, एक विदेशी को राजा होते देखकर भी वे न बोल सके। भयनीति मे शाहमीर ने युद्ध तथा शक्ति दोनो का आश्रय लिया। युद्ध से लवन्यों एवं कोटा रानी को पराजित किया तथा शक्ति से किसी को भी अपने विरुद्ध उठने नही दिया।

राजशास्त्र का नाम दण्डनीति भारतीय राजनीति के विद्वानो ने दिया है (शान्ति० : १५ : ८; ५९ : ७८; गौतम० : ११ : २८; अग्नि० : २२६ : १६)। नारद ने स्पष्ट लिखा है—'यदि राजा दण्ड की उपेक्षा करता है तो, प्राणियो का सर्वनाश हो जाता है।' (नारद० : १८ : १४)। कौटिल्य बलवती भाषा मे घोषणा करता है—'यह केवल दण्ड और दण्ड ही एकमात्र, जबकि राजा उसका प्रयोग निष्पक्ष भाव से अपराध के अनुरूप, अपने पुत्र या शत्रु पर करता है, तो लोक एवं परलोक दोनो को रख सकता है।' (अर्थ० : ३ : १, १५०) भय के कारण प्रजा स्थित रहती है, आचरणशील होती है, अपने कर्तव्यो का पालन करती है। मांझी तभी समृद्धिशाली हो सकेगा जब वह मछलियो को पकड़े और मारेगा (शान्ति० : १५ : १२-१५)। यही सिद्धान्त मनु भी प्रतिपादित करते है (मनु० : ७ : ६५, ९ : १२४)। शाहमीर ने चतुर मछुवे तुल्य अपने विरोधी तत्वो को पकडा। उन्हें मारा। फल उसकी समृद्धि थी। राज्य प्राप्ति थी। भीष्म कहते हैं—'जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता

लवन्यलोकस्तत्पुत्रीर्माला इव बभार ताः।
नाजानाद् भुजगीर्घोरविषाः प्राणहरीः पुनः ॥ २५९ ॥

२५९. लवन्य लोक उसकी पुत्रियों को माला के समान धारण किया किन्तु यह नहीं जाना कि, घोर विषैली सर्पिणियाँ अन्त में प्राणहरण करने¹ वाली होती हैं।

उस राज को चूती अर्थात् पानी से भरती नाव के समान त्याग देना चाहिए।' (शान्ति० : ५७ : ४४-४५)। काश्मीर के राजागण, सामन्तगण, प्रजा की रक्षा लवन्यों तथा विदेशियों के अत्याचार से नहीं कर सके, अतएव प्रजा ने उनका साथ भी चूती हुई नाव के समान त्याग दिया। शाहमीर ने भय के कारण आततायियों को आतंकित किया। तत्काल जनता उसके विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकी। चाहे कालान्तर में राज्य विदेशियों के हाथों में भले ही क्यों न चला गया।

(५) शासन : शाहमीर ने अपनी चतुरता तथा शक्ति से लवन्यों का दमन किया। मध्ययुगीय यूरोपीय राष्ट्रों तथा भारत के राज्यों के समान परिस्थिति काश्मीर में उत्पन्न हो गयी थी। यूरोप में फ्यूडल लार्ड्स सेना रखते थे और परस्पर युद्ध करते थे। राजा की उपेक्षा करते थे। मध्यकालीन राजाओं के सामन्त, जागीरदार, ताल्लुकेदार तथा सरदार परस्पर संघर्ष करते थे वही परिस्थिति काश्मीर में उत्पन्न हो गयी थी। शाहमीर ने राजा उदयनदेव के काल मे लवन्यों का दमन किया, अधीन किया। राजा उदयनदेव का शासन मानने के लिये उनका दमन नहीं किया था। उनका दमन अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये किया था। इस प्रकार शाहमीर उदयनदेव राजा के प्रति स्वामिभक्ति एवं अनुशासन न कराकर, अपने प्रति उनकी निष्ठा एवं भक्ति प्राप्त किया। उनका अनुशासन किया। लवन्यों ने शाहमीर की शक्ति देखकर मस्तक झुका दिये। इस प्रकार काश्मीर मे राज्य के अन्दर दूसरा राज्य बन गया था। लवन्यों की राजभक्ति विभाजित हो गयी। जनता की राजभक्ति विभाजित हो गयी। समय आने पर जनता ने कोटा रानी अथवा काश्मीर राज्य के प्रति, काश्मीर राजा के प्रति न तो भक्ति प्रकट की और न उनके नष्ट होने पर अथवा काश्मीर में विदेशी शासन स्थापित होने पर, दो बूँद आँसू बहाया। क्योंकि वह दो नाव पर पैर रखकर चल रही थी और दो नाव पर पैर रखकर चलने वाला निश्चय डूबता है।

काश्मीर राज की नाव डूबते ही जनता, सामन्त सब जल में गिर पड़े। शाहमीर अपनी नाव पर बैठ तमाशा देखता रहा। उन्हें उबारने का प्रयास नहीं किया।

पाद टिप्पणी :

२५९ (१) प्राणहरी : जोनराज सत्य निष्कर्ष पर पहुँचा है। लवन्य काश्मीर की सेना तथा शक्ति के प्रतीक थे। उन लोगों से अपनी पुत्रियों का विवाह कर शाहमीरादि मुसलमानों ने प्रत्येक हिन्दू अभिजात कुल में विष बेल लगा दी थी। चाणक्य-वर्णित विषकन्याओं से भी ये विषैली प्रमाणित हुईं। विषकन्या व्यक्तिविशेष प्रायः एक ही पुरुष का नाश करती है, परन्तु शाहमीर की विषकन्याओं ने प्रथम कुल को नष्ट किया, तत्पश्चात् काश्मीर के सामाजिक जीवन को विषाक्त बना दिया एवं समस्त काश्मीर की संस्कृति, सभ्यता कुलाचार आदि को नष्ट कर, अन्त में देश की स्वतन्त्रता भी नष्ट कर दी। शाहमीर के इस षड्यन्त्र एवं कूटनीति से अनभिज्ञ रहने के कारण लवन्य समझ न सके कि वे किस प्रकार कोमल शैवाल मे उलझते डूबने जा रहे थे। प्रत्येक शक्तिशाली एवं सम्भ्रान्त प्रसिद्ध कुलों में मुसलिम गुप्तचर दुलहिन रूप में प्रवेश कर, घर की मालकिन बनकर, बैठ गयी थी। यह गुप्तचर ऐसा प्रभावशाली एवं शक्तिशाली था, जिसने शल्य नीति के द्वारा लवन्यों की वीरता एवं मनोबल तोड़ दिया। उन्हें कोटा रानी से विमुख कर, शाहमीर की ओर कर दिया। जब शाहमीर ने अपने नग्न रूप का प्रदर्शन किया तो

काश्मीर के सामन्त, लवन्य, एवं डामर मन्त्रमुग्ध सर्प के समान निःशक्त होकर रह गये और शाहमीर ने एक-एक को पीस डाला। वे सिसक भी न सके, उठना चाहकर भी उठ न सके। अपने मस्तक झुका दिये। उसकी अधीनता चुपचाप स्वीकार कर लिये। काश्मीर के हिन्दू राजा संस्कृति, धर्म एवं आचार विनाश के मूक द्रष्टा बने रहे। अन्त मे अपने धर्म को भी त्याग कर मिल्लते-इसलाम मे शामिल हो गये। प्रतिरोध न कर सके।

परमेश्वर मलाया का अन्तिम हिन्दू राजा था। मलाया मे धीरे-धीरे अरब तथा मुसलिम व्यापारी प्रवेश करने लगे। भारतीय गुजराती नव मुसलिम मलाया मे व्यापार करते थे। शाहमीर ने जो नीति काश्मीर मे अपनायी, वही मलाया मे बाहरी मुसलमानो ने अपनायी। राजभवन तथा राजवंश मे मुसलिम प्रभावशाली व्यक्तियो का प्रवेश विवाह सम्बन्ध से हो गया।

पासे के सुल्तान ने अपनी कन्या की शादी परमेश्वर से की, जिससे उसने भी मुसलिम प्रभाव मे आकर इसलाम धर्म स्वीकार किया। उसका नाम इस्कन्दर रखा गया। उसकी हिन्दू स्त्री से भी सन्ताने थी। अनेक मुल्ला इसलाम प्रचार करने का कार्य करने लगे।

राजा परमेश्वर का पुत्र हिन्दू स्त्री से था। उसने मुसलिम धर्म नही ग्रहण किया। उसकी भी शादी एक मुसलिम कन्या से कर दी गयी। उसने भी पिता के समान मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया। पिता परमेश्वर ने इस्कन्दर के समान नाम बदलकर उसका मुसलिम नाम सिकन्दर शाह रख दिया। किन्तु उसने श्री विजय तथा श्री महाराज की पदवी धारण की। यद्यपि धर्म उसका मुसलमान ही था। सिकन्दर को भी अपनी पूर्व हिन्दू स्त्री से सन्तानें थी। उसका पुत्र परमेश्वरदेव शाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। वह हिन्दू राज्य पुनः स्थापित करना चाहता था। उसका पूर्व नाम इब्राहीम था। तामिल मुसलिमो को जो मलाया मे आबाद थे उन्हें यह बात रुचिकर न लगी। परमेश्वरदेव का बड़ा भाई कासिम था। उसकी मां तामिल मुसलिम स्त्री थी। तामिल मुसलिमों के षड्यन्त्र से कासिम ने षड्यन्त्र किया। राजा परमेश्वर कोटा रानी के समान सिंहासन त्यागने के लिये बाध्य किया गया। उसकी हत्या कर दी गयी। कासिम मुजफ्फर शाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। उसके समय काश्मीर के मुसलिम धर्म के प्रचारक सिकन्दर बुतशिकन के समान किया गया। समस्त मलाया ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया। जनश्रुति के अनुसार काश्मीर मे रिंचन प्रथम मुसलमान राजा हुआ। उसके पश्चात् हिन्दू राजा उदयनदेव हुआ। उदयनदेव के पश्चात् कोटा रानी को मारकर शाहमीर राजा हुआ। परमेश्वर भी मलाया मे प्रथम मुसलिम राजा हुआ। तत्पश्चात परमेश्वरदेव शाह राजा हुआ। उसके पश्चात् कासिम ने अपना नाम मुजफ्फर शाह रखकर मुसलिम सुलतान बना। उसके अनन्तर मलाया मे मुसलिम राजवंश की परम्परा चल पड़ी (दक्षिण पूर्व एशिया - पृष्ठ : ३१०–३१२)।

शाहमीर ने अपनी पौत्री अलीशेर की कन्या की शादी लुस्ता से कर दी। दूसरी पौत्री जमशेद की कन्या की शादी भागिल के अधिकारी तैलाकशूर से कर दी। वह शाहमीर के पश्चात् काश्मीर का द्वितीय सुलतान हुआ था। शाहमीर ने अपनी कन्या गुहरा का विवाह ब्रिग परगना के स्वामी कोटराज से कर दी। इस प्रकार तीन प्रशासकीय अधिकारियो, तथा लुस्ता एव अन्य लवन्य नेताओ के साथ मुसलमान कन्याओ का विवाह कर दिया गया। मडवराज, क्रमराज उसके पुत्रो के पास थे। अनन्तर उसने काश्मीर का कम्पनेश्वर पद स्वयं लिया। तत्पश्चात शाहमीर ने समाला प्रदेश अपने अधीन कर लिया, कराल भी एक प्रकार से उसके अधीन था। इस प्रकार उसने काश्मीर मण्डल के चार परगने किंवा विषय पर कर लगाया था। जब कोटा रानी राजसिंहासन पर बैठी तो लगभग अर्ध काश्मीर मण्डल शाहमीर तथा उसके सगे-सम्बन्धियो के अधिकार मे आ गया था। तत्पश्चात शाहमीर

राजबीजिविधेयत्वान्मन्त्राद्विक्रमतश्च कः।
शाहमेरहरेर्नाभूल्लवन्यद्विरदो वशे ॥ २६० ॥

२६० राजबीजि[1] की विधेयता (कर्तव्य निष्ठता), मन्त्र[2] एवं विक्रम से कौन लवन्य द्विरद (गज) उस शाहमीर सिंह के वश में नहीं हो गया।

ने श्रीनगर भी ले लिया। शाहमीर ने जिस समय कोटा रानी को अन्दर कोट में घेर लिया था, उस समय लगभग दो तिहाई काश्मीर मण्डल उसके प्रभाव में था। अकेली कोटा रानी चाह कर भी कुछ कर न सकती थी।

शाहमीर सघटित था। काश्मीर के दो तिहायी पर प्रभाव स्थापित कर महान सत्ताशाली हो गया था। कोटा रानी की जो शक्ति रह गयी थी वह विभाजित थी। सामन्तो एवं मन्त्रियो में एकता नहीं थी।

उस समय मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५–१३५१ ई०) दिल्ली का बादशाह था। वह महत्वाकांक्षी था और चीन विजय करने की कल्पना करता था। विजय हेतु उसने सेना भी भेजी थी। यद्यपि सेना को सफलता नहीं मिली और हिमालय के कारण उनमे से कितने ही सैनिक शीत से मर गये। मुहम्मद तुगलक की योजना खुरासान तथा फारस तक आक्रमण करने की थी। किन्तु योजना सफल न हो सकी। पश्चिमोत्तर सीमा से मुगलो के आक्रमण होते रहे। उसने इस खतरे से दिल्ली राजधानी को रक्षा करने के लिये दक्षिण देवगिर अर्थात दौलताबाद मे राजधानी बनाने की योजना बनाई थी। परन्तु इसम सफलता न मिली।

प्रश्न उठता है—काश्मीर विजय की योजना मुहम्मद तुगलक ने क्यों नहीं बनायी? यह कहना गलत होगा। शेष भारत के मुसलिम शासक काश्मीर के प्रति उदासीन नहीं थे। वे काश्मीर मे स्थापित दृढ हिन्दू राज्य के प्रति जागरूक थे, वे काश्मीर विजय अन्दर से करना चाहते थे। हिन्दू राज्य तथा वहाँ के मन्दिरो की शृङ्खला उनके आँखो में गड रही थी। मुहम्मद तुगलक ने मुल्लाओ तथा मौलवियों को काश्मीर मे जाकर धर्म प्रचार करने के लिये प्रेरित किया। यहाँ एक उदहरण दे देना अलम् होगा। मुहम्मद तुगलक ने मौलाना शमसुद्दीन यहया को जो आदेश दिया था उसमे उस समय की भावना का पता चलता है।

'—और—तेरा जैसा बुद्धिमान यहा क्या कर रहा है? तू काश्मीर जाकर वहा के मन्दिरो में निवास कर और लोगो को इस्लाम की ओर आमन्त्रित कर——।' (तुगलककालीन भारत. १ : १४४ अलीगढ विश्वविद्यालय)।

निःसन्देह काश्मीर म उस समय गैर काश्मीरी मुसलमान अत्यधिक सख्या म उपस्थित थे। बादशाह की भावना तथा उनका विचार काश्मीरस्थित मुसलमानों तक पहुँचाया गया। शाहमीर उस षड्यन्त्र का केन्द्र था। उसने अपनी चतुर नीति से काश्मीर को बिना बाहरी आक्रमण, आन्तरिक विद्रोह द्वारा लेने की योजना बनाई। विवाह सम्बन्ध तथा धीरे-धीरे राज्य एव शासनसूत्र अपने सम्बन्धियो के हाथो मे देकर सचालित कराता वह। स्वय एक दिन बादशाह बन गया।

पाद टिप्पणी

२६० (१) राजबीजि राजवश, आज भी काश्मीर म बीजि का अर्थ बीज के लिये और जन साधारण म बीज वश के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

(२) मन्त्र मन्त्र का अर्थ षड्यन्त्र मानना चाहिये। मन्त्र शब्द का प्रयोग जोनराज ने प्राय भेदनीति एव षड्यन्त्र के लिये किया है। मन्त्र शब्द का प्रयोग षड्यन्त्र अर्थ में पुन श्लोक० ५१५ तथा ७५६ म जोनराज ने किया है। मन्त्र के अन्य अर्थों के साथ गुप्त वार्ता, मन्त्रणा, परामर्श, षड्यन्त्र मन्त्रणा अर्थ मे सस्कृत साहित्य मे व्यवहृत होता रहा है (रघु० १ २०, १७ : २०, पच० २ १८२, मनु० ७. १८)।

(३) विक्रम - शाहमीर अपने पुत्रो एव पौत्रो को राज्याधिकारी तथा विदेशी मुसलिमो को सघटित

शाहमेराम्बुपूरेण कमलोल्लासशालिना ।
आक्रान्तः परितो राजा मृद्राशिस्थद्रुमोपमः ॥ २६१ ॥

२६१ कमलोल्लासशाली शाहमीर अम्बुपूर[1] द्वारा मिट्टी के ढेर पर स्थित द्रुम तुल्य राजा,[2] चारों ओर से आक्रान्त[3] कर लिया गया ।

पुरमात्राधिपत्योत्थलज्जयेव महीपतेः ।
जीवितं दूरमगमच्छुद्धेन यशसा समम् ॥ २६२ ॥

२६२ पुरमात्र का अधिपत्य[1] अवशेष रहने के कारण, लज्जा से ही मानो महीपति का प्राण शुद्ध यश के साथ दूर चला गया ।

कर, शक्तिशाली हो गया था। उसकी भेदनीति, षड्यन्त्र-पाश मे जो लोग नही फसे थे, उन्हें उसने अपनी शक्ति से वश मे कर लिया ।

पाद-टिप्पणी :

२६१. (१) अम्बुपूर : जलप्लावन, जलप्रवाह, बाढ । परसियन मे सैलाव तथा काश्मीरी मे सड्लाव कहा जाता है ।

(२) राजा : उदयनदेव । फिरिश्ता इसका नाम अनन्ददेव देता है । लिखता है कि सेनदेव (सूहदेव-सहदेव) के पश्चात् शाहमीर उसके उत्तराधिकारी एव राजा रुंजुन का प्रधान मन्त्री बन गया । रुजुन के पश्चात् होने वाले दूसरे उत्तराधिकारी चन्द्रसेन का अभिभावक हो गया । राजा रुंजुन के मृत्यो-परान्त राजा अनु-ददेव (उदयनदेव) काशगर से आया । उसने अति समीपस्थ रक्त-सम्बन्धी होने के कारण सिहासन पर अधिकार का दावा किया और शाहमीर को प्रधान मन्त्री बनाया तथा उसके दोनो पुत्रो को अत्यन्त वैभव दिया (४ : ४५२) । फिरिश्ता का वर्णन तथ्य से परे है । रुजुन वास्तव मे रिंचन है । सूहदेव को रुजुन नामक कोई पुत्र नही था । सूहदेव के पश्चात् रिंचन राजा हुआ था । निःसन्देह रिंचन के पश्चात् उदयनदेव राजा हुआ था ।

(३) आक्रान्त : फिरिश्ता लिखता है 'जनता के मन पर शाहमीर ने प्रभाव जमा लिया था । राजा शाहमीर से ईर्षा करने लगा । राजा ने उसका दरबार मे आना बन्द कर दिया था । शाहमीर इस प्रकार अलग-सा हो गया । शाहमीर तथा उसके पुत्रो ने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । उसने जब काश्मीर उपत्यका पर अधिकार कर लिया तो राजा के प्रायः सभी सेना तथा राज्याधिकारी शाह-मीर के साथ हो गये । इस परिद्रोह के कारण भग्न हृदय राजा हिजरी ७२७ मे मर गया' (४ : ४५२-४९३) ।

फिरिश्ता ने किसी सुनी-सुनायी बातो पर अपना वर्णन लिखा है । अथवा तत्कालीन राजतरंगिणी के गलत परसियन अनुवाद पर अपना मत स्थिर किया है । फिरिश्ता की बाते परसियन, जोनराज तथा किसी इतिहासकार से मेल नही खाती ।

राजा निश्चय आक्रान्त कर लिया गया था । वह नाममात्र के लिये राजा था । उसकी रानी कोटा देवी सर्वाधिकारिणी थी । शाहमीर के पुत्र तथा उसके सम्बन्धियो के हाथ मे दो तिहाई काश्मीर की सत्ता आ गयी थी । सेना पर उसका नियन्त्रण नही रह गया था । वह पगु हो गया था । जोनराज उसकी इस अक्रान्त स्थिति का अन्य कारण दिया है, जिसका यथास्थान वर्णन किया गया है ।

पाद-टिप्पणी :

२६२ (१) आधिपत्य : प्रतीत होता है । अन्तिम मुगल बादशाहो के समान जिनका राज्य दिल्ली मात्र तक सीमित रह गया था, राजा उदयनदेव का राज्य किवा अधिकार श्रीनगर मात्र तक रह गया था । काश्मीर मण्डल मे शाहमीर के दोनो पुत्र राज्याधिकारी

शिवरात्रित्रयोदश्यां वर्षे राजा चतुर्दशे।
क्षमावान्स क्षमामौज्झीच्छह्मेरस्पर्शदूषिताम् ॥ २६३ ॥

२६३ चौदहवें (४४१४) वर्ष की शिवरात्रि त्रयोदशी को उस क्षमाशील राजा ने शाहमीर के स्पर्श से दूषित क्षमा (पृथ्वी) को त्याग दिया।

हो गये थे। शेष पर उसने अपने सम्बन्ध द्वारा प्रभाव स्थापित कर लिया था। इस प्रकार शाहमीर ने जो फन्दा फैलाया था, वह सिकुडता-सिकुडता सख्त होता गया, जिसने काश्मीर राज्य का गला घोट दिया। उदयनदेव की राज्य व्यवस्था टूट गयी, उसके साथ ही प्राण ने भी उदयन का साथ छोड दिया।

पाद-टिप्पणी :

२६३ उक्त श्लोक सख्या २६३ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या २९८ अधिक है। उसका भावार्थ है—'पन्द्रह वर्ष दो मास दो दिन काश्मीर भूमि का भोग किया।' भूल से २ दिन के स्थान पर १२ दिन लिखा गया है।

एक मत के अनुसार २ दिन के स्थान पर १२ दिन लिखा गया है। परसियन इतिहासकारो का मतैक्य मृत्यु काल के सम्बन्ध मे नहीं है। अबुल-फजल मृत्यु काल सन् १४१३ ई० तथा निजामुद्दीन सन् १३४६ ई० देते हैं। हिजरी सन् मे उसका मृत्यु-काल ७४२ दिया गया है। इसके अनुसार गणना से सन १३४१–१३४२ ई० आता है। जोनराज दिन तथा सम्वत् दोनो देता है। उसकी काल गणना म अविश्वास करने का कोई कारण नही मालूम होता। परसियन इतिहासकारो ने प्राचीन सम्वतों को हिजरी में परिवर्तित करने के कारण प्राय गलती कर दिया है। जोनराज के अनुसार सप्तर्षि किंवा लौकिक सम्वत् ४४१४,=सन् १३३८ ई०=सम्वत् १३९५=शक १२६० फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी शिवरात्रि होगा।

लल्लेश्वरी=आश्चर्य है जोनराज ने लल्लेश्वरी का उल्लेख नहीं किया है। श्रीवर तथा शुक की राज-तरंगिणियो मे भी लल्लेश्वरी का वर्णन नहीं मिलता। यह एक विचित्र पहेली है। लल्लेश्वरी, रूपभवानी किंवा एव जमन देद काश्मीर मे सन्त देवियाँ हुई हैं। हिन्दू लल्ला को लल्लेश्वरी, लल्ला योगेश्वरी एव लल्ला माजी या लल्ल देद कहते हैं। श्री बजाज ने लल्ला का जन्म सन् १३३५ ई० दिया है। उसके जन्म के चार वर्ष पश्चात् हिन्दू राज्य का काश्मीर मे लोप हो गया था। किन्तु उन्होंने किसी आधार-ग्रन्थ का सन्दर्भ नही दिया है।

डॉ० सूफी ने परसियन इतिहासकारो का अनुकरण किया है। डॉ० सूफी ने भी किस प्रकार लल्लेश्वरी का जन्म काल निश्चित किया है, इसका न तो कोई प्रमाण उपस्थित करता है न सन्दर्भ एव आधार ग्रन्थ का ही कोई उल्लेख करता है प्रमाण के अभाव मे कुछ निश्चय करना कठिन है। सूफी ने जन्म काल सन् १३३५ ई०=७३५ हिजरी सन् दिया है। लिखते हैं कि लल्लेश्वरी राजा उदयनदेव के काल मे हुई थी। दाउद मिश्की तथा आजम उसे गलती से सुलतान अलाउद्दीन तथा शिहाबुद्दीन का समकालीन मानते हैं (असरारुल अबरार पाण्डु ३२३ ए–३२८ ए तथा तारीखे अजम पाण्डु० २९)।

लल्लेश्वरी के साथ नन्द ऋषि का कथानक जोडा गया है। नन्द ऋषि का जन्म परसियन लेखको के अनुसार सन् १३७७ ई० कैमुह मे हुआ था। जनश्रुति के आधार पर लिखा गया है कि लल्ला ने नन्द ऋषि को दूध पिलाया था।

कथा है,—लल्ला का जन्म पुराधिष्ठान (पद्रत्थेन) मे हुआ था। उसका मूल नाम पद्मावती था। विवाह पामपुर में १२ वर्ष की अवस्था म हुआ था। पति उसे कष्ट देता था, सौतेली सास उसे बहुत कष्ट देती थी। सास के दुर्व्यवहार के कारण उसने पति का गृह त्याग दिया। लल्ला का नाम लल्लदेद पड गया

था। वह योगेश्वरी थी। उदर मे पड़ी वलि जो लटक जाती है। उसे लल्ल कहते हैं। उसके पेट की वलि लटक गयी थी। अतएव नाम लल्लदेद पड गया था। वह ग्रामो, सड़को, एवं गलियों मे अर्धनग्न, फटे चिथडो मे लिपटी गाती फिरती थी। उसकी नग्नावस्था का यदि कोई विरोध करता तो वह कहती—'मैंने अभी कोई आदमी नही देखा।' कहते है, कि सैय्यद अली हमदानी से वह प्रभावित हुई थी। एक दिन उसने हमदानी को देखा। देखते ही वह उठी—'आदमी देखा—आदमी देखा।' वह भाग खडी हुई। शरीर ढँकने के लिये वह वस्त्र चाहती थी। एक पंसारी 'होय' के पास गयी और उसकी दूकान मे घुसना चाही। उसने उसे पागल समझकर एक 'नोच' (कलछी) से मारा। वह भाग गयी। वह एक 'कान्दूर' (तन्दूर) वाले के पास गयी। काश्मीर का तन्दूर इतना बडा होता था कि उसमे आदमी समा सकता था। वह तन्दूर मे घुस गयी। तन्दूर वाले ने तन्दूर का मुख ढँक दिया। शाह हमदान पीछे आ रहा था, वह निकल गया। तन्दूर वाला डर से तन्दूर का मुख बन्द किये रहा। सोचा, वह जल कर राख हो जाय तो तन्दूर का मुख खोले। कुछ समय पश्चात् तन्दूर वाले ने तन्दूर का ढक्कन उठाया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही—सोलहो शृङ्गार किये एक युवती निकली। 'होय' के पास सम्पत्ति आयी थी। उसे उसने मार भगाया। 'कान्दूर' के पास सम्पत्ति रह गयी। वह दिन प्रतिदिन समृद्धिशाली होता गया। काश्मीरी मे कहावत है—'आये होया नेस्त गये कन्दरस।'

शायद ही ऐसा कोई काश्मीरी हिन्दू या मुसलमान होगा जिसे लालदेद के पद, कहावत आदि न याद हो।

लल्लेश्वरी के समकालीन नुरुद्दीन ऋषि थे। उनका जन्म सन् १३७७ ई० मे केभुह ग्राम मे हुआ था। दाउद मिश्की उसका जन्म काल हिजरी ७५४ = सन् १३५६ ई० तथा मोहिउद्दीन मिश्की हिजरी ७७९ = सन् १३७७–१३७८ देते है। (असारुल अबरार पाण्डु० : ६१ तथा तारीखे–आजम पाण्डु० ५३ ए. तारीखे कबीर, पृष्ठ ९२; इण्डियन एण्टीक्वेरी १९२१ एल पृष्ठ ३०९; तथा जे० एस० बी० १८७० पृष्ठ २६५)। उसके पूर्वज किस्तवार निवासी थे और काश्मीर मण्डल मे आकर आबाद हो गये थे। उसके पिता सहजानन्द साधुप्रकृति व्यक्ति थे यशमन ऋषि के संसर्ग मे आये। उन्होने उसका विवाह सदर माजी से करा दिया था। उन्ही के पुत्र नन्द ऋषि थे। प्रारम्भ से विरक्त प्रकृति थे। उन्होने कोई काम तथा व्यापार नही किया। तीस वर्ष की अवस्था मे ससार त्याग कर १२ वर्षों तक एक गुफा मे ध्यान करते रहे। वहाँ वे शुद्ध शाकाहारी भोजन करते थे। लिख-पढ नही सकते थे तथापि उनकी वाणी ने काश्मीर साहित्य को यथेष्ट योग दान दिया है। उनके वचन ऋषिनामा तथा नूरनामा मे संग्रहीत हैं। वे परसियन मे लिखे गये हैं अतएव बहुत से न तो शुद्ध पढे जा सके हैं और न उनका उच्चारण ही ठीक हो सका है। उन्होने काश्मीरी ऋषियो की परम्परा डाली है (आइने-अकबरी : २ ६३९; जरेट : २ :३५३–३५४, तबक़ात-ए-अकबरी ३ : ४८५, तथा फिरिश्ता ३ : ३६०)।

ऋषि पद काश्मीर के अनेक हिन्दू-मुसलिम कम अर्थात् कुटुम्ब मे नाम के साथ लगाया जाता है यह प्राचीन ऋषि परम्परा का काश्मीर मे द्योतक है। (दाउद मिश्की : असारुल अबरार : पाण्डु० : ६५ ए–८८ बी, तारीखे-कबीर . ८७–८८, तारीखे आजम : ५८)।

नन्द ऋषि का नाम नुरुद्दीन शेख पड गया था। उनकी कब्र चरार शरीफ मे है। बादशाह जैनुल आबदीन उनके जनाजे के साथ गये थे। अता मुहम्मद खाँ अफगान सूबेदार ने उनके नाम की मुद्रा काश्मीर मे टकणित कराई थी। परसियन लेखको का मत है कि लल्लेश्वरी ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया था। उसका नाम इस्लाम कबूल करने के पश्चात् लल्ला पड गया। लल्लेश्वरी की, रचनाओ से नुरुद्दीन ऋषि बहुत प्रभावित हुए थे।

लल्ला के पदो मे एकेश्वरवाद-दर्शन झलकता है। यदि लल्ला का जन्म सन् १३३५ ई० मान लिया जाय तो वह राजा उदयनदेव, कोटा रानी, सुलतान शाहमीर, जमशेद, अलाउद्दीन, शिहाबुद्दीन तथा कुतुबुद्दीन के समय तक जीवित थी। उसकी आँखो के सामने काश्मीर के राजा एवं सुलतान गुजरे थे।

कबीर साहब के समान उसे हिन्दू लोग हिन्दू तथा मुसलमान लोग मुसलमान मानते हैं। उसके देहावसान के पश्चात् कबीर तुल्य दोनो जातियो ने उसका मृत्यु संस्कार अपने धर्मों के अनुसार करना चाहा। परन्तु कहा जाता है कि वस्त्र उठाने पर केवल फूल मिला था। एक पुरानी कब्र जो बिजब्रोर–विजयेश्वर, जामा मसजिद के बाहर है, उसकी कब्र बताई जाती है। उसे लल्ला मोद कहते हैं। लल्लेश्वरी की हिन्दू-मुसलमानो मे बडी मान्यता है।

सूफी दर्शन जिस समय ईरान मे मुकुलित हो रहा था, उसी समय लल्लेश्वरी ने अपने वाक्यो से अध्यात्म एवं रहस्यवादी विचारधारा प्रवाहित की। ईरान का सूफीवाद एवं काश्मीर का रहस्यवाद दोनो धारायें पश्चिम एव पूर्व से उठकर मिलीं। उनका मिलन-स्थान काश्मीर था। उससे एक तीसरी धारा निकली। वह काश्मीर का मध्ययुगीय रहस्यवाद है। उसका बीजारोपण देवी लल्लेश्वरी ने किया था। उसकी रचनाओ मे हिन्दू, बौद्ध एव इस्लामी रहस्यवाद का अद्भुत समन्वय मिलता है। वह शैव-दर्शन से प्रभावित थी। किन्तु उस दर्शन को उसने नवीन दिशा दी थी। जनता की भाषा मे विचारो को व्यक्त किया था। जनता ने उसे समझा—उसे गायी और मुग्ध हो गयी।

लल्लेश्वरी काश्मीर की मीराबाई कही जायगी। उसके वाक्य शत-शत काश्मीरियो की वाणी से आज भी मन मे स्फूर्ति एवं नवचेतना संचारित करते हैं, उसके वाक्य हृदयस्पर्शी हैं। उसके वाक्यो का जीवन-प्रसंग मे उद्धरण देकर, सर्वदा स्मरण किया जाता है। उसके वाक्यो ने काश्मीरी सदाचार, काश्मीरी चरित को प्रभावित किया है। उनमे काश्मीरी संस्कृति एवं जीवन की झाकी मिलती है।

मूल्यांकन : परसियन इतिहासकार चाहे जो लिखे परन्तु विदेशी शासन से काश्मीर को मुक्त करने का श्रेय उदयनदेव को देना पडेगा। परसियन इतिहासकार उदयनदेव को जड प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। परन्तु उदयनदेव ने काश्मीर से बाहर रहकर रिंचन के शासन को उलटने का प्रयास किया था। उसके षड्यन्त्र के कारण ही रिंचन घायल हुआ। अन्त मे उसी आघात के कारण दिवंगत हो गया। जोनराज स्पष्ट वर्णन करता है कि रिंचन के मरने के पश्चात् यद्यपि लवन्य उदयनदेव के विरोधी थे, तथापि उदयनदेव ने बिना रोक-टोक काश्मीर मे प्रवेश किया, राज्य ले लिया। शाहमीर रिंचन के पुत्र को सिंहासन पर बैठाने का साहस नही कर सका। वह उदयनदेव से शत्रुता मोल लेना नही चाहता था। उदयनदेव स्वयं भी शाहमीर से प्रसन्न नही था। यह भी ध्वनि जोनराज के पदो से निकलती है। उदयनदेव कुशल राजनीतिज्ञ था। काश्मीर के रिक्त सिंहासन के हस्तगत हेतु उत्सुक हो गया था। काश्मीरियो ने पुनः काश्मीरियो के हाथ मे शासन आते देखकर विरोध नही किया। किसी काश्मीरी सामन्त या जनता ने उदयनदेव का विरोध किया, इसे न तो जोनराज लिखता है और न परसियन इतिहासकार।

उदयनदेव दूरदर्शी नही था। उसके समय मे काश्मीर राज्य प्राप्त करने के लिये शाहमीर के नेतृत्व मे षड्यन्त्र तेजी से चला। समय की गति, हवा का रुख, उदयनदेव समझ नहीं सका। शाहमीर के सुनियोजित षड्यन्त्र-पाश मे फँसता गया। यदि रिंचन के पश्चात् कोटा रानी काश्मीर की शासिका होती, तो इतिहास की गति बदल सकती थी।

शाहमीर के दो पुत्र जमशेद एवं अली शेर (अलाउद्दीन) थे। शाहमीर ने राजा को प्रभावित कर क्रमराज आदि प्रदेशो का उन्हें शासक बनवा दिया

था। राजा तथा उसके मन्त्री वर्ग या तो जड थे अथवा मूर्ख। इस प्रकार वस्तुत: काश्मीर के एक भूखण्ड का शासक शाहमीर बन गया। विदेशी के हाथो में काश्मीरी राजा ने स्वय राज सौंप दिया था।

उदयनदेव चतुर शासक न होकर क्रमशः धर्म की ओर झुकता गया। समय पूजा-पाठ मे बीतने लगा। वह किसी क्षत्रिय राजा के समान नही बल्कि किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के समान स्नान, तप, पूजा, जप मे समय व्यतीत करता था। दूसरी तरफ शाहमीर राजा की उदासीनता का लाभ उठाकर, शक्ति-सचय मे तत्पर था। उदयनदेव मुहूर्त मात्र के लिये भी नही समझ सका कि उसकी इस धर्मध्वजी नीति से काश्मीर ही नही समस्त भारत मे मुसलिम साम्राज्य स्थापित होने की सम्भावना हो सकती थी।

वह इतना धार्मिक हो गया था कि अहिंसा की चरम सीमा पार कर गया, जो किसी भी राजा अथवा राष्ट्र के लिये खतरनाक थी। उसने घोडो को गलो मे घण्टा बधवा दिया ताकि उनके चलते समय कोई जीव-जन्तु घोडो के टाप के नीचे कुचलकर मर न जाय। उसने राजकोश का दान भगवान तथा देवस्थानो पर कर दिया।

राजा सेना तथा सुरक्षा के प्रति जागरूक नही था। उसने राजकोश का उपयोग सैन्य शक्ति-वृद्धि के स्थान पर धार्मिक कार्यों मे किया। उस काश्मीर ने, जिसने, महमूद गजनी को दो बार पीछे हटाकर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की थी—वही काश्मीर निर्बल हो गया था,—अरक्षित हो गया था। अचल ने अपनी सेना के साथ बिना अवरोध काश्मीर मे प्रवेश किया। राजा ने भी अचल का सामना अपनी अहिंसक नीति के कारण नही किया। वह रक्तपात को काश्मीर से दूर रखना चाहता था। रक्तपात होगा, काश्मीरी भी मरेंगे, इस भय से राजा ने अचल का विरोध नहीं किया। किसी भी देश के राजा के लिये यह स्थिति राष्ट्र-संहारक कही जायगी।

अचल की सेना भीमानक स्थान पर पहुँची तो राजा भौट्ट देश चला गया। उसने काश्मीर को काश्मीर के भाग्य पर छोड दिया। वह अति धार्मिक होने के कारण कर्मवादी के स्थान पर भाग्यवादी हो गया था। सब कुछ ईश्वर की इच्छा से होता है। इस विश्वास से मोहित होकर उसने नृपोचित कर्म का, प्रजा की रक्षा का प्रयास नही किया। जो होने वाला है वह होगा ही, इस नीति ने उदयनदेव को निष्क्रिय एवं जड बना दिया। कोटा रानी चतुर राजनीतिज्ञ थी। परिस्थितियो से लाभ उठाकर शाहमीर स्वयं राज्य ले सकता था। इस सकट से बचने के लिये राजा के अभाव मे खे रिंचन को कोटा रानी ने राजपद पर आसीन कर काश्मीरी सेना का सघटन आरम्भ किया।

अचल जिस समय काश्मीर मे उपस्थित था, उस समय राजा उदयनदेव तुषारलिंग की पूजा भौट्ट देश मे कर रहा था। उसने किंचित मात्र चिन्ता नही की कि काश्मीर पर क्या बीत रही थी। अचल भय से काश्मीर मण्डल विहीन होने पर राजा पुनः राज्य करने लौट आया। शाहमीर प्रारम्भ मे राजा का कृपापात्र था। परन्तु कुछ और प्राप्ति की आशा न देखकर राजा का द्वेषी हो गया।

उदयनदेव यद्यपि शाहमीर से सतर्क हो गया था परन्तु शाहमीर अपना षड्यन्त्र-जाल सुनिश्चित योजनानुसार फैला रहा था। राजा उतना चतुर नही था। अतएव शाहमीर के षड्यन्त्र नष्ट करने अथवा काश्मीर मे उसका प्रभाव रोकने का कोई उपाय न कर सका। शाहमीर-पुत्र अली शेर सीमान्त रक्षा मे तत्पर था। दोनों पौत्र शहाबुद्दीन तथा हिन्दल को शक्तिशाली बनाने लगा। शाहमीर के दोनो पुत्र तथा दोनो पौत्र प्रतिभाशाली थे। चारों ही कालान्तर में काश्मीर के सुलतान हुए थे। शाहमीर के नियन्त्रण मे द्वार था। द्वारपति का पद काश्मीर के सबसे शक्तिशाली एवं चतुर व्यक्तियों को दिया जाता था। राजा द्वार की रक्षा से उदासीन था। उसे रक्षा एवं सुरक्षा की विशेष चिन्ता नही थी। शाहमीर द्वार की रक्षा के कारण सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति हो गया और राजा अपनी जडता के कारण शक्ति धीरे-धीरे खोता गया।

अथ शह्मेरभीत्या श्रीकोटा चत्वार्यहानि सा।
गूढेङ्गितानयद् गुप्तिं भूपालप्रमयादिकम्॥ २६४॥

२६४ गूढेङ्गिता श्री कोटा ने शाहमीर के भय से, चार दिन[1] तक, भूपाल की मृत्यु आदि की बात गुप्त रखी।

उदयनदेव यद्यपि धार्मिक व्यक्ति था। परन्तु उसका धर्म-प्रेम प्रतीत होता उसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित था। शाहमीर ने राजा को पंगु बनाने के लिये राजा के शक्तिशाली व्यक्तियों को अपनी ओर वैवाहिक सम्बन्धो से मिलाना आरम्भ किया। अलीशाह की कन्या का विवाह राज्याधिकारी छुस्त के साथ कर दिया। भागिल के सामन्त लैलाकपूर के साथ जमशेद की कन्या का विवाह कर दिया। शाहमीर ने अपनी शक्ति अपने आतक से शकरपुर, धमाला, कराल आदि पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। राज्य में शाहमीर तथा उसकी सैनिक शक्ति का सघटन देखकर भी राजा शान्त था। इस प्रकार काश्मीर की राजसेना का सामना करने के लिये दूसरी सेना शाहमीर तथा उसके सम्बन्धियो की गठित हो गयी। राजा इस विशेष परिस्थिति को देखते हुए भी चुप बैठा रहा। शाहमीर ने विजयेश तथा चक्रधर पर भी सैन्य सघटन की शक्ति वृद्धि करने के लिये अधिकार कर लिया। इन सब घटनाओ का राजा निरपेक्ष द्रष्टा था।

कम्पनेश्वर काश्मीर के सेनापति का पद था। वह एक शक्ति था। शाहमीर ने उसके साथ अलाउद्दीन की कन्या की शादी कर दी। कम्पनेश अर्थात् सेनापति भी शाहमीर के प्रभाव में आ गया। बीरू परगना के प्रभावशाली सामन्त कोटराज के साथ शाहमीर ने अपनी कन्या गुहरा का विवाह कर दिया। लवन्य शक्तिशाली ग्रामीण शस्त्रोपजीवी वर्ग था। शाहमीर ने अपना अन्तिम अस्त्र छोडा। उसने लवन्यो के साथ मुसलिम कन्याओ का विवाह कर उन्हें भी अपनी ओर मिला लिया। जोनराज ने इस घटना पर दुःख प्रगट किया है—'लवन्य लोगो ने उसकी पुत्रियो को माला के समान धारण किया किन्तु यह नही जाना कि घोर विषैली सर्पिणियाँ अन्त मे प्राणहरण करने वाली होती हैं।' शाहमीर के षड्यन्त्र का शिकार लवन्य वर्ग हो गया। मुसलिम कन्या से हिन्दू विवाह कर रहे थे। राजा धार्मिक होते हुए भी इसका विचार न कर सका—आसन्न खतरे को नही समझ सका। जोनराज निष्कर्ष निकालता है—'शाहमीर ने राजा उदयनदेव को जलप्लावन द्वारा मिट्टी के ढेर पर स्थित द्रुम तुल्य चारो ओर से आक्रान्त कर लिया।'

राजा नाममात्र के लिये राजा था। काश्मीर हिन्दू राष्ट्र के गले मे शाहमीर का लगाया हुआ फाँसी का फन्दा धीरे-धीरे कसता उसे सर्वदा के लिये मार डालने के लिये तत्पर हो गया था। राजा अपनी शक्ति क्षीण होते, शाहमीर की शक्ति बढ़ते, विषतुल्य मुसलिम कन्याओ को प्रतिष्ठित सैनिक एव राजपदाधिकारियो के घरो मे प्रवेश करते, देख कर भी चुप रहा। उसे रोकने के लिये, काश्मीर को बचाने के लिये, उसने कुछ नहीं किया। वह कायर, गुणरहित, मूर्ख, अदूरदर्शी एवं राज्यकार्य के लिये सर्वथा अनुपयुक्त था। उसका राज्य दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट के समान, राजधानी केवल श्रीनगर मात्र शेष रह गया था। उसका १५ वर्षों का शासन महत्वहीन रहा है। उसके समय राज्य की गाडी चलती रही, खिसकती रही। लेकिन वाहक दूसरा था। वह केवल उस वाहन का मूकद्रष्टा था। उसने काश्मीर राज्य मे मुसलिम राज्य स्थापित होने की भूमिका प्रस्तुत कर दी थी और उसकी मृत्यु के ६ मास पश्चात् कोटा रानी तथा उसके दोनो पुत्रो को मारकर शाहमीर काश्मीर का प्रथम सुलतान बन बैठा।

पाद-टिप्पणी :

२६४. कोटा रानी का राज्य ग्रहण काल श्रीदत्त कलि गताब्द ४४३९ = शक १२६० = सप्तर्षि ४४१४,

शाहमेरो मत्सुतद्वारा साम्राज्यं स्वीकरोतु मा ।
इति ज्यायांसमुत्सृज्य बालत्वाच परं सुतम् ॥ २६५ ॥

२६५ शाहमीर मेरे पुत्र द्वारा साम्राज्य ग्रहण न कर ले, उस विचार से ज्येष्ठ पुत्र[1] को त्याग कर तथा बालक होने से अपर पुत्र[2] को—

=सन् १३३८ ई० तथा राज्य काल नही देते । श्रीकण्ठ कौल फाल्गुन बदी तेरह सन् १३३९ ई० तथा राज्य काल ५ मास १२ दिन देते है । आइने-अकबरी कोटा देवी का राज्य ग्रहण न देकर केवल राज्य काल ६ मास ५ दिन देती है ।

(१) चार दिन : आइने-अकबरी मे कुछ और ही बात लिखी गयी है—'जब राजा उदयनदेव मर गया तो उक्त शाहमीर ने चापलूसी और षड्यन्त्र द्वारा उसकी विधवा से विवाह कर लिया (जरेट : २ : ३८६) ।'

पीर हसन लिखता है—'उदयनदेव के पश्चात के बाद कोटा रानी अन्दर कोट के किला मे रहने लगी और अपने भाइयो की मदद से ५० दिन तक उसी मे ठाठ से रही (पृष्ठ : १६८) ।'

कोटा देवी ने अपने चतुर व्यक्तित्व का पुन. परिचय दिया है । उसने राजा की मृत्यु का समाचार चार कारणो से गोपनीय रखना उचित समझा—(१) उसके दोनो पुत्र बालक थे । (२) प्रथम पुत्र शाहमीर के अभिभावकत्व मे था । उसे राजा बनाने का अर्थ शाहमीर को शासक बनाना था, उसके हाथो मे काश्मीर की सत्ता अर्पित कर देना था । (३) यदि ज्येष्ठ पुत्र चन्द्र किंवा हैदर मुसलमान था तो काश्मीर का राज्य विजातीय को सौंप कर अल्प-संख्यक मुसलिमो को शक्तिशाली बनाकर काश्मीर का राज्य उनके प्रभाव में दे देना था । शाहमीर राजा की मृत्यु का समाचार सुनकर तत्काल हैदर को अपनी शक्ति से सिंहासन पर बैठा देता । (४) चार दिन के समय मे कोटा रानी इस स्थिति मे हो गयी थी कि यह शाहमीर का सामना कर काश्मीर का राज्य विजातियो के हाथों में जाने से तत्काल रोक सकी ।

विश्व इतिहास मे इस प्रकार की अनेक घटनायें हुई है और होती रहेंगी । उनका कारण सुरक्षा एवं राजनीतिक रहा है । नूरजहां ने जहांगीर की मृत्यु का समाचार छिपा रखा था । जहांगीर की मृत्यु चिगस (काश्मीर) मे हुई थी । वहां उसकी अतड़ियां गाड दी गयी । बीमारी का बहाना कर उसे शिविका मे लाहौर लाया गया । वहां उसकी मृत्यु की घोषणा की गयी ।

पाद-टिप्पणी :

२६५ (१) ज्येष्ठ पुत्र : ज्येष्ठ पुत्र के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि एक कनिष्ठ पुत्र कोटा रानी का और था । शाहमीर ज्येष्ठ एव कनिष्ठ पुत्र को काश्मीर राज्य सिंहासन पर बैठाकर स्वयं अभिभावक बनकर राज्य हस्तगत कर लेगा यह शंका कोटा रानी की साधार थी । कोटा रानी १८ वर्षों तक काश्मीर की रानी थी । दुर्बल राजा उदयनदेव के समय प्रायः शासन करती थी । दूसरा उदयनदेव का पुत्र कोटा रानी द्वारा उत्पन्न हुआ था । जोनराज अपर पुत्र का नाम जट्ट तथा डॉ० सूफी बोलरत्न देता है ।

(२) अपर पुत्र : जोनराज कोटा रानी के दो पुत्रो का वर्णन करता है । अपर पुत्र को बालक लिखता है । राजा उदयनदेव ने सन् १३२३ से १३३९ ई० तक राज्य किया था । इस समय कोटा देवी उदयनदेव की रानी थी । पुत्र बालक था । वह १५ वर्षों से अधिक नही हो सकता था । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि यह पुत्र उदयनदेव द्वारा उत्पन्न हुआ था । डॉ० सूफी के अनुसार इस पुत्र का नाम बोलरत्न था तथा श्रीकण्ठ कौल के अनुसार जट्ट था । जोनराज ने जट्ट नाम दिया है ।

रिंचन तथा उदयन का आगमन कोटा देवी सूफी

पुत्रस्नेहेन वृद्धत्वदोषेण च विमोहिता ।
अवरुद्धमनिच्छन्ती श्रीकोटामहिषी ततः ॥ २६६ ॥

२६६ शाहमीर बन्दी न बना ले पुत्रस्नेह एवं वृद्धत्व[1] दोष से विमोहित, श्री कोटा—

थी। काश्मीर की रक्षा कर चुकी थी। शाहमीर किस प्रकार अपनी शक्ति बढा कर शक्तिशाली हो गया था यह चतुर कोटा रानी से छिपा नही था, वह जानती थी। शाहमीर एक बार राज्यशक्ति प्राप्त करने पर नही छोडेगा। उसने इस भयंकर परिस्थिति मे राज्यसूत्र स्वयं अपने हाथो मे रखने का निर्णय उचित ही किया था।

बहारिस्तान शाही (पाण्डु० १७ ए) के अनुसार इस समय कोटा रानी का कोई पुत्र जीवित नही था। जोनराज इस विषय मे स्पष्ट कहता है कि उसके पुत्र थे। श्लोक ३०७ से भी प्रकट होता है कि कोटा रानी की गिरफ्तारी तथा उसकी हत्या के समय शाहमीर ने उसके पुत्रो को भी बन्दी बना लिया था। तबकाते अकबरी ने लिखा है 'राजा सहदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र रजन सिंहासनारूढ हुआ। रजन ने शाहमीर को अपना वजीर नियुक्त कर अपने शासन का समस्त भार उसे सौंप दिया। उसने अपने पुत्र 'चन्द' नामका अतालीक बना दिया।

'उसका सम्बन्धी राजा उदयनदेव कंधार से आकर सिंहासन पर बैठा। शाहमीर को जो चन्द्र सुत रजन का अतालीक था, अपना वकील बना लिया। जब उसके दोनो पुत्रो को जिनमे एक का नाम जमशेद तथा दूसरे का अलीशेर था अत्यधिक विश्वास-प्राप्त हो गया तो उसे उसने अधिकार प्रदान किये। शाहमीर के दो अन्य पुत्र भी थे। एक का नाम शेर अशामक और दूसरे का नाम हिन्दाल था। वे लोग बहुत बडे सूफी थे। जब शाहमीर और उसके पुत्रो को अत्यधिक अधिकार प्राप्त हो गया तो राजा उदयनदेव उससे एक बात पर रुष्ट हो गया। उन्हे अपने घर मे आने से रोक दिया। शाहमीर और उसके पुत्रो ने समस्त परगनो को अपने अधीन कर लिया। सुलतान के अधिकाश नौकरो को मिला लिया। उनकी शक्ति बढने लगी' (उ० तै : का . भारत २ : २-५११)।

फरिस्ता कुछ और बात लिखता है—उस (उदयनदेव) की स्त्री रानी कवल (कमल ?) देवी जो राज्य शासन एक अजनवी (शाहमीर) के हाथ से लेना चाहती थी, उसने शाहमीर को पत्र लिखा और राजा रजुन के पुत्र चन्दरसेन को राज्य सिंहासन पर बैठाने की प्रार्थना की। शाहमीर ने इसे स्वीकार नही किया। रानी ने सेना एकत्रित की और उसके विरुद्ध अभियान चलाया, परन्तु पराजित होकर बन्दी बना ली गयी (४५३)।

फरिस्ता रानी का नाम कोटा नही देता। शेष इतिहासकार कोटा ही देते है। किसी परसियन इतिहासकार अथवा जोनराज से फरिस्ता की घटनाओ का समर्थन नही मिलता। उसने अन्दर कोट का नाम तक नही दिया है।

पाद-टिप्पणी :

२६६. (१) वृद्धत्व दोष . कोटा रानी उस समय वृद्ध नही थी। जोनराज का वर्णन असगत है। यदि रिंचन के विवाह के समय कोटा की आयु अधिक से अधिक (सन् १३२० ई० मे) २० वर्ष मान लिया जाय तो उदयदेव की मृत्यु के समय (सन् १३३९ ई०) म उसकी अवस्था ३९ वर्ष से किसी प्रकार भी ऊपर नहीं जा सकती। श्लोक २८५ से प्रकट होता है कि कम्पनाधिपति पर आज्ञा उल्लघन करने के कारण कोटा से प्रतियुद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर उसके विरुद्ध सैनिक अभियान किया था। कम्पनेश उसे बन्दी बनाकर कारागार मे डाल दिया।

स्त्रीभावाद्वन्धुभावाच्च लवन्यैरुपबृंहिता ।
असान्त्वयत्स्वयं भूमिं विधवां स्वां सखीमिव ॥ २६७ ॥

२६७ स्त्री एव बन्धु भाव के कारण लवन्यों द्वारा समर्थित अथवा सहायता प्राप्त (होकर) स्वयं विधवा सखी तुल्य भूमि को सान्त्वना दी।

पूर्वोपकारस्मरणाच्छह्मेरादयोऽखिलाः ।
तां प्राणमन्नमात्याः स्वाश्चान्द्रीमिव नवां कलाम् ॥ २६८ ॥

२६८ पूर्वकृत उपकार के स्मरण से शाहमीर आदि अखिल अमात्यों ने चन्द्रमा की नवीन कला सदृश, उसे प्रणाम किया।

कम्पनेश के साथ शाहमीर ने अपना सम्बन्ध जोड लिया था। कम्पनेश की लक्ष्मी तुल्य सुता का विवाह शाहमीर ने अपने पुत्र अल्लेश अथवा अलीशाह जो काश्मीर का तीसरा सुलतान हुआ था, कर दिया था। कम्पनेश शाहमीर का समधी था। कम्पनेश काश्मीर मे सेनापति का पद था। काश्मीर की सेना कम्पनेश के नियन्त्रण मे थी।

कम्पनेश ने कोटा को बन्दी कर लिया तो शाहमीर ने कोटा रानी को मुक्त कराने का प्रयास नही किया। शाहमीर समस्त सैनिक गतिविधि का समाचार उसकी पुत्री और पतोह स प्राप्त करता था।

कोटा के सचिव कुमारभट्ट ने कोटा को बन्धन-मुक्त करने के लिये एक उपाय निकाला। उसने कोटा के रूप से मिलती-जुलती आकृति के किसी कमण्डलधारी सिशु विद्यार्थी को अपने साथ लिया (श्लोक २८६–२८८)। जोनराज ने इनका वर्णन पुन श्लोक २९४ मे किया है। कुमारभट्ट ने बटु (विद्यार्थी) के साथ कोटा के कारागार मे प्रवेश किया। बटु किवा विद्यार्थी का वस्त्र रानी को पहनाया। बटु को वही कारागार मे रखकर छद्म बटुवेशधारिणी रानी के साथ बाहर निकल आया (श्लोक २९५)। उक्त वर्णनो से प्रकट हाता है कि कोटा रानी ३९ वर्ष की होने पर भी युवा पुरुष के समान सुन्दर तथा युवती लगती थी। जोनराज का वर्णन यहाँ असगत है। कोटा रानी उदयनदेव की मृत्यु के समय वृद्ध रमणी नहीं बल्कि प्रौढ़ा होने पर भी युवती सदृश लगती थी।

पाद टिप्पणी :

२६७ उक्त श्लोक सख्या २६७ के पश्चात बम्बई सस्करण मे श्लोक क्रम सख्या ३०३ अधिक है। उसका भावार्थ है—'भयरहित वह रानी शुक्ल प्रतिपद सदृश अपने गुरुजनो द्वारा परम इष्ट राजा के पास पहुँच गयी।'

(१) लवन्य यद्यपि शाहमीर ने प्रमुख डामरो के साथ सम्बन्ध स्थापित कर उन्हे अपनी ओर मिला लिया था परन्तु प्रतीत होता है कि उस समय लवन्यो मे एक दल था, जो रानी का समर्थक था। शाहमीर की शक्ति की चिन्ता न कर, लवन्यो के समर्थन के कारण रानी ने राजसत्ता पुन ग्रहण कर ली।

राजधानी परिवर्तन—पर्शियन इतिहासकारो ने लिखा है कि कोटा रानी स्वय सिंहासन पर बैठी और राजधानी श्रीनगर से अन्दर कोट ले गयी (सूफी १३०)। अन्दर कोट राजा जयापीड द्वारा आबाद किया गया—जयापीडपुर था। यह स्थान सम्बल से १ मील वितस्ता के वाम तट पर है। सम्बल मे वितस्ता पर पुल बना है। इस स्थान पर मैं कई बार जा चुका हूँ। अन्दर कोट सम्बल पुल से १ मील दूर होगा। शादीपुर से ५ मील दूर वितस्ता के अधोभाग मे पडता है। डॉ० सूफी के अनुसार आजादी के पूर्व अन्दर कोट म लगभग १४३ मकान तथा ११७१ मनुष्यो की आबादी थी। आबादी पूर्णतया मुसलमानो की थी। उनम आधे शिया तथा आधे सुन्नी थे। अन्दर कोट में ही शाहमीर की कब्र है। अब गाँव की समृद्धि हो कर आबादी बढ़ गयी है।

शमयन्त्या रजः सर्वं तापापह्नुतिदक्षया।
तया निदाघवृष्ट्येव लताः संवर्धिताः प्रजाः॥ २६९॥

२६९ ताप हरण में दक्ष[1] सर्वत्र रजः शमन करती हुई उस (कोटा) ने प्रजाओं को उसी प्रकार सम्वर्धित किया, जिस प्रकार निदाघ वृष्टि लताओं को बढ़ाती है।

शाह्मेरात् स्वोदयभ्रंशशङ्किनी भट्टभिक्षणम्।
तदुद्रेकविनाशार्थं मानं देवी निनाय सा॥ २७०॥

२७० शाहमीर द्वारा अपने उदय भ्रंश की आशंका से, उस देवी ने उसके प्रभार के विनाश हेतु भट्टभिक्षण[1] को मान प्रदान किया।

दुस्तरेषु महानीतिजलपूरेषु सा ततः।
तत्प्रज्ञानावमारुह्य कार्यपारं परं ययौ॥ २७१॥

२७१ तदनन्तर, उस (कोटा) ने दुस्तर महा अनीति जल प्रवाह में उसकी प्रज्ञारूपी नाव में आरूढ़ होकर, उचित रूपेण कार्य सिद्ध किया।

अन्तः सेहे न शाह्मेरस्तद्दत्तं भिक्षणोदयम्।
मानवन्तः सहन्ते हि च्छायासाम्यं कथञ्चन॥ २७२॥

२७२ रानीकृत भिक्षण का उदय शाहमीर[1] नहीं सह सका। मानी जन अपनी समानता की छाया किस प्रकार सहते हैं ?

परसियन इतिहासकारो का मत ठीक नही है कि कोटा रानी जयापीडपुर किसी कार्य से गयी थी तो रानी की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर शाहमीर ने श्रीनगर पर अधिकार कर लिया। कोटा रानी जयापीडपुर मे बाध्य होकर रह गयी। जोनराज का वर्णन इस विषय मे स्पष्ट है (श्लोक ३००)।

पाद-टिप्पणी :

२६९. (१) दक्ष : तबकाते-अकबरी मे उल्लेख है—'वह (रानी) दृढतापूर्वक राज्य करना चाहती थी (५१२)।'

पाद-टिप्पणी :

२७०. (१) भट्टभिक्षण : प्रारम्भ से ही कोटा रानी शाहमीर से शंकित थी। वह देख रही थी कि किसी तरह अनायास शक्ति शाहमीर मे केन्द्रित होती जा रही थी, भाग्य शाहमीर का साथ दे रहा था। वह जैसे स्वयं भाग्य प्रवाह के विरुद्ध लड रही थी। वह काश्मीर के मुसलिम उपनिवेशिको एवं काश्मीर मे उपस्थित विदेशी लोगो से सत्ता लेकर काश्मीरियो को देना चाहती थी। जिन्हे काश्मीर भूमि, धर्म, सभ्यता संस्कृति से प्रेम था। शाहमीर अपनी शक्ति के कारण, विदेशी, आबादी के नेता होने के कारण, अपने पुत्र एवं पौत्रो के बल के कारण स्वयं मन्त्री बनने की आकाक्षा करता था। कोटा ने राजनीतिक दृष्टि से उचित नीति अपनायी। शाहमीर को शक्ति वृद्धि न कर, भट्टभिक्षण को मन्त्री बनाया। राजनीति मे शाहमीर के व्याप्त एवं बढ़ते प्रभाव को वह रोकना चाहती थी।

पाद-टिप्पणी :

२७२ (१) भिक्षण और शाह्मीर : शाहमीर ने ख्याति प्राप्त कर ली थी। वह स्वयं मन्त्री होना चाहता था। कोटा रानी चतुर थी, वह भविष्य देख रही थी। उसे शाहमीर की शक्ति अखर रही थी।

वत्स्यंतो धूमतापादि लक्षणं जातवेदसः ।
धीमतोऽस्य न किञ्चित्तु रोपलिङ्गमलक्ष्यत ॥ २७३ ॥

२७३ धूम, तापादि जलती अग्नि का लक्षण है (किन्तु), इस (शाहमीर) बुद्धिमान का कुछ रोप चिह्न परिलक्षित नहीं हुआ ।

छलाभिनीतरोगेण शाहमेरेण धीमता ।
प्रत्यासन्नविनाशत्वमात्मनः समकथ्यत ॥ २७४ ॥

२७४ धीमान शाहमीर ने छल[1] पूर्वक रोगी का अभिनय कर के अपने प्रत्यासन्न विनाश को कह दिया ।

तस्यार्थप्रत्यवेक्षार्थमवताराादिभिः सह ।
व्यसर्जि कोटया देव्या स श्रीमान् भट्टभिक्षणः ॥ २७५ ॥

२७५ उसके प्रतिवेक्षण हेतु औताराादि के साथ श्रीमान भट्ट भिक्षण को देवी कोटा ने भेजा[1]।

शाहमीर ने मूर्ख काश्मीरी सेनानायको एवं सामन्तो से रक्त सम्बन्ध स्थापित कर कोटा रानी की सैनिक शक्ति विघटित कर दी थी ।

कोटा रानी ने रिंचन के हटते ही उदयनदेव को राजा बनाया । उसने शाहमीर की उपेक्षा की । रिंचन तथा शाहमीर मित्र थे, दोनो विदेशी थे । रिंचन का काश्मीरियो की अपेक्षा शाहमीर पर अधिक विश्वास करना स्वाभाविक था ।

कोटा रानी देश भक्त काश्मीरी महिला थी । काश्मीर उसे प्रिय था । उसने शाहमीर पर विश्वास न कर काश्मीरी भिक्षण को मन्त्री बना कर उचित कार्य किया था । पश्चात की घटनायें प्रमाणित करती हैं कि उसका निर्णय ठीक था ।

चतुर शाहमीर कोटा रानी का अभिप्राय समझ गया था । उसने भट्ट भिक्षण मे अपना उदीयमान शत्रु देखा । उसका भट्ट भिक्षण के कारण राज्य प्राप्ति की आशा का षड्यन्त्र विफल होना चाहता था । भट्ट भिक्षण उसके मार्ग का कंटक था । उसे दूर करने के प्रयास मे लग गया । प्रतीत होता है । काश्मीरियो को संघटित करने मे भट्ट भिक्षण तथा कोटा रानी सफल हुए थे और शक्ति भी संघटित कर ली थी । शाहमीर सुनकर, उनका सामना करने मे असमर्थ हो रहा था । भट्ट भिक्षण के जीवित रहते वह सफल नही हो सकेगा,—एतदर्थ वह दत्तचित्त भट्ट भिक्षण को समाप्त करने के षड्यन्त्र मे लग गया ।

पाद-टिप्पणी :

२७४. (१) छल : जोनराज ने शाहमीर के कपटाचार के लिये छल शब्द का प्रयोग किया है । कोटा रानी तथा काश्मीर मण्डल के लोगो पर उसने प्रकट किया कि शाहमीर अत्यन्त गम्भीर एव असाध्य बीमारी से आक्रांत होकर मरणासन्न पड़ा है । इस प्रचार से कोटा रानी तथा उसके सहयोगी शाहमीर की तरफ से कुछ उदासीन हो गये । शाहमीर के छल में काश्मीरी फँस गये । उसके छल मे किसी को अविश्वास करने का कोई कारण नही था । मरणासन्न व्यक्ति को औपचारिकता के नाते सभी स्नेही, प्रेमी तथा परिचित देखना चाहते हैं । यही स्वाभाविक प्रतिक्रिया काश्मीरियो मे भी हुई ।

पाद-टिप्पणी :

२७५. (१) परसियन इतिहासकारो ने लिखा है कि पाम्पुरी शाहमीर के यहाँ गया । पामपुर से कुछ आगे जाने पर जहाँ केसर की क्यारियाँ समाप्त होती हैं वहाँ पर मरोपल आता है । लरहार ग्राम के

स्वेदः कुपितपित्तस्य हितो नैवेतिवादिभिः।
संप्रवेशान्न्यषिध्यन्त द्वाःस्थैस्तदनुयायिनः॥ २७६॥

२७६ 'कुपित पित्त' वाले के लिये स्वेद हितावह नहीं है',—इस प्रकार कहकर, बात करते, द्वारपालों ने (भिक्षण) के अनुयायियों का प्रवेश रोक दिया।

तौ भिक्षणावतारौ द्वौ तत्समीपमविक्षताम्।
साङ्कट्यादिव तत्प्राणरक्षिण्यो देवता न तु॥ २७७॥

२७७ वे दोनों भिक्षण और अवतार उसके समीप प्रवेश किये, किन्तु (आगामी) संकट के कारण ही मानों उनके प्राण रक्षक देवता प्रवेश नहीं किये।

सम्मुख वितस्ता पार काकपुरहै। लल्हार और वितस्ता मध्य झेलम नदी (वितस्ता) बहती है। यहाँ एक मन्दिर तट पर है। काश्मीर राजा के धर्म संस्थान की भूमि इस मन्दिर पर लगी है। राजा रणवीर सिंह के समय जागीर भी यहाँ पर दी गयी थी। परन्तु जोनराज ने काकपुरी का कहीं उल्लेख नहीं किया है (काश्मीर अण्डर सुलतान पृष्ठ ४४ नोट ५)। डॉ० सूफी ने भिक्षण भट्ट का अपर नाम पचभट्ट (कशीर : १२८) दिया है। श्री मोहिबुल हसन का मत है कि भट्ट भिक्षण आदि शाहमीर के यहाँ नहीं गये। परसियन लेखकों ने सर्वदा भिक्षण तथा अवतार की विश्वासघातपूर्वक निरपराध-हत्या कर देने की बात पर परदा डालने का प्रयास किया है। परसियन तथा इस मत के समर्थक इतिहास लेखकों ने कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है कि जोनराज का वर्णन क्यों असत्य है। किसी दूसरे प्रमाण के अभाव में जोनराज की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं मालूम होता।

एक तर्क रखा गया है। भट्टभिक्षण तथा अवतार शाहमीर के यहाँ ईर्षा के कारण नहीं जा सकते थे। यह तर्क सम्मत नहीं है। बीमार और मुख्यकर जब मरणासन्नावस्था का व्यापक प्रचार कर दिया गया था कि शाहमीर की हालत अब तब है, ऐसी अवस्था में स्वाभावि है कि शत्रु भी अपने शत्रु से अन्तिम क्षण मिलने जाता है। भूल-चूक, लेनी-देनी माफ कराना चाहता है। शाहमीर प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति था। वह काश्मीर मण्डल की राजनीति में प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुका था। उसके दोनों पुत्र राज्य के उच्च पदों पर आसीन थे। उसका सम्बन्ध काश्मीर के अभिजात कुलों में भी हो चुका था। वैवाहिक आदि सम्बन्धों के कारण उसने काश्मीर के बड़े से बड़े अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित कर लिया था। ऐसी अवस्था में अवतार एवं भिक्षण का उसे देखने के लिये, औपचार प्रदर्शन के लिये भी जाना स्वाभाविक था। यह कार्य मानव प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुरूप है। कोटा रानी का भी उसे देखने के लिये अपने मन्त्रियों को भेजना राजमर्यादा के अनुकूल है। यह कोटा रानी का व्यक्तित्व और ऊपर उठा देता है। यदि वे देखने न जाते तो लोकापवाद के पात्र बन सकते थे। यदि शत्रुता का तर्क मान भी लिया जाय तो कोटा रानी ने स्वयं आज्ञा दी थी कि वे शाहमीर को देखने जायँ। ऐसी अवस्था में उनका वहाँ जाना उचित ही था।

मनुष्य कुछ करता है और अव्यक्त शक्ति चुपचाप और कुछ करती जाती है। मनुष्य उसके हाथ की कठपुतली बन जाता है। घटनायें स्वतः उसके विपरीत और अनुकूल होती जाती हैं। घटनाचक्र शाहमीर के अनुकूल तथा कोटा रानी और काश्मीर के विपरीत होता जा रहा था।

पाद-टिप्पणी .

२७६ (१) कुपित पित्त : यहाँ भ्राजक पित्त अभिप्रेत है। पित्त का स्वाभाविक कर्म शरीर से

अनुयुक्तामयोदन्तः स कालेन तयोर्निजैः ।
गात्रे न्यखानयच्छस्त्रीराधीन् स्वस्योदखानयत् ॥ २७८ ॥

२७८ अपने रोग की वार्ता (उदंत)[1] कहकर समय से उन दोनों के शरीर में अपने आदमियों से हथियारों को घुसा दिया तथा अपने मनोव्यथा को दूर किया ।

सिराभिः शोणितं वाष्पं दृशाङ्गैः सकलैरसून् ।
तौ द्वावमुश्चतां सद्यस्तद्द्वेषं स च चेतसा ॥ २७९ ॥

२७९ उन दोनों की शिराओं से शोणित, नेत्रों से आँसू और समस्त अंगों ने प्राणों को त्याग दिया और उस (शाहमीर) ने भी तुरन्त चित्त से उनके द्वेष को दूर कर दिया ।

स्वेद निकालना होता है । जब यह कुपित हो जाता है, तो स्वेद या तो अधिक निकलता है या स्वेद निकलना बन्द हो जाता है । यह स्थिति आयुर्वेद के अनुसार हितावह नहीं कही गयी है ।

पाद टिप्पणी :

२७८ उक्त श्लोक का भावार्थ श्रीदत्त ने किया है—शाहमीर ने पहले उनसे अपनी बीमारी के विषय में विस्तार से वार्ता की । जब अवसर आया तो उनके हथियारों को उनके शरीर में घुसा दिया । और अपनी मनोव्यथा शान्त किया (पृष्ठ २९)।'

यदि शब्द अयोदन्त माना जाय तो अर्थ होगा—'उसने समय से अपने शरीर में रखे हुए अयोदन्त को अपने शरीर से निकाल कर उनके शरीर में घुसा दिया तथा अपनी मनोव्यथा शान्त किया ।'

इसका एक अर्थ और होता है—'अपनी मानसिक व्यथा को निकालकर बीमारी की बात कहकर अपने साथियों सहित उन दोनों के शरीर में शस्त्रों को घुसा दिया ।'

एक अर्थ और किया गया है—'कुशल वार्ता पूछने पर अवसर पाते ही अपने आदमियों से उन दोनों के शरीर पर प्रहार कराया और अपने मनोव्यथा को दूर किया ।'

परसियन इतिहासकार इस घटना की सत्यता में विश्वास नहीं करते । मोहिबुल हसन लिखते हैं—'यह किस्सा झूठा है । इनके ताल्लुकात अच्छे नहीं थे । इसलिये यह मुमकिन नहीं है कि काकापुरी शाहमीर को देखने गया होगा (उर्दू : पृष्ठ ६२ : नोट १) ।' वे स्वीकार करते हैं—'शाहमीर ने कोटा रानी और उसके मुक़अद खास को हकूमत का तख्त उलटने का तहैया किया । पहले तो साजिश करके वह भिक्षण को क़तल कराने में कामयाब रहा । (पृष्ठ ६२) ।'

जोनराज का वर्णन यहाँ स्पष्ट है । निःसन्देह शाहमीर के छल को छिपाने के लिये अनेक इतिहासकारों ने इस घटना के सम्बन्ध में कल्पनायें की हैं । डॉ० सूफी ने भी इसी तरह की बातें लिखी हैं—रानी का मुख्य मन्त्री भिक्षण शाहमीर के एक कपटाचरण द्वारा मार दिया गया (कशीर पृष्ठ : १३१) ।'

(१) उदत (वार्ता) : जोनराज ने उदत शब्द का प्रयोग श्लोक संख्या ८६५ में किया है ।

उदत शब्द का प्रयोग जोनराज ने पुनः श्लोक ८६५ में तथा ९५१ में किया है ।

पाद-टिप्पणी :

२७९. (१) जोनराज ने अपने कवित्व शक्ति तथा करुण भाव प्रदर्शन का उत्तम चित्र उपस्थित किया है । कवि की काव्य प्रतिभा श्लोक २७९ तथा २८० में मुखरित हो उठी है ।

रक्तार्द्रव्रणदीपाङ्कपूर्णपात्राभतच्छिरः ।
रोगमोक्षोचितं स्नानं स तयोः शोणितैर्व्यधात् ॥ २८० ॥

२८० रक्त से आर्द्र व्रणरूप दीप से अङ्कित, पूर्णपात्र तुल्य (दोनों का शिर) उन दोनों के शोणितों से वह रोग-मोक्षोचित स्नान किया।

भवन्नन्दनसंरक्षापरावेताबुभावपि ।
तयोरन्यतरं द्वारीकृत्यान्यमहरद्विधिः ॥ २८१ ॥

२८१ 'आपके पुत्र रक्षा' में तत्पर, इन दोनों को ही इन्हीं मे एक दूसरे को निमित्त बनाकर, विधि ने हर लिया।

प्रमीलनिजशोकोत्थतापशान्त्यै जडः परम् ।
परप्राणात्रोपवह्नौ प्रदीप्ते जुहुयादिति ॥ २८२ ॥

२८२ 'मृत के प्रति निज शोक से समुत्थित ताप-शान्ति हेतु परम जड़, वह (शाहमीर) प्रदीप्त रोपवह्नि मे दूसरे के प्राणों की आहुति' करे।'

पाद-टिप्पणी :

२८१. (१) पुत्ररक्षा : जोनराज के अनुसार प्रथम पुत्र का अभिभावक शाहमीर तथा द्वितीय का भट्ट भिक्षण था। कोटा रानी इस समय शक्तिशाली थी। वह शाहमीर को बन्दी बना सकती थी, काश्मीर की राजनीति को पलट सकती थी। रानी के सचिवो एवं अन्य मन्त्रियो ने उसे कोई भी कदम उठाने से विरत कर दिया, प्रलोभन दिया। दोनो ही अभिभावक किसी एक का पक्ष लेकर रानी को हटा सकते थे, वह राज्यच्युत हो सकती थी। भगवान वा, सर्वदा सब काम मे साक्षी देने वाले ईश्वर का, उन भाग्य-वादियो ने भाग्य दैव का कार्य ही भिक्षणादि की हत्या माना। शाहमीर को दण्ड नहीं देने दिया। यह वही दुर्बल मानव प्रवृत्ति है, जो प्रत्येक कार्य मे ईश्वर का हाथ मानती है। प्रत्येक कार्य को ईश्वर का कार्य एवं घटना को ईश्वर की इच्छा मानकर, उसे सर्वदा अच्छा मानती है। राजनीतिक दृष्टि से, यह कार्य अनुचित कहा जायगा। परन्तु दैववादी, भाग्यवादी, जो सर्वदा भाग्य की दोहाई देते है वे,—काश्मीर का पराधीन होना, मन्दिरो का टूटना, हिन्दुओ को जबर्दस्ती मुसल्मान बनाना और एक शताब्दी मे समस्त काश्मीर को मुसलिमीकरण के भयावह, रक्तपातमय, जामे मे पहना देना दैव का ही प्रसाद मानेगे ?

पाद टिप्पणी :

२८२ (१) आहुति कोटा रानी के तत्कालीन मन्त्रणादाता स्वयं अपने प्राणो की रक्षा के लिये शकित थे। उन्हे भय था कि कही शाहमीर जैसे चतुर षड्यन्त्रकारी के हाथो उनकी भी वही दशा न हो जो भिक्षण तथा अवतार की हुई थी। प्राणो के लोभी उन कायर मन्त्रियो ने कोटा रानी द्वारा उठाये गये ठोस कदम को आगे बढाने की अपेक्षा पीछे खींच लिया। साथ ही साथ पीछे आनेवाली शताब्दियों के काश्मीर के इतिहास को भी पीछे खीच लिया।

शाहमेरं रोद्धुकामां तां समर्थामपि दुर्धियः ।
कोटादेवीममात्याः स्वा नये बुद्धिं न्यवारयन् ॥ २८३ ॥

२८३ (इस विचार से) उसके दुर्बुद्धि अमात्यों[1] ने शाहमीर को रुद्ध करने के लिये इच्छुक एवं समर्थ भी, उस कोटा देवी को नीति बुद्धि मे निवारित कर दिया (उसके क्रोध का शमन कर दिया।

केदारमिव कुल्या सा पानीयेन महर्द्धिना ।
लोकमाप्याययामास साम्राज्योत्पलचन्द्रिका ॥ २८४ ॥

२८४ उस साम्राज्योत्पल-चन्द्रिका ने संसार को महान समृद्धि से उसी प्रकार तृप्त किया, जिस प्रकार कुल्या पानी से केदार (क्यारी) को अप्यायित करती है।

आज्ञाव्यतिक्रमाज्जातु कम्पनाधिपतिं प्रति ।
युयुत्सुरकरोद्यात्रां सामित्राब्जशशिप्रभा ॥ २८५ ॥

२८५ कदाचिद् आज्ञा उल्लघन के कारण कम्पनाधिपति[1] के प्रति युद्ध की इच्छा से शत्रु रूप कमल के लिये शशिप्रभा उस (कोटा) ने प्रयाण किया।

सङ्कटात्कम्पनेशस्तां कुलायादिव पक्षिणीम् ।
जीवग्राहं गृहीत्वाथ कारापञ्जरमानयत् ॥ २८६ ॥

२८६ कम्पनेश ने कुलाय (नीड़) से पक्षिणी तुल्य सेना मध्य से उस (कोटा) को जीवित पकड़ कर, कारा-पञ्जर मे बन्द कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

२८३ (१) अमात्य कोटा रानी का क्रोधित होना स्वाभाविक था। उसके मन्त्री अनीति एव षड्यन्त्र के शिकार बनकर हत किये गये थे। वही दुर्गति उसकी भी हो सकती थी। रानी का दण्ड देने के लिये तत्पर होना उचित था। जोनराज ने मन्त्रियो को दुर्बुद्धि की जो उपाधि दी है वे उसके पात्र थे।

यदि शाहमीर इस समय दण्डित कर दिया जाता तो कम्पनाधिपति, जिसे आज्ञा उल्लघन के लिये रानी दण्ड देना चाहती थी, स्वय उसकी बन्दी न बन जाती। अमात्य शब्द के अर्थ के लिये द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक २३६, २८३, ४५६।

पाद-टिप्पणी :

२८५ (१) कम्पनाधिपति : श्लोक २५६ से प्रकट होता है। कम्पनेश्वर अथवा कम्पनाधिपति लस्म था। अलाउद्दीन ने जो कालान्तर मे तृतीय सुल्तान तथा शाहमीर का द्वितीय पुत्र था उससे अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। वह शाहमीर का समधी था। अनुमान करना उचित होगा कि शाहमीर के सकेत पर ही कम्पनाधिपति ने कोटा रानी को पकड कर कारागार म डाल दिया था। शाहमीर ने अनुभव कर लिया था। उसके सकेत पर जिन प्रधान सैन्याधिकारियो तथा राजपुरुषो से उसने रक्त सम्बन्ध जोड लिया था वे उसका साथ देंगे। कोटा रानी के बन्दी होने पर भी शाहमीर, कोटराजादि कोई उसे छुडाने नही गया। सेना और जनता भी निरपेक्ष थी। इस परिस्थिति ने शाहमीर को और साहसी बना दिया। वह अपनी शक्ति द्वारा काश्मीर राज्य प्राप्त करने के लिये कृतसकल्प हो गया। कोटा रानी का बन्दी बनाया जाना उस शक्ति प्रदर्शन का सकेत मात्र था।

कम्पनापति, कम्पनेश एव कम्पनाधिपति शब्द काश्मीर में सेनापति अर्थात् कमाण्डर इन चीफ के लिये प्रयुक्त किया जाता था (आई०, ई० : ८-३ तथा डी० सी० सरकार : पृष्ठ १४२)।

मन्त्री कुमारभट्टाख्यस्तस्याः सचिवपुंगवः ।
तन्मोक्षसिद्धयेऽकार्षीत्तदामात्यैश्छलात्कलिम् ॥ २८७ ॥

२८७ उसके सचिव-पुंगव कुमारभट्ट नामक मन्त्री ने उसे (कोटा) बन्धन मुक्त करने के लिये, उस समय छलपूर्वक मन्त्रियों से कलह कर लिया।

राज्याः पुंभावमात्रेण भिन्नमाकारसन्निभम् ।
कमण्डलुकरं कंचित् सोऽधाद्विद्यार्थिनं शिशुम् ॥ २८८ ॥

२८८ रानी से पुंभाव मात्र से भिन्न तथा आकृति में उनका सदृश कमण्डलुधारी किसी शिशु विद्यार्थी को उसने साथ लिया।

गत्वा स कम्पनाधीशं धीप्रशंसाविमण्डितः ।
सौष्ठवौदार्यसम्पत्तिशालिनीं वाचमभ्यधात् ॥ २८९ ॥

२८९ वह कम्पनाधीश के पास जाकर, उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हुये, सौष्ठव एवं औदार्यशालिनी वाणी में बोला—

स्वशिरो मलिनीकृत्य जीवतां योषिदाज्ञया ।
पुरुषत्वं त्वया स्वामिन् कृतार्थीक्रियतेऽद्य नः ॥ २९० ॥

२९० 'हे स्वामी अपने शिर को मलिन कर योषित (स्त्री) की आज्ञा से जीने वाले हम लोगों के पुरुषत्व को आज आप कृतार्थ कर रहे हैं।

गत्वा त्वदाज्ञया कारां तस्यास्तर्जनसान्त्वनैः ।
धनं जनस्त्वदीयोऽयं स्वामिसात्कर्तुमिच्छति ॥ २९१ ॥

२९१ 'आपका यह जन आपकी आज्ञा से कारा में जाकर, तर्जनाओं एवं सान्त्वनाओं द्वारा उसकी सम्पत्ति स्वामी के अधीन करना चाहता है।

स्त्रीत्वादशक्ता दातुं सा समचैषीद्धनं यतः ।
व्यसृजत्कम्पनेशस्तं काराभेवं विमोहितः ॥ २९२ ॥

२९२ उसने धन संग्रह किया है, किन्तु स्त्री स्वभाव के कारण देने में असमर्थ है।' इस प्रकार विमोहित होकर कम्पनेश ने उसे कारा में प्रेषित किया।

पाद-टिप्पणी :

२८७. (१) कुमारभट्ट : रानी भिक्षणभट्ट की मृत्यु के पश्चात् सतर्क हो गयी थी। उसने शाहमीर को मन्त्री नहीं बनाया। उसने शाहमीर के सम्बन्धी किसी हिन्दू डामर किंवा अन्य राज अधिकारी को भी अपना मन्त्री नहीं बनाया। उसने कुमारभट्ट को मन्त्री बनाया। कुमारभट्ट ने अपने कार्यों से प्रमाणित कर दिया है कि रानी का मन्त्रिचयन ठीक था।

पाद-टिप्पणी :

२९० उक्त श्लोक संख्या २९० के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ३२७ दिया है। उसका भावार्थ है।

'स्त्री होने से कातर-चित्त एवं दान, भोग एवं उत्सव के प्रति द्वेषी रानी का प्रचुर धन सेना के मध्य उसके बन्धुओं में है।'

पाद-टिप्पणी :

२९२. उक्त श्लोक संख्या २९२ के पश्चात् बम्बई

काराया निर्गमिष्यन्तीं देवीं कोटामिवेक्षितुम् ।
तत्कालमेव सन्ध्यागाज्जगद्रञ्जनकोविदा ॥ २९३ ॥

२९३ कारा से निर्गमन करती कोटा को देखने के लिये ही मानों उसी समय जगत् रञ्जन-कोविदा सन्ध्या आ गयी ।

संध्यावंदनयोग्याम्बुवाहिना वटुना सह ।
असौ कारामविक्षच्च राज्ञ्याश्च निरगुः शुचः ॥ २९४ ॥

२९४ सन्ध्या-वन्दन करने योग्य जल ले जाने वाले वटु (ब्रह्मचारी)[1] के साथ वह (कुमार-भट्ट) कारा में प्रवेश किया और रानी का शोक समाप्त हो गया ।

राज्ञीवेषभृतं तत्र स्थापयित्वा वटुं स तम् ।
तद्वेषधारिणीं कोटामन्वादाय विनिर्ययौ ॥ २९५ ॥

२९५ वह रानी वेषधारी वटु को वहाँ स्थापित कर और उसके वेषधारिणी कोटा को लेकर निकल आया ।

रक्षितारोऽपि नाजानंस्तद्यावत्तावदेव सा ।
कम्पनाधिपतिं चक्रे स्वचक्रेभशकृत्करिम् ॥ २९६ ॥

२९६ जबतक[1] रक्षक भी (उसका मुक्त होना) न जान सके तबतक उस कोटा ने अपनी सेना के हाथियों द्वारा कम्पनाधिपति की लीद निकाल दिया ।

सान्वशेत कुमारेण मोचिता भट्टभिक्षणम् ।
एकदन्तहतारेः किं नान्येनेभमुखाद्भयम् ॥ २९७ ॥

२९७ कुमार द्वारा मुक्त[1] कोटा भट्टभिक्षण[2] के लिये पश्चात्ताप किया, एक दाँत से शत्रुहन्ता (गज) को क्या अन्य गज के मुखसे भय नहीं रहता ?

संस्करण में श्लोक संख्या ३२९ दिया गया है । उसका भावार्थ है ।

'आप इस कार्य को सिद्ध करें हमलोगों को उपकारी जानिये । ऐसा कहकर, कम्पनाधीश ने उसे बाहर भेजा ।'

पाद-टिप्पणी :

२९४ (१) वटु ब्रह्मचारी, बालक : अभिज्ञानशाकुन्तला में वटु शब्द चपल युवक के लिये प्रयोग किया गया है ।—चपलोऽयं वटुः । वटु शब्द बहुधा तिरस्कार-सूचक माना गया है । वटु शब्द के प्रयोग से यह प्रमाणित होता है कि कोटा रानी उस समय युवती थी, न कि वयस्क । जैसा पर्शियन इतिहासकारों ने दिखाने का प्रयास किया है ।

पाद-टिप्पणी :

२९६ उक्त श्लोक का एक और अर्थ किया जा सकता है—'जबतक कि रक्षक भी (उसका निकलना) न जान सके तबतक उस कोटा ने कम्पनाधिपति को अपने गज सैन्य द्वारा नष्ट कर दिया ।'

(१) जबतक : कोटा रानी इतने गुप्त ढंग से कारागार से निकल गयी थी कि किसी को पता भी नहीं चल सका कि वह मुक्त,हो गयी है । साथ ही उसने इतनी शीघ्रता से आक्रमण किया कि लोगों को उसके आक्रमण का पता भी नहीं चल सका ।

पाद-टिप्पणी :

२९७. (१) मुक्त : यद्यपि रानी कोटा ने कम्पनाधिपति का पराभव कर दिया तथापि वह

तयानपोदितोऽप्यौज्झि शाह्मरो नैव शङ्कया।
कृतवैराः समर्थेन प्राज्ञा नैव ह्युदासते ॥ २९८ ॥

२९८ उस (कोटा) के कुछ अपकार[1] न करने पर भी शाहमीर शङ्का रहित नहीं हुआ, (उचित ही है) समर्थ के साथ वैर करने वाले, बुद्धिमान लोग उदासीन नहीं रहते।

न प्रासीदन्न चाकुप्यत् तस्मिन्सा बलशालिनि।
घृणा प्रमादसहिता विनाशप्रथमाङ्कुरः ॥ २९९ ॥

२९९ उस बलशाली पर वह (कोटा) न प्रसन्न हुई और न क्रुद्ध, प्रमाद-सहित घृणा ही विनाश का प्रथम अंकुर है।

जयापीडपुरं यान्त्यां तस्यां कार्यानुरोधतः।
शाह्मेरो बली जातु नगरं स्वीचकार सः ॥ ३०० ॥

३०० कार्यानुरोध[1] से जब कि कभी वह (कोटा) जयापीड़पुर[2] गयी हुयी थी, बली शाह-मीर ने नगर को अधिकृत कर लिया।

शंकित रहती थी। वह हाथी जिसने कि एक दात से प्रतिपक्षी हाथी को गिरा दिया है। उसे भी अन्य हाथियों से भय रहता है। शंका का कारण शाहमीर तथा उसकी बढ़ती शक्ति थी, जिसे रानी कोटा नियन्त्रित करना चाहती थी।

(२) भट्टभिक्षण : श्लोक २७८ से स्पष्ट प्रकट होता है कि शाहमीर द्वारा जब वह उसे देखने के लिए उसके घर गया था तो उसे छलपूर्वक मार डाला गया था। पुनः यहाँ भट्टभिक्षण का उल्लेख जोनराज करता है। कारागार मे मुक्त होने पर कोटा रानी ने भट्टभिक्षण के लिए अनुताप किया। क्योंकि भिक्षण के मरने के कारण उसका एक हाथ ही जैसे टूट गया था। फिर भी जैसे हाथी के दो दातो मे से एक के समाप्त हो जाने पर भी एकदन्त हाथी से भय होना ही है। उसी प्रकार वह अब भी शक्तिशाली थी।

पाद-टिप्पणी :

२९८. (१) अपकार : कारागार से निकलने पर भी रानी ने शाहमीर को न तो कोई दण्ड ही दिया और न कोई अपकार किया। तथापि शाहमीर रानी से शंकित रहने लगा, अपना षड्यन्त्र-जाल यथावत फैलाता रहा, उसे इसलिये और शंका हुई कि कम्पनेश उसका समधी था। कोटा उससे बदला ले सकती थी।

पाद-टिप्पणी :

२९९. उक्त श्लोक संख्या २९९ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक क्रम संख्या ३३७ एवं ३३८ दी गयी है। उसका भावार्थ है :

'धनरसाश्रय निवास स्थल छोड़ती हुई, उस देवी को शाहमीर मे विफलता सदृश बुद्धि बढ़ गयी। वर्धनशील एक दूसरे के लिए क्षिति (पृथ्वी) और मदन की तरह कोटा और शाहमीर का वर्णन एक दूसरे के लिए भयावह हो गया।'

पाद-टिप्पणी :

३०० (१) कार्यानुरोध : परशियन तथा कुछ अन्य इतिहासकारो ने लिखा है कि रानी ने अपनी राजधानी श्रीनगर से जयापीडपुर बना ली थी (कमीर : १५०)। मोहिबुल हसन लिखते हैं—'श्रीनगर मे शाहमीर बहुत मकबूल था। इसकी मकबूलियत से कोटा रानी को खतरा महसूस हुआ। उसने अन्दरकोट को अपनी राजधानी बनायी (मोहिबु० : उर्दू : ६१)।

बहारिस्तान शाही (१७ ए०), हसन (१०२ ए०), हैदर मल्लिक (१०५ बी०) में लगभग इसी प्रकार की बातें लिखी गयी है।

पीर हसन दूसरा ही किस्सा बयान करता है—'शाह मिरजा ने मैदान साफ देखा। अपने दादा की करामात से उसके दिल में सल्तनत की ख्वाहिश पैदा हुई। वह अन्दर कोट से शहर में आया। अयान-मुल्क की सहायता से षड्यन्त्र किया। उन सबो मे परस्पर फूट थी, इसलिये सब उसके समर्थक हो गये। उसके साथ इमानदारी से मिल गये और उसे तख्त पर बैठा दिया। पचभट्ट ने उसके हुक्म की उदीली की तो उसे मौत के घाट उतार दिया गया। उस वक्त उसने शाही लिबास पहना और शमसुद्दीन का लकब इख्तियार किया' (पृष्ठ १६८–१६९)।

(२) जयापीडपुर—जयपुर : प्रोफेसर ब्यूह्लर ने सन् १८७५ ई० के पर्यटन काल मे जयापीडपुर का पता लगाया था। उन्होने जो अनुसन्धान उस समय किया था वह सत्य था। उसमे कुछ और जोडने की आवश्यकता नही है। उन्होने वर्तमान ग्राम अन्दरकोट के समीप उसका पता लगाया था (रिपोर्ट पृष्ठ १३)। श्री स्तीन ने भी इस सम्बन्ध मे प्रकाश डाला है। उन्होने राजतरगिणी मे परिहास-पुर तथा वितस्ता सिन्धु सगम के सन्दर्भ मे एक मान-चित्र बनाया है। मानचित्र मे धुर उत्तर सम्बल, द्वारावती, जयपुर, अन्दरकोट (अभ्यन्तर कोट किंवा अन्दरकोट) त्रिगामी, परिहासपुर, गोव-र्धनधर आदि स्थान दिखाये गये है। उससे जयपुर के स्थान तथा उसके प्राकृतिक एवं भौगोलिक रूप का दृश्य मिल जाता है।

कोट शब्द दुर्ग के लिये काश्मीर मे प्रयोग किया जाता है। कोट का वर्णन कल्हण ने किया है। कोट शब्द संस्कृत है। उसका काश्मीरी अपभ्रंश कोठ है। अन्दरकोट ममराज का एक परगना है। कल्हण ने उसे अभ्यन्तरकोट नाम से लिखा है (रा० : ४ : ५११)। यही अकबर नामा का भी इन्दर कोट किंवा अन्दर कोट है (हिमायू मुगलकालीन भारत : १ · १२८ अलीगढ)।

आईने-अकबरी मे अन्दर कोट परगना रूप से लिखा गया है (आ० २ . ३६८–३७१)। मूरक्राफट ने भी उसे परगना माना है (ट्रेवेल : २ : ११३)। अन्दर कोट गांव का कुछ भाग सम्बल झील से उठते द्वीप पर तथा कुछ झील की ढालुआ नीची भूमि पर आबाद है। वह वितस्ता को सम्बल सर से अलग करता है। यह शादीपुर से वितस्ता के ५ मील ऊर्ध्व भाग मे वाम तट पर पडता है। इस द्वीप पर अनेक मन्दिरो के ध्वसावशेष पडे है। ग्रामीणो का कथन है। वे जयापीड के निर्माण है। प्राचीन काश्मीरी परम्परा के पण्डितो मे भी वह ख्यात है। राजा जयापीड की राजधानी अन्दर कोट अर्थात् जयपुर मे थी। श्रीवर के समय मे भी यह स्थान जयापीडपुर किंवा जयपुर नाम से प्रसिद्ध था (जैन० . १ : २४६; २५०, २५७, ४ · ५४०, ५४५)।

कल्हण ने द्वारावती (रा० ४ · ५११) का उल्लेख किया है। यह स्थल कल्हण के समय बाह्य कोट नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकार जयपुर अभ्यन्तर तथा द्वारावती बाह्य कोट नाम से प्रसिद्ध थी। कल्हण द्वारा वर्णित जयदेवी, ब्रह्म, केशव, जयदत्त मठ आदि जयपुर मे थे (रा० : ४ : ५०, ५०८, ५१२)।

कल्हण ने जयपुर को कोट नाम से अभिहित किया है (रा० : ४ : ५०६; ४ · ५१२, ७ : १६२५)। श्रीवर के वर्णन से भी यही बात परिलक्षित होती है। जहाँ उसने उसे दुर्ग शब्द से स्पष्ट किया है (जैन : ४ : ५४०, ५४५)। क्योकि यह चारो तरफ जल से आवृत है। प्राचीन तथा मध्ययुग में दुर्ग को प्रथम नहर अथवा खाई से घेरते थे जिसमे जल भरा रहता था। यह प्रथम सुरक्षा पक्ति होती थी। उसके पश्चात् पत्थर अथवा ईटो की मजबूत दीवाल से उसे परिवेष्ठित करते थे जिसे प्राचीर कहते है। प्राचीर मे गुम्बज तथा दीवाल पर तोर तथा

तस्मिंल्लवन्यलोकेन गृहीताज्ञे बलीयसि।
राज्ञी समवृणोत् कोट्टद्वारं सह जयाशया॥ ३०१॥

३०१ लवन्य लोगों के उस बली की आज्ञा ग्रहण कर लेने पर रानी ने जय आशा के साथ कोट[1] द्वार बन्द कर लिया।

गोली छोडने के लिये लम्बे झुके मोखे सुराखे बने रहते थे। बुर्जों पर तोप रखने तथा चलाने के लिये स्थान बनाये जाते थे। अन्दर कोट प्राय राजाओ के निवास के काम मे आता रहा है। कोटा रानी वही मरी थी। शाहमीर ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। वह भी यही मरा और यहीं गाडा गया था।

कल्हण के अनुसार राजा जयापीड ने कोट अथवा दुर्ग का निर्माण झील के बीच मे मिट्टी पाटकर राक्षसो से कराया था। उसने वहाँ एक बडा विहार भी बनवाया जिसमे बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की गयी थी। उसने यहाँ केशव मन्दिर तथा अन्य देवस्थानो का भी निर्माण कराया था (रा० ४ : ५०६, ५११, ५१२, ७ : १६२५)।

पाद टिप्पणी :

उक्त श्लोक सख्या ३०१ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ३४१ अधिक दिया गया है। उसका भावार्थ है 'बिल्ली के सामने से हट जाने पर बिल स्थित, मूसक सदृश वह (कोटा) शाहमीर के चले जाने पर हुई।'

३०१, (१) कोट : कोट का अर्थ दुर्ग है। श्लोक सख्या २६७ से प्रकट होता है कि लवन्यो का समर्थन कोटा रानी को प्राप्त था। जयापीड के सन्दर्भ मे श्लोक ३०० की टिप्पणी मे लिखा गया है कि कोट एक दुर्ग था जो कोट नाम से प्रसिद्ध था।

श्रमराज्य मे श्रीनगर है। उसका अधिकारी शाहमीर का पुत्र पूर्वकाल मे ही बन चुका था। शाहमीर श्रीनगर में प्रबल हो गया था। शारिका पर्वत पर अकबर के दुर्ग निर्माण के पूर्व अन्दर कोट ही सुरक्षित स्थान समझा जाता था। कोट द्वार बन्द कर लेने से ही स्पष्ट होता है। कोट के अन्दर सुरक्षा की दृष्टि से कोटा रानी आ गयी थी। कोटा रानी की हत्या के पश्चात् शाहमीर ने भी कोट को ही अपनी राजधानी बनाया था। रानी के साथ लवन्यों की सेना भी थी। अतएव कोट मे निवास स्वाभाविक प्रतीत होता है।

कोट के बाहर युद्ध होने पर लवन्यो ने जब हथियार रख दिया तो कोटा रानी शेष सहयोगियो के साथ कोट के अन्दर चली गयी। कोट द्वार बन्द करना सुरक्षा की दृष्टि से अपेक्षित था। कोटा रानी को आशा थी कि उसके साथी पूर्व काल के समान उसे मुक्त कराने और काश्मीर की सुरक्षा का प्रयत्न करेंगे। परन्तु उसकी यह आशा आशा-वल्लरी मात्र रह गयी।

कोट अर्थात् अन्दर कोट अथवा जयापीडपुर काश्मीर मे उस समय सुरक्षित स्थान समझा जाता था। यह स्थिति अकबर के समय तक थी। मिर्जा हैदर ने काश्मीर आक्रमण के पश्चात् अपने कुटुम्ब को अन्दर कोट मे सुरक्षा की दृष्टि मे रखा था (अकबर-नामा भाग २.४०३)। शाहमीर के पुत्र तृतीय सुलतान अलाउद्दीन ने भी सुरक्षा की दृष्टि से अपनी राजधानी जयापीडपुर (अन्दर कोट) बनाया था (श्लोक ३५७)।

पीर हसन लिखता है—'शाह मिरजा ने अन्दर कोट मे कोटा रानी के पास पैगाम तजबीज विवाह भेजा, जिसे कोटा रानी ने मंजूर नहीं किया। सुलतान अपने लश्कर के साथ उससे लडाई करने पर उतारू हो गया और अन्दर कोट किला का मुहासरा शुरू कर दिया (पृष्ठ : १६८–१६९)।'

निरुद्धे वलिना कोट्टगुहाग्रे मतिशालिना।
नृसिंहेनाभजत् कोटा सृगालीव मुहुर्भयम् ॥ ३०२ ॥

३०२ उस बली एवं मतिशाली नृसिंह के कोट[1] द्वार निरुद्ध कर लेने पर, कोटा श्रृगाली[2] सदृश भयभीत हुई।

सिंहासने मया साकं श्रिया साकं ममोरसि।
क्षमया सह चित्ते मे राज्ञी निविशतां स्वयम् ॥ ३०३ ॥

३०३ 'मेरे साथ सिंहासन पर, श्री के साथ मेरे उर पर, क्षमा के साथ मेरे चित्त पर रानी स्वयं निविष्ट हो।"

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ३०२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक क्रम सख्या ३४३ तथा ३४४ अधिक है। श्लोको का भावार्थ है—'प्रदत्त राज्यागो एव निजागो द्वारा रानी मुझे उन्नत, मगल, अनस्वर तथा श्री समन्वित करे। रानी केवल मेरे पुत्रो की ही नही अपितु प्राणो की श्लाघ्य सुख परम्परा को प्राप्त करे।'

३०२ (१) कोट द्वार : रानी ने जय आशा से कोट द्वार बन्द कर लिया था। किन्तु उसे किसी ओर से सहायता नहीं मिली। शाहमीर ने कोट द्वार अवरुद्ध कर दिया था। शाहमीर शकित था। कोटा कही मुक्त होकर उसका षड्यन्त्र विफल न कर दे।

कोटा रानी चतुर थी, विचक्षण थी। कम्पनाधिपति के बन्दी बनाये जाने पर निकल गयी थी और कम्पनाधिपति को नष्ट कर दिया था। चतुर सेनानी तुल्य शाहमीर ने कोट द्वार एवं कोट का घेरा डाल दिया था। इस परिस्थिति मे कोटा रानी का भयभीत होना स्वाभाविक था।

(२) श्रृगाली : जोनराज ने कोटा रानी जैसी वीर रमणी, काश्मीर की अन्तिम शासिका के लिये उपमा का चयन अच्छा नही किया है। उसके साथ अन्याय किया है। कोटा की उपमा श्रृगाली से देना जोनराज जैसे शाहमीर वंशज सुलतान के दरबारी कवि के लिये ही सम्भव हो सकता था। परसियन इतिहासकारो ने चाहे दबी ही जुबान से ही क्यो न हो रानी की चातुरी, उसकी देशभक्ति की प्रशंसा की है। उन्होने उसके चरित्र पर किंचित मात्र छीटा-कशी नही की है, उस पर किसी प्रकार का कलंक नही लगाया है। जोनराज की पक्तियो मे देशभक्ति की झलक प्रतिबिम्बित होती नही दिखायी पडती।

काश्मीर मे कायर, बुजदिल की उपमा श्रृगाल अथवा गीदड से दी जाती है—'शाल सन्दि पष्प छुक् चलान्—।' गीदड की तरह डर कर चला गया।

पाद-टिप्पणी :

३०३. (१) शाहमीर ने सन् १३१३ ई० मे काश्मीर मण्डल मे सकुटुम्ब प्रवेश किया था। सन् १३३९ ई० मे उसके पौत्र मौजूद थे। वह २६ वर्षों तक काश्मीर राज-परिवार का कृपापात्र एवं सेवक रह चुका था। मान लिया जाय उसकी आयु काश्मीर प्रवेश के समय ४५ वर्ष थी तो भी इस समय वह ७१ वर्ष का वृद्ध था। डॉक्टर सूफी ने शाहमीर की ८० वर्ष आयु मे मृत्यु होना माना है (कशीर : ३४)। शाहमीर ने कुल ३ वर्ष ५ दिन राज्य किया था। इस प्रकार शाहमीर की आयु इस समय ७७ वर्षों की थी इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। शाहमीर की आयु ७० तथा ७७ वर्ष के मध्य थी। इस समय कोटा रानी की आयु ३९ वर्ष से अधिक नहीं थी। शाहमीर और कोटा की वय मे लगभग ४० वर्षों का अन्तर था। तथापि शाहमीर ने कोटा

तामेवमादिसन्देशैर्मुग्धां संमोह्य यत्नतः ।
हस्ते चकार कोटक्ष्मां कोटादेवीं च बुद्धिमान् ॥ ३०४ ॥

३०४ इस प्रकार पूर्व सन्देशों द्वारा, उस मुग्धा को सयत्न सम्मोहित कर, कोट भूमि एवं कोटा देवी को उस बुद्धिमान ने हाथ[1] मे कर लिया।

से विवाह प्रस्ताव किया था। शाहमीर को क्षणमात्र के लिये लज्जा नही मालूम हुई कि वह वृद्ध था, कोटा युवती थी। उसे इसका भी सकोच नही हुआ कि जिसके अधीन उसके सेवक के समान २६ वर्षों तक कार्य किया था, जिसकी कृपा का वह मुखापेक्षी था, उसी स्वाभिमानी कोटा के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रख रहा था। रिंचन के राजा बनने के सात वर्ष पूर्व शाहमीर काश्मीर मे आ चुका था। उस समय कोटा रानी कठिनता से तेरह वर्ष की रही होगी।

यह आश्चर्य की बात नही कही जायगी। मुस-लिम शासको, प्रशासको एवं सुलतानो के लिये ऐसी बातें महत्वहीन थी। भारत पर प्रथम आक्रमण करने वाला महमूद बिन कासिम ने यही किया था। उसने सिन्ध पर सन् ७१२ ई० मे आक्रमण किया। ब्राह्मणा बाद के पतन के पश्चात् दाहिर की रानी युद्ध करने लगी। विजयोपरात महमूद ने रानी से विवाह कर लिया और सिन्ध का राजा बन गया।

भारत मे मुसलिम राज-सस्थापक शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने ऊँच दुर्ग विजय हेतु ऊँच की रानी को प्रलोभनीय अनेक सन्देश भेजे। दुर्ग जीतने पर रानी अथवा उसकी कन्या से विवाह नही किया। उन्हें बन्दी बनाकर गजनी भेज दिया। वे वहाँ इस-लाम की शिक्षा ग्रहण करने लगी। निराश रानी मर गयी। दो वर्ष पश्चात् उसकी कन्या भी मर गयी। कभी कन्या को शहाबुद्दीन की बेगम बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

वहाँ उनकी मृत्यु किस प्रकार हुई इस पर इतिहास प्रकाश नहीं डालता। अपनी माता को कन्या सर्वदा ताना देती रही। रानी हताश हो गयी थी।

सन् १२९७ ई० मे अलाउद्दीन खिलजी ने अनहिल वाडा विजय किया। वहाँ की रानी केवल देवी से विवाह कर लिया। उसकी कन्या देवल देवी से खिज्रखा का विवाह कर दिया गया। खिज्र को मुबारक खा ने मारा। मुबारक ने विधवा देवल देवी को अपनी बीबी बना ली। मुबारक खां के पश्चात् खुशरव ने सत्ता प्राप्त की और उसने भी विधवा देवल देवी को अपनी बीबी बनायी।

सुलतान हसन अली गजनी के सिहासन पर बैठा। उसने अपने पूर्ववर्ती सुलतान मद्रूद की विधवा से विवाह कर लिया। अलाउद्दीन खिलजी के पश्चात् जब उसका पुत्र गद्दीपर बैठा तो उसकी माता अर्थात् खिलजी की विधवा से मलिक काफूर ने विवाह कर लिया। मुबारक खिलजी के समय ग्वालियर विजय किया गया। वहाँ की विधवा रानी बादशाह के हरम मे रख ली गयी।

उस समय मुसलिम देशो म विजय के उपहार स्वरूप पूर्ववर्ती सुलतानो या नवाबो की बीवियो को अपनी बीबी बना लेने की जैसे परम्परा हो गयी थी। इसके और अधिक उदाहरण देना अप्रासगिक होगा। हिन्दुओ मे यह प्रथा नही थी। हिन्दू विधवा अथवा विजातीय विवाह को कभी मान्यता नही देते थे।

ईसाई राजाओ ने भी दिवगत राजाओं की विधवा से विवाह की परम्परा को स्वीकार नही किया। यूनान तथा रोम मे इस प्रथा का अभाव था, परन्तु मुसलिम काल मे यह आम बात और रिवाज़ हो गयी थी।

पाद-टिप्पणी :

३०४ (१) हस्ते : जोनराज का तात्पर्य स्पष्ट है। शाहमीर ने कोट तथा कोटा देवी दोनो पर

एकस्मिञ्शयने रात्रिमतिवाह्य तया समम् ।
स प्रातरुत्थितो जातु तीक्ष्णैर्देवीमरोधयत् ॥ ३०५ ॥

३०५ उसके समान[1] एक शयन[2] पर रात्रि व्यतीत कर, प्रातः उठकर, वह तीक्ष्णों (बधिकों)[3] द्वारा देवी को रोध (बन्दी) कर लिया।

नियन्त्रण कर लिया था। इस पद से किसी प्रकार यह ध्वनि नहीं निकलती कि शाहमीर ने कोटा देवी से विवाह कर लिया। उलटे प्रकट होता है कि कोटा देवी शाहमीर की बन्दी हो गयी थी।

प्रोफेसर मोहिबुल हसन ने यह घटना क्रम जोनराज के अनुसार नहीं रखा है। वे लिखते है—'ममलकत के सारे सरदारों की हिमायत शाहमीर को हासिल थी। और कोटा रानी की फौजें भाग कर शाहमीर की फौज से मिल गयी। यह सूरत देखकर कोटा रानी ने हथियार डालने और इसकी तजबीज कबूल करने का फैसला कर लिया (उर्दू ६२)।' पुष्टि में किसी सन्दर्भ ग्रन्थ का नाम नहीं दिया है।

पीर हसन ने दूसरा ही किस्सा लिखा है 'शाहमीर पहले अन्दर कोट मे था। वहाँ से शहर मे आकर बादशाह बना। वहीं से विवाह करने के लिये सन्देश भेजा।' हसन लिखता है—'अन्दर कोट मे कोटा रानी के लिये शादी का पैगाम भेजा। उसने सुलतान शमसुद्दीन की चाकरी (नौकर) के पेश नजर उसके पैगाम को मंजूर न किया। सुलतान अपनी फौज को लेकर लड़ाई के लिये उठा और अन्दर कोट के किला मे उसका महासरा कर लिया। चुनाच कोटा रेन मजबूरी की हालत मे सुलतान के साथ निकाह करने पर राजी हो गयी। अक्द निकाह मुनअकद करके शौहर के हमराह शहर म आ गयी (उर्दू. अनुवाद १५१)।'

परशियन इतिहासकार एकमत हैं कि अन्दर कोट में ही शादी हुई। वहीं कोटा मरी या मारी गयी। लेकिन हसन शाहमीर को निर्दोष साबित करने के लिये, उसे दूल्हा और दुल्हिन की तरह श्रीनगर लाता है।

फिरिस्ता लिखता है—'बन्दी बना लिये जाने के पश्चात् उसने अनिच्छापूर्वक शाहमीर की स्त्री बनना स्वीकार कर लिया और मुसलिम धर्म भी ग्रहण कर लिया। यह एक घटना थी जिसके कारण शाहमीर को देश मिल गया जिसे वह पहले ही हड़प चुका था (पृष्ठ ४७३)।'

मिर्जा हैदर दुगलात लिखता है:—'एक कोई सुलतान शमसुद्दीन वहाँ एक कलन्दर का भेष धर कर आया। उस समय काश्मीर के प्रत्येक जिलो मे एक शासक था। वहाँ एक रानी भी थी। जिसकी नौकरी सुलतान ने कर ली थी। कुछ समय पश्चात् रानी ने इच्छा प्रकट की कि सुलतान उस से शादी कर ले। इस घटना के थोड़े दिनो के बाद ही उसकी शक्ति काश्मीर मे एकच्छत्र हो गयी, (तारीखे: रशीदी पृष्ठ ४३२)।' श्री टी० लारेन्स लिखता है—'वह ५० दिनों तक रानी रही। शाहमीर ने अपने को राजा सन् १३४३ ई० मे घोषित कर दिया। अपनी शक्ति सघटित करने के लिए शाहमीर ने विवाह का प्रस्ताव रखा। उस (कोटा रानी) ने देखा कि वह उसके शक्ति प्रभाव मे आ गयी थी। उसने बात टालने की कोशिश की। अन्त मे वह उसकी प्रगतियो को स्वीकार करने के लिये बाध्य हो गयी। किन्तु ज्योंही शाहमीर ने विवाह कक्ष मे प्रवेश किया (रानी ने) अपनी आत्महत्या कर प्राण त्याग दिया, (वैली ऑफ काश्मीर: पृष्ठ १९०)।'

पाद-टिप्पणी:

३०५ श्री दत्त ने अनुवाद किया है—'उसने एक रात्रि एक शयन पर बिताया जब वह प्रात काल उठा तो वह तीक्ष्णों ने उसे पकड़वा दिया (पृष्ठ: ३२)।'

इसका एक और अनुवाद हो सकता है—'एक ही शय्या पर उसके साथ पूर्ण रात्रि व्यतीत कर, वह प्रात उठकर तीक्ष्णो से देवी को बन्दी करा दिया।'

इसका निम्नलिखित अनुवाद किया जा सकता है—'एक समय रात्रि मे उसी के समान रात्रि व्यतीत किया, प्रात उठकर तीक्ष्णो द्वारा देवी को रोध कर लिया।'

एक अनुवाद और किया गया है—'एक समय उसने उसके समान शयन म रात्रि व्यतीत किया। प्रात उठकर तीक्ष्णो द्वारा देवी को बन्दी बना लिया।'

(१) समान उक्त श्लोक के भ्रामक एव त्रुटिपूर्ण अनुवाद के कारण इतिहासकारो ने महान गलतियाँ की हैं। वह गलती अबतक होती चली जा रही है। परसियन इतिहासकारो ने इस श्लोक का मनमाना अर्थ लगाया है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कोटा देवी ने शाहमीर से विवाह कर लिया था। जोनराज का वर्णन भी इस सन्दर्भ मे स्वय विरुद्ध है।

दत्त तथा सभी परसियन अनुवाद-कर्ताओ न अनुवाद किया है कि एक 'साथ' एक शय्या पर पति-पत्नी तुल्य दोनों ने रात्रि व्यतीत की। मैंने इस श्लोक का अर्थ अनेक सस्कृत दिग्गज विद्वानो से परामर्श कर लगवाने का प्रयास किया है। वे प्राय एकमत न हो सके। मुझे अपना ही अर्थ अभी भी ठीक लगता है।

'सह' का अर्थ 'साथ', तथा 'समम्' का अर्थ 'समान' होता है। भावार्थ होगा—'दोनो ही ने कोट मे एक तरह रात्रि व्यतीत की। यहाँ पर पति-पत्नी शब्द नही दिया गया है। विवाह के प्रसग का भी वर्णन नही किया गया है। विवाह का प्रस्ताव अवश्य शाहमीर ने रखा था परन्तु प्रस्ताव का अर्थ उसकी पूर्णता नही है।

'एक समय रात्रि म उसी के समान रात्रि बिताया'—यह भी एक अर्थ किया जाता है। 'तया' शब्द का अर्थ उसके 'साथ' होगा। 'समम्' का अर्थ साथ भी होता है। 'तया' शब्द स्त्रीलिंग है। 'स' शब्द पुलिंग है। 'समम्' के स्थान पर 'सह' शब्द का पाठभेद मान लिया जाय तब भी छन्द शास्त्र के अनुसार अनुष्टुप छन्द की मात्रादि ठीक बैठती है। पद म किसी प्रकार का व्यतिक्रम नही होता। यदि जोनराज का तात्पर्य होता कि उन्होंने पति-पत्नी-वत् एक 'साथ' शयन किया तो वह 'सह' लिखता न कि 'समम्'।

सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शाहमीर और कोटा रानी ने पति-पत्नी-वत् एक रात्रि एक साथ शयन नहीं किया। दोनो ने कोट मे एक समान रात्रि व्यतीत की। उन्होने कोट म ही शयन किया। यह स्वाभाविक भी है। शाहमीर कोटा रानी को मुक्त नही करना चाहता था, वह विजयी था। अवसर मिलते ही अपने षड्यन्त्र को पूर्ण करना चाहता था।

कोटा रानी ने राज्य नही त्यागा था, वह रानी थी। शाहमीर ने कोट पर अधिकार कर लिया था, वह भी विजेता था। दोनो की स्थिति समानवर्ती रहे इसका निवाह 'समम्' शब्द का प्रयोग कर जोन-राज ने किया है।

(२) शयन परसियन इतिहासकारो का मत है—कोटा रानी न जब देखा कि कोट की रक्षा नहीं कर सकती। उसके सैनिको ने उसका साथ त्याग दिया है तो उसने अन्त मे हथियार डाल दिया। शाहमीर का (विवाह) प्रस्ताव मान लिया (बहारिस्तान शाही १७ ए, हसन, १०३ ए० बी०, हैदर मल्लिक १०५ बी०)।

जोनराज के एक सौ बीस वर्ष पश्चात् किसी अज्ञात लेखक द्वारा लिखी हुई बहारिस्तान शाही मे सन् १६१४ ई० तक की घटनाओ का वर्णन है। हसन बिन अली ने सन् १६१६ ई० तक की घटनाओ का वर्णन किया है। हैदर मल्लिक ने सन् १६१८ ई० मे लिखना आरम्भ कर सन् १६२०–१६२१ ई० म अपनी तारीख समाप्त की थी। उक्त

तीनो परसियन इतिहास लेखको ने न तो किसी आधार ग्रन्थ का उल्लेख किया है और न किसी ग्रन्थ का उद्धरण दिया है। इन परिस्थितियो मे जोनराज का जो उक्त घटना का सबसे समीपवर्ती लेखक है, क्यो न विश्वास किया जाय ? जोनराज तथा परसियन लेखको के काल मे शताब्दियो का अन्तर है। किसी अन्य प्रमाण के अभाव मे जोनराज की सत्यता स्वीकार करनी ही होगी। कोटा रानी के सम्बन्ध मे अनेक कथानक, मनगढत किस्से कालान्तर मे प्रचलित हो गये। उन पर विश्वास करना कठिन है।

म्युनिख पाण्डुलिपि मे उल्लेख मिलता है—'कोटा रानी ने विवाह कक्ष मे उपस्थित होते ही अपने पेट को चीर डाला। उसने शाहमीर को अपने स्थान पर अपनी अंतडियाँ दी।'

तवकाते अकबरी ने विचित्र कल्पना की है—'रानी ने एक बहुत बडी सेना लेकर उस (शाहमीर) पर आक्रमण किया। किन्तु वह बन्दी बना ली गयी। तत्पश्चात् उसने शाहमीर से विवाह कर इस्लाम कुबूल कर लिया। एक दिन, एक रात्रि वे एक साथ रहे। दूसरे दिन शाहमीर ने उसे बन्दी बना लिया। राज्य की पताका बुलन्द की। खुत्बा व सिक्का अपने नाम से चलाया। काश्मीर मे इस्लाम का प्रारम्भ उसी से हुआ' (उ० तै० भा० २ : ५१२ : *अलीगढ*)। *कोटा रानी का अन्त किस प्रकार हुआ इस* पर लेखक कुछ प्रकाश नही डालता। नारायण कौल, आजम तथा हसन ने लिखा है कि उसने आत्महत्या कर ली थी।

पीर हसन लिखता है—'रात के वक्त शाही महल में उसने अपना उमदा लिबास और लाइन्तहा जेवरात से शृङ्गार किया। लेकिन जब वस्ल की मौका आया तो पेट पर छुरी मार कर तमाम अँतडियाँ बाहर निकाल ली और कहा कि मेरी मक्बूलियत यही है (पृष्ठ : १६९)।'

प्रत्येक परसियन इतिहासकारो ने इस घटना पर परदा डालने के लिये कि शाहमीर ने कोटा रानी को वधिको अर्थात् तीक्ष्णो को हत्या के लिये दे दिया था, अनेक प्रकार की कपोलकल्पनाएँ की हैं। वास्तविकता वही है जिसका वर्णन जोनराज ने किया है। पीर हसन शाहमीर को बेकसूर साबित करते हुए कोटा रानी को ही मृत्यु का दोषी ठहराता है। वह स्वेच्छा से शादी कर अन्दर कोट से श्रीनगर मे आई और अपनी इच्छा से ही उसके शयन कक्ष मे आकर अपनी आत्महत्या कर ली।

लारेन्स ने परसियन लेखको का अनुसरण करते *हुए लिखा है—'शाहमीर ने जैसे ही विवाहोत्सव कक्ष* मे प्रवेश किया कोटा रानी ने छुरे से आत्महत्या कर ली (वैली १९२०)।'

श्री पृथ्वीनाथ कौल, बमजाई काश्मीरी लेखक ने लिखा है—'शाहमीर ने उसके पास सन्देश भेजा कि रानी उसके सामने आये। रानी ने बहुत कीमती वेष-भूषा तथा अत्यन्त मूल्यवान् आभूषणो को पहन कर शाहमीर के शयन गृह मे प्रवेश किया। विजयोल्लास के साथ शाहमीर उसके समीप पहुँचा। पहले कि वह उसे अपने बाहुओ मे ले ले, कोटा रानी ने स्वय अपने छुरे से आत्महत्या कर ली (हिस्ट्री ऑफ काश्मीर : १६२)।'

श्री प्रेमनाथ बजाज दूसरे काश्मीरी लेखक ने लिखा है—'वह उच्चात्मा एव भावुक थी। उस परिस्थिति को सहन करने के लिये तत्पर नही थी। शाहमीर एक विदेशी था। वह अति साधारण शरणार्थी के समान राजद्वार पर आया था। वह अपने अभिजात कुल का अभिमान नहीं कर सकता था। मालूम होता है कि शाहमीर और रानी मे कुछ बातो को लेकर वाद-विवाद तथा गर्मा-गर्मी परस्पर हुई थी राज्य हडपने वाले शाहमीर ने प्रातःकाल स्वाभिमानी कोटा को पुलिस के मुख्य अधिकारी तैक्ष्ण से गिरफ्तार करवा दिया। दुःखाभिभूत निराश संत्रासित रानी ने जुलाई सन् १३३९ मे आत्महत्या कर ली।'

तीसरे काश्मीरी इतिहासकार डॉ० परमू लिखते हैं—'सतीत्व बचाने के लिये उसने शाहमीर की शर्त

मान ली। उसने रानी होकर उसके साथ सिंहासन का भागीदार होना स्वीकार किया—उन्होंने विवाह किया। किन्तु २४ घण्टे के अन्दर वह सर्वदा के लिये गायब हो गयी (पृष्ठ ८५)।'

प्रश्न उठता है यदि कोटा रानी ने शाहमीर से विवाह कर लिया तो हत्या का प्रश्न क्यों उठा? यदि उसने आत्महत्या कर ली, तो शाहमीर को जनता से भय का कोई कारण नहीं था। उसका सार्वजनिक मृतक दाह संस्कार किया जाता अथवा गाड़ दी जाती। उसकी भी कहीं कब्र होती। सम्भावना यही प्रतीत होती है कि वधिकों ने उसे मार कर उसके शरीर को वितस्ता में प्रवाहित कर दिया होगा जो अन्दर कोट के पास ही बहती है। उसे गाड़कर, उसकी कब्र बनाकर भविष्य के लिये अन्तिम हिन्दू शासिका, अन्तिम काश्मीरी रानी को प्रेरणादायक के रूप में न रखता। अन्दर कोट के समीप भी जल था। उसका अंग-भंग कर उसमें भी चुपचाप डाला जा सकता था। किसी को मालूम भी नहीं हुआ कि उसका क्या हुआ। क्योंकि वह सब कार्यवाही प्रातःकाल के पूर्व अर्थात् रात्रि में ही कर दी गई थी। जोनराज स्पष्ट संकेत करता है कि प्रात. उठते ही उसने तैक्ष्णों से उसे बन्दी बना लिया था। प्रात.काल की नमाज का समय लगभग ५ बजे होता है। उसके पूर्व शाहमीर उठा होगा। उसकी हत्या प्रातः तीन बजे से चार बजे के बीच हो गई होगी। इसी की अधिक सम्भावना है। इस काम को करने के पश्चात् एक धार्मिक मुसलमान के समान उसने नमाज पढ़कर अल्लाह से काश्मीर में मुसलिम राज कायम रहने की दुआ मांगी होगी।

कपोल कल्पनाओं के आधार पर विवाह तथा आत्महत्या अथवा मरने की कहानियाँ रच कर कालान्तर में जोड़ दी गयी हैं। इतिहास पर दूसरा रंग चढ़ाने का प्रयास किया गया है। किसी ने 'तीक्ष्ण' तथा 'समम्' आदि शब्दों के अर्थों को जानने का किंचित मात्र प्रयास नहीं किया है। जोनराज का अभिप्राय स्पष्ट है। शाहमीर ने कोटा रानी को कोट में बन्दी बनाया। वह स्वयं कोट में रहा। वहीं उसने वधिकों को कोटा रानी को मारने के लिये दे दिया। आत्महत्या, अँतड़ी निकालना, शादी करना आदि कथा कोटा रानी के स्थान पर, स्वयं राजा बनने पर, किसी प्रकार का विद्रोह न हो और जनता उसे दोषी न बनाये, इसलिये गढ़ ली गयी।

फिरिस्ता लिखता है—'दूसरे दिन विवाह के पश्चात् शाहमीर ने अपनी स्त्री को बन्दी बना लिया। शमसुद्दीन पदवी धारण कर, अपने को सुलतान घोषित कर दिया। उसने खुत्बा पढ़ने तथा अपने नाम पर मुद्रा टंकणित करने का आदेश दिया। उसने समस्त काश्मीर में मुसलिम धर्म के हनीफी सिद्धान्त को प्रचलित किया।'

कोटा रानी तथा उसके दोनों पुत्रों पर क्या बीती इस पर फिरिस्ता चुप है।

तबकाते अकबरी में उल्लेख है—'उसने शाहमीर के पास सन्देश भेजा कि वह चन्द्र सुत राजा रजन (रिंचन-रतन) को सिंहासन पर बैठा दे। शाहमीर ने यह बात स्वीकार न की और रानी की आज्ञा पालन नहीं किया। रानी ने एक बहुत बड़ी सेना लेकर उस पर आक्रमण किया। वह बन्दी बना ली गयी। तदुपरान्त शाहमीर से विवाह कर इसलाम स्वीकार कर लिया। एक दिन तथा एक रात्रि वे साथ रहे। दूसरे दिन शाहमीर ने उसे बन्दी बना लिया और राज्य की पताका बुलन्द की। खुत्बा अपने नाम से पढ़वाया और सिक्का अपने नाम का टंकणित कराया (पृष्ठ ५१२)।'

(३) तीक्ष्ण : वधिकों के लिये संस्कृत में तीक्ष्ण शब्द का प्रयोग किया गया है। कालिदास ने भी वधिकों के लिये तीक्ष्ण शब्द का प्रयोग किया है। अन्य संस्कृत नाटकों में भी तीक्ष्ण शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। जोनराज ने स्वयं श्लोक ५१७ में तीक्ष्ण शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। काश्मीरी इतिहासकार जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं था उन्होंने तीक्ष्ण को व्यक्ति एवं नामवाचक शब्द मान लिया है।

वर्षे पञ्चदशे शुक्लदशम्यां नभसस्ततः।
तारेव नभसो राज्याद्राज्ञी भ्रंशमलब्ध सा ॥ ३०६ ॥

३०६ पन्द्रहवें वर्ष के श्रावण शुक्ल दशमी तिथि को आकाश से तारा[1] सदृश, वह रानी राज्य च्युत हुई।

शाहमीर पटु राजनीतिज्ञ था। वह अनायास प्राप्त काश्मीर राज्य अपने अधिकार से जाने नहीं देना चाहता था। कोटा रानी की आयु उस समय ३९ वर्ष के लगभग होगी। डॉक्टर सूफी के अनुसार शाहमीर उस समय ७७ वर्ष का वृद्ध था। उसकी मृत्यु ८० वर्ष की आयु मे हुई थी। वह राज्य प्राप्ति के तीन वर्ष पश्चात् मरा था। कोटा प्रौढ थी, शाहमीर वृद्ध था। कोटा शाहमीर पर शासन कर सकती थी। शाहमीर उस पर शासन करने मे असमर्थ था।

शाहमीर विदेशी था। विश्वासघात, अविश्वास के कारण राज्य हस्तगत किया था। वह भविष्य को शंकनीय नहीं बनाना चाहता था। कोटा मुक्त होते ही, अवसर पाते ही अथवा उसकी मृत्यु होते ही स्वय शासिका बन जाती अथवा अपने पुत्रो मे से किसी को राज्य पर बैठाती। शाहमीर के वयस्क मुसलिम पुत्र के लिये उसे कोई स्नेह नहीं था। इन परिस्थितियो मे शाहमीर ने कोटा का वध कर अपने मार्ग का कंटक तथा उत्तराधिकार के विवाद को दूर करना उचित समझा।

श्री स्तीन का मत है कि कोटा रानी, शाहमीर द्वारा जो उसका पति हो गया था मरवा डाली गई। विश्व-इतिहास मे इतनी क्रूर, नृशंस, जघन्य, लोमहर्षणपूर्ण, हत्या का और कही उदाहरण नहीं मिलेगा। मेरी क्वीन ऑफ स्काट, एनीबोलेन, मेरी एन्टोनेट आदि का राजकीय न्याय एवं सम्मान द्वारा सार्वजनिक वध का उदाहरण मिलता है। उनका औपचारिक न्याय एवं निर्णय हुआ था, उन्हें दण्ड दिया गया था। किन्तु कोटा रानी का वध निरापराध था।

यह घटना मानव जाति के लिये कलंक है। पुरुषत्व को धिक्कारती है। कोटा का क्या अपराध था? उस पर आक्रमण किया गया था। उसने शाहमीर पर आक्रमण नही किया था। उसने शक्ति रहते शाहमीर को क्षमा कर दिया। आश्रय दिया था। उसके पुत्रो को राजा के समान पद दिया। जागीरें दी। उसने शाहमीर के लिये वह सब कुछ किया था जो वह कर सकती थी। शाहमीर का उसने कुछ बिगाड़ा नही था। उसकी दया, अनुकम्पा और सज्जनता का बदला शाहमीर ने उसके रक्त से चुकाया। विश्व मे यह घटना—यह हत्या अनोखी है। वह सभी सहृदयो का हृदय करुणा से भर देगी। उसे प्रलोभन दे, मोहित कर, छलकर, कोट द्वार खुलवाकर; उससे हथियार रखवा कर, उसका वध करवा देना और जिस परिस्थिति मे वह मारी गयी होगी उसका स्मरण कर रोमाच हो आता है। आँखो मे आँसू आ जाते है। यदि जोनराज की बात मान ली जाय तो वह एक रात्रि के लिये उसकी हमबिस्तर भी हो चुकी थी। अबला नारी ने आत्मसमर्पण कर दिया था। ऐसी अवस्था मे नारी हत्या करना वज्र हृदय—पाषाण-हृदय को भी रुला देता है। उपकार का बदला प्राण-हत्या से देना—इसे प्राणि जगत मे शायद ही कोई पसन्द करेगा।

पाद-टिप्पणी :

३०६. (१) तारा : जोनराज ने आकाश पतित नक्षत्र, तारा किंवा उल्कापात से कोटा रानी की उपमा दी है। आकाश से नक्षत्र टूटता है। प्रारम्भ मे ज्योतिपुंज प्रज्वलित रहता प्रकाश करता है। क्रमशः पतित होता है। पतन के साथ ही साथ ज्योति, रूप विकृत होता केवल काला पाषाण खण्ड जड़वत रह जाता है।

मोहिबुल हसन कोटा रानी की हत्या का उल्लेख न कर उसकी मृत्यु के विषय मे लिखते हैं—'कोटा रानी और उसके दोनो बेटो को नजरबन्द कर दिया गया। फिर वह (शाहमीर) शमसुद्दीन का लक्ब अख्तियार कर तख्तनशीन हुआ और अपने खानदान की बाग-बेल डाली। उसने काश्मीर पर दो साल से ज्यादा हुकूमत की। कोटा रानी का सन् १३३९ ई० मे कैद-खाने मे इन्तकाल हुआ। उसके दोनो लडको पर क्या गुजरी इस बात पर मोरखीन खामोश है (मोहिबु उर्दू. ६२, ६३, अंग्रेजी ४५)।'

मूल्याकन :

कोटा रानी गयी—उसके साथ ही काश्मीर और काश्मीर की स्त्रियो की स्वतन्त्रता गयी—अधिकार गया। काश्मीर मे राजा-रानी का एक साथ अभिषेक होता था। कोटा रानी अन्तिम महिला थी जिसका अभिषेक सिहासन पर पति-राजा के साथ हुआ था। कोटा के पश्चात काश्मीर के राज्याधिकार-धारिणी, यशस्वी, सहधर्मिणी, वीर नारी शासिका एव सैनिक नेतृत्व करने वाली स्त्रियो की परम्परा लोप होती है। मुसलिम दर्शन के प्रवेश के साथ काश्मीर का नारी जगत पीछे परदो मे चला जाता है। उसके महान सामाजिक चरित, प्रगतिशील जीवन, सहकर्मिणी, अर्धांगिनी आदि उदात्त आदर्शो का पटाक्षेप हो जाता है। वह महलो की—हरम की, शोभा मात्र रह जाती है। वह स्वतन्त्र न होकर पुरुषों की अनुगामिनी रह जाती है। उसकी मुक्त वाणी बन्द हो जाती है और वह एक दर्शन की अनुगामिनी हो जाती है जिसमे विचार स्वतन्त्रता नाम की वस्तु का अभाव खटकता है। वे मिल्लत की एक वर्ग की यन्त्र मात्र हो जाती है। धर्म एव राजनीति एकाकार हो जाती है, शासन धार्मिक हो जाता है, धार्मिक कट्टरता बढ जाती है और फिर सब कुछ धर्म की तुला से तौला जाने लगता है।

कोटा रानी जैसी वीर, सैन्य-सचालिका, चतुर राजनीतिज्ञ, अभिमानी नारी का चरित्र विश्व मे दुर्लभ है। उसकी असफलता का रहस्य काश्मीर निवासियो की कायरता, पारस्परिक वैमनस्य, समय की गति मे पीछे रहना है। यदि सेना ही नही लडना चाहे तो कोई सेनापति चाहे वह कितना ही बडा सैन्य-सचालन-निपुण क्यो न हो क्या कर सकता है। यही बात कोटा रानी के विषय मे कही जायगी। वह देश भक्त थी। परन्तु उसकी अपील पर देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर कोई आगे नही आया। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि उसके लोप होते ही, जैसे काश्मीर निवासियो की देश-भक्ति, वीरता आदि सबका लोप हो गया। एक व्यक्ति भी देश मे विदेशी सत्ता के स्थापित होने के विरुद्ध आवाज नही उठा सका।

मेवाड के इतिहास तथा काश्मीर के इतिहास मे विरोधाभास है। मेवाड के राजपूत, भील एव जनता सात शताब्दियो तक सवदा विदेशी सेना का सामना करती रही। अपनी स्वतन्त्रता, सस्कृति, सभ्यता एव गौरव कल्पना से प्रेरित होकर, रक्त बहाती रही। किन्तु काश्मीर मे इसका नितान्त अभाव विश्व के किसी भी देशभक्त अथवा स्वाभिमानी को खटकता है। जयापीडपुर मे कोटा के गर्म रक्त के ठण्ढे होते ही जैसे काश्मीर ठण्ढा हो गया।

कोटा रानी काश्मीर की महान् कीर्तिशाली राज्याधिकारिणी हुई है। वह यशोमती (रा० १ ७०), सुगन्धा (रा० ५ १५७, २२१, २२८, २४३, २५६, २५९, २६२, ४७२, ८ ३४३१) एव दिद्दा (रा० ६ १७७-३६५, ७ १२८४, ८ ३३८८, ३४३९, ३४४२) से भी ऊपर उठती है। कोटा उदीयमान साध्य गगन की तारिका और उषाकालीन अस्त होते नक्षत्र तुल्य थी जो प्रकाश रहते भी उषा की हलकी लाली होने के साथ ही साथ अपना अस्तित्व लोप कर देती है। कोटा रानी नि सन्देह यशस्वी सहधर्मिणी थी।

कोटा यशस्वी सहधर्मिणी चरित्रवान नारी थी। रिंचन, उदयनदेव की पत्नी थी। परन्तु किसी भी लेखक ने उसके चरित्र दोष के विषय मे कुछ नही लिखा है। किसी ने उसे कामुक आदि तो दूर, यह

तत्पुत्रावपि तौ द्वौ स करणीयविचक्षणः ।
बबन्ध बन्धुसम्बन्धिकल्पवृक्षो भटाग्रणीः ॥ ३०७ ॥

शाहमीर (शमसुद्दीन) सन् १३३९-१३४२ ई० ।

३०७ बन्धु एवं सम्बन्धियों का कल्पवृक्ष, भटाग्रणी, करणीय (कृत्य) मे विचक्षण, उस (शाहमीर[1]) ने उसके उन दोनों पुत्रों[2] को भी बन्धन में कर लिया ।

भी नही लिखा कि उसने अपने सुख, अपने वैभव के लिये राज्य कोष का अपव्यय किया था । उसके आदर्श चरित्र को परसियन लेखको ने राजनीतिक दृष्टि से अनुचित चित्रित करने का प्रयास किया है। किन्तु वे अपने इस प्रयास मे असफल हुए है। प्रत्येक विजेता अपने विजित को छोटा चित्रित करने का प्रयास करता है। यही प्रयास परसियन लेखको ने किया है। उसके सतीत्व पर आँच नही आने पायी है। रिंचन तथा उदयनदेव के प्रति वह सती नारी थी, उनके प्रति उसने असच्चरित्रता का व्यवहार किया हो, इसे परसियन लेखक भी नही कहते। फिर चाहे उसने दो विवाह क्यो न किया हो परन्तु वह एक के मरने के पश्चात् किया था।

क्या जगत विधवा विवाह को मान्यता नही देता? एक पति की मृत्यु के पश्चात् पुनः विवाह करना आचरणहीनता नहीं है। कोटा रानी की पति-भक्ति मे किसी ने सन्देह तक नही प्रदर्शित किया है। वह अपने आचरण में सन्देह करने के लिए किसी को किंचित मात्र अवसर नही देती। रिंचन के साथ उसका विवाह एक विजेता के रूप मे हुआ था। वह प्रौढ़ बुद्धि की नही थी, उसने स्वेच्छया रिंचन का वरण नहीं किया था। यह विवाह रिंचन के शक्ति प्रदर्शन का प्रतीक था। तत्कालीन जगत मे विजेताओ ने विजितो के साथ प्राय यही किया है।

उदयनदेव के साथ उसका विवाह स्वेच्छापूर्वक कहा जायगा। उदयनदेव को काश्मीर मे लाकर कथित विदेशी सुल्तान रिंचन के स्थान पर सिंहासन पर बैठा उसने काश्मीर का राज्य काश्मीरियों के हाथों मे पुनः दिया था। काश्मीर को उसने अपने कार्य से नेतृत्व प्रदान कर विदेशी शासन से मुक्त किया था।

इस दृष्टि से कोटा रानी काश्मीर की महान विदुषी चरित्रवान रानियाँ जैसे ईशान देवी (रा० : १ : १२२), देवी वाक्पुष्टा (रा० : २ : ११३), अनंग-लेखा (रा० : ३ : ४८४, ४८९, ४९७), सूर्यमती (रा० : ७ : १५२, १९७, ३७२, ४१०, ४७२, १२११) आदि की पंक्तियो मे बैठने योग्य है।

देवी सिल्ला (रा० ८ : १०६९) तथा देवी चुड्डा (रा० : ८ : ४६०, ११२२, ११३०, ११३७) के समान अवसर आते ही कोटा ने अपने उच्च व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

वह सफल सेनानी प्रमाणित हुई है। काश्मीरी सेना का नेतृत्व करने का एक मात्र श्रेय काश्मीर के पाच हजार वर्षो के इतिहास मे केवल कोटा देवी को प्राप्त है। कोटा देवी का चरित्र अनुपम है। प्रेरक है। शौर्य पूर्ण है। आदर्श है। उस पर कोई देश किंवा जाति गर्व कर सकती है।

पाद-टिप्पणी :

राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलिगताब्द ४४४० = शक १२६१ = सप्तर्षि ४४१५ = सन् १३३९ ई०; केम्ब्रिज हिस्टोरी ऑफ इण्डिया ने सन् १३४६ ई० दिया है (भाग ३ : ६९८)। यह गलत है। अबुलफजल ने आइने अकबरी मे हिजरी ७१५ = सन् १३१५ ई० तथा राज्य काल २ वर्ष, ११ मास, २५ दिन दिया है। तबकाते अकबरी मे राज्य काल ३ वर्ष दिया गया है। मलिक हैदर हिजरी ७५३ = सन् १३५२ ई०; बीरबल काचरू हिजरी ७४३ = सन् १३४२ ई०; श्री टी० डब्लू० हेग ने हिजरी ७४७ = सन् १३४६

ई० दिया है (जे० आर० ए० एस० सन् १९१८, पृष्ठ ४६८)। ख्वाजा मुहम्मद आजम वाक्याते काश्मीर मे हैदर का समय देते हैं। पीर हसन राज्य प्राप्ति काल हिजरी सन् ७४३ = विक्रमी १३९९ देता है। विक्रमी १३९९ का सन् १३४२ ई० आता है। राज्य काल तीन साल पाँच मास देता है (पृष्ठ १६८)। पीर हसन की गणना स्पष्टतया गलत है।

क्वाइन्स ऑफ दि सुलतान ऑफ काश्मीर (जे० ए० एस० बी० पृष्ठ ९२, फलक ११) पर श्री रोजर्स ने एक मुद्रा का चित्र दिया है, उस पर लिखा है—

'अस्सुलतान अल आजम शमसुद्दीन अरबो काश्मीर'। इस मुद्रा प्राप्ति के कारण शाहमीर की पहचान एव ऐतिहासिक व्यक्ति होने म सन्देह नही रह जाता। यह जोनराज के वर्णन की सत्यता प्रमाणित करता है। शाहमीर कोटा रानी के पश्चात शमसुद्दीन नाम रखकर सुलतान हुआ था।

समसामयिक घटनायें

लद्दाख मे इस समय ग्यल बु रिंचन राजा था। इब्न बतूता मुहम्मद तुगलक की सेवा त्याग कर सन् १३४२ ई० मे चीन चला गया। सीरिया का राजा अबुल फिदा इसी काल में हुआ था। किरमान मे ख्वाजू कवि का देहावसान हो गया। सन् १३३९ ई० म मुहम्मद तुगलक भारत की राजधानी दिल्ली से हटाकर दौलताबाद दक्षिण ले गया। मुसलमान विजय करते गोवा तक पहुँच गये। इसी प्रकार दक्षिणापथ मे उन्होने कृष्णा तक अपनी विजय पताका फहरा दी। सन् १३४० ई० मे बारूद का आविष्कार यूरोप मे हुआ। सन् १३४२ ई० मे दिल्ली मुहम्मद तुगलक की पुन राजधानी बनी।

३०७ (१) शाहमीर : निजामुद्दीन तथा फिरिश्ता शाहमीर को प्रथम मुसलिम सुलतान मानते हैं। उन्होंने रिंचन को प्रथम मुसलिम सुलतान और काश्मीर मे मुसलिम राज्य सस्थापक नही माना है। एव कारण यह दिया जाता है कि रिंचन ने मुसलिम धर्म स्वीकार नही किया था (दिल्ली सल्तनत : ३७४, विद्याभवन)। जोनराज ने भी रिंचन के मुसलिम धर्म स्वीकार करने का उल्लेख नही किया है।

आइने अकबरी शाहमीर के काल से सुलतानो की काल गणना हिजरी सन् मे देना आरम्भ करती है। शाहमीर के सम्बन्ध मे आइने अकबरी मे लिखा गया है—'राजा उदयनदेव के मरने पर शाहमीर ने उसकी विधवा से विवाह कर लिया। हिजरी ७४२ : (सन् १३४१-१३४२ ई०) मे खुत्बा अपने नाम से पढने का आदेश दिया और अपने नाम की मुद्रा टकणित कराई। सुलतान शमसुद्दीन नाम से बादशाह हुआ। उसने काश्मीर मे आयात होने वाली वस्तुओ पर छठवाँ हिस्सा कर लगाया। पच्चीस प्रतिशत काश्मीर मे कर लेने लगा। काश्मीर प्रवेश के पूर्व उसे स्वप्न हुआ था कि वह काश्मीर का राजा होगा (जरेट २ : ३८७)।'

काश्मीर म शाहमीर वश का राज्य सन् १३३९ ई० से १५६० ई० अर्थात् २२१ वर्षो तक था। शाहमीर ने मुसलिम परम्परा का निर्वाह किया। लौकिक सम्वत् का प्रचलन रोक दिया। नवीन सम्वत् विदेशी रिंचन जिस दिन राजा हुआ था उस दिन से आरम्भ किया। सरकारी कागजो, मजारो पर नवीन सन् दिया जाने लगा। यह सन् चगताई बादशाहो तक काश्मीर में निर्बाध चलता रहा। बीसवी शताब्दी के आरम्भ तक काश्मीर में कहीं कही चलता रहा है। पीर हसन के अनुसार हिजरी सन् ७२५ मे यह जारी किया गया था। यह सन् इसवी सन् १३२० ई० से आरम्भ होता है। उसका हिजरी काल ७२० है। अकबर के समान शाहमीर हिजरी सन् व्यवहार मे नहीं लाया। अकबर ने इलाही सन् सम्वत् १६४१ विक्रमी = १५०६ शालिवाहन शक सम्वत् से चलाया था। परसिया का इज्दी जिर्द सन् ईसा पूर्व ८०० वर्ष से आरम्भ हुआ था। अकबरनामा म उल्लेख है कि नगरकोट मे नया सन् उस दिन आरम्भ होता था

जब राजा दुर्ग पर अधिकार कर लेता था (अकबर-नामा ४ २२ २३)।

उस समय मुसलमान काश्मीर मे अल्पसंख्यक थे। काश्मीर मे मुसलिम राज्य की स्थापना ईश्वर प्रदत्त आशीर्वाद था। मुसलिम आक्रमक सर्वदा काश्मीरी सेना से परास्त होते रहे है। शाहमीर के ३०५ वर्ष पूर्व महमूद गजनी ने दो बार काश्मीर पर आक्रमण किया परन्तु असफल रहा। तीन शताब्दियो तक मुसलिम शक्ति काश्मीर मे पनप नही सकी थी। शाहमीर ने काश्मीर मे विदेशी मुसलिम शक्ति से राज्यस्थापित नही किया था। स्वय काश्मीरी ही उसमे सहायक थे। काश्मीरी हिन्दुओ ने गैर काश्मीर राज के विरुद्ध न तो मुख खोला और न कभी विद्रोह या युद्ध कर पुन हिन्दू राज्य स्थापना करने का प्रयास किया।

परिणाम अवश्यम्भावी था। सभी पुरानी बाते भुलाई जाने लगी। नवीन रात्र उन भुलाई जाने बातो का प्रतीक था। गोपाद्रि का नाम बदलकर, तख्त-ए-सुलेमान रख दिया गया। नदी, झरना, नाग, पर्वत, मुहल्ला, टोला सभी के नाम परिवर्तन की धुन क्रमश मुसलिम आबादी बढने के साथ बढती गयी। उसकी प्रतिक्रिया यहाँ तक हुई कि श्रीनगर को सिखो के राज्य मे पूर्व कोई श्रीनगर नही कहता था। उसे काश्मीर कहा जाता था और अत मे बात यहाँ तक बढ़ी कि हजरत मूसा, हजरत ईसा तथा हजरत सुलेमान से काश्मीर का सम्बन्ध जोड दिया गया।

(२) पुत्र वधिको को कोटा का कार्य समाप्त करने के लिये देने के पश्चात शाहमीर ने कोटा किंवा उदयनदेव के उत्तराधिकारी दोनो पुत्रो चन्द्र (हैदर) एव जट्ट को भी बन्दी बना लिया। हैदर का शाहमीर अभिभावक था। जोनराज के अनुसार उसे उसने पाला था। रिंचन ने अपने पुत्र को उसके सरक्षण म रखा था। किन्तु राजनीति अवसर आने पर नीति एव न्याय को अलग कर निरगुन कार्य राज्यरक्षा एव राज्यप्राप्ति के उद्देश्य से कराती है। कोटा के पश्चात् जनता उसके पुत्रों को राज्य दिलाने का प्रयास कर सकती थी अथवा काश्मीरी अभिजात किंवा सैनिक शाहमीर को अनधीकृत रूप से राज्य प्राप्त करने के कारण उसके विरुद्ध सघटित होकर कोटा के किंवा अन्तिम राजा उदयनदेव के पुत्र को जिसे दिवगत हुए एक वर्ष भी नही बीता था, राज्य दिलाने के लिये आवाज उठा सकती थी। अतएव शाहमीर ने उन सब सम्भावनाओ पर विचार करके उन असहाय पुत्रो को बन्दी बनाकर समाप्त कर दिया। भारतीय नव मुसलिम बादशाहो ने अपने पूर्ववर्ती वशजो को प्राय समूल नष्ट करने का प्रयास किया है कि भविष्य मे उत्तराधिकार के प्रश्न के कारण सकट का सामना न करना पडे। रूस की राज्यक्रान्ति हुई तो जार का समस्त परिवार मार डाला गया था। शाहमीर ने भी यही किया। उसने उदयनदेव के समस्त परिवार को समाप्त कर दिया। यही कारण है कि मुसलिम बेगमो तथा रानियो से नया मुसलिम शासक विवाह कर कुटुम्ब पर अधिकार करता था और वशजो को समाप्त कर अपना भविष्य सुरक्षित रखता था। मुसलिम विजेताओ ने सर्वदा उनके वशो का लोप किया है जिनसे वे राज्य प्राप्त किया करते थे अथवा जिनसे उन्हे पुन राज्य पर अधिकार कर लेने की सम्भावना बनी रहती थी। भारत मे मुसलिम शासन के स्थापित होने के पश्चात् औरगजेब तक इसकी पुनरावृत्ति की गयी है। शाहजहाँ जैसे बादशाह ने भी अपने भाइयों के साथ यही किया। यदि कोई अपवाद कहा जा सकता है तो वह हिमायूँ था। अकबर के सम्मुख यह समस्या केवल एक पुत्र होने के कारण उपस्थित नही हुई। जहाँगीर ने भी अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया था। वह भी अपने पिता का एकमात्र पुत्र था।

दोनों पुत्रो का पुन वर्णन नहीं मिलता इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि शाहमीर ने दोनो पुत्रो को भी मार डाला। बहारिस्तान शाही का मत है कि उस समय कोटा रानी का कोई पुत्र जीवित नही था (पाण्डु १७ ए)। किन्तु जोनराज का स्पष्ट वर्णन है कि कोटा के दोनो पुत्र जीवित थे।

स्वं रूपं चिदचिद्भिरेभिरभितो व्यञ्जत्स्वयं निर्मितै-
र्यस्योन्मीलति देशकालकलनाकल्लोलितं तन्महः।
आत्मा वास्तु शिवोऽस्तु वास्त्वथ हरिः सोऽप्यात्मभूरस्तु वा
बुद्धो वास्तु जिनोऽस्तु वास्त्वथ परस्तस्मै नमः कुर्महे ॥३०८॥

३०८ स्वयं निर्मित चिद् एवं अचिदों से अपने रूप को व्यक्त करते हुए, देश काल कलना जिसका तेज उन्मीलित से कल्लोलित होता है, वह आत्मा हो, शिव हो, हरि हो, आत्मभू (ब्रह्मा) हो, बुद्ध हो, जिन हो अथवा परे हो, उसे (हम) नमस्कार करते हैं।[१]

भियं लवन्यलोकेषु कीर्तिं दिक्षु महीं भुजे।
लक्ष्मीं वक्षसि कोटां च कारायां स ततो न्यधात् ॥ ३०९ ॥

३०९ उसने लवन्य[१] लोगों में भय, दिशाओंमें कीर्ति, भुजा में मही, नभ पर लक्ष्मी एवं कोटा[१] को कारा में कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

३०८ (१) महाभारत काल से कोटा रानी ४४१५ वर्षों तक काश्मीर मे अविच्छिन्न हिन्दू राज्य बना रहा। इस भूतल में इस प्रकार का उदाहरण नही मिलेगा जहाँ किसी देशवासियो के ही पास इतने दिनो तक बिना विदेशियो के सत्ता ग्रहण किये राज्य-स्थापित रहा हो। किसी भी देश का इतना लम्बा स्वतन्त्र ऐतिहासिक राजनीतिक इतिहास नही है।

काश्मीर के हिन्दू राज्य-नाटक की यवनिका पतन होती है। उसकी विदायी का उक्त मार्मिक पद है। अन्तिम श्लोक है। पुरातन परम्परा का पटाक्षेप होता है। पद से करुणा एवं नैराश्य छलकता है। दरबारी कवि होते हुए भी जोनराज की वाणी रो उठती है। भगवान् को असहाय तुल्य नमस्कार करती है। हिन्दू राज का दुःखान्त अवसान होना है। यवनिका पतन के पश्चात दृश्य बदलता है। हठात यवनिका उठती है। साम्प्रदायिकता के उन्माद मे भीषण बर्बर ध्वनि उठती है, रगमंच रक्ताभ हो उठता है। यवनिका गिरती है। अकस्मात यवनिका पुनः उठती है। डोगरा राज्य का दर्शन होता है। यवनिका पुनः गिरती है। रंगमच पर राजतन्त्र, सामन्ततन्त्र के स्थान पर लोकतन्त्र की भेरी बज उठती है।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक के द्वारा घटना को पुनः उपात्त किया गया है। यह दिखाने के लिये कि शाहमीर ने कोटा रानी को कारागार मे रख दिया था, उसका वध नही किया। शाहमीर की आलोचना एवं वह क्रूर, विश्वासघाती, कृतघ्न नही था इससे बचाने के लिये उक्त श्लोक बाद मे बढाया गया है। वह श्लोक जोनराज का नही प्रतीत होता है।

जोनराज ने कोटा के नाम के साथ सर्वदा श्री, देवी तथा राज्ञी विशेषणो का प्रयोग किया है। इस समय कोटा किसी सदयहृद कवि की दया, सहानुभूति की अपेक्षा करती थी। इतिहासकार जोनराज केवल 'कोटा' लिखकर उसके प्रति अपमान एवं घृणा प्रदर्शित नही करना चाहता होगा।

ईश्वर के नमस्कार के पश्चात घटनाक्रम समाप्त हो जाता है। एक बडी घटना के पश्चात छोटी घटना के वर्णन का महत्व नहीं होता। जोनराज ने स्पष्ट वर्णन किया है। शाहमीर ने कोटा रानी को तीक्ष्णो अर्थात् वधिको के सुपुर्द कर दिया था और उसी समय उसकी हत्या कर दी गयी थी। शाहमीर उसे एक क्षण जीवित रखकर अपने भविष्य को शंकनीय नही बनाना चाहता था।

नीत्वावस्थान्तरं दौःस्थ्यशमात्कश्मीरमण्डलम् ।
श्रीशंसदेन इत्याख्यामन्यां स्वस्य व्यधान्नृपः ॥ ३१० ॥

३१० दु स्थिति[1] का शमन करके काश्मीर मण्डल की अवस्था परिवर्तित कर, नृप ने अपना दूसरा नाम शसदेन (शमशुद्दीन) रखा।

(१) लवन्य = लुन–लोन = कुछ इतिहासकारो ने लवन्य शब्द के इस पद मे प्रयोग के कारण अनुमान लगाया है कि कोटा देवी को लवन्यो ने पुन मुक्त करा लिया था। वह स्वतन्त्र हो गयी थी। लवन्यो से सघर्ष हुआ। शाहमीर लवन्यो को पराजित करने मे सफल रहा। कोटा देवी को बन्दी कर पुन कारागार मे रख दिया।

श्लोक सख्या ३०५ मे तीक्ष्णा के साथ रोध शब्द का प्रयोग किया गया है। उसे बन्दी बनाकर कारागार म रखने की बात नही कही गयी है। तीक्ष्णो द्वारा रोक लिये जाने का अर्थ यही निकलता है कि वह वध के लिये रोक ली गयी थी।

तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है 'लोन नामक समूह के बहुत से लोगो को जिसने उसका विरोध किया था किश्तवार के राज से बन्दी बनाकर लाकर उनकी हत्या कर दी गयी' (उ० तै० भा० ५१२)।

(२) कोटा प्रथम बार श्री, देवी तथा राज्ञी रहित कोटा शब्द लिखा गया है। कोटा रानी नही रह गयी थी, बन्दी थी। वह अपने सेवक—अपने शरणार्थी की बन्दी थी। रचनाकार को उसकी जैसी वीर रानी का बन्दी होना पसन्द नही था। वह उससे कुछ और ही अपेक्षा रखता था। वह चाहता था वह अपना शौर्य, चातुरी तथा नीति इस भीषण काल म दिखाती।

वह असफल हुई थी। राजनीति मे असफल विद्रोही एव सफल विजेता होता है। सफल के कण्ठ म माला सुशोभित होती है असफल के कण्ठ म सूली-फॉसी का फन्दा पडता है। वह अपराधी होता है। दण्डधारा दण्डनीय होता है, हेय होता है। अतएव उसके लिये आदरसूचक शब्द का प्रयोग नही किया गया है। काश्मीर उसके कारण, न जाने किसके किसके कारण पराधीन हो गया था। मुसलिम शासन स्थापित हुआ था। जिस समय की यह रचना है उस समय काश्मीर मन्दिरो, मठो धर्मशालाओ का खण्डहर था, ध्वसावशेषो की श्मशान भूमि था। इन सब उथल पुथल, पतन आदि के प्रति कवि का मनोभाव एक कोटा शब्द के प्रयोग मे निकल आता है। कविहृदय इस वर्णन के समय उदास एव खिन्न होकर और अनमनस्क हो जाता है।

पाद टिप्पणी :

उक्त श्लोक सख्या ३१० के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक क्रम संख्या ३५३ अधिक है। श्लोक का भावार्थ है—'सतीसर भूमि के शुक्ति का मुक्तामणि अर्थियो के लिये चिन्तामणि, वैरिरत्नो के लिये वज्रमणि राजा शोभित हुआ।'

३१० (१) दु स्थिति : परसियन लेखको के अनुसार रिंचन ने दुख व्याप्त दु ख से तथा शाहमीर ने काश्मीर को पारस्परिक सघर्ष, कलह, मार-काट, लूट पाट और रक्तपात से बचाया था। शताब्दियो से व्याप्त सामन्तो आदि की अराजकता से त्रस्त काश्मीर का उद्धार किया था। अनेक करो को जो पूर्व राजाओ ने लगाया था, उठा दिया। उन कठोर कानूनो तथा परम्पराओ को भी मिटा दिया जिनसे जनता त्रस्त थी और कठोर थे।

उसने उपज का केवल १६ प्रतिशत अर्थात् छठवाँ भाग राज्य कर के रूप मे लिया। जनता की लोभी कायस्थो अर्थात् कर्मचारियो से रक्षा की, सामन्तो तथा ग्रामीण सरदारो को नियन्त्रित किया। इसके लिये काश्मीर के दो कुटुम्बो को प्रायमिकता दी। वे मागरे तथा चक थे। मागरे वास्तव मे

महावने भुजं तस्य काष्ठोद्दीपनशालिनः ।
मौर्वीकिणाः प्रतापाग्नेरधूमायन्त सन्ततम् ॥ ३११ ॥

३११ काष्ठोद्दीपनशाली उसके भुजा महावन में मौर्वीकिण प्रतापाग्नि के धूम तुल्य निरन्तर मालूम पड़ रहे थे ।

अहरन्मन्त्रिणां राजा संशयं न तु तस्य ते ।
भिनत्त्यन्यान्मणीन्वज्रो नान्यरत्नानि तं पुनः ॥ ३१२ ॥

३१२ राजा ने मन्त्रियों के संशय को हर लिया, न कि वे उसके । (उचित है) वज्र मणियों का भेदन करता है, न कि अन्य रत्न उसका ।

काश्मीरी थे अथवा नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु चक दर्दिस्तान में राजा सूहदेव के समय काश्मीर में अपने नेता लंकर चक के नेतृत्व में आये थे । हिन्दू राजाओं ने चकों को सेनापति आदि पद तथा मागरे को अन्य राज्याधिकारी पदों पर रखा था (फरिश्ता ६४९)।

शाहमीर स्वयं बाहरी था । उसे काश्मीरियों का सामना करना पड सकता था । अतएव उसने काश्मीर के विदेशियों को प्रश्रय देकर उन्हें संघटित किया । शाहमीर, तुर्क तथा अन्य सब जातियाँ काश्मीर के बाहर से आयी थी । शाहमीर ने उन्हें सरलता पूर्वक संघटित कर लिया, क्योंकि उन सबका उद्देश्य एक ही था । काश्मीर में रहना और काश्मीर से अधिक से अधिक लाभ उठाकर अपने जान-माल की रक्षा करना । यह कार्य केवल शाहमीर द्वारा ही सम्भव था ।

जनता कोटा रानी के हटने और काश्मीर में विदेशी शासन स्थापित होने पर मूक द्रष्टा बनी बैठी रही । उसने विद्रोह नहीं किया ।

मोहिबुल हसन लिखते है—'इसने उन तमाम जरायद टैक्सों को जो साबिक हकूमतों ने आवाम पर लगाये थे मौकूफ कर दिया और सारे जाबराना कवाईन को मन्सूख कर दिया । किसानों से पैदावार का बडा हिस्सा बतौर लगान लिया । इसने जागीरदारों को काबू में रखा । उनके मत का आधार म्युनिख : पाण्डुलिपी ५३ बी० : है ।

तबकाते अकबरी में लिखा है 'शाहमीर ने आज्ञा जारी की कि ६ में से एक से अधिक उनसे कर न लिया जाय' (उ० : तै० : भारत : १ : ५१२) ।

फिरिश्ता लिखता है—'राजा होने पर उसने भारी करों से जनता को राहत दी । प्रतिवर्ष कासगर के सरदार दिलजू के लिये कर लिया जाता था उससे जनता को मुक्त किया । भूमि की तशखीश १७ प्रतिशत पर कुल उपज पर किया ।'

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ३१२ के पश्चात बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ३५६ अधिक है । श्लोक का भावार्थ है—'स्त्री भाव के कारण दुःसह सब राज्याधिकारों को श्री कोटा ने जिन विश्वासपात्रों में स्वयं अर्पित किया था ।'

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ३१३ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या क्रम ३५८ एवं ३५९ अधिक है । उनका भावार्थ है—'बलशाली लवन्यों ने स्वामी का संचार उसी प्रकार अवरुद्ध कर दिया जिस प्रकार तिमिर सन्ध्या तक के कान्ति प्रसार को अपने प्रचण्ड शौर से विद्वेषियों को दण्डित करने वाले उसने क्षण भर में क्रमागत सदृश सम्पूर्ण काश्मीर मण्डल वश में कर लिया । उसने दक्षिण बाहु एवं नेता लोगों के हृदय का कम्पन तथा सम्पत्ति का भी मानो हरण कर लिया ।'

स राजा राजतो राजस्थानीयान् काष्ठवाटगान् ।
भयात्ततोऽपि विद्राव्य श्लाघनीययशा बभौ ॥ ३१३ ॥

३१३ उस राजा ने राजस्थानीय[1] को जो काष्ठवाट गये थे वहाँ से भी भगा कर, श्लाघनीय यश प्राप्त कर, सुशोभित हुआ ।

---

३१३ (१) राजस्थानीय . राजस्थानाधिकार तथा राजस्थान शब्द का प्रयोग कल्हण ने राजतरंगिणी की सातवें तथा आठवें तरंगों में किया है । यह शब्द कम्पन तथा द्वार के समकक्ष था । इससे इस पद की महत्ता प्रकट होती है (रा० . ८ : १८१, ५७३, १०४६, ११८२, २६२४) । इस शब्द को राजस्थान से नहीं मिलाना चाहिये । राजस्थान पुराने राजपूताना प्रदेश का नाम है । राजस्थानी शब्द राजस्थान के निवासियों का वाचक है । इस शब्द का अर्थ समझने के लिये कल्हण की राजतरंगिणी सहायक होती है । अलकारचक्र राजा जयसिंह के समय राजस्थानीय पद पर था । राजस्थानाधिकार का सम्बन्ध न्याय शासन से था । राज स्थान का शाब्दिक अर्थ राजगृह किंवा राजा का स्थान होता है । अलकारचक्र के सम्बन्ध में इसका प्रयोग किया गया है (रा० : ८ २६१८, २६७१, २९२५) । न्याय का कार्य राजा का मुख्य कार्य माना जाता था । राजा लोग राजसभा किंवा दरबार में बैठकर काम किया करते थे । कितने ही न्यायप्रिय बादशाहों ने दरबार आम में बैठकर न्यायकार्य किया है । यह राजभवन में एक अलग निश्चित स्थान होता था । राजा न्याय का कार्य धर्मपारगत अन्य व्यक्तियों को दे देता था । अलकारचक्र के नाम के साथ 'बाह्य-राजस्थानाधिकारभाक्' का बल्ल लगा मिलता है । उससे प्रकट होता है कि वह बाह्य राजस्थान का अधिकारी था (रा० : ८ . २५५७) ।

लोकप्रकाश में बड़े राज्याधिकारियों की तालिका में राजस्थानियों का भी नाम दिया गया है । वहाँ उसका कार्य प्रजापालन करना था । 'प्रजापालनार्थम् उद्वहति रक्षयति स राजस्थायीय.' । राजस्थानीय की यह परिभाषा लोकप्रकाश करता है । राजस्थानीय मन्त्री का भी उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है (रा० : ७ : १५०१, ८ : ३११२, २५५७) । राजस्थान शब्द का साधारणतया प्रयोग राज दरबार अथवा राजन्यायालय के लिये किया गया है । (रा० : ८ : २७०) । गणना अधिकारी जिसे 'सेद' कहते थे, राजस्थान नाम से अभिहित किया गया है (रा० : ८ : २७६) । गुप्त सम्राटों के शिलालेखों में राजस्थानीय शब्द लिखे मिलते हैं । बगाल के राजाओं के अभिलेखों आदि में राजस्थानीय शब्द का प्रचुर प्रयोग मिलता है ।

राजस्थानीय शब्द पुरा साहित्य अभिलेखों में उस अधिकारी के लिये आता है जो राजा के लिये कार्य करता है । सामान्यतः यह शब्द उपराजा या राजप्रतिनिधि और सम्भवतः एक अधीनस्थ शासक के लिये प्रयोग किया जाता था । प्रारम्भिक दक्षिण भारतीय अभिलेखों में 'तलवर' शब्द राजस्थानीय के लिये प्रयोग किया गया है । श्री विनय विजय के जैन कल्पतरु के सुबोधिका भाष्य से प्रकट होता है कि दक्षिणी शब्द 'तलवर' एक राजस्थानीय पद था (इण्डियन इपिग्राफी ' ८ ' ३, ८ : २, इपिग्राफिक इण्डिका : २४, २०, २४, २६, २८, ३० तथा भाग ३१ : ७८, कोरपस इन्सक्रिप्शोनम इण्डिका : ३, ४, ए लिस्ट ऑफ इन्सक्रिप्शनस् ऑफ नार्दर्न इण्डिया, डिराइवेटिव स्क्रिप्ट, फ्राम एबाउट २०० ए० सी०; श्री डी० आर० भण्डारकर, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, श्री पी० वी० काने : ३ : ९७५–१००७ तथा इण्डियन इपिग्राफिकल ग्लॉसरी : २७३, ३३३, ३३४) ।

श्लोक ३२१ से प्रकट होता है कि राजस्थानीय लोगों का मूल स्थान अवन्तिपुर था ।

(२) काष्ठवाटगान् : काष्ठवाट शब्द दो स्थानों के लिये व्यवहृत किया गया है । जोनराज काष्ठवाटों के विषय में कुछ और प्रकाश नहीं डालता जिससे

चिरं पुरं परिन्यस्य पुत्रयोः स्वादनूनयोः।
नयोच्छ्रितयशा राज्यसुखं भुङ्क्ते स्म भूपतिः ॥ ३१४ ॥

३१४ नयोन्नत यशस्वी, यह भूपति अपने सदृश दोनों पुत्रों[1] पर, राज्य न्यस्त[2] (भार रख) कर, चिरकाल तक राज्य सुख भोग किया।

निश्चयपूर्वक लिखा जा सके। दोनों काष्ठवाटों में जोनराज का किससे तात्पर्य है। प्रचलित शब्द किश्तवार प्राचीनकाल में काष्ठवाट नाम से प्रसिद्ध था। कल्हण ने राजतरंगिणी में किश्तवार के लिये काष्ठवाट शब्द का प्रयोग किया है।

काष्ठवाट काश्मीर मण्डल के दक्षिण पूर्व दिशा मे पड़ता है। यह चिनाब नदी के ऊर्ध्वभाग की उपत्यका है। राजा कलश के समय यह एक अलग पर्वतीय राज्य था। इसकी स्वतन्त्रता औरंगजेब के समय नष्ट हुई थी। तत्पश्चात् डोगरा राजा गुलाबसिंह ने इसे जीतकर काश्मीर राज्य मे सम्मिलित कर लिया। काश्मीर उपत्यका मे मरवल दर्रा द्वारा जो ११५०० फिट ऊंचा है, काष्ठवाट किंवा किश्तवार में जाया जाता है।

एक और काष्ठवाट का उल्लेख मिलता है जो किश्तवार (काष्ठवाट) से भिन्न है। दूसरा काष्ठवाट शुहिन परगना के पश्चिमी अंचल अथवा बुनियार तथा नौशेरा के ठीक पश्चिम मे होना चाहिये। इसका निश्चित पता नही चलता। एक स्थान कष्टवार है। यह एक गाँव है। दुन्त परगना अर्थात् दूनसू के समीप दूनर है (रा० : ६ : २०२, ७ : ५९०, ८ : ४६८)।

फिरिस्ता शमसुद्दीन को विजयी तथा वीर चित्रित करता है—'उसने एक समय काशगर पर सैनिक अभियान किया और तातारो से पूर्व समय किये आक्रमण का बदला लिया।'

शाहमीर के सैनिक सुधारो का फिरिस्ता वर्णन करता है—'उसने काश्मीर के निवासियो को दो वर्गो मे विभाजित किया। एक का नाम चक तथा दूसरे का माक्रे था। वह इन वर्गों के अतिरिक्त और किसी भी वर्ग या जाति से सैनिक नही लेता था (४५४)।'

पाद-टिप्पणी :

३१४ (१) दो पुत्र : जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि शाहमीर के दो ही पुत्र थे। तबकाते अकबरी में उल्लेख मिलता है—'जब उसके दो पुत्रो को जिनमें एक का नाम जमशेद तथा दूसरे का नाम अलीशेर था अत्यधिक विश्वास प्राप्त हो गया तो उसने उन्हें अधिकार प्रदान कर दिये। शाहमीर को दो अन्य पुत्र भी थे। एक का नाम शीर अशानक और दूसरे का हिन्दल था।

'राज्य के कार्य को पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित तथा दृढ बनाकर उसने शासन प्रबन्ध अपने पुत्रो अर्थात् जमशेद तथा अलीशेर को सौंप दिया और स्वयं निश्चिन्त होकर ईश्वर की उपासना करने लगा। तदुपरान्त उसकी मृत्यु हो गयी। उसने तीन वर्ष राज्य किया' (उ० तै० भा० : १ : ५५२)।

फिरिस्ता दूसरी बात लिखता है—'उसने राज्य का त्याग अपने दोनो बड़े पुत्रो के पक्ष मे कर दिया। उनका नाम जमशेद और अलीशेर था (४५४)।' जोनराज का वर्णन स्पष्ट है। कुछ परसियन इतिहासकारो ने शीर असमक तथा हिन्दल को शाहमीर का पुत्र बनाकर भ्रम कर दिया है। शाहमीर के केवल दो ही पुत्र जमशेद तथा अलीशेर तथा एक कन्या गौहर थी।

(२) न्यस्त : शाहमीर ने दोनो पुत्रो पर राज्यभार रखा। इससे प्रकट होता है कि भविष्य मे उत्तराधिकार के लिये झगड़ा न हो, इसीलिये शाहमीर ने यह व्यवस्था की थी। राज्य का बँटवारा किसी प्रकार किया था। श्लोक ३२४ से भी यही भाव निकलता है जिसकी ओर ध्यान जमशेद ने अपने भाई अलीशेर के विद्रोह करने पर दिलाया था। तथा

सपञ्चवासरान् भुक्त्वा त्रीनब्दान्मेदिनीपतिः ।
अष्टादशेऽब्दे राकायामाषाढ्यां स व्यपद्यत ॥ ३१५ ॥

३१५ तीन वर्ष पाँच दिन भोगकर वह मेदिनीपति (शाहमीर) अट्ठारहवें (४४१८) वर्ष आषाढ पूर्णिमा के दिन मर गया।[1]

व्यवस्था तथा किस प्रकार दोनो पुत्रो पर राज्यभार शाहमीर ने रखा था स्पष्ट नही है (तबकाते अकबरी : ३ ४२७, म्युनिख पाण्डुलिपि ' ५४ ए)। फिरिस्ता लिखता है कि वृद्धावस्था तथा दुर्बलता शाहमीर को राज्यभार कम करने के लिये बाध्य कर दिया था (फिरिस्ता ३३८)।

पाद-टिप्पणी '

३१५ (१) मृत्यु ' शाहमीर की मृत्यु सन् १३४२ ई० मे हुई थी। किन्तु पण्डित वीरबल कचरु शाहमीर का मृत्यु काल सन् १३४६ ई० = ७४७ हिजरी देते हैं। केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया मे मृत्यु काल सन् १३४९ ई० दिया गया है। जोनराज की काल गणना के अनुसार सप्तर्षि ४४१८ = सन् १३४२ ई० = सम्वत १३९९ = शक १२६४ आषाढ पूर्णिमा होता है। फिरिस्ता मृत्यु काल हिजरी ७५० देता है (पृष्ठ ४५४)। श्री वीरबल कचरु ने काश्मीर का इतिहास सन १८३५ ई० मे लिखा था। इसी वर्ष तरगिणियो का मूल प्रथम बार नागरी अक्षरो मे एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। प्रतीत होता है मूल तथा अनुवादो से प्रभावित तथा उन्हे देखकर वीरबल कचरू ने अपनी पुस्तक लिखी थी। इस समय काश्मीर राजा रणजीत सिंह के राज्य मे था। वीरबल कचरू फारसी के विद्वान् तथा कवि भी थे। उनकी काल गणना ठीक नही है।

शाहमीर किवा शमसुद्दीन अन्दर कोट जहा कोटा रानी की हत्या हुई थी वही मरा था। अन्दर कोट को उसने अपनी राजधानी बनाया था। वही पर दफन किया गया। उसकी कब्र पाँच फिट लम्बी उन्नीस फिट वर्गाकार कमरे म है। स्थानीय लोग उसे मकबराये सुल्तान शाह के, मकबरा सुल्तान बादशाह या बदशाह की कब्र कहते है। सन् १९४१ ई० मे यह प्रोटेक्टेड मानुमेण्ट (सरक्षित इमारत) घोषित किया गया था। इस इमारत की दीवालें आधी पक्की ईंटो की बनी है। दिवालो पर कुछ लिखा है जो पढा नही जाता। पीर हसन शाहमीर की मृत्यु के सम्बन्ध मे केवल इतना लिखता है—'दर मौज सुम्बल मदफून अस्त मशहूर व मकबरह सुलतान पादशाह।' वह सुम्बल मौजा मे दफन किया गया। मकबरा बादशाह के नाम से मशहूर है (पृष्ठ १६८)।

मूल्यांकन :

परसियन इतिहासकारो ने उसके अनेक सुधारवादी कार्यो का उल्लेख कर उसे आदर्श राजा के रूप मे चित्रित किया है। इस सम्बन्ध मे सबसे प्राचीन लेख जोनराज का है। अन्य रचनाये शताब्दियों पश्चात की है। कुछ तो तीन, चार, पाँच शताब्दी पश्चात् लिखी गयी है। जोनराज शाहमीर वशज बडशाह जैनुल आबदीन का दरबारी कवि था। यदि शाहमीर कुछ सुधार वादी कार्य किया होता तो उसका उल्लेख वह नि सन्देह करता।

शाहमीर जैसा चरित्र विश्व इतिहास मे शायद ही कही मिले। वह शरणार्थी बनकर आया विश्वास घात की सीढियो पर चढ़कर ऊपर उठा और जिसने उसे आश्रय दिया, उसी के वश का नाश कर स्वय राजा बन गया था। सत्ता प्राप्त कर लेने पर उसने अपने पूर्व स्वामी के वशजो का कुछ भी उपकार किया था, इसका वर्णन परशियन इतिहासकार तक नही करते।

उसे बीमार जानकर देखने आने वाले निर्दोष भिक्षण एव अवतार की हत्या उसने अपने ही घर पर कर दी। निहत्थी, निर्दोष, बन्दी नारी कोटा रानी को

मार कर राज्य लिया। उसने दोनो पुत्रो का जिन मे से एक का वह स्वय अभिभावक था, उसे बन्दी बनाकर समाप्त कर दिया। उसने विश्वासघात की कहानियो को परम चरम सीमा पर पहुँचा दिया है।

उसने काश्मीर मे मुसलिम राज्य स्थापित किया था। उसके वंशजो ने काश्मीर को मुसलिम धर्म मे दीक्षित कर बुतपरस्ती एवं नास्तिकता को नष्ट किया था। अतएव परसियन लेखको का उसकी तारीफ करना और उसके इस कार्य को आदर्श रूप मे चित्रित करना स्वाभाविक है। परन्तु एक धर्म, एक देश, एक जाति का आदर्श दूसरे धर्म, देश एवं जाति का नहीं हो सकता। साधारण व्यक्ति से यह अपेक्षा हो सकती है। परन्तु जब वही कार्य एक शासक, जिसके ऊपर न्याय, समता प्रजापालन का उत्तरदायित्व है, करता है—तो वह अत्यधिक गम्भीर हो जाता है। इतिहास उसकी भर्त्सना किये बिना नही रहता।

डॉ० सूफी जैसे एकागी इतिहास लेखक ने लिखा है—'यद्यपि शाहमीर विदेशी था तथापि वह प्रशसा का पात्र है, उसने काश्मीर को विदेशी आक्रमण से बचा लिया था। उसने काश्मीर को तुगलको, का तुगलकाबाद अथवा दिल्ली का सूबा बनने से रक्षा की थी (सूफी १३२)। इतिहास की तुला पर यह ठीक नही उतरता। किसी विदेशी शक्ति अर्थात् दुलच, रिंचन किंवा अचल का सामना कर उनसे काश्मीर की रक्षा नही की थी। वह निरपेक्ष विदेशी तुल्य केवल अपने शक्ति सग्रह एव काश्मीर राज्य हस्तगत करने के गम्भीर षड्यन्त्रो मे दत्तचित्त लगा रहा। काश्मीरियो ने स्वयं रिंचन, दुलच तथा अचल का सामना किया था। तुगलको ने कभी काश्मीर पर आक्रमण नही किया। सम्राट अकबर के पूर्व किसी दिल्ली के सुलतान किंवा शासक की सेना ने काश्मीर मे कभी प्रवेश करने का साहस तक ही नही किया।

उदयनदेव मरा, तो शाहमीर ने कोटा के पुत्र को राजा बनाने के लिये जोर न देकर, मौन साध लिया परिस्थिति से लाभ उठाकर, कोटा के विनाश के षड्यन्त्र मे दत्तचित्त हो गया। परन्तु काश्मीरी इतने जड हो गये थे कि अब भी न तो उनकी दृष्टि भविष्य देख सकी न अपनी भाग्य-रेखा को।

भिक्षण की हत्या के पश्चात् कोटा चाहती तो शाहमीर को समाप्त कर सकती थी परन्तु कोटा के मन्त्री, पार्षद, सामन्त उससे मिले थे। कोटा ने उसे क्षमा कर दिया। परन्तु कोटा की इस क्षमा का ऋण उसने उसकी हत्या कर चुकाया। उसने एक क्षण के लिये भी यह विचार नहीं किया कि कोटा के अहसानो से दबा हुआ था।

अवसर आते ही अपनी क्रूर प्रवृत्ति, कपटाचार, पाखण्ड परिधान उतार कर फेंक दिया और असली रूप मे प्रकट हुआ। कोटा की हत्या कर, उसके निर्दोष पुत्रो जिसका वह सरक्षक था, जिसे उसके पिता ने उसके पास न्यास रूप मे रखा था पर भी हाथ उठाने से न चूका। शाहमीर जैसा चरित्र का व्यक्ति विश्व के इतिहास मे शायद ही कहीं मिल सकेगा। वह विश्वासघात एवं क्रूरता की प्रतिमूर्ति कोटा रानी के सन्दर्भ मे कहा जायगा।

करुणा, मानवता, वीरता, स्वामिभक्ति, कृतज्ञता की झलक शाहमीर के चरित्र मे नही मिलती। देशभक्ति की धुँधली छाया तो उसे स्पर्श तक नही कर पायी थी। जिन राजाओ ने उसे शरण दी, वृत्ति दी, ऐश्वर्य दिया—शरणार्थी से राज्याधिकारी बनाया, जिनके उपकार से उसके पुत्र एव पौत्र दबे थे, जिन्होने उसपर असीम कृपा की थी, उन्ही के वंश लोप हेतु प्रारम्भ से ही वह कृतसकल्प हो गया था। उसने अपना षड्यन्त्र-पाश इस चतुरता से फैलाया कि काश्मीरी उसमे अनजाने-अनायास फँसते गये। हत-बुद्धि हो गये, पगु हो गये, परकटे कबूतर की तरह फडफडा भी नही सके। उठने की बात तो दूर थी।

उसने अपने योजना-साफल्य के लिये अपनी कुल कन्याओ का नि सकोच कन्यादान किया। जिसे मुसलमान जाति प्राय· बर्दाश्त नहीं करती। धर्म को

अथ प्रथमसामन्तैः सम्मताज्ञः स जंसरः।
सतीसरःक्षिते रक्षामक्षामश्रीरटङ्कयत् ॥ ३१६ ॥

जमशेद—(जमशेर-जसर) (सन् १३४२–१३४४ ई०)

३१६ प्रथम सामन्तों द्वारा आज्ञा मान लिये जाने पर, अक्षीणश्री उस जंसर (जमशेद) ने सतीसर क्षेत्र की रक्षा की।

उसने साधन बनाया। धर्म के नाम पर काश्मीर-स्थित विदेशी मुसलमानो का संघटन किया। वे उसकी शक्ति हो गये। काश्मीर पर जब जब विपत्ति आयी, वह निरपेक्ष बैठा रहा।

काश्मीर की आपदायें, विपत्तियाँ उसके लिये जैसे मंगल-सन्देश-वाहिका हो गयी थीं। सूहदेव राजा था, शाहमीर उससे मिल गया। विदेशी रिंचन राजा हुआ, उसका विश्वासपात्र बन गया। उदयनदेव राजा हुआ, उससे मिल गया। कोटा रानी शासिका हुई, उससे प्रारम्भ मे मिल गया। रिंचन-पुत्र का अभिभावक था, उसकी चिन्ता तक न की। उसे अपने स्वार्थसिद्धि-षड्यन्त्र का एक यन्त्र बनाया। उसके उत्तराधिकार की बात उठाकर अपने पुत्रो के लिये प्रदेश का शासन तथा राज्याधिकार प्राप्त किया।

उसे परसियन इतिहासकारो ने वीर एवं न्यायी प्रमाणित करने का अथक प्रयास किया है। किन्तु उसकी वीरता का कोई उदाहरण किंवा कोई कार्य दिखाई नही देता। परसियन इतिहासकारो की प्रशंसा स्वाभाविक है। वह काश्मीर मे मुसलिम राज्य स्थापित करने मे बिना रक्तपात के समर्थ हुआ था। उसने महमूद गजनी से तुगलग काल के दिल्ली के मुसलिम सुलतानो, भारत के मुसलिम विजेताओ के मुसलिम जगत के स्वप्न को साकार किया था।

चाहे कोई उसके पक्ष मे कितना ही तर्क उपस्थित करे, उसकी चाहे कितनी ही सफाई क्यो न दे, परन्तु अपनी बीमारी का बहाना बनाकर, अपने घर सहानुभूति प्रदर्शन हेतु आये अवतार एवं भिक्षण की क्रूरता पूर्वक हत्या करना सभी मानवीय सदाचारो एवं नीतियों का उल्लंघन कर देती है। निरपराध कोटा के पुत्रो को बन्दी बनाकर जिनमे एक का वह स्वयं अभिभावक था, उसकी रक्षा के लिये उसके पिता से वचनबद्ध था, उनकी हत्या करना—उसका यह जघन्य कार्य उसकी अनीति और विश्वासघातकता की पराकाष्ठा है।

कोटा रानी को बन्दी बनाकर, उसे अपने विश्वास मे लेकर उसकी निर्मम हत्या करना विश्व इतिहास मे दूसरा विश्वासघात का उदाहरण ढूँढने पर भी नही मिलता। जिस काश्मीर ने उसे शरण दी, जिस काश्मीर के राजाओ ने उसे, उसके कुटुम्ब को वर्धित किया था, माना था, उससे स्वामिभक्ति की अपेक्षा करता था, उन्हे तिरोहित कर स्वामिभक्त की, सेवा वृत्ति के उदात्त सिद्धान्तो को नष्ट करता वह अकृतज्ञता, कृतघ्नता की सभी सीमायें पार कर गया था। परसियन इतिहासकारो की लेखनियाँ भी घटना वर्णन-क्रम मे समय-समय पर लज्जित हो उठी है।

पाद-टिप्पणी :

३१६. राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि गताब्द, ४४४३ = शक १२६४ = सप्तर्षि = ४४१८ = सन् १३४२ ई० एवं राज्य काल १ वर्ष १० दिन, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे सन् १३४९ ई०, अबुल फजल ने आइने-अकबरी मे सन् १३४९ ई० = ७५० हिजरी, राज्य काल १ वर्ष १० दिन, तथा डब्लू० टी० हेग ने सन् १३४६ ई० = हिजरी ७४७ दिया है। श्री वेंकटाचलम ने क्रोनोलोजी ऑफ काश्मीर रिकन्स्ट्रक्टेड अजन्ता आर्ट प्रिण्टर्स कोल्लूर जिला गण्टूर मे राज्य काल सन् १३४७ से १३४८ ई० दिया है। तबकाते अकबरी मे राज्य काल १ वर्ष २ मास दिया गया है। डॉ० सूफी ने

राज्यतोरणसंवाहस्तम्भाभ्यां धरणीपतेः ।
अनुजो वलबुद्धिभ्यामगमच्छङ्कनीयताम् ॥ ३१७ ॥

३१७ राज्य-तोरण के संवाहक स्तम्भ स्वरूप बल एवं बुद्धि के कारण राजा का अनुज उसके लिये शंकनीय[1] हो गया।

राज्याभिषेक सन् १३४२ ई० दिया है। उसी वर्ष में जमशेद को राज्यच्युत कर अलीशेर राजा बन गया था। मोहिबुल हसन अभिषेक काल सन् १३४२ ई० देते हैं। पीर हसन ने जमशेद का राज्यारोहण काल हिजरी ७४७ = विक्रमी सम्वत १४०३ तथा राज्य काल १४ मास लिखा है। इसके अनुसार सन् १३४६ ई० आता है। पीर हसन की काल गणना ठीक नही है।

शाहमीर के दो पुत्रो जमशेद तथा अलीशेर का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। तबकाते अकबरी ने गलती से शाहमीर के दो और पुत्रो का नाम शीर अशमक तथा हिन्दल दिया है। मोहिबुल हसन तथा डॉ० सूफी शाहमीर के दो ही पुत्रो का उल्लेख करते है। जोनराज का अनुकरण करते हैं। तारीखे काश्मीर मे आज़मी ने लिखा है—'इस समय खलासमान, पलाशमान, याशमान तीन भ्राताओ ने अपना जीवन ईश्वर की आराधना मे व्यतीत किया। वे फकीर थे। दुनियाँ से अलग रहते थे।' किन्तु जोनराज इनका उल्लेख नही करता।

आइने-अकबरी मे जमशेद के राज्य प्राप्ति आदि के सन्दर्भ मे एक शब्द भी नही लिखा गया है। जिन लेखकों ने मूल जोनराजकृत राजतरंगिणी न पढ़कर केवल श्री योगेशचन्द्र दत्त के छायानुवाद अथवा परसियन अनुवाद पर अपना मत स्थिर किया है, उन्होने शाहमीर के दो पुत्र से अधिक माने हैं। श्री दत्त ने श्लोक संख्या ३३९ का अनुवाद करते समय भाई के आगे कोष्ठ मे तृतीय लिख दिया है। इसी कारण गलतियो की पुनरावृत्ति होती गयी है।

जमशेद तथा अलीशेर बाल्यावस्था से ही काश्मीर मे निवास करने तथा अनेक उथल-पुथल के द्रष्टा होने के कारण अनुभवी हो गये थे। पिता शाहमीर ने ही उन्हें अपने राजत्व काल मे ही अधिक अधिकार दे दिया था। दोनो ही पुत्रो ने पिता की मृत्यु के पश्चात् सुयोग्यतापूर्वक राज्यभार वहन किया था। उन्हे किसी प्रकार की कठिनाई नही हुई। काश्मीरी जनता यदि चाहती तो उन्हे राज्यच्युत कर सकती थी किन्तु उन्होंने शक्तिकेन्द्र सामन्तो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध, राजपद एवं अपने धर्म मे सम्मिलित कर, उन्हे अपने वश मे कर लिया था। सामन्तो ने बिना विरोध उनके प्रति राजभक्ति प्रकट कर दी थी। फिरिस्ता लिखता है—'शाहमीर का ज्येष्ठ पुत्र जमशेद अनेक सरदारो के समर्थन से गद्दी पर बैठा था (पृष्ठ : ४५५)।' विदेशी राज्य होने पर वे राजनीतिज्ञ जो सर्वदा षड्यन्त्रो एवं कुचक्रो मे व्यस्त रहते थे, विद्रोह करने के लिये किसी समय भी उद्यत रहते थे, भयभीत हो गये थे। उन्हे विदेशी राजा से दया, स्नेह, किंवा उपकार की आशा नही रह गयी थी। वे अपनी सम्पत्ति, अपना पद, बचाने मे लगे रहे। उन्होंने अनुभव कर लिया। सुलतान पर उनके प्रभाव का कोई कारण नही था। सेना प्रायः विदेशी मुसलिमो की थी। हिन्दुओ के विरुद्ध मुसलमान किसी भी समय उठ खड़े हो सकते थे। यद्यपि काश्मीर के सरदार एव सुलतान परस्पर बुरी तरह लड़ते थे परन्तु जहाँ हिन्दुओं का प्रश्न उपस्थित होता था वे पारस्परिक ईर्षा, द्वेष, शत्रुता त्याग कर क्षणमात्र मे मिल जाते थे। कोटा रानी का दु:खद अन्त व देख चुके थे। परिस्थितियों ने उन्हे कायर बना दिया था।

पाद-टिप्पणी :

३१७. (१) शकनीय : तारीखे काश्मीर पाण्डुलिपि म्युनिख ५४ ए० मे उल्लेख किया गया है कि जमशेद राज्य कार्य में अपने भ्राता अलीशेर

नैव दानं न चादानं निग्रहं नाप्यनुग्रहम्।
विहारं न न चाहारं राज्ञो न्यूनं स हि व्यधात्॥ ३१८॥

३१८ दान, आदान, निग्रह, अनुग्रह, विहार, आहार (कुछ) भी वह राजा से न्यून[1] नहीं करता था।

से सलाह लेता था। किन्तु तबकाते अकबरी (३ : ४२७) मे उल्लेख मिलता है कि जमशेद अपने भाई के प्रति प्रारम्भ से ही शंकित था। इसका काश्मीरी इतिहासकारो से समर्थन नही मिलता। जोनराज के वर्णन से स्पष्ट होता है कि वह प्रारम्भ मे अलीशेर से शंकित नही था। जब तक उनका पिता शाहमीर जीवित था, शंका करने का प्रश्न ही नही उठता; राज्य प्राप्ति के पश्चात् ही शंका का बीजांकुर हुआ था।

मुसलिम जगत के इतिहास मे प्रायः देखा गया है कि भाई भाई के विरुद्ध, पुत्र पिता के विरुद्ध, पिता पुत्र के विरुद्ध राज्य प्राप्ति के लिये षड्यन्त्र करते रहे हैं। अवसर मिलते ही प्रतिद्वन्द्वी के विरुद्ध खुलकर विद्रोह कर दिये हैं। मुसलिम कानून भाई-भाई के हक मे बडे अथवा छोटे होने के कारण कोई भेद नही करता। भारत के मुसलिम बादशाहो, नबावो, ताल्लुकेदारो ने हमेशा ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने का प्रयास किया है। यह दूसरे भाइयो को अखरता है। तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'उसने अलीशेर को जिससे उसके पिता के काल मे पूर्णरूप से सहयोग प्राप्त होता रहता था, नष्ट करने का प्रबन्ध आरम्भ कर दिया (उ० तै० भ० : १ : ५१२)।'

हैदर मल्लिक ने तारीख रशीदी मे जमशेद का उल्लेख नही किया है। केवल यही लिखा है—'उस (शाहमीर) का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अलाउद्दीन हुआ (पृष्ठ ४३२)।'

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक ३१८ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ३६५ अधिक है। श्लोक का भावार्थ है—'विद्या, प्रणय, विज्ञान, प्रज्ञाशाली युवराज की अपेक्षा राजा केवल वय से ही अधिक था।'

३१८. (१) न्यून : अलीशेर अपने ज्येष्ठ भ्राता से अपनी योग्यता किसी प्रकार कम नही आँकता था। उसे अपनी सैन्यशक्ति पर विश्वास था। उसने काश्मीर के सीमान्त एवं तटस्थानो की रक्षा की थी। उसे महत्वपूर्ण सामरिक स्थानो का ज्ञान था। जमशेद के किसी पुत्र का उल्लेख नही मिलता।

अलीशेर किंवा अलाउद्दीन के दो पुत्र शीर अस्मक (शिहाबुद्दीन) तथा हिन्दल० (कुतुबुद्दीन) थे। दोनो पुत्र वीर थे, तेजस्वी थे। श्लोक २४८ से प्रकट होता है कि शाहमीर अपने पौत्रो पर, उनकी वीरता तथा गुणो के कारण भविष्य मे काश्मीर राज्य प्राप्ति की आशा लगाये बैठा था। उसने उन्हे शक्तिशाली बनाया था। अलीशेर अपनी तथा अपने पुत्रो की शक्ति का प्रयोग कर स्वयं जमशेद के स्थान पर राजा होने की कल्पना करने लगा था। उसने तथा उसके पुत्रो ने काश्मीर मे शाहमीरी वंश स्थापित करने तथा हिन्दू राज्य समाप्त करने मे सक्रिय योगदान दिया था। जिसके फलस्वरूप वह राज्य प्राप्ति की अभिलाषा गर्वपूर्वक करने लगा। उसने डामरो (लूनो) से रक्त सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। उसे विश्वास था कि डामर उसकी सहायता करेंगे। डामरो की अपने पुत्रो की और राजस्थानियो की शक्ति एवं अपनी वीरता, चतुरता तथा सैनिक शक्ति के कारण वह विद्रोह द्वारा राज्य प्राप्ति का स्वप्न साकार होता देखने लगा।

प्राग्वद्विश्वाससम्पत्तिमकुर्वति महीभुजि ।
युवराजो मनाक्चक्रे निकटस्थैर्विरक्तधीः ॥ ३१९ ॥

३१९ पहले के समान राजा का विश्वास सम्पत्ति न रहने के कारण निकटस्थ[1] लोगों द्वारा युवराज कुछ विरक्त बुद्धि (उदासीन) बना दिया गया।

तद्वैमनस्यवृत्तान्तश्रवणच्छिद्रलाभतः ।
युवराजं ततो राजस्थानीयाः प्रापुरञ्जसा ॥ ३२० ॥

३२० उसके वैमनस्य-वृत्तान्त श्रवण-रूपी छिद्र प्राप्त कर, शीघ्र ही राजस्थानीय[1] लोग युवराज के पास आये।

आगते विग्रहे व्यक्तिं राजस्थानीयसंश्रयात् ।
सोऽगादवन्तिनगरं तन्मूलस्थानमुद्धतः ॥ ३२१ ॥

३२१ राजस्थानियों के संश्रय के कारण, विग्रह व्यक्त हो जाने पर, वह उद्धत, उनके मूल-स्थान अवन्तिनगर[1] गया।

पाद-टिप्पणी :

३१९. (१) निकटस्थ : तात्पर्य दरबारियो से है।

पाद टिप्पणी :

३२०. (१) राजस्थानीय : शाहमीर ने राजस्थानीयो को दबाया था। राजस्थानीय अवसर पाते ही अलीशेर को केन्द्र बनाकर अपनी शक्ति तथा प्रभाव पूर्ववत् करने का प्रयास करने लगे। राजस्थानीय अर्थ हेतु टिप्पणी श्लोक ३१३ द्रष्टव्य है।

फिरिस्ता लिखता है—'सैनिक जमशेद के कनिष्ठ भ्राता अलीशेर से अधिक स्नेह करते थे। उन लोगो ने अलीशेर को दनीपुर में सुलतान घोषित कर दिया (४५५)।' (दनीपुर के स्थान पर अवन्तिपुर होना चाहिये)। फिरिस्ता राजस्थानीय के स्थान पर सैनिक शब्द का प्रयोग करता है। जोनराज उसका इस स्थान पर सुलतान घोषित किया जाना नही लिखता। किसी अन्य परसियन इतिहासकारो ने भी उक्त घटनाक्रम का समर्थन नही किया है। द्रष्टव्य = टिप्पणी श्लोक ३१३.

पाद-टिप्पणी :

३२१. (१) अवन्तिनगर : इस समय काश्मीरी भाषा मे 'उन्तिपोर' कहा जाता है। श्रीनगर से साढे अट्ठारह मील दक्षिण पश्चिम वितस्ता के दक्षिण तट पर है। काश्मीर के प्रतिभाशाली राजा अवन्तिवर्मा (सन् ८५५-८८३ ई०) ने इस नगर की स्थापना की थी।

अवन्तिपुर का समीपवर्ती क्षेत्र प्राचीन ध्वंसावशेषो से भरा पडा है। बनिहाल-श्रीनगर राजपथ से ध्वंसावशेष देखे जा सकते है। वहाँ अवन्तिस्वामी तथा अवन्तीश्वर के विशाल ध्वंसावशेष बिखरे पडे हैं। उनकी भव्यता मन को अनायास प्रभावित करती है। उनमे एक अवन्तिस्वामी तथा दूसरा अवन्तीश्वर का मन्दिर है।

एक मन्दिर का ध्वंसावशेष वन्तिपोर तथा दूसरे का आधा मील दूर उत्तर पश्चिम जौब्रार मे है। मन्दिर इतनी बुरी तरह तोडे गये है कि उन्हे देखकर यही धारणा होती है कि मानव अपने धार्मिक उन्माद मे क्या नही कर सकता ? अवन्तिस्वामी का मन्दिर विशाल एवं भव्य था। भुवन रचना आकर्षक थी। कला पाषाण मे जैसे सजीव होकर मूर्तिमान हो गयी थी। शिलाप्राकार से वेष्टित था। सुदृढ़ स्थिति के कारण यह स्थान सैनिक महत्व का समझा जाता था। कल्हण तथा अन्य राजतरंगिणियो से

अथोत्पलपुरं राजा भटैः सह रणोद्भटैः ।
अशिश्रियदिदं भ्रातुर्वाचिकं च विसृष्टवान् ॥ ३२२ ॥

३२२ रणोद्भट भटों के साथ राजा उत्पलपुर[1] गया और यह वाचिक[2] (मौखिक-सन्देश) भ्राता के पास प्रेषित किया।

दुर्जनप्रेरणात्त्वं चेन्मत्स्नेहं नाभ्यजीगणः ।
लोकापवादज्वरतः कथं कम्पो न जायते ॥ ३२३ ॥

३२३ 'दुर्जनों की प्रेरणा से यदि मेरे स्नेह को नहीं गिनते, (मानते) तो लोकापवाद ज्वर से कम्पित क्यों नहीं होते ?

प्रकट होता है कि यहाँ पर अनेक सैनिक अभियान, संघर्ष एवं घेरे पड़े थे। राजा अवन्तिवर्मा के मन्दिर निर्माण के कारण इस स्थान का महत्व बढ़ गया था।

नगर का नामकरण राजा अवन्तिवर्मा के नाम पर किया गया था। इसका पूर्व नाम विश्वैकसर था। नगर कितना विस्तृत था इसका पता इसी से चलता है कि ध्वंसावशेष शताब्दियों की दुःखद गाथा सुनाते उन्तिपोर से पूर्व दिशा मे पर्वत मूल तक फैले हैं।

दोनो ही मन्दिर सिकन्दर बुतशिकन द्वारा नष्ट किये गये थे। जनरल कनिंघम का मत है कि मन्दिरो का हाथ से तोड़ना कठिन था। उन्हें बारूद से उड़ाया गया था। यद्यपि अवन्तिपुर की परिहासपुर जैसे विशाल एवं मार्तण्ड मन्दिरो से समता नही की जा सकती तथापि वे काश्मीर के प्राचीन ध्वंसावशेषो मे बहुत ही प्रभावोत्पादक रहे है और निर्माणकर्ता के प्रचुर साधनो के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

काश्मीर के विशाल एवं आकर्षक कलापूर्ण ध्वंसावशेषो को देखकर कहना पड़ेगा कि काश्मीर के राजाओ ने राजप्रासाद एव विलास भवनो के निर्माण के स्थान पर देवस्थानो एव सार्वजनिक हित एव पुण्य कार्यों मे देश की सम्पत्ति को लगाया था। विश्व मे शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ मानव-आवासीय राज्यप्रासाद एवं अन्य सुखमय स्थान के निर्माण पर धार्मिक एवं पुण्य कार्यों को प्राथमिकता दी गई है।

तबकाते अकबरी मे इस स्थान का नाम दनीपुर लिखा है। यह अवन्तिपुर होना चाहिए। उल्लेख किया गया है—'जब जमशेद के सैनिक अलीशेर के पास पहुचे तो उसे सुलतान बना दिया और दनी (अवन्तिपुर) स्थान पर जो एक प्रसिद्ध नगर था वहाँ उसे सिंहासनारूढ किया।'

प्राचीन अवन्ति की संज्ञा एक देश तथा नगर से दी गयी है जो नर्मदा नदी का उत्तरीय अंचल है। अवन्ति देश की राजधानी उज्जयिनी थी। उसे अवन्तिपुरी, अवन्ति विशाला भी कहते हैं (मेघदूत : ३०)। यह शिप्रा नदी तट पर स्थित है और मालवा भूमि का पश्चिमी भाग है। यहाँ महाकाल का मन्दिर है जो द्वादश ज्योतिर्लिंगो मे से एक है। महाभारत काल मे यह स्थान दक्षिण मे नर्मदा तट तथा पश्चिम मे मही-नदी तक विस्तृत था। उज्जैन से एक मील उत्तर भैरोगढ़ मे दूसरी तथा तीसरी शताब्दी के ध्वंसावशेष मिले है।

पाद-टिप्पणी :

३२२. (१) उत्पलपुर : यह वर्तमान एक बडा गाव काकपोर है। उत्पलपुर की स्थापना राजा उत्पल ने की थी। वह चिप्पट जयापीड का पितृव्य था। उसका काल सन् ८१३—८१४ ई० है। यहीं विष्णु उत्पल स्वामी का मन्दिर था। क्षेत्रपाल पद्धति से पता चलता है कि यहाँ भैरव का भी देवस्थान था। उत्पल स्वामी मन्दिर का ध्वंसावशेष अभी तक बिखरा पडा है। द्रष्टव्य : श्लोकसंख्या ८६१।

(२) वाचिक : मौखिक सन्देश अथवा सवाद।

अन्योन्यपालनायाज्ञां राज्ञस्त्रिदिवगामिनः ।
पालनीयामनुध्याय प्रत्यानय दयां मयि ॥ ३२४ ॥

३२४ 'स्वर्गगामी पिता के एक दूसरे के पालन करने की पालनीय आज्ञा का अनुस्मरण कर के, मेरे ऊपर दया करो।'

इति सन्दिश्य दूतं च व्यसृजत्स नरेश्वरः ।
कम्पनाधिपतिं हन्तुं व्यसृजच्च निजात्मजम् ॥ ३२५ ॥

३२५ यह सन्देश दूत को देकर, नरेश्वर ने विसर्जित किया तथा कम्पनाधिपति को मारने के लिए अपने पुत्र[1] को भेजा।

मृगयां युवराजोऽगादिति दूतं निरोधयन् ।
भ्रातृपुत्रं निहन्तुं च श्रुतद्रोहोऽगमच्च सः ॥ ३२६ ॥

३२६ 'युवराज मृगया हेतु गये हैं'—इस प्रकार दूत को रोकते हुए, वह जिसने द्रोह सुन लिया था, भ्रातृपुत्र की हत्या करने के लिये गया।

फिरिस्ता लिखता है—'जमशेद अविलम्ब अपने सेना के साथ अपने विरोधी के विरुद्ध चला। उसने अपने भाई के विरुद्ध तलवार निकालने की अपेक्षा सन्धि वार्ता करना चाहा (४५५)।'

पाद-टिप्पणी :

३२४. (१) अनुस्मरण : षड्यन्त्र एवं विश्वासघात का आश्रय लेनेवाले षड्यन्त्र एवं विश्वासघात के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहते है। शाहमीर के षड्यन्त्र एवं विश्वासघात को उसके पुत्रो ने देखा था। उनका उन पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था। शाहमीर दूरद्रष्टा होने के कारण समझ गया था। उसके पुत्र भी एक दूसरे के प्रति षड्यन्त्र एवं विश्वासघात का आश्रय लेकर, जैसे उसने राज्य प्राप्त किया था, उसी प्रकार राज्य स्वयं प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। नि.सन्देह एक स्नेही पिता के समान तथा राज्ययन्त्र सुचारु रूप से शक्तिपूर्वक चलाते रहने के लिये उसने अपने पुत्रों को परस्पर स्नेह, विश्वास तथा एक-दूसरे के सहायक होने की प्रतिज्ञा करवाई थी तथा भविष्य मे उन्हे किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, इसका आदेश दिया था। प्रथम मुगल सम्राट बाबर ने भी हिमायूँ को वचनबद्ध कराया था कि वह अपने भाइयो से बदला नही लेगा, उन्हे ताडित नही करेगा। हिमायूँ अपने भाइयो से ताडित होने पर भी कभी उन्हे अपदस्थ करने अथवा मारने के लिये षड्यन्त्र एवं विश्वासघात का आश्रय नही लिया।

जमशेद ने पिता की शिक्षाओ का स्मरण दिलाकर अलीशेर से अपील की कि वह उसके ऊपर दया करे। स्वर्गीय पिता के आदेशो एवं वचनो को न भूले।

पाद-टिप्पणी :

३२५. (१) पुत्र : तारीखे काश्मीर (पाण्डुलिपि म्युनिख पृष्ठ ५४ ए०) मे लिखा गया है कि जमशेद ने विप्लव दबाने के लिये अपने पुत्र को दिवसर भेजा।

कम्पनेश अथवा कम्पनाधिपति लक्ष्म, अल्लेश्वर, अलीशेर अथवा अलाउद्दीन का श्वसुर था। लक्ष्म की कन्या की शादी अलीशेर से हुई थी (श्लोक २५६)। वह अपने दामाद को काश्मीर के सिंहासन पर बैठाना चाहता था। कन्या की ममता के कारण लक्ष्म का अलीशेर को सक्रिय सहायता के लिये कदम उठाना स्वाभाविक मालूम होता है। कम्पनेश का पद काश्मीर मे महत्वपूर्ण था, वह सेनापति था। अपने दामाद की विजय का इच्छुक भी था। अतएव जमशेद

दूतः किमिति नायातः कालो हि सुचिरं गतः ।
इति चिन्ताकुलो लक्ष्मभट्टो राजान्तिकं ययौ ॥ ३२७ ॥

३२७ 'दूत क्यों नहीं आया ? समय बहुत व्यतीत हो गया'— इस प्रकार चिन्ताकुल होकर, लक्ष्म भट्ट राजा के निकट गया ।

ऊचे च जाने द्रोहं लक्षयित्वा तवानुजः ।
त्वत्पुत्रमारणायागाद् यद् दूतस्य चिरागमः ॥ ३२८ ॥

३२८ और उसने कहा—'तुम्हारा भाई द्रोह जान कर, तुम्हारे पुत्र के मारण हेतु गया है। क्योंकि दूत के आने मे विलम्ब हो रहा है—

स्नाति भुङ्क्ते स्वपित्येव युवराज इति च्छलात् ।
त्वदुद्योगनिषेधाय नूनं रुद्धो वचोहरः ॥ ३२९ ॥

३२९ 'युवराज स्नान कर रहे हैं', 'भोजन कर रहे हैं', 'शयन कर रहे हैं'—इस प्रकार छलपूर्वक निश्चय ही आपके उद्योग निषेध हेतु वचोहर (दूत) को रुद्ध कर (रोक) लिया है ।

तदवन्तिपुरं तस्मिन् श्रीदेवसरसं गते ।
सद्यो निःस्वामिकं हन्मो जयोऽस्माकं ततो ध्रुवः ॥ ३३० ॥

३३० 'उसके अवन्तिपुर चले जाने पर, सद्य स्वामि रहित, श्रीदेवसर को ले लेंगे और उसके पश्चात् हम लोगों की विजय निश्चित है ।'

कम्पनेश को पराजित कर, अलीशेर की शक्ति क्षीण कर, उसे पगु बना देना चाहता था । इसी आशा एव नीति से सर्वप्रथम जमशेद ने अलीशेर के श्वसुर कम्पनेश को समाप्त कर, अलीशेर को शक्तिहीन बना देने की योजना बनायी ।

फिरिस्ता लिखता है—'अलीशेर जानता था कि समझौता वार्ता से वह लाभान्वित नही होगा । उसने रात्रि मे जमशेद की सेना पर आक्रमण कर उसे पूर्णतया पराजित कर दिया (४५५) ।'

पाद टिप्पणी

३२९ (१) युवराज वली बहद द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ४८४, ४८५ ७०२, ७३२ ६८८।

पाद-टिप्पणी

३३० (१) देवसर जमशेद ने अपने पुत्र को विप्लव दबाने के लिये देवसर भेजा। देवसर परगना दिवसर है। इसका उल्लेख अबुलफजल ने आइने अकबरी (२ ३६८–३७१), मूरक्राफ्ट ने (ट्रेवेल २ ११३), वैरन वॉन हुगेल ने (काश्मीर २ २०६), वाइन ने (ट्रेवेल्स १ २७२) तथा वेट्स ने (गजेटियर २) मे किया है । कल्हण ने इसका उल्लेख (रा० ८ ५०४, ६६२, ६८५, १०६९, १२६०, १२८१, १३४७, १५११, २७३२, २७४२, ३११५, ३२८१, ३२८५) मे किया है ।

देवसर का उल्लेख नीलमत पुराण (श्लोक १२८३–१४९५ , २८४–१४९६ मे (किया गया है । देवसरससंस्कृत नाम है । दिवसर उसका अपभ्रंश है । यह काश्मीर उपत्यका के दक्षिण पूर्व अचल में पडता है । यह विशोका नदी के ऊर्ध्व भाग मे शाहाबाद से सटा पश्चिम की तरफ है। विशोका नदी की नहरो द्वारा इस अचल की सिंचाई होती है । यहाँ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। यहाँ के डामरो ने काश्मीर इतिहास के उत्तरार्ध हिन्दूकाल मे बहुत भाग लिया था ।

अथावन्तिपुरं गत्वा सत्त्वातिशयशालिना ।
राज्ञा युद्धं तथाकारि तद्भटैरुद्भटैः समम् ॥ ३३१ ॥

३३१ अतिशय पराक्रमी राजा अवन्तिपुर[1] जाकर, उसके उद्भट भटों के साथ युद्ध किया ।

अल्लेश्वराय भृत्यानां वधं नूनं निवेदितुम् ।
वितस्ता शवरुद्धौघा प्रतीतमगमद्यथा ॥ ३३२ ॥

३३२ अल्लेश्वर (अलीशाह) से, (उसके) भृत्यों के वध की सूचना देने के लिये ही, मानो शवों से रुद्ध प्रवाह वितस्ता विपरीत[1] बहने लगी ।

भ्रातृपुत्रं पराभूय तावदल्लेश्वरे द्रुतम् ।
व्यावृत्ते रणखेदार्तः प्रपलायत जंसरः ॥ ३३३ ॥

३३३ भ्रातृपुत्र[1] को पराजित कर, अल्लेश्वर (अलीशाह) के परावृत्त होने पर, रणखिन्न जंसर (यमशेद) पलायित हो गया ।

पाद-टिप्पणी :

३३१. (१) अवन्तिपुर : अलीशेर की शक्ति का गढ राजस्थानियों का केन्द्र था; वही अलीशेर रहता था और वही से भाई के विरुद्ध षड्यन्त्र का संचालन करता था । अवन्तिपुर को निजामुद्दीन ने गलती से मदनीपुर लिख दिया है । द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक : ३२१ । तबकाते अकबरी मे लिखा है—'जमशेद ने उन पर चढाई की और सर्वप्रथम सैनिकों को प्रोत्साहन दे कर अपनी ओर मिलाने और सन्धि करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया । अलीशेर ने सन्धि का विरोध करते हुए शीघ्रातिशीघ्र सुल्तान जमशेद की सेना पर रात्रि मे छापा मारा और उसे पराजित कर दिया । पराजय के उपरान्त सुलतान जमशेद ने जब यह सुना कि मदनीपुर खाली है तो उसे नष्ट करने के लिये प्रस्थान किया । अलीशेर के सैनिक जो उसकी रक्षा हेतु नियुक्त थे, युद्ध के लिये अग्रसर हुए और अधिकांश लोग मारे गये, (उ० : तै० : भारत १ : ५१३) । तारीख पीर हसन मे जैनापुर युद्ध स्थान का नाम दिया है (पृष्ठ : १७०) । द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक : ३२१ । फिरिस्ता लिखता है—'जमशेद पलायन करने के पश्चात पुनः आक्रमण करने लिये लौटा । उसने मदनीपुर (अवन्तीपुर) ले लिया । वहाँ पर स्थित शत्रु सेना ने घोर युद्ध किया जिसे (जमशेद की सेना ने) टुकड़े-टुकडे काट डाला (पृ० ४५५)।'

पाद-टिप्पणी :

३३२. (१) विपरीत : वितस्ता का प्रवाह विजयेश्वर, अवन्तीपुर से श्रीनगर की ओर है । अवन्तिपुर से भृत्यो की मृत्यु का सन्देश पहुँचाने के लिये, वितस्ता की धारा रुद्ध होकर, श्रीनगर से उलटी अवन्तिपुर की ओर बहने लगी ।

अलीशेर की सेना एवं शक्ति पर जमशेद ने पूर्णतया विजय प्राप्त कर, उसके अनुयायियो को मार डाला ।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक ३३३ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक क्रम संख्या ३८१ तथा ३८२ अधिक है । श्लोको का भावार्थ है—'अन्धकार मे दीपशिखा सदृश जिसकी बुद्धि आपद में स्फुरित हो वह रत्न और रत्न जाति के पाषाणो से क्या अन्तर है । वह वैरी के द्वारा भेद के लिए कुछ दिन तक धारण किया गया । अमोघ एवं दुर्गामिनी बुद्धि शस्त्रो मे बढकर होती है ।'

३३३. (१) भ्रातृ पुत्र : जमशेद ने अपने पुत्र को कम्पनेश को मारने के लिये भेजा था । अलीशेर निश्चय ही कम्पनेश की रक्षा के लिये गया होगा । अलीशेर ने अपने भतीजा—जमशेद के पुत्र को पराजित कर दिया । जोनराज ने जमशेद के पुत्र का

आचयोर्नैव कर्तव्यः कलिर्मासद्वयीमिति ।
राज्ञा स संविदं चक्रे धीमानल्लेश्वरस्ततः ॥ ३३४ ॥

३३४ 'हम दोनों दो मास युद्ध न करें',—इस प्रकार धीमान अल्लेश्वर (अलीशेर) ने राजा के साथ मन्त्रणा की।

प्रतिमुच्य निजान् योधानवन्तिपुरमुत्सृजन् ।
अथ क्षीरीपथेनासावल्लेशोऽगमदिक्षिकाम् ॥ ३३५ ॥

३३५ अपने योद्धाओं को छोड़कर तथा अवन्तिपुर[1] को भी छोड़ते हुए, क्षीरीपथ[2] से, वह अल्लेश (अलीशाह) इक्षिका[3] गया।

नाम नही दिया है। किसी इतिहासकार ने नाम नही दिया है।

जोनराज का कथन है। अलीशेर के विजययात्रा से लौटने पर जमशेद ने अवन्तिपुर त्याग दिया। जमशेद युद्ध से खिन्न हो गया था। सम्राट अशोक कलिंग मे रक्तपात देखकर खिन्न हुआ और उसका जीवन-प्रवाह ही बदल गया। परन्तु जमशेद की खिन्नता सकारण है। पुत्र की पराजय से दुखी होकर, अपनी पराजय भय से कायर की तरह जमशेद भाग गया। अन्यथा पुत्र की पराजय के पश्चात् उसे स्वयं पुत्र की हार का बदला अलीशेर से लेना चाहिए था। अवन्तिपुर की जीत, पुत्र की पराजय के कारण, राजा की पराजय मे परिणत हो गयी। राजा भविष्य से शंकित हो उठा। अन्यथा वह अवन्तिपुर से जिसे स्वयं उसने विजय किया था कभी न भागता। तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'इसी बीच जब अलीशेर विजय प्राप्त करके उस क्षेत्र मे पहुँचा तो सुल्तान जमशेद अपने आप मे युद्ध की शक्ति न देखकर कामराज बिलायत की ओर भाग गया (उ० तैं० भा० ३ ५१३)।' तारीख हसन मे परशियन लेखकों को ही आधार मानकर लिखा गया है। हसन यद्यपि काश्मीरी था तथापि उसे संस्कृत का ज्ञान नही था। उसने कुछ उलटा लिख दिया है। सुलतान को अवन्तिपुर से सीधे वह कामराज भगा देता है। जब कि जोनराज लिखता है कि वह श्रीनगर का कार्यभार मन्त्री पर सौंपकर कामराज गया (पीर हसन : पृष्ठ : १७०)।

फिरिश्ता लिखता है—'अलीशेर जिसने पहले मदनीपुर (अवन्तिपुर ?) छोड़ दिया था अपनी सेना के साथ आया और जमशेद को गुजरात भागने के लिये बाध्य कर दिया (पृष्ठ ५५)।'

पाद-टिप्पणी :

३३४. (१) युद्ध विराम : अलीशेर नीतिज्ञ था। उसने नीति से काम लिया। उसको अपने भाई की शक्ति का पता लग गया था। अपनी शक्ति सुदृढ करने के लिये उसने युद्ध विराम का पाश फैलाया। इस पाश मे जमशेद फँस गया।

पाद टिप्पणी :

३३५. (१) अवन्तिपुर : द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक : ३२१।

(२) क्षीरीपथ : क्षीर काश्मीर मे एक नदी का नाम है। वितस्ता के वाम तट से दुग्धगंगा, वर्तमान नाम चत्सकुल मे आकर मिलती है बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित (१८ : ७) मे क्षीर नदी को दुग्धसिन्धु कहा है। दुग्धगंगा वर्तमान कर्णनगर के समीप है। माहात्म्यों मे इसे श्वेतगंगा कहा गया है (वितस्ता माहात्म्य २० ११)। चेत्स शब्द श्वेत का अपभ्रंश है। नीलमत पुराण ने क्षीर नदी का उल्लेख किया है (नी० . १२७९, नवबन्धन माहात्म्य : पाण्डुलिपि रघुनाथ मन्दिर : जम्मू : ३६६५ : पाण्डु : ४२ ए०)। दुग्ध एवं क्षीर पर्यायवाची शब्द हैं। इस नदी मे जल पीरपन्त-सल पर्वत के मध्यवर्ती अंचल से

नगरीरक्षतां न्यस्य सध्यराजे स्वमन्त्रिणि।
क्रमराज्यं विराजच्छ्रीर्जसरश्चागमत्तदा ॥ ३३६ ॥

३३६ श्रीमान जसर (जमशेर-जमशेद) उस समय नगरी[1] की रक्षा, स्वमत्री सध्यराज[2] पर न्यस्त कर, क्रमराज्य[3] गया।

दानमानौ प्रतिश्रुत्य सध्यराजं विभिन्दता।
युवराजेन नगरी स्वीकृता मन्त्रयुक्तिभिः॥ ३३७ ॥

३३७ दान मान देने की प्रतिज्ञा (लोभ दे) कर सध्यराज[1] को फोड़ने वाले युवराज ने मन्त्र[2] युक्तियों से नगर को स्वीकृत (अधीकृत) कर लिया।

आता है। वह तत्कुटी पर्वत के समीप का जल ग्रहण करती है। इसको सगसफेद नदी कहते हैं। दुग्धगगा तथा वितस्ता का सगम प्राचीन दिद्दामठ (दिदमर) के दूसरी तरफ था। इसी नदी के समीपवर्ती मार्ग को जोनराज ने सम्भवत क्षीरीपथ कहा है।

क्षीरप्रस्थ एक दूसरा स्थान है। उसे क्षीरीपथ से नही मिलाना चाहिए (रा० ७ १६८)।

(३) इक्षिका . नागाम किंवा नागाम परगना के पछगोम वर्तमान गाँव का नाम है। वह श्रीनगर अचल तक विस्तृत है। श्रीवर ने इसका प्राचीन नाम इक्षिका दिया है (जैन० ३ २५)। इसके मध्य म दामदर उद्र अर्थात् दामोदर उद्र है। इस उद्र से राजा दामोदर की गाथा सम्बन्धित है। एच परगना मे ही सोमर बुग ग्राम है। वह वितस्ता के वाम तट पर है। यहीं पर कल्हण वर्णित विष्णु समर स्वामी का मन्दिर था (रा० ५ २५)। इसी परगना म हल्थल था। अबुल फजल ने इसका उल्लेख किया है। इसका प्राचीन नाम हाला स्थल था (रा० ७ ५९४, ८ २००)। अबुल फजल ने इसका उल्लेख कम्पित वृक्ष क सन्दर्भ मे किया है। यदि वृक्ष की एक छोटी शाखा को भी हिला दिया जाय तो सम्पूर्ण वृक्ष हिलने लगता था। येच परगना का उल्लेख अबुल फजल (आइन अकबरी २ ३६७-३७१), मूरक्राफ्ट (ट्रेवेल्स ३ · ११३), वैरन हुगेल (काश्मीर २ २०६), वाइन (ट्रेवेल्स १ २७२) तथा बेट्स (गजेटियर २) ने किया है।

दामोदर उद्र का प्राचीन नाम दामादर सूद था। उद्र फारसी म करेवा को कहते हैं। करेवा काश्मीर उपत्यका म अत्यधिक है। यह श्रीनगर के उत्तर पश्चिम दिशा मे फैला है। इसका विस्तार ६ मील लम्बा तथा ३ मील चौडा है। राजा क्षेमगुप्त के समय इसे दामोदरारण्य कहते थे। यह शृगाल से भरा रहता था (रा० ६ . १८३, ८ १५१९)। राजा दामोदर के सर्प हो जाने की गाथा यहाँ के ग्रामीणो मे अबतक प्रचलित है। दामोदर सूद गाँव एक अधित्यका पर आबाद है। दामोदर सूद नामक हवाई अड्डा है (रा० ४ १९१, १ १५६), द्रष्टव्य रा० खण्ड १ २१६।

पाद-टिप्पणी

३३६ (१) नगरी . श्रीनगर।

(२) सध्यराज तबकाते अकबरी मे इसका नाम शिराज दिया गया है '—शिराज नामक जमशेद के वजीर न जिसके सुपुर्द श्रीनगर की रक्षा थी, अलीशेर को उच्छनगर से बुलवाकर श्रीनगर उसे सौंप दिया।' हसन ने अपन परशियन तारीख मे इसका नाम शिराजुद्दीन दिया है।

फिरिश्ता लिखता है—'शिराजुद्दीन जो उसका मन्त्री था उसने अलीशेर को श्रीनगर पर अधिकार कर लेने के लिए निमन्त्रित किया।'

पाद-टिप्पणी .

३३७ (१) सध्यराज मुसलिम इतिहासकारों ने नाम 'शिराज' दिया है (म्युनिख पाण्डुलिपि.

नामराजतया दुःखं भुक्त्वा कश्मीरमण्डले ।
मासद्वयोनौ द्वौ वर्षावचसानमगान्नृपः ॥ ३३८ ॥

३३८ नाममात्र का राजा होने के कारण कश्मीर मण्डल में दुःख भोग कर दो मास कम दो वर्ष पश्चात (जमशेद–जसर) मर गया।'

५४ ए०)। मोहिबुल हसन लिखते हैं—'अलीशेर ने इस आरजी सुलह को नजरअन्दाज कर दिया और श्रीनगरी के निगरा शिराज को रिशवत देकर इसने राजधानी पर कब्जा कर लिया और खुद को सुल्तान होने का एलान कर दिया (पृष्ठ ६७)।' पीर हसन लिखता है—'वजीर शिराजुद्दीन ने जो दारुल हुकूमत श्रीनगर का मुहाफिज था अलाउद्दीन को तख्त व ताज हवाले कर दिया।'

(२) मन्त्रयुक्ति जोनराज ने रिश्वत अर्थात् उत्कोच का वर्णन नहीं किया है। उसके मन्त्र शब्द के गर्भ में षड्यन्त्र की सभी युक्तियों का समावेश हो जाता है, द्रष्टव्य २६०, ७५६। फिरिस्ता लिखता है—'शिराजुद्दीन द्वारा श्रीनगर में वह सुलतान स्वरूप स्वीकार किया गया (४५६)।' द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ५१५।

पाद-टिप्पणी :

३३८ (१) डॉ० सूफी का मत है कि जिस वर्ष (सन् १३४२ ई०) में वह राजा हुआ उसी वर्ष उसके भाई अलीशेर (अलाउद्दीन) ने उसे राज्यच्युत कर दिया। अतएव वह राज्यच्युत होने के पश्चात् १ वर्ष, १० मास और जीवित रहा। किन्तु जोनराज राज्य काल का निश्चित समय देता है। सूफी अवन्तिपुर से जमशेद के पलायन किंवा पराजय काल के समय से ही अलीशेर को बादशाह तथा जमशेद को राज्यच्युत मान लेता है (कशीर १३४)।

परसियन इतिहासकारों ने लिखा है कि उसने अदविन परगना में जामनगर का निर्माण कराया। किन्तु जोनराज ने श्लोक ३४२ में सीमा पर पथिकों के लिये मठ, कक्ष्या सहित सराय बनवाने का उल्लेख किया है। राज्यत्याग के पश्चात् एवं द्वारपति होने पर जोनराज ने जमशेद के केवल दो कार्यों का उल्लेख किया है। उक्त निर्माण के पश्चात् उसने वितस्ता पर पुल बनवाया था (श्लोक ३४०)।

श्रीकमजामी ने लिखा है कि वह सन् १३४३ ई० में राज्यच्युत कर दिया गया था। किन्तु वे किस आधार पर सन् १३४३ ई० देते कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है। तबकाते अकबरी में लिखा है—'१ वर्ष, २ मास राज्य करके मृत्यु को प्राप्त हुआ (उ० तै०. भा०: ३ ५१३)।' यह गलत है। परसियन इतिहासकारों ने गलती से १ वर्ष, १० मास के स्थान पर १ वर्ष, २ मास लिख दिया है। जोनराज की काल गणना ठीक है।

यहाँ पर फिरिस्ता ने जोनराज का अक्षरशः समर्थन किया है—'जमशेद ने पुनः राज्य प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया और चौदह मास राज्य कर हिजरी ७५२ = (सन् १३५१ ई०) में मर गया।'

मूल्यांकन

राजमद एवं राजलोभ ने इस भूतल पर किसे प्रभावित नहीं किया है? इनसे जो अप्रभावित है वही राजर्षि है—ऋषि है। राजमद एवं राजलोभ पिता, भ्राता, पत्नी, बहन, माता, पुत्र किसी के स्नेह एवं कृतज्ञता की चिन्ता नहीं करता। वह लोभ प्रवाह में अपने निकटतम सम्बन्धियों के रक्त से रंजित हाथों को देखकर भी खिन्न किंवा शोकान्वित नहीं होता। यदि होता भी है तो क्षणिक श्मशान वैराग्य सदृश।

शाहमीर ने कोटा का खून कर अपने राज्य की नींव डाली थी। वह खून, उस खून की गर्मी, अबला की निर्मम हत्या, शाहमीर के खान्दान में छूत की बीमारी की तरह पुश्तदरपुश्त चलती रही। शाहमीर के अतिरिक्त अन्य सुलतानों ने अपने भाइयों

के विरुद्ध, अपने पिता के विरुद्ध, अपने सम्बन्धियो के विरुद्ध हथियार उठाया है। अपना हाथ अपने कुटुम्ब के रक्त से रँगा है। उन्होने शाहमीर के आदेशो का जिसमे उन्हे आपस मे स्नेह-सूत्र मे बँधे रहने का उनसे अनुरोध किया था, आदर नहीं किया। वह पिता की केवल सद्भावना मात्र ही रह गयी। शाहमीर के आँख मूँदते ही भाई-भाई एक दूसरे के प्रति सशकित हो गये। जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि सिहासनारोहण के पूर्व भी कठिनाई हुई थी। सामन्तो द्वारा आज्ञा मान लेने पर, जमशेद सुलतान बन सका था।

कनिष्ठ भ्राता अलीशेर अर्थात् अलाउद्दीन ज्येष्ठ भ्राता जमशद से अधिक चतुर, वीर तथा कार्यपटु था। राजनीतिक हथकण्डो से परिचित था। स्वय राज्य प्राप्ति के लिये षडयन्त्र एव बल दोनो का आश्रय लिया था। जमशेद अपने भ्राता अलीशेर पर विश्वास न कर सका। जमशेद की इस प्रवृत्ति के कारण अलीशेर युवराज होने पर भी, सुलतान से विरक्त हो गया।

भाइयो के मतभेद का लाभ उठाकर, राजस्थानीय युवराज अलीशेर के चारो ओर एकत्रित होने लगे। अलीशेर राजस्थानियो के शक्तिकेन्द्र अवन्तिपुर चला गया। *सुलतान ने सैनिको के साथ अवन्ति* नगर की ओर प्रस्थान किया। उत्पलपुर पहुँचा भ्राता को स्नेह सन्देश तथा पिता के वचन का स्मरण कराया। भाई से दया की प्रार्थना की।

जमशेद स्थिरबुद्धि सुलतान नहीं था। एक नीति पर स्थिर नही रह सका। उसका जीवन विरोधी प्रवृत्तियो का सग्रह है। एक ओर भाई से स्नेह की बात करता था दूसरी ओर कम्पनाधिपति को मारने के लिये अपने पुत्र को भेज दिया था।

युवराज बहाना बनाता रहा। उसने राजदूत से भेट नही की और भ्रातृपुत्र की हत्या के लिये सेवक भेज दिया दिया। लक्ष्मभट्ट ने सुलतान को सतर्क किया। अलीशेर के द्रोह की बात पर विश्वास करने के लिए कहा। यह भी कहा कि उसका भाई *उसके पुत्र को समाप्त करने के प्रयास मे था।* राजा सन्धिवार्ता, स्नेह, पिता का वचन भूल गया। उसने अवन्तिपुर मे अलीशेर के उद्भट भटो के साथ युद्ध किया और अपने भ्रातृपुत्र को अलीशेर ने पराजित कर दिया।

जमशेद ने पुन अपनी चचल बुद्धि का परिचय दिया और युद्ध से खिन्न हो गया। उसकी खिन्नता कायरता थी अस्तु वह मैदान छोडकर भाग गया। अलीशेर ने पुन नीति से काम लिया। युद्ध विराम वार्ता का प्रस्ताव रखा। अलीशेर अवन्तिपुर तथा अपने योद्धाओ को छोडते हुए, क्षीरीपथ से इक्षिका चला गया। उस समय जमशेद ने नगर की रक्षा का भार सख्यराज को दिया और स्वय क्रमराज चला गया। निश्चयात्मक बुद्धि के अभाव म जमशेद किसी एक नीति पर स्थिर नहीं रह सका। शक्ति उसके हाथ से उसी प्रकार निकलती गयी, जिस प्रकार उदयनदेव से शाहमीर के पास चली आयी थी। जमशेद नाममात्र का राजा रह *गया था। उसने केवल बाईस मास शासन किया।*

सुलतान अलीशेर ने युद्ध के अनुपयुक्त समय देखकर सुलतान भ्राता को द्वारपति का पद दिया। कल के सुलतान ने दूसरे दिन द्वारपति का पद स्वीकार कर लिया। इसमे उसे अपने सम्मान तथा पूर्व सुलतान पद गौरव की भी लज्जा न मालूम हुई। इससे प्रकट होता है वह न तो स्थिति से लाभ उठाना जानता था और न समय से नीतिपूर्वक *कार्य करना। उसने यह पद भी स्वीकार कर* लिया। परन्तु उसकी मद अस्थिर बुद्धि उसका दामन पकडे रही। जमशेद ने सुय्यपुर मे वितस्ता पर पुल तथा पर्वत सीमा पर पथिको के निवासहेतु सराय तथा जामनगर का निर्माण कराया।

पदच्युत सुलतान जमशेद ने भाई से लडने का पुन प्रयास किया। परसियन इतिहासकारो ने लिखा है कि उसने भाई पर आक्रमण करने के लिये पुल का निर्माण कराया था। जोनराज सुलतान की मृत्यु के विषय मे कुछ नही कहता। परन्तु मुहम्मद आजम वाक-

जानन्नलावदेनोऽथ तं कालं कलहाक्षमम्।
द्वारैश्वर्यं ददौ भ्रातुः सद्यो विघ्ननिवृत्तये ॥ ३२९ ॥

अलाउद्दीन (सन् १३४४–१३५५)

३२९ उस समय को युद्ध के लिये अनुपयुक्त जानकर, अलावदेन (अलाउद्दीन)[1] ने सद्यः विघ्न निवृत्ति के लिये, द्वारपति का पद भाई को दे दिया।

यात-इ-काश्मीर में लिखता है कि 'जमशेद का पुन राज्यप्राप्ति के लिये युद्ध हुआ और अपने छोटे भाई शाहमीर वंश के तृतीय सुलतान द्वारा द्वितीय पदच्युत सुलतान मारा गया।'

जमशेद के राज्य काल में कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी। उसने राज्य प्राप्ति के पश्चात् कोई निर्माण कार्य नहीं किया। जो किया भी वह राज्यच्युति के पश्चात् जनता की भलाई के लिये कुछ करता दिखाई नहीं देता। उसका समय संघर्ष एवं अस्थिर बुद्धि का शिकार होते ही बीत गया। उससे आशा की जाती थी कि वह चतुर शासक साबित होगा। उसे पिता शाहमीर के समय शासन कार्य का अनुभव हुआ था। वह राजा उदयनदेव के समय क्रमराज्य का राज्यपाल था। परन्तु शासन सूत्र हाथ में आते ही वह असफलताओं की शृङ्खला जोड़ने लगा और अन्त में भाई द्वारा मारा गया। उसकी सन्तानों का क्या हुआ ? कुछ पता नहीं चलता। परसियन इतिहासकार तथा जोनराज स्वयं इस विषय में शान्त है। तारीखे-काश्मीर में आजमी ने तीन सन्त भ्राता खलाशमन, पलाशमन तथा याशमन का उल्लेख किया है। उन पर किसी और इतिहासकार किंवा जोनराज प्रकाश नहीं डालता। यह स्वीकार करना होगा कि जमशेद में धार्मिक कट्टरता नहीं थी। वह कट्टर हो भी नहीं सकता था। उस समय मुसलिम जनसंख्या बहुत ही स्वल्प थी। यद्यपि प्रमुख राजपदों पर मुसलमान रखे जाने लगे थे।

पाद-टिप्पणी :

[1] राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि गताब्द ४४४४= शक १२६५=सप्तर्षि ४४१९ सन् १३४३ ई० एवं राज्य राज्यकाल १२ वर्ष ८ मास १२ दिन, श्री कण्ठ कौल सप्तर्षि ४४२० = सन् १३४४ ई०, मोहिबुल हसन सन् १३४३ ई०, आइने-अकबरी ने सन् १३५१ ई० = ७२० हिजरी तथा राज्यकाल १२ वर्ष ८ मास १३ दिन, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग ३ में सन् १३५० ई०, तबकाते अकबरी में राज्यकाल १२ वर्ष ८ मास १३ दिन, टी० डब्लू० हेग ने सन् १३५० ई० = हिजरी ७५१, बेंकटाचालम ने राज्यकाल सन् १३४८ से १३६० ई०, डॉ० सूफी हिजरी ७४३ से ७५५ तथा दिल्ली सलतनेत में सन् १३४३ ई० दिया गया है। पीर हसन ने राज्याभिषेक काल हिजरी ७४८ = विक्रमी १४०४ दिया है।

समसामयिक घटनायें :

लद्दाख में इस समय राजा रग्यल-ब-रिंचन था। सन् १३४४ ई० में मुहम्मद तुगलक ने मिश्र के खलीफा अलहाकिम तृतीय से अपनी बादशाहत की सनद प्राप्त की। कवि बदरुद्दीन जो बद्रेच्छछ नाम से प्रसिद्ध था अपने जन्मस्थान शाश अथवा ताशकन्द से दिल्ली आकर दौलताबाद गया।

इसी समय जर्मनी में दक्षिणी तथा दक्षिणी-पश्चिमी के नगरों ने मिलकर एक लीग की स्थापना की। सन् १३४५ ई० में भौगोलिक पुस्तक तकविमुल बुलदान तथा तारीख-ए-मुख्तसर के लेखक अबुल फिदा की मृत्यु हो गयी। सन् १३४६ ई० में तुर्कों ने मोरिया विजय किया। विश्व में प्रथम बार ग्रेवी के युद्ध में बारूद वाली तोप का प्रयोग किया गया। सन् १३४७ में जफर खान बहमनशाह ने दक्षिण में बहमनी राज्य स्थापित किया। इंगलिशस्तान के राजा ने कैले विजय किया। केम्ब्रिज में पेमब्रोक हॉल की स्थापना की गयी और विलियम ओक्यम् केथोलिक

सम्प्रदाय के आलोचक की मृत्यु हो गयी। सन् १३४८ ई० मे मुहम्मद तुगलक ने जूनागढ के समीप गिरनार पर आक्रमण किया। विश्व मे प्रथम बार वेनिस मे स्वास्थ्य विभाग तथा क्वारेण्टाइन की स्थापना की गयी। सन् १३४९ ई० मे गिरनार पर मुहम्मद तुगलक ने विजय प्राप्त की। काश्मीर मे भयकर अकाल पडा। इंगलिशस्तान मे ऑर्डर ऑफ गार्टर जारी किया गया। सन् १३५१ ई० मे मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गयी तथा फिरोज तुगलक दिल्ली का बादशाह बना। काश्मीर मे कवि अमृतदत्त का उदय हुआ। इगलिशस्तान मे श्रमिको के पारिश्रमिक तथा श्रम सम्बन्धी विधि बनाया गया। सन् १३५२ ई० मे इलियास खा ने दोनो बंगाल के भागो को सयुक्त बगाल बनाया। कृषि कॉलेज कैम्ब्रिज की स्थापना की गयी।

(१) अलावदेन (अलाउद्दीन) : अलीशेर ने अपना नाम अलाउद्दीन धारण किया। अलाउद्दीन नाम है परन्तु इसका अर्थ होता है दीन अर्थात् धर्म मेवयोवृद्ध—बुजुर्ग। अलीशेर का झुकाव धर्म की तरफ था। अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण भारत तक विजय किया था। उसका नाम तथा ख्याति अलीशेर ने सुनी होगी। वह प्रथम मुसलिम शासक था जिसने मुसलिम राज्य को भारतीय आधार पर सघटित किया था। उसकी ख्याति रानी पद्मिनी, चित्तौर युद्ध, देवगिरि विजय, देवल देवी से विवाह, देवलगढ का नाम दौलताबाद रखकर तथा सेना का नव सघटन कर हुई थी। अलाउद्दीन खिलजी की कब्र महरौली अर्थात विष्णु पर्वत जहाँ विष्णु मन्दिर तोडकर मसजिद कुव्वते इसलाम का निर्माण किया गया है, उसकेपश्चिम नीचे की तरफ बाईं ओर है। अल्तमश के मजार के ठीक सामने दूसरी ओर तीन गुम्बद हैं। उनमे बीच वाले गुम्बद मे है। गुम्बद ऊपर से खुले हैं। अलाउद्दीन की कब्र पर कुछ लिखा नहीं है। जिससे पता चल सके कि यह वास्तव मे उसी की कब्र है। लेकिन माना यही जाता है कि वह अलाउद्दीन की ही कब्र है। इसी अलाउद्दीन की कथाओ से प्रभावित होकर उसने अपना नाम अलाउद्दीन रखा होगा।

राजा जमशेद को राज्यच्युत कर अलीशेर किंवा अलाउद्दीन राजसिंहासन पर बैठा था। भविष्य को निर्विघ्न करने के लिये उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता जमशेद को द्वारपति का पद दे दिया।

फिरिस्ता लिखता है—'अलाउद्दीन ने अपने कनिष्ठ भ्राता सियमक को मन्त्री बनाया' (पृष्ठ ४५७)। शीर असमक को ही फिरिस्ता सियमक लिखता है। शीर असमक अलाउद्दीन का भ्राता नही था। फिरिस्ता का वर्णन गलत है।

तवकाते अकबरी मे उल्लेख है—'उसने अपने छोटे भाई शेर अश्मक (शिर' शाटक) को अत्यधिक अधिकार प्रदान कर दिये (उ० : तै० : भा० : १ : ५१३)'—यह गलत है। अलाउद्दीन का पुत्र शिहाबुद्दीन और शिहाबुद्दीन का भाई कुतुबुद्दीन था। जोनराज के श्लोक २४८ से प्रकट होता है कि शाहमीर को दो पौत्र शिर शाटक तथा हिन्दल थे। पराशियन इतिहासकारो ने शिर.शाटक को शीर अश्मक तथा हिन्दल को हिन्दू खा लिखा है। हिन्दू खा किंवा हिन्दल कुतुबुद्दीन नाम रखकर शाहमीर वश का पाँचवाँ सुलतान हुआ था। अनेक इतिहासकारो ने अलाउद्दीन का तृतीय भ्राता शिहाबुद्दीन को मान लिया है—यह गलत है।

मिर्जा हैदर ने भी यही गलती तारीखे रशीदी मे की है। उसने भी अलाउद्दीन का भाई लिख दिया है (तारीखे रशीदी : पाण्डु० २३७ ए०) बहारिस्तान शाही मे उसे अलाउद्दीन का पुत्र लिखा गया है (बहा० : पाण्डु० . १९ ए०) जोनराज का वर्णन ठीक है। अलाउद्दीन का तीसरा भाई शिहाबुद्दीन था यह गलत है।

आइने-अकबरी मे सक्षिप्त उल्लेख किया गया है—'सुलतान अलाउद्दीन ने अध्यादेश जारी किया कि असती स्त्रियाँ अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नही हो सकतीं (जरेट : २ : ३८७)।'

पीर हसन ने लिखा है—'अपने छोटे भाई शहाबुद्दीन को वजारत का ओहदा बख्शा (उर्दू २ :

सलिलोत्तरणोपायं सेतुं सुय्यपुरे व्यधात्।
विपत्संतरणोपायं न पुनर्जसरोऽस्मरत् ॥ ३४० ॥

३४० जंसर (जमशेर–जमशीद) ने सुय्यपुर[1] में सलिलोत्तरण उपायभूत सेतु[2] निर्मित किया, किन्तु विपत्ति सन्तरण का उपाय न स्मरण कर सका।

पथिकानां निवासाय तेन पर्वतसीमनि।
कक्ष्याविभागसहितः स्वनाम्ना रचितो मठः ॥ ३४१ ॥

३४१ उसने पर्वत सीमा पर पथिकों के निवास हेतु अपने नाम[1] से कक्ष्या विभाग सहित मठ (सराय) रचित कराया।

---

१५२)।' पीर हसन ने भी गलत लिखा है कि शहाबुद्दीन सुलतान अलाउद्दीन का छोटा भाई था। शहाबुद्दीन वास्तव मे अलाउद्दीन का ज्येष्ठ पुत्र तथा काश्मीर का चौथा सुलतान था।

पाद-टिप्पणी :

३४०. (१) सुय्यपुर : यह काश्मीर का वर्तमान नगर सोपोर है। मैं यहाँ कई बार आ चुका हूँ। यह विकासशील नगर है। आज़ादी के पश्चात् इस शहर की बहुत उन्नति हुई है। अवन्तिवर्मा के महान अभियन्ता सुय्य ने इस नगर को बसाया था (रा० : ५ : ११८)। वितस्ता नदी पर जहाँ वह वूलर लेक अर्थात् उल्लोलरार से निकलती है वहाँ से एक मील अधोभाग मे है। श्रीवर से प्रकट होता है कि यह क्रमराज्य का केन्द्र था (जैन० : १ : ५६०)। जैनुल आबेदीन के समय संघर्ष मे यह नगर नष्ट हो गया था। क्रमराज का सभी पुराने सरकारी कागज अर्थात् जितना प्राचीन मुहाफिजखाना था सब नष्ट हो गया। केवल राजकीय प्रासाद बच गया था। बादशाह ने नगर का पहले से भी अधिक सुन्दर निर्माण कराया। नगर मे कोई प्राचीन इमारत तथा ध्वंसावशेष नही मिलता। कल्हण ने इसका जैसा उल्लेख किया था, नगर अब भी वितस्ता के दोनो तटो पर आबाद है। सुय्यपुर का उल्लेख कल्हण ने पुनः (रा० ८ : ३१२८) में किया है। जोनराज ने (श्लोक ८६८, ८७५) सुय्यपुर का पुनः उल्लेख किया है। श्रीवर सुलतान हसनशाह द्वारा निर्मित भवन के प्रसग मे सुय्यपुर का उल्लेख करता है (जैन० : ३ : १८३)। मूरक्राफ्ट (ट्रेवेल्स २ : २३०), वैरन हूगेल (काश्मीर : १ : ३५३) तथा प्रायः सभी पर्यटको ने इसका वर्णन किया है। द्रष्टव्य श्लोक : ८६८।

पदच्युत राजा जमशेद ने वितस्ता पर पुल का निर्माण कराया था। उसने नदी पार जाने का उपाय निकाल लिया था परन्तु अपनी विपत्ति से पार पाने का उपाय नही निकाल सका। जोनराज स्पष्ट नही लिखता कि कौन-सी विपत्ति थी, जिसे वह पार नही कर सका। परसियन इतिहासकारो का मत है कि जमशेद ने अपने भ्राता का राज्य हडपने के लिये—आक्रमण करने के लिये, पुल का निर्माण कराया था।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ३४१ के पश्चात बम्बई संस्करण मे श्लोक सख्या २९१ अधिक है। श्लोक का भावार्थ है—'कपट आदि के कारण राजा से भयभीत होकर वह स्वयं द्वार त्याग कर ज्येष्ठेश्वर नामक ग्राम मे चला गया।'

३४१. (१) जामनगर : परगना अदविन : नवा दरुल अखबार तथा गोहरे-आलम (१०९ ए) से पता चलता है कि जामनगर कस्बा बसाया। यह ठीक नहीं है। कक्ष्या शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है। कक्ष्या को कसबा समझना उचित नही होगा। कक्ष्या का अर्थ कोठरी होता है। यहाँ पर नगर नही बल्कि अपने नाम से सराय निर्माण कराया था।

एवं विक्रमनीतिभ्यां देशं शोधयतो निजन्।
श्रीशिरःशाटको राज्ञो द्वारैश्वर्यमवाप्तवान् ॥ ३४२ ॥

३४२ इस प्रकार विक्रम एवं नीति द्वारा देश का उद्धार करके राजा के द्वारपति[1] पद को श्री शिरःशाटक (शिहाबुद्दीन) ने प्राप्त किया।

राजपुत्रः स वाक्पुष्टाटव्यां लीलारसादटन्।
योगिनीचक्रमद्राक्षीत् कदाचिद्गिरिगह्वरे ॥ ३४३ ॥

३४३ कदाचित् लीलारस (मौज) से, वाक्पुष्टाटवी[1] में घूमते हुए, उस राजपुत्र ने गिरि गह्वर में योगिनी चक्र देखा।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक और मिलता है—'बल बुद्धि, क्षमा, शौर्य, मन्त्र, उत्साह, गुणो से युक्त शाहावदेन उस राजा का पुत्र हुआ।'

३४२. (१) द्वारपति : जमशेद : जोनराज यह नही वर्णन करता कि अलीशेर ने किस प्रकार अपने भ्राता जमशेद के स्थान पर अपने पुत्र शहाबुद्दीन को द्वारपति बनाया। जमशेद के नाम का उल्लेख श्लोक ३४० के पश्चात् नही मिलता। जोनराज ने उसके पुत्रो तथा कुटुम्बियो का कही भी उल्लेख नही किया है।

वाकयाते-काश्मीर के लेखक ख्वाजा मुहम्मद आजम ने लिखा है—'जमशेद था अलीशेर से युद्ध हुआ था। उस युद्ध मे अलीशेर ने ज्येष्ठ भ्राता जमशेद को मारा था (पृष्ठ ३०)।'

पीर हसन के अनुसार उसने अपने भ्राता शहाबुद्दीन को वजीर बनाया था (पृष्ठ : १७०)।

पाद-टिप्पणी :

३४३. (१) वाक्पुष्टाटवी : कल्हण ने वाक्पुष्टाटवी का उल्लेख (रा० : २ : ५७) किया है। वाक्पुष्टा राजा जलौक के पुत्र राजा तुजीन की रानी थी (रा० : २ : १६)। वाक्पुष्टा का चरित्र कल्हण की राजतरंगिणी मे परम विदुषी महिला के रूप मे चित्रित किया गया है। उसने काश्मीर की रानियो एवं देवियो मे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है। रानी वाक्पुष्टा जिस स्थान पर अपने पति के साथ सती हुई थी वह स्थान देवी के नाम पर वाक्पुष्टाटवी के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। अटवी का अर्थ वन होता है।

वाक्पुष्टाटवी वास्तव मे कहाँ था, इसका निश्चित पता नही चलता। जोनराज के वर्णन से इतना अवश्य प्रमाणित होता है कि उसके समय तक यह स्थान इसी नाम से प्रसिद्ध था। राजा तुजीन का समय श्री स्तीन की काल गणना के अनुसार लौकिक अर्थात् सप्तर्षि सम्वत् २९६० तथा कलि सम्वत् २९८५ होता है। जोनराज ने राजतरंगिणी जैनुल आबदीन बडशाह के समय (सन् १४२०-१४५९ ई०) मे लिखी थी। श्रीवर के अनुसार जोनराज की मृत्यु लौकिक सम्वत् ४५३४ (तदनुसार सन् १४५९ ई०) मे हुई थी। इस प्रकार लगभग १६ वीं शताब्दी तक लोग काश्मीर मे वाक्पुष्टावटवी स्थान को जानते थे।

जोनराज के अनुसार यह स्थान गिरिगह्वर के समीप होना चाहिये। इस प्रकार वाक्पुष्टाटवी किसी पर्वत के समीप थी। श्री स्तीन ने मत प्रकट किया है कि यह स्थान कहाँ पर था निश्चित नहीं है। पण्डित गोविन्द कौल जिनका उद्धरण श्री स्तीन ने अपनी टिप्पणी मे दिया है उनका मत है कि यह स्थान वर्तमान ग्राम बुदूह् वुरंनवाव परगना में होना चाहिए। इस स्थान पर गुलाबगढ दर्रा के पर्वत बाहुमूल से होकर पहुँचते हैं। श्री स्तीन ने

उदयश्रीस्तथा चन्द्रडामरश्चास्य वल्लभौ ।
अपश्यतां न किं लभ्यं महतामनुयानतः ॥ ३४४ ॥

३४४ इसके वल्लभ (प्रिय) उदयश्री[1] चन्द्रडामर[2] ने भी चक्र देखा, बड़ों के अनुगमन से क्या सुलभ नहीं होता ?

अचलंल्लाडनादण्डा घण्टानां चण्डटाङ्कृतम् ।
मनांसि न पुनस्तेषां वीराणां साहसस्पृशाम् ॥ ३४५ ॥

३४५ घण्टों के ताड़न दण्ड घोर टंकारपूर्वक चलायमान हो उठते हैं। किन्तु साहसी वीरों का मन चलायमान नहीं होता।

मान्तर्धासिषुरेवैताः प्रष्टुं द्रष्टुं च काङ्क्षिताः ।
इति तेऽश्वादवारोहन् प्रवीरा न तु तद्भयात् ॥ ३४६ ॥

३४६ ये अन्तर्हित न हो जायँ, अतः पूछने एवं देखने के लिये इच्छुक, वे प्रवीर अश्व से उतरे न कि भय से।

इस स्थान की यात्रा सन् १८९१ ई० सितम्बर मास में की थी। उन्हें वहाँ चाकपुष्टाटवी सम्बन्धी कोई परम्परा नहीं मिली थी (स्तीन रा० : २ · ५७ नोट)।

पीर हसन एक दूसरी कहानी उपस्थित करता है—'शाहबादगी के जमाने में एक दिन शहाबुद्दीन शिकार की ख्वाहिश से एक पहाड़ के दर्रा में आबादी से दूर जा पड़ा। वह हद से ज्यादा प्यासा था। मुलाजिमों में से सिर्फ तीन आदमी हमराह थे। एक का नाम राय शेरदिल दूसरे का जुण्डा और तीसरे का अख्ता जी था। इसी दरमियान अचानक लल्ला अरिफा (लल्लेश्वरी) पहाड़ के दर्रा से निकल आयी और दूध का एक प्याला शहाबुद्दीन को बख्शा। शहाबुद्दीन ने थोड़ा-सा पीकर जण्डा को दे दिया। उसने थोड़ा-सा पीकर राय शेरदिल को दे दिया। शेरदिल ने सारा पी लिया और आख्ता जी के लिये कुछ न छोड़ा। आरफा ने खुशखबरी दी कि शहाबुद्दीन बहुत बड़ा बादशाह होगा। जण्डा और राय शेरदिल उसके वजीर और सिपहसालार होंगे। आख्ता जी की उमर बहुत थोड़ी है। जब वे शहर की तरफ लौटे तो आख्ता जी दरमियान रास्ता में तबाह हो गया (परशियन : २ : १७१; उर्दू : १५४)।'

पीर हसन तथा अन्य परसियन इतिहासकारों ने जोनराज के गलत अनुवाद तथा सुनी-सुनायी बातों के आधार पर इस घटना का वर्णन किया है।

पाद-टिप्पणी :

३४४. (१) उदयश्री : राजपुत्र जब सुलतान शिहाबुद्दीन हुआ तो उस समय उदयश्री उसका प्रधान मन्त्री बना। यह मुसलिम था। इसने सुल्तान को देव प्रतिमा तोड़ने के लिये प्रेरित किया था। पीर हसन उसका नाम राय शेरदिल देता है (पृष्ठ १७१)।

(२) चन्द्रडामर : राजपुत्र के शहाबुद्दीन नाम धारण कर सुल्तान होने पर चन्द्रडामर उसका सेनापति हुआ था। वह भी मुसलमान था। पीर हसन नाम जण्डा देता है (पृष्ठ १७१)।

पाद-टिप्पणी :

३४५. उक्त श्लोक संख्या ३४५ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक क्रम संख्या ३९६ अधिक है। श्लोक का भावार्थ है—

(३९६) 'अपने अट्टहास सम्वाहनादि से दिशाओं को व्याप्त कर योगनियाँ डमरू ध्वनि से मानो भीत हो रही थी।'

शनैः शनैस्ततो यान्तो मौनपूर्वं महाशयाः।
योगिनीनिकटं प्रापुर्विकटप्रकटौजसः ॥ ३४७ ॥

३४७ विकट एवं प्रकट ओजःसम्पन्न महाशय मौनपूर्वक मन्द-मन्द चलते हुए, वहाँ से योगिनी के निकट पहुँचे।

योगिनीनायिका दूरात् परिज्ञाय नृपात्मजम्।
साशिषं शीधुचषकं प्राहिणोन्मन्त्रितं ततः ॥ ३४८ ॥

३४८ वहाँ से योगिनी[1] ने नायिका ने दूर से नृपात्मज को जान कर, आशीर्वादपूर्वक मन्त्रित शीधु[2]चषक (शराब का प्याला) प्रेषित किया।

चन्द्रस्तदमृतं तृप्तिभाजा राज्ञावशेषितम्।
उदयश्रीमुखापेक्षी न संतृप्तस्त्वशेषयत् ॥ ३४९ ॥

३४९ तृप्त राजा के पान से अवशिष्ट, उस अमृत से सन्तृप्त, चन्द्र[1] ने उदयश्री[2] का ध्यान कर, उसे समाप्त नहीं किया।

भवितव्यबलादश्वपालं सपदि विस्मरन्।
उदयश्रीरशेषं तत्पीत्वा तृप्तिं परामगात् ॥ ३५० ॥

३५० भवितव्यता के बल से अश्वपाल को भूलकर, उदयश्री पूर्ण रूपेण उस (शीधु) को पीकर, परम तृप्त हुआ।

आश्चर्योऽतृप्तनेत्रेषु तेषु तृप्तेषु योगिनी।
निमित्तज्ञाऽवदद्राजपुत्रं बद्धाञ्जलिं ततः ॥ ३५१ ॥

३५१ तृप्त उन लोगों के अति प्रसन्न होने पर, निमित्त को जानने वाली आश्चर्यमयी योगिनी ने बद्धांजलि राजपुत्र से कहा—

पाद टिप्पणी :

३४८. (१) योगिनी : यह योगिनी शक्ति किंवा तान्त्रिक थी अन्यथा शीधु पान के लिये न देती। पीर हसन योगिनी के स्थान पर लल्ला आरिफा अर्थात् लल्लेश्वरी का नाम देता है (पृष्ठ १७१)।

(२) शीधु : लोकप्रकाश में शीधु का पर्याय मद्य तथा सुरा दिया है (पृष्ठ ६)। पुनः क्षेमेन्द्र ने निम्नलिखित श्लोक में शीधु के सन्दर्भ में लिखा है :

आलिङ्गनैः सुरवरस्तिमितः कटाक्षै
शिञ्जाननूपुरपदाहरणैरशोकः ।
गण्डूषशीधुसवनैर्बकुलोऽङ्गनाना-
मन्येति माधवमदेऽसमये विकासम् ॥ (पृष्ठ ९)

श्रीवर ने शीधुपान का पुनः उल्लेख श्लोक १६६-१७० में किया है।

पाद-टिप्पणी :

३४९ (१) चन्द्र : यह डामर था। बहारिस्तान शाही ने इसका नाम मलिक चन्दर और हैदर मलिक चन्दरदार देता है। द्रष्टव्य : श्लोक ३५४।

(२) उदयश्री : फारसी इतिहासकारों ने उसका नाम उदशहराबल दिया है। यह सुल्तान का प्रधान मन्त्री था (हसन : १०५ ए०)। पीर हसन राय शरदिल नाम देता है। उदयश्री (पृष्ठ १७१) कुतुबुद्दीन का भी प्रधान मन्त्री था। किन्तु सुल्तान कुतुबुद्दीन ने उसे विद्रोह के अपराध में पहले बन्दी बनाया तत्पश्चात् उसका बध करा दिया। द्रष्टव्य श्लोक ३४४, ३५०, ३५२, ४२८, ४२८, ४९३, ५०४, ५१०, ५१५, ५७, ५, २०, ५२४।

अखण्डं भावि ते राज्यं चन्द्रस्त्वद्विभवांशभाक् ।
आजीवमुदयश्रीश्च मण्डितोऽखण्डया श्रिया ॥ ३५२ ॥

३५२ 'तुम्हारा राज्य अखण्ड होगा, चन्द्र तुम्हारे विभव का अंशभागी होगा। जीवन पर्यन्त उदयश्री अखण्ड लक्ष्मी (वैभव) से मण्डित रहेगा—

अश्वपालस्त्वसावस्मदनुग्रहविवर्जितः ।
अचिरेणैव कालेन नूनं प्राणैर्वियुज्यते ॥ ३५३ ॥

३५३ —'मेरे अनुग्रह से रहित यह अश्वपाल[1] शीघ्र ही प्राणरहित हो जायगा।'

भविष्यत्सूचयित्वैवं योगिनीभिः समन्विता ।
सान्तर्दधे पुरः प्राणाः पश्चात्तुरगपालिनः ॥ ३५४ ॥

३५४ इस प्रकार भविष्य सूचित करके, योगनियों के साथ अन्तर्हित हो गयीं। पश्चात् तुरग-पाल का प्राण निकल गया।

अविचारतमोमग्नान् जन्तूनुद्धर्तुमीश्वराः ।
सम्भवन्ति प्रजापुण्यैः प्रकाशोत्कर्षहेतवः ॥ ३५५ ॥

३५५ अविचारान्धकार में मग्न, प्राणियों का उद्धार[1] करने के लिये प्रकाश के उत्कर्ष हेतु ईश्वर (राजा) प्रजा के पुण्य से होते हैं।

श्वशुराद्धर्तृभागं यदवीरा पुंश्चली वधूः ।
हरन्त्यासीत्स तं राजा दुराचारं न्यवारयत् ॥ ३५६ ॥

३५६ पति पुत्र रहित पुंश्चली[1] वधू, श्वशुर से पतिभाग[2] को ले रही थी, उस दुराचार को राजा ने निवारित कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

३५३ (१) अश्वपाल : काश्मीरी भाषा मे 'राईस' कहते है। पीर हसन नाम आस्ता जी देता है (पृ० १७१)।

पाद टिप्पणी :

३५५ (१) उद्धार सुल्तान के सुधारो तथा रचनात्मक कार्यों पर वाकयाते काशमीर (पाण्डु० ११६ ए०) से प्रकाश पड़ता है। दुलच आक्रमण से त्रस्त होकर जो कृषक कृषि को त्याग कर अन्यत्र चले गये थे, सुलतान ने उन्हे पुन बुलाकर कृषि पर लगाया—उन्हें खेत दिया, आबाद किया और हर तरह की सुविधाएँ दी उजडे नगरो तथा ग्रामो को पुन बसाया। म्युनिख (पाण्डु० ५५ ए०) से प्रकट होता है कि लवन्यो ने सुलतान के राज्य काल मे विद्रोह किया था। उसने विद्रोह का दमन कर, उनका पीछा किया। इससे आतंकित होकर वे किश्तवार भाग गये थे। सुलतान ने उन्हे पकडकर बन्दी बनाया, उनके नेताओ को फांसी का दण्ड दिया।

पाद टिप्पणी :

३५६ उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई सस्करण में श्लोक सख्या ४०८–४१० अधिक है। उनका भावार्थ है—

(४०८) 'काष्टवाट गये व्यूह तत्पर राजस्थानियो को राजा युक्तिपूर्वक लाकर तथा उन्हे बन्दी बनाकर राज्य को सुखी बनाया।'

(४०९) 'जामाता कोटराज को कारागार मे डाल दिया। वहाँ भय से प्रतिदिन जीवित रहकर वह मृत्यु का वरण करता रहा।'

(४१०) 'सैकडो शस्त्र नलो से (राजा) क्षेमराजश्री से स्वस्थ स्तटिका भूमि को विदारित कर सोकर्यभाजन का भोग किया।'

श्लोक २५७ मे कोटराज का उल्लेख प्रथम बार किया गया है। वह शाहमीर की कन्या गुहरा किंवा गोहर का पति था। द्वितीय सुलतान जमशेद तथा तृतीय सुलतान अलाउद्दीन का बहनोई था। चतुर्थ सुलतान शाहाबुद्दीन के पिता का बहनोई था। बम्बई संस्करण के श्लोक से इस बात मे कोई सन्देह नही रह जाता कि कोटराज सुलतान का जामाता था। इस संस्करण के अनुसार घटना के वर्णन क्रम से यह प्रकट होता है कि वह सुल्तान अलाउद्दीन का जामाता था। किन्तु इस श्लोक म यह स्पष्ट नही लिखा गया है कि वह अलाउद्दीन का जामाता था। केवल जामाता शब्द का ही प्रयोग किया गया है। शाहमीर के दामाद या जामाता होने के कारण उसकी प्रसिद्धि 'जामाता' नाम से हो गयी होगी। अतएव उसका निर्देश यहाँ जामाता नाम से ही प्राप्त होता है।

कोटराज से गुहरा का विवाह हुए कम से कम १६ वर्ष व्यतीत हो गये थे। शाहमीर ने राज्य प्राप्ति के पूर्व अपनी कन्या गुहरा का विवाह कोटराज से किया था। वह प्रथम काश्मीरी उच्च सेनाधिकारी था, जिसे शाहमीर ने अपने षड्यन्त्र मे, अपनी कन्या का उससे विवाह कर—सम्मिलित किया था।

कोटा रानी के बन्दी होने पर, उस पर शाहमीर द्वारा आक्रमण करने पर भी कोटराज चुपचाप बैठा रहा। उसने अपनी रानी—अपनी स्वामिनी को और अपने देश को विदेशी सत्ताधीन होने से बचाने का कोई प्रयास नहीं किया। वह शाहमीर के षड्यन्त्र, काश्मीर में विदेशी शासन स्थापन तथा अपने श्वसुर शाहमीर को सफल होते देखकर निष्क्रिय बैठा रहा। शासन श्वसुर के हाथों म होने से उसे सन्तोष था। इससे उसकी शक्ति, उसकी मर्यादा सुरक्षित थी। उसके दोनों साले जमशेद तथा अलाउद्दीन एक के पश्चात् दूसरे सुल्तान होते रहे। वह सुल्तान शाहमीर का दामाद बना हुआ काल्पनिक जगत में अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा एवं शक्ति के भरोसे सोलह वर्ष समय बिता दिया। इन सोलह वर्षों मे मुसलिम शासन काश्मीर म पूर्णतया स्थापित और मजबूत हो चुका था। काश्मीर के सामन्तों, लवन्यों एवं सेनानायकों का मनोबल टूट गया था। काश्मीरी सेनानायकों के स्थान पर मुसलिम मलिक नियुक्त हो गये थे।

सुल्तान को एक विधर्मी को अपना जामाता कहा जाना पसन्द न आया होगा। उसने उसके सामने कुछ विकल्प मुसलमान होने अथवा पद त्याग करने का रखा होगा। उसके विरोध करने पर, मनमुटाव होने अथवा कोटराज के इस गर्व को तोडने के लिये कि वह शाहमीर का जामाता है, उसे उसकी दयनीय स्थिति का वास्तविक दर्शन कराने के लिये सुल्तान ने उसको बन्दी बना दिया। सुलतान ने काश्मीरियों को शिक्षा दी कि किसी पर भी दया नहीं की जा सकती थी।

कोटराज प्रथम व्यक्ति था जिसने देश के साथ विश्वासघात किया था। देश की विपत्ति, देश की पराधीनता एवं काश्मीर की पुरातन संस्कृति, सभ्यता तथा इतिहास को नष्ट करने के भयंकर नाटक मे उसी नाटकीय नट का अभिनय किया जिसे जयचन्द भारत म कर चुका था। जोनराज ने उसे ठीक ही नाटक के पात्र के समान लिखा है—'वरिंग-रंग शैलूष' (श्लोक २५७)।

बम्बई संस्करण का श्लोक चाहे प्रक्षिप्त ही क्यों न हो परन्तु जिस पाण्डुलिपि के आधार पर लिया गया था, वह लगभग दो शताब्दी प्राचीन है। उस समय लोगों मे भावना रही होगी कि कोटराज अलाउद्दीन द्वारा बन्दी बनाया गया था।

जोनराज ने कोटराज के अन्त के विषय म एक शब्द भी नहीं लिखा है। लिपिक अथवा प्रतिलिपि करने वाले ने तत्कालीन प्रचलित मान्यता के अनुसार आज ही के समान जिज्ञासा की होगी कि कोटराज का हुआ क्या? उसका नाम केवल एक बार गुहरा विवाह प्रसंग के पश्चात् पुनः क्यों नहीं आया? जोनराज की इस उलझी गुत्थी को इस संस्करण के श्लोक संख्या ४०९ ने खोला है। एक अस्पष्ट बात को स्पष्ट किया है।

जयापीडपुरे कृत्वा राजधानीं महामतिः।
श्रीरिंश्चनपुरे चक्रे बोद्धा बुद्धगिराभिधाम्॥ ३५७॥

३५७ उस बोद्धा महामति ने जयापीडपुर[1] में, राजधानी कर के, रिंचनपुर[2] में बुद्धगिर[3] स्थापित किया।

देश के साथ, वंश के साथ, जाति के साथ विश्वासघात करने वालो के जीवन का जो दुःखद अन्त होता है, वही जयचन्द का हुआ और वही कोटराज का भी हुआ। अलाउद्दीन ने समय देखा। समझ लिया कि कोटराज शक्तिहीन हो गया था, काश्मीर मे कोई उसका साथ देने वाला नही था, तो अविलम्ब उसे बन्दी बनाकर उसकी जीवनलीला समाप्त कर दी। विश्व के मुसलिम बादशाहो, नवाबो तथा सुलतानो ने किंचित मात्र सन्देह होते ही पुत्र, भाई, पिता किसी की भी हत्या कराने मे संकोच नही किये है। दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले अधिकतर सुलतानो ने यही किया है।

सिकन्दर बुतशिकन की माता ने अपने दामाद तथा कन्या को पुत्र के राज्य के लिये शंका होते ही आग मे जिन्दा जलवा दिया था। एक क्षण के लिये भी उसने यह नही विचार किया कि वह अपनी कन्या तथा दामाद की, सुलतान के बहन और बहनोई की हत्या करा रही थी (श्लोक : ५४२)।

(१) पुंश्चली : परपुरुष प्रवृत्तिवाली पत्नियाँ एवं योषिताये पुंश्चली कही जाती है।

(२) पतिभाग : काश्मीर मे प्रथा थी कि नि.सन्तान विधवा स्त्री श्वसुर से पति सम्पत्ति का भाग लेती थी। दुश्चरित्र होने पर भी वह भाग प्राप्त करती थी। अलाउद्दीन ने यह प्रथा उठा दी। (म्युनिख पाण्डु० : ५५ ए०)।

परशियन इतिहासकारो ने इस कार्य को सुधारवादी माना है। डॉ० सूफी ने इसे समाजवादी सुधार मानकर सुलतान की प्रशंसा की है। उसे समय की गति से भी आगे रखा है (कशीर : १३५)। तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'उसने यह अधिनियम बनाया कि किसी भी व्यभिचारिणी को उसके पति की सम्पत्ति में से कुछ न दिया जाय (उ० तै० : भा० : १ : ५१३)। आज भी यह प्रचलित कानून है। यह कानून चौदहवी शताब्दी मे बना था। परन्तु उसका पालन डोगरा राजकाल तक होता रहा है।

हिन्दू कानून, हिन्दू स्त्रियो को सुदूर प्राचीन काल से ही जीवन निर्वाह का अधिकार देता है जो अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नही होती थी। यह खर्च वह अपने पति की सम्पत्ति अथवा जिस सम्पत्ति मे उसका पति संदायाद मृत्यु के समय होता था मिलती थी। स्त्री को खर्च इस कारण से नही दिया जा सकता था कि वह अपने कुटुम्ब तथा पति से अलग रहती थी।

वह अलग रहने पर भी अपनी पति की सम्पत्ति से खर्च पाने की अधिकारिणी होती है। (हिन्दू लॉ मुल्ला : पैरा : ५५९)। किन्तु यदि स्त्री असती, अथवा आचरण-भ्रष्ट हो जाय तो उसे खर्च मिलना बन्द हो सकता है। उसे खर्च उसी अवस्था मे मिल सकता है जब वह सदाचार से जीवन यापन करे। यदि वह आचरणहीन हो जाती है तो उसे पति की सम्पत्ति से कुछ पाने का अधिकार नही रह जाता। यदि वह पुनः सदाचार युक्त जीवन आचरणहीनता के पश्चात् अपनाती है तो उसे केवल जीवनोपार्जन हेतु खर्च मिलता था। अर्थात् उसे केवल जीवित रहने के लिये अन्न-वस्त्र मिल सकता है (हिन्दू लॉ मुल्ला : पैरा : ५६१)।

पाद-टिप्पणी :

३५७. (१) जयापीडपुर : सुलतान के पिता शाहमीर ने कोटा रानी के वध के पश्चात् अपनी राजधानी जयापीडपुर मे बनाई थी। जमशेद के समय राजधानी पुनः श्रीनगर आ गयी थी। जमशेद

एकोनविंशे वर्षेऽथ दुष्कृतोद्भवमद्भुतम् ।
दुर्भिक्षं क्षोभयामास लोकं शोकाकुलं महत् ॥ ३५८ ॥

३५८ उन्नीसवें[1] (४४१९) वर्ष दुष्कृत से उत्पन्न, अद्भुत, महान दुर्भिक्ष[2] ने शोकाकुल लोक को क्षुभित किया ।

की अनुपस्थिति मे श्रीनगर पर अलीशेर ने अधिकार कर लिया था । अलीशेर श्रीनगर से राजधानी हटाकर पुन जयापीडपुर ले गया । इसका एक बहुत बड़ा कारण था । श्रीनगर षड्यन्त्रो, उत्पातो का केन्द्र हो गया था । जयापीडपुर को आपत्ति आने पर सब ने अपना शरणस्थान बनाया था । सुरक्षा की दृष्टि से वह उत्तम स्थान माना जाता था । क्योकि शारिका पर्वत पर अकबर द्वारा निर्मित किला उस समय नही था ।

(२) रिंचनपुर : इस समय यह स्थान जामा-मसजिद और अलीकदल के बीच है । वह श्रीनगर क्षेत्र के अन्दर है । एक मत है कि तबकाते अकबरी में वर्णित बस्सीपुर ही रिंचनपुर है ।

(३) बुद्धगिर यह एक मुहल्ला है । अलीकदल के समीप श्रीनगर मे है । यह वर्तमान मुहल्ला बोडगर है । वितस्ता के दक्षिण तट पर पाचवे पुल के अधोभाग मे है । एक मत है कि यह यात्रियो तथा पर्यटको के विश्राम के लिये धर्मशाला किवा सराय तुल्य निर्माण कराया गया था । प्रतीत होता है । लद्दाख तथा बालतिस्तान के यात्री यहाँ आकर ठहरते थे । वे बौद्ध मतानुयायी थे अतएव कालान्तर मे इसका नाम बुद्धगिर पड गया था । अभी तक यह स्थान 'बुद्धगेर' नाम से पुकारा जाता है ।

जोनराज राजतरगिणी सन् १४५९ ई० अर्थात् अपने मृत्यु काल तक लिखता रहा । उसके पूर्व उसने सन् १४४९ ई० मे श्रीकठचरित तथा किरातार्जुनीय की टीका लिखकर समाप्त किया था । अतएव उसने सन् १४४९ के पश्चात् सन् १४५९ ई० के मध्य राजतरगिणी लिखी थी । अलाउद्दीन ने सन् १३४२ ई० से सन् १३५५ ई० तक शासन किया था । एक शताब्दी से ऊपर का निर्माण बुद्धगिर श्रीजोनराज के समय मे पूर्ववत् था । लद्दाखी तथा बालती लोग बौद्ध थे । उनके ठहरने के कारण स्थान का नाम बुद्धगिर पड गया । उस समय काश्मीर मे इसलाम का प्रचार तथा धर्मपरिवर्तन जोरो के साथ हो रहा था । ऐसी परिस्थिति मे बुद्ध के नाम पर स्थान बनना सम्भव नही था । काश्मीर मे मुल्ला, पीर तथा फकीरो का आगमन मिशनरी भावना से हो रहा था । वे एक मुसलिम बादशाह को कभी भी भगवान बुद्ध के नाम पर कोई स्थान बनवाने नही देते । लद्दाखी तथा बालतिस्तानी बौद्धो के ठहरने के कारण अधिक सम्भावना यही मालूम होती है कि उन्होने अपनी पूजा के लिये स्तूप आदि वहा बनवाये थे अथवा पूर्वकालीन किसी स्तूप की पूजा करते रहे । मुसलिम शासन मे लोग बौद्ध धर्म भूल गये थे, केवल हिन्दू तथा मुसलिम दो ही धर्म रह गये थे । अतएव बुद्ध से सम्बन्धित होने के कारण उस मुहल्ले का पुकारने का नाम बुद्धगिर पड गया । उसी तरह औरगजेब की बनवाई हुई सराय के कारण मेरे मुहल्ले का औरगाबाद नाम प्रचलित है, यद्यपि सरकारी कागजो तथा अन्य कामो के लिये मूल शब्द मुहल्ला घीहट्टा ही चलता है ।

पाद-टिप्पणी :

३५८ (१) उन्नीसवें : सप्तर्षि = ४४१९ = सन् १३४३ ई० = सम्वत् १४०० = शक १२६५ ।

(२) दुर्भिक्ष फिरिस्ता लिखता है—'सुल्तान के राज्यकाल के समय भयकर दुर्भिक्ष पडा जिसमे बहुत स्त्री एव पुरुष मरे ।'

फिरिस्ता इस प्रसग मे एक घटना का और उल्लेख करता है—'कुछ ब्राह्मण लोगो ने काशगर जाकर आबाद होने का प्रयास किया । सुल्तान ने यह अनुमान लगाकर कि वे वहाँ विद्रोह करने के लिये जा रहे है । उन्हे बन्दी बनाकर आजन्म कारागार मे रखा (४५७) ।'

मासानष्टौ द्वादशाब्दांस्त्रयोदश दिनानि च।
क्ष्मां भुक्त्वा त्रिंशवर्षेऽथ चैत्रे राजा व्यपद्यत ॥ ३५९ ॥

३५९ बारह वर्ष आठ मास तेरह दिन पृथ्वी का भोग कर के राजा तीसवें (४४३०) वर्ष चैत्र मे मर गया।[1]

पाद-टिप्पणी :

आश्चर्य है जोनराज ने सन् १३४३ ई० से सन् १३५४ ई० तक ११ वर्षों मे किसी घटनाक्रम का उल्लेख तिथिवार नही किया है।

३५९ (१) मृत्यु जोनराज मृत्युकाल ४४३० लौकिक सम्वत् देता है। उसके अनुसार सन् १३५४ ई० होगा। डा० सूफी उसकी मृत्यु सन् १३५४ ई० = हिजरी ७५५ लिखते हैं मोहिबुल हसन मृत्युकाल सन् १३५४ ई० देते है। केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे मृत्युकाल सन् १३५९ ई० दिया गया है। पीर हसन बारह वर्ष, आठ माह, तेरह दिन राज्य कर हिजरी ७६१ मे और फिरिस्ता मृत्यु १३ वर्ष राज्य करने के पश्चात् हिजरी ७६५ = सन् १३६३ ई० लिखता है (पृष्ठ ४५७)। जोनराज स्पष्ट सम्वत् तथा मास देता है। उसके अनुसार कलि सम्वत् ४४५५ = सप्तर्षि ४४३० = सन् १३५४ ई० = सम्वत् १४११ = शक १२७६ चैत्र मास होगा। जोनराज दिन नही देता। अतएव दिन निश्चित करना कठिन है।

सुलतान अलाउद्दीनपुर मे दफन किया गया। उसके दो पुत्र शिहाबुद्दीन तथा हिन्दल (कुतुबुद्दीन) थे। अलाउद्दीनपुर कालान्तर मे श्रीनगर का एक मुहल्ला हो गया। उस स्थान पर खानक़ाहे मौला तथा फतह कदल से ऊपर मलिक आगन वार्ड है। बहारिस्तान शाही (पाण्डु० १८बी) के अनुसार अलाउद्दीनपुर सुलतान ने आबाद कराया था और वही दफन किया गया।

पीर हसन लिखता है कि सुलतान के राज्यकाल में सैय्यद जलालुद्दीन मखदूम ने काश्मीर की यात्रा की थी। वे दो या तीन सप्ताह काश्मीर मे पर्यटन कर वापस चले गये।

मूल्यांकन :

अलाउद्दीन : अलाउद्दीन वीर, चतुर, कुशल, न्यायी सुलतान था। उसमे भी धार्मिक कट्टरता नही थी। उसने काश्मीर मे इसलाम प्रचार का झण्डा बुलन्द नही किया। काश्मीर मे वह बडा हुआ था और उसका रक्त सम्बन्ध हिन्दुओ से था। कम्पनेश्वर के साथ उसने अपनी कन्या का विवाह किया था। सेनापति उसका समधी था। इस प्रकार उसे सैनिक शक्ति का समर्थन मिल गया। सैनिक शक्ति के कारण वह अपने भ्राता जमशेद को हराने मे सफल हुआ था। वह हिन्दुओ के संस्कार तथा कुसंस्कार मे किसी सीमा तक विश्वास करता था। उसके समय मे हिन्दू पूजा-पाठ आदि स्वच्छन्दतापूर्वक कर सकते थे। जोनराज ने उसके प्रसग मे वाक्पुष्टाटवी की योगिनो की कथा जोडकर उसका झुकाव हिन्दू संस्कारो के प्रति था, इसे प्रमाणित करने का प्रयास किया है।

अलाउद्दीन ने लगभग १२ वर्षों के शासन मे जनोपयोगी कार्यों को भी किया था। उसने समाज सुधार की तरफ ध्यान दिया। निःसन्तान पुश्चली विधवा स्त्री श्वसुर से पतिभाग ले रही थी, उसे बद कर उसने समाज की बहुत बडी भलाई की थी।

प्रतीत होता है। अलाउद्दीन श्रीनगर के सामाजिक विपाक्त वातावरण से प्रसन्न नही था। वह जयापीड-पुर मे अपनी राजधानी ले गया या अलाउद्दीनपुर बसाया था। वह स्थान आजकल श्रीनगर का एक भाग है। उसने रिंचनपुर मे बुद्धगिर की स्थापना की थी। उसके ही समय दुर्भिक्ष पडा था परन्तु सुलतान ने जनता के लिए क्या किया इस पर जोनराज कुछ प्रकाश नही डालता। सुलतान ने अपने राज्य की सीमा वृद्धि नही की। शाहमीर के समय काश्मीर मण्डल मात्र

मन्दराजकथाख्यानाज्जाड्यं मद्वाचि संस्तुतम्।
तीक्ष्णप्रतापशाहावदीनाख्यानाद्विनश्यतु ॥ ३६० ॥

शाहावदीन=शहाबुद्दीन : (सन् १३५४-१३७३ ई०)

३६० मन्द राजाओं के कथाख्यान से मेरी वाणी में आयी हुयी जड़ता तीक्ष्ण प्रतापी शाहावदीन[1] के आख्यान से नष्ट हो।

राज्य की सीमा रह गई थी। वह यथावत रही। पूँछ, राजौरी, लद्दाखादि सीमान्त अचल काश्मीर राज्य से बाहर थे। उसने सैनिक अभियान भी नहीं किया था। हिन्दू राज्य को समाप्त हुए लगभग १८ वर्ष हुए थे। जनता कभी भी विद्रोह कर सकती थी। इस भय अथवा शक्ति के अभाव मे वह काश्मीर के बाहर नही जा सका। उसके शासन काल मे पारिवारिक तथा अन्तर्देशीय किसी प्रकार के विद्रोह का उल्लेख नही मिलता। इससे यह प्रमाणित होता है कि उसका शासन काल शान्त एवं सुखद था। जोनराज ने जमशेद के समान इसे भी मन्द राजा माना है।

पाद टिप्पणी :

राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि गताब्द ४४५५= शक १२७६=सप्तर्षि ४४३० = सन् १३५४ ई० एवं राज्यकाल कुछ नही देते। श्रीकण्ठ कौल राज्याभिषेक काल चैत्र सन् १३५५ ई० तथा राज्यकाल नही देते। मोहिबुल हसन सन् १३५४ ई० राज्याभिषेक काल देते हैं परन्तु राज्यकाल नही देते। आइने-अकबरी सन् १३६३ ई० = हिजरी ७६५ तथा राज्यकाल २० वर्ष, टी० एच० हेग सन् १३५९ ई० = हिजरी ७६०, वेंकटाचलम मे राज्यकाल सन् १३६० से १३७८ ई० दिया गया है। तबकाते अकबरी ने राज्यकाल २० वर्ष दिया है।

पीर हसन ने हिजरी ७६१ = विक्रमी सम्वत् १४१६ = सन् १३५९ ई० दिया है। दिल्ली सल्तनत ग्रन्थ मे राज्याभिषेक काल सन् १३५४ ई० दिया गया है। फिरिश्ता तथा निजामुद्दीन राज्याभिषेक काल सन् १३५४ ई० देते हैं। डॉ० परमू ने राज्यकाल १९ वर्ष ३ मास दिया है।

समसामयिक घटनाएँ :

इस समय लद्दाख मे राजा श श ख था। वह राजवंश की पन्द्रहवीं पीढ़ी मे था। सन् १३५५ ई० मे फिरोज तुगलक ने सतलज से झज्झर तक नहर निर्माण करायी। इसी प्रकार यमुना से हांसी हिसार *तक नहर निकलवायी। तारीखे फिरोज* जो तबक़ाते नासिरी का पूरक ग्रन्थ है, उसके लेखक की मृत्यु हो गयी। इब्नबतूता ने १३ दिसम्बर को अपना पर्यटन स्मरण लिखकर समाप्त किया। सन् १३६० ई० मे मदुरा का बादशाह फखरुद्दीन मुबारक हुआ। इसी समय फ्रांस तथा इंगलिस्तान के मध्य ब्रेटिग्नी की सन्धि हुई। सन् १३६१ ई० मे फिरोज तुगलक ने कांगड़ा किंवा नगरकोट विजय किया। तुर्क सेना ने थ्रेस मे प्रवेश कर एड्रियन पोल ले लिया। सन् १३६४ ई० मे मेवाड मे राणा हमीर सिंह राज्य कर रहे थे। सन् १३६४ ई० मे तुर्की के राजा मुराद प्रथम ने हंगरी, पोलैण्ड के राजा तथा बोसनिया, सरबिया, के राजपुत्रों को मरित्जा नदी के तट पर हराया जो तुर्की से होकर ब्लैकसीन अर्थात् काला सागर मे गिरती थी। सन् १३६७ ई० मे तैमूरलंग ने खान की पदवी धारण की। गुलबर्गा की मसजिद इसी वर्ष बनकर तैयार हुई। सन् १३६८ ई० मे इब्न यमीन कवि की मृत्यु हुई। चीन के मङ्गोल वंश युवान का पतन एवं मिंग वंश का राज्य स्थापित हुआ जो सन् १६४४ ई० तक चलता रहा। सन् १३७० ई० मे पोप ग्रिगोरी ग्यारहवें ने वाईक्लिफ के लेखों को जब्त किया। इसी समय प्रथम बार इंगलिश सर्जन अर्डर ने के जॉन ने सर्जरी पर पुस्तक लिखी। सन् १३७२ ई० मे मदुरा पर अन्तिम सुल्तान अलाउद्दीन सिकन्दरशाह ने राज्य किया।

राज्ञि शाहाबदीनेऽथ स्मरणं क्षितिरत्यजत् ।
ललितादित्यसम्पत्तिविपत्तिसुखदुःखयोः ॥ ३६१ ॥

३६१ राजा शाहाबदीन के समय पृथ्वी ने राजा ललितादित्य[1] के सम्पत्ति, विपत्ति एवं सुख-दुःख का स्मरण करना त्याग दिया।

---

३६० (१) शहाबुद्दीन आईने अकबरी में शहाबुद्दीन के विषय में केवल इतना लिखा गया है—'सुलतान शहाबुद्दीन ने शिक्षा के प्रसार को प्रोत्साहित किया तथा समान प्रसाशकीय विधि की घोषणा की। नगरकोट तिब्बात तथा अन्य स्थानों को उसने जीता (जरेट : २ : ३८७)।'

फिरिस्ता, तवक्काते अकबरी तथा तारीख काश्मीर (म्युनिख) दोनों ही में लिखा है कि शहाबुद्दीन का पिता शाहमीर था। वह अलाउद्दीन का भ्राता था। यह भ्रामक है।

जोनराज ने एक स्थान पर शहाबुद्दीन को शाहमीर का पुत्र तथा दूसरे स्थान (श्लोक २४८) में पौत्र माना है। प्रायः सभी परसियन इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि शहाबुद्दीन का पिता अलाउद्दीन था। शहाबुद्दीन सुलतान अलाउद्दीन का भ्राता था। यह गलती ब्रिग्स ने भी की है (४ : ४५८)। यह गलती अब तक होती चली आ रही है। दिल्ली सलतनत ग्रन्थ में शाहमीर के चार पुत्र वंशावली में दिखाये गये हैं। वे जमशेद, अलाउद्दीन तथा कुतुबुद्दीन आदि हैं (पृष्ठ ८३७ संस्करण १९६०)। वास्तव में शाहमीर के केवल दो पुत्र जमशेद और अलाउद्दीन थे। अलाउद्दीन के पुत्र शहाबुद्दीन और कुतुबुद्दीन थे। फिरिस्ता ने भी यही गलती की है। वह लिखता है—अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु कर 'शियम्क' = 'शीर अश्मक' शहाबुद्दीन की पदवी धारण कर गद्दी पर बैठा (पृष्ठ ४५८)।'

इतिहासकारों ने शहाबुद्दीन के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश नहीं डाला है। जोनराज ने अलाउद्दीन के पुत्र तथा उत्तराधिकारी शीर अश्मक को शिर शाटक संस्कृत नाम के साथ उसका अपर नाम शाहाबदीन दिया है। उसका अन्य नाम शिव स्वामिक अथवा शीर आशामक भी था।

पाद टिप्पणी :

उक्त श्लोक ३६१ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक क्रम संख्या ४१६ अधिक है। श्लोक का भावार्थ है—

(४१६) 'श्रीमान् शाहाबदीन अधिक साम्राज्य ग्रहण कर लिया। जिससे राजन्वती भूमि उसके यश के व्याज से स्वर्ग का उपहास करती थी।'

३६१ (१) ललितादित्य कर्कोट वंश का ५वाँ राजा था। इस वंश का प्रथम राजा दुर्लभवर्धन था। दुर्लभवर्धन का पुत्र प्रतापादित्य द्वितीय किंवा दुर्लभक था। दुर्लभक के तीन पुत्र चन्द्रापीड, तारापीड तथा मुक्तापीड ललितादित्य थे। अपने भाई तारापीड के पश्चात् मुक्तापीड काश्मीर का राजा हुआ था। उसका राज्यकाल श्रीस्तीन के अनुसार लौकिक सम्वत् ३७७६ से ३८१३ वर्ष था। उसने ३६ वर्ष, ७ मास, ११ दिन काश्मीर का राज्य किया था। सन् ६९९–७३६ ई० यह समय गणना से आता है।

ललितादित्य काश्मीर का महान् प्रतिभाशाली दिग्विजयी राजा था। उसका समस्त राज्यकाल दिग्विजय करते हुए काश्मीर के बाहर बीता था। उसकी मृत्यु भी दिग्विजय काल में काश्मीर के बाहर ही हुई थी। उसने कान्यकुब्जेश्वर यशोवर्मन को पराजित किया था। भवभूति तथा वाक्पतिराज यशोवर्मन के राजकवि थे। इस विजय का सम्भावित काल सन् ७२६ ई० माना जाता है। जालन्धर तथा लोहर के राजा ललितादित्य के करद थे। गान्धार के शाही राजागण ललितादित्य के राजअधिकारी थे। ललितादित्य ने विजय द्वारा सिन्ध दिशा की ओर भी राज्य सीमा विस्तृत कर ली थी। निःसन्देह ललितादित्य ने पंजाब के उत्तरीय पर्वतीय

ग्रीष्मार्कं द्यौरिवान्यर्तूंस्त्राज्ञोऽतीत्य बहून्मही।
ध्रुवमापज्जयापीडमेतं न तु स किल्बिषी ॥ ३६२ ॥

३६२ जिस प्रकार द्यौ अन्य ऋतुओं के अनन्तर ग्रीष्म के सूर्य को प्राप्त करती है, उसी प्रकार पृथ्वी बहुत राजाओं के चले जाने के पश्चात् इस जयापीड[1] को प्राप्त किया, जो कि निष्कल्मष था।

राजाओं पर अधिकार स्थापित कर लिया था। हुएनत्साग के पर्यटन वर्णन से पता चलता है कि सिन्धु से चिनाव नदी तथा साल्ट रेंज तक की भूमि-भाग काश्मीर राज के आधीन थी।

कल्हण ललितादित्य को दिग्विजय कराता बंगाल, उड़ीसा, पूर्व, काठियावाड़ तथा कम्बोज, अफगानिस्तान, पश्चिम तथा दक्षिण समुद्र तक पहुँचा देता है। ललितादित्य ने उत्तर में तुखार अर्थात् तुर्क जाति पर विजय प्राप्त की थी। चकुण ललितादित्य का तुर्क मन्त्री था। तुखारिस्तान वर्तमान बदख्शाँ तथा आमू दरिया का ऊर्ध्व अंचल था। तुर्कों पर हुई विजय की स्मृति में काश्मीर में उत्सव मनाया जाता था। अल्बेरूनी ने स्वयं लिखा है कि काश्मीर में यह विजयोत्सव दिन उसके समय भी मनाया जाता था। ललितादित्य ने भौट्ट अर्थात् तिब्बतियों के विरुद्ध भी हथियार उठाया था। तिब्बत उस समय अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था। ललितादित्य ने तिब्बत को पराजित तथा उसकी बाढ़ रोकने के लिये चीन से सन्धि कर ली थी। चीनी सेना ने ललितादित्य की सहायतार्थ उलर लेक के तट पर शिविर स्थापित कर दिया था।

ललितादित्य ने दरद देश पर विजय प्राप्त की थी। साथ ही उत्तर कुरु तथा स्त्री राज्य पर भी विजय प्राप्त करने का वर्णन मिलता है।

ललितादित्य ने काश्मीर में अनेक निर्माण कराया था। मार्तण्ड के प्रसिद्ध मंदिर का वह निर्माणकर्ता था। उसने परिहासपुर नगर में अनेक मंदिरों तथा विहारों का निर्माण कराया था। चीनी पर्यटक ओ० कुंग ललितादित्य की मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् काश्मीर में आया था (सन् ७५९–७६३ ई०)। उस समय बौद्ध धर्म काश्मीर में प्रतिष्ठित था। विहार तथा स्तूपों से काश्मीर मण्डल मण्डित था। ललितादित्य ने परिहासपुर तथा हुष्कपुर में बौद्ध विहारों का निर्माण कराया था। उसके द्वारा प्रतिष्ठित ठोस बुद्ध प्रतिमा कल्हण के समय तक पूजित हो रही थी। ललितादित्य मगध से भी भगवान बुद्ध की मूर्ति लाया था जिसे उसने चकुण को कालान्तर में दे दिया था।

ललितादित्य के नाम के साथ अनेक रोचक गाथायें जोड़ दी गयी हैं। कुछ का वर्णन कल्हण राजतरंगिणी में करता है। बालुकार्णव मरुदेशीय अभियान के पश्चात् ललितादित्य का पुनः अभियान आर्यानक में हुआ था। गाथा है कि ललितादित्य की मृत्यु आर्यानक देश में ही दिग्विजय करते हुई थी। ललितादित्य ने अपने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में जो वसीयतनामा लिखा है, वह ऐतिहासिक महत्वपूर्ण राजनीति सिद्धान्त सम्बन्धी घोषणापत्र है। (द्रष्टव्य : रा० ४ : ३२६–३७१)।

पाद टिप्पणी :

३६२ (१) जयापीड : जोनराज ललितादित्य के पश्चात् जयापीड की तुलना शहाबुद्दीन से करता है। काश्मीरराज ललितादित्य एवं जयापीड जैसे प्रतिभावान, चरित्रवान, परिश्रमी, नरश्रेष्ठों की श्रेणी में जोनराज शहाबुद्दीन को बैठा देता है।

जयापीड कर्कोट वंश का ११ वाँ राजा था। वह राजा वज्रादित्य का छोटा पुत्र था। उसके भाई त्रिभुवनापीड, पृथिव्यापीड तथा संग्रामापीड प्रथम थे। उसके भाई पृथिव्यापीड तथा संग्रामापीड उसके पूर्व क्रम से काश्मीर के राजा हो चुके थे। संग्रामापीड के पश्चात् जयापीड काश्मीर का राजा हुआ था। उसका राज्यकाल भी ललितादित्य के

पूर्वे परे च भूपाला नायकेनेव भूपिताः।
क्ष्मानायकेन तेनाथ मुक्तागुणलसच्छ्रिया ॥ ३६३ ॥

३६३ पूर्व एवं परवर्ती भूपालों को उस क्ष्मानायक ने अपने गुणों से, उसी प्रकार भूपित किया, जिस प्रकार मुक्ता गुण से शोभायमान नायक मणि[1]।

अनुसार लौकिक सम्वत् ३८२८ से ३८५९ वर्ष तदनुसार सन् ७५१–७८२ ई० तक था।

उसने ३१ वर्ष काश्मीर पर राज्य किया था। ललितादित्य उसका पितामह था। उसका पिता वज्रादित्य यद्यपि राजा ललितादित्य का कनिष्ठ पुत्र था। काश्मीर का यह अत्यन्त प्रतिभाशाली राजा था।

कल्हण ने ललितादित्य के समान इसके लम्बे राज्यकाल का विस्तृत वर्णन २५६ श्लोकों में किया है। उसे पितामह ललितादित्य के समान दिग्विजयी तथा प्रतिभाशाली, उदार एवं चरित्रवान राजा चित्रित किया है। उसकी तुलना कल्हण के आदर्श राजा मेघवाहन तथा रणादित्य से की जा सकती है। राजा का अपर नाम विनयादित्य था।

राज प्राप्त करते ही जयापीड की अभिलाषा पितामह के समान दिग्विजय करने की हुई। राजा काश्मीर से दिग्विजय के लिए महान वाहिनी के साथ निकला। उसकी अनुपस्थिति में उसके साला जज्ज ने राज्य पर अधिकार कर लिया। उसने अपनी यात्राकाल में प्रयाग में ९९९९९ अश्वों का संगम पर दान किया था। वहाँ अपने साथियों को छोड़कर एकाकी तीर्थयात्रा एवं पर्यटन के लिये पूर्व की ओर प्रस्थान किया। बंगाल की राजधानी पौण्ड्रवर्धनपुर में राजा ने अकेले एक शेर शेरों मारने के कारण अत्यन्त ख्याति प्राप्त की। बंगाल के राजा ने उससे अपनी कन्या कल्याण देवी का विवाह कर दिया। गौड़ के राजा को पराजित कर उसने राजा जयन्त के राज्य की सीमा का विस्तार किया। वहाँ से वह काश्मीर की ओर बढ़ा। उसकी सेना उसमें मिल गयी। देवशर्मा उसका स्वामिभक्त मन्त्री राजा के साथ काश्मीर की ओर बढ़ा। मार्ग में कन्नौज विजय कर, उसने काश्मीर में प्रवेश किया। जज्ज युद्ध में मार डाला गया। जयापीड काश्मीर का राजा बन गया। जयापीड का राजदरबार कवियों तथा कलाकारों का केन्द्र हो गया था। उससमय के यशस्वी कवि तथा विद्वान् क्षीरभट्ट तथा उद्भट्ट उसकी राज्य सभा में थे। उनमें अनेकों की रचनायें आज भी उपलब्ध है।

जयापीड ने जयापीडपुर किंवा जयपुर का निर्माण कराया। वह वर्तमान काल का अन्दरकोट स्थान है। यहीं कोटादेवी की शाहमीर ने हत्या की थी। जयापीड ने द्वितीय बार पुनः दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। पूर्व में भीमसेन तथा नेपाल के राजा अरमुडी के साथ उसका संघर्ष हुआ था और उसने उन पर विजय प्राप्त की थी। इस समय का कथानक अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं काव्यमय है। देवशर्मा का अपूर्व उत्सर्ग काश्मीर के स्वामिभक्त मन्त्रियों की एक गौरव-गाथा है। जिस पर कोई भी देश गौरवान्वित हो सकता है। उसने स्त्री राज्य पर भी विजय प्राप्त की थी। उसके साथ महापद्म नाग (उल्लरलेक) की गाथा का रोचक शैली में कल्हण ने वर्णन किया है। नाग ने राजा को ताम्रखान क्रमराज्य में दिखाया था। जोनराज ने इसका उल्लेख श्लोक ११६७ में किया है। कल्हण ने राजा के उत्तरार्ध जीवन का चित्रण, ब्राह्मणों का उसके विरुद्ध प्रायोवेशन करने तथा जयापीड का उन्हें दण्ड देने के साथ किया है। एक दुर्घटना के कारण आहत होने के पश्चात् जयापीड की मृत्यु हो गयी (रा० : ४ : ४०२–६५८)।

पाठ-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ३६३ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ४१९ अधिक है। श्लोक का भावार्थ है—४१९,

'समुद्र के बड़वानल तप्त जल में प्रतिबिम्बित अम्बर मानों जिनके प्रतापाग्नि ताप से पीड़ित होकर रात-दिन निमज्जित होता है।'

तदीयो जयलक्ष्मीभिः प्रविष्टाभिः पदे पदे ।
न प्रतापानलोऽतृप्यत् सरिद्भिरिव सागरः ॥ ३६४ ॥

३६४ पद-पद पर, प्राप्त जयलक्ष्मी[1] से उसका प्रतापानल, उसी प्रकार तृप्त नहीं हुआ, जैसे सरिताओं को प्राप्त कर सागर ।

जयं विना गणयतः क्षणमात्रं वृथा गतम् ।
वृद्धस्य तरुणीवाभूद्यात्रा तस्यातिवल्लभा ॥ ३६५ ॥

३६५ जय के बिना क्षणमात्र को भी व्यर्थ मानने वाले उस नृप को यात्रा उसी प्रकार अतिप्रिय हुयी जिस प्रकार वृद्ध को तरुणी ।

---

३६३. (१) नायकमणि : माला के मध्य मे जो हृदयदेश के समीप अलंकार मे बडी मणि अथवा अनेक रत्नोयुक्त टिकरा बनाकर लगा देते हैं उसे नायिक मणि कहते हैं । इस टिकरे के भार से माला संयत रहती है और कण्ठ से निभुजाकार हृदय देश तक आती है । जपने वाली माला मे एक बडा दाना लगा देते है । उसे सुमेर कहते हैं ।

पाद टिप्पणी :

३६४ (१) जय : तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'जिस दिन किसी स्थान से कोई विजयपत्र न प्राप्त होता, उस दिन को वह अपनी आयु मे सम्मिलित न समझता था और खिन्न दिखायी देता था ।'

पाद-टिप्पणी :

३६५ (१) यात्रा : यहाँ यात्रा का अर्थ विजय-यात्रा किंवा दिग्विजय से है । जोनराज ने राजा शहाबुद्दीन की विजययात्रा राजा ललितादित्य तथा जयापीड के दिग्विजय के सन्दर्भ मे वर्णित कल्हण की राजतरंगिणी की शैली का अनुकरण किया है । कल्हण ने ललितादित्य तथा जयापीड की दिग्विजय यात्रा का जिस प्रकार वर्णन कर उन्हे महान् राजा चित्रित करने का प्रयास किया था उसी की नकल जोनराज ने शहाबुद्दीन को महान् सुलतान प्रमाणित करने के लिये किया है । कल्हण दोनो दिग्विजयों के सन्दर्भ मे जिन स्थानो का वर्णन करता है, उनका भौगोलिक चित्र भी उपस्थित करता है । जिससे उन स्थानो, प्रदेशो तथा राज्यो का स्थान ढूंढ निकालने मे कठिनाई नही होती । उसने राज्यों, प्रदेशो के राजाओ का नाम भी दिया है । उसका तत्कालीन वर्णन इतिहास तुला से तौला जा सकता है । वह विस्तार के साथ वर्णन करता है । उसका वर्णन कहीं कही काव्य कथानक के समान प्रकट होता है । कल्हण इतिहास की शृङ्खला कहीं टूटने नही देता । उसके वर्णन मे मानव प्रवृत्ति का सुख, दुःख, घृणा, स्नेह, करुणा, दया, दार्शनिक उदात्त भावना, मानवानुभूति सब कुछ मिलती है । परन्तु जोनराज का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है । वह उस गौरैया पक्षी की तरह है जो एक शाखा से दूसरी शाखा पर फुदकती बैठती है । वह उस पक्षी की तरह नहीं उडती जो एक निश्चित मार्ग तथा उद्देश्य के साथ आकाशगामी होती है । वह एक विषय को स्पर्श कर अचानक त्याग देता है । दूसरा लेकर तुरन्त तीसरे का स्पर्श करता है । यह एतिहासिक शृङ्खला प्रवाह का अनुकरण नही करता । उसकी गति टूटती, विच्छिन्न होती बिना पर पूर्वा का ध्यान किये भूगोल की ओर से आँख मूँदकर जैसे अन्धकार मे पग रखती चलती है । पाठक, इतिहास के विद्वानो को वह अधर मे, मध्यधारा मे, गहरे जल मे छोड देता है । उन्हे तट पर लाने का प्रयास नही करता । कल्हण इस परिस्थिति मे तटीय दीपस्तम्भ का काम करता है । जोनराज अन्धकार को और गम्भीर बना देता है । कल्हण की वाणी का ऐसे स्थलों मे उद्घोष होता है और जोनराज की वाणी मूक हो

न मृगाक्षी न वा शीधुपानलीला न चन्द्रिका ।
यात्रैव केवलं तस्य भूमिभर्तुर्मनोऽहरत् ॥ ३६६ ॥

३६६ मृगाक्षी, शीधुपान[1] लीला, एवं चन्द्रिका ने नहीं, अपितु केवल यात्रा ने उस भूभर्ता का मन हरण किया।

न तापो न हिमं तस्य न सन्ध्या न निशा तथा ।
न क्षुन्न वा पिपासा च राज्ञो यात्रामविघ्नयत् ॥ ३६७ ॥

४६७ ताप, हिम, सन्ध्या तथा निशा, क्षुधा, पिपासा, कोई भी राजा के यात्रा में विघ्न नहीं कर सका।

न सरिद् दुस्तरतरा दुरारोहो न पर्वतः ।
दुर्लङ्घ्यो न मरुश्चाभूद्यात्रायां मानिनः प्रभोः ॥ ३६८ ॥

३६८ उस मानी प्रभु की यात्रा[1] में सरित् दुस्तर नहीं रही, पर्वत दुरारोह नहीं हुआ, मरुभूमि दुर्लंघ्य नहीं हो सकी।

अजितां पूर्वभूपालैः पारसीककुलाकुलाम् ।
उत्तराशां विजेतुं स प्रस्थानं प्रथमं व्यधात् ॥ ३६९ ॥

३६९ पूर्व भूपालों द्वारा अविजित, पारसीक[1] कुल संकुल उत्तर आशा (दिशा) के विजय हेतु उसने सर्व प्रथम प्रस्थान[2] किया।

जाती है। जोनराज यह प्रमाणित कर देता है कि वह कल्हण जैसा पारखी, पण्डित एवं ज्ञानी नहीं है। वह एक साधारण दरबारी कवि मात्र है।

पाद टिप्पणी :

३६६. (१) शीधु : द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ३४८।

पाद-टिप्पणी :

३६८ (१) यात्रा : फिरिश्ता लिखता है—'यह पहला काश्मीर का सुल्तान था जिसने विदेश विजय के लिए रणयात्रा की थी। सिंहासन प्राप्ति के थोड़े ही समय पश्चात् वह अपनी सेना के साथ पंजाब गया और सिन्धु नदी के तट पर शिविर लगाया (४५८)।'

पाद-टिप्पणी :

३६९. (१) पारसीक : पारसीक शब्द का प्रयोग ईरान तथा फारस के लिए किया गया है। पारसीक देश के अश्व प्रसिद्ध थे। उनकी प्रसिद्धि 'बनायुदेश्य' नाम से थी।

फारस मोतियों की खान कहा गया है। फारस की खाड़ी से आज भी मोती अधिक निकलते हैं। प्राचीन पुरा-साहित्य मे पारसीक का अपर नाम पारसव दिया गया है। गरुडपुराण (१ : ६९ : २३) मे पारसवा शब्द पारसीक के लिए व्यवहृत किया गया है। पारसीक शब्द भी गरुडपुराण मे आया है (१ : ६९ : २४)। ऋग्वेद मे पर्श-प्रथु-पर्शवो (७ : ८३ : १) तथा पर्शावा (५ : ६ : १७७) शब्द आये है। उन्हे आयुधजीवी कहा गया है (८ : ६ : ४६)।

दारा (दारियस) प्रथम के बहिस्तून शिलालेख मे गान्धार के साथ पार्श का उल्लेख किया गया है। उसने अपनी संज्ञा पार्श्व से दी है। पाणिनि ने

पार्श्व शब्द का प्रयोग किया है। योगवासिष्ठ रामायण मे पारसव (१ : ३२ : ६), पारसिक (३ : ३३ : ४८) का उल्लेख मिलता है। वे पारसी थे। भारत के पश्चिम-उत्तरीय अञ्चल मे अग्नि पूजक पारसियो की आबादी थी। पूर्व मुसलिम काल मे वे वहाँ निवास करते थे। ग्रन्थो म उनकी सज्ञा अग्नि पूजको से दी गयी है। जोनराज के वर्णन क्रम के अनुसार सुलतान काश्मीर से प्रस्थान कर पारसीक अथवा फारस किंवा ईरान पर विजय प्राप्त करनी चाही। जोनराज स्पष्ट वर्णन करता है। फारस पर किसी पूर्व राजा ने विजय प्राप्त नही की थी। अतएव उसने उस को पूर्व राजाओ से भी महान् प्रमाणित करने के लिए फारस विजय के लिए प्रस्थान कराया है। परन्तु जोनराज के अनुसार गजनी, जलालाबाद (नग्रहार) से आगे नही बढ सका और हिन्दूकुश से वापस आ गया। फारस देश हिन्दूकुश पर्वत के पश्चिम मे पडता है। अतएव यहाँ पारसीक शब्द से वर्तमान ईरान—परसिया का अर्थ लगाना चाहिये न कि पारसियो की किसी आबादी किंवा उनके निवासित क्षेत्र का जो पजाब के उत्तर-पश्चिम मे था। महाभारत काल से ही पारसियो के हिन्दुस्थान मे निवास करने तथा उनके एक जनपद का उल्लेख मिलता है (भीष्म० ९ २२)।

प्राचीन काल मे काम्बोज एव वाल्हीक के पश्चिम का देश पारसिक माना जाता था। यह आर्यो की एक शाखा का निवासस्थान था, उनका भारतीय आर्यो से घनिष्ठ सम्बन्ध था। ईरान शब्द आर्यान का अपभ्रश है। शाशानवशी सम्राटो ने अपने को 'ईरान' का राजा किंवा शाहशाह कहा है। सम्राट् दारयवहु (दारा) ने अपनी सज्ञा 'अरिय पुत्र' से दी है। प्राचीन काल म फारस अनेक भूखण्डो म विभक्त था। फारस की खाडी के पूर्वीय तटवर्ती देश का नाम पार्स किंवा पारस्य था। इसकी प्राचीन राजधानी पारस्यपुर (पर्सि पोलिस) थी। कालान्तर मे इसी के नाम से देश का नाम पारस अथवा फारस पड गया। यही कारण है कि वेद तथा रामायण मे पारसीक अथवा पारस शब्द नही मिलता। महाभारत, कथासरित्सागर, रघुवश आदि मे पारस्य एवं पारसिको का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन ईरान को ऐर्य्यन वैजा कहते थे। ईरान का नाम ऐर्यन था। ईरान शब्द ऐर्यन का अपभ्रंश है। ईरानियो को ऐर्य्यन दाह्लवी कहते थे। दाह्लवी का शुद्ध सस्कृत नाम होगा दानव। दानव शब्द महत्वपूर्ण है। दानव का अपर नाम असुर है। ईरानी असुर-पूजक थे। प्राचीन ऐर्य्यन देश वर्तमान पूर्वी फारस, अफगानिस्तान, पश्चिमी तथा उत्तरी फारस एव पामीर से पश्चिम फैला था। पुरा-ईरानी कथानक के अनुसार आर्य जाति ने गयमर्तन राजर्षि उत्पन्न किया था। पुरानी ईरानी भाषा के अनुसार इसका नाम गमोमर्द था। राजवश का नाम पोशेदियन था। पोशेदियन का अर्थ आदि सहिताकार होता है। इसी वश मे इमा सहैय्या हुए। इमा का ही वेद मे नाम यम है।

पारसी जाति आर्य है। उनके और हमारे पूर्व पुरुष एक थे ऐसा विद्वानो का मत है। आर्य धुर-उत्तर निवासी थे। प्रकृति की विषमता एव क्रूरता से त्राणार्थ वे दक्षिण की ओर बढे। उनकी एक शाखा यूरोप चली गई। उसी शाखा के लोगो से यूरोप, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा दक्षिण आफ्रीका के गोरे आबाद हैं। दूसरी शाखा भारत तथा ईरान मे गई। इस शाखा का नाम भारत-ईरान शाखा पडा। अतएव ईरानियो और हिन्दुओ का मूलस्रोत एक ही है। उनका धर्म एक था, भाषा एक और सस्कृति एक थी। कालान्तर म परस्पर आदान-प्रदान कम हो जाने और भौगोलिक एव प्राकृतिक प्रभावो के कारण उनके विचारो एव रहन-सहन मे अन्तर पडता गया। ईरानी शाखा ने असुर किंवा अहुर को अपना एक देवता माना। असुर वरुण स्वर्ग के परम देवता एव अहुर पिता हुए। वैदिक साहित्य के जल-देवता वरुण हैं। पश्चिम के दिक्पाल हैं। ईरान भारत के पश्चिम मे पडता है। वरुण एकेश्वरवाद के प्रतीक थे।

भारतीय शाखा ने इन्द्रादि बहुदेववाद को स्वीकार किया। संस्कृत, यूनानी, लैटिन, पह्लव

अथवा पहेलवी पहन या पह्नू तथा ईरानी भाषा का मूलस्रोत ऋगवेदिक भाषा है। पारसियों के ग्रन्थ गाथा की भाषा वैदिक-संस्कृत है। वह लुथोनियन तथा स्लेवोनिक भाषा के पश्चात् संस्कृत के सबसे निकट है।

(२) प्रस्थान : परसियन इतिहासकारों का मत है कि सुलतान ने वारहमुला मार्ग से सेना सहित अभियान किया। उसने पखली तथा स्वात विजय किया। तत्पश्चात मुलतान, बामियान, काबुल, गजनी एवं कन्धार पर आक्रमण कर एक के पश्चात् दूसरे को ले लिया (बहारिस्तान शाही २० ए०, २१ बी०; हैदर मल्लिक १०८ बी०, तारीखे काश्मीर : म्युनिख पाण्डु० : ५५ बी० तथा ५६ ए०)। अनन्तर उसने हिन्दूकुश पारकर बदखशां विजय किया (हैदर मल्लिक : १०८ ए०)। मुलतान, काबुल, गजनी, कन्दहार आदि की विजयों का प्रमाण तत्कालीन इतिहास से नहीं होता।

परसियन इतिहासकार लिखते है—'उसने गिलगित और दरदो की ओर कदम बढाया और उन्हे अपनी हुकूमत मे शामिल किया। फिर बल्तूचिस्तान और लद्दाख को फतह करने की गरज से आगे बढा। काशगर का हुक्मरां जिसकी हकूमत मे यह सब सूबे शामिल थे शहाबुद्दीन के हमले की खबर सुनकर एक अजीम लश्कर लेकर चढ पडा। लद्दाख मे इससे मुकाबला हुआ। अगरचे काश्मीरी फौज काशगर की फौज से तायदात मे कम थी लेकिन कामयाब रही। इस प्रकार बल्तूचिस्तान और लद्दाख पर उसने अधिकार कर लिया। इसी दौरान मे शहाबुद्दीन के एक फौजी सरदार ने किश्तवार और जम्मू को फतह कर लिया। (मोहिबु० उर्दू ६०)।

मोहिबुल हसन ने पीर हसन की तारीख पर अपना वर्णन आधारित किया है। पीर हसन लिखता है—'सबसे पहले उसने बारहमूला के रास्ते परवली और पखली मे मुल्क को फतह किया। बाद अजाँ एक बहुत भारी फौज के साथ तिब्बत पहुँचकर थानी काशगर से जग की। तिब्बत और स्कर्दू उसके कब्जे से छीनकर अपने कब्जा इक्तदार मे ले आया। वहाँ से गिलगित आकर दारदो और उसके आस-पास पर कब्जा कर लिया। जण्डा को एक भारी फौज देकर किश्तवार पर मुकर्रर किया और इस तरह शाहाबुद्दीन ने किश्तवार और जम्मू फतह किया।

'शहाबुद्दीन ने हिजरी ७७१ मे जग की तैय्यारियाँ पूरी कर बेहदिशा साजो-सामान, ५० हजार प्यादे और ५ लाख सवारों के साथ वारहमुला के रास्ता से चला। उसने सैय्यद हसन बहादुर को अपना मीर लश्कर बनाया जो २० हजार सवार और एक लाख प्यादो के साथ लश्कर के आगे-आगे चलता था। वे जहाँ पहुँचते थे—फतह पाते थे। सबसे पहले उसने युसुफजयी, बाजौड और पेशावर का इलाका फतह किया और वहाँ से काबुल की तरफ कूच किया। काबुल का हुकमरां सुलतान अहमद खाँ लडाई के साथ पेश आया लेकिन उसने शिकस्त खायी, गिरफ्तार हो गया। वह आठ महीने तक कैद था। काश्मीर मे सैय्यद ताजुद्दीन की सिफारश पर जेलखाना से रिहाई पाकर मुल्क मोहूसी पर दोबारहः कब्जा कर लिया। सुलतान शहाबुद्दीन ने उसकी बहन के साथ अपना और अपनी बहन का उसके साथ निकाह कर दिया और उसकी लड़की को सुलतान कुतुबुद्दीन के साथ शादी कर उसे इज्जत बख्शी। वहाँ से बदखशाँ, पघमान, गजनी, गोर, कन्दहार और हेरात फतह किया। बाद उसने खुरासान की तरफ एकबारगी हमला कर दिया और बहुत-सा मुल्क अपने कब्जा इक्तदार मे लिया। कोहे-हिन्दूकुश के पास पहुँच कर उसकी फौज को निहायत शदीद नुकसान पहुँचा। लौटते वक्त उसने सिन्ध और मुलतान फतह किया और लाहौर का किला घेर कर उसे भी फतह किया। इसी तरह स्यालकोट, लोहरकोट और जम्मू के इलाके फतह किये और दरिया सतलज के किनारे अपना खेमा गाड दिया। इस खबर को पाकर फिरोज तुगलक, बादशाह दिल्ली ने उसके खिलाफ एक बडी फौज भेजी। घमासान लडाई के बाद सुलह

जगतां विजयी कामो मधुशीधुवधूरिव ।
चन्द्रलौलकशूरान् स सहायत्वेऽवृणोत्प्रभुः ॥ ३७० ॥

३७० जिस प्रकार जगत विजेता काम, मधु (वसन्त), शीधु (सुरा) तथा वधू को सहायक बनाता है, उसी प्रकार उस प्रभु ने चन्द्रलौलक[1] शूरों[3] को सहायक रूप में चुना ।

सैन्यचेतांसि सत्त्वेन तमसा स्वविरोधिनः ।
अपूरयत्स रजसा दिगन्तानुद्धतान्तकः ॥ ३७१ ॥

३७१ उद्धतों के अन्तक[1] उस (नृपति) ने, सैनिकों के चित्त को सत्व से, स्वविरोधियों को तम से, दिशाओं को रज से पूर्ण कर दिया ।

प्रविष्टं तस्य गोविन्दखानपालनशालिनि ।
उदभाण्डपुरे पूर्वं बाणैस्तदनुसैनिकैः ॥ ३७२ ॥

३७२ उदभाण्टपुर[1] में जिसका पालक गोविन्द खान था, पहले उसके बाणों ने, पश्चात् उसके सैनिकों ने प्रवेश किया ।

हो गयी । सरहिन्द तक के इलाका पर शहाबुद्दीन काबिज हो गया । फिरोज तुगलक की तीन लडकियाँ थीं । तीनों की शादी सुल्तान शहाबुद्दीन के करीबी रिश्तेदारों मे कर दी गयी । पहली लडकी हसन खाँ वल्द शहाबुद्दीन, दूसरी सुलतान कुतुबुद्दीन और तीसरी का सैय्यद हसन बहादुर के साथ निकाह किया गया' (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : २६ ए० : २१ ए० : हसन १०५ बी०, १०६ बी०, तबकाते अकबरी ३ : ४२८) ।

आधुनिक अनुसन्धानो तथा इतिहास से इस महान् विजययात्रा की पुष्टि नही होती । पीर हसन ने फिरिस्ता आदि पूर्व इतिहास लेखकों से और कुछ जोड कर बढा-चढा कर विजय वर्णन किया है ।

पाद टिप्पणी :

३७०. (१) चन्द्र : मुसलिम लेखको ने नाम मलिकचन्द्र दिया है । शहाबुद्दीन का वह सेनापति था । उसने किश्तवार एवं जम्मू विजय किया था । चन्द्र के विषय मे इतिहासकारो मे मतभेद है कि वह मुसलिम था या हिन्दू । वह डामर था । (बहारीस्तान शाही २० ए०, २१ ए०; हसन, १०५ बी०, १०६ बी तथा तबकाते अक्बरी ३ : ४२८) ।

(२) लौलक : सुल्तान शहाबुद्दीन का एक सेनापति था । यह डामर मुसलमान था । परसियन लेखको ने इसका नाम शेराबल दिया है ।

(३) शूर : सुल्तान का एक सेनापति था । शूर अस्त्रधारी मुसलिमो का नाम इतिहास मे मिलता है । शूर यहाँ व्यक्तिवाचक संज्ञा है । इस व्यक्ति का उल्लेख श्लोक ८९१–८९६ मे जोनराज ने किया है । शूर किसी व्यक्ति के विशेषण रूप मे यहाँ प्रयुक्त नहीं हुआ है । शूर का अर्थ बहादूर तथा वीर होता है ।

पाद-टिप्पणी :

३७१. (१) अन्तक : कल्हण ने अन्तक शब्द का प्रयोग राजतरंगिणी मे बहुत किया है ।

अन्तक का अर्थ है—मृत्यु अर्थात अन्त का साधन–जिस कारण अथवा जिस साधन से मृत्यु होती है, उसे अन्तक कहते हैं ।

पाद-टिप्पणी :

३७२. (१) उदभाण्टपुर : उदभाण्डपुर का वर्तमान नाम उन्द है । उसे ओहिन्द या वैहिन्द या वहन्द या हुन्द कहते हैं । पठान लोग उसे हिन्द नाम से पुकारते हैं । गान्धार की राजधानी उदभाण्डपुर

शैलशृङ्गं नृपानीके प्राप्ते तस्य विरोधिभिः ।
भयातुरैरवारोहः शृङ्गात्तुङ्गाद्व्यधीयत ॥ ३७३ ॥

३७३ जब उसकी सेना शैलशृङ्ग पर पहुँची तो भयातुर विरोधी उत्तुंगशृंग से उतर गये ।

सदृशं प्राभृतं दातुमसमर्थोऽस्य सिन्धुपः ।
उपदीकृतवान् कन्यारत्नं त्राणाय भूपतेः ॥ ३७४ ॥

३७४ सदृश उपहार प्रस्तुत करने में असमर्थ सिन्धुप[1] (सिन्धुपति) ने रक्षा के लिये भूपति को कन्या रत्न भेंट में दिया ।

थी । यह अटक के अधो भाग १५ मील दूर स्थित है । अल्बेरूनी ने उसका नाम वैहन्द दिया है । यह वर्तमान ग्राम उन्द है । सिन्ध नदी के दक्षिण तट पर स्थित है । ह्वएन्त्साग अपनी यात्रा मे इस नगर में आया था । उन्द शब्द का उच्चारण पश्चिमी पंजाबी भाषा-भाषी करते हैं । इस भाषा को हिन्दकी कहा गया है । पश्तू बोलने वाले पठानो का उन्द उच्चारण हिन्द जैसा लगता है ।

कल्हण ने राजतरंगिणी मे उदभाण्डपुर का उल्लेख (रा० : ५ : १५३ २३२) किया है । उसका पुनः उल्लेख (रा० : ७ : १०८१) किया है । शाही राज्य अफगानिस्तान से उत्पाटित होने पर यहाँ के विरुद्ध अन्तिम मोर्चा अपनी शक्ति रखने के लिये मुसलमानो से बनाता था । यहाँ अन्तिम युद्ध पश्चिम से उठती मुसलिम शक्ति रोकने के लिये सम्भवतः सन् १००९ ई० मे हुआ था ।

ह्वएन्त्साग उदभाण्डपुर का ठीक चित्र उपस्थित करता है । वह कहता है कि इसके दक्षिण सिन्ध नदी सीमा पर है । वह यह भी लिखता है कि गन्धार का राजा पहले उदभाण्डपुर मे रहता था । जनरल कनिंघम तथा स्तीन दोनो ने उन्द को ही उदभाण्डपुर माना है । स्तीन ने यहाँ की यात्रा दिसम्बर सन् १८९१ ई० मे की थी । यह इस समय पाकिस्तान मे है । स्तीन तथा कनिंघम दोनो को मकानो के ध्वंसावशेषों से प्राप्त शिलाखण्डो आदि लगे मिले थे । यहाँ पर राजा रणजीत सिंह के फ्रान्सीसी जनरल कोर्ट को प्राचीनकालीन ध्वंसावशेष मिले थे । (जे० : ए० : एस : बी० : ५ : ३९५) । सन् १८३७ ई० मे सर अलेक्स बनरीस ने शारदा लिपि मे लिखा संस्कृत शिलालेख वहाँ से उठा ले गया था (काबुल : १२०) । वह भारतीय संग्रहालय कलकत्ता मे रक्षित है । श्री स्तीन को भी एक शिलालेख शारदा लिपि मे खुदा एक गिरती मसजिद मे लगा मिला था । उसे उन्होने लाहौर संग्रहालय मे जमा कर दिया था । उदभाण्ड का अर्थ जलकलश होता है ।

पाद-टिप्पणी :

३७४. (१) सिन्धुप : सिन्ध अभियान का समर्थन किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ से नहीं होता । ललितादित्य बालुकार्णव मे गया था । ललितादित्य से तुलना करने के लिए दरबारी कवि जोनराज शहाबुद्दीन को सिन्धु तक पहुँचा देता है । परसियन इतिहासकारों का स्रोत जोनराज की राजतरङ्गिणी का अनुवाद है । परसियन इतिहासकारों ने सिन्धु का निर्देश नीलाब नदी नाम से किया है । कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे सिन्ध पर शहाबुद्दीन के अभियान का वर्णन किया गया है । सिन्ध के सुल्तान जाम का सिन्धु तट पर पराजित होना लिखा है (भाग : ३ : २७८) । यह जोनराज तथा काश्मीर के परसियन इतिहास के आधार पर लिखा गया है । किन्तु किसी स्वतन्त्र ऐतिहासिक ग्रन्थ को सूचना स्रोत नहीं माना गया है । उनका सूचना स्रोत भी जोनराज या श्रीवर द्वारा किया गया छायानुवाद ही है । सूफी ने लिखा है कि शहाबुद्दीन ने ५० हजार अश्वारोही सैनिक, पाँच

लाख पदादिकों के साथ पंजाब होते सिन्धु तट पर शिविर लगाया था (कबीर : १३८)। इसी प्रकार फिरिस्ता लिखता है—'सिन्ध के जाम तथा शहाबुद्दीन से युद्ध हुआ था। शहाबुद्दीन ने सिन्ध तट पर शिविर लगाया था। सिन्धराज पराजित हो गया था' (फिरिस्ता : ४ : ४५८)।

शहाबुद्दीन के राज्यकाल के समय सिन्ध के जाम के साथ मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक का संघर्ष होता रहा है। सन् १३५१ ई० में मुहम्मद तुगलक विद्रोही गुलाम तगी का पीछा करते थत्ता पहुँचा था। उस समय सिन्ध का शासक जाम था। इतिहासकारों ने इसका नाम जाम उनर दिया है। तगी के उकसाने पर मुहम्मद तुगलक की सेना को परेशान करता रहा। मुहम्मद की मृत्यु २१ मार्च, सन् १२५१ ई० में हो गई। सन् १३६०–१३६१ ई० में फिरोज तुगलक ने जब थत्ता लेने के लिए अभियान किया तो उस समय जाम जौना सिन्धु का शासक था। यह जाम उनर का भाई था। उसका भतीजा जाम बनबनिया जाम उनर का पुत्र था। फिरोज शाह तुगलक सिन्ध सेना का सामना करने में असमर्थ होकर गुजरात चला गया। सन् १३६२ ई० में फिरोज तुगलक ससैन्य पुनः लौटा और थत्ता के उस पार सिन्ध नदी के तट पर गुजरात से आकर शिविर लगाया।

आइने अकबरी ने सिन्ध के जामों की तालिका दी है। शहाबुद्दीन के राज्य काल के समय जाम उनर बिन बबिनाह, जाम जौना तथा जाम मनी बिन जौना थे। उनका समय ७५३ हिजरी से ७७८ हिजरी दिया गया है।

मसूमी ने पांच नाम जामों का दिया है उनमें प्रथम तीन—(१) जाम उनर बिन बबिना, (२) जाम जुना बिन बबिना तथा (३) जाम तमची बिन ऊमर है। फिरिस्ता ने तृतीय जाम का नाम मनी बिन जौना दिया है। तारीख फिरोजशाही में नाम इस क्रम से दिया गया है—(१) जाम उनर, (२) जाम जौना भ्राता उनर (३) उनर पुत्र बबीना और (४) जाम मनी तथा उसका पुत्र।

शहाबुद्दीन ने सिन्ध पर आक्रमण किया था इसका समर्थन काश्मीर इतिहासकारों के परसियन ग्रन्थों के अतिरिक्त और कहीं से नहीं मिलता। परसियन इतिहासकारों का स्रोत जोनराजकृत राजतरंगिणी का अनुवाद है। उन्होंने अपना मत उसी पर आधारित किया है। जोनराज ने ललितादित्य तुल्य शहाबुद्दीन को प्रमाणित करने के लिए उसके सिन्ध विजय का वर्णन किया है।

शहाबुद्दीन ने सिन्ध तथा काबुल के सुलतानों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। इसका समर्थन किसी भी परसियन तथा इतिहासकारों के ग्रन्थ से नहीं होता। शहाबुद्दीन की रानियों में केवल लक्ष्मी एवं लासा का उल्लेख जोनराज ने किया है। वे काश्मीरी महिलाएँ थीं। सिन्ध एवं काबुल की कन्याओं के नाम का पता नहीं चलता। सिन्ध के इतिहास में शहाबुद्दीन के साथ हुए किसी युद्ध का उल्लेख नहीं मिलता। उक्त विषय अनुसन्धान की ओर अपेक्षा करता है।

पीर हसन एवं फिरिस्ता का आधार स्रोत जोनराज का अनुवाद है। डा० सूफी ने पीर हसन के परसियन इतिहास का बिना वास्तविक तथ्यों का अनुसन्धान किये अनुकरण किया है। पीर हसन ने वैवाहिक सम्बन्ध विस्तार से वर्णन किया है। यह सब प्रचलित किंवदन्तियों और कपोल कल्पनाओं पर आधारित है। श्लोक संख्या ४१९ में जोनराज वर्णन करता है कि सुलतान की रानी लक्ष्मी सिन्धुपति के देश रूठ कर चली गई थी। उसे सुलतान वापस बुला लाया। इस श्लोक के आधार पर कतिपय परसियन इतिहासकारों ने सिन्धु के सुलतान की कन्या से विवाह सम्बन्ध जोड़ते हैं। परन्तु सिन्धुपति जाम था। वह मुसलमान था। उसकी कन्या का नाम लक्ष्मी नहीं हो सकता। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ४१९।

यदि जोनराज की बात सत्य मान भी ली जाय तो उसका तात्पर्य सिन्ध महानद उपत्यका के ऊर्ध्वभाग से है। प्राचीनकाल में उसे गान्धार की संज्ञा दी गई है। उदभाण्डपुर प्राचीनकाल में गान्धार की

राज्ञस्तु गौरवं बाहौ गान्धाराणां भुवोढया ।
चित्रं तु लाघवं तेषां भये भारानुषङ्गतः ॥ ३७५ ॥

३७५ पृथ्वी के भार से राजा के बाहु में गौरव तथा भय में (भय के) भार से उन गान्धारों[1] में लाघव आ गया। यह आश्चर्य है।

राजधानी था। जोनराज के वर्णन क्रम से भी इस बात की पुष्टि होती है। सुलतान ने उदभाण्डपुर जीता था। इसी क्रम से उसने सिन्ध उपत्यका का ऊर्ध्वभागीय पर्वतीय अंचल जीता होगा।

पाद टिप्पणी :

३७५ (१) गान्धार : गान्धार का नाम अति प्राचीनकाल से भारतीय साहित्य मे मिलता है। तक्षशिला से काबुल तक का भू-खण्ड गान्धार देश मे सम्मिलित था। यद्यपि गान्धार देश की सीमा समय-समय पर बदलती रही है। कभी वह विस्तृत हो जाती थी, कभी संकुचित। इसके कारण भ्रम उत्पन्न हो जाता है। पेशावर तथा रावलपिण्डी का जिला, उत्तर-पश्चिम पंजाब का क्षेत्र, गान्धार नाम से अभिहित होता रहा है। गान्धार का अनुवाद परसियन अनुवादकों ने शाहीभंग दिया है।

गान्धार तथा वाहीक प्रदेशों का सम्मिलित नाम उदीच्य था। प्राच्य तथा उदीच्य की सीमा शरावती नदी थी। गान्धार से प्राच्य क्षेत्र तक पाणिनि-काल मे संस्कृत भाषा प्रचलित थी।

गान्धार को यूनानियों ने 'गन्दरायी' कहा है। उस समय यह प्रदेश तक्षशिला से कुनर नदी तक विस्तृत था। पश्चिमी गान्धार की राजधानी पुष्कलावती थी। यूनानियों ने उसे 'पिउक लाउती' लिखा है। इस स्थान तथा काबुल नदी के सङ्गम पर वर्तमान चारसद्दा है। गान्धारराज शकुनि दुर्योधन का मामा था। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी इसी प्रदेश की थी। वह सुबल राजा की कन्या थी। कुछ इतिहासकारों का मत है कि ईसा पूर्व ५५८–५३० मध्य गान्धार पर ईरान के राजा साइरस अर्थात् कुरु का शासन था।

ईसा पूर्व ३३१ वर्ष मे परसियन साम्राज्य नष्ट हो जाने पर गान्धार पर सिकन्दर ने आक्रमण किया था। ईसा पूर्व २३० से १९५ वर्षों तक यूनानी राजाओं के अन्तर्गत था। तत्पश्चात् ईसा पूर्व १७५–१५६ मे यह बलख के चतुर्थ राजा डेमेट्रिअस के अधीन चला गया था। कुशान काल मे गान्धार की राजधानी पुरुषपुर अर्थात् पेशावर थी। गान्धार देश का एक नाम दिहन्दास दिया गया है। परन्तु वह उदभाण्डपुर का अपर नाम है। बौद्ध ग्रन्थों मे गान्धार का बहुत उल्लेख मिलता है। गान्धार जातक एवं कुम्भकार जातक इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। मोगलि पुत्र स्थविर ने तृतीय बौद्ध संगीति समाप्त कर मध्यान्तिक स्थविर को काश्मीर तथा गान्धार मे धर्म प्रचारार्थ भेजा था। गान्धार जनपद की राजधानी तक्षशिला थी। पक्कुसाति वहाँ का राजा था। तक्षशिला मे बौद्ध जगत् के महान् व्यक्ति, जीवक, बन्धुल, प्रसेनजित्, महालि आदि की शिक्षा हुई थी।

पाणिनि गान्धार देशवासी था। कौटिल्य की शिक्षा एक मत है कि तक्षशिला मे हुई थी। गान्धार एवं काश्मीर सम्राट् कनिष्क के ही राज्य मे थे। अशोक के समय गान्धार का विशेष उल्लेख मिलता है। तत्कालीन गान्धार बौद्ध धर्म का केन्द्र हो गया था। फाहियान भारत पर्यटन मे लिखा है कि अशोक के पुत्र धर्मविवर्धन ने गान्धार पर राज्य किया था। बौद्धों के योगाचार दर्शन का प्रवर्तक असङ्ग यहीं जन्म लिया था।

सातवीं शताब्दी मे ह्वेनसांग ने उत्तरापथ मे प्रवेश किया था उस समय उदभाण्डपुर कपिशा के राजा की द्वितीय राजधानी थी। उसके समय,

भङ्गस्तुङ्गस्य शृङ्गस्य खड्गानां नैव भूभुजा ।
शिङ्गानामपि देशेऽस्मिन् विहितः शौर्यशालिना ॥ ३७६ ॥

३७६ शौर्यशाली नृप ने शिङ्गों[1] के उस देश मे भी तुङ्ग शृङ्ग (प्रभुत्व) का भङ्ग किया, न कि खड्गों का।

(लगमान), नग्रहार (जलालाबाद), वर्ण (बन्नू) जागद अर्थात् दक्षिणी अफगानिस्तान गजनी पडती थी।

आठवी तथा नवी शताब्दी मे मुसलमानी शक्ति के उदय काल मे गान्धार शनैः शनैः उनके प्रभाव मे आ गया। सन् ८७० ई० मे अरब सरदार याकूब ने अफगानिस्तान पर आंशिक विजय प्राप्त किया। अलप्तगीन तथा सुबुक्तगीन के आक्रमणो का सामना वहाँ के हिन्दू राजाओ ने किया। सन् ९९० ई० मे लम्पक (लगमान) का दुर्ग हिन्दुओ के अधिकार से निकल गया। काफिरिस्तान के अतिरिक्त समस्त अफगानिस्तान ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया।

हिन्दू शाही वश के अधिकार मे गान्धार ११ तथा १२ वी शताब्दी मे था। सन् १०२१ ई० मे सुलतान महमूद गजनी ने गान्धार राज त्रिलोचनपाल पर आक्रमण किया। राजा पराजित हो गया। गान्धार ने अपनी स्वतंत्रता खो दी। अनन्तर ५ वर्ष पश्चात् उसके पुत्र भीमपाल ने पुन स्वतन्त्रता प्राप्त की। तत्पश्चात् किसी न किसी भूखण्ड पर हिन्दू शाही वशजो का अधिकार ११ वी तथा १२ वी शताब्दी मे बना रहा। कनिंघम ने तक्षशिला मे ५५ स्तूप, २८ विहार तथा ९ मन्दिरो का ध्वसावशेष देखा था। गान्धार वैदिक काल से आजादी के पूर्व तक भारत का अग रहा है। भारतीय भाग गान्धार मे पश्चिमी पाकिस्तान के पेशावर तथा रावलपिण्डी के जिले थे।

कल्हण ने राजतरगिणी मे गान्धार का उल्लेख किया है। काश्मीर की सीमा पर होने के कारण दोनो देशो की घटनायें तथा इतिहास एव दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं (रा० : १ : ६६,६८, २०७, ३१४, २ : ४५, ३ : २)। पूर्व काल मे सिन्ध नदी के दोनो तटो पर अर्थात् पूर्व एव पश्चिम की ओर फैला था। परन्तु बाद मे केवल सिन्ध के पश्चिमी क्षेत्र तक सीमित मान लिया गया था। पश्चिम गान्धार की राजधानी पुष्कलावती तथा पूर्व की तक्षशिला थी। पुष्कलावती किंवा पुष्करावती नगर की नीव भरत के पुत्र पुष्कर ने डाली थी (स्कन्द : ४ : ५)। पुष्करावती नगरी स्वात प्रदेश मे परगना चरसद्दा मे पेशावर के उत्तर पूर्व १७ मील पर स्थित थी। स्वात उपत्यका को प्राचीन काल मे उद्यान कहते थे। स्कन्द पुराण की तालिका मे उसकी क्रम सख्या १३ तथा ग्राम सख्या नव लाख दी गयी है।

पाद-टिप्पणी :

३७६ (१) शिग : शुक ने भी शिग का उल्लेख श्लोक १ : ४३ तथा १ ४९ मे किया है। श्रीकण्ठ कौल का अनुमान है कि यह स्थान चिंगस है वहाँ तीन बार मैं गया हूँ। निःसन्देह यह पर्वतीय क्षेत्र है। यहीं जहाँगीर की मृत्यु हुई थी। वही पर उसकी अँतडी गाड दी गयी थी। चिंगस के बाग मे बारहदरी बनी है। उसके सामने लम्बा-चौडा फर्स है। मुझे जहाँ तक याद है, फर्स के वाम पार्श्व म वह स्थान है जहाँ जहाँगीर की अँतडी दफन की गयी है। मुगल कालीन कुछ इमारतें अपनी दयनीय स्थिति मे अबतक खडी हैं।

जोनराज के वर्णन क्रम के अनुसार यह विजय गान्धार तथा अट्टनगर (हस्तनगर—पेशावर जिला) के मध्य है। गजनी का उल्लेख शिङ्ग के पश्चात् ही किया गया है। इस दृष्टि से यह स्थान सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश मे होना चाहिए। नमक की पहाडियो अर्थात साल्ट रेंज मे अफगानी एक कबीला रहता था। उसका नाम 'सरग' था। अनुमान किया जा सकता है कि सरग का ही सस्कृत रूप शिङ्ग जोनराज ने लिखा है। शिङ्ग स्थान चिंगस

आकर्ण्य राजसिंहस्य सिंहनादमयीं चमूम्।
मदं तत्याज चस्खाल बिभाय गजिनीपुरी ॥ ३७७ ॥

३७७ राजसिंह (शहाबुद्दीन) की सेना (चमू) का सिंहनाद सुनकर, गजनीपुरी[1] मद रहित तथा स्खलित एवं भयभीत हो गयी।

होने मे सन्देह है। क्योकि वर्णन क्रम के अनुसार यह ठीक बैठता नही। गान्धार भूमण्डल मे कभी चिंगस नही था। वह काश्मीर का भाग समय-समय पर राजौरी के समान रहा है।

मुझे एक सुझाव दिया गया था कि यह स्थान 'साम्बा' राज्य होना चाहिये। ध्वनि साम्य कुछ होने पर भी वर्णन क्रम से यह साम्बा नही प्रमाणित होता। निश्चयात्मक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह विषय अनुसन्धान की अपेक्षा करता है। पाकिस्तान मे प्राचीन गान्धार भूखण्ड, सिन्ध उपत्यका, रावलपिण्डी जिला, पेशावर आदि पड जाने के कारण अनुसन्धान भी कठिन है। मैं ने जाने का प्रयास इस क्षेत्र मे किया था। क्योकि अनेक वर्णित प्रदेश इस क्षेत्र मे पडते है परन्तु राजनीतिक कारणो से यह सम्भव नही हो सका। यही बात टिप्पणी श्लोक संख्या ३७८ के सम्बन्ध मे भी कही जायगी।

हुएन्त्साग तक्षशिला के पश्चात् सग हा–पु–लो = सिंहपुर का वर्णन करता है। उसकी सीमा पश्चिम मे सिन–तू = सिन्धु नदी है। राजधानी का क्षेत्र-फल १४ या १५ मील है। पर्वत मूल म है। पर्वतो से घिरा रहने के कारण मजबूत है। भूमि अति उपजाऊ नही है। किन्तु उपज अच्छी होती है। आबहवा ठण्डी है। निवासी साहसी तथा वीर है। कोई राजा नहीं है। काश्मीर आश्रित है। राजधानी के दक्षिण अशोक द्वारा निर्मित स्तूप है। दक्षिण पूर्व ४० या ५० मील दूर पर अशोक निर्मित एक और स्तूप है। यहाँ १० सरोवर हैं। वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। चारो प्रकार के कमलो से जल स्तर आच्छादित रहता है। सैकडो प्रकार के फल होते हैं। इसके पश्चात् उरसा तत्पश्चात् काश्मीर का वर्णन हुएन्त्साग करता है। यह काश्मीर के अधीन है।

तक्षशिला से सिंहपुर ७०० मील दूर है। लगभग १४० मील होगा।

सिंहपुर राज्य की राजधानी केतक्ष (केतस, सेत-वास, श्वेतवास, कटाक्ष, दवेवास अथवा कटस) झेलम जिला मे है। यह सगोही नगर के समीप था। केटास साल्टरेंज के उत्तर म है। पिण्डदादन खा से १६ मील तथा छकोवाल से १८ मील है। वाह पेरी अर्थात् तक्षशिला से ८५ मील से अधिक दूर न होगा। राजधानी पहाड की एक चोटी पर है।

सिंग किंवा शिंग शब्द सिंह का अपभ्रंश है। बाल्यकाल मे आज से ५० या ५५ वर्ष पूर्व ग्रामीण क्षेत्रो तथा शहरो मे, 'सिंह' शुद्ध नाम न लिखकर 'सिंग' अथवा 'सिघ' लिखते थे। पश्चात् शुद्ध संस्कृत नाम 'सिंह' लिखा जाने लगा है। हुएन्त्साग के वर्णन के अनुसार वहा के लोग वीर तथा साहसी थे। मेरा अनुमान है कि शिंग अचल इसे सिंहपुर निवासियो तथा प्रदेश के लिये प्रयोग किया गया है। शुक के शिंग वर्णन से स्पष्ट होता है कि यह स्थान पर्वतीय था। वहा के लोग वीर थे। उसका पाठभेद वहा 'शिंगा' तथा 'शिंगं' मिलता है। उसका उल्लेख दुर्दण्ड के साथ किया गया है।

वहाँ जाकर बिना कुछ और अनुसन्धान किये निश्चयात्मक रूप से लिखना कठिन है। वहाँ की यात्रा तथा अनुसन्धान पाकिस्तान और पर्वतीय क्षेत्र मे पडने के कारण इस समय कठिन है। कालान्तर मे कोई विद्यानुरागी इस कार्य को हाथ मे लेकर इतिहास जगत् मे निःसन्देह अपने अनुसन्धान से योगदान करेगा।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ३७७ के पश्चात् बम्बई संस्करण म श्लोक क्रम संख्या ४१४ अधिक है। उसका भावार्थ है—

'शत्रुओ के स्नात उनके प्राण वातो से मुक्त उस राजा के अस्त्र उसी प्रकार महीतल पर शयन कर रहे थे जिस प्रकार व्रत स्थित जन।' इस श्लोक मे स्नात के स्थान पर स्नान पाठभेद ठीक मान कर अर्थ किया गया है।

३७७ (१) गजनी : मैं गजनी, कन्दहार, काबुल तथा बामियान अफगानिस्तान के पर्यटन काल मे गया हूँ। स्कन्द पुराण मे गजनी का नाम गाजनक दिया गया है। देशो की तालिका मे उसकी क्रम संख्या ७ है। ग्रामो की संख्या ७० हजार दी गयी है। महमूद गजनी की राजधानी तथा उसकी विजयो के कारण गजनी ने प्रसिद्धि पायी है। भारतीय इतिहास के साथ लगभग दो शताब्दियो तक सम्बन्ध विकट रहा है।

काबुल से दक्षिण पश्चिम एक सडक सैदाबाद, गजनी, मुशाकी, खेलाते गजनी होती कन्धार जाती है। मार्ग मे ऐतिहासिक स्थान पडते हैं जिनका सम्बन्ध भारत इतिहास के साथ है। काबुल से अरघण्डी १४ मील है। सडक अफगानिस्तान अर्थात आर्याना की सर्वश्रेष्ठ उपत्यका या मार्ग ७ मील है। किलाए काजी के पश्चात् बतुए पहाड की चढाई मिलती है। अरघण्डी से तीन मील पर पुनः उतराई मिलती है। अरघण्डी समुद्र की सतह से ३६२८ फीट ऊँचा है। अरघण्डी के पश्चात १२ मील मैदान पड़ता है। यह नीचा है। चारो ओर पहाडियाँ हैं। क्षेत्र उपजाऊ है। बहुत से जल स्रोत हैं। मैदान के पश्चात सैदाबाद १७ मील है। गजनी तथा काबुल मध्यवर्ती स्थान है। चार मील चलने पर काबुल का नदी (कुभा) पार करना पडता है। यहाँ से दरदर क्षेत्र पार करना पडता है। सुन्दर उपत्यका है। सैदाबाद से तकिया १६ मिल है। तकिया से शीप गाँव १६ मील है। समुद्र की सतह से ऊँचाई ८५००० फीट है। समीपस्थ भूखण्ड उपजाऊ है। कुछ नालो को पार कर चढ़ाई आरम्भ होती है। गजनी शीप गाँव से १७ मील दूर है। सीधी चढाई है। दर्रा ९ हजार फिट ऊँचाई से जाता है। शीत ऋतु मे तुषार-पात के कारण परिवहन रुक जाता है। काबुल तथा गजनी का मार्ग बन्द हो जाता है।

गजनी मे काबुल से अधिक शीत पडती है। गजनी समुद्र सतह से ७२८० फिट ऊँचा है। जनसंख्या ३० हजार से ऊपर है। गजनी हरा-भरा स्थान है।

काबुल से ९२ मील दक्षिण पश्चिम तथा कन्दहार से २२१ मील उत्तर पूर्व स्थित है। लगभग ३ मास तक २ या ३ इञ्च हिमपात से भूमि आच्छादित रहती है। अरगंधाब तथा नारक नदियो की जलधारा इस अञ्चल मे बहती है। इस समय अरगंधाब नदी पर बाँध बाँधकर नहरें निकाली गयी हैं।

ह्येनसाग के समय गजनी मे बौद्धो की आबादी थी। गजनी का राज्य ११६६ मील क्षेत्रफल मे विस्तृत था। कन्दहार के अतिरिक्त समस्त दक्षिण पश्चिमी अफगान अंचल इस राज्य मे सम्मिलित था। राज्य मे दो राजधानियाँ थी। उनमे एक गजनी नगर था। सातवी शताब्दी मे गजनी का राजा बौद्ध था। वह एक पुराने लम्बी वंश परम्परा क्रम मे था। गजनी चीनी पर्यटको के काल मे अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। उसका क्षेत्रफल ५ मील था। इस समय नगर सवा मील पचकोणीय प्राचीर से घिरा है। गजनी की शक्ति तथा सुरक्षित भौगोलिक स्थिति पर अफगानी बहुत गर्व करते हैं। पुरानी परसियन मे इसे गज कहते है। जिसका अर्थ खज़ाना होता है। एक मत है कि प्लोतमी द्वारा वर्णित गजक स्थान ही गजनी है।

इसतखरी अरब भूगोल-शास्त्री ने जिसने अपनी रचना दशवी शताब्दी मे की थी इस स्थान को उत्तम सरिताओ तथा उद्यानो से पूर्ण लिखा है। मुकद्दिसी दूसरे अरब भूगोलवेत्ता ने गजनी अधीनस्थ अनेक जनस्थानो के नाम दिये हैं। उनका इस समय पता लगाना कठिन है।

गजनी से गोमेल दर्रा को मार्ग जाता है। गजनी एकाकी पहाडो पर है। चित्तौर के समान पहाडी मैदान के बीच मे है। मिट्टी कंकरीली है। मैदान से

१५० फिट ऊँचाई पर है। गजनी एक दुर्ग अथवा कोट है। नगर के चारो ओर प्राचीर है। प्राचीर कोट किंवा दुर्ग की सुविधानुसार निर्माण की गयी है। प्राचीर की नीव सड़क से ऊँचाई पर है।

वर्तमान गजनी मे आकर्षक कुछ नही रह गया है। गलियाँ सकरी है। मकान पुरानी शैली और मिट्टी के बने है। शहर गन्दा है। पुराने गौरव के कारण ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण वाले यहाँ आते है। गजनी मे अनेक बादशाहो की कब्र है। उनका सम्बन्ध भारतीय इतिहास से रहा है। सुबुक्तगीन, महमूद गजनी की कब्र सुरक्षित है। मसूद, बहराम शाह, सूफी हकीम सिनायी, अलीलाला, बहलोलेदाना तथा सैय्यद हसन की मजारे दर्शनीय है।

गजनी क्षेत्र मे गेहूँ, यव और मजीठ की विस्तृत खेती होती है। पोश्तीन मशहूर है। कृषि योग्य भूमि कम है। जलाभाव है। केवल गजनी नगर तथा चार-पाँच गाँवो की सिंचाई के लिये ही जल पर्याप्त होता है। गजनी के अंगूर काबुल के अंगूर से अच्छे होते है। खरबूजे तथा सेव भी उत्तम होते हैं। बाहर भेजे जाते है। नगर मे दो मीनारें हैं। उनकी ऊँचाई १४० फीट होगी। उन दोनो के मध्य अन्तर १२०० फीट होगा। महमूद के बुर्ज के पश्चात् एक मील दूर काबुल गजनी सड़क पर रौजा नामक गाँव मे महमूद गजनी की कब्र है। महमूद काश्मीर की सेना से दो बार पराजित लोह कोट मे हुआ था।

गजनी मे बौद्धो तथा हिन्दुओ की आबादी थी। नवी शताब्दी के आरम्भ मे सामानी नामक ताजिक इरानी वंश के अधीन था। किन्तु सन् ९१२ ई० के पश्चात् तुर्कों का नाम भी गजनी के सन्दर्भ मे आने लगा। सन् ९७९ ई० मे यहाँ टकसाल भी थी। सन् ९९० ई० मे सामनी वंश का लोप हो गया और यमीनी तुर्कों ने उस पर अधिकार कर लिया। सुबुक्तगीन इस वंश का संस्थापक था। उस समय हिन्दूशाही वंश का राज्य हिन्दूकुश तक विस्तृत था। सामनी वंश के पूर्व गजनी मे हिन्दुओ का राज्य था। सुबुक्तगीन की सन् ९९७ ई० मे मृत्यु हो गयी। महमूद गजनी के सुलतान होने पर गजनी की प्रसिद्धि हुयी। सन् ११९१ ई० मे गजनवी वंश का भी लोप हो गया। गोरवंश के अधिकार मे गजनी आ गया। मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण कर उत्तरी भारत मे मुसलिम शासन स्थापित किया।

शहाबुद्दीन यदि गजनी आया होगा तो पेशावर, जलालाबाद, काबुल होता उक्त वर्णित मार्ग पकड़ा होगा। गजनी विजय तथा हिन्दूकुश पर्वत पार करने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। निजामुद्दीन तथा फिरिश्ता दोनो ही लिखते हैं कि हिन्दूकुश पर्वत पार करने की कठिनता के कारण शहाबुद्दीन आगे न बढ़कर पीछे लौट आया (द्रष्टव्य तारीखे काश्मीर : म्युनिख : ५५ ए० तथा बी०; बहारिस्तान शाही २० बी० तथा हैदर मल्लिक : १०८ बी०)।

तारीखे काश्मीर मे सैय्यद अली उक्त विजयो का श्रेय सैय्यद हसन पुत्र ताजुद्दीन जो सैय्यद अली हमदानी का सम्बन्धी था देता है। फिरिश्ता लिखता है—'विजय प्रसिद्धि कन्दहार और गजनी के सूबो तक पहुँच गयी थी। वहाँ के शासक भयभीत हो गये थे कही सुलतान उन पर न टूट पड़े' (पृष्ठ ४५८)। मआसिरे रहमानी मे मुल्ला अब्दुल बकी नहावन्दी (१ : २०३) लिखता है—'सिन्ध के पराजय का समाचार सुनकर गजनी तथा कन्दहार के शासक भयभीत हो गये थे।'

अफगानिस्तान इस समय एक इकायी मे सघटित नही था। अनेक लघुराज्यो मे विभाजित हो गया था। वह तीन साम्राज्यो—ईरान, तुर्किस्तान तथा भारत के अधीन भूखण्डो मे बँट गया था। भारत के मुसलिम बादशाहो ने सर्वदा अफगानिस्तान को अपने अधीन रखने का प्रयास किया है। वहाँ से उन्हें सेना के लिये अश्व तथा सैनिक मिलते थे।

अफगानिस्तान मुगल काल मे भारत के अधीन था। नादिर शाह ने सन् १७३८ ई० तक अफगानिस्तान पर आक्रमण कर अपने अधिकार में कर

श्रोत्रियक्षत्रियैरष्टनगरेऽरोदि शाम्यतोः ।
तरुणाग्निप्रतापाग्न्योर्धूमेनेव भयातुरैः ॥ ३७८ ॥

३७८ शान्त होते तरुणाग्नि एवं प्रतापाग्नि के धूम प्रभाव से ही मानों भयातुर श्रोत्रिय[1]—क्षत्रिय अष्ट नगर[2] में रोने लगे थे ।

यशसा सह सम्पत्तिं तस्मिँल्लुण्ठयति प्रभौ ।
प्रापत् पुरुषवीराख्यदेशाख्या रूढिशब्दताम् ॥ ३७९ ॥

३७९ प्रभु उस राजा के यश सहित सम्पत्ति लूट लेने पर 'पुरुषवीर'[1] देश का यह नाम रूढ़ि मात्र रह गया ।

लिया । तत्पश्चात् अहमद शाह अब्दाली ने (सन् १७२४–१७७३ ई०) जो नादिर शाह की सेवा मे था अफगानिस्तान पर अधिकार कर उसे एक इकाई में सघटित किया । काश्मीर उसके अधीन हो गया (ब्रिग : हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान : लण्डन १९४० : १ : ३६७) ।

(२) स्खलित : जोनराज ने यहाँ स्खलित शब्द प्रयोग किया है । स्खलन का अर्थ पतन किंवा गिरना होता है । गजनी के लोग प्रथम मदहीन हुए, तत्पश्चात भयभीत, अनन्तर उनका पतन अर्थात् पराजय हो गया । किन्तु इतिहास मे शहाबुद्दीन के द्वारा गजनी पतन का प्रमाण नही मिलता ।

पाद-टिप्पणी :

३७८. (१) श्रोत्रिय : मैं समझता हूँ कि यह दियोदोरस वर्णित सोद्राई जाति है। सिकन्दर के आक्रमण प्रसग मे एरियन तथा दियोदोरस इस जाति का उल्लेख करते हैं। सिन्ध नदी के वाम तट पर यह जाति रहती थी। करटियस यद्यपि नाम नहीं देता तथापि वह लिखता है कि वह (सिकन्दर) चौथे दिन एक दूसरे देशो मे आया जहा उसने अलेक्जेण्ड्रिया नगर की स्थापना की । सोध राज पूत जाति के लोग वहा निवास करते थे। वे परमार जाति के क्षत्रिय थे। जोनराज श्रोत्रिय क्षत्रिय अष्टनगर का उल्लेख करता है। श्रोत्रिय शब्द क्षत्रिय जाति का विशेषण किंवा वह उनके एक उपजाति का नामवाचक है। कर्नल टाड ने सोगदी राजपूतो को सोध राजपूतो से पहचान किया है। कनिंघम का मत है कि सोगदी तथा सोद्राई एक ही लोग हैं (ऐन्शियेण्ट ज्याग्रफी पृष्ठ २१४ : संस्करण : सन् १९६३ ई० : वाराणसी) ।

(२) अष्ट नगर : तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—उसने अस्तनगर जोकि अभी तक आशनगर के नाम से प्रसिद्ध है ले लिया (उ० : तै० : भा० : १ : ५१३) । फिरिस्ता लिखता है—'अश नगर के शहर को पार कर वह पेशावर पहुँचा । अनेक शत्रुओ को जिन्होंने उसका प्रतिरोध किया उनकी हत्या कर दी (४५८) ।' फिरिस्ता वर्णित अशनगर ही जोनराज का अष्टनगर है ।

प्राचीन पुष्कलावती के स्थान पर आबाद यह नवीन कस्बा है । चारसद्दा नामक क्षेत्र है । पेशावर से २७ मील उत्तर पूर्व स्थित है । हस्तनगर भी अष्टनगर का अश्त नगर एव अश नगर की तरह अपभ्रंश है । पेशावर जिला मे है । इसका सेटलमेण्ट सन् १८५० ई० मे हुआ था (इम्पीरियल गजेटियर पेशावर : २० ११९) । एक मत है कि हस्त किंवा अष्टनगर मे शक तुर्क आबाद थे । बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे इस क्षेत्र मे २० हजार सैय्यद आबाद थे।

पाद-टिप्पणी :

३७९ (१) पुरुषवीर : पुरुषपुर = पेशावर = फरशूर किंवा पेशावर है। शहाबुद्दीन ने अफगानियों को पराजित किया । वहाँ के उन निवासियो को जिसने उसका विरोध किया मार डाला । उसके पश्चात्

दत्त्वाप्पनिवापाम्भोनगराग्रहरस्त्रियः ।
जीवतः स्वस्य पत्युश्च पिण्डौ स्तननिभाद्दुः ॥ ३८० ॥

३८० नगराग्रहर[1] (नग्रहार) की स्त्रियों ने आँसुओं से निवापाञ्जलि तथा स्तन से ही जीवित स्वय तथा पति को पिण्ड दिया।

हिन्दूकुश के दरों के द्वारा चलता काशगर, बदलशाँ तथा काबुल पर विजय प्राप्त किया (कशीर १३८)। किन्तु भारत के बाहर विजय की कथा कोरी कल्पना है। इसका कोई प्रमाण नही मिलता।

तबकाते अकबरी मे लिखा है—'उसने बरशावर या पशावर किंवा वशावर पर आक्रमण किया (उ० : तैं० . भा : १ : ५१)।'

अफगान इतिहास मे पुरुषपुर अपर नाम पेशावर एक ही नामवाचक शब्द है (आर्याना : ऐन्शियण्ट अफगानिस्तान : काबुल . पृष्ठ ९२)। पेशावर का जिला प्राचीन उद्यान है (वही : पृष्ट १८)।

कनिष्क ने पेशावर बसाया था। गान्धार मूर्ति-कला का केन्द्र था। वहा एक विशाल स्तूप प्राचीन काल मे था। वह १३ मजिला था। उसमे काष्ठ का प्रयोग अत्यधिक किया गया था। उसका वर्णन यात्रियो ने किया है।

ईसा पूर्व ३०३ वर्ष मे सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य को पेशावर क्षेत्र दिया था। पेशावर उपत्यका की राजधानी पुष्कलावती थी, जो वर्तमान चारसद्दा स्थान है। यहाँ पर अत्यधिक प्राचीन ध्वंसावशेष बिखरे हैं। पेशावर अचल से ही बौद्ध महायान सम्प्रदाय विकसित हुआ था। चीनी पर्यटक फाहियान पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ म तथा सुगयुन ने सन् ५२० ई० मे यहा की यात्रा की थी। सातवी शताब्दी तक हिन्दुओ का अक्षुण्ण राज्य था। तत्पश्चात् शाही वश का राज्य रहा। सन् ९९८ ई० मे सुबुक्तगीन ने इस पर आक्रमण किया। महमूद गजनी ने सन् ९९२ ई० मे इसे ले लिया था। कालान्तर मे राजा जयपाल एवं आनन्दपाल का यह कार्य क्षेत्र था। किन्तु सन् १००६ ई० मे महमूद गजनी ने इस पर पुनः आक्रमण किया था।

तैमूर आक्रमणके पूर्व दिलजक पेशावर उपत्यका मे आबाद थे। वे पश्तू भाषा बोलते थे। सन् १५१९ ई० मे बाबर ने यूसुफजाई जाति पर आक्रमण करने के लिये दिलजक जाति से सहायता ली थी (इम्पीरियल गजेटियर : भाग २० : पृष्ठ ११५)।

पाद-टिप्पणी :

३८०. (१) नगराग्रहर (नग्रहार) : डॉ० सूफी ने इसे कागडा-स्थित नगरकोट माना है (कशीर : १४३)। फिरिश्ता नाम नगरकोट देता है (४५९)। किन्तु नग्रहार अफगानिस्तान का वर्तमान नगर जलालाबाद है (आर्याना : एन्शिएण्ट अफगानिस्तान पृष्ठ ९३ : काबुल)। जोनराज का वर्णन-क्रम ठीक नही है। पेशावर के पश्चात् क्रम से जलालाबाद, काबुल, गजनी आना चाहिये। प्राचीनकाल मे नग्रहार मे अशोक-निर्मित २०० फिट ऊँचा स्तूप था। भगवान् बुद्ध की ज्योतिर्मय मूर्ति थी। नगर से नग्रहार का अभिज्ञान किया गया है। हुएन्त्साग (सन् ६३०-६४० ई०) ने यहाँ की यात्रा की थी। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे विजय काल सन् १३६१ ई० तथा नग्रहार को नगरकोट कागडा माना है।

हुएन्त्साग ने नग्रहार देश का वर्णन किया है—'वह ६०० ली पूर्व-पश्चिम तथा २५०-२६० ली दक्षिण-उत्तर विस्तृत है। वह चारो ओर पर्वतमाला से घिरा है। राजधानी २० ली मे विस्तृत है। स्वतन्त्र राज्य नही है। उसके शासक कपिशा से आते है। यहाँ पुष्प तथा फल खूब होते हैं। जलवायु गरम तथा नम है। निवासी ईमानदार, सादे तथा दृढनिश्चयी एवं साहसी हैं। वे धन की अपेक्षा विद्यानुरागी अधिक हैं। सघाराम बहुत हैं। बौद्धधर्मा-वलम्बी हैं। स्तूप जीर्णावस्था मे हैं। यहाँ पर पाँच देवताओ के मन्दिर हैं। उसमे १०० पुजारी हैं।

नगर के पूर्व ३०० फिट ऊँचा अशोक निर्मित स्तूप है। अलंकृत शिलाखण्डों से बनाया गया है। नगर के अन्दर एक विशाल स्तूप का ध्वंसावशेष है। जनश्रुति है कि उसमें भगवान् का दाँत रखा था। इस समय उसमें दन्तधातु नहीं है। उसके समीप एक ३० फिट ऊँचा स्तूप है। दक्षिण पश्चिम १० ली० दूर पर एक और स्तूप है। यहाँ से बहुत दूर नहीं पूर्व एक स्तूप है। यहाँ दीपंकर बुद्ध पुष्प लाये थे। नगर दक्षिण-पश्चिम २० ली पर एक संघाराम है। उसमें एक बहुत बड़ा हॉल है। पत्थरों का बना कई मंजिला बुर्ज है। मध्य में २०० फिट ऊँचा अशोक राज द्वारा निर्मित स्तूप है। इस संघाराम के दक्षिण पश्चिम एक जलस्रोत है। ऊँचे पर्वत शिर पर नीचे फैलता है। पर्वत दीवाल के समान है। पूर्व दिशा में एक गुफा है। यह नाग गोपाल का निवासस्थान है। प्राचीन काल में भगवान बुद्ध की इसमें छाया थी। गुफा में अन्धकार है। प्रवेश मार्ग संकीर्ण है। गुफा में जलस्रोत है। इस गुफा के दोनों पार्श्वों में शिलाओं द्वारा निर्मित कक्ष है। यहाँ बौद्ध भिक्षु ध्यान करते थे। उत्तर-पश्चिम गुफा में एक स्तूप है। भगवान यहाँ टहलते थे। इसके पास ही एक स्तूप है। जिसमें भगवान का नख तथा केश है।

इस नगर से २० ली दूर दक्षिण पूर्व हिड्डा नगर है। फाहियान ने इसे नगरहार से ६ मील दक्षिण पूर्व लिखा है—'इसका क्षेत्रफल ४ या ५ ली० में होगा। पुर तथा सर्वथा पूर्ण है। जल पारदर्शी दर्शन सकते है। नगर के लोग सच्चे, सरल तथा ईमानदार हैं। यहाँ दो मंजिला अट्टालिका है उसके स्तम्भ लाल रंग है। दूसरी मंजिल पर एक छोटा स्तूप है। इसमें भगवान की कपाल धातु रखी है। यह एक फिट २ इंच लम्बा है। यहाँ एक दूसरा स्तूप सात रत्नों से बना है। इसमें भी भगवान की धातु रखी है। इसका आकार कमल के समान है। दोनों स्तूपों का रूप दर्शनीय है। यहाँ एक और भगवान का धातु स्तूप है। इसी प्रकार भगवान की संघाटी युक्त एक और स्तूप है। यहाँ से दक्षिण-पूर्व ५०० ली जाने पर गान्धार देश मिलता है।'

किसी समय नगरहार का राज्य भी था, जो उत्तर में काबुल नदी तथा दक्षिण में कोह सफेद तक विस्तृत था। प्तोलेमी ने उसे नगूरा तथा सिन्ध के मध्य तथा काबुल नदी के दक्षिण तथा जलाला बाद के बिल्कुल निकट लिखा है। श्री एम० जुलियन को चीनी सोंग वंश के इतिवृत्त में नगरहार का संस्कृत नाम मिला था (हुएनत्सांग : बील : ९६ नोट)। मेजर स्तिवोर्ट को एक शिलालेख घोर सा में मिला था। उसमें नगरहार नाम खुदा था (जे० ए० सी० बंगाल : सन् १८४८ ई० पृष्ठ : ४९०, ४९१)।

नगरहार की प्राकृतिक सीमा पश्चिम–जगदल दर्रा, पूर्व–खैबर दर्रा, उत्तर–काबुल नदी तथा दक्षिण–सफेद कोह है। यह ७५ मील लम्बा तथा ४० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल वही आता है जो हुएनत्सांग ने सातवीं शताब्दी में दिया है। इसकी राजधानी वेग्राम जो जलालाबाद के २ मील दक्षिण है। हिड्डा से ५ या ६ मील पश्चिम उत्तर पश्चिम है। हिड्डा जलालाबाद से ५ मील दक्षिण एक ग्राम है। हिड्डा नाम भगवान् बुद्ध के खोपड़ी की हड्डी स्तूप में रखने के कारण सम्भवतः पड़ गया था। कालान्तर में नगरहार काबुल के ब्राह्मण शाही तदनन्तर गजनी राज्य के अन्दर आ गया था।

फाहियान ने लिखा है कि यह विस्तृत देश था। इसमें अफगानिस्तान तथा पश्चिमी पाकिस्तान के भाग सम्मिलित थे।

अश्वक्षोडदलद्धिन्दुघोषधातुतटच्छलात् ।
उदक्पतितिरस्कारप्रशस्तिं स व्यधात्प्रभुः ॥ ३८१ ॥

३८१ उस प्रभु ने अश्वक्षोड से दलित हिन्दुघोष[1] के धातु तट के व्याज से उदक्पति[2] (उत्तर के राजा) की तिरस्कार प्रशस्ति की।

ततो व्यावृत्त्य गच्छन्स दक्षिणाशां स्ववाजिनाम्।
मार्गखेदोदितं तापं शतद्रुवारिणाऽहरत् ॥ ३८२ ॥

३८२ वहाँ से परावृत्त होकर दक्षिण दिशा में जाते हुये उसने अपने घोड़ों के मार्ग में हुए ताप को शतद्रु[1] (सतलज) जल से दूर किया।

पुर आदि न मान कर जलालाबाद मानना ही उचित है। यह पेशावर से पश्चिम अफगानिस्तान मे पड़ता है। इसके पश्चात् ही जोनराज हिन्दूघोष अर्थात् हिन्दुकुश का वर्णन करता है। वह भी इसी दिशा मे है। इस भौगोलिक वर्णन क्रम से नगराग्रहार प्राचीन नग्रहार अर्थात् जलालाबाद ही निश्चित होता है।

पाद-टिप्पणी :

३८१ (१) हिन्दूघोप : एक मत है कि यह हिन्दूकुश पर्वतमाला है। परसियन इतिहासकारो का मत है कि यह बात गलत है। फिरिस्ता और निजामुद्दीन दोनो ही लिखते हैं कि पहाड़ो को पार करने की मुश्किलात समझ कर वापस लौट आया (म्युनिख पाण्डुलिपि : ५५ बी०, ५६ ए०, बहारिस्तान शाही : २० बी०, २१ बी०. हैदर मल्लिक : १० बी०)। सैय्यद अली ने तारीख काश्मीर मे इन विजयो का श्रेय सैय्यद अली हमदानी के भतीजे ताजुद्दीन के पुत्र सैय्यद हसन को दिया है। कम्बोज जाति काश्मीर के राजौरी स्थान से हिन्दूकुश पर्वतमाला तक निवास करती थी। कुछ विद्वान् कम्बोजो को हिन्दूकुश पर्वत परवर्ती बदख्शाँ के निवासी मानते हैं (ज्याग्रफी ऑफ एनशिएण्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया : पृष्ठ २५)। पुरा साहित्य वर्णित निषध पर्वत को हिन्दूकुश कुछ विद्वानो ने माना है। यूनानियो ने इसे 'परोप निसोस' किंवा 'परोप निसद' लिखा है। यूनानियो का निसद ही संस्कृत वर्णित निषध पर्वत प्रतीत होता है।

फिरिस्ता लिखता है—'तत्पश्चात् वह हिन्दूकुश की ओर बढा। किन्तु उस पर्वत को दुर्गम जान कर लौट पड़ा और सतलज के तट पर शिविर लगाया' (पृष्ठ ४५८)।

(२) उदक्पति : श्रीनीलकण्ठकौल ने इसे नामवाचक शब्द नही माना है। श्रीदत्त इसे नामवाचक शब्द मानते है। उदक्पथ का अर्थ उत्तर का पथ होता है। उदक्पति इस प्रकार उत्तर का पति होगा। श्रीकण्ठ कौल का मत है कि यह कोई मगोल आक्रमक था, जो दिल्ली लूटकर लौट रहा था। जोनराज ने श्लोक संख्या ३८३ तथा ३८४ मे पुन: उदक्पति का उल्लेख किया है किन्तु तारीखे काश्मीर (म्युनिख पाण्डुलिपि : ५६ ए०)। तबकाते अकबरी (उ० : तै० : भारत १ : ५१३) तथा फिरिस्ता के वर्णन क्रम से ध्वनि निकलती है कि उदक्पति शब्द नगरकोट के राजा के लिए प्रयुक्त किया गया है। नगरकोट दिल्ली के उत्तर मे पड़ता है। परसियन लेखको के कारण उदक्पति तथा नगराग्रहर के सम्बन्ध मे भ्रम उत्पन्न हो गया है।

पाद-टिप्पणी :

३८२ (१) शतद्रु : नग्रहार जीत कर शहाबुद्दीन दक्षिण की ओर बढ़ा और सतलज तट पर शिविर स्थापित कर दिया।

ढिल्लीमुल्लुण्ठ्य तत्कालमुदक्पतिमुपागतम् ।
मार्गरोधेन नृपतिर्नितान्तमुदवेजयत् ॥ ३८३ ॥

३८३ नृपति ने उस समय ढिल्ली[1] (दिल्ली) लूटकर आये, उदक्पति[2] को मार्गावरोध करके नितान्त उद्वेजित किया।

पाद-टिप्पणी :

३८३. (१) ढिल्ली : ढिल्लि शब्द दिल्ली के लिए आता है (द्रष्टव्य : टिप्पणी : श्लोक ४५०)।

(२) उदक्पति : यह घटना सन् १३६१ ई० की कही जाती है। फिरोजशाह तुगलक दिल्ली का बादशाह था। उसके क्षेत्र मे प्रवेश कर उदक्पति ने यथेष्ट धन लूट-पाट से संचय किया था। उदक्पति जब लूट-पाट कर लौट रहा था, उस समय शहाबुद्दीन से उसका सामना हुआ था। परसियन लेखको के अनुसार शहाबुद्दीन ने उदक्पति को पराजित किया था। सूफी लिखता है कि उदक्पति ने शहाबुद्दीन के चरणो पर लूट-पाट का धन रख दिया और उसका करद राजा हो गया (सूफी : १३८)। लूट पाट के संचित धन मे से यथेष्ट ले लिया। उसे अपना आधिपत्य भी स्वीकार कराया (तारीखे काश्मीर-म्युनिख-पाण्डुलिपि : ५६ ए०)। तबकाते अकबरी मे उल्लेख इसी प्रकार मिलता है—'नगरकोट का राजा जो देहली से सम्बन्धित कुछ महालो को नष्ट करके लौट रहा था मार्ग मे सुलतान की सेवा मे उपस्थित हुआ और जो धन सम्पत्ति उसने लूटी थी वह सबकी सब सुलतान को दे दी तथा उसका आज्ञाकारी बन गया (उ० : तै० : भा० . १ : ५१३)।'

फिरिश्ता ने लिखा है—'सतलज के तट पर नगरकोट के राजा से भेंट हुई। वह दिल्ली देश का लूट-पाट कर आया था। वह लूट के धन से लदा था। उसने लूटी सम्पत्ति शहाबुद्दीन के चरणो पर रख दिया और उसने सुलतान के प्रति निष्ठा प्रकट की (४५९)।'

नगरकोट के आक्रमण का उल्लेख फिरोज शाह के संदर्भ मे मिलता है। उदक्पति के नाम का उल्लेख कही नही मिलता। नगरकोट कागडा का दुर्गम दुर्ग था। फिरोजशाह के समय की तारीखो से इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश नही पडता। यही वर्णन मिलता है कि फिरोज शाह नगरकोट के राय के विरुद्ध अभियान किया था। फिरोज शाह ने अभियान काल मे ज्वालामुखी के मन्दिर की यात्रा भी की थी। राय नगरकोट मे चला गया। फिरोज न मन्दिरादि नष्ट किये तथा समीपवर्ती स्थानो को लूटा। उसे संस्कृत ग्रन्थो का भण्डार भी मिला। दुर्ग के ६ मास घेरे के पश्चात् सन्धि हो गई। राय ने फिरोज शाह को बादशाह मान लिया और राज्य उसके पास रह गया (कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : भाग ५ : ५९४)।

परसियन इतिहासकारो के वर्णन से निष्कर्ष निकलता है कि उदक्पति शब्द नगरकोट के राजा के लिए जोनराज ने प्रयोग किया है। परन्तु श्लोक ३८६ मे सुशर्मपुर के राजा तथा दुर्ग का वर्णन किया गया है। परसियन इतिहासकारो ने उदक्पति तथा सुशर्मपुर के राजा दोनो को नगरकोट का राजा मान कर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। दोनो ही दो व्यक्ति है। नगरकोट पर फिरोज तुगलक ने आक्रमण किया था न कि नगरकोट के राजा ने जाकर दिल्ली लूटा था।

शहाबुद्दीन का सम्बन्ध दिल्लीपति फिरोज शाह से था या नही इस सम्बन्ध मे कुछ भ्रम है। एक सम्भावना हो सकती है। दोनो सुलतान राजा नगरकोट के लूट-पाट तथा स्थानीय विजयो के पश्चात् मिले होगे। उदक्पति हिन्दू था। वह राजा था। उसकी शक्ति बढने का अर्थ दिल्ली तथा काश्मीर दोनो के लिए खतरा था। काश्मीर एवं दिल्ली के

राजाओं ने मिलकर नगरकोट के राजा की शक्ति क्षीण करने के लिए विचार-विनिमय किया होगा। सम्भव है, शत्रु राजा को परास्त करने के हेतु दोनों ने कोई सन्धि की हो।

शहाबुद्दीन तथा फिरोज तुगलक से मिलने के समय में कुछ त्रुटियाँ प्रतीत होती हैं। फिरोज शाह कालीन इतिहास अध्ययन करने से पता चलता है कि फिरोज की यह मुलाकात सन् १३६० ई० में अथवा उसके पश्चात् हुई होगी। इस समय भारत में फिरोज शाह तुगलक अन्य स्थानों में व्यस्त दिखाई पड़ता है। फिरोज शाह तुगलक ने नगरकोट के राजा को सन् १३६५ ई० में जीता था और ज्वालामुखी देवी का मन्दिर नष्ट किया था।

जोनराज ने स्पष्ट लिखा है कि सन् १३६० ई० में काश्मीर में भयङ्कर जल प्लावन हुआ था। शहाबुद्दीन जल-प्लावन से जनता की रक्षा करने के लिये व्यस्त एवं चिन्तित काश्मीर मण्डल में था। शहाबुद्दीन इस समय श्रीनगर में उपस्थित था। यह प्रमाणित है। सम्भव है जल-प्लावन के पश्चात् काश्मीर से दिल्ली की ओर चला हो। परन्तु कठिनता उत्पन्न होती है। काश्मीर के इतिहास लेखक उसे उत्तर लद्दाख से सीधे दक्षिण नगरकोट उतार लाते है। यह बाढ़ उसके दिग्विजय कर लौटने के पश्चात् आयी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तुगलक की मुलाकात सन् १३६० ई० के पूर्व हुई थी। किन्तु तुगलक के समय तथा उसके कार्यक्रमों के देखने से यह स्पष्ट होता है कि यह मुलाकात १३६० ई० के पूर्व होना सम्भव नहीं था। श्री मोहिबुल हसन का मत है। हो सकता है कि बाढ़ सन् १३६० ई० में न आकर सन् १३६२ ई० के समीप आयी हो। यह भी सम्भावना हो सकती है कि सन् १३६० ई० के पूर्व फिरोज से मिलकर शहाबुद्दीन काश्मीर लौट आया होगा। (द्रष्टव्य . जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी : सन् : १९१८ : १८ . ४५३, मुन्तखबुल तवारीख : १ : ३२७-३३०)।

इतिहास से यह प्रमाणित नहीं होता कि दिल्ली के सुलतान तथा काश्मीर के राजा से कभी संघर्ष हुआ था। यह भी प्रमाण नहीं मिलता कि दोनों में विवाह सम्बन्ध स्थापित हुआ था। फिरोज शाह की एक बहन का विवाह उसके नायब वजीर मलिक निजामुल्मुल्क के साथ हुआ था। दोनों सुलतानों में विवाह सम्बन्ध का कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता। जोनराज अथवा फिरोजशाहकालीन किसी इतिहासकार ने दिल्ली-श्रीनगर संघर्ष तथा विवाह सम्बन्ध का उल्लेख नहीं किया है। बहारिस्तान शाही तथा हैदर मलिक की तारीख से भी यह नहीं प्रकट होता है। वे पारस्परिक विवाह सम्बन्ध से सम्बन्धित हुए थे। इसी प्रकार बाद के इतिहासकारों ने काबुल तथा सिन्ध से विवाह सम्बन्ध किसी सुनी-सुनायी गाथा के आधार पर जोड़ दिया है।

पीर हसन ने लिखा है—'सुलतान ने खुरासान, हेरात जीतकर मुलतान, लाहौर तथा पंजाब पर अधिकार कर लिया। इनके अतिरिक्त स्यालकोट, लोहरकोट और जम्मूपर अधिकार कर लिया। फिरोज तुगलक से उसकी सन्धि हो गयी। जिसके अनुसार सरहिन्द तक का क्षेत्र उसके अधिकार में आ गया। फिरोज तुगलक की तीन लड़कियों की शादियाँ उसने अपने सम्बन्धी, अपने पुत्र हसन, कुतुबुद्दीन तथा तीसरी की शादी हसन बहादुर से की। उसने जीते हुए राज्य पुनः उनके राजाओं को वापस कर दिया (पृष्ठ १७४-१७५)। श्री आगा मुहम्मद हसन ने तुगलक डाइनेस्टी पुस्तक में फिरोज शाह की वंशावली दी है। उसमें फिरोज शाह के तीन पुत्र फतह खाँ, जफर खाँ तथा मुहम्मद खाँ का नाम दिया है (१६ : ४७१)। उसमें किसी कन्या का नाम नहीं दिया गया है। मैंने इस विषय में अनेक ग्रन्थों को जो प्राप्य हैं देखा परन्तु फिरोज शाह की कन्यायें थीं इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। प्राय परसियन लेखकों ने सजरा अथवा वंशावली में कन्या एवं स्त्रियों का नाम नहीं दिया है। जोनराज का लिखना सत्य है अथवा काल्पनिक यह स्वतः एक अनुसन्धान का विषय है।

योगिनीपुरपौरान्यान् धाट्यानैषीदुदकपतिः ।
मार्गदानोपकारेण स तानदित भूभुजे ॥ ३८४ ॥

३८४ उदक्पति ने योगिनीपुर के जिन लोगों को आक्रमण कर ले गया था मार्ग दान का उपकार करने के कारण उन्हें राजा के पास ले गया ।

पाद-टिप्पणी :

३८४. (१) योगिनीपुर : पृथ्वीराज की दिल्ली महरौली में योगमाया देवी का मन्दिर है। शक्तिसंगम तन्त्र (३ : ८ : २) में इन्द्रप्रस्थ के साथ ही योगिनीपुर का वर्णन किया गया है। वर्तमान इन्द्रप्रस्थ यदि पुराना किला दिल्ली मान लिया जाय तो योगमाया का महरौली मन्दिर पुराना किला से लगभग आठ मील दूर पड़ेगा। प्रस्थ शब्द भारत के तान्त्रिक विभाजन का द्योतक है। भारत पांच भागों में तान्त्रिक दृष्टि से विभाजित किया गया था— इन्द्रप्रस्थ, यमप्रस्थ, वरुणप्रस्थ, कूर्मप्रस्थ तथा देवप्रस्थ। इन्द्रप्रस्थ की सीमा दी गयी है। उत्तर-दिल्ली तथा मेरठ, दक्षिण-मदावर्त, पूर्व-मथुरा तथा पश्चिम—द्वारका।

योगमाया पृथ्वीराज की अधिष्ठात्री देवी है। आज भी उनकी पूजा होती है। मैं इस मन्दिर में दिल्ली प्रवास काल में प्राय. जाता रहा हूँ। महरौली के पूर्वकालीन दुर्ग का प्राचीर अभी तक दिखायी देता है। हवाई जहाज से इस दुर्ग का पूरा आकार अब भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है। महरौली के पूर्वकालीन दुर्ग के अन्तर्गत ही विष्णु पर्वत, विष्णु मन्दिर, विष्णुध्वज, अल्तमश, अलाउद्दीन खिलजी, अनेक बादशाहों, राजवंशियों, अधम खां आदि की मजारें हैं। कुतुबमीनार तथा अलाई मीनारें हैं। विष्णु मन्दिर तोड कर उसके स्थान पर मसजिद कूवते इसलाम का निर्माण किया गया था। योगमाया मन्दिर के पृष्ठ भाग में लम्बी प्राचीन कालीन प्राचीर है। वह पीछे होती दक्षिण पश्चिम पार्श्व से चली गयी है। कुतुबमीनार से गुडगावा जाने वाली सडक पर मीलों तक मजारों, कब्रों, रौजों, इमारतों के खण्हर बिखरे पड़े हैं। यही प्राचीन योगिनीपुर आबादी का ध्वंसावशेष है। इस समय (सन् १९७० ई०) मैं पुनः वहाँ गया तो देखा कि चारों ओर इमारतें बन गयी हैं। सन् १९४६ ई० में मैं पहली बार महरौली गया था। उस समय सफदरजंग से महरौली तक कोई इमारत नहीं बनी थी। हवाई अड्डा अवश्य बना था। पुरानी इमारतें या तो नष्ट हो गयीं अथवा उनका ईंट-पत्थर लोग उठाकर अपनी इमारतों में लगा लिये हैं। इस समय ध्वंसावशेष कठिनता से दो फर्लांग की सीमा में रह गये होंगे। महरौली तक आलीशान इमारतें खड़ी हो गयी हैं। तीस वर्ष पूर्व यहां आने वाला यदि पुनः आये तो स्थान को पहचान भी न सकेगा।

योगमाया का मन्दिर कुतुबमीनार से महरौली जाने वाली सडक पर, विष्णु स्तम्भ से कठिनता से एक फर्लांग दूर होगा। जोनराज ने योगिनीपुर का उल्लेख श्लोक संख्या ४४१ में किया है।

कुतुबमीनार हाता की परिक्रमा करती एक सडक 'योगमाया' मन्दिर के समीप से होती महरौली बाजार से निकलती गुडगावा वाली सडक से मिल जाती है, जो सफदर जंग से होती सीधे गुडगावा की ओर चली जाती है। इसी सडक पर कुछ आगे बढ़ने पर एक सड़क तुगलकाबाद तथा सूर्य मन्दिर की ओर जाती है।

योगमाया का मन्दिर तथा उसकी नगरी होने कारण जोनराज ने दिल्ली को योगिनीपुर लिखा है। फिरोज तुगलक का मदरसा, उसकी मजार हौजखास महरौली के समीप है।

डॉ० डी० सी० सरकार ने योगिनीपुर को दिल्ली माना है। उन्होंने दिल्ली का अपर नाम योगिनीपुर दिया है। इन्द्रप्रस्थ के साथ योगिनीपुर का उल्लेख

योगिनीपुरपौरान्यान् धाट्यानैपीदुदक्पतिः ।
मार्गदानोपकारेण स तानदित भूभुजे ॥ ३८४ ॥

३८४ उदक्पति ने योगिनीपुर के जिन लोगों को आक्रमण कर ले गया था मार्ग दान का उपकार करने के कारण उन्हें राजा के पास ले गया।

पाद-टिप्पणी :

३८४. (१) योगिनीपुर : पृथ्वीराज की दिल्ली महरौली में योगमाया देवी का मन्दिर है। शक्तिसंगम तन्त्र (३ : ८ : २) में इन्द्रप्रस्थ के साथ ही योगिनीपुर का वर्णन किया गया है। वर्तमान इन्द्रप्रस्थ यदि पुराना किला दिल्ली मान लिया जाय तो योगमाया का महरौली मन्दिर पुराना किला से लगभग आठ मील दूर पड़ेगा। प्रस्थ शब्द भारत के तान्त्रिक विभाजन का द्योतक है। भारत पाँच भागों में तान्त्रिक दृष्टि से विभाजित किया गया था—इन्द्रप्रस्थ, यमप्रस्थ, वरुणप्रस्थ, कूर्मप्रस्थ तथा देवप्रस्थ। इन्द्रप्रस्थ की सीमा दी गयी है। उत्तर—दिल्ली तथा मेरठ, दक्षिण—गदावर्त, पूर्व—मथुरा तथा पश्चिम—द्वारका।

योगमाया पृथ्वीराज की अधिष्ठात्री देवी है। आज भी उनकी पूजा होती है। मैं इस मन्दिर में दिल्ली प्रवास काल में प्रायः जाता रहा हूँ। महरौली के पूर्वकालीन दुर्ग का प्राचीर अभी तक दिखायी देता है। हवाई जहाज से इस दुर्ग का पूरा आकार अब भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है। महरौली के पूर्वकालीन दुर्ग के अन्तर्गत ही विष्णु पर्वत, विष्णु मन्दिर, विष्णुध्वज, कुतुबमस्जिद, अलाउद्दीन खिलजी, अनेक बादशाहों, रानियों, अधम खाँ आदि की मजारें हैं। कुतुबमीनार तथा अलाई मीनारें हैं। विष्णु मन्दिर तोड़ कर उसी स्थान पर मसजिद कुव्वत इस्लाम का निर्माण किया गया था। योगमाया मन्दिर के पृष्ठ भाग में लम्बी प्राचीन कालीन प्राचीर है। यह पीछे होती दक्षिण पश्चिम पार्श्व में चली गयी है। कुतुबमीनार से गुड़गावाँ जाने वाली सड़क पर मीलों तक मजारों, कब्रों, रौजों, इमारतों के खण्डहर बिखरे पड़े हैं। यही प्राचीन योगिनीपुर आबादी का ध्वंसावशेष है। इस समय (सन् १९७० ई०) में पुनः वहाँ गया तो देखा कि चारों ओर इमारतें बन गयी हैं। सन् १९४६ ई० में मैं पहली बार महरौली गया था। उस समय सफदरजंग से महरौली तक कोई इमारत नहीं बनी थी। हवाई अड्डा अवश्य बना था। पुरानी इमारतें या तो नष्ट हो गयीं अथवा उनका ईंटा-पत्थर लोग उठाकर अपनी इमारतों में लगा लिये हैं। इस समय ध्वंसावशेष कठिनता से दो फर्लांग की सीमा में रह गये होंगे। महरौली तक आलीशान इमारतें खड़ी हो गयी हैं। तीस वर्ष पूर्व यहाँ आने वाला यदि पुनः आये तो स्थान को पहचान भी न सकेगा।

योगमाया का मन्दिर कुतुबमीनार से महरौली जाने वाली सड़क पर, विष्णु स्तम्भ से कठिनता से एक फर्लांग दूर होगा। जोनराज ने योगिनीपुर का उल्लेख श्लोक संख्या ४८१ में किया है।

कुतुबमीनार हाता की परिक्रमा करती एक सड़क 'योगमाया' मन्दिर के समीप से होती महरौली बाजार से निकलती गुड़गावाँ वाली सड़क से मिल जाती है, जो सफदर जंग से होती सीधे गुड़गावाँ की ओर चली जाती है। इसी सड़क पर कुछ आगे बढ़ने पर एक सड़क तुगलकाबाद तथा सूर्य मन्दिर की ओर जाती है।

योगमाया का मन्दिर तथा उसकी नगरी होने के कारण जोनराज ने दिल्ली को योगिनीपुर लिखा है। फिरोज तुगलक का मदरसा, उसकी मजार हौजखास महरौली के समीप है।

डा० डी० सी० सरकार ने योगिनीपुर को दिल्ली माना है। उन्होंने दिल्ली का अपर नाम योगिनीपुर दिया है। इन्द्रप्रस्थ के साथ योगिनीपुर का उल्लेख

तुरङ्गवस्त्रदानेन स तान् सम्मान्य भूपतिः ।
स्वदेशं प्राहिणोत्कीर्तिराशीन्मूर्तान्बहूनिव ॥ ३८५ ॥

३८५ भूपति ने तुरङ्ग एव वस्त्र दान द्वारा उन्हें सम्मानित करके, मूर्तिमान बहुत कीर्ति राशि सदृश स्वदेश प्रेषित किया ।

सुशर्मपुरराजेन तस्मात् स्वाशर्मशङ्किना ।
दुर्गाहङ्कारमुत्सृज्य देव्येव शरणीकृता ॥ ३८६ ॥

३८६ उससे अपने अकल्याण की आशका से सुशर्मपुर[1] के राजा ने दुर्ग का अहकार त्याग कर देवी[2] का ही शरण लिया ।

किया है (ज्याग्रफी आफ एनशिएण्ट ऐण्ड मिडीवल इण्डिया पृष्ठ ९७ तथा १०७) । शक्तिसगम तन्त्र मे उल्लेख मिलता है ,—

इन्द्रप्रस्थ महेशानि शृणु वक्ष्ये यथाक्रमम् ।
इन्द्रप्रस्थ महेशानि योगिनीपुरसयुतम् ॥
(शक्तिसगम तन्त्र ३ : ८ : २)

जोनराज ने योगिनीपुरनाथ का उल्लेख श्लोक ४४१ मे किया है । योगिनीपुरनाथ का अर्थ फिरोज तुगलक दिल्ली बादशाह से है । सुलतान ने अपने दोनो पुत्र हसन खाँ और अली खाँ को रानी लासा के कहने पर निर्वासित कर दिया था । वे दोनो दिल्ली गये थे ।

पाद टिप्पणी

उक्त श्लोक ३८६ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ४४४ अधिक है । उसका भावार्थ है—(४४४) 'उसका प्रतापानल केदारश्रियो का रसपान कर दु स हे उत्पन्न शिव लिंग का भङ्ग प्रदर्शित किया ।

३८६ (१) सुशर्मपुर : सुशर्मपुर को परसियन इतिहासकारो ने नगरकोट माना है । पीर हसन नगरकोट एव सुशर्मपुर विजय के स्थान पर स्यालकोट, लोहरकोट और जम्मू विजय लिखता है । डॉ० सूफी ने पीर हसन का अनुकरण कर विस्तवार तथा जम्मू को शहाबुद्दीन के विजित प्रदेशो म सम्मिलित किया है ।

श्रीनगर पुरातत्व विभाग के शारदालिपि शिलालेख क्रम सख्या २० के पंक्ति १२ म उल्लेख मिलता है—'नासहा येन मद्राना (णा) मही जिता'—। शिलालेख टूटा है । पक्तियो के अक्षर मिट गये हैं । शहाबुद्दीन का शाहाभदेन नाम दिया गया है । जोनराज ने भी शाहाभदेन नाम का ही प्रयोग किया है ।

उक्त शिलालेख का समय लौकिक सवत् ४४४५= (सन् १३६९ ई० = सम्वत् १४२६ = शक १२९१) वैशाख कृष्ण द्वादशी बीरवार दिया गया है । शहाबुद्दीन का राज्यकाल लौकिक सम्वत् ४४३० = सन् १३५५ ई० से लौकिक सम्वत् ४४४९ = सन् १३७३ ई० तक था । शिलालेख सुलतान शहाबुद्दीन के राज्यकाल का ही है । शिलालेख लगने के ४ वर्ष पश्चात् शहाबुद्दीन की मृत्यु हुई थी । इस शिलालेख की सत्यता मे अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है ।

पीर हसन आदि परसियन इतिहासकारो ने मद्र को जम्मू मान लिया है । यह ठीक नहीं है । मद्र देश व्यास तथा झेलम अर्थात् वितस्ता नदी का मध्यवर्ती काश्मीर का दक्षिणी सीमा परवर्ती भूखण्ड था । कुछ विद्वानो का मत है कि मद्र देश व्यास तथा चनाब नदियो का मध्यवर्ती भूभाग था । किन्तु चनाब तथा झेलम का मध्यवर्ती भाग दर्वाभिसार माना गया है । किसी भी अवस्था मे मद्र देश के अन्तर्गत जम्मू का भूखण्ड नहीं आता । जम्मू का दक्षिणी भूखण्ड मद्र देश मे सम्मिलित था । उसकी राजधानी स्यालकोट किंवा प्राचीन शाकल नगरी थी ।

स्वयं नत्या न तून्नत्या भौट्टानामस्य भूपतेः ।
अर्वतां पर्वतारोहदोहदो विनिवारितः ॥ ३८७ ॥

३८७ भौट्टों[1] के स्वयं नत नकि उन्नत होने के कारण उस राजा के अश्वों का पर्वतारोहण दोहद (अभिलाषा) निवारित हुआ ।

दुस्तरत्वात्तटस्थस्य देवलाभिस्तनूकृतः ।
सिन्ध्वोघो नृपतेरेवं पूर्वेभ्यः श्रुतमद्भुतम् ॥ ३८८ ॥

३८८ दुस्तर होने के कारण तट पर स्थित राजा के लिये सिन्धु[1] की धारा को देवताओं ने क्षीण कर दिया, इस प्रकार अद्भुत वृत्त प्राचीन लोगों से सुना गया ।

निष्कर्ष निकाल सकते है कि वर्तमान काश्मीर–जम्मू राज्य के दक्षिणी एवं अविभाजित पंजाब का उत्तरीय अञ्चल मद्र देश था ।

(२) देवी : यह मन्दिर कागडा स्थित माता देवी किंवा बज्रेश्वरी देवी का मन्दिर माना गया है।

पाद-टिप्पणी :

३८७ (१) भौट्ट : पीर हसन लिखता है—'एक बहुत भारी फौज के साथ तिब्बत पहुँच कर काशगर के वाली से जग की । तिब्बत और स्करदू इसके कब्जा से छीन कर अपने कब्जा एकतदार मे ले आया (अनुवाद . उर्दू : पृष्ठ १५४) ।' डॉ० सूफी ने पीर हसन का अनुकरण करते लिखा है कि शहाबुद्दीन ने छोटे और बडे दोनो तिब्बतो को जीता था । उसने बडे तिब्बत को लद्दाख और छोटे तिब्बत को बालतिस्तान की संज्ञा दी है । यह भी लिखा है कि दोनो देश काशगर के अधीन थे (कशीर . १ : १३७) । सूफी ने किसी आधार ग्रंथ का सन्दर्भ नही दिया है ।

तबकाते अकबरी मे उल्लेख है : 'तिब्बत के हाकिम ने उसकी सेवा मे उपस्थित होकर, उससे निवेदन किया कि शाही सेना उसके राज्य को हानि न पहुँचाये (त० : तै० भा० : १ : ५१३) ।'

फिरिस्ता लिखता है—'छोटे तिब्बत का राजा शहाबुद्दीन की विजयो का समाचार सुनकर उसकी सेवा मे दूत भेजा । निवेदन किया उसके ऊपर आक्रमण न किया जाय (हिस्ट्री ऑफ राइज ऑफ मुहम्मडन पावर इन इण्डिया : ४ ४५९ लण्डन) ।'

छोटा तिब्बत का अर्थ उस समय बलूचिस्तान लगाया जाता था । उसका अर्थ लद्दाख नही था । मुगल इतिहासकार बडे तिब्बत को लद्दाख और छोटे तिब्बत को बलूचिस्तान लिखते हैं (ए स्टडी ऑन क्रोनोलॉजी ऑफ लद्दाख : ११५) । बडे तिब्बत अर्थात् लद्दाख का राजा इस समय ब्लो–ग्रोस–मकोग ल्देन था । उसने सन् १४४०–१४७० ई० तक राज्य किया था । शहाबुद्दीन का लद्दाख पर आक्रमण इसी राजा के काल मे हो सकता है । परन्तु तिब्बत के इतिहास से आक्रमण की पुष्टि नही होती ।

जोनराज के वर्णन से ध्वनि निकलती है कि शहाबुद्दीन से भौट्टो के साथ युद्ध नही हुआ था । बिना संघर्ष ही सुलतान लौट आया था । परसियन इतिहासकारो के वर्णन की पुष्टि किसी तत्कालीन इतिहास-ग्रन्थो अथवा अन्य प्रमाणो से नही होती ।

पाद-टिप्पणी :

३८८ (१) सिन्धुधारा : छोटा या बडा दोनो तिब्बत से लौटते समय सिन्धु नदी पडती है । श्रीनगर-लेह मार्ग पर जोजिला पास पडता है । मैं दो बार लेह गया हूँ । एक बार हवाई जहाज तथा दूसरी बार लेह–श्रीनगर सड़क बन जाने पर सडक से । सिन्धु नदी की धारा बहुत तेज है । जोनराज ललितादित्य के समान शहाबुद्दीन की विजययात्रा मे सिन्धु धारा को स्तम्भित करने का उल्लेख करता है ।

समुद्र का जल ललितादित्य की विजययात्रा के समय स्तम्भित हो गया था (रा० : ४ : १५७) । एक दूसरा उदाहरण जल स्तम्भित करने का और मिलता है । चंकुण ने नदी का जल एक मणि जल में फेंक कर स्तम्भित किया था । सेना पार चली गयी थी (रा० : ४ : २४८–२५१) ।

एवं नित्यजयोद्योगात् स्वदेशः परदेशवत् ।
परदेशास्तु तस्यासीत् स्वदेश इव भूपतेः ॥ ३८९ ॥

३८९ इस प्रकार नित्य विजयोद्योग के कारण इस राजा के लिये स्वदेश परदेश तथा परदेश स्वदेश तुल्य हो गया था।

प्रतापेनेति सम्पाद्य दिङ्मुखे तिलकश्रियम् ।
व्यधात्प्रविश्य कश्मीरान्स पौरनयनोत्सवम् ॥ ३९० ॥

३९० प्रताप द्वारा दिशाओं[1] के मुख में तिलक शोभा सम्पन्न कर उसने काश्मीर में प्रवेश करके पुरवासियों का नयनोत्सव सम्पन्न किया।

बाइबिल मे जल स्तम्भन की कथा मिलती है। महात्मा मूसा अपनी जाति इसराइल के साथ मिस्र त्याग कर चले। हिरोत के सम्मुख पीठा मे शिविर लगाया। यह स्थान मिगदोल एवं समुद्र के मध्य है। फरोहा ससैन्य तथा ४०० रथो के साथ इसराइलियो का पीछा करता हुआ बाल मिसोन स्थान तक पहुँच गया। विपत्ति एवं जीवन-भय उपस्थित देखकर महात्मा मूसा ने हाथ उठाया। जल स्तम्भित हो गया। बीच मे सूखा मार्ग निकल आया, इसराइलियो का विशाल दल पार चला गया। फरोहा भी फटे जल मार्ग से चला। महात्मा मूसा ने पुन हाथ उठाया, जल एकाकार हो गया। इस अभियान मे फरोहा अपनी विशाल सेना तथा रथारोहियो के साथ समुद्रगर्भ मे डूब गया।

पाद-टिप्पणी :

३९० (१) दिशा : दिग्विजय का जो विस्तृत वर्णन जोनराज ने किया है, वह एक कवि किंवा राजस्थान के किसी दरबारी, चारण, किंवा भाट के वर्णन शैली से मिलता है। जिसमे स्वामी के गौरव को बढा-चढा कर लिखा और गीत बना कर गाया जाता है।

बहारिस्तान शाही की पाण्डुलिपि मे उल्लेख किया गया है कि शहाबुद्दीन के बहुत गुण हैं जिनका वर्णन 'वही' मे किया गया है। 'वही' शब्द महत्त्वपूर्ण है। चारण, भाटो आदि के समान 'वही' भी लिखी जाती थी जिनमे राजाओ के चरित तथा उनका गौरवगान रहता है। काश्मीर मे प्रतीत होता है, उस समय राजस्थान आदि के सूत, चारण, बन्दी, भाटो के समान स्तुति एवं चरित लिखने की प्रथा थी और उन्हे लिखा जाता था। बहारिस्तान शाही सन् १६१४ ई० की रचना है। उसमे 'तारीखे वही' का उल्लेख है। यह पुरातन प्रशस्ति एवं वंशावली के समान रचना रही होगी। हिन्दूकाल मे वह चारणो आदि द्वारा लिखी जाती थी और मुसलिम काल मे भाटो आदि ने लिखना आरम्भ किया होगा। बहारिस्तान शाही के इस उल्लेख से पता चलता है कि परसियन इतिहासकारो ने तत्कालीन दरबारी शायरो, कवियो एवं भाटो की रचना जो उस समय प्रशस्ति किंवा वंशावली वर्णन रूप मे उपस्थित थी अपनी तारीख लिखने के समय राजतरङ्गिणियो के अनुवाद के साथ उनका भी उपयोग किया था। बहारिस्तान शाही मे वही की परिभाषा दी गई है जो काश्मीरी जबान मे लिखी गई थी— 'व दर तारीखे 'वही' कि बकलम कश्मीरी मरकूम अस्त'—(पाण्डु० १६-१९)।

वास्तविकता यह है कि शहाबुद्दीन ने उत्तर दिशा मे गिलगिट, दर्दिस्तान, बलूचिस्तान, पूर्व दिशा मे लद्दाख, तथा दक्षिण दिशा मे किश्तवार, जम्मू, चम्बा एवं अन्य पंजाब के उत्तर-पश्चिम स्थित राज्यो पर सैनिक अभियान किया था।

बहारिस्तान शाही के अनुसार उसने पखली सवादगिर, कक्कर, बदख्शाँ, कोहिस्तान, गिलगिट, दारदू और तिब्बत जीता था। तिब्बत काशगर के अधीन था। काशगर की सेना से युद्ध हुआ था।

तस्य वर्णयतां शौर्यं प्रसङ्गादतिमानुपम् ।
अस्माकं चाटुकारित्वं शास्यते भाविभिर्जनैः ॥ ३९१ ॥

३६१ प्रसंगवश उसके अतिमानुप (दैव) शौर्य का वर्णन करते हुये, मेरी चाटुकारिता भविष्य के लोग समझेंगे।

यात्रायातः कदाचित्स दूरदेशे महीपतिः ।
अप्सरःसदृशीं कांचिच्छ्रुतवान् हरिणेक्षणाम् ॥ ३९२ ॥

३६२ किसी समय दूर देश में यात्रा पर आये हुये, उस महीपति ने अप्सरा सदृश किसी मृगनयनी के विषय में सुना।

निजानुगान् वञ्चयित्वा राजा युक्त्या कयाचन ।
अथैकाकी स तं देशमविशद्भोगलालसः ॥ ३९३ ॥

३६३ अपने अनुचरों को किसी युक्ति द्वारा ठग कर, भोग की लालसा से, राजा एकाकी, उस देश में गया।

नर्मणा मोहयित्वा तां द्वितीय इव मन्मथः ।
मनोरथानसिञ्चत् स तदोष्ठामृतपानतः ॥ ३९४ ॥

३६४ द्वितीय *मन्मथ* सदृश, उस राजा ने नर्म वाक्यों द्वारा, उसे मोहित करके, उसके *अधरामृतपान से, मनोरथों को सिंचित किया।*

काशगरी फौज आपस में लड़ गई। वे संख्या में अधिक थे। तथापि काश्मीर सेना से हार गये (पाण्डु० : पृष्ठ १६–१९)।

हैदर मल्लिक लिखता है—'तिब्बत पखली के आसपास के इलाकों को जीता था। हर परगना में मजबूत किला बनवाया। काबुल में विद्रोह हुआ उसने चन्दार को विद्रोह दबाने भेजा। काबुल बदख्शां लिया तथा काशगर के खाँ के साथ युद्ध हुआ। सेना कम रहने पर भी जीत गया। किश्तवार के मार्ग से आकर पजाब पर आक्रमण किया। लाहौर तक पहुच गया।'' लुधियाना के पास फिरोज तुगलक की सेना सामने आयी। सुलह हो गयी। सरहिन्द से काश्मीर तक की भूमि सुलतान के अधिकार में आ गयी। चन्दार लौटते वक्त मार्ग मे मर गया। उसकी लाश लयगान से चादुरा लायी गयी। वही दफन किया गया। पाण्डु० : ४१–४२)।'

डॉ० सूफी का यह लिखना कि सुलतान ने बदख्शां, काशगर, खुरासान, हेरात, काबुल, गजनी तथा जलालाबाद आदि विजय किया था भ्रामक है। उसने अपनी पुस्तक कशीर में शहाबुद्दीन के विजित प्रदेशों का जो मानचित्र दिया है, उसमें काशगर विजय चित्र के बाहर रखा गया है। मानचित्र के विजित क्षेत्रों की सीमा पर पश्चिम–हेलमन्द नदी, तूरिस्तान, बलूचिस्तान, पूर्व–यमुना नदी, तिब्बत, दक्षिण–अरब सागर, राजस्थान तथा उत्तर मे काशगर, यारकन्द, तकला, मकन, रेगिस्तान दिखाया गया है (कशीर : १३८)।

उक्त काल्पनिक विजय पीर हसन के दिग्विजय वर्णन के आधार पर लिखा गया है। उसका समर्थन ऐतिहासिक तथ्यों तथा अनुसन्धानों से अभी तक नही हो सका है। पीर हसन ने भी इसी प्रकार का वर्णन किया है। हसन को आधुनिक इतिहास तथा अनुसन्धानों का ज्ञान नही था। उसने अपना मत परसियन तारीखों एवं राजतरंगिणियों के अनुवादों पर आधारित किया है। उसने राजा शिवप्रसाद के 'इतिहास तिमिरनाशक' पर भी आधारित किया है। वह कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। सर्वसाधारण के साधारण ज्ञान के लिये लिखा गया था (पीर हसन : २ : १७२)।

अपश्यन्तस्तमाशङ्क्य हतं केनापि वैरिणा ।
अथ कोपभ्रमावेशमुद्भटास्तद्भटा ययुः ॥ ३९५ ॥

३९५ किसी वैरी द्वारा उसके मारे जाने की आशङ्का से, उसके उद्भट भट[1] कोपाविष्ट हो गये ।

अन्विष्यद्भिस्तदश्वेन निबद्धेनाङ्गनाद्बहिः ।
समभाव्यत तै राज्ञो वैरिभिर्निर्जयः कृतः ॥ ३९६ ॥

३९६ अन्वेषण करते, वे लोग प्राङ्गण के बाहर निबद्ध, उसके अश्व से, राजा का शत्रुओं द्वारा निर्जित होना जान लिया ।

शौर्यस्वाम्यनुरागाभ्यां विधातुं युद्धमुद्भटैः ।
तद्भटैः सदनं रुद्धमबद्धकवचान्तरैः ॥ ३९७ ॥

३९७ शौर्य एवं स्वामी के अनुराग से बिना कवच निबद्ध किये, उसके तेजस्वी वीरों ने युद्ध करने के लिये सदन रुद्ध कर लिया ।

त्रसद्भिरिह तत्सिंहनादपूर्णात्ततः पुरात् ।
कृतास्कन्देषु शूरेषु शत्रुभिर्विपिनं गतम् ॥ ३९८ ॥

३९८ शूरों के आक्रमण करने पर, उनके सिंहनाद से पूर्ण, उस नगर से त्रस्त, शत्रु विपिन (जंगल) में चले गये ।

अथाश्वास्य प्रियां तां तु शत्रून्मत्वा समागतान् ।
स्वशौर्यं सफलीकर्तुं योद्धुं राजा विनिर्ययौ ॥ ३९९ ॥

३९९ उस प्रिया को आश्वासन देकर तथा शत्रुओं को आए हुए जानकर, राजा अपने शौर्य को सफल करने के लिये युद्ध हेतु निकल पड़ा ।

शाहाबदेनमालोक्य तं तेषामनुजीविनाम् ।
चित्तैः प्रीत्या मुखैर्भीत्या नीत्या मूर्धभिरानतम् ॥ ४०० ॥

४०० उस शाहाबदेन को देखकर, उन अनुजीवियों के चित्त प्रीति से, मुख भय से तथा मूर्धा नीति से आनत हो गये ।

एवं स सजयस्तम्भयूपान्रणमखान्बहून् ।
हतवैरिपशूंश्चक्रे स्वप्रतापानलार्चिषः ॥ ४०१ ॥

४०१ इस प्रकार उसने अनेक रणयज्ञों को सम्पन्न किया जिनमें विजय स्तम्भ यूप[1], शत्रु (बलि) पशु एवं उसका प्रताप ही अग्नि हुए ।

पाद-टिप्पणी

३९५ (१) उद्भट भट लड़ाकू वीरों से तात्पर्य है ।

पाद टिप्पणी :

४०१ (१) विजययूप : प्राचीन काल में यूप यज्ञ का स्थूण कहा जाता था । प्राय बाँस या खदिर काष्ठ का बनाया जाता था । किन्तु इससे बाँधा

स्वदेशे मन्त्रिणोस्तस्य कोटभट्टोदयश्रियोः ।
समरेषु भरस्त्वासीचन्द्रडामरलौलयोः ॥ ४०२ ॥

४०२ स्वदेश में मन्त्री कोटभट्ट[1] एवं उदयश्री[2] पर तथा समरों में चन्द्रडामर[3] एवं लौल[4] पर निर्भर हुआ था।

जाता था। कालान्तर मे विजय स्मारक, विजय स्तम्भ, द्विग्विजय प्रतीक स्वरूप गाडा जाने लगा। दक्षिण भारत मे विजय स्तम्भो का उल्लेख अभिलेखो मे मिलता है (साउथ इण्डियन टेम्पुल इन्सक्रिप्सन्स ' टी० एन० : सुब्रहमण्यम् : भाग ३ : खण्ड २ : पृष्ठ १०४ ई० ई० ग्लासोरी : पृष्ठ ३७२)। राजा ललितादित्य ने विजय स्मारक स्तम्भो को रोपित किया था।

ऋग्वेद (२ : ५ . ७) तथा परवर्ती साहित्य मे यज्ञ पशुओं के बाँधने के लिये जिन खूटो किंवा स्तम्भो का उपयोग किया जाता था उसे यूप कहा गया है (अथर्व० : ९ : ६ : २२, १२ : १ : ३८, १३ : १ : ४७)। यूप शब्द यज्ञ स्थूण के लिये रूढ हो गया है। कहते हैं। उसमे बलिपशु या प्राणि मेध के समय बाँध दिया जाता था।

यूप का प्रयोग विजय स्मारक स्वरूप भी पुरा साहित्य मे मिलता है। प्राचीन अभिलेखो मे यूप का उल्लेख मिलता है। उन पर स्मारक स्वरूप अभिलेख खुदे रहते है। प्रारम्भ मे यह यज्ञ के स्मारक स्वरूप गाडा जाता था। राजस्थान तथा मध्यप्रदेश के ग्रामो मे तीर्थयात्रा कर लौटने किंवा यज्ञ पूर्ण होने पर नाम, तिथि आदि के साथ छोटा खम्बा पत्थर का गाड देते हैं। सती होने के स्थान पर राजस्थान मे यूप गाडे जाते हैं। युद्ध स्थल के वर्णन के साथ उन पर वंश परिचय नाम तिथि आदि लिखा रहता है। इस प्रकार के स्तम्भ किंवा पत्थर गडे मैंने बहुत देखा है (द्रष्टव्य ई० आई० २, २४, २३)।

इस प्रकार के यूप गाडनेकी प्रथा भारत के बाहर बहुत प्रचलित थी। मिश्र के सम्राट विजय करते थे तो स्मारक स्वरूप विजयस्तम्भ किंवा यूप गाडते थे। मिश्र के पश्चात् यह प्रथा यूनानी तथा इरानी लोगो मे भी प्रचलित हो गयी। यूनानी इतिहासकारो को इस प्रकार के यूप अरब तथा फिलस्तीन मे भी गडे मिले थे। यह प्रथा कालान्तर मे भारत मे फैल गयी। यह प्रथा भारतीय थी अथवा विदेशी यह अनुसन्धान का विषय है। अशोक ने भी स्तम्भ अपने राज्यो मे तथा जहाँ विजय किया था उन देशो मे रोपित किया था। यद्यपि उनका उद्देश्य धार्मिक था।

पाद टिप्पणी :

४०२ (१) कोटभट्ट : श्री वमजायी कोटभट्ट को ललितादित्य का वंशज मानते हैं किन्तु किसी ग्रंथ किंवा लेख का प्रमाण उपस्थित नही करते (वमजायी : २०३)।

(२) उदयश्री : परसियन इतिहासकारो ने उदयश्री का नाम उद्दशरबल दिया है। वह भी मन्त्री था।

(३) चन्द्र डामर : बहारिस्तान शाही मे चन्द्र डामर के स्थान पर चन्द्र मल्लिक नाम दिया गया है। हैदर मल्लिक ने नाम चन्द्र दर दिया है।

(४) लौल : परसियन इतिहासकारो ने नाम शहर बल दिया है।

चन्द्र डामर तथा लौल सुलतान के सेनापति थे। अचल रैना एक और सैनिक अधिकारी का नाम इस सन्दर्भ मे मिलता है। परसियन इतिहासकारो ने उसे रामचन्द्र का वंशज मान लिया है। सुलतान ने चादुरा ग्राम उसे जागीर मे दिया था। नवादरुल अखबार मे सैय्यद हसन पुत्र सैय्यद ताजुद्दीन जो सैय्यद अली हमदानी के चचाजात भाइयो का वंशज था उसका नाम सुल्तान के एक सेनापति के रूप मे दिया है। पीर हसन भी यही लिखता है—'सैय्यद

देवशर्मान्वयोदन्वचन्द्रो राजार्पितं मुहुः ।
वैराग्याद्विभवं त्यक्त्वा कोटशर्मा वनं ययौ ॥ ४०३ ॥

४०३ देवशर्मा[1] के यशोदधि का चन्द्र कोटशर्मा[2] राजा द्वारा समर्पित वैभव को वैराग्य के कारण त्यागकर वन चला गया।

हसन बहादुर वल्द सैय्यद ताजुद्दीन बेहकी को जो अमीर कबीर के चचाजाद भाइयों की औलाद में से थे मीर लश्कर बनाया (उर्दू : अनुवाद : १५४)।' फतूहात के अनुसार सैय्यद हसन शहाबुद्दीन का दामाद था।

परसियन इतिहासकारों ने उसके एक और सेना-नायक का नाम दिया है। उसका नाम अचल था। उसका पूर्व नाम अचलदेव था। वह रावणचन्द्र का पुत्र था। रावणचन्द्र कोटा रानी का धात्री-भ्राता एवं रामचन्द्र का पुत्र था। रावणचन्द्र ने इसलाम कबूल कर लिया था। अचल ने भी इसलाम कबुल कर लिया था। उसका मुसलिम नाम अब्दल रैन किंवा रीना था (सूफी : १ : २५; १२७)।

बहारिस्तान शाही में रावणचन्द्र को कोता (कोटा) रानी का 'ब्राहर' लिखा गया है। रिंचन ने लार और तिब्बत की जागीर उसे दी थी। जिसे इज्जत देना होता था उसे वे जागीरें दी जाती थी। 'रैना' का अर्थ वहाँ पर मालिक और साहिब दिया गया है। रैना को रैनू भी कहते थे—'मानी रैना' मालिक व साहब अस्त'—(पाण्डु० : ११)।

हैदर मल्लिक भी कोता (कोटा) रानी का भाई रावणचन्द्र को लिखा है। रावणचन्द्र 'रैना' का अन्न न लिखकर लिखता है कि रावणचन्द्र को 'रिंचन' या 'रेंचू' या 'रेंचू' ने मलिक का खिताब दिया था। उसे हूर दो तिब्बत तथा लोरलार की जागीर दिया था (पाण्डु० : पृष्ठ ३६-३७)।

जोनराज इसकी पुष्टि नहीं करता। उसने रावणचन्द्र को न तो रामचन्द्र का पुत्र और न कोटा का धात्री-भ्राता ही लिखा है। डॉ० सूफी अपने मत के समर्थन में कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करते।

पाद-टिप्पणी :

४०३. श्लोक संख्या ४०३ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ४६२ एवं ४६३ और मुद्रित है। उनका भावार्थ है—

(४६२) 'सम्पत्ति की वृत्ति द्वारा कोटभट्ट यत्न-पूर्वक याचक मण्डल को सन्तुष्ट कर वन-व्योम में (वनाकाश) नियम मारुतों से अपने को लालित किया।

(४६३) 'कोटशर्मा ने दान जल से धर्म वृक्ष को इस प्रकार सींचा जिससे कि उसके फल के भोग करने वालों के रोग नष्ट हो गये।'

(१) देवशर्मा : राजा जयापीड (लौ० ३८२८ = सन् ७५२ ई०) का मन्त्री था। उसका उल्लेख कल्हण ने (रा० : ४ : ४६६, ५८३; ७ : १३७०) किया है। वह मित्रशर्मा का पुत्र था। जयापीड के साथ दिग्विजय यात्रा में गया था। राजा जयापीड एकाकी प्रयाग में अपनी सेना, मित्रों, सहयोगियों, भृत्यों आदि को छोड़कर रात्रि में सैन्य मध्य से निकल कर और पूर्व की ओर आगे बढ़ा। वह एकाकी यात्रा कर रहा था। वह गौड राजाश्रयी पौण्ड्रवर्धन राज्य में प्रवेश किया। वहाँ का राजा जयन्त था। नगर के कार्तिकेय मन्दिर में उसने कमला नर्तकी का नृत्य देखा। कमला राजा पर मोहित हो गई। अपनी सखी को कमला ने राजा के पास पर्ण वीटिका के साथ भेजा।

सखी के माध्यम से राजा कमला नर्तकी के निवासस्थान पर गया। नगर को निरन्तर ग्रस्त करते एक सिंह को मार कर उसने वहाँ के राजा एवं नागरिकों का भय दूर किया। राजा जयन्त प्रसन्न हो गया। राजा जयापीड का रहस्य खुल गया। जयन्त ने उसके स्वर्ण कंकण से जो सिंह का वध करते समय सिंह के मुँह में हाथ घुसड़ने के कारण फँसा कर रह गया था; उससे जयापीड को नागरिकों तथा राजा ने जान लिया। राजा ने अपनी

कन्या कल्याणी देवी का विवाह जयापीड के साथ कर दिया। जयापीड ने पञ्चगौड नरेशो को जीतकर अपने श्वशुर राजा जयन्त के राज्य की सीमा विस्तृत की। इसी समय जयापीड को खोजता तथा उसके द्वारा त्यक्त सैनिको को संरक्षित करता, मित्रशर्मा का पुत्र अमात्य देवशर्मा राजा के पास पहुँचा। राजा ने देवशर्मा के सुझाव पर अपनी दोनो पत्नियों कमला और कल्याणी देवी के साथ, काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे उसने कान्यकुब्ज विजय किया। राजा की अनुपस्थिति मे राज्य हड़पने वाला जज्ज राजा से युद्ध करने के लिए शुष्क लेत्र क्षेत्र मे दारुण संग्राम किया। श्री देवग्राम चाण्डाल ने जज्ज का संग्राम मे वध कर दिया। राजा जयापीड ने काश्मीर मण्डल का पुनः राजसिंहासन सुशोभित किया।

कालान्तर मे राजा ने दिग्विजय की उत्कट इच्छा से काश्मीर मण्डल से प्रस्थान किया। वह पूर्व समुद्र तट तक पहुँच गया। राजा ने पूर्व दिक्पति भीमसेन के दुर्ग मे छद्मवेश से प्रवेश किया। जज्ज का भ्राता सिद्ध दुर्ग मे रहता था। उसने छद्मवेशी राजा को पहचान कर, राजा भीमसेन को सूचित कर दिया। राजा जयापीड दुर्ग मे बन्दी बना लिया गया। इसी समय भीमसेन के मण्डल मे लूता रोग व्याप्त हो गया।

लूता छूत अर्थात् स्पर्शसचारी बीमारी थी। रोगग्रस्त प्राणी पृथक कर दिया जाता था। राजा ने मुक्ति का अच्छा अवसर देखकर पित्तोद्रेकी दवा मंगा कर सेवन किया। उसके शरीर पर वर्ण निकल आये। 'राजा लूता रोग से आक्रान्त हो गया है'—जान कर उसे बन्दीगृह तथा राज्य मण्डल से बाहर निकाल दिया गया। अनन्तर राजा ने अपनी चतुराई तथा कुशलता से उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

नेपाल पालक, मायावी नृप अरमुडी ने राजा जयापीड को अपने षड्यन्त्र का शिकार बनाया। नेपाल मे प्रवेश करते ही अरमुडी भाग गया। राजा जयापीड उसका पीछा करने लगा। मार्ग मे पड़ने वाले राजाओ पर विजय करता, अरमुडी को खोजता, आगे बढ़ता गया। अरमुडी भागता-भागता समुद्र तट पर पहुँच गया। वहाँ से और आगे बढ़ने का मार्ग नही था। उसने नदी तट पर शिविर लगा दिया। अरमुडी के सैन्य शिविर के दूसरी ओर राजा जयापीड की सेना ने भी शिविर लगा दिया।

राजा जयापीड नदी पार कर, अरमुडी पर आक्रमण करना चाहता था। नदी मे उस समय केवल जानुपर्यन्त जल था। राजा को नदी की प्रकृति का पूर्व परिचय नहीं था। सेना के साथ सरिता जल पार करने के लिए उतरा। सरिता का सङ्गम समुद्र समीप था। नदी मे जल अचानक बढ गया। सरिता अगाध हो गयी। राजा की सेना नष्ट हो गई। राजा का आभरण आदि जल मे छूट गया। राजा जल प्रवाह मे तैरता दूर चला गया। अरमुडी का षड्यन्त्र सफल हो गया। उसने दृति सन्नद्ध पुरुषो से राजा को पकड़ कर बन्दी बना लिया।

अरमुडी ने काल गण्डिका नदी तट स्थित पाषाण दुर्ग मे राजा को बन्दी बना कर रखा। वह दुर्ग इतना दुर्गम था कि उससे जीवित बाहर निकलना कठिन था। दुर्ग से कूद कर नदी मे कोई बच नही सकता था। राजा अपने जीवन से हताश हो गया था।

देवशर्मा राजा की मुक्ति के लिये सतत प्रयत्नशील था। स्वप्राणोत्सर्ग द्वारा राजा की रक्षा एव उसे मुक्त कराना चाहता था। देवशर्मा ने एक उपाय निकाला। देवशर्मा ने मधुरभाषी दूतो द्वारा अरमुडी को प्रलोभित किया। उसने लोभ दिया—'काश्मीर मण्डल का राज्य, राजा जयपीड की अपार सम्पत्ति के साथ आपको दूँगा।' अरमुडी के साथ सविद पूरी हो जाने पर देवशर्मा ससैन्य नैपाल देश मे प्रवेश किया। शिविर कालगण्डिका तट पर लगाया। स्वयं मित परिकरो के साथ नदी पार किया। राजा अरमुडी के पास पहुँचा। अरमुडी काश्मीर राज्य प्राप्ति लोभ से विमोहित हो गया था। उसने देवशर्मा का सत्कार किया।

दूसरे दिन निर्जन स्थान मे कोशपान पूर्वक राजा अरमुडी तथा देवशर्मा ने प्रतिज्ञा की। देवशर्मा

ने राजा से निवेदन किया—'जयापीड का अर्जित धन सेना मे है। किन्तु धन को वह और उसके विश्वस्त लोग ही जानते हैं'—'दान द्वारा तुम्हारा विमोक्ष होगा'—ऐसा कहकर विमोहित करते हुए राजा जयापीड से पूछूँगा—'धन कहाँ है ?' मैंने संहत सैन्य को यहाँ नही प्रवेश करने दिया है। क्योकि सेना के मध्य रहते न्यासधारियों को बान्धना अशक्य होगा। इस प्रकार एक-एक को बुलाकर उन्हे बन्दी करूँगा। हमारे भाव को जानने वाले जयापीड के सैनिक क्रोधित भी नही होगे।'

राजा अरमुडी ने देवशर्मा की बात पसन्द की। उसने देवशर्मा को राजा जयापीड से दुर्ग मे भेंट करने की आज्ञा दे दिया। बन्दी कोठरी मे पहुँचते ही, वहाँ से लोगो को हटाकर, देवशर्मा ने राजा से कहा—'राजन् आपने स्वतेज रूपी भित्ति को तो नही नष्ट कर दिया है ? क्योकि उसके रहने पर ही साहस रूपी आलेख (चित्र की) कल्पना सिद्ध हो सकती है।' राजा ने मन्द स्वर मे कहा—'देवशर्मा ! इस प्रकार निःशस्त्र स्थिति मे मैं रक्षित तेज से कौन-सा अद्भुत कार्य कर सकता हूँ ?' देवशर्मा ने उत्तर दिया—'यदि आपका तेज निर्गत नही हुआ है तो विपत्ति सागर क्षण मे पार हो सकता है।' राजा की जिज्ञासा पर देवशर्मा ने कहा—'क्या इस वातायन से नदी जल मे निपतित होकर पार जाने मे समर्थ है ? वहाँ आपकी सेना है।' राजा ने उत्तर दिया—'बिना दृति (मशक) के निपतित होकर इस जल से निकलना सम्भव नही है। ऊँचाई से गिरने के कारण दृति भी विदीर्ण हो जायगी।'

राजा ने किंचित् ठहर कर कहा—'यह उपाय ठीक नही है। मै अपमानित हूँ। बिना अपकारी का निर्मथन किये शरीर त्याग उचित नही प्रतीत होता।' देवशर्मा मुहूर्त मात्र चिन्तित हो गया। तत्पश्चात् गम्भीरतापूर्वक बोला—'महीपते ! किसी प्रकार आप दो घडी यहाँ से बाहर व्यतीत कीजिये।' राजा ने साश्चर्य पूछा—'प्रयोजन देवशर्मा ?' 'राजन !' देवशर्मा ने कहा—'मैंने सरिता संतरण का उपाय ठीक कर दिया है। उसका निशङ्क होकर आप उपयोग कीजिएगा।' राजा पायुच्छालन वेश्म मे दीर्घ-काल बाहर व्यतीत किया। पुनः कोठरी मे आया।

आश्चर्य ! राजा ने देखा—दृढ वस्त्र खण्ड से गला बान्धकर विपन्न अवस्था मे मृत देवशर्मा पडा था। देवशर्मा ने नख निर्मित गात्र के रुधिर से कण्ठ मे निबद्ध आशुकपल्लव वस्त्र के कोने पर लिखा दिया था—'सद्यः शरीर व्यापादित कर श्वासपूर्ण देह से मैं आपके लिये अभेद्य दृति हूँ। मुझ पर आरूढ़ होकर नदी पार कीजिये। आपके आरोहण हेतु उरु द्वय के बन्धन हेतु मैंने अपने उरु मे उष्णीष पट्टिका बाध दी है। उसमे प्रविष्ट हो कर शीघ्र ही जल मे कूद पडिये।'

राजा देवशर्मा के अद्भुत अश्रुत त्याग से चकित हो गया। देवशर्मा ने अपना शरीर श्वास से मशक के समान फुला दिया था। उसके पूर्व उसने अपने नाखून से वस्त्र के छोर पर सन्देश लिख दिया था। राजा सन्देश के अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य था।

राजा देवशर्मा के शरीररूपी दृति के साथ अपना शरीर मिला कर नीचे नदी जल मे कूद पडा। राजा को मशक रूपी देवशर्मा के शरीर दृति के कारण किंचित् मात्र चोट नही लगी। वह तट पर तैरता आया और सेना मे पहुँच गया। उसने अपनी शक्ति द्वारा राजा अरमुडी का विनाश कर दिया। देवशर्मा जैसा त्याग जगत मे दुर्लभ है।

(२) **कोटशर्मा :** यह देवशर्मा का वशज था। देवशर्मा के त्याग की कथा जोनराज के समय तक लोगो को स्मरण थी। अन्यथा जोनराज उल्लेख न करता। जोनराज कोई कारण नही उपस्थित करता। कोटशर्मा राजा के वैभव देने पर भी उसका त्याग कर विरक्त होकर क्यो बन चला गया ? प्रतीत होता है कि कोटशर्मा तत्कालीन परिस्थिति से निराश हो गया था। नैराश्य सर्वदा वैराग्य में परिणत हो जाता है। यही प्रतिक्रिया कोटशर्मा मे भी हुई होगी। कोटभट्ट एवं कोटशर्मा एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

तस्य दर्शयितुं राज्ञः स्वबलाधिकतां ध्रुवम् ।
कदाचित्तत्प्रजा दैवी व्यापद्गाढमपीडयत् ॥ ४०४ ॥

४०४ किसी समय, इस राजा को मानों अपना बलाधिक्य दिखाने के लिये ही, दैवी विपत्ति ने प्रजाओं को बहुत पीडित किया।

पुरोकैरविणीसूरः शूरः पादपविद्विषाम् ।
षट्त्रिंशेऽब्दे जलपूरः क्रूरो व्यप्लवत प्रजाः ॥ ४०५ ॥

४०५ छत्तीसवें (४४३६) वर्ष पुरी कैरविणी (कुमुदिनी) के लिये सूर्य, वृक्ष वैरियों के लिये शूर, क्रूर जलापूर (बाढ़) ने प्रजाओं को प्लावित किया।

नगरब्रुडनादस्रु मुञ्चन्तो निर्झरच्छलात् ।
तस्योदीपस्य महतः पर्वतास्तटतामगुः ॥ ४०६ ॥

४०६ नगर[1] के डूबने से, निर्झर के व्याज से, अश्रुपात करते, पर्वत उस महाबाढ़ के तट बन गये थे।

न स वृक्षो न सा सीमा न स सेतुर्न तद् गृहम् ।
तटस्थमपि यन्नैव जलपूरो व्यनाशयत् ॥ ४०७ ॥

४०७ तटस्थित कोई ऐसा वृक्ष, ऐसी कोई सीमा, ऐसा कोई सेतु या गृह नहीं बचा, जिसे जलापूर ने नष्ट न किया हो।

नाद्रिदुर्गाण्यपश्यत् स जातुचिद्वैरिभीतितः ।
अम्बुपूरभयात्तेषु राजा समचरत्तराम् ॥ ४०८ ॥

४०८ उस राजा ने कभी भय से, पर्वतीय दुर्गों की शरण नहीं ली, किन्तु प्लावन भय से, उनका आश्रय प्राप्त किया।

पाद-टिप्पणी :

४०५ श्लोक संख्या ४०५ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ४६६ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(४६६) 'पूर्ववर्ती भूपति ने लोहर के देखभाल हेतु जिन्हे नियुक्त किया था लोहराधिपति के भय से वे वहाँ से भाग कर चले गये।'

४०५ (१) जलापूर : जोनराज सप्तर्षि किंवा लौकिक सम्वत् ४४३६ = सन् ३६० ई० = विक्रमी सम्वत् १४१७ = शक १२८२ जलापूर किंवा बाढ़ का समय दिया है। पीर हसन जलप्लावन का समय ७३७ हिजरी देता है लिखता है कि १० हजार घर बरबाद हो गये थे (पृष्ठ १७४, उर्दू : १५६)। हैदर मल्लिक लिखता है कि सैलाब के बाद सुल्तान हिन्दुस्तान लौट गया (पाण्डु० : ४१)।

पाद-टिप्पणी :

४०६ (१) नगर : श्रीनगर के दक्षिण रुस्तम-गढी से पूर्व परीमहल, चश्माशाही, भीमा देवी, सैय्यद बाबा गोलनदीन साहेब, निशात बाग, शालीमार से हरवान तक डल लेक के तट पर पर्वतमाला है। वितस्ता दक्षिण पूर्व से बहती आती है। पुराधिष्ठान अर्थात् पण्डरेथन होती उत्तर की ओर बहती पश्चिम दिशा मे निकल जाती है। मैं यहाँ बाढ़ के समय रहा हूँ। उस समय डल लेक तथा वितस्ता का पानी तटीय सड़क तक आ गया था, जो पाण्डोचन, पण्डरेथन, महारारित डल के तट होती हरवान तक

पीते तत्तेजसेवाम्बुपूरे शान्ते मितैर्दिनैः।
भूयस्तद्विप्लवाशङ्की सोऽचिकीर्षद्गिरौ पुरीम् ॥ ४०९ ॥

४०९ थोड़े दिनों में, उसके तेज द्वारा पीत तुल्य अम्बुपूर (बाढ़) के शान्त होने पर, पुनः उस विप्लव की आशंका से, उसने पर्वत[1] पर, पुरी निर्माण की इच्छा की।

नाम्ना लक्ष्म्या महिष्याः स प्रसिद्धां नगरीं व्यधात्।
शारिकाशैलराजस्य मूले पुण्यजनाश्रिताम्।
यामद्राक्षरीत्तरां लोकः सुमेरोरलकामिव ॥ ४१० ॥

४१० उसने शारिका[1]शैलराज के मूल में महिषी लक्ष्मी[2] के नाम से प्रसिद्ध नगरी निर्मित की, जिसमें पुण्यशाली लोग बसे थे और जिसे लोग सुमेरु[3] के मूल में स्थित अलका सदृश देखते थे।

पहुँचती है। इस सडक के तट पर कहीं-कहीं जल लहरा रहा था। यदि नगर मे बाढ आ जाय, तो डल लेक आदि मिलकर उक्त पर्वत की ढाल को ही बड़े जल का तट मान लिया जायगा।

पाद-टिप्पणी :

४०९. (१) पर्वत : शारिका पर्वत = हरीपर्वत।

पाद-टिप्पणी :

४१०. (१) शारिका शैल=परसियन इतिहासकारों ने इसका नाम कोहे-मारान लिखा है। शारिका देवी देवस्थान के कारण शारिका शैल नाम पडा है। हरि पक्षी का नाम भी शारिका किंवा मैना है।

हुएन्त्साग के पर्यटन वर्णन मे श्रीबील के अनुवाद पृष्ठ १५८ टिप्पणी क्रम संख्या १२६ मे लिखा गया है—'पर्वत हरी पर्वत या हार पर्वत जिसे तख्त सुलेमान कहते है।' यह गलत है। तख्त सुलेमान नाम शंकराचार्य पर्वत का दिया गया है। शारिका पर्वत पर सम्राट् अकबर ने दुर्ग निर्माण कराया था। शारिका दुर्ग अच्छी अवस्था मे है। इस पर्वत पर गणेश, काली, चक्रेश्वर तथा हारी किंवा शारिका देवी का मन्दिर है। यहाँ एक बहुत गहरा कुँआ भी है। शारिका पर्वत के पीछे पोखरी बनी है। पर्वत के ढाल पर शारिका देवी का तीर्थस्थान है। मैं यहाँ आया था तो राज्य की ओर से देवी तक पहुँचने के लिये पत्थर की सीढियाँ बनायी जा रही थी। सन् १९६२ ई० मे दूसरी बार आया तो सीढियाँ बन चुकी थी। शिखर पर स्थित देवी तक पहुँचने के लिये जहाँ से सीढियाँ आरम्भ होती हैं वहाँ एक आधुनिक मन्दिर बना है। मन्दिर के बाहर शिवलिंग है। भीतर देवी की मूर्ति है। मन्दिर के नीचे सडक के समीप पाँच सात ब्राह्मणों के मकान हैं। यहाँ एक ढका जलाशय है। यही से आबादी जल ग्रहण करती है।

शारिका मन्दिर बाहर से देखने पर हरिपर्वत दुर्ग के अन्तर्गत एक दुर्ग अथवा कोट मालूम पडता है। राजा गुलाब सिंह ने काश्मीर विजय के पश्चात् इसका निर्माण कराया था। शारिका देवी की गढ़ी यहाँ कोई मूर्ति नही है। एक समकोण अनगढ शिलाखण्ड खडा है। परन्तु यह दूर से खडे पक्षी के समान मालूम पडता है। एक सिन्दूर रंजित शिलाखण्ड खडा है उस पर श्रीचक्र अंकित है। सिन्दूर से इतना ढक गया है कि रेखा का दर्शन तक नही होता। पुजारियों का कथन है कि कभी-कभी श्रीचक्र की रेखायें स्वतः उभड आती है। मैंने चक्र के कोणों को गिनना चाहा, परन्तु चक्र के कुछ कोणों के अतिरिक्त शेष सिन्दूर के मोटे स्तर से ढँक गये है।

दूर से देखने पर शिलाखण्ड का रूप शारिका पक्षी के आकार तुल्य लगता है। शिलाखण्ड मे पक्षी का चंचु आकार स्पष्ट लक्षित होता है।

शारिका माहात्म्य मे एक कथा दी गयी है। देवी दुर्गा ने मैना का रूप धारण कर लिया था। सुमेरु पर्वत से देवी शैल अपने चोंच मे दबाकर उठा लायी। वह दैत्यों के द्वार को बन्द करना चाहती थी। दैत्यगण नरक निवासी थे। इस स्थान पर नरक

द्वार किंवा मार्ग था। उसी द्वार पर देवी ने शैल रख दिया। दैत्यो का इस द्वार से निकलना बन्द हो गया। देवी स्वय इस पर्वत पर निवास करने लगी। उनके निवास के कारण पर्वत का नाम शारिकापर्वत पड गया। कथासरित्सागर मे भी इस कथा का वर्णन किया गया है।

देवी का स्थान उत्तर-पश्चिम शैल पर है। यहा उनकी पूजा सुदूर प्राचीन काल से होती चली आ रही है। इस पर्वत का दूसरा नाम प्रद्युम्न पर्वत है। कल्हण ने प्रद्युम्न पर्वत के नाम से इसका उल्लेख किया है (रा० ३ : ४६०, ४५२)। कथासरित्सागर की कथा प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध एवं उषा के प्रेम से सम्बन्धित है। कल्हण एक पाशुपतव्रती लोगो के मठ का भी उल्लेख करता है। उसे रणादित्य ने *निर्माण कराया था*। पूर्वीय ढाल पर जहाँ मुकद्दम शाह तथा आखुनमुल्ला शाह की जियारतें बनी हैं, उन स्थानो पर पूर्वकाल मे मन्दिर था। उन्हे नष्ट कर उनके स्थान पर उनके ही सामानो से जियारतो का निर्माण किया गया है। मैंने उसका विस्तार के साथ वर्णन *रा० : खण्ड १ मे किया है।*

नवमी के पर्व पर शारिका पर्वत पर उत्सव मनाया जाता है। यह दिन देवी का जन्म दिन माना जाता है। प्रात.काल से ही इस दिन शारिका शैल की यात्री परिक्रमा करते हैं। इसी दिन यहाँ एक *बड़ा हवन भी किया जाता है। शृङ्गीश सहिता मे* शारिका परिच्छेद मे विस्तृत वर्णन किया गया है।

शारिका देवी की अष्टादश भुजायें हैं शारिका माहात्म्य का हिन्दी अनुवाद हो चुका है। पं० साहिब राम ने शारिकास्तव भी लिखा है।

पर्वत के धुर दक्षिण कोण पर एक चट्टान है। वह भीमा स्वामी गणेश की मूर्ति कही जाती है। मै यह देखकर चकित रह गया कि यहाँ भी कोई गढित गणेश की मूर्ति नहीं है। समस्त चट्टान सिन्दूर से रँगी है। *कल्हण* प्रवरसेन द्वारा निर्मित प्रवरपुर के प्रसग मे एक कथा का वर्णन करता है। प्रवरसेन ने नवीन नगर का निर्माण कराया था। राजा के आदर के कारण गणेश ने अपना मुख पश्चिम से पूर्व बदल *लिया था*। इसलिये कि वे नवीन नगर का अवलोकन करते रहें। जोनराज के बम्बई की प्रति के श्लोक ७६६ मे वर्णित श्लोक की कथा मान लिया जाय तो सिकन्दर बुतशिकन के समय भीमा स्वामी गणेश ने परीशान होकर अपना पीठ नगर की ओर कर लिया था। अतएव वर्तमान चट्टान उनका पीठ-प्रदेश है। *यही कारण है कि गणेश की आकृति शैल*-खण्ड मे नहीं दिखायी देती है।

(२) लक्ष्मीपुरी : महिषी लक्ष्मी के नाम पर शारिका शैल मूल मे शहाबुद्दीन सुलतान ने एक नगरी का निर्माण कराया। शारिका किंवा हरिपर्वत के मूल मे यह नगर शारिका पर्वत के नीचे-*अर्थात् पर्वतमूल मे था* (*म्युनिख पाण्डु० : ५६*)। श्री बजाज का मत है कि जहाँ यह नगर आबाद किया गया था उसे आज कल देवियागन कहते हैं (डाटर्स ऑफ वितस्ता : १४१)।

नगर शैल के किस दिशा मे था इसका कोई संकेत जोनराज ने नही दिया है। डॉ० सूफी ने इस नगर के विषय मे लिखा है—'हरिपर्वत के मूल मे जहाँ शारिका देवी का मन्दिर है उसी के आस पास यह नगर था (पृष्ठ : १३९)।' किन्तु सूफी का यह अनुमान मात्र है। उन्होने कोई प्रमाण अपने कथन की पुष्टि *मे नही उपस्थित किया है*। (विशेष द्रष्टव्य : शारिका-स्तव : १ : २ : ४१४६ १५ : एम०पी० : शारदा पाण्डुलिपि : हिन्दू विश्वविद्यालय)।

(३) सुमेरु : डॉ० परमू का यह लिखना ठीक नही है कि जोनराज ने स्थान का नाम सुमेरु रखा है। जोनराज ने सुमेरु पर्वत से शारिका पर्वत की उपमा मात्र दी है (पृष्ठ : ९६ नोट ३२)।

जहाँगीर ने कोहे-मारान को शारिका पर्वत माना है (तुजुके जहाँगीर : २, ३५०)। इस समय काश्मीरी मे उसे हरीपर्वत कहते है जो वास्तव मे हारी पर्वत है। *हारी का अर्थ पक्षी होता है।* शारिका पक्षी है। अकबर ने यहाँ के बसे नगर का नाम नगर नगर रखा था।

स्वौदार्यानुगुणं राजा निर्माणमविलोकयन् ।
वितस्तासिन्धुसम्भेदे स्वनाम्ना स पुरीं व्यधात् ।
प्रतिबिम्बच्छलात्तोये त्रपया स्वर्निमज्जति ॥ ४११ ॥

४११ उस राजा ने निर्माण को अपनी उदारता के अनुरूप न देखकर, वितस्ता[1] सिन्धु संगम पर, अपने नाम से पुरी[2] बसायी (उस पुरी के) प्रतिबिम्ब के व्याज से, स्वर्ग पुरी ही मानों जल में निमज्जित हो रही थी।

पाद-टिप्पणी :

४११. (१) वितस्ता : द्रष्टव्य : श्लोक संख्या १११ तथा ११५ एवं वितस्ता माहात्म्य । भृंगीश संहिता; आदि पुराण काश्मीर खण्ड, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय : पाण्डुलिपियाँ, परिग्रहण संख्या ३३०-३५८; वितस्ता स्तोत्र : बयू० : २४१४६, १५ के० : आर०; बयू० २५ : ४१४६ : १५, एम० जे० : वितस्ता माहात्म्य तीर्थ संग्रह से उद्धृत : परिग्रहण संख्या ३३०३३५, शारदा पाण्डुलिपि ।

(२) पुरी : नगर का नाम शहाबुद्दीनपुर है। इसका वर्तमान नाम शादीपुर है (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : २२ ए०; तारीखे आजम : पाण्डु० : २९; तवारीख बीरबल कचरू : पाण्डु० : ५३; तारीखे हसन : पाण्डु० : २ : २६७) । पीर गुलाम हसन ने इसे सिहामपुर लिखा है (२ : १७४) । वह लिखता है— 'मुहल्ला शहाबुद्दीनपुरा जो इस वक्त शिहामपुर के नाम से मशहूर है, साठ हजार घरो की आबादी से आरास्ता कर अपना दारुल खिलाफा बनाया । वहाँ एक मसजिद जामा भी तैयार थी । उसकी बुनियाद अब तक भी वहाँ मौजूद है, (उर्दू अनुवाद पृष्ठ : १५६) ।'

शहाबुद्दीनपुर मैं गया हूँ । शादीपुर का प्राकृतिक दृश्य सुरम्य है । वह वितस्ता तट पर है । सम्राट् अकबर तथा जहाँगीर दोनो यहाँ के प्राकृतिक दृश्य पर मुग्ध थे । अबुलफजल ने आइने अकबरी मे और सम्राट् जहाँगीर ने तुजुके-जहाँगीरी मे इसका वर्णन किया है । वह यहाँ तक लिखता है— 'शहाबुद्दीनपुर ग्राम काश्मीर का प्रख्यात स्थान है । यहाँ एक ही स्थान पर १०० चिनार के वृक्ष लगे हैं । वे एक दूसरे से हरी-भरी एक ही भूमि पर इस तरह मिल गये हैं कि समस्त भूमि को छाया से ढँक लेते हैं । समस्त भूमि दुर्वादल से ऐसी आच्छादित है कि उस पर गलीचा बिछाना व्यर्थ होगा और वह रुचि अनुकूल नहीं कहा जायगा (तुजुक—राते—जहाँगीर : रोजर्स : १ : ९४) । यहाँ का मैदान आकाश की ओर जैसे आँखे उठाता है तथा शाद्वलता नेत्रो को मोहित करती है (अकबरनामा : श्री एच० बेवरिज : ३ : ८२९) ।' फिरिस्ता नाम शहाबुद्दीनपुर देता है (४५९) ।

वितस्ता तथा उसकी सहायक नदी सिन्धु शादीपुर गाँव के दूसरी तरफ मिलती है । वह गाँव काश्मीर से ९ मील उत्तर-पश्चिम स्थित है । यही गाँव प्राचीन शिहाबुद्दीनपुर है । कल्हण तथा जोनराज के समय अर्थात् दो शताब्दियो के मध्यवर्ती काल मे इस स्थान की स्थिति मे विशेष अन्तर नही पड़ा है । जोनराज के काल से पाँच शताब्दियाँ बीत गयी परन्तु प्राकृतिक दृश्य एवं भू-दृश्य मे कुछ विशेष अन्तर नही पड़ा है । शादीपुर के समीप देखा जाय तो तीन सरिताओ का संगम होता है । पश्चिम-उत्तर से नोर आकर वितस्ता मे मिलती है । उत्तर-पूरब से सिन्धु नदी वितस्ता मे मिलती है । वितस्ता दक्षिण-पूरब से बहती आती है और उत्तर-पश्चिम बहती चली जाती है । शादीपुर के दक्षिण-पश्चिम कोण पर प्राचीन त्रिग्रामी, वैन्य स्वामी, विष्णु स्वामी, परिहास-पुर, गोवर्धनधर के स्थान एक के पश्चात् दूसरे क्रम से पड़ते है । इसी प्रकार उत्तर-पश्चिम वितस्ता के पश्चिम अभ्यन्तरकोट, (अन्दरकोट) जयपुर या जयापीडपुर तथा द्वारावती क्रम से पड़ते है । पहले उक्त नोर नद परिवहन के काम मे आता था ।

सौधोत्सेधमयीं राशीभूतां कीर्तिमिवामलाम् ।
अलोलश्रीः पुरीं लौलडामरः स्वाभिधां व्यधात् ॥ ४१२ ॥

४१२ अलोलश्री लौल डामर ने राशीभूत निर्मल कीर्ति तुल्य, अपने नाम की पुरी[1] का निर्माण कराया, जो कि ऊँचे भवनों से समन्वित थी।

श्रीनगर से वितस्ता मे नाव चलती शादीपुर पहुँचती थी। वहाँ से उक्त नोर द्वारा सोपुर पहुँच जाती थी। इस प्रकार नावों को उलर लेक के कठिन मार्ग से नही जाना पडता था।

सुलतान शहाबुद्दीन ने नवनिर्मित नगरी शहाबुद्दीनपुर में एक मसजिद का भी निर्माण कराया। यहाँ उसने जनता के सुविधा तथा आराम के लिए उद्यान तथा तफरीहगाहो को बनवाया (म्युनिख पाण्डुलिपि : ५६; बहारिस्तान शाही : २१ बी०)।

डॉ० सूफी शहाबुद्दीन के दो नगरो का उल्लेख करते हैं। प्रथम उक्त नगर शहाबुद्दीनपुर अर्थात् शादीपुर था। दूसरा नगर शहाबपुर बसाया था। वह अब सयामपुर कहा जाता है जो श्रीनगर का एक भाग है। डॉ० सूफी ने अपने कथन का आधार तारीख हसन माना है (कशीर : पृष्ठ १३९)।

पीर हसन लिखता है—'शहाबुद्दीन ने ६० हजार मकान बनवाये थे। जामा मसजिद भी बनवायी थी। उसकी बुनियाद अभी भी मौजूद है तथा उसने काश्मीर मे फौज ठहरने के लिए १ हजार छावनी बनवायी थी। शहाबुद्दीनपुर को हसन वर्तमान शिहामपुर मानता है' (पृष्ठ : १७४)।

शादीपुर मे मैंने स्वयं देखा है। सैकडो से भी अधिक वृक्षों का बाग लगा है। स्थान इतना रम्य है कि देखते ही बनाता है।

परसियन इतिहासकार और काश्मीर के *मुसलिमो की धारणा है कि शाहजहाँ के समय चिनार का वृक्ष ईरान से काश्मीर मे लाकर लगाया* गया है। जहाँगीर के वर्णन से स्पष्ट होता है कि वृक्ष बहुत पुराने थे। बडे छतनार एक दूसरे से ऊपर मिल गये थे। वृक्ष की बडाई से इनकी आयु मापी जा सकती है। वे कम से कम पचास वर्ष के ऊपर के थे। अकबर से भी पूर्व लगे थे। शहाबुद्दीनपुर के सन्दर्भ मे वर्णन करने से यही प्रतीत होता है कि बाग शहाबुद्दीन का ही लगाया हुआ था। शहाबुद्दीन का समय सन् १३५५ से १३७३ ई० है। जहाँगीर के पिता का राज्यारोहण काल १५५६ तथा जहाँगीर का सन् १६०५ ई० है। उक्त बाग के रोपण तथा जहागीर के अवलोकन समय मे लगमग डेढ सौ वर्ष का अन्तर है। चिनार के वृक्ष दो सौ-तीन सौ वर्ष तक रह जाते हैं। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चिनार के वृक्षों का बाग शहाबुद्दीन ने *लगाया था जो जहाँगीर काल तक अपनी यौवनावस्था* मे था।

यह कहना कि चिनार के वृक्ष शाहजहाँ अथवा जहाँगीर के समय मे लगाये गये थे भ्रामक होगा। चिनार काश्मीर का ही वृक्ष है। वह यहाँ की उपज है सफेदा, देवदार, चीड, अखरोट वृक्षों के समान है। केसर ईरान, स्पेन आदि अनेक देशो मे होती है, इसी प्रकार देवदार तथा चीड ७००० हजार फिट से ऊँचाई एवं शीतप्रधान देशो मे सर्वत्र मिलता है। अखरोट भी विश्व के अनेक स्थानों मे होता है। परन्तु काश्मीर का सर्वश्रेष्ठ होता है। उसे अक्षोट कहते हैं। उसे भी नही कहा जा सकता कि एक ही देश तक उसकी उपज सीमित है। चिनार के सम्बन्ध मे इतने अधिक लोकगीत प्रचलित है कि वह काश्मीरी जीवन के साथ उत्तर प्रदेश और बिहार के आम्रमंजरी तथा आम की गाथाओ जैसा भरा पडा है।

पाद-टिप्पणी :

४१२. *श्लोक संख्या ४१२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक सख्या ४७५ अधिक मिलता है।* उसका भावार्थ है—

(४७५) 'सुधाधौत मठो से लक्ष्मी को सफल करने वालो द्वारा निर्मित पुरी वज्र से छिन्न कैलाश शिखर की शोभा उत्पन्न कर रही थी।'

आ जन्मनो लता मह्याऽम्बरसाम्याय वर्धिता ।
निहन्ति च्छयया तस्या द्युमणिस्पर्शजं सुखम् ॥ ४१३ ॥

४१३ जन्म से लेकर पृथ्वी एवं अम्बर के साम्य के लिये वर्धित लता छाया द्वारा उसके (पुरी के)[1] सूर्यस्पर्श सुख को नष्ट करती है।

या लक्ष्म्या भागिनेयीत्वाद्‌बालापालि निजान्तिके ।
लासाख्या सा समक्रामन्नृपतेश्चित्तदर्पणे ॥ ४१४ ॥

४१४ लक्ष्मी ने भगिनी पुत्री होने के कारण, जिस लासा[1] नाम्नी बाला को अपने निकट पालित किया था, वह नृपति के चित्त दर्पण में संक्रान्त हो गयी।

यश्चानुरोधतन्तुस्तं चिरं लक्ष्म्यां निबद्धवान् ।
स छिन्नो रागवेगेन लासासौन्दर्यजन्मना ॥ ४१५ ॥

४१५ जिस अनुरोध तन्तु ने चिरकाल तक, उसको लक्ष्मी में निबद्ध किया था, उसे लासा के सौन्दर्य से उत्पन्न राग ने तोड़ दिया।

बलिजिन्मूर्तिना तेन वसन्त्या वक्षसि श्रियः ।
प्रातिवेश्मिकतां नीता लासा सौभाग्यभागिनी ॥ ४१६ ॥

४१६ विष्णु रूप, उस नृप ने सौभाग्यभागिनी लासा[1] को, वक्ष पर रहने वाली लक्ष्मी का, प्रतिवेशी (पड़ोसी) बना लिया।

पाद-टिप्पणी :

४१३. (१) लोलपुरी : लोल डामर ने अपने नाम से लोलपुरी बसाया था। लोलपुरी सम्बल के समीप एक गाँव है।

पाद-टिप्पणी :

४१४. (१) लासा : लासा के पिता का नाम जोनराज तथा परसियन इतिहासकार नही देते। उस समय हिन्दू अपनी कन्याओ का विवाह मुसलमानो से करने लगे थे। यदि लासा हिन्दू थी तो सुलतान के राजभवन मे पली थी। हिन्दुओं की धार्मिक भावना शनैः-शनैः काश्मीर मे क्षीण होती गई। इस दिशा मे जो दृढ़ता राजस्थान तथा शेष भारत मे दिखाई गई थी, उसका काश्मीर मे नितान्त अभाव मिलता है। राजस्थान मे जिस प्रकार धर्म के प्रति—देश के प्रति प्रेम तथा उसके लिए मर-मिटने की भावना मिलती है, उसका काश्मीर मे दर्शन नहीं होता। राष्ट्रीय जननेता के रूप मे किसी वीर पुरुष का आविर्भाव न होना खटकता है। क्षय रोगी की तरह मरते हिन्दू धर्म की संस्कृति एवं सभ्यता शनैः-शनैः स्वतः क्षीण हो गई। किसी ओर से प्रतिरोध की भावना किसी भी काश्मीरी लेखक के लेख मे बलवती भाषा मे मिलती दिखाई नहीं देती। लासा शब्द काश्मीर मे प्रचलित था। इसका आभास राजानक लसक 'परात्रिंशिका' के लेखक से मिलता है। उक्त पुस्तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शारदा पाण्डुलिपि विभाग मे है।

'लस' पुरातन नाम अभी तक पुरुषो का प्रचलित है। लस का अर्थ सकुशल रहना होता है। काश्मीरी मुहावरा है—'लसुन-वसुन' कुशल से जीवित रहे। लासा नाम स्त्रियो का अब प्रचलित नही है।

छाया तद्रचितोदयापि दिवसश्रीभोगमातन्वतः
सूर्यात्सम्मुखतां जहाति वहति श्रेयोहरीं कालताम्।
स्त्रीणामस्ति चतुर्गुणा मतिरिति स्थाने न हन्त श्रुति-
र्यद्वा दुर्विधिपाकमाकलयितुं शक्तो न कश्चिद् ध्रुवम्॥ ४१७॥

४१७ सूर्य द्वारा सम्पादित छाया दिवसश्री का विस्तार करने वाले सूर्य की सम्मुखता त्याग देती है और उसकी श्रेय-हारिणी काल बन जाती है। स्त्रियों की मति चौगुनी होती है, यह श्रुति (कहावत) ठीक नहीं है अथवा दुर्बुद्धि के पाक का आकलन करने में निश्चय ही कोई समर्थ नहीं है।

प्राकृतस्यावताराख्यभोल्लस्यापि सुता सती।
लक्ष्मीर्लासानुरक्तेऽधादथ रोषं महीपतौ॥ ४१८॥

४१८ सती लक्ष्मी जो अवतार[1] नामक प्राकृत भोल्ल[2] की पुत्री थी, लासा में अनुरक्त राजा पर क्रुद्ध हो गयी।

पाद-टिप्पणी :

४१८. (१) अवतार : अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह वही अवतार हो सकता है जो कोटा रानी का विश्वासपात्र मन्त्री था जिसे कोटा रानी ने भट्टभिक्षण के साथ शाहमीर को देखने के लिये भेजा था और शाहमीर ने छल से दोनों को अपने बीमारी का बहाना बनाकर समीप आते ही मार डाला था (श्लोक : २७५, २७७)। अवतार की मृत्यु सन् १३३९ ई० मे हुई थी। शहाबुद्दीन सन् १३५५ ई० मे राजा हुआ था। अवतार की मृत्यु तथा शहाबुद्दीन के राज्यारोहण मे केवल १६ वर्ष का अन्तर पड़ता है। शहाबुद्दीन शाहमीर का पोता था। उसका पुरातन नाम शोर असमक था। अवतार प्रतिष्ठित पुरुष था। शाहमीर के समय अवतार की कन्या लक्ष्मी की शादी शहाबुद्दीन से होना कठिन मालूम पड़ता है, क्योंकि शाहमीर अपने सम्बन्धी की हत्या न करता। बल्कि उसे अपने षड्यन्त्र का यन्त्र बनाता। इस तर्क में अवश्य तथ्य होगा कि अलाउद्दीन सुल्तान ने अवतार के वंशजो को जो अवतार की हत्या से क्रुद्ध हुए होंगे, उनसे मेल करने के लिये इस अवतार की पुत्री को अपनी भावी रानी रूप मे प्रतिष्ठित करने के लिये सम्पर्क स्थापित किया होगा और कोटा रानी के लिये आत्मोत्सर्ग करने वाले अवतार के सम्बन्धियो का भी मनोबल तोड़ दिया होगा। यही सब कारण है कि काश्मीर के हिन्दुओं मे राज्य पुनः प्राप्ति की भावना कभी जागृत नही हुई। क्योंकि वे एक के बाद दूसरे राज—प्रसाद एवं पद-लोलुपता के कारण सुलतानो की निश्चित, सुयोजित योजना के शिकार बनते गये।

श्री बजाज अवतार भोल्ल के स्थान पर अवतार भट्ट नाम देते हैं (पृष्ठ : १४०)। ये कोई प्रमाण नही उपस्थित करते।

श्लोक ४१९ से प्रकट होता है कि लक्ष्मी चिढ़कर सिन्धुपति के देश मे चली गयी थी। इससे भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लक्ष्मी मे स्वाभिमान था। उसमे अपने पिता का रक्त था।

(२) भोल्ल = काश्मीरी ब्राह्मणों की एक उप-जाति है। अभी तक यह नाम प्रचलित है। काश्मीरी में उन्हें 'बुल्ल' कहते हैं। किन्तु काश्मीरी पुरातन नामों को लोग त्याग कर गत २५ वर्षों से सुसंस्कृत नाम रखने लगे हैं।

रोपात् सिन्धुपतेर्देशं सम्बन्धित्वाद्गतां नृपः ।
प्रत्यानयत् त्रपोद्रेकान्न पुनः स्नेहगौरवात् ॥ ४१९ ॥

४१९ रोषवश सम्बन्धी होने के कारण, सिन्धुपति[1] के देश गयी हुयी, उसे राजा त्रपाधिक्य के कारण ले आया न कि स्नेह गौरव के कारण।

अपनीय तापखेदं मरुकरिणी पद्मिनीतोयैः ।
तत्पद्मशैवलाम्भोनिर्मथे कर्मठी भवति ॥ ४२० ॥

४२० मरुकरिणी (मरुभूमि की हाथी) पद्मपूर्ण सरोवर के जल से तापजन्य खेद दूर करके, उसके पद्म, शैवाल एव जल का निर्मथन करने मे लग जाती है।

लक्ष्म्या मातृस्वसुः सर्वमातृकृत्यकृतोऽभवत् ।
राजप्रियाथ राकेव लासा पक्षक्षयोद्यता ॥ ४२१ ॥

४२१ राजप्रिया लासा, हर प्रकार मातृकृत्य करने वाली मातृ स्वसा का पक्ष विनाश करने के लिये, उसी प्रकार तत्पर हो गयी, जिस प्रकार राका (पूर्णमासी) की रात्रि पक्ष क्षय के लिये उद्यत होती है।

सत्कर्मपाकसमयोऽस्य न चेद्विकासशोभां न किं परिहरेत् कुमुदाकरस्य ।
विश्वप्रबोधहरणप्रवणा क्षणेन कुस्त्री निशा च सहसैव निशाकरेण ॥ ४२२ ॥

४२२ सत्कर्म के परिपाक का समय यदि न होता तो विश्व प्रबोधहरण करने मे प्रवण (दक्ष) कुत्सित स्त्री किंवा निशा सहसा निशाकर क्षण द्वारा किसी के या कुमुदाकर के विकास की शोभा नही हर लेता ?

चिन्तासूचकनिश्वासम्लानौष्ठी तं कदाचन ।
अवोचद् भोगिनीवेति लासाख्या भोगिनी नृपम् ॥ ४२३ ॥

४२३ चिन्तासूचक निश्वास से म्लान ओठों वाली, भोगिनी लासा किसी समय भोगिनी[1] (सर्पिणी) सदृश उस नृप से बोली—

पाद टिप्पणी :

४१९ श्लोक सख्या ४१९ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ४८३ एव ४८४ अधिक है। उनका भावार्थ है—

(४८३) 'लौकियाँ जल मे डूब गयीं। शिलायें तैरने लगी जो लक्ष्मी पक्ष क्षय एव लासा पक्ष वृद्धि को प्राप्त हुआ।

(४८४) 'रात्रि सदृश लक्ष्मी कोप से जितनी ही दूर गयी वह उतनी ही उस लासा को अपनाया जिस प्रकार दिव को सूर्य।

४१९ (१) सिन्धुपति : जोनराज लक्ष्मी का सम्बन्ध सिन्धु देश से जोडता है। मेरा अनुमान है कि सिन्ध मरुभूमि से जोनराज का तात्पर्य नहीं है। सिन्धु उपत्यका काश्मीर स्थित कोई जागीरदार अथवा सामन्त से है। सुलतान का विवाह उसके सम्मान के अनुरूप वश म हुआ होगा। लक्ष्मी का रूठ कर मायके चली जाना सम्भव है। सिन्धुपति इस समय नाम मुसलिम थे। वे अपनी कन्या का नाम लक्ष्मी नही रख सकते थे। श्रीनगर से हजारो मील दूर सिन्धु प्रदेश मे लक्ष्मी का आना तथा शहाबुद्दीन का उसे मनाने जाना और सुलतान का बिना अवरोध सिन्ध पहुँच जाना और लौटना तत्कालीन स्थिति देखते सम्भव नहीं मालूम होता।

पाद टिप्पणी :

४२३ (१) भोगिनी : भोगिनी के दो अर्थ यहाँ हैं। एक लासा का विशेषण है। राजा की महिषी के

न चेद्विकासयेद्भास्वान् पद्मिनीं वरुचा स्फुटम्।
तस्याश्छेदाय शैवालवल्ल्या इ यतेत कः॥ ४२४॥

४२४ 'सूर्य अपनी कान्ति द्वारा पद्मिनी को यदि विकसित न करे तो शैवाल-वल्ली सदृश, उसके विनाश के लिये कौन यत्न करता ?—

पतन्तीं प्रेमभारार्द्रां मयि दृष्टिं तवासहा।
मां निहन्तुमुपायेन क्रमते महिषी तव॥ ४२५॥

४२५ 'मेरे ऊपर आपकी प्रेमभरी दृष्टि न सह सकने वाली रानी मुझे मारने के लिये उद्योगशील है।

अभिचारे दुराचारमुपचारप्रियङ्करम्।
सा चाराक्षी मयि द्वेषादुदयश्रियमैरयत्॥ ४२६॥

४२६ 'उस चाराक्षी (लक्ष्मी) ने द्वेष के कारण दुराचारी एवं प्रियसेवक उदयश्री को (मेरे ऊपर) अभिचार[1] करने के लिये प्रेरित किया है।'

देवद्वेषपरे तस्मिन्नभिचारविनिर्मितिः।
असम्भाव्येति तां राजा प्रत्युवाच विचक्षणः॥ ४२७॥

४२७ विचक्षण राजा ने उसे उत्तर दिया—'देवद्वेषी उसके (उदयश्री)[1] द्वारा अभिचार क्रिया असम्भव है।'

अतिरिक्त अन्य रानियों किंवा प्रेमिकाओं को भोगिनी कहते हैं (अमर २ ६ ५) भोगिनी का दूसरा अर्थ सर्पिणी होता है। राजमहिषी अपने प्रेम द्वारा सुलतान की राजमहिषी को नीचे कर उसे अपनी ओर आकर्षित कर रानी के सम्मान एवं अधिकार को सर्पिणी तुल्य डसकर समाप्त कर रही थी।

पाद टिप्पणी

४२६ (१) अभिचार शत्रु या वैरी के मरण हेतु किंवा किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने के लिये किये जाने वाले यज्ञ अथवा मन्त्र पाठ की संज्ञा अभिचार से दी गयी है। मन्त्रों द्वारा बुरे कर्मों को करने की संज्ञा अभिचार से दी जाती है। *जादू टोना मन्त्रमुग्ध तथा तज्जनित होम, यज्ञ* आदि क्रियाएँ हैं। अथर्ववेद में अभिचार मन्त्रों का समावेश मिलता है (११ १ २२)। अथर्ववेद में उल्लेख किया गया है कि शपथ किंवा अभिचार तुम्हें प्राप्त न हो (अ० वे० ८ २ २६, १० ३ ७ १९ ९ ९ कौ० श्रौ० २ ३ ५ १५ ७ ३५)। अभिचारिन् शब्द का प्रयोग अथर्ववेद (१० ४ ९) में किया गया है। अथर्ववेद का यह कर्म मारण तथा उच्चाटन क्रिया से सम्बन्धित हो गया है। यह एक प्रकार का हिंसा कर्म माना गया है। काश्मीर में तन्त्रों के विकास के साथ अभिचार का प्रयोग बढ़ता गया है। तन्त्र में इस प्रकार के प्रयोग ६ प्रकार के होते हैं— मारण मोहन स्तम्भन विद्वेषण उच्चाटन तथा वशीकरण। स्मृतियाँ इन कर्मों को उपपातक मानती हैं। अभिचारक अथवा अभिचारी अभिचार क्रिया करनेवाले को कहते हैं।

पाद टिप्पणी

४२७ (१) उदयश्री देवद्वेषी तथा श्लोक ४३० में उदयश्री की मन्त्रणा कि कास्य प्रतिमा तोड़कर मुद्रा टङ्कित कराया जाय इन दोनों बातों के आधार पर परसियन इतिहासकारों ने उसे मुसलिम होना लिखा है (सूफी १४०)।

निर्बन्धेनोपजल्पन्तीं तदेव वचनं ततः।
तां प्रत्याययितुं देवीमुदयश्रियमब्रवीत् ॥ ४२८ ॥

४२८ आग्रहपूर्वक, वही बात उस देवी के कहने पर, उसके विश्वास हेतु उदयश्री से राजा ने कहा—

व्ययस्यातिशयेनाह्नो कोशो रिक्तत्वमागतः।
प्रार्थयन्ते जना राज्ञः सर्वं कल्पतरूनिव ॥ ४२९ ॥

४२९ 'अतिशय व्यय के कारण कोश रिक्त हो गया है। प्रजा कल्पतरु सदृश राजाओं से सब (आवश्यकता के लिये) प्रार्थना करती है—

द्रविणोत्पत्तये तस्मादुपायः प्रतिभात्ययम्।
प्रतिमा श्रीजयेश्वर्या यास्ति रीतिमयी पृथुः ॥ ४३० ॥

४३० अतः द्रव्य उत्पन्न करने के लिये, यह उपाय ज्ञात होता है। कि श्री जयेश्वरी[1] की रीति- (तांबा-कांस्य) मयी जो विशाल प्रतिमा है—

तां खण्डयित्वा विहितैष्टङ्कैर्मन्नामचिह्नितैः।
व्ययनिर्वहणं कीर्तिस्थिरत्वं चोपजायते ॥ ४३१ ॥

४३१ उसे खण्डित कर निर्मित एवं मेरे नाम से चिह्नित टङ्कों[1] द्वारा व्यय का निर्वाह एवं कीर्ति की स्थिरता भी होगी।'

सुलतान ने स्वयं यहाँ उदयश्री को देवद्वेषी, हिन्दू देवी-देवताओ का विरोधी अर्थात् मुसलमान किंवा सहधर्मी होना स्वीकार किया है। अभिचार कर्म केवल हिन्दू ही कर सकता है। मुसलमान नही कर सकता। इस मत का स्पष्ट प्रतिपादन सुलतान करता है। अपनी प्रिया लासा को वह सन्तोष देता है। उदयश्री से किसी प्रकार का भय करना व्यर्थ था।

पाद-टिप्पणी :

४३० (१) जयेश्वरी : चिप्पट जयापीड की माता जयादेवी थी। उसने जयेश्वर की स्थापना की थी (रा० . ४ ६८१)। जयापीड राजा ने जयपुर मे नगर की अधिष्ठात्री जयदेवी की स्थापना की थी। कल्हण के वर्णन से उक्त दोनो प्रतिमाओ का उल्लेख मिलता है। जयापीड की माता ने जयेश्वर की स्थापना कहाँ की थी, इसका पता नही चलता। जयापीड द्वारा स्थापित जयदेवी प्रतिमा के स्थान का ठीक पता चलता है। अन्दरकोट ग्राम के समीप जयपुर के स्थान एवं ध्वंसावशेष का पता डॉ० ब्यूहलर ने लगाया था। किन्तु प्रतिमाओ मे कौन धातु थी इसका कही उल्लेख नही मिलता। सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रतिमा जयपुर मे नगर की अधिष्ठात्री देवी रूप मे स्थापित की गयी थी। अतएव यह प्रतिमा राजा जयापीड द्वारा ही निर्मित मालूम होती है जिसका उल्लेख यहाँ किया गया है।

डॉ० परमू ने नाम विजयेश्वरी दिया है (पृष्ठ ९८)। जोनराज स्पष्ट श्री जयेश्वरी लिखता है।

पाद-टिप्पणी :

४३१. (१) टंक : पुरा अभिलेखो मे एक मुद्रा का नाम है। कभी-कभी इसका उच्चारण 'तंका' भी किया जाता है। बंगला मे टाका कहते हैं। यह चार रौप्य कन्मष के बराबर माना जाता है। रौप्य तथा स्वर्ण दोनो प्रकार की मुद्राओ के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका तौल ८० रत्ती होता था। दिल्ली के सुलतानो की रौप्य मुद्रा का नाम टंक था। यह तौल मे ९६ या १०० रत्ती होता था (ज० एन० एस० आई० : भाग : १६ :

साध्वेतत्किन्तु तन्मूर्तिर्लघ्वी किं प्रभविष्यति ।
बृहद्बुद्धेन मुद्रास्तु क्षुद्रस्तं सचिवोऽभ्यधात् ॥ ४३२ ॥

४३२ 'यह ठीक है, किन्तु वह मूर्ति छोटी है, उससे क्या होगा ? बृहद् बुद्ध' से मुद्रायें (अधिक) होंगी !'—इस प्रकार उस क्षुद्र सचिव ने उससे कहा ।

तत्रोपकरणं सज्जीकृत्यान्येद्युरुपागतम् ।
राज्ञीं प्रत्याय्य भूपालो रहो मन्त्रिणमब्रवीत् ॥ ४३३ ॥

४३३ रानी को विश्वास दिलाकर, दूसरे दिन सब उपकरण सज्जित कर आये, अपने मन्त्री से एकान्त में राजा ने कहा—

४२-४९ २२ : १९७-१८८, इ० आई० : ९ २०, सी० II ४, एम० एल, डी० सी० सरकार ' ३३६)।

टक एक तोल भी है वह चार मासा होता है । कुछ स्थान पर इसे ३ मासा या २४ रत्ती का तोल मानते हैं। मोती की तोल २१$\frac{3}{4}$ रत्ती मानी जाती है।

पाद-टिप्पणी '

४३२ (१) बृहद् बुद्ध : कल्हण ने दो बृहद् बुद्ध की प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। प्रथम (रा० : ४ : २०३, ३ ३५५) प्रतिमा प्रवरसेनपुर मे राजा प्रवरसेन द्वितीय के मामा जयेन्द्र ने जयेन्द्रविहार तथा बृहद् बुद्ध की प्रतिमा स्थापित किया था। हुएन्त्साग अपने पर्यटन काल मे जयेन्द्रविहार मे दो वर्ष निवास किया था। कल्हण ने वर्णन किया है। राजा क्षेमगुप्त ने जयेन्द्रविहार जला दिया था। उसने पीतल धातु की मूर्ति गला कर क्षेम गौरीश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था (रा० . ६ : १७१)। दूसरी ठोस बुद्ध की प्रतिमा का उल्लेख राजा हर्ष तथा सुस्सल के समय म मिलता है। यह प्रतिमा श्रीनगर में ही थी (रा० : ७ . १०९७) ८ : ११८४)। बृहद् बुद्ध की द्वितीय ताम्र प्रतिमा ललितादित्य ने लगभग ६ शताब्दी पश्चात् निर्माण कराया था (रा० : ४ : २०३)। किन्तु यहाँ तात्पर्य बृहद् बुद्ध रीति अर्थात् ताम्र प्रतिमा से है जिसका निर्माण एव स्थापना सम्राट् ललितादित्य ने किया था। कल्हण के अनुसार यह प्रतिमा गगनचुम्बी थी। परिहासपुर में इसकी स्थापना हुई थी। उसने परिहासपुर मे बृहद् चतु शाला, बृहद् चैत्य, बृहद् बुद्ध एव राज विहार स्थापित किए थे। राज विहार मे ही यह 'प्रतिमा थी। परिहासपुर के ध्वसावशेष मे उक्त स्थानो का आकार आज भी मैंने अपनी आँखो से देखा है। बृहद् चैत्य का चिह्न दक्षिण ओर मिलता है। इसके निर्माण मे विशाल शिलाखडो का प्रयोग किया गया था। एक शिलाखण्ड १४' × १२' ६" तथा ५ फुट ५ इंच मोटा है। देवता का अधिष्ठान २७ फुट वर्गाकार मे है।

स्तूप के दक्षिण राज विहार है। पूर्वीय दिवाल की सीढियो से इसकी कोठरी मे जाने का मार्ग है। वह बरामदा का कार्य करता है। विहार मे २६ कोठरियाँ हैं। ये आयताकार हैं। मध्य मे प्रागण है। प्रागण में पत्थर का फर्श लगा है। कोठरियों के सम्मुख स्तम्भावली पर चौडा बरामदा बना था। बाह्य अधिष्ठान १० फिट ऊँचा है। वहां की १५ नम्बर की कोठरी में से मृत्तिका पात्र मे ४४ रजत मुद्राये विनयादित्य, दुर्लभ आदि के समय की प्राप्त हुई हैं। वे श्रीनगर सग्रहालय मे सुरक्षित है। इस विहार का कई बार जीर्णोद्धार किया गया था। उसके चिह्न मिलते हैं। जोनराज के समय यह प्रतिमा वर्तमान थी।

पाद टिप्पणी :

४३३ श्लोक सख्या ४३८ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ४९९ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(४९९) 'नृपति एव गजपति पुन्नाग उत्तम लोगों

याः पूर्वैर्निरमीयन्त यशःसुकृतलब्धये ।
अङ्गीकर्तासि ता देवप्रतिमा भङ्क्तुमञ्जसा ॥ ४३४ ॥

४३४ 'पूर्वजों ने यश सुकृत प्राप्ति हेतु जिन देव प्रतिमाओं को निर्मित किया उन्हें तोड़ना स्वीकार कर रहे हो ?

अमरप्रतिमा विधाय केचित्
परिपूज्याथ परे प्रसिद्धिमाप्ताः ।
परिपाल्य यथोचितं तथाऽन्ये
विदलय्याहमहो महद्दुरन्तम् ॥ ४३५ ॥

४३५ 'कुछ लोग अमर प्रतिमायें बनाकर, दूसरे लोग उन्हें पूजकर, अन्य लोग यथोचित रीति से परिपालित कर, प्रसिद्धि प्राप्त किये, मैं (उन्हें) तोड़कर (प्रसिद्धि प्राप्त करूँ) अहो महान दुरन्त है—

निर्माणाज्जलधेः समस्तसरितां कौमारशोकावधिः
प्रख्यातः सगरो भगीरथनृपो गङ्गावताराच्च सः ।
दुष्यन्तः स च विश्वविश्वविजयाज्जिष्णोर्भयान्यावहन्
रामो हन्त दशाननेन विहितात् सीतापहारात् पुनः ॥ ४३६ ॥

४३६ 'समस्त सरिताओं के जल धारण कर्ता सागर के निर्माण से कौमार शोकावधि सगर,[1] गंगा का अवतारण करने से राजा भगीरथ[2], विश्व विजय करने से इन्द्र को भय देने वाले दुष्यन्त[3] तथा दुःख है दशानन[4] कृत सीता अपहरण से राम प्रख्यात हुए।

का उन्मूलन करना चाहता है। करी से बलशाली लोगों का हरण कर लेना चाहता है और हर समय स्त्री की मेखला, उत्तरीय, कमरबन्द और कौन-सी प्रक्रिया नही करता। वृक्षों को नष्ट करता है, अपने सूड से खीचना चाहता है, ठोकर मारता है। इस प्रकार वह कौन-सी वप्र क्रीडा नहीं करता यदि अंकुश-शाली नियन्ता (महावत) पास मे न होता ?'

पाद-टिप्पणी :

४३६. (१) सगर : इक्ष्वाकुवंशीय राजा थे। एक मत है कि मनु के ४१वीं पीढी मे हुए थे। उनके पिता का नाम बाहुक अथवा बाहु था। माता का नाम कालिन्दी अथवा केशिनी था। भागवत मे सगर को 'फल्गुतन्त्र' तथा पद्मपुराण मे 'गर' का पुत्र लिखा गया है। पिता की मृत्यु के पश्चात् सगर का जन्म हुआ था। उसकी माता केशिनी पति बाहुराज की मृत्यु के समय और्व ऋषि के आश्रम मे गर्भवती थी। सगर की विमाताओ ने ईर्षा के कारण केशिनी को विष दे दिया। वह सात वर्षों तक माता के गर्भ मे स्थित था। जन्मपश्चात् भी वह दुर्बल ही रहा। और्व ऋषि के कारण उस पर विष का प्रभाव नही पड सका था। जन्म के पश्चात् और्व ऋषि ने सगर का क्षत्रियोचित संस्कार कर, भार्गव नामक अग्न्यास्त्र उसे दिया (विष्णु : ४ : ४)। च्यवन ऋषि से भी उसने अनेकानेक अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये। हैहय तालजंघ राजा का विनाश कर राज्य प्राप्त किया। अनन्तर उसने यवन, बर्बर, शक, हैहय जातियो पर विजय प्राप्त की थी (भा० : ९ : ८)।

अश्वमेध यज्ञ का अश्व राजा सगर ने छोडा। इन्द्र ने अश्व चुरा कर कपिल मुनि के आश्रम मे बांध दिया। सगर के साठ सहस्र पुत्रों ने पृथ्वी एवं

पाताल आदि अश्व अन्वेषण में खोज डाला (बा० : वा : १ : ३९) । कपिल के आश्रम में अश्व देखकर कपिल को इन लोगो ने अश्व-चोर समझा । कपिल ने मिथ्या आरोप से क्रुद्ध होकर उन्हे भस्म कर दिया (*बा० बा० : १ : ४०*) । सगर के केवल पाँच पुत्र हर्षिकेतु, सुकेतु, धर्मरथ, पंचजन एवं अंशुमान उस सहार से शेष रह गये थे। अश्व अयोध्या लाकर अश्वमेध यज्ञ पूरा किया गया ।

सगर की पत्नियो का नाम केशिनी या शैव्या या भानुमती दिया गया है। वह विदर्भ राज की कन्या थी। वह ज्येष्ठ पत्नी थी (वायु० : ८८ : १५५) । द्वितीया किंवा कनिष्ठा पत्नी का नाम प्रभा अथवा सुमति था । वह यादव राज अरिष्टनेमि की कन्या थी (*मत्स्य० . १२ : ४२०*) ।

सगर पुत्र प्राप्ति के लिये उत्सुक रहते थे। अपनी पत्नियो के साथ भृगुप्रस्रवण शैल पर एक शत वर्षों तक तपस्या किया । प्रसन्न होकर भृगु ने वरदान दिया (बा० बा० : ३८ : २-२५) ।

केशिनी का पुत्र असमञ्ज हुआ। वह उसका उत्तराधिकारी एवं अयोध्या का राजा हुआ था। राजा ने प्रारम्भ म असमज को राज्य से निकाल *दिया था (बा० : बा० : ३८ : २० : ४०)* । प्रभा द्वारा साठ सहस्र पुत्र सगर को हुए थे। प्रभा और्व ऋषि के आश्रम मे पुत्र हेतु तपस्या करने लगी। उसे तपस्या के फलस्वरूप एक तुम्बी प्राप्त हुई। *वह तुम्बी को फेंक देना चाहती थी। आकाशवाणी* के कारण तुम्बी के प्रत्येक बीज को साठ सहस्र घृतपूर्ण कलश मे रख दिया। उन कुम्भ किंवा कलशो से साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए (वन : १०४ : १७; १०५ : २) । ब्रह्माण्ड पुराण मे एक और कथा दी गई है। प्रभा को पुत्र रूप मे एक मास-पिण्ड प्राप्त हुआ था । और्व ऋषि की कृपा के कारण उसी से कालान्तर मे साठ सहस्र पुत्र हुये । इसके साठो हजार पुत्र अश्वमेधीय अश्व का अन्वेषण कर रहे थे तो वे जम्बूद्वीप के समीप के आठ उपद्वीपो का उत्खनन कर बाहर निकले। उन्ही द्वीपो का नाम सगरोद्वीप हुआ । उनके भूमि खनने के कारण जलखात बनकर सागर नाम प्राप्त किया (भा० : ५ : १९; २९-३०; मत्स्य० : १२ : ३९-४३; विष्णु० : ४ : ३ : १५-२१; ४ : ४ : १-१६; भा० : ९; ८; *ब्रह्माण्ड० : ३ : ७४; म० आदि० : १ : २३४;* सभा० : ८ : १९; वन० ४७: १९; १०६ : ७-१६; १०६ : १८; १०७ : ४-३३ : ६४; शान्ति०: २९ : १३०-१३६; ५७ : ८; २८८ : ३; विराट० : ५६ : १०; अनु० : ११५ : ६६; १६५ : ९) ।

(२) भगीरथ : पौराणिक मान्यता के अनुसार इक्ष्वाकुवंश की ५४ वी पीढी मे हुए थे। इनके सम-*कालीन सोम कुरुवंशीय प्रतिष्ठान के राजा अजमीढ,* सोमवंशीय हैहय माहिष्मती के राजा द्विपीढ, सोम यदुवंशीय राजा एकादशरथ थे। वे सम्राट् दिलीप के पुत्र थे। प्रपितामह राजा असमंज पितामह अंशुमान एवं पिता दिलीप ने श्री गङ्गाजी लाने का प्रयत्न किया था। परन्तु गङ्गावतरण की सफलता *भगीरथ को ही प्राप्त हुयी थी। अतएव गङ्गा का* लाक्षणिक नाम 'भगीरथ' से 'भागीरथी' पड गया। अंशुमान एवं दिलीप से कपिल मुनि ने राजा सगर के पुत्रो की मुक्ति का एकमात्र कारण गङ्गावतरण बताया था। अंशुमान तथा दिलीप ने तप किया। उनका प्रयत्न सफल नही हुआ। पिता दिलीप ने *भगीरथ को राजा बनाया था (बा० बा० : ४२ :* १०) । भगीरथ धर्मपरायण राजर्षि थे। तत्पश्चात् भगीरथ ने हिमालय पर जाकर एक मत है कि गोकर्ण तीर्थ मे घोर तप किया। (बा० : बा० . ४२ : ११-१३) दोनो भुजायें ऊपर उठा कर पञ्चाग्नि का सेवन करते *एक-एक मास पर अन्न ग्रहण* करते थे। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर *उन्हे गङ्गावतरण* की अनुमति दे दी (बा० बा० : ४२ : १-२१) । गङ्गा प्रसन्न होकर पृथ्वी पर आने के लिए तैयार हो गयीं। किन्तु गङ्गा के तीव्र प्रवाह को धारण करने की *समस्या उपस्थित हुई। गङ्गा ने शङ्कर की सहायता* लेने के लिए भगीरथ से कहा। भगीरथ एक अंगूठे पर खड़े हो कर तपस्या करने लगे। एक वर्ष तक शङ्कर की आराधना करते रहे (बा० बा० :

४२ २६, ४३ १–४३)। शङ्कर प्रसन्न होकर गगा प्रवाह को अपनी जटाओ म रोकने के लिए उद्यत हो गये। गङ्गा शिव क जटाजूट म ही उलझ कर रह गयीं। भगीरथ ने पु घोर तपस्या की। शिव ने गगा का बिन्दु सरोवर म विसर्जित कर दिया। गगा का प्रथम क्षीण प्रवाह जो पृथ्वी पर आया उसे अलकनन्दा नदी के नाम से पुकारा गया। तत्पश्चात् गगा भगीरथ के निर्देशित मार्ग का अनुकरण करती पृथ्वी पर चलीं। गगा जह्नु ऋषि के कानो द्वारा निकली इसीलिए उनका नाम जाह्नवी प्रख्यात हुआ। गगाजी कपिलाश्रम के उस स्थान पर पहुँची जहाँ सगर के साठ हजार पुत्र दग्ध हुए थे। गगा प्रवाह म भस्म मिलते ही भगीरथ के पितृगण मुक्त हो गये (वा० वा० ४४ ३–१८)। गगा को भगीरथ सागर अर्थात् समुद्र तक लाये थे (वन० २५ १५ १०७ ६९ १०८ १०९ १–२, १०९, १८–१९, सभा० ८ १२ अनु० ८–४२, १३७ २६, १३७ ७, भाग० ९ ९ २–१३, वायु० ४७ २३–४०, ८८ १६७–१७०, ब्रह्माण्ड० २ १८ २३–४२ पद्म० उ० २१, ब्रह्म० ७८, विष्णु० ४ ४ १ ह० व० १ १५–१६ नारद० १ १५ ब्रह्मवैवत० १ १०)।

गगावतरण के पश्चात् भगीरथ पुन राज्य करने लगे। अपनी क या का हसी कौत्स नामक ब्राह्मण को कयादान दिया। कोहल नामक ब्राह्मण को एक लाख गायो का दान राजा भगीरथ ने दिया था। (अनु० ७६ २५)। भगवान श्रीकृष्ण ने भगीरथ के दान पुण्य का प्रशसनीय शब्दो मे वणन किया है (शान्ति० २९ ६३–७०)। महाभारत मे १६ श्रेष्ठ राजाओ का आख्यान नारद भगवान् ने सञ्जय को सुनाया था। उसमे भगीरथ की कथा सम्मिलित है (शान्ति० ५३–६३)।

भगीरथ के गगावतरण की कथा रूपकात्मक मानी गयी है। गगा पूर्वकाल मे तिब्बत मे पूर्व से उत्तर दिशा की ओर बहती थी। उत्तर भारत जलाभाव के कारण प्राय अकालग्रस्त हो जाता था। अकाल से बचने तथा सिचायी व्यवस्था के लिये भगीरथ के पूर्वजो ने अथक परिश्रम किया था। भगीरथ को अपने प्रयास मे सफलता मिली।

गगा का प्रवाह उत्तर स दक्षिण दिशा की ओर हो गया है। इस प्रकार गगा मूलत आधुनिक शब्दो म विश्व की प्रथम जलप्रणाली है। उसके कारण पश्चिमी उत्तर प्रदेश का विशाल भूखण्ड हरा-भरा हो गया है। आज भी गगा का जल हरद्वार से कान पुर तक के विशाल भूखण्ड म जल पहुँचाता है। भगीरथ के दो पुत्र नाभाग एव श्रुत थे। भगीरथ के पश्चात् श्रुत राजा हुआ था।

(३) दुष्यन्त सोम पुरुवश का विख्यात राजा था। शकुन्तला की कथा के कारण इसे विशेष ख्याति प्राप्ति हुई है। यह चक्रवर्ती भारत सम्राट् था। इसके पुत्र भरत को 'दौष्यन्ति' कहते हैं। मत्स्य पुराण मे दुष्यन्त को ही भरत दौष्यन्त कहा गया है (मत्स्य० ४९ १३)। वैशाली देश का तुर्वसु राज एव करधम का पुत्र 'चक्रवर्ति' मरुत आविक्षित ने पौरववशीय दुष्यन्त को गोद लिया था। गगा एव सरस्वती नदी के मध्यवर्ती भूखण्ड पर राज्य स्थापित किया था। भागवत के अनुसार यह रैभ्य राजा का पुत्र माना गया है (आ० ६९ ३ भागवत ९ २३ १७–१८)।

इनके पिता का नाम तसु तथा हरिवश मे तसु दुष्यन्त आदि चार पुत्रो का उल्लेख किया गया है (ह० व० १ ३२ ८)। विष्णु पुराण के अनुसार वह तसु पुत्र अनिल का पुत्र माना गया है (विष्णु० ४ १९ २–३)। वायु पुराण मे पिता का नाम मलित दिया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण मे इलित का नाती माना गया है। इसकी माता के एक भी नाम नही मिलते। उनका नाम उपदानवी तथा रथतरी मिलता है (वायु० ९९ २४, आ० ९० २९, मत्स्य० ४९ १०)। महाभारत के अनुसार दुष्यन्त इलित के पुत्र थे। इनकी माता का नाम रथन्तरी था (आदि० ९४ १७)।

दुष्यन्त आदि पाञ्चाल कहे जाते हैं (आदि० : ९४ : ३३)।

तुर्वसु कुल करंधम राजा ने दुष्यन्त को अपना पुत्र मानकर समस्त राज्य दिया था (भा० : ९ : २३ : १६–१७, विष्णु० : ४ : १६)। राज्य प्राप्त करने के पश्चात् पुनः पौरवंशी हो गया (भा० : ९ : २३ : १८)। ययाति राजा के शाप के कारण मरुत राजा का यह वंश पुरुवंश मे सम्मिलित हो गया (मत्स्य० : ४८ : १–४)। तुर्वसु वंश से इसका सम्बन्ध ययाति के शाप के कारण हुआ था (वा० : ९९ : १–४)। ब्रह्मपुराण के वर्णन से प्रकट होता है कि तुर्वसुवंशीय करंधम पुत्र मरुत ने अपनी संयता नामक कन्या संवर्त को देने के पश्चात् उसे दुष्यन्त पौरव नामक पुत्र हुआ (ब्रह्म० : १३)। हरिवंश पुराण में यही बात दूसरे ढंग से कही गयी है। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् मरुत को सम्मता नामक कन्या हुई। कन्या दक्षिणा स्वरूप उसने संवर्त को दे दिया। संवर्त ने वह कन्या सुघोर को दिया। उससे सुघोर दुष्यन्त नामक पुत्र हुआ। कन्या का पुत्र होने के कारण मरुत ने उसे अपनी गोद मे ले लिया। तुर्वसु वंश इस प्रकार पौरव वंश मे मिल गया (हरि० : १ : ३२)। पौरवो से निकल गया राज्य इसने पुन. प्राप्त किया। पुरु वंश की पुन: स्थापना किया। माता-पिता के सम्बन्ध मे पुराण तथा अन्य ग्रन्थ एकमत नही है। इन्हें दुष्यन्त, दुष्मन्त, दुःषन्त एवं भरत दौष्यन्ति कहा गया है। शकुन्तला को दोषी मानने के कारण इनका नाम दुष्यन्त पड़ा था।

महाभारत तथा कालिदास वर्णित दुष्यन्त–शकुन्तला की कथा एक दूसरे से भिन्न है। गदायुद्ध मे दुष्यन्त ने कुशलता प्राप्त की थी। वह एक समय मृगया हेतु विचरण करते कण्व के आश्रम मे पहुँचे। वहाँ शकुन्तला से भेंट हुई। अनुराग अंकुर उत्पन्न हो गया। शकुन्तला ने कण्व पुत्री कहकर अपना परिचय दिया। दुष्यन्त ने कथन पर सन्देह प्रकट किया। शकुन्तला ने अपने जन्म वृत्तान्त का वास्तविक रहस्य प्रकट किया। शकुन्तला के साथ दुष्यन्त ने गान्धर्व विवाह कण्व के आश्रम मे किया। शकुन्तला के गर्भ से चक्रवर्ती सम्राट् भरत उत्पन्न हुआ। शकुन्तला ने पुत्र के साथ दुष्यन्त की राज्य सभा मे उपस्थित होकर पुत्र को स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया। शकुन्तला तथा पुत्र को दुष्यन्त ने अस्वीकार किया। शकुन्तला ने सत्यधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। दुष्यन्त ने शकुन्तला की भर्त्सना की। दुष्यन्त ने आकाश-वाणी द्वारा शकुन्तला तथा पुत्र भरत को स्वीकार किया। दुष्यन्त एक शत वर्षों तक राज्य भोग कर स्वर्ग गये। अपने जीवन मे कभी मास भक्षण नही किया था (आदि० : ७०, ७१, ७३, ७४, ९४ : १७, सभा० : ८ : १५, अनु० : ११५ : ६४,)। दुर्वासा शाप की कल्पना कालिदास ने स्वय की है (विष्णु० : ४ : १३ : ४७, वायु० : ९९ : १३३–१३६, २४३; भाग० : ९० : २०, ७–२२, मत्स्य० : ४९ : ११–१२; ५० : ४८)।

(४) दशानन : पुलस्त्य का पौत्र रावण किंवा दशग्रीव था। उसके पिता का नाम विश्रवसु था। सीता हरण तथा उसके कारण राम-रावण युद्ध एवं रामकथा के कारण रावण की प्रसिद्धि हो गयी। रामायण मे रावण नाम प्राप्त करने की कथा दी गयी है। शिव ने कैलाश के नीचे इसकी भुजाओ को दबा दिया। उसने क्रोध एव पीडा से भीषण चीत्कार किया (रावः सुदारुण.)। अतएव नाम रावण पड गया (वा० : अरण्य० : १६ : २९)। सुन्दरकाण्ड मे शत्रु को भीषण चीत्कार के लिये विवश करने वाला होने के कारण इसे शत्रु–रावण कहा गया है (सुन्दर० : २३ : ८)। रावण की माता का नाम केशिनी था। वह सुमालि राक्षस की कन्या थी। अनुमान लगाया गया है कि 'इरैवण' तामिल शब्द का संस्कृत रूप रावण है। 'इरैवण' का अर्थ राजा होता है। रामपुर के निवासी गोंड गण अपने को रावणवंशी मानते हैं। रांची जिला के फटकया गाँव मे रावना परिवार आज भी विद्यमान है। यह केवल ऐतिहासिक तथा आधुनिक मत पर आधारित है।

रावण का शरीर प्रचण्ड नीलांजनोपम था, नेत्र क्रूर थे, कृष्णपिंगल वर्ण थे (सुन्दर० २२ : १८)। उसके एक ही मुख तथा दो हाथ होने का भी उल्लेख मिलता है (सुन्दर० : २२ : २८, यु० : ४० : १३; ९५ : ४६, १०७ : ५४–५७, १०९ : ३, ११० : ९–१०; १११ : ३४–३७)। महाभारत में रावण को विश्रवस् तथा पुष्पोत्कटा का पुत्र कहा गया है। भागवत में रावण का सम्बन्ध हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष से प्रस्थापित किया गया है। रावण का भाई कुबेर था। अपनी तपस्या से कुबेर ने चारों लोकपाल का पद प्राप्त किया था। विश्रवा ने लंका का राज्य कुबेर को दिया था। कुबेर एक समय पुष्पक विमान पर आरूढ होकर विश्रवा से मिलने आया। इसकी माता ने कुबेर को लक्ष्य कर कहा कि तुम भी कुबेर के समान वैभव-सम्पन्न बन जाओ। रावण अपने भाई कुम्भकर्ण, खर एवं विभीषण के साथ गोकर्ण स्थान में तपस्या करने लगा। तपस्या से शक्ति-सम्पन्न होकर रावण ने कुबेर से लङ्का का राज्य ले लिया। उसने कुबेर से पुष्पक विमान भी ले लिया। रावण शिवभक्त था। भक्ति की अनेक कथाएँ मिलती हैं (उत्तर : ३१; आ० : रा० : १ : १३ : २६–४४; पद्म० : उ० २४२)।

रावण ने विवाह मय की पुत्री मन्दोदरी के साथ किया था। मन्दोदरी के अतिरिक्त मालिनी नामक एक और स्त्री का निर्देश प्राप्त होता है। वह अतिकाय की माता थी। कुशध्वज ऋषि की कन्या वेदवती नारायण को प्राप्त करने के लिये तपस्या कर रही थी। रावण उस पर मुग्ध हो गया। वेदवती ने उसे शाप दिया—मैं तुम्हारे नाश के लिए अयोनिजा सीता के रूप में जन्म ग्रहण करूंगी (वा० उ० : १७)। वह एक समय कैलाश पर्वत पर गया। रम्भा पर आसक्त हो गया। रम्भा ने उसे बताया कि वह कुबेर पुत्र नलकूबर की स्त्री है। उसकी पतोह होती है। परन्तु रावण ने उत्तर दिया—अप्सराओं का कोई पति नहीं होता और रम्भा के साथ बलात्कार किया। वार्ता सुन कर नलकूबर ने शाप दिया—'अनिच्छित स्त्री से काम-इच्छा करने पर तुम्हारे मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे' (वा० : उ० : २६ : ५५)। यही कारण है कि सीता पर वह बलात्कार नहीं कर सका।

रावण की बहन सूर्पणखा थी। वनवास के समय नासिक में वह लक्ष्मण द्वारा विरूप कर दी गयी। बहन के अपमान का बदला लेने के लिये इसने सीता-हरण की योजना बनायी। कांचन मृग मारीच का मृगया करने के लिए राम एवं लक्ष्मण के चले जाने पर रावण ने सीता का हरण किया। मार्ग में सीता को मुक्त कराने के प्रयास में जटायु का रावण ने वध किया। सीता को अशोक वन में रखा। रावण ने विभीषण, अंगद आदि के समझाने पर भी सीता को वापस नहीं किया। परिणामस्वरूप राम-रावण युद्ध हुआ। राम-रावण का युद्ध सात दिनों तक चलता रहा। अन्त में राम द्वारा रावण हत हुआ।

रावण के इन्द्रजित् (मेघनाद), अक्ष, अतिकाय, त्रिशीर्ष, नरान्तक एवं देवान्तक पुत्र थे (वा० सुन्दर० : ४७, यु० ७१ : ३०, ६९; ७०)। रावण के भाई कुम्भकर्ण तथा विभीषण एवं सूर्पणखा नामक बहन तथा मत्त एवं युद्धोन्मत्त नामक भाइयों तथा कुंभीनसी नामक एक बहन का निर्देश प्राप्त है (वा० : यु० : ७१ : २)।

रावण अत्यन्त वीर तथा दिग्विजयी सम्राट् था। उसकी प्रजा ऐश्वर्य एवं धनधान्य से संपन्न थी (सुन्दर० : ४ : २१–२७; ९ : २–१७)। वह संगीतज्ञ एवं रसिक तथा अपने परिवार के प्रति स्नेहशील था (सुन्दर० : ४४ : ३२, उ० : २४)। रावण महा-पण्डित था। वाल्मीकि ने उसे वेदविद्यानिष्णात, आचार-सम्पन्न एवं स्वकर्म-निरत कहा है (वा० : यु० : ९२ : ६०)। वेदों का विभाजन इसने किया था। इसने ऋग्वेद का भाष्य किया था। बलराम रामायण के अनुसार इसने वैदिक मन्त्रों का सम्पादन कर वेदों की एक नवीन शाखा का निर्माण किया था। रावण के निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। अर्कप्रकाश, कुमारतन्त्र, इन्द्रजाल,

राजा शाहाभदीनाख्यः सुरमूर्तीरलोटयत्।
मा दुर्वार्तेयमत्युग्रा चकम्पद्भाविनो जनान्॥ ४३७॥

४३७ "राजा शाहाभदीन ने सुरमूर्तियों को तोड़ा था—" यह अत्युग्र दुर्वार्ता भावी लोगों को कम्पित न करे।'[1]

प्राकृतकामधेनु, प्राकृतलंकेश्वर, ऋग्वेद भाष्य आदि। (वन० : १४७ : ३३, ३४; २७५ : १; १६-२५, ३४, ३५; २७८ : ९, ४३; २७९ : ६; २८० : ५७-६१, वन० २८१; २८४ : १०-१६; २८६ : २०; २२८ : २, २८९ : २७; २९० : ३०; भाग० : १ : २ : ४३,-९ : ६ : ३३, ४ : १ : ३७; वायु० : ७७ : ३३-३४; ९ : १० : १०-११; ब्रह्माण्ड ३ : ३८-४२; ३७-५०, ५४)।

पाद-टिप्पणी :

४३७. (१) सहिष्णुता : शहाबुद्दीन धर्म-निरपेक्ष था। उसने मूर्ति भंग करना मुसलमान होते भी अस्वीकार कर दिया। कुछ परसियन इतिहास लेखकों ने उसे मूर्ति-विध्वंसक लिखा है (*बहा-रिस्तान शाही : पाण्डु० : १९-२०,* हैदर मल्लिक पाण्डु० : ४२)। परन्तु यह धारणा मिथ्या है। यदि यह मूर्तिभंग करने वाला होता तो अपने मन्त्री के सुझावपर कोश भरने और आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये मुद्रा टंकण हेतु प्रतिमा की धातु काम मे लाता।

पीर हसन ने शहाबुद्दीन को मूर्ति एवं मन्दिर नष्टकर्ता लिखा है, यह गलत है। पीर हसन लिखता है—'अपनी उमर की आखिरी हिस्से मे मन्दिरो और बुतखानो की तबाही व बरबादी की फिक्र मे पड गया। विजयेश्वर का मन्दिर जो विजेवारह मे निहायत बुलन्द और आलीशान था, तोड डाला। इसी तरह नफस शहर मे जहाँ-कहीं भी कोई मन्दिर था उसे वीरान कर दिया (उर्दू अनुवाद २ : १५६)।'

परसियन इतिहासकारो ने 'मूर्तियो को तोडा था' केवल यही शब्द पकडकर तथा उसके गलत अनुवाद के कारण उसे मूर्ति-नष्टकर्ता लिखा है। पर पूर्व के श्लोको तथा प्रसंग कोसमझने का प्रयास नहीं किया था। विजयेश्वर का मन्दिर यदि इस समय तोडा गया था तो सिकन्दर बुतशिकन ने किस विजयेश्वर का मन्दिर तोडा था? पीर हसन सिकन्दर के वर्णन के सम्बन्ध मे विजयेश्वर मन्दिर तोडने का उल्लेख करता है (उर्दू अनुवाद : २ : १६७)। पीर हसन का वर्णन ही एक दूसरे को काटता है। *पीर हसन तथा अन्य इतिहासकारो का स्रोत बहा-*रिस्तान शाही, हैदर मल्लिक तथा जोनराज का गलत परसियन अनुवाद है।

शहाबुद्दीन के समय मन्दिरो का जीर्णोद्धार होता था। उसने कभी मूर्ति भंग करने का स्वप्न मे भी प्रयास नही किया था। उसके समय का शिलालेख मिला है। जिसमे मन्दिर के जीर्णोद्धार का उल्लेख है। श्रीनगर पुरातत्त्व विभाग मे शिलालेख संख्या २० सुरक्षित है। लेख शारदालिपि मे है। आठवी पंक्ति मे शहाबुद्दीन की प्रशंसा की गयी है। शिला-लेख मे नाम शाहाभदेन लिखा गया है।

जोनराज ने भी अपनी राजतरंगिणी के श्लोक संख्या ३६१, ३६३, ४००, ४५७ मे शाहाभदेन लिखा है *जिसका पाठभेद शाहाबदेन शारदालिपि की प्रतियो* मे मिलता है। श्लोक संख्या ४३७ में 'शाहाभदीन' भी लिखा है।

जोनराज की सत्यता इससे प्रकट होती है। उसने तत्कालीन प्रचलित नामो को ही लिखा है, उसमे सुलतान को ९ वी पंक्ति मे पाण्डव-वंशज लिखा गया है। इससे प्रकट होता है कि सुलतान अपने को पाण्डव-वंशज कहता था। गौरव का अनुभव करता था। जोनराज ने शाहमीर की वंशावली राजा सूहदेव के प्रसंग मे दिया है। वहाँ श्लोक संख्या १३२ मे पाण्डववंशीय का स्पष्ट उल्लेख किया है। यह

शिलालेख लौकिक सम्वत् ४४ (४५) का है। शहाबुद्दीन ने लौकिक सम्वत ४४३० से ४४४९ तक काश्मीर का राज्य किया था। उसके जीवन एवं राज्यकाल मे शिलालेख लगाया गया था। अतएव वह असत्य नही हो सकता। उस मुस्लिम शासनकाल में कोई हिन्दू साहस नही कर सकता था कि सुल्तान के सम्बन्ध मे गलत बात लिखता।

तबकाते अकबरी (३ : ४२८), फिरिश्ता (६४७) तथा जोनराज शाहमीर की वंशावली के विषय मे शान्त हैं। उसकी विस्तृत वंशावली उपस्थित नही करते। केवल उसके पार्थ अर्थात् पाण्डव-वंशज होने का संकेत करते हैं। किन्तु बहारिस्तान शाही (९ ए० हैदर मल्लिक ५१ ए०), हसन (८६ बी०) उसका स्वात के हुक्मरानो से सम्बन्ध जोडते हैं।

मोहिबुल हसन लिखते हैं—'उसके आचरण तथा कार्यों से प्रकट होता है कि वह तुर्क था। उसके पिता का नाम ताहिर तथा दादा का नाम वकर शाह था।' नोट मे लिखते हैं 'उसे जोनराज गलती से कौर शाह कहता है (पृष्ठ ४३)।'

जोनराज शाहमीर के पिता का नाम ताहराल देता है। यह परसियन शब्द ताहिर का संस्कृत रूप है। ताहराल शब्द ताहराज भी हो सकता है। मोहिबुल हसन ने ताहिर नाम ही शुद्ध माना है (पृष्ठ ६०)। अनुवाद की त्रुटि से इसी पृष्ठ के नोट १ मे उन्होंने लिखा है कि जोनराज ने इसका नाम गलती से तुरशाह बताया है। डॉ० सूफी ने शाहमीर के पिता का नाम ताहिर दिया है। निजामुद्दीन अहमद उसके पिता का नाम ताहिर अल पुत्र अलशशान बिन करशाशब इब्न निकरूज तथा उसे पाण्डव अर्जुन-वंशज मानता है (कशीर · १३०)।

परसियन इतिहासकार शाहमीर की वंशपरम्परा ईरान से जोडने का प्रयास करते हैं। उसका प्रमाण कुतुबुद्दीन मुहम्मद बिन मसूद बिन मुसलेह अल शिराजी के तरजुमा-ए-इकालेदस से देते है। उसने लिखा है—'अमीरशाह बिन मुकिर बिन तहिर।' डॉ० परमू ने इसे ही सत्य मान कर स्वीकार किया है। उक्त शिलालेख के कारण परसियन इतिहासकार तथा जो लोग शाहमीर की वंशावली अन्य मुसलिम वंश से जोडते है मिथ्या प्रमाणित होता है (पृष्ठ : ८६-८७ : नोट ५२)। डॉ० परमू पुनः लिखते हैं—'शाहमीर और अमीरशाह एक ही व्यक्ति मालूम पडते हैं।, उन्होने इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (१५ : ६८८-८९ : ११ वाँ संस्करण) का प्रमाण उपस्थित किया है। डॉ० परमू लिखते हैं कि जोनराज कुरशाह निजामुद्दीन वर्णित गुरशास्प है। उक्त प्रमाणो के आधार पर यह प्रतीत होता है कि शाहमीर का मूल स्थान ईरान था (पृ० ४७)। जोनराज का लेख जिसका समर्थन सुलतान शहाबुद्दीन कालीन शिलालेख से मिलता है स्पष्ट कर देता है कि जोनराज का वर्णन सत्य है और शाहमीर पार्थवंशीय था।

उन्नीसवीं शताब्दी तथा सम्पूर्ण राजतरंगिणी के अङ्ग्रेजी भावानुवादक श्री जोगेशचन्द्र दत्त परिशिष्ट : सी० : पृष्ठ १८-२०, भाग ३ किंग्स् ऑफ काश्मीर मे शाहमीर की वंशावली पर प्रकाश डालते हैं—'अर्जुन के पुत्र परीक्षित् तथा बभ्रुवाहन ने राज्य परस्पर विभाजित कर उस पर अधिकार रखा। बभ्रुवाहन एक सौ पचास वर्ष राज्य करने के पश्चात् यज्ञ करने के लिये अपने ८४ वीर पुत्रो तथा उनके सहस्रो पुत्रो को छोडकर ननिहाल चला गया। जिन्हे वह पीछे छोडकर गया था वे शक्ति से उन्मादित हो कर परस्पर झगडने लगे। उन्होने जनता को पीडित किया और ज्यादती करने लगे। उनके पिता ने उन्हे बल से गर्वित देखकर आज्ञाकारी न होने के कारण शाप दिया कि उनका नाश हो जायगा। क्योंकि वे अपने सैनिको द्वारा प्रजा पर अत्याचार करते थे।

'उस समय एक दयावान सन्त आकाश मार्ग से गमन कर रहा था। उसने जनता पर होते अत्याचार को देखा और भगवान का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। आकाश से देववाणी सुनाई पडी—'यहाँ एक व्यक्ति समुद्र मे कृपाण के साथ यम तुल्य है।' उस सन्त ने उस व्यक्ति को जो रोमादेश मे वार्धक्य प्राप्त किया था, लाया। वह अश्वारूढ था। उसके

उदयश्रीर्नतशिरा राज्ञीत्युक्तवति स्वयम् ।
महीरन्ध्रमिवैक्षिष्ट द्रागधोगतिवाञ्छया ॥ ४३८ ॥

४३८ इस प्रकार राजा के कहने पर उदयश्री सिर नत कर के शीघ्र अधोगति की कामना से मानों पृथिवी-रन्ध्र देख रहा था।

भास्करो द्युपरीरम्भरसासादितकौतुकः ।
स्वपुत्रशनिमुख्यानां ग्रहाणां हानिमिच्छति ॥ ४३९ ॥

४३९ द्युपरिरम्भ[1] रस में लीन भास्कर स्वपुत्र शनि-प्रमुख ग्रहों की भी हानि चाहता है।

कृपाण शक्ति से जनता का पीड़न दूर किया गया। यह महान् व्यक्ति, यह महान् राजा, यह जीवित प्राणियों का विजेता, अपने मित्रों तथा साथियों से घिरा रहता था। परन्तु उसे कोई दस नहीं सकता था। सर्जक भगवान जो किसी को किसी कार्यविशेष के लिए उत्पन्न करता है, वह उसका अनुक्रम तथा विचित्र ढंग से विचित्र अन्त भी करता है। उदाहरण के लिए सूर्य जो त्रिलोक का ज्योतिर्मय करता है, कोई नहीं जानता कि उसका कहाँ से उदय तथा कहाँ अन्त होता है।

'पार्थ' इस वंश में उत्पन्न हुआ था। किन्तु अपने पिता के क्रोध का पात्र होने के कारण उसने सुदूर स्थान में जाकर पक्षगहर क्षेत्र में गह्वरपुर स्थापित किया। कुरुशाह इस वंश में उत्पन्न हुआ था। उसने सम्पूर्ण उत्तर तथा पश्चिम विजय किया था। और एक पवित्र मन्दिर जिसका धनु था निर्माण कराया। उसका पुत्र ताहिराज त्रिनेत्र था। उसे विचित्र प्रतिभा प्राप्त थी। वह जो चाहता था उसे मिल जाता था, वह लोभहीन था, वह भूत तथा भविष्य जानता था, वह अच्छे भाग्य के प्रभाव में था। वह बड़ा शक्तिशाली, दयावान और दानशील था और सर्वदा आराधना में अपना समय व्यतीत करता था। शासन था। जब कभी कोई विदेशी शासक काश्मीर में उत्पात करना चाहता था तो वह उसे नष्ट कर देता था। यह जानकर कि काश्मीर देश पार्वती है और उसका राजा हरादाज है और ताहिराज त्रिनेत्र है, यह इसलिये था कि जनता इस बात पर विश्वास करे। वह शत्रुविहीन था। वह किसी से शत्रुता भी नहीं करता था। उसने अपनी धार्मिक कठोर तपस्या के कारण उन सब दुर्गुणों को दूर कर दिया जो देवताओं के कारण हुए थे। कोई राजा जो ताहिराज के वंशज को उच्च पद पर नहीं रखता वह अपनी समृद्धि की बलि चढ़ा देता है। दो या तीन बार ताहिराज ने भविष्यवाणी सुनी कि वह काश्मीर का राज्य स्वीकार करे और उसे अपने बुद्धिमान पुत्र शाहमीर को दे, क्योंकि वेदों में कहा गया है कि किसी का पुत्र उसकी ही आत्मा है।

'यह ताहिराज के वंश का वर्णन है।'

जोनराज ने श्लोक संख्या १३२–१४१ में ताहिराज प्रसंग का वर्णन किया है। वही सभी ऐतिहासिकों का वर्णन स्रोत है। जोनराज के पूर्व भी यह किम्वदन्ती प्रचलित थी। उसी के आधार पर जोनराज ने उक्त वर्णन लिखा है, जो कालान्तर में अन्य इतिहासकारों तथा लेखकों का ज्ञानस्रोत रहा है।

पाद-टिप्पणी

४३८ उक्त श्लोक ४३८ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ५०५ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५०५) 'उस समय पृथ्वी का सर्वसहा नाम सार्थक हो गया जब कि वह लासानुरक्त उस राजा की पूर्ववत् सेवा करती रही।'

पाद टिप्पणी

४३९ (१) द्युपरिरम्भ भास्कर का दिवसारम्भ कौतुक के रूप में रस का आस्वादन करता है। वह अन्य ग्रहों के प्रभाव को नष्ट तो करता

रागी तद्दोषवादिन्या लासादेव्या प्रबोधितः।
व्यवासयत्स्वदेशात्स राजपुत्रान् परानिव ॥ ४४० ॥

३४० तद्दोषवादिनी लासा देवी के उकसाने (प्रबोधित करने) पर उस रागी (अनुरागशील) राजा ने अपने पुत्रों[1] को शत्रुवत्—स्वदेश से निष्कासित कर दिया।

ही है। अपने पुत्र शनि को भी प्रभावविहीन कर देता है। अर्थात् दिन मे किसी ग्रह का अस्तित्व नहीं रहता है।

(२) शनि–शनैश्चर : भारतीय ज्योतिष के अनुसार एक पापग्रह है (मत्स्य० : ९३ : ४४)। अपर नाम शनैश्चर है। तीस मास मे समस्त ग्रह-मण्डल की परिक्रमा करता है (भा० : ५ : २२ : १६)। इसका लौह रथ है। यह छाया एवं विवस्वत् किंवा भास्कर अथवा मार्तण्ड का पुत्र है (भा० : ६ : ६ : ४१; विष्णु० : १ : ८ : ११)। शनैश्चर के भ्राता का नाम सावर्णि है (विष्णु० : १ : १०६)। पिता सूर्य के आदेश पर ग्रह बन गया है। कालिका-पुराण मे उसे सूर्यपुत्र कहा गया है (कालि० : १८)। शिव ने मेषादि राशि शनि के अधिकार मे तथा साथ ही साथ भक्तादि को सुखादि प्रदान करने की शक्ति भी दे दिया है (स्कन्द० : ५ : १ : ५०)।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शनि जिस समय रोहिणी नक्षत्र को पीडित करता है, अर्थात् रोहिणी शकट भेदन करता है, तो मानव के लिए अशुभ योग उपस्थित होता है। रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजा-पति है। रोहिणी शकट-भेद के कारण प्रजापति पर उसका दुष्परिणाम होता है और समस्त पृथ्वी उससे प्रभावित हो जाती है। यह भावी युग मे मनु का स्थान ग्रहण करने वाला है।

शनैश्चर की पत्नी चित्ररथ की कन्या है। पत्नी-गमन न करने के कारण इन्हें शाप मिला था। इनकी दृष्टि जिस पर पडेगी वह भस्म हो जायगा। इन्होने बालगणेश पर दृष्टिपात किया, तो उसका मस्तक धड से अलग होकर गोलोक मे जाकर गिर पडा। विश्वामित्र के पचास पुत्र इनके शाप से म्लेच्छ हो गये थे (सभा० : ११ २९; उद्योग० : १४३ : ८; भीष्म० : २ : ३२; शान्ति० : ३४९ : ५५; अनु० : १६५ : १७)।

यह सूर्य से बढ़ती हुई दूरी मे छठा ग्रह है। सूर्य से लगभग ८८ करोड मील दूर स्थित है। यह विशालता मे केवल बृहस्पति से कम है। इसका व्यास ७२,००० मील है। पृथ्वी से ७०० गुनी बडी चीज शनि मे समा जा सकती है। किन्तु पृथ्वी से केवल ९५ गुना भारी है। इसका घनत्व अन्य ग्रहो की अपेक्षा कम है। शनि पर पृथ्वी जैसा जीवन सम्भव नहीं है क्योंकि उसका ताप १५०° से० है। ग्रह है, अतएव सूर्य की परिक्रमा करता है। इसकी गति ६ मील प्रति सेकण्ड है। अपने अक्ष पर सवा दस घण्टा मे घूर्णन भी करता है। शनि के नौ उपग्रह हैं। सबसे विशाल टाइटेन है। उसका व्यास ३५५० मील है।

मैंने सर्वप्रथम शनि को टेलिस्कोप से ऑस्ट्रेलिया की राजकीय वेधशाला से देखा था। यह बडा सुन्दर लगता है। मध्य मे शनि का पिण्ड है। उसके चारो ओर वृत्ताकार वलय है। रंग हलका कृष्ण वर्ण लगता है। ज्योतिषियो के अनुसार व्यापक बाह्य व्यास लगभग १,७०,००० मील है। किन्तु वलय की मोटाई दस मील है।

पाद-टिप्पणी :

४४०. (१) पुत्र : पुत्रो का नाम हसन और अली खाँ था। लासा सौतियाडाह से जल रही थी। उसकी सौत के पुत्र सुलतान के पश्चात् राजा न हो जाय, इसलिए उसने सुलतान से कह कर निष्कासित करा दिया। इसका समर्थन म्युनिख पाण्डुलिपि (५९ ए०) से भी होता है।

तबकाते अकबरी मे गलत लिखा है—'अपने छोटे भाई हिन्दल को बलीअहद नियुक्त किया।'

कार्येष्वतिमनुष्येषु साहायकविधायिभिः ।
योगिनीपुरनाथस्य तैर्व्यक्तो विक्रमः कृतः ॥ ४४१ ॥

४४१ योगिनीपुरनाथ[1] की सहायता करने वाले वे लोग अपने अति मानुषिक कर्मों द्वारा अपना विक्रम व्यक्त किया।

औदार्यदत्तवृत्तीन्स हिन्दुख्यानेन वोधितः ।
म्लेच्छान् सेकन्धरमुख्यान् राजद्रोहकृतोऽवधीत् ॥ ४४२ ॥

४४२ हिन्दुख्यान[1] द्वारा प्रेरित होकर उसने, उदारतावश जिन्हें वृत्ति[2] दी गयी थी, ऐसे राजद्रोही सेकन्धर (सिकन्दर) प्रमुख म्लेच्छों का वध कर दिया।

पिशुनैर्जनिताशङ्कः शूरे मदनलाविके ।
राजा विप्लवसज्जोऽपि सेवयाऽस्य निवारितः ॥ ४४३ ॥

४४३ पिशुनों के कहने पर, शूर मदनलाविक के ऊपर, सशंकित राजा, विप्लव के लिये उद्यत, उसकी सेवा से (सन्तुष्ट होकर) निवारित हुआ।

उसके भाई हसन को यद्यपि दोनो सगे भाई थे दूसरी पत्नी के कहने से जो कि उसकी माता की विरोधी थी देहली की ओर निर्वासित कर दिया (उ० : तै० : भा० : १ : ५१४)।'

फिरिस्ता लिखता है—'उसके दो पुत्र हसन खाँ और अली खाँ सुल्तान की दूसरी बेगम की प्रेरणा पर कानून बहिष्कृत करार देकर देश से निर्वासित कर कर दिये गये। वे भाग कर दिल्ली चले आये (४५९)।'

पाद-टिप्पणी :

४४१ (१) योगिनीपुरनाथ : द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ३८४। यहाँ पर योगिनीपुरनाथ तात्पर्य फिरोज शाह तुगलक (सन् १३५१—१३८८ ई०) से है। तारीखे मुहम्मदी में फिरोजशाह तुगलक के पार्षदों, अमीरों का नाम दिया गया है। उसमें शहाबुद्दीन के दोनो पुत्रो हसन खा तथा अली खा का नाम मुझे नहीं मिला (तुगलककालीन भारत : २ : २२६ अलीगढ़ वि० वि०)।

पाद-टिप्पणी :

४४२ (१) हिन्दु : जोनराज ने प्रथम बार यहाँ 'हिन्दु' शब्द का प्रयोग किया है।

श्री जोगेशचन्द्र दत्त ने 'हिन्दूकुस को मार डाला' अनुवाद किया है। यह त्रुटि पाठभेद के कारण हो गई है। श्री दत्त का अनुवाद सन् १८३५ ई० की मुद्रित प्रति के आधार पर हुआ है।

(२) वृत्ति : पुरा अभिलेखो मे वृत्ति शब्द का उल्लेख मिलता है। उसका अर्थ जीविका, किसी को भूमि आदि जीविका के लिए देना, वृत्ति माना गया है। गुजारा शब्द का समावेश वृत्ति के अन्दर हो जाता है। ब्राह्मण, नापित आदि कार्यशील जातियो को जो भूमि या पर्वों, ब्याह-शादी आदि संस्कारों के समय यजमानी के कारण धन अथवा अन्य वस्तुयें परम्परा से चले आते रिवाज के अनुसार दी जाती है उसे वृत्ति या यजमानी कहते हैं। यह ब्राह्मणो को सस्कार, पूजा-पाठ आदि कराने की सेवा के बदले मे दिया जाता था। प्रत्येक ग्राम एव कुटुम्ब के साथ ब्राह्मणादि की यजमानी होती थी। उनकी यह जीविका समझी जाती थी। इसका उत्तराधिकार व्यक्तिगत कानून के अनुसार चलता था। ग्रामो मे यह प्रथा सेवा रूप मे खूब प्रचलित थी और आज भी है। यजमानी वृत्ति के अधिकार का बैनामा, रेहननामा आदि होता है। इस प्रकार के क्रय-विक्रय को अदालत तथा रजिस्ट्री विभाग आज भी मान्यता देती है।

पाद-टिप्पणी :

४४३ श्लोक सख्या ४४३ के पश्चात् बम्बई सस्करण में श्लोक संख्या ५११–५१४ अधिक है। उसका भावार्थ है —

राजा जातूत्तरां यात्रां व्यसनेनाभिवेणयन् ।
नौसेतुकौतुकं सिन्धोः परिखाया इवाहरत् ॥ ४४४ ॥

४४४ कदाचित् व्यसन वश, उत्तर दिशा में (सेना सहित) प्रयाण करते हुए राजा ने परिखा सदृश सिन्धु नदी के नौका निर्मित सेतु का हरण कर (हटा) लिया ।

(५११) 'औदार्यशाली राजा द्वारा अपने साथ वर्धित मदनलाविक स्वय अत्यधिक राजा का व्यवहार करने लगा ।'

(५१२) 'तुल्यबल एवं धन वाला यह शङ्कनीय है इस प्रकार ईर्षालु मन्त्रियो ने उसके ऊपर राजा को क्रुद्ध कर दिया ।'

(५१३) 'उस पवित्र को अपवित्र मानकर भूमिपाल की बुद्धि खल दुष्टों से आवृत होने के कारण चित्त स्थिर नही हुआ ।'

(५१४) 'पुनः क्रोध वेग से उसे पीडित करने के लिये चाहते हुए भी इस राजरत्नाकर को उसकी गुण वेला ने रोक दिया ।'

(१) सेवया : श्लोक का तात्पर्य स्पष्ट नही होता । पाठभेद सेवया के स्थान पर 'सेना' भी मिलता है । यदि पाठभेद के अनुसार अनुवाद किया जाय तो अर्थ भिन्न हो जायगा । मदनलाविक का पुन उल्लेख श्लोक ४४८ मे किया गया है । शिकार खेलने के सम्बन्ध मे इस प्रसग का वर्णन किया गया है । सुलतान को शेर ने गिरा दिया । वह उसे मार डालना चाहता था कि मदनलाविक ने छुरिका से शेर को मारकर राजा की प्राणरक्षा की थी । श्लोक ४५० से स्पष्ट होता है कि सुलतान ने मदनलाविक को द्रव्य देकर दिल्ली के बादशाह के यहाँ भेज दिया था ।

पाद-टिप्पणी :

४४४ (१) सिन्धु : श्रीनगर से उत्तर पूर्व दिशा सिन्धु उपत्यका सिन्धु नदी तथा लद्दाख से प्रवाहित होकर आने वाली सिन्धु महानद दोनो पडती है । यदि काश्मीर को देश मान लिया जाय तो काश्मीर के उत्तर मे बहती सिन्धु महानद परिखा अर्थात खाई का कार्य काश्मीर देश की रक्षा के लिये करती है । प्रथम सिन्धु नदी भी काश्मीर मण्डल के उत्तर मे पूर्व सोन मर्ग मार्ग की ओर से बहती आती और पश्चिम बहती शादीपुर के समीप वितस्ता मे मिल जाती है । श्रीनगर से सोन मर्ग जाने वाली सडक सिन्धु नदी के तट से होकर जाती है । काश्मीर उपत्यका मे उत्तर मे प्रवाहित यह भी परिखा किंवा खाई का कार्य करती है । इस सिन्ध पर सोन मर्ग मे पुल बँधा है ।

श्रीनगर से सोनमर्ग ५२ मील तथा जम्मू से से ३२४ मील है । सोनमर्ग के पश्चात् जोजिला दर्रा पडता है । सोनमर्ग मे सिन्ध नदी पर पुल बना है । सोनमर्ग से ८१ मील पर करगिल पडता है । जम्मू से करगिल ४०५ मील तथा श्रीनगर से १३३ मील है । करगिल के पश्चात् फोटूला है । फोटूला के पश्चात् सिन्धु महानद पुल से पार कर लेह पहुचा जाता है । श्रीनगर से लेह २८५ तथा जम्मू से ५५७ मील पडता है । लेह सिन्ध महानद के दक्षिण अर्थात् पूर्वीय तट पर पडता है ।

लेह से करू २३ मील है । जम्मू से करू ५८० मील और श्रीनगर से ३०८ मील है । करू से चुसूल ९६ मील है । करू से डुङ्गिटी १३१ मील तथा जम्मू से ६९५ और श्रीनगर से ४७८ मील है । मैं दो बार जम्मू से लेह-करू और डुङ्गिटी होता चिसूल गया हूँ । करू से डुङ्गटी सडक सिन्धु महानद के तट से होकर जाती है । यात्रा सुखद है । प्राकृतिक दृश्य सुहावना है ।

सिन्धु पुल सुरक्षा की दृष्टि से सोनमर्ग अथवा फोटूला के पश्चात् तोडना उचित जान पडता है । लेह पहुँचने वाला यह सिन्ध महानद पर पुल हो सकता है । रिंचन ने इसी मार्ग से काश्मीर मे प्रवेश किया था और अपनी शक्ति द्वारा काश्मीर पर अधिकार कर लिया था । सिन्धु नद तीव्रगति के कारण नौ परिवहन के लिये अनुपयुक्त है । प्राचीन काल मे उस पर डोरियो तथा तारो से झूलन पुल बनाये

जाते थे। देश के लिये खतरा दस्तर अथवा शत्रुओं द्वारा पुल बनाये जाने पर सुल्तान ने उस तुड़वा दिया होगा। परिखा-वेष्टित दुर्ग प्रवेश हेतु उठने वाला पुल बनाया जाता है। संकटकाल में पुल उठा दिया जाता है। इसी की उपमा देकर जोनराज वर्णन करता है। सोनमर्ग परवर्ती अथवा पोट्ठुश समीपवर्ती पुल तोड़ा गया था इसकी अधिक सम्भावना है।

सिन्धु नदी काश्मीर की उत्तर दिशा में प्रवाहित होती चिलास के पश्चात् काश्मीर के पश्चिम तथा पंजाब की ओर दक्षिण बहती समुद्र में मिल जाती है। वह काश्मीर राज्य में पूर्व-दक्षिण से प्रवेश करती है। डेमचोक होती उत्तर पश्चिम बहती लद्दाख में प्रवेश करती है। सिन्ध नद १८०० मील लम्बी है। काश्मीर मे ६०० मील बहती है। जानेस्कर में १४ हजार फिट ऊँचाई पर बहती लेह में १०५०० फीट ऊँचाई पर बहने लगती है। बसगू के समीप जानस्कर नदी अपनी छोटी शाखा नदियों के साथ सिन्ध में मिल जाती है। स्कर्दू क्षेत्र में ७५०० फीट ऊँचाई पर बहती है। इस क्षेत्र में सयोक नदी अपनी शाखा नदी नूबरा के साथ करस मे सिन्ध मे मिल जाती है। सयोक कराकुर्रम पर्वतमाला से निकलती है। स्कर्दू में शगरास में मिलती है। मरकल में दरस नदी तथा सोरों का जल उसमें आता है।

करू तथा लेह के पश्चात् सिन्ध पूर्णतया पश्चिम-वाहिनी हो जाती है। कराकुर्रम, हिमालय, जानस्कर पर्वतमालाओं के मध्य बहती बल्तिस्तान, गिलगिट, एजन्सी चिलास अचल होती गिलगिट तथा स्तोर नदी का जल ग्रहण करती काश्मीर के बाहर सजीन स्थान से निकल जाती है। यहाँ दक्षिण वाहिनी हो जाती है। वह सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश का अर्थात् प्राचीन गान्धार पश्चिमी पंजाब सिन्ध प्रदेश जल ग्रहण करती अरब सागर में मिल जाती है। काश्मीर में उत्तर वाहिनी होकर प्रवेश करती है और दक्षिण-वाहिनी होकर निकल जाती है। काश्मीर को सिन्ध नदी इस प्रकार अपनी गोद मे रख लेती है। उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण वाहिनी होकर वह काश्मीर का जल ग्रहण करती है। काश्मीर का रक्षा किसी दुर्ग की परिखा समान करती है। केवल काश्मीर के दक्षिण दिशा मे नहीं बहती है।

सिन्धु नदी की उपत्यका में लद्दाख, बल्तिस्तान (स्कर्दू) दरदिस्तान, गिलगिट, चेलास क्षेत्र सम्मिलित हैं। इसके उत्तर-पश्चिम मे हिन्दूकुश पर्वत, उत्तर में कराकुर्रम तथा क्यूनलून पर्वत हैं। दक्षिण मे कोह नून कुन व जानिस्कर की पर्वतमालायें हैं। उक्त क्षेत्र में सिन्धु की सहायक सयोक, नोवरा, जन्स्कर शगरसूरो गिलगिट तथा स्टार नदियाँ हैं। नदियों के दोनों तटों पर उपत्यकायें हैं।

पाकिस्तान से स्कर्दू तथा गिलगिट तक सड़कें बन गयी हैं। यह सड़क ३५१ मील लम्बी है। यह बालाकोट मे आरम्भ होकर बानसर के दर्रा से गिलगिट होते स्कर्दू तक जाती है। इस क्षेत्र का सामरिक महत्व चीन के आक्रमण के कारण बढ़ गया है। लद्दाख से मार्ग चीन, तिब्बत और गिलगिट से रूसी तुर्किस्तान तथा अफगानिस्तान की ओर जाता है। काश्मीर पर लद्दाख तथा तिब्बत की ओर से सर्वदा आक्रमण होता रहा है। उत्तर दिशा मे तुर्किस्तान, अफगानिस्तान तथा चीन से आक्रमण करने के लिये सिन्धु नदी कहीं-न-कहीं पार करनी पड़ेगी। मध्ययुग मे गिलगिट की दिशा से तुर्क लोग काश्मीर में आये थे। अतएव सिन्धु नदी पर कहीं पुल बनाना काश्मीर में प्रवेश करने की ही योजना हो सकती है। सुल्तान ने सिन्धु महानद किंवा सिन्धु पर सोनमर्ग मार्ग मे बने पुल को हटा कर अथवा तोड़कर सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम कार्य किया था।

इस समय पाकिस्तान के अधिकार मे अनधिकृत रूप से काश्मीर का लगभग एक तृतीयांश है। उसमे मीरपुरा जिला की तहसील भीमवर तथा चार गाँव छम, देवा, चकला तथा मनावर के अतिरिक्त सब भूखण्ड उसी के अधिकार मे हैं। पूँछ जिला मे जागीर पूँछ के बाग की पूरी तहसील, सधनोती पूरी तहसील, हवेली की आधी तहसील, मुजफ्फराबाद जिला मे

शूरः खड्गनगर्यां स पर्यटन् मृगयारसात् ।
सिंहमभ्यद्रवद्राजा सिंहसंहतसाहसः ॥ ४४५ ॥

४४५ मृगया रस से खड्ग नगरी[1] में पर्यटन करते हुये, शूर एवं सिंह सदृश साहसी, उस राजा ने सिंह को दौड़ाया ।

गच्छंश्चित्ताधिकं राजा वाजिना वेगराजिना ।
अन्वगाम्यतिभक्तेन मदनेनैव केवलम् ॥ ४४६ ॥

४४६ वेगशाली अश्व से, मन से भी अधिक द्रुत गति से जाते हुये, राजा का अनुगमन, अतिभक्त केवल मदन ने किया ।

एकाकिनं चिरं यद्धयुद्धमुद्धतकेसरः ।
तमधः कृतवान् राजसिंहं सिंहोऽतिसाहसम् ॥ ४४७ ॥

४४७ एकाकी देर तक युद्धकर्त्ता अति साहसी, उस राजा को सिंह ने नीचे कर (पटक) दिया ।

उत्प्लुत्य वाजिनस्तूर्णं शूरो मदनलाविकः ।
निपातितनृपं सिंहं कृपाण्या सहसाऽवधीत् ॥ ४४८ ॥

४४८ अश्व से अतिशीघ्र कूदकर, शूर मदनलाविक ने राजा को गिराने वाले, उस सिंह का कृपाणी से सहसा वध कर दिया ।

प्राणरक्षोपकारेण प्रसन्नः पिशुनाज्जनात् ।
युक्त्या मारणमेतस्य शङ्कमानो नरेश्वरः ॥ ४४९ ॥

४४९ प्राण रक्षा के उपकार से प्रसन्न राजा ने पिशुन जन की युक्ति से इसके मारे जाने की आशंका के कारण—

उरी की आधी तहसील, तीन चौथाई करनाह तहसील, गिलगिट का पूरा क्षेत्र, पूर्वकालीन रियासी तथा लद्दाख प्रदेश मे स्कर्दू तहसील, मासवा का थोडा भाग तथा करगिल का एक चौथाई भाग पाकिस्तान के पास है ।

पाद-टिप्पणी :

४४५. (१) खड्ग नगरी : खाग, (रा० : ९०) खादुपी (रा० : ५ : २३), खोल (रा० : १ : ३४०), खुय्य होम (रा० : ८ : २६९५–९८) खुवं (रा० : ८ : ७३), खोनमुह (रा० : १ : ९०) आदि ग्रामों का उल्लेख मिलता है परन्तु खड्ग नगरी कहाँ थी, इस स्थान का वास्तविक पता अभी तक नही लग सका है । वर्णन क्रम से स्पष्ट होता है कि राजा उत्तर दिशा मे सेना सहित गया था । सिन्धु नदी मार्ग मे पडी थी । अतएव यह स्थान सिन्धु उपत्यका मे कही होना चाहिये । पुरे साहित्य मे खड्ग नामक एक नगरी का उल्लेख मिलता है । परन्तु वह किस स्थान पर थी, यह अभी तक अज्ञात है ।

पाद-टिप्पणी :

४४६. उक्त श्लोक संख्या ४४६ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५१८ अधिक है । भावार्थ है :—

(५१८) 'वह राजा तुरङ्ग से उतर कर और पौरुष आरूढ होकर यम सदृश उस क्रूर सिंह से युद्ध किया ।'

स्वविवाहच्छलाद्दत्त्वा द्रविणं करुणामयः ।
मदनं व्यसृजद् ढिल्लीपतेर्निकटमञ्जसा ॥ ४५० ॥

४५० दयालु (वह) अपने विवाह के व्याज से, मदन को द्रव्य देकर, शीघ्र ही ढिल्ली[1]-पति के निकट भेज दिया।

पाद-टिप्पणी

४५० (१) ढिल्ली : पृथ्वीराज रासो के अनुसार दिल्ली का प्राचीन नाम कल्हणपुर था। यह नाम राजा कल्हण के नाम पर पड़ा था (रासो. समय ' ३ १७)। शुद्ध प्राचीन दिल्ली का नाम ढिल्ली जोनराज के समय तक प्रचलित था। ढिल्ली शब्द राजस्थान के प्राचीन शिलालेखो मे मिलता है। इस श्लोक से प्रकट होता है कि काश्मीरराज का अपने सहधर्मी दिल्ली के बादशाहो से सम्पर्क था। ढिल्ली वै (ढिल्लीपति), ढिल्लेश (दिल्ली नरेश) शब्दो का प्रयोग मध्यकालीन हिन्दी ग्रन्थो मे किया गया है। पृथ्वीराज रासो मे दिल्ली न देकर ढिल्ली शब्द का प्रयोग किया गया है। ढिल्ली नामकरण की एक कथा भी दी गई है।

कवि चन्द वरदायी लिखता है कि तोमर वश के १६वे राजा अनङ्गपाल ने पृथ्वीराज के जन्मोत्सव मे व्यास नामक एक ब्राह्मण से मुहूर्त पूछा। ब्राह्मण ने वही शुभ समय बताया—'यह किल्ली आप गाड दीजिये। यह शेषनाग के मस्तक पर स्थिर हो जायगी। आपका राज्य अचल होगा।' किल्ली भूमि में गाड दी गई। राजा को विश्वास नही हुआ कि किल्ली शेषनाग के मस्तक तक गड़ी होगी। राजा ने किल्ली उखाड लिया, किल्ली म रक्त लगा निकला। ब्राह्मण ने कहा—'तुम्हारा राज्य किल्ली के समान ढिल्ली हो जायगा। ढीला अर्थात् अस्थिर होगा।' उसने भविष्यवाणी की—'तोमर वश के पश्चात् चौहान का राज्य होगा। उसके पश्चात् मुसलमान, अनन्तर हिन्दू और मेवातपति का शासन होगा।' राजा क्रोधित हो गया और ब्राह्मण को निकाल दिया। वह अजमेर चला गया। वहाँ उसका बडा सम्मान हुआ। रासो लिखता है—

अनङ्गपाल छक्क वै, बुद्धि जो इसी उकिल्लिय।
भयौ तुअरपति मतिहीन करी किल्लीय तैं ढिल्लिय॥
(रासो समय ' ३ २६)

× × ×

हू गडिगयो किल्ली सजीव हल्लाय करी ढिल्ली सजीव।
(रासो समय . ३ ' ३०)

× × ×

नव सतै वर अन्त बहुरि ढिल्लीपति होई।
पग्ग पोद पुरासान पहुचि चक्क वै सु जोई॥
(रासो समय ३ ४३)

× × ×

सोरे सै सत्योरै बिक्रम साक वदीत।
ढिल्ली धर मेवातपति लैहि पगबल जीत॥
(रासो समय : ३ : ४४)

दिल्ली का स्थान पुरानी दिल्ली से महरौली तक विस्तृत था। इस भूखण्ड पर कितनी ही बार दिल्ली बनी और उजडी है। दिल्ली की सबसे प्राचीन आबादी महरौली मानी जाती है। पृथ्वीराज का दुर्ग यहीं था। विष्णु मन्दिर था। पृथ्वीराज के पराजय के पश्चात् विष्णु मन्दिर मुसलमान आक्रमको द्वारा भग किया गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक बादशाह बना। विष्णु मन्दिर के स्थान पर मसजिद कुवते इसलाम बनी। कुतुब-मीनार का निर्माण गुलाम बादशाहो ने अपने पराक्रम एव विजय गौरव (प्रतीक) कराया।

वर्तमान तथा प्राचीन दिल्ली अचल के दक्षिण, पश्चिम, उत्तर मे हरियाणा का राज्य है। उनमे गुडगावा तथा रोहतक जिले हैं। उत्तर तथा उत्तर-पूर्व उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर तथा मेरठ के जिले हैं। यमुना के दक्षिण तट पर दिल्ली आबाद है। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई ७०० फीट है। सर्वप्रथम

मैं सन् १९३० ई० मे दिल्ली आया था। उस समय की दिल्ली की वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन आदि मे इस समय से अत्यधिक अन्तर हो गया है। सफदरजंग से महरौली तक कब्रिस्तानो ओर मजारो से भरा जगल था। दिल्ली दरवाजा से हिमायूँ और निजामुद्दीन तक कोई विशेष आबादी नही थी। मुसलिम सस्कृति एव सभ्यता का प्रभाव चारो ओर दिखायी पड़ता था। दिल्ली उर्दू भाषा की केन्द्र थी। उन दिनो दिल्ली तथा लखनऊ उर्दू कवियो तथा भाषाविदो का स्थान था। उर्दू भाषा मे दिल्ली तथा लखनऊ की शैलियाँ प्रसिद्ध थीं।

दिल्ली का इतिहास पाण्डवो के समय से मिलता है। यह सात दिल्लियो का नगर कहा जाता है। साम्राज्यो तथा राज्यो की श्मशानभूमि है। महाभारत काल मे पाण्डवो की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इन्द्रप्रस्थ बहुत काल तक मौर्य, मथुरा के शासको, यौधेयो, कुषाणो एव गुप्त वश के अधीन रही है। दिल्ली ध्वसावशेषो एव स्मारको का सग्रहालय है। अशोकस्तम्भ तथा महरौली अर्थात् विष्णु पर्वत पर विष्णु मन्दिर स्थित धातुस्तम्भ समुद्रगुप्त आदि सम्राटो का निर्माण है।

दसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे प्रतिहार राजाओ के सामत तोमर राजपूतो का अधिकार था। इस वश के सूरजपाल ने तुगलकाबाद के लगभग तीन मील दक्षिण सूरजकुण्ड का निर्माण कराया था। यह कुण्ड दर्शनीय है। अपनी विशालता के कारण प्रभावित करता है। मैं यहाँ दिल्ली प्रवास के समय प्रायः आया करता था। सन् १९५२ मे वह भग्नावस्था तथा जगलो से घिरा था। इस समय यह सौन्दर्यमय पर्यटन स्थान हो गया है। सूरजकुण्ड के एक मील दक्षिण अनगपुर तटबन्ध है। राजा अनगपाल ने इसका निर्माण कराया था। अनगपाल ही लालकोट का निर्माता माना जाता है। प्रतिहारो के पश्चात् गजनवियो का आक्रमण दिल्ली पर हुआ। तत्पश्चात दिल्ली पर चौहानो का अधिकार हो गया। चौहानवशीय वीसलदेव ने दिल्ली पर सन् ११५० ई० मे अधिकार कर लिया। विशलदेव के प्रपौत्र राय पिथौरा किवा पृथ्वीराज थे। मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को पराजित किया और दिल्ली पर गुलाम वश का राज्य सन् ११९३ ई० से १२४६ ई० तक रहा। कुतुबुद्दीन ऐबक पहला मुसलिम बादशाह था जो दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। उसने लालकोट स्थित मन्दिरो को नष्ट कर उसके मलवे से कुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ कराया था।

गुलामवश के पश्चात् खिलजी वंश ने सन् १२९० से १३३० तक दिल्ली पर राज्य किया। अलाउद्दीन खिलजी ने कुतुबमीनार के समान दूसरी मीनार बनवाना आरम्भ किया परन्तु वह आज तक अधूरी और नगी पड़ी है। उसने वहीं पर अलायी दरवाजा का निर्माण कराया। उसने कुतुबमीनार की मसजिद का भी विस्तार किया परन्तु वह पूरा न हो सका। उसने दूसरे दिल्ली सिरी की स्थापना की। तुगलक वश ने सन् १३२१ से १४१४ ई० तक दिल्ली पर राज्य किया था। गयासुद्दीन तुगलक (सन् १३२०–१३२५ ई०) ने तुगलकाबाद बसाया। वह तीसरी दिल्ली कही जाती है। मुहम्मद तुगलक ने जहापनाह स्थान आबाद कराकर चौथी दिल्ली आबाद किया था। यहाँ पर वेगमपुरी तथा खिरकी मसजिदो को (सन् १३१७–१३७५ ई०) फिरोज शाह तुगलक के वजीर खानजहा ने निर्माण कराया था। फिरोज शाह तुगलक ने (सन् १३७१–१३८८ ई०) पाचवी दिल्ली फिरोजाबाद बसाया। यह कोटला फरोजाशाह नाम से प्रसिद्ध है। फिरोजशाह ने कोटला पर अशोक स्तम्भ अबाला जिला स्थित टोपरा से लाकर लगाया है। फिरोजशाह तुगलक का मकबरा और मदरसा हौज खास मे दर्शनीय स्थान हैं।

दिल्ली पर सैय्यद वश का सन् १४१४ से १४५१ ई० तक राज्य था। इस वश के पश्चात् लोदी वश (सन् १४५१–१५२६ ई०) ने दिल्ली पर राज्य किया। लोदी के प्रधानमन्त्री ने मोथ मसजिद का निर्माण कराया। सिकन्दर लोदी आदि राजवशियो की मजारें प्रसिद्ध लोदी गार्डन मे हैं। लोदी वश के

उत्पन्नचम्पकं दीप्त्या कुर्वतीं व्योम जातुचित् ।
स्वप्ने शर्करसूहाख्यो दृष्टवान्काञ्चनीं पुरीम् ॥ ४५१ ॥

४५१ कदाचिद् शर्कर[1] सूह[2] ने स्वप्न मे काचनमय[3] पुरी को देखा, जो कि (अपनी) कान्ति से आकाश को फुल्ल चम्पक युक्त बना रही थी।

वेश्म वेश्म विशंस्तत्र शून्यं पश्यन्नयं ततः ।
राजधान्यां स्त्रियं काञ्चिदपश्यत्कान्तिदन्तुराम् ॥ ४५२ ॥

४५२ उस राजधानी मे प्रति घर मे प्रवेश करते तथा शून्य देखते हुये, उसने अतिकान्तिमयी किसी स्त्री को देखा।

समय हजरत निजामुद्दीन की दरगाह स्थापित की गई। यही पर अमीर खुसरो दफन किया गया है। इब्राहीम लोदी बाबर द्वारा सन् १५२६ ई० म पराजित किया गया। मुगलो का राज्य दिल्ली पर सन् १५२६–१७०७ ई० तक था। बाबर का शासन केवल चार वर्षों (सन् १५२६–१५३० ई०) तक कायम रहा। इसी समय पालम के समीप एक लघु मसजिद तथा महरौली में जमाली कमाली की मसजिद का सन् १५२८–१५२९ ई० में निर्माण किया गया। हिमायूँ ने फिरोजशाह कोटला तथा पुराने किला के मध्य दीनपनाह नामक नगर स्थापित किया। शेरशाह सूर ने दीनपनाह नगर गिरा कर पुराना किला निर्माण कराया। यह छठी दिल्ली कही जाती है। शेरशाह की मृत्यु सन् १५४५ ई० मे हो गई। सन् १५५५ ई० में हिमायूँ ने पुन भारत मे राज्य स्थापित किया। पुराने किले मे शेरशाह की किला-ए-कुहना मसजिद है। इस समय शेरशाह के किले म पुरातत्व विभाग द्वारा अन्वेषण तथा खनन कार्य आरम्भ किया गया है। शेर (विजय १) मण्डल अठपहली इमारत का निर्माण हिमायूँ ने कराया था। हिमायूँ की मृत्यु सन् १५५६ ई० मे हो गई। अकबर की माँ हमीदा बानू ने हिमायूँ का प्रसिद्ध मकबरा निर्माण कराया। यह दिल्ली का दर्शनीय स्थान है। अकबर से जहाँगीर तक राजधानी आगरा म थी। शाहजहाँ (सन् १६२६–१६५७ ई०) ने यमुना तट पर लाल किला बनवाया। इसका निर्माण सन् १६३९ ई० मे आरम्भ हुआ था। नव वर्षों मे निर्माण कार्य समाप्त हुआ था। सन् १६५० ई० मे शाहजहाँ ने लाल किला के पश्चिम दिशा मे प्रसिद्ध जामा मसजिद का निर्माण कराया। ३१ जुलाई सन् १६५८ ई०, को औरङ्गजेब का राज्याभिषेक सातवीं दिल्ली के शालीमार बाग म हुआ था। लाल किले म सगमर्मर की मोती मसजिद उसी का निर्माण है। सन् १७०७ ई० मे औरङ्गजेब मर गया। उसकी पुत्री जिन्नतुन्निसा बेगम ने दरयागज मे जिनातउल मसजिद का निर्माण इसी समय के लगभग कराया। सफदरजंग का मकबरा सन् १३३९–१७५४ के मध्य बनाया गया था। जन्तर मन्तर का निर्माण जयपुर के महाराज जयसिंह ने सन् १७१० ई० मे कराया था। सन् १८५७ ई० तक नाममात्र के लिए मुगल बादशाह दिल्ली पर शासन करते रहे। नादिरशाह, अहमदशाह अबदाली, मराठे, जाटो द्वारा दिल्ली प्राय लूटी जाती रही। सन् १८५७ ई० म दिल्ली ब्रिटिश राज्य मे मिला ली गई। बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण में दिल्ली भारत की राजधानी तथा सन् १९४७ मे स्वाधीन भारत राज्य की राजधानी बनी।

पाद टिप्पणी

४५१ (१) शर्कर शर्कर काश्मीरी पण्डितो का व्यक्तिवाचक नाम था। अब यह नाम रखना समाप्त हो गया है।

(२) सूह ब्राह्मणो की एक उपजाति है। गणपत यार के समान सूहयार भी शब्द शताब्दियो से प्रचलित है। सूहभट्ट सिकन्दर का मन्त्री था। वह मुसलमान हो गया था। सूहशब्द सिंह का अपभ्रंश है।

अपृच्छच त्वमेकैव हन्तेयति महापुरे।
व्योम्नीव शशिलेखा किं चित्रं तिष्ठसि निर्भया ॥ ४५३ ॥

४५३ और पूछा—'दुःख एवं आश्चर्य है कि, तुम अकेली इस विशाल महापुर में निर्भय होकर आकाश में शशिलेखा सदृश, क्यों रहती हो ?

कस्येयं नगरी कस्माच्छून्या सर्वत्र वर्तते।
अत्रेदं पतितं कस्य वर्तते च कलेवरम् ॥ ४५४ ॥

४५४ 'यह किसकी नगरी है ? किस कारण से सर्वत्र शून्य है ? और यहाँ यह किसका शरीर पड़ा हुआ है ?'

सा तं जगाद गन्धर्वराजस्यासौ महापुरी।
सुन्दरी पतिहीनेव विधुहीनेव शर्वरी ॥ ४५५ ॥

४५५ उस (स्त्री) ने उससे कहा—'यह गन्धर्वराज[1] की महापुरी[2] है, जो पतिहीन सुन्दरी एवं विधुहीन शर्वरी तुल्य है।

---

(३) काञ्चनपुरी : काश्मीर के साहित्यकारो एवं कवियो की कल्पित नगरी गन्धर्वनगर के समान देवनगरी की कल्पना की गई है। कुवेर, गन्धर्व तथा देवताओ के प्रसङ्ग मे काचन नगरी का उल्लेख मिलता है। लङ्का को भी स्वर्ण लङ्का माना गया है।

कथासरित्सागर मे काश्मीर के प्रसङ्ग मे कांचन नगरी का उल्लेख किया गया है। काश्मीरी पण्डित सोमदेवभट्ट ने दो विद्याधरो की कथा-प्रसङ्ग मे काचनपुरी एक प्राचीन नगर का वर्णन किया है। वहाँ का राजा सुमना था–'बभूव काञ्चनपुरीत्याख्यया नगरी पुरा''''' (दशम लम्बक : तृतीय तरङ्ग : श्लोक २२)। कांचन शृङ्ग एवं हेममय पुरी का वर्णन रत्नप्रभा के वृत्तान्त के सन्दर्भ में किया गया है। वहाँ का राजा विद्याधर हेमप्रभ था (सप्तम लम्बक : प्रथम तरङ्ग : श्लोक : २१)। —'तत्र काञ्चनशृङ्गाख्यमस्ति हेममय पुरम्।' इसी तरङ्ग में काञ्चन शृङ्ग का पुनः उल्लेख किया गया है— 'हेमप्रभो निनाय स्वं पुरं काञ्चनशृङ्गकम्'। (७ : १ : १५१)।

पाद-टिप्पणी :

४५५. (१) गन्धर्व : देवताओ के दश योनियो मे एक गन्धर्व योनि है (अमर० १ : स्वर्ग० : ११)। देवगायकों मे गन्धर्व की गणना की जाती है। हा-हा हू-हू, तुम्बरू, किन्नर आदि है (अमर० : १ : स्वर्ग० : ५५)। गन्धर्व जन्म-मरण मध्यवर्ती प्राणी, गायक, गन्धर्व माने गये हैं (अमर० : ३ : नानार्थ० : १३३)। भारतवर्ष के नव द्वीपो मे गन्धर्व द्वीप का भी उल्लेख किया गया है। वायु, मत्स्य एवं ब्रह्माण्ड पुराणो मे गन्धर्व, किन्नर, यक्ष का एक साथ उल्लेख किया गया है। रामायण मे गन्धर्वो का सिन्धु नदी के दोनो तटो पर आबाद होना लिखा गया है (वा० : उ० : ११४ : १०-१२)। सोमाश्रम गन्धर्वों से सेवित था (वा० : कि० : ४३ : १४)। यह भी उल्लेख मिलता है कि वे उत्तर कुरु मे निवास करते थे (कि० : ४३ : ४९)। महेन्द्र-गिरि पर भी गन्धर्व रहते थे (सुन्दर० : १ : ६)। अपने देश के रक्षणार्थ गन्धर्वों ने भरत तथा युधाजित् से युद्ध किया था। भरतादि ने उन्हे जीतकर उनके क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया था (वा० : उ० : १०१ : २-९)। तक्षशिला एवं पुष्कलावती का भू-खण्ड गन्धर्व देश एवं गान्धार विषय कहा जाता था (वा० : उ० : १०१ : ११)। गन्धर्व जाति द्वारा निवसित जाति के भूखण्ड को एक मत के अनुसार कालान्तर मे गान्धार देश मान लिया गया था। वे अन्तरिक्ष मे भी उडते थे (कि० : १ : १७८)।

रामायण मे भी उल्लेख मिलता है कि गन्धर्व लोग गायक थे। राम के विवाहोत्सव मे इन लोगो ने गायन किया था (बा० : बा० : ७३ : ३५)। भरद्वाज के आश्रम मे इन लोगो ने गायन किया था (वा० : अयो० :९१ :२६)। श्रीराम के राज्याभिषेक के समय भी गन्धर्वों ने गायन किया था (युद्ध : १२८ : ७२)। महाभारत मे सरस्वती तटवर्ती एक गन्धर्व तीर्थ का उल्लेख किया गया है। वहाँ विश्वावसु आदि गन्धर्व नृत्यादि का आयोजन करते थे (शल्य० : ३७ : ९–१३)। गन्धर्व देश एवं जाति पर्वतीय थी। उनका स्थान हिमालय का मध्यभाग माना जाता है।

गन्धर्वों के राजा चित्ररथ, विश्वावसु, चित्रसेन आदि है। गन्धर्व जाति का वर्णन वैदिक साहित्य मे मिलता है। वे सोमरक्षक, मधुरभाषी, सगीतज्ञ एव महिलाओ पर अतिप्राकृत रूप से प्रभावशाली चित्रित किये गये हैं (ऋ० : ३ : ३८ : ६; १० : ११, अथर्व० : २० : १२८ : ३, २ : ५ : २, १४ : २ : ३४–३६)। पुराणों मे देवगायको के रूप मे चित्रित किये गये है। सङ्गीतशास्त्र मे पारङ्गत माने गये हैं। कालान्तर मे वे अलौकिक व्यक्ति के समान चित्रित किये जाने लगे थे। गन्धर्वों का निवास अरिष्ट पर्वत पर भी था (कि० . ५६ ३५)। मन्दाकिनी का तट इनसे सेवित था। इसका भी उल्लेख मिलता है (उ० : ११ ४३)।

(२) महापुरी गन्धर्वराज की महापुरी के लिये नगर शब्द का भी व्यवहार जोनराज ने श्लोक ४५४ तथा ४५८ मे किया है। गन्धर्व नगर का उल्लेख महाभारत मे किया गया है। महर्षियो के अन्तर्धान को गन्धर्व नगर की उपमा दी गयी है। वेदान्त मे ससार को उपमा गन्धर्व नगर से दी गयी है। महाभारत के अनुसार गन्धर्व नगर मानससरोवर के समीप था। गन्धर्व नगर की रक्षा गन्धर्व करते थे। अर्जुन ने गन्धर्व नगर जीतकर तित्तिर कल्माष एव मंडूक नामक अश्व प्राप्त किये थे। गन्धर्व लोक विद्याधर एवं गुह्यक लोको के मध्य मे पडता था। नगर ग्राम स्थानादि का वह मिथ्याभास जो आकाश एवं स्थल मे दृष्टिदोष के कारण दिखायी देता है। गन्धर्व नगर के आभास मिलने का फल वृहत्संहिता मे दिया गया है। गन्धर्व नगर एक काल्पनिक नगर है जिसे काव्यों, कथाओ तथा आख्यानो मे दिया गया है। गन्धर्व पूर्वकाल मे मानवो के समान जाति थी। उनका देश गान्धार माना जाता है। कालान्तर मे गन्धर्वगण आकाशचारी आदि अलौकिक रूपो मे मान लिये गये तो नगर भी कल्पनामय हो गया।

गुह्य, यक्ष, किन्नरो के समान गन्धर्व एक मानव जाति थी। उनका मुख्य कार्य गान, नृत्य एव वाद्य था। वे गान एव सगीत विद्या मे पारगत माने जाते थे। गन्धर्ववेद ही सगीतशास्त्र है। वह चार उपवेदो मे एक उपवेद है। उसमे स्वर, ताल, राग, रागिणी का वर्णन किया गया है। काशी मे गन्धर्व जाति है। उनका नृत्य, गान एवं वाद्य पेशा है। वे अपनी जाति गन्धर्व लिखते हैं। आठ प्रकार के विवाहो मे एक गान्धर्व विवाह भी है। जहाँ विवाह बिना माता-पिता किंवा अभिभावक के नर-नारी स्वतः प्रेमसूत्र मे बध जाते हैं, उसे गान्धर्व विवाह की सज्ञा दी गयी है। वे पुराणो के अनुसार स्वर्ग मे निवास करते थे। वहाँ सगीत कार्य करते थे। अग्निपुराण मे गन्धर्वों के ग्यारह गण माने गये है। वेदो मे दो प्रकार के गन्धर्वों का वर्णन मिलता है। प्रथम का द्युस्थान था। दूसरे वर्ग का स्थान अन्तरिक्ष था। द्युस्थान के गन्धर्वों की सज्ञा दिव्य से दी गयी है। ब्राह्मण एव उपनिषद् ग्रन्थो मे गन्धर्वों को देव एव मनुष्य गन्धर्व मे विभाजित किया है। एक जाति भी गन्धर्व है। वह नृत्य, गान, का कार्यकरती है। उनकी जीविका का यही साधन है। वे कुमायूँ आदि पर्वतीय क्षेत्रो मे मिलती हैं। निष्कर्ष यही निकलता है कि यह एक काल्पनिक नगर है। इसका स्थान आकाश माना गया है। सम्भवत यह मरीचिका आदि प्राकृतिक घटनाओ का परिणाम था।

स चामात्यैः समं सर्वैः पातुं काश्मीरमेदिनीम् ।
अवतीर्णः परिस्थाप्य निजमत्र कलेवरम् ॥ ४५६ ॥

४५६ 'वे (गन्धर्वराज) यहाँ अपना कलेवर' स्थापित कर, सब अमात्यों' के साथ कास्मीर मेदिनी की रक्षा के लिये, अवतीर्ण हुये हैं।

शाहावदीन इति यः प्रथितोऽस्ति जगत्त्रये ।
तत्कलेवररक्षार्थमत्र तिष्ठामि केवला ॥ ४५७ ॥

४५७ 'जो कि तीन लोकों में शाहाव(भ)दीन नाम से प्रथित हैं। उनके कलेवर की रक्षा' के लिये मैं अकेली यहाँ रहती हूं।

पाद-टिप्पणी :

४५६. (१) कलेवर : जोनराज ने सुलतान जैनुल आबदीन के स्वयं कलेवर बदलने तथा एक ही समय दो स्थानों पर उपस्थित रहने का उदाहरण दिया है। जोनराज ने जैनुल आबदीन को योगी तथा नारायण का अवतार माना है। उसे एक समय एक साथ दो स्थानों पर उपस्थित रहना परसियन इतिहासकारों ने लिखा है वह एक ही समय दो कलेवर धारण कर सकता था। (द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ९७३; वाकयाते कश्मीर : पाण्डु : ४४)।

(२) अमात्य : अमात्य शब्द का प्रचुर प्रयोग स्मृतियों, अर्थशास्त्र, महाभारत, रामायण, पुराण तथा नीति, विधि एवं धर्म ग्रन्थों में मिलता है। अभिलेखों में भी इसका उल्लेख मिलता है। उसका सामान्य अर्थ मन्त्री, अधिकारी, जिला का राज्याधिकारी होता था। उसे देशादि कार्य निर्वाहक माना गया है। कुछ स्थानों पर उसे सर्वाधिकारी माना गया है (आई०, ई० ८-३, ई० : आई० : २८ ३०; सी० आई० आई० ३, ४, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र भाग ३ : पृष्ठ ११४ नोट १५०)।

महामात्य शब्द का भी प्रयोग मिलता है। प्राकृत में इसे महामत कहते हैं। मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, कामसूत्र, मेधातिथि आदि ने इस शब्द का प्रयोग किया है। वह प्रधान मन्त्री अथवा मुख्य प्रशासकीय अधिकारी, उपराजा किंवा राज प्रतिनिधि के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। उसे कभी-कभी महाप्रधान भी कहते थे (आई० ई० : ८-३; सी० आई० आई० ४, भाग १ : पृष्ठ ९२; ई० आई० : २५; अर्थशास्त्र : १ : १२; ५ : १; कामसूत्र; ५ : ५, १७, ३३, ३५, मनु० : ९ : २५९, एण्टीक्विटी ऑफ चम्बा स्टेट : १२२, इण्डियन एण्टीक्वेरी : भाग : ११ : पृष्ठ : २४२; ई० आई० : २५, ३०। महामात्य परिषद का भी उल्लेख मिलता है। (द्रष्टव्य श्लोक : २३६, २८३)।

पाद-टिप्पणी :

४५७. (१) कलेवर रक्षा : यह प्रसंग योगवासिष्ठ वर्णित लीला उपाख्यान सदृश है। योगवासिष्ठ रामायण का वर्तमान संस्करण काश्मीर में किया गया था। इस पर मैं राजतरंगिणी (कल्हण : प्रथम खण्ड पृष्ठ, ३८, ६५, १३८, १४४, ४२३) में प्रकाश डाल चुका हूँ।

लीला उपाख्यान में लीला अपने पति राजा पद्म के कलेवर की रक्षा पुष्पादि से आच्छादित कर कर रही थी। राजा विदूरथ, वसिष्ठ ब्राह्मण आदि की कथा में कलेवर की रक्षा का प्रयोग उत्तमतापूर्वक दार्शनिक शैली से वर्णन किया गया है। एक कलेवर त्याग कर दूसरे में प्राणी प्रवेश करता है तथा पुन अपने रक्षित कलेवर का प्रयोग करता है। यह अत्यन्त उत्तमता के साथ योगवासिष्ठकार ने लीला उपाख्यान में सतर्क समझाया है (योगवासिष्ठ रामायण : उत्पत्ति प्रकरण : सर्ग १५-६०)।

स च निष्पादिताशेषकार्यो मासत्रयान्तरे।
स्वामिमां नगरीमेव ध्रुवं रक्षितुमेष्यति ॥ ४५८ ॥

४५८ 'वे तीन मास के अन्दर अशेष कार्य निष्पादित कर, अपनी इस नगरी की रक्षा के लिये निश्चय आयेंगे।'

प्रबुद्धोऽभ्यधिकाश्चर्यशोकचिन्तारसान्तरे ।
मज्जन्नवर्णयद्राज्ञे स्वप्नवृत्तिमखण्डिताम् ॥ ४५९ ॥

४५६ जागने पर अत्यधिक आश्चर्य, शोक एवं चिन्तारस में डूबते हुये, उसने अखडित स्वप्न वृतान्त को राजा से कहा।

असत्ये किं भयं स्वप्ने सत्ये त्वैश्वर्यमेव मे।
इत्यन्तर्विमृशन्राजा न तथा पस्पृशे शुचा ॥ ४६० ॥

४६० 'स्वप्न के असत्य होने पर भय ही क्या ? और सत्य होने पर (वह) ऐश्वर्य मेरा ही है'—इस प्रकार अन्तश्चिन्तन करते हुये, राजा उतना शोकान्वित नहीं हुआ।

मदन्तिकमुपागम्यमिति भूमिपतिस्ततः।
दूरस्थितानां पुत्राणां सद्यो लेखान् विसृष्टवान् ॥ ४६१ ॥

४६१ राजा ने—'मेरे पास आओ'—ऐसा लेख तुरन्त दूरस्थित पुत्रों[१] के पास भेजा।

पाद-टिप्पणी :

४६० उक्त श्लोक ४६० के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ५२४-५३१ अधिक है। श्लोको का भावार्थ है—

(५२४) कौतुकवश घर घर मे यह प्रवेश करते हुये, शून्य देखकर, शोक एव विस्मय से भर गया।

(५२५) राहु-भय से एकान्त स्थित चन्द्रमा की मूर्ति सदृश किसी एकाकिनी स्त्री को राजधानी म देखकर पूछा—

(५२६) तुम प्रत्यक्ष देवी की तरह कौन हो ?—और यह किसकी नगरी है ? यहाँ एकत्रित तेज पुज सदृश किसका शरीर है ?

(५२७) वह बोली—'राजा शाहाबदीन की इस मूर्ति की मैं रक्षा कर रही हूँ।

(५२८) विधाता के आदेश द्वारा इस अपनी पुरी की रक्षा के लिये सौ दिनो के पश्चात् वह काश्मीर भोग कर वापस आयेंगे।

(५२९) 'शीघ्र उस स्वामी का दर्शन करने से प्रतीक्षा प्रयत्न करके फलश्री का मैं भोग करूँगी।'

(५३०) वह सुनकर वह जग गया और विस्मित होकर राजा शाहाबदीन से यह वृतान्त कहा।

(५३१) भविष्य भोगो के माहात्म्य से अथवा निश्चय के कारण राजा ने सब धन त्याग दिया। किन्तु धैर्य नहीं त्यागा।

पाद टिप्पणी

४६१ (१) पुत्र शहाबुद्दीन के दो पुत्र हसन खाँ और अली खाँ थे। जोनराज पुत्रो के निवासस्थान का निर्देश नही करता। केवल लिखता है कि वे दूर थे। दिल्ली तथा योगिनीपुर का जोनराज को ज्ञान था, उसने उनका उल्लेख किया है। यदि दोनो पुत्र दिल्ली होते तो अवश्य लिखता कि वे दिल्ली गये थे। किन्तु परसियन इतिहासकार लिखते हैं कि उस समय दोनो पुत्र दिल्ली मे थे। उनके पास समाचार भेजा। उनमे केवल हसन ने पिता के आदेश का पालन किया। उसने दिल्ली से श्रीनगर के लिये प्रस्थान

ततो मुमूर्षुर्भूपालो हिन्दुखानं निजे पदे।
अप्राप्ततनयो धीमानभ्यषिञ्चत्स्वयं ततः॥ ४६२॥

४६२ इसके पश्चात्, बुद्धिमान मुमूर्षु भूपाल ने पुत्रों को न प्राप्त करने के कारण, निज पद पर हिन्दु खां को स्वयं अभिषिक्त किया।

ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां तानाङ्केऽब्दे महीपतिः।
आलिङ्ग्य नाकवनितास्तनौन्नत्यमपीफलत्॥ ४६३॥

४६३ उनचासवें (४४४९) वर्ष के ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को, महीपति स्वर्ग वनिताओं का आलिंगन कर उनके स्तन औन्नत्य को सफल किया[1]।

किया। किन्तु पहुँचने के पूर्व उसके पिता का देहान्त हो चुका था (म्युनिख पाण्डुलिपि : ५७ ए०)। तबकाते अकबरी में गलत लिखा गया है कि हिन्दाल तथा हसन सगे भाई थे। फिरिस्ता लिखता है—'यद्यपि सुलतान ने हसन खाँ को मृत्यु के पूर्व बुलाया था तथापि उसके जम्मू पहुँचते ही सुलतान दिवंगत हो गया' (पृष्ठ ४५९)।

पाद-टिप्पणी :

४६२. उक्त श्लोक संख्या ४६२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५३३–५३६ अधिक हैं। उनका भावार्थ हैं—

(५३३) अपने पूर्ववर्ती नृपगणो के आदर्श को मानने वाले भूपति ने मुमूर्षु अवस्था मे अपने पुत्रो के न उपस्थित रहने पर भाई को राज्य दिया।

(५३४) उस भक्त को ईश्वर जो सदेह नही ले गये, निश्चय ही उसमे मदन भ्रम कारण था।

(५३५) शौर्य एवं औदार्य विधि मे विविध श्लोको द्वारा वर्णित गुणिगणो के त्राण से प्रशंसित नैपुण्यशाली उस नृपति के अस्त हो जाने पर परिभव का त्रास दूर हो जाने से निश्चय ही शक ने मस्तक उन्नमित किया। भू-भार के वहन करने से शोकान्वित शेष (शिर) विनमित किया।

(५३६) प्रत्यक्ष जलते प्रतापाग्नि को स्वीकार कर जिसका भोग किया और जिसने उसके राग के कारण अधिक स्पृहा करते दूसरो का अनादर किया। —र भूमि का त्यागकर दुःख है कि यह चिरकाल से शक्रभुक्त (इन्द्रपुरी) चला गया। पुरुषों का प्रेमग्रह प्रत्यय स्त्रियो मे कभी नहीं होता।

पाद-टिप्पणी :

४६३. उक्त श्लोक संख्या ४६३ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५३८ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५३८) पृथ्वी विजय मे पुनरुक्त का अपवाद मानकर शाहाबदीन के मानो स्वर्ग को जीतने के लिए प्रस्थान करने पर—

(१) मृत्यु : हैदर मल्लिक चादुरा सुलतान की मृत्यु हिजरी सन् ७७० तथा राज्यकाल १९ वर्ष देते है (पाण्डु० : ४२–४३)। बहारिस्तान शाही ने मृत्युकाल ७७० हिजरी और राज्यकाल १९ वर्ष दिया है (पाण्डु० : १८–१९)। नारायण कौल मृत्यु काल हिजरी ७७० (पाण्डु० : ६५ ए०), वाकयाते काश्मीर हिजरी ७८० (पाण्डु० २८ ए०) किन्तु एक स्थान पर हिजरी ७७० भी लिखता है। किन्तु फिरिस्ता लिखता है कि सुलतान २० वर्ष राज्य कर हिजरी ७८५=सन् १३८६ ई० मे मर गया कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे मृत्युकाल सन् १३७८ ई० दिया गया है। पीर हसन राज्यकाल १९ वर्ष ३ मास देता है। उसने मृत्यु काल नही दिया है। परन्तु कुतुबुद्दीन का राज्यकाल हिजरी ७८० देता है अतएव यही समय मृत्यु काल मानना चाहिए। जोनराज स्पष्टतया लौकिक सम्वत् ४४४९ देता है। उसके अनुसार सन् १३७३ ई०=सम्वत् १४३०, विक्रमी=शक १२९५ ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी होता है।

सुल्तान कहाँ दफन किया गया इसका ठीक पता नही चलता। कुछ लोगो का विश्वास है कि महराज-गंज श्रीनगर मे उसकी मजार है। ख्वाजा आजम दिदमरी (मृत्यु सन् १७६५ ई०) ने लिखा है कि बादशाह की मजार बडशाह जैनुल आबदीन की कब्र के कहीं आस-पास थी। एक गुम्बज जैनुल आबदीन ने बनवाया था। वह उसके समय गिर गया था। (वाक्याते काश्मीर : पाण्डु : ३८ ए०)

पीर हसन आजिम की ही नक्ल कर लिखता है—'उसका मक्बरा मुहल्ला बलदीमर में लबे दरया है। वह मक्बरा सुलतान जैनुल आबदीन के मक्बरा से शुमाल की तरफ तीस कदम के फासला से वाका है। इसके ऊपर पत्थर का एक आलीशान और ऊँचा गुम्बद था (पृष्ठ० : उर्दू अनुवाद : १५६)।'

मूल्यांकन :

बहारिस्तान शाही का मत है कि ऐसा बादशाह काश्मीर मे नही हुआ है। परसियन इतिहासकारो का मत है कि शहाबुद्दीन सैय्यद तेजुद्दीन का मुरीद था। तेजुद्दीन को शाह हमदान ने काश्मीर मे मुसलिम धर्म तथा विद्या का प्रचार करने के लिये भेजा था (कसीर : १ १४०)। शहाबुद्दीन के जीवन की आलोचना परसियन इतिहासकारो ने मुख्यतया दो बातो के लिये की हैं—'लेकिन उसका एक हुक्म बडा जालिमाना था। जो कई साल तक नाफजि रहा कि महीने मे सात दिन माझियो (मल्लाहो) को किसी मजदूरी के बगैर बादशाह की खिदमत करनी पडती थी, (बहारिस्तान शाही . १९ ए०, हसन १०३ ए०)। बाज की बसूरी मे आवाम पर सख्ती होती थी। लेकिन वह उलमाओ की सरपरस्ती करता था (हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ४१)।'

शाहमीर के वंशजो मे शहाबुद्दीन आदर्श राजा था। जैनुल आबदीन का झुकाव मुसलिम सस्कृति एव सभ्यता की ओर था। परन्तु शहा-बुद्दीन निरपेक्ष था। उसने काश्मीर का हिन्दू राज देखा था। बाल्यकाल से काश्मीर मे रहा था। उस पर काश्मीर की संस्कृति एवं सभ्यता का प्रभाव था। दुलचा आक्रमण के कारण काश्मीर की व्यवस्था बिगड गयी थी। उसे उसने सुव्यवस्थित किया। अनेक स्थानो पर राज-व्यवस्था की दुर्बलता का लाभ उठाकर लवन्यादि कृषक सामन्त वर्ग स्वतन्त्र एवं अर्ध-स्वतन्त्र हो गये थे। उसने उन पर नियन्त्रण किया। उसने कठोरता से कार्य किया। हिन्दू वर्ग परस्पर इतना विभाजित था कि वह एक नही हो सका। उसमे संघटित होने की शक्ति भी नही थी। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर उसने उन लोगो को जिन्हो ने उसकी अधीनता स्वीकार नहो की मार दिया और जिन्होंने उसे मान्यता दी उन पर हाथ नही लगाया। उसके धर्म के प्रति उदार भाव होने के कारण काश्मीर उपत्यका मे शान्ति हो गयी। उसने निश्चय किया कि काश्मीर के जो भाग पूर्वकाल मे *काश्मीर राज्य के अन्तर्गत थे उन्हें पुनः काश्मीर* राज्य मे सम्मिलित किया जाय।

जोनराज ने शहाबुद्दीन के पूर्ववर्ती राजाओ को मन्द कहा है। शाहमीर, उसके दोनो पुत्र जमशेद तथा अलाउद्दीन ने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नही किया था। प्रजा की उन्नति की ओर भी ध्यान नही दिया *था। राजाओ का एक कर्तव्य सैनिक अभियान है।* उसे उन्होने किया ही नही। उसका कारण भी था। काश्मीर मे हिन्दू शासन के पश्चात् मुसलिम शासन स्थापित हुआ था। हिन्दुओ ने विद्रोह नही किया। काश्मीर को पुन: विदेशी शासन से मुक्त करने का यत्न नही किया। देशभक्ति की लहर नही उठी। शाहमीरादि को भय अपने सजातियो से था। प्रथम तीनो सुलतान आन्तरिक परिस्थिति सुदृढ करने मे लगे रहे। उनका चरित्र निखरता नही। वे साधारण शासक मात्र थे।

शाहाभदीन अर्थात् शहाबुद्दीन के समय काश्मीर मे नया जीवन आया। हिन्दू सामन्तशाही निर्बल हो गई थी। हिन्दू, धर्म, कर्म, नीति, आचार का प्रतिद्वन्द्वी मुसलिम धर्म खडा हो गया था। हिन्दू धर्म की जीवन ज्योति बुझ चुकी थी। वे सुलतानो तथा

मुसलमानो की कन्याओ को ग्रहण कर अपने घरों मे विष-बेल बो चुके थे। मुसलिम शासन स्थापित होने पर वे सुलतानों से लड नहीं सके। उनकी प्रेरकशक्ति नष्ट हो चुकी थी। वे अपने पद, अपनी स्थिति सम्हालने मे लगे रहे। उन्हें काश्मीर की, अपने धर्म की, कर्मपरम्परा की किंचित् मात्र चिन्ता न हुई। वे एक के बाद दूसरे गिरते रहे, मरते रहे। उफतक कर न सके। काश्मीर के इतिहास मे देशभक्ति भावना का अभाव खटकता है, जिसने काश्मीर की काया पलट कर उसे हिन्दू से मुसलिम-बहुल बना दिया। भारत मे भी मुसलिम राज था। परन्तु जनता तथा राजा सर्वदा संघर्ष करते रहे। अपनी जाति, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए लडते रहे। मरते रहे। उन्होंने मुसलिम शासन, विदेशी शासन को चैन से रहने नही दिया। इस भावना, इस प्रेरकशक्ति के अभाव मे शाहमीर के दिये एक ही धक्के मे काश्मीर लडखडा कर गिर पडा। ऐसा गिरा की उठ न सका। अपना सब कुछ खोकर मुसलिम उपनिवेश बन गया।

शहाबुद्दीन के आख्यान से नवीन जीवन, नवीन स्फूर्ति की अभिव्यंजना मिलती है। जोनराज ललितादित्य तथा जयापीड जैसे महत्त्वाकांक्षी श्रेष्ठ राजाओ से शहाबुद्दीन की तुलना करता है। उसके राज्यकाल मे काश्मीर निवासियो ने प्रतिभाशाली राजाओ के काल का दर्शन किया था।

शहाबुद्दीन ने सैनिक संघटन किया। काश्मीर की शक्ति को जागृत किया। काश्मीरी उसके नेतृत्व मे एक बार पुनः उठे। उसने विजययात्रा का निर्णय किया। काश्मीरवाहिनी शताब्दियो पश्चात् पुनः काश्मीर-सीमा लाँघती कीर्तिपताका फहराने लगी। महाभारत के पश्चात् अनेक काश्मीरी दिग्विजयो की शृंखला मे यह अन्तिम कडी थी।

सुलतान का प्रारम्भिक जीवन सच्चरित्र था। उसे कामिनी की अपेक्षा विजययात्रा पसन्द थी। उसकी रणयात्रा मे ताप, हिम, सन्ध्या, निशा, क्षुधा, पिपासा कोई भी विघ्न उपस्थित नही कर सके। कोई भी सरिता, नद दुस्तर नही रहा। कोई पर्वत दुरारोह नही हुआ। मरुस्थल दुर्लंघ्य नही हुआ। वह उद्धतो का अन्तक था। उसने अपनी सेना का चित्त सत्व, विरोधियो का तम तथा दिशाओ को रज से पूर्ण कर दिया था। उसने भारतीय मुसलिम बादशाहो तुल्य विजित प्रदेशो की राजकन्याओ से विवाह प्रथा भी चलाई। उसका अनुकरण उसके वंशजो ने भी किया था।

उसकी विजययात्रा तथा विजय वर्णन को जोनराज ने बहुत बढा-चढाकर लिखा है। जोनराज ने उदभाण्डपुर, शृङ्ग, सिन्ध, गान्धार, शिङ्ग, गजनी, अष्टपुर, पुरुषवीर (पेशावर), नगराग्रहार, हिन्दूघोष, शतद्रु क्षेत्र, सुशर्मापुर, भौट्ट आदि देशो की विजय का वर्णन किया है। इसमे कविकल्पना का बाहुल्य एवं वास्तविकता कम है।

विजयोपरान्त सुलतान के चरित्र मे दोष आने लगा। वह प्रारम्भ मे सच्चरित्र था। विजय पश्चात् कामिनियों के सौन्दर्य ने उसे आकर्षित किया। वह स्त्रियो की सौन्दर्य गाथा मे रस लेने लगा। रुचि रति-सुख की ओर बढने लगी। भोग लालसा से विदेश-यात्रा भी करने लगा। जोनराज का वर्णन मध्यकालीन साहसी सामन्तो एवं राजाओ से मिलता है।

शहाबुद्दीन विद्वानो का आदर करता था। वह अपने धर्म के प्रति उदासीन नही था। अपने धर्म को मानता हुआ दूसरे के धर्म एवं मत का आदर करता था। उसने बहुत से मदरसे तथा खनकाह कुरान तथा हदीस के पठन पाठन के लिये खुलवाये (नवादिरुल अखबार : पाण्डु० : २९ ए०, बी०; गौहरे आलम : पाण्डु० : ११० बी०)।

शहाबुद्दीन जन-पारखी था। उसका राज्यकाल षड्यन्त्रो आदि से रहित था। उसे अपने मन्त्रियो आदि से कभी धोखा नही हुआ। उदयश्री सर्वाधिकार के साथ ही साथ वित्तमन्त्री भी था। कोटभट्ट जैसे त्यागी व्यक्ति उसके मन्त्री थे। जिसने कालान्तर मे मन्त्रित्व त्याग कर बनगमन किया था। राजा तथा सुलतान कामवश अनुचित कार्य कर बैठते हैं। शहाबुद्दीन भी अपनी ढलती उम्र मे लासा पर आसक्त हो गया। उसने रानी लक्ष्मी के दोनो पुत्रो को निर्वासित कर दिया था। वह प्रसंग श्रीराम के वनगमन से

मिलता है। कनिष्ठा रानी कैकेयी के कहने पर दशरथ ने भी पुत्र राम को वनवास दिया था।

शहाबुद्दीन निःसन्देह शाहमीर के वंशज सुलतानो मे प्रतिभाशाली, न्यायप्रिय, धर्म-निरपेक्ष, वीर एवं कुशल शासक था।

उक्त तीनो सुलतानो की स्त्रियो का नाम जोनराज नही देता। शहाबुद्दीन के समय से वह सुलतानो की स्त्रियो का नाम देना आरम्भ करता है। सुलतान की पत्नी लक्ष्मी हिन्दू थी। काश्मीर मे मुसलिम स्त्रियों का नाम भी संस्कृत मे रखा जाता था। इण्डोनेशिया मे अबतक यह प्रचलित है। सुलतान ने लक्ष्मी के नाम पर शारिका शैल मूल मे नगर स्थापित किया था तथा लोल डामर ने भी अपने नाम पर नगर स्थापित किया था। हिन्दू राजाओ के पश्चात् इस सुलतान के काल से सुलतान तथा उसके मन्त्री आदि ने निर्माण कार्य मे रुचि लेना आरम्भ किया था।

प्रायः देखा गया है। अति विजय एव ऐश्वर्य के कारण चरित्र अधोगामी हो जाता है। सुलतान के सम्बन्ध मे भी यही कथा चरितार्थ हुई। विजय-यात्रा एव राजकार्य के कारण नारी सौन्दर्य ने उसे आकर्षित नहीं किया था। लक्ष्मी की बहन की कन्या लासा थी। वह राजभवन मे पली थी। सुलतान उस-पर मुग्ध हो गया।

इस समय से जोनराज राजप्रासादीय षड्यन्त्रो एव कार्य-कलापो का संक्षिप्त आभास देना आरम्भ करता है। लासा की हत्या का विचार रानी लक्ष्मी कर रही थी। यह शका उत्पन्न होते ही लासा आतंकित हो गयी। लासा के कहने से सुलतान ने लक्ष्मी के पुत्रो को निर्वासित कर दिया। कालान्तर मे उसका कोई पुत्र राजप्रासादीय कलह के कारण सुलतान न हो सका। उत्तराधिकारी उसका भाई कुतुबुद्दीन सुलतान हुआ।

सुलतान कट्टर मुसलमान नही था। हिन्दुओ पर अत्याचार नही करता था। उदयश्री ने जब बृहद् बुद्ध प्रतिमा भंग कर उसके धातु से मुद्रा टकणित करने की मन्त्रणा दी तो सुलतान को प्रतिक्रिया अच्छी नही हुई। उसे वह कार्य अनुचित लगा। उसने उदयश्री को उत्तर दिया—'पूर्वजो ने यश, सुकृत प्राप्ति हेतु जिन देवप्रतिमाओ को निर्मित किया है उन्हें तोडना स्वीकार कर रहे हो? कुछ लोग अमर प्रतिमाये बनाकर, दूसरे लोग उन्हे पूज कर, अन्य लोग यथोचित रीति से परिपालित कर, प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं, मैं अब उन्हे तोडकर प्रसिद्धि प्राप्त करूँ? राजा शाहाभदीन ने सुरमूर्तियो को तोडा था। यह अत्युग्र दुर्वार्ता भावी लोगो को कम्पित न करे।' इससे राजा का विचार प्रकट होता है। उसे काश्मीर इतिहास पर गर्व था। उसने बाहरी मुसलिम देशो से प्रेरणा नहीं ली थी।

सुलतान कठोर शासक था। विद्रोहशील सिकन्दर आदि मुसलिमो का वध करने मे वह किंचित् मात्र नही हिचका। वह चतुर राजा के समान सर्वदा सशक्ति रहता था। विद्रोहियो एवं विप्लवशीलो का दमन तत्परता से करता था।

शहाबुद्दीन कुशल शासक था। उसने राज्य का शासन दृढता तथा न्यायपूर्ण ढग से किया। उसके मस्तिष्क मे ललितादित्य का वसीयतनामा घर कर गया था। जिसमे उसने लिखा था कि कृषकों एवं श्रमिको को धनी नही होने देना चाहिए। उनके पास उतना ही रहने देना चाहिए जितना उनके जीवन के लिये पर्याप्त हो सकता है। इस प्रकार उसने माँझियो (मल्लाहो) पर मास मे सात दिन का बेगार लाद दिया। उसको उन्हे मजदूरी नही मिलती थी (बहारिस्तान शाही० . पाण्डु० : १९ ए०, हसन : १०३ ए०, है० म० : पाण्डु० : ४०)। इसी प्रकार उसने बाज कर भी वसूल करने मे दया नही दिखायी।

कतिपय परसियन इतिहासकारो ने लिखा है कि शहाबुद्दीन ने मूर्ति तथा मन्दिरो को नष्ट किया था। बहारिस्तान शाही मे लिखा गया है कि उसने बलारो तथा हैदर मल्लिक ने लिखा है कि बेज बरारह (विजयेश्वर) का बडा मन्दिर तुड़वा दिया। अपनी उमर के आखिरी दिनो मे वह बुतखानो को नष्ट करने का विचार करता था (बहारिस्तान शाही० : पाण्डु० : २२ ए० ; हसन . १०७ बी०, हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ४२)।

वाकयाते काश्मीर मे आजिम लिखता है कि उसने बहुत से बुतखानों को तोडा उन्हे वीरान कर दिया। हिन्दुओं को ज़लील किया (पाण्डु० : ३८ ए०)।

परन्तु यह गलत है। जोनराज ने स्पष्ट वर्णन किया है कि उसके मन्त्री उदयश्री ने जब वृहद् बुद्ध प्रतिमा भंग तथा गलाकर मुद्रा टंकणित करने की बात उठायी तो सुलतान ने इसका विरोध किया। उसे काश्मीर के राजाओ की परम्परा का ज्ञान था। उनके लिये उसके हृदय मे आदर था और उनकी कीर्ति को नष्ट कर वह कलक की टीका नही लगवाना चाहता था।

सुलतान मे हिन्दू संस्कार था। वह काश्मीर की हिन्दू परम्परा से अलग नही हो सका था। जोनराज इसका रोचक वर्णन करता है। स्वप्न मे शकरसुह ने कांचनमय पुरी और वही राजा का कलेवर रक्षित देखा। कलेवर के सम्बन्ध मे नारी से प्रश्न करने पर उत्तर मिला—'यह गन्धर्वराज की महापुरी है। किन्तु गन्धर्वराज कलेवर यहा स्थापित्त कर अमात्यों के साथ काश्मीर मे अवतीर्ण हुये है। उसका नाम शहाभदीन है। यहां मैं कलेवर की रक्षा कर रही हूँ। वह तीन मास के अन्दर इस नगर की रक्षा के लिये लौट आयेंगे।' सुलतान को यह स्वप्न वृतान्त बताया गया। वह विचलित नही हुआ, उसे शोक नही हुआ—उसने विश्वास किया।

वह निर्माणकर्ता मुसलिम धर्मावलम्बी था। अतएव मन्दिरो आदि का निर्माण नही करा सकता था। तथापि उसने अपने नाम पर शहाबुद्दीनपुर नामक नगर बसा कर मसजिद बनवाई थी (म्युनिख : ५६ बी०, बहारिस्तान शाही० : २१ बी० ; नारायण कौल : पाण्डु० ६५ ए०)। वाकयाते काश्मीर मे आजिम लिखता है कि उसने शहाबुद्दीनपुर मे राजधानी तथा जामा मसजिद बनवायी। उसकी बुनियाद उसके समय तक मौजूद थी (पाण्डु० : ३८ ए०)।

सन् १३६० मे काश्मीर मे जलप्लावन हुआ। श्रीनगर मे पानी आ गया। उसने इस विचार से शारिका शैल के समीप अपनी रानी लक्ष्मी के नाम पर लक्ष्मीनगर का निर्माण कराया (म्युनिख : ५६ बी०)। इससे प्रकट होता है कि सुलतान दूरदर्शी था। जनता का उसे ध्यान था। उसने शिहाबपुर नगर श्रीनगर के समीप बनवाया था। वह वर्तमान शियामपुर है जो अब श्रीनगर का एक भाग हो गया है।

उसे राजकाज एवं सुरक्षा मे शिथिलता पसन्द नही थी। वह सीमा रक्षा के लिये जागरूक रहता था। उसने इस दिशा मे पूर्व कालीन हिन्दू राजनीति का अनुकरण किया। उत्तर दिशा मे प्रयाण करते समय उसने सिन्धु पर बने पुल को तुड़वा दिया। यही कारण है कि विदेशी काश्मीर मे न तो स्वच्छन्द प्रवेश पा सके और न विदेशियो को प्रश्रय दिया गया। उन्हें शक्तिशाली होने का अवसर नही मिला। उसका प्रपितामह शाहमीर स्वयं विदेशी था। किस प्रकार विदेशी होते, काश्मीर का सुलतान बन गया था, इसका उसे ज्ञान था। अतएव वह विदेशियो के प्रच्छन्न अथवा अप्रच्छन्न रूप से प्रवेश का विरोधी था।

सुलतान मानव था। वीर सदृश शिकार खेलता था। जोनराज के वर्णन से आभास मिलता है कि वह सिंह शिकार का प्रेमी था। अकेले शिकार करता था। सिंह ने एक बार उसे पटक दिया था। राजा मृत्युमुख था, राजा के सेवक मदनलाविक ने सिंह की कृपाणी से हत्या कर, राजा के प्राणो की रक्षा की। सुलतान कृतज्ञ था। मदनलाविक की कृतज्ञता नही भूला। दरबारी पिशुनो के कारण मदनलाविक की कही हत्या न कर दी जाय अतएव उसे दिल्ली भेज दिया। सुलतान की मानवता का यह ज्वलन्त उदाहरण है। वह श्रेष्ठ अनुभवी व्यक्तियो का संग्रह करता था। दरबारी उसे धोखा नही दे सकते थे। वह स्वय राजकार्य, सेना, न्याय आदि मे रुचि लेता था एवं विभागो का निरीक्षण करता था।

शहाबुद्दीन अन्तिम काल मे पुत्रो को बुलाकर राज्य देना चाहता था। उसे पश्चाताप हुआ। एक व्यावहारिक शासक के समान पुत्रो के न आने पर उसने हिन्दू खाँ किंवा कुतुबुद्दीन को सुलतान अभिषिक्त कर दिया। शहाबुद्दीन शाहमीर वंश मे प्रतिभाशाली

कुद्देननरेन्द्रोऽथ मौलावाज्ञां महीभुजाम् ।
चित्ते सुखं मुखे हर्षं स्तुतिं वाचि न्यधात्ततः ॥ ४६४ ॥

कुद्देन (कुतुबुद्दीन सन् १३७३–१३८६ ई०)

४६४ तत्पश्चात् राजा कुद्देन (कुतुबुद्दीन) ने राजाओं के मौलि पर आज्ञा, चित्त में सुख, मुख पर हर्ष, वाणी में स्तुति निहित करके—

प्रथम और अन्तिम युद्धप्रिय, विजयी एवं धर्म-निरपेक्ष सुलतान हुआ है। उसके जीवन से प्रतीत होता है, वह शत-प्रतिशत काश्मीरी था। गैरकाश्मीरी प्रभाव से प्रभावित नहीं हुआ था। उसने अपना और राष्ट्र का व्यक्तित्व कायम रखा था।

पाद-टिप्पणी :

४६४. उक्त श्लोक ४६४ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५४०, ५४१ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५४०) जय व्यसनी पूर्व राजा के विरह से आर्त सदृश प्रतापश्री उस राजा के मार्ग मे सगर्व आ गयी।

(५४१) उसके वियोग को न सहकर देश देवी स्वयं जय धारणा की।

राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि ४४७४ = शक १२९५ = लौकिक ४४४९ सन् १३७३ एवं राज्यकाल नही देते, मोहिबुल हसन सन् १३७३ ई०, टी० : डब्लू० हेग सन् १३७८ ई० = हिजरी ७८०; तथा अबुल फजल आईने अकबरी मे सन् १३८६ ई०=७८५ हिजरी तथा राज्यकाल १५ वर्ष, ५ मास २ दिन तथा क्रोनोलॉजी ऑफ काश्मीर हिस्ट्री रिकन्स्ट्रक्टेड मे वेकटाचलम् राज्यकाल सन् १३७८ से १३९४ ई० देते है। तबकाते अकबरी मे राज्यकाल १५ वर्ष, ५ मास दिया गया है। पीर हसन हिजरी ७८० = विक्रमी सम्वत् १४३५ और राज्य काल १६ वर्ष, ५ मास, २ दिन देता है।

बहारिस्तान शाही हिजरी ७७३ राज्यकाल १६ वर्ष (पाण्डु० : २०), हैदर मल्लिक राज्यकाल १५ वर्ष ५ मास (पाण्डु० : ४३), नारायण कौल राज्य काल १६ वर्ष ५ मास २ दिन (पाण्डु० : ६५ बी), वाकयाते काश्मीर राज्यकाल १६ वर्ष (पाण्डु० : ३९ ए०) देता है। चारो ने हिजरी ७७० राज्याभिषेक काल दिया है। परन्तु यह ७८० हिजरी होना चाहिये क्योंकि तीनो ने मृत्यु काल हिजरी ७९६ लिखा है।

हमारी गणना के अनुसार सन् १३७३ ई० ही ठीक आती है। अन्य गणनाएँ त्रुटिपूर्ण हैं।

समसामयिक घटनायें :

इस समय लद्दाख का राजा शेशरव था। वह *अपने वंश का पन्द्रहवाँ राजा था। सन्* १३६४ से १३७३ ई० मे मेवाड मे राणा क्षेत्रसिंह राज्य कर रहे थे। सन् १३७७ ई० मे पोप ग्रेगरी के पुनः लौटने पर रोम पुनः पोप का निवासस्थान बना। विजय नगर के राजा बुक्क द्वारा मदुरा का मुसलिम राज वंश समाप्त किया गया। जौनपुर की अटाला मसजिद का निर्माण कार्य आरम्भ किया गया। शेख नुरुद्दीन वाली का काश्मीर के कैमुह गाँव मे जन्म हुआ।

सन् १३७८ ई० मे इब्न बतूता की मृत्यु हो गयी। इङ्गलैण्ड का इस समय रिचार्ड द्वितीय राजा था। सन् १३७९ ई० मे *अरब इतिहासकार खालदून* ने स्पेन से टुनिश अपने इतिहास की सामग्री एकत्रित करने के लिया प्रस्थान किया। शाह हमदान की *काश्मीर मे दूसरी यात्रा हुई। लद्दाख का सन्* १३८० ई० मे ग्री-ग्नु-सुग ल डे अपने वंश का १६ वाँ राजा हुआ।

सन् १३८० मे तैमूर ने ईरान पर आक्रमण किया। कबीर साहब का काशी मे जन्म हुआ। सन् १३८१ मे इङ्गलैण्ड मे पोल टैक्स लगाया गया। कृषकों की इंगलैण्ड मे क्रान्ति हुई। इङ्गलैण्ड के राजा रिचार्ड द्वितीय के सम्मुख वाट टाइलर की हत्या की गयी। इसी वर्ष काश्मीर मे पुनः जलप्लावन हुआ। सन् १३८२ ई० मे मेवाड मे राणा लक्षसिंह राज्य

नातितीव्रो न वा मन्दः सर्वस्यैव महीपतिः ।
चित्तमादित लोकस्य वैपुवो भानुमानिव ॥ ४६५ ॥

४६५ न तो अति तीव्र और न मन्द, राजा विपुवरेखा[1] के सूर्य सदृश, सब लोगों के चित्त को मुग्ध कर लिया।

कर रहे थे। सन् १३८३ ई० मे मास्को मे आग लग गयी। शाह हमदान की काश्मीर मे तृतीय यात्रा हुई। तोप का प्रथम बार प्रयोग अंग्रेजो ने किया। सन् १३८४ ई० मे तैमूर ने दूसरी बार ईरान पर आक्रमण किया। इब्न खालदून मिस्र मे कैरो का प्रधान न्यायाधीश बनाया गया। उसने मालिकी शरियत के अनुसार शासन किया। ईरान के शाहसुजा का देहान्त हो गया। वह प्रसिद्ध हाफिज का संरक्षक था। वाइक्लिफ का भी इसी वर्ष देहान्त हुआ था।

तैमूर ने सन् १३८७ मे शिराज मे प्रथम बार प्रवेश किया। सन् १३८८ मे ख्वाजा बहाउद्दीन नकशे-बन्द जिसने नक्शबन्दी विचारधारा चलायी थी तथा जिसका जन्म सन् १३१८ ई० मे हुआ था मर गया। इसी वर्ष फिरोज तुगलक का देहावसान हो गया।

आइने अकबरी मे केवल इतना उल्लेख किया गया है—'सुलतान कुतुबुद्दीन के राज्यकाल मे मीर सैय्यद अली हमदानी काश्मीर मे आये और उनका बड़ा स्वागत हुआ (जरेट : २ : ३८७)।'

(१) कुद्देन : कुतुबुद्दीन का संस्कृत रूप कुद्देन है।

हिन्दू खाँ शहाबुद्दीन का कनिष्ठ भ्राता था। उसका एक नाम हिन्दल भी था। कुतुबुद्दीन नाम रखकर सुलतान बना। 'वह खुशमजाक शायर और इल्म व अदब का मुरव्वी था : (वाकयाते-काश्मीर : २९ बी, मोहिबु ' ७५)। तबकाते अकबरी मे उसे आचरणवान राजा माना गया है (उत्त० : है० : भा० : ५१४)।'

फिरिश्ता लिखता है—'शहाबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई हिन्दल राजसिंहासन पर कुतुबुद्दीन नाम धारण कर बैठा। वह सुलतान सार्वजनिक कार्यों के प्रति बहुत ही जागरूक होने के कारण अद्भुत था। वह स्वयं जनता का कार्य न्याय एवं उदारता से देखता था (४६०)।'

हैदर मल्लिक दोगलात का वर्णन भ्रामक है। वह लिखता है—'अलाउद्दीन का उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन हुआ। जिसके समय मे अमीर कबीर अली जो द्वितीय सैय्यद अली हमदानी कहा जाता है काश्मीर मे आया' (तारीख रशीदी : ४३२)।

पाद-टिप्पणी :

४६५. उक्त श्लोक संख्या ४६५ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे ५४२-५४४ श्लोक अधिक है। उनका भावार्थ है—

(५४२) शीघ्र ही युद्ध मे उसके धनुष का टंकार शत्रु स्त्रियो के क्रन्दन से दब गया।

(५४३) इस राजा की आकाश चन्द्रिका कीर्ति ने दिक्-मुख मे चन्दन का आलेप तथा शत्रुओ का मुख म्लान कर दिया।

(५४४) उस राजा के कल्याण प्रसार करते समय प्रजा भूमि पर स्थित होकर ही स्वर्ग सुख का भोग कर रही थी।

(१) विपुवरेखा : इसे भूमध्य रेखा कहते हैं। यह पृथ्वी के बीच मे है। भू मण्डल के उत्तरी गोलार्ध को दक्षिणी से अलग करती है। इसके उत्तर मे कर्क रेखा तथा दक्षिण मे मकर रेखाएँ हैं। कर्क एवं मकर रेखा के मध्य सूर्य रश्मियाँ उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण से उत्तर गतिशील होती है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। एतदर्थ भू-सापेक्ष स्थिति परिवर्तित होती रहती है। इससे सूर्य के उदय होने तथा गति के परिवर्तन का अनुभव होता है। पृथ्वी की परिक्रमा के कारण सूर्य की गति ६ मास उत्तर—उत्तरायण तथा ६ मास दक्षिण—दक्षिणायन होती है। २२ दिसम्बर को सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् चलता है। इस काल मे उत्तरी गोलार्ध मे शीत तथा दक्षिण गोलार्ध मे गरमी होती है। मकर राशि मे स्थित होने के कारण इस रेखा को मकर रेखा

लोहरप्रत्यवेक्षार्थं यान्न्यधात्पूर्वभूपतिः ।
लोहराधिपतेर्भीत्या ते पलाय्य गतास्ततः ॥ ४६६ ॥

४६६ पूर्व भूपति ने लोहर की देख रेख के लिये, जिन्हें रखा था, वे लोहराधिपति के भय से वहाँ से पलायन कर के गये ।

शाम्यन्त्योपधयःसर्वाः शशिन्यस्तं गते सति ।
दृष्टो हि सूर्यकान्तानां रवौ याति द्युतिक्षयः ॥ ४६७ ॥

४६७ चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर सभी ओपधियाँ शान्त हो जाती हैं और सूर्य के अस्त होने पर, सूर्यकान्त मणियों की कान्ति-क्षय देखा गया है ।

लोहरं प्रतिसन्धातुं कुद्दीनमहीपतिः ।
शौर्यशालिनमादिक्षत्ततो डामरलौलकम् ॥ ४६८ ॥

४६८ महीपति कुद्दीन ने लोहर[1] को आक्रान्त करने के लिये शौर्यशाली डामर लौलक[2] को आदेश दिया ।

कहते है । मकर रेखा सूर्य की दक्षिणायन यात्रा की अन्तिम सीमा है । इसी दिन के पश्चात् सूर्य की गति उत्तरायण होती है । कर्क रेखा पर २१ जून को सूर्य की रेखायें लम्बवत् पडती हैं । इस काल मे उत्तरी गोलार्ध मे ग्रीष्म ऋतु होती है । इसके पश्चात् सूर्य की गति दक्षिणायन हो जाती है । विपुव रेखा पर दिन-रात सर्वदा बराबर रहते है । 'शरद् विपुव' २३ सितम्बर तथा तथा 'वसन्त विपुव' २२ मार्च ऐसे दिवस हैं जब समस्त भूमण्डल पर दिन-रात बराबर होते हैं । सितम्बर २४ से मार्च २० तक दक्षिण गोलार्ध मे दिन बडे तथा राते छोटी होती हैं । दिसम्बर २२ सबसे बडा दिन होता है । मार्च २२ से सितम्बर २२ तक उत्तरी गोलार्ध मे दिन बडे और रातें छोटी होती हैं । जून २१ को उत्तरी गोलार्ध मे सबसे बडा दिन होता है । विपुव रेखा की लम्बाई ४०, ०७५ ५६ किलो मीटर है ।

जोनराज अपने ज्योतिष ज्ञान का परिचय देता है । विपुव रेखा पर दिन-रात बराबर होते हैं । सूर्य की किरणें वहाँ न तो अति तीव्र और न अति मन्द होती हैं । सम होती है ।

जोनराज ने विपुव रेखा की उपमा का प्रयोग श्लोक सख्या ७६८ मे पुन किया है ।

काश्मीर मे पौप ८ और आषाढ ८ तक सौर गणना के अनुसार दिन एवं रात्रि बराबर होता है । आठ पौप से सूर्य उत्तरायण तथा आठ हार अर्थात् आषाढ से दक्षिणायन होता है ।

काश्मीर मे यह समय जानने के लिये विचित्र उपाय करते हैं । एक पात्र मे जल भर देते हैं । उसमे दो अखरोट छोडते हैं । दोनो अखरोट अलग-अलग पानी मे तैरते रहते हैं । जिस समय सन्धिकाल आता है दोनो अखरोट आप-से-आप मिल जाते हैं । इसी मुहूर्त से ज्योतिषी गणना करते हैं । शिया मुसलमान ठीक इसी समय तन्त्र या तावीज इत्यादि बनाते हैं ।

पाद टिप्पणी :

४६८ (१) लोहरकोट : महमूद गजनी ने लोहरकोट अर्थात् दुर्ग पर दो बार सन् १०१३ तथा १०१५ ई० मे आक्रमण किया था परन्तु उसे हारकर पीछे हटना पडा । अलबेरूनी ने अपने व्यक्तिगत अनुभव से लोहरकोट मे महमूद गजनी की पराजय का वर्णन लिखा है । परसियन लेखक स्वीकार करते हैं कि महमूद गजनी को दो बार लोहर किंवा लोहकोटा से पीछे हटना पडा था । फिरिस्ता कारण देता है कि दुर्ग की ऊँचाई और मजबूती के कारण नहीं फतह किया जा सका था । फिरिस्ता लोहर दुर्ग के घेरे का समय सन् १०१५ ई० अर्थात् हिजरी ४०६ देता है । तबकाते अकबरी इसका समय हिजरी ४१२ अर्थात्

अवेष्टयत्ततो गत्वा लोहराद्रिं स सर्वतः।
प्राणा हि स्वामिभक्तानां तृणायन्ते महात्मनाम्॥ ४६९॥

४६९ वह वहाँ जाकर लोहराद्रि[1] को सब ओर से आवेष्टित कर लिया स्वामिभक्त महात्मा प्राणों को तृणवत् समझते हैं।

असामर्थ्यान्निजं दुर्गं दुर्गेन्द्रोऽर्पयितुं ततः।
ब्राह्मणान् व्यसृजद् दूतान् डामराधिपतिं प्रति॥ ४७०॥

४७० सामर्थहीनता के कारण दुर्गेन्द्र (दुर्गरक्षक) ने अपने दुर्ग के अर्पित करने के लिये, डामराधिपति[1] के पास ब्राह्मण दूतों को भेजा।

द्विजलिङ्गान्स तान्मत्वा सारं द्रष्टुमुपागतान्।
न्यग्रहीद्विग्रहादुग्राद् द्विजानव्यग्रमानसः॥ ४७१॥

४७१ उग्र विग्रह में भी व्यग्र न होने वाले उस (लौलक) ने उन ब्राह्मणों को द्विजवेश में वास्तविकता जानने के लिये आये हुये जानकर निग्रहीत किया।

द्विजदैवतमप्येतं श्रुत्वा तदपकारिणम्।
लोहरेन्द्रो न कोट्टाशां जीवाशां च विसृष्टवान्॥ ४७२॥

४७२ द्विज, देवता के भी उस अपकार को सुनकर, लोहरेन्द्र ने कोट्ट[1] एवं जीवन की आशा नहीं छोड़ी।

पश्यन्तो मरणं स्वस्य युद्धे वाऽथ पलायने।
क्षत्रियाणां निजं धर्ममग्रहीषुस्ततो रणम्॥ ४७३॥

४७३ युद्ध में अथवा पलायन में अपना मरण देखकर क्षत्रियों[1] का निजी धर्म रण करने की इच्छा से—

सन् १०२१ ई० देती है। अलबेरूनी महमूद सम्बन्धी घटनाओं का आँखों देखा वर्णन करता है। ख्वारिजम के पतन के पश्चात् लोहरकोट का वर्णन करता है।

कुतुबुद्दीन के समय लोहरकोट का राजा क्षत्रिय था। काश्मीर में यह अन्तिम हिन्दू राज्य शेष रह गया था। कुतुबुद्दीन ने महमूद गजनी के प्रथम आक्रमण के २५६ वर्षों पश्चात् लोहर पर आक्रमण किया था। क्षत्रियों ने जौहर किया। स्वाधीनता की अन्तिम ज्योति, क्षत्रियों के जौहर का अन्तिम दर्शन करती, काश्मीर को सर्वदा के लिए नमस्कार करती बुझ गई। युद्ध में मृत्यु होती है परन्तु मनियों के लिये पलायन भी मृत्यु है।

(२) लौलक : तबकाते अकबरी में नाम 'बुदाओ' तथा कुछ संस्करणों में 'ल्वार' मिलता है (उ० : तैं० : भा० : १ : ५१४)।

पाद-टिप्पणी :

४६९. (१) लोहराद्रि : दुर्ग पहाड़ी पर था। अतएव पहाड़ी घेर ली गई थी।

पाद-टिप्पणी :

४७०. (१) डामराधिपति : लौलक डामर।

पाद टिप्पणी:

४७२. (१) कोट्ट : लोहकोट = लोहरकोट।

पाद-टिप्पणी :

४७३. (१) क्षत्रिय धर्म : लोहरेन्द्र शब्द से प्रकट होता है कि वह जाति का क्षत्रिय था। काश्मीर में हिन्दुओं की यह अन्तिम शक्ति थी। यह अन्तिम राजा था। कुतुबुद्दीन ने शासन की बागडोर

शरासारशिलावर्षैर्दुर्धर्षा दुर्घना इव।
लोहराद्रेरवारोहन्नारोहंस्तु यशांसि ते ॥ ४७४ ॥

४७४ शर एवं शिला की वृष्टि से दुर्धर्ष दुर्घन सदृश वे लोहराद्रि से (नीचे) उतरे और यशारूढ़[1] हुये।

हाथ में लेते ही अपना ध्यान इस ओर लगाया। उसने इस शक्ति को नष्ट करने का प्रयास किया।

हिन्दुओ के चार वर्णों मे द्वितीय वर्ण क्षत्रिय है। क्षत्रिय, क्षत्र, राजन्य एवं राजपूत समानार्थक शब्द हैं। पर्यायवाची, जातिवाचक शब्द हैं। क्षत्रिय शब्द का मूल वीर्य किंवा परित्राण शक्ति है। क्षत्रिय का कार्य परिरक्षण करना है। प्रजापति के बाहु से क्षत्रियो की उत्पत्ति हुई थी। वेदो मे क्षत्रिय वंशो का परिचय मिलता है। पौराणिक काल मे सूर्य तथा सोमवंशीय दो ही मुख्य क्षत्रिय वंश थे। नागवंशीय भी क्षत्रिय होते हैं। कालान्तर मे अग्नि आदि कई वंशो की सृष्टि हुई। वैदिक साहित्य मे क्षत्रिय शब्द राजवर्ग के लिये प्रयुक्त हुआ है। उस समय ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दो ही वर्ग प्रमुख थे। उनके संघर्ष की अनेक गाथायें प्रचलित हैं। पाली साहित्य मे उन्हें 'खत्तिय' कहा गया है। यह क्षत्रिय शब्द का अपभ्रंश है। उत्तर मध्य काल मे चौहान, प्रतिहार, परमार तथा सोलंकी वंशो की उत्पत्ति आबू के अग्निकुण्ड से हुई, मानी जाने लगी। शक, हूण आदि क्षत्रिय जाति मे मिल गये हैं। क्षत्रियो का धर्म प्रजारक्षा हेतु शत्रुओ से युद्ध करना है। युद्ध मे मृत्यु वीरगति मानी गई है। मृत व्यक्ति स्वर्गगामी होता है। क्षत्रियो के लिए युद्ध से पवित्र दूसरा स्थान तथा धर्म नही माना गया है। देश, जाति एवं धर्म हेतु प्राणोत्सर्ग कर्तव्य माना जाता है। जोनराज इसी ओर संकेत करता है। क्षत्रिय लोग अपने क्षात्रधर्म युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो गये थे।

पाद-टिप्पणी :

४७४. उक्त श्लोक संख्या ४७४ के पश्चात् बम्बई के संस्करण मे श्लोक संख्या ५५४ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५५४) स्वामिभक्ति के कारण शैल मे अपने को खण्डीकृत करके विभक्त हुआ शत्रुओ ने माना।

(१) यशारूढ़ : क्षत्रियो का यह प्रसिद्ध उत्सर्ग व्रत जौहर था। काश्मीर मे यह प्रथम एवं अन्तिम उदाहरण जौहर का मिलता है। लोहरेन्द्र मुसलिम डामर लोलक अथवा काश्मीर मे स्थित मुसलिम सुलतान के प्रति मेवाड के राजपूतो के समान आत्मसमर्पण करने के लिये तैयार नही था। वह क्षत्रिय था। अतएव उसने भारत के मेवाड राजपूतो के समान क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए जौहर करने का निश्चय किया। यद्यपि जोनराज जौहर शब्द का प्रयोग नही करता तथापि यशारूढ़ का तात्पर्य यही है।

मध्य युग मे मुसलिम आक्रमण काल मे जौहर प्रथा प्रचलित थी। जौहर विश्व मे केवल हिन्दू करते थे। राजपूत लोगो को जब विश्वास हो जाता था कि अपने, देश तथा दुर्ग की रक्षा नही कर सकते एवं शत्रु सेना दुर्ग पर अधिकार कर लेगी तो वे अपनी स्त्रियो आदि को चिता मे भस्म होने का आदेश देकर अपने बच्चो आदि से विदा लेकर शत्रु से लडने के लिये सुसज्जित होकर दुर्ग से बाहर शत्रु सेना पर टूट पडते थे। दुर्ग का द्वार खुल जाता था। स्त्रियाँ भी पूर्ण शृंगार कर प्रज्वलित चिता मे कूद पडती थी। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चितौरगढ मे रानी पद्मिनी ने १६ सहस्र स्त्रियो के साथ प्रज्वलित चिता मे अपनी आहुति दी थी। जैसलमेर में २४ सहस्र प्राणी जौहर मे भस्म हो गये थे। सर्वाधिक जौहर मेवाड के चितौगढ़ मे हुआ है। पद्मिनी के पश्चात् दूसरा बडा जौहर रानी कर्णावती के समय बहादुरशाह गुजरात सुलतान के आक्रमण के समय यहा हुआ था। सम्राट् अकबर के समय जयमल,

विप्रकीर्णः स पाषाणैर्लोलडामरनायकः ।
अन्तर्हितः समं कीर्त्या भावि को नाम लङ्घति ॥ ४७५ ॥

४७५ विप्रकीर्ण पाषाणों से वह डामर नायक लोल[1] कीर्ति के साथ अन्तर्हित हो गया। (ठीक है) भवितव्यता को कौन लाँघ सकता है।

शत्रुकीर्णशिलाराशिच्छन्नो डामरलौलकः ।
यवनप्रेतसंस्काराद्व विपद्यप्यहीयत ॥ ४७६ ॥

४७६ शत्रुओं द्वारा क्षिप्त (फेके) शिला राशि द्वारा आच्छन्न डामर लौलक[1] यवन प्रेत संस्कारों को विपत्ति में भी नहीं छोड़ा।

शाहाबदीनभूपालो निर्वास्यापि सुतान्निजान् ।
आकारयत्स्वयं लेखैर्निजवर्णपरिष्कृतैः ॥ ४७७ ॥

४७७ भूपाल शाहाबदीन अपने निज पुत्रों को निर्वासित करके भी निज लिखित लेखों से स्वयं (उन्हें) आहूत किया।

गुणैश्च वयसा तेषां ज्येष्ठो मन्द्रेन्द्रमण्डलम् ।
हस्सनो राजपुत्रः स प्राप तावदनङ्कुशम् ॥ ४७८ ॥

४७८ उनमें गुणों एवं वय से ज्येष्ठ राजपुत्र हस्सन[1] (हसन) मद्रेन्द्र मण्डल तक निर्वाद (बिना बाधा) पहुँच गया।

फत्ता के वीरगति के पश्चात् तृतीय बड़ा जौहर चित्तौर में हुआ था।

पाद टिप्पणी :

४७५ उक्त श्लोक संख्या ४७५ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ५५७ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५५५) डामर नायक लोल कीर्ति के साथ लज्जा से ही मानो विकीर्ण पत्थरों में तिरोहित हो गया।

४७६ (१) लौल तबकाते अकबरी में नाम बुदाओ दिया गया है (उ० तै० भा० २ ५१४)।

फिरिश्ता लौल का नाम नहीं देता। वह केवल लिखता है—'उसने अपने राज्य के उत्तरार्ध में एक अधिकारी को लोहर भेजा कि वह दुर्ग पर अधिकार कर ले जहाँ विद्रोह की परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी (४६०)।'

पाद-टिप्पणी :

४७७ (१) लौलक : मुसलिम धर्म ग्रहण करने पर भी डामर लोग डामर कहे जाते रहे। दिल्ली सलतनत काल में जमीन्दारों को डमर कहा जाता था। लौलक डामर मुसलिम था। मुसलमानों का मृतक संस्कार गाड़ने से होता है। गाड़ने पर शव मिट्टी से आच्छादित हो जाता है। जोनराज के इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि लौलक डामर मुसलमान था। मुसलमानों ने मुसलिम राज्य स्थापना के पश्चात् धर्म परिवर्तन पर जोर दिया था। सामन्त मन्त्री तथा राजकर्मचारी मुसलिम होने पर वरीयता पाते थे। यह नीति दिल्ली के बादशाहों तथा सूबेदारों ने चलायी थी। केवल सम्राट् अकबर तथा काश्मीर में जैनुल आबदीन बादशाह इसके अपवाद थे।

पाद-टिप्पणी :

४७८ उक्त श्लोक संख्या ४७८ के पश्चात् बम्बई संस्करण में ५५७-५५८ श्लोक अधिक हैं। उनका भावार्थ है—

(५५७) स्त्री विधेयता के कारण अपने पुत्रों को पहले निर्वासित करके भी स्वप्न में निज मृत्यु जानकर शाहाबदेन महीपति ने—

स नेत्रशुक्तिमुक्ताभिर्मुक्ताभिर्वाष्पवीचिभिः ।
श्रुत्वा तत्र पितुर्मृत्युं निवापाञ्जलिमार्पयत् ॥ ४७९ ॥

४७६ वहाँ (मद्रेन्द्रमण्डल में) पिता की मृत्यु सुनकर उसने नेत्र शुक्ति से प्रतिमुक्त मुक्ता बाष्प वीथियों से निवापांजलि (तर्पणांजलि) अर्पित की ।

व्यावृत्य गमनेच्छायाः स्वच्छाशयममुं ततः ।
न्यवारयत्पितृव्यस्य लेखः कश्मीरभूपतेः ॥ ४८० ॥

४८० कश्मीर भूपति पितृव्य (चाचा) का लेख स्वच्छ-हृदय इसे (राजकुमार) उस स्थान से परावृत होने (लौटने) से रोक दिया ।—

---

(५५८) अपने लेखो मे अपने वंशज को बुलाया तब तक उनमे ज्येष्ठ हस्सन मद्रेन्द्र मण्डल मे पहुँच गया ।

(१) हसन : शहाबुद्दीन का ज्येष्ठ पुत्र और शाहमीर का प्रपौत्र था । सुलतान कुतुबुद्दीन का सगा बड़ा भतीजा था । हसन तथा उसके कनिष्ठ भ्राता अली खा की वंश परम्परा कैसे चली ठीक पता नहीं लगता । तबकाते अकबरी मे लिखा है—'हसन शहाबुद्दीन का पुत्र था । वह दिल्ली मे था । उसे सुलतान अपना वलीअहद बनाना चाहता था' (उ० तै० भा० २ : ५१४) ।

(२) मद्रेन्द्र मण्डल : परसियन इतिहासकारो ने मद्र को जम्मू लिखा है ।—'शाहजादा काश्मीर रवाना हुआ । लेकिन जम्मू पहुचने पर इसको अपने बापके इन्तकाल की खबर मिली तो इसने आगे बढने का खयाल तर्क कर दिया, (म्युनिख पाण्डुलिपि ५९ ए०, मोहिबु . ७६) । फिरिस्ता लिखता है—'कुतुबुद्दीन ने अपने भतीजे को बुलवाया जो पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर जम्मू से दिल्ली लौट गया था (४६०) ।' फिरिस्ता के वर्णन तथा अन्य इतिहासकारो के वर्णन मे अन्तर है । फिरिस्ता उसे दिल्ली भेज देता है ।

बम्बई की प्रति श्लोक मे ५५८ मे पाठ—मद्रेद्र मण्डलम्' । मिलता है । मद्र का उल्लेख जोनराज ने पुन ७७१, ७१२, ७१३, ७१४, ७१७, ७३०. ७४०, ८२९ आदि श्लोको मे किया है ।

श्रीवर ने २ . १४८, १५३, ३ ११४, १९७, ४ : ३४, ४०, ४५, ५०, ५१, ९६, १०४, १५७, १८३, २२४, २६२, २६६, २६८, २८६, ४०३ आदि श्लोको मे उल्लेख किया है ।

काश्मीर साहित्य मे मद्र उसकी दक्षिण सीमा पर बताया गया है । काश्मीर मण्डल के दक्षिण सीमा पर जम्मू प्रदेश है । नीलमत पुराण के वर्णन से भी स्पष्ट होता है कि मद्र काश्मीर मण्डल के समीप था । जलोद्भव प्रसंग मे यह उल्लेख किया गया है (नी० ७६=८१; ११८–१२२) । सतलज तथा सिन्धु नदी की अन्तर्द्रोणी को वाहीक कहते थे । उसमे उशीनर मद्र तथा त्रिगर्त देश सम्मिलित थे । वाहिक तथा गान्धार दोनो देशो के सम्मिलित नाम की संज्ञा उदीच्य थी । जनरल कनिंघम के अनुसार मद्र देश व्यास एवं झेलम नदी के मध्यवर्ती अंचल का नाम था (कनिंघम : एनशेन्ट : ज्योग्रफी : १८५) ।

मद्र का उल्लेख बृहदारण्यकोपनिषद् (३ . ३ : १, ३ : ७ : १) मे किया गया है । मद्र एक जनपद का नाम था । काप्य पतचल मद्र मे निवास करते थे । ऐतरेय ब्राह्मण मे उसे उत्तरकुरु लिखा गया है । मद्रो को हिमालय के समीप रहने वाला माना गया है (८ १४ : ३) । उन्हे परेण हिमवन्त कहा गया है । मान्यता है कि वे लोग काश्मीर के रावी एव चनाव नदी के मध्यवर्ती भाग मे निवास करते थे । महाभारत काल मे यहाँ का राजा शल्य था । उसकी बहन माद्री का विवाह राजा पाण्डु से हुआ था (आ० : १०५ : ४–५) । महाभारत के पूर्ववर्ती काल मे सती सावित्री का

शक्रादिसख्यलोभेन भृत्यानस्मानुपेक्ष्य सः ।
समस्कुरुत शाहाबदीनभूमिपतिर्दिवम् ॥ ४८१ ॥

४८१ 'इन्द्र की मित्रता के लोभ से भूपति शाहाबदीन हम सब भृत्यों की उपेक्षा कर स्वर्ग को अलकृत किए—

स्वःस्त्रीभोगरसेनेव गमनाय त्वरावतः ।
तस्यास्माभिर्भवत्कार्यमशेषं निरपाद्यत ॥ ४८२ ॥

४८२ 'स्वर्ग स्त्री (अप्सरा) भोग रस के लिये त्वरान्वित उनका सम्पूर्ण कृत्य जो कि तुम्हें करना चाहिए हम लोग सम्पन्न किये—

क्ष्मारक्षालक्षणामाज्ञां विचक्षणशिरोमणेः ।
तन्मन्त्रमार्जितां मौलिमूले मालां विदध्महे ॥ ४८३ ॥

४८३ 'विचक्षण शिरोमणि की पृथ्वी रक्षा करने की आज्ञा रूपी माला को जो कि उनके मन्त्र से मार्जित है, उसे मौलिमूल (कण्ठ) से हमलोग धारणा करते है—

प्रवासागमनाभ्यां त्वं स्वपितुः पालिताज्ञया ।
श्रीराम इव भूलोकं यशोभिः स्वैरपूपुरः ॥ ४८४ ॥

४८४ 'तुम अपने पिता की आज्ञानुसार प्रवास मे जाने एव आने से श्रीराम[1] के समान अपने यश से भूलोक को परिपूर्ण कर दिये—

भूतो भावी च सम्मानो यद्यपि स्वगुणैस्तव ।
यौवराज्यग्रहाद्भारं लघूकुर्यास्तथापि मे ॥ ४८५ ॥

४८५ 'यद्यपि स्वगुणों के कारण तुम्हारी ही भूत एव भावी सम्मान है तथापि मेरे यौवराज्य[1] पद ग्रहण कर मेरे भार को हल्का करो—

पिता अश्वपति मद्र देश का राजा था (वन० २९३ १३)। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ७१४।

पाद टिप्पणी

४८४ (१) श्रीराम (द्रष्टव्य वाल्मीकि रामायण अयो० १९ ३८ युद्ध० १२२ १२७)।

पाद टिप्पणी

४८५ (१) यौवराज्य परसियन इतिहासकारो ने वलीअहद अनुवाद किया है। कुतुबुद्दीन को इस समय तक कोई सन्तान नही हुई थी। उसका वश लोप न हो, इसलिए उसने हस्सन को अपना वलीअहद अर्थात् उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया था। कालान्तर म उसे सिकन्दर बुतशिकन तथा हैबत खाँ दो पुत्र हुए थे। सिकन्दर ने सन् १३८९ ई० से १४१३ ई० तक काश्मीर का राज्य किया था। परन्तु हैबत को विष देकर मार डाला गया। सिकन्दर के तीन पुत्र मीर खाँ अर्थात् सुलतान अली शाह (सन् १४१३–१४२० ई०), शाहरुख अर्थात् शाही खान, सुलतान जैनुल आबदीन बड शाह (सन् १४२०–१४७० ई०) तथा मुहम्मद खाँ थे। मुहम्मद खाँ अपने भ्राता बडशाह का वजीर आजम था।

युवराज बनाने की प्रथा भारतीय है। जोनराज के वर्णन से प्रतीत होता है कि काश्मीर के मुसलिम सुलतानो ने इस प्रथा को अपना लिया था। भारतीय शासन पद्धति के अनुसार राजा किसी व्यक्ति को अपनी अनुपस्थिति मे राजकार्य देखने अथवा अपना

स्वधैर्यं सभ्यसंयोगो नानाबन्धुसमागमः।
तव रक्षाधिकारश्च दौर्मनस्यं विलुम्पतु ॥ ४८६ ॥

४८६ 'अपना धैर्यसम्य संयोग तरह-तरह के बन्धुओं का समागम एव रक्षाधिकार तुम्हारे दौर्मनस्य को नष्ट करे—

यशसेव प्रमीतानां परदेशनिवासिनाम्।
महतां नहि जातु स्याद्विभवेन सुखोद्गमः ॥ ४८७ ॥

४८७ 'यश से मृतकों के समान परदेश निवासी महान लोग भी विभव से सुख नहीं प्राप्त करते—

स्वरूपप्रतिबिम्बेन भवता स्वर्गवासिनः।
तदुत्कण्ठाभरोऽस्माकं दर्शनेन निवार्यताम् ॥ ४८८ ॥

४८८ 'स्वर्गवासी के स्वरूप प्रतिबिम्बभूत आप अपने दर्शन से हम लोगों के उत्कण्ठा को शान्त करे—

पुत्रः शाहाबदीनस्य सोऽयमित्यन्यमण्डले।
अङ्गुलीमुखनिर्देशः प्राकृतस्येव मास्तु ते ॥ ४८९ ॥

४८९ 'अन्य मण्डल के सामान्य लोगों की तरह से—'वह शाहाबुद्दीन का पुत्र है'—इस प्रकार ऊपर उंगली न उठाये—

कुछ अधिकार देकर युवराज पद पर प्रतिष्ठित करता था। युवराज मन्त्रि-परिषद का सदस्य होता था। वैदिक काल के मन्त्रि परिषद मे पट्टरानी, युवराज, राजा के सम्बन्धी आदि सदस्य होते थे। गुप्तकाल मे युवराजो के भी मन्त्री होते थे। उन्हे युवराजपादीय कुमारामात्य कहते थे। गहडवाल नरेशो के लेखो मे उल्लेख मिलता है—'राजा, राज्ञी, युवराज, मन्त्री, पुरोहित, प्रतिहार, सेनापति—।'

युवराज प्राय पुत्र बनाया जाता था। अङ्गरेजी शब्द क्राउन प्रिन्स अथवा राज्यउत्तराधिकारी को यह पद मिलता था। सुलतान कुतुबुद्दीन को कोई सन्तान नही थी। अतएव उसने अपने भतीजे हस्सन को युवराज बनाने का प्रस्ताव रखा था जो वास्तव मे अपने पिता के उत्तराधिकार के कारण सुलतान होने का अधिकारी था। महाभारत मे युधिष्ठिर ने कनिष्ठ भ्राता भीम को युवराज बनाया था। दशरथ ने पुत्र राम को युवराज बनाया था। उन्होंने इसकी सूचना वसिष्ठ तथा आठो मन्त्रियो को दी थी (अग्नि० ५ : १–४)। नेपाल के राणाओ मे प्रथा थी कि भाई उत्तराधिकारी होता था। अतएव भाई युवराज बनाया जाता था। उसके अभिषेक के समय कैदियो को छोडा जाता था और उत्सव मनाया जाता था। किन्तु युवराज पर कड़ी निगाह रखी जाती थी। राज्य प्राप्त करने के लिये वे प्राय. षड्यन्त्र करते थे। राजप्रासादीय कुटिल कार्यों मे अनायास सम्मिलित हो जाते थे। काश्मीर मे हिन्दू राजाओ की परम्परा मुसलमान सुलतानो ने अपना ली थी। कुतुबुद्दीन के समय अधिकाश जनता हिन्दू थी। हिन्दू शासन पद्धति का लोप नही हुआ था। सिकन्दर के समय पुरानी शासन पद्धति के स्थान पर मुसलिम शरियत तथा दीने इलाही पर आधारित शासन पद्धति चलाई गयी जब अधिकाश जनता मुसलिम हो चुकी थी।

युवराज शब्द प्राचीन अभिलेखो मे मिलता है। युवराज राजा के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी अथवा भावी राजकुमार के लिए आता है। कौटिल्य ने १८ तीर्थों मे युवराज को एक तीर्थ माना है (अर्थशास्त्र : १ : १२)। कुमार तथा युवराज में अन्तर है। कुमार युवराज से कनिष्ठ होता था। बृहद् संहिता (७ :

राज्ञां मदनुकम्प्यानां मुखप्रेक्षी भवन्भवान्।
कश्मीरैश्वर्यमतुलं मा नैपीरल्पकं स्वयम्॥ ४९० ॥

४९० 'हम लोगों के कृपापात्र राजाओं के मुखापेक्षी होकर आप कश्मीर के अतुल ऐश्वर्य को अत्यल्प न समझें—

विभज्य भवति क्षोणीभारं मेरुगिराविव।
सुखसम्पत्तिमतुलामनन्तद्युतिराप्नुयाम् ॥ ४९१ ॥

४९१ 'जिस प्रकार अनन्त (शेष)[1] नाग पृथ्वी भार मेरुगिरि[2] पर रखकर अस्वस्थ होते हैं, उसी प्रकार आप पर पृथ्वी भार रखकर अतुल सुख सम्पत्ति मैं प्राप्त करूँ—

२-४) मे रानी, युवराज, सेनापति, दण्डनायक एक ही स्तर जहाँ तक उनके दण्ड पद का सम्बन्ध था रखे जाते थे। युवराज को भट्टारक की पदवी दी जाती थी (आई० : ई० : ८-२; सी० : आई० : आई० : ३-४, तथा डी० सी० : सरवार ३८७; द्रष्टव्य : श्लोक : ३२९, ६८८, ७०२, ७३२)।

पाद-टिप्पणी :

४९१. उक्त श्लोक ४९१ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५७२ तथा ५७३ अधिक है। उनका भावार्थ है—

(५७२) सत्पात्र मे श्री प्रतिपादन करने से सुर वधुओ द्वारा गीत कीर्ति को कर्णपूर बनाते हुए वह राजा स्वर्ग मालती (बाला) का आदर न करे।

(५७३) प्रिय हम दोनो के स्नेह सुख से शीतल निःस्वासो से राजा का चामर भी स्पृहणीय न हो।

(१) अनन्त : कश्यप पिता एवं कद्रू माता का ज्येष्ठ पुत्र अनन्त नाग है (आदि० : ६५ : ४१)। इनके अपर नाम शेष, वासुकी, गोनस, लक्ष्मण, तथा बलराम आदि है। इन्हो ने वयस्क होने पर जटा वल्कल धारण कर बद्रीनारायण आदि स्थानो मे तपस्या की। ब्रह्मा इनकी तपस्या से सन्तुष्ट हो गये, इन्हे वर दिया—भूमि को मूर्धा पर इस प्रकार धारण कीजिये कि यह विचलित न हो सके (आदि० : ३६ : २४)।

ब्रह्मा के आदेशानुसार अनन्त शेषनाग स्वरूप पृथ्वी को अपने फण पर धारण करते हैं। सात धरणीधरो मे से एक हैं (अनु० : १५० : ६१)। अनन्त चतुर्दशी का व्रत भाद्र सुदी चतुर्दशी को किया जाता है। इस दिन अलोना भोजन किया जाता है। बाहु पर अनंत सूत्र बाँधते हैं। उसमे १४ गाँठे होती हैं। पूजन कर अनन्त सूत्र को पुरुष दक्षिण तथा स्त्री वाम बाहु मे धारण करती है। यह व्रत मध्याह्न तक समाप्त हो जाता है। पूजन के पश्चात् भोजन किया जाता है। पश्चिम दिशा मे नागराज अनन्त के निवास्थान का उल्लेख मिलता है (उद्योग : ११० : १८)। सर्पो मे अनन्त नाग श्रेष्ठ माने गये हैं (वामन० : १२ : ४४)। यज्ञोपवीत युक्त भगवान विष्णु कैशव शेषनाग के शरीर का पर्यंक बनाकर क्षीरसागर मे शयन करते हैं (वामन० : १७ : ७-८)। इन्हे शेषशायी विष्णु कहते हैं। इस प्रकार की प्रतिमा हिन्दू जगत मे बहुत प्रचलित है। नेपाल, काठमाण्डू मे शेषशायी विष्णु की पाषाण मूर्ति जल मे रखी है। वह मुझे सबसे अच्छी लगी।

(२) मेरुगिरि : विष्णुपुराण मे जम्बूद्वीप के विभाग के सन्दर्भ मे मेरु का उल्लेख किया गया है। —'विप्र ! जम्बूद्वीप का विभाग सुनो। पिता आग्नीध्र ने दक्षिण दिशा का हिमवर्ष नाभि को दिया। इसी प्रकार किम्पुरुष को हेमकूटवर्ष तथा हरिवर्ष को नैषधवर्ष दिया, उसके मध्य मे मेरु पर्वत है। इलावृतवर्ष इलावृत को दिया तथा-नीलाचल से मिला वर्ष रम्य को दिया (विष्णु० द्वितीय अंश : १ : १७-२०)।' यह पर्वत है। पुरागाथा के अनुसार इसको ९ कन्याये थी। उनका विवाह सम्राट् आग्नीध्र के नव पुत्रों के साथ हुआ

येन मानेन मामन्वग्रहीत्स वसुधाधिपः।
त्वं सञ्चरस्व तेनैव मयि पालयति प्रजाः॥ ४९२॥

४९२ उस राजा ने जिस गौरव से मुझे अनुगृहीत किया था, मेरे प्रजा पालन करते हुये, उसी से तुम लाभान्वित हो—

था (भा० : ५ : २ : २३)। भागवत मे इसकी आयति एवं नियति नामक दो और कन्याओ का निर्देश प्राप्त है। उनका विवाह क्रम से धातृ एवं विधातृ से हुआ था (भा० : ४ : १ : ४४)।

महाभारत मे मेरु का वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है। सुवर्णमय शिखरो से युक्त मेरु पर्वत है। देवता एवं गन्धर्वों का निवासस्थान है। उसके तेज-पुंज के सम्मुख सूर्य भी लज्जित हो जाता है। वहाँ देवताओं ने अमृत प्राप्ति के लिये तप किया था। नारायण ने ब्रह्मा से कहा था—'सुर एवं असुर मिलकर महासागर का मन्थन करें उससे अमृत प्राप्त होगा (आदि० : ४७ : ५-१३)।' मेरु पर्वत के पार्श्व भाग में वसिष्ठ का आश्रम है (आदि० : ९९ : ६)।

मेरुपर्वत इलावृत खण्ड के मध्य स्थित है। मेरु के चारो ओर इलावृतवर्ष है। मेरु मे चार प्रकार के रंगो का दर्शन मिलता है। मेरु के दक्षिण भाग में विशाल जम्बू वृक्ष है (सभा० . २८ : ६)। उस वृक्ष के नाम पर जम्बूद्वीप का नामकरण किया गया है। यह ब्रह्मा के मानस पुत्रो का निवासस्थान है। सप्तर्षिगण यहाँ उदित एवं प्रतिष्ठित होते है। पूर्व दिशा मे मेरुपर्वत पर नारायण का स्थान है। नक्षत्रो सहित सूर्य एव चन्द्रमा मेरु की परिक्रमा करते हैं (वन० : १६३ · १२-४२)। माल्यवान एव गन्ध-मादन पर्वतो के मध्य मेरु की स्थिति है। इसके पार्श्व भाग मे, भद्राश्व, केतुमाल, जम्बू एवं उत्तरकुरु द्वीप है। दैत्यो सहित शुक्राचार्य मेरु पर्वत पर निवास करते हैं। मेरु के पश्चिम केतुमालवर्ष है (भीष्म० ६ : १०–३३)। समुद्रमंथन के समय मेरुपर्वत दोग्धा बना था (द्रोण० : ६९ · १८)। पर्वतो का राजा मेरु है (शान्ति० : ३४१ : २२–२३, रामायण : किष्कि० : ४२ : ३४–४७, ४६ : २०)। मेरु को ही सुमेरु करते हैं। पौराणिक मेरु की जो कल्पना है वही बौद्ध साहित्य मे दूसरे रूप मे वर्णित की गयी है। पालि साहित्य मे जम्बूद्वीप की स्थिति मेरु के दक्षिण बतायी गयी है। सुमेरु के चारो ओर दक्षिण दिशा मे जम्बुद्वीप (जम्बूद्वीप), पूर्व दिशा मे पुब्बविदेह (पूर्व विदेह), उत्तर दिशा मे उत्तरकुरु और पश्चिम दिशा मे अपर गोयान है। जम्बूद्वीप से सूर्योदय होता है तो अपर गोयान मे मध्य रात्रि होती है। जम्बूद्वीप मे मध्याह्न होता है तो पूर्व विदेह मे सूर्यास्त और उत्तरकुरु मे अर्द्धरात्रि होती है।

क्षेमेन्द्र ने लोकप्रकाश मे मेरु का सविस्तार वर्णन किया है—

'अत्रोपरि जम्बुद्वीपं योजनसहस्राणि पञ्च, परितो दिग्विदिशाश्चतुर्गुणस्थाः। यत्र मध्ये मेरुः स्थितः। जम्बुद्वीपपरिमाणं योजनानि (५०००)' (पृष्ठ ८२)। मेरुपर्वत का परिमाण भी पृष्ठ ८३ पर दिया गया है।

उपाख्यानो मे मेरुपर्वत का अत्यधिक वर्णन मिलता है। मान्यता है कि समस्त ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं। वह सुवर्ण एवं रत्नो से पूर्ण माना गया है। भर्तृहरि ने कहा है—स्वात्मन्येव समाप्त-हेम-महिमा मेरुर्न मे रोचते (३: १५१)।

पाद-टिप्पणी :

४९२ उक्त श्लोक संख्या ४९२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक सख्या ५७५ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५७५) शक्र एवं राजा के द्वारा सुरक्षित द्यौ (स्वर्ग) तथा हम दोनो के द्वारा सुरक्षित मही, शेषनाग हो जिसके एक मात्र स्वामी ऐसी सुखरहित पातालक्ष्मी का उपहास करें।

उदयश्रीमुखामात्यमतानुष्ठानशालिनीम् ।
ममार्थतानिषेधेन लक्ष्मीं मैव वृथा कृथाः ॥ ४९३ ॥

४९३ 'उदयश्री'[1] आदि प्रमुख अमात्य मत का अनुष्ठानशालिनी लक्ष्मी को मेरे प्रार्थना के निषेध द्वारा वृथा मत करो।

अजानँल्लोलकर्णत्वं राजेन्द्रकरिणामथ ।
पन्थानं लेखवाची स कश्मीराणामगाहत ॥ ४९४ ॥

४९४ राज गजों की लोलकर्णता[1] को न जानने के कारण वह कश्मीर का मार्ग अपनाया।

पवनैः सम्मुखायातैर्झाङ्काररवधारिभिः ।
न्यवार्यतेव कश्मीरप्रवेशाद्राजनन्दनः ॥ ४९५ ॥

४९५ झांकार शब्द करने वाले सम्मुखागत पवन मानो उस राजनन्दन को काश्मीर प्रवेश से निवारित कर रहा था।

स विशन्नथ काश्मीरसरणीमुदजिज्वलत् ।
अमलीमसयद्राज्ञः श्रुतिं तु खलचोदना ॥ ४९६ ॥

४९६ उसने प्रवेश करते हुए काश्मीर मार्ग को उज्ज्वलित कर दिया किन्तु दुष्टों की प्रेरणा राजा के कान को मलिन कर दिये।

नक्राः समुद्रमिव केचिदुदेतुकामा
वाता लतान्तमिव केचन दर्पवृत्त्या ।
दुर्मन्त्रिणो भुवनकाननचक्रवाल-
हव्याशना नरपतिं प्रविलोलयन्ति ॥ ४९७ ॥

४९७ जिस प्रकार नक्र समुद्र को, पवन लतान्त को झकझोर देते हैं, उसी प्रकार कुछ उदय की इच्छा से, कुछ दर्प के कारण, भुवन कानन चक्रवाल के लिये दावाग्निस्वरूप दुष्टमन्त्री राजा को विलोलित कर देते हैं।

पाद-टिप्पणी :

४९३ (१) उदयश्री परसियन इतिहासकार तथा निजामुद्दीन ने नाम रायरावल भी दिया है। पीर हसन ने नाम राय शरदिल दिया है। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ३४४।

पाद-टिप्पणी :

४९४ (१) लोलकर्णता : हाथी का कान सर्वदा चपल रहता है। राजा लोगों का भी कान चंचल रहता है। वे लोगों की बात सुनकर कार्य करते हैं। तात्पर्य यह है कि राजा का चित्त अस्थिर होता है। वे कान के कच्चे होते हैं। उत्तर-रामचरित (३ : ६) में भी इसी प्रकार चपलता की उपमा दी गयी है—

'अग्रे लोल: करिकलभको यः पुरा पोषितोऽभूत् ।'

कल्हण ने भी यही भाव (रा० २ : ६६) व्यंजित किया है—

'भूपालमत्तकरिणां येषां चपलकर्णताम् ॥'

अथ प्रविष्टे कश्मीरान् हस्सने राजनन्दने।
कुद्देनमहीपालः पिशुनैरित्यकथ्यत ॥ ४९८ ॥

४९८ राजनन्दन हस्सन के कश्मीर में प्रवेश करने पर महीपाल कुद्देन (कुतुबुद्दीन) से पिशुनों ने इस प्रकार कहा—

सर्वासामेव बुद्धीनामुपरीश्वरबुद्धयः।
तथापि सचिवैर्वाच्यो हिताहितविनिर्णयः ॥ ४९९ ॥

४९९ 'सब लोगों की बुद्धि की अपेक्षा राजा की बुद्धि ऊपर होती है, तथापि हित-अहित का निर्णय सचिव लोग करते हैं—

पुरन्दरादिलोकेशतेजोंशाश्रयशालिनाम् ।
स्ववंश्येभ्यो महीन्द्राणामन्तरायो विलोक्यते ॥ ५०० ॥

५०० 'इन्द्रादि दिक्पालों[1] के तेजांश[2] से युक्त राजाओं का स्ववंशीय लोगों से अनिष्ट देखा गया है—

पाद-टिप्पणी :

४९८. उक्त श्लोक संख्या ४९८ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५८१ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५८१) हस्सन के निकट आने पर शूर निर्णय कारी पिशुनो ने शीघ्र ही वर्णाश्रम गुरु से कहा।

पाद-टिप्पणी :

५००. (१) दिक्पाल : राजनीति शास्त्र मे दिक्पाल शब्द सम्भवतः सीमान्त रक्षक अधिकारी रूप में प्रयोग किया गया है। पुराकालीन अभिलेखो मे इसका तथा अष्ट दिक्पालो का भी उल्लेख मिलता है।

(२) तेजांस : प्रजापति ने राजा को इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र तथा कुबेर के तेजांश से उत्पन्न किया है (मनु० : ८ : ४-५; ५ : ९६)। उक्त सातो अंशो के अतिरिक्त आठवा तेज अंश पृथ्वी से राजा को प्राप्त हुआ है (मनु० : ९ . ३०३-३११.)। मनु का कथन है कि राजा नर रूप मे महान देवता है। ब्रह्मा ने आठो दिशाओ के दिक्पालो के शरीर का अंश लेकर उसके शरीर का निर्माण किया है (मनु० : ८ : ५)। विष्णु एवं भागवत पुराणो मे वर्णन किया गया है कि राजा के शरीर मे अनेक देवता निवास करते हैं (विष्णु० : १ : १३-१४)।

पुराणो मे वर्णन है कि राजा, अपने तेज से दुष्टो को भस्म कर देता है। वह अग्नि के समान गुप्तचरो द्वारा सर्वज्ञ है, अतएव सूर्य समान है। अपराधियो को दण्ड देता है अतएव यम तुल्य है। योग्य लोगों को पुरस्कार देता है, अतएव कुबेर के समान है (अग्नि० : २२६ : १७–२०)।

भारत मे ही नही चीन मे भी यही माना जाता था। राजा को स्वर्ग का पुत्र कहा जाता था। ईश्वर राजा को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करता था। इसका वर्णन पुरातन बाइबिल मे मिलता है। साल को ईश्वर ने राजा स्वरूप अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था (सेम्युयल : ८ : ४–२२)। ब्रिटेन के राजा तथा रानी के राज्याभिषेककाल मे इस परम्परा की छाया दिखाई देती है—जिस प्रकार महात्मा सुलेमान का अभिषेक जदोक पुरोहित तथा नाथन नबी ने किया था, उसी प्रकार आप नियुक्त किये जायं। धन्य और अभिषिक्त सम्राज्ञी अपनी जनता पर जिसे कि भगवान और तुम्हारे ईश्वर ने दिया है कि उस पर शासन तथा राज्य करे (लिविसग्रोड : ए० सी० सी० : गाइड टू कारोनेशन : ११)।

स्पर्शनाशितया ख्याताद्भ्रातृपुत्राद्द्विजिह्मगात् ।
कृष्णसर्पादिवाश्लिष्टात् कष्टं दूरे न कस्यचित् ॥ ५०१ ॥

५०१ 'आश्लिष्ट (लिपटा) कृष्णसर्प सदृश स्पर्श मात्र से नाशक होने से प्रसिद्ध, कुटिल भ्रातृपुत्र से दूर, किसी का कष्ट नहीं है'[1] ।

विभवैस्तर्प्यमाणोऽयं न च स्वीभविता तव ।
स्नेहेन सिच्यमानोऽग्निः शीतलत्वं किमृच्छति ॥ ५०२ ॥

५०२ 'विभव से तृप्त करने पर भी, यह तुम्हारा अपना नहीं होगा, स्नेह (तैल) से सिंचित होती अग्नि, क्या शीतल होती है ?

न चिन्त्यं स्वयमेकाकी राज्ञो मे किं करिष्यति ।
हरेः पुरः सयूथोऽपि कतमो वारणेश्वरः ॥ ५०३ ॥

५०३ 'यह नहीं सोचना चाहिये कि, मुझ राजा का यह अकेले क्या करेगा ? सिंह के समक्ष यूथ सहित गजेन्द्र क्या महत्व रखता है ?

प्राचीन वैदिक काल मे राजा को देवांश नही माना जाता था। राजसूय यज्ञ संस्कार मे उसे उसके पिता-माता का पुत्र मात्र कहा गया है। वेदोत्तर मुख्यतः पौराणिक तथा मध्ययुग मे राजा मे देवत्व का सिद्धान्त माना जाने लगा था। मनु लिखते है—'राजा शिशु हो तो भी उसका निरादर नही करना चाहिए क्योंकि वह नर रूप मे महान देवता है (मनु० ७ . ८)।'

मिस्र मे फरोहा ('रा', सूर्य) देवता का पुत्र माना गया है। प्राचीन यूनान मे राजा देवाधिदेव ज्यूस का वंशज माना गया था। रोम के सम्राट् मृत्यु के पश्चात् देवता घोषित कर दिये जाते थे।

काश्मीर मे मुसलमान राजाओ के नाम के साथ परमेश्वर आदि शब्द लगाया जाता रहा है यथा—'परमाधिदेवतार्चनीयत' परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, धर्मचक्रवर्त्युत्तम, लोकपाल श्रीमद्गुणगण परिपूर्णेन्दु वदनजित, मदनवशीकृत, रिपुकुल निज कुलकमल विकाश, राजमण्डले मणिमुकुट प्रभारञ्जित चरणयुग दीर्घभुजदण्ड दण्डित दश दिगन्तरदानास्पदीकृत, लक्ष्मीवशीकरण विचक्षणे, महादेवप्रिय, गोब्राह्मण कृपापरपरमभट्टारक, महाप्रभु सुरत्राण, शाहिज्यहान, विजय राज्ये (लोक० पृष्ठ : ३४, ३५)।

पाद-टिप्पणी :

५०१. (१) उक्त श्लोक का भावार्थ होगा—'जिस प्रकार स्पर्शमात्र द्वारा नाश करने वाले प्रसिद्ध तथा कुटिल कृष्णसर्प लिपटने से सबके लिये कष्टकारक होता है उसी प्रकार स्पर्शमात्र से नाश कर देने के कारण प्रसिद्ध भ्रातृपुत्र से सब को कष्ट ही होगा।'

पाद-टिप्पणी :

५०२. श्लोक सख्या ५०२ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक संख्या ५८६ तथा ५८७ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(५८६) घोर हालाहल उत्तम है न कि दुरात्मा दुर्जन क्योंकि उसके पान से एक का पतन होता है किन्तु दूसरे से अखिल कुल का।

(५८७) दैव से दूर पर रहने वाले विषधर सर्प कोदैव के बिना कौन स्वयं निधि पर स्थापित करता है।

पाद-टिप्पणी :

५०३. श्लोक संख्या ५०३ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५८९ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(५८९) शत्रु का पराक्रम बुद्धिशाली का क्या कर सकेगा—ऐसा सोचना राजपुत्र उदयश्री की संगति मे उचित नहीं है।

मद्‌बुद्ध्या विक्रमस्तस्य हन्यन्तामिति नोज्ज्वलम् ।
बुद्धिमानुदयश्रीस्तं स्वामिभक्तया हि रक्षति ॥ ५०४ ॥

५०४ 'मेरी बुद्धि से उसके विक्रम का नाश हो, यह समीचीन नहीं होगा, क्योंकि बुद्धिमान् उदयश्री स्वामिभक्ति के कारण उसकी रक्षा करता है ।

आद्ये दर्पोदयः पक्षे दोषोद्रेकः परे यतः ।
नानुग्राह्यो न चोत्सृज्यस्तव राजेन्द्र हस्सनः ॥ ५०५ ॥

५०५ 'हे राजेन्द्र ! हस्सन आपके लिये न अनुग्राह्य है और न उपेक्षणीय, क्योंकि प्रथम में वह दर्पीला हो जायगा और दूसरे में उसमें दोष की भावना बढ़ जायगी ।

न चैवंप्रायतावृत्तिं तेजस्वी स क्षमिष्यते ।
यस्मिन्दहति नाम्भोधिं स क्षणो वाडवस्य कः ॥ ५०६ ॥

५०६ 'इस प्रकार की प्रवृत्ति वाले आपको, वह तेजस्वी क्षमा नहीं करेगा । वड़वानल का वह कौन क्षण है जब समुद्र को नहीं जलाता ?

अतस्तस्य निरोधेन निरुत्पिञ्जसुखाः प्रजाः ।
कुण्ठयन्तुतरां पूर्वभूपालोत्कण्ठितां चिरम् ॥ ५०७ ॥

५०७ 'अतएव उसका निरोध कर, प्रजाओं का दुःख दूर कर सुखी करें और चिरकाल से पूर्व भूपाल के प्रति (जागृत) जो उत्कण्ठा है, उसे कुंठित करें ।'

पाद-टिप्पणी :

५०६ (१) वड़वानल : दावाग्नि, जठराग्नि तथा वडवाग्नि, तीन वर्गों मे अग्नि का वर्गीकरण किया गया है । वडवाग्नि समुद्र के भीतर वास करती है । और्व नामक अग्नि जन्म लेते ही, समस्त पृथ्वी को जलाने लगी । उसके पितरो ने आकर उसे समझाया । क्रोधाग्नि समुद्र मे डाल देने के लिये कहा । पितरो के सुझाव पर और्व ने क्रोधाग्नि समुद्र मे डाल दिया । वायुपुराण के अनुसार वडवानल तथा और्व अग्नि एक ही है (वायु० : १ : ४७) ।

महाभारत में इसे वडवामुख कहा गया है । वडवाग्नि के मुख मे समुद्र अपने जल रूपी हविष्य की आहुति देता रहता है (आदि० : २१ : १९) । वडवा अर्थात् घोड़ी के समान मुखाकृति होने के कारण इसे वडवाग्नि कहते हैं (आदि० : १७९ : २१-२२) । भगवान शिव का कोप वडवानल बनकर समुद्र जल सोखता है (सौप्तिक : १८ : २१) ।

समुद्र जल का तापमान तीव्र उष्ण हो उठता है । धारा रूप मे परिणत हो जाता है । उष्ण वाष्प निकलने लगता है । मैं समझता हूँ प्राचीन वर्णित वडवानल यही है । समुद्रीय जल का तापमान अक्षांश, चलना वायु, समुद्री धारायें तथा निकटवर्ती स्थलखण्ड से प्रभावित होता है । समुद्रीय जल का तापमान भूमध्य रेखा से दोनो ध्रुवो की ओर घटता-घटता कम होता जाता है । समुद्र मे शीत तथा उष्ण दोनो जलधारायें चलती हैं । कोष्ण अर्थात् गर्म धारायें गरम समुद्र से ठण्डे समुद्र की ओर चलती हैं । गल्फ स्ट्रीम तथा कुरोशियो धारायें इसी वर्ग में आती हैं ।

प्रविष्टैरिति दुर्वाप्या निर्गताऽद्भिरिव ह्रदः ।
वैरस्यमभजद्राजा खलवाक्यैः स हस्सने ॥ ५०८ ॥

५०८ दुर्वापी[1] (गन्दी बावली) जल के प्रवेश करने से जिस प्रकार ह्रद (सर) विरस हो जाता है, उसी प्रकार खल वाक्यों से वह राजा हस्सन के प्रति विरक्त[2] हो गया।

पश्यञ्शृण्वन्ननुभवंस्तस्याप्युत्सेकविक्रियाम् ।
भ्रातुः पुत्र इति स्नेहान्न तं राजा न्यरोधयत् ॥ ५०९ ॥

५०९ उसके गर्वपूर्ण विक्रिया को देख, सुन एवं अनुभव कर भी राजा ने भाई का पुत्र है, अतएव स्नेहवश, उसे निरुद्ध (बन्दी) नहीं किया।

उदयश्रीरथालक्ष्य विरक्तं हस्सने नृपम् ।
लौलडामरभार्यां तद्धात्रीं समदिशत्ततः ॥ ५१० ॥

५१० उदयश्री ने हस्सन के प्रति नृप को विरक्त देखकर (राजपुत्र की) धात्री से जो लौल डामर[1] की भार्या थी कहा—

स्वामिरागादिवारूढो नाकं डामरलौलकः ।
अहारयद्यशो न स्वं कुस्वामिमुखवीक्षणैः ॥ ५११ ॥

५११ 'डामर लौलक स्वामी के अनुरागवश ही, मानों स्वर्गारोहण कर गया, किन्तु कुत्सित स्वामी के मुखावलोकन से अपने यश को नहीं हारा—

अस्माद् दुर्मनसो राज्ञो विभवाशास्तु दूरतः ।
वर्धितस्य त्वया प्राणसंशयो हस्सनस्य तु ॥ ५१२ ॥

५१२ 'इस दुर्मन राजा से वैभव आशा दूर रहे, तुम्हारे द्वारा वर्धित हस्सन का प्राण भी संशय में है—

पाद-टिप्पणी :

५०८. (१) दुर्वापी : काश्मीरी भाषा मे= मकुर, पोखर कहते हैं।

(२) विरक्त : फिरिस्ता लिखता है—'हुसन खाँ काश्मीर पहुँच कर इतना सर्वप्रिय हो गया कि सुलतान उससे द्वेष करने लगा। उसने उसे बन्दी बनाने का विचार किया (४६०)।'

पाद-टिप्पणी :

५१०. (१) लौल डामर : यह मुसलमान था। इसका नाम लौलक भी मिलता है (श्लोक ५११)। डामर यद्यपि मुसलमान हो गये थे तथापि अपनी पदवी डामर रखे थे। जोनराज ने लौल डामर का उल्लेख श्लोक ३७०, ४१२, ४६८, ४७५, ४७६, ५१०, ५११, मे किया है।

पाद-टिप्पणी :

५१२. श्लोक संख्या ५१२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ५९८ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(५९८) इस प्रकार राजा को प्रलोभित कर तुम अपने घर उसे लाओ। इसके अतिरिक्त दूसरा उचित स्थान हमारी विपत्ति को दूर करने का नहीं है।

तस्मात्त्वया निजार्थानां ग्रहणार्थं महीपतिः।
प्रार्थनीयो यथाभ्येति त्वद्गृहानेप लुब्धधीः॥ ५१३॥

५१३ 'अतएव अपनी धनग्रहण करने के लिये राजा से इस प्रकार प्रार्थना करो, जिससे यह लोभी तुम्हारे घर आये'—

तत्रागतं महीपालं हनिष्यामो वयं बलात्।
वध्नीमो वा ततो राजपुत्रो वृद्धिमुपैष्यति॥ ५१४॥

५१४ 'यहाँ आने पर, हम (लोग) महीपाल को बलात् मार डालेंगे अथवा बाँध लेंगे—इसके पश्चात् राजपुत्र वृद्धि प्राप्त करेगा।'

अथ दैवाद्गते तस्मिन् मन्त्रे भेदं महीपतेः।
उदयश्रीस्ततो भीतः पलाययत हस्सनम्॥ ५१५॥

५१५ दैवात् उस मन्त्र[1] (षड्यन्त्र) का भेद महीपति के पास पहुँच जाने से भीत उदयश्री[2] ने हस्सन को पलायित कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

५१३ श्लोक संख्या ५१३ के पश्चात् बम्बई संस्करण म श्लोक संख्या ६००–६१४ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(६००) विश्वस्त मेरे लिए धर्म कामार्थ हेतुभूत धन से क्या लाभ ? अत यदि मुझ पर अनुग्रह हो तो उन सबको राजा को अर्पित करूँ।

(६०१) कीर्ति एव सम्मान स्फूर्ति के लिए आपके चरण स्पर्श से मेरा घर अनुग्रहीत हो।

(६०२) सूर्य सदृश अर्थपति स्वय अपना ओषधि सदृश धन ग्रहण कर दिशाओ, (आशाओ) को प्रकाशित करे।

(६०३) वदान्य आप द्वारा स्त्रीधन उपेक्षणीय नही है। सूर्य ससार की तृप्ति के लिए पृथ्वी का रस ग्रहण करता है।

(६०४) उस धन से राजा के याचको की प्रार्थना फलित हो। नदियो का जल ग्रहण कर, समुद्र मेघो को तृप्त करता है।

(६०५) मेरा धन ग्रहण करने से सर्पों द्वारा आवेष्टित कर निधि की रक्षा करने वाली पृथ्वी उपहास्पद होगी।

(६०६) इस प्रकार प्रतिसन्देश देकर पुष्प की तरह धैर्यशालिनी यह उनको बुद्धि के परितोष हेतु इस प्रकार का सन्देश दी—

(६०७) बुद्धिमान साहस के विषय म एकाकी क्या करेगा ? कभी एक हाथ से ताली नही बजती।

(६०८) गर्व के कारण अमर्षयुक्त कम्पनाधिपति से सहायता के लिए अभ्यर्थना करनी चाहिए।

(६०९) निराधारता के कारण निष्फल यह आपके द्वारा उसी प्रकार धारण करने योग्य है, जिस प्रकार वायु से आहत आश्रय वाली द्राक्षालता, अन्य वृक्ष से।

(६१०) मतिमान उदयश्री यह सन्देश सुन कर, कम्पनेश्वर से उसी प्रकार सहायता की याचना की।

(६११) हस्सन की जननी लक्ष्मी का उपकार सोचते हुए उसका उपकार करने के लिये इच्छुक उसने राजा स निवेदन किया।

(६१२) मत्सर मन्त्रियो ने राजा का उदय भद्र की वह दुर्नीति ज्ञात करा दी।

(६१३) उस राजा की रानी सुद्दा न अपने उस मन्त्री के अभय के हेतु उसे पुत्रवत् बना लिया।

(६१४) वह पूर्व स्वामियो के सम्मान मार्ग की प्राप्ति के लिये प्राणी को भी हस्सन के सम्युदय का अग माना।

पाद टिप्पणी :

५१५ (१) मन्त्र : द्रष्टव्य पाद टिप्पणी श्लोक संख्या २६० षड्यन्त्र का भेद खोलने वाला—

आत्मनो वधबन्धेन मोचयन्नपराङ्गनान्।
रसेन्द्र इव लोकेऽस्मिन् श्लाघनीयत्वमश्नुते ॥ ५१६ ॥

५१६ रसेन्द्र (पारद) के सदृश, इस लोक में अपने वध बन्धन द्वारा अपर लोगों को मुक्त करता हुआ, प्रशंसनीय होता है।

कर्मण्यभीक्ष्णतीक्ष्णेऽपि तथाऽऽलक्ष्य तमुद्यतम्।
क्षमाशीलः क्षमापालो नातक्ष्णोदुदयश्रियम् ॥ ५१७ ॥

५१७ बार-बार तीक्ष्ण[1] (वध-गुप्तचर ?) कार्यों में उद्यत देखकर भी क्षमाशील राजा ने उदयश्री का वध नहीं कराया।

गुणैः संवृत्य रन्ध्राणि शुचितां शीलयन्बहिः।
बिसवत्कालमनयत् पङ्कवत्सु जलेषु सः ॥ ५१८ ॥

५१८ गुणों द्वारा रन्ध्रों को संवृत करते, बाहर से पवित्रता का आचरण करते हुये, वह उसी प्रकार काल यापन किया, जिस प्रकार कमलदण्ड पंकिल जल में।

एक मत है कि लक्ष्मक था। भारतीय राजनीति शास्त्र में षाड्गुण्य के अन्तर्गत एक गुण माना गया है।

प्राचीन काल में मन्त्रशक्ति, शब्द का अर्थ उचित मन्त्रणा की शक्ति थी। मन्त्रपाल, राजकीय पद सम्भवतः आजकल के निजी सचिव समकक्ष था। बिना स्नान किये मन्त्रों के जप को मन्त्रस्नान कहते थे (ई० आई; ४, २२; सी० : २ : ४, इपिग्राफिकल ग्लॉसरी : १९८, २६५; द्रष्टव्य : श्लोक १७७, २६०, ३३७, ५१५, ५९१, ७५६)।

(२) उदयश्री : कुतुबुद्दीन का मन्त्री था। परसियन इतिहासकारों ने उदशहरबल नाम लिखा है। पीर हसन ने नाम राय शरदिल दिया है (उर्दू . अनुवाद : १५७)।

(३) पलायित : बम्बई संस्करण की श्लोक संख्या ५२० जो क्षेपक है उसके अनुवाद के आधार पर परसियन इतिहासकारों ने लिखा है कि हस्सन सुलतान के भय के कारण लोहरकोट भाग गया। पीर हसन भी लोहरकोट जाने का उल्लेख करता है (उर्दू : अनुवाद : १५७)।

फिरिस्ता लिखता है—'सतरे से राउन द्वारा सतर्क करने पर हस्सन लोहरकोट भाग गया। लोहरकोट के विद्रोहियों एवं सैनिकों में उसने और विश्वास उत्पन्न किया (४६०)।'

पाद-टिप्पणी :

५१७. (१) तीक्ष्ण : सचार अर्थात् घूमते हुए गुप्तचर के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। तीक्ष्ण को एक प्रकार का गुप्तचर भी माना गया है। (विशेष द्रष्टव्य : टिप्पणी २ : श्लोक : ३०५; अर्थशास्त्र कौटिल्य : १ : १२; इ० पी० : इण्डिया : भाग : १ : पृष्ठ ५; इण्डियन इपिग्राफिकल ग्लॉसरी : २९४)।

पाद-टिप्पणी :

५१८. श्लोक संख्या ५१८ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ६२०-६२२ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है :—

(६२०) हस्सन बुद्धेल स्वामी के कन्यारत्न को स्वीकार करके लोहर में प्रवेश किया। तब तक दिशाओं का भय समाप्त हो गया था।

(६२१) कश्मीर में बद्ध उदयश्री की बुद्धि से हस्सन उसी प्रकार पुष्ट हुआ जिस प्रकार आकाशस्थ घन की वृद्धि से केदार (क्यारी)।

(६२२) आधि के सदृश युक्तिपूर्वक भीतर से भन्न प्रहार करते उदयश्री तथा बाहर से व्याधि सदृश हस्सन द्वारा राजा अभिभूत किया गया।

तावद्भ्रमति यस्तोयं दूरात्स्पृष्टो हिमांशुना ।
किंस्विन्नैव तदाश्लिष्टः शशिग्रावा स्रवेदिति ॥ ५१९ ॥

५१९ जो दूर से चन्द्रमा द्वारा स्पर्श प्राप्त कर, जलस्रवित करता है, वह शशिग्रावा (चन्द्रकान्त मणि[1]) उसके द्वारा आश्लिष्ट होने पर, क्या स्रवित नहीं होगा ?

उदयश्रीर्गन्तुकामो राजपुत्रान्तिकं ततः ।
उदयश्रीः श्रुतद्रोहो राज्ञा कारां निवेशितः ॥ ५२० ॥

५२० अनन्तर जब कि उदयश्री राजपुत्र के निकट जाना चाहता था, राजा ने उसके द्रोह को सुनकर, उसे कारागार[1] में कर दिया ।

परीक्षितुमिवोद्युक्तैर्गुरोस्तस्य च शेमुषीम् ।
सुरैरिवार्थितो राजा क्रोधाद्व्यापादयत्स तम् ॥ ५२१ ॥

५२१ गुरु (उदयश्री)[1] की और राजा की बुद्धि परीक्षा के लिये ही मानों उद्यत सुरगणों से प्रार्थित (प्रेरित) राजा ने क्रोध से उसे मार[1] डाला :

पाद-टिप्पणी :

५१९. (१) शशिग्रावा : चन्द्रकान्तमणि के विषय में प्रसिद्धि है कि उसे चन्द्रमा के सम्मुख करने पर द्रवित होने लगता है । आर्द्रता के कारण उसमे से जलकण टपकता है ।

पाद-टिप्पणी :

५२०. श्लोक संख्या ५२० के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ६२५–६२८ अधिक मुद्रित हैं । उनका भावार्थ है—

(६२५) वक्र मडव मार्ग को सिद्धि का हेतु जानकर, श्वशुर मडवापति को अपना रहस्य बताया ।

(६२६) गंगाराज से उस मार्ग द्वारा निर्गमन की याचना की । अन्त मे मनुष्य की बुद्धि सूर्य की कान्ति सदृश नष्ट हो जाती है ।

(६२७) यदि शृङ्गाटक की जड न उखाडी जाय तो अन्तर्निमग्ना उसकी स्थिति कौन जान सकता है ?

(६२८) अपने विनाश की आशंका से गंगाराज के उसका द्रोह कह दिये जाने पर, क्रुद्ध नृपति ने उदयश्री को अवरुद्ध कर लिया ।

५२० (१) कारागार : बम्बई की प्रति में श्लोक संख्या ६१३ प्रक्षिप्त है उसके अनुसार सुडा रानी के कारण सुलतान ने उदयश्री का वध नही कराया । परसियन इतिहासकारो द्वारा उल्लिखित सुडा किंवा सुडा रानी का वास्तविक नाम सुभटा है । सुडा सुरा एवं सुभटा का अपभ्रंश किंवा परसियन लिपिदोष के कारण हो गया है ।

फिरिस्ता लिखता है—'कुतुबुद्दीन ने राय राउल (रावल उदयश्री) को पकड लिया । परन्तु वह मुक्त होकर हस्सन खाँ से जाकर मिल गया (४६०)।'

पाद-टिप्पणी :

५२१. (१) उदयश्री : म्युनिख पाण्डुलिपि के अनुसार उदयश्री ने इस का प्रयास किया था कि मुक्त होकर, राजपुत्र हस्सन का साथ पकड ले । परन्तु वह पकडा गया और उसकी हत्या कर दी गयी (५८ बी० ५९ ए०) । पीर हसन लिखता है—'अपने आपको किसी तरह कैद से छुटकारा दिलाया' और खुद को सीधा हसन खाँ के पास पहुंचा दिया (१७५ तथा उर्दू० अनुवाद : १५७)।

जैनुल आबदीन तक सभी प्रधान मन्त्री अथवा वजीर सर्वाधिकार कहे जाते थे । जैनुल आबदीन ने

मश्नन्पद्मं गजो भञ्जन् मरुच्चन्दनपादपम् ।
निघ्नन्पुरुषरत्नं च राजा निन्द्यो जगत्त्रये ॥ ५२२ ॥

५२२ कमल को रौंदता गज, चन्दनपादप को तोडता मरुत्, पुरुषरत्न का वध करता राजा, तीनों लोक में निन्द्य होता है।

यशः पुरुषपुष्पाणां भुवनोद्यानवर्तिनाम् ।
सौरभातिशयं श्लाघ्यं विचिनोति मनोहरम् ॥ ५२३ ॥

५२३ भुवनोद्यानवर्ती पुरुष-पुष्पों का मनोहर यश, अतिशय सौरभ एवं श्लाघनीयता को प्राप्त करता है।

विनष्टहस्तपालोऽन्धो यथातिचकिताशयः ।
उदयश्रीक्षये राजपुत्रोऽभूद्धस्सनस्तथा ॥ ५२४ ॥

५२४ अन्ध के हाथ का सहारे (लाठी) के नष्ट हो जाने पर, जिस प्रकार वह अति चकित-आशय हो जाता है, उसी प्रकार उदयश्री के क्षय[1] होने पर, राजपुत्र हस्सन हो गया।

सर्वाधिकार नाम बदलकर वजीर रख दिया था। उदयश्री सर्वाधिकार के अतिरिक्त वित्तमन्त्री भी सुलतान शहाबुद्दीन के समय था।

पाद-टिप्पणी :

५२२ श्लोक सख्या ५२२ के पश्चात् बम्बई सस्करण में श्लोक सख्या ६३० अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(६३०) लीलापूर्वक वेग से चन्दन पादप का उन्मूलन करता हुआ वायु हेलापूर्वक पद्म का छेदन करता गज, बाल सूर्य को आच्छादित करता घन और गुण मणि श्रेणी श्री का रोहण पुरुष-रत्न का क्रोध से मूर्छित मन से उच्छेद किवा विनाश करने वाला राजा किन लोगो से निन्दित नही होता है ?

पाद-टिप्पणी :

५२३ श्लोक सख्या ५२३ के पश्चात् बम्बई सस्करण म श्लोक सख्या ६३१ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(६३१) भुवनोपवन म मानुष प्रसवो अथवा प्ररोहितो के मनोहर एव विकसित होते सौरभ सम्पत्ति को विधि हर लेता है।

पाद-टिप्पणी :

श्लोक सख्या ५२४ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ६३२, ६३३ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है —

(६३२) विनष्ट धैर्य हस्सन उदयश्री के बिना नष्ट हस्तावलम्ब वाले अन्धे के समान पतन का अनुभव किया।

(६३३) क्रूर करकापात से भग्न पक्ष वाले पक्षी शावक सदृश हस्सन क्रूरो द्वारा निबद्ध कर लिया गया।

५२४ (१) क्षय उदयश्री की मृत्यु के कारण राजपुत्र हस्सन सर्वथा नि सहाय हो गया था। उदयश्री उसका सहायक था। वह स्वत. शक्तिशाली था। उसी की शक्ति पर हस्सन भरोसा करता था। परन्तु उसकी मृत्यु के कारण हस्सन किंकर्तव्यविमूढ हो गया। उसकी समझ मे नहीं आ रहा था, वह क्या करे ? निरवलम्ब अपनी रक्षा के लिए उसने सम राजा की शरण ली थी।

प्रसादप्रीणितैः प्रायः खशराजैर्दुरात्मभिः ।
राजपुत्रो हस्सनः स हन्तुं प्रत्यर्पितः प्रभोः ॥ ५२५ ॥

५२५ प्रभु की कृपा से प्रसन्न, दुरात्मा खस[1] राजाओं ने राजपुत्र उस हस्सन की हत्या[2] करने के लिये (राजा को) प्रत्यर्पित कर दिया ।

पाद-टिप्पणी :

५२५ (१) खस . आजकल की खस जाति ही राजतरंगिणी-वर्णित खस जाति है । खस जातिवाचक शब्द है । यह पीर पंजाल पर्वतमाला के दक्षिण-पश्चिम अंचल मे तथा किश्तवार की पूर्वीय पर्वतमाला के एक भाग मे निवास करती है । वे अपने को मुसलिम राजपूत कहते हैं । हिन्दू खस जाति हिमालय के अन्य क्षेत्रो मे रहती है । कुमायूँ की पहाड़ियो मे अनेक लोग अपने को खशवंशीय और राजपूत होने का दावा करते है। राजपुरी का खस सरदार राजपूतो मे विवाह सम्बन्ध करता था। लोहर के खस सरदार ने काबुल के शाहीवश के साथ विवाह सम्बन्ध किया था। सिंहराज की कन्या दिद्दा रानी थी। उसने काश्मीर पर राज्य किया था ।

मनु ने (१० : २२, ४४) उन्हे क्षत्रिय माना है । खश तथा खस दोनो पाठ मिलते हैं। नीलमत पुराण-वर्णित खशा तथा खस एक ही है (नी० 583=७०३, ७०४, 60=१२१, १२२ 139=१८२) आजकल उन्हे खख्खा कहा जाता है। वे मुसल्मान हैं। उन्हें राजपूत मुसल्मान कहा जाता है। राजपुरी अर्थात् राजौरी के खसो को राजारूप मे अभिहित किया गया है। उनकी सेना खसा कही जाती थी। राजपुरी के पूर्व अचल म आस नदी बहती है। इस नदी को आजकल पंज गब्बर कहते है। उसकी उपत्यका मे खसो का निवास माना गया है। उसके पूर्व अचल को बाणरशाल अर्थात् बनिहाल कहते है।

वह उपत्यका जो बनिहाल तथा चन्द्रभागा (चिनाव) नदी के मध्य है, उसका पुराना नाम विशालटा। इस समय उसे विचत्रारी कहते हैं। यह क्षेत्र खसो द्वारा आबाद था।

खशालय का भी वर्णन कल्हण ने किया है। वह खैशल उपत्यका है। इसको कशेर भी कहते हैं। यह दक्षिण पूर्व मे मारवल दर्रे से काश्मीर के एक कोने से होती किश्तवार तक चली जाती है। खशालय का एक पुराना नाम खसाली भी है। काश्मीर के पर्णोत्स अर्थात् पूँछ अचल तक खस निवास करते थे। उन्हे निम्न खस कहा जाता था।

आधुनिक खख्ख जाति एव खस एक ही है। काश्मीर मे वितस्ता उपत्यका के अधोभागीय सरदार प्राय इसी जाति के हैं। खस जाति ने मध्ययुग मे लूटपाट मे ख्याति प्राप्त की थी। काश्मीर की १८९१ की जनगणना पृष्ठ १४१ पर खसो की आबादी ४१४६ लिखी गई है। उन्हें पर्वतीय राजपूत मुसल-मानो की एक उपजाति मानी गई है। खस जाति पर्वताश्रयी है। बारहमूला के अधोभाग मे वितस्ता उपत्यका मे खस जाति के लोग रहते हैं। बीरानक उनका केन्द्र माना गया है।

कुछ विद्वान खसो का सम्बन्ध काशगर से जोडते हैं। खसगिरि का अपभ्रंश काशगर मानते हैं। खशीर का उल्लेख पूर्वोत्तर भारतीय एक जनपद के लिए आया है। किन्तु वह खासी जाति है। पुराणो तथा महाभारत में खस जाति का प्रचुर उल्लेख मिलता है। 'केदारे खसमण्डले इस सूक्ति के आधार पर एक मत केदारखण्ड को खस जाति का स्थान मानता है। यह उचित नही है। हिमालय के दक्षिण तथा पश्चिम निःसन्देह खस रहते थे। वह केदारखण्ड मे भी आबाद हो सकते थे। किन्तु इसके कारण खस मण्डल का पर्याय केदारखण्ड मान लेना ठीक न होगा। दरद जाति को खस जाति का पडोसी माना गया है। बङ्गाल के पाल राजाओ के शिलालेखो मे हूण तथा खस जाति का उल्लेख मिलता है।

प्लीनी का मत है कि सिन्धु तथा यमुना की मध्यवर्ती पर्वतीय जातियाँ खस अर्थात् केशी हैं। वे क्षत्रिय हैं। नेपाल से पामीर तथा काश्मीर तक खस

उत्पिञ्जे गलिते शत्रुवर्गेऽप्याशाच्युते सति।
स तिग्मतेजा लोकानामालोकश्रियमाययौ ॥ ५२६ ॥

५२६ अनिष्टकारी शत्रुवर्ग के नष्ट तथा आशारहित हो जाने से वह तीक्ष्ण-तेजस्वी लोक में आलोकश्री (प्रकाशशोभा) प्राप्त किया।

वितस्तायां स्वनामाङ्का पुरी तेनाथ निर्मिता।
उच्छ्रितैः कनकच्छत्रैर्यामुल्लुण्ठयति स्म या ॥ ५२७ ॥

५२७[1] उसने वितस्ता पर स्वनामांकित[2] पुरी निर्मित किया, जो ऊँचे स्वर्णच्छत्रों से आकाश चूम रही थी।

जाति बिखरी आबाद है। खसो मे अनेक मुसलमान तथा बौद्ध हो गये थे'। शेष हिन्दू धर्म के रीति-रिवाजो को मानते हुए पूर्ववत् क्षत्रिय हैं।

(२) हत्या : इस श्लोक के पश्चात् हस्सन का पुन. उल्लेख नही मिलता। जोनराज ने उसका अन्तिम बार यहाँ उल्लेख किया है। इससे सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हस्सन की हत्या कर दी गयी थी।

तबकाते अकबरी मे लिखा है कि, 'सुलतान के एक अमीर ने जिसका नाम राय रावल था राजा को उसके मन्तव्य की सूचना दे दी। राजा उसकी हत्या करना चाहता था। हस्सन काश्मीर से भाग कर लोहरकोट पहुँचा। जमीन्दारो ने दोनो को बन्दी बना दिया। राय रावल की हत्या कर दी गयी और हसन बन्दी बना लिया गया (उ० . तै०. भा० . १ : ५१४)।'

म्युनिख पाण्डुलिपि मे वर्णन किया गया है— 'कुतुबुद्दीन ने फौज को रिश्वत देकर शहजादा हस्सन को क़तल कर दिया। (पाण्डु० ५८ बी०, ५९ ए०)।' जोनराज का घटना-क्रम परशियन इतिहासकारो से नही मिलता।

फिरिश्ता घटना-क्रम दूसरे प्रकार से देता है— 'राय राउल हस्सन के साथ मिलकर विद्रोह किया और योजना बनायी। किन्तु समीपवर्ती जमीन्दारो को अपने तरफ मिलाने की कोशिश करते समय वे जमीन्दारो के विश्वासघात के कारण पकड लिये गये। वे सुलतान के पास भेज दिये गये। सुलतान ने राउल की हत्या और हस्सन को बन्दी बना दिया' (पृष्ठ : ४६०-४६१)।

पीर हसन ने भी करीब-करीब यही लिखा है— 'दोनो ने आपस मे इत्तफ़ाक़ कर लिया और सुलतान के खिलाफ अलम बगावत बुलन्द किया। लेकिन जल्दी ही इस इलाक़ा के जमीन्दारो ने इन दोनो आदमियो को गिरफ्तार कर, सुलतान के पास भेज दिया। सुलतान ने राय शेरदिल को उसी वक्त क़तल कर दिया और हसन खाँ को जेलखाना भेज दिया (उर्दू . १५७)।'

पाद-टिप्पणी :

५२७ (१) अर्थ अस्पष्ट है। 'उल्लुण्ठयति' का अर्थ लूटना होता है। आकाश की शोभा लूट रहा था। यह भी एक अर्थ हो सकता है। उससे आकाश की शोभा दब गयी थी। स्वयं अत्यन्त शोभायमान हो गया था।

(२) स्वनामाकित पुरी : कुतुबुद्दीनपुर= इस समय इस स्थानपर श्रीनगर समीपस्थ दो मुहल्ले लगर-हट्टा तथा पीर हाजी मुहम्मद स्थित हैं। अपने निर्मित कुतुबुद्दीन पुर मे वह दफन किया गया। उसकी कब्र पीर हाजी मुहम्मद की जियारत के समीप है। इस समय यह राजकीय रक्षित स्थान है। यह झेलम के पाँचवें तथा छठवें पुल के बीच में है।

प्रत्यब्दं जलमालक्ष्य दुर्भिक्षक्षपितायुषम् ।
मासि भाद्रपदेऽकार्षीत् स सत्रं भूरिदक्षिणम् ॥ ५२८ ॥

५२८ प्रतिवर्ष दुर्भिक्ष[1] के कारण जलाभाव देखकर, उसने भाद्रपद मास में प्रचुर दक्षिणा वाला सत्र[2] किया ।

साधुसूक्तिसुधास्नानात् कर्णाभ्यर्णतले कचैः ।
ध्रुवं धवलिमापेदे वार्धके चास्य भूपतेः ॥ ५२९ ॥

५२९ साधुवादरूपी सुधास्नान से वृद्धावस्था में इस राजा के कान के समीप नीचे केश धवल[1] हो गये ।

भूषणं निजवंशस्य पूषणं धरणेरसौ ।
शत्रुश्रीदूषणं पुत्ररत्नं न च स लब्धवान् ॥ ५३० ॥

५३० निज वंशभूषण पृथ्वी का पूषण (सूर्य) और शत्रुलक्ष्मी के लिये दूषण, इसने पुत्ररत्न नहीं प्राप्त किया ।

योगिनो ब्रह्मनाथस्य कश्मीरानागतस्य सः ।
प्रसादेन महीपालः सन्ततिं प्राप्तवांश्चिरात् ॥ ५३१ ॥

५३१ कश्मीर-आगत योगी ब्रह्मनाथ[1] के प्रसाद से महीपाल ने चिरात् सन्तति प्राप्त किया ।

पाद-टिप्पणी :

५२८. (१) दुर्भिक्ष : इस काल मे काश्मीर मे दुर्भिक्ष पड़ा था । (म्युनिख : पाण्डु० : ५९ बी०)

(२) सत्र : वैदिक काल मे सोमयज्ञ तेरह से १०० दिनो मे पूर्ण होता था । उसमे अनेक ऋत्विज् भाग लेते थे (ऋ : ६ : ६३ : १३ , अथे० : ११ : ७ : ८) । कालान्तर मे यह दान, पुण्य और मुख्यतः जहाँ निर्धनो तथा पंगुओ को निःशुल्क भोजन, अन्न, वस्त्र दिया जाता था उसके लिये रूढ हो गया । अन्नसत्र काशी मे पहले प्रचलित था । जहाँ गरीबो को अन्न दिया जाता था । कुतुबुद्दीन मुसलिम राजा था । वह वैदिक यज्ञ नही कर सकता था । यहाँ जोनराज का सत्र से तात्पर्य, सदावर्त मुफ्त भोजन, अन्न, राजकीय व्यवस्था से है जहाँ दरिद्रो को निःशुल्क अन्न किंवा भोजन दिया जाता था । परशियन इतिहास लेखको ने भी उल्लेख किया है कि राजा कुतुबुद्दीन ने जनता की सहायता अन्न, धन, भोजन, तथा वस्त्र से की थी (म्युनिख पाण्डु० : ५९ बी०) ।

पाद-टिप्पणी :

५२९. (१) धवल : जोनराज ने रामायण के कथानक को यहाँ दुहराया है । राजा दशरथ ने अपने कानो के समीप श्वेत किंवा धवल केशो को देखकर, अपनी वृद्धावस्था का अनुभव कर श्रीरामचन्द्र को युवराज पद देने का निश्चय किया था ।

पाद-टिप्पणी :

५३०. श्लोक संख्या ५३० के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ६४० अधिक मुद्रित है । उसका भावार्थ है—

(६४०) वायु से चंचल तरंग सदृश आयु को चंचल मानकर पुत्र कामना से सभी अग्रहारो का निर्माण कराया ।

पाद-टिप्पणी :

५३१. श्लोक संख्या ५३१ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ६४१–६५१ अधिक मुद्रित है । उनका भावार्थ है—

(६४१) काश्मीर आये योगी ब्रह्मनाथ से

अन्वयाभरणं देवी पितुरानन्दपारणम् ।
तमोहरणमर्यन्धङ्करणं सुषुवे सुतम् ॥ ५३२ ॥

५३२ देवी[1] ने वंशभूषण पिता के आनन्द के लिये पारणस्वरूप तमोहारी शत्रुओं को अन्धा करने वाला सुत प्रसूत किया।

उसके कर्म से प्रेरित होकर राजा ने पुत्र हेतु इस प्रकार कहा—

(६४२) मैंने वैरियों को कारागार का कुटुम्बी बना दिया और लक्ष्मी की नैसर्गिक चचलता निवारित कर दी।

(६४३) अपराध के अनुसार दण्ड के द्वारा धर्मोपद्रव का हरण कर बिना पक्षपात के अपनी सतान तुल्य प्रजाओं का पालन किया।

(६४४) मैंने बहुत दिनों तक विद्वज्जन-वारिधि का मन्थन करके शास्त्र मणिप्रभा को प्राप्त किया। (श्लोक कुछ अस्पष्ट है)

(६४५) इस प्रकार कृतकृत्य मेरे लिये यही एक शोक-शकु है कि विशाल साम्राज्य भार को वहन करने वाला कोई कुलाकुर (सतान) नहीं है।

(६४६) इस प्रकार उसकी बात सुनकर वंशोच्छेद रूप अन्धकार का नाशक दन्त प्रकाश दर्शित करते हुये योगी ने उस राजा से कहा—

(६४७) हे राजन्! पुत्राभाव हेतु विषाद मत करो। पुण्यशालियों के लिये कभी कुछ दुष्प्राप्य नहीं होता।

(६४८) योगी होकर भी पुत्रोत्पत्ति हेतु मैंने कुछ सचित किया है, वह तुम्हारा उपकारी हो।

(६४९) गुणों के साथ मेरे इस कश्मीरागमनो-द्यम की यह कुलिका खाकर महिषी (रानी) फलित हो।

(६५०) त्रिलोक को अभयप्रद लग्न में कुल-तन्तु के उत्पन्न होने पर जगत्त्राण करने की चिन्ता से राजा मुक्त हो गया।

(६५१) राजा योगीन्द्र से गुलिका लेकर उसे रानी को उसी प्रकार खिलाया जिस प्रकार दशरथ ने चरु को मूर्त प्रसाद पदवी सदृश (उसे) देवी को खिलाया था।

५३१ (१) ब्रह्मनाथ योगी : इनका पुन. उल्लेख नहीं मिलता। डॉ० परमू ने लिखा है कि सुलतान को अली हमदानी की आध्यात्मिक शक्ति के कारण दो पुत्ररत्न प्राप्त हुए। किन्तु किस आधार पर उन्होंने यह लिखा है, स्पष्ट नहीं किया है। जोनराज के स्पष्ट वर्णन कि योगी ब्रह्मनाथ के आशीर्वाद से शाह को दो पुत्र हुये थे उसके स्थान पर डॉ० परमू ने शाह अली हमदानी को किस आधार पर लिख दिया, यह विचित्र पहेली है। जोनराज का वर्णन गलत है—इसे प्रमाणित करने का प्रयास नहीं किया गया है। फिरिस्ता तथा निजामुद्दीन ने सिकन्दर का नाम शकर तथा जोनराज ने शृङ्गार दिया है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि सुलतान को हिन्दू योगी के आशीर्वाद से पुत्र उत्पन्न हुआ था। अत एव उसका नाम शकर रखा गया था।

पाद-टिप्पणी :

५३२ (१) देवी. रानी का नाम सुभटा है (श्लोक० ५४१)। परसियन इतिहासकारों ने नाम 'हौरा' दिया है। फिरिस्ता रानी का नाम 'सूरा' बेगम देता है। यह गलती बम्बई की प्रति 'सुहा' रानी शब्द के अनुवाद के कारण हो गयी है। 'सुरा' तथा 'सुडा' यदि परसियन शिकस्ता लिपि में लिखा जाय तो 'सुडा' तथा 'सुरा' सदृश मालूम पड़ेगा। क्योंकि 'रे' और 'डाल' अक्षरों में 'तो' हटा दिया जाय तो बहुत कम अन्तर रह जाता है।

परसियन इतिहासकार सुडा को सुरा बना ही नहीं सके। उसका नाम हौरा दे दिया है। उसे शाह हमदानी की शिष्या कहा गया है। वह मृत्यु उपरान्त मजार मसजिद जैनाकदल श्रीनगर में दफन की गयी।

शृङ्गारमङ्गलावासमवलोक्य वपुः शिशोः।
शृङ्गार इति नामास्य व्यधाद् भूलोकवासवः॥ ५३३॥

५३३ शिशु के शृंगार एवं मंगलमय शरीर को देखकर, भूलोक-वासव (पृथ्वी-इन्द्र) ने इसका नाम शृङ्गार[1] रखा।

हर्षादादिशति क्ष्मापे बन्धुमुक्तिं तदुत्सवे।
अन्वभावि तदा चित्रं बन्धो नौसेतुभिः परम्॥ ५३४॥

५३४ पुत्रोत्सव के अवसर पर, हर्ष से राजा के बन्धमुक्ति (एमनेस्टी) का आदेश देने पर भी आश्चर्य है कि, उस समय नौका-निर्मित सेतुओं ने बन्धन का ही अनुभव किया।

अथ द्वितीयपुत्रं सा देवी हैवलसंज्ञितम्।
असूत कान्तिसन्तानतर्ज्यमानसुधाकरम्॥ ५३५॥

५३५ वह देवी हैवत[1] नामक द्वितीय पुत्र उत्पन्न की जो कि कान्ति परम्परा से चन्द्रमा को तर्जित कर रहा था।

चन्द्रस्येव कलङ्कोऽभूदयं दोषो महीभुजः।
कुलागतां महीं यत्स वास्तव्यानामपाहरत्॥ ५३६॥

५३६ चन्द्रमा के कलंक समान राजा का यह एक दोष था कि, उसने वास्तव्यों (प्रजाओं) की कुलागत[1] मही (भू-सम्पत्ति) को अपहरण कर लिया।

पाद-टिप्पणी :

५३३. (१) शृङ्गार : पुत्र का नाम शृङ्गार जोनराज लिखता है। वह कालान्तर मे सिकन्दर बुतशिकन के नाम से प्रसिद्ध हुआ (उ० तै० : का० : २ : ५१४)।

सिकन्दर का नाम म्युनिख पाण्डुलिपि (५९ बी०) और तबकाते अकबरी (३ : ४३१) मे शकर दिया गया है। पीर हसन सिकन्दर का नाम शिकार तथा उसके भाई का नाम हैबत देता है।

फिरिस्ता इस पुत्र का नाम सुग्गा देता है (४६१)।

पाद-टिप्पणी :

५३४. उक्त श्लोक संख्या ५३४ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ६५५ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(६५५) देवी के मातुलपुत्र भाण्डागारिक उद्दक की प्रिया को राजा ने धात्रियो मे प्रमुख बना दिया।

५३४. (१) बन्धनमुक्ति : परसियन इतिहासकार लिखते हैं कि इस अवसर पर उत्सव मनाया गया। दरबारियो को जागीरें दी गयी। कैदियों की रिहाई की गयी (म्युनिख : पाण्डु० ५९ बी०)।

पाद-टिप्पणी :

श्लोक संख्या ५३५ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे ६५७–६५९ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(६५७) उस राजा के पृथ्वी की रक्षा करते समय लोगो ने पद पद पर किस वस्तु की सुभिक्षश्री नही देखी ?

(६५८) उसने कहीं धनुष विनत नही किया। तथापि उसके शत्रु क्यों प्रणत हो गये ?

(६५९) उस राजा के पृथ्वी का पालन करते समय दैवी नीति थी। षड्यन्त्र के विनाश का आख्यान तिरस्कार था।

५३५ (१) हैवत : हैबत खाँ नाम तबकाते अकबरी मे दिया गया है (उ० : तै० : भा० : २ ५१४)। फिरिस्ता ने भी नाम हैबत खा दिया है (४६१)।

पाद-टिप्पणी :

५३६. श्लोक संख्या ५३६ के पश्चात् बम्बई

भाद्रे कृष्णद्वितीयायां पञ्चषष्टे स वत्सरे।
अस्तं जगाम राजेन्दुः कुद्दीनमहीपतिः ॥ ५३७ ॥

५३७ पैंसठवें[1] वर्ष भाद्र कृष्णपक्ष द्वितीया को वह राजेन्द्र कुद्दीन अस्त[2] हो गया।

संस्करण में श्लोक संख्या ६६१ तथा ६६२ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(६६१) विकसित होता कुमुदाकर, अकलक वह राजेन्द्र नाग्राम नामक धाम में परमधाम में विलीन हो गया।

(६६२) चिरभुक्त पृथ्वी को भावी पापों से अस्पृश्य मानकर निश्चय ही सुरस्त्रियों के भोग हेतु वह राजा स्वर्ग चला गया।

(१) कुलागत : काश्मीरी में ग्रामीण लोग 'मरूसी' कहते हैं। यह मौरूसी का अपभ्रंश है।

पाद-टिप्पणी :

५३७ (१) पैंसठवें वर्ष : सुलतान कुतुबुद्दीन सम्वत् ४४९०=लौकिक सम्वत ४४६५ = सन् १३८९ ई० = विक्रमी सम्वत् १४४६ = शक १३११ भाद्र कृष्णपक्ष द्वितीया को दिवंगत हुआ। उसने १५ वर्ष राज्य किया था। पीर हसन के अनुसार १६ वर्ष, ५ मास, २ दिन राज्य किया था। फिरिस्ता मृत्यु-काल हिजरी ७९९ = सन् ११९६ ई० तथा राज्य काल १५ वर्ष देता है।

रोजर मृत्युकाल हिजरी ७९५ = सन् १३९२ ई० देता है (जि० ए० एस० बी० : सन् १८८५ पृष्ठ १७०)। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में मृत्युकाल सन् १३९३–१३९४ ई० दिया गया है। परसियन इतिहासकार उसकी मृत्यु हिजरी ७९६ = सन् १३९३ ई० देते हैं। बहारिस्तान शाही मृत्युकाल हिजरी ७९६ राज्यकाल १६ वर्ष देती है (पाण्डु० २३)। हैदर मल्लिक भी हिजरी ७९६ तथा राज्यकाल १५ वर्ष, ५ मास देता है। (पाण्डु० : ४३)। निजामुद्दीन मृत्युकाल का उल्लेख नहीं करता। परन्तु लिखता है कि सुलतान ने १५ वर्ष, ५ मास शासन किया था।

(२) अस्त : सुलतान स्वनिर्मित नगर कुतुबुद्दीनपुर में दफन किया गया था। यह इस समय सरकार द्वारा रक्षित स्थान है। यह घनी आबादी में वर्तमान महल्ला लगरहट्टा में है। जामा मसजिद के दक्षिण-पश्चिम बड़ा कब्रिस्तान है। यहाँ एक अष्ट-कोणीय मकबरा आयताकार प्रांगण में स्थित है। इसमें प्रवेश करने के लिए अलंकृत शिलाखण्ड युक्त पूर्व एवं पश्चिम से भूमि तीन फिट ऊँचाई पर द्वार है। स्थान प्राचीन देवस्थान है। स्टीन का मत है कि यहीं पर रणास्वामी का मन्दिर था (रा० : ३ : ४५३–४५४)। उत्तर-पश्चिम पीर हाजी मुहम्मद का रौजा आठ गज दूर पर होगा। द्वार के दाहिनी ओर बायीं ओर अलंकृत शिलास्तम्भ है। इस घेरे में तीन कब्रे है। दो समीप है। तीसरी कुछ दूर पर है। इन्हीं दोनों को सुलतान कुतुबुद्दीन तथा रानी की कब्र कहा जाता है। उस पर शिलालेख है—'—अलहरम अलमुहतरम सुलतान कुतुबुद्दीन हिजरी ८४६)' = सन् १४४२ ई० (तारीख हसन : पाण्डु० : २७१; तारीखे जदवाली तथा डॉ० परमू : १०५–१०६ नोट ६४, पीर हसन : उर्दू अनुवाद : १५८)। उसके मृत्यु की तारीख निम्नलिखित फारसी पद से निकलती है—

कुतुब बरखास्त अ रूये करगीर।
बजु सर जाह सिकन्दर नेस्त नशिस्त ॥

उसकी कब्र के विषय में मतभेद है। आजम उसकी कब्र बाची दरवाजा हरि पर्वत तथा हसन तथा सैफुद्दीन मिशकीन पीर हाजी के कब्रिस्तान में बताते है।

मूल्यांकन :

कुतुबुद्दीन सुसंस्कृत, गुणी एवं विद्याव्यसनी था। वह कवियों तथा विद्वानों का आदर करता था (पाण्डु० : वाकयाते काश्मीरी : ३९–४०)। जनता का हितैषी था। अकाल पड़ने पर उसने वे सब हितकारी कार्य किये जो सम्भव थे (म्युनिख : पाण्डु० : ५९ बी०)। उसने भ्रातृप्रेम के कारण, अपने भतीजे

हस्सन को बाहर से बुलाकर, युवराज बनाया। *किन्तु षड्यन्त्र करने के कारण, युवराज की हत्या* करनी पडी। मध्ययुगीय इतिहास को देखते हुए, उन दिनों यह साधारण बात थी (म्युनिख पाण्डु० : ५८ ए०,५९ बी०) इस समय काश्मीर मे मुसलिम आबादी बहुत कम थी। दोनो धर्मावलम्बियो की वेश-भूषा, रहन सहन मे विशेष अन्तर नही था। उन्हे देखकर पहचानना कठिन था कि कौन हिन्दू और कौन मुसलमान था (हैदर मल्लिक : पाण्डु० ४२)।

धार्मिक सहिष्णुता व्याप्त थी। अलाउद्दीनपुर मे एक मन्दिर था। वहाँ हिन्दू, मुसलिम तथा सुल्तान स्वयं प्रात काल जाता था (बहारिस्तान शाही पाण्डु० . २३–२४ ए०, पाण्डु० · १०९ बी०, ११० ए०)। फतूहात कुबराविया (पाण्डु० : १४७ बी०) के अनुसार उसकी दो स्त्रियां थी। वे दोनो सगी बहनें थी। इस प्रकार का विवाह मुसलिम शरियत कानून के खिलाफ था। परसियन इतिहासकारो के अनुसार इसी समय सैय्यद अली हमदानी का काश्मीर में आगमन हुआ। उसके प्रभाव मे सुलतान आ गया। उसने सैय्यद अली के आदेशानुसार दोनो स्त्रियो को तलाक़ दे दिया। तत्पश्चात् कनिष्ठा बहन रानी सुभटा जिसे परसियन इतिहासकारो ने सुरा एव सुडा लिखा है विवाह कर लिया। वही सिकन्दर बुतशिकन तथा हैबत की माता थी (फतूहात कुबराविया १४७ बी० पाण्डु० हैदर मल्लिक · पाण्डु० · ४२)। बहारिस्तान शाही एक घटना का उल्लेख करती है कि अलाउद्दीनपुर में एक छोटा मन्दिर था उसे उजाड दिया गया। वहाँ रहने की जगह बनायी गयी (पाण्डु० २०–२१)।

यद्यपि वह अली हमदानी तथा गैर काश्मीरी मुसलमानो के प्रभाव मे आ गया था, परन्तु उसने उनके प्रत्येक सुझावो पर ध्यान नही दिया। उसने अपने राज्यकाल मे हिन्दुओ पर धर्म-परिवर्तन के लिये जोर नहीं दिया। वह अपना स्वतन्त्र मत रखता था। अली हमदानी अपने प्रभाव तथा प्रचार से धर्म-परिवर्तन का कार्य अवश्य करता था। दिन-प्रतिदिन मुसलिम सख्या काश्मीर मे बढती जाती थी, किन्तु उसने *मुसलिम धर्म प्रसार मे कट्टरता का परिचय नही* दिया। हिन्दुओ की तरफ से इसका किसी प्रकार का प्रतिवाद एवं विरोध भी नही किया गया। किन्तु यही से धर्म परिवर्तन का बीजारोपण आरम्भ होता है। जिसके कारण काश्मीर मे धर्मोन्माद अपनी चरमसीमा पर, उसके पुत्र सिकन्दर तथा पौत्र अलीशाह के समय पहुँच गया। परसियन इतिहासकार स्पष्ट लिखते हैं कि वह मुसलिम शरह का पूर्णतया पालन नहीं करता था।

खानकाह मौला के वक्फनामा जिसे सैय्यद अली हमदानी के पुत्र मीर सैय्यद मुहम्मद हमदानी ने ११ जनवरी सन् १३९६ ई० मे लिखा था, उसमे उल्लेख किया गया है—'चूंकि मेरे पिता ने काश्मीर से कुफ्र व शिर्क को हटाया था।'

इससे प्रकट होता है कि कुतुबुद्दीन के समय मे इसलाम का प्रचार तथा हिन्दुओ की दीक्षा मुसलिम धर्म मे जोरो के साथ हो गयी थी। कुतुबुद्दीन इसमे सहायता करता था, यह वक्फनामा से प्रगट होता है। शाहमीरी वश मे इस प्रकार कुतुबुद्दीन पहला सुलतान था, जिसने राजयन्त्र को इसलाम के प्रचार का साधन बनाया था। यद्यपि वह खुलकर इस कार्य को नही कर सकता था। जनता मे मुसलिमो की आबादी इस समय बहुत कम थी और जनता के विद्रोह करने का भी भय था।

वह हिन्दुओ के समान वस्त्र पहनता था लेकिन हमदानी के कहने से मुसलिम वस्त्र पहनना आरम्भ किया। इसी समय से मुसलमान तथा हिन्दुओ के निवास मे अन्तर पडने लगा। हैदर मल्लिक लिखता है कि हमदानी से मिलने पहले दौलतचन्द गया था। उसके बाद सुलतान का उससे सम्पर्क स्थापित हुआ (हैदर मल्लिक : पाण्डु० ४२–४३)।

परसियन इतिहासकारो के वर्णन अनुसार सुलतान अली हमदानी के प्रभाव मे आ गया था। सैय्यद अली की दी हुई एक टोपी वह अपने ताज के अन्दर रखकर पहनता था। यह प्रथा उस समय

तक चलती रही, जब कि फतहशाह ने उस टोपी के साथ दफन होने की इच्छा नही प्रकट की। उसकी इच्छानुसार उसके सर पर टोपी रखकर उसे दफन किया गया (हैदर मल्लिक . पाण्डु० : ४२, बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : १९, वाकयाते काश्मीर : पाण्डु० : ६५ बी०)। अली हमदानी जाने लगा तो शरियत तथा मुसलिम कानून काश्मीर मे किस प्रकार चलाया जाय उसके लिये मौलाना मुहम्मद वलखी अपर नाम हाजी मीर मुहम्मद को छोडता गया। यह शरियत का प्रचार तथा उन्हे सुलतान से प्रचलित कराने का प्रयास करता रहा (फतूहात-कुवरिया : पाण्डु० १५१ बी०, मजमूआ दर असख मशाइखे-काश्मीर . पाण्डु० : १११ बी०, पाण्डु० : ११० बी०)। अली हमदानी के साथ काश्मीर से साथ जाने वाले लद्द मग्रे थे (तारीखे काश्मीर : सैय्यद अली : १३-१४)।

कुतुबुद्दीन विद्या को प्रोत्साहन देता था। कुतुबुद्दीनपुर मे उसने एक मदरसा स्थापित किया था। उसने वहाँ पीर हाजी मुहम्मद करी को कुलपति नियुक्त किया। इसके साथ विद्यार्थियो के निवास के लिये छात्रावास बनवाया। वहाँ उस्ताद तथा विद्यार्थी दोनो को मुफ्त खाना दिया जाता था। यह खानकाह सिख शासन काल पूर्व तक वर्तमान था। दूसरी संस्था उरवतुल उस्का था। उसकी स्थापना सैय्यद जमालुद्दीन मुहद्दिस ने की थी। वह सैय्यद अली हमदानी के साथ काश्मीर मे आया था।•सुलतान कुतुबुद्दीन ने उनसे काश्मीर मे निवास करने के लिये प्रार्थना की थी। तथापि सुलतान ने हिन्दुओ के विद्यालयो-पाठशालाओ पर चढे दान-सत्रादि को नही लिया। हिन्दू सस्थायें पूर्ववत् चलती रही।

कुतुबुद्दीन हिन्दुओ के सस्कारो मे विश्वास करता था। उसे विश्वास था कि उसे सन्तान ब्रह्मनाथ योगी के कारण हुई है। राज्याभिषेक के समय भी हिन्दू-पद्धति के अनुसार सस्कार किये जाते थे, सुलतान के मस्तक पर तिलक लगाया जाता था।

जोनराज ने सुलतान की कहीं बुराई नहीं लिखी है। वह उसके मुसलिम-धर्म-प्रचारक, समर्थक अथवा 'तुर्कदर्शन' को काश्मीर मे प्रचलित करने का उल्लेख नही करता। उसने उसे सुयोग्य, सहिष्णु सुलतान चित्रित करने का प्रयास किया है। परसियन इतिहासकार उसे अवश्य धार्मिक प्रवृत्ति, काश्मीर मे शरियत कानून आदि का प्रवर्तक मानते हैं। जोनराज का कथन अधिक प्रामाणिक माना जायगा। क्योकि जिस वर्ष सुलतान की मृत्यु हुई उसी वर्ष सन् १३८९ ई० मे जोनराज के जन्म का अनुमान किया गया है। जोनराज कुतुबुद्दीन की मृत्यु के लगभग ही पैदा हुआ था। अतएव उसने बाल्य एवं युवाकाल मे अपने पिता, माता तथा मित्रो से कुतुबुद्दीन-काल की घटनाओ को सुनकर वर्णन किया होगा जो उन घटनाओ के प्रत्यक्षदर्शी थे।

सैय्यद अली हमदानी :

जोनराज सैय्यद अली हमदानी का उल्लेख नही करता। उसने कही सकेत नही किया है कि तुरुष्कदर्शन का कोई विद्वान काश्मीर मे पधारा था। यद्यपि सिकन्दर के समय मीर मुहम्मद हमदानी के आगमन का उल्लेख करता है। प्रायः सभी परसियन एव मुसलिम इतिहासकारो ने अली हमदानी के काश्मीर आगमन को बहुत महत्त्व दिया है। अतएव अप्रासंगिक होने पर भी उसका सक्षेप मे यहाँ उल्लेख कर देना उचित होगा।

परसियन इतिहासकार एकमत हैं कि सुलतान कुतुबुद्दीन के समय अली हमदानी का काश्मीर मे आगमन हुआ था। सैय्यद अली हमदानी साधारणतया 'अमीर कबीर' किंवा 'अली सानी' के नाम से प्रसिद्ध है। पीर हसन वकाये काश्मीरी का उद्धरण करते लिखता है कि शहाबुद्दीन और फिरोजशाह के साथ लडाई के दौरान मे जनाब हजरत अमीर कबीर सैय्यद अली हमदानी काश्मीर मे प्रथम बार आये थे और कुतुबुद्दीन जो नायब सुलतान था उनकी खिदमत मे था (उर्दू - अनुवाद - १५५)। यह उनका प्रथम आगमन था। वे चौदहवीं शताब्दी में मुसलिम जगत के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माने गये है। हमदान मे सोमवार,

२२ अक्तूबर, सन् १३१४ ई० को उनका जन्म हुआ था। उन्होंने नगर के सैय्यदिया अलवी वंश मे जन्म ग्रहण किया था। उनकेपिता सैय्यद शहाबुद्दीन हमदान के सूबेदार थे। अली हमदानी को बाल्यकाल से ही राजकीय एवं प्रशासकीय कार्यों मे रुचि नही थी। वह अपने मामा सूफी सैय्यद अलाउद्दीन के प्रभाव मे अधिक आ गये थे (जरनल एण्टीक्य० : २४० : ५४)। मामा उसके प्रथम शिक्षक थे, उसने उनसे कुरान की शिक्षा प्राप्त की थी। (फतूहाते-कुवरविया : पाण्डु० : १३५ ए० बी०, खुलासतुल मनाकिब पाण्डु० : १० ए०)। कालान्तर मे वह शेख सफरुद्दीन महमूद बिन अब्दुल्ला मज्दकानी के शिष्य बन गये। शेख जी अली हमदानी के चचा के पीर थे (फतूहाते-कुवरविया : पाण्डु० : १३६ ए०, नफातुल-उत्स ' ५१५, रियाजुल आरफीन : १६९, हबिबुस्सियार : ३ : ८७)। अली हमदानी ने शेख रुकनुद्दीन अलाउद्दौला से ६ वर्ष अनन्तर कुतुबुद्दीन निशापुरी से और तत्पश्चात् तकीउद्दीन दुस्ती के चरणो की सेवा कर दो वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की थी। किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् वह पुनः सर्फुद्दीन महमूद के पास चला गया और वही पर उसने अपनी शिक्षा समाप्त की (नफाहतुल उन्स : १५५, हबीबुसियार : ३ ' ८७)। इन्ही पुस्तकों मे उल्लेख मिलता है कि उसने दुनियाँ का तीन बार भ्रमण किया था, उसने मक्का मुअज्जमा की कई बार यात्रा और मुसलिम जगत् के कितने ही भागो का पर्यटन किया था (फतूहाते-कुवरविया : पाण्डु० : १३५ ए० : १३७ ए०)।

सैय्यद अली हमदानी का प्रथम बार काश्मीर मे आगमन सन् १३७२ ई० सितम्बर मास मे हुआ था। उसने लगभग चार मास काश्मीर मे रहकर मक्का मुअज्जमा की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। वहाँ से वह सीधे हमदान चला गया। द्वितीय बार सुलतान कुतुबुद्दीन के समय सन् १३७९ ई० मे काश्मीर आया। उसके साथ ७०० विदेशी मुसलमानो का गोल था। पीर हसन यह घटना हिजरी ७८१ की बताता है (पृष्ठ १७५)। ढाई वर्ष काश्मीर मे रहने के पश्चात् लद्दाख के मार्ग से तुर्किस्तान चला गया। तृतीय एवं अन्तिम बार सन् १३८३ ई० मे काश्मीर मे आया और तुर्किस्तान लौट गया (तारीखे-कबीर : १२-४; जनरल : एण्टीक्य० : २४० : ६१-६२)।

तैमूर लंग और हमदान वंश से मेल नही था। सन् १३८३ ई० मे तैमूर ने ईरान पर आक्रमण करते हुए, ईराक विजय किया। उसने अलवी सैय्यद हमदान को जिनका स्थानीय राजनीति मे महत्त्व था, नष्ट करने का विचार किया। सैय्यद अली ने अपनी तथा अपने साथियो की प्राण-रक्षा हेतु ७०० तुर्क साथियो के साथ हमदान त्याग कर काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। उसे आशा थी कि वहाँ तैमूर के क्रोध से मुक्त रह सकेगा। तैमूर के आक्रमण की सम्भावना भी वहाँ नही थी। सुलतान कुतुबुद्दीन को जब ज्ञात हुआ कि अली हमदानी का आगमन हो रहा है, तो उसने अपने राज्य-कर्मचारियो के साथ आगे बढ़ कर, उसका स्वागत किया। हमदानी ने अलाउद्दीनपुर की सराय मे निवास किया (जर्नल एण्टीक्य० : २४० : ६२)। वहाँ पर हमदानी ने एक सुफ्फा (ऊँचा चबूतरा) बनवाया। वह वही नमाज पढ़ता था। सुलतान कुतुबुद्दीन भी कभी-कभी नमाज मे भाग लेता था (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : २४ ए०) हसन १०९ बी०, ११० ए०)।

हमदानी अन्तिम बार पखली होते कुनार गया। कुनार काफिरिस्तान के समीप था। वहाँ पर वह साघातिक बीमारी से बीमार हुआ। और १९ जनवरी, सन् १३८५ ई० में दिवंगत हो गया। उसका शव खतलान मे दफन किया गया (जर्नल एण्टीक्य २४० : ५४-५५)।

हमदानी के विषय मे कहा जाता है कि उसकी एकशत से अधिक रचनाएँ थी। उसने न्याय, विधि-शास्त्र, दर्शन, राजनीति, विज्ञान, आचार और सूफी मत पर लिखा था। अनेक भाष्य भी लिखे थे। उसकी रचनाओं की तालिका जर्नल एण्टीक्य : २४० : ५६ मे दी गई है। उसने कैफियतनामा तथा

राज्ञी शोकातुरा राजपुत्रौ बालाविति प्रजाः ।
अभूवंश्चकिताः सर्वा विनाथवदथाधिकम् ॥ ५३८ ॥

सिकन्दर बुतशिकन (सन् १३८९–१४१३ ई०)

५३८ रानी शोकान्विता हुई और राजपुत्र बालक हैं—अतः सभी प्रजा अनाथवत् चकित हो गयी।

देव्या वाष्पजले शोकवर्षजाते पृथौ सति ।
परस्परममात्यायानां मात्स्ये न्यायेऽभवद्रुचिः ॥ ५३९ ॥

५३९ वर्षाऋतु के जल के समान देवी के शोकाश्रु के अधिक हो जाने पर, अमात्य परस्पर मत्स्यन्याय में प्रवृत्त हो गये।

फिल्हुल्मुल्क लिखा था। राजनीति शास्त्र पर जाखिरातुल मुल्क लिखा था। इसमें राजनीतिक, प्रशासकीय तथा सुलतान और उनकी प्रजा के कर्तव्य एवं अधिकार पर विचार प्रकट किया गया है।

काश्मीर में व्याप्त शिया परम्परा के अनुसार हमदानी शिया था। नुरुल्लाह् शुस्तरी अपनी रचना मजलीसुल मुमिनीन में उसे शिया सन्तों की तालिका में रखा है। हमदानी ने परसियन में कविता भी लिखी थी। उसने हज़रत अली तथा उनके उत्तराधिकारियों के गुणों की प्रशंसा में भी विस्तार से लिखा है (जर्नल एण्टीक्वय : २४० :)। वह सुन्नी था अथवा शिया—इस विवाद में पड़ना यहाँ अप्रासंगिक होगा। अली हमदानी ने ३७,००० काश्मीरी हिन्दुओं को मुसलिम धर्म में दीक्षित किया था (बुलबुलशाह : ७ : २३)।

पाद-टिप्पणी :

५३८ राज्याभिषेक काल श्रीदत्त कलि ४४९०=लौकिक ४४६५=सन् १३८९ ई० तथा शक १३११; पीर मोहिबुल हसन सन् १३८९ ई०; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया सन् १३९३–१३९४ ई०, आइने अकबरी सन् १३९६ ई०, राज्यकाल २२ वर्ष, ९ मास, ६ दिन, तबकाते अकबरी भी राज्यकाल २२ वर्ष, ९ मास, ६ दिन; पीर हसन हिजरी : ८९६=विक्रमी १४५१ सम्वत् तथा श्रीरष्ठ कौल ने अनुमान किया है कि जोनराज का जन्म सन् १३८९ ई० में जिस वर्ष सिकन्दर राजा हुआ था, हुआ है। यदि दो-तीन वर्ष का अन्तर भी मान लिया जाय तो भी मानना पड़ेगा कि जोनराज सिकन्दर से जैनुल आबदीन तक की ऐतिहासिक घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था। फिरिश्ता ने राज्यकाल २२ वर्ष ९ मास (पृष्ठ ३९१) तथा नारायण कौल ने २५ वर्ष, ६ दिन दिया है (तारीखे नारायण कौल : पाण्डु० : ६४ ए०)।

समसामयिक घटनायें :

सन् १३८९ ई० में लद्दाख का राजा फोन्‌ग्‌-सुगल-डे अपने वंश का १७ वाँ राजा था। तुगलक द्वितीय का देहान्त हुआ और अबुबकर द्वितीय बादशाह बना। ख्वाजा शमशुद्दीन हाफिज शिराज की मृत्यु हो गई। सन् १३९० ई० में अबुबकर हटा दिया गया। मुहम्मद पुनः बादशाह बना। सन् १३९१ ई० में गुजरात में विद्रोह हुआ। जफर खाँ वहाँ का सूबेदार बनाया गया। सन् १३९२ ई० में इटावा में विद्रोह हुआ। दिलावर खाँ मालवा का सूबेदार बना। तैमूर लंग का तृतीय एवं अन्तिम आक्रमण ईरान पर हुआ। सन् १३९३ ई० में इटावा तथा मेवात में विद्रोह हुआ। मल्लिक सरवर ख्वाजा जहाँ ने जौनपुर में शरकी वंश की स्थापना राज्य किया। बङ्गाल के सिकन्दर की मृत्यु हो गयी। गयासुद्दीन आजमशाह उत्तराधिकारी हुआ। शाह हमदानी के मीर मुहम्मद हमदानी का काश्मीर

मे आगमन हुआ। तैमूरलंग ने बगदाद पर अधिकार कर लिया। सन् १३९४ ई० मे महमूद की मृत्यु हो गयी। अलाउद्दीन सिकन्दर उत्तराधिकारी हुआ। सिकन्दर की मृत्यु हुई। नासिरुद्दीन महमूद उत्तराधिकारी हुआ। सारंग खाँ ने पंजाब का विद्रोह दबाया। नासिरुद्दीन नुसरत खा ने अपने को सुल्तान नुसरत खा घोषित किया। इसी वर्ष तैमूर लंग ईराक से लौटा। सन् १३९५ ई० मे तैमूर ने रूस पर आक्रमण किया। बौद्ध भिक्षुओ का सम्मेलन लंका मे हुआ। सिकन्दर बुतशिकन ने खानकाहे मुअल्ला जिसे चिल्ला खान शाह हमदान कहते हैं निर्माण कराया।

सन् १३९५–१३९६ ई० मे पजाब मे सारंग खा ने विद्रोह किया। सन् १३९६ ई० मे मुजफ्फर प्रथम गुजरात मे स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा। बहाउद्दीन सागर ने दक्षिण मे विद्रोह किया। सन् १३९७ ई० मे मेवाड के राणा लाखा की मृत्यु हो गयी। मोकल (सन् १३९७–१४५४ ई०) राणा हुए। तैमूर लंग के पुत्र पीर मुहम्मद ने ऊँच पर अधिकार कर लिया। मुहम्मद द्वितीय की मृत्यु हो गयी। गयासुद्दीन बहमनी मे सुलतान बना। गयासुद्दीन को हटाकर शमशुद्दीन सुलतान बना। शमशुद्दीन को राज्यच्युत कर फिरोज बहमनी सुलतान बन गया। तैमूर लग ने खुरासान का राज्य अपने पुत्र शाहरुख को दिया।

सन् १३९८ ई० मे तैमूर लंग ने दिल्ली विजय किया। उसने दिल्ली मे एक लाख दासो की एक दिन मे हत्या करा दी। दिल्ली मे मल्लू सर्वेसर्वा बन गया। तैमूर लग ने सिन्ध पार कर दिल्ली पर आक्रमण किया। दिल्ली पहुँचकर उसने महमूद तथा मल्लू को पराजित कर दिल्ली लूटी। विजयनगर राज हरिहर द्वितीय ने दक्षिण मे सैनिक अभियान किया। कोलियो ने दिल्ली मे विद्रोह किया उसे फिरोज़ ने दबाया।

सन् १३९९ ई० मे तैमूर लग पीछे हटने लगा। इसी वर्ष उसने समरकन्द की प्रसिद्ध जामा मसजिद की नींव डाली। नुरसतशाह की मृत्यु हो गयी और बयाना, कटेहर तथा इटावा मे विद्रोह दबाया गया। मलिक सरवर की मृत्यु हो गयी। इब्राहीम शाह जौनपुर का सुलतान हुआ। खानदेश मे अहमद की मृत्यु हो गयी। नासिर खां उसका उत्तराधिकारी हुआ। फिरोज बहमनी ने विजयनगर पर आक्रमण कर हरिहर द्वितीय को पराजित किया। उसने अत्यधिक हिन्दू जनता को दास बनाया।

सन् १४०० ई० मे मल्लू ने इटावा अभियान का नेतृत्व किया। फिरोज बहमनी ने फिरोजाबाद राज्य सीमा पर आबाद किया। हरसिंह तोमर ने मुसलमानो से ग्वालियर प्राप्त किया। तैमूर लंग ने एलप्पो और दमिश्क पर अधिकार कर लिया। सन् १४०१ ई० मे महमूद शाह दिल्ली लौट आया। मुजफ्फर खा प्रथम गुजरात, दिलावर खा मालवा, नासिर खा खानदेश, हरिहर द्वितीय तथा फिरोज बहमनी के मध्य सन्धि हुई। तैमूर लग ने बगदाद ले लिया। दिलावर खा ने मालवा मे घूरी वंश की स्थापना की। हेनरी चतुर्थ इङ्गलैण्ड का राजा हुआ। सन् १४०२ ई० मे मुबारक शाह की मृत्यु हो गयी। इब्राहीम शाह जौनपुर का सुलतान बना। महमूद दिल्ली मे स्थित हो गया और मल्लू दिल्ली लौट आया। इसी वर्ष पहली अगस्त को तैमूर लग ने फ्रान्स के राजा चार्ल्स को पत्र लिखा। वह पत्र पेरिस के राष्ट्रीय संग्रहालय मे रक्षित है। तैमूर लग ने तुर्की के सुलतान बायजिद पर विजय प्राप्त की। सन् १४०३ ई० मे मल्लू ने असफल आक्रमण ग्वालियर पर किया। तातार खाँ ने गुजरात में विद्रोह किया। सुलतान बायजिद बन्दी अवस्था मे मर गया।

सन् १४०४ ई० मे मल्लू ने इटावा एवं कन्नौज घेर लिया। सन् १४०५ ई० मे मल्लू की मृत्यु हो गयी। महमूद शाह दिल्ली मे दौलत खां के निमन्त्रण पर वापस आया। गोहर शाद आघा पत्नी शाहरुख तथा पतोहू तैमूर लंग ने मसद की प्रसिद्ध मसजिद का निर्माण किया। चीनी चेंग-हो-वो ने श्रीलंका से भगवान बुद्ध का दन्त धातु उठा लाने का असफल प्रयास किया। हुसंग शाह ने शाहिबाबाद बसाया।

अलं शोकनिवेशेन धैर्यमत्रोचितं यतः ।
रुन्धते मलिनात्मानः क्ष्मामशूरामराजकाम् ॥ ५४० ॥

५४० 'शोकाभिनिवेश त्यागिये, यहाँ धैर्य उचित है, क्योंकि मलिन आत्मा वाले (बुरे लोग) शूर एवं राजारहित पृथ्वी पर अवरोध पैदा करते हैं।'

सन् १४०५ ई० में इब्राहीम शाह ने कन्नौज पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। मालवा में दिलावर खा की मृत्यु हो गयी। होशंगशाह उत्तराधिकारी हुआ। तैमूर लंग की ३६ वर्ष राज्य करने के पश्चात् ७१ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गयी। हरिहर द्वितीय की मृत्यु हुई। बुक्क द्वितीय विजयनगर का राजा हुआ। फिरोज बहमनी ने विजयनगर पर आक्रमण किया। साठ हजार हिन्दुओं को दास बनाया। बुक्क को मजबूर कर उसकी कन्या से विवाह किया।

सन् १४०६ ई० में जेम्स प्रथम स्काटलैण्ड का राजा हुआ। दिल्ली की सल्तनत कुछ मीलों तक ही सीमित रह गयी। सात मुसलिम स्वतन्त्र राज्य भारत में बन गये। सन् १४०७ ई० में जौनपुर के इब्राहीम शाह ने सम्भल तथा बरन पर अधिकार कर लिया। जौनपुर की अटाला मसजिद बनकर तैय्यार हुई। गुजरात के मुजफ्फर शाह ने मालवा पर आक्रमण कर होशंगशाह को पकड लिया। फिरोज शाह बहमनी ने दौलताबाद में वेधशाला का निर्माण कराया। सन् १४०८ ई० में महमूद ने सम्भल तथा बरन इब्राहीम शाह तथा खिज्र खा से हिसार ले लिया। बुक्क द्वितीय की मृत्यु हो गयी। देवराय प्रथम विजयनगर का राजा हुआ। छोन्द राठौर का देहान्त हो गया। रणमल्ल राजा हुआ। सन् १४०९ ई० में खिजर खा ने दिल्ली पर घेरा डाला। सन् १४१० ई० में खिजर खां ने रोहतक ले लिया। बंगाल में आजम की मृत्यु हो गयी और सैफुद्दीन हमजा उत्तराधिकारी हुआ। सन् १४११ ई० में खिज्र खां ने नरनोल पर अधिकार कर लिया। सीरी में महमूद शाह को घेर लिया। फिरोजाबाद पर अधिकार कर लिया। गुजरात में मुहम्मद प्रथम की मृत्यु हो गयी। अहमद प्रथम गुजरात का राजा हुआ। लद्दाख का ग्रगस-बुम-ले राजा हुआ। सन् १४१२ ई० में बंगाल में हमजा की मृत्यु हो गयी। शहाबुद्दीन बायजिद उत्तराधिकारी हुआ। फिरोज बहमनी ने गोंडवाना पर आक्रमण किया और लूटा। सन् १४१३ ई० में महमूद कैथल की मृत्यु हो गयी। तुगलक वंश का क्षय हो गया। दौलत खां लोदी दिल्ली का शासक हो गया। देवराय प्रथम की मृत्यु हो गयी। वीरविजय विजयनगर का राजा हुआ।

(१) बालक : जोनराज सुलतान सिकन्दर का राज्यप्राप्ति-काल तो देता है परन्तु उसका जन्म कब हुआ यह नहीं देता। जोनराज मीर खा, शाही खा आदि के जन्म का उल्लेख करता है परन्तु समय नहीं देता। परसियन इतिहासकारों के अनुसार सिकन्दर की मृत्यु ३२ वर्ष की अवस्था में हुई थी। सन् १३८९ से १४१३ ई० तक उसने शासन किया था। वह ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी सप्तर्षि किंवा लौकिक सम्वत ४४८९ में दिवंगत हुआ था। उसने २४ वर्ष शासन किया था। लौकिक सम्वत ४४६५ में वह राज्य सिंहासन पर बैठा था। इस प्रकार उसने लगभग २४ वर्ष तक शासन किया। उसकी मृत्यु ३२ वर्ष की अवस्था में हुई मान ली जाय तो राज्याभिषेक के समय उसकी आयु केवल ८ वर्ष की ठहरती है। यही कारण है कि जोनराज उसे बालक कहता है। द्रष्टव्यः टिप्पणी : श्लोक : ६१२।

सिकन्दर की रजत मुद्रा प्राप्त हुई है। काश्मीर का यह पहला सुलतान था जिसने चाँदी की मुद्रा अपने नाम से टंकणित करायी थी।

(रोजर्स : क्वाइन्स ऑफ सुलतानस् ऑफ काश्मीर जे० ए० एस० बी० १८७९ संख्या ४ फलक २८२)।

मिर्जा हैदर लिखता है—'कुतुबुद्दीन ४० दिन के अन्दर ही मर गया। उसका पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा। उसने काश्मीर को मुसलिम धर्म में परिवर्तित

इति प्रबोध्य सुभटां देवीमुद्दकसाहकौ।
ज्येष्ठं सेकन्धरं पुत्रं महाराज्येऽभ्यपिश्चताम् ॥ ५४१ ॥

५४१ इस प्रकार उद्दक[1] तथा साहक[2] देवी सुभटा[3] को प्रबोधित करके ज्येष्ठ पुत्र सेकन्धर (सिकन्दर) को महाराज्य पर अभिषिक्त[4] किये।

किया। काश्मीर के सब मन्दिरो को नष्ट कर दिया। (तारीख रशीदी ४२३)। हैदर का लिखना गलत है कि कुतुबुद्दीन केवल ४० दिन राज्य कर मर गया था।

पाद-टिप्पणी :

५४१. कुतुबुद्दीन के दो पुत्र सिकन्दर तथा हैबत खा थे। सिकन्दर ज्येष्ठ था। उसके राजा होने के पश्चात हैबत खा मार डाला गया। दिल्ली सलतनत की वंशावली मे गलत दिखाया गया है कि कुतुबुद्दीन का केवल एक पुत्र सिकन्दर ही था (पृष्ठ ८३७ संस्करण १९६०)।

(१) उद्दक : वजीर आजम कहा गया है। परसियन इतिहासकारो ने इसका अपर नाम रायमागर या माग्रे दिया है। यह मुसलमान था।

(२) साहक : यह नाम शाह है। यह भी मुसलमान था। उद्दक सुभटा के मामा का पुत्र था। उसकी स्त्री का नाम देवी था। वह सिकन्दर की धात्री माँ थी। वह भाण्डागारिक था।

यो मातुलसुतो देव्या भाण्डागारिक उद्दकः।
तत्प्रिया सेवता राजा निन्ये धात्रीपु मुख्यताम् ॥
बo : ६५५।

(३) रानी सुभटा : अपने पुत्र सिकन्दर की अभिभाविका स्वरूप शासन चलाने लगी। काश्मीर मे रानियाँ अपने पुत्रो की अभिभाविका होकर राज्य-शासन करती रही हैं। महाभारतकालीन रानी यशोवती से दिद्दा आदि तक यह परम्परा चली आती रही है (म्युनिख पाण्डुलिपि : ५९ बी० ६० ए०, फिरिस्ता : ५६२)।

परसियन इतिहासकारो ने एक और कहानी दी है। उन्होने राजा की स्त्री का नाम सुरा किंवा सुडा लिखा है (म्युनिख ५९ बी०, ६० ए०, फिरिस्ता ५६२)। किन्तु जोनराज नाम सुभटा देता है। पीर हसन नाम 'नूरा' देता है (पृष्ठ १७६)।

श्रीवजाज सिकन्दर की माँ का नाम बीबी हीरा देते हैं (डॉटर्स ऑफ दि वितस्ता पृ० १४१)। कोई आधार ग्रन्थ इसके प्रमाण मे उद्धृत नही किया है।

काश्मीर मे सुभटा नाम लोकप्रिय था। राजा कलश की रानी का नाम सुभटा था। वह जालन्धर के राजा की कन्या थी। वह महान दानी थी—दक्ष थी। उसे कुटिलगण धोखा नही दे सकते थे। वह सद्गुणी थी। उसने सुभटा मठ का निर्माण कराया था। उसने विद्वानो के लिये भाण्डागार स्थापित किया था। वितस्ता के समीप त्रिभुवन गुरु (महादेव) मन्दिर का निर्माण कराया था। उसका भाई लोहर का क्षितिपति था। सुभटा द्वारा काश्मीर का प्रसिद्ध राजा कलश पुत्ररत्न था। (विक्रमाकदेवचरित . १८ . ४०–५२)। कल्हण के अनुसार उसका अपर नाम सुभटा था। मूल नाम सूर्यमती था। (रा० . १८०–१८६)। जोनराज ने सिकन्दर की माता सुभटा का गुण वर्णन करने मे बिल्हण तथा कल्हण की शैली का अनुकरण किया है। उसे कलश की रानी सुभटा जैसी गुणवती प्रमाणित करने का प्रयास किया है।

(४) अभिषेक : सुलतानो का अभिषेक मुसलिम तथा हिन्दू दोनो रीतियो से होता था। पहले वह मुसलिम रीति के अनुसार अभिषिक्त किया जाता था। तत्पश्चात् सम्भवत. दूसरे दिन हिन्दू पद्धति से किया जाता था।

राज्या मतेनोद्कोऽथ साहपुत्रं महम्मदम् ।
स्वजामातरमप्येष सजानिमदहच्छलात् ॥ ५४२ ॥

५४२ रानी के मत से उद्क[1] ने स्त्री[2] सहित अपने दामाद साहपुत्र मुहम्मद को छल से जला दिया ।

सूक्ष्मानत्ति तिमिर्महान् स्वकुलजान् व्याधादजानन्वधं
स्वामम्बामपि मक्षिका वत मधुग्राहाद् भविष्यद्वधा ।
लक्ष्मीलोभभरेण मोहितधियः कल्पाननल्पान् स्थितिं
जानन्तोऽतिजडा न किं कुचरितं कुर्वन्ति हा हन्त हा ॥ ५४३ ॥

५४३ व्याध द्वारा अपने वध को न जानते हुये, महान तिमी स्वकुलोत्पन्न सूक्ष्म मत्स्यों को खाता है। मधुग्राही द्वारा भविष्य में वध की जाने वाली मक्षिका दुःख है कि अपनी मां को भी खा लेती है। लक्ष्मी के लोभ भार से मोहित बुद्धि वाले जड़ अनन्त कल्पों तक (अपनी) स्थिति जानकर, हा ! दुःख है ! कौन-सा कुचरित नहीं करते ?

श्रीशोभाया महादेव्याः श्लाघ्या लक्ष्मीरभूत्तराम् ।
क्ष्मां हेमलिङ्गैर्द्यां पुण्यलिङ्गैर्या स्वैरमण्डयत् ॥ ५४४ ॥

५४४ महादेवी श्रीशोभा[1] की लक्ष्मी अति श्लाघ्य हुयी, जिसने कि स्वेच्छया हेमलिंगों[2] से पृथ्वी तथा पुण्यलिंगों से स्वर्ग को मण्डित किया ।

पाद-टिप्पणी :

५४२ (१) उद्क : उद्क का दामाद मुहम्मद था। रानी सुभटा के कहने पर क्यों अपने दामाद तथा पुत्री को उद्क ने पद्मनगर जीते-जी जलवा दिया, इसका कोई स्पष्टीकरण जोनराज ने नहीं किया है।

(२) स्त्री : पीर हसन लिखता है कि रानी ने अपनी लड़की और दामाद को मरवा डाला (पृष्ठ १७७) ।

मोहीबुल हसन ने लिखा है—वह लायक और मजबूत करदार की खातून थी। इसने सख्ती के साथ हुकूमत की। सिकन्दर के खिलाफ साजिश करने के जुर्म में इसने अपनी बेटी और दामाद को कत्ल करने मे भी दरेग न की (पृष्ठ : उर्दू ८२–८३) ।

श्री सूफी ने भी यही लिखा है कि रानी ने अपनी कन्या-दामाद के जीवन का अन्त कराकर विप्लव को अङ्कुरित ही नहीं होने दिया (सूफी : १४३) ।

पाद-टिप्पणी :

५४३. श्लोक संख्या ५४३ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ६७० अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(६७०) उसने पृथ्वी को शोभा नामक महादेवी की सपत्नी बना दी और एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह नहीं किया।

श्लोक का पाठ संदिग्ध है। अतः अर्थ अस्पष्ट है। कुतुबुद्दीन ने दो सगी बहनों से विवाह किया था। शाह हमदानी के कहने पर कि विवाह मुसलिम कानून के विरुद्ध है उसने एक को तलाक़ देकर दूसरी से विधिवत् विवाह किया था। सम्भवतः क्षेपककार इसी प्रसङ्ग की ओर संकेत करता है। इससे यह भी ध्वनि निकलती है कि तलाक़ देने पर पुनः उसने विवाह नहीं किया। उसने स्त्री के स्थान पर पृथ्वी को सपत्नी बना ली थी।

पाद-टिप्पणी :

५४४. (१) श्रीशोभा : सिकन्दर की यह

एतद्बन्धुघ्नमेषोऽपि मां हनिष्यति निश्चितम्।
इत्युद्को राजपुत्रं विषेणाथ व्यपादयत्॥ ५४५॥

५४५ इसके बन्धुघाती मुझे, यह निश्चय ही मार डालेगा, ऐसा सोचकर उद्क[1] ने राजपुत्र[2] को विष द्वारा हत्या करा दी।

निजयैव कृपाण्याहं स्वं छिन्द्यां कण्ठमेतया।
यद्यहं त्वां निरुन्ध्यां वा हन्यां वेत्यथ संविदा॥ ५४६॥

५४६ 'मैं इस अपनी कृपाणी से अपना कण्ठच्छेद कर लूँ यदि तुम्हारा विरोध या हत्या करूँ।'

विश्वास्य साह्कं वीरमुद्कोऽथ व्यपादयत्।
आसन्नविनिपातानां द्रोहा दूता हि दुर्धियाम्॥ ५४७॥

५४७ इस संविद द्वारा (इस प्रकार) विश्वस्त करके वीर उद्कने साह्क[1] को मार डाला। द्रोह दुर्बुद्धियों के आसन्नवर्ती विनाश के दूत होते हैं।

प्रथम हिन्दू रानी थी। इसके भ्राता का नाम खुज्जराज था। सिकन्दर ने ओहिन्द की राजकन्या मेरा से जब विवाह किया तो शोभा को जो पटरानी का स्थान प्राप्त था वह मेरा को मिल गया। सिकन्दर ने उसके पुत्रों को निकाल दिया था। केवल पेरुज (फिरोज) को रख लिया था। शोभा के पुत्रो को राज्य नही मिला। क्योकि उन्हे सिकन्दर ने कृत्रिम माना था। उसकी माता जन्मजात मुसलिम नही थी जिस प्रकार मेरा थी। कालान्तर मे शोभा के भ्राता खुज्जराज की हत्या उद्क ने करा दी।

शोभा से सिकन्दर को दो पुत्र महमूद और फिरोज तथा दो कन्यायें हुई थी। उनका विवाह म्युनिख पाण्डुलिपि (पृष्ठ ६३ ए०) के अनुसार ओहिन्द और सिन्ध के शासकों के साथ हुआ था।

परसियन इतिहासकारो ने अनुमान लगाया है कि शोभादेवी सम्भवतः जम्मू के राजा की कन्या थी और मेरा के विवाह के पश्चात् उसने शोभा से विवाह किया था। जोनराज इसका समर्थन नहीं करता। जोनराज सिकन्दरकालीन घटनाओ का स्वयं प्रत्यक्षदर्शी था। वह सिकन्दर सुलतान के विवाह एवं रानियों के सम्बन्ध मे मिथ्या लिखकर अपने ऊपर सुलतानो का क्रोध आमन्त्रित करने का प्रयास न करता।

महादेवी का अर्थ होता है पटरानी। प्रथम राजमहिषी। महादेवी केवल एक ही रानी हो सकती थी—वह थी शोभा। मेरा के आने पर निःसन्देह उसका वह स्थान छिन गया था।

(२) हेमलिंग : जोनराज के वर्णन से प्रतीत होता है कि शोभा हिन्दू रानी थी। सिकन्दर प्रारम्भिक काल मे कट्टर मुसलमान नही था। यदि होता तो अपनी पत्नी द्वारा मुसलिम धर्म विरोधी कार्य करने की कैसे अनुमति देता। शोभा के विवाह के कुछ समय पश्चात् मूर्ति एवं लिङ्ग नष्ट करने पर सिकन्दर सन्नद्ध हो गया था।

पाद-टिप्पणी :

५४५. (१) उद्क : परसियन इतिहासकारो ने उद्क को रायमाग्रे लिखा है।

(२) राजपुत्र : नाम हैबत है। यह राजा का कनिष्ठ सहोदर भ्राता था। वंशावली से स्पष्ट होता है कि सिकन्दर का यही एकमात्र भ्राता था। पीर हसन भी यही लिखता है कि हैबत को विष देकर हत्या कर दी गयी थी (पृष्ठ १७७)।

पाद-टिप्पणी :

५४७. (१) शाह्क : यह भी एक मन्त्री था। उद्क तथा शाह्क दोनों ही रानी के विश्वास पात्र थे

यथा भ्रातुस्तथा स्वस्य वधं सम्भावयन् नृपः।
प्रौढीभूतस्ततो वृद्धिं स्वं पक्षं किञ्चिदानयत् ॥ ५४८ ॥

५४८ भाई के समान अपने वध की सम्भावना[1] करके राजा कुछ प्रौढ़ (दृढ़) हो गया और उसके बाद अपना पक्ष कुछ बढ़ा लिया।

भौट्टाञ्जित्वाऽऽगतो दृप्तोऽसहमानोऽन्यवैभवम्।
श्रीशोभाभ्रातरं खुञ्ज्याराजमुद्दोऽवधीत् ततः ॥ ५४९ ॥

५४९ अन्य का वैभव न सहने वाला दृप्त उद्द भौट्टो[1] को जीतकर आया और श्री शोभा के भ्राता खुञ्ज्या राज का वध कर दिया।

आदिशन् सेवकं स्वं स द्वारोत्पिञ्जाय निम्मकम्।
राज्ञोऽपि प्रणयं त्यक्त्वा होलडामगमन्मदात् ॥ ५५० ॥

५५० वह द्वार पर षड्यन्त्र करने के लिये, अपने सेवक निम्मक[1] को आदेश देकर तथा राजा का भी प्रणय त्याग कर, होलडा[2] चला आया।

दोनों ने सिकन्दर को राजा बनाकर कार्य संचालन का भार उठाया था। विश्वास देकर मार डालना छल कहा जाता है। साहक शब्द परसियन शाह का संस्कृत रूप है। नामों के अन्त में 'क' लगा देना काश्मीरी शैली है। साहक मुसलमान था।

पाद-टिप्पणी :

५४८ (१) वधसम्भावना : सुभाषितावली में एक नामहीन राजा का हत्या से बचने का उल्लेख किया गया है। यह राजा सिकन्दर ही है। क्योंकि तैमूर के समय वही काश्मीर का राजा था। सुभाषितावली से जोनराज के उक्त वर्णन का समर्थन होता है।

सिकन्दर होश सम्भालने पर उद्दक से सतर्क रहने लगा। उसने निश्चय किया कि उद्दक को हटाकर उसकी शक्ति क्षीण की जाय। उसने उसे लद्दाख इस दृष्टि से भेजा कि वह वहाँ हत हो जायगा।

पाद टिप्पणी :

५४९ (1) भौट्ट : काश्मीरी भौट्ट का उच्चारण 'बुट्ट' करते हैं। तबकाते अकबरी ने दूसरी तरह से भौट्ट-विजय का वर्णन किया है। रवीनदारी वजीर को जो उसका प्रभुत्वशाली वजीर था तिब्बत की ओर भेजा। उसने उस विदेश को जीता। जब उसके पास सेना एकत्र हो गयी तो उसने विद्रोह कर दिया और फनीर के समीप सुल्तान से युद्ध किया, किन्तु पराजित हो गया। अन्त में बन्दी बना लिया गया। बन्दीगृह में उसकी मृत्यु हो गयी, (उ० तै० : भा० : १ : ५१४)।

राय मादरी (माग्रे) सिकन्दर के मन्त्री ने छोटे तिब्बत को पूर्णतया अधीन कर लिया था (ब्रिग० : ४ : ४६२)। उल्लेख मिलता है कि—'बालतिस्तानियों को इसी समय मुसलिम धर्म में घोर नृशंसता पूर्वक दीक्षित कर दिया गया। लद्दाख पर आक्रमण नहीं किया गया, (ए स्टडी ऑन दि क्रोनोलोजी ऑफ लद्दाख : ११)।

परसियन लेखकों ने छोटा तिब्बत बालतिस्तान तथा बड़ा तिब्बत लद्दाख को लिखा है। उन्हें मध्यवर्ती तिब्बत का ज्ञान नहीं था।

हुदूद-अल-आलम ने सर्वप्रथम बालतिस्तान तथा लद्दाख का वर्णन सन् ९८२–९८३ में किया है। (वही १०५)।

काश्मीर में तिब्बती व्याकरण को भौट्ट व्याकरण तथा भाषा को भौट्ट भाषा कहते हैं। लद्दाखी भाषा को दादरी कहते हैं। इस बात से भी प्रमाणित होता है कि बड़ा तिब्बत लद्दाख छोटा बालतिस्तान तथा समीपवर्ती अंचल था।

पाद-टिप्पणी :

५५०. उक्त श्लोक संख्या ५५० के पश्चात् बम्बई

तच्छ्रुत्वा लध्धराजाद्या भूपतेरनुयायिनः ।
योद्धुं बद्धोद्यमाः पद्मपुरधन्वनि धन्वनः ॥ ५५१ ॥

५५१ यह सुनकर कि लध्धराज[1] आदि भूपति के धनुषधारी अनुयायी पद्मपुर[2] धन्वा[3] (सूखी भूमि) पर युद्ध करने के लिये उद्यमशील हैं।

प्रत्यासन्नविनाशानां प्रायो मतिमतामपि ।
पिशाचादिभ्रमो नूनं स्वच्छायास्वपि जायते ॥ ५५२ ॥

५५२ प्रायः प्रत्यासन्न विनाश वाले मतिमानों को अपनी छाया में भी पिशाचादि का भ्रम हो जाता है।

संस्करण मे श्लोक सख्या ६७७ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(६७७) राजमाता द्वारा बोधित होकर उद्धत उद्क क्रुद्ध होकर युद्ध हेतु होलडा गया।

(१) निम्मक=इस नाम का पुनः उल्लेख नही मिलता। परिचय अज्ञात है।

(२) होलडा : यह ऊलर परगना है। इसके पूर्व—कतिका, भवच्छेद, खोल, उत्तर—पर्वत तथा पश्चिम मे बितस्ता नदी है। काश्मीर उपत्यका मे वितस्ता के उत्तर-पूर्व मे दिछनपुर तथा बीही परगना के मध्य स्थित है। इसका प्रशासकीय केन्द्र त्राल है। कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि होलडा मडव राज्य मे था। मडवराज्य वर्तमान मराज है (रा० ८ : ३११५, ७ : १२२८)। काश्मीर उपत्यका का पूर्वीय भाग है। इसके स्थान का पता कल्हण (रा० : ८ : १४३०) के वर्णन से और स्पष्ट हो जाता है। राजा जयसिंह के दो अधिकारी होलडा के विद्रोही डामरो द्वारा घेर लिये गये थे। यह स्थान अवन्तिस्वामी का मन्दिर था। अवन्तीपुर ऊलर परगना मे है (रा० ८ : ७३३, २८०८, ३११५)। होलडा के डामर सूरबी अर्थात् ध्रुव के डामरो के साथ दिखाये गये हैं। ध्रुव बीही परगना के समीप है।

पाद टिप्पणी :

५५१. (१) लध्धराज : पाठभेद 'लद्द०' भी मिलता है। यदि लध्धराज के स्थान पर 'लद्दराज' पढा जाय तो यह वही लद्दराजा प्रमाणित होता है जो सिकन्दर बुतशिकन का मन्त्री था (श्लोक० : ५८५)। अलीशाह के समय सूहभट्ट द्वारा कम्पनेश बनाया गया था (श्लोक० ६४९)। कालान्तर मे हसभट्ट द्वारा बन्दी बनाया गया। मुक्त हुआ। अनन्तर हस-भट्ट द्वारा मार डाला गया। लध्ध शब्द का पुनः उल्लेख नही मिलता। परसियन इतिहासकारो का मत है कि लद्दराज पर सामने से आक्रमण करने के लिये सिकन्दर ने उद्क को भेजा और स्वयं पीछे से आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया (मोहिबु० : ५९)।

(२) पद्मपुरधन्वन् : धन्वन् का सामान्य अर्थ सूखी जमीन होता है। बनिहाल-श्रीनगर राजपथ पर पद्मपुर अर्थात् पामपुर है। पामपुर क्षेत्र सूखा है। इन खेतो मे केसर की खेती होती है। केसर व्यापार का केन्द्र है, मिट्टी भूरी है। सडक के तट-वर्ती सूखे टीलो के मूल मे जलधारा की निशानी मिलती है। उनसे निष्कर्ष सर्वदा निकाला गया है कि सतीसर काश्मीर कभी जलपूर्ण था। पामपुर के टीलो तक जल लहराता था। भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से पामपुर के करेवा अथवा उदर महत्वपूर्ण हैं। यह उस काल का स्मरण दिलाता है, जिस समय काश्मीर उपत्यका जलपूर्ण थी। पामपुर के टीले जलद्वीपो की तरह लग रहे थे। राजा चिप्पट जयापीड (सन् ८०७—८३४ ई०) के चाचा पद्म ने यहाँ मन्दिर निर्माण कराया था। पद्मस्वामी विष्णु का मन्दिर था। यह मन्दिर मीर मुहम्मद हमदानी की जियारत मे परिणत कर दिया गया है। यहाँ की अन्य क्रिया-

उद्दसैन्यैस्ततो योद्धुं बल्लामठमुपागतैः ।
पारेवितस्तं महिषीष्वश्वभ्रान्त्या पलाय्यत ॥ ५५३ ॥

५५३ युद्ध करने के लिये बल्लामठ[1] गये, उद्द सैनिक वितस्ता पार भैंसों मे अश्व की भ्रान्ति हो जाने से पलायित हो गये ।

रतो मे भी अलकृत शिलाखण्ड लगे हैं। वे सब पूर्वकालीन खण्डित मन्दिरो के ध्वसावशेष हैं ।

जोनराज के वर्णन से पामपुर को पद्मपुरधन्वत् समझने मे गलती नही की जा सकती । जोनराज सेना पथ का अनुकरण करता वितस्तात्र अथवा वितस्ता-पुर पहुचा देता है । यह ग्राम वेरीनाग के समीप बनिहाल मूल मे है । वितस्ता पुर से श्रीनगर आते समय पामपुर मार्ग पर पडता है । यह वर्णन पामपुर को पद्मपुरधन्वत् मानने के लिये बाध्य करता है । श्रीनगर से ८ मील दूर दक्षिण दिशा बनिहाल-श्रीनगर सडक पर, वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर स्थित है । इस अंचल मे केसर के अतिरिक्त बादाम, बब्बूगोशा, सेब आदि के वृक्ष खूब मिलते हैं । पामपुर मे केसर खूब होती है । जहाँगीर ने इसका खूब उल्लेख किया है (तुजुके जहाँगीरी : २ : १७७, १७८, १ : ९२, ९३) ।

आइने अकबरी मे अबुलफजल ने लिखा है कि पामपुर के १२ कोस के क्षेत्र मे केसर की खेती होती है । वही यह भी लिखा है कि परसपुर मे एक कोस क्षेत्रफल मे भी खेती होती है ।

पाद-टिप्पणी :

५५३ (१) बल्लामठ : दिद्दामठ वितस्ता दक्षिणतटीय दिदमर मुहल्ला है । उससे ऊपर बलाढ्य मठ था । यह मठ छठवें पुल के समीप बलन्दीमर स्थान है । स्तीन का अनुमान है यही प्राचीन बलाढ्यमठ स्थान था । मठ बलाढ्यचन्द्र ने निर्माण कराया था (जोन० : ८१–८२) । बलाढ्य मठ का उल्लेख शुक ने भी किया है (१ ३३) । श्रीवर ने भी इसका उल्लेख किया है (जैन० २ : १४०, ३ : १९३) । जोनराज के वर्णन से स्पष्ट होता है । यह स्थान भी वितस्ता तट के समीप था । सम्भव है इसी बलाढ्यमठ को जोनराज ने बल्लामठ की सज्ञा दी है । श्लोक ८२ मे केवल इतना वर्णन मिलता है कि बलाढ्यचन्द्र ने नगरा-त मे मठ निर्माण कराया था । मठ का नाम नही देता । कालान्तर मे इसका नाम बलाढ्यचन्द्र के निर्माण के कारण बलाढ्यमठ पड गया । श्रीवर तथा शुक दोनो शुद्ध नाम बलाढ्य मठ देते हैं । *बलाढ्य तथा बल्लामठ दोनो को वितस्ता* समीपस्थ जोनराज लिखता है । दोनो ही नगरान्त मे थे । निश्चय तो नही, सम्भावना यही है कि बलाढ्य मठ को ही बल्लामठ जोनराज ने लिख दिया है । *परन्तु यह केवल तर्क एव सम्भावना मात्र है ।* अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है ।

मठ दो प्रकार के होते थे । सार्वजनिक और व्यक्तिगत । दोनो ही प्रकार के मठ देवोत्तर होते थे । मठ पूर्वकालीन बौद्धशैली पर बने और चलते थे । मठो का उत्तराधिकार मौरूसी, पंचायती तथा प्रतिनिधित्व अर्थात् हकीमी होता था । मौरूसी मे उत्तराधिकारी की नियुक्ति पूर्व मठाधिकारी अपनी मृत्युकाल अथवा इसके पूर्व करता था । पचायती मठ के सदस्यो द्वारा चुनाव कर किसी एव व्यक्ति को मठाधीश बना देते थे । *प्रतिनिधि को मठदाता अथवा* कर्ता किवा उसके उत्तराधिकारी प्रबन्धक को नियुक्त करते थे । पुजारी, अर्चक अथवा सेवाइत मठ बनाने वाला नियुक्त करता था । मठ और सत्र वैधानिक किवा न्यायिक व्यक्ति माने जाते थे । उत्तर भारत मे वैष्णव मठ को स्थल कहते हैं ।

काश्मीर की मठ परम्परा शङ्कराचार्य के पूर्व अपनी शैली की अलग व्यक्तित्व रखती थी । शेष भारत म शङ्कराचार्य के पश्चात् मठो की वर्तमान परम्परा चली है । शङ्कराचार्य के मठ दशनामियो मे विभक्त हैं । वे तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती एव पुरी में हैं । शिष्य-परम्परा होती है । शङ्कराचार्य ने बदरीनाथ, द्वारका,

आवितस्तापुरं रात्रौ तमनुद्रुत्य भूपतिः।
न्यावर्तताथ तं बद्ध्वा नगरोत्पिप्लवशङ्कया ॥ ५५४ ॥

५५४ भूपति रात्रि मे वितस्तापुर[1] तक उसका पीछा करके तथा उसे बांधकर, नगर में उपद्रव की आशका से लौट आया।

शृङ्गेरी तथा पुरी चारो पीठो मे मठ स्थापित किये थे। उत्तर बदरीनाथ मे जोशी मठ है। उसकी शिष्य परम्परा मे गिरि, पर्वत एव सागर हैं। आचार्य सुरेश्वर किंवा स्वरूपाचार्य हैं। पश्चिम द्वारिका मे शारदामठ है। वहाँ की परम्परा तीर्थ तथा आश्रम है। आचार्य पद्मपाद हैं। दक्षिण मे शृङ्गेरीमठ की परम्परा सरस्वती, भारती एव पुरी है। आचार्य त्रोटकाचार्य है। पूर्व—पुरी में गोवर्धन मठ है। आचार्य हस्तामलक हैं। उसकी परम्परा वन एव अरण्य है। प्रत्येक सन्यासी का दस नामो में से कोई एक अलग किया पद साथ लगा रहता है। शृंगेरीमठ का तीर्थस्थान रामेश्वर, वेद, यजुर्वेद तथा महावाक्य 'अह ब्रह्मास्मि' और गोत्र भूरिवा है। ब्रह्मचारी चैतन्य कहे जाते हैं। इसका क्षेत्र द्रविड भाषा-भाषी है। जोशीमठ का तीर्थस्थान बदरीनाथ, वेद, अथर्ववेद, महावाक्य *'अयमात्मा ब्रह्म'* और गोत्र आनन्दवर है। इसके ब्रह्मचारी आनन्द कहे जाते है। इसका क्षेत्र—काश्मीर, कुरु, कम्बोज, पांचाल एव तिब्बत हैं। गोवर्धनमठ का तीर्थस्थान पुरी है। वेद-ऋग्वेद है। महावाक्य 'प्रज्ञान ब्रह्म' और गोत्र योगवर है। ब्रह्मचारी प्रकाश तथा क्षेत्र—अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, मगध, उत्कल एव बर्बर हैं। शारदामठ का तीर्थ स्थान द्वारका है। महावाक्य 'तत्त्वमसि' तथा गोत्र, कीटवर है। इसके ब्रह्मचारी स्वरूप तथा क्षेत्र—सिन्धु सौवीर, सौराष्ट्र एव महाराष्ट्र है। सभी प्रकार के मठ देवोत्तर सकल्प एव उत्सर्ग द्वारा बनाये जाते हैं। उनकी सम्पत्ति पुन वापस नहीं ली जा सकती।

विभिन्न सम्प्रदायो एव मतो के मठ अलग-अलग बने है। काश्मीर म भी यह पद्धति प्रचलित थी। मठो म साधु सन्यासी, विद्यार्थी, यति, योगी, अवधूत आदि निवास करते थे। मठ तथा मन्दिर दोनो देवोत्तर होते थे। किसी न किसी देवप्रतिमा का मठ म स्थान होता था। मठ का कार्य पुण्यकर्म के अतिरिक्त किसी सम्प्रदाय एव मतविशेष का प्रचार, प्रसार तथा उन्हें जनता के सम्मुख रखना था। आजकल दशनामियो मे वेदान्त विषय मुख्य होता है। वैष्णव किंवा वैरागियो के मठ म विष्णु-पूजा, विष्णु सम्बन्धी कथा, कीर्तन और शैवमत मे शिव-सम्बन्धी स्तुति पूजा-पाठ तथा कीर्तन होता था। काश्मीर म तन्त्रो के उदय के साथ मठो मे भी तन्त्रो एव शक्ति पूजा पद्धति आदि का प्रवेश हो गया था।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक ५५४ के पश्चात् बम्बई सस्करण म श्लोक सख्या ६८२-६८५ अधिक हैं। उनका भावार्थ है—

(६८२) पटहो से आकाश को तर्जित करते हुए, वह राजा पुर मे तथा हर्ष ने प्रजाओ के हृदय म प्रवेश किया।

(६८३) पाल पशुओ को उस समय इस प्रकार अद्भुत मद ज्वर हो गया था, जिससे उनके शिर चिरकाल तक स्तब्ध हो गये थे।

(६८४) किसी समय तेजस्वी राजसिंह ने मद-घूर्णित उन पाल कुजरो के साथ नगर म प्रवेश किया।

(६८५) वहाँ पर महीपति ने पालो के उत्त-मांगो को शरीर से असि द्वारा उसी प्रकार काट दिया, जिस प्रकार कुम्भकार सूत्र से सरावो (कसोरा) को।

५५४ (१) वितस्तापुर व्ययवकुर वर्तमान नाम से इसकी पहचान की गयी है। वनिहाल पर्वत-मूल म वरीनाग के वायव्य कोण म लगभग एक मील पर विथवत्रो ग्राम है। आजकल विथवुटर नाम से प्रसिद्ध है। ग्राम के समीप एक सरोवर है। उसमे एक बड़ा जलस्रोत है। यही जलस्रोत वितस्ता नदी

तं वध्यमपि कारायां कारुण्यात्तु नृपोऽक्षिपत्।
उद्दकस्तु स विश्वस्तद्रोहपापमलीमसः ॥ ५५५ ॥

५५५ वध-योग्य भी उसे राजा ने करुणा कर, कारागार में डाल दिया किन्तु विश्वस्त के साथ द्रोह के पाप से मलीमस वह उद्दक—

शङ्कमानो वधं भूपात् करुणाकोमलादपि।
निजयैव कृपाण्याथ स्वगलच्छेदमाचरत् ॥ ५५६ ॥

५५६—अति करुण कोमल (राजा) से भी वध की शङ्का करके, निज कृपाणी से ही स्वगलोच्छेद[1] कर डाला।

पत्रिराज इव व्यालान् सृगालानिव केसरी।
पालान् धरणिपालः स कालान्तिकमथानयत् ॥ ५५७ ॥

५५७ जिस प्रकार गरुड़ व्यालों को एवं केसरी शृगालों को काल के निकट कर देता है, उसी प्रकार उस धरणिपाल ने पालों[1] को काल समीप कर दिया।

का उद्गम माना जाता है। हिन्दू इसे तीर्थ मानते हैं। वितस्ता माहात्म्य में इसको 'वितस्ता वर्तिया' नाम दिया गया है।

नीलनाग अथवा वेरीनाग की यात्रा-काल में इस तीर्थ किंवा स्थान की यात्रा की जा सकती है। प्राचीन काल मे इसका महत्त्व पूर्वीय पंजाब से आवागमन पथ पर होने के कारण था। भारतीय स्वाधीनता के पूर्व तथा भारतीय विभाजन के पूर्व सरल मार्ग रावलपिण्डी-बारहमूला से था। वही अत्यधिक चलता पथ था। पाकिस्तान बनने के पश्चात् बारहमूला-रावलपिण्डी मार्ग बन्द हो गया है। उस समय से आज तक भारत-काश्मीर को जोड़ने वाला एकमात्र बनिहाल मुख्य मार्ग रह गया है। बनिहाल में जो सुरंग बनी थी वह ऊँचाई पर थी और शीतकाल में बन्द हो जाती थी। सन् १९६३ ई० मे एक दूसरी दुहरी सुरंग उसी के नीचे पर्वत में बनायी गयी है। वह वर्ष पर्यन्त खुली रहती है। तुषारपात के कारण बन्द नहीं होती। काश्मीर आगन्तुकों को बनिहाल से प्रथम दर्शन वितस्तात्र ग्राम तथा नीलकुण्ड का यहीं से मिलता है। वहाँ प्राचीन ध्वंसावशेष नहीं मिलते। केवल प्राचीन निर्माणों के आकार मात्र भूमि पर मिलते हैं। गड़े और अनगड़े पत्थर पड़े हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी में इसका उल्लेख बहुत किया है (रा० : ८ : १०७३, १ : १०२, १०३; १७०; ७ : ३५४; ८ : १०७४)।

पाद-टिप्पणी :

५५६. (१) गलोच्छेद : परसियन इतिहासकार उसके मृत्यु के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रकट करते हैं। श्री मोहिबुल हसन का मत है कि हंसभट्ट ने उसका वध करा दिया। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में जोनराज के दत्त का अनुवाद पृष्ठ ६९ तथा म्युनिख : ६६ बी० उपस्थित किया है। सूफी का मत है कि कारागार में मर गया। पीर हसन का मत है कि उसने स्वयं जहर खाकर प्राण दे दिया (पृष्ठ : १७७)।

पाद-टिपणी :

५५७. (१) पाल : परसियन इतिहासकारों ने पाल को जम्मू का राजा पालदेव माना है।—'सिकन्दर ने सूहभट्ट और लहराज के जेर कमान एक फौज जम्मू के राजा पालदेव को जेर करने के लिये भेजी जिसने खिराज अदा नहीं किया था। राजा ने मुकाबिला करना बेकार समझा और अतावतगुजारी के लिये तैयार हो गया और अपनी बेटी को सिकन्दर के पास तुहफा में भेजा; लेकिन जल्द ही इसने दोबारह अपनी मुनाफ अफ़ग़ानों का एलान

राज्यं शौर्यं वयस्तेजो निर्नियन्त्रणता तथा।
तदा तथाऽभवद्राज्ञः पञ्चाग्नितपसः फलम् ॥ ५५८ ॥

५५८ उस समय राज्य शौर्य, वय, तेज तथा निर्नियन्त्रणता (प्रतिबन्ध रहित) उसी प्रकार थे, जैसे कि राजा के पंचाग्नि तप के फल हों।

हर्तुं राज्ञां ततं दर्पतिमिरं नृविकर्तनः।
यात्रामसूत्रयच्चित्रां गोत्रभिद्भयदां ततः ॥ ५५९ ॥

५५९ वह नृपति राजाओं का व्याप्त दर्प तिमिर के हरण हेतु इन्द्र को भी भयप्रद, विचित्र यात्रा[१] प्रारम्भ की।

कर दिया और सूहभट्ट और जसरत खोखर को एक लश्कर देकर राजा की सरकोबी के लिए रवाना किया। इन्होंने राजा को शिकस्त दी और जम्मू को तबाह व बरबाद कर दिया (मोहिबु० : उर्दू : ८३)।'

जम्मू का नाम जोनराज नहीं लेता। उसने सर्वदा मद्र शब्द का प्रयोग किया है। यदि पाल जम्मू का राजा होता तो निःसन्देह वह मद्रपति नाम लिखता। जैसा कि उसने अलीशाह के सन्दर्भ में किया है।

पाद-टिप्पणी :

५५८. (१) पञ्चाग्नि : शास्त्रोक्त अग्नियाँ पाँच प्रकार की होती है (१) अन्वाहार्य, (२) गार्हपत्य, (३) आहवनीय, (४) आवसथ्य तथा (५) सभ्य। छांदोग्योपनिषद् के अनुसार वे सूर्य, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष तथा योषित् है (द्रष्टव्य : छान्दोग्योपनिषद् : चतुर्थ प्रपाठक : ११, १२, १३)। अग्निविद्या का उल्लेख चतुर्थ प्रपाठक के १४ वें खण्ड में किया गया है। यह एक प्रकार का तप है। तप करने वाला व्यक्ति अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर आकाश के नीचे धूप में बैठता है। मैंने काशी में इस प्रकार तप करने वाले अनेक साधुओं को देखा है। वे गोहरी के छोटे अहरों को अपने चारों ओर चार दिशा में वृत्ताकार लगाकर जलाते हैं। पाचवीं अग्नि सूर्य है। उसके मध्य में तप करने वाला बैठ जाता है। उसका मुख सूर्य की ओर होता है। कुछ साधु एक पैर से खड़े होकर, कुछ दोनों हाथ ऊपर उठाकर खड़े हुए और कुछ पद्मासन लगाकर अग्नि के मध्य बैठते है। पंचाग्नि एक विद्या है। द्रष्टव्य : टिप्पणी : श्लोक ७८१।

काश्मीर में इसका अभ्यास नहीं किया जाता, लोग प्रायः भूल गये हैं।

पाद-टिप्पणी :

५५९. श्लोक संख्या ५५९ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ६९१ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(६९१) उसके सेवकों के शेष के सैकड़ों फण सदृश छत्रों से उठायी गयी धूलि को उसने भूमण्डल में अम्बरारोही बना दिया।

५५९. (१) यात्रा : सिकन्दर ने अपने राज्य काल में कोई देश विजय नहीं किया था। उसका ऐतिहासिक प्रमाण भी नहीं मिलता। काश्मीर के बाहर तैमूरलंग के आतंक से उत्तरी भारत आतंकित था। तथापि जोनराज एक चतुर राजकवि के समान सिकन्दर की विजययात्रा का उल्लेख कर, उसे विजयी राजा प्रमाणित करने का प्रयास किया है। किन्तु किस देश, क्षेत्र अथवा राजा के विरुद्ध उसने भयप्रद विजययात्रा की इसका कोई उल्लेख नहीं करता। अन्य विजयी राजाओं के समकक्ष एवं पंक्ति में रखने के उत्साह में उसने अनावश्यक, तथ्यहीन, निर्मूल घटना का अप्रसंगवश उल्लेख कर दिया है।

विश्वं रञ्जयता तस्य प्रतापेन प्रथीयसा।
राजस्त्रीनखलक्ष्मश्रीः पाण्डिमानमवापिता ॥ ५६० ॥

५६० इन्द्र को रंजित करता, राजा का विस्तृत प्रताप, राजस्त्रियों के नख चिह्न की शोभा को पाण्डिम बना दिया।

तदैव हीनाभरणामपालकतया युताम्।
म्लेच्छराजो व्यधाड्ढिल्लीं विधवामिव लुण्ठयन्॥ ५६१ ॥

५६१ उसी समय म्लेच्छराज[1] ने ढिल्ली (दिल्ली) को लूटकर विधवा सदृश आभरणहीन तथा रक्षकरहित कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

५६१. श्लोक संख्या ५६१ पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ६९३-६९४ अधिक मुद्रित है। उनका भावार्थ है—

(६९३) उसी समय कीर्तिशाली उत्तराधिपति मेर तिमिर स्वयं तीनों सागरों को भी विजित करने के लिये प्रस्थान किया।

(६९४) उस समय उत्तराधिपति ने आभरण एवं पालकरहित दिल्ली को विधवा सदृश बना दिया।

५६१ (१) म्लेच्छराज : तैमूरलंग के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। तैमूरलग का जन्म समरकन्द के दक्षिण शहरे-सब्ज कसबा में हुआ था। वह बरलास जाति का तुर्क था। एक युद्ध में तीर लगने के कारण वह लँगड़ा हो गया था। यद्यपि उसने एक गरीब घर में जन्म लिया था तथापि निरन्तर उन्नति करता गया। उसकी इच्छा गाजी बनने की हुई। वह हिन्दुस्तान को लूटकर धन एकत्र करना चाहता था। वह कट्टर मुसलमान था। तैमूर या तिमूरलंग ने समरकन्द से हिन्दुस्तान के खिलाफ जिहाद के उद्देश्य से विशाल सेना के साथ मार्च सन् १३९८ ई० में प्रस्थान किया।

उसने कहा था—'पैगम्बर के सत्य धर्म का उपदेश भारत को देना है। मन्दिरों को, मूर्तियों को नष्ट कर मूर्ति-पूजा तथा बहुदेववाद को समाप्त करेंगे। इस प्रकार हम धर्म तथा ईश्वर का समर्थक बनकर गाजी तथा मुजाहिद का पद प्राप्त करेंगे (धर्मनिर० : ११७)।' 'जिहाद मुसलिम धार्मिक संस्कार एवं क्रिया का एक अंग है; यह हर मुसलमान के लिए फर्ज है। हदीस कहती है—'जिहाद धर्म का शिखर है (वही : ९७)।' जिहाद करना राज्य का कार्य था। प्रत्येक मुसलमान, बादशाह, खलीफा का फर्ज था। मुसलमानों के पाँच फर्जों में यह भी एक फर्ज है। व्यष्टिवादी फर्ज अमान के साथ ही साथ समष्टिवादी फर्ज अल-किफाया था। व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि सामूहिक रूप से करना फर्ज था' (वही ९९)।

शैबानी ने किताब अलसयार-अल-कबीर में जिहाद चार प्रकार का बताया है—'अल्लाह ने पैगम्बर को चार प्रकार की तलवारें दी थी। पहली तलवार बहुदेववादियों से लड़ने के लिए, इससे पैगम्बर मुहम्मद साहब स्वयं लड़े, दूसरी तलवार स्वधर्म-त्यागियों (मुर्तदा-अलहिदा) से लड़ने के लिए, इस तलवार से प्रथम खलीफा हजरत अबूबक्र ने युद्ध किया, तीसरी तलवार किताबिया लोगों से युद्ध करने के लिए दी तथा चौथी तलवार अलबागी अर्थात् विद्रोहियों से लड़ने के लिए दी : इससे चौथे खलीफा हजरत अली ने युद्ध किया (वही १००)।'

तत्कालीन मुसलिम जगत् की ये विचारधारायें थीं, जिनसे तैमूरलंग प्रभावित था। उसने भारत में तजन्य उद्देश्य से आक्रमण किया। उसके प्रभाव तथा उसकी विचारधारा से काश्मीर के सिकन्दर बुतशिकन का प्रभावित होना स्वाभाविक था। तैमूर दिल्ली से ईरान, ईराक, अनातोलिया, अगोरा आदि तक का विशाल भूखण्ड रौंद डाला था और अपने समय का महान् शक्तिशाली सेनानी था। उसका सामना करने की

शक्ति तत्कालीन किसी भी बादशाह किंवा राजा में नही थी।

तैमूरलंग २० सितम्बर को सिन्ध के तट पर पहुँचा। अपना शिविर उसी स्थान पर लगाया। जहाँ जलालुद्दीन ख्वारज्म शाह ने चंगेज खां से भाग कर सिन्ध नदी के तट पर शिविर लगाया था।

शाही आदेश दिया गया कि तत्काल सिन्ध पर पुल बनाया जाय। इसी समय तैमूरलंग की सेवा में सिकन्दर बुतशिकन का दूत पहुँचा। वह दासता एवं निष्ठा का सन्देश लाया था। बादशाह ने उसे सम्मानित कर लौटा दिया। उसे आदेश दिया गया कि इस्कन्दर शाह अपनी सेना लेकर दिपालपुर नगर में विजयी तैमूर की सेना के शिविर में उपस्थित हो (जफरनामा १४६-१४ : तुगलककालीन भारत : २ : २४२ : अलीगढ़, मल्फूजात तिमूरी २८३ ए० बी०; म्युनिख. पाण्डु० ६० बी०, ६१ बी०)।

झेलम तथा चनाव नदी पार कर तुलम्बा पहुँचा। वहाँ से भटनेर आया। दुलीचन्द ने तैमूर का सामना किया। लगभग दस हजार हिन्दुओ का शिरश्छेद तैमूर ने यहाँ कराया। सुरसति नगर पर उसने अधिकार किया। यहाँ से आगे बढने पर २ हजार जाटो का वध किया। उनके स्त्री एव बच्चो को बन्दी बनाकर सम्पत्ति तथा पशुओ को लूट लिया गया। तैमूर लग के पास और सैनिक सहायता हेतु तुर्किस्तान से आ गये। वह दिल्ली के निकट पहुँचा। सुलतान महमूद ने वजीर मल्लू के साथ तैमूर का सामना किया परन्तु पराजित होकर भाग गया। तैमूर के पास इस समय एक लाख हिन्दू बन्दी थे। वे सब मार डाले गये। विश्व मे इतनी क्रूर सामूहिक हत्या कभी नही की गई थी। १७ दिसम्बर को दिल्ली के बाहर युद्ध हुआ, उसमे सुलतान महमूद पराजित हो गया।

तैमूरलंग की विशाल सेना देखकर भारतीय राजा, सुलतान, नबाव, सूबेदार सभी भयभीत हो गये। सिकन्दर ने भी काश्मीर की रक्षा के लिये तैमूर के पास अपना दूत भेजा। तैमूर ने राजदूत को फरमान देकर बिदा दिया। उसे दिपालपुर में आकर मिलने के लिये कहा (सरफुद्दीन यजदी : जफरनामा : ४६-४७)। आदेश मिलने पर सिकन्दर बुतशिकन ने श्रीनगर से प्रस्थान किया। उसे बताया गया कि तैमूर के मन्त्रियो ने उससे तीस हजार घोडे और एक लाख दरस्त सोना मागा है। प्रत्येक दरसत कम से कम ढाई मसकाल वजनी होना चाहिये। सिकन्दर के पास उस समय इतना सामान नहीं था। अतएव उसे एकत्रित करने के लिए श्रीनगर लौट गया (जफरनामा : १६४, मलफूजात तिमूरी : ३१९ ए०)।

तैमूर को परसियन इतिहासकारो ने शाहे किरान लिखा है। किरान का अभिप्राय है। जब दो नक्षत्र किंवा सितारे एक साथ मिलते हैं, उस समय तैमूर का जन्म हुआ था। यह समय अत्यन्त शुभ माना जाता है।

जोनराज तैमूर लंग का नाम नही देता। उसका वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त है। तैमूर के सिन्ध तट पर शिविर लगाने तथा सिकन्दर के दूत भेजने का उल्लेख नही करता। जोनराज का वर्णन तैमूर के सदर्भ में समरकन्द से दिल्ली पहुँचने तथा उसे लूटकर लौटने के समय से होता है।

नारायण कौल आजिज भी लगभग यही बातें लिखते है—'तीस हजार घोडे, सौ हजार 'दरस्त' (सोने के) जिनका वजन ढाई मन मिशकल के बराबर होता है काश्मीर के देश से दे''''''यह बात तैमूर को पसन्द नही आयी और कहा कि काश्मीर के सामर्थ्य से अधिक अनुमान लगाया गया है।' (पाण्डु० ६७ ए० तथा ६७ बी०)।

पीर हसन उक्त बातो का समर्थन करता लिखता है—'मौलाना नुरुद्दीन जो सुलतान सिकन्दर का सफीर था तैमूर लग की खिदमत मे हाजिर हुआ और सुलतान के सामने तक़रीर की कि अमीर तैमूर के दीवान आली के उमरा कहते है कि सिकन्दर शाह वाली ३० हजार घोडे और एक लाख दरस्त जिसका हर एक दो निसफ मिशकाल वजनी हो अपनी विलायत से सरअंजाम दे, (उर्दू : अनुवाद : पृष्ठ १६५)।

ततः प्रत्याव्रजन् म्लेच्छराजः कश्मीरभूपतेः ।
शङ्कमानो गजेन्द्रौ द्वावुपायनमचीकरत् ॥ ५६२ ॥

५६२ वहाँ से लौटते समय काश्मीर भूपति से सशंकित म्लेच्छराज[1] ने (उसे) दो गजेन्द्र उपायन[2] (भेंट) में दिये।

पाद-टिप्पणी :

५६२. (१) म्लेच्छराज : तैमूर लंग।

(२) गजेन्द्र उपायन : तैमूर लंग ने जोनराज के अनुसार दो हाथी सिकन्दर बुतशिकन को भेंट किया था।

तैमूर लंग ने १७ दिसम्बर १३९८ को दिल्ली के सुलतान महमूद तुगलक को पराजित कर दिल्ली पहुँच कर पाँच दिन दिल्ली के तीनों नगरों को लूटा। जनवरी ९ को मेरठ आक्रमण किया। कागडा १६ जनवरी सन् १३९९ में पहुँचा और विजय किया। उत्तरी-पश्चिमी पंजाबी राज्यों को लूटता-पाटता वह अपने देश की ओर प्रस्थान किया।

परसियन इतिहासकारों के तवारीखे काश्मीर, बहारिस्तान शाही, हैदर मल्लिक आदि में हाथी भेंट करने का उल्लेख किया गया है। उनके ज्ञानस्रोत जोनराज ही है। पीर हसन लिखता है—'इस मुकाम पर काश्मीर के बादशाह सुलतान सिकन्दर की अर्जदास्त व सिल सिला अनामत व फरमाबरदारी व कबूलियत खुनखुतब व सिका अमीर तैमूर की खिदमत में पेश हुई जो मकबूल हुई। बादशाह सुलतान सिकन्दर के तर्ज अमल से निहायत खुश हुआ और अपने गुलाम बोकया और फोलाद के जरिये एक हाथी और एक शाही तमगा बतौर तुहफा सुलतान के पास भेजकर अपनी खुशनूदी और दोस्ती का इजहार किया (पृष्ठ १८२)।'

दिल्ली से लौटते समय तैमूर के अमीरजादा रुस्तम फौलाद तथा जैनुद्दीन जो दिल्ली से दूत बनाकर सिकन्दर के पास जवाब तलब करने के लिये भेजे गये थे। वे इस्कन्दर के दूतों सहित शाही शिविर में उपस्थित हुए। उन्होंने निवेदन किया कि सिकन्दर दासता प्रदर्शित करते हुए स्वागतार्थ आ रहा था। जिवहान नामक ग्राम तक पहुँच गया था। एक मत है कि इन्हीं दूतों के साथ तैमूर ने हाथी भेजा था (बहारिस्तान शाही, पाण्डु : २४-२५ हैदर मल्लिक पाण्डु : ४४ जफरनामा : १६४)।

परसियन इतिहासकार लिखते हैं कि सुलतान सिकन्दर से मिलकर तैमूर के तीनों दूत सिकन्दर के प्रतिनिधियों के साथ तैमूर लग से मिलने के लिए लौटे। काश्मीरी प्रतिनिधि मण्डल का नेता मौलाना नुरुद्दीन था। वह शाही शिविर में उपस्थित हुआ। उसे आदेश दिया गया कि ३० हजार घोड़े तथा ढाई मिसकाल तौल में एक लाख सिक्के काश्मीर से प्राप्त किया जाय (जफरनामा : १६४–१६५, तुगलककालीन भारत : २ : २३८, २३९ : अलीगढ)।

तैमूर दिल्ली विजय कर लौट रहा था। जम्मू के समीप मंगलवार २४ फरवरी सन् १३९९ ई० को सिकन्दर का सन्देश नुरुद्दीन ने तैमूर को दिया। उसमें तैमूर से समय पर न मिलने का कारण दिया गया था। तैमूर ने २७ दिन पश्चात् सिन्ध नदी तट पर मिलने का आदेश दिया। तैमूर का शिविर ७ मार्च, सन् १३९९ ई० को जिवहान काश्मीर की सीमा पर लगा। वहाँ से प्रस्थान कर ११ मार्च को सिन्ध तट पर पहुँचा (जफरनामा : २ : १७७, १८१, १८२, तुगलककालीन भारत : २७१)। नारायण कौल भी मौजा जिवहान पहुँचने का वर्णन करते हैं (पाण्डु० : ६६ बी०)।

सिकन्दर बारहमूला तक पहुँचा था कि उसे मालूम हुआ कि तैमूर सिन्ध पार कर समरकन्द की तरफ रवाना हो गया है। वह श्रीनगर लौट आया (म्युनिख : पाण्डु० : ६१ बी०)।

हैदर मल्लिक लिखता है कि अमीर तैमूर हिन्दुस्तान आया। उसने सुलतान सिकन्दर के साथ राहे-सलामत रखी। उसने एक जंजीर फील भेजा।

तैमूर ने हिन्दुस्तान फतह किया तो सुलतान के साथ ताल्लुकात कायम किया। सिकन्दर ने भी तैमूर को तुहफा भेजा जिसका हिसाब नहीं हो सकता (पाण्डु० : ४४)।

बहारिस्तान शाही में भी उल्लेख मिलता है कि तैमूर ने फतह किया तो दो हाथी सिकन्दर सुलतान को भेजा (पाण्डु० : २५)। नारायण कौल आजिज भी लिखते हैं कि एक जंजीर फील तैमूर ने भेजा। सिकन्दर के बयान की यह आखिरी लाइन इसकी पुष्टि की है। (पाण्डु० : ६६ बी० :)

वाकयाते काश्मीरी में भी उल्लेख मिलता है कि तैमूर लग ने हाथी सिकन्दर के पास भेजा था (पाण्डु० :४५ बी०)। हैदर मल्लिक तथा नारायण कौल ने जंजीर शब्द का भी प्रयोग हाथी के साथ किया है परन्तु वाकयाते-काश्मीरी में उसका उल्लेख नहीं मिलता।

सन् १३९८ ई० में तैमूर ने अपने पौत्र रुस्तम, फौलाद तथा जैनुद्दीन को दिल्ली से श्रीनगर भेजा। तैमूर सिकन्दर से निष्ठा तथा सहयोग चाहता था। वह भारत में जिहाद की दृष्टि से आया था। उसने हिन्दू राजा आदि को पराजित किया। साथ ही मुसलिम राजाओं में से जिन्होंने उसका विरोध किया उन्हें भी अछूता नहीं छोड़ा। तैमूर काश्मीर से अप्रसन्न नहीं था। काश्मीर में पूर्णतया मुसलिम शासन था। काश्मीर में मुसलिम शासन का विरोध स्थानीय काश्मीरी तथा बाहरी शक्तियों ने नहीं किया था। उसका सुलतान सैय्यदों के प्रभाव में था। काश्मीर में मुसलिम शासक हिन्दू बहुल राज्य में अर्धशताब्दी से अधिक शान्तिपूर्वक राज्य कायम रखने में सफल हुए थे। उन्हें किसी प्रकार के आन्तरिक विद्रोह का सामना नहीं करना पड़ा था। जब कि भारत में उथल-पुथल तथा विद्रोह हो रहा था। काश्मीर पर आक्रमण कर तैमूर काश्मीर के सुलतान के सम्मुख नवीन समस्या नहीं उपस्थित करना चाहता था। बाहरी मुसलिम शक्ति किंवा प्रभाव के कारण काश्मीर में न तो मुसलिम शासन स्थापित हुआ था और न मुसलिम धर्म का प्रचार जिहाद के नाम पर किया गया था।

काश्मीर पर कभी कोई विदेशी शक्ति आक्रमण कर विजय प्राप्त नहीं कर सकी थी। काश्मीर का मार्ग अत्यन्त दुरूह एवं विकट था। तैमूर किसी प्रकार खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। तैमूर का भारत पर आक्रमण करने का उद्देश्य जिहाद और लूट-पाटकर सम्पत्ति एकत्रित करना था। तैमूर पंजाब सीमावर्ती हिन्दू राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट तथा उनकी सम्पत्ति हस्तगत करना चाहता था। इसके लिये सिकन्दर की सहायता अपेक्षित थी। यदि सिकन्दर उत्तर और तैमूर दक्षिण से आक्रमण करता तो पूर्व-उत्तर के हिन्दू राजा दोनों ओर के दबाव के कारण पिस उठते। उन्हें कहीं भागने का अवसर भी न मिलता (महफूजान तिमूरी २७६, ५८२, ५९१; जफरनामा : १६४, १८०; तारीख रशीदी ४:३२)।

तबकाते अकबरी में भी इसी से मिलती जुलती बातें लिखी गयी हैं—'जब सिकन्दर की निष्ठा तथा दासता का समाचार साहिब किरान को प्राप्त हुआ तो उसके प्रति कृपादृष्टि प्रदर्शित करते हुए जरदोजी की खिलअत तथा जड़ाऊ जीन सहित घोड़ा भेजा और कहलाया कि—'जब शाही पताकाएँ देहली से पंजाब की ओर पहुँचे तो वह उसकी सेवा में उपस्थित हो।'

सुलतान सिकन्दर के आदेशानुसार जब साहिब किरान सिवालिक पर्वत से पंजाब की ओर रवाना हुआ तो अत्यधिक पेशकश लेकर उसकी सेवा में प्रस्थान किया। मार्ग में उसे ज्ञात हुआ कि साहिब किरान के कुछ अमीर कह रहे थे कि *'सुलतान सिकन्दर* एक हजार घोड़े पेशकश रूप में लावे।' सुलतान इस समाचार से बड़ा परीशान हुआ और उसने प्रार्थना-पत्र भेजा कि उचित पेशकश के एकत्रित न होने के कारण कुछ दिन ठहरना पड़ रहा था। जब साहिब किरान को इस बात का पता लगा तो उन लोगों पर जिन्होंने सुलतान सिकन्दर से एक हजार घोड़े पेशकश के रूप में मांगे थे बड़ा रुष्ट हुआ और सुलतान सिकन्दर के दूतों को सम्मानित कर कहा—'वजीरों ने अनुचित बातें कही हैं। सुलतान को चाहिए कि वह बिना किसी संकोच के सेवा में उपस्थित हो।' जब सुलतान

ने दूतो से यह समाचार सुना तो प्रसन्नतापूर्वक तैमूर की सेवा मे काश्मीर से चला। जब उसने बारहमूला पार किया तो मालूम हुआ कि साहिब किरान सिन्ध नदी पार कर समरकन्द की ओर चला गया। उसने दूतो को अत्यधिक पेशकश देकर साहिब किरान की सेवा मे भेजा और काश्मीर लौट गया (उ० हैं० : भा० : २ : ५१५)।'

पीर हसन लिखता है—'वजीराबाद के पश्चात् तैमूर ऊँच पहुँचा। वहाँ के हाकिम ने सफेद तोता तैमूर को भेंट किया (उर्दू : अनु० १६५)।'

जफरनामा से पता चलता है कि 'शुक्रवार, ७ मार्च, सन् १३९९ ई० को शिकार के उपरान्त ८ कोस यात्रा करके जिवहान नामक स्थान पर जो काश्मीर की सीमा पर है, शाही शिविर लगाया था। मार्च ८ को जिवहान ग्राम से प्रस्थान और ४ कोस की यात्रा कर दन्दाना नदी के तट पर शाही शिविर लगाया गया। शनिवार को विजयी पताकाओ ने उस पुल से जो शाही आदेशानुसार तैयार हुआ था नदी पार किया (तुगलककालीन भारत : २ : २७१, अलीगढ़ विश्वविद्यालय)।'

जिवहान स्थान एकमत से भीमवर कहा गया है। भीमवर का पुराना नाम कनिंघम के अनुसार चिभन है (कनिंघम एंशिएण्ट ज्योग्रैफी : १ : १३४)। इम्पीरियल गजेटियर (१५ : १००) मे उल्लेख मिलता है कि चिभन चिब लोगो का देश है। वह मनावर तवी नदी से झेलम नदी तक विस्तृत है। तैमूर के आक्रमण के समय पर्शियन लेखको को यह चिभन नाम से ज्ञात था। इस क्षेत्र मे छोटे-छोटे मुसलिम राज्य थे (ग्रेपेल : पंजाब हिल स्टेट्स० १ : ४९, स्टडीस इन इण्डियन मुसलिम हिस्ट्री : ३५८; जफरनामा : ५२१)। वह श्रीनगर से १४८ मील, गुजरात जिला से ३० मील तथा साल्टरेंज और काश्मीर को राजौरी द्वारा जुड़ता है (वेट्स गजेटियर : १४८, इम्पू : जम्मू : ९०, ५२५)।

मुहम्मद आजम, बीरबल कचरू तथा पीर हसन कचरू तीन लेखक ऐसे हैं, जो वर्णन करते हैं कि जैनुल आबदीन जब राजकुमार था उस समय तैमूर लंग के समक्ष अपने पिता की ओर से भेंट लेकर गया था। तैमूर ने उसे बन्दी बनाकर समरकन्द भेज दिया था। मुहम्मद आजम ने अपनी तारीख १८ वी शताब्दी तथा बीरबल कचरू ने १९ वी शताब्दी मे लिखा है। आइने अकबरी के अनुवाद मे भी जरेट ने यही गलती की है (ज० ए० एस० बी० : १८८० : (१) : १९)। डॉ० सूफी लिखते है—'जैनुल आबदीन ने जो अनुभव समरकन्द मे अपने ८ वर्ष ठहरने के समय किया था वही उसका मार्गदर्शन करता था।' जैनुल आबदीन के समरकन्द जाने और कैद होने की बात गलत ठहरती है। जैनुल आबदीन सन् १४७० ई० मे ६९ वर्ष की आयु मे मरा था। तैमूर ने सन् १३९८–९९ ई० मे भारत पर आक्रमण किया रहा। जैनुल आबदीन का प्रथम राज्यारोहण काल सन् १४१९ ई० तथा दूसरा सन् १४२० ई० निश्चित है। द्वितीय राज्यारोहण के समय वह १९ वर्ष का युवक था। यदि ८ वर्ष वह समरकन्द मे रहा और मुक्तिकाल अधिक से अधिक सन् १४१९ ई० मान लें तो उसकी अवस्था ११ वर्ष की रही होगी।

आइने अकबरी मे अत्यन्त संक्षेप मे उल्लेख किया गया है—'उसके राज्यकाल मे तिमूर ने भारत पर आक्रमण किया तथा उसे दो हाथी भेजा (अनुवाद कर्नल० एच० एस० जरेट भाग : १ : पृष्ठ ३८७)।

वाकयाते काश्मीर मे शाही खाँ अर्थात् जैनुल आबदीन को तैमूर के साथ समरकन्द जाने की बात लिखी गयी है—सिकन्दर ने बड़े लड़के शाही खाँ के हाथ अमीर तैमूर के पास भेंट भेजा। उससे तैमूर प्रसन्न हो गया।—शाही खाँ अमीर तैमूर के मुलाजिमत मे लिया गया।—उसको तैमूर समरकन्द ले गया। उसे शहरबन्द कर दिया। तैमूर की मृत्यु के पश्चात वह मुक्त हुआ (पाण्डु० : ४५ बी० : ४६ए०)। वाकयाते काश्मीर मे अलीशाह के घटना प्रसंग मे पुनः वर्णन किया गया है कि शाही खाँ सौगात लेकर तैमूर के पास गया था। अमीर तैमूर उसे पकड़कर समरकन्द ले गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुछ दिन

हस्तिद्वयगलद्दानराजिव्याजात्स्वयं व्यधात् ॥
देशसीमाविभागं स कश्मीराधिपतेरिव ॥ ५६३ ॥

५६३ दो हाथियों[1] के गिरते दानराजि (मदजल पंक्ति) व्याज से मानों उसने स्वयं कश्मीराधिपति के देश का सीमा-विभाजन कर दिया ।

हस्तिद्वये समारूढे हिमाद्रिशिखरश्रियि ।
विन्ध्यवृद्धिभ्रमाद् विन्ध्यनियन्ता कोपमागमत् ॥ ५६४ ॥

५६४ हिमाद्रि शिखर की शोभा वाले (उन्नत) दोनों हाथियों के समारूढ़ होने पर काश्मीर की ओर बढ़ते विन्ध्याचल के वृद्धि के भ्रम से अगस्त्य क्रुद्ध हो गये ।

रह कर लौट आया (पाण्डु० : ५२ बी० १४१; माइक्रो फिल्म मे पृष्ठ सख्या ठीक नही है । उसमे १० पृष्ठो का भेद पड जाता है । अतएव दोनो सख्याएँ दी गयी है)।

पीर हसन जिसने पुराने परसियन इतिहासकारो की रचनाओ के आधार पर अपनी पुस्तक लिखी है, लिखता है—'अपने पुत्र शाही खाँ के हाथ सिकन्दर ने मुनासिब तुहफे अमीर तैमूर की खिदमत मे भेज दिये और खुद (सिकन्दर) इक़्बालमन्दी और खैरियत के साथ वापस लौट आया । शाही खाँ समरकन्द मे पहुँच कर अरसा सात साल तक बादशाह की खिदमत से न लौट सका (१६६)—शाह किरान (तैमूर) के इन्तकाल के बाद हिजरी ८०८ मे शाही खाँ समरकन्द से वापस लौटकर बाप की कदमबोसी से मुशर्रफ हुआ (अनुवाद : उर्दू : पृष्ठ १६७)।' अर्थात् वह सन् १३९९ ई० मार्च में तैमूर के साथ समरकन्द गया होगा, जब कि वह पैदा ही नही हुआ था । क्योकि तैमूर सन् १३९९ ई० मार्च मे भारत छोड चुका था । उसकी मृत्यु सन् १४०५ ई० मे हो गयी थी ।

पीर हसन तथा अन्य परसियन इतिहासकारो का वर्णन भ्रामक है । तैमूर ने १९ मार्च सन् १४९९ मे हिन्दुस्तान से समरकन्द के लिये प्रस्थान किया । समरकन्द पहुँच कर उसने सन् १४०० ई० मे अनातोलिया पर आक्रमण किया । सन १४०२ ई० मे ओटोमन तुर्कों को अंगोरा में पराजित किया । सन् १५०५ ई० मे जिस समय वह आक्रमण की योजना बना रहा था उसकी मृत्यु हो गयी ।

यदि शाही खाँ मार्च सन् १३९९ ई० मे तैमूर के साथ समरकन्द गया और वहा ७ वर्ष तक रहा तो उसे सन् १४०६ ई० मे काश्मीर लौटना पडा होगा । वर्णन मिलता है कि तैमूर के मरने पर शाही खाँ लौटा था । इस प्रकार भी शाही खाँ के तैमूर के साथ जाने की बात तर्क-तुला पर ठीक नही उतरती । जोनराज जो स्वयं शाही खाँ अर्थात् जैतुल आबदीन का राजकवि था और तत्कालीन घटनाओ का प्रत्यक्ष-दर्शी था उसकी ही बात सत्य मानना उचित होगा ।

पाद-टिप्पणी :

५६३ (१) हाथी : तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—'जिस समय साहिब किरान अमीर तैमूर हिन्दुस्तान की विजय हेतु पहुँचा तो उसने सुलतान की सेवा म एक हाथी भेजा ।' सुलतान ने इस बात पर गर्व करते हुए एक प्रार्थना पत्र अपनी निष्ठा तथा दासता प्रदर्शित करते हुए साहिब किरान की सेवा मे भेजा और लिखा कि जहाँ कहीं भी आदेश हो आपकी सेवा उपस्थित हो जाय ।' (उ० तै० भा० : २ : ५१४) फिरिश्ता (२ : ३४०) बहारिस्तान शाही (पाण्डु० २७ ए०) से भी इस बात का समर्थन मिलता है । परन्तु इन तीनो का स्रोत जोनराज का परसियन अनुवाद ही सम्भाव्य है ।

नागौ कोपमगातां तौ वितस्तातरणक्षणे ।
प्रतिबिम्बं निजं दृष्ट्वा प्रतिहस्तिभ्रमं गतौ ॥ ५६५ ॥

५६५ वितस्ता-तरण के समय अपना प्रतिबिम्ब देखकर विरोधी गज के भ्रम से दोनों हाथी कोपान्वित हो गये ।

राजस्त्रीस्तनसौन्दर्यचौर्यकारिकटोत्कटौ ।
तौ गजौ भूमिपालेन वारीकारां प्रवेशितौ ॥ ५६६ ॥

५६६ राजस्त्रियों के स्तन सौन्दर्य के चोर, उत्कट गण्डस्थल युक्त दोनों गजों को राजा ने वारि कारा (हथसार) में बन्दी कर दिया ।

वदान्येन नरेन्द्रेण सुवर्णपरिपूरिताः ।
नैवार्थिनः परं देशो निजोऽपि प्रत्यपीयत ॥ ५६७ ॥

५६७ वदान्य (उदार) नरेन्द्र ने केवल अर्थियों को सुवर्ण से पूरित नहीं किया, बल्कि अपना देश स्वर्ण से भर दिया ।

यथाकामार्पणप्रीतयाचकस्तुतिलज्जया ।
विनमन् सङ्कुचन् हस्तस्तस्य दानक्षणेऽभवत् ॥ ५६८ ॥

५६८ दान के समय उसका हाथ इच्छानुसार अर्पण करने से प्रसन्न याचकों की स्तुति लज्जा से नमित एवं संकुचित होता था ।

पाद-टिप्पणी :

५६५ (१) वितस्ता : जफरनामा म लिखा है—'वीरनाक से निकलती है । उसपर ३० पुल बन्धे हैं । पुल लकडी पत्थर और नाव के हैं । केवल श्रीनगर मे ७ पुल है । कास्मीर से बाहर पहुचने पर प्रत्येक नगर के नाम पर वितस्ता का नाम पडता गया है, जैसे दनदन जम्द आदि ।

वितस्ता को वयत, वेवट, वेहट, वेहूत, झेलम आदि कहते हैं । जलालपुर के समीप जहाँ पोरस तथा सिकन्दर का युद्ध हुआ था, वहाँ उसे वेतुस्ता तथा यूनानी इतिहासकारो ने 'हाइदेसपेस' तथा टॉल्मी ने 'विदयिस' एव तैमूर के इतिहासकार सरुद्दीन ने इसका नाम दनदान दिया है ।

बारहमूला के समीप वितस्ता ४२० फिट चौडी है । वेरी नाम से निकल कर १३० मिल बारहमूला पहुँचती है । बारहमूला से ऊर्ध्वभाग मे ७० मिल तक इसमे नावें चलती है । मुजफ्फराबाद से २ कोस नीचे अर्थात् उद्गम से २०५ मिल दूर वितस्ता मे कृष्णगगा मिलती है । उसे हसर भी कहते है । बालतिस्तान से निकलती है । उद्गम से २५५ मिल बहने पर पजाब के मैदान मे अपनी यात्रा आरम्भ करती है । ओहिन्द से आगे वह नाव परिवहन योग्य हो जाती है । बारहमूला से ओहिन्द तक नाव परिवहन योग्य नही रहती । इसमे काश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रो से देवदार तथा चीड के लट्ठे बहा दिये जाते हैं । उन्हे यथा स्थान जल से निकाल लिया जाता है । झेलम शहर मे इसका पाट ४५० फिट चौडा हो जाता है । अटक के ऊपर झेलम का पाट सिन्धु नदी से भी अधिक हो जाता है । यह चनाव मे ४९० मिल चलकर त्रिम्मू स्थान म मिलती है । यह मुलतान से २०० मिल उत्तर है । वितस्ता किंवा झेलम पर मुख्य शहर श्रीनगर, बारहमूला, झेलम, पिण्डदादन खाँ, मियानी तथा शाहपुर है ।

दानं वर्णयितुं तस्य शक्यते नैव केनचित्।
पाणिरूपमधः पद्मं यत्रोपरि जलं सदा ॥ ५६९ ॥

५६९ उसके दान का वर्णन कोई नहीं कर सकता, पाणि रूप कमल नीचे रहता जिस पर सदैव जल[1] रहता।

सदा दानाम्बुसेकाद् यन्न प्रारोहद्यवः करे।
खड्गत्सरुविमर्दानां मन्ये तत्र निमित्तताम् ॥ ५७० ॥

५७० सदैव दानाम्बु के सेक (सिंचन) से भी जो उसके हाथ में यव[1] अंकुरित नहीं हुआ, मानों उसमे खड्ग के मुठिये का निमर्दन ही निमित्त था।

अनेके यवना दानप्रसिद्धं तमथाश्रयन्।
विहायापरभूपालान् पुष्पाणीवालयो द्विपम् ॥ ५७१ ॥

५७१ अनेक भूपालों को छोडकर अनेक यवन[1] दानप्रसिद्ध उसका आश्रय इस प्रकार ले लिये, जैसे भ्रमर पुष्पों को त्यागकर द्विप का।

पाद टिप्पणी

५६९ (१) जल सकल्प करते समय हाथ मे जल लिया जाता है। जोनराज दान की महत्ता वर्णन करते लिखता है। हाथ का जल कभी सूखता नही था। क्योकि सर्वदा दान के सकल्प का जल से उसके हाथ आर्द्र रहते थे।

पाद टिप्पणी

५७० इलोक सख्या ५७० के पश्चात् बम्बई सस्करण म श्लोक सख्या ७०५–७०७ अधिक हैं। उनका भावार्थ है—

(७०५) निर्दोष सौभाग्य से श्लाघ्य, लक्ष्मी न त्यक्त होने पर भी बार बार श्री सेकन्दर भूपति का आश्रय ग्रहण किया।

(७०६) दानोद्यम म तत्पर स्फुरित मुख काति वाले राजा के समकक्ष कमला (लक्ष्मी) दान भय से ही मानो पद्म से भी पलायित हो गई।

(७०७) आजीवन निवास करती नित्य श्री (वञ्चला) उसके लिए उत्तम थी और वह अन्य जन्मा म भी वाग्देवी सदश प्रत्ता (प्रदत्ता) होने वाली थी।

५७० (१) यव उँगलियो म यव का चिह्न बना रहता है। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यह धन, धान्य एव प्रजा का सूचक है। राजा का चिह्न चतुष्कोण तथा शङ्ख होना चाहिये किन्तु पदलालित्य के लिए यव शब्द का प्रयोग किया गया है।

पाद टिप्पणी

५७१ (१) यवन मूलत यूनानियो के लिए यह शब्द प्रयुक्त किया गया था। आइयानियन ग्रीक के लिए इस शब्द का प्रयोग प्रारम्भ म किया गया था। तत्पश्चात् यूनानी रक्त के लोगा के लिए और अन्त में किसी भी विदेशी के लिए भारत म प्रयोग किया जाने लगा। तैमूर के हिन्दुस्तान स चले जाने के पश्चात् काश्मीर का द्वार मुसलिम मुल्लाओ प्रचारको आदि के लिए खुल गया। काश्मीर की जनता को मुसलमान बनाने तथा बुतपरस्ती समाप्त करने की धार्मिक भावना के कारण मुसलमानो का समूह बाहर स बडी सख्या म प्रवेश करने लगा। सुल्तान उन्हे रोक नहा सका। उन्हे प्रश्रय दिया। अन्तर काश्मीर म जो लोग मुसलमान हुए थे वे कट्टर एव उन्मादी नहीं थ। मन्दिर नहा टूटे थ। हिन्दुओ पर जिजिया नहा लगाया गया था। मन्दिरादि सुरक्षित थ। विदेशी मुसलमानो के प्रवेश के कारण काश्मीर के नव मुसलिमो की विचारधारा बदली।

सुल्तान उल्मा और सूफियो का आदर करता था। बातें सुनता था। प्रश्रय देता था। उसके समय ईरान और दरिस्तान से प्रचुर सख्या म उल्मा और

सूफियों का प्रवेश काश्मीर में हुआ। सुलतान ने उन्हें जागीर दिया। जैसे पुराने हिन्दू राजा गण अग्रहार देते थे। इन जागीरों का उत्तराधिकार उनके वंशजों को प्राप्त होने लगा। सुलतान के राज्य में जो लोग काश्मीर में आये, उनमें अत्यधिक प्रसिद्ध मुसलिम विद्वान थे। उनमें सैय्यद हुसन शीराजी थे। काजी थे। सिकन्दर ने उसे काश्मीर को काजी पद पर रखा। दूसरे आने वालों में सैय्यद अहमद इस्फहानी थे। वे अच्छे लेखक थे। सैय्यद महम्मद ख्वारजीम शायर का भी इसी समय आगमन हुआ। सैय्यद जलालुद्दीन बुखारा के फकीर किंवा दरवेश थे। बाबा हाजी उधम और उनके मुरीद और बाबा हुसन मुंतकी बलख से आये (बहारिस्तान शाही : पृष्ठ ३४ बी०)।

काश्मीर को मुसलिम राज्य बनाने की सुनिश्चित योजना तत्कालीन मुसलिम जगत् की थी। लिखा जा चुका है कि मुहम्मद तुगलक लोगों को काश्मीर जाकर इसलाम प्रचार करने के लिये प्रेरित करता था। यही अवस्था काश्मीर के सीमावर्ती देशों की थी जो इसलाम धर्म स्वीकार कर चुके थे।

तैमूर द्वारा उत्पाटित या निष्काशित सरदार तथा मुल्लाओं का तिब्बत तथा लद्दाख में प्रवेश कठिन था। वहाँ की भौगोलिक स्थिति अनुकूल नहीं थी। परन्तु काश्मीर सुन्दर हरा-भरा देश था। मुसलिम राज्य होने पर भी जनता मुसलमान नहीं थी। यह बात मुसलिम जगत् को खटकती थी। तैमूर द्वारा अथवा अन्य अफगान तथा ईरानी बादशाहों अथवा सामन्तों द्वारा जो भी मध्येशिया तथा ईरान में ताडित किया गया अथवा जिसे जीवन का खतरा अनुभव हुआ, वह काश्मीर में आकर शरण लेने लगा। काश्मीर में समरकन्द, बुखारा, काशगर और ईरान से शरणार्थी आने लगे। काश्मीर के सुलतानों ने उन्हें शरण दी। स्वयं ताडित किंवा निर्वासित अपने देशों से भिगे गये लोग काश्मीर में आकर मुसलिम सुलतानों का आश्रय पाकर जनता को पीडित करने लगे। डॉ० परमू ने ठीक लिखा है—'वे काश्मीरियों के साथ वही व्यवहार करने लगे, जैसा तैमूर और हलाकू खाँ ने उनके साथ किया था' (परमू : पृष्ठ : ४२९)।

सुलतान के दिमाग को विषाक्त बना दिया गया। प्रजा के प्रति भेदनीति उत्पन्न कर दी गई। सुलतान को शासक के साथ मिशनरी बनाया गया। वह जैसे केवल मुसलिम जाति का सुलतान हो गया। उन्हीं की भलाई उसका ध्येय था।

कुतुबुद्दीन के समय भेद बीज बोया गया था। तैमूर का आक्रमण काश्मीर के लिए अभिशाप हुआ। उसने आग भडका दी। तैमूर के कारण, उसके भय एवं त्रास के कारण तैमूर के आदर्श जिहाद तथा उसके साम्प्रदायिक विचारों का समर्थक सिकन्दर बन गया। अवसर पाकर सूहभट्ट ने साम्प्रदायिकता की अग्नि सुलगा दी।

उस प्रज्वलित अग्नि में अलीशाह ने घृत डाला। जैनुल आबदीन बडशाह के समय सुलगती अग्नि बुझने लगी, दब गई। किन्तु शाहमीर वंश, चक वंश शासनकाल में वह अग्नि बुझने नहीं दी गई। सर्वदा उसके सुलगाते रहने का प्रयास किया जाता रहा।

सम्राट अकबर ने उस अग्नि को शान्त करना चाहा। परन्तु शाहजहाँ, औरंगजेब तथा पठान शासक असहिष्णुता ईंधन और धार्मिक उन्माद की तेज हवा द्वारा उसे सुलगाते रहे। अफगानों के काल तक काश्मीर साम्प्रदायिकता व्योम व्याप्त थी। गरीब, रक्षारहित, सम्बलहीन, राजकीय समर्थन प्राप्ति के लिए हिन्दू जनता बाध्य होती रही। यह क्रिया सन् १८०० ई० तक जारी रही। यदि काश्मीर के सुलतान एवं शासक विदेशी मुसलिम मिशनरियों, बाहरी मुसलिम राष्ट्रों के प्रभाव में न आते, तो आज काश्मीर का नक्शा कुछ दूसरा ही होता। सम्भव था वह मलेशिया अथवा इण्डोनेशिया के समान होता। जहाँ पुरानी संस्कृति, सभ्यता और भाषा पूर्ववत् रहती, केवल धर्मपरिवर्तन मात्र होता।

सिकन्दर के समय बहुत से आतिम-फाजिल तथा विदेशी मुसलमानों ने काश्मीर में प्रवेश किया। उनके प्रवेश का कारण काश्मीर-प्रेम अथवा व्यापार नहीं

प्रजापापविपाकेन ततो यवनदर्शने।
बालस्येव मृदि क्षोणिपते रुचिरवर्धत ॥ ५७२ ॥

५७२ प्रजा के पाप विपाक के कारण राजा की रुचि यवनदर्शन[1] में इस प्रकार हो गयी, जैसे बालक[2] की मिट्टी में।

दीप्तेन्दुरिव ऋक्षाणां तेषां बालोऽपि विद्यया।
यवनानामभूज्ज्येष्ठो मेरसैदमहम्मदः ॥ ५७३ ॥

५७३ नक्षत्रों मे दीप्त चन्द्र के समान, विद्या से बालक होने पर भी, उन यवनों के बीच, मेर[1] सैद[2] महम्मद[3] विद्या के कारण, उन यवनो[4] में ज्येष्ठ था।

था। उनके आने का कारण अमीर तैमूर का ईरान, तूरान, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान आदि फतह करना था। वे वहाँ अपनी सुरक्षा न देखकर वहाँ से काश्मीर मे आ गये थे (वाकयाते काश्मीर पाण्डु० ४५ ए० तथा बी०)।

जोनराज के वर्णन क्रम से यही प्रकट होता है कि विदेशी मौलवी, मुल्ला, म्लेच्छ तथा यवन अर्थात् विदेशी एव भारतीय मुसलमानो ने तैमूर के आक्रमण के पश्चात् काश्मीर मे प्रवेश किया है। यह व्यवहारिक भी मालूम होता है। तैमूर लग सिन्ध नदी पार करके भारत छोडने तक लगभग ७ मास (सितम्बर, १३९८ से मार्च १३९९ ई०) भारत म रहा था। यही तथा इसके पश्चात् का समय काश्मीर मे बाहरी मुसलमानो के प्रवेश करने का हो सकता है। सिकन्दर की आयु इस समय १८ वर्ष के लगभग थी। वह ८ वर्ष की अवस्था (सन् १३८९ ई०) मे गद्दी पर बैठा था। तैमूर का आक्रमण काल सन् १३९८–१३९९ है। इस प्रकार सिकन्दर की आयु १८ की थी।

पाद टिप्पणी

५७२ (१) दर्शन मुसलिम शास्त्र या धर्म।

(२) बालक. जोनराज सिकन्दर की बुद्धि की तुलना बालबुद्धि मे करता है। उसे प्रौढ मस्तिष्क व्यक्ति नही मानता। छोटे बालक जिस प्रकार केवल क्रीडावश कच्ची मिट्टी का खिलौना निष्प्रयोजन बनाते और बिगाडते बालबुद्धि का परिचय देते हैं, वही गति सिकन्दर की बुद्धि की थी।

पाद-टिप्पणी .

५७३ (१) बालक : मीर सैय्यद महम्मद काश्मीर प्रवेश के समय केवल २२ वर्ष का युवक था (बहारिस्तान शाही पाण्डु० १२ बी०, तारीखे. सैय्यद अली. पाण्डु० ९ ए०)।

(२) मेर : मीर–अमीर = यह शब्द काश्मीर मे सैय्यद मुसलमानो के लिए उनके अङ्ग किंवा पद-स्वरूप प्रयुक्त होने लगा था। (लारेन्स वैली. ३०६)।

(३) सेद. विदेशी मुसलमानो को जिनका उल्लेख परसियन इतिहासकारो ने किया है, उन्हे सैद अर्थात् सैय्यद लिखते हैं।

इब्न बतूता लिखता है—'भारतीय अरबो को सैय्यद कहते हैं' (रेह्ल० १२८)।

(४) मीर सैयद मुहम्मद हमदानी यदि काश्मीर प्रवेश के समय म उसकी आयु २२ वर्ष की थी तो वह समय (सन् १३९३–१३९४ ई०) अर्थात् तैमूर लग के आक्रमण (सन् १३९८–९९ ई०) के ४ वर्ष पूर्व होता है। इस समय सिकन्दर की आयु १३–१४ वर्ष की रही होगी। मीर हमदानी तथा सिकन्दर म इस प्रकार आयु म केवल ८ वर्ष का अन्तर था। बालक सिकन्दर का हमदानी जैसे मुसलिम कट्टर से प्रभावित होना सम्भव था। हमदानी तैमूर आक्रमण के पाँच वर्ष पूर्व काश्मीर मे आ चुका था। जोनराज का यह वर्णन क्रम यहाँ तैमूर आक्रमण के पूर्व होने के अपेक्षा पश्चात् हो गया है।

इसी समय अमीर कबीर सैय्यद अली हमदानी के पुत्र सैय्यद महमद हमदानी ने भी काश्मीर में

प्रवेश किया। इनका जन्म सन् १३७२ ई० खतलान मे हुआ था। बाल्यावस्था मे ही इनके पिता का देहावसान हो गया था। उनकी अवस्था उस समय ८ वर्ष की थी। उनके पिता मौलाना सराइके पास अपने पुत्र के लिए एक वसीयतनामा छोड गये थे। उसके अनुसार उनको दो मुमताज मुरीदो ख्वाजा इसहाक खतलानी और मौलाना नुरुद्दीन बदख्शी के खिदमत मे उपस्थित होना था। वसीयतनामा मे यह भी लिखा था। पुत्र युवक होने पर दूरदेशो की यात्रा करे (फतूहाते कब्रुया : पाण्डु० . पृष्ठ १५५ ए०)।

उसने ख्वाजा इसहाक तथा मौलना नूरुद्दीन से विद्यार्जन किया। जब उसका वय १६ वर्ष का हुआ तो पिता का वसीयतनामा उसे पढकर सुनाया गया। उसने पिता के आदेशानुसार अनेक स्थानो का पर्यटन किया।

अपने ३०० मुरीदो की जमाअत के साथ २२ वर्ष की आयु मे काश्मीर प्रवेश किया। यह घटना सन् १३९३ ई० की कही जाती है। सिकन्दर हमदानी से प्रभावित हुआ और उसका मुरीद बन गया। (फतूहाते कवरुया : पाण्डु० : १५६ ए, वहारिस्तान शाही : पाण्डु० २५ बी०, तारीख काश्मीर सैय्यद अली: १८) । सिकन्दर ने उसके लिये खनकाह-तामीर कराया। उसके निवास हेतु नौहट्टा मे एक आलीशान महल निर्माण कराया। शहर मे खानकाह-मौला, दची गाव मे खानगाह-बाला, तराल मौजा मे खानगाह— अली और मटन अर्थात् मार्तण्ड मे खानकाह कवरीया बनवाया।

हमादानी ने सार्वजनिक रूप से हिन्दुओ को मुसलिम धर्म मे दीक्षित करना आरम्भ किया। सूह भट्ट सुलतान सिकन्दरका मन्त्रीथा। उसे भी हमदानी ने मुसलिम धर्म मे दीक्षित कर उसका नाम सैफुद्दीन रखा। उसकी पुत्री के साथ विवाह कर लिया। यह बीबी गाजी के नाम से मशहूर हुई। उसकी कब्र कुपर मे है। यह विवाह के एक साल बाद मर गयी (वाकयाते काश्मीरी : पाण्डु ४६ बी)। उनकी प्रथम स्त्री सैय्यद हसन की कन्या थी। सैय्यद हसन शहाबुद्दीन सुलतान का एक सेनापति था। सैय्यद ताजुद्दीन हमदानी का पुत्र था। कथा है, ताज खातून धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री थी। फतह कदल के समीप उसके लिए एक बाग लगवाया गया था। वह वहीं निवास और ईश्वर भजन करती थी। वाकयाते काश्मीर मे आबिदा बीबी नाम मिलता है मरने पर वही दफन की गयी। सुलतान ने मजार बनवा दिया। उसका नाम आबिदा भी मिलता है। (वाकयाते काश्मीर : पाण्डु० : ४६ बी० :) सूहभट्ट की कन्या का नाम बीबी बारिय मिलता है। मरने पर कराल पोर मे दफन की गयी थी। वह श्रीनगर से ५ मील पर है।

एक मत है कि उसने काश्मीर मे १२ वर्ष निवास किया था (तारीखे काश्मीर सैय्यद अली : पाण्डु० : १८)। दूसरे मत है कि उसने २२ वर्ष काश्मीर मे निवास किया था। सन् १४०९ मे काश्मीर त्याग दिया। सिकन्दर की मृत्यु सन् १४१३ ई० मे हुई थी (सैय्यद अली : तारीखे काश्मीर : पाण्डु० : २७)।

काश्मीर का त्याग उन्होने सैय्यद मुहम्मद हिसारी से मेल न खाने के कारण किया था। वहां से वह हज के लिये मक्का गये। मक्का मुअज्जमा से वे खलतान वापस आये। वहा पर उनकी मृत्यु अप्रेल ३० सन् १४५० ई० म हो गयी। पिता की कब्र के पास ही उन्हे दफन किया गया।

उसके पिता सैय्यदअली हमदानी ने अलाउद्दीन-पुर मे नमाज वा जमाअत पढ़ने के लिये एक बडा चबूतरा बनवाया था। इसी स्थान पर सिकन्दर ने एक खानगाह सन् १३९६–१३९७ मे निर्माण कराया था। इस खनखाह का नाम खानखाह मुअल्ला है।

तबकाते अकबरी मे लिखा है—'सुलतान के अत्यधिक दान-पुण्य के कारण एराक, खुरासान, तथा मावरा उन्नहर के आलिम उसके दरबार मे उपस्थित होने लगे और काश्मीर मे इस्लाम प्रसारित हो गया। वह आलिमों मे सैय्यद मुहम्मद काजी अपने समय के बहुत बडे विद्वान थे, बडा सम्मान करता था और मूर्तियो तथा काफिरो के मन्दिरो को नष्ट-

अनमद् भृत्यवच्छिक्षां शिष्यवन्नित्यमग्रहीत् ।
दासवच्च पुरो नीत्या राजा तत्र न्यविक्षत ॥ ५७४ ॥

५७४ राजा नीति से भृत्यवत् नमन करता, शिष्यवत्[1] नित्यशिक्षा ग्रहण करता, दासवत् वहां प्रवेश करता ।

मरुद्भिरिव वृक्षाणां शालिनां शलभैरिव ।
कश्मीरदेशाचाराणां ध्वंसोऽथ यवनैः कृतः ॥ ५७५ ॥

५७५ जिस प्रकार मरुत से वृक्ष एवं शलभों से शालि नष्ट कर दिये जाते हैं, उसी प्रकार यवनों द्वारा कश्मीर देश के आचार[1] ध्वस्त कर दिये गये ।

भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया करता था (उ० : तै० : भा० २ : ५१५)।'

(५) यवन : लगभग ३०० गैरकाश्मीरी मुसल्मानों ने मीर सैय्यद मुहम्मद के साथ काश्मीर में प्रवेश किया था। कथा है, कि उनमें मदीना, ईराक, खुरासानों मावउराउन्नहर, खवारजम, बल्ख, गजनी तथा मुसलिम देशों के उलेमा, काजी तथा सैय्यद थे। सैय्यद, शेख, मुगल, पठान चार जातियाँ भारतीय मुसलिमों में मानी जाती हैं। उनमें सैय्यद श्रेष्ठ समझे जाते हैं। उन्हें पैगम्बर साहब का वंशज कहा जाता है। हिन्दुओं में जो स्थिति ब्राह्मणों की है वही मुसल्मानों में सैय्यदों की मानी जाती है। यद्यपि मुसलिम धर्म जात-पात का भेदभाव नहीं मानता है।

पाद-टिप्पणी :

५७४. उक्त श्लोक संख्या ५७४ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ७११ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(७११) नमन, शिक्षाग्रहण नगरनागूर्वक समस्त प्रवेश शिष्यवत् किस राजा ने उनके लिये नहीं किया ?

(१) शिष्यवत् : परसियन इतिहास लेखकों ने भी बादशाह को मीर सैय्यद मुहम्मद हमदानी का मुरीद (शिष्य) माना है (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० . २३–२४, तारीखे सैय्यद अली : पाण्डु० : १ ए० १४ बी, हैदर मल्लिक: पाण्डु० ४३–४४)। उक्त वर्णन से प्रकट होता है कि सिकन्दर पूर्णतया सैय्यद मीर मुहम्मद हमदानी के प्रभाव में आ गया था। हमदानी ने सिकन्दर के लिये रिसाला दर-इल्म-तसव्वुफ, लिखा था (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : २३, वाकयाते काश्मीर : पाण्डु० : ४६ बी०)। उसने एक और पुस्तक अरबी जबान में लिखी थी।

पाद-टिप्पणी :

५७५ (१) आचार ध्वस्त=बहारिस्तान शाही तथा तारीखे सैय्यद अली से प्रकट होता है कि सैय्यद मीर मुहम्मद हमदानी के आदेश एवं सुझाव पर सिकन्दर ने काश्मीर मण्डल से बुतपरस्ती समूल नष्ट करने का निश्चय किया था। उसने इस्लामी शरियत तथा कानून को कठोरता से काश्मीर में लागू किया। पुरातन हिन्दू परम्परा तथा व्यवहार के स्थान पर इस्लामी शरियत तथा कानून प्रचलित किये गये।

स्वामिनो दानमानाभ्यां वैशद्यगुणवत्तया ।
कश्मीरानविशन् म्लेच्छाः सुक्षेत्रं शलभा इव ॥ ५७६ ॥

५७६ स्वामी के दान. मान एवं उदारता (वैशद्य) आदि गुणों के कारण म्लेच्छ[1] कश्मीर में उसी प्रकार प्रवेश किये जैसे सुक्षेत्र में शलभ ।

उदभाण्डपुराधीशं दस्रो जातु जयन्नृपः ।
श्रीमेरां तत्सुतां प्राप मूर्तामिव जयश्रियम् ॥ ५७७ ॥

५७७ कदाचित् दस्र राजा ने उदभाण्डपुर[1] के नृपति[2] को जीतकर, उसकी पुत्री श्री मेरा को मूर्तिमती जयश्री सदृश प्राप्त किया ।

पाद-टिप्पणी :

५७६ उक्त श्लोक संख्या ५७६ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७१४ अधिक मुद्रित है । उसका भावार्थ है—

(७१४) विद्वान् के विद्याभास द्वारा विद्या सदृश उस राजा ने त्याग एवं भोग द्वारा लक्ष्मी को शोभित तथा वर्धित किया ।

(१) म्लेच्छ आगमन : श्लोक ५७१ मे जोनराज ने काश्मीर मण्डल मे यवनो के प्रवेश का उल्लेख किया है । इस श्लोक मे म्लेच्छो के प्रवेश का उल्लेख करता है । यवन तथा म्लेच्छ मे उसने अन्तर किया है । यवन भारत के अतिरिक्त मुसलिम धर्मावलम्बियो के लिए तथा म्लेच्छ उनके लिए प्रयोग किया है, जो भारतीय अपना धर्म त्याग कर, मुसलमान हो गये थे । यवन शब्द जातिवाचक है । उसमें आदर का भाव है । म्लेच्छ शब्द घृणासूचक है । भारतीयो का मुसलमान धर्म स्वीकार करना जोनराज को खटकता था । उसने अनादरसूचक म्लेच्छ शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । म्लेच्छ शब्द मुसलमान तथा विदेशियो के लिए जो हिन्दू आचार-व्यवहार नही मानते थे प्रयुक्त किया गया है, पुराकालीन शिला तथा अभिलेखो म इसका उल्लेख मिलता है (ई० आई० : २२, ३२, द्रष्टव्य टिप्पणी : इलोक १ : १०७ : खण्ड १ . पृष्ठ १४८) । बाहर से काश्मीर मे सामूहिक रूप से आने वाले मुसलमानो का यह दूसरा वर्ग था । प्रथम वर्ग मीर सैय्यद मुहम्मद के नेतृत्व और दूसरा वर्ग सैय्यदो का शेख जलालुद्दीन सैय्यद बुखारी के नेतृत्व मे आया था । इसके आगमन का काल हमदानी के काल के बाद वर्णन क्रम से प्रकट होता है (तारीखे सैय्यद अली : पाण्डु० : ११) ।

पाद-टिप्पणी :

५७७. उक्त श्लोक संख्या ५७७ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७१५ अधिक मुद्रित है । उसका भावार्थ है—

(७१५) उस राजा ने शाहिभंगपति पीरूज को जीतकर महीपाल से मेरा देवी को उपहार मे प्राप्त किया।

(१) उद्भाण्डपुर = ओहिन्द : प्रारम्भिक मध्ययुग काल में गान्धार की राजधानी उदभाण्डपुर= उन्द जो अटक के समीप है, थी । उदभाण्ड का नाम उदहाण्ड भी मिलता है । वैहिन्द भी प्राचीन समय मे इसका नाम था । गान्धार को विहिन्द भी कहते हैं (वैजयन्ती : गरयाथ भाग : ३ : १ : २४) । अलबेरूनी ने सन् १०३० ई० के लगभग अपनी पुस्तक लिखी है । उसमे उसने गान्धार की राजधानी वैहिन्द का उल्लेख किया है । वह सिन्ध के पश्चिमी तट पर था । पेशावर के दक्षिण पूर्व लगभग ५२ मील पर स्थित था । पेशावर तथा झेलम (वितस्ता) नदी के मध्य वैहिन्द स्थान का निर्देश करता है । यह वर्तमान उन्द स्थान अटक के समीप है (सचाऊ : अलबे० : १ . २२९, २०६, ३१७, नाजिम : ८६, राज० : ५ . १५३; स्तीन : राज० : २ : ३३३७, एंशियण्ट ज्योग्रेफी ऑफ इण्डिया : ४५ ४६ संस्० १९६३ ई०) ।

अवातरच्छाहिकुले नूनं सा कापि देवता।
योजयिष्यति तत्पुत्रः कश्मीरान् म्लेच्छनाशितान्॥ ५७८॥

५७८ निश्चय शाहिकुल में वह कोई देवता अवतरित हुई थी, उसका पुत्र[1] म्लेच्छ द्वारा नष्ट काश्मीर को योजित किया।

श्रीजैनोल्लाभदीनाख्यो मूर्तो धर्मः कलावपि।
राजापि योगिराजोऽयं राजचूडामणेः प्रियः॥ ५७९॥

५७९ कलि में भी मूर्तमान धर्म तथा योगिराज यह श्रीजैनोल्लाभदीन (जैनुल आबदीन)[1] राजा राजचूड़ामणि का प्रियपात्र हो गया।

अरबी रचना हुदूदुल अलम (सन् ९८२-९८३ ई०) के अनुसार वैहिन्द बहुत बडा नगर था। उसमें कुछ मुसलिम आबादी भी थी। उस समय वैहिन्द राजा जयपाल के आधीन था। उदभाण्डपुर शाही राजा लल्ली की राजधानी (सन् ८७५-८९० ई०) था। लल्ली के उत्तराधिकारी यहाँ राज्य करते रहे। उदभाण्डपुर में जयपाल (सन् ९६५-१००१ ई०) का राज्य फिरिस्ता के अनुसार जो अष्टपालदेव का पुत्र था, सीरहिन्द से लघमान तक लम्बा और काश्मीर से मुलतान तक चौडा विस्तृत था। जयपाल एक दुर्ग में रहता था। यह दुर्ग वैहिन्द अर्थात् उदभाण्डपुर में था। कुछ लेखकों ने उसे गलती से भटिण्डा मान लिया है। फिरिस्ता ने जयपाल को लाहौर का राजा भी माना है। प्रतीत होता है कि सिन्ध के पश्चात् तुर्की मुसलमानो का उदय हुआ तो सुरक्षा की दृष्टि से जयपाल ने राजधानी ओहिन्द अर्थात् उदभाण्डपुर से लाहौर हटा लिया था। किन्तु वह स्वयं पुरानी राजधानी उदभाण्डपुर में निवास करता था। अपनी शक्ति का केन्द्र बनाकर मुसलिम शक्ति एवं सैनिक अभियानों का प्रतिरोध करता रहा। कल्हण ने शाही राजा त्रिलोचनपाल (सन् १०१३-१०२१ ई०) का उल्लेख किया है। हुएनत्सांग (सातवी शताब्दी) ने अपने पर्यटन काल में कपिशा के सम्राट की दूसरी राजधानी उदभाण्डपुर बताया है। कपिशा साम्राज्य में उस समय लम्पक (लघमान) नगर किंवा नग्रहार (जलालाबाद), गान्धार, वर्नू (बन्नू) एवं जगुद (दक्षिणी अफगानिस्तान, गजनी सहित) थे। गान्धार की राजधानी हुएन्त्सांग के समय पुरुषपुर (पेशावर) थी। हुएन्त्साग लिखता है—'पुरुषपुर का राजवंश समाप्त हो गया था। वह कपिशा राज्य के आधीन था। नगर तथा ग्राम उजड गये थे। निवासियों की संख्या बहुत थोडी रह गई थी। कपिशा के राजाओं ने नवीन नगर उदभाण्डपुर बनवाया था'। पेशावर का त्याग तथा उदभाण्डपुर को नवीन केन्द्र कपिशा के राजाओं ने सम्भवतः सुरक्षा की दृष्टि से किया था।

इस समय ओहिन्द अर्थात् उदभाण्डपुर के ध्वंसावशेषों पर तथा उनके इमारती सामग्रियों से मुसलमानों के मकान, जियारतें तथा मसजिदें बनी हैं।

उदभाण्ड का अर्थ जलकलश होता है। चीनी वर्णन से स्पष्ट प्रकाश मिलता है कि आठवी शताब्दी के मध्य तक उदयान (स्वात) गान्धार राज्य का भाग था। वहाँ के हिन्दू राज्य की समाप्ति के साथ समस्त भारत का द्वार मुसलमानों के लिये खुल गया था। जिसकी पूर्णाहुति भारत विभाजन में हुई।

(२) नृपति : परशियन इतिहासकार नाम फिरोज देते हैं। उनका कथन है कि फिरोज ने सुलतान सिकन्दर का इक्तदार तसलीम करने से इन्कार किया था अतएव उस पर आक्रमण किया गया था (म्युनिख : पाण्डु० : ६२ ए)।

पाद-टिप्पणी :

५७८. (१) पुत्र : जैनुल आबदीन बडशाह।

पाद-टिप्पणी :

५७९ उक्त श्लोक संख्या ५७९ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ७१८ और मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

केनापि रससिद्धेन दत्तस्तोकरसो नृपम्।
रससिद्धिं वदन् धूर्तो महादेवाभिधोऽभ्यधात्॥ ५८०॥

५८० किसी रससिद्ध (रासायनिक) द्वारा स्वल्प रसप्राप्त, धूर्त महादेव[1] ने नृप से रससिद्धि की बात करते हुए कहा—

सदा राज्ञि महीभारोद्वहनादनुरोधवान्।
अदान्मेरुर्महादेवरूपेण द्रविणं बहु॥ ५८१॥

५८१ महीभार वहन करने से राजा पर सदा अनुरोधशाली मेरु महादेव रूप से बहुत द्रव्य दिया।

रसः सिद्धप्रसादोऽथ महादेवस्य हीनताम्।
अगमन्नतु कश्मीरनिवासविषये मनाक्॥ ५८२॥

५८२ सिद्धप्रसाद रस महादेव की हीनता (विनाश) के लिये हुआ, न कि काश्मीर निवासी नृप के लिये।

रससिद्धिश्रमार्थं स कृत्वा दृग्बन्धमौषधैः।
हेम स्वं मूषिकामध्ये चिरमासीत्किरन्किल॥ ५८३॥

५८३ रससिद्धि के श्रम के लिये औषधियों द्वारा दृग्बन्धन करके, वह चिरकाल तक अपना हेम (स्वर्ण) (मिट्टी) घरियों के मध्य गिराता रहा।

प्राज्ञेन ज्ञापितो राज्ञा तच्छद्म स्वयमेकदा।
अकीर्तिश्रवणाद्भीतो महादेवोऽजहादसून्॥ ५८४॥

५८४ बुद्धिमान राजा उसका छल जानकर उससे कहा। तब महादेव अकीर्ति श्रवण-भय से स्वयं प्राण त्याग कर दिया।

---

(७१८) यवन, गुरु, भृत्य, सेवक, वल्लभ एवं बान्धव उसके लिये उसी प्रकार हुए, जिस प्रकार पिक शिशु के लिये काक।

(१) जैनुल आबदीन : जैनुल आबदीन का जन्म सन् १४०१ ई० माना गया है। उसने सन् १४१९ ई० से १४७० ई० तक काश्मीर पर शासन किया था। उसे बड़शाह कहते हैं। वह काश्मीर का उसी प्रकार यशस्वी राजा था, जिस प्रकार भारत में सम्राट अकबर हुआ है।

पाद-टिप्पणी :

५८०. उक्त श्लोक संख्या ५८० के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ७२० और मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(७२०) कांचनश्री प्राप्त करते हुए उसने रस द्वारा ही सहस्त्रों को प्रभावित नहीं किया परन्तु विस्मय रस से भी किया।

(१) महादेव : महादेव नामक रासायनिक का उल्लेख इस प्रसंग के पश्चात् पुनः नहीं मिलता। उसका वंश-परिचय अज्ञात है। जोनराज ने पुनः इसका उल्लेख नहीं किया है।

पाद-टिप्पणी :

५८४. उक्त श्लोक संख्या ५८४ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ७२५–७२७ और मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(७२५) उस वारिद को धिक्कार है, जो जलनिधि से जलग्रहण कर अशुचि भी होकर, आशान्वित

लद्दराजोऽगदङ्कारशङ्करो भट्टसूहकः।
मन्त्रिणश्चान्तरङ्गाश्च सर्वदैवाभवन्प्रभोः ॥ ५८५ ॥

५८५ लद्दराज[1] वैद्यशंकर[2] एवं भट्ट सूहक[3] राजा के सर्वकालिक मन्त्री एवं अन्तरंग बने थे।

प्रत्यक्षा इव धर्मार्थकामाः काममनोरमाः।
मेरदेव्यास्त्रयः पुत्रा राज्ञस्तस्योदपत्सत ॥ ५८६ ॥

५८६ उस राजा के मेर देवी से प्रत्यक्ष, धर्म, अर्थ, काम स्वरूप कामदेव के समान सुन्दर तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

मेरखानः शाहिखानः खानो मह्मद इत्यपि।
यैः संज्ञा अभ्यभूषन्त गङ्गौघैर्विष्टपा इव ॥ ५८७ ॥

५८७ जिन्होंने मेरखान, शाहिखान खानमुहम्मद[1], संज्ञा (नाम) को उसी प्रकार भूषित किया जिस प्रकार गंगा की धारायें भुवनों (त्रिलोक) को।

मित्रपर उपद्रव (अति वृष्टि) करता है और परिक्षीण होकर पर्वत पर स्खलित होता है। पद्म अति स्तुत्य है, जो विकसित होने पर, अपने सारभूत रसों से भ्रमरों को प्रसन्न कर, रस समाप्त होने पर, प्राण का त्याग कर देता है।

(७२६) मानो विपभय से शेप को काठिन्य से, पर्वतों को मद से, द्विपों को त्याग कर पृथ्वी सुखपूर्वक उसके भुजा पर निवास करने लगी।

(७२७) मित्रबन्धु गुणी कुलपद्म नालभट्ट ने भी राजप्रियता के कारण उन्नति प्राप्त की।

पाद-टिप्पणी :

५८५ उक्त श्लोक सख्या ५८५ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७२९–७३४ अधिक मुद्रित है। उनका भावार्थ है—

(७२९) किसी समय उसके आक्रमण करने पर महेन्द्र विल्लदेव ने कन्यारत्न औषध अर्पण कर उसकी यात्रा सफल की।

(७३०) औचित्य के कारण साधुवाद मे प्रसक्त शंकर वैद्य ने राजा के साथ निरवद्य (निर्दोष) मैत्री बद्ध की।

(७३१) शंकर के मैत्री के वर्ष अमर्ष युक्त सूहभट्ट निरन्तर मद्रराज का अपकार सोचने लगा।

(७३२) उदीची नायक आक्रमण द्वारा पुरवासियों के जिस शिल (सेखा) कक्कुर (खुखुर–खख्खर) के पुत्र जसरथ पुत्र को ले गया था।

(७३३) अति उत्तिज उदक्पति के मृत हो जाने पर, मुक्त होकर, मद्रनायक के द्वेष के कारण सूहभट्ट के प्रार्थना बल से—

(७३४) काश्मीरेन्द्र के द्वारा मद्र के निकट भूमि का स्वामित्व प्राप्त किया। सचेतन जयस्तम्भ सदृश उसे वहाँ आरोपित कर शत्रुओ को दण्डित करने वाला वह पृथ्वी सूर्य लौट आया।

(१) लद्दराज : मुसलिम धर्म स्वीकार किया था।

(२) वैद्यशंकर : परसियन इतिहासकारों ने इसको हकीम लिखा है। उनके मतानुसार इसने भी मुसलिम धर्म स्वीकार किया था।

(३) सूहभट्ट : इसने मुसलिम धर्म स्वीकार कर नवीन नाम सैफुद्दीन ग्रहण किया था। फारसी मे पट शब्द सिह का अपभ्रंश है।

पाद-टिप्पणी :

५८७. (१) मीर खानादि : मेरा रानी से शाही खान और महमूद खान नामक पुत्रों का नाम (म्युनिख : पाण्डु० : ७२६ ए) दिया गया है। सिकन्दर के कुल पाँच पुत्र हुये थे—फिरोज, मुहम्मद हिन्दू रानी श्री शोभा तथा मुसलिम रानी मेरा द्वारा

कृत्रिमत्वान्निरस्तानां शोभादेव्यात्मजन्मनाम् ।
पुत्रं पिरुजनामानं न निरास्यत् परं नृपः ॥ ५८८ ॥

५८८ कृत्रिमता[1] के कारण निरस्त (निष्काशित) शोभा देवी के पुत्रों में नृपति ने पीरुज[2] नामक पुत्र को नहीं निकाला ।

महमूद खां, जैनुल आबदीन तथा अलीशाह थे। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् शाहमीर वंश का सातवां सुलतान अलीशाह हुआ । उसके पश्चात् जैनुलआबदीन शाहमीर वंश का आठवां सुलतान हुआ था। पुनः अलीशाह थोड़े दिन के लिये सुलतान बन गया। तत्पश्चात् जैनुल आबदीन काश्मीर का यशस्वी सुलतान हुआ । इसने लम्बे काल तक राज्य किया ।

दिल्ली सल्तनत मे वंशावली दी गयी है। उसमे केवल अलीशाह और जैनुल आबदीन पुत्र वंशवृक्ष मे दिखाये गये है (दिल्ली सलतनेत : भारतीय विद्याभवन : सन् १९६० ई० : पृष्ठ : ८२७)। यह गलत है।

पाद-टिप्पणी :

५८८. उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७३७ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है :—

(७३७) उस राजा ने मृत-मातृक शोभा के पुत्र पिरुज को मेरखान आदि के ही सदृश सवंधित किया ।

(१) कृत्रिम : जोनराज का कृत्रिम शब्द यहाँ अर्थपूर्ण है । कृत्रिम पुत्र हिन्दुओ मे होते हैं । गोद दो प्रकार से लिया जाता है—प्रथम दत्तक तथा द्वितीय कृत्रिम है। दोनो मे अन्तर है। कृत्रिम गोद मे गोद लिए जाने वाले की अनुमति आवश्यक है।

दत्तक मे पुत्र की अनुमति आवश्यक नही होती। गोद लिया जाने वाला गोद लेने वाले पिता की जाति का होना चाहिये। किसी प्रकार के संस्कार की आवश्यकता कृत्रिम गोद के लिए नही होती। स्त्री भी पुत्र को स्वयं अपने लिए गोद ले सकती है। पिता भी अपने लिए गोद ले सकता है। इसमे गोद लेने वाले माता-पिता दोनो की सम्मति अपेक्षित नही है। किन्तु स्त्री अपने पति के लिए कृत्रिम गोद नहीं ले सकती। स्त्री कृत्रिम गोद के लिए अपने पति अथवा किसी की अनुमति लेने के लिए बाध्य नही है। दत्तक पुत्र को अपने मूल माता-पिता की सम्पत्ति मे अधिकार नही मिलता, परन्तु कृत्रिम को अपने मूल माता-पिता की सम्पत्ति मे भी अधिकार रहता है। उसे कर्त पुत्र कहा जाता है। जो उन्हे गोद लेता है, वह केवल उसी की सम्पत्ति का अधिकारी होता है।

मुसलिम कानून दत्तक प्रथा स्वीकार नही करता। किन्तु जहाँ रिवाज है, वहाँ यह मान लिया जाता है। पंजाब तथा अवध के मुसलमानो में यह प्रथा प्रचलित थी। अवध एस्टेटस् एक्ट सन् १८६९ ई० के अनुसार मुसलिम ताल्लुकेदार गोद ले सकते थे। हिन्दू का धर्म-परिवर्तन के कारण हिन्दू कानून समाप्त हो जाता है। मुसलिम होने पर वह मुसलिम कानून से नियंत्रित होता है। देशी राज्यो मे मुसलमान गोद ले सकते थे। किन्तु यह गोद भारत अर्थात् ब्रिटिश इण्डिया मे जायज नहीं माना जाता था। काश्मीर मे हिन्दू मुसलमान हुए थे। अतएव वहाँ मुसलिम कानून पूर्णतया नही प्रचलित हो पाया था। हिन्दुओं के रीति-रिवाज चलते थे। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ६४५।

श्री मोहिबुल हसन का मत है कि जोनराज का कथन कि शोभा के दत्तक पुत्र थे, गलत है। परन्तु उन्होने कोई प्रमाण अपने मत की पुष्टि मे नहीं दिया है (पृष्ठ : ६१ से ८६) कृत्रिम शब्द जोनराज ने साभिप्राय प्रयोग किया है।

काश्मीर मे हिन्दू एवं मुसलमान दोनो मे दत्तक पुत्र लेने की प्रथा प्रचलित रही है।

(२) पिरुज : म्युनिख (पाण्डु० : ६३ ए०) से आभास निकलता है कि जब फिरोज युवा हुआ तो

अलकासदृशीं राजा मानसप्रतिबिम्बिताम्।
पुरीं पुण्यजनाकीर्णां प्रद्युम्नाद्रितटे व्यधात्॥ ५८९॥

५८९ राजा ने प्रद्युम्नाद्रि[1] तट पर, पुण्यशाली लोगों से भरी पुरी का निर्माण कराया, जो कि अलका सदृश मानस[2] प्रतिबिम्बित था।

सिकन्दर ने काश्मीर से इसे निष्कासित कर दिया, ताकि विमातृ-पुत्रो मे उत्तराधिकार के लिए संघर्ष न हो। जोनराज इस मत का समर्थन नही करता। वह उलटे लिखता है कि फिरूज के अतिरिक्त शोभा देवी के अन्य पुत्रो को निकाल दिया गया। किन्तु श्लोक ६४५–६६४ के वर्णन से यह भाव प्रकट होता है कि फिरूज भी निर्वासित कर दिया गया था।

पाद-टिप्पणी :

५८९ श्लोक ५८९ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक ७३९–७४१ मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(७३९) उस राजा की अतिथि सम्पत्ति के लिए श्री (लक्ष्मी) दिन-रात उसी प्रकार पूर्ण आनन्दयुक्त जय से अरिक्त (युक्त) तथा भद्रा (कल्याणी) थी, जिस प्रकार कि सम्पत्ति के लिए पूर्णा, नन्दा, जया, रिक्ता एवं भद्रा होती है।

(७४०) सदायति (सुन्दर भविष्य वाला या सदैवयति) प्रसिद्ध उस राजा ने दूसरो द्वारा अचुम्बित शत्रुओ की लक्ष्मी का बलात् चुम्बन किया।

(७४१) नित्य उसके द्वारा दिये गये वित्त से सम्पत्तिशाली यवन आहार-व्यवहारादि से महीपति को जीत लिए।

(१) प्रद्युम्नाद्रि=सिकन्दरपुरी : शारिका पर्वत किंवा हरि पर्वत को प्रद्युम्न पर्वत कहते थे। परसियन इतिहासकारो ने इसे कोह-ए-मारान लिखा है। इसका उल्लेख प्रद्युम्न पीठ, प्रद्युम्न गिरि, प्रद्युम्न शिखर नामो से किया गया है (रा० : ४६०; ७ : १६१६)। विक्रमाकदेवचरित (१८ : १५) मे बिल्हण ने प्रद्युम्न क्षितिधर नाम इस पर्वत के लिए प्रयोग किया है। श्रीवर (१ : ६३१, २ : ८८), महादेव माहात्म्य (२ : ७) तथा जोनराज ने पुनः उल्लेख श्लोक (८६९) मे किया है।

कथासरित्सागर (७३ : १०९) मे पं० सोमदेव ने इस पर्वत को ऊषा एवं अनिरुद्ध की प्रेमकथा से सम्बन्धित किया है। इस स्थान पर मैं कई बार जा चुका हूँ। इस पर्वत की पूर्वीय ढाल पर अति विस्तृत क्षेत्र मे मुसलिम जियारते, मसजिदे आदि बनी हैं। उनमे मुकद्दम शाह तथा आखून मुल्ला शाह की जियारतें प्रसिद्ध हैं। यह सब प्राचीन मन्दिर, मठ तथा बिहारो के स्थानो पर बने है।

योगवासिष्ठ रामायण मे प्रद्युम्न शिखर का उल्लेख किया गया है। यह सारिका किंवा हरि पर्वत ही है (स्थिति प्रकरण . राज० : ३२ . पृष्ठ १६) नीलमत पुराण मे प्रद्युम्न नाग का उल्लेख मिलता है (888 = १०५८)।

प्रद्युम्न गिरि तट पर सिकन्दर ने सिकन्दरपुर आबाद किया था। उसने अपने नवीन नगर मे एक राजभवन तथा विशाल जामा मसजिद का निर्माण कराया था। इस नगर के स्थान को इस समय नौहट्टा कहते हैं, जो श्रीनगर का एक भाग हो गया है। मसजिद का वास्तुकार ख्वाजा बदरुद्दीन खुराशानी था। इसमे ३७२ काष्ठ स्तम्भ लगे थे। प्रत्येक खम्भों की लम्बाई ४० गज और चौडाई ६ गज थी। इसमे चार मिहराब थे। प्रत्येक मिहराब मे ३२ काष्ठ खम्भे लगे थे (बहारिस्तान शाही : पाण्डु : ३५ ए०; हैदर मल्लिक . पाण्डु० : ४५)।

(२) मानस : यह शब्द श्लोक संख्या ५८९ मे श्लिष्ट है। नगर की भव्यता मानस अर्थात् मन को आह्लादित करती थी। दूसरा अर्थ मानस सर है।

अयत्नप्राप्तवित्तानां यवनानां महीपतेः ।
वराटके च कोटौ च दृष्टिरासीत् समा तदा ॥ ५९० ॥

५९० विपन्न के धन प्राप्तकर्ता यवनों की दृष्टि राजा की वराटक[1] (कौड़ी) अथवा कोटि में तुल्य थी।

कश्मीरमण्डले म्लेच्छदुराचारेण दूषिते ।
महिमा ब्राह्मणैर्मन्त्रैर्देवैश्च स्वः समुज्झितः ॥ ५९१ ॥

५९१ म्लेच्छ के दुराचार से दूषित कश्मीर मण्डल में ब्राह्मणों, मन्त्रों[1] एवं देवों ने अपनी महिमा त्याग दी।

पाद-टिप्पणी :

५९०. (१) वराटक : इस शब्द का अर्थ कौडी, और कमल का बीजकोष होता है। भर्तृहरिशतक में कौडी के अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है—प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् (३ : ४)। काश्मीरी मे 'हार' कहा जाता है।

पाद-टिप्पणी :

५९१. श्लोक संख्या ५९१ के पश्चात् बम्बई संस्करण में निम्नलिखित श्लोक संख्या ७४४ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(७४४) खद्योत सदृश जिन लोगो ने तेज प्रकाशित किया था, काल की कुटिलता से उन्हे देवो (नृपो) ने उसे अन्तर्हित कर दिया।

(१) ब्राह्मण-मन्त्र : जोनराज काश्मीर के पतन का कारण काश्मीरियो में साहस, चातुर्य एव वीरता का अभाव नही देता बल्कि दोष दैव पर देता है। ब्राह्मणो को अपनी ब्रह्मशक्ति, पवित्रता तथा जाति पर गर्व था। किन्तु जब मन्दिर टूटने लगे और प्रतिमायें भंग होने लगी तो ब्रह्म एव मन्त्रशक्ति कुछ काम न आयी। काश्मीर मण्डल म्लेच्छो के दुराचार से दूषित हो गया। जोनराज तर्क देता है—अतएव देवताओ की भी शक्ति का लोप हो गया। मानसिक, शारीरिक शक्ति के अभाव से देवता, ब्राह्मण, मन्त्र आदि की भी शक्ति का लोप हो गया। जोनराज के शब्दो मे इस प्रकार काश्मीरवासी निरावलब हो गये। जोनराज सिकन्दर-काल की घटनाओ का प्रत्यक्षदर्शी था। उसका वर्णन विश्वसनीय है। अन्य इतिहासकार बाद मे हुये हैं। जोनराज गौण रूप से देवताओ, ब्राह्मणो एवं मन्त्रो पर व्यंग करता है। वे काश्मीर की रक्षा करने मे असमर्थ हो गये थे।

काश्मीरी हिन्दुओ मे यह धारणा व्याप्त है कि दुराचार के कारण मन्त्र एवं देवशक्ति का लोप हो गया था। सर्वदानन्द शास्त्रीजी ने स्वयं अपना एक किस्सा बताया—पौष कृष्ण अमावस्या को यक्ष अर्थात् 'यच' कुबेर की पूजा होती थी। यक्ष है। छुटपन मे एक बार मैं अपने पिता के साथ तांगा से जा रहा था। घोडा चलते-चलते अड गया। सम्मुख प्रकाश दिखायी दिया। यक्ष लोप हो गया। हम लोग पापी हो गये अतएव वह अब दिखायी नही पडता।

'खेच-मास' यक्ष के लिये खिचडी बनायी जाती थी। यक्ष के नाम से बाहर रख देते थे। यक्ष खाता था।

'इसी प्रकार मछली-भात बनाया जाता है। यहाँ प्रायः भारतवासी काश्मीरी भी अबतक जहाँ वे रहते हैं बनाते हैं। मत्स्य-चावल जिसे काश्मीरी में 'गाड भद' कहते हैं, ऊपरी मंजिल मे रख दिया जाता है। यह सहस्र वर्षों से होता आया है। प्रातःकाल देखा जाता था तो उसमे मछली का काँटा ही रह जाता था। यह भी दुराचार अथवा पाप के कारण बन्द हो गया है। वह परम्परा आज तक चली आती है।'

वाहन रुको के कारण रुक जाने की बात अब तक कुछ अत्यन्त वृद्ध लोग बताते है। वे अभी तक जीवित हैं।

प्रभावतेजो यैर्देवैः सततं प्रकटीकृतम् ।
खद्योतैरिव तैरेव देशदोषाद् विनिह्नुतम् ॥ ५९२ ॥

५९२ जिन देवों ने निरन्तर (अपना) प्रभाव (तेज) प्रकट किया था, उन्होंने ही, देश दोष के कारण, खद्योतों[1] के समान (तेज) छिपा लिया।

प्रत्याहृते ततस्तेजोविशेषे त्रिदशैरभूत् ।
प्रतिमानां शिलाभावो मन्त्राणां वर्णमात्रता ॥ ५९३ ॥

५९३ देवताओं के वहाँ से तेजो[1] विशेष प्रत्याहृत कर लेने पर, प्रतिमाओं मे शिलाभाव तथा मन्त्रों मे वर्णमात्रता ही शेष रही।

पाद-टिप्पणी :

५९२ (१) खद्योत : जोनराज ब्राह्मण था। उसका संस्कार ब्राह्मण था। वह बाल्यावस्था से ही मन्दिरो मे पूजा, आरति देख तथा देवताओ की अद्भुत शक्तियो की कथा सुन चुका था। प्रत्येक देवता तथा मन्दिरो के साथ कुछ न कुछ अलौकिक घटनायें तथा चमत्कारिक कथाएँ सम्बन्धित थी। किन्तु उसने अपनी आँखो उन्ही मन्दिरो एव देवताओ को खण्डित होते देखा। खण्डित करने वालो पर किसी प्रकार का दैवी कोप नहीं हुआ। पुनरपि वे प्रबल होते गये। जोनराज मूर्तिपूजा का विरोध नही करता। वह उसके संस्कार के विरुद्ध था। वह उनकी उपमा खद्योत अर्थात् रात्रि मे चमकते-बुझते जुगनुओ से देता है। जुगनू इच्छानुसार प्रकाश करता है और इच्छानुसार ही प्रकाश लुप्त कर लेता है। यही उपमा काश्मीर के देवताओ के सम्बन्ध मे जोनराज ने दी है। देवगण अपने प्रकाश अथवा शक्ति का रहते हुए भी उपयोग न कर, जुगनू के समान समेट लिये थे। जोनराज देवताओ की स्पष्ट निन्दा न कर, प्रकट करना चाहता है कि देश दोष के कारण देवताओ ने अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं की। किन्तु खद्योत से उनकी उपमा देकर एक प्रकार से उनका उपहास कर दिया है।

पाद टिप्पणी

५९२ श्लोक संख्या ५९२ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ७४७–७४८ और मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(७४७) कलियुग के स्पर्शभय से अपनी प्रतिमा त्यागने के इच्छुक देवो ने उसके (प्रतिमा) ध्वस में (हेतु) म्लेच्छो की बुद्धि म अवस्थित हो उन्हे प्रेरित किया यह ध्रुव है।

(७४८) राजा का अन्तरंग यवन मत का भक्त सूहभट्ट प्रतिमाओ की निराकृति (ध्वस) मे यवनो द्वारा प्रतारित किया गया।

पाद-टिप्पणी :

५९३ (१) तेज प्रत्याहृत : मूर्तियाँ जड पाषाण मात्र हैं। उनकी जब प्राणप्रतिष्ठा की जाती है तो उनमे देवशक्ति का आविर्भाव होता है। मूर्तियो से जब प्राण किंवा तेज निकल गया तो वे शिला मात्र रह गयीं। उस समय यदि यवनो ने उन्हें भग भी किया तो उन्होंने देवताओं के विरुद्ध कोई कार्य नही किया, बल्कि साधारण पाषाण पिण्ड को ही उन्होंने तोड़ा। दरबारी कवि जोनराज अपने स्वामी मुसलिम सुल्तानो को विशेष दोष नही देता।

मुझे स्मरण है। काशी विश्वनाथ मन्दिर में हरिजन किंवा अस्पृश्यो का प्रवेश आसन्न था, तो कुछ ब्राह्मणों ने एक जलकुम्भ मे विश्वनाथ का तेज उतार कर रख लिया। पूछने पर कहा गया। जब विश्वनाथ के शिवलिंग मे प्राण किंवा तेज ही नहीं है तो वे कैसे अस्पृश्यों के स्पर्श करने से अपवित्र होंगे? एक दूसरे विश्वनाथ की स्थापना की गयी और वह तेज किंवा प्राण नवीन शिवलिंग मे प्रतिष्ठित किया

पुण्यक्षयेन कर्तृणां कलिदोषेण चोज्झिताः।
गीर्वाणैः प्रतिमाः सर्वा निर्मोका भुजगैरिव ॥ ५९४ ॥

५६४ (सत्कर्मो) कर्ताओं के पुण्यक्षय से तथा काल के दोष से देवताओं ने सभी प्रतिमाओं को उसी प्रकार त्याग कर दिया जिस प्रकार भुजंग निर्मोक (केंचुल) को[1]।

रक्ते रागं शुचौ शौक्ल्यं मलिने मलिनां स्थितिम्।
सङ्क्रान्ते सति गाहन्ते स्फटिकानीव भूभुजः ॥ ५९५ ॥

५६५ सक्रांत होने पर रक्त में राग, शुचि में शुक्लता, मलिन में मलिनता, की स्थिति में होने वाले स्फटिक सदृश नृपति हो गये।

गया। आज भी कुछ तथाकथित सनातनी हिन्दू काशी विश्वनाथ के स्वर्ण मन्दिर मे पूजा करने नहीं जाते क्योकि मन्दिर मे, शिवलिंग मे प्राण नही है। मन्दिर अस्पृश्यो के प्रविष्ट होने पर अपवित्र हो गया। मुसलमानो के स्पर्श का भोजन करने पर या पानी पी लेने पर जाति नष्ट मान ली जाती थी। काश्मीर मण्डल भी यवनो के स्पर्श से दूषित हो गया था। इससे उसके देवताओ की शक्ति भी लुप्त हो गयी। यह काश्मीर का दर्शन मेवाड की देशभक्ति तथा उत्सर्ग दर्शन के सर्वथा विपरीत था। वहाँ मेवाडी पग-पग पर अपने धर्म-कर्म एवं मन्दिरो की रक्षा के लिये संघर्ष करते रहे, मरते रहे। स्त्रियाँ एवं पुरुष जौहर करते रहे। परिणाम यह हुआ कि मेवाड मे ९५ प्रतिशत भारतीय धर्मानुयायी हैं और काश्मीर में ९५ प्रतिशत ने प्राणभय से, राजप्रसाद लोभ से, मुसलमान धर्म कबूल कर लिया है।

पाद-टिप्पणी :

५९४ (१) निर्मोक : जोनराज यहाँ प्रजा तथा जनता के पुण्यक्षय का कारण काश्मीर के पतन का देता है वह कल्हण के दर्शन को दुहराता है। राजा अन्याय करता है। प्रजा के दोष के कारण उसमे दुराचार प्रवृत्ति उत्पन्न होती हैं। कल्हण ने प्राणियों की विपत्ति का कारण उनका प्राक्तन एवं इस जन्म का कुक्रिया पाप माना है। वह देश तथा जनता पर आने वाले विपत्तियो का कारण जनता का दोष एवं पाप कर्म मानता है (रा० १ : ८७; ४ : ३९)। कल्हण भगवान एवं दैव की कटु आलोचना जनता पर आयी विपत्तियों एवं आपत्तियों के लिए करता है। जिसका अभाव जोनराज मे प्राप्त होता है (रा० : ५ : ५४५; ६ : २७५, २७७, १३२९, १४३९; ८ : १६७, २३७, १२७५, १७९०)।

जोनराज ने मूर्तियो की उपमा सर्प के केंचुल से दी है। केंचुल निर्जीव होती है। वह जब तक सर्प के शरीर पर रहती है उसमे जीव रहता है। वह शरीर की रक्षा करती है, शरीर का अंग रहती है। परन्तु केंचुल त्यागने पर सर्प का कुछ नही बिगडता। केंचुल ही शरीर से अलग होकर नष्ट हो जाती है। यही अवस्था मूर्तियो की हुई। देवताओ ने उन मूर्तियो को त्याग दिया। जिनमे वे निवास करते थे। उनके त्यागने पर सर्प के केंचुल के समान उनका नष्ट हो जाना स्वाभाविक था। उससे देवता का कुछ नहीं बिगडा। वह निरपेक्ष दूर रहा। केंचुल को जैसे लोग उठा ले जाते हैं, फाडकर रख लेते हैं, फेंक देते हैं अथवा जला देते हैं, वही अवस्था प्रतिमाओ की हुई। यवनो ने शिलामात्र बनी प्रतिमाओ को उठाकर, मन्दिरों से बाहर फेंक दिया; उन्हें तोड दिया, तोडकर अपने मकानो, जियारतो, मसजिदो मे लगा लिया अथवा बारूद से उडा दिया। यह सब उन निर्जीव, जड-पाषण प्रतिमाओ पर बीती, जिन्हें देवताओ ने उनके भाग्य के ऊपर छोड दिया था।

स्वयं ब्राह्मक्रियाद्वेपी म्लेच्छैश्च प्रतियोधितः।
सूहभट्टः प्रभुं जातु देवभङ्गार्थमैरयत्॥ ५९६॥

५९६ स्वय ब्राह्म क्रिया का द्वेषी सूह भट्ट[1] म्लेच्छों द्वारा प्रेरित होकर किसी समय देव (प्रतिमा) भंग करने के लिये प्रभु को प्रेरित किया।

पाद-टिप्पणी :

५९६. श्लोक सख्या ५९६ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या ७५१–७६० अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(७५१) देव-सान्निध्य भ्रम से यह जन्म पाषाणो को नमन करता हुआ तुम्हारे प्रणाम से विशुद्ध अपने शिर को निश्चित ही दूषित करता है।

(७५२) माया से केवल क्षोभ–ससर्ग से अन्धा होने वाली ईश्वर से इतर मे कौन देवत्व की श्रद्धा करेगा?

(७५३) मुख कमल सदृश, रज्जु भुजंग सदृश, शुक्ति रजत तुल्य, स्थाणु पुरुष तुल्य—

(७५४) माया, इन्द्रजाल के सन्दर्भ मे प्रभवादि नयोदित जो कुछ देव जडो द्वारा भ्रान्ति शक्ति से कल्पित किये गये—

(७५५) उन्हें प्रतिमाओ मे स्थापित करने मे कौन सक्षम होता? मारुत को मुट्ठी मे ग्रहण करने की सामर्थ्य किसमें देखी जाती है?

(७५६) शिल्पियो द्वारा कल्पित अपने तुल्य अवयवों वाली प्रतिमाओं में सन्निहित वे (देव) क्या कर्म करने म समर्थ हो सकते हैं?

(७५७) स्फुरित होते कलिकाल मे आज क्या वे जन रहते? तेज एव तिमिर की समान स्थान पर स्थिति नहीं होती है।

(७५८) इस प्रकार कुतर्कोक्ति द्वारा उस पापी दुरात्मा ने प्रतिमाओं से राजा के देवत्वभाव को निरस्त कर दिया।

(७५९) उस समय सज्जित सुरासुरों के समर में निश्चय ही असुर जीत गये थे, नहीं तो—

(७६०) देवताओं की सब प्रतिमायें छिन्न के समान विध्वस्त कर दी गयीं किन्तु कभी भक्तों के लिये विघ्न नहीं देखा गया।

५९६ (१) सूहभट्ट : सूहभट्ट जन्मना भट्ट ब्राह्मण था। उसका नाम सिंहभट्ट था। उसकी शिक्षा एवं दीक्षा ब्राह्मण तुल्य हुई थी। वह प्रतिभाशाली था, महत्वाकांक्षी था। अपने परिश्रम से उन्नति कर सिकन्दर का सेनापति बन गया था। वह सैय्यद मीरमुहम्मद हमदानी के सम्पर्क मे आया। उसका स्वामी सिकन्दर मीर हमदानी का भक्त था। स्वामी का अनुकरण कर वह भी उसका भक्त हो गया। मीर हमदानी मुसलिम धर्म प्रचार हेतु काश्मीर में आया था। राज-सेनाओ का मुसलिमकरण किया जाने लगा। प्रतीत होता है कि सूहभट्ट इस नवीन प्रचारक एव प्रवर्तक धर्म प्रवृति के कारण अपने पद के लिये संशकित हुआ होगा। राजपद धर्म की अपेक्षा प्रिय लगा। उसने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया। मीर सैय्यद हमदानी ने उसे मुसलिम धर्म मे दीक्षित किया (बहारिस्तान शाही पाण्डु० : २४)। उसका नवीन नाम मलिक सफुद्दीन रखा गया। हैदर मल्लिक लिखता है सिंहभट्ट (सूहभट्ट) सुलतान का सिपहसालार था। मुसलमान होने पर सुहभट्ट ने अपनी ब्राह्मण कन्या का विवाह मीर हमदानी से कर दिया (तारीख : सैय्यद अली : पाण्डु० : १४ बी०)। विवाह तथा रक्त-सम्बन्धों के कारण काश्मीर में हिन्दू राज्य से मुसलिम राज्य स्थापित हुआ था। पुनः यहाँ नीति राजनीति के स्थान पर धार्मिक जगत मे अपनायी गयी। विवाह तथा रक्त-सम्बन्धों से धार्मिक ढाँचा तोड़ने का प्रयास किया जाने लगा। काश्मीरी जैसे शाहमीर के राजनीतिक पाश मे पड़कर चाह कर भी कुछ नहीं कर सके वही अवस्था काश्मीर मे हुई। हिन्दुओं पर सूहभट्ट का अत्याचार आरम्भ हुआ तो वे सूहभट्ट अथवा राजसत्ता के विरुद्ध आवाज न उठाकर हिन्दूकुश होकर बैठे रहे, अत्याचार सहते रहे और उनका नाश हो गया। पुरातन राज्य के साथ पुरातन धर्म मे भी

काश्मीर मे आखें मूँद ली। भाग्य को दोष देकर बैठ रहे।

फिरिश्ता लिखता है—'इन्ही दिनो उस (सिकन्दर बुतशिकन) ने एक ब्राह्मण को जिसका नाम शिवदेव था पदोन्नति कर प्रधान मन्त्री बनाया। इसलाम कबूल कर वह हिन्दुओ का इतना पीडक हुआ कि उसने सिकन्दर को प्रेरित किया कि वह आदेश प्रसारित करे कि काश्मीर मे केवल मुसलमान ही मकानो मे रह सकते है (पृष्ठ ४६४)।'

सूहभट्ट की उपमा मंगोल राजा गजन खा से दी जा सकती है। वह प्रारम्भ मे बौद्ध था। इसलाम ग्रहण करने के पश्चात् वह सबसे बडा मूर्ति-नष्टकर्ता हो गया। प्रचार के उत्साह मे वह मानवीय कट्टरता की सीमा पार कर गया था। इसी प्रकार नि.सन्देह सूहभट्ट कट्टरता, क्रूरता एवं मानवता की सभी सीमाओ का उल्लघन करता काश्मीर को पूर्णतया मुसलिम धर्म मे दीक्षित करने मे सफल हुआ था।

सूहभट्ट की परसियन इतिहासकारो ने बडी तारीफ लिखी है। यह स्वाभाविक भी था। काश्मीर को मुसलिम-धर्म बहुल बनाने मे उसका बहुत बडा हाथ था। यदि हिन्दू लेखको ने सूह को क्रूर, अन्यायी, धर्मद्वेषी, ब्राह्मणद्वेषी लिखा है तो परसियन इतिहासकारो ने उसे न्यायप्रिय चित्रित किया है। उसकी न्यायप्रियता एव ईमानदारी की अनेक गाथाएँ उसके नाम के साथ जोड दी गई हैं। उनमे कुछ का यहाँ वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा।

दो घोडियो के दो मालिक थे। घोडी ने बच्चा दिया। मालिक उसे अपना बच्चा अपना बच्चा कहने लगे। विवाद सैफुद्दीन अर्थात् सूहभट्ट के पास गया। सूहभट्ट ने घोडी के बच्चे को नदी के पार रखा। इस पार दोनो घोडियाँ लायी गई। जिस घोडी का बच्चा था वह पानी मे कूद कर अपने बच्चे के पास जाने लगी। दूसरी तट पर खड़ी रही। सूहभट्ट ने जो घोडी पानी मे कूदी थी, उसके मालिक को बच्चा दे दिया।

दूसरा उदाहरण एक वृद्ध कातिब का उपस्थित किया गया है। एक वृद्ध कातिब था। उसकी औरत जवान थी। जवान औरत ने कातिब के बाद एक जवान मर्द से शादी कर ली। उसे दो शौहर हो गये। दोनो शौहरो मे विवाद उपस्थित हुआ। किसकी बीबी है? विवाद सूहभट्ट के सम्मुख गया। सूह ने एक कलमदान उठा कर औरत को कलमदान मे पानी डालने के लिए दिया। औरत ने ठीक ढंग से कलमदान मे पानी डाला। सूहभट्ट समझ गया यह औरत कातिब की थी। कलमदान मे अच्छी तरह पानी डालना जानती थी। सूहभट्ट ने फैसला दिया। औरत कातिब की थी।

तीसरा उदाहरण और दिया गया है। एक धोबी था। वह गरीब था। उसने रुपया पैदा करने का एक नया उपाय सोचा। अपने घर मे सेंध लगा दिया जाय। कपडा जो धोने के लिए आया था उसके लिये शोर कर दिया जाय कि चोरी हो गया। इस प्रकार वह कपडो को बेच कर कुछ पैदा कर लेगा। धोबी ने एक दिन सेध लगायी। धोबी ने चौकीदार को चोर समझ कर शोर किया। सब लोगो ने समझा धोबी के घर मे चौकीदार नकब लगाने वाला था। बेकसूर चौकीदार ने बहुत सफाई दी। परन्तु मौका पर पकडा गया था। अतएव कोई उसे बेकसूर मानने के लिए तैयार नही था। विवाद सैफुद्दीन उर्फ सूहभट्ट के सम्मुख गया। लोग विवाद निश्चय करने मे असमर्थ हो गये। सुहभट्ट ने अपनी न्यायप्रियता का परिचय दिया। अपने नौकर को समझाया। वह बीमार पडा। उसे मृत घोषित कर दिया गया। चौकीदार और धोबी दोनो को कैदखाना मे डाल दिया।

ताबूत मे नौकर का जनाजा सुन्दर कफन में लपेट कर रख दिया गया। धोबी और चौकीदार को हुक्म दिया गया वे ताबूत को नौकर के घर पामपुर मे ले जाकर दफन कर दें। जनाजा लिए बरफ और कीचड से दोनो जा रहे थे। धोबी ने चौकीदार से कहा। बेकार हम लोग गिरफ्तार किये गये हैं। कफन हम बाँट लें। नौकर ताबूत में मुर्दे के समान सोया सब बात सुन रहा था। वह ताबूत से उठ खडा हुआ। उसने सैफुद्दीन से सब बातें कही। धोबी को सजा

विहाय राज्यकर्याणि प्रजाभाग्यविपर्ययात्।
देवानां प्रतिमाभङ्गे राजारज्यदहर्निशम् ॥ ५९७ ॥

५९७ प्रजाओं के भाग्य विपर्यय[1] के कारण राज्यकार्यों को त्याग कर देवों की प्रतिमा भग[2] करने मे राजा अहर्निश रुचि लेने लगा।

पापिनां पापमूलोऽभूद् भूभृतामनयद्रुमः।
हर्षदेवतुरुष्कोऽभूद् यस्य प्रागङ्कुरायितः ॥ ५९८ ॥

५९८ पापियों के पाप का मूल राजाओं की अनीति का द्रुम तुरुष्क हर्षदेव[1] जिसके पहले अंकुरित हुआ था।

दी गई, चौकीदार छोड दिया गया (पीर हसन पृष्ठ १६८–६९ उर्दू अनुवाद)। किन्तु पीर हसन किसी आधार ग्रन्थ का उल्लेख नहीं करता।

पाद टिप्पणी •

५९७ (१) भाग्य विपर्यय कल्हण कर्मवाद का समर्थन करते करते अन्त मे भाग्यवादी बन जाता है। शुभाशुभ कर्मों और उनके परिणामो म दृढ विश्वास प्रकट किया है। जोनराज का आदर्श कल्हण था। उसने कल्हण की ही वाणी यहाँ दुहराई है। राजा मे मत विपर्यय का कारण कल्हण ने प्रजा की कुकृति दिया है (रा० २ ४५)। प्रजा के तीव्र पुण्योदय से उत्तम राजा की प्राप्ति होती है (रा० . १ · ३२५)। इसी सिद्धान्त को जोनराज ने अपने शब्दों मे रखा है। उसने प्रजा का दोष एव पुण्य न कह कर प्रजा का भाग्य विपर्यय यहाँ बताया है। काश्मीर म जो कुछ हो रहा था। उसके लिए जोनराज ने प्रजा का भाग्य विपर्यय माना है।

(२) प्रतिमा भङ्ग · फिरिस्ता लिखता है कि सुवर्ण एव रजत प्रतिमाएँ गला कर उनका सोना चाँदी बना लिया गया (ब्रिग० : ४ ४६४–६९)। हैदर मल्लिक लिखता है 'सुलतान काफिरो को मारने के लिए हिम्मत रखता था। बुतखाने अक्सर खराब करता था। जो काफिर अपने धर्म को सच्चा मानते थे उनके लिए जजिया मुकर्रर किया गया। (पाण्डु० . ४४)। उसनेजहाँ मन्दिर पाया, उन्हें नष्ट किया (वाकयाते काश्मीरी पाण्डु० · ४६–४७)।

पाद टिप्पणी :

५९८ (१) हर्षदेव : हर्ष का राज्यकाल काश्मीर मे सन् १०८९ से ११०१ ई० तक था। राजा कलश का पुत्र था। कलश काश्मीर का सन् १०६३ से १०८९ ई० तक राजा था। कल्हण के शब्दो मे हर्ष शक्तिशाली अति रूपवान् युवक था, साहसी था और ललितकला पारगत था। वह अपने समय का महान् सगीतज्ञ मेवाड के राणा कुम्भा के समान था। वह गीतकार भी था। उसने जिन गीतो की रचना की थी, वे कल्हण के समय तक काश्मीर मे गाये जाते थे। किन्तु वह परस्पर विरोधी प्रकृतियो, प्रवृत्तियो एव असगत कर्मो का साकार रूप भी था।

हर्ष के सैनिक अभियान, खर्चीले स्वभाव, ऐश-आराम के कारण राजकोश खाली हो गया था। फलस्वरूप राजा आर्थिक विपत्ति में पड गया। आर्थिक सकट दूर करने के लिये उसने देवोत्तर सम्पत्ति हस्तगत करने का विचार किया। मन्दिरो की सम्पत्ति लेने के पश्चात् उसने विविध धातु निर्मित मूर्तियो को द्रवित कर धन सग्रह किया। देवप्रतिमा भग पाप समझा जाता था। अतएव उसने एक नया उपाय निकाला। कल्हण उसका मर्मस्पर्शी वर्णन करता है—

'उदयराज को देवोत्पाटन नामक पद पर नियुक्त किया। उसका काम देव मन्दिर लूटने के पश्चात् धातुनिर्मित मूर्तियो को मन्दिर से प्राप्त करना था। देवप्रतिमायें सर्वप्रथम भ्रष्ट की जाती थी। इस प्रकार उनका देवत्व स्वत समाप्त हो जाता था। वे छिन्न भिन्न धातु मात्र रह जाती थी। इसके लिये नंगे,

पत्रायितो लवन्यानामुत्पिञ्जो दारुणोऽभवत्।
दुलचो म्लेच्छराजोऽभूद् यस्य पुष्पायितः सदा ॥ ५९९ ॥

५९९ लवन्यों[1] का दारुण षड्यन्त्र (पादप) पत्रवत् तथा म्लेच्छराज दुलच[2] जिसका पुष्पवत् हुआ।

देवेन्द्रमूर्तिभङ्गेच्छा यस्यासीत् तस्य भूभुजः।
म्लेच्छप्रेरणया नित्यं विप्लवः स फलायितः ॥ ६०० ॥

६०० देवमूर्ति भंग करने की जिसकी इच्छा थी म्लेच्छ (मुसलमानों) की प्रेरणा से उस राजा का वह नित्य का विप्लव[1] फलवत् हुआ।

अपाहिज गलित कुष्ठ भिखारियों को साधन बनाया गया। वे भिखारी मन्दिरों तथा मूर्तियों पर मल-मूत्र छिड़ककर उन्हें अपवित्र करते थे। धातु मूर्तियाँ इस प्रकार भ्रष्ट कर दी जाती थीं। प्रतिमाओं के पैरों में रस्सी बाँध कर कूड़ा-कर्कट से भरे गन्दे रास्ता से घसीटा जाता था। पुष्पों के स्थान पर मूर्तियों पर नंगे भिखारी तथा अवाञ्छनीय तत्त्व थूकते थे। हर्ष तुरुष्क ने अपने राज्य में एक भी ऐसा मन्दिर नहीं छोड़ा जो निष्प्रतिमीकृत न कर दिया गया हो। राजा हर्ष के अत्याचार से मार्तण्ड एवं रणस्वामी के मन्दिर ही बच गये थे। इसी प्रकार कल्हण के चाचा चम्पक तथा कुलश्री बौद्ध भिक्षु के अनुनय-विनय पर, भगवान् बुद्ध की दो विशाल बुद्ध प्रतिमायें बच गयी थी (रा० : ७ : १०९१-१०९७)।' कल्हण ने हर्ष के लिये तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया है जोनराज ने भी 'तुरुष्कहर्ष' शब्द उक्त पद में दुहराया है (रा० : ७ : १०९५)।

पाद-टिप्पणी :

५९९. (१) लवन्य द्रष्टव्य : टिप्पणी : श्लोक : १७६, ५६, ८०, १७६, १७७, २५२, २२७-२२९, २५८-२६०, २६७, ३०१, ३०९, ३३९।

(२) दुलच : द्रष्टव्य : श्लोक. १४२, १४५, १५४-१५६, १५९-१६३, २३२।

पाद-टिप्पणी :

६०० (१) विप्लव : काश्मीर मण्डल में मन्दिर तथा प्रतिमा भंग जिस व्यापक रूप से किया गया था। उसे विप्लव कहना ही संगत होगा। प्रतिमा एवं मन्दिर नष्ट कर ही शान्त नहीं रह गये बल्कि उसे अति उग्र करने के लिये काश्मीरस्थ नव मुसलिम तथा विदेशी मुसलमानों ने किया जो दल के दल खुरासान, ईराक, ईरान तथा अफगानिस्तान तथा शेष भारत से राजनीतिक परिस्थितियों के कारण, आश्रय किंवा शान्त आवासीय जीवन यापन के लिये प्रवेश किये या कर रहे थे।

फिरिस्ता लिखा है—'अन्त में इसने इस पर जोर दिया कि सब स्वर्ण तथा रजत प्रतिमायें तोड़ दी जाय और उन्हें गलाकर उनसे प्राप्त धातु से मुद्रायें ढाली जायें (५६५)'। वास्तव में मन्दिर तथा मूर्ति भंग का कार्य किंवा विप्लव जिस बड़े पैमाने पर काश्मीर में कुछ ही वर्षों में किया गया, उस प्रकार विश्व के किसी भी देश में नहीं हुआ है। जोनराज ने विप्लव शब्द का उचित प्रयोग किया है। काश्मीर की यह सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति थी। क्रान्तियाँ राज परिवर्तन करती हैं किन्तु इस महान् विप्लव ने काश्मीरी संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं राजनीतिक ढाँचे का आमूल परिवर्तन कर दिया। उसने काश्मीर का भूगोल बदल दिया। काश्मीर को एक विशाल ध्वंसावशेषों के संग्रहालय रूप में परिणत कर दिया।

मीर मुहम्मद हमदानी का सन् १३९३ ई० में काश्मीर आगमन हुआ था। उसने काश्मीर में १२ वर्ष निवास किया (वाकयाते काश्मीर पाण्डु० : ४६ बी०)। इसी समय जलालुद्दीन बुखारी ने भी काश्मीर में प्रवेश किया। दोनों के साथ उनके मुरीदों का काफिला था। ख्वाजा सदरुद्दीन खुरासानी तथा

सैय्यद मुहम्मद नूरिस्तानी भी इसी समय काश्मीर आये। उन्होंने काश्मीरी स्थापत्य के स्थान पर मुस्लिम स्थापत्य के आधार पर जामा मसजिद आदि का निर्माण आरम्भ किया (वाकयाते काश्मीर: पाण्डु०: ४७)। सिकन्दर के राज्याभिषेक सन् १३८९ ई० के चार वर्ष पश्चात् ही उक्त दोनो उग्र धार्मिक नेताओ का काश्मीर मे आगमन हुआ था। सिकन्दर स्वय अपरिपक्व बुद्धि का युवा था। वह विदेशी धर्म-प्रचारको के प्रभाव मे सरलतापूर्वक आ गया। जोनराज ने स्पष्ट लिखा है कि सिकन्दर मीर हमदानी का शिष्य हो गया था। शिष्य गुरु की आज्ञा का अन्धविश्वासियो के समान पालन करता है, वह अपनी भावुकता मे विवेक त्याग देता है। सिकन्दर के पूर्वकालीन सुलतान वयस्क थे, परिपक्व बुद्धि के थे। उनके सम्मुख जब भी कभी इस प्रकार की बातें आई तो उन्होंने खुलकर विरोध किया। किसी का साहस हिन्दुओ को पीडा पहुँचाने, मन्दिर तथा प्रतिमा भग करने का नहीं हुआ। जोनराज ने सिकन्दर के पूर्ववर्ती सुलतानों की इस नीति का स्पष्ट वर्णन कर उनकी सराहना की है।

सिकन्दर के पूर्ववर्ती सुलतानो ने काश्मीर में वैवाहिक सम्बन्ध किये थे। उनकी स्त्रियाँ हिन्दू परिवारो की थी। वे अपने साथ सुलतान के घर मे अपनी परम्परा के साथ आयी थीं। उन्हें अपनी जनता, अपने लोगो से प्रेम था, निर्माणों के लिये गौरव था। परन्तु सिकन्दर का द्वितीय विवाह ओहिन्द के मुसलिम शासक की कन्या से हो गया। सुलतानों के घर में प्रथम बार गैरकाश्मीरी महिला का प्रवेश हुआ था। जिस प्रकार मुगल वंश में नूरजहाँ के प्रवेश के पश्चात् ईरानी प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता गया उसी प्रकार ओहिन्द की कन्या मेरा के सुलतान की रानी बनने से गैरकाश्मीरी मुसलिम प्रभाव का प्रवेश सुलतान के घर मे हो गया। बात यहाँ तक बढ़ी कि सुलतान ने रानी शोभा को पुत्रो को निर्वासित कर दिया जो हिन्दू स्त्री मे थे। यद्यपि वे भी मुसलमान ही थे। इस प्रकार कट्टरपन्थियो से सिकन्दर घिर गया था। उसका जीवन प्रारम्भ मे एक न्यायप्रिय, धर्मनिरपेक्ष तुल्य अपने पूर्व सुलतानो की परम्परा पालन करते हुए आरम्भ हुआ परन्तु तत्कालीन स्थिति के प्रवाह मे बहता चला गया। सूहभट्ट सिकन्दर का मन्त्री था। वह भी मुसलमान हो गया। सूहभट्ट की कन्या का भी विवाह मीर हमदानी के साथ हो गया। तैमूर के जिहाद, लूट-पाट, हत्याओ की दर्दनाक कहानिया ताजी थी। इन सबका परिणाम विप्लव था।

पीरहसन लिखता है—'सिकन्दर बुतशिकन अलम तशद्दुद बुलन्द करके इन तमाम बुतखानो को बुनियाद से उखाडकर ज़मीन के साथ हमवार कर दिया। बाज मन्दिरो के पत्थरो से मसजिद और मकबरे तामीर कर दिये। सबसे पहले मार्तण्ड सूर के मन्दिर विसमार करने के लिये जो राजा रामदेव की तामिरात स मटन के टीला पर यादगार था। एक साल तक बराबर कारखाना जारी रखा लेकिन खराब न कर सका। बिल आखीर इसके बुनियाद से कुछ पत्थर निकाल लिये। बुतखाना के बीचो बीच इन्धन और लकडियाँ जमा करके आग लगा दी। मन्दिर की शक्लें और तसवीरें जो दीवारो पर तलाय मुल्म्मा की गयी थी तबाह और बरबाद कर दी। उसके आसपास की चहारदिवारी जड से उखाड फेकी।

'इसी तरह वेजबारह के बुतखाने जो तयादाद में ३०० से ज्यादा थे जमीन के साथ एक सा कर दिये। खासकर विजयेश्वरी का मन्दिर जो तमाम बुतखानो मे नामी गरामी था जड से उखाड फेंका। कहा जाता है इस मन्दिर के तोडने के वक्त आग के बडे बडे शोले पैदा हुए। जिन्हे सुलतान के अराकीन दौलत देखते थे। हिन्दू लोग इसे मावदो की करामात पर मामूल करके कुछ पढ़ते थे। लेकिन सुलतान इसे शैतानी चीज जानकर इसकी तखरीब के दरपै रहा। कहते हैं कि बुतखाना की बुनियाद से एक पत्थर जाहिर हुआ। जिस पर सिकन्दर के रस्म अलखत में यह हर्फ कुन्दा थे—'विसिम अल्लेति मन्त्रेण नश्यन्ति विजयेश्वरा।' सुलतान ने इस मन्दिर के पत्थरो से

वेजवारा की जामा मसजिद तामीर करायी (२ : १७९ : उर्दू अनु० : १६०–१६१)। यहाँ उसने एक खानक़ाह तैयार कराई। अवाम उसे खानक़ाह विजयेश्वर कहा करते थे, (२ : १७९, उर्दू अनु० : १६१)। किन्तु तुहफ़ातुल अहवाह (पाण्डु० : १३८ बी० तथा तारीख सैय्यद अली : पाण्डु० : १३ बी०) का मत है कि सिकन्दर ने मन्दिरों को पूर्ण नष्ट नहीं किया था। उसे तोड़ा और लूटा था।

पीर हसन लिखता है—'परिहासकेशव और मुक्ताकेशव के मन्दिर मिसमार करा दिये। इनके पत्थर दरया के बन्दों में सर्फ़ कर दिये और यहाँ पत्थर का एक स्तम्भ था जो बाज़ के ख़याल में पचास हाथ और बाज़ के नज़दीक पचास गज़ का था तोड़ डाला। इस बुतखाना की बुनियाद से एक सन्दूक बरामद हुआ। उस पर ताम्बे के एक पत्तर पर लिखा हुआ पाया गया कि इतनी मुद्दत के बाद इस मन्दिर को तोड़ने वाला एक सख्श सिकन्दर नामी बादशाह होगा और बुद्ध अवतार की शकल में जो इस सन्दूक में है तोड़ डालेगा' (उर्दू अनु० : १६२)।

ज़फ़रनामा का हवाला देते हुए नारायण कौल ने लिखा है—'पोरसपोर (परिहासपुर) वीरान किया गया। मन्दिर के बुनियाद से आग की लपटें निकलीं जिसे सबने देखा। सभी प्रत्यक्षदर्शी इस घटना के साक्षी हुए। एक सन्दूक निकला। उसमें एक पत्र पर लिखा था कि इतने समय के पश्चात् सिकन्दर मन्दिर तोड़ेगा (पाण्डु० : पृष्ठ : ६८ ए०)।

'यहाँ तक कि शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो आदमी दीन इसलाम कबूल नहीं करेगा, वह इस मुल्क से भाग जाये। नहीं तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। कुछ बरहमन अपने बतन होने पर राजी होकर जान से हाथ धो बैठे। कहते हैं कि सुलतान ने जुनार (जनेऊ) में तीन खरवार आग में जला दिये।'''उन पर जज़िया आयद कर दिया। अहले हुनूद की तमाम किताबें इकट्ठी करके तालाब डल में गर्क करा दी और इन्हें मिट्टी और पत्थरों से पाट करके व तालन गर्क का बन्द पैदा कर दिया। इन दिनों इसे ईसावरी की सद कहते है। ईसा बरारी का मन्दिर ईशेश्वर मुनहदम कराके उसके पत्थर सद मजकूर में सर्फ़ करा दिये' (१६१)।

पीरहसन का वर्णन वाकयाते काश्मीरी पर आधारित है। उसमें उल्लेख मिलता है—'मशहूर है कि मुसलमान हुए ब्राह्मणों के तीन-तीन खर (जनेऊ) इकट्ठे हुए थे' (पाण्डु० : ४७)। 'तीन खर' का यहाँ अर्थ तीन गदहों के बोझ इतना जनेऊ एकत्रित हुआ था।

मन्दिरों को नष्ट करने के लिये बारूद का प्रयोग किया गया था। श्री स्तीन लिखते हैं—'काश्मीर में इतने समय पूर्व बारूद के प्रयोग के विषय में लोगों को सन्देह है। मुझे शंका नहीं है। अपितु इस पर विश्वास है।' इस तथ्य के विरोध में अनेक विद्वानों ने लिखा है कि यह गलत है। क्योंकि बारूद का उस समय तक आविष्कार नहीं हुआ था। किन्तु बारूद का आविष्कार सन् १३३० ई० में हो हो गया था। सन् १३४६ ई० में ग्रेसी के युद्ध में बारूद के द्वारा तोपों का प्रयोग किया गया था। सिकन्दर के गद्दी पर बैठने के ५९ वर्ष पूर्व बारूद का आविष्कार हो चुका था। आविष्कार के १६ वर्ष पश्चात् बारूद-चालित तोपें छूटने लगी थीं। सिकन्दर के पुत्र जैनुल आबदीन बडशाह के समय बारूद से चलने वाली तोपों तथा बन्दूकों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।

मध्ययुग में यह फैशन हो गया था कि कुफ्र का गढ़ ढहाने में मुसलिम शासक गौरव का अनुभव करते थे। उनके इस धार्मिक कार्य, एवं सेवा के लिये उन्हें गाज़ी की पदवी मिलती थी। तैमूरलंग का भारत पर आक्रमण उसके धार्मिक उत्साह एवं जिहाद का कारण था। तैमूरकालीन इतिहासकारों ने तैमूर द्वारा हिन्दू मन्दिरों तथा हिन्दुओं के क्रूरतापूर्वक वध तथा दास बनाये जाने का वर्णन किया है। सिकन्दर के शासन में, मुसलिम शासन में मन्दिर-भञ्जित काश्मीर धर्मोन्मादियों की आँखों में गड़ता था। एक यह भी कारण है कि उस धार्मिक भावनाओं से प्रेरित

मार्ताण्डविजयेशानचक्रभृत्त्रिपुरेश्वराः ।
भग्ना येनास्य को विघ्नः शेषभङ्गेन कथ्यते ॥ ६०१ ॥

६०१ जिसके द्वारा मार्ताण्ड[1], विजय[2], ईशान[3], चक्रभृत्[4], त्रिपुरेश्वर[5] भग्न कर दिये, शेपभंग द्वारा इसका क्या विघ्न हुआ।

कट्टरपन्थी काश्मीर मे प्रवेश करने लगे। उन्होने काश्मीर में विषाक्त वातावरण उत्पन्न कर दिया। भारत के बादशाह तथा कट्टरपन्थी मुहम्मद तुगलक के समय से ही काश्मीर की इस बुतपरस्ती के खिलाफ जिहाद करने के लिये भारतीय मुल्ला, मौलवी आदि को काश्मीर मे जाकर प्रचार करने के लिये अनुप्राणित करते रहे। सिकन्दर इन प्रभावो से बच नहीं सका। उस पर निरन्तर जोर पडता गया। उसके विमातृ भाई फिरोज् आदि काश्मीर से बाहर थे। सिकन्दर ने अपनी सिंहासन-रक्षा के लिये भी काश्मीर मे उपस्थित विदेशी तथा देशी मुसलमानो की सहानुभूति प्राप्त करना चाहा। उसने काश्मीर मे वही किया जो भारत मे अनेक मुसलिम बादशाहो ने अपने सिंहासन तथा राज्यरक्षा के हेतु किया था।

सबसे दु खद बात पुस्तको का नाश था। महाभारतकाल से काश्मीर मे नाना प्रकार के ज्योतिष, दर्शन, कला, ज्ञान, विज्ञान की पुस्तकें संगृहीत होती चली आयी थी। हिन्दूराज्यकाल में राजाओ ने भारतीय विद्वानो का काश्मीर मे आदर कर स्थान दिया था। सिकन्दर बुतशिकन ने समस्त पुस्तको को जलवा दिया। ऐसा बहारिस्तान शाही मे उल्लेख मिलता है। सिकन्दर ने शालीमार का तालाब हाक परगना मे बनवाया। काश्मीर के समस्त सस्कृत एवं काश्मीरी ग्रन्थो से तालाब भर दिया गया। वहाँ पर किताबें टिड्डियो के समान एकत्रित हो गयी थी। तालाब में उन्हें भरने के पश्चात् उस पर मिट्टी डाल दी गयी ताकि वे सड जायें (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : ४६–४७)। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि कितने बहुमूल्य पुस्तको का भण्डार, मानवो की अनुभूति, अभ्यास एवं बुद्धि की कहानी नष्ट हो गयी। बहारिस्तान शाही के वर्णन से प्रकट होता है कि किताबों की संख्या लाखो तक रही होगी।

पाद-टिप्पणी :

६०१. उक्त श्लोक संख्या ६०१ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७६२–६६७ अधिक मुद्रित है। उनका भावार्थ है—

(७६२) उसने श्री विजयेश को भंग कर दिया। इस कथा से उठा शोक शल्य प्रकरण के अनुरोध से सह रहे है। (प्रकरण के कारण सह रहा हूँ।)

(७६३) बार-बार सुनने एवं देखने वालो के श्रोत्र एवं नेत्र त्रस्त होते थे। तथापि उल्का निपतन से चक्रधर का भंग रुका नही।

(७६४) सिंहिका सुत द्वारा दण्ड पाकर मार्ताण्ड पुन' उपस्थित हुये किन्तु सूह द्वारा दण्ड प्राप्त कर नही।

(७६५) मर्दित रीतिमयी बृहद् बुद्ध की मूर्ति द्वारा सूहभट्ट ने राजा से निज नामाङ्कित मुद्रा निर्मित करायी।

(७६६) प्रत्यंग (पश्चिम) मुख जो भीमस्वामी नगर रक्षा हेतु प्राङ् (पूर्व) मुख हुए थे मूर्तिमर्दन से उस समय वे अन्तर्मुख हो गये।

(७६७) समन नाग के संहारक एवं पक्षशालियो का कर्तन करने वाले उसके समक्ष अति सम्भ्रम युक्त शारिका देवी हुई।

(१) मार्ताण्ड : द्रष्टव्य : परिशिष्ट।

(२) विजय : तबकाते अकबरी मे लिखा है—'उसने बहरारे (बिजब्रोर–विजवेहरा–विजयेश्वर) के प्रसिद्ध मन्दिर को गिरा दिया। उसकी नींव खोदकर जल तक गहराई गड्ढा खुदवा दिया (उ० : तै० : भा० : २ : ५१५)।' शहाबुद्दीन के प्रसंग मे वर्णन

करता हैदर मल्लिक ने लिखा है—'वेज सरारह् (विजयेश्वर) के मन्दिर को वीरान कर दिया (पृष्ठ : ४२)।' परसियन इतिहासकारो का विजयेश्वर मन्दिर भंग के विषय मे एक मत नही है। जोनराज का वर्णन इस संदर्भ मे स्पष्ट है।

विजयेश्वरपुर की स्थापना राजा विजय ने की थी। काश्मीर मे शारदा तीर्थ के पश्चात् यह दूसरा तीर्थ एवं पवित्र स्थान था। उत्तर मे शारदा तथा दक्षिण मे विजयेश्वर दोनो ही अत्यन्त पवित्र स्थान एव विद्या के केन्द्र माने जाते थे। परम्परा के अनुसार प्राचीन मन्दिर वितस्ता के वाम तट पर सौ गज पुल के दूसरी तरफ था। सम्राट् अशोक ने मन्दिर प्राचीन ईंटो के प्राकार के स्थान पर पाषाण प्राकार निर्माण कराया था। सम्राट् अशोक ने इस प्राकार के अन्दर अशोकेश्वर का मन्दिर निर्माण कराया था। प्राचीन विजयेश्वर का मन्दिरादि उनपर जियारतो और मसजिदो बनने के कारण लुप्त हो गया है। सन् १०८१ ई० मे राजा अनन्त जिस समय मन्दिर मे था, उस समय अग्निदाह के कारण मन्दिर नष्ट हो गया था। कलश ने कालान्तर मे मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। बडी मसजिद के आसपास मुख्यत' तथा यत्रतत्र प्राचीन मन्दिरो एव देवस्थानो के शिलाखण्ड बिखरे मिलते है। रतन हाजी की मसजिद के अन्दर प्राचीन मन्दिर का स्तम्भ तथा बाहर अधिष्ठान पडा मुझे दिखाई दिया था।

पीर हसन लिखता है कि विजयेश्वर मे ३०० से अधिक हिन्दू मन्दिर थे। वहाँ का विख्यात विजयेश्वर मन्दिर तोडा तो मिट्टी से आग निकलने लगी। उसकी नीव से एक शिलालेख निकला जिस पर लिखा था—'बिस्मिल्लेति मन्त्रेण विनश्यति विजयेश्वर' (पृष्ठ : १७९)। जोनराज जो स्वय आस्तिक ब्राह्मण था एवं सिकन्दरकालीन घटनाओ का प्रत्यक्षदर्शी था इसका कोई वर्णन नहीं करता। परसियन इतिहासकारों ने इस प्रकार के बयानको को जोडा है कि जो कुछ काश्मीर में मूर्ति एव मन्दिर भग हुए हैं, वह पूर्व-निश्चित था। ईश्वर का विधान था। उसके लिए सिकन्दर अथवा मुसलमान दोषी नहीं थे। विजयेश्वर मन्दिर पर जामा मसजिद का निर्माण कराया गया था। द्रष्टव्य श्लोक १००, १२२, १५४, ८८०।

(३) ईशान : शिव का अपर नाम ईशान है। पारस्कर गृह्यसूत्र (३ : १३ : ४) मे ईशान शब्द समिति के सभापति के लिये प्रयोग किया गया है। शिव के ४८ नामो मे एक नाम अमरकोशकार ने ईशान दिया है।

ईशानेश्वर वर्तमान ईशावर स्थान है। डल लेक के उत्तर पूर्व स्थित है। निशात बाग से उत्तर तथा शालीमार बाग से डेढ मील दक्षिण है। गुप्तगंगा का स्थान है। ग्राम के मध्य तथा सडक के पार्श्व मे शिला-मण्डित कुण्ड है। यही गुप्तगंगा का जलस्रोत है। कुण्ड के पृष्ठभाग मे ३० वर्ग फीट विस्तृत तथा आठ फीट ऊँचा एक टीला था। इस समय यह टीला केवल ३ फीट ऊँचा रह गया है। इसका अधिष्ठान अलंकृत पत्थरो का है। यही प्राचीन ईशेश्वर मन्दिर का ध्वंसावशेष है। स्थानीय पण्डितो का मत है कि सन्धिमति आर्य राजा द्वारा गुरु ईशान की स्मृति मे निर्माण किया गया था।

श्वेत जर्मन सिलवर पत्तरो से मण्डित एक मन्दिर सड़क पर से ही दिखायी पडता है। ईशाबर मे वैसाखी का उत्सव मनाया जाता है। इसदिन शालीमार तथा निशात बाग के फुहारे चलने लगते हैं।

कुण्ड एक चहारदिवारी के अन्दर है। कुण्ड भूमि के तल से काफी गहरा है। इस कुण्ड के पार्श्व मे एक ढँका और कुण्ड है। इस कुण्ड का जल बाहरी कुण्ड मे आता है। ढँके कुण्ड के जल मे कुछ शिव-लिंग तथा मूर्तियाँ रखी है। यही गुप्तगगा का पवित्र स्रोत है। कुण्ड जल बाहर निकलता रहता है। इस कुण्ड को आइने अकबरी ने सूर्यसर लिखा है (जेरेट ' ३६०)। कुण्ड के पृष्ठभाग के दिवाल मे एक छोटा द्वार लगा है। उससे भीतर जाने पर एक मन्दिर मिलता है। मन्दिर के पार्श्व मे धर्मशाला जैसी एक छोटी इमारत बनी है। मन्दिर द्वार के सम्मुख बरामदा है। ईशावर स्थान प्राचीन काल से ही गुरेश्वरी के समान पवित्र एवं तीर्थस्थान माना जाता था। ईशावर अभिनवगुप्त की जन्मभूमि है।

सुरेश्वरीवराहादिप्रतिमाभङ्गकर्मणि ।
अकम्पत भियेवोर्वी नास्य सर्वङ्कषा तु धीः ॥ ६०२ ॥

६०२ सुरेश्वरी[1], वराह[2], आदि प्रतिमाओं का भंग करते समय भय से पृथ्वी कम्पित हो गयी न कि इसकी सर्वङ्कषा बुद्धि ।

इसे आज कल इशब्रोर अथवा ईशावर कहते हैं। आइने अकबरी मे अबुलफजल ने इसका उल्लेख किया है। 'वर' शब्द काश्मरी शब्द 'ब्रोर' का संक्षिप्त रूप है। वह भट्टारक संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। वैशाखी के दिन इस तीर्थ की यात्रा की जाती है (द्रष्टव्य : रा० : १ : ३८, १२२, २ : ८२, ११२, १३४, ४ : २१२, ५ : ३७)।

पाद-टिप्पणी :

६०२ (१) सुरेश्वरी : द्रष्टव्य ५२, ८, ३।

(२) वराह : वराहमूल, वाराहमूल, वराह, वाराह पाठभेद मिलते हैं। सोमदेव ने कथासरित्सागर में लिखा है। भगवान ने स्वयं वाराह क्षेत्र को पवित्र किया था (७ : ५ : ३७)। क्षेमेन्द्र ने वाराह को कोट विहार के समीप लिखा है। वाराह माहात्म्य मे वाराह क्षेत्र की पवित्रता, तीर्थादि के विषय मे विस्तार से उल्लेख मिलता है। वाराहमूला का स्थान बनिहाल दर्रा के समान काश्मीर उपत्यका मे मुख्य प्रवेश मार्ग उत्तर-पश्चिम से था। प्राचीन काल म द्रग अर्थात् द्वार, सैनिक चौकी थी। प्राचीन द्रग के कारण समीपस्थ नाला का नाम द्रगबल पड गया है। रावलपिण्डी से उरी श्रीनगर सडक पर वितस्ता के दक्षिण तट पर है। मूल वाराह का स्थान माना जाता है। उसके कारण नाम वाराहमूल पडा है। यहीं वितस्ता का जल बहाकर काश्मीर उपत्यका सतीसर मे हरी भरी भूमि म परिणत की गयी थी। वाराह ने यहीं पृथ्वी का उद्धार किया था। यही प्रत्यक्ष रूप से पुराकाल मे सतीसर का जल पर्वत काटकर बहाया गया था। काश्मीर भूमि जल शुष्क जाने पर आज जैसी हो गयी है।

एक और कथा है। बारहमूला शब्द वारिमूल का अपभ्रंश है। वारिमूल काबुल मन्वन्तरकाल के देवता हैं। वारि किंवा वार् शब्द का अर्थ जल है। मूल का अर्थ जड है। काश्मीर जिस समय सतीसर था, उस समय इसी स्थान से पर्वतीय चट्टान काटकर जल बाहर निकाला गया था। उसका उद्गम अर्थात् जल बहने का मूल स्थान यही था। कालान्तर मे वारि शब्द का अपभ्रंश वार हो गया। वारमूल रूप ले लिया। वारिमूल वारहमूला हो गया। इसी शब्द को यदि उलट दिया जाय तो 'मूल वाराह' नाम हो जायगा। नीलमत पुराण इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालता है।

प्राचीन काल मे वारहमूला वितस्ता के दक्षिण तट पर बसा था। इस समय दोनों ओर आबाद है। दोनों तट विशाल पुल से जोड दिये गये हैं। पुल प्राचीन काल मे भी था। वाराह क्षेत्र को बौद्धों के प्राचीन क्षेत्र हुष्कर (उशकर) से सम्बन्धित करता था। काश्मीर मे शिव, विष्णु एवं बुद्ध तीनों की पूजा होती रही है। दक्षिण तट पर हिन्दुओं और वाम तट पर बौद्धों का तीर्थ था।

वाराह क्षेत्र माहात्म्य मे वाराह क्षेत्र तथा उससे सम्बन्धित अनेक तीर्थस्थानों का उल्लेख किया गया है। कल्हण ने वाराह मन्दिर का कई बार उल्लेख किया है। जनश्रुति के अनुसार वारहमूला नगर के पश्चिम वितस्ता तट पर कोटि तीर्थ के समीप वाराह का मन्दिर था। कोटि तीर्थ म प्राचीनकाल की मूर्तियाँ तथा शिवलिंग मिले हैं। वे सब खण्डित हैं। आदि वाराह किंवा मूलवाराह मन्दिर को सिकन्दर बुतशिकन के समय तोडा गया था, जिसका उल्लेख जोनराज करता है।

परिहासपुर के प्रसिद्ध मन्दिरों तथा विहारों के भंग का उल्लेख जोनराज ने नहीं किया है। किन्तु परशियन इतिहास लेखकों ने परिहासपुर के मन्दिरों के नष्ट किये जाने का अस्पष्ट उल्लेख किया है (आइने

अकबरी जरेट : २ : ३६४; तबकाते अकबरी : ३ : ४३३)। बहारिस्तान शाही तथा तारीख हैदर मल्लिक मे नष्ट किये गये मन्दिरो का नाम नही दिया गया है। परन्तु आजम, नरायण कौल तथा हसन ने नष्ट किये गये मुख्य-मुख्य मन्दिरो का नाम दिया है।

(४) चक्रभृत् : कल्हण ने, चक्रभृत् का प्रथम उल्लेख (रा० . १ : ३८) म किया है (वायु० ७ : ३८) तथा महाभारत (स्वर्गा० : ४ : १२७) के अनुसार चक्रधारण करने के कारण विष्णु का नाम चक्रधर किंवा चक्रभृत् पडा है। चक्रभृत् शब्द प्राय: केशव तथा चक्रधर विष्णु के पर्यायवाची नाम है। यद्यपि विष्णु एव केशव एक ही है। चक्रधर विष्णु एव विजयेश शिव दोनो का मन्दिर विजयेश्वर ब्रिजब्रोर अथवा बिज बेहरा मे समीप-समीप था। चक्रधर एक अधित्यका पर था। उसे आजकल त्सक्दर कहते है। नागराज सुश्रवा के प्रसग (रा० : १ : २६१) मे इसका उल्लेख किया गया है। पुन: से इसका उल्लेख (रा० : ४ : १९१) मे राजा-ललितादित्य द्वारा इस स्थान पर रहट लगाने के प्रसग मे किया गया है। इसी प्रकार (रा० ८ : १७१) इसका उल्लेख प्राय: शुक के समय तक मिलता रहता है।

नीलमत पुराण (नी० : 129 = १७२, 130 = १७३, 131 = १७४, 1449 = १४९२, 1317 = १५३१) मे चक्रतीर्थ का उल्लेख किया गया है। उससे उसकी प्राचीनता एव पवित्रता पर प्रकाश पडता है। नीलमत पुराण चक्रधर को विष्णु का रूप मानता है। इस सम्बन्ध मे एक गाथा का वर्णन किया गया है (नी० : १००, 1166)। हर-चरित चिन्तामणि (८ : ६१) मे इसकी भौगोलिक स्थिति तथा रा० : ८ १७१ द्वारा स्थान का पता मिल जाता है। इस मन्दिर का वर्णन मख कवि के श्रीकण्ठचरित (३ : १२) म मिलता है। इसके समीपवर्ती नरपुर के अग्निकाण्ड के प्रसग म भी इसका उल्लेख किया गया है।

राजा उच्चल ने चक्रधर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। उसके समय (सन् ११०१–११११ ई०) मे स्थान अत्यन्त जीर्णावस्था मे था। चक्रधर मन्दिर का प्राकार मोटे काष्ठ का बना था। पत्थर के अभाव मे लकडी का प्रयोग किया गया था। उसमे सुन्दर द्वार बने थे। प्राकार अग्नि मे जल गया था। इस मन्दिर को सिकन्दर बुतशिकन ने तोडा था। प्रोफेसर ब्यूह्लर को यहाँ एक आयताकार घेरा का चिह्न मिला था। वह ४० वर्ग गज मे था। उसमे गड्ढो के चिह्न थे। ब्रिजब्रोर के अधोभाग मे वितस्ता के वाम तट पर एक मील दूर एक उदर (अधित्यका) पर यह देवस्थान था। आपत्तिकाल मे सैनिक सुरक्षा का स्थान बन जाता था। तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—'अन्य जगदर (चक्रधर) के मन्दिर का खण्डन करा दिया। वहाँ से बहुत बडी ज्वाला उठी। जिसे सुलतान (सिकन्दर) ने देखा, (उ० तै० : भारत : २ : ५१५)।

(५) त्रिपुरेश्वर : वर्तमान ग्राम त्रिफर है। डल लेक के उत्तर-पूर्व लगभग तीन मील दूर स्थित है। इस पवित्र क्षेत्र का उल्लेख कल्हण के राजतरंगिणी, नीलमत पुराण तथा माहात्म्यो मे पवित्र तीर्थस्थान के रूप मे किया गया है।

महादेव की तीर्थयात्रा के समय एक लघु स्रोतस्विनी त्रिपुरगंगा जो त्रिफर के समीप बहती है, वहाँ लोग पडाव करते है। अन्यथा इस तीर्थ को प्राय: लोग भूल गये हैं। क्षेमेन्द्र अपने दशावतार चरित मे त्रिपुरेश के ऊपर पडने वाले पर्वत का वर्णन करता है। यह स्थान क्षेमेन्द्र का प्रिय था। वह प्राय: यहाँ विश्राम करता था। यहाँ काव्य-रचना भी की थी। उसे त्रिपुरेश्वर शैल शिखर कहता है। जैनुल आबदीन के समय इस तीर्थ की यात्रा साधु लोग करते थे। त्रिपुरेश्वर मे भी ज्येष्ठेश्वर का देवस्थान था। मृत्यु-काल मे राजा अवन्तिवर्मा यहाँ चले आये थे।

सर्वावतार के चतुर्थ अध्याय मे एक माहात्म्य शिव ज्येष्ठनाथ अथवा ज्येष्ठेश्वर का है। इनकी पूजा त्रिपुरेश्वर मे होती थी। कथा है कि त्रिपुर का वध शिव ने जिस स्थान पर किया था। वह महादेव पर्वत के समीप तथा महासरित नदी वर्तमान मार के तट पर था। महादेव पर्वत शिखर त्रिफर के समीप पूर्व

श्रीसिंहभट्टकस्तूटवणिजौ श्लाघ्यतां गतौ।
यत्र सूहतुरुष्केण सुरागारमशेष्यत॥ ६०३॥

६०३ कोई भी पुर, पत्तन, ग्राम या वन नहीं बचा, जहाँ सूह तुरुष्क नेसुरागार का निःशेष[1] न कर दिया हो।

ओर से उठता है। यहाँ की आज भी यात्रा कतिपय पुराने पण्डित करते हैं। स्टीन का मत है कि 'अरंह' सरित का भी नाम महासरित अथवा मार था। वह डल लेक में जल लाने वाली मुख्य नदी है। कल्हण ने उसे उत्तर पर्वतीय सरिता लिखा है। श्रीवर (जैन० : १ : ४२१) के वर्णन से प्रकट होता है कि डल लेक में तिलप्रस्था नदी त्रिपुरेश्वर से बहती आती थी। वह 'अर' नदी की वह शाखा है जो त्रिफर के नीचे त्रिफर तथा शालीमार के थोडी दूरी को विभाजित करती है। वह कुछ और पश्चिम बहती डल लेक मे नेलवल नाला नाम से मिलती है। सुरेश्वरी तीर्थ की पर्वतमाला के उत्तर-पूर्व पर्वतमूल मे त्रिपुरेश्वर पडता है। नीलमत पुराण मे त्रिपुरेश्वर का उल्लेख किया गया है (नी० : १३२३)। इसका स्थान सुरेश्वरी तथा महादेव पर्वत के मध्य रखा गया है। पूजा का उल्लेख किया गया है। कल्हण इस अति पवित्र स्थान, मन्दिर तथा देवोत्तर का वर्णन करता है। यहाँ जैनुल आबदीन ने एक अन्नसत्र स्थापित किया था। राजा कलश ने त्रिपुरेश्वर के शिव मन्दिर का आमलक सुवर्ण का बनवाया था। राजा हर्ष की पत्नी वसन्तलेखा जो शाहीवंश की कन्या थी, उसने त्रिपुरेश्वर मे मठ तथा अग्रहार दान दिया था। रुद्रपाल की पत्नी देवी आसमती ने यहीं अपने नाम पर आसमती मठ की स्थापना की थी। सुय्यवंशी एकाग्र मदनादित्य के वंशज (सन् ९४९-९५०) के समय तक त्रिपुरेश्वर मे रहते थे। राजा अवन्तिवर्मा (सन् ८५५-६-८८३ ई०) ने त्रिपुरेश्वर का भद्रपीठ रजत का बनवाया था (रा० ५ : ४६, १२३; ६ : १३५, ७ : १५१, ५२६, ९५६; जैन० : ५ : १२३, ६ : १३५)।

पाद टिप्पणी :

६०३. उक्त श्लोक संख्या ६०३ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७७०-७७१ और मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(७७०) उसके भय से ही मानो विरोहित होते हुताश स्वयंभुव के लिये निकटस्थ द्रुम शोकान्वित नही हुए।

(७७१) भय से ही अपना जल प्रकाशित कर केवल सन्ध्या देवी त्रिकाल उसमे स्नान करने वाले उसकी अनुकम्पनीय बनी।

(१) शेष : फिरिश्ता लिखता है—'ब्राह्मणों के काश्मीर से बाहर चले जाने पर सिकन्दर ने आज्ञा दी। काश्मीर के सब मन्दिर गिरा दिये जायँ (५६५)।'

जनश्रुति है कि सिकन्दर मूर्तिभंग के सम्बन्ध मे लिदर उपत्यका होता अमरनाथ का हेमलिंग भग करना चाहता था। गणेशबल पहुचने पर उसने गणेश की पाषाण प्रतिमा भग किया। वह मन्दिर लम्बोदरी अर्थात् लिदर नदी के मध्य मे था। सिकन्दर ने मूर्ति के जानु पर आघात किया तो उसके टूटते ही रक्तधारा निकलने लगी। यह घटना देखकर सिकन्दर भयभीत हो गया और पुन मन्दिर भग त्याग दिया। अमरनाथ नही गया। पूर्वकृत पर पश्चात्ताप करने लगा।

सिकन्दर बुतशिकन विजयेश्वर होता लौटा। जहाँ वह शिलालेख मिला था जिसमे लिखा था। बिस्मिल्ला मन्त्र के साथ मन्दिर का विनाश होगा।

इसी प्रकार क एक और शिला लेख की घटना का तबराते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—'राजा बल-मादत (ललितादित्य ?) ने एक बहुत बडे देवहरे का शिनपुर (परिहासपुर ?) मे निर्माण कराया था। उसे ज्योतिषियों द्वारा ज्ञात हुआ था कि ११ सौ वर्ष उपरान्त सिकन्दर नामक बादशाह उसे नष्ट करायेगा और उदारिद (आदित्य) की मूर्ति जो उसमें है, का खंडन करायेगा। इस लेख को उसने ताम्रपत्र पर

कथाशेषीकृते सर्वगीर्वाणप्रतिमागणे ।
व्याधिमुक्त इवाऽऽनन्दं सूहभट्टोऽभजत्ततः ॥ ६०४ ॥

६०४ सर्व[1] देव प्रतिमा गणों की कथा शेष[2] कर दिये जाने पर रोगमुक्त सदृश सूहभट्ट ने आनन्द प्राप्त किया ।

लिखवा कर बक्स मे रखवा दिया था और उसे मन्दिर के नीचे गडवा दिया था । मन्दिर के खडन के समय वह लेख प्राप्त हुआ । सुलतान ने कहा कि—यदि यह लेख मन्दिर पर प्रकट होता तो मैं उसके नष्ट कराने का आदेश न देता (तॅ० उ० भारत भाग : २) ।

इसी घटना का उल्लेख फिरिस्ता करता है—'काश्मीर मे एक दूसरे स्थान पर राजा बुलनत (ललितादित्य १) द्वारा एक मन्दिर निर्माण कराया गया था । उसका विनाश एक अद्भुत घटना से देखा गया । वह जब गिरा कर जमीन के बराबर कर दिया गया और लोग जब उसकी नीव खोदने मे लगा दिये गये तो एक ताम्रपत्र मिला जिस पर लिखा था ।

'राजा बुलनर ने इस मन्दिर को निर्माण करने के पश्चात् अपने ज्योतिषियो से पूछा कि यह मन्दिर कबतक कायम रहेगा । उन्होने उसे उत्तर दिया एक राजा सिकन्दर होगा जो ग्यारह सौ वर्ष पश्चात् मन्दिर को नष्ट कर देगा तथा अन्य मन्दिरो को नष्ट कर देगा ।

'सिकन्दर चकित हुआ । यद्यपि वह उद्विग्न हो गया था । उसने कहा—हिन्दू भविष्यवक्ता सत्य भविष्यवाणी किये थे, इसे मिथ्या प्रमाणित करने के लिये यदि वे लोग ताम्रपत्र को मन्दिर की दीवाल पर लगा देते तो यह मन्दिर का यथावत इसलिये रखता कि हिन्दू भविष्यद्-वक्ताओं की बाते झूठी साबित होती (४६५–६६) ।'

एक घटना का और उल्लेख फिरिस्ता करता है—'परन्तु जग देव का मन्दिर गिराकर जमीन के बराबर कर दिया गया । उसकी नींव खोदने पर भूमि बहुत अग्नि तथा धूआँ उगलने लगी । उसे देखकर काफिरों ने कहा कि वह देवता के क्रोध का प्रतीक है । किन्तु सिकन्दर जो इस अद्भुत कार्य को देख रहा था अपने विनाशक कार्य से विरत नहीं हुआ । जब तक कि पूरा मन्दिर गिरा कर जमीन के बराबर नही कर दिया गया और उसकी नीव तक उखाड़कर न फेंक दी गयी ।

'उनमे एक मन्दिर महादेव का था । वह मन्दिर जिला पुञ्ज हुजरा मे था । उसे इस लिये नष्ट नही किया जा सका था कि उसकी नीव समीपवर्ती जल-स्तर से गहरी थी ।' (५६५)

पाद-टिप्पणी :

६०४. उक्त श्लोकसख्या ६०४ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ७७३–७७५ और मुद्रित है । उनका भावार्थ है—

(७७३) सिकन्दर ने शोभा की दोनो कन्याओ के पाणिग्रहण से सिन्धु एवं उदभाण्डपुर के स्वामियो को अनुग्रहीत किया । (विवाह किया) ।

(७७४) राजा ने शोभा पुत्र पिरूज् को सहचर बनाकर अपने देश के लिये उत्कंठित मीर सैय्यद मुहम्मद को मुक्त कर दिया ।

(७७५) मुसलमानो द्वारा दर्शित जाति द्वेषमय शास्त्रों उसे राजा ने (मूर्तिभगादि) सुना—ठीक है, दुष्ट के लिये क्या असाध्य है ।

(१) सर्व : जोनराज ने 'सर्व' शब्द का प्रयोग किया है । कथाशेष शब्द भी अत्यन्त मार्मिक एवं दुःखान्त-बोधक है । काश्मीर की सभी प्रतिमायें तथा मन्दिर नष्ट कर दिये गये थे । सिकन्दर के पश्चात् विशाल मन्दिरो के ध्वंशावशेष खड़े थे (बहारिस्तान शाही : २२ ए०, तारीखे सैय्यद अली पाण्डु० १३ बी० तथा ए०, तारीख हैदर मल्लिक : पाण्डु० ४४, फतूहात् कुबरीया पाण्डु० १७५ बी०) । हैदर मिर्जा ने स्पष्ट लिखा है कि 'सभी' मन्दिर नष्ट कर दिये गये थे (तारीख रशीदी : ४३२) । हैदर मिर्जा केवल श्रीनगर के मन्दिरो की संख्या १५० देता है । उसने सन् १५४०–५० ई० मे लिखा था । उसके पश्चात्

अपथ्याशीव बालः स सामन्तसहितस्ततः ।
जनानां जातिविध्वंसे सूहभट्टः कृतोद्यमः ॥ ६०५ ॥

६०५ अपथ्यभोजी बालक तुल्य वह सूहभट्ट लोगों के जाति विध्वंस' मे यत्नशील हो गया।

वाईन ने सन् १८३४ ई० अर्थात् ३०० वर्ष पश्चात् श्रीनगर के टूटे मन्दिरो की संख्या जो उस समय तक मौजूद थे ७०–८० देता है (ट्रेवेल : २ : ४०५)।

किन्तु अनेक परशियन इतिहासकार लिखते हैं कि सिकन्दर के पश्चात् तक मन्दिर थे। मिर्जा हैदर दुगलत (सन् १५४१–१५५१ ई०) जिसने काश्मीर का शासन किया था और शाहमीर के पश्चात् १६वाँ सुलतान राज्य पर अधिकार कर गया है सन् १५४६ ई० मे लिखता है—'काश्मीर की अत्यधिक आश्चर्य-जनक वस्तुयें इसके मन्दिर हैं। काश्मीर और इसके आसपास १५० से अधिक मन्दिर हैं। इनके जैसी इमारत की समानता समस्त दुनियाँ मे नही मिल सकती। यह कितने आश्चर्य की बात है कि यहा १५० मन्दिर हैं (तारीख रशीदी : ४२६)।'

इसी प्रकार अबुलफजल ने लिखा है—'काश्मीर के कुछ मन्दिर अच्छी हालत में हैं' (आइने अकबरी २ : १२४)। जहागीर ने लिखा है—'ऊँचे-ऊँचे मन्दिर जो जुहूर इसलाम के पूर्व के निर्माण है अभी तक हैं (तुजुकरे जहाँगीर २ · १५०)।' मार्तण्ड मन्दिर तथा अन्य स्थानों के मन्दिर आज भी भग्नावस्था मे खडे हैं। मन्दिर से अधिक महत्व उनम स्थापित मूर्तियो को तोडने मे था। मन्दिर नष्ट करना तो गोण बात थी। टूटे मन्दिर किंवा खण्डित मन्दिर देवप्रतिमाहीन खडे थे उन्हे उनकी विशालता देखकर ही उक्त सुलतानो तथा अबुलफजल तथा परशियन इतिहासकारों ने लिखा है। उनके लिखने का वह अर्थ नहीं है कि, मन्दिर अपनी पूर्वावस्था मे खडे थे, और उनमे देवता स्थापित थे।

फिरिस्ता लिखता है—'हिन्दू मन्दिरो की दीवालें गढ़े हुए पत्थरो की हैं। पत्थर एक दूसरे पर इस तरह समतल रखे गये हैं कि दूर से देखने पर एक ही ठोस पत्थर की दिवालें बनी मालूम होती हैं। वे पत्थर चूने और न गारों या लोहे के द्वारा एक दूसरे से नहीं जोडे गये हैं। बहुत से पत्थर ४० से ६० फीट लम्बे हैं। वे १३ फीट मोटे और चौडे हैं। प्रायः सभी मन्दिर वर्गाकार चहारदिवारियो से घिरे है। दिवालें ४०० से ५०० फीट लम्बी हैं और बहुत से भागो मे तो वे लगभग १०० फीट ऊँची हैं। वर्गाकार हाता के अन्दर मन्दिर है, जो शिलामय सोपानो मे, जो ठोस बडे खम्भों पर थमी है, बना है। प्रत्येक खम्भा एक ही पत्थर का है। इसके अन्दर प्रकोष्ट छोटे हैं। वे साधारणतया १२ फीट वर्गाकार हैं। उनकी दिवालो पर मानवी मूर्तियाँ बनी हैं। कुछ मे मुद्रा और कुछ से दुख का भाव लक्षित होता है। उनमे एक मन्दिर के मध्य मे सिंहासन एक समूचा पत्थर काटकर बनाया गया है, जो कि गुम्बज के शिखर के साथ है। काश्मीर के ये मन्दिर इतने शोभनीय हैं कि मैं अपने को उनकी कुछ रूपरेखा देने मे असमर्थ पाता हूँ। मैं समझता हूँ कि समस्त विश्व मे इस प्रकार की इमारतें न होंगी, (पृष्ट ४४५)।

फिरिस्ता आगे लिखता है—'काश्मीर की सब प्रतिमाओ को नष्ट करने के पश्चात् उसका नाम सिकन्दर बुतशिकन पडा था (४६६)।'

वाकयाते काश्मीरी के पढते ही यह निष्कर्ष निकलता है कि हिजरी ८०१ तक सब बुतखानो को तोडने के पश्चात् सिकन्दर जामा मसजिद बनवाने मे लग गया (पाण्डु० ४७)। इस वर्णन से काश्मीर मे मन्दिरो का ध्वस का कार्य इस समय तक समाप्त हो गया था और सिकन्दर बुतशिकन मसजिद खनखाह आदि निर्माण कार्यों मे लग गया।

पाद-टिप्पणी :

६०५ (१) जातिविध्वम : यहाँ जातिविध्वंस से धर्म परिवर्तन का अर्थ लगाना चाहिये। हिन्दुओंने अपनी जाति त्याग मुसलिम जाति अपना ली थी और हिन्दू से मुसलमान हो गये थे। जाति परिवर्तन शांति

जातिध्वंसे मरिष्यामो द्विजेष्विति वदत्स्वथ ।
जातिरक्षानिमित्तिं स तान्दुर्दण्डमजिग्रहत् ॥ ६०६ ॥

६०६ जाति ध्वंस करने पर मर जायेंगे इस प्रकार विप्रो के कहने पर (उनके) जाति रक्षा निमित्त दण्ड (जजिया)[१] लगा दिया ।

मे सूहभट्ट ने राज्य की पूरी शक्ति लगा दी थी । उन सभी उपायो का प्रयोग किया गया था, जिनके द्वारा जाति परिवर्तन सम्भव हो सकता था । बहारिस्तान शाही तो यहाँ तक वर्णन करती है कि इस कार्य के लिए सेना का भी प्रयोग किया गया (बहारिस्तान शाही पाण्डु० १२ ए०) ।

पीर हसन लिखता है—'इतने अधिक ब्राह्मण मुसलिम धर्म मे परिवर्तित किये गये अथवा मार डाले गये थे कि उनका यज्ञोपवीत तीन गधो के बोझ के बराबर था । वे सब फूँक दिये गये । हिन्दू धर्म की पुस्तके एकत्रित कर डल लेक में डाल दी गईं' (पृष्ठ : उर्दू : १६२) ।'

फिरिस्ता लिखता है—'उसने यह भी आज्ञा प्रसारित कर दी कि कोई व्यक्ति तिलक न लगाये और कोई स्त्री अपने पति के शव के साथ सती न हो, (४६४) ।

'अनेक ब्राह्मणो ने अपना धर्म त्याग दिया । बहुतो ने देशत्याग की अपेक्षा विषपान द्वारा आत्महत्या कर ली ।

'कुछ ब्राह्मण अपना देश त्याग कर चले गये और कुछ ने देशत्याग के भयावह दुःख की अपेक्षा मुसलिम धर्म स्वीकार करना श्रेयस्कर समझा (५६५) ।'

पाद-टिप्पणी :

६०६ (१) दण्ड : तात्पर्य जजिया कर से है । इस प्रथा के अनुसार मुसलिम राज्य मे प्रत्येक गैर मुसलमान को अपने धर्म मानने के लिए कर देना पड़ता था । अन्य धर्मावलम्बी का मुसलिम राज्य मे रहना दण्डनीय माना गया है । गैरमुसलिमों पर सिकन्दर बुतशिकन ने प्रत्येक व्यक्ति पर २ पल चाँदी जजिया कर लगाया था (म्युनिख : पाण्डु० : २४ बी०; बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : २६ बी०; हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ४४) ।

शाहमीर (सन् १३३९ ई०) के समय से लेकर कुतुबुद्दीन के समय (सन् १३८९ ई०) ५० वर्षों तक जजिया नही लगाया गया था । सिकन्दर का पुत्र जैनुल आबदीन सुल्तान हुआ तो उसने २ पल चाँदी कर से प्रति व्यक्ति घटा कर एक माशा चाँदी कर प्रति व्यक्ति कर दिया था । यह भी प्रायः वसूल नही किया जाता था । यह क्रम फतहशाह (सन् १५०५ ई०) तक चलता रहा । द्वितीय बार फतहशाह सुल्तान हुआ तो इसके प्रधानमन्त्री मूसा रैना ने शमसुद्दीन की प्रेरणा पर जजिया कठोरतापूर्वक पूर्ववत् लगा दिया । वह पूरा-पूरा वसूल किया जाने लगा । सुलतान इसलाम शाह (सन् १५३८–३९ ई०) के प्रधानमन्त्री दौलतचक के समय तक वसूली का क्रम चलता रहा ।

चक वंश मे काश्मीर का राज्य (सन् १५६३–१५७८ ई०) गया तो ४० पल प्रतिवर्ष जजिया वसूल किया जाता था । यज्ञोपवीत हो जाने पर प्रत्येक ब्राह्मण को यह कर देना पड़ता था । सुलतान युसुफ शाह (सन् १५७८ ई०) के समय जजिया कर उठा दिया गया । मुगल सम्राट् अकबर ने जब काश्मीर पर सन् १५८६ ई० मे अधिकार कर लिया तो उस समय काश्मीर मे जजिया हिन्दुओ से वसूल किया जाता था । याकूब शाह काश्मीर का सुलतान था । सम्राट् अकबर ने काश्मीर मे समस्त भारत के समान जजिया प्रथा उठा दी । इस प्रकार सिकन्दर बुतशिकन के समय से सम्राट् अकबर के समय तक लगभग २०० वर्षो तक हिन्दू जजिया अदा करते रहे केवल युसुफ शाह के समय ७ वर्षों तक वसूली बन्द थी ।

सिकन्दर ने हिन्दू-विरोधी नीति और हिन्दुओं को नष्ट करने के लिए जो नीति अपनायी, उसे समझने के लिए भारत मे फिरोज शाह तुगलक ने जिस हिन्दू-विरोधी नीति का अनुकरण किया था उसे समझना

तत्कालीन परिस्थिति समझने के लिए आवश्यक है। फिरोज खाँ तुगलक की मृत्यु सन् १३८८ ई० मे हुई थी और सिकन्दर बुतशिकन सन् १३८९ ई० मे गद्दी पर बैठा था। फिरोज शाह तुगलक के पूर्व ब्राह्मण जजिया से मुक्त थे। परन्तु सन् १३७६ ई० मे फिरोज शाह ने ब्राह्मणो पर जज़िया लगा दिया। उल्लेख मिलता है—'उसने ब्राह्मणो पर जजिया लगाया। जिन पर अब तक नही लगा था। उसने उलमा तथा मसहिक की सभा बुलाई। वे उस समय के विधिवेत्ता थे। उस (फिरोज तुगलक) ने उनसे कहा—ब्राह्मण बुतपरस्ती के घरो के केन्द्र हैं और बुतपरस्त काफिर उन पर निर्भर रहते हैं। उन पर पहले अवश्य कर लगाना चाहिये। उलमा तथा मशाईक ने राय दे दी कि उन पर जजिया लगाया जाय (टी० एस० ए० : पृष्ठ : ३८२)।'

तुगलक डाइनेस्टी मे मुहम्मद हुसन लिखते हैं—'ब्राह्मणो ने जोरो से विरोध किया। किन्तु उनके विरोध प्रदर्शन पर ध्यान नही दिया गया और न सुना गया। किन्तु ब्राह्मणो ने जब धमकी दी कि वे आग लगा कर मर जायँगे तथा उपहास से प्राण दे देंगे और कुछ ने करना आरम्भ किया, तो सुलतान का हृदय द्रवित हो गया। उसने उन पर जज़िया कुछ कम कर दिया। जजिया कम से कम ३ टक तथा ५० जतल प्रतिवर्ष लगाया गया।

'सुलतान मुहम्मद तुगलक के समय जो मन्दिर बनाये गये थे, उन्हें गिराने की आज्ञा दी गयी। वहाँ के लोग राजदरबार के सामने कत्ल कर दिये तथा उनकी किताबें जला दी जाँय यह भी आदेश दिया गया।—किताबे भी जहाँ वे कत्ल किये गये थे जला दी गयीं (पृष्ठ ४२६-४२७)।'

सिकन्दर के राज्य ग्रहण करने के केवल १३ वर्ष पूर्व की उक्त घटनायें हैं। भारत मे फिरोज तुगलक ने व्यापक रूप से उन सब साधनो का प्रयोग किया जो भारतीय जनता को मुसलमान बनाने मे सहायक हो सकते थे। काश्मीर तुगलक राज्य की सीमा पर था। जोनराज के वर्णन तथा पर्शियन इतिहासकारो से स्पष्ट होता है कि काश्मीर के सुलतान तथा फिरोज के साथ मैत्री सन्धि थी। काश्मीर के लोग दिल्ली आते थे, दिल्ली के लोग काश्मीर पहुँचते थे। सिकन्दर केवल ८ वर्ष की आयु मे सुलतान हुआ था। उसकी अपरिपक्व बुद्धि का लाभ उठाकर विदेश तथा भारतादि से आये मुसलमानो के धार्मिक उन्माद तथा प्रभाव के कारण काश्मीर मे भी हिन्दुओ पर अत्याचार आरम्भ हुआ।

जजिया जिम्मियो से उनके धर्म मानने के कारण कर लिया जाता था। यदि कर देनेवाला इस्लाम कबूल कर लेता था, तो वह कर से मुक्त हो जाता था। फिरोज तुगलक के पूर्व भी मुसलिम बादशाहो ने जजिया लगाया था। परन्तु वह कठोरतापूर्वक वसूल नही किया जाता था। फिरोज तुगलक प्रथम दिल्ली का सुलतान था, जिसने राज्ययन्त्र को धर्म प्रवर्तन करने का साधन बनाया। फिरोज तुगलक कट्टर मुसलमान था। वह धर्म के विषय मे किसी प्रकार की सहिष्णुता दिखाने के लिये उद्यत नही था। उसके पूर्ववर्ती शासक मुहम्मद तुगलक धर्म के विषय मे कट्टर होते हुये भी राजनीति एव राज्ययन्त्र को उतना धर्म प्रचार का साधन नही बनाया जितना फिरोज तुगलक ने। तैमूरलग के आक्रमण मे—जिसे उसने जेहाद की प्रेरणा से, भारत के मूर्तिपूजको को दण्ड देने के लिये किया था—इन सब विदेशी एव तत्कालीन प्रभाव से सिकन्दर अछूता नही रह सका। सिकन्दर का प्रारम्भिक जीवन धर्मनिरपेक्ष, सहिष्णु एवं काश्मीर परम्परा से प्रभावित था। अन्त तक रह जाता यदि तैमूर का उससे सम्पर्क न स्थापित होता और स्वय उसे अपने राज्य के लिये सकट की शका भारतीय सुलतान तथा विदेशी तैमूर से न होती।

मुसलिम धर्म के प्रचार एव प्रसार हेतु सुलतानो ने जहाँ मुसलिम राज्य स्थापित था, जहाँ की जनता गैर-मुसलिम थी, वहाँ के लिये हज़रत उमर द्वारा प्रस्तुत सहिता जो विश्व के समस्त मुसलिम सुलतानो के लिये जिम्मियो पर लागू करने के लिये आदर्श थी, उसके आदेशो का सिकन्दर तथा अलीशाह सुलतानो तथा उसके मन्त्री सूहभट्ट आदि ने काश्मीर मे कठोरता के साथ पालन किया। यह केवल धार्मिक भावना से

प्रसादप्राप्तिलोभेन भूपतेरुपजीविषु ।
ब्राह्मणत्वाधिकां जातिं त्यजत्स्वप्यविलम्बितम् ॥ ६०७ ॥

६०७ राजा के प्रसाद लोभ से भृत्यों[1] के ब्राह्मणत्व जाति शीघ्र छोड़ देने पर भी—

प्रेरित होकर किया गया था । जिस धर्म मे वे विश्वास करते थे, उसे वे अपने राज्य मे प्रचलित करना चाहते थे । यह प्राय सभी विदेशी, विधर्मी शासको ने अपने धर्म का प्रचार कर गैर-मुसलिमो को मुसलिम बनाकर विदेश मे अपनी सत्ता कायम करने के लिये किया है । ईसाइयो ने भी यूरोप, अमेरिका, आफ्रीका आदि मे पूर्वकाल मे यही किया था । अर्वाचीन काल मे भी उन्होंने चर्च को यही करने के लिये प्रोत्साहित किया है । दोनो के सिद्धान्तो एव आदर्शो मे अन्तर नही था । केवल कार्यप्रणाली मे भेद था । भारत तथा बरमा मे ईसाइयो ने इसी दृष्टि से प्रचार कार्य किया था ।

हजरत उमर ने ईसाइयो, यहूदियो तथा पारसियो के लिये जो संहिता बनायी थी, उसका अनुकरण कुछ कम या अधिक सभी मुसलिम देशो मे स्वीकार किया गया । उसे यहाँ सक्षेप मे उद्धृत कर देने से तत्कालीन परिस्थिति समझने मे सुविधा होगी । (१) मुसलिम राज्य में कोई नवीन मन्दिर नही बनाया जा सकता था । (२) वे पुराने मन्दिर जिन्हें नष्ट कर दिया गया है उनकी मरम्मत तथा उनमे पूजा नही हो सकती थी । (३) मुसलिम यात्री यदि मन्दिरो म रहना चाहे तो उन्हे रोका नही जा सकता था । (४) मुसलिम हिन्दुओं के मकान मे जितने दिनो तक रहेगा अपराध नही करेगा । (५) कोई मूर्तिपूजक गुप्तचर का कार्य नही कर सकेगा तथा उन्हे किसी प्रकार की सहायता तथा आराम नहीं दिया जा सकेगा । (६) यदि मूर्तिपूजको अथवा जिम्मियो का कोई व्यक्ति इसलाम की ओर मुडे तो उसे रोका नही जा सकता था । (७) जिम्मी मुसलमानो का आदर करने के लिये बाध्य था । (८) यदि जिम्मी एकत्रित हों और वहाँ कोई मुसलमान आ जाय तो उसे वहाँ रहने से रोका नही जा सकता था । (९) कोई गैरमुसलिम मुसलमानों की तरह वेशभूषा तथा पहनावा नहीं पहन सकता था । (१०) मुसलिम नामो से जिम्मी एक दूसरे को सम्बोधन नही कर सकते थे । (११) गैर-मुसलिम किंवा जिम्मी अश्वारूढ नही हो सकता था । (१२) तलवार तथा धनुष बाण कोई गैरमुसलिम नही रख सकता था । (१३) गैरमुसलिम अगूठी तथा मुहर की अगूठी नही पहन सकता था (१४) गैर-मुसलिम अर्थात् जिम्मी खुलेआम न तो मदिरा बेच सकते और न पी सकते थे । (१५) व इस प्रकार का वस्त्र धारण करेंगे जिससे उनमे तथा मुसलमानो मे स्पष्ट भेद मालूम हो जाय । (१६) गैरमुसलिम अपने मत का प्रचार मुसलमानो मे नही कर सकेंगे । (१७) मुसलमानो के समीप गैरमुसलिम अपना मकान नही बना सकेंगे । (१८) मुसलिम कब्रिस्तानो के समीप से जिम्मी अपना शव नही ले जा सकेंगे । (१९) मृतक के लिये जिम्मी अपने घर मे जोर से आवाज करते शोक नहीं कर सकेंगे तथा (२०) जिम्मी या कोई गैरमुसलमान किसी मुसलमान गुलाम को खरीद नही सकेगा (दिल्ली सल्तनत पृष्ठ ६१९ से उद्धृत) । यदि उक्त आदेशो का पालन गैरमुसलिम नही करेंगे तो उनकी और मुसलमानो की परस्पर स्थिति युद्ध की होगी ।

तत्कालीन मुसलिम नेता तथा सुलतान धर्म प्रचार की भावना से ओतप्रोत थे । अत उन्होने अपने प्रवर्तक धर्म प्रचार के लिये राज्ययन्त्र का पूर्णतया प्रयोग किया । काश्मीर के सुलतानो सिकन्दर तथा अलीशाह ने काश्मीरस्थित विदेशी मुसलमानो एव भारत के सुलतानो तथा तैमूर के प्रभाव के कारण काश्मीर मे भी उक्त नीति अपनायी ।

पाद टिप्पणी :

६०७ (१) भृत्यो : इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि सुलतान ने बन्धन लगा दिया था कि कोई गैर-मुसलिम राजसेवा म नहीं रह सकता था । सरकारी नौकर के लिए इसलाम कबूल करना अनिवार्य कर

श्रीसिंहभट्टकस्तूटवणिजौ श्लाघ्यतां गतौ।
श्रीनिर्मलाचार्यवर्यस्त्रिजगच्छ्लाघ्यतां गतः ॥ ६०८ ॥

६०८ श्री सिंहभट्ट[1] कस्तूट दोनों वणिक[2] प्रशंसनीय तथा श्री निर्मलाचार्यवर्य त्रिजगत्[3] में श्लाघ्य हुए।

त्यक्त्वा जातिग्रहं यत्तावन्यदर्शनसेविनौ।
शुष्कं तुरुष्कदण्डं च विन्यवारयतां यतः ॥ ६०९ ॥

६०९ जाति का आग्रह त्याग कर अन्य दर्शनसेवी वे दोनों शुष्क (अकारण) तुरुष्कदण्ड को निवारित कर दिये।

निर्मलाचार्यवर्यः स सर्वस्वं तृणवत्क्षणात्।
त्यजन् राजप्रसादेन न जातिं स्वामदूपयत् ॥ ६१० ॥

६१० निर्मलाचार्यवर्य ने सर्वस्व क्षण भर में तृणवत् त्यागते हुये राजप्रसाद प्राप्ति हेतु स्वजाति दूपित नहीं की।

स्वामी भृत्यापराधेन दण्डनीय इति स्थितेः।
सूहभट्टापराधेन कालो भूपेऽकरोत् क्रुधम् ॥ ६११ ॥

६११ भृत्य[1] के अपराध से स्वामी दण्डनीय है। इस स्थिति से सूहभट्ट के अपराध से काल[2] ने राजा पर क्रोध किया।

दिया गया था। जिस प्रकार फिरोज शाह तुगलक तथा औरंगजेब नव-मुसलिमो पर कृपा करते थे, वही नीति सिकन्दर ने काश्मीर मे अपनायी थी।

वाकयाते काश्मीर मे उल्लेख है—'इसलाम कबूल करनेवालो पर सुलतान ने कृपा की (पाण्डु० : ४५ ए०)।'

पाद-टिप्पणी :

६०८. (१) भट्ट : भट्ट शब्द नाम के आगे और पीछे दोनो ओर लगाने की प्रथा है।

(२) वणिक् : यहाँ कर्मणा वर्ण से अर्थ है।

(३) त्रिजगत् : स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक, भूलोक अथवा स्वर्गलोक, भूलोक एव पाताल।

पाद-टिप्पणी :

६१०. उक्त श्लोक संख्या ६१० के पश्चात् बंबई संस्करण मे श्लोक सख्या ७७८-७८१ और मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है :—

(७७८) 'सब लोगो के देखते हुए स्वर्ग से ब्रह्म-दण्ड गिरा—

(७७९) 'उससे उसके शरीर मे घाव हो गया और घाव के फैलते हुए कृमि कुल से छिन्न (सड) हो गया।

(७८०) 'भावी नरक क्लेश सदृश व्यथा का अनुभव करा कर प्राण उसे छोड दिये, उस दण्ड-धराधिप ने ब्रह्मदण्ड कृत दण्ड भोग कर—

(७८१) 'मिर खान को अपने पद पर अभिषिक्त कर तथा उसका अलीशाह नाम रखकर (सिकन्दर) यम घर गया।

पाद टिप्पणी :

६११. (१) भृत्य अपराध : परसियन इतिहासकारो ने सिकन्दर को दोपी न बना कर सूह-भट्ट नव-मुसलिम को सब अत्याचारो का दोषी बनाया है। जोनराज उसी का सैद्धान्तिक उत्तर देता है कि नौकर के अपराध के लिए स्वामी उत्तरदायी है।

(२) काल : तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'—अन्तिम अवस्था मे उसको ज्वर रहने लगा।'

ज्यायांसमभिषिच्याथ पुत्रं सेगन्धरो नृपः।
नन्दाष्टाब्दे ततो ज्येष्ठकृष्णाष्टम्यां व्यपद्यत ॥ ६१२ ॥

६१२ नृप सेगन्धर (सिकन्दर) ने ज्येष्ठ पुत्र को अभिषिक्त कर के ८६ वें (४४८६) वर्ष ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को मर गया।

फिरिस्ता लिखता है—'उसे भयकर ज्वर चढा। उसने अपने तीनो पुत्रो अमीर खाँ, शादी खाँ और मुहम्मद खाँ को बुलाया। उन्हे आशीर्वाद देते हुए, अमीर खा को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उसे अलीशाह की पदवी दी' (४६६)।

पाद-टिप्पणी :

६१२ श्लोक सख्या ४१२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक सख्या ७८४-७८६ अधिक मुद्रित है। उनका भावार्थ है :—

(७८४) 'निष्फल अर्चित उनका कोई रूप जो अमन्द आग्रही मन्द भक्तो को अनुगृहीत करने के लिये वन्दनीय अत्यधिक स्वच्छन्द कृपाशाली होता है। स्वशरीर की सहचरी गौरी रूपकरी अपनी शक्ति को अव्यक्त करते देव स्वयभू आप लोगो को मुक्ति-पुरस्सरी मुक्ति (भोग) प्रदान करे।

(७८५) 'अन्य राजाओ के आख्यान रूप पर्वत शृङ्ग पर भ्रमण करने से श्रान्त मेरी वाणी (अब) शाहीखान के वृतान्त रूप समतल शिखर पर विश्राम करे।

(७८६) 'उसके गुण रस से श्लाघ्य मेरी वाणी का (आप लोग) पान करें सुगन्धित घनसार से कूप-जल भी मनोरम होता है।

जोनराज के अनुसार उसकी मृत्यु लौकिक संवत् ४४८९ वर्ष = कलि ४५१४ = सन् १४१३ ई० = विक्रमी सम्वत् १४१० = शक १३३५ ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को हुई थी। कतिपय परसियन इतिहासकारो ने उसकी मृत्यु २२ मुहर्रम हिजरी सन् ८१६ = सन् १४१३ ई० दिया है। बहारिस्तान शाही मृत्युकाल ८१६ हिजरी (पाण्डु० ३७ ए०), फिरिस्ता हिजरी ८१९ = सन् १४१६ ई० (पृष्ठ ४६६), हैदर मल्लिक ८२१ हिजरी = सन् १४१८ ई० (पाण्डु० ३१), बीरबल कचरू हिजरी ८२० = सन् १४१७ ई० (पाण्डु० ७०), इन्साइक्लोपीडिया इसलाम मे सन् १४१० ई० (२ : ७९३), सैय्यद वैहकी सन् १४१३ ई० देता है। पीर हसन मृत्युकाल २२ मुहर्रम हिजरी सन् ८२० = विक्रमी सम्वत् १४७३, नारायण कौल आजिज मृत्युकाल हिजरी ८२० तथा राज्यकाल २५ वर्ष, ९ माह, ६ दिन देते है। यही समय तथा राज्य काल वाकयाते काश्मीर मे दिया गया है (पाण्डु० : ४५ बी०)। उसकी कब्र हाता लोकश्री के उत्तर दिशा मे है।

परशियन इतिहासकारो ने उसकी मृत्यु का कारण तेज बुखार लिखा है। बम्बई सस्करण श्लोक संख्या ७७८-७८१ से प्रकट होता है—कि उसके ऊपर ब्रह्म-दण्ड गिरा था। उसके आघात से उसके शरीर मे घाव हो गया था। घाव सड गया। उसमे कीडे पड गये। उसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। जोनराज ने राजा की मृत्यु का कोई कारण नही दिया है कि किस रोग के कारण उसकी मृत्यु हुई थी। वह केवल इतना ही लिखता है कि काल ने उस पर क्रोध किया। बम्बई सस्करण के श्लोक प्रक्षिप्त हैं। कालान्तर मे किसी लिपिक ने अपना क्रोध प्रकट करने के लिए जोड दिये है। अतिक्रोध प्रकट करने पर आज भी शाप दिया जाता है—शरीर मे कीडा पड जाय—गल जाय। उसने अपना उत्तराधिकारी मीर खाँ को बनाया था। मृत्यु-काल मे उसकी आयु ३२ वर्ष की थी। वह केवल ८ वर्ष की आयु मे सिंहासन पर बैठा था। परशियन इतिहासकारो के अनुसार उसने अपने अन्तिम काल मे अपने तीनो पुत्रो को बुलाया। ज्येष्ठ पुत्र मीर खाँ को राज्य भार दिया। उसका नाम अलीशाह रखा। पुत्रो को सलाह दी कि मेल और स्नेह बनाये रखे (उ० तै० : भा० : २ : ५१५, फिरिस्ता : ६५५)।

मूल्याङ्कन :

सिकन्दर ने काश्मीर की कोई उन्नति नहीं की। उसने बाल्यकाल से भरा-पुरा उत्तुंग मन्दिरो, मठो, धर्मशालाओ, विहारो से पूर्ण काश्मीर देखा था। तत्कालीन काश्मीरी वास्तुकला किसी को भी मोहित कर सकती थी। उनके ध्वसावशेष आज भी अपनी भव्यता एव रचनाशैली द्वारा विश्व की स्पर्धा करने के लिये उत्सुक है। कोई भी ग्राम, पुर, नगर, जलस्रोत ऐसा नही था जहाँ मन्दिर, देवस्थान एव तीर्थ न हो। सायकाल की आरती मे काश्मीर उपत्यका घण्टो की ध्वनि से गूँज उठती थी। ब्राह्मणो के वेदध्वनि से जलाशय तट गुंजित रहते थे। काश्मीरी ललनाएँ आरती सजाती थी, मन्दिरो मे गाती जाती थी। मन्दिरो के मण्डप सङ्गीत एव नृत्य से आह्लादमय रहते थे। रात्रिकाल दीपक के शुभ्र प्रकाश मे शुभ्र हो जाता था। वितस्ता की चचल लहरियो पर दीप-मालिकाएँ थिरकती महासमुद्र म काश्मीरियो की धार्मिक भावनाओ की कहानी कहती चलती थीं। आकाशदीप आकाशीय नक्षत्रो की स्पर्धा करते थे। ब्राह्म मुहूर्त से ही वितस्ता तर्पण एव पुष्पो से सज जाती थी। किन्तु सिकन्दर की मृत्यु के समय काश्मीर उपत्यका खडहरो का ढेर था। मन्दिरो के दीपक बुझ चुके थे, घण्टे टूट चुके थे, कोकिलकण्ठी ललनाओ की गीतध्वनि लोप हो चुकी थी, वितस्ता लहरियाँ पुष्पो से, दीपमालाओ से, खेलना बन्द कर चुकी थी, प्रत्येक देवस्थान जियारत, मसजिद, मजार म परिणत हो चुके थे।

हिन्दुओ के देवस्थान, मुसलमान देवस्थान बने रहे—केवल रूप बदल कर, काश्मीरी वही थे—केवल धर्म बदल कर। ललनाएँ वही थी—केवल वस्त्र बदल कर। केसरो की क्यारियाँ वही थी, नागो के जल वही थे, पर्वतो की गरिमा वही थी, सरिताओं का कल-कलनाद, वही था, शीतल समीर वही था। वे मुसलमान किंवा हिन्दू का रूप नहीं बदल सके थे। सम्भवत यह सिकन्दर के बूते के बाहर की बात थी। ब्राह्मणों के मठो, भिक्षुओ के विहारों के स्थान पर, उनके वेद एव त्रिपिटकपाठ के स्थान पर, सस्कृत एव पालि के स्थान पर, अरबी और फारसी के मदरसे खुले। मौल्वी और मुल्लाओ ने पुरोहितो, पण्डितो और भिक्षुओ का स्थान लिया। प्राची से प्रतीची की ओर मुख घूम गया। पश्चिम की ओर उठते मुख से अजा की आवाज उठी। फिर गया मन बुतखानो की ओर से।

जोनराज दरबारी कवि था। चाह कर भी जो कहना चाहिये था नही कह सकता था। उसकी भाषा दबी थी। मनोभाव उमडता उमडता गिर जाता है। वह चला एक सीमा के अन्दर। परिस्थियो से बाध्य होकर। बहुत कुछ लिख सकता था। किन्तु लिख न सका। जो लिखा उससे सिकन्दर के प्रति अच्छी भावना नही उठती। नि सन्देह परशियन इतिहासकार उसकी बडी प्रशसा करते हैं।

काश्मीर मे सर्वप्रथम सिकन्दर ने मुसलिम कानून तथा शरियत चलाया। शाहमीर के वशज अब तक काश्मीर जीवन मे घुले मिले थे। वे बाहरी थे। काश्मीर मे शरण लिए। उन्होंने सामाजिक जीवन को अपना जीवन बना लिया था। वे बाहरी विचार-धारा से प्रभावित नही हुए। उन्हे काश्मीर प्रिय था। उसकी सस्कृति प्रिय था। धर्म उनकी मानवता को सोख नही गया था।

काश्मीर म गैरकाश्मीरी मुसलमानो की प्रचुर सख्या की उपस्थिति ने, हिन्दुओ के मनोबल के अभाव ने, धर्मअसहिष्णु भाव ने, तैमूर के जेहादी आक्रमण ने, सिकन्दर की अपरिपक्व बुद्धि ने, क्रमश काश्मीरी परम्परा से शासन को विरत करते, शुद्ध इसलामिक परम्परा की ओर ले जाने लगी।

परशियन इतिहासकारो के वर्णन से ज्ञात होता है। सिकन्दर ने काश्मीर म होते सभी उत्साहजनय, मनोरम, गीत, नृत्य, कथामय प्रेरक उत्सवा पर रोक लगा दी। सगीत पर, गान पर, वादन पर औरङ्गजेब तुल्य रोक लगा दी। सब प्रकार के बाद्य पर रोक लगा दी। केवल रणवाद्य ही अपवाद थे (म्युनिख पाण्डु० ६२ ए०)।

उसने जनता की सहानुभूति इस विप्लव काल

मे प्राप्त करने के लिये बाज तथा तमघा करो को माफ कर दिया था। बाज तथा तमघा कर घोड़ों, बकरियो तथा रेशमी वस्त्रो पर लगाया जाता था। उनके देने वाले गरीब थे, रोजगारी थे। इसने गरीबो को इसलाम कबूल करने के लिये आर्थिक दृष्टि से प्रेरित किया। उन्हे दोहरा लाभ हुआ। जजिया और बाज, तमघा करो से मुक्त हुए (तबकाते अकबरी : ३ : ५३३; तारीख हसन : २ : ८९ बी०)। सिकन्दर ने खनकाह, मदरसा, दवाखाना, बनवाया (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ३४ बी०)। उन्होंने पुरानी पाठशालाओ, विद्यालयो तथा औषधालयो का स्थान ले लिया। जनता को कष्ट नही हुआ। पुरानी चीज नए रूप मे आयी। प्राचीन काल के हिन्दू राजाओ के समान मुसलिम यात्रियो, विद्वानो, सैय्यदो तथा अन्य योग्य व्यक्तियो को गाँवो तथा जमीनो का दान जागीर दिया जाने लगा। मुसलिम धर्म कबूल करने पर नौकरी सुरक्षित समझी जाने लगी। शेखुल इसलाम का पद कायम किया गया जो उक्त संस्थाओ का नियन्त्रण करता था। (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ३४ बी०)।

सिकन्दर की मुसलिमपरस्ती, उसकी एकांगी नीति ने, मुसलिमदर्शन के प्रेम ने, मध्येशिया, पर्शिया आदि से सूफी, फकीरो तथा दरवेशो को आकर्षित किया। सुलतान ने उनका स्वागत किया, आदर किया और उन्हे पुश्तैनी जागीरें दी।

मुख्य धार्मिक मन्दिर आदि देवस्थानों पर, जहाँ जनता बडी सख्या मे एकत्रित होती थी, जो समाजिक जीवन एवं सनातन हिन्दूधर्म के केन्द्र थे, वहाँ उसने बडी बडी मसजिदो का निर्माण कराया। जो जनता मन्दिरो मे विशाल प्रागणो, मण्डपो मे एकत्रित होती थी, वह मसजिदो मे एकत्रित होने लगी। इस प्रकार उसने विजयेश्वर मे विशाल मसजिद का निर्माण कराया। श्रीनगर मे ईदगाह की नीव रखी। जिसे कालान्तर मे उसके पुत्र अलीशाह ने पूर्ण किया (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ३५ ए०; है० म० : पाण्डु० ११४ ए०, तारीख हसन : पाण्डु० १४० बी०)।

उसने जैनपुर उद्र के पूर्वीय तट पर वाची मे, तराल मे, खानकाह स्थापित किया। अली हमदानी ने अलाउद्दीनपुर मे एक फर्श नमाज पढने के लिये बनवाया था। वहाँ सिकन्दर ने खानकाह मौला का निर्माण सन् १३९६–१३९७ ई० मे कराया। उसके खर्च के लिये उस पर तीन ग्राम वाची, शोरा तथा नौनहवानी चढाया। वहाँ का न्यासकर्ता मौलाना मुहम्मद सईद को बनाया (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ३५ बी०; तारीख हसन : पाण्डु० ११३ बी० : ११४ ए०)।

मार्तण्ड हिन्दुओ का अत्यन्त पवित्र देवस्थान था। भारतीय वास्तुकला का प्रतीक था। समीपस्थ बावन का जलप्रपात अपनी सुन्दरता एवं प्राकृतिक दृश्य के लिये प्रसिद्ध है। आज भी यात्रा की जाती है। वहाँ सिकन्दर ने मसजिद निर्माण कराया। वह मसजिद दुमंजिली थी। उसके सहन मे पुष्पादि सुरुचिपूर्ण शैली से लगाये गये थे। सिकन्दर स्वय वसन्त ऋतु मे वहाँ निवास करता था। सुलतानो के यहाँ वसन्त मे निवास करने की प्रथा मुहम्मद शाह तक जारी रही (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ३४ बी०, हसन : पाण्डु० ११४ ए०, बी०, है० म० : पाण्डु० ११४ बी०)।

सिकन्दर ने मुसलिम शरह को कठोरतापूर्वक प्रचलित किया। उसने सुरापान तथा मद्य निषेध किया। जूआ तथा नर्तकियो के नृत्य पर बन्धन लगा दिया था। बाँसुरी, मंजीरा, मृदंग, सारगी आदि वाद्यो का बजाना रोक दिया गया (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० २९ ए०; है० म० : पाण्डु० ११३ बी०)। उसके राज्य मे शराब तथा मदिरा का पूर्णतः निषेध था (तबकाते अकबरी : उ० सै० : भा० २ : ५१५)। मुसलिम कानून का पालन होना है या नही इसकी जाँच तथा नियन्त्रण के लिये उसने शेखुल इसलाम का पद बनाया। शेखुल इसलाम धार्मिक विभाग का राज्य मुख्याधिकारी था। तारीखे कबीर (पृ० २८९) से प्रकट होता है कि मुल्ला अहमद अल्लामा तुर्किस्तान से काश्मीर मे कुत्बुद्दीन शाह के साथ आया था। वह शमसुद्दीन प्रथम के समय इस

पद पर था। किन्तु यह त्रुटिपूर्ण है। वह पद सिकन्दर के समय प्रथम बार बनाया गया था।

नि.सन्देह यह सब परिवर्तन सैय्यद मीर मुहम्मद हमदानी जो सिकन्दर का पीर और सूहभट्ट का बहनोई था, उसके निर्देश पर किये गये थे। सिकन्दर ने दो पल चाँदी जजिया कर लगाया साथ ही साथ सती प्रथा बन्द कर दिया।

सिकन्दर अपनी कट्टरता मे इतनी दूर बढ़ता गया कि हिन्दू पुरुष अथवा स्त्रियो के मस्तक पर तिलक लगाना भी रोक दिया (म्युनिख : पाण्डु० ६४ बी०, बहारिस्तान शाही : पाण्डु २६ ए०)।

मन्दिरो के नष्ट एवं प्रतिमाभंग का कारण सिकन्दर को कुछ लेखक नही देते। परन्तु शताब्दियो से यह प्रसिद्ध है। सिकन्दर का नाम सिकन्दर बुतशिकन मन्दिरो को तोडने के कारण इतिहास एवं जनश्रुतियो में प्रख्यात हो गया था, इस तर्क का प्रतिपादन करता है। जिस स्थान के लोग मुसलमान हो गये थे, वहाँ वालो के लिये देवस्थानो का महत्व नही रह गया। उन्होने स्वतः उन मन्दिरो तथा देवस्थानो के स्थान पर मसजिद आदि इसलामी पूजास्थान बना लिये।

लारेन्स (वैली : १६२-२१३) तथा मेकलाजेन (जे० ए० एस० बी० . ४५ : ६४) का यह विचार कि भूचाल के कारण मन्दिर गिर गये, मरम्मत के अभाव तथा बहुसंख्यक काश्मीरी जनता के हिन्दू न होने के कारण तथा प्रकृति के थपेड़ों द्वारा स्वतः नष्टप्राय हो गये। यह युक्ति एवं तर्कसम्मत नहीं है। शंकराचार्य मन्दिर शताब्दियो से अपनी पूर्वावस्था मे खड़ा है। पडरेन्थन का भी मन्दिर खड़ा है। मार्तण्ड का मन्दिर अपनी भग्नावस्था मे खड़ा है। क्या कारण है कि वे धराशायी नहीं हुये ?

स्वर्ण तथा रजत की मूर्तियों को द्रवित कर उन्हें सोना तथा चाँदी बना लिया गया, मन्दिरों की सेवहीन सम्पत्ति लूट ली गयी। धन एवं सम्पत्ति के लोभ के कारण आततायियों ने मन्दिरभंग, प्रतिमा उत्पाटन मे अधिक उत्साह राज्य की प्रेरणा से दिखाया। स्वर्ण तथा चाँदी की अधिकता के कारण उनका मूल्य कम हो गया। इस प्रकार प्राप्त धन के कारण आर्थिक व्यवस्था बिगडी नही। इसी लिये जैनुल आबदीन के समय जब स्वर्ण तथा रजत की कमी हो गयी तो पुनः ताम्र मुद्रायें टंकणित होने लगीं म्युनिख : पाण्डु० ७० बी०, तबकाते अकबरी : ३ : ४३७)।

संस्कृत के विद्वान् काश्मीर त्याग कर चले गये थे। ललितकला के मर्मज्ञ एव कलाविदो ने अपनी कला को या तो स्वतः मर जाने दिया अथवा काश्मीर त्याग कर बाहर जीविकोपार्जन के लिये चले गये। ललितकलायें जिन पर रोक लगा दी गयी थी, जिन्हें नष्ट करने का प्रयास किया गया था, वे उसके पुत्र जैनुल आबदीन के समय पुनः अकुरित हुई।

राज-तथा शासन-पद्धति मे आमूल परिवर्तन किया गया। ईरानियों तथा तुर्कों के प्रभाव के कारण शासन-पद्धति का मुसलिमीकरण किया जाने लगा। अन्य मुसलिम देशो मे जो शासन पद्धति चलती थी उन्हे ही काश्मीर मे प्रचलित किया गया। फल यह हुआ कि पुराने पद, संस्थाएँ उनके नामादि बदल दिये गये। उनके स्थान पर मुसलिम देशो मे प्रचलित पदाधिकारियो के नाम, पद तथा संस्थाओ का नाम रखा जाने लगा। पुरानी संस्कृत आधारित शब्दावली निकाल कर उनके स्थान पर विदेशी शब्द काश्मीरी भाषा मे रखे जाने लगे।

इसी प्रकार शेखुल इसलाम के साथ काजी का पद भी कायम किया गया। श्रीनगर के काजी को काजिल कुजात कहते थे (वाकयाते काश्मीरी पाण्डु० ५२ए०,६०ए०)। प्रथम काजी सैय्यद हुसन शिराजी था। सिकन्दर ने उसे श्रीनगर का काजी नियुक्त किया था (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ३१ बी०)।

हिन्दू काल मे श्रीनगर मे नगराधिप अथवा नगराधिकृत का पद था। परन्तु उसका नाम बदल कर कोतवाल रख दिया गया। इसी प्रकार तौल आदि तथा नागरिकों के दैनिक जीवन की निगरानी का काम मुहतसिब को दिया गया। इसे बहुत

अधिकार दिया गया था। उसका काम यह भी देखना था कि मुसलिम कानून एवं व्यवहार के अनुसार कार्य हो रहा था, या नही। वह यह भी देखता था कि लोग पाँचो वक्त की नमाज पढते है या नही ? (तजकिराते मशाईखे काश्मीर :५१२ ए०)।

जकात देने के लिए कड़ाई से पाबन्दी की जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति कानून के अनुसार देने के लिए बाध्य था। मखदूम हमजा एक बार एक व्यक्ति को शराब पीते देखकर, इतना क्रोधित हुआ कि उसने उसके सर पर इतने जोर से डण्डा मारा कि वह मर गया (हिलायतुल–अरिफीन : पाण्डु० १२ ए०)।

वेशभूषा मे परिवर्तन किया गया। मुसलिम देशो मे प्रचलित वेशभूषा का काश्मीर मे प्रचार किया गया। पुराना हिन्दू पहनावा छोडा जाने लगा। ब्राह्मणो को भी वह पहनने के लिए बाध्य किया जाने लगा।

वास्तुकला मे भी परिवर्तन किया गया। सैय्यद मुहम्मद मदनी जो मदीना से सिकन्दर के दरबार मे राजदूत होकर आये उनकी मजार सन् १४४४ ई० मे बनायी गई थी। उसके देखने से प्रकट होता है कि वास्तुकला शैली मे मुसलिमीकरण बडे पैमाने पर किया गया। जितनी इमारत बनती थी, उनके वास्तुकार प्राय: मुसलमान होते थे। उन्होने उसमे पुराने हस्त कौशल के स्थान पर नवीन शैली तथा हस्तकौशल दिखाये। वर्तमान काश्मीरी मुसलिम जनता को हिन्दू से मुसलिम धर्म मे परिवर्तित करने का प्रथम श्रेय सिकन्दर को दिया जायगा। उसने ही मुसलिम शरियत कानून तथा परशियन भाषा काश्मीर मे प्रचलित की। हिन्दुओ के लिए वह उनके धर्म का विरोधी एव नाशक कहा जायगा, परन्तु मुसलिम के लिये इसलाम का संरक्षक एव काश्मीर मे इसलाम प्रवर्तक माना जायगा। राज्यशासक की दृष्टि से उसने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नही किया। उसने प्रत्येक कार्य एकागी तथा एक विशेष दृष्टिकोण से किया था जो एक कुशल शासक के योग्य नही कहा जायगा।

ईरानी, ईराकी तथा तुर्कों आदि के आगमन के कारण ईरानी सभ्यता ने काश्मीरी सभ्यता एवं संस्कृति का स्थान ले लिया। हिन्दू राजाओ ने विदेशी मुसलमानो को प्रश्रय देकर काश्मीर का राज खोया और काश्मीरी सुलतानो ने विदेशी मुसलमानो के लिये द्वार मुक्त कर अपनत्व, काश्मीरीपन, व्यक्तित्व, सभ्यता एव संस्कृति खोयी। अकबर के पश्चात् नूरजहाँ के शासन मे ईरानी लोगो का आगमन अविच्छिन्न गति से होने लगा। उनके कारण पठानो की सभ्यता के साथ जो कुछ अरबी प्रभाव था वह भारत मे समाप्त हो गया, उसका स्थान ईरानी तहजीब, तमद्दुन, साहित्य का व्यापक प्रसार होने लगा। उसने भारतीय संस्कृत भाषा का स्थान ले लिया। पहनावा भी बदल गया। परशियन वेशभूषा व्याप्त हो गयी। यह आधुनिक काल के प्रथम चरण तक चलता रहा। हमे भी बाल्याकाल मे उर्दू और फारसी पढनी पडी थी। यही नही पंजाब मे हिन्दू तथा सिख अपनी लिपि त्यागकर परशियन लिपि मे धर्मग्रन्थ भी लिखने लगे थे। यही क्रिया कुछ बडे पैमाने पर काश्मीर मे हुई। इस प्रतिक्रिया को यदि सिकन्दर रोकना भी चाहता तो असमर्थ था। वह विदेशी मुसलमानो के प्रभाव मे इतना अधिक आ गया था कि उनके प्रभाव से उसका निकलना कठिन ही नही असम्भव भी था। सेना मे विदेशी मुसलमान थे, वे उसका शासन उलट सकते थे।

परसियन इतिहासकार सिकन्दर का विचित्र चित्र-चित्रण करते है। कुछ ने तो सिकन्दर बुतशिकन के मन्दिर नष्ट करने का वर्णन ही नही किया है। कुछ ने बहुत स्वल्प वर्णन किया है और कुछ का वर्णन एक दूसरे से मिलता नही। बहारिस्तान शाही का मत है कि काफिरो का जोर बढ गया था। सिकन्दर मीर सैय्यद अली हमदानी के प्रभाव मे आ गया था (पाण्डु २४)। आश्चर्य है बहारिस्तान शाही मन्दिरो के नष्टादि करने का उल्लेख नही करती। हैदर मल्लिक संक्षिप्त वर्णन करता है कि सुलतान ने मन्दिरो को नष्ट किया (पृष्ठ : ४४)। वाकयाते काश्मीर ने किंचित् विस्तार मे साथ वर्णन किया है कि सुलतान

आलिशाहः स वसुधासुधांशुर्जगतस्तमः ।
प्रदोपारब्धमच्छैत्सीद् भास्वतोऽस्ते पितुस्ततः ॥ ६१३ ॥

अलीशाह (सन् १४१३-१४१६ ई०)

६१३ वसुधासुधांशु आलिशाह[1] (अलीशाह) ने भास्वान (सूर्य) पिता के अस्त हो जाने पर रात्रिकालीन जगत का अन्धकार[2] नष्ट किया।

सिकन्दर काश्मीर मे इसलाम फैलाने वाला हुआ। उसने बुतखानो को वीरान किया और लोगों को मुसलमान बनाया। जिसने इसलाम कबूल नहीं किया उन पर जजिया लगाया। जो जजिया न दे सकते थे उन्हें गिरफ्तार किया और इसलाम कबूल करनेवाले पर कृपा प्रदर्शित की (पाण्डु ४५)।

भारत के मुसलिम शासकों में केवल सिकन्दर बुतशिकन एक ऐसा शासक हुआ था, जिसने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये कोई उपाय उठा नही रखा। प्रो० श्री एम० मुजीब ठीक लिखते हैं—'सब मुसलिम शासकों मे केवल यही एक शासक था जिसने जबरदस्ती लोगो का धर्म परिवर्तन किया और राज्य की निरन्तर यही नीति रखी (इण्डियन मुसलिम : पृष्ठ ३७९ : संस्करण १९६७)।'

पाद-टिप्पणी :

६१३. राज्याभिषेक काल कलि : ४५१४ = लौकिक ४४८९ = विक्रमी सम्वत् १४७० = सन् १४१३ ई० शक १३५५; मोहिबुल हसन सन् १४१३ ई०; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया सन् १४१६ ई०; आइने अकबरी सन् १४१६ ई०; पीरहसन विक्रमी सम्वत् १४७३ = हिजरी ८२० तथा आइने अकबरी एवं तबकाते अकबरी मे राज्यकाल ६ वर्ष, ९ मास; हैदर मल्लिक भी राज्यकाल ६ वर्ष, ९ मास देते हैं। तवकाते काश्मीर भी राज्यकाल ६ वर्ष, ९ मास देती है।

जोनराज अलीशाह के राज्यकाल के समय युवक था। यदि श्रीकण्ठ कौल की गणना ठीक मान ली जाय तो उसका जन्म सन् १३८९ ई० मे ठहरता है। जोनराज की आयु इस समय २४ वर्ष की होगी। वह वयस्क युवक था। उसका ऐतिहासिक वर्णन सिकन्दर से जैनुल आबदीन तक सत्य मानना होगा। वह इस काल का प्रत्यक्षदर्शी था, समाज मे अच्छा स्थान रखता था। उसकी काल-गणना ऐतिहासिक तुला पर ठीक उतरी है।

समसामयिक घटनायें :

इस समय लद्दाख मे ग ग स बुम छे अपने वंश का १७ वाँ राजा था। सन् १४१४ ई० में खिज्र खाँ दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठा। उसने दिल्ली मे सैय्यद वंश की स्थापना की। कवि मुल्ला अब्दुर्रहमान नुरुद्दीन जामी ने, जाम हेरात के समीप खुरासान में जन्म लिया। लकडी पर चित्रकारी का कार्य यूरोप मे आरम्भ हुआ। सन् १४१५ ई० मे सरहिन्द मे मलिक तुघान का विद्रोह दबाया गया। बंगाल में गणेश की मृत्यु हुई। जलालुद्दीन मुहम्मद शाह ने उत्तराधिकार प्राप्त किया। सन् १४१६ ई० मे शृहभट्ट की मृत्यु हो गयी। मलिक तुघान ने पुनः विद्रोह किया परन्तु पराजित हुआ। सन् १४१७ ई० में अलीशाह ने शेरम अर्थात् वितस्ता पर अलीकदल बनवाया। आसाम ने पूर्वीय बंगाल विजय किया। फिरोज बहमनी ने तैलंगाना पर आक्रमण किया। सन् १४१८ ई० मे हरसिंह का विद्रोह कटेहर मे दबाया गया। इटावा, कोईल तथा सम्बलपुर पर सैनिक अभियान हुआ। खिज्र खाँ ने बदायूँ का घेरा डाला। फिरोज बहमनी ने विजयनगर राज्य पर आक्रमण किया और पराजित होने पर हटाया गया। खिज्र खाँ ने बदायूँ का घेरा उठाया। गुजरात के अहमद प्रथम ने मालवा पर आक्रमण कर होशंग को पराजित किया।

(१) अलीशाह : राज्य ग्रहण करने पर मीर खाँ ने अपना नवीन नाम अलीशाह रखा। जोनराज आलिशाह नाम देता है। उसने आलिशाह को संस्कृत रूप माना है। तबकाते अकबरी मे नाम

अदर्पकचितं बालं प्रौढा लक्ष्मीर्मुहुर्मुहुः।
कुलजालिङ्गदङ्गैस्तं राजानं नतिशालिभिः ॥ ६१४ ॥

६१४ मुग्ध बालराजा का प्रौढ़ा-कुलजा लक्ष्मी मुहुर्मुहुः (बार-बार) नत अंगों से आलिंगन करती थी।

पूर्वोर्वरेशवद्बालमपि तं भूभुजोऽनमन्।
अहिदष्टो हि दामापि क्रमितुं न प्रगल्भते ॥ ६१५ ॥

६१५ पूर्व नृपतिवत् उस बालक को भी राजा लोग नमन करते थे, क्योंकि सांप काटा व्यक्ति रस्सी लाँघने में भी उत्साहित नहीं होता।

निजबुद्धिबलाद् दैवहितत्वेनोपसंहितात्।
सूहभट्टेन मुख्यत्वं सचिवानामवाप्यत ॥ ६१६ ॥

६१६ दैवहितरहित निज बुद्धि से भट्टसूह[1] मन्त्रियों में प्रमुख हो गया।

मीरान खाँ दिया गया है (उ० तै० : भा० : ५३८)। बमजायी ने गलत लिखा है कि सिकन्दर के बड़े पुत्र का नाम नूर खाँ था। वह अली खाँ नाम से सुल्तान बना (हिस्ट्री ऑफ कश्मीर : बमजायी : २९८)। वाकयाते काश्मीरी से प्रकट होता है कि सरदारों की राय से सिंहासन पर बैठा (पाण्डु० ४१ बी०)।

(२) अन्धकार : जोनराज के अन्धकार शब्द के प्रयोग से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि सिकन्दर की मृत्यु के समय पूर्णतया शान्ति नहीं थी। जोनराज सिकन्दर शासन के अन्तिम चरण को अन्धकार युग मानता है। देश की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति सिकन्दर की नीति के कारण अस्थिर हो गयी थी। काश्मीर मण्डल मन्दिरों के नष्ट होने के कारण ध्वंसावशेष एवं खंडहरों का प्रदेश बन गया था।

पाद-टिप्पणी :

६१४. उक्त श्लोक संख्या ६१४ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ७८९ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(७८९) 'राज्य से शोभायमान उसका बाल्य अति मनोहर हुआ। शरद् काल में स्फुरित होता सुन्दर पूर्ण चन्द्र शोभा फैलाता है।

(१) बाल : शब्द का प्रयोग जोनराज ने किया है। तबकाते अकबरी में भी उसे बालक माना है। अपनी वीरता के कारण उसने अपना आतंक जमा लिया था (उ० तै० का० : ५३८)।

(२) मुहुर्मुहुः : श्लोक से भाव प्रकट होता है कि राजलक्ष्मी अलीशाह के पास पूर्णतया एकसाथ न आकर धीरे-धीरे आयी। प्रारम्भ में उसके राज्यारोहण में कुछ विवाद उत्पन्न हुआ होगा। उसकी धीरे-धीरे सत्ता स्थापित हुई थी। इसका आभास उक्त पद से मिलता है।

पाद-टिप्पणी :

६१६. (१) सूहभट्ट : काश्मीर में मुसलिम धर्म-प्रचार का श्रेय सूहभट्ट को दिया जाता है। सूहभट्ट के कारण काश्मीर में नव-मुसलिमों की संख्या गैरकाश्मीरी मुसलमानों से अधिक हो गयी थी। सभी मुसलमान थे। हिन्दुओं का प्रश्न नहीं था। उत्साही धर्मप्रवर्तकों का कार्य समाप्तप्राय हो गया था। उनकी शक्ति एवं प्रवृत्ति परस्पर संघर्ष में लगने लगी। गैरकाश्मीरी मुसलमानों का महत्त्व घट गया। नव-मुसलिमों का नेता निःसन्देह सूहभट्ट हो गया था। वह स्वयं नव-मुसलिम था। अतएव काश्मीर में उदित नवीन नव-मुसलिम शक्ति के

विश्वासन्यस्तशस्त्रं स लद्दमार्गपतिं बलात् ।
बद्धवान् सह तत्पुत्रैर्वर्जयित्वा महम्मदम् ॥ ६१७ ॥

६१७ विश्वास के कारण शस्त्र रख देने वाले (सन्यस्त-शस्त्र)[1] लद्दमार्गपति को उसके पुत्रों के साथ केवल महम्मद के अतिरिक्त बलात् उस (सूहभट्ट) ने बाँध लिया ।

समर्थन के आधार पर वह प्रधानमन्त्री बन गया । उसका मार्गविरोध करने वाला कोई नही था । क्योंकि वह भी मुसलमान था । जैसे अन्य लोग थे ।

सूहभट्ट ने पहले हिन्दुओ को मुसलमान बनाया । उनके मुसलिम हो जाने पर अपने मार्ग मे पडने वाले नव-मुसलिम एवं शक्तिशाली पदाधिकारियो का नाश आरम्भ किया ।

फिरिस्ता लिखता है—प्रारम्भ मे अलीशाह का शासन पूर्णतया सीवदेवभट्ट (सूहभट्ट) के हाथो मे था । वह उसका वजीर था (४६७) । सूहभट्ट सुल्तान पर आजीवन हावी रहा (म्युनिख : पाण्डु० : ६६ ए०) ।

पाद-टिप्पणी :

६१७. उक्त श्लोक ६१७ के पश्चात् बम्बई *संस्करण मे श्लोक सख्या ७९२–८१४ और मुद्रित* है । उनका भावार्थ है—

(७९२) 'अपना उदय न सहने वाले लब्धक मार्गेश के ऊपर सूह ने शंका की । सब लोगो को अपने हृदय के समान दूसरो का हृदय मालूम पडता है ।

(७९३) 'द्रोह न करने के लिये प्रतिज्ञात तथा कोश उदकपान करने पर भी सूहभट्ट ने लद्दमार्गपति को अवरुद्ध करने के लिये विचार किया ।

(७९४) 'अपने ऊपर अपनी आत्मा के समान इस पर विश्वास न करने वाला वह इसके द्वारा शंकनीय हो गया । महात्माओ के लिये कोश होना है और पापियो के लिये कोश भी जल होना है ।

(७९५) 'कातर, वीरद्वेषी, निर्गुण, गुणी, मत्सर, दक्ष, कुलीन, कौलीन, इसे विधाता ही ने निर्मित किया था ।

(७९६) 'कोशोदक मे आदर रखने वाला वीर लब्धक मार्गेश दाम्भिक सूहभट्ट से उसी प्रकार अस्वस्थ था जिस प्रकार वक से तिमि ।

(७९७) 'वीर मार्गपति ने सूह का विश्वास प्राप्त करने के लिये हस्त मे स्थित शस्त्र को भी अपने शरीर से दूर कर दिया किन्तु उसने उस शस्त्रत्याग को हाथ से हरि को प्रणाम करना माना ।

(७९८) 'कलिकाल भुजङ्ग के आयुध स्वरूप सूह भट्ट से जो कि चन्द्रमा सदृश विता के लिये राहु था आशंकित होकर, शूर मार्गेश वाणिल मे निवास करने लगा ।

(७९९) 'शौर्य एवं कोश के कारण शस्त्र की उपेक्षा करने वाले भी मार्गेश को साहस का असहिष्णु सूह सहसा अवरुद्ध न कर सका ।

(८००) 'उन दोनो को अवरुद्ध करने की इच्छा से, उस मन्त्री ने उनके निवासपुर मे उसी प्रकार प्रवेश किया, जिस प्रकार चूहो के पीछे बिडाल ।

(८०१) 'अनर्थकारी उसने राजा के समक्ष ताजकादि वीर लद्दमार्गेश के पुत्रो को सुख प्रदान किया ।

(८०२) 'सम्मुख स्निग्ध एव मधुर व्यवहार करता परोक्ष मे गुणो को दबाता मित्र सदृश उन लोगो के साथ वह छिप कर द्रोहपूर्ण व्यवहार करने लगा ।

(८०३) 'अन्दर कण्टक पारुष्य समूह कर उन्नत पक्षधारी मन्त्री तिमि सदृश स्वाभाविक स्निग्धता प्रदर्शित करता था । (कुछ मछली ऊपर से देखने मे कोमल तथा सुन्दर लगती हैं परन्तु उनके भीतर काँटा भरा रहता है' जैसे रोहू मछली ।)

(८०४) 'विधाता ने इसके हृदय को कालकूट से, अंगों को भङ्गुर विषों से निर्मित करके जिह्वाग्र भाग को क्या अमृतकणों से बनाया था ?

महम्मदो मार्गपतेर्बन्धं श्रुत्वैव शौर्यवान्।
भाङ्गिलाचलमार्गेण मार्गाभिज्ञः पलायत ॥ ६१८ ॥

६१८ मार्गपति के बन्धन के श्रवण मात्र से शौर्यशाली महम्मद जो कि, मार्ग जानता था भांगिलाचल[1] मार्ग द्वारा पलायित हो गया।

(८०५) 'उस दुष्ट ने कपट विश्वास भोज्यो से अस्वस्थ कर उन मुहम्मद पक्षियो को विश्वासपाश मे निबद्ध करने के लिए इच्छा की।

(८०६) 'तीनो लोक की सृष्टि का सहार करने के लिए उद्धत भैरव विधिभय से ही उग्रात्माओ के कार्य मे सहायक होते है।

(८०७) 'राधापुत्र के रथ के सदृश मार्गपति के छिद्रकाल मे पृथ्वी पीडा से प्रचण्ड हो गई।

(८०८) 'कालज्ञ, दीर्घसूत्री, सूह विमलक नामक अपने भृत्य को इस प्रकार सन्देश देकर मुहम्मद के पास भेजा।

(८०९) 'राजा, बालक, राज्य नवीन, मन्त्री मार्गपति वृद्ध (ऐसी स्थिति मे) भार वहन करने के योग्य आप यदि दूर है तो जगत की गति क्या होगी ?

(८१०) 'सब प्रजा आत्मीय सदृश तुम्हे चाह रही है। सूर्योदय के बिना सूर्यकान्त पाषाण ही है।

(८११) 'अवहेलनापूर्वक तुम्हारा यह राज्य-भार वहन करना दुर्बुद्धियो के हृदय मे आतंक विष-बल्ली वर्धित करे।

(८१२) 'चिरतृष्णा से पीडित असमञ्चक्षु चकोर को भी चन्द्रस्वरूप तुम अत्यधिक आनन्दित करो।'

(८१३) 'विमल ने सादर कुशल प्रश्न निवेदित कर मार्गपति महम्मद से सन्देश कहा।

(८१४) 'अपने द्रोह का निश्चय जानते हुए तथा उनकी बातो को सुनकर कोश यन्त्रित महम्मद स्वयं के बिना अपने पिता का बन्धन जानकर उन दो तीन पीरो को आदेश देकर काश्मीर से चला गया।

(१) सन्यस्त-शस्त्र : द्रष्टव्य टिप्पणी, श्लोक : ८९३।

(२) लद्दमार्गपति : लद्दमार्गपति जन्मना हिन्दू था। ब्राह्मण नही सम्भवतः क्षत्रिय सैनिक था। बहारिस्तान शाही के अनुमान से वह सैय्यद अली हमदानी द्वारा मुसलमान धर्म मे दीक्षित हुआ था। वह भी सूहभट्ट के समान उच्च सैनिक पदाधिकारी था। दोनो नव-मुसलिम थे। दोनो मे पद प्राप्ति एवं स्वार्थसाधन हेतु ईर्षा एवं महत्वाकाक्षा होना स्वाभाविक था। सूहभट्ट के मार्ग का वह कंटक था। पुत्रो के साथ उसे सूहभट्ट ने बन्दी बना लिया। उसका पुत्र मुहम्मद था जो भाग जाने के कारण बच गया था।

परशियन इतिहासकारो ने लिखा है कि सूहभट्ट ने लद्दमागरे तथा उसके कुटुम्ब को बन्दी बनाया। उसने लद्दमागरे के लडके ताजीमागरे पर नवाजिश करनी शुरू कर दिया। उससे महत्वपूर्ण कार्यों मे सलाह लेने लगा। उसने सलाह के बहाने महम्मद मागरे को श्रीनगर बुलाया। किन्तु महम्मद इस चाल को समझ गया और भाग गया। जब इसे (सैफुद्दीन—सूहभट्ट) को मालूम हुआ तो इसने लद्दीमागरे, इसके बाकी लडको और शकर की चालबाजी से गिरफ्तार करके कैदखाना मे बन्द कर दिया (महवी० : ९५)।

पाद-टिप्पणी :

६१८ उक्त श्लोक संख्या ६१८ के पश्चात् बंबई सस्करण मे श्लोक संख्या ८१६–८२० और मुद्रित है। उनका भावार्थ है—

(८१६) 'वायु के समान वीर की गति कही नही रुकती। इससे उनका गमन सुनकर मन्त्रभेद की शंका से लद्दमार्गपति को रोकने का सहसा विचार किया।

(८१७) 'रोग देखने के व्याज से मार्गेश का आशय ज्ञात करने तथा विश्वास दिलाने के लिए उसके घर भट्टोरस (भट्ट-उरस) को भेजा।

(८१८) 'चिकित्सक का औषध लाने वाले का

निरुध्यमानं निःशङ्कमगदङ्कारशङ्करम् ।
अप्रयुक्तातितीक्ष्णापि शस्त्री धीश्च व्यडम्बयत् ॥ ६१९ ॥

६१९ निःशंक निरुद्धमान अगदकार[1] (वैद्य) शंकर के प्रति अति तीक्ष्ण भी अप्रयुक्त शस्त्री (छुरिका) तथा उसकी बुद्धि भी उसी का अनुकरण की ।

अपश्यन् दर्पतः किञ्चित् सिंहो विशतु वागुराम् ।
चित्रं तु तद्विशेत्पाशं दूरदृश्वाऽपि यत् खगः ॥ ६२० ॥

६२० दर्प से कुछ न देखनेवाला सिंह वागुरा (जाल पाश) मे प्रवेश कर जाय यह तो ठीक है, किन्तु दूरदर्शी खग भी उस पाश मे प्रवेश करे, यह आश्चर्य है ।

एकाहेनैव तत्कृत्वा मल्लमदप्राप्तिचिन्तया ।
कन्ययेव दरिद्रः स नक्तंदिवमदूयत ॥ ६२१ ॥

६२१ एक ही दिन मे वह कर के मल्लमद् को प्राप्त करने की चिन्ता से वह रात्रि दिन उसी प्रकार दुःखी होने लगा जैसे कन्या[1] से दरिद्र ।

मार्गेश तिमि ने आदर किया । पिण्डी म (रखे) गुप्त वडिश (वसी कटिया) को न जान सका ।

(८१९) 'तब तक तृणो से नीड सदृश मार्गपति के सौध को दाश (धीवर) मन्त्री ने सिंहनादयुक्त भटो द्वारा अवरुद्ध कर लिया ।

(८२०) '*विह्वल, इष्टजना के समान दयाविष्ट* एव होने वाले तीक्ष्णो द्वारा दोषरहित कथञ्चित् अवरुद्ध किया ।

(१) भागिला इसका अर्वाचीन नाम बागिल है । यह शब्द भागिला का अपभ्रंश है । कमराज म एक परगना है । हैदर मल्लिक के राज के आरम्भ से इसका नाम बिगड कर बागिल हो गया था । द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक २५१ ।

पाद टिप्पणी

६१९ (१) नैगराङ्कर वैद्य शंकर का उल्लेख श्लोक ५८५ म जोनराज ने किया है । वहाँ उसे रुद्रराज तथा गूहभट्ट के साथ सार्वकालिक मन्त्री एव राजा (सिकन्दर) का अन्तरंग मित्र चित्रित किया है ।

शंकर की हत्या का कारण गूहभट्ट था । अपने घातिप्रकार म उसे बाधक समझ कर समाप्त कर दिया । नाम से यह हिन्दू प्रकट होता है । किन्तु सिकन्दर का अन्तरंग एव हिन्दुओ के उत्पाटन म वह सिकन्दर की नीति का अनुसरण करता था, राज भृत्यो को मुसलिम होना चाहिये । इन बातो से यही निष्कर्ष निकलता है कि उसने भी मुसलिम धर्म स्वीकार किया था ।

पाद टिप्पणी

६२० उक्त श्लोक संख्या ६२० के पश्चात् बबई सस्करण म श्लोक संख्या ८२३–२४ और मुद्रित है । उनका भावार्थ है—

(८२३) 'तत्पश्चात् मूर्तिमान अपर पाप सदृश उद्धत क्रोधी उसने मार्गपति क पुत्रो को उसी प्रकार रुद्ध किया, जिस प्रकार सौनिक (कसाई) भेडो को ।

(८२४) 'सपरिवार उन दोनो से कारागार ही नहीं बल्कि निश्चय दुर्मदा से सब भुवन को पूर्ण कर दिया ।

पाद टिप्पणी

६२१ (१) कन्या भारत मे कन्या एक प्रकार से भार समझी जाती रही है । आज भी कन्या दान का अर्थ यथेष्ट धन व्यय का भविष्य बताता है । धनी लोग धन-सम्पत्ति देकर कन्या का विवाह उच्च, समृद्धिशाली, कुलीन वश म करते हैं । परन्तु एक

दुर्दण्डदेशे गोविन्दनाम्नो मित्रस्य वेश्मनि।
विश्वस्तः प्राविशत् तावद्विश्रमार्थं महम्मदः ॥ ६२२ ॥

६२२ दुर्दण्ड देश[1] में गोविन्द नामक मित्र के घर में तब तक महम्मद विश्रामार्थ प्रवेश कर चुका था।

गरीब के लिये कन्या समस्या हो जाती है। प्रत्येक माता-पिता अपनी कन्या का विवाह अच्छे से अच्छे घर मे करना चाहता है और कन्या के सुख की कामना करता है। किन्तु अर्थाभाव के कारण दरिद्र किंवा गरीब चिन्तित रहता है, दुःखी रहता है। उसकी कन्या अर्थाभाव के कारण सुयोग्य पति से न तो ब्याही जा सकेगी और न अच्छे घर मे पडेगी। हिन्दू समाज में दहेज की प्रथा मध्यकाल से चली आयी है। अनेक राजाओ, बादशाहो एवं सुधारको ने इस प्रथा को दूर करने का प्रयास किया है। भारतीय संसद ने दहेज विरोधी विधान भी बनाया है। परन्तु वह प्रथा अपना रूप बदल कर आज भी समाज मे व्याप्त है। दहेज की माँगो के स्थान पर इस समय कन्या के साथ कितना सामान दिया जायगा, बारात के मार्गव्यय का भुगतान किस प्रकार होगा आदि बातें दहेज कुप्रथा के ज्वलन्त उदाहरण है। दहेज विरोधी विधि केवल कानून बनकर रह गयी है। शिथिल समाज मे यह प्रथा अपने विकृत रूप मे प्रचलित है। जोनराज के समय मे भी यही समस्या उपस्थित रही होगी। जोनराज इसीलिये इसकी उपमा दरिद्र के दुःख से देता है। वह दुःख ऐसा होता है, जो न कहा जा सकता है और न सहज ही छूटता है। कन्या के जन्म से विवाह तक पिता का यह दुःख बना रहता है। यह विवाह तथा कन्या के पति घर पहुँच जाने पर ही शान्त होता है। आज भी अनेक हिन्दू तथा मुसलिम कुलीन संभ्रात गरीब कुलो मे मैंने देखा है कि अर्थाभाव के कारण कन्यायें आजन्म अविवाहित रह जाती हैं। कितनी ही किसी न किसी के साथ निकल जाती है। यह सामाजिक कुप्रथा पूर्व के समान आज भी व्याप्त है।

पाद-टिप्पणी :

६२२. उक्त श्लोक संख्या ६२२ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ८२७ और मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(८२७) 'श्री सिकन्दर द्वारा प्राप्त होने वाले इस देश का अधिकारी हुए उसने पहले मुहम्मद की शाखा समाप्त की।

(१) दुर्दण्ड देश : परशियन इतिहासकारो ने इसको ओहिन्द समीपवर्ती अंचल माना है। देश की संज्ञा जिला से प्राचीन काल मे दी जाती थी। श्रीकण्ठ कौल का मत है कि खसों के क्षेत्र के समीप इस अंचल को ढूँढना चाहिए। परन्तु खसो की आबादी इतनी अधिक इधर-उधर बिखरी-फैली है कि निश्चित स्थान का स्थिर करना कठिन है। वर्णन प्रसंग से स्पष्ट होता है। यह अंचल राजौरी के समीप किंवा काश्मीर के दक्षिण-पश्चिम अंचल मे होना चाहिए। अनुमान लगाया गया है। यह स्थान भागिला की दिशा मे होगा। क्योकि इसी मार्ग से मुहम्मद ने गमन किया था।

इसका एक दूसरा और अर्थ होता है। देश का दुर्दण्ड विशेषण है। जिसे कठिनता से दण्ड दिया जा सके उसे दुर्दण्ड कहते हैं। वह देश जहाँ के लोगो को कठिनाई से दण्ड दिया अथवा नियन्त्रण मे रखा जा सके। वह स्थान खसो का अंचल ही हो सकता है। खस लोग अति प्रबल थे। उनकी रणनीति विचित्र थी। जिसकी ओर संकेत खुख्खुरो के प्रसंग मे जोनराज ने किया है (श्लोक : ५२५, ७३०, ७४२, ७४३, ७४६, ७६१)। भारत-विभाजन के पूर्व अफरीदी आदि सीमान्तवर्ती कबीले इस वर्ग मे आते थे। जो ब्रिटिशो द्वारा कभी नियन्त्रित एवं दण्डित नही किये जा सके और भारतस्थित ब्रिटिश सेना का दो तृतियांश सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश पर लगा रहता था और कोई ऐसा महीना नही बीतता था, जब दोनों ओर से गोलियाँ न चलती हो।

वह्नेर्धूमविवर्धितः शमयति ज्वालाभरं वारिदो
वृक्षक्षोदभवो वनानि नयति क्षिप्रं कृशानुः क्षयम् ।
दाहं जन्मभुवो दिशेद् विपतरुर्वैरस्यदोषावहं
द्रुह्यन्त्यत्युपकारिणेऽपि नितरां लोभाभिभूता जनाः ॥ ६२३ ॥

६२३ वह्निधूम से वर्धित वारिद, (मेघ) ज्वालापुञ्ज को शान्त करता है। वृक्षों के संघर्ष द्वारा उत्पन्न अग्नि थोड़े समय में वन को नष्ट कर देती है, विपपादप अपनी जन्मभूमि को वैरस्य (शुष्क) दोषप्रद दाह देता है, नितरां लोभाभिभूत जन उपकारी के प्रति भी द्रोह करते हैं।

प्राप्ते महम्मदे मार्गपतौ विश्वासतो गृहान् ।
स गोविन्दखशश्चित्ते क्षणमेवमचिन्तयत् ॥ ६२४ ॥

६२४ मार्गपति महम्मद के विश्वासपूर्वक घर आने पर उस गोविन्द खश ने मन में इस प्रकार सोचा—

मन्त्रिणा सूहभट्टेन राज्योपद्रवरक्षिणा ।
द्वैराज्यकारी दुर्बुद्धिर्विन्यवारि महम्मदः ॥ ६२५ ॥

६२५ 'राज्य के उपद्रव का रक्षक मन्त्री भट्ट सूह ने द्वैराज्यकारी दुर्बुद्धि महम्मद को रोका—

राजद्रोहोद्यतः पापी निःसामर्थ्यो भयादयम् ।
मम देशं प्रविष्टोऽद्य रक्षणीयो न युज्यते ॥ ६२६ ॥

६२६ 'राजद्रोह के लिये उद्यत, पापी, सामर्थ्यहीन भय से मेरे देश में प्रविष्ट यह रक्षणीय नहीं है।

पाद-टिप्पणी :

६२५. उक्त श्लोक संख्या ६२५ के पश्चात् बंबई संस्करण में ८३१–८३२ श्लोक अधिक मुद्रित है। उनका भावार्थ है :—

(८३१) 'अपकार करने वालों के निष्पाद सदृश, अपट्या प्रणित नाड़ी सदृश, कभी किसी प्रकार नहीं भरती।

(८३२) 'अरम्य सदृश परिणाम में अति दुःखदायी इस गुण के सेवन से क्या लाभ ?

पाद-टिप्पणी :

६२६ उक्त श्लोक संख्या ६२६ के पश्चात् बंबई संस्करण में श्लोक संख्या ८३४–३५ और मुद्रित है। उनका भावार्थ है —

(८३४) 'इस प्रकार मन्त्रणा करके विश्वस्त के प्रति कुटिल गोविन्द ने उस मुहम्मद को उसी प्रकार निबद्ध कर लिया जिस प्रकार व्याध गुप्त सिंह को।

(८३५) 'तत्पश्चात् निष्पक्ष होने की कामना से सूह ने अनेक रत्नों से एक पुरस्तल मुहम्मद को क्रय किया।

तावच्छ्रीसूहभट्टेन विसृष्टाः श्रेष्ठबुद्धयः ।
अन्वेषका गृहं प्राप्ता गोविन्दस्य खशेशितुः ॥ ६२७ ॥

६२७ तबतक श्री भट्टशूह द्वारा प्रेषित श्रेष्ठ बुद्धि वाले अन्वेषक खशेश गोविन्द के घर पहुँच गये।

मैत्रीमुल्लङ्घ्य निर्व्यूढामाश्रितस्य च रक्षणम् ।
महम्मदं निजं मित्रमर्पयामास दुर्मतिः ॥ ६२८ ॥

६२८ दृढ मैत्री, तथा आश्रित के रक्षण का उल्लंघन कर के उस दुर्मति ने अपने मित्र महम्मद को अर्पित कर दिया।

सुप्तं हरिमिव व्याधो यदा बद्ध्वार्पिपत् खशः ।
पशुवत्तं तदा तेऽथ कश्मीरानानयन् द्रुतम् ॥ ६२९ ॥

६२९ सुप्त सिंह को व्याध सदृश जब खश ने बाँधकर अर्पित कर दिया, तब वे पशुवत् उसे कश्मीर ले आये।

मन्त्रार्दितस्य फणिनः प्लवगाश्चपेटै-
र्व्याधाः सटाविघटनान्निरसोर्हरेश्च ।
बद्धस्य कातरतया बलिनोऽवमानै-
र्निन्दां विना किमिव नाम परं लभन्ते ॥ ६३० ॥

६३० बन्दर मन्त्रपीडित सर्पों को चपेटा देने से, व्याध मृत सिंह की सटा (अयाल) को खींचने से तथा कातरता के कारण बद्ध बली के अपमान से (वे) निन्दा के अतिरिक्त (और) क्या प्राप्त करते हैं ?

मान्यं कृतावमानं तं शङ्कमानः पलायनम् ।
बहुरूपे महादुर्गे सूहः कारामवीविशत् ॥ ६३१ ॥

६३१ मान्य अपमानित उसके पलायन की आशंका से सूह ने उसे बहुरूप[1] महादुर्ग में बन्दी कर दिया।

पाद टिप्पणी

६३० उक्त श्लोक संख्या ६३० के पश्चात् बबई संस्करण में श्लोक संख्या ८३९ अधिक मुद्रित है। उसका भावार्थ है —

(८३९) 'उसने खोपड़ी पर टङ्कनाघात आदि विविध प्रकार से प्रहार कर कुपित सूहभट्ट ने मुहम्मद को तिरस्कृत किया।

पाद टिप्पणी

६३१ उक्त श्लोक संख्या ६३१ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ८४१ और मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(८४१) 'अपने प्राणों में स्वामी के हितैषी अपने अनुजीवियों को उत्तम अधिकार प्रदान किये।

(१) बहुरूप यह वीरू परगना है। काश्मीर

विद्युद्द्योतभरैर्निशि प्रवसतः पान्थान्नवो वारिदः
पश्चास्यो वनवासिनो मृगगणान् व्यावृत्य विप्रेक्षितैः।
गम्यान् वक्रगतैर्दिनेशतनयो राशीनजादीन् विधि-
र्भद्राभासविलोकनैर्दुरितिनो विश्वास्य पर्यस्यति ॥ ६३२ ॥

६३२ नवीन वारिद रात्रि में विद्युत प्रकाशपुंज से प्रवासी पथिको को, सिंह मुड़कर अवलोकनों से वनवासी मृगगणों को, सूर्यपुत्र (शनि) वक्र गतियों से गम्य मेषादि राशियों को, विधि-(भाग्य) भद्राभास (दिखावटी-कल्याण) दिखाने से दुर्भाग्यों को, विश्वस्त करके (उनके प्रति) विपरीत आचरण करता है।

शाहनाम्नयास्ततो दास्या मुखेन प्रतिबोधितः।
महमदो निजधात्रेयैर्बन्धस्थानादकृष्यत ॥ ६३३ ॥

६३३ तत्पश्चात् शाह[1] नाम्नी दासी ने महम्मद को प्रतिबोधित किया और उसके पुत्रों द्वारा वह बन्धस्थान से निकाल लिया गया।

स हि स्वेदाकुलः स्नानं करोमीति स्वरक्षकान्।
भ्रामयित्वा प्रविश्याथ स्नानकोष्ठं ततोऽचलत् ॥ ६३४ ॥

६३४ वह स्वेद से आकुल होकर 'स्नान करूँगा'—इस प्रकार अपने रक्षकों को भ्रान्त कर, स्नानागार में प्रविष्ट होकर, वहां से चला गया।

धात्रेयैर्विहितं सन्धिभेदस्थानमुपेत्य सः।
हंसः क्रौञ्चान्तरमिव निःसृतोऽथ महम्मदः ॥ ६३५ ॥

६३५ धात्रीपुत्रों द्वारा निर्मित सन्धिभेद (सेंध) स्थान पर पहुँच कर वह महम्मद उसी प्रकार निकल गया जिस प्रकार हंस क्रौंच[1] के अन्दर प्रविष्ट होकर निकल जाता है।

उपत्यका के दक्षिण-पश्चिम है। द्रष्टव्य टिप्पणी बहुरूप : श्लोक २५२ (१)

पाद-टिप्पणी :

६३३. (१) शाह : नाम से मुसलमान स्त्री मालूम होती है। इससे यह भी प्रकट होता है कि उस समय निम्नवर्गीय दास, दासी आदि भी मुसलिम धर्म ग्रहण कर चुके थे।

पाद-टिप्पणी :

६३५. (१) क्रौञ्च : का अर्थ यहाँ रन्ध्र है। बिल्हण ने इस शब्द का प्रयोग किया है : 'अपने यश द्वारा कुबेर की अलकापुरी के गोपुरों को अलंकृत करते हुए राजा अनन्त ने क्रौञ्च पर्वत में परशुराम के बाणो के छिद्रो को देखकर अपनी बाहुदण्ड एवं चण्डध्वनि धनुष पर क्रीडायुक्त क्रोधपूर्वक दृष्टिपात किया (विक्रमाङ्कदेवचरित : १८ · ३५)।'

एक पर्वत का नाम है। कथा इस प्रकार है—यह हिमालय पर्वत का पौत्र है। इसको परशुराम एवं कार्तिकेय ने बेध दिया था। कार्तिकेय एवं परशुराम का यह शब्द विशेषण रूप में भी प्रयोग किया जाता है—'हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्मयत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।' (मेघदूत ५७)। हरिवंश पुराण के अनुसार हिमालय की स्त्री मेना का पुत्र था। जिस द्वीप में वह रहता था उसका नाम क्रौंच पड़ गया था (हरिवंश : १ : १८)।

पृथ्वी के सप्तद्वीपों में एक द्वीप है। उस द्वीप के मध्य इसी नाम का क्रौञ्च पर्वत है। इसके चतुर्दिक

रोषादिव स्रुतिं हन्तुं निष्पतन्निर्झराम्भसाम् ।
भृगोरिव ततो दुर्गाददाज्झम्पामकम्पितः ॥ ६३६ ॥

६३६ क्रोध से ही मानों श्रवणशक्ति को नष्ट करने के लिये गिरते निर्झर जल के पर्वत-करार (भृगु) सदृश उस दुर्ग से अकम्पित वह कूदा।

अशक्नुवन्नमुं रोद्धुं पाषाणा रक्षिणो न च ।
निर्झरास्तु तदङ्घ्रिस्थनिगडध्वनिडम्बरम् ॥ ६३७ ॥

६३७ इसे (महम्मद) पाषाण तथा रक्षक रोक न सके और उसके चरण बन्धन शृंखला की ध्वनि निर्झर ध्वनि में विलीन हो गयी।

धात्रेया मह्मदस्याथ भञ्जन्तो निगडान् दृढान् ।
सूहभट्टमन्यन्त भग्नं साकं स्वबन्धुभिः ॥ ६३८ ॥

६३८ महम्मद ने दृढ़ निगड (वेणी) को काटते हुये धात्रीपुत्रों में स्वबन्धुओं के साथ सूहभट्ट का भी सम्बन्ध भंग मान लिया।

महम्मदवदेवास्मिञ्शङ्कमानः पलायनम् ।
धृद्धं निपीतकोशोऽपि मार्गेशमवधीद् द्विजः ॥ ६३९ ॥

६३९ महम्मद की तरह उस (मार्गपति) के पलायन की शंका करके सम्पूर्ण कोश हस्तगत कर लेने पर भी वृद्ध मार्गेश[1] को इस द्विज (सूहभट्ट) ने मार डाला।

क्षीरसमुद्र है। वहाँ के निवासी वरुण के उपासक है (विष्णु० : २ : २ : ५; २ : ४ : ५०–५१)।

कथा है। परशुराम ने बाण द्वारा हिमाचल के आर-पार एक मार्ग बना दिया। इस मार्ग से मान-सरोवर के दक्षिण गमनशील हंस गमन करते थे। इस मार्ग का नाम क्रौञ्चरन्ध्र पड गया। विल्हण अपने उक्त पद मे इसी कथा की ओर संकेत करता है (किष्कि० : ४३ : २)। सुग्रीव ने वानरो को क्रौञ्च के दुर्गम रन्ध्र तथा अन्य गुफाओ से माता सीता को अन्वेषण करने का आदेश दिया था (किष्कि० : ४३ : २७)। क्रौञ्च पर्वत के पश्चात् मैनाक पर्वत है (किष्कि० : ४३ : २९)। मेघदूत मे कालिदास ने क्रौञ्चरन्ध्र का सुन्दर वर्णन किया है (उत्तरमेघ : ५९)। महर्षि वाल्मीकि एवं कालिदास दोनों ने क्रौञ्चरन्ध्र का उल्लेख किया है। उसे कैलाश के निकट स्थित किया है।

पाद-टिप्पणी :

६३६ (१) झम्पा : श्री दत्त ने झम्पा स्थान का नाम दिया है। परन्तु यह नामसूचक नहीं है। इसका अर्थ कूदना होता है। बन्दरकूद इसका भावार्थ होगा। इसीलिये 'झम्पा' बन्दर को कहते हैं। श्री दत्त का यह लिखना कि यह स्थान है, भ्रान्ति मात्र है। यदि झम्पा स्थान का नाम मान लिया जाय तो अर्थ ही नही बैठता।

पाद-टिप्पणी :

६३८. उक्त श्लोक संख्या ८३८ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ८४९ और मुद्रित है। उसका भावार्थ है—

(८४९) हिम गमन से क्लान्त अन्तःकरण (व्यक्ति) हिम को अनल मानता है। नाव से जाता हुआ (व्यक्ति) वृक्षाग्र भाग को चलता हुआ देखता है, मूर्च्छित समग्र विश्व को तेज घूमता हुआ जानता है, संशयग्रस्त सरल हृदय मे भी अति शंका करता है।

पाद-टिप्पणी :

६३९ (१) लद्दमार्गेश = लादी मार्गे – इसका नाम लव्धर भी लिखा गया है। वृद्ध मार्गेश शब्द से प्रकट होता है कि मद्दराज प्रौढ़ावस्था में मुसलमान

हते मार्गपतौ वृद्धे सूहभट्टेन दुर्धिया।
अमन्दनिन्दमाक्रन्दत् पितरीवाखिलो जनः ॥ ६४० ॥

६४० दुर्बुद्धि सूहभट्ट द्वारा पितृतुल्य' वृद्ध मार्गपति के मार दिये जाने पर समस्त प्रजा घोर निन्दा करती रो पड़ी।

ऋक्षैः संलक्षयन्नाशाविशेषं निशि निश्यथ।
पक्षीव नीडभ्रष्टः स सूहोलूकभयादयात् ॥ ६४१ ॥

६४१ रात्रि में नीडभ्रष्ट पक्षी जिस प्रकार उल्लू से डरता है, उसी प्रकार वह सूह के भय से रात-रात में ताराओं से दिशाविशेष का ज्ञान करते हुये चलता था।

अहस्तस्य विहस्तस्य रात्रिरासीन्निशा दिनम्।
विपर्येति ध्रुवं सर्वं विधौ विधुरतां गते ॥ ६४२ ॥

६४२ विहस्त (असहाय) उसकी दिन रात्रि थी, निशा दिन था, ठीक है ! भाग्य के विपर्यय में सब कुछ विपरीत हो जाता है।

हुआ था। शाह अली हमदानी ने काश्मीर की तीन बार यात्रा प्रथम सन् १३७२, द्वितीय १३७९ तथा तृतीय १३८३ ई० मे की थी। पहली यात्रा सन् १३७२ ई० तथा सन् १४१३ ई० मे ४१ वर्षों का अन्तर पड़ता है। द्वितीय यात्रा और उक्त काल मे ३४ वर्ष तथा तृतीय यात्रा मे ३० वर्ष का अन्तर पडता है। पहली यात्रा के समय लद्द २५ वर्ष का युवक था और हमदानी ने स्वतः ३७,००० हिन्दुओं को मुसलिम धर्म मे दीक्षित किया था। उनमे यह भी एक था जो उसी समय मुसलमान हुआ था। उसकी आयु इस समय ६६ वर्ष तथा यदि द्वितीय यात्रा के समय इसलाम कबूल किया था तो ६० वर्ष और यदि तृतीय यात्रा के समय धर्मपरिवर्तन किया था तो ५५ वर्ष होता है। वृद्ध मनुष्य ७० वर्ष के पश्चात् ही समझा जाता है। अतएव मेरा अनुमान है कि वह मुसलमान धर्मग्रहण करने के समय प्रौढ़ व्यक्ति था।

सिकन्दर के समय सैय्यद अली हमदानी काश्मीर नही आये थे। उनका पुत्र सैय्यद मीर मुहम्मद हमदानी ने काश्मीर की यात्रा सन् १३९३ ई० मे की थी। नि.सन्देह लद्द ने सुलतान शहाबुद्दीन अथवा सुलतान कुतुबुद्दीन के समय इसलाम ग्रहण किया था। सिकन्दर के लिए यह सम्भव नही था कि वह अपनी धर्म-प्रवर्तक नीति का अनुकरण करता किसी गैर-मुसलिम को मार्गेश जैसे उच्च पद पर नियुक्त करता। सूहभट्ट के समान लद्दराज भी नव-मुसलिम था।

लद्दी मारगे को फाँसी दे दी गयी उल्लेख भी मिलता है (म्युनिख : पाण्डु० ६५ ए०)। किन्तु जोनराज ने वध शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ मार डालना होता है। वस्तुत. फाँसी एवं मार डालने का परिणाम मृत्यु होता है। केवल मारने की प्रक्रिया मे अन्तर है।

पाद-टिप्पणी :

६४०. (१) पितृतुल्य . जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है। लद्द सर्वप्रिय था। उसकी सर्वप्रियता ही सूहभट्ट के ईर्षा का कारण थी। मुसलमान धर्म ग्रहण करने पर भी वह सूहभट्ट के समान कट्टर नही हुआ था। उसका काश्मीरियो पर पितृ तुल्य स्नेह था। वात्सल्यभाव को धर्म परिवर्तन ने छीन नही लिया था। उसके मरते जनता अत्यन्त दुःखी हुई थी (म्युनिख : पाण्डुलिपि · ६५ ए०)।

कारानावं समुल्लङ्घ्य चलितं तं स्मरन्मुहुः ।
महम्मदतिमिं सूहधीवरः शुचमासदत् ॥ ६४३ ॥

६४३ कारारूपी नाव को लाँघकर गये उस महम्मद रूपी तिमि का स्मरण कर सूहरूपी धीवर शोकान्वित हुआ।

मन्त्रिणा सूहभट्टेन पालितैर्लालितैर्जनैः ।
ज्ञातो दर्शनमात्रेण स्वर्यातः श्रीसिकन्धरः ॥ ६४४ ॥

६४४ मन्त्री सूहभट्ट द्वारा पालित एवं लालित लोगों ने दर्शन मात्र से इस (पीरूज) को दिवंगत श्री सिकन्धर जाना।

श्रीसिकन्धरशाहिर्यं शोभादेव्याः स्वमात्मजम् ।
उत्पिञ्जानामभावार्थं स्वदेशान्निरवासयत् ॥ ६४५ ॥

६४५ शोभादेवी के जिस अपने[1] पुत्र को सिकन्धर षड्यन्त्र विनाश हेतु स्वदेश से निकाल दिया था—

उदीचीपतिना राजपुत्रत्वादभिनन्दितम् ।
कश्मीरानाययौ जेतुं तमादायाऽथ महम्मदः ॥ ६४६ ॥

६४६ उत्तर[1] के नृपति द्वारा राजपुत्र होने के कारण समादृत उसे लेकर महम्मद विजय हेतु कश्मीर आया।

पाद टिप्पणी :

६४३. (१) सूह धीवर : मछुवा = मछली मारने वाले। यह एक जाति है। मत्स्यपुराण के अनुसार एक देश भी है।

मीन सज्जनाना तृण जल सन्तोष विहित वृत्तीना।
लुब्धक धीवर पिशुना निष्कारण वैरिणो जगति॥
भर्तृ० : २ · ६१

वायु, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्यपुराणों में धीवरा वृष्णिकाश्चैव, कहा है काश्मीरी में इस काम के करने वाले 'गाड हेंज' कहे जाते हैं।

पाद-टिप्पणी :

६४५ (१) स्वमात्मज : श्लोक ५८८ में जोनराज ने कृत्रिम पुत्र होने के कारण शोभा देवी के पुत्रों को निकाल देने का उल्लेख करता है। किन्तु यहाँ वह स्वआत्मज लिखता है। दोनों स्थानों के वर्णन में विरोधाभास है। यदि यह श्लोक ठीक है, तो शोभा देवी के पुत्र कृत्रिम नहीं थे, क्योंकि वे सिकन्दर के ही पुत्र थे।

पाद-टिप्पणी :

६४६ उत्तर = उदीची : सिकन्दर ने शोभा देवी के पुत्र पीरुज को काश्मीर से निर्वासित कर दिया था। सिकन्दर के मृत्यु के पश्चात् वह अपना पैतृक राज्य लेना चाहता था। उत्तर के नृपति का नाम जोनराज ने नहीं दिया है। श्री मोहीबुल हसन का अनुमान है कि यह दिल्ली का बादशाह सैय्यदवंशीय खिज्र खाँ था (मोहिबु० ६८)।

यह घटना जोनराज के समय की है, जब वह युवा था। आश्चर्य है वह उत्तर के राजा का नाम नहीं देता। यदि दिल्ली के बादशाह ने खिज्र खाँ की सहायता से काश्मीर में प्रवेश किया होता तो यह बात काश्मीर उपत्यका में महत्त्वपूर्ण मानी गयी होती। जोनराज को अवश्य ज्ञात होगा। जोनराज के वर्णन से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कोई पर्वतीय राजा था। काश्मीर के उत्तर दरद देश पड़ता है। परन्तु भारत का उत्तरीय भाग उस समय काश्मीर के दक्षिण सीमावर्ती भाग माना

तुरुष्ककटकैः सार्धं श्रुत्वा पिरूजमागतम्।
व्यसृजत् तन्निरोधाय सूहः श्रीलद्दगौरकौ ॥ ६४७ ॥

६४७ तुरुष्क[1] सेना के साथ पिरूज को आया जानकर उसके निरोध के लिये श्रीसूह ने श्रीलद्द[2] एवं गौरक (गौरभट्ट)[3] को भेजा।

जाता था। उत्तर के राजा की मदद होती तो वह जोजिला दर्रे से काश्मीर उपत्यका मे प्रवेश करता। नि.सन्देह उत्तर शब्द उत्तरापथ का संक्षिप्त रूप है। उत्तरापथ उत्तरी भारत को माना जाता है। अतएव यह दिल्ली का बादशाह होना चाहिए। श्री मोहिबुल हसन का अनुमान ठीक माना जा सकता है।

पाद-टिप्पणी :

६४७. (१) तुरुष्क : तुर्क जाति के लिये तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। तुरुष्क शब्द ऋग्वेद मे दास शब्द के साथ लिखा गया है (२ : ४ : ३२)। आर्येतर एवं दास जाति के लिये तुरुष्क शब्द का प्राचीनकाल मे प्रयोग होता रहा है। पुराणो में तुषार शब्द एवं परवर्ती साहित्य मे तुखार शब्द तुरुष्क शब्द का ही अपर नाम है। मारकण्डेय पुराण (५७ : ३९) मे उन्हें वाह्यतरो नराः अर्थात् अभारतीय कहा गया है। 'चीनाश्चैव तुषाराश्च' उक्त पुराण मे लिखा गया है। उससे ध्वनि निकलती है कि तुर्क तथा चीन जाति सीमावर्ती जातियाँ थी। आज भी तुर्किस्तान तथा चीन की सीमा मिलती है। अरबो ने तुखारिस्तान का उल्लेख किया है। उसमे बलख था। तुशार एव तुषार शब्द पर्यायवाची है। विष्णुपुराण (४ : २४ : ५३) मे 'तुरुष्कारा मुण्डाश्च' लिखा है। इस प्रकार तुशार, तुषार, तोखरी, तुरुष्क एव तुर्क एक ही शब्द के रूप किंवा अपभ्रंश है। महाभारत मे तुषार एवं तुशार दोनो शब्दो का प्रयोग मिलता है। तुषारवासियो को म्लेच्छ कहा गया है (सभा० : ५० : १८५०)। तुषारनिवासी म्लेच्छ मान्धाता के राज्य मे निवास करते थे (शान्ति० : ६५ : २४२९)। तोखरी जाति का स्थान हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर बताया गया है (मारकण्डे० : ५७ : ३९)। पन्द्रहवी शताब्दी तक तुर्कों के लिये संस्कृत साहित्य मे तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। मेवाड के राणा मोकल के एक लेख (विक्रम संवत् १४८५) मे तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। गाँवो मे आज भी तुर्क शब्द मुसलमानो के लिये प्रयोग किया जाता है। तुर्की नाई, तुर्की कहार आदि शब्द मुसलमान नाई तथा कहारो आदि के लिये प्रचलित हैं।

तुरुष्क शब्द का प्रयोग घृणासूचक भाव मे किया जाता रहा है। अधर्म कार्य करने वालो के लिये अनादरपूर्वक इस शब्द का व्यवहार किया गया है। श्लोक ५९७ मे मूर्ति खण्डित करने के कारण राजा हर्ष को तुरुष्क अनादरसूचक शब्द मे व्यवहृत किया गया है। प्रारम्भ मे तुर्किस्तान-निवासी मुसलमानो के लिये प्रयुक्त होता था। कालान्तर मे साधारण मुसलमानो के लिये व्यवहृत होने लगा।

(२) श्रीलद्द : श्लोक ६४८ मे लद्दराज प्रयोग किया गया है। लद्दराज मार्गेश (श्लोक ५८५) इस लद्दराज से भिन्न मालूम होता है। क्योंकि वृद्ध लद्दराज की हत्या सूहभट्ट ने पहले ही करा दी थी (श्लोक ६४०)।

यह चतुर षडयन्त्रकारी श्लोक संख्या ६०० से प्रकट होता है। पिरूज को पराजित करने पर लद्द को सूहभट्ट ने मीरवरशी बना दिया था (म्युनिख : पाण्डु० ६६ ए०)। जोनराज ने श्लोक ६४९ मे लिखा है कि सूहभट्ट ने उसे कम्पनाधिपति बना दिया था।

(३) गौरभट्ट = पराक्रमी था। जोनराज उसके पराक्रम की प्रशसा श्लोक संख्या ६४८ मे करता है। विजय के पश्चात् सूहभट्ट ने उसे क्रमराज का सूबेदार बना दिया था (म्युनिख : पाण्डु० ६६ ए०)। कालान्तर मे गौरभट्ट ने हंस के कारण मृत्यु प्राप्त की (श्लोक ६८५)। जोनराज ने श्लोक ६४९ मे लिखा है कि गौरभट्ट को क्रमराजेश्वर सूहभट्ट ने बना दिया।

मन्त्रैः श्रीलद्दराजस्य विक्रमैर्गौरकस्य च।
सा तुरुष्कचमूः शान्ता व्याधिर्दानजपैरिव ॥ ६४८ ॥

६४८ श्रीलद्दराज के मन्त्रों, गौरक के पराक्रमों से वह तुरुष्क सेना उसी प्रकार शान्त हो गयी जैसे दान एवं जपों से व्याधि।

वीतभीतिस्ततो मन्त्री कम्पनाधिपतिं व्यधात्।
लद्दराजं गौरभट्टं क्रमराज्येश्वरं च सः ॥ ६४९ ॥

६४९ इससे निर्भय होकर उस मन्त्री ने लद्दराज[1] को कम्पनाधिपति तथा गौरभट्ट को क्रमराजेश्वर[2] बना दिया।

सन्ध्याक्षण इवोदग्रे सूहे रञ्जितभूभृति।
नाभूतामुदितौ राजयुवराजौ रवीन्दुवत् ॥ ६५० ॥

६५० जिस प्रकार सन्ध्या काल में पर्वतों के रंजित हो जाने पर सूर्य एवं चन्द्र उदित नहीं होते उसी प्रकार प्रभावशाली सूह के राजाओं के रंजित कर देने पर राजा एवं युवराज उदित (उन्नत)[1] नहीं हुये।

पाद-टिप्पणी :

६४९. (१) लद्दराज = लद्द शब्द से प्रायः भ्रम उत्पन्न होता है। श्लोक ५८५ वर्णित लद्दराज सिकन्दर का मन्त्री था।

उसकी हत्या सूहभट्ट ने करा दी थी। यह लद्दराज है। इसे कम्पनेश मन्त्री सुहभट्ट ने बनाया था। श्लोक ६१७ में वर्णित लद्द मार्गपति था। उसे सूहभट्ट ने प्रथम बन्दी बनाया (श्लोक ६१७)। तत्पश्चात् उसकी हत्या कर दी गयी (श्लोक ६३९)। अतएव यह लद्दराज मार्गेश किंवा मार्गपति लद्द नहीं है। लद्दराज सूहभट्ट की मृत्यु के पश्चात् हंस द्वारा बन्दी बना लिया गया (श्लोक ६८३)। अनन्तर हंस द्वारा लद्दराज मार डाला गया (श्लोक ६८८)। (म्युनिख पाण्डु० : ६६ ए०) यह लद्दराज मुसलमान था। श्लोक ८४० में इसके पुत्र का नाम नसरत दिया गया है। यह हिन्दू था। अपने जीवन में ही मुसलमान हुआ था।

(२) क्रमराज्य = इसमें परगना दुन्त, (द्वाविंशति), यीछ, (बहुरूप), मच्छहोम, परसपोर (परिहासपुर), सेदउ मयाछो पाइन, अन्दरकोट (अभ्यन्तरकोट), बंगिल, (भंगिला), पटन (पत्तन), तिलगाम (तिलग्राम), खुय (पाटन-तिलग्राम के उत्तर), कुहिन (क्रोधन), हमल (सामला), मच्छीपुर उत्तर (उत्तर), लोलोट (लोलाह), जैनगिर (जैनगिरी), खुयहोम (खुयाश्रम), लार (लहर) थे।

पाद-टिप्पणी :

६५० (१) उन्नत = सूहभट्ट अपनी शक्ति द्वारा अधिनायक तुल्य हो गया था। उसने मार्ग-कंटक स्वरूप वृद्ध लद्दराज मार्गेश को समाप्त कर दिया था। उसका प्रतिरोध करने वाला कोई दूसरा नहीं रह गया था। दूसरे लद्दराज अपने विश्वासी को उसने कम्पनेश तथा गौर को क्रम प्रदेश का राजा बना दिया था। शाहमीर ने जिस प्रकार अपने पुत्र को क्रमराज का स्वामी तथा स्वयं सेना का नियन्त्रण लेकर राज्य हस्तगत करने में समर्थ हो गया था। उसी नीति का अनुकरण सूहभट्ट ने किया। सुल्तान अलीशाह अन्तिम हिन्दूराज उदयनदेव के समान शक्तिहीन हो गया था और सर्वेसर्वा शाहमीर के समान सूहभट्ट बन गया था।

श्येनो हन्ति पतत्रिणो मृगपतिर्निष्पातयिष्णुर्मृगान्
भिद्यन्ते मणयोऽपि वज्रमणिना खाता खनित्रैर्मही ।
पुष्पाणीव नभस्वता ग्रहगणाः सूर्येण निर्धूनिताः
प्रायेणात्र विलोक्यते परिभवत्रासः सजातीयतः ॥ ६५१ ॥

६५१ बाज पक्षियों को मारता है, मृगपति मृगों का नाश करता है, वज्रमणि द्वारा मणियों का भेदन होता है, खनित्रों से पृथ्वी खोदी जाती है, वायु द्वारा पुष्पों के समान सूर्य द्वारा ग्रह-गण निर्धूनित (चलायमान) होते हैं, प्रायः यह देखा जाता है कि परिभव त्रास सजातीय से हुआ है।

द्विजातिपीडने तेन प्रेरितोऽपि मुहुर्मुहुः ।
श्रीसिकन्धरभूपालः करुणाकोमलाशयः ॥ ६५२ ॥

६५२ द्विजाति पीडन के हेतु इसके द्वारा बार-बार प्रेरित किये जानेपर भी करुण कोमलाशय श्री सिकन्धर भूपाल ने—

यवनाब्धिमहावेलां यामकार्षीत् कथञ्चन ।
उल्लङ्घिता द्विजातीनां तेन दण्डस्थितिस्ततः ॥ ६५३ ॥

६५३ यवनरूपी सागर की जो वेला (तट) किसी प्रकार निर्मित की थी उसे (सूहभट्ट) ने द्विजातियों पर दण्ड लगाकर उसे उल्लंघित[1] कर दिया।

दर्शनान्तरविद्वेषी प्रदोषस्तमसां निधिः ।
यागयात्रादि नागानां दुर्वृत्तः स न्यवारयत् ॥ ६५४ ॥

६५४ अन्य दर्शन (धर्म) विद्वेषी प्रदोष[1] तमोनिधि उस दुर्वृत्त ने नागों[2] का याग,[3] यात्रा[4] निवारित कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

६५३. (१) उल्लङ्घित : सूहभट्ट ने सिकन्दर के समय हिन्दुओं का जो उत्पीडन किया था, वह भी किसी सीमा तक मर्यादित था। परन्तु काश्मीर मे सूहभट्ट के स्वच्छन्द एवं निरङ्कुश हो जाने पर, धर्मपरिवर्तन की उत्कट कट्टरता, तज्जन्य नृशंस एवं क्रूरकर्मो की सीमा पार कर दी गई थी।

ब्राह्मणो पर दण्ड नही लगाया जाता था। ब्राह्मण अवध्य माने जाते थे। हिन्दू राज्य की इस परम्परा का सिकन्दर तक पालन होता रहा। परन्तु सुलतान अलीशाह के समय यह परम्परा तोड दी गयी। ब्राह्मण दण्डनीय मान लिये गये। उन्हें निःसङ्कोच दण्ड दिया जाने लगा। सुलतान ने फिरोज शाह तुगलक के समान ब्राह्मणो पर भी जजिया लगा दिया।

पाद-टिप्पणी :

६५४. (१) प्रदोष : जिस प्रकार प्रदोष (अन्धकार की रात्रि) अन्धकार की निधि तथा अन्य वस्तु देखकर विद्वेषी होता है, उसी प्रकार यह भी अतिदोषी अन्य स्थान देखने का विरोधी तमोगुण का निधि दुर्वृत्त था। वहाँ पर प्रदोष का अर्थ पतित एवं भ्रष्ट लगाना अधिक उपयुक्त लगता है। शिशुपालवध (२ : ७८), कुमार सम्भव (५ : ४४), रघुवंश (१ : ९३); ऋतु संहार (१ : ११); मृच्छकटिक (१ : ३५) मे अन्धकार के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

(२) नाग : काश्मीर मे नाग, जलस्रोत, जलप्रपात को कहते हैं। जलस्रोतो, प्रपातो, झरनो के देवता नाग तथा नागी है। ये जलाशयो तथा जलस्रोतो मे निवास करते है। बड़े जलस्रोतो को नाग तथा छोटे स्रोतो को नागी संज्ञा दी जाती है। नीलमत पुराण वर्णित अधिकाश तीर्थों एव देवस्थानो का स्थान जलाशयो के समीप है। काश्मीर उपत्यका मे आदिकाल से उनकी नाग रूप से पूजा होती आयी है। काश्मीर की मुसलिम जनता मे भी आज तक यह विश्वास व्याप्त है कि नाग जलस्थानो मे निवास करते है। निर्झरो तथा चश्मो से निकलती धवल वक्र धारा नागो के रेंगने जैसी लगती है।

आइने अकबरी से प्रकट होता है कि सोलहवी शताब्दी मे सात सौ स्थानो मे नागपूजा होती थी। जलाशयो आदि मे नाग निवास करते है। यह सस्कार सुदूर पूर्वकाल से चला आ रहा है (रा : ४ : ६०१)। यह भी धारणा व्याप्त है कि नाग मानव रूप धारण कर निकलते हैं। नाग सुश्रुवा तथा उसकी कन्या के कथानक से यह बात प्रकट होती है। वे हिमपात, तुषारपात, वृष्टि एव शिलापात से लोगों को त्रस्त भी करते है (रा १ : १७९, २२९, २ : १६)।

नीलमत पुराण नागपूजा का सागोपाग वर्णन करता है (नी० : 625 = ७४६, ७४७, २८९, २९०, २९१)। नीलमत पुराण मे ६०३ नागो काउल्लेख मिलता है (नी० : २२३, २२७, = 881, 946, 965, 967)। राजा अभिमन्यु के समय मे काश्मीर में बौद्धो द्वारा बन्द कर दी गई नागपूजा का प्रारम्भ पुन चन्द्रदेव ब्राह्मण के कारण हुआ था। गोनन्द तृतीय ने नागयात्रा, नागयज्ञादि पुन. काश्मीर मे प्रचलित किया था (रा० : १ : १७९–१८५)।

वास्तव मे नाग एक जाति है। इस जाति एवं गोत्र के लोग आज भी भारत मे बिखरे पड़े हैं। काश्मीर मे सर्वप्रथम नाग जाति निवास करती थी। तत्पश्चात् पिशाच जाति काश्मीर मे आयी। अन्त मे आर्य आये। नाग जाति नागपूजक थी। आर्यो ने परस्पर आदान-प्रदान के कारण नागपूजा को स्वीकार कर लिया। नीलमत पुराण नागपूजा का वर्णन करता है (नी० : २२६, २२७)।

नागपूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। नागपूजक शिवभक्त होते है। शिव का आभूषण नाग है। इस रूपक का अर्थ यह निकलता है कि शिव के भक्त नाग थे, शैव थे, शिव-उपासक थे। इस रूपक को सत्य मानकर शिव के मूर्ति की कल्पना की गयी। नागेश्वर नाम से शिव के अवतार की कल्पना की गयी। शिव को नागनाथ कहा गया।

सिन्धु सभ्यता काल से नागपूजा प्रचलित थी। मोहेनजोदारो की सील के पृष्ठभाग पर फणधर नाग एवं दो उपासक खड़े दिखाये गये हैं। हरप्पा मे नाग के सम्मुख पूजा करते उपासक दिखाये गये है।

जोनराज नागपूजा तथा नागयात्रा की ओर सकेत करता है। सनातन काल से प्रचलित नागपूजा एव यात्रा सिकन्दर बुतशिकन ने बन्द करा दी। काश्मीर की जितनी भी परम्पराये प्रचलित थी। सबको नष्ट कर नवीन मुसलिम परम्परा जारी की गयी।

(३) याग : याग एक प्रकार का हवन है। इसमे खड़े होकर श्रुवा के द्वारा अग्नि मे आहुति प्रदत्त की जाती है। यह अध्वर्यु करता है। श्रौत मे जो दी हुई आहुति है, वही याग है। इस आहुति के द्वारा श्रोता नामक ऋत्विज याज्ञा एव पुरोनुवाक्य का पाठ करता है। अध्वर्यु वेदी के दक्षिण खड़ा होकर श्रुचि मे आहवनीय अग्नि मे आहुति देता है। अनन्तर यजमान उस देवता के लिये दी हुई आहुति का त्याग करता है।

आजकल नागयाग आधुनिक युग की प्रगतिवादी प्रगति मे अन्य पूजा-पाठो के समान समाप्त हो गया है।

(४) यात्रा : यात्रोत्सव का काश्मीर मे बहुत महत्व था। तीर्थस्थानो की यात्रा के लिये निकलते थे। आज भी अमरनाथ की यात्रा की जाती है। प्रत्येक यात्रा के लिये दिन निश्चित था। यात्रा मे उत्सवो का विशेष स्थान होता था।

यात्राओं के सात दिन पूर्व विनायक, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा ब्राह्मणों की पूजा होती थी। मन्दिरों को चूने से या रङ्ग से छुआ जाता था। मरम्मत की जाती थी। पवित्र नदियों से जल एकत्रित कर शोभायात्रा के साथ मन्दिरस्थ देवता को स्नान कराया जाता था। मूर्ति एक रथ या वाहन पर रखी जाती थी। राजा, सामन्त, नागरिक आदि शोभायात्रा मे सम्मिलित होते थे। नगर के मुख्य पथो से शोभायात्रा जाती थी। इस समय नृत्य, गान एवं नाटको का प्रबन्ध जनता के लिये किया जाता था। नागयात्रा का महत्त्व था। निम्नलिखित दिन यात्रा के लिए निश्चित थे।

(१) विनायक (चतुर्थी), (२) कार्तिक (षष्ठी), (३) सविता (सप्तमी), (४) दुर्गा (नवमी), (५) श्रीगृह (पंचमी), (६) महादेव (अष्टमी-चतुर्दशी), (७) शक्र (अष्टमी), (८) नाग (पचमी, द्वादसी, पूर्णमासी), (९) कालाभृत्य (चन्द्रमा पूर्णमासी), (१०) धनद (चतुर्थी), (११) वरुण (पंचमी)। (नी० : ८४०-८४६)।

उत्सव एवं व्रत-सिकन्दर बुतशिकन की आज्ञा से बन्द कर दिये गये। व्रत तथा उत्सव प्रादेशिक एवं स्थानीय भी थे। प्रमुख उत्सव एवं व्रतो की निम्नलिखित तालिका है—

(१) विजयदशमी, (२) कौमुदी महोत्सव, केशव तथा निकुम्भ पूजा (आस्युज), (३) सुख-सुप्तिका (कार्तिक अमावस्या), (४) दीपावली, (५) देवोत्थान (कार्तिक शुक्ल पक्ष), (६) नव संवत्सर महोत्सव (मार्गशीर्ष-परिवा), (७) सप्तमी (मार्गशीर्ष सप्तमी तथा आषाढ), (८) मार्गशीर्ष पूर्णमासी, (९) नव-हिमपातोत्सव (प्रथम हिमपात दिवस), (१०) अष्टमीत्रय (पौष कृष्ण अष्टमी एव माघ तथा फाल्गुन शुक्ल अष्टमी), (११) पुष्प-स्नान (पौष पूर्णमासी), (१२) उत्तरायण, (१३) तिल द्वादशी (माघ कृष्ण द्वादशी), (१४) बारा रात्रि (माघ कृष्ण चतुर्दशी), (१५) श्रवणामस्या (माघ कृष्ण पन्द्रह), (१६) चतुर्थ (माघ अश्वयुज एवं ज्येष्ठ शुक्ल चौथ), (१७) माघ पूर्णिमा, (१८) महिमान (फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, नौमी), (१९) फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, (२०) शिवरात्रि, (२१) द्वितीय महिमान (फाल्गुन शुक्ल अष्टमी, नवमी तथा दशमी), (२२) फाल्गुनी (फाल्गुन शुक्ल पन्द्रह), (२३) राज्ञी स्नपन (चैत्र कृष्ण पंचमी), (२४) कृष्यारम्भ (चैत्र कृष्ण अष्टमी), (२५) चन्द्रोदेव पूजा (चैत्र कृष्ण एकादशी तथा द्वादशी), (२६) पिशाच चतुर्दशी (चैत्र कृष्ण चतुर्दशी), (२७) चैत्रमा (चैत्र अमावस्या), (२८) नव सवत्सर (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा), (२९) श्रीपंचमी (चैत्र शुक्ल पंचमी), (३०) बाल रक्षा (चैत्र शुक्ल षष्ठी), (३१) भद्रकाली नवमी (चैत्र शुक्ल नवमी), (३२) वास्तु पूजा (चैत्र शुक्ल एकादशी), (३३) वासुदेवार्चन (चैत्र शुक्ल द्वादशी), (३४) मदन त्रयोदशी (चैत्र शुक्ल त्रयोदशी), (३५) पिशाच प्रयाण (चैत्र शुक्ल पन्द्रह), (३६) इरामञ्जरी पूजा (इरा पुष्प काल), (३७) अक्षयतृतीया (वैशाख शुक्ल तृतीया), (३८) बुद्धजन्म महोत्सव (वैशाख पूर्णिमा), (३९) वैशाख पूर्णिमा, (४०) यवा ग्रायण (यव पकने पर), (४१) ज्येष्ठी (ज्येष्ठ पूर्णमासी), (४२) विनायक अष्टमी (आषाढ कृष्ण अष्टमी), (४३) सातियोग (आषाढ मास स्वाति संयोग), (४४) देवप्रस्वाप (आषाढ शुक्ल पक्ष के एकादशी से पूर्णमासी तक), (४५) वैश्वदेव पूजा (आषाढात् वैश्वदेवसंयोग), (४६) दक्षिणायन (४७) रोहिणी समयोग (आषाढ पूर्णिमा के पश्चात् रोहिणी संयोग दिन), (४८) श्रावणी, (४९) कृष्ण-जन्म (भाद्र कृष्ण अष्टमी), (५०) मघामावसी (भाद्रपद कृष्ण पक्ष पन्द्रह पितृ पक्ष), (५१) भाद्र शुक्ल कृत्य (भाद्र शुक्ल पक्ष प्रत्येक दिन), (५२) श्राद्ध पक्ष (पितृ पक्ष केवल चतुर्दशी के अतिरिक्त), (५३) महानवमी, (५४) अगस्त्य दर्शन (सूर्य कन्या सयोग), (५५) नवान्न विधान (धान्य पकने पर शुक्ल पक्ष मे), (५६) वरुण पंचमी (उक्त पक्ष की पंचमी), (५७) धनधा चतुर्दशी (भाद्र शुक्ल पक्ष

शङ्कमानः कृतातङ्कसङ्कोचानां द्विजन्मनाम् ।
विदेशगमनाज्जातिरक्षामक्षाममत्सरः ॥ ६५५ ॥

६५५ इस महाद्वेषी ने यह सोचकर कि आतंक से निडर ब्राह्मण[1] विदेश जाकर जातिरक्षा कर लेंगे इस शंका से—

मोक्षाक्षरं विना मार्गो दातव्यो नैव कस्यचित् ।
इत्यादिशदशेषान् स मार्गरक्षाधिकारिणः ॥ ६५६ ॥

६५६ इसने समस्त मार्गरक्षाधिकारियों को आदेश दिया कि मोक्षाक्षर[1] (पासपोर्ट) के बिना किसी को मार्ग न दें।

ततो मीनानिव व्याधो दत्तबन्धे सरिज्जले ।
द्विजातीनतिदुर्जातो देशेऽस्मिन् न्यग्रहीत्तराम् ॥ ६५७ ॥

६५७ जिस प्रकार व्याध बधे सरिता जल में मछलियों को निगृहीत करता है, उसी प्रकार इस दुर्जात[1] ने इस देश में ब्राह्मणों को अत्यन्त कष्ट दिया।

चतुर्दशी), (५८) अशोकाष्टमी (भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी), (५९) गोधूम नवमी, (६०) वितस्तोत्सव = व्ययत्रुवह (भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी), (६१) महाद्वादशी (यदि वितस्तोत्सव भाद्र द्वादशी को पड जाय), (६२) महाद्वादशी (बुध तथा श्रावण योग की द्वादशी), (६३) श्राद्ध पक्ष चतुर्थी, (६४) आश्विन कृष्ण नवमी (आश्विन कृष्ण नीराज नवमी), (६५) चतुर्थी त्रय (अश्वयुज, माघ, ज्येष्ठ की चतुर्थी), (६६) अश्वदीक्षा (स्वाती-चन्द्र नक्षत्र संयोग), (६७) हस्ति दीक्षा (चन्द्र-शक्र संयोग), (६८) भद्रकाली पूजा (अश्वयुज शुक्ल अष्टमी), (६९) गृहदेवी पूजा (मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपद), (७०) श्यामादि पूजा (द्राक्षा पकने पर), (७१) देवपूजा, (७२) नृसिंहपूजा।

द्रष्टव्य : (नीलमत पुराण : ३७६–७९५ तथा ८४०–८६४)।

पाद-टिप्पणी :

६५५. (१) ब्राह्मण : जोनराज ने सूह द्वारा ब्राह्मणों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन श्लोक ६७२ तक किया है।

फिरिस्ता लिखता है–'उस (सूहभट्ट) ने पूरे उत्साह के साथ जो कुछ थोड़े ब्राह्मण बच गये थे और अपने धर्म पर दृढ थे, उनका दमन आरम्भ किया। उन सबकी हत्या करा दिया जिन्होंने इसलाम कबूल करना अस्वीकार कर दिया था। सबको निर्वासित कर दिया जो अभी तक काश्मीर मे इधर-उधर फिर रहे थे (४६७)।

पाद-टिप्पणी :

६५६. (१) मोक्षाक्षर : खते-रुखसत = पासपोर्ट।

पाद-टिप्पणी :

६५७. (१) दुर्जात : जिस व्यक्ति का जन्म अकारथ, व्यर्थ, किंवा जीवन अनौचित्यपूर्ण, जाति से बहिष्कृत अथवा जातिच्युत, होता है, उसके लिये घृणासूचक दुर्जात शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग किसी व्यक्ति के लिये अपशब्द है। जोनराज ने सूहभट्ट के प्रति जो उसका समकालीन था अपनी मनोभावना एक दुर्जात शब्द में प्रकट कर दी है। जोनराज ने सूहभट्ट से पूर्णतया विपरीत चरित्र सिर्यभट्ट

तद्भयानलजं तापं पापं च बहवो द्विजाः।
अग्निज्वालाप्रवेशेन सहसैव न्यवारयन्॥ ६५८॥

६५८ बहुत से ब्राह्मण उसके भयाग्निजन्य ताप एव पाप को अग्निज्वाला प्रवेश कर सहसा निवारित कर दिये।

केचिद्विषेण पाशेन परे तोयेन चापरे।
भृगुणा वह्निना चान्ये विप्रा भीत्या विपेदिरे॥ ६५९॥

६५९ कुछ विप्रभय के कारण विष से, कुछ पाश (फांसी) से और कुछ जल से, अन्य भृगु (पहाड़ से कूदकर) तथा वह्नि से मर गये।

राजद्रोहिसहस्रेण रक्षितुं राजवल्लभः।
न त्वेकमशकद्विप्रमेतस्मिन् द्वेषदूषिते॥ ६६०॥

६६० इस द्वेष-दूषित देश मे राजवल्लभ (सूह) हजारों राज-विद्रोहियों मे एक भी विप्र की रक्षा न कर सका।

दुर्वहत्वेन निन्दन् स राज्यभारग्रहं खलः।
अश्लाघत द्विजाक्रन्दश्रवणानन्दलाभतः॥ ६६१॥

६६१ वह दुष्ट दुर्वह होने के कारण राज्यभार ग्रहण की निन्दा करते हुये, विप्रों के क्रन्दन-श्रवणजन्य आनन्द लाभ की प्रशसा करता था।

गृहाद्धूम्येव विप्राणां पङ्क्तिर्जात्यभिमानिनी।
रुद्धद्वारात्ततो देशादपमार्गैरपासरत्॥ ६६२॥

६६२ घर से (उठते) धूमपंक्ति के समान ब्राह्मणों की जाति अभिमानी पक्ति उस देश से द्वार रुद्ध होने के कारण कुमार्गों से निकली।

त्यक्त्वापि पितरं पुत्रस्तं पिता चागमद् द्विजः।
सूहान्तके कृताक्षेपे विदेशं परलोकवत्॥ ६६३॥

६६३ सूह यमराज के आक्षेप करने पर पिता को पुत्र और उसे पिता, विप्र परलोक सदृश विदेश चले गये।

पाद-टिप्पणी:

६५८ (१) अग्निप्रवेश: तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'चार वर्ष जबतक वह वजीर रहा उसने लोगो के ऊपर नाना प्रकार के अत्याचार किये अधिकाश हिन्दुओ को निर्वासित कर दिया। कुछ लोगो ने आत्महत्या कर ली (उ० तै० भा०: २: ५१६)।'

पाद-टिप्पणी:

६३२. (१) फिरिस्ता लिखता है—'सिकन्दर के राज्यकाल मे गैरमुसल्मान मकानो मे आश्रय नहीं पा सकते थे (ब्रिग: ४: ४६४—४६९)।'

क्ष्मा रूक्षा क्षाममशनं व्यायामो वेदनामयः।
जीवन्नरकता तेषां विदेशोऽगाद् द्विजन्मनाम्॥ ६६४॥

६६४ रूक्ष भूमि, क्षीण भोजन, कष्टप्रद आयाश के कारण वह विदेश उन विप्रों के लिये जीते ही नर्क हो गया।

धाटीफणीन्द्रभीतीव्रतापस्वल्पाशनातुरैः।
मार्गेऽनेकैर्द्विजैर्मृत्युलाभात् सुखमलभ्यत॥ ६६५॥

६६५ आक्रमण एवं सर्प भय, तीव्र ताप से आतुर अनेक ब्राह्मण मार्ग में ही मृत्यु[1] लाभ से सुखी हुये।

क्व स्नानं क्व ध्यानं तपः क्व जपः क्व।
भिक्षार्थमटतां ग्रामानगात् कालो द्विजन्मनाम्॥ ६६६॥

६६६ कहाँ पूजा और कहाँ ध्यान, कहाँ तप और कहाँ जप, भिक्षा के लिये ग्रामों में घूमते हुये ब्राह्मणों का समय बीतता था।

द्विजानामुपकारोऽभूदपकारमुखादहो।
यत्तन्निर्वासिताः सर्वे पापं तीर्थेष्वनाशयन्॥ ६६७॥

६६७ आश्चर्य है! ब्राह्मणों का उपकार अपकार के माध्यम से हुआ जो कि उसके द्वारा निर्वासित सब (ब्राह्मण) तीर्थों में पाप नष्ट कर दिये।

विदेशमगताः शुष्यत्कलत्रत्राणचिन्तया।
म्लेच्छवेषा द्विजाः केचित्कश्मीरेष्वेव चाभ्रमन्॥ ६६८॥

६५८ विदेश आये कुछ द्विज सूखती (क्षीण होत) स्त्रियों के कलत्रत्राण की चिन्ता से म्लेच्छ वेश धारण कर कश्मीर में घूम रहे थे।

पाद-टिप्पणी :

६६५ (१) मृत्युलाभ : तबकाते अकबरी मे लिखा है—'अधिकाश हिन्दुओ को निर्वासित कर दिया। कुछ लोगो ने आत्महत्या कर ली (उ० तै० भा० : २ : ५१६)।'

पाद-टिप्पणी :

६६९. (१) वृत्ति : भारत मे, मुख्यतया ग्रामो मे गरीब से गरीब लोग भी भोजनोपरान्त कुछ रोटी का टुकडा या भात हाथ मे लेकर बाहर निकलते है और कुत्तो को दे देते हैं। गाय के लिये गो-ग्रास रखने की प्रथा भी भारत मे प्रचलित है। कुछ कुटुम्ब मे यह ग्रास, गाय, श्वान तथा काक के लिये घर मे बने सभी पदार्थों को छोटी रोटी जिसे गो-ग्रास कहते हैं, रखकर अलग कर दिया जाता है। श्राद्ध मे तो नियमतः उन्हे खिलाया जाता है। हिन्दुओ मे गो-ग्रास प्रचलित है। मेरे घर यह प्रथा अबतक चली आ रही है। काश्मीर मे यही प्रथा ब्राह्मणो मे प्रचलित थी और आज भी सनातनी काश्मीरी ब्राह्मणो मे प्रचलित है। काश्मीर में भोजन के पूर्व भोजन का अंश कुत्तो के लिये निकालकर भोजन करते हैं।

वृत्ति का अर्थ जीविका, संपोषण, जीविका के उपाय आदि होता है (मनु० ४ : ४-६), (रघुवंश २ : ३८), (कुमारसम्भव ५ : २८), (शकुन्तला नाटक ७ : १२)। सामाजिक अथवा व्यक्तिगत सेवा के लिये भूमि भरण-पोषण के लिये दी जाती थी। गाँवो मे हिस्सा,

विच्छेत्तुमिच्छता विद्यां तेनापहृतवृत्तिभिः।
लडितं प्रतिवेश्माग्रे पिण्डीलोभाद् द्विजैः श्ववत् ॥ ६६९ ॥

६६६ विद्या विनाश हेतु इच्छुक उस (सूह) के वृत्ति हर लिये जाने पर द्विज पिण्डलोभ कुत्तों की तरह प्रति गृही के आगे जीभ लप लपाते थे।

तुरुष्कदर्शने भक्त्या नतु द्वेषेण स द्विजान्।
व्यग्लापयदतस्त्वास्मिन् हत्या न प्रजगल्भिरे ॥ ६७० ॥

६७० तुरुष्क दर्शन (धर्म) प्रेम होने से नकि द्वेष के कारण ब्राह्मणों को उसने पीड़ित किया अतः उसमें हत्या का दोष नहीं आया।

इत्याख्याने स एवैषां मतस्य परिहारदः।
द्वेषद्योतनशक्तानां कार्याणामेव दर्शनात् ॥ ६७१ ॥

६७१ इस परिस्थिति में द्वेष प्रकट करने में संलग्न कार्यों के ही देखने से यह इनके मत का परिहार कर देता था।

रत्नाकरं यमाश्रित्य ब्राह्मणा जगतीभृतः।
पक्षरक्षां व्यधुः सोऽभूत् क्षुद्रभट्टोऽस्य वल्लभः ॥ ६७२ ॥

६७२ जगतीभृत[1] ब्राह्मण जिस रत्नाकर का आश्रय लेकर (अपने) पक्ष की रक्षा किये वह छुद्र इस (सूहभट्ट) का प्रिय हो गया।

मलानोदीननामानं यवनानां परं गुरुम्।
वैदग्ध्याच्छङ्कमानः स द्रोहीति तमबन्धयत् ॥ ६७३ ॥

६७३ यवनों के परम गुरु मलानोदीन[1] पर विदग्धता के कारण शंका करके इस द्रोही ने उसे बन्दी बना लिया।

जायदाद मे हिस्सा, सेवा के बदले मे दी जाती थी। इसका उल्लेख पुरातन अभिलेखो मे भी मिलता है (साउथ इण्डियन टेम्पुल इन्सक्रिप्शन्स : ३ : अध्याय २ : पृष्ठ १ तथा १०४ कोरपस इन्सक्रिप्शनम् १ : पृष्ठ १८१–१८५)।

पाद-टिप्पणी :

६७२ (१) जगतीभृत : जगतीभृत तथा रत्नाकर शब्द श्लिष्ट है। जगतीभृत का अर्थ पर्वत होता है। इसी प्रकार रत्नाकर का अर्थ राजा तथा समुद्र दोनो होता है।

(२) रत्नाकर : जगतीभृत तथा रत्नाकर दो शब्दो के श्लिष्ट प्रयोग से समुद्र मे छिपकर पर्वतो के पक्षरक्षा की कथा की ओर संकेत किया गया है।

पाद-टिप्पणी :

६७३ (१) मलानोरदीन : मुल्ला नूरुद्दीन शुद्ध फारसी शब्द है। एक मत है कि यह शेख नूरुद्दीन के लिए प्रयोग किया गया है जो काश्मीर का सन्त सरक्षक है। शेख नुरुद्दीन चरारशरीफ मे दफन किये गये हैं। काश्मीरी भी नुरुद्दीन को अभी तक नूरदीन बोलते हैं। शेख मुल्ला भी होते हैं। शेख मुल्ला नूरुद्दीन पूरा नाम होगा।

यतः प्रभृति स प्रापद् राज्यमच्छत्रचामरम् ।
ततः प्रभृति रोगार्तिरिव दर्शनदूषणा ॥ ६७४ ॥

६७४ जब से छत्र चामरहीन राज्य उसने प्राप्त किया, तब से लेकर दर्शन (दृष्टि) दूषित करने वाली रोगार्ति पीड़ा सदृश—

स्वप्नेऽपि नात्यजत् सूहभट्टं घट्टितवैरिणम् ।
भोगः सद्वासना चातिशुद्धानां तपसां फलम् ॥ ६७५ ॥

६७५ भोग सद्वासना जो कि अति शुद्ध लोगों के तपस्या का फल होता है, शत्रु संहार-कर्ता सूहभट्ट को स्वप्न में भी नहीं छोड़ा ।

तस्यैव फलपूर्णानामृतूनामिव मन्त्रिणाम् ।
मानस्य हानिसम्पत्ती भास्वतोऽधीनतां गते ॥ ६७६ ॥

६७६ जिस प्रकार ऋतुओं की हानि एवं सम्पत्ति सूर्य के अधीन होती है, उसी प्रकार मन्त्रियों की हानि सम्पत्ति उसी (सूहभट्ट) के अधीन हो जाने पर—

एकस्मिन् शाहिखाने स दृष्ट्वा मन्त्रपराक्रमौ ।
अत्यन्तचिन्ताचकितो निद्रां नापत् कदाचन ॥ ६७७ ॥

६७७ वह केवल शाहिखान[1] में मन्त्र एवं पराक्रम को देखकर, अत्यन्त चिन्ता-चकित हो गया और कभी उसे निद्रा नहीं आयी ।

पश्यत्येवाविले सूहसर्पे सविषया दृशा ।
शाहिखानप्रदीपोऽभूत् तमः संहर्तुमक्षमः ॥ ६७८ ॥

६७८ उस आविल सूह सर्प के विष सहित दृष्टि से देखते, शाहिखान प्रदीप तम-संहृत करने में अक्षय हो गया ।

द्विजातिपीडया शास्त्रनिन्दया द्रोहचिन्तया ।
चिकित्सया च तस्याब्देर्यातं त्रिचतुरैस्तथा ॥ ६७९ ॥

६७९ उसके तीन-चार वर्ष[1] उसी प्रकार द्विजाति-पीडा शास्त्र-निन्दा, द्रोह चिन्ता, चिकित्सा द्वारा व्यतीत हुये ।

पाद-टिप्पणी :

६७७ (१) शाहिखांन : जैनुल आबदीन : बडशाह तथा सुलतान अलीशाह का मझला भाई था । शाही खां षड्यन्त्र एवं पराक्रम दोनो में पटु था । यही सूहभट्ट के चिन्ता का कारण था ।

पाद-टिपणी :

६७९. उक्त श्लोक संख्या ६७९ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ८९१-८९२ अधिक मुद्रित है । उनका भावार्थ है—

(८९१) 'दयावान सदृश उस संवृत पराक्रमी ने दोष के परीक्षण मात्र के लिये शाहिखांन के वध में विलम्ब किया ।

(८९२) 'वलीमुख मनोज उसने प्रजा भाग्यबल के उदय होने से शाहिखान चिन्तामणी को भग्न नहीं किया ।

(१) वर्ष : तबकाते अकबरी के अनुसार सुलतान सूहभट्ट अलीशाह का चार वर्षों तक मन्त्री

प्रजापुण्योदयेनेव प्रेरितो दुष्कृतोत्थितः ।
क्षयामयो दुश्चिकित्स्यो द्विजराजमशोषयत् ॥ ६८० ॥

६८० प्रजा पुण्य के उदय से ही प्रेरित होकर तथा दुष्कृत से समुत्पन्न, दुश्चिकित्स्य (असाध्य) क्षय रोग द्विजराज को शुष्क कर दिया।

अनालोक्यैवेन्दोरुदयमगमिष्यद्यदि शमं
समन्तान्नादित्योपलदहनराशिव्यतिकरः ।
किमद्रक्ष्यन्नायं तदुदयवशस्त्रावितुहिन-
द्युतिग्रावाम्भोभिः कृतधरणितापोपशमनम् ॥ ६८१ ॥

६८१ यदि चन्द्रमा के उदय को बिना देखे सूर्यकान्त[1] (मणि) का अग्नि समूह चारों ओर से शान्त हो जाय, तो क्या वह उसके (चन्द्रमा) उदयवश श्रीवत होने वाले चन्द्रकान्त[2] (मणि) के जल द्वारा किये गये पृथ्वी के ताप शमन को नहीं देखेगा ?

वर्षांस्त्रिचतुरानन्याञ्जीवेचेत्स न किं ततः ।
शाहिखानोदये पश्येदिहैव स्वांहसां फलम् ॥ ६८२ ॥

६८२ यदि वह चार वर्ष और जीवित रहता, तो शाहिखान[1] का उदय होने पर, यहीं पर अपने पापों का फल क्या नहीं देख(भोग) ता ?

था। जोनराज स्वयं नहीं लिखता कि वह तीन वर्ष तक मन्त्री था अथवा चार वर्ष।

पाद-टिप्पणी :

६८० (१) मृत्यु : तवकाते अकबरी के अनुसार सूहभट्ट की मृत्यु का कारण तपेदिक था (उ० : तै० भा० : २ : ५१६)।

सूहभट्ट की मृत्यु सन् १४१६–१४१७ ई० मे हुई थी। एक मत है कि सूहभट्ट अथवा सैफुद्दीन का शव सैफुद्दीन पोर जो नाला-ए-मर श्रीनगर मे है, दफन किया गया था। हसन का मत है कि सूहभट्ट लगभग ४० वर्षों तक मन्त्री था। यह यदि मान लिया जाय तो वह कुतुबुद्दीन सिकन्दर तथा अलीशाह के समय मन्त्रित्व पद पर था। किन्तु हसन की गणना त्रुटिपूर्ण है। भट्टसूह का मन्त्री बनना सर्वप्रथम श्लोक ५८५ मे वर्णन किया गया है। यह काल सिकन्दर बुतशिकन का है। वह वैद्यशंकर तथा रुद्रराज के साथ मन्त्री था। जोनराज ने वर्णन क्रम मे उसका नाम तीसरा रखा है।

फ़िरिस्ता लिखता है—'सुलतान के गद्दी पर बैठने के कुछ समय पश्चात् मन्त्री (सूहभट्ट) खून थूकता मर गया (४६७)।'

पाद-टिप्पणी :

६८१. (१) सूर्यकान्त मणि : प्राचीन मान्यता के अनुसार एक प्रकार की मणि है। सूर्यरश्मि के सम्मुख करने से इससे ज्योति निकलती है। एक मत है कि यह आतशी शीशा है। आतशी शीशा को सूर्याभिमुख और उसके नीचे रुई आदि रखने पर अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इसे आदित्य काच भी कहते हैं (ई० : आई० ३२)।

(२) चन्द्रकान्त मणि : प्राचीन मान्यता के अनुसार एक रत्न है। यह मणि उपाख्यानो के अनुसार चन्द्रमा के सम्मुख करने पर पसीजने लगता है। जलकण द्रवित होता है। 'द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः' (उत्तररामचरित : ६ : १२; शिशुपाल वध : ४ : ५८; अमरूशतक : ५७, भर्तृहरि : १ : २१ ; मालतीमाधव : १ : २४)।

पाद-टिप्पणी :

६८२. (१) शाहिखान : जैनुल आबदीन है।

जीवत्येव ततः सूहभट्टे भीत्या पलायितम् ।
विश्वास्य लद्दराजं द्रागहंसगौरौ ववन्धतुः ॥ ६८३ ॥

६८३ इसके पश्चात् सूहभट्ट के जीवित रहते भय से पलायित, लद्दराज को विश्वस्त कर शीघ्र ही हंस[1] और गौर[2] बाँध लिये ।

श्रीधेनौ रागिणौ तौ द्वौ मदोदग्रौ वृषाविव ।
अन्योन्यशृङ्गभङ्गार्थं प्रावर्तेतां द्विजे मृते ॥ ६८४ ॥

६८४ जिस प्रकार गाय के लिये मदमत्त दो वृष एक दूसरे के शृंग-भङ्ग करने के लिये लग जाते हैं, उसी प्रकार द्विज के मर जाने पर मदोग्र एवं रागी वे दोनों श्रीप्राप्ति के लिये एक-दूसरे के विनाश[1] में लग गये[2] ।

कारया मोचिते लद्दराजे हंसेन संयति ।
प्राणांस्त्यक्त्वा गौरभट्टः सुरस्त्रीणां मुदं व्यधात् ॥ ६८५ ॥

६८५ हंस द्वारा कारागार से लद्दराज[1] के छोड़ दिये जाने पर, गौरभट्ट[2] ने युद्ध में प्राणोत्सर्ग कर, देवाङ्गनाओं[3] को प्रसन्न किया ।

तवकाते अकबरी में लिखा है—'सूहभट्ट के मृत्यु के पश्चात् उसने अपने छोटे भाई शाहिखांन को, जो वीरता तथा बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध था वजीर नियुक्त कर दिया । तदोपरान्त शाही खां को अपना वली अहद बनाया ।'

फिरिस्ता लिखता है—'(शूहभट्ट) के मृत्यु पश्चात् सुलतान ने अपने कनिष्ठ भ्राता शाही खा को उसके स्थान पर राज्य का सब कार्यभार दिया । बहुत शीघ्र ही उसने राज्य त्याग कर विदेशयात्रा करने का निश्चय किया । उसने इसलिये अपने कनिष्ठ भ्राता मुहम्मद खां को शाही खाँ के साथ राज्य कार्य देखने के लिये लगा दिया ।'

पाद-पिप्पणी :

६८३. (१) हंसभट्ट : परसियन इतिहासकारों का मत है कि हंसभट्ट मुसलमान था (म्युनिख पाण्डु० : ६७ ए०) वह सूहभट्ट का भाई भी कहा गया है । उसका अपर नाम मलिक युसुफ था । जैसे सूहभट्ट का अपर नाम सैफुद्दीन था ।

(२) गौरभट्ट : जाति का निश्चय नहीं है । परन्तु वह भी मुसलिम होना चाहिए । क्योंकि सूहभट्ट जैसा प्रतिक्रियावादी हिन्दू द्रोही नव-मुसलिम अपने विश्वास मे किसी हिन्दू को नही रख सकता था ।

सूहभट्ट के मरने पर उसके प्रिय एवं विश्वासपात्र लद्दराज, हंस तथा गौरभट्ट एक साथ नहीं रह सके । तीनो ही महत्वाकांक्षी थे । सुलतान दुर्बल व्यक्ति था । वह उन पर नियन्त्रण नही रख सका । अतएव तीनो ही अविश्वास के कारण परस्पर विरोधी हो गये ।

पाद टिप्पणी :

६८४. (१) विनाश : हंस ने लद्दराज को कारागार मे बन्द कर दिया । बाहर केवल हंस और गौरभट्ट शक्तिशाली थे । दोनो ही सत्ता हस्तगत करने के लिये परस्पर युद्धरत हो गये ।

पाद-टिप्पणी :

६८५. (१) लद्दराज : हंस ने प्रतीत होता है कि गौरभट्ट के शक्तिशाली होने के कारण अपने पक्ष को मजबूत करने के लिये लद्दराज को कारागार से मुक्त कर दिया । यह पता नही चलता कि कारागार से मुक्त होने पर लद्दराज ने हंस की सहायता की या नही, सम्भावना यही है कि उसने हंस की सहायता

त्यक्त्वा गत्यन्तराभावात् करिकर्णविलोलताम् ।
पुंश्चल्येव पतिर्वृद्धो भेजे हंसस्तदा श्रिया ॥ ६८६ ॥

६८६ उस समय अन्य गति न होने के कारण करिकर्णवत् चाञ्चल्य त्यागकर, लक्ष्मी ने उसी प्रकार हंस को प्रतिरूप में प्राप्त किया जिस प्रकार पुंश्चली वृद्ध पति को प्राप्त करती है।

बालोऽपि शाहिखानोऽस्य नोत्सेकं सोढवान् पुनः ।
शशीव तिमिरस्फारं न हि तेजो वयोऽनुगम् ॥ ६८७ ॥

६८७ बालक होने पर भी शाहिखान[1] उसका उत्सेक (गर्व) उसीप्रकार न सह सका, जिस प्रकार शशी तिमिर-प्रसार को (उचित ही है) तेज वय (आयु) का अनुगामी नहीं होता।

ठक्कुरैः सह सम्मन्त्र्य युवराजोऽथ मन्त्रवित् ।
लद्दराजं विनिघ्नन्तं हंसभट्टं रणेऽवधीत् ॥ ६८८ ॥

६८८ मन्त्रवेत्ता युवराज[1] ठक्कुरों[2] के साथ मन्त्रणा युद्ध मे लद्दराज[3] के निहन्ता हंस भट्ट[4] का वध कर दिया।

की होगी। दोनो ने मिलकर गौरभट्ट को युद्ध मे परास्त कर दिया और गौरभट्ट युद्ध मे मर गया।

(२) गौरभट्ट : काश्मीरी पण्डितो मे अब भी पुरुषो का 'गौरभट्ट' तथा स्त्रियो का 'गौरभटनी' नाम मिलता है। किन्तु प्रवृत्ति आधुनिक सस्कृतशैली पर नाम रखने की ओर अधिक है।

(३) देवांगना : जोनराज ने इस पद मे कल्हण (रा० : १ : ६८) के भाव को व्यक्त किया है।

पाद-टिप्पणी :

६८७ (१) शाहिखान : शाहिखान का अपर नाम शाहरूख, सुलतान जैनुल आबदीन तथा बडशाह है।

पाद-टिप्पणी :

६८८. (१) युवराज : जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि मीरखान अर्थात् सुलतान अलीशाह ने अपने मझले भाई शाहीखान अर्थात् जैनुल आबदीन को युवराज बनाया था। तबकाते अकबरी मे लिखा है—'तत्पश्चात् शाही खान को वली अहद बनाया (उ० : तै : भा० : २ : ५१६)।'

(२) ठक्कुर : ठक्कुर अथवा ठाकुर शब्द क्षत्रियो अथवा राजपूतो के नाम के साथ अल्ल स्वरूप जोडा जाता रहा है। काश्मीर मे क्षत्रिय एवं राजपूत *लोग धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी ठक्कुर अल्ल से* अभिहित होते रहे हैं।

ठक्कुर एवं ठाकुर समानार्थक शब्द हैं। कुलीन क्षत्रियो तथा राजपूतो के नाम के साथ आदरसूचक अल्ल रूप जोडा जाता है। दक्षिणी काश्मीर निवासी क्षत्रियो एव राजपूतो के नाम के साथ लगाया जाता है। लोहर के ठाकुरो का अत्यधिक उल्लेख राजतरंगिणी मे मिलता है। कल्हण ब्रप्प निल स्थान के पर्वतीय ठाकुरो का उल्लेख करता है (रा० : ८ : १९८९, १९९३)। मुसलिम काल मे जो ठाकुर *मुसलमान हो गये थे, वे अपने नाम के साथ, अपने* जाति की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिये, ठक्कुर किंवा ठाकुर लिखते थे। ठक्कुर दौलत, ठक्कुर मुहम्मद, ठक्कुराल्हाद, ठाकुरो शब्द का भी प्रयोग किया गया है (जैन : रा० : त० . ४६३, ४ : १०४, ३४७, ३५३, ३७९, ३९८, ४१२, ५३७)।

विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि तुर्की शब्द 'तोगॅन' से ही ठाकुर शब्द निकला है। यह शब्द विदेशी था। इसलिये दक्षिण भारत मे प्रचलित नहीं हो सका। यह भी तर्क उपस्थित किया गया है।

गुजरात मे ठाकुर को ठाकोर कहते हैं। गुजरात मे कोली जाति को ठाकोर कहा जाता है। उनका

शाहिखानं प्रजारागो निम्नं पय इवागमत्।
अमन्दचूतसम्पत्तौ कुन्दं निन्दति षट्पदः॥ ६८९॥

६८९ प्रजा का अनुराग शाहिखान के प्रति उसी प्रकार चला, जिस प्रकार जल निम्नस्थल को। अधिक आम्र-सम्पत्ति होने पर भ्रमर कुन्द[1] (पुष्प) की निन्दा करता है।

काम चोरो को पकडना तथा पता लगाना था (ई० : पी० : इण्डिया . भाग . १३ : पृष्ठ २९७ : तथा भाग १९ : २४३, आई० : ई० ८; डी० सी० सरकार ३३९–३४०)।

द्रष्टव्य : रा० ७ : २९०, ७०६, ७३९, ७७५, ७७९, ७८०, ७८४, ७८५, ८ : ११४२, २२७८, १९८९, २२२३, लारेन्स : वैली : ३०६।

ठक्कर किंवा ठाकुर जाति हिमाचल के चम्बा जिले मे रहती है। चम्बा काश्मीर की सीमा पर है। चम्बा के उत्तर लद्दाख, दक्षिण कागडा, पश्चिम कठुवा तथा पूर्व मे महूल सिप्ती है। चम्बा बहुत समय तक काश्मीर राजाओ द्वारा विजय कर काश्मीर राज्य का अंग बना रहा। पूर्व काल मे काश्मीरी वर्ग राज्य मे चम्बा था। चम्बा मे ठाकुर जाति की स्थिति राजपूतो के समान थी। वे छोटे-छोटे सामन्त थे। झेलम तथा रावी के मध्यवर्ती क्षेत्र मे फैले थे। जम्मू मे ठाकुर तथा कागडा मे ठाकुर और राठी कहे जाते थे। उनका मुख्य उद्यम जाटो के समान कृषि था। चम्बा मे ठाकुर जाति राठी से ऊपर भी कही-कही मानी जाती है। राजपूतो और राठी के मध्य ठाकुरो की स्थिति चम्बा गजेटियर (पृष्ठ ८८–८९) के अनुसार प्रतीत होती है। चम्बा तथा समीपवर्ती पर्वतीय अचल का परस्पर सम्पर्क काश्मीर से अत्यधिक रहा है। विक्रम सम्वत के प्रचलन के पूर्व लोक काल अथवा शास्त्र सम्वत चलता था। यह काश्मीर का सप्तर्षि किंवा लौकिक सम्वत है। उसके अनुसार २७०० वर्षों का एक चक्र होता है। प्रत्येक १०० वर्ष का एक नक्षत्र पर नाम होता है। यही कारण है कि पूरा सम्वत् न लिखकर काश्मीर के समान इकाई दहाई ही लिखा जाता है। जैसे ४४४४ के स्थान पर केवल ४४ लिखा जायगा। विक्रम सम्वत मे प्रति वर्ष का देवता अलग होता है। जिसके नाम पर उस वर्ष का नाम दिया जाता है।

(३) लद्दराज : वर्णन से प्रकट होता है कि हंसभट्ट ने लद्दराज की हत्या करा दी अथवा स्वय उसे मार डाला था।

(४) हंसभट्ट : सुलतान जैनुल आबदीन ने अपने युवराज काल मे हंसभट्ट का वध करा दिया था। इस प्रकार सूहभट्ट के मित्र लद्दराज, गौरभट्ट एव हंसभट्ट तीनो की मृत्यु हत्याओ द्वारा हुई। कोई अपनी मृत्यु से नही मरा। हंस के वध की कथा पारसियन इतिहासकारो ने दिया है—'अली शाह के ईमा (सकेत) तथा ठाकुरो की सहायता से इसने (शाहीखान) ईदिज़ुहा के दिन ईदगाह मे हंसभट्ट को कतल करा दिया (म्युनिख : पाण्डु० ६७ ए०)।'

पाद-टिप्पणी :

६८९ (१) कुन्द : श्वेत पुष्प होता है। आश्विन से फाल्गुन मास मध्य फूलता है। सुगध मीठी होती है। अलकारशास्त्र के अनुसार कविगण प्रायः कुन्द से दाँतो की उपमा देते है। शरीर के वर्ण से भी उपमा दी जाती है 'कुदावदाताः कलहंसमाला'—(भट्टि काव्य : २ : १८, 'प्राप्त-कुन्द-प्रसवशिथिल जीवित धारयेथा.' (मेघदूत : ११३)। आम्रमजरी चैत-फाल्गुन मास मे फूलती है। भ्रमर नवीन मोहक सुगन्ध के कारण कुन्द का त्याग कर आम्रमजरी पर गूँजने लगता है। कुन्द श्वेत होता है। आम्रमजरी अश्वेत हरित होती है।

युवराजं जयोदग्रं परिरब्धुं समुत्सुका ।
राज्यश्रीः समयालाभाचिन्ताकुलमवर्तत ॥ ६९० ॥

६९० जयोन्नत युवराज को आलिङ्गित करने के लिये समुत्सुक राजलक्ष्मी[1] उचित समय न मिलने से चिन्ताकुल हो गयी ।

स्नेहाद्विदग्धभावाच्च प्रजारागभरादपि ।
अधिकारभरं राजा युवराजे समार्पिपत् ॥ ६९१ ॥

६९१ स्नेहविदग्धता एवं प्रजाप्रेम के कारण राजा ने अधिकार[1] भार युवराज पर अर्पित कर दिया ।

मेरकेसरसंज्ञस्य तुरुष्कस्याऽथ दुर्मतेः ।
द्विपस्येव मदान्धस्य द्विष्टोऽभूत् तद्गुणाङ्कुशः ॥ ६९२ ॥

६९२ मदान्ध द्विप (गज) सदृश दुर्मति[1] मेरकेसर[2] नामक तुरुष्क के लिये, उसका गुणांकुश द्वेषी हो गया (अर्थात् उसके गुण से द्वेष करने लगा) ।

पाद टिप्पणी :

६९० (१) राजलक्ष्मी : जोनराज जैनुल आबदीन के राजलक्ष्मी अर्थात शीघ्र ही राज्य न ग्रहण के कारण चिन्ता भावना व्यक्त करता है । इस सकेत से प्रकट होता है कि राज्य मे यह विचार उठने लगा था । अलीशाह को हटाकर शाहीखा अर्थात् जैनुल आबदीन को काश्मीर के सिंहासन पर बैठाया जाय । अलीशाह ने भाई शाही खां को युवराज बनाया था, शक्तिशाली किया था । उसे इस आभास मात्र से गहरा धक्का लगा होगा कि उसका मझला भाई उसके राज्य का इच्छुक है । इस अवस्था मे वैराग्य उत्पन्न होना स्वाभाविक है । जिसके ऊपर अहसान किया जाता है, जिससे स्नेह किया जाता है, यदि वही अहसान-फरोस हो जाय अथवा द्रोह करे, तो अनायास श्मशान वैराग्य के समान वैराग्य उत्पन्न होता है । इसी वैराग्योद्रेक मे अलीशाह को राज्य सिंहासन से वितृष्णा हो गयी । जिस प्रकार भर्तृहरि को हुई थी । राजा भर्तृहरि ने भी अपने स्नेह एव अनुग्रह पर धक्का लगते ही वैराग्योद्रेक मे राज्य त्याग दिया था ।

यही क्रिया-प्रतिक्रिया अलीशाह के मन म हुई । अपनी भावना पर ठेस लगने के कारण, उसने वैराग्य का आश्रय लेकर, राज सिंहासन त्यागने का निश्चय किया ।

तारीखे सैयदअली (पाण्डु० : १५ बी०) मे यह लिखा गया है कि शाहीखान (जैनुल आबदीन) ने पजाब से सेना बुला ली थी और ज्येष्ठ भ्राता अलीशाह से युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गया था । यात्रा की बात इस घटनाक्रम के पश्चात् चलती है ।

पाद-टिप्पणी :

६९१. (१) अधिकार : अलीशाह नि सन्देह शाहीखान अर्थात् जैनुल आबदीन से स्नेह करता था । उसने उसे युवराज पद दिया । शाहीखा अपने सौजन्य, प्रजाप्रेम आदि गुणो के कारण जनता का प्रिय हो गया था । परशियन इतिहासकारो ने लिखा है कि सुलतान अलीशाह ने शाहीखा को अपना प्रधान मत्री बनाया था (म्युनिख पाण्डु० . ६७ ए०)

पाद टिप्पणी :

६९२ (१) दुर्मति . सूहभट्ट के लिए जोनराज ने दुर्जात तथा मेर केसर के लिये दुर्मति अर्थात मूर्ख विशेषणो का प्रयोग कर उनके चरित्र की निन्दा की है ।

(२) मेर केसर : मीर केसर के लिये यहाँ तुरुष्क शब्द का प्रयोग, जोनराज ने किया है । इतोर

सुचिरं मलिनै राज्ञो मानसं वारिदैरिव ।
पैशुन्यवर्षिभिर्नेतुं मालिन्यं न स्म शक्यते ॥ ६९३ ॥

६६३ जिस प्रकार मलिन मेघ मानस (सरोवर) को मलिन नहीं कर सकते, उसी प्रकार चिरकाल तक पैशुन्यवर्षी (चुगलखोर-निन्दक) जन राजा का मानस (मन) मलिन नहीं कर सके ।

भक्ते दक्षेऽनुजे स्निग्धे भूभृदाश्रितवत्सलः ।
अतिप्रेरणया तेषां राज्येऽप्युद्विग्नतामगात् ॥ ६९४ ॥

६६४ आश्रित वत्सल भूभृत, उन (खलों) की अत्यधिक प्रेरणा के कारण, भक्त दक्ष एवं स्निग्ध अनुज तथा राज के प्रति भी उद्विग्न (उदासीन) हो गया ।

युवराजं सेवकांश्च रक्षितुं स्वान् महीपतिः ।
तीर्थानुसरणाकाङ्क्षी तमित्येवमवोचत ॥ ६९५ ॥

६६५ तीर्थयात्रा की इच्छा से महीपति ने युवराज तथा अपने सेवकों की रक्षा करने के लिये, उसे इस प्रकार कहा—

अनर्थितर्पणं वित्तं चित्तमध्यानदर्पणम् ।
अतीर्थसर्पणं देहं पर्यन्ते शोच्यतां व्रजेत् ॥ ६९६ ॥

६६६ 'वह धन जो याचकों को दिया नहीं जाता, ध्यान-दर्पण बिना चित्त, बिना तीर्थ यात्रा किये देह, अन्त में शोचनीय हो जाता है—

दिग्गजेष्विव युष्मासु भूभारं न्यस्तवानहम् ।
पुरुषोत्तमसेवायै यते शेष इवापरः ॥ ६९७ ॥

६६७ 'दिग्गजों के समान आप लोगों पर मैंने भूभार रख दिया है, और दूसरे शेषनाग' सदृश पुरुषोत्तम की सेवा के लिये यत्न कर रहा हूँ ।'

---

७२१ मे उसके लिये यवन शब्द का प्रयोग किया गया है । तुरुष्क एवं यवन दोनो शब्द मुसलिम जाति-वाचक हैं । जोनराज ने मुसलिम तथा इसलाम शब्द का प्रयोग नही किया है । मुसलिम किंवा इसलाम धर्मानुयायी काश्मीरियो के लिये तुरुष्क शब्द का प्रयोग जोनराज करता है ।

केसर शब्द ब्राह्मणो के नाम के साथ भी होता था । केसर के पूर्वपुरुष ब्राह्मणवंशीय रहे होगे । उनके अथवा केसर के स्वयं इसलाम ग्रहण करने पर मीर शब्द नाम के साथ जोड दिया गया होगा । इसलिये नाम मेर केसर हो गया था । केसर नाम इस समय अप्रचलित हो गया है । मुसलमान शुद्ध फारसी-अरबी तथा हिन्दू सुसंस्कृत नाम रखने लगे हैं ।

पाद-टिप्पणी :

६९५ उक्त श्लोक संख्या ६९५ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ९०८ और मुद्रित है । उसका भावार्थ है—

(९०८) 'भोगो मे उन्मग्न तथा शूक्तियो मे निमग्न सदृश उसने महादखान एवं शाहिखान से कहा—

पाद-टिप्पणी :

६९७ (१) शेषनाग : पौराणिक गाथा के अनुसार शेषनाग समस्त पृथ्वी का भार वहन करते हैं । पितामह ब्रह्मा के कारण उन्हे यह सामर्थ्य प्राप्त हुई थी (आ० : ३२ : ५–१९ तथा ६ : १८-१९) । शेषनाग एक प्रमुख नाग है । नागराज अनंत का

शाहिगानार्णवः प्रेममन्दरान्दोलितस्ततः ।
वाणीं सुधाकरकलामीश्वराय नवामदात् ॥ ६९८ ॥

६९८ 'तदन्तर प्रेम मन्दराचल' से आन्दोलित शाहिगान अर्णव ने ईश्वर (राजा शंकर) को नवीन वाणी रूप सुधाकरकला प्रदान किया—

अस्तु सन्देहसन्दोहाद् दूरे तीर्थकदर्थना ।
द्वारं यशःसुकृतयोः प्रजापालनमस्तु वः ॥ ६९९ ॥

६९९ 'सन्देह समूह के कारण तीर्थयात्रा की कदर्थता दूर हो, आप लोगों के लिये प्रजापालन ही यश एवं सुकृति का द्वार है—

चिरस्य पालितां पित्र्यां हित्वा निःशरणां महीम् ।
नैर्घृण्येनैव शूरस्त्वमशक्त्यैवाङ्कयसेऽखिलैः ॥ ७०० ॥

७०० 'चिरकाल से पालित पैतृक पृथ्वी को जिसे नि शरण नहीं है, निर्दयतापूर्वक त्याग से सब लोग शूर भी आपको असामर्थ्य के कारण त्याग किया है, इस प्रकार की शंका करेंगे—

देवस्य यदि तीर्थानामुत्कण्ठा वर्ततेतराम् ।
आराधकानामस्माकं किमन्यत्कार्यमुच्यताम् ॥ ७०१ ॥

७०१ 'यदि देव की तीर्थयात्रा की उत्कण्ठा है, तो हम सेवकों का दूसरा क्या कार्य होगा, कहिये ?'

अवतार कहा माना गया है। नारायण का अंशावतार है। क्षीरशयन के समय शेष की शय्या पर नारायण विश्राम करते हैं। भगवान के इस रूप को शेषशायी विष्णु नाम से अभिहित किया जाता है (वन० २७२ ३८–४०)। कश्यप पिता एवं कद्रू माता का पुत्र है। निवासस्थान पाताल लोक है। सहस्र शीर्ष युक्त है। कहा जाता है कि सहस्र फणों के कारण इनका नाम अनन्त पड़ा था। कण्ठ में शुभ्र वर्ण रत्नमाला धारण करता है। गर्ग ने इसकी उपासना की थी। उसने ज्योतिष शास्त्र एवं सामुद्रिक शास्त्र का ज्ञान प्रदान किया था (विष्णु० २·५ १३–२७)।

शेषनाग का अन्य नागों मुख्य सम्मान्यपरम्परा विदा प्राप्त थी। इस कारण शेषनाग के अनेक अवतार हुए थे। इनकी शय्या पर भगवान विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं। वसुदेव भगवान कृष्ण को जब लेकर जा रहे थे उस समय इन्होंने उन पर फन फैलाकर उनकी रक्षा की थी।

शेषनाग ने मन्दराचल उखाड़ा था (आदि० १८ ८)। सर्वप्रथम नागों में शेषनाग ही का प्राकट्य माना जाता है (आ० ३५ २–५)। श्री बलराम जी शेषनाग के अंशावतार थे (आदि ६७ १५२)। लक्ष्मण जी भी शेष के अवतार माने गये हैं।

पाद टिप्पणी :

६९८ (१) मन्दराचल : समुद्र मन्थन के समय सुर-असुरों ने मन्दर पर्वत को मथानी बनाया था। उसके द्वारा मन्थन कर अमृत प्राप्त किया था (आ० १८ १–२१)। गीतगोविन्द में जिसने मधुर पद में इसका उल्लेख किया है—'अभिनवजलधर-सुन्दरधृतमन्दर ए—

उत्तराखण्ड की यात्रा के प्रसंग में महाभारत में इसका उल्लेख किया गया है (द्रोण० ८० ३३, अनु० १९ ५४)। मन्दराचल की स्थिति कैलाश के समीप बतायी गयी है (वन० १३९ ५–६)।

व्यक्तमित्युक्तवत्येव युवराजे नरेश्वरः ।
ईषत्स्मितरुचा चारुं पुनर्वाचमवोचत ॥ ७०२ ॥

७०२ इस प्रकार युवराज[1] के सुस्पष्ट रूप से कहने पर, नरेश्वर (राजा) कुछ स्मितपूर्ण मधुर वाणी बोले—

प्रजानुपालनात् पुण्यं केवलात् कियदर्ज्यते ।
रसायनानामग्र्यं यदनेकरसचर्वणम् ॥ ७०३ ॥

७०३ 'केवल प्रजापालन से कितने पुण्य का अर्जन किया जा सकता है ? जो कि रसायनों में श्रेष्ठ अनेक रसचर्वण तुल्य है—

देहात् पृथङ् निवसतो मद्भुजस्येव ते वत ।
दृष्ट्वा पराक्रमं शङ्का मदशक्तौ कथं भवेत् ॥ ७०४ ॥

७०४ 'देह से पृथक् स्थित, मेरी भुजा के समान तुम्हारे पराक्रम को देखकर, मेरी शक्ति पर शंका कैसे हो सकती है—

एतावदपि वाक्यं मे यदि नैवानुतिष्ठसि ।
त्वयि सङ्कल्पिताः शेपास्तदाशाः सन्तु दूरतः ॥ ७०५ ॥

७०५ 'मेरे केवल इतने से वाक्य का पालन यदि नहीं करते हो, तो तुम पर संकल्पित शेष आशाएँ दूर रहें ।'

निर्बन्धेनेति जल्पन् स तीर्थार्थं धरणीपतिः ।
युवराजं हठाद्राज्यभारमग्राहयच्चिरात् ॥ ७०६ ॥

७०६ तीर्थयात्रा[1] हेतु दुराग्रहपूर्वक बात करते हुए, राजा विलम्ब से युवराज को हठपूर्वक 'राज्यभार[2] ग्रहण कराया ।

पाद-टिप्पणी :

७०२. (१) युवराज : जैनुल आबदीन–शाही-खान बडशाह । द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ३२९ ।

पाद-टिप्पणी :

७०६ (१) तीर्थयात्रा : आइने अकबरी मे उल्लेख मिलता है कि सुलतान तीर्थयात्रा अर्थात् मक्का मुअज्जमा के लिए जैनुल आबदीन को प्रतिशासक बनाकर प्रस्थान किया (जरेट : २ : ३८७) । फिरिस्ता (२ : ३४२) एवं तबकाते अकबरी (३ : ४३४) का मत है कि वह विश्व पर्यटन के लिए प्रस्थान किया । बहारिस्तान शाही (पाण्डु० २५–२६), तारीख हैदर मल्लिक (पाण्डु० ४५), वाकयाते काश्मीर (पाण्डु० ४१।५२ बी०) तारीखे नारायण कौल (पाण्डु० ६८ बी०) तथा तारीख हसन (पाण्डु० : २९०) इसी मत के है । नारायण कौल तथा वाकयाते काश्मीर तथा पीर हसन ने हज प्रस्थान का समय हिजरी ८२७ दिये हैं । बहारिस्तान शाही मे समय ८२६ हिजरी दिया गया है ।

पीर हसन लिखता है—मलिक हैदर चादुरा का मत है कि अलीशाह ने केवल एक भाई शाही खान पर राज्य का भार दिया । फिरिस्ता दोनो भाइयो का नाम देता है । जोनराज ने मक्का मुअज्जमा का नाम नही दिया है । किन्तु परसियन इतिहासकार हज बैतुल्ला के लिए प्रस्थान का अर्थ लगाते है ।

तबकाते अकबरी मे उल्लेख है—'अपने छोटे भाई मुहम्मद खाँ को उस (जैनुल आबदीन) का आज्ञाकारी

जैनुल आबदीन=(सन् १४१६ ई०)

श्रीजैनोल्लाभदीनाख्यः सुरत्राणो भवन् भवान् ।
चिरं राज्यं क्रियादेवं राजास्याशिषमभ्यधात् ॥ ७०७ ॥

७०७ 'श्री जैनोलामदीन नामक सुरत्राण' होकर आप चिरकाल तक राज्य करें'—इस प्रकार राजा उसे आशीर्वाद कहा।

तीर्थदर्शनलोभेन स्वदेशान्निरगान्नृपः ।
न पुनर्युवराजस्य चित्तात्प्रेमार्गलाश्रितात् ॥ ७०८ ॥

७०८ तीर्थ दर्शन' के लोभ से राजा अपने देश से निकल गया न कि प्रेमार्गला युक्त युवराज के चित्त से।

रहने के विषय मे परामर्श देकर वह काश्मीर से सैर के विचार से जम्मू के राजा के पास जो उसका श्वसुर था चला गया' (उ० तै० : भा० २ : ५१६)।

पाद-टिप्पणी :

राज्याभिषेक काल कलि सम्वत् ४५२०=लौकिक ४४९५=शक १३४१=सन् १४१९ ई०, मोहिबुल हसन तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री मे सन् १४२० ई०, आइने अकबरी सन् १४२२ ई० एव राज्यकाल ५२ वर्ष दिया गया है। आइने अकबरी द्वितीय बार जैनुल आबदीन की राज्यप्राप्ति का काल नही देती है। पीर हसन ने विक्रमी सम्वत् १४५० =हिजरी ८२७ दिया है।

जोनराज ने जैनुल आबदीन के राज्याभिषेक का जो समय दिया है, वही काल तारीखे मुबारकशाही मे दिया गया है।

प्रथम बार राज्यप्राप्ति के समय जैनुल आबदीन की आयु १७ वर्ष की थी। उसकी मृत्यु श्रीवर के अनुसार ६९ वर्ष की आयु कलिगताब्द ४५७१=शक १३९२=लौकिक ४५४६=सन् १४७० ई० मे हुई थी। श्रीवर की गणना के अनुसार इस समय जैनुल आबदीन की आयु १७ वर्ष होती है। जोनराज ने जैनुल आबदीन का जन्मकाल तथा राज्यप्राप्ति के समय उसकी आयु क्या थी। नहीं दिया है।

द्वितीय बार राज्याभिषेक के समय (सन् १४२० ई०) मे उसकी आयु निःसन्देह १८ वर्ष से ऊपर थी। कुछ परशियन इतिहासकारो ने उसकी आयु इस समय १९ वर्ष लिखा है। किन्तु यह आयु उसके द्वितीय राज्याभिषेक की है।

तीर्थयात्रा जाने के पूर्व मझले भाई शाही खा को काश्मीर का सुलतान अलीशाह ने बनाया। उसका अपर नाम जैनुल आबदीन रखा (म्युनिख : पाण्डु० : ६७ ए०)।

(१) सुरत्राण : अरबी शब्द सुल्तान का संस्कृत रूप सुरतान, सुरत्राण तथा सुलतान है। इसका पाठ सुरित्राण भी मिलता है। राजकीय पद का संस्कृत रूप है। कभी-कभी व्यक्तिवाचक भी प्रयोग किया जाता है। हम्मीर को सुरत्राण लिखा गया है। इसका प्रयोग स्वरत्राण भी मिलता है (आई० ई० : ८-२, इ० आई० १२, इ० आई० ४, १, १३, ३२, बी० एल०)। हिन्दूराज सुरत्राण अल्ल विजयनगरम् के कुछ राजाओ की थी। मुसलिम राजाओ के अल्ल को उन्होंने स्वीकार कर लिया था। राय सुरत्राण, अल्ल का भी हिन्दू राजा प्रयोग करते थे (इपी : इण्ड० : भाग : १ : पृष्ठ ३६३, इण्डियन इपिग्राफिकल ग्लॉसरी . १२५, १२९, ३२८, ३३१)।

पाद टिप्पणी .

७०८. (१) तीर्थ दर्शन : मक्का की यात्रा का तात्पर्य है। सुलतान को हज करने की इच्छा थी। प्रत्येक मुसलमान के लिये पांच काम फर्ज हैं। रोजा, जकात, नमाज, हज और जेहाद। अलीशाह ने हिन्दुओ के विरुद्ध उन्हें मुसलमान बनाने के लिये सिकन्दर से भी अधिक जेहाद बोला था। सिकन्दर के समय सूहभट्ट

कोशसाराणि रत्नानि वाजिरत्नानि चार्पयन् ।
भ्रातरं वसतीर्द्वित्राः सोऽन्वगात् प्रेमगौरवात् ॥ ७०९ ॥

७०९ कोश के सारभूत रत्नों तथा श्रेष्ठ अश्वों को अर्पित करते हुये, वह प्रेम गौरव से दो-तीन रात्रि भ्राता का अनुगमन किया।

मार्गे क्लेशं प्रयत्नेन सिद्धिं तीर्थफलाल्पताम् ।
उक्त्वा मार्गे खला राज्ञस्तीर्थश्रद्धामखण्डयन् ॥ ७१० ॥

७१० मार्ग में खलों[1] ने मार्ग के क्लेश, प्रयत्न से सिद्धि एवं तीर्थफल की अल्पता कहकर, राजा की तीर्थ श्रद्धा को खण्डित कर दिया।

स्वजामातुस्तिरस्कारं सन्यमानेन मानिना ।
मद्रेन्द्रेणाथ भूपालो हठात्तीर्थान्निवर्तितः ॥ ७११ ॥

७११ अपने जामाता[1] का तिरस्कार मानकर, मानों मद्रेन्द्र[2] ने हठात् राजा को तीर्थयात्रा से निवर्तित कर दिया।

उतना अन्याय, अत्याचार, क्रूरता हिन्दुओं पर नहीं कर सका था, जितना अलीशाह के समय किया था। अलीशाह के समय ज्ञात एवं अज्ञात सभी प्रकार की ताडना, दण्ड, क्रूरता एवं अत्याचार किया गया था। अलीशाह इससे सन्तुष्ट था। उसने कभी उस पर अंकुश नहीं लगाया। वह इस दिशा में अपने पिता सिकन्दर से भी आगे बढ़कर मुसलिम जगत में ख्याति पैदा करना चाहता था। उसने सूहभट्ट को रोका नहीं। मुसलिम धर्म के पाँचों फर्ज़ों को इस जीवन में पूर्ण कर लेना आवश्यक समझा। हज के लिए काश्मीर का त्याग किया। पुण्यार्जन हेतु राज्य का भी त्याग किया।

पाद-टिप्पणी :

७०९ (१) जैनुल आबदीन ने बड़े भ्राता सुलतान को राजकोष से मूल्यवान रत्न, धन आदि मार्ग व्यय के लिये दिया। हज जाते समय आज भी बहुत बड़ी संख्या में मुसलमान हजयात्री को बन्दरगाह, हवाई अड्डा, स्टेशन, ग्राम, किंवा नगर के बाहर तक पहुँचाने जाते हैं। यह सवाब माना जाता है। इलाहे के साथ कलमा तथा अल्लाहो अक्बर नारा भीड़ लगाती है। हाजियों की लोकप्रियता उनके साथ पहुँचाने जाने वाली भीड़ से आँकी जाती है।

जैनुल आबदीन ने भी तीन रात्रि या चार दिन तक भाई के साथ यात्रा कर, उसे काश्मीर उपत्यका की सीमा तक पहुँचाया था। बारहमूला, बनिहाल अथवा पुराने मुगल मार्ग से सीमा तक पहुँचाने में तीन रात्रि अर्थात् तीन पड़ाव का समय लग जाता है। जोनराज के इस वर्णन से स्पष्ट होता है। काश्मीर उपत्यका की सीमा तक ज्येष्ठ भ्राता अलीशाह को पहुँचा कर जैनुल आबदीन श्रीनगर लौटा था।

पाद-टिप्पणी :

७१०. (१) खल : आइने अकबरी में उल्लेख है—'मूर्ख तथा खल मन्त्रणादाताओं के बहकाने से तथा उद्देश्य की अस्थिरता के कारण वह पुनः अपना राज्य प्राप्त करने के लिये लौट आया (जेरेट : २ : ३८७)।'

पाद-टिप्पणी :

७११. (१) जामाता : मद्रराज ने अलीशाह को सुझाव दिया। वह हज किंवा मक्कायात्रा का विचार त्याग दे। पुनः जाकर राज्य करे। कोई भी श्वसुर अपने जामाता का राज्य त्यागना पसन्द नहीं करता है, वह अपनी कन्या का विवाह राजा से करता है न कि फकीर से। मुख्यतः अपनी कन्या तथा

कन्या के सन्तानों के भविष्य एवं हित का ध्यान कर मद्रेन्द्र ने सलाह दी थी।

हैदर मल्लिक लिखता है—'बिरादर खुद जैनुल आबदीन को जाँनशीन बनाया।'''मुल्ला अहमद मलिकुल शोहरा इस समय थे ''जम्मू के राजा के कन्या का विवाह अलीशाह से हुआ था। उसने सहायता की याचना की। पखली के मार्ग से बाहर निकल गया (पाण्डु० : ४५)।'

नारायण कौल ने लिखा है—'जम्मू का हाकिम जो अलीशाह का श्वसुर था उसे राज्य त्यागने से विरत किया।' जम्मूराज की कन्या को 'विदर खातूनस्त' लिखा है। उसने अलीशेर को जम्मूराज का जामाता स्वीकार किया है (पाण्डु० . ६८ बी०)।'

वाकयाते काश्मीर मे लिखा गया है—'सुलतान अलीशेर जम्मू पहुँचा'। लेखक ने मौलाना अहमद काश्मीरी की तारीख को अपना आधार ग्रन्थ मानकर लिखा है। सुलतान की पत्नी जम्मू के राजा की लडकी थी। राजा ने राज्य छोडने से मना किया। जम्मू का राजा लडने पर आमादा हुआ (पाण्डु० : ४२ : ४३ ए०)।'

इस समय जम्मू का राजा भीमदेव था। वह सुलतान सिकन्दर का समकालीन था। परसियन इतिहासकारो ने विल्हदेव नाम दिया है। वह अलीशाह तथा जैनुल आबदीन के राजत्व काल मे जीवित था। जसरथ खोखर के साथ युद्ध करते समय वीरगति को प्राप्त किया था। जम्मू के राजा की शत्रुता जसरथ से थी। उसने जसरथ के छिपने का भेद दिल्ली के बादशाह मुइजुद्दीन मुबारक शाह पर प्रकट कर दिया था, (तारीखे मुबारकशाही अनु० इलियट ४ : ५६ . ५९)।

मद्रेन्द्र ने वही किया जो जहागीर के लिये उसके मामा जयपुर के राजा मानसिंह ने किया था। सम्राट् अकबर के अन्तिम दिनो मे मानसिंह अपने भानजे का पक्ष लेने लगा था। अकबर को मानसिंह पर सन्देह भी हो गया था।

मल्लिक हैदर चादुरा का मत है कि जम्मू के राजा को तैमूर लंग ने मुसलिम धर्म मे दीक्षित किया था। वह प्रमाण मौलाना नादिरी का देता है जो जैनुल आबदीन का समकालीन था (मलिक हैदर चादुरा : १४२; सूफी : १५५, *जर्नल ऑफ पंजाब हिस्टॉरिकल* सोसाइटी ७ : ११७)।

पीर हसन लिखता है—'जब सुलतान अलीशाह जम्मू पहुँचा तो वहा के राजा ने जो उसकी बीबी का बाप था अलीशाह को तर्क-सलतनत पर आन-तान की ओर हज के इरादा से रोक दिया और अपनी तरफ से एक फौज साथ देकर पखली के रास्ता से वापस भेज दिया (उर्दू : अनुवाद : १७०)।'

फिरिस्ता लिखता है—'वह अपने श्वसुर जम्मू के राजा के पास गया। राजा ने जोरो के साथ उसे राज्य न त्यागने की सलाह देते हुए पुन: राज्यग्रहण करने के लिये सुझाव दिया। किन्तु उसके दोनो कनिष्ठ भाइयो ने उसका पुन सुलतान बनना अस्वीकार कर दिया (४६८)।'

बोगेल लिखता है कि जम्मू इस समय काश्मीर के प्रभाव मे था (पंजाब हिल स्टेट्स : २: ५३३)। बोगल का मत ठीक नही लगता। बोगेल के इस लेख पर ही कुछ इतिहासकारो ने यह धारणा बनायी है कि जम्मू राज्य काश्मीर के अन्तर्गत था अतएव वहाँ के राजा ने अपनी कन्या का विवाह काश्मीर के सुलतान से किया था। सिकन्दर बुतशिकन हिन्दुओ को विनष्ट करता था। ऐसी स्थिति मे जम्मू का राजा भीमदेव जो प्रबल एव शक्तिशाली था कभी अपनी कन्या का विवाह सिकन्दर के पुत्र अलीशाह से न करता। जम्मू का राजा हमीरदेव दिल्ली सुलतान सैय्यद मुबारकशाह (सन् १४२१–१४३३ ई०) का समकालीन था। उसका सम्पर्क दिल्ली के सुलतान मुबारक शाह से था। मुबारक शाह ने उसे १२ पर्वतीय रियासतों का सरदार बना दिया था। जोनराज ने मद्र के विषय म कहीं नहीं लिखा है कि वह काश्मीर के अन्तर्गत था। हमीरदेव के पश्चात् भीमदेव जम्मू का राजा हुआ था। तत्कालीन प्रबल खोखर जसरथ से युद्ध करता हुआ मारा गया था।

प्राप्तायां शरदि श्रेष्ठदशायामिव भूपतिम्।
मद्रराजस्तमादाय कश्मीरान् प्रत्यगात्ततः ॥ ७१२ ॥

७१२ श्रेष्ठ दशा सदृश शरद् (ऋतु) के आने पर मद्रराज[1] उस भूपति को लेकर काश्मीर चला गया।[2]

भ्रातुरागमनात्तुष्टया मद्रासारग्रहाद्रुषा।
नवराजः प्रसादे च कालुष्ये च निमग्नवान् ॥ ७१३ ॥

७१३ भ्राता के आगमन की प्रसन्नता तथा मद्र सैन्य गमन के रोष से, वह नवीन राजा प्रसन्नता एवं कालुष्य में निमग्न हो गया।

(डोगरी निबन्धावली)। जसरथ साधारण व्यक्ति नहीं था। वह लाहौर में उत्पात किया था। यह घटना सन् १३९४ ई० की है। उसके चार वर्ष पश्चात् वह तैमूरलंग का साथी हो गया था। तैमूर से भी वह लड गया था। तैमूर उसे बन्दी बनाकर ले गया था। तैमूर की मृत्यु के पश्चात् वह भारत लौटा और प्रबल हो गया। उसकी सहायता से जैनुल आबदीन अलीशाह को हराकर काश्मीर का सुलतान बन सका था।

जफरनामा से आभास मिलता है कि जम्मू का राजा सम्भवतः वही था जिसे तैमूरलग ने मुसलिम धर्म में दीक्षित किया था (हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : इलियट डासन : ३ : ४७२)।

राजदर्शनी के अनुसार जम्मू के राजा ने अपनी दासी कन्या से अलीशाह की शादी की थी (पाण्डु० : ५५ ए० ५५ बी)। डॉ० परमू ने इसे असत्य माना है (द्रष्ट० : ११३ नोट : ५)। जम्मू के लोग उस समय काश्मीर में रहते थे। जम्मू का ज्ञान जोनराज को था। यदि यह बात सत्य होती तो वह अवश्य लिखता। यहाँ जोनराज का मद्र से अर्थ काश्मीर के दक्षिण स्यालकोट से झेलम तक की छोटी-छोटी मुसलिम रियासतों से है।

(२) मद्र : द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ४७९।

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ७१२ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ९२७–९२८ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(९२७) 'महेन्द्र सेना देव का उपद्रव न करे अतः राजा ने उस महेश ठक्कुर को निरोध हेतु भेजा।

(९२८) बिना युद्ध किये सेना के लौटने पर 'बिना मद्रभूपति की आज्ञा प्राप्त किये अक्षमाशील ठक्कुर युद्ध के लिये चल पड़ा।

७१२ (१) मद्रराज : परसियन इतिहासकारों ने जम्मू क्षेत्र के लिये मद्र शब्द का प्रयोग किया है। तबकाते अकबरी में लिखा है—'कुछ स्वार्थियों ने शाही खाँ को लज्जित किया, अलीशाह ने जम्मू तथा राजौरी के राजा की सहायता से काश्मीर के लिये प्रस्थान किया। काश्मीर को पुनः अपने अधिकार में ले लिया, (उ० तै० भा० : ३ : ५१६)।

डॉ० सूफी ने लिखा है—'जम्मू के राजा के साथ राजौरी का शासक भी सुलतान अलीशाह के साथ हो गया था (पृष्ठ १५५)।' परन्तु अपने कथन के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं उपस्थित करते।

राजौरी के मार्ग से अलीशाह जम्मू तथा राजौरी के राजाओं की सेना के साथ काश्मीर में प्रवेश किया था (म्युनिख पाण्डु० : ६८ ए०; तबकाते अकबरी : ३ : ४३४)।

पाद-टिप्पणी :

७१३ (१) सैन्य गमन : सूफी ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—'अपने श्वसुर (जम्मूराज) तथा राजौरी के शासक की सहायता से उसने पुनः राज्य प्राप्त करने का प्रयास किया। तीनों पखली मार्ग से (काश्मीर में) आगे बढ़े। शाह का भाई (जैनुल आबदीन) उरी के समीप

क्षुद्रेष्वथ स मद्रेपु युवराजो महामतिः।
भ्रातुः स्नेहाद्रुषं त्यक्त्वा राज्यत्यागं स्वयं व्यधात् ॥ ७१४ ॥

७१४ महामति युवराज भ्रातृप्रेम के कारण क्षुद्र मद्रो[1] पर से क्रोध दूर कर, स्वयं राज्य त्याग[2] कर दिया।

पराजित हो गया। पराजय के पश्चात् उसने काश्मीर त्याग दिया। सियालकोट मे जसरथ खाँ जो खख्खरो का सरदार था, उसके पास चला गया (सूफी' १५५)।' डॉ० सूफी इस घटना के सम्बन्ध मे किसी सन्दर्भ ग्रन्थ का नाम नहीं देते।

फिरिस्ता लिखता है—'जम्मू के राजा ने राजौरी के राजा की सहायता से अलीशाह को पुन. सुल्तान बनाने के लिए सेना संघटित की। प्रथम सघर्ष स्यालकोट मे हुआ। जिसमे अलीशाह सफल हो गया (जे० ब्रिग० : ४ : ४६८)।'

आइने अकबरी मे उल्लेख है—'राजा जम्मू की सहायता से उसने राज्य पर अधिकार कर लिया (जरेट० : ३८७)।'

पाद टिप्पणी :

७१४. (१) मद्र : स्यालकोट के आसपास का अचल मद्र कहा जाता था। दो मद्रो का वर्णन मिलता है। वे उत्तर तथा दक्षिण मद्र हैं। उत्तर मद्र हिमालय के पार था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय मह एक गणराज्य था। झेलम, चेनाव एव रावी नदी के मध्य स्थित था।

उपनिषदो के अनुसार मद्रगण कुरुओ के समान मध्यदेशवर्ती कुरुक्षेत्र मे निवास करते थे (बृ० : उ० : ३ : ३ : १, ७ : १)। ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तर मद्रो का निर्देश प्राप्त है। उन्हें 'परेण हिमवन्त' कहा गया है (ऐ० ब्रा० . ८ : १४ : ३)। श्री त्सिमर के अनुसार यह लोग काश्मीर एव रावी के मध्य निवास करते थे। महाभारत काल मे यहाँ का राजा शल्य था। माद्री का विवाह कुरुवशीय राजा पाण्डु से हुआ था (आ० : ११२ . २–७)। पुरूरवा अपने पूर्व जन्म मे मद्र देश का राजा था। सावित्री का पिता अश्वपति मद्र देश का राजा था (मत्स्य० . ११४ : ७ : २०७ : ५, वन० : २९३ : १३)। कर्ण ने मद्र एवं वाहीक देशों को आचारभ्रष्ट कहा है (कर्ण० : अध्याय–४४–४५)।

मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड एवं मत्स्यपुराणो मे सिन्धु, सौवीर, मद्रका, शतद्रुजा के नाम एक साथ क्रम से आये हैं। शक्तिसगम तन्त्र मे जहाँ ५६ देशो का नाम दिया गया है, वही मद्र का नाम सौवीर के साथ आया है (ज्योग्रेफी ऑफ एशियण्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया २८, ७१)। मद्रदेश का स्थान विराट तथा पाण्ड्य (पाण्डु) दक्षिण-पूर्व शक्तिसगम तन्त्र मे माना गया है। विराट तथा मत्स्य देश मद्र के दक्षिण था (वही पृष्ठ : ७९, १०५ तथा शक्तिसंगम . ३ : ७ : ५३)। कुछ विद्वानो ने मद्रमण्डल को मदरास माना है। यह गलत है। मद्र पंचनद अर्थात् पंजाव मे ही था। यह निर्विवाद है।

बौद्धकाल मे मद्र को मद्द कहा जाता था। उत्तरापथ का यह एक प्रसिद्ध राष्ट्र था। पालि साहित्य मे यहाँ की सुन्दर स्त्रियो की ख्याति का वर्णन है। भद्रा कापिलायिनी मद्र देश की थी। राजा बिम्बिसार ने मद्रराज की कन्या से विवाह किया था। कलिंग के राजकुमार ने भी यहाँ की एक कन्या से विवाह किया था। वाराणसी के एक राजकुमार ने भी यहाँ की कन्या से विवाह किया था। शिविदेश के राजा वेस्सन्तर की रानी यही की थी। कुक्कुटवती राज महाकप्पिन की पत्नी भी मद्र कन्या थी। बुद्धघोष ने मद्र राष्ट्र को नारियो का आगार माना है। पुरातन पौराणिक, रामायण, महाभारत तथा बौद्ध कथाओ से लेकर दशवीं शताब्दी तक अनेकों कोशल एव कुरु के कुमारो ने मद्र कन्याओ से विवाह सम्बन्ध किया था। मद्र के नगर स्यालकोट किंवा सागल को राजा मिलिन्द ने अपने राज्य की राजधानी बनाया था। तक्षशिला से सागल होता मार्ग मथुरा तथा श्रावस्ती जाता था।

कनिंघम का मत है कि एक मत के अनुसार मद्र देश ब्यास तथा चेनाव के मध्य था तथा दूसरा मत है कि ब्यास तथा झेलम अर्थात् वितस्ता के मध्य था। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मद्र काश्मीर के दक्षिण तथा पंजाब के उत्तर था।

काश्मीर के राजा श्री कर्णसिंह से मैंने मद्र के सम्बन्ध मे चर्चा की। जम्मू को परसियन लेखक ने मद्र माना है। उन्होंने कुछ पुस्तके डोगरी भाषा में भेजी। श्री एम० एल० कपूर इतिहास विभाग जम्मू का एक नोट भी मद्र के सम्बन्ध मे कृपा कर भेजा। मैं डोगरी नही जानता था किन्तु नागरी लिपि मे होने के कारण समझने म कुछ कठिनता नही हुई। डोगरी रिसर्च इन्स्टीस्यूट द्वारा प्रकाशित निबन्धावली (सन् १९६५–६९ ई०) तथा 'दिनिकूट' (ए० एम० कालेज जम्मू सन् १९६३ ई०) की एक मेगजीन भी भेजी थी। निबन्धावली मे एक लेख डॉ० वेद-कुमारी का था। वह नीलमत पुराण पर अनुसन्धान कर चुकी हैं। उनके मत के अनुसार स्यालकोट तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश मद्र जनपद का एक भाग था (निबन्धावली पृष्ठ ९ सन् १९६५ ई०)। इसमे एक लेख श्री केदारनाथ शास्त्री का 'मदरा' पर है। यह डोगरा व्यञ्जन मदर शब्द की व्युत्पत्ति के विषय मे है। इस पर मद्रदेश के इतिहासादि पर विशेष प्रकाश नही पड़ता। डोगरी निबन्धावली सन् १९६९ ई० पृष्ठ २४ पर लिखा गया है कि कतिपय विद्वानो के मतानुसार मद्रदेश ब्यास तथा झेलम नदी का मध्यवर्ती भाग है। कुछ का मत है कि मद्रदेश ब्यास और चेनाव नदी का मध्यवर्ती भाग है जो मुलतान तक फैला था। पाकिस्तान बनने पर मुलतान, माण्टगुमरी तथा लायलपुर जिले पाकिस्तान म चले गये है। श्री कपूर ने अपने भेजे नोट मे लिखा है कि काश्मीर और मद्रदेश के लोगो मे निकट का सम्बन्ध था। मद्रदेशीय जन काश्मीर मे जाकर लम्बे समय तक रहते थे।

(२) राज्यत्याग : फिरिश्ता लिखता है—'शाही खाँ काश्मीर से भाग जाने के लिए बाध्य हो गया। उसने स्यालकोट मे जसरथ जो सेना गक्खर का भाई था शरण ली। वह कि तैमूर लंग की हिरासत से भाग कर पंजाब आ गया था (पृष्ठ : ४६८)।' एक मत है कि मद्रराज तथा अलीशाह की सैन्यशक्ति देखकर जैनुल आबदीन ने राज्य त्याग दिया था।

जोनराज का वर्णन यहाँ पक्षपातपूर्ण है। उसका सरक्षक जैनुल आबदीन था। उसका राजकवि था। अपने नायक किंवा सरक्षक का महत्त्व कवि वर्णित करना चाहता है। यहाँ स्वतः राज्यत्याग का वर्णन इसी भावना का द्योतक है। श्लोक ७१६ से प्रकट होता है कि जैनुल आबदीन ने अपने समर्थक ठक्कुरो के साथ काश्मीर मण्डल का त्याग किया था। उक्त पद से आभास मिलता है। जैनुल आबदीन तथा अलीशाह के दो पक्ष राज्य मे हो गये थे। अलीशाह का समर्थक मद्रराज तथा बाहरी सेना थी। जैनुल आबदीन को ठक्कुरो का समर्थन प्राप्त था। अपनी शक्ति क्षीण देखकर जैनुल आबदीन ने अपने समर्थको के साथ काश्मीर मण्डल त्याग दिया था। अन्यथा ठक्कुर जो सैनिक वर्ग या उसके साथ जाने का कुछ अर्थ नही निकलता। जैनुल आबदीन बाहर निकल कर अपनी सैनिक शक्ति बनाये रखना चाहता था।

महम्मद गोरी के आक्रमण तथा बारहवी शताब्दी के पश्चात् जम्मू का नाम प्रसिद्ध हो गया था। मुसलिम तथा भारतीय इतिहासकार जम्मू का नाम जानते थे। यदि जम्मू के लोग काश्मीर मे रहते थे अथवा काश्मीर के सुलतानो का विवाह सम्बन्ध जम्मू के राजा से था तो यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि उन्हे जम्मू का नाम ज्ञात होता। जोनराज तथा श्रीवर ने अपने समय का आँखो देखा इतिहास लिखा है। उनका जम्मू शब्द का प्रयोग न करना खटकता है। परसियन इतिहासकारो का जम्मू को मद्र मान लेना चकित करता है। तैमूर लग सन् १३९८–१३९९ ई० मे जम्मू क्षेत्र से ही लौटकर भारत से बाहर गया था। उसने अपने जीवन चरित मे जम्मू के भूगोल तथा तत्कालीन स्थिति के विषय मे लिखा है। श्रीवर से इसका समर्थन मिलता है।

तन्न्यस्तं दिवसावसानसमये सूर्यस्य तेजो निजं
प्रत्यूषे प्रतिपादयन्नतिशयश्लाघ्यस्वतेजा भवन्।
वह्निर्यज्वकुलैस्ततोऽपि दिवसे श्रद्धानुबन्धाकुलै-
स्तेजोवृद्धिपुषा नवेन हविषा यज्ञेषु सन्तर्प्यते ॥ ७१५ ॥

७१५ दिवस के अवसान समय में सूर्य का न्यस्त तेज (प्रात) प्रत्यूष काल में (उसे) अर्पित करते हुए वह्नि अति तेजस्वी एवं श्लाघनीय होता है, और दिन में श्रद्धान्वित याजक जन यज्ञ अवसर पर तेजोवर्धक नवीन हविष् द्वारा उसे सन्तृप्त करते हैं।

ठक्कुरैरन्वितो राजा पवनः कुसुमैरिव।
कश्मीरेभ्यो गतः सर्वैर्देशाधीशैर्नतस्ततः ॥ ७१६ ॥

७१६ कुसुम (गन्ध) के साथ पवन के सदृश ठक्कुरों[1] के साथ वह राजा[2] (जैनुल आबदीन) काश्मीर से निकल गया। जिसे कि सभी देशाधीशों ने नमन किया।

श्रीवर ने मद्र का उल्लेख कम से कम बीस स्थानों पर किया है। जोनराज ने भी मद्र का उल्लेख लगभग ७ स्थानों पर किया है। मद्र पंजाबी म नाटे कद के आदमियों को कहते हैं। श्रीवर क सन्दर्भ मे श्री कपूर कहते हैं कि मद्र नाटे कद के लोग पंजाबी भाषा म कहे जाते थे। जम्मू कभी भी मुसलमानों द्वारा शासित नहीं हुआ था। तातार खाँ इस समय पंजाब का सूबेदार था। उसकी नियुक्ति सिकन्दर लोदी ने की थी। अतएव मद्र के विषय म जब काश्मीरी इतिहासकार जम्मू का नाम लेकर उसे जम्मू मानते हैं तो उनका तात्पर्य जम्मू के लोग तथा जम्मू से नही होता (द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ४७९)।

पाद टिप्पणी

७१६ (१) ठक्कुर काश्मीरी मुसलमानों की वह जाति जो पूर्व काल मे क्षत्रिय से मुसलमान हो गयी थी। काश्मीर के दक्षिणी क्षेत्र के निवासी थे। काश्मीरके उत्तर गूजर तथा दक्षिण ठक्कुर निवास करते थे। बनिहाल से श्री नगर आने वाली सड़क से काजीगुण्ड क पश्चिम तथा सुवियान के मध्य मे आज भी ठक्कुर ब्राह्मणों की आबादी है। ठकुर सम्भवत पुरातन ठक्कुर शब्द का अपभ्रंश है। ठक्कुरों की आबादी इसी क्षेत्र मे है। विशाऊ तथा राम ब्यार नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र मे कुछ ठक्कुरों की आबादी है। ठक्कुर जाति हिन्दू और मुसलमान दोनो है। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ६८८।

(२) राजा म्युनिख पाण्डुलिपि से पता लगता है कि अलीशाह ने राज्य त्याग नही किया था। बल्कि शाहीखान सुल्तान का वली था। अतएव *अलीशाह के आते ही उसने राज्य भार बड़े भाई को* सौंप दिया।

तबकाते अकबरी के अनुसार शाही खाँ काश्मीर से स्यालकोट आया था (उ० तै० भा० ५१६)।

आइने अकबरी म उल्लेख है—'जैनुल आबदीन *ने पंजाब के लिये प्रस्थान किया। तथा जसरथ* खोखर के साथ जा कर मिल गया। (जेरेट २ ३८८)।'

पीर हसन लिखता है—'जैनुल आबदीन खबर सुनते ही बेताब हो गया। अपनी फौज को लश्करों और हथियारों से आरास्ता कर के भाई की मदाफियत के लिये जल्दी की। उरी के मुकाम पर दोनों लश्करों म लड़ाई हुई। सफे दुरुस्त करके बहुत से नाफरमान और सरकश अफसरों के बेसर कर दिया। आखिरकार जैनुल आबदीन शिकस्त खाकर सियालकोट चला गया और अलीशाह दूसरी बार तख्त हुकूमत पर जलूस हुआ (अनुवाद उर्दू: १७०)।'

सुखं तावदगाहिष्ट वीतनक्रां नदीमिव ।
ठक्कुरैरुज्झितां मद्रचमूः कश्मीरमेदिनीम् ॥ ७१७ ॥

७१७ नक्र रहित नदी के समान ठक्कुर[1] रहित काश्मीर भूमि मे मद्र[2] सेना सुखपूर्वक प्रवेश की ।

अथ विस्तीर्णमाक्रान्तम् आलिशाहेन भूभुजा ।
पित्र्यं सिंहासनं तेन न तु सज्जनमानसम् ॥ ७१८ ॥

अलीशाह (सन् १४१६ ई०)

७१८ राजा आलिशाह विशाल पैतृक सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, न कि सज्जनों के मानस[1] पर ।

उद्यच्छेत कथं जडद्युतिरहो दूरोल्लसल्लाञ्छनो
गच्छेद्दीप्तकरो न चेद्दिनकरो लोकान्तरं स्वेच्छया ।
वीरेणात्यवहेलया विरचितोपेक्षो जयत्कातरः
सम्भाव्य स्वपराक्रमेण विजयं विश्वं तृणं मन्यते ॥ ७१९ ॥

७१९ चन्द्रमा जिसका कि कलक दूर से उल्लसित होता है, यदि स्वेच्छा से दीप्त कान्ति दिनकर अन्य लोक न चला जाय, तो कैसे उदय प्राप्त करता ? वीर के अति अवहेलनापूर्वक उपेक्षित कातर विजय प्राप्तकर, अपने पराक्रम द्वारा विजय की सम्भावना करके विश्व को तृण समझता है ।

पाद टिप्पणी

७१७ (१) ठक्कुर द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ६८८ ।

(२) मद्र इस श्लोक से प्रकट होता है कि काश्मीर के ठक्कुर अर्थात् ठाकुर सुल्तान जैनुल आबदीन के समर्थक थे। ठक्कुर सैनिको तथा जैनुल आबदीन ने काश्मीर मण्डल त्याग दिया। अवरोध के अभाव मे अलीशाह ने अपने श्वसुर की सहायता से पुन सिंहासन प्राप्त किया। मद्र की सेना बिना प्रतिरोध काश्मीर मे पहुँच गयी।

पाद-टिप्पणी

राज्यारोहण काल कलि सम्वत् ४५२० = लौकिक ४४९५, = शक १३४१ = सन् १४१९ तथा जोनराज ने राज्यकाल ५ या ६ मास दिया है। आइने अकबरी, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ने अलीशाह के द्वितीय बार राज्य प्राप्ति काल नहीं दिया है। फिरिश्ता लिखता है कि अलीशाह ने ७ वर्ष राज्य किया (४६८)।

७१८ (१) मानस काश्मीर की जनता ने अलीशाह का पुन राज्यग्रहण पसद नही किया। वह अपने पिता का नि सन्देह राज्य एव सिंहासन पाने का अधिकारी था। परन्तु जनता के मन पर अधिकार न कर सका। अलीशाह का वह कार्य सनातनी मुसलमानो ने नापसन्द किया। हज के लिये प्रस्थान कर, उसे न समाप्त कर, लौट आना, धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना जाता है। अलीशाह ने अपने कर्मों से स्पष्ट कर दिया। धर्म की अपेक्षा राज्य उसे प्रिय था। सासारिक सुख को दैवी सुख पर प्राथमिकता देता था। काश्मीर की नवमुसलिम जनता, जिसमे धार्मिक उन्माद नवीन धर्म ग्रहण के कारण उत्पन्न हो गया था, इस काम को अच्छा नहीं माना। अलीशाह ने नि स देह मुसलिम जनता की सहानुभूति खो दी।

शाखाभङ्गेन सच्छायमुद्यानं प्लवगा इव।
मण्डलं क्षोभयामासुस्तुरुष्का राजसेवकाः ॥ ७२० ॥

७२० राजसेवक तुरुष्कों[1] ने मण्डल को उसी प्रकार क्षुब्ध कर दिया जिस प्रकार बन्दर शाखाओं को तोड़कर सघन उद्यान को।

कातरान्नाम भूपालादनिष्पन्ननियन्त्रणः।
यवनो मेरकेसारो व्यधान्मण्डलविप्लवम् ॥ ७२१ ॥

७२१ यह कायर नृपति जिसका नियन्त्रण नहीं कर सका उस यवन[1] मेर केसार[2] ने मण्डल में महान विप्लव किया।

अकार्षीन्मलिनो भृङ्गः सङ्कुचन्तीरिवाब्जिनीः।
पौरनारीरनार्यः स हठसम्भोगदूषिताः ॥ ७२२ ॥

७२२ संकुचित होती कमलिनियों को मलिन भृंग के समान उस अनार्य[1] ने पौर नारियों को हठात् सम्भोग[2] दूषित किया।

पाद-टिप्पणी :

७२० (१) तुरुष्क : अलीशाह ने तुरुष्कों सम्भवतः गैरकाश्मीरी मुसलमानों की सहायता से राज्य पुनः प्राप्त किया था। वे राजा की दुर्बलता का लाभ उठाकर, काश्मीर मण्डल को त्रस्त करने लगे। यह स्वाभाविक है। जिनकी सहायता से वह राज्य प्राप्त किया था वे अपनी कीमत लेना चाहते थे। लूट-पाट कर धन एकत्रित करने लगे। वे गैर-काश्मीरी थे। उन्हें काश्मीर से प्रेम नहीं था। राज्य अलीशाह को दिलाने के कारण उनमें अहंकार की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक था। राजा स्वयं दुर्बल था। राजा की दुर्बलता, अस्थिरता एवं अपनी शक्ति की प्रबलता के कारण वे निरंकुश हो गये थे। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ६४७।

पाद-टिप्पणी :

७२१. (१) यवन : अभारतीय मुसलमान थे। सम्भवतः वह गैरकाश्मीरी मुसलमान था। अफगानी या तुर्किस्तानी हो सकता है। श्लोक ८४२ में अरब से आये मुसलमान को भी यवन कहा गया है।

(२) मेर केसार : मीर शब्द का अर्थ सरदार, प्रधान, नेता, धार्मिक उपाधि होती है। सैय्यदों की एक उपाधि मीर थी।

श्लोक ७२० मे तुरुष्क शब्द का तथा उक्त श्लोक मे यवन शब्द का प्रयोग किया गया है। दोनों ही मुसलिम धर्मावलम्बी हैं। परन्तु दोनों मे अन्तर है। यवन शब्द प्रायः अफगानिस्तान के पश्चिमी देशवासी मुसलमान किंवा भारतेतर देश के मुसलमानों के लिये तथा तुरुष्क शब्द भारतीय मुसलमानों के लिये प्रसंग मे प्रयोग किया गया है।

जोनराज मुसलिम किंवा इसलाम शब्द का प्रयोग नवमुसलिम और अन्य मुसलमानों के लिये नहीं करता।

मेर केसार कौन था इस सम्बन्ध मे जोनराज कुछ प्रकाश नहीं डालता। उल्लेख श्लोक ६९२ मे किया है। वहाँ उसे तुरुष्क कहा है। तुरुष्क सभी मुसलमानों के लिये प्रयोग किया गया है। यवन शब्द से यही ध्वनि निकलती है कि वह गैरकाश्मीरी मुसलमान था।

पाद-टिप्पणी :

७२२. उक्त श्लोक का निम्नलिखित अनुवाद भी हो सकता है—

'उसने पौर नारियों को हठसम्भोग से दूषित किया, जैसे मलिन भ्रमर सङ्कुचित कमलिनी को दूषित करता है।'

(१) अनार्य : शब्द का अर्थ अप्रतिष्ठित, अधम

मदाकरैर्मदेनान्धैः पङ्कसङ्कुलतां भजत् ।
अक्षोभि मण्डलं म्लेच्छैः सरो मकरजैरिव ॥ ७२३ ॥

७२३ जिस प्रकार विशाल सूड़ वाला मदान्ध मकराज पंकिल होते सरोवर को संक्षुब्ध करता है, उसी प्रकार मदान्ध म्लेच्छों ने कर आदि से मण्डल को क्षुब्ध किया।

मन्त्रिमन्त्रैरवार्याणां दिवसेऽप्यनिवर्तिनाम् ।
रक्षसामेव कश्मीरास्तदा हस्तवशं गताः ॥ ७२४ ॥

७२४ उस समय मन्त्री के मन्त्रों द्वारा अनिवारणीय दिन में भी न विरत होने वाले राक्षसों[1] के ही हाथों में काश्मीरी हो गये।

अराजकं वरं राज्यं न स्वामी तादृशः पुनः ।
अभूषणो वरं कर्णो न पुनर्लोहकुण्डलः ॥ ७२५ ॥

७२५ बिना राजा का (अराजक) राज्य श्रेष्ठ है, न कि इस प्रकार का स्वामी, बिना आभूषण का कर्ण उत्तम है, न कि लौह कुण्डल[2] युक्त।

तथा नीच है। म्लेच्छ अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। असभ्यों तथा अशोभनीय कर्मकर्ताओं के लिए भी प्रयोग होता है।

(२) सम्भोगदूषित : मेर अर्थात् मीर केसार चरित्रभ्रष्ट था। सर्वसाधारण एवं नागरिकों की स्त्रियों का सम्भोग कामवासना तृप्ति हेतु करता था।

पाद-टिप्पणी :

७२४. (१) राक्षस : जोनराज के वर्णन से प्रतीत होता है कि काश्मीर में अराजकता फैल गई थी। राज्यशासनसूत्र शिथिल हो गया था। आततायी निरङ्कुश हो गये थे। वे राक्षसों के समान क्रूर एवं बर्बर काम करते थे। राक्षस शब्द जोनराज उन सभी लोगों के लिए प्रयोग करता है, जो प्रजापीडक थे। नीति एवं आचरण का त्याग कर दिये थे। चाहे वे तुरुष्क, यवन अथवा कोई भी क्यों न रहे हों। कल्हण ने राक्षस शब्द का प्रयोग एक जाति जो निर्माण कार्य में निपुण थी के लिये किया है (रा० : ४ : ५०३–५०६)।

पाद-टिप्पणी :

७२५. श्लोक संख्या ७२५ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक संख्या ९४१ अधिक है। उसका भावार्थ है—

(९४१) उस समय जो कि पालक राजा स्वयं ही सब लोगों का क्षय करने वाला हो गया था, यह हिम से अग्नि, सूर्य से अन्धकार, आकाश से शिलापात सदृश हुआ।

(१) अराजक : बिना राजा के राज्य को अराजक राज्य कहते हैं। किन्तु राजा के होते भी जिस राज्य में न्याय, अनुशासन, रक्षा एवं प्रशासन शिथिल हो जाता है उसे अराजक राज्य की संज्ञा दी गई है। मनु ने कहा है—'नाराजके जनपदे रामा' (मनु० : ७ : ३), चाणक्य ने भी कहा है—'शोच्यं राज्यमराजकम्' (चाणक्य शतक : ५७), महाभारत अराजक राज्य की अच्छी परिभाषा देता है—

अराजके जीवलोके दुर्बला बलवत्तरैः ।
पीड्यन्ते न हि वित्तेषु प्रभुत्वं कस्य चितदा ॥

(२) लौह कुण्डल : लौह आभूषण चाण्डाल धारण करते थे। लौह आभूषण धारण करने पर गौरवर्ण स्त्रियों की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। शरीर पर लौह धातु काले कलंक के समान लगता है। काश्मीर में लौह कुण्डल कोई नहीं पहनता था। केवल शनी दशावान् व्यक्ति लौह मुद्रिका धारण करते हैं। ज्योतिष की मान्यता है कि उससे शनी ग्रह एवं अशुभ दशा की शान्ति होती है।

सद्म तुङ्गं वरो वाजो स्वच्छं वासो मणिर्महान् ।
स्वीकृतं यवनैस्तत्तद्यच्छोभावहं प्रभोः ॥ ७२६ ॥

७२६ तुंग भवन, श्रेष्ठ अश्व, स्वच्छ वस्त्र, महान् मणि जो—राजा के शोभावह थे, उन-उन को यवनों ने हस्तगत कर लिया ।

अकार्षीत् पञ्चषान्मासान् राज्यं स जडनायकः ।
प्रजापापविपाकेन न पुनः स्वेन कर्मणा ॥ ७२७ ॥

७२७ उस जड़ नायक ने पाँच-छ मास प्रजा के पाप[1] परिपाक के कारण न कि स्वकर्म से राज्य किया ।

मालिन्यं सुमनःपथे प्रथयते दैन्यं निधत्ते दृशः
सूर्यालोकतिरस्कृतं च कुरुते संहारमाशा नयन् ।
उन्निद्रः कमुपद्रवं न तरसा कुर्वीत धूमोद्गमो
नोद्‌द्योतेततरां शिखी यदि महाज्वालाकलापाकुलः ॥ ७२८ ॥

७२८ आकाश को मलिन करता है, आँखों की दयनीय दशा कर देता है, सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करता है, दिशाओं का संहार करता है, इस प्रकार फैला (हुआ) धूमोद्गम अपने वेग (शक्ति) से कौन उपद्रव नहीं करता, यदि महाज्वाला समूह से समन्वित अग्नि प्रज्वलित न हो ।

चाण्डाल बनकर आभूषण धारण करना उचित नही है । बिना आभूषण रह जाना अच्छा है । जोनराज स्वामी अथवा राजविहीन राज्य पसन्द नही करता । दुर्बल एव अयोग्य राजा पसन्द नहीं करता । अलीशाह के राज्य की अपेक्षा वह अराजक राज्य को प्राथमिकता देता है । जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है । तत्कालीन विकट परिस्थिति म शक्तिशाली एव चरित्रवान् राजा की आवश्यकता थी जो बिगडी अव्यवस्था को व्यवस्थित कर सकता था ।

पाद-टिप्पणी :

७२६ (१) यवन . राजा की दुर्दशा का भी उल्लेख जोनराज करता है । यवनो ने राजोपयोगी वस्तुऐं तक का हरण कर लिया था । राजा के उपयोग के लिए कुछ भी नही छोडा । वे राजा की उपेक्षा करते थे । राज्य अपना मानते थे । निरङ्कुश हो गये थे । हिंदू उत्पीडित करने के लिए दोष नही रह गये थे । उनकी अराजक सघर्षशील, प्रवृत्ति स्वधर्मियो को ही कष्ट देने मे लग गई थी । यवन गैरकाश्मीरी मुसलमान थे । अतएव उन्हें काश्मीरी मुसलमानो को कष्ट देने, लूटने मे सङ्कोच नही होता था । द्रष्टव्य : टिप्पणी—श्लोक ५७१ (१) ।

पाद टिप्पणी :

७२७ (१) प्रजा पाप : जोनराज पुन. यहाँ कल्हण के समान काश्मीर की दुरवस्था का उत्तरदायी प्रजा का पाप मानता है । प्रजा के पाप-परिपाक के कारण अलीशाह राजसिंहासन पर आसीन हुआ था न कि अपनी शक्ति, बल अथवा आचरण एवं जनता-प्रेम के कारण ।

श्रीसिकन्धरदत्तस्य राज्यस्य ऋणमात्मनः ।
निवारयितुकामेन स्वलक्ष्मीफलकाङ्क्षिणा ॥ ७२९ ॥

७२९ श्री सिकन्दर द्वारा प्राप्त राज्य[1] का अपना ऋण निवारित करने के लिये इच्छुक अपने लक्ष्मीफल का आकांक्षी—

मद्रेन्द्रद्वेषपूर्णेन खुःखरस्वामिना ततः ।
नवराजोऽर्थितो दूतैर्निजदेशागमं प्रति ॥ ७३० ॥

७३० मद्रेन्द्र के प्रति द्वेषपूर्ण खुःखरस्वामी[1] ने दूतों द्वारा अपने देश आने के लिये नवीन राजा (शाही खां) से प्रार्थना की।

पाद-टिप्पणी :

७२९. (१) राज्य : जोनराज इस श्लोक से जैनुल आबदीन के पुनः राज्य प्राप्त करने की भूमिका प्रस्तुत करता है। श्लोक ७२० से ७२८ तक उसने राज्य मे व्याप्त दुरवस्थाओ का उल्लेख किया है। अलीशाह को राज्य हेतु अनुपयुक्त प्रमाणित किया है। राज्यत्यागी अलीशाह की प्रशंसा कर पुनः राज्यग्रहण करने पर निन्दा करता है।

जैनुल आबदीन ने स्वतः राज्य त्याग किया था। इतिहास की विचित्र गति है। अलीशाह एवं शाही खाँ दोनो सगे भाई थे। एक दूसरे के लिए राज्य त्याग किये थे। पुनः एक दूसरे से राज्य प्राप्त करने का प्रयास किए और सफल हुए।

जसरथ को अलीशाह एवं जैनुल आबदीन के पिता सिकन्दर ने सहायता दी थी। उस ऋण से उऋण हेतु जसरथ ने सिकन्दर के पुत्र जैनुल आबदीन को राज्य दिलाने के लिये योजना बनाई। परन्तु अलीशाह भी सिकन्दर का पुत्र था। उसने दोनो पुत्रो मे भेद क्यो किया। उसका स्पष्टीकरण जोनराज यह कह कर करता है कि जसरथ स्वयं धनार्जन किंवा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए जैनुल आबदीन को अपनी योजना का, एक सफल साधन बनाया था।

अलीशाह के समय जसरथ कुछ लाभ नहीं उठा सका था। इस श्लोक से यही ध्वनि निकलती है। श्रीवर के वर्णन (जैन० : ४ : १४३) से यह बात स्पष्ट हो जाती है। जसरथ को प्रारम्भ से ही जैनुल आबदीन के प्रति निष्ठा नहीं थी। वह अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ति मे जैनुल आबदीन को एक साधन मात्र बनाना चाहता था। किसी भी तत्कालीन इतिहासकार ने नही लिखा है कि जसरथ ने सिकन्दर द्वारा राज्य प्राप्त किया था।

पाद टिप्पणी :

७३०. (१) खुःखरस्वामी : खुखर = खस = खश थे। जसरथ खसो का सरदार था। खस लडाकू जाति है। पूर्वकाल मे क्षत्रिय थे। कुछ खस मुसलमान भी हो गये थे। जसरथ उन्ही मे था। जैनुल आबदीन के पास दूत भेजा। पुनः राजप्राप्ति के लिये सहायता देने का वचन दिया। वह स्वयं परिस्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता था। तबकाते अकबरी ने लिखा है—'शाही खाँ जसरथ खोखर से मिल गया (उ० : तै० : भा० : २ : ५१६)।'

श्रीवर के वर्णन से प्रकट होता है कि जसरथ अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जैनुल आबदीन को साधन मात्र बनाना चाहता था। जसरथ अपने समय का प्रबल शक्तिशाली सुलतान था। उसने अपने अभियानो, आक्रमणो द्वारा, उत्तर-पश्चिम भारत, पजाब तथा काश्मीर की राजनीति को प्रभावित किया था। अलीशाह के पतन के पश्चात् मुहम्मद मार्गेश ने काश्मीर को जसरथ के अधिकार मे जाने से बचाया था (जैन० : रा० : ४ : १४०—१४४)।

जसरथ मद्र के राजा का द्वेषी था। उसे मद्र के राजा के दामाद अलीशाह का राजसिंहासन पर बैठना असरता था। मद्रराज का अलीशाह के समय राज्य प्रभाव में बढ़ गया था। क्योकि मद्रसेना के ही

नक्रो न चेज्जलनिधेर्बहिरभ्युपेयात्
काकस्त्यजेन्न वनपादपमुन्नतं चेत्।
आखुर्न चेद्गहनगर्तगुहां विमुञ्चे-
द्धन्तव्यतां कथमवाप्नुयुरेव तत्ते॥ ७३१॥

७३१ यदि नक्र जलनिधि से बाहर न जाय, काक उन्नत वन-वृक्ष को न छोड़े, मूषक (चूहा) गहन गर्त (बिल) का त्याग न करे, तो वे किस प्रकार मारे जा सकते?

आश्रयो युवराजस्य मद्द्विषो दीयतेऽमुना।
जस्रथं प्रति भूपालः क्रोधादित्यभ्यषेणयत्॥ ७३२॥

७३२ मेरे द्वेषी युवराज[1] को यह आश्रय दे रहा है, इस क्रोध से राजा जस्रथ[2] पर आक्रमण के लिये प्रस्थान किया।

कारण अलीशाह ने राज्य प्राप्त किया था। अलीशाह के उत्थान मे अपने पतन का प्रतिबिम्ब जसरथ ने देखा। स्वरक्षा एवं उत्थान तथा मद्रराज से बदला लेने की उत्कट भावना से जसरथ अलीशाह को अपदस्थ करने के लिये कृतसंकल्प हो गया था।

खक्खा अर्थात् खुखरो की आबादी, झेलम उपत्यका बारहमूला के अधोभाग मे थी। वे मध्ययुगीय खुखरो के समान सर्वदा काश्मीर के राजाओ तथा सुल्तानों को कष्ट देते रहे हैं। महाराजा गुलाबसिंह ने उनका दमन कर उन पर नियन्त्रण किया। ये इतने प्रबल एवं आतङ्ककारी थे कि काश्मीर की नारियाँ अपने शिशुओ को 'खक्खा आया—खक्खा आया' कहकर डराती थीं।

बारहमूला की दिशा मे ककर पण्डितो की एक जाति है। इनका खक्खर से कोई सम्बन्ध था या नहीं यह अनुसन्धान का विषय है। केवल ध्वनिसाम्य से उन्हें एक मान लेना उचित न होगा। एक अनुमान किया जा सकता है। मध्य हिन्दू काल मे हिन्दू थे। वहाँ वर्ण व्यवस्था थी। मुस्लिम आक्रमण काल मे वे शाही वंश के समान काश्मीर आये होंगे। सप्त मण्डल अथवा देश के मूल निवासी के कारण खक्कर के स्थान पर ककर कहे जाने लगे हों।

पाद-टिप्पणी :

७१२. (१) युवराज : जैनुल आबदीन। जसरथ का पक्षपात प्रकट हो गया था। अलीशाह का जसरथ पर कुपित होना स्वाभाविक था। जसरथ को दण्ड देने के लिए ससैन्य प्रस्थान किया।

(२) जसरथ : श्लोक संख्या ८५८ से प्रकट होता है कि यह मुसल्मान था। वहाँ उसे 'खानो जसरथ' लिखा गया है। जसरथ भारतीय इतिहास मे प्रसिद्ध है। जोनराज का वर्णन प्रामाणिक है। इसी प्रकार उसे मलिक कहा गया है। शेखा खोखर ने लाहोर पर अधिकार कर लिया था। जसरथ शेखा खोखर का भाई था (केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : ३ : १९६)।

फिरिश्ता ने जसरथ को शेखा का भाई लिखा है (१ : १६३) किन्तु मुन्तखबुत्तवारीख (१ : २८९) तथा यजदी के जफरनामा (२ : १६९) मे उसे शेखा का पुत्र लिखा गया है। जसरथ तैमूरलंग का बन्दी बना लिया गया था। उसे साथ लेकर तैमूर भारत से लौटा था। तैमूर की मृत्यु के पश्चात् भारत लौट कर राज्य स्थापित कर लिया था (केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : ३ : ३०९)।

तारीखे मुबारकशाही से पता चलता है कि जमादि-उल-अव्वल हिजरी ८२३ (मई-जून सन् १४२० ई०) मे काश्मीर का बादशाह सुल्तान अलीशाह अपनी सेना के साथ थट्टा मे आया। जसरथ ने सुल्तान की सेना के चलने के समय उससे युद्ध किया। सुल्तान अली की सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। [illegible] के कारण अलीशाह पराजित हो गया।

उसकी सेना की अधिकाश शक्ति नष्ट हो गयी (तारीखे मुबारकशाही : २२ उत्तर तैमूरकालीन भारत : अलीगढ) । जोनराज का वर्णन सत्य है । उसने इस घटना को ज्येष्ठ मास जो मई–जून मे पडता है, लिखा है ।

तबकाते अकबरी मे लिखा है—'(मई–जून सन् १४२० ई० मे) काश्मीर का बादशाह सुलतान अलीशाह थट्टा आया था । उसके थट्टा के लौटने के समय शेखा (खोखर) ने उसका मार्ग रोक लिया । युद्ध आरम्भ कर दिया । सुलतान अली की सेना छिन्न-भिन्न हो गयी अत वह पराजित हुआ और शेखा द्वारा बन्दी बना लिया गया (उ० तै० भा० २ : ६८) ।'

आइने अकबरी मे उल्लेख है—'अलीशाह ने बहुत बडी सेना एकत्रित कर पजाब की ओर प्रस्थान किया (जरेट : २ : ३८८) ।' द्रष्टव्य : टिप्पणी : श्लोक ७८५ ।

जसरथ के सैनिक अभियानो एवं आक्रमणो का अन्तिम उल्लेख श्लोक संख्या ७८५ मे जोनराज करता है । जसरथ ऐतिहासिक व्यक्ति है । भारतीय इतिहासकारो ने उसके विषय मे बहुत लिखा है । उसका चरित्र विचित्र है । वह तैमूरलग का बन्दी बना । अनन्तर तैमूर की मृत्यु के पश्चात् भारत लौट आया । अपने पराक्रम से सेना एकत्रित कर प्रबल हो गया । यह घटना सम्भवत. सन् १४३२ ई० की है । उस समय जसरथ का सामना दिल्ली सुलतान मुबारक शाह से हुआ था (तारीखे मुबारकशाही : ४ : १ : ५४) । जसरथ पराजित हो गया था ।

जसरथ महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था । अलीशाह को पराजित करने के पश्चात् व्यास एव सतलज नदियो को पार करता तिलौरी, लुधियाना, अम्बाला तक का क्षेत्र रौंद डाला था । लूटपाट किया था । उसने पुनः जालन्धर पर आक्रमण किया । जीरक खा जालन्धर के दुर्ग मे बन्द हो गया किन्तु सधि हो गयी ।

जसरथ ने अपने वचनो का पालन नहीं किया । जून ४ सन् १४२१ को जीरक खां दुर्ग से बाहर निकला । जसरथ ने उसे बन्दी बना लिया । अपने साथ जालन्धर ले गया । जसरथ २२ जून सन् १४२१ को सरहिन्द पहुँचा । मलिक सुलतान शाह लोदी जुलाई सन् १४२१ ई० को दिल्ली से प्रस्थान किया । जसरथ २४ जुलाई सन् १४२१ को शाही सेना का आगमन सुनकर सरहिन्द से लुधियाना की ओर चल दिया । जीरक खा को लोदी को मुक्त कर दिया । शाही सेना ने लुधियाना की ओर प्रस्थान किया । जसरथ ने सतलज पार कर शिविर लगाया । जसरथ ने ४० दिनो तक शाही सेना को सतलज नही पार करने दिया ।

अक्टूबर ९ सन् १४२१ ई० को शाही सेना ने सतलज पार किया । जसरथ बिना युद्ध किये पलायन कर गया । शाही सेना ने पीछा किया । उसके शिविर पर अधिकार कर लिया । जसरथ भागता जालन्धर पहुचा । दूसरे दिन व्यास नदी पार किया । शाही सेना ने पीछा किया । जसरथ रावी तट पर पहुँच गया । शाही सेना पीछा करती रावी तट पर पहुँची । जसरथ भागता चनाव नदी तक पहुँच गया । वहाँ से तिलहर की पहाडियो मे शरण लिया ।

राय भीम जम्मू शाही सेना का पथप्रदर्शक था । शाही सेना ने तीलर या तिलहर जो जसरथ का शक्तिकेन्द्र था नष्ट कर दिया । कुछ जसरथ के साथी पहाडियो मे घुस गये । वे बन्दी बना लिये गये । शाही सेना लाहौर के लिये प्रस्थान करती दिसम्बर सन् १४२१ जनवरी सन् १४२२ ई० मे लाहौर पहुँच गयी ।

मई सन् १४२२ ई० मे जसरथ ने पुनः चनाव तथा रावी नदी पार करता लाहौर पहुँच गया । सेख हुसेन जजानी के रौजा के समीप शिविर स्थापित किया । मिट्टी की मोर्चेबन्दी जसरथ ने की । जून २ सन् १४१२ ई० को सेनाओ मे संघर्ष हुआ । एक मास ५ दिन तक किले के बाहर युद्ध होता रहा । अन्त मे जसरथ ने सफलता की आशा त्यागकर कलनौर की ओर प्रस्थान किया ।

राजा भीम के साथ जसरथ का युद्ध हुआ । राजा ने शाही सेना की सहायता की थी । युद्ध निर्णायक नहीं हुआ । जसरथ शक्तिहीन हो गया ।

म्लेच्छच्छादितमाहात्म्यैरुद्विग्नैः सचिवैर्निजैः ।
अनिषिद्धोद्यममतिर्भृतैरुभयवेतनैः ॥ ७३३ ॥

७३३ उद्विग्न, दोनों पक्षों से वेतन ग्रहण करने वाले उसके सचिव, जिसका कि महत्व म्लेच्छों[1] द्वारा आच्छन्न कर दिया गया था, उसके उद्यम[2] बुद्धि को निवारित नहीं किये ।

खोखरों को सेना मे भर्ती करने लगा। तिलहूर की पहाड़ियो मे शाही सेना से रक्षा हेतु शरण लिया।

जसरथ को पराजित करने के लिये मलिक सुलतानशाह लोदी, राय फिरोज मीया, मलिक सिकन्दर तुअफ परस्पर मिल गये। राजा भीम भी उनमे सम्मिलित हो गया। जसरथ सम्मुख नही आया। पहाड़ियो म छिपता शरण लेता रहा।

अप्रेल-मई सन् १४२३ ई० म राजा भीम तथा जसरथ मे युद्ध हुआ। राजा भीम ने वीरगति प्राप्त की। उसने लाहोर पर आक्रमण किया। मलिक सिकन्दर का सामना न कर सका। भाग खडा हुआ।

जसरथ ५ वर्षों तक शान्त था। शक्ति सग्रह कर रहा था। अगस्त सन् १४२८ ई० मे उसने कालानोर को घेर लिया। मलिक सिकन्दर तुअफ से उसका युद्ध हुआ। जसरथ विजयी हुआ। मलिक सिकन्दर लाहोर लौट गया।

व्यास नदी पार कर जसरथ ने जालन्धर लूटा। वहाँ स्थिर नही रह सका। कालानोर चला गया। कुछ मास पश्चात् जसरथ का सिकन्दर के साथ काँगडा मे युद्ध हुआ। जालन्धर से प्राप्त लूट का सामान बिखर गया। जसरथ पराजित हो गया वह तिल्हर शीघ्रतापूर्वक भाग गया।

नवम्बर-दिसम्बर मास १४३१ ई० म जसरथ ने पुनः जालन्धर पर आक्रमण किया। सिकन्दर मलिक से युद्ध हुआ। सिकन्दर बन्दी बना लिया गया। जसरथ ने लाहोर पर आक्रमण किया। शाही सेना पहुँचते ही वह पहाड़ियो मे पुन पलायन कर गया।

जुलाई-अगस्त सन् १४३२ ई० म जसरथ ने पुन. लाहोर पर आक्रमण किया। सफलता नहीं मिली। मुबारक शाह से पराजित होकर भाग गया।

सन् १४४१-१४४२ ई० मे सुल्तान महम्मद शाह ने जसरथ को पराजित करने के लिये सेना भेजी। जसरथ ने मलिक बहलोल से सन्धि कर ली। बहलोल को अपनी शक्ति द्वारा दिल्ली की गद्दी दिलाने का आश्वासन दिया।

जसरथ सुल्तान जैनुल आबदीन से अधिक चतुर, व्यवहारिक एव शक्तिशाली था। तारीखे मुबारकशाही (४ : १ : ५४) से प्रकट होता है कि जब सैय्यद मुइउद्दीन मुबारक शाह दिल्ली ने जसरथ को पराजित किया तो जैनुल आबदीन ने जसरथ को शरण दी थी।

जसरथ ने मुबारक शाह सैय्यद सुलतान दिल्ली की दुर्बलता का लाभ उठाकर पजाब विजय कर लिया था (म्युनिख : पाण्डु० ६९ ए०बी०, तबकाते अकबरी: ३ : ४३५)। दिल्ली विजय मे असमर्थ रहा और मुबारक शाह की सेना का जोर पडने लगा तो वह भाग कर बडशाह की शरण मे आया था (केम्ब्रिज : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : ३ : २०९,२१२)।

पाद-टिप्पणी .

७३३ (१) म्लेच्छ : यहाँ मुसलमान तथा गैरकाश्मीरियो के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। द्रष्टव्य (ई० . आई० : २२-३२)।

(२) उद्यम . जैनुल आबदीन के समर्थकों ने नीति से काम लिया। अलीशाह को राज्यच्युत करने के लिये सैन्य-शक्ति एव षड्यन्त्र दोनो का आश्रय लिया। जोनराज स्पष्ट लिखता है—अलीशाह के सचिव जैनुल आबदीन के समर्थकों से वेतन प्राप्त करते थे, दोनो ओर मिले थे। उनम आचरण नाम की कोई चीज शेष नहीं रह गयी थी। आचरण-हीनता के कारण सचिवों की शक्ति लुप्तप्राय थी। अलीशाह के समर्थक म्लेच्छो द्वारा प्रभावित थे। वे अलीशाह को आक्रमण करने से विरत नहीं कर सके। जैनुल आबदीन के समर्थकों ने अलीशाह को प्रेरित

युक्त्योपोद्वलितश्रद्धस्तथा द्वैराज्यजीविभिः ।
नवराजोदयं लेखमुखेन प्रापयिष्णुभिः ॥ ७३४ ॥

७३४ लेख[1] द्वारा नवीन राजा का उदय प्राप्त कराने के लिये इच्छुक द्वैराज्यजीवियों ने युक्तिपूर्वक उसकी श्रद्धा उपोद्वलित (डांवा-डोल) कर दी ।

प्रसादलोभाद्यवनैरतिमात्रकृतस्तुतिः ।
नवराजजयोद्रेकश्रवणभ्रष्टसाहसैः ॥ ७३५ ॥

७३५ यवन[1] जो कि नवीन राजा (शाही खां) की विजयोन्नति श्रवण कर साहसहीन हो गये थे, वे प्रसाद लोभ से उसकी बहुत स्तुति किये ।

स्वसैन्यैर्दैन्यचकितैर्निन्द्यमानोद्यमो नृपः ।
मल्लेकं जस्रथं जेतुं प्रस्थानमकरोत्ततः ॥ ७३६ ॥

७३६ दैन्यचकित अपने सैन्यों द्वारा उद्यम की निन्दा किये जाने पर भी राजा मल्लेक[1] जस्रथ को जीतने के लिये प्रस्थान कर दिया ।

किया । जैनुल आबदीन पर काश्मीर से बाहर निकलकर आक्रमण करो सफलता मिलेगी । यह भेद-नीति काम कर गयी । अलीशाह जाल मे फँस गया । वही किया जो उसके शत्रु जैनुल आबदीन के समर्थक चाहते थे ।

पाद-टिप्पणी :

७३४ (१) लेख : सरकारी पत्र के अर्थ मे प्राचीन अभिलेखों में लेख शब्द का प्रयोग किया गया है । द्रष्टव्य : लेखपद्धति ।

पाद-टिप्पणी :

७३५ (१) यवन : शाही खां अर्थात् जैनुल आबदीन की विजयवार्ता सुनकर लोग साहसहीन हो गये थे । श्लोक ७२६ से प्रकट होता है । यवनो ने राजोपयोगी वस्तुओ का हरण कर लिया था । उन्होने जब देखा कि जैनुल आबदीन की शक्ति बढ रही है तो उनका साहस टूटने लगा । तथापि अलीशाह से और अधिक लाभ उठाने की दृष्टि से उसके अभियान प्रयास की प्रशंसा करने लगे ।

पाद-टिप्पणी :

७३६. (१) मल्लेक : मलिक = दिल्ली सल्तनत में खान, मलिक तथा अमीर तीन पद थे । मलिक सर्वोच्च पद मे दूसरा पद था । वह खान से नीचा तथा अमीर से ऊँचा था । मलिक को सुलतान की तरफ से कार्य करने का अधिकार था । हिन्दू काल मे द्वार की रक्षा का भार द्वारपति तथा मार्ग की रक्षा का भार मार्गेश पर था । मुसलिम काल मे हिन्दू-कुलीन सामन्त सैनिकवर्ग जिन पर सुरक्षा का भार था, मुसलिम धर्म मे दीक्षित हो गये । वे प्रायः मलिक कहे जाने लगे । मलिको पर द्वार एवं मार्ग-रक्षा का भार था । द्वार तथा प्रवेशमार्ग पर्वतीय क्षेत्रो मे थे । मलिक लोगो को वंश परम्परागत द्वारादि की रक्षा का भार दिया गया था । वे अपने कुलगौरव के अनुसार दर्रों अर्थात् पासविशेष के खान्दानी रक्षक माने जाते थे । कर्तव्य निर्वाह के कारण उन्हे कुछ विशेषाधिकार राज्य की ओर से प्राप्त थे । सैनिक चौकियो को काश्मीर के सरकारी कागजो मे परशियन शब्द 'राहदारी' मे व्यक्त किया गया है । कोई भी पास अर्थात् दर्रा से बिना परवाना राहदारी प्राप्त किये आवागमन नही कर सकता था । मलिक सीमा की रखवाली भी करते थे । उनपर दुर्गों की सुरक्षा का भार था । सुलतान युद्ध मे सेनापति का कार्य करता था । उसकी अनुपस्थिति मे सरे-ई-लश्कर के अधीन सेना होती थी । वह प्रायः राजपुत्र तथा राजवंशीय होता था । अग्र पृष्ठ, दक्षिण तथा वाम पार्श्व भाग खान के नेतृत्व मे कार्य करता था । खान के सीधे अधीनस्थ मलिक होता था ।

अभ्यमित्रीणतां तस्य कश्मीरेन्द्रस्य गच्छतः ।
आसीन्मित्रस्य सांमुख्यं नामित्राणां महीभुजाम् ॥ ७३७ ॥

७३७ जिस समय काश्मीर नरेश वीरतापूर्वक शत्रु का सामना करने के लिये जा रहा था, उस समय सूर्य ही उसके सम्मुख थे, न कि शत्रु महीभुज ।

यत्र यत्रागमन्म्लेच्छकटकः स मदोत्कटः ।
तत्र तत्र रजोव्याजात्तमो मूर्तमदृश्यत ॥ ७३८ ॥

७३८ मदोत्कट वह म्लेच्छ कटक जहाँ-जहाँ गया, वहाँ वहाँ रज के व्याज से तम ही दिखायी दिया ।

पालनीयेषु देशेषु राजपुर्यादिपूद्धतः ।
परदेशेष्विवाकार्षीत् स लुण्ठनपराभवम् ॥ ७३९ ॥

७३९ पालनीय राजपुरी[1] आदि (प्र) देशों में उद्धत उस नृप ने शत्रुदेशवत् लुण्ठन पराभव किया ।

मलिक के अधीन अमीर होता था । वह सिपहसालार से ऊपर अधिकारी था । मलिक का पद सैनिक था । युद्ध के समय युद्ध सचालन हेतु मजलिसे-मलिक बनती थी । जिसे डिफेन्स कौन्सिल कह सकते हैं । पूर्व काश्मीर सुलतान काल मे वे छोटे-छोटे जागीरदार थे । मलिक शब्द अल्ल के रूप मे बंगाल तथा पंजाब के हिन्दुओ मे प्रचलित है ।

पाद-टिप्पणी :

७३७. उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई की प्रति मे श्लोक सख्या ९५४ स ९६१ तक और मुद्रित है । उनका भावार्थ है—

(९५४) अपनी उन्नति देखकर किन्तु पातक की आशंका करता हुआ खुज्याकाद ने मन्त्रियो के साथ मन्त्रणा की ।

(९५५) राजाओ के यन्त्र विक्रम प्रमुख लक्षण और मूर्खता का पात्र यह राजा कहाँ ?

(९५६) हमलोगो द्वारा इसको दिये गये हितकर उपदेश भी पंकज मे चन्द्रमा की किरण सदृश उलटे हो जाते हैं ।

(९५७) पहले ही असह्य साहसी युवराज अजेय था । आज विशेषकर मद्रेन्द्र द्वेष के कारण जसरथ द्वारा मानित होकर विशेष अजेय हो गया है ।

(९५८) राज्याधीन रहने वाले हमलोगो मे नूतन राजा का विश्वास नही है । हारलोभी के लिये हार अभिवाछित है न कि मणिभृत सर्प ।

(९५९) इसलिये हमलोग इसके द्वारा युवराज को जीत लेंगे । योग्य लोग घर मे प्राहुणक के द्वारा प्रहार से सर्प को मार देते हैं ।

(९६०) युवराज के जीत लिये जाने पर निःशङ्क लोग मण्डल मे प्रवेश करें और हम लोग अपना अभीष्ट पूर्व के उद्यमी नरेन्द्र को ।

(९६१) उस मन्त्री ने इस प्रकार मन्त्रणा करके अभियोजना (षड्यन्त्र) मे हेतु बना ।

पाद-टिप्पणी :

७३९. (१) राजपुरी : द्रष्टव्य : श्लोक : ९९, ९९ ।

तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—'अलीशाह ने जम्मू के राजा तथा राजौरी के राजा की सहायता से प्रस्थान किया और काश्मीर को पुनः अपने अधिकार मे कर लिया (उ० तै० भा० : २ : ५१६) ।'

डॉ० श्रीभोलानाथ ने लिखा है—'अलीशाह की दूसरी पत्नी राजौरी के राजा की पुत्री थी (दिल्ली सल्तनत : पृष्ठ २४८ संस्करण १९६९)।' किन्तु

प्राप्तेऽथ मुद्गरव्यालनामस्थानं महीपतौ।
सन्देशमित्यमन्दौजाः प्राहिणोन्मद्रभूपतिः ॥ ७४० ॥

७४० के राजा मुद्गरव्याल नामक स्थान पहुँचने पर अमन्द तेजशाली मद्र राजा ने यह सन्देश प्रेषित किया।

किसी आधारग्रन्थ का नाम नही दिया है। राजौरी के राजा को सहायता की बात परशियन इतिहासकार स्वीकार करते हैं। परन्तु वे तथा जोनराज नही लिखते कि अलीशाह की दो शादियाँ हुई थी। उनमे दूसरी राजौरी के राजा की कन्या थी।

पाद-टिप्पणी :

७४० (१) मुद्गरव्याल तारीख मुबारकशाही तथा तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है। थट्टा के समीप अलीशाह की सेना पहुँची। वही से लौटी। उस समय जसरथ ने उस पर आक्रमण किया। उसमे उल्लेख है—'जमादुल अव्वल के मास मे हिजरी ८२३(=सन् १४२० मई जून) मे अलीशाह काश्मीर के सुलतान ने जो सेना अपनी थट्टा ले गया था वहाँ से जब लौट रहा था तो मार्ग म खोक्खर ने विरोध किया। सुलतान की सेना तितर-बितर हो गयी जिसका कि एक भाग अभी थट्टा मे ही था और दूसरा बाहर निकला था। आक्रमण सहने मे असमर्थ सेना मे गोलमाल हो गया। उसका सरोसामान लुट गया (यहिया सिरहिन्दी तारीखे मुबारकशाही अनु० वसु०, २००)।' बदायुनी भी इसी प्रकार का वर्णन करता है परन्तु घटना वह हिजरी ८२४ की बताता है।

वह लिखता है 'सेखा खोखर के पुत्र जसरथ खोखर ने अचानक काश्मीर के सुलतान अलीशाह पर आक्रमण कर दिया जो थट्टा विजय की कामना से आया था। उसे उसने एक पर्वतीय दर्रा मे पराजित किया। उसके हाथ बहुत लूट का सामान लगा (मुन्तखाबुत्तवारीख १ २८९)।'

अबुलफजल, निजामुद्दीन तथा फिरिस्ता भी इस युद्ध का वर्णन करते है किन्तु स्थान का उल्लेख नही करते। आइने अकबरी (जरेट २ ३८७—८८), तबकाते अकबरी (३ . ४३४) तथा फिरिस्ता (२ : ३४२) स्थान पजाब मे बताते है। हैदर मल्लिक (पाण्डु० ३२), तारीख नारायण कौल (पाण्डु० : ४६ ए०) तथा तारीख हसन (पाण्डु० : २ : २९३) मे उल्लेख किया गया है कि यह युद्ध 'उरी स्थान पर हुआ था। आजम (पाण्डु० : ४०) कहता है कि यह युद्ध बारहमूला तथा पखली मार्ग के मध्य हुआ था। *परशियन इतिहास लेखकों से कुछ सहायता स्थान* जानने मे नही मिलती। केवल इतना सूत्र मिलता है कि किसी पर्वतीय दर्रा मे यह घटना घटी थी।

जोनराज ने राजपुरी के पश्चात् ही मुद्गरव्याल नामक स्थान पर पहुँचने की बात कही है। मद्र के सन्देश मे अलीशाह को सलाह दी गयी है कि खोखर युद्ध मे छल करते हैं। अतएव वह पर्वत पर ही रहे। श्लोक ७४६ मे जोनराज लिखता है कि पर्वत से अलीशाह की सेना के उतरने पर ही युद्ध हुआ था। बदायूनी आदि तथा जोनराज के लेख से स्पष्ट है कि स्थान पर्वतीय था। थट्टा मैदानी इलाका है। वहाँ युद्ध नही हुआ था। थट्टा सिन्ध म कराची से ४४ मील उत्तर तथा सिन्ध नदी के पश्चिम तट से ३ मील दूर स्थित है। नागर शाखा से अर्थात् पश्चिमी शाखा के चार मील ऊपर है। जहाँ वह सिन्ध से अलग होती है। लिटिल ऊड लिखते हैं—यहाँ मकान कुछ उठी भूमि पर बने है (जरनी-टू-दि सोर्स ऑफ ओक्सस ११)। केप्टन हेमिलान ने इस स्थान की यात्रा सन् १६९९ ई० मे की थी।

इस प्रकार युद्ध के २७९ वर्ष पश्चात् उसने थत्ता की यात्रा की थी। वह वर्णन करता है। थत्ता या थट्टा सिन्ध से करीब २ मील पर एक बडे मैदान मे है। यहाँ से सिन्ध अपना तट छोडती पूर्व की ओर खिसकती जा रही है (न्यू एकाउण्ट-ऑफ इस्ट इण्डीज : १ १२३)। उसके मत से नगर कभी सिन्ध नदी के तट पर बसा था। जिसे सिन्ध छोडती दूर चली जा रही थी। थट्टा का अर्थ ही होता है किनारा

पत्तिलोकः ससम्पत्तिर्वाजिनो वेगराजिनः।
भटा रणोद्भटाः सन्ति कटके तव यद्यपि ॥ ७४१ ॥

७४१ 'यद्यपि आपके कटक में सम्पत्तिशाली पदाति, वेगशाली अश्व, एवं रणोद्भट भट हैं—

तथापि च्छलबन्धेषु प्रसिद्धेषु महीतले।
यूयं खुःखरयुद्धेषु नैव नाम प्रगल्भथ ॥ ७४२ ॥

७४२ 'तथापि महीतल पर छलबन्ध करने में प्रसिद्ध खुःखर' के युद्धों में आप लोग नहीं बढ़ सकेंगे।

या तट। नगर थट्टा का नाम होगा नदी तट का नगर। एम० मुरदो ने लिखा है कि सन् १४९५ ई० अर्थात् हिजरी ९०० मे थत्ता नगर की स्थापना निजामुद्दीन नन्द जो सिन्ध का जाम था, किया था। थट्टा के पहले सिन्ध के दक्षिणी अधोमार्गीय क्षेत्र का मुख्य नगर सामिगर था। वह सम्मा जाति की राजधानी थी। जो कि सिन्ध के उत्तर-पश्चिम थट्टा से तीन मील दूर एक ऊँची भूमि पर था। इसकी स्थापना अलाउद्दीन खिलजी के राज्य काल में हुई थी (सन् १२९५–१३१५ ई०)। थट्टा से ४ मील दक्षिण-पश्चिम कल्यानकोट का दुर्ग था। वह एक पहाड़ी पर था। वह और भी प्राचीन स्थान है। कालान्तर मे उसका नाम तुगलकाबाद रख दिया गया था। गाजी वेग तुगलक मुलतान एवं सिन्ध का गवर्नर था। उसी के नाम पर इसका प्राचीन नाम बदलकर तुगलकाबाद रख दिया गया था। थत्ता का उससे भी प्राचीन नाम मनहाबरी था। देवल से वह दो दिन की यात्रा कर पहुँचा जाता था। वह लारी बन्दर से ४० मील उत्तर सिन्ध के पश्चिमी तट पर था। यह मन्द जाति का स्थान था। अबुल-फजल मराली तथा फिरिश्ता ने मेरिला लिखा है (कनिंघम एन्शिएण्ट ज्योग्रफी ऑफ इण्डिया पृष्ठ: २४३–२४७)। भौगोलिक स्थिति थत्ता को मुग्दर व्याल स्थान मानने की सम्भावना क्षीण कर देती है।

डॉ० परमू ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। वह मुद्गर व्याल को थाना स्थान बताते हैं। थाना तोही नदी पर राजोरी से १४ मील उत्तर काश्मीर की ओर स्थित है। काश्मीर जाने वाली पूँछ से सड़क थाना से एक मील उत्तर से अलग होती है। यह सर्वदा तुषारपात न होने के कारण खुली रहती है। डॉ० परमू का मत है कि लिखने की गलती से थाना का थत्ता हो गया है। श्री परमू ने निष्कर्ष निकाला है कि मुद्गरव्याल ही थाना का प्राचीन नाम है। यह पर्वतीय स्थान है जिसका वर्णन जोनराज करता है। श्रीनगर-पूँछ होते राजौरी के मार्ग पर है। राजौरी से मार्ग पंजाब की ओर जाता है। इस विषय पर निश्चित कुछ लिखना कठिन है। मैं राजौरी, पूँछ होते काश्मीर दो बार गया हूँ। परन्तु इस दृष्टि से कभी अध्ययन नहीं किया था।

पाद-टिप्पणी :

७४२. (१) खुःखर : खोखर = तवक़ाते अकबरी मे लिखा है—'शाहीखा काश्मीर से सियालकोट पहुँचा। उस समय जसरथ खोखर जो साहिब किरान (तैमूरलंग) का बन्दी बना लिया गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त समरकन्द से भागकर पंजाब पहुँचा और अत्यधिक प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। शाही खां जसरथ खोखर से मिल गया और उससे मिल कर अलीशाह पर आक्रमण करने के लिये पहुँचा (उ० तै० भा० : २ : ५१६)।'

मुस्लिम इतिहास काल मे मुक्खर लोग सर्वदा लड़ाकू तथा तंग करने वाली जाति रूप चित्रित किये गये हैं। वे पर्वतीय तथा छद्मयुद्ध मे प्रसिद्ध थे। जहाँ भी वे पहुँचते वे एक समस्या हो जाते थे। इसीलिए उनके विषय मे एक काश्मीरी कहावत है—'लोग मम पसूर' या 'गुखर थुस लोग मुत।' अर्थात् वे लोग जो

वयमेव तु जानीमः खुःखुराणां रणच्छलम् ।
अहिरेव भुजङ्गस्य पदं जनाति नेतरः ॥ ७४३ ॥

७४३ 'हमलोग खुःखरों के रण छल को जानते हैं, अहि ही भुजंगों के पद (मार्ग-पैर) को जानता है, इतर नहीं ।

अतो यावद्वयं प्राप्तस्त्वत्सेवाविधिसिद्धये ।
भवद्भिस्तावदत्रैव स्थातव्यं पर्वतोपरि ॥ ७४४ ॥

७४४ 'अतएव जबतक आपकी सेवाविधिसिद्धि के लिये आये तबतक यहीं पर्वत के ऊपर स्थित रहें ।'

मद्रेशस्य स सन्देशो मन्दैर्यवनपुङ्गवैः ।
स्वायशोलब्धये ज्ञातो मदसम्मूढदृष्टिभिः ॥ ७४५ ॥

७४५ मद से जिनकी दृष्टि मूढ़ थी, उन यवन-पुंगवों ने मद्र के उस सन्देश को अपने अपयश[1] की प्राप्ति लिये समझा ।

राज्ञि मूढेऽवगूढेऽथ मानादिव महीधरात् ।
ध्वजैर्वायुचलैर्यातं खुःखरेशबलाद् भिया ॥ ७४६ ॥

७४६ मानवत् महीधर से, उस मूढ़ राजा के उतरने पर[1] वायु से ध्वजायें चंचल हो उठीं, ऐसी प्रतीत होता था कि, खुखरेश की सेना के भय से चंचल हो उठी हैं ।

खुक्खरों के समान सर्वदा उत्तेजना चिढ़ किंवा सन्ताप पैदा करते रहते है ।

पाद-टिप्पणी :

७४५ (१) अपयश : कायर व्यक्ति चाटुकारितावश सर्वदा जिनसे उनकी स्वार्थसिद्धि होती है, उन्हें प्रोत्साहित करते रहते हैं । यह विचार नहीं करते परिणाम क्या होगा । मद्रराज का सुझाव इसी दुर्बुद्धि के कारण अलीशाह के सैनिक अधिकारियों ने ठुकरा दिया । कायर युद्ध के पूर्व बहुत शोर करते हैं, वीरता की बात करते हैं । किन्तु समय आने पर वे सबसे पहले पलायन करते हैं ।

मद्रराज जसरथ से युद्ध कर चुका था । वह खसो का पड़ोसी था । खसो का युद्धकौशल जानता था । अलीशाह को इसीलिये सावधान किया । किन्तु अलीशाह अपनी सेना तथा राजपदों पर स्थित जैनुल आबदीन के समर्थकों के भेदनीति के कारण उनके इच्छानुसार से कार्य करता गया और उनके तथा अपने कायर सेनानायकों के कुचक्रों से मोहित हो गया । वह मद्रराज की सलाह न मानकर स्वयं जैसे पराजय आलिंगन करने के लिए सन्नद्ध हो गया ।

पाद-टिप्पणी :

७४६ (१) अवरूढ़ : जोनराज ने 'मूढेऽवरूढे' शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । अलीशाह अपनी फौज के साथ पर्वत से जम्मू के राजा के चेतावनी की अवहेलना कर उतर रहा था । उसके पश्चात् वहीं युद्ध हुआ ।

तारीख मुबारकशाही तथा तबकाते अकबरी दोनों मे लिखा गया है कि अलीशाह की सेना के वापिस अथवा लौटते समय जसरथ ने आक्रमण किया । पर्वत पर से उतरना, लौटना या वापस होने के अर्थ से भी लगाया जा सकता है । तारीख मुबारकशाही तथा तबकाते अकबरी के वर्णन में किंचित्

धावदश्वबलक्षोदात् तनीयसि महीतले।
हर्षभीरससम्भेदे मज्जति स्म फणीश्वरः ॥ ७४७ ॥

७४७ दौड़ते अश्व के बल के क्षोद से भूतल के चूर्णित हो जाने फणीश्वर हर्ष एवं भय के मध्य डूबने लगे।

अश्वक्षुण्णेऽस्रसंसिक्ते भूतलेऽसिकुशाश्रिते।
वीराः प्राणान् प्रतापाग्नौ तत्राजुहुवुराहवे ॥ ७४८ ॥

७४८ भूतल के अश्व विचूर्णित रुधिरसिक्त तथा असिकुश से व्याप्त हो जानेपर युद्ध[1] स्थल पर वीरों ने प्रतापाग्नि में प्राणों की आहुति दी।

अन्तर है।—'जसरथ ने सुल्तान अली की वापसी के समय उसकी सेना से युद्ध किया (उ० तै० भा० : १ : २३)।' तबकाते अकबरी में लिखा गया है—'उसके यहाँ से लौटते समय शेखा ने उसका मार्ग रोककर युद्ध आरम्भ कर दिया (उ० तै० भा० : १ : ६८)।' दोनों तारीखों ने अलीशाह का बन्दी होना लिखा है। परन्तु मृत्यु का उल्लेख नहीं किया है।

पाद-टिप्पणी :

७४८ (१) युद्ध : हैदर मल्लिक लिखता है—'अलीशाह के आक्रमण का समाचार सुनकर जैनुल आबदीन ने एक लश्कर लड़ने के लिये भेजा। उस युद्ध में मलिक दौलतचन्द्र मर गया। मलिक अवतारचन्द्र जो उसका लड़का था सिपहसालार बनाया गया (हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ४५)। मलिक दौलतचन्द्र तथा अवतारचन्द्र का उल्लेख जोनराज तथा श्रीवर दोनों ने नहीं किया है। केवल अवतार भोट्ट का उल्लेख जोनराज ने श्लोक ४१८ में किया है। वह सुल्तान सिकन्दर की बहिन का पिता था। अतएव अवतार यह व्यक्ति नहीं हो सकता। दोनों के समयों में ६५ वर्ष का अन्तर पड़ता है।

तबकाते अकबरी में उल्लेख है—'अलीशाह एक बड़ी सेना लेकर जसरथ के विरुद्ध रवाना हुआ। घोर युद्ध हुआ। दोनों ओर के अत्यधिक लोगों की हत्या हो गयी। कहा जाता है कि रणक्षेत्र में कुछ बिना सिर के शरीर खड़े होकर चलने लगे थे। हिन्दुस्तान में यह बात प्रसिद्ध है कि जिस युद्ध में १० हजार व्यक्ति मारे जाते हैं उसमें एक बिना सिर का शरीर जिसे केदह (कबन्ध) कहते हैं उठकर चलने लगता है। अन्त में अलीशाह मुकाबला न कर सका और भाग खड़ा हुआ। शाही खाँ उसका पीछा करता काश्मीर पहुँचा और नगर के लोगों ने उसके पहुँच जाने के कारण अत्यधिक आनन्द मंगल मनाया (उ० तै० भा० : २ : ५१६)।'

उल्लेख किया गया है—मई-जून सन् १४२० ई० में—'काश्मीर का बादशाह सुल्तान अली शाह चढ़ा आया। उसके यहाँ से लौटने के समय शेखा ने उसका मार्ग रोककर युद्ध आरम्भ कर दिया। सुल्तान अली की सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। अतएव अलीशाह शेखा द्वारा बन्दी बना लिया गया (उ० तै० भा० : १ : ६८)।'

फिरिश्ता लिखता है—'जसरथ ने शाही खाँ के कार्य को उठा लिया और अलीशाह पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। इस समय कुछ लोग कहते हुए जोर देते हैं कि, वह विजेता के हाथों में पड़ गया था। दूसरे कहते हैं कि वह युद्ध क्षेत्र से भागा और शाही खाँ ने काश्मीर तक उसका पीछा किया। वहाँ से भी वह भागने के लिये बाध्य हो गया और शाही खाँ का अभिषेक श्रीनगर में उसके स्थान पर हुआ (पृष्ठ ४६८)।'

आलिशाहस्ततो राजा सिन्धौ प्रवहणं यथा ।
अभाग्यदुर्मरुद्वेगादभज्यत रणार्णवे ॥ ७४९ ॥

७४९ तत्पश्चात् राजा अलीशाह सिन्धु में प्रवहण (जलयान) सदृश अभाग्य दुर्मरुत् के कारण उस रणार्णव में भग्न[1] हो गया ।

विश्वान्धङ्करणान्धकारनिकरग्रस्तस्य सूर्योदयं
हेमन्ते हिममारुतैर्हृतधृतेः पुष्पाकराभ्यागमम् ।
दुष्टक्ष्मापतिजितस्य जगतो निर्दोषलेशं प्रभुं
लोकेशो जनयन् व्यनक्ति नितरां कारुण्यमत्युज्ज्वम् ॥ ७५० ॥

७५० विश्व को अन्धा करने वाला अन्धकार पुंज से ग्रस्त को सूर्योदय, हेमन्त में हिम वायु से धैर्य दरित को बसन्त का आगम, दुष्ट नृपति से पीड़ित जगत का निर्दोष नृपति प्रदान करते हुए विश्वम्भर (लोकेश) अत्यधिक उत्तम कारुण्य ही व्यक्त करता है ।

पाद-टिप्पणी :

७४९. (१) भग्न : भग्न शब्द दिवंगत, नष्ट अर्थ मे प्राचीन अभिलेखों मे प्रयुक्त किया है (सी० आई० आई० १)। तारीख मुबारकशाही के अनुसार अलीशाह की मृत्यु जमदिउल अव्वल हिजरी ८२३ = सन् १४२० ई० मई-जून मे हुई थी। जोनराज ने मृत्यु ज्येष्ठ मास मे लिखा है। उसने तिथि नही दिया है। यह समय तारीख मुबारकशाही से मिलता है। मई-जून मे ज्येष्ठ मास पडता है। वही समय तबकाते अकबरी मे भी दिया गया है (उ० तै० भा० : ६९)।

जोनराज के वर्णन से स्पष्ट होता है कि सुलतान युद्ध में दिवंगत हुआ था। श्रीवर के वर्णन से प्रकट होता है कि जसरथ ने सुलतान को पकड कर मार डाला था (जै० राज० : १ : ३ : १०७)।

बहारिस्तान शाही लिखती है कि—'वह हीरपुर के मार्ग से दिल्ली की ओर चला गया (पाण्डु० : २५-२६)। हैदर मल्लिक लिखता है—सुलतान अलीशाह जीवित पकडा गया। पखली मे कैद किया गया। वही पर उसकी मृत्यु हो गयी (पाण्डु० : ४५)। नारायण कौल लिखते है—सुलतान अलीशाह हार गया पखली मे कैद हुआ और वही मर गया (पाण्डु० : ६८ ए०)। वाकयाते काश्मीरी मे उल्लेख है–जम्मू का राजा लडने पर आमादा हुआ'''पखली के काफिरो से धोखा खाकर काश्मीर आया।'''''' सुलतान सेना के साथ बारहमूला होकर पखली की राह पकडा।'''सुलतान पखली मे कैद किया गया। वही मर गया (पाण्डु० : ४२-५३)।' मल्लिक हैदर चादुरा लिखते हैं—'अलीशाह की मृत्यु चादुरा मे हुई थी। उसे जसरथ तथा शाही खाँ ने बन्दी बना लिया था। तत्पश्चात् वह मार डाला गया (तारीखे काश्मीर : १४२)।'

आइने अकबरी मे किस स्थान पर युद्ध हुआ था इसका उल्लेख नही मिलता। केवल इतना लिखा गया है—'एक बडा युद्ध हुआ। जिसमे अलीशाह पराजित होकर गायब हो गया (जरेट० : २ : ४८८)। जैनुल आबदीन ने काश्मीर का राज्य प्राप्त किया।'

संस्कृत इतिहासकार जोनराज का शिष्य श्रीवर जैन राजतरंगिणी मे लिखता है—'जसरथ ने इसको बन्दी बना लिया और उसकी हत्या कर दी गयी (१ : ३ : १०६)।'

तारीख मुबारकशाही ने भी इसका बन्दी होना लिखा है। उसके पश्चात् अलीशाह का पुनः उल्लेख नही करता। अतएव जोनराज जो उस समय जीवित था। उसका कहना ही सत्य मानना चाहिये कि वह रणक्षेत्र मे ही मारा गया। हो सकता है कि पहले

श्रीजैनोल्लाभदीनोऽथ कश्मीरानपकल्मषः ।
अनुकूलो विधातेव प्राविशद्विजयोर्जितः ॥ ७५१ ॥

७५१ विजयोर्जित एवं निष्पाप श्री जैनोल्लाभदीन[1] (जैनुला वदनी) अनुकूल विधाता तुल्य काश्मीर में प्रवेश[1] किया ।

सतां स्तुत्या दिशां भेर्या मुखानि ध्वनयन्नयम् ।
पौराणां प्राङ्मनः पश्चाद् राजधानीं नृपोऽविशत् ॥ ७५२ ॥

७५२ सज्जनों की स्तुति से तथा भेरी ध्वनि से दिशाओं को ध्वनित करते हुए इस नृप ने प्रथम पुरवासियों के मन में पश्चात् राजधानी में प्रवेश किया ।

वह पकड़ लिया गया हो और तत्पश्चात् उसका वध कर दिया गया ।

सुलतान अलीशाह की कब्र रसोदुर अर्थात चादुर मे श्रीनगर–चरार सड़क पर है ।

पाद-टिप्पणी :

७५१. (१) प्रवेश : तबकाते अकबरी मे लिखा है—'अलीशाह मुकाबला न कर सका, भाग खड़ा हुआ । शाही खाँ उसका पीछा करता काश्मीर पहुँचा (पृष्ठ ५१६) ।' किन्तु तारीख मुबारकशाही और हैदर मलिक चादुरा, श्रीवर आदि ने अलीशाह का बन्दी होना लिखा है । तबकाते अकबरी की बात ठीक नही बैठती ।

मूल्यांकन :

७५२. अलीशाह का चरित्र विचित्र है । उसने जीवन मे अति चंचलता का परिचय दिया है । जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है । उसमे गुणाभाव था, अस्थिर बुद्धि थी, दुर्बल था, बुद्धि-दौर्बल्य का परिचय देते थकता नहीं, कायर भी था । पर्शियन इतिहासकारों के अनुसार लद्दाख उसके राज्य से बाहर निकल गया था ।

हिन्दुओं पर सिकन्दर की अपेक्षा अधिक अत्याचार उसके काल मे हुआ है । सूहभट्ट सुलतान सिकन्दर से दबता था । परन्तु अलीशाह के समय निरंकुश हो गया था । उसके हाथो मे सुलतान कठपुतली था । वह जो चाहता था, करता था । उसे देखकर भी, न चाहकर भी अलीशाह आँखें मूँद लेता था ।

अलीशाह ने वीरता एवं पराक्रम का परिचय नही दिया है । फिरोज जब सिंहासन प्राप्त करने के लिये, तुर्कों की सहायता से, काश्मीर मण्डल मे प्रवेश किया, तो वह स्वयं युद्ध करने के लिये नहीं गया । उसने सामना करने का भार सूहभट्ट पर छोड़ दिया । फिरोज से युद्ध करने के लिये लद्दराज एवं गौरभट्ट भेजे गये अपने इन नैसर्गिक दुर्बलताओ के कारण सुलतान सर्वदा दूसरो के हाथो मे खेलता रहा ।

जोनराज ठीक ही उसे बाल राजा कहता है । उसकी बुद्धि बालको जैसी चंचल थी । वह मृत्यु काल तक प्रौढता न प्राप्त कर सका । उसकी दुर्बल बुद्धि का लाभ उठा कर सूहभट्ट छत्र-चामरहीन काश्मीर का शासक हो गया था । लक्ष्मागेश, लद्दराज, गौरभट्ट, वैद्यशंकर, महम्मद आदि का क्रूर वध होने पर भी अलीशाह निरपेक्ष दर्शक बना रहा । प्रजा सूहभट्ट से इतनी आतंकित हो गयी थी कि मुख खोलने का साहस नही करती थी ।

सिकन्दर से भी अधिक अलीशाह के समय गैर-मुसलिमों पर अत्याचार हुआ है । सिकन्दर के समय अत्याचार की भी एक सीमा थी । अलीशाह के समय सभी सीमाओं का उल्लंघन कर दिया गया । अत्याचार, उत्पीड़न, हत्या, लूट तथा आततायीपन आदि साधारण बातें थीं । नाग यात्रा आदि जो भी कुछ सिकन्दर के समय तक प्रचलित थे, उन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया ।

विश्व में कहीं ऐसा प्रमाण नहीं मिलता । अपने धर्म के लिये जो देश त्यागना चाहते हो, उन्हें भी

रोका जाय और बाध्य किया जाय कि या तो वे धर्मविशेष ग्रहण करें अथवा मरें। काश्मीर के हिन्दू बाहर जाकर अपने धर्म का अनुकरण न कर सकें, इसलिये सूहभट्ट ने उनका काश्मीर मण्डल से भागना, बाहर जाना, रोक दिया—उनके आवागमन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। देश त्याग कर जाने वालो को मोक्षाक्षर अर्थात् पासपोर्ट लेना आवश्यक था। निःसन्देह इस प्रकार मोक्षाक्षर के लिये आवेदन-पत्र देना, अपने ऊपर सङ्कट आमन्त्रित करना था। परिणाम अवश्यंभावी था। काश्मीरी जनता अपने मण्डल मे ही बन्द हो गयी। बाहर से उसका सम्बन्ध टूट गया। काश्मीर मे हिन्दुओं पर क्या बीत रहा था, इसका कुछ समाचार बाहर नहीं जा सका। जोनराज ठीक कहता है। बँधे जल की मछलियो के समान गैर-मुसलमानो पर ज्ञात एवं अज्ञात अत्याचार की समस्त सीमायें उल्लघित कर दी गयी। शेष भारत जान भी न सका, काश्मीर मे क्या हो रहा था।

इतना अधिक आतङ्क था कि, ब्राह्मण स्वयं अग्नि मे कूद कर प्राण देते थे। यह परिस्थिति सिकन्दर के समय भी नही उत्पन्न हुई थी। सिकन्दर के समय कट्टरता की भी एक मर्यादा थी। परन्तु अलीशाह के समय मर्यादा नाम की कोई चीज शेष रह नहीं गयी थी।

बात और बिगडी। कितने ही गैरमुसलिम अत्याचार एवं दण्ड के भय से विष खा कर प्राण विसर्जन करने लगे, कुछ फाँसी लगा कर मर गये, कुछ जल मे डूबकर मर गये, कुछ पहाडो से कूदकर शरीर-बन्धन से छुट्टी पा गये; कुछ ने अग्नि मे अपनी आहुति चढा दी।

ब्राह्मण किंवा गैरमुसलिम रो भी नही सके, चिल्ला भी नही सके। उनके दु.ख, शोक एवं आर्तनाद को सुनकर सूहभट्ट प्रफुल्लित होता था। उसे आनन्द मिलता था। उस आनन्द की वह मुक्तकण्ठ से प्रशसा करता था।

गैरमुसलिम एव ब्राह्मण अपने धर्म एव अपनी जाति रक्षा के लिये दुर्गम मार्गों द्वारा भागने का प्रयास किये।

उस विपन्नावस्था में जोनराज, जो इन सब घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था, मर्मभेदी वाणी में कहता है—'पिता ने पुत्र का ध्यान नहीं किया। पुत्र ने पिता का ध्यान नही किया। सभी अपनी-अपनी रक्षा की चिन्ता मे थे। विदेशो मे जो ब्राह्मण पहुँच भी गये उनकी अवस्था दयनीय थी। काश्मीर स्वर्ग से वे नर्क मे आ गये।'

अनेक ब्राह्मण मार्ग की कठिनता के कारण प्राण त्याग दिये। उन्हें प्राण त्याग मे अधिक सुख मिला, सन्तोष हुआ। मृत्यु उनके लिये वरदान हुई। कभी के उत्तम ब्राह्मणो ने भिक्षावृत्ति ग्रहण कर ली। उनका समय ग्राम-ग्राम मे भिक्षा माँगते बीतता था। ब्राह्मणो ने अपना रूप छिपाने के लिये, मुसलमानों जैसी वेश-भूषा धारण कर ली।

ब्राह्मणो की वृत्ति हर ली गयी। पठन पाठन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जोनराज मार्मिक भाषा मे कहता है—'वे घरो के आगे भूख से पीड़ित जीभ लप लपाते चलते थे।'

जब अत्याचार बढ़ता है, तो वह सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर देता है। हिन्दू समाप्तप्राय हो गये, तो मुसलमानो को भी सूहभट्ट ने नहीं छोडा। मुल्ला नूरुद्दीन जैसे व्यक्तियो को भी केवल सन्देह के कारण बन्दीगृह मे डाल दिया गया।

जोनराज के शब्दो मे—'काश्मीर का छत्र-चामर-हीन वास्तविक राजा सूहभट्ट था।'

सूहभट्ट ने अपने साथी मन्त्रियो, जो उसके निरंकुश शासन के यन्त्र थे, उन्हे भी समाप्त करना आरम्भ किया। एक के पश्चात् दूसरे मन्त्री सूहभट्ट द्वारा मारे जाते रहे। परन्तु अलीशाह कुम्भकर्णी निद्रा ले रहा था। जनता भी विद्रोह नही कर सकी। वह स्वयं त्रस्त थी। सूहभट्ट के पश्चात् भी अलीशाह ने राज्यसूत्र अपने हाथो मे लेने का प्रयास नही किया। लहराज, हंस एव गौरभट्ट शक्तिशाली थे। उनमे भी परस्पर सघर्ष आरम्भ हुआ। एक-दूसरे की हत्या करते, वे शक्ति-संग्रह मे लग गये थे। इस परिस्थिति मे भी सुलतान चुप रहा। वह अपने

शक्तिशाली मन्त्रियो का मरना देखता रहा। स्थिति सुधार का कुछ भी प्रयास नही किया।

इन परिस्थितियो के मध्य शाही खान सर्वप्रिय और शक्तिशाली होता गया। उसकी शक्ति का अनुमान कर अलीशाह ने उसे युवराज बना दिया। छोटे भाई को राज्य की बागडोर दे दी। फल विपरीत हुआ। हंस की हत्या हुई। अत्याचारी मन्त्रियो से काश्मीर को छुट्टी मिली। प्रजा का अनुराग सुलतान की ओर न चल कर शाही खा की ओर प्रबल वेग से चला। राजलक्ष्मी दौडी। शाही खा के पास आने के लिये उत्सुक हो गयी। अलीशाह ने कनिष्ठ भ्राता की बढती प्रबल शक्ति देखकर, अपनी नैसर्गिक दुर्बलता के कारण राज्यभार शाही खा पर रख दिया। वह नाममात्र के लिये सुलतान रह गया। चचल राजलक्ष्मी दुर्बल अलीशाह का आश्रय त्याग कर, शाही खा के आश्रय मे आ गयी।

श्मशान वैराग्य के समान दुर्बल एव कायरो को भी वैराग्य अनायास उत्पन्न हो जाता है। वे परिस्थितियो का सामना न कर, घबडा जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। यही प्रतिक्रिया अलीशाह मे हुई। वह शाही खा का सामना करने मे असमर्थ था। मन्त्रियो एव सेवको का सामना नहीं कर सका। पुन अपने भाई युवराजपदीय शाही खा का किस प्रकार सामना करता ? उसमे वैराग्य उत्पन्न हुआ—फकीर हो नही सकता था। उसने हज करने का विचार किया। क्षणिक वैराग्य उत्साह ने शाही खाँ को बादशाह बना दिया। स्वयं बारहमूला के मार्ग से अलीशाह काश्मीर के बाहर निकल गया।

परशियन इतिहासकारो ने लिखा है। जम्मू के राजा की कन्या का विवाह अलीशाह से हुआ था। जम्मू पहुच कर जब उसकी भेट श्वसुर से हुई तो उसने विचार बदल दिया। वह पुनः राज्य प्राप्ति के लिये सन्नद्ध हो गया (हैदर मल्लिक : पाण्डु० ११५ ए० बी०, हसन पाण्डु० ११५ ए०)। राजोरी के मार्ग से काश्मीर मे प्रवेश किया (म्युनिख : पाण्डु० ६८ ए०)। शाही खाँ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया। अलीशाह पर विदेशी सेना काश्मीर मे लाने के कारण क्रुद्ध था तथापि उसने सिंहासन अलीशाह के पक्ष मे त्याग दिया (म्युनिख : पाण्डु० ८८ ए०)। अलीशाह का धार्मिक उन्माद, तीर्थयात्रा का उन्माद, अनायास तिरोहित हो गया।

शाही खा जसरथ खोक्खर की सहायता से स्यालकोट से राज्य प्राप्ति के लिये पुन प्रयास किया (म्युनिख : पाण्डु० ६९ ए०)। अलीशाह अपने साथियो के साथ शाही खा का सामना करने के लिये चला। श्वसुर के सावधान करने पर भी,खश युद्ध से,अपरिचित होने पर भी, दुर्बल बुद्धि के कारण, साथियो की प्रेरणा से, युद्ध के लिये पर्वत से उतरा और पराजित हो गया। हैदर मल्लिक के अनुसार वह बन्दी बनाकर पखली के दुर्ग मे रखा गया था। जहाँ कुछ वर्ष पश्चात् मर गया (है० म० पाण्डु० ११५ बी०, हसन : पाण्डु० ११५ ए० नारायण कौल : पाण्डु० २८ बी०)। किन्तु श्रीवर का कहना है कि वह जसरथ द्वारा पकडा गया। उसका वध कर दिया गया।

अलीशाह ने ओहिन्द, जो उसके पिता के अधीन था, स्वाधीनता घोषित कर देने पर भी, लेने का प्रयास नही किया। लद्दाख एवं बालतिस्तान भी, जो सिकन्दर के समय काश्मीर राज्य मे थे, स्वतन्त्र हो गये। तथापि अलीशाह मूक द्रष्टा बना रहा।

काश्मीर के सुल्तानों मे वह अत्यन्त दुर्बल तथा चचल बुद्धि व्यक्ति था, सर्वदा दूसरो के हाथो में खेलता रहा। सूहभट्ट, शाहीखान, मद्रराज तथा मन्त्रियों और निकटवर्ती पार्षदो के हाथो की कठपुतली था।

वह इतना अदूरदर्शी था कि ठाकुरो से समझौता न कर सका। उन्हे अपने पक्ष मे न ले सका। युद्धप्रिय ठाकुर शाही खा की तरफ हो गये। शाही खा उनके साथ काश्मीर मण्डल के बाहर निकल गया। उसका काश्मीर मण्डल मे लौटना किसी को अच्छा न लगा। परिस्थितियो का किंचित् मात्र अवलोकन न कर सका। वह जनता को अपनी ओर आकर्षित करने मे असमर्थ था। इस दिशा मे जड था। उसकी कायर एव दुर्बल नीति के कारण काश्मीर मे हिन्दू काल मे जिस प्रकार लवन्य प्रबल होकर नाश के

धीनैर्मल्यं जनस्याहो जातं राज्ञोऽभिषेकतः।
प्रतापो वैरिणां शान्तस्तस्मिंश्छत्राणि बिभ्रति ॥ ७५३ ॥

जैनुल आबदीन : (सन् १४२०–१४७० ई०)

७५३ राजा के अभिषेक से लोगों की बुद्धि निर्मल हो गयी, और उसके छत्र धारण करने पर वैरियों का प्रताप शान्त हो गया।

कारण हुए। वही अवस्था तुर्कों ने उसकी कर दी। वे निरकुश हो गये। जनता उनसे त्रस्त हो गयी।

काश्मीर मण्डल मे हिन्दू शेष नही रह गये थे। अलीशाह के समय मुसलमान विभाजित हो गये। यवन मीर केसार ने काश्मीर मण्डल को ग्रस्त करना आरम्भ किया। काश्मीर मे स्त्रियो पर कोई आँख नही उठाता था। अलीशाह के समय काश्मीर मे स्त्रियो का चरित्र भी नष्ट किया गया। सुलतान यह सब देखता-सुनता जडवत् बना बैठा रहा। यहाँ तक कि उसके उपयोग की वस्तुएँ तक यवनो ने हस्तगत कर ली। जोनराज उसे ठीक ही जड नायक कहता है। उसने अच्छे मन्त्रियो का सग्रह नही किया। वे स्वार्थ-सिद्धि हेतु अवसर आते ही शत्रुओ से मिल जाते थे। सिकन्दर के पश्चात् यदि शाही खा सुलतान बन गया होता तो आज काश्मीर का नक्शा ही कुछ दूसरा होता।

पाद-टिप्पणी :

७५३ श्रीदत्त राज्याभिषेक काल कलि ४५२१= लौकिक ४४९६ = शक १३४२ = सन् १४२० ई०, फिरिस्ता हिजरी ८२६ = सन् १४२२ ई०, केम्ब्रिज हिस्ट्री सन् १४२० ई०, आइने अकबरी सन् १४२२ ई० = हिजरी ८२७, नारायण कौल हिजरी ८२७, वाकयाते काश्मीर हिजरी ८२७ तथा पीर हसन भी हिजरी ८२७ देता है।

श्रीदत्त राज्यकाल ५२ वर्ष देते हैं। प्रतीत होता है कि उन्होने अलीशाह के द्वितीय बार राज्य ग्रहण करने का भी समय अर्थात् जैनुल आबदीन के दोनों राज्यकालो का समय एक ही मे जोड दिया है। उन्होंने जोनराज की दी हुई राजाओ की तालिका एपेन्डिक्स पृष्ठ २१ पर केवल अलीशाह तक ही का नाम दिया है। उसमे जैनुल आबदीन के राज्यकाल का उल्लेख नही है। श्रीवर के जैन राजतरगिणी मे वर्णित राजाओ की तालिका मे प्रथम नाम जैनुल आबदीन का दिया है (एपेन्डिक्स पृ० २२)।

जैनुल आबदीन की रजत एवं ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। उन पर टकणित है—'अल सुलतान अल आजम जैनुल आबदीन' तथा सन् ८४२ हिजरी दिया है। एक दूसरी मुद्रा के मुख्य भाग पर 'जैनुल आबदीन' तथा पृष्ठभाग पर 'जरब नायब-अमीरुल मुमनीन' टङ्कणित है। यह मुद्रा हिजरी ८५७ = सन् १४४७ ई० की है (कायर क्वाइन्स आफ सुलतान ऑफ काश्मीर : जे० ए० स० बी० १८७९ ' ४ : २८४)।

जोनराज की मृत्यु सन् १४५९ ई० मे जैनुल आबदीन के राज्यकाल मे ही हो गयी थी। वह जैनुल आबदीन के ३९ वर्षों के राज्यकाल का प्रत्यक्ष-दर्शी था। राजकवि था। उसने जो कुछ जैनुल आबदीन एव इतिहास के विषय मे लिखा है, वह एक प्रत्यक्षदर्शी का वर्णन होने से सत्य एव ऐतिहासिक मानना होगा।

समसामयिक घटना

लद्दाख का इस समय राजा ग्र-ग-स बुम-ल्दे था। सन् १४२० ई० मे इसलाम खा लोदी ने पजाब का विद्रोह शान्त किया। कोइल तथा इटावा पर सैनिक अभियान किया। कटेहर पर आक्रमण किया। सरहिन्द के मलिक तुघान के विद्रोह को शान्त किया। सन् १४२१ ई० मे मेवात तथा इटावा पर सैनिक अभियान हुआ। खिज्र खा की मृत्यु हो गयी। मुइजुद्दीन मुबारक शाह (सन् १४२१–१४३३ ई०) दिल्ली का सुलतान हुआ। जसरथ खोखर ने विद्रोह किया। उसका विद्रोह दबाया गया। होशगशाह मालवा ने उडीसा पर सैनिक अभियान किया। अहमद प्रथम

ने मालवा पर आक्रमण कर माण्डू ले लिया। अहमद खां बहमनी ने विद्रोह किया। उसने शाही सेना को पराजित कर दिया। फिरोज राज्यच्युत हुआ। अहमद शाह बहमनी सिंहासन पर बैठा। फिरोज की मृत्यु हो गयी।

सन् १४२३ ई० मे कटेहर पर आक्रमण दिल्ली के सुलतान ने किया। जसरथ ने विद्रोह किया। शेख अली ने काबुल के सुलतान को लूटा। मुबारक ने ग्वालियर की सहायता के लिये अभियान किया जिसे मालवा के होशंग ने घेर लिया था। अहमद बहमनी ने विजयनगर पर आक्रमण किया। हिन्दुओ की हत्या की गई। वीर विजय को करद राजा बनने पर बाध्य किया। दक्षिण मे भयंकर अकाल पडा। ख्वाजा बन्द नवाज गीसूदराज की मृत्यु हो गयी।

सन् १४२४ ई० मे जफरनामा शर्फुद्दीन अली यात्रिद ने लिखा। मुबारक दिल्ली लौट आया। कटेहर पर आक्रमण किया। अहमद बहमनी ने तेलंगाना पर आक्रमण कर वरगल पर अधिकार कर लिया। अहमदशाह गुजरात ने जामा मसजिद अहमदाबाद मे बनवाया। नौशहर काश्मीर मे राजकीय विद्यालय स्थापित किया गया। पंजाब तथा तिब्बत पर जैनुल आबदीन ने सैनिक अभियान किया।

सन् १४२५ ई० मे जलाल खां तथा अब्दुल कादिर का विद्रोह दबाया गया। अहमद बहमनी ने बरार मे माहुर आदि ले लिया। इलिचपुर आकर ठहरा।

सन् १४२६ ई० में बेलजियम का लोवेन विश्व-विद्यालय स्थापित किया गया। मेवात पर सैनिक अभियान हुआ। मुहम्मद खां ओहदी का विद्रोह बयाना मे दबाया गया।

सन् १४२७ ई० में जलालुद्दीन दव्वानी 'अखलाक जलाली' का लेखक ईरान के फरम सूबा ग्राम दव्वान में जन्म लिया। अहमदनगर की स्थापना गुजरात के सुलतान अहमद प्रथम ने किया। सिन्ध का जाम सिकन्दर सुलतान हुआ। कवि उत्तम सोम ने बड़शाह जैनुल आबदीन के संरक्षण मे काव्यप्रकाश की रचना की।

सन् १४२८ ई० मे जौनपुर का इब्राहीम शाह पीछे हटा। बयाना पर सैनिक अभियान हुआ। ग्वालियर पर अधिकार हुआ। मेवात में विद्रोह हुआ। जसरथ खोखर ने पुनः विद्रोह किया। अहमद बहमनी खरेल पर कर लेने के लिये अभियान किया। मालवा के होशंग पर आक्रमण करने से विरत रहा। वह वहाँ घेरा डाले था। पीछे हट गया। होशङ्ग ने पीछा किया। किन्तु अहमद ने आक्रमण कर उसे पीछे हटा दिया।

सन् १४२९ ई० मे ग्वालियर, अथगाथ, शपरी पर सैनिक अभियान किया गया। भटिण्डा के फौलाद खाँ ने विद्रोह किया। देवी जोयान आँफ आर्क ने ओरलियन्स घेर लिया। अहमद शाह बहमनी राजधानी गुलबर्ग से बीदर ले गया। डल लेक मे सोना लंका जैनुल आबदीन ने निर्माण कराया।

सन् १४३० ई० मे भटिण्डा पर सैनिक घेरा डाला गया। सन् १४३१ ई० मे देवी जोयान आँफ आर्क जीते-जी फ्रास के रोन स्थान मे जला दी गयी। अहमदाबाद नगर की स्थापना की गयी। रेनासाँ वास्तुकला का यूरोप मे उदय हुई। मुलतान के समीप इसलाम खाँ लोदी को मार तथा हटाकर शेख अली काबुल ने फौलाद खाँ भटिण्डा को मुक्त किया। बंगाल मे जलालुद्दीन की मृत्यु हो गयी और शमसुद्दीन अहमद ने राजसत्ता ली।

सन् १४३२ ई० मे हुशगशाह मालवा ने काल्पी ले लिया। उसका माण्डू मे देहावसान हो गया। गजनी खाँ सुलतान बना। मुबारक पजाब मे बढा। अपने शत्रु जसरथ विद्रोही को भगाया। जलाल खाँ मेवात ने विद्रोह किया। मुबारक ने विद्रोह दबाया।

सन् १४३३ ई० मे राणा कुम्भ मेवाड के राज-सिंहासन पर बैठे। सन् १४३४ ई० मे विजयनगर मे द्वितीय देवराज राजा हुआ। सन् १४४६ ई० तक शासन किया। सन् १४३४ ई० मे उडीसा मे

कपिलेश्वर राजा हुआ। और सन् १४४७ ई० तक राज किया।

सन् १४३५ ई० मे दौलताबाद मे चान्द मीनार का निर्माण किया गया। सन् १४३६ ई० मे जौनपुर का महमूद शाह सुलतान हुआ और सन् १४५८ ई० तक शासन किया। सन् १४३६ ई० मे महमूद प्रथम ने माण्डू का राज्य प्राप्त किया और मालवा मे खिलजी वंश की स्थापना हुई। उसने सन् १४६९ ई० तक शासन किया। सन् १४३७ ई० मे सिन्ध का जाम निजामुद्दीन गद्दी पर बैठा और सन् १४६२ ई० तक शासन किया। सन् १४३८ ई० मे नूरुद्दीन ऋषि का काश्मीर मे देहावसान हो गया। अहमद प्रथम गुजरात मे मालवा के मसूद खाँ गोरी के सहायतार्थ मालवा पर आक्रमण किया। सन् १४३९ ई० मे विलियम बाईघम ने गौड्स हाउस् कैम्ब्रिज मे स्थापित किया। वहाँ इङ्गलिश व्याकरण की उच्चतम शिक्षा दी जाने लगी।

सन् १४४० ई० मे मुलतान के कुतुबुद्दीन शाह ने सन् १४५६ ई० तक शासन किया। सन् १४४१ ई० मे खान्देश मे मुबारक शाह सुलतान हुआ और सन् १४५७ तक शासन किया। सन् १४४२ ई० मे नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह बंगाल का शासक हुआ। और सन् १४६० ई० तक शासन किया। गुजरात के महमूद प्रथम ने चित्तौर पर आक्रमण किया। पीछे हटा। सन् १४४३ ई० मे हेरात का अब्दुर्रज्जाक विजयनगर मे समरकन्द के सुलतान शाहरुख का राजदूत बनकर आया। बडशाह ने जैन लंका का *निर्माण ऊलर लेक मे कराया। विजयनगर के देवराय* द्वितीय ने दक्षिण पर आक्रमण किया।

सन् १४४४ ई० मे श्रीनगर मे विदेशी राजदूत सैय्यद मुहम्मद मदनी की कब्र तथा मसजिद का निर्माण हुआ। तौर्स की सन्धि हुई। मुहम्मद शाह की मृत्यु हुई तथा आलम शाह ने राज्य प्राप्त किया। जौनपुर तथा मालवा मे युद्ध हुआ। रणमल की मृत्यु हुई। मेवाड़ से राठौर निष्कासित किये गये। जोध राठौर सिंहासन पर बैठा।

सन् १४४५ ई० मे पुर्तगालियो ने वेप वर्दे को खोज निकाला। प्रसिद्ध इतिहासकार जलालुद्दीन अस्-सुयूती 'तारीखुल खुलफा' का जन्म उत्तरी मिश्र सुयुत मे हुआ। ललितपुर के समीप चन्देरी मे सात मंजिला कुशक महल निर्माण का आदेश दिया गया। मुल्ला अहमद काश्मीरी ने जैनुल आबदीन के आदेश पर महाभारत का अनुवाद फारसी भाषा मे किया। शेख बहाउद्दीन गजबख्श का देहान्त श्रीनगर मे हुआ। मालवा के महमूद ने कालपी पर आक्रमण किया। जौनपुर की सेना से युद्ध हुआ।

सन् १४४६ ई० मे प्रथम प्रेस से मुद्रित पुस्तक कोस्ट हुरलेम प्रकाशित हुई। सरखेज मे मसजिद और मजार शेख अहमद खत्री का अहमदाबाद के समीप का निर्माण मुहम्मद शाह के द्वारा आरम्भ किया गया और पाँच वर्ष पश्चात् कुतुबुद्दीन द्वारा पूर्ण किया गया। यही समय जोनराज की रचना का जैनुल आबदीन के संरक्षणकाल मे है। गुजरात तथा राणा कुम्भ के मध्य युद्ध हुआ। मालवा के महमूद प्रथम ने राणा कुम्भ के राज्य पर आक्रमण किया।

सन् १४४७ ई० मे आलम शाह ने बदायूँ को अपनी राजधानी बनाया। सन् १४४८ ई० मे जैसलमेर के रावल का उत्तराधिकार छउक देव जादौन ने प्राप्त *किया। आलम शाह बदायूँ मे अवकाश* ग्रहण किया।

सन् १४५० ई० मे मालवा के महमूद प्रथम ने गुजरात पर आक्रमण किया। इसी वर्ष समस्त नारमण्डी फ्रांस ने ले लिया। स्पेन मे बर्सीलोना विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। कार्डिनल कासनस ने नाडी, रक्त तथा मूत्र की परीक्षा का सुझाव दिया। बहलोल लोदी दिल्ली का बादशाह हुआ। मीर मुहम्मद हमदानी की तुर्किस्तान मे खलतान स्थान पर मृत्यु हुई। सन् १४५१ ई० मे मुहम्मद प्रथम की मृत्यु हो गयी और कुतुबुद्दीन गुजरात के सिंहासन पर बैठा।

सन् १४५२ ई० मे बडशाह की द्वितीय पत्नी का देहावसान हो गया। बडशाह का पुत्र बहराम पिता से संघर्षरत हुआ। महमूद शाह जौनपुर ने

दिल्ली पर आक्रमण किया। बहलोल लोदी से पराजित हो गया।

सन् १४५३ ई० मे कुस्तुनतुनियाँ को मुहम्मद द्वितीय के नेतृत्व मे तुर्कों ने ले लिया। पूर्वी रोमन साम्राज्य की कथा शेष हो गयी। उसका दूसरा नाम इस्तम्बूल पड़ा। बरमा मे रानी शिन शावू शासक हुई। उसने सन् १४७२ ई० तक शासन किया। राणा कुम्भ की सेना ने गुजरात के सुल्तान की सेना को नागौर म पराजित किया।

सन् १४५४ ई० मे यजद के सर्फुद्दीन की मृत्यु हो गयी। माण्डू की जामा मसजिद जिसका निर्माण हुशाग शाह ने आरम्भ किया था, उसे मुहम्मद खिलजी ने बनाकर पूर्ण किया। महमूद प्रथम ने हाड़ा राजपूतो पर आक्रमण किया। दाऊद खा ने बयाना से कर लिया।

सन् १४५५ ई० मे ब्रिटेन मे वार आँफ रोजेज आरम्भ हुआ। जैनुल आबदीन के प्रधान न्यायाधीश शिर्यभट्ट की मृत्यु हो गयी। महमूद प्रथम ने राणा कुम्भ के राज्य पर आक्रमण किया।

सन् १४५६ ई० मे गजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन ने पुन राणा कुम्भ पर आक्रमण किया। तेलगाना मे जलील खा तथा सिकन्दर खा ने विद्रोह किया। मालवा के महमूद प्रथम ने दक्षिण पर आक्रमण किया। कुतुबुद्दीन की मृत्यु हो गयी और हुसैन प्रथम मुलतान का राजा हुआ।

सन् १४५७ ई० मे विश्व मे प्रथम समाचार पत्र का नूरेमवर्ग बाविरिया जर्मनी मे मुद्रण तथा प्रकाशन आरम्भ हुआ। मुहम्मद ने बहलोल लोदी से सन्धि किया खानदेश मे आदिलशाह प्रथम की मृत्यु हुई तथा आदिल खा द्वितीय गद्दी पर बैठा। कुतुबुद्दीन ने पुन राणा कुम्भ के राज्य पर आक्रमण किया।

सन् १४५८ ई० मे जौनपुर की जामा मसजिद का निर्माण हुआ। महमूद बेगरा गुजरात का सुल्तान हुआ और सन् १५११ ई० तक शासन किया। मुहम्मद शाह जौनपुर की मृत्यु तथा हुसेन शाह ने राज्य प्राप्त किया।

गुजरात में कुतुबुद्दीन की मृत्यु हुई तथा दाऊद ने राज्य प्राप्त किया दाऊद राज्यच्युत किया गया। मुहम्मद प्रथम बेघरा को राज्य प्राप्ति हुई। जलाल खा तथा सिकन्दर खा का विद्रोह दबाया गया। जोध राठौर ने जोधपुर की स्थापना किया। श्री जोनराज की इसी वर्ष मृत्यु हुई।

सन् १४६० ई० मे काश्मीर मे आकाल पडा। बडशाह ने शोपुर मे झेलम पर पुल निर्माण कराया। महमूद की मृत्यु और रुकनुद्दीन बरवक शाह को बगाल मे राज्य प्राप्ति हुई।

सन् १४६१ ई० मे इङ्गलैण्ड मे एडवर्ड चतुर्थ हेनरी षष्ठ को राज्यच्युत कर राजा बन गया। सिन्ध के जाम निजामुद्दीन जिसे नन्द भी कहते है, कन्धहार के शाह बेग की आक्रमक सेना को परास्त किया। हिमायू बहमनी की मृत्यु तथा निजाम शाह ने राज्य प्राप्त किया।

सन् १४६२ ई० मे मालवा के महमूद ने दक्षिण पर आक्रमण किया। महमूद बुघरा गुजरात निजाम शाह दक्षिणी की सहायता के लिये गया। सन् १४६३ ई० म मालवा के महमूद ने पुन दक्षिण पर आक्रमण किया। किन्तु महमूद बुघरा ने उसे पीछे हटने के लिये बाध्य कर दिया। निजाम शाह बहमनी की मृत्यु हो गयी। मुहम्मद तृतीय दक्षिण का सुल्तान बना।

सन् १४६४ ई० मे श्रीनगर समीपस्थ जैनदव का नौशहर मे निर्माण किया गया। सन् १४६५ ई० मे जैनुल आबदीन ने सर्वप्रथम बारूद से छुटने वाले हथियारो का प्रयोग आरम्भ किया। बारूद बनाने के लिये हबीब खा को बडशाह ने नोकर रखा। मोरक्को का द्वितीय अटलाण्टिक तटवर्ती नगर जिसे पुर्तगालियों ने प्राचीन नगर अन्फा के स्थान पर आबाद किया था नष्ट हो गया। मालवा के महमूद प्रथम ने कुम्भलगढ पर घेरा डाला।

तन्नीतिः पूर्वराजेषु कुण्ठोत्कण्ठाः प्रजा व्यधात् ।
गुणातिशायिनी या च शर्करेक्षुरसेष्विव ॥ ७५४ ॥

७५४ अति गुणवती उसकी नीति[1] ने पूर्व राजाओं के प्रति प्रजाओं की उत्कण्ठा उसी प्रकार कुण्ठित कर दी जिस प्रकार शर्करा इक्षु रस के प्रति ।

पूर्वराजव्यवस्थाः स विनष्टा नवयन्नभूत् ।
शिशिरोपहता वल्लीर्वसन्त इव भूपतिः ॥ ७५५ ॥

७५५ पूर्व राजाओं की विनष्ट व्यवस्थाओं को उस भूपति ने उसी प्रकार नवीन[1] किया जिस प्रकार शिशिरोपहत वल्लियों (लताओं) को वसन्त ।

सन् १४६६ ई० मे हुसेन शाह जौनपुर ने मानसिंह ग्वालियर के विरुद्ध अभियान किया । दक्षिण के मुहम्मद तृतीय तथा मालवा के मुहम्मद प्रथम के मध्य सन्धि हो गयी । बडशाह की वैशाखी बेगम का स्वर्गवास हो गया । श्रीलंका के पराक्रमबाहु की मृत्यु हो गयी ।

सन् १४६७ ई० मे वेनेशियन तथा फोरेन्टाइन सेनाओं के मध्य संघर्ष हुआ । महमूद तृतीय ने खेरल को लेने का असफल प्रयास किया । महमूद मालवा ने तैमूरवंशीय अबी सैय्यद के दूत को राजदरबार मे स्थान दिया ।

सन् १४६८ ई० मे ईरान पर तुर्कों ने अधिकार कर लिया । राणा कुम्भ को उसके पुत्र ऊद ने छूरा मार कर हत्या कर दी । श्री गुरु नानकदेव जी का जन्म तलवण्डी मे जिसका पुनः नाम नानकाना साहब रखा गया, हुआ। यह इस समय जिला शेखूपुर पश्चिमी पजाब पाकिस्तान मे है । इसी वर्ष घोर वर्षा के कारण काश्मीर मे कृषि नष्ट हो गयी । अकाल पडा । मुहम्मद प्रथम मालवा ने कछवार पर आक्रमण किया तथा करहार ले लिया ।

सन् १४६९ ई० मे महमूद प्रथम मालवा की मृत्यु हुई तथा गयासुद्दीन ने राज्य प्राप्त किया । महमूद बहमनी तृतीय पुन अधिकार स्थापित करने के लिये महमूद गवाल ने कोकन पर सैनिक अभियान किया । लद्दाख का इस समय राजा ब्लो-ग्रोस-मकोग ल्देन था ।

सन् १४७० ई० मे बडशाह जैनुल आबदीन की मृत्यु हुई तथा हैदर शाह सुलतान बना ।

पाद-टिप्पणी :

७५४ (१) नीति : मिर्जा हैदर लिखता है—'सिकन्दर का पुत्र जैनुल आबदीन उसका उत्तराधिकारी हुआ । उसने ५० वर्ष राज्य किया । उसने सुशोभित भुवन रचनाओ द्वारा काश्मीर को भर दिया । विश्व के समस्त राष्ट्रो को जैसे व्यंग करते बुतपरस्ती तथा इसलाम की ओर ध्यान नही दिया । उसके राज्य-काल मे काश्मीर (श्रीनगर) एक शहर हुआ । जो आज तक है, (तारीखे रशीदी : पृष्ठ ४२३) ।

जैनुल आबदीन की नीति की प्रशसा सहिष्णु, उदार तथा धर्मनिरपेक्ष नीति पसन्द मुसलिम तथा अन्य इतिहासकारो ने की है । परन्तु मुसलिम सम्प्रदायवादी एव कट्टर लेखको ने सराहना नही की है । मिर्जा हैदर दुगलात ने काश्मीर विजय किया था । मुगल राज्य सस्थापक बाबर बादशाह का मौसिरा भाई था । स्वय लेखक था । जैनुल आबदीन की नीति की प्रशसा एक कट्टर मुसलिम होने के कारण नही कर सका ।

पाद टिप्पणी :

७५५ (१) नवीन : विदेशी शासक रिंचन ने सन् १३२० ई० तथा जैनुल आबदीन ने ठीक सौ वर्ष पश्चात् सन् १४२० ई० में शासनसूत्र लिया । एक शताब्दी मे काश्मीर के सामाजिक, राजनीतिक एवं

परस्पराधिकं शत्रुञ्जयद्भिर्दुर्जयानपि ।
शस्त्रैर्मन्त्रा जितास्तस्य मन्त्रैः शस्त्राणि च प्रभोः॥ ७५६ ॥

७५६ एक दूसरे की अपेक्षा अधिक दुर्जय शत्रु विजय कारी उस राजा के शस्त्रों[1] ने मन्त्रों को तथा मन्त्रों ने शस्त्रों को जीत लिया।

कान्त्याङ्गं वदनं वाचा श्रियोरः क्षमया मनः ।
श्रितं पश्यन्त्यगाद् दूरं कीर्तिरीर्ष्यावशादिव ॥ ७५७ ॥

७५७ कान्ति को अंग के, वाणी को वदन के, श्री को वक्षस्थल के, क्षमा को मन के, आश्रित हुआ देखकर, ही मानों की कीर्ति ईर्ष्यावश दूर (तक) चली (फैल) गयी।

धार्मिक जीवन मे आमूल परिवर्तन हो गया था। इस काल मे हिन्दू लोग मुसलिम सत्ता, उनके धर्म प्रचार, उनके अत्याचार आदि का प्रतिरोध करते नहीं दिखायी देते। वे क्षयरोगी तुल्य क्षीण होते गये। गिरे तो गिरते ही गये। उठ नही सके। उन्हें कोई उठाने वाला भी काश्मीर मे जन्म नही लिया। धर्म परिवर्तन साधारण बात हो गयी थी। हिन्दू से मुसलिम बनना फैशन हो गया था। सन् १९६५ ई० मे काश्मीर में कितने ही ब्राह्मण युवक मुसलिम इसलिये हो गये कि उन्हें कालेजों मे प्रवेश नही मिल सका था। इसी प्रकार हिन्दू लड़कियो ने मुसलिम अधिकारियो से विवाह कर लिया। दो-चार को मैंने अपनी काश्मीरयात्रा म देखा कि नौकरी के लिये वे मुसलिम धर्म मे दीक्षित हो गये थे। कोटा रानी के पश्चात् कभी कोई शक्ति काश्मीर मे उदय नही हुई, जो काश्मीर में काश्मीरियो का राज्य पुन स्थापित करने का प्रयत्न करती।

एक शताब्दी के ताडन, उत्पाटन, दमन के पश्चात् जैनुल आबदीन के काल मे शक्ति पुन लौटी। हिन्दू शेष रह नहीं गये थे, अतएव मुसलिम शासको को मुसलमानों से खतरा था। मुसलिम सामन्त राजाओं के उलटने-पलटने में सक्रिय भाग लेते थे।

हिन्दू नगण्य थे। अल्पसंख्यक सर्वदा शक्तिशाली, न्यायप्रिय राजा एव उदार शासन पसन्द करते हैं। उन्हें सुरक्षा का विश्वास होता है। जैनुल आबदीन ज्येष्ठ भ्राता को हटाकर सुलतान बना था। ज्येष्ठ भ्राता के समर्थक काश्मीर मे थे। कुछ महत्वाकांक्षी भी शक्ति के साथ दलबदल करने के लिये उद्यत रहते थे। ऐसी परिस्थिति मे अल्पसंख्यक हिन्दुओ का पूरा समर्थन प्राप्त करने का प्रयास जैनुल आबदीन ने किया। उसने षड्यन्त्रकारी नव एवं विदेशी मुसलिमो की अपेक्षा हिन्दुओ का विश्वास प्राप्त कर अपनी शक्ति दृढ करने का प्रयास किया। भारत मे सम्राट अकबर ने भी कालान्तर में यही किया। परिणाम अवश्यभावी था। दोनो ने अर्ध शताब्दी तक शान्तिपूर्वक शासन किया। उनके राज्य मे सुख एव समृद्धि पुन. लौट आयी।

पाद-टिप्पणी :

७५६ (१) शस्त्र एव मन्त्र : जैनुल आबदीन ने नीतिपूर्वक शासन आरम्भ किया। षड्यन्त्रो का काश्मीर मे जोर था। हिन्दू काल मे यही हुआ था। मुसलिम काल मे भी यही होने लगा। जैनुल आबदीन ने षड्यन्त्रकारियो को शक्ति से पराजित किया। इसी प्रकार जहाँ शत्रु शक्तिशाली था वहाँ भेदनीति एव राजनीतिक षड्यन्त्रो का आश्रय लेकर शत्रु का नाश कर दिया।

राजतंत्र मे इन दोनो (शस्त्र-मन्त्र) का उल्लेख षाड्गुण्य मे किया गया है। द्रष्टव्य : टिप्पणी : श्लोक : ३६०।

राज्ञः कलिदशामध्ये धर्म्या साम्राज्यपद्धतिः।
अन्तर्दशेव शुशुभे शुभा कृतयुगस्य सा ॥ ७५८ ॥

७५८ कालि दशा[1] के मध्य मे राजा की धर्म संगत[2] साम्राज्य पद्धति सत्ययुग[3] की शुभ अन्तर्दशा सदृश सुशोभित हुयी।

भोगे सखा नये मन्त्री विवेक्ता शास्त्रनिर्णये।
श्रीमहम्मदखानोऽभूत् कश्मीरेन्द्रस्य सोदरः ॥ ७५९ ॥

७५९ काश्मीरेन्द्र का सहोदर श्री महम्मद खान[1] भोग में सखा नय मे मन्त्री, शास्त्र निर्णय मे विवेक्ता हुआ।

पाद टिप्पणी :

७५८. (१) कलिदशा = भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी रविवार, अश्लेषा नक्षत्र, व्यतीपात योग, अर्धरात्रि काल, मिथुन लग्न मे कलियुग का जन्म हुआ था (विष्णुपुराण : अंश ४ : अ० : २४ : ११०–११३)। भागवतपुराण के अनुसार भगवान कृष्ण के स्वर्गारोहण दिवस से कलियुग आरम्भ होता है। इस युग मे केवल कल्कि नामक एक अवतार होगा। इस समय कलिगताब्द ५०७१, सप्तर्षि ५०४६, विक्रम सम्वत् २०२७, शक १८९२, सन् १९७० ई०, हिजरी १३८९–१३९०, फसली, १३७७–१३८८ है। कलियुग का मान वर्ष ४३२००० है। सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। उसके २८ वें महायुग के कलियुग का प्रथम चरण सन्धि मे है। कल्कि अवतार कलियुग की आयु ८२१ वर्ष शेष रहेगा तो सम्भल ग्राम मे विष्णुयश ब्राह्मण के गृह मे होगा। शास्त्रीय धारणा के अनुसार इस मन्वन्तर के अवतार बुद्ध नही वामन हैं। सप्तर्षि—(१) अत्रि, (२) कश्यप, (३) गौतम, (४) जमदग्नि, (५) भरद्वाज, (६) वशिष्ठ एवं (७) विश्वामित्र हैं। इस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम उर्वस्विन् किंवा महाबल है। कलि पिशाच-वदन है, क्रूर है। कलि कलहप्रिय है। धर्म के चारों चरण मे केवल एक चरण शेष रह जायगा। गायों का दूध कम हो जायगा। मृण्मय तथा ताम्र पात्रों का प्रचलन होगा। ब्राह्मण वेद, ज्ञान, तप, मर्यादि से शून्य हो जायँगे। क्षत्रिय क्षात्रधर्म भूल जायँगे। वैश्य व्यापार मे असत्य आचरण करेंगे। शूद्र पाखण्डी होंगे, उच्च वर्ण को शिक्षा देंगे। वर्णसंकरत्व का जोर बढेगा। धूर्त पूजित होंगे। कुकर्मों की वृद्धि होगी। व्यभिचारिणी स्त्रियाँ अपने को सती कहेंगी। पिता कन्या विक्रय करेंगे। सन्तानों का माता पिता के साथ सकारण स्नेह रहेगा। राज्य व्यवस्था धर्म शून्य होगी। इस युग का तीर्थ हरिद्वार है।

(२) धर्मसंगत : सुलतान की नीति धार्मिक होते भी हिन्दू धर्म विरोधी नही थी। जैनुल आबदीन अपने धर्म पर विश्वास और हिन्दूधर्म का आदर करता था।

(३) सत्ययुग : कार्तिक शुक्ल नवमी बुधवार के प्रथम प्रहर, श्रवण नक्षत्र, वृद्धि योग मे सतयुग का जन्म हुआ था। सत्ययुग के मत्स्य, कच्छप, वाराह एवं नृसिंह अवतार है। सत्ययुग का काल १७,२८,००० मान वर्ष है। इस युग मे धर्म अपने चारों चरणो पर स्थित था। गायें कामधेनु तुल्य थीं। स्वर्ण के पात्र थे। रत्नों का व्यवहार मुद्रा के लिये होता था। इच्छित वर्षा होती थी। एक बार बोने पर २१ बार फसल काटी जाती थी। ब्राह्मण चारों वेदों मे पारगत, सत्यवक्ता तथा धर्मपरायण होते थे। उनमे शाप एवं वरदान देने की शक्ति थी। स्त्रियाँ पद्मिनी होती थीं। पतिव्रता होती थीं। वैश्य सत्यवक्ता थे। शूद्र सेवाधर्म मे रत रहते थे। इस युग का तीर्थ पुष्कर था।

पाद-टिप्पणी :

७५९. (१) मुहम्मद खां : बड़शाह जैनुल आबदीन ने अपने कनिष्ठ भ्राता महम्मद खां को

किमन्यद् राज्यमेवासीच्छत्रचामरवर्जितम् ।
श्रीमहम्मदखानस्य कश्मीरेन्द्रप्रभावतः ॥ ७६० ॥

७६० काश्मीरेन्द्र के प्रभाव से श्री महम्मद खान का केवल छत्र चामर[1] रहित राज्य था ।

अपना मन्त्री बनाया । उस पर उसे पूरा विश्वास था । दोनो का यह पारस्परिक विश्वास अन्त तक बना रहा । महम्मद खा का चरित्र निर्मल है । उसने कभी राज्य की कामना नही की । श्लोक ५८७ मे जोनराज ने जन्मकाल समय मे उसे मह्मद लिखा है । यह जैनुल आबदीन का सहोदर भ्राता उसी श्लोक से प्रकट होता है । यहाँ भी उसे सहोदर भ्राता कहा गया है । श्लोक ९६६ जहाँ उसकी मृत्यु का वर्णन किया गया है, वहाँ उसे मह्मद खा लिखा है । महम्मद एव मुह्मद नाम एक ही व्यक्ति के लिये प्रयोग किया गया है । जन्म एव मृत्यु के समय मह्मद लिखा गया है और उक्त श्लोक मे महम्मद के साथ सहोदर लिखकर शका के लिये जोनराज ने स्थान नही छोडा है ।

तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—'उसने अपने छोटे भाई मुहम्मद खा को अपना परामर्श दाता बनाकर समस्त प्रब ध उसे सौंप दिया । (उ० तै० भा० २ ५१६) ।'

पाद टिप्पणी

७६० (१) छत्र चामर हिन्दुओ का राजचिह्न छत्र एव चामर है । राजकीय अधिकार के रूप मे छत्र किंवा छाता राजा पर लगता है । उस पर चमर ढुरता है । मनु ने छत्र राजा का चिह्न माना है (मनु० ७ ९६) । सुलतान जैनुल आबदीन छत्र एव चामर युक्त औपचारिक राजा था । राज मर्यादा एव प्रभुसत्तासम्पन्न चिह्न छत्र सुलतान पर लगता था । परन्तु वास्तविक राजा छत्र एव चामरहीन महम्मद खा ही था । छत्रभग का तात्पर्य राज्यच्युत होना होता है ।

भारत मे मुसलमान बादशाहो ने हिन्दु राजाओ की अनेक परम्पराओ को स्वीकार कर लिया था । मध्ययुगीन मुसलिम बादशाहो के सिंहासनो पर छत्र तथा पीछे अथवा पार्श्व मे खडे मुसाहबो के हाथो मे चमर चित्रित दिखाया गया है । बादशाह के हाथी, घोडा या पैदल बाहर निकलने के समय भी छत्र उन पर लगता था । छत्र की छाया मे वे चलते थे । साथ ही एक सेवक चमर ढुराता चलता था । छत्र किंवा छाता से धूप की रक्षा होती थी । चमर से मक्खी मच्छर, फतिंगे आदि उडा दिये जाते थे । चामरधारिणी स्त्रियाँ भी होती थीं । हिन्दूओं मे चामरधारिणी स्त्रियो का बहुत महत्व था । बादशाह महल मे जाता था तो स्त्रियाँ छत्र लगाती थी ।

कालिदास ने भी यही वर्णन किया है—अदेयमासीत् त्रयमेव भूपते शशिप्रभ छत्रमुभे च चामरे (रघुवश ३ १६, द्रष्टव्य कुमारसम्भव . ४२, हितोपदेश २ २९, मेघदूत ३५) ।

मुसलिम बादशाहो के चित्रो के पृष्ठभाग मे चामरग्राह एव ग्राहिणी चित्रित रहते हैं । यह भर्तृहरि के वर्णन से मिलता है—पृष्ठे लीलावलयरणित चामरग्राहिणीना—(भर्तृहरि शतक ३ ११) ।

बिल्हण छत्र के रगो का वर्णन करता है । श्वेत छत्र सरस्वती पर, नील छत्र लक्ष्मी तथा काला छत्र कवियो पर लगाया जाता था । राजा का छत्र विविध रगो एव सुवर्ण वर्ण का प्राय होता था ।

पचाग प्रासाद मे एक छत्र है । छत्र एव चामर राजचिह्न हैं ।

काश्मीर मे छत्र और चामर सुलतान के अतिरिक्त और कोई नही लगा सकता था । यह हिन्दू राजाओ के अहद मे शाही अख्तियार के निशान थे और सुलतानों ने उन्हें बरकरार रखा (बहारिस्तान शाही पाण्डु० ४८ बी०) ।

वसन्त इव कामस्य भूपतेरभवत् सदा।
खुःखुराधिप्रतिस्तस्य भृत्येष्वभ्यधिकप्रियः ॥ ७६१ ॥

७६१ काम को वसन्त तुल्य उस राजा को भृत्यों में खुःखराधिपति[1] अधिक प्रिय था।

दुर्व्यवस्थां निवार्याहं देशेऽस्मिन् म्लेच्छनाशिते।
इति राज्यपरिप्राप्तिफलं यावदचिन्तयत् ॥ ७६२ ॥

७६२ 'म्लेच्छ नाशित इस देश की दुर्व्यवस्था[1] निवारित करूँ,'—इस प्रकार अपने राज्य प्राप्ति का फल जबकि वह सोच रहा था—

पाद-टिप्पणी :

७६१. (१) खुःखराधिपति : जसरथ से अभिप्राय है। जसरथ के कारण जैनुल आबदीन ने राज्य प्राप्त किया था। स्वाभाविक था कि वह उसपर अपेक्षाकृत अधिक स्नेह प्रदर्शित कर उसके ऋण से उऋण होने का प्रयास करता।

लिखा जा चुका है कि जसरथ बडा शक्तिशाली था। वह दिल्ली के बादशाहो, पर्वतीय राजाओं तथा पंजाब मे सूबेदारो से प्रायः जीवन पर्यन्त युद्ध करता रहा। जोनराज का यह लिखना उचित नही मालूम होता कि जसरथ उसका भृत्य था। जसरथ स्वयं शक्तिशाली था। दिल्ली, मुलतान, लाहौर तक आक्रमण करता था।

यहिया सिरहिन्द (तारीख मुबारकशाही १९४–१९९); बदायूनी (मुन्तख–उत्तवारीख १ : २८९–२९०,२९६ ३०४, तबकाते अकबरी ३ : ४३५), आइने अकबरी (जरेट : २ : ३८८) से प्रकट होता है कि दिल्ली की राज्यप्राप्ति के लिये जसरथ को काश्मीर से सहायता मिलती थी और उसके कारण वह अपनी सैनिकशक्ति मजबूत करता रहता था।

पाद-टिप्पणी :

७६२. (१) दुर्व्यवस्था : जैनुल आबदीन ने अल्पसंख्यक हिन्दुओं की रक्षा का भार उठाया। उसे विश्वास था। इस नीति से हिन्दू जो जागरूक हो रहे थे, जिनमे नवीन चेतना तथा बलिदान की भावना उठ रही थी, उसका समर्थन करेंगे। मुसलमानो ने हिन्दुओ को उत्पाटित किया था। असहिष्णुता की भेरी फूँकी थी। बडशाह ने अकबर के समान सहिष्णुता की नीति का वरण किया। धर्मभीरु मुसलमान होते हुए भी उसने सिकन्दर एवं अलीशाह के विपरीत नीति अपनाई। इसके दो परिणाम हुए। प्रथम उसे अपना राज्य सिंहासन सुरक्षित रखने मे हिन्दुओ का निष्कपट, सक्रिय सहयोग मिला। बडशाह ने प्रतिक्रियावादियों के विरुद्ध एक शक्ति खडी कर दी। जो स्वार्थ एवं स्वहित की भावना से सचेत हो उठे थे। दूसरा परिणाम यह हुआ कि जो जनता राजाओ के रहने या जाने मे निरपेक्ष थी, उसने राज्यशासन मे रुचि लेना आरम्भ किया। जनता की शक्ति, सामन्तो की शक्ति, कुलीन वर्गों की शक्तिस्रोत प्रवाह के लिये उपयोग के लिये मार्ग प्रशस्त हो गया। काश्मीर की कलात्मक, सृजनात्मक, रचनात्मक जो, शक्ति विशृंखलित हो गयी थी, उसका योजित किया। हिन्दुओ की क्रियात्मक शक्ति जागृत कर राज्य तथा काश्मीर की उन्नति मे लगाने का प्रयास किया। निःसन्देह शताब्दियो पश्चात् काश्मीर की दुर्व्यवस्था समाप्त होकर, एक व्यवस्थित, सुनियोजित शैली से कार्य होने लगा। काश्मीर भी समृद्धिशाली देश बनने लगा। लूट-पाट के स्थान पर लोग कामों मे लग गये। केवल धर्म के नाम पर, कट्टरता के नाम पर, मुसलिम जनता को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने की नीति समाप्त हो गयी। वह एक चरण था, जो दुखान्त था। समाप्त हो चुका था।

तावद् द्रोहोचितं कर्म द्रोग्धारो राजवल्लभैः ।
अपृष्ट्वैव महीपालं नीता वीतभयैः स्फुटम् ॥ ७६३ ॥

७६३ उसी समय निर्भय राज-प्रिय लोगों ने बिना राजा का आदेश प्राप्त किये, द्रोहियों को द्रोहोचित दण्ड[1] दिया ।

यशो दिशि श्रियं साधौ सुखं लोकेषु रोपयन् ।
व्यधात् प्रक्रमभङ्गं तं यच्छत्रूनुदमूलयत् ॥ ७६४ ॥

७६४ दिशा में यश, साधु में श्री, लोगों में सुख, आरोपित करते हुए, जो कि शत्रुओं का उन्मूलन कर दिया वह उसका क्रम भंग हो गया ।

एकान्ता तिग्मता भानोर्म्रदिमा शशिनः पुनः ।
स द्वौ जेतुमिवापुष्यत् तत्संसर्गमयीं श्रियम् ॥ ७६५ ॥

७६५ सूर्य अति तीक्ष्ण होता है, और चन्द्रमा अति मृदु, वह राजा इन दोनों को विजित कर लेने के लिये ही (तीक्ष्णता-मृदुता युक्त) तत्समन्वित शोभा को प्राप्त किया ।

असङ्ख्यानत्र सङ्क्षिप्ते तद्गुणान् वर्णयामि किम् ।
सृगालानां गुहामध्ये कथं हस्तिपतिर्वसेत् ॥ ७६६ ॥

७६६ यहा संक्षेप में उसके असंख्य गुणोंका वर्णन कैसे करूँ ? शृगालों के गुहा मध्य हस्तिपति कैसे रह सकता है ?

तस्माच्छैलेन्द्रवच्चित्रे मुकुरे सूर्यबिम्बवत् ।
न्यस्यामि तद्गुणाख्यानमत्र चित्ते त्रिलोकवत् ॥ ७६७ ॥

७६७ अतएव चित्र में शैलेन्द्रवत्[1] दर्पण में सूर्य बिम्बवत, चित्त में त्रिलोकवत्[2] यहाँ पर उसका गुणाख्यान है ।

पाद-टिप्पणी :

७६३. (१) दण्ड : जोनराज के इस वर्णन से आभास मिलता है कि जैनुल आबदीन जनप्रिय हो गया था । उसने जनता का विश्वास प्राप्त कर लिया था । दूसरों पर विश्वास करता था, दूसरे उस पर विश्वास करते थे । विश्वास के इस वातावरण मे, जनहित में, जनता तथा सुलतान के समर्थको ने समाज-उत्पीडक, द्रोहियो को स्वयं दण्ड देना आरम्भ किया । सिकन्दर तथा अलीशाह के समय की रक्त-रंजित सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक क्रान्ति के स्थान पर एक दूसरी क्रान्ति काश्मीर मे विकसित होने लगी । उस क्रान्ति का नाम सर्वतोमुखी विकास था । राजसत्ता सैनिकशक्ति पर नही, जनता के प्रेम, स्नेह एवं नैतिक बल पर, आधारित हो गयी । जनता का विश्वास एवं शक्ति भारतीय सम्राट् अकबर एवं काश्मीर राजा जैनुल आबदीन की अमोघ शक्ति थी, जिसके कारण समृद्धि एवं विकास अराजकता के पश्चात् लौट आए थे ।

पाद-टिप्पणी :

७६७. (१) शैलेन्द्र : हिमालय : जापान में फूजीयामा का चित्र खींचने की अत्यधिक शैली एवं कलात्मक रुचि है । जापानी कभी उसे चित्रित करते

शीतोष्णयोरिवोर्जादौ विषुवेऽहर्निशोरिव ।
तस्य मानोऽभवत्तुल्यः स्वे परे चाऽपि दर्शने ॥ ७६८ ॥

७६८ कार्तिक के आदि मे शीत एव उष्णता सदृश, विषुवत्[1] पर, सूर्य के आने के समय दिन एव रात्रि सदृश, उसकी दृष्टि अपने और इतरों पर बराबर होती थी ।

राजा वणिगिवात्यर्थ तुलायाः पुटयोरिव ।
साम्यभङ्गं दर्शनयोर्नाक्षमिष्ट कथश्चन ॥ ७६९ ॥

७६९ वणिक् के तुलापुटों[1] (पलडों) के समान वह राजा देखने मे कही किसी प्रकार साम्य भग नहीं किया ।

थकते नही । इसी प्रकार भारत मे हिमालय का चित्र अनादि काल से कलात्मक दृष्टि से बनता रहा है और रहेगा ।

(२) त्रिलोकवत् : पृथ्वी, अतरिक्ष तथा द्युलोक त्रिलोक हैं । उपनिषद् केवल इहलोक एव परलोक मानता है । निरुक्त उक्त तीनो लोको की मान्यता देता है । कालान्तर मे सप्तलोक की कल्पना की गयी । वे भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक एव सत्यलोक हैं । सात पाताल लोक की भी कल्पना की गयी—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, एव पाताल ।

इस प्रकार चौदह लोक बन गये । शामी दर्शन अर्थात यहूदी ईसाई एव मुसलिम दर्शन के अनुसार सात आसमान माना गया है । सातवे आसमान पर देवता निवास करते हैं ।

जोनराज को योगवासिष्ठ का ज्ञान था । जैनुल आबदीन ने स्वय योगवासिष्ठ का अध्ययन किया था । उसका अनुवाद भी फारसी म कराया था । उसने एक पुस्तक भी 'शिकायत' लिखी थी। जोनराज यहाँ पर योगवासिष्ठ वर्णित 'चित्तोपाख्यान' की ओर संकेत करता है (योगवासिष्ठ रामायण उत्पत्ति प्रकरण सर्ग ९८–९९, योगवासिष्ठ कथा १८५–१९१) ।

राजकवि किंवा दरबारी कवि जोनराज अलीशाह तथा जैनुल आबदीन के समय की घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शी था। वह दरबारी कवितुल्य जैनुल आबदीन के साधारण गुणो को भी असाधारण गुण रूप से वर्णन करता है । जोनराज लगभग ४० वर्षों तक जैनुल आबदीन के राजकार्य का प्रत्यक्षद्रष्टा था । उसने जो देखा, उसे लिखा है । उसका कथन प्रमाणिक माना जायगा ।

पाद टिप्पणी

७६८ (१) विषुवत् : ध्रुव को केन्द्र मानकर ९० अश व्यासार्ध से जो वृत्त बनता है, उसका नाम नाडी मण्डल और उसका धरातल विषुवत् रेखा है । विषुवत् को भूमध्यरेखा किंवा इक्वेटर कहते है । वर्ष मे दो—सपात वसत तथा शरद होता है । वसत-सपात २२ मार्च तथा शरद सपात २३ सितम्बर को होता है । रवि के तुला प्रवेश कार्तिक मे, शरद-सपात तथा मेष प्रवेश मे वसत सपात होता है । उक्त दिवसो पर दिन एव रात्रि समान होती हैं । इस समय विषुवत् रेखा पर सूर्य आ जाता है । द्रष्टव्य = टिप्पणी श्लोक ४६५ ।

पाद टिप्पणी

७६९ (१) तुला : तराजू से न्याय की तुलना की जाती है । मुसलिम काल म राष्ट्रचिह्न तुला तथा तलवार था । उलटी तलवार की नोक पर तुला का मध्य भाग तथा तलवार के दोनो तरफ पलडे झूलते रहते थे । पलडो मे साम्यता रहती थी । दिल्ली के लाल किला म सगमरमर की जाली मध्य यह राजचिह्न काट कर बनाया गया है । पुरानी

शान्ते सिद्धाश्रमे सिंहैर्मृगा इव न पीडिताः ।
तुरुष्कैः पुष्कलभयैर्ब्राह्मणाः पूर्ववत्तदा ॥ ७७० ॥

७७० उस समय पूर्व के समान अति भीत तुरुकों द्वारा ब्राह्मण[1] उसी प्रकार पीडित नहीं किये गये, जिस प्रकार शान्त सिद्धाश्रम[2] में सिंह द्वारा मृग ।

दोपाकरेण सूहेन येषां सङ्कोचिता स्थितिः ।
व्यकासयत्ततो भास्वान् गुणिनस्तान् महीपतिः ॥ ७७१ ॥

७७१ दोपाकर[1] सूह द्वारा जिनकी स्थिति सकुचित कर दी गयी थी, उन्हे गुणी भास्वान् महीपति ने विकसित किया ।

पुस्तको मे भी तुला एव तलवार समन्वित राजचिह्न मुसलिम बादशाहो एव सुल्तानो का मिलता है । जिसे न्याय का प्रतीक माना जाता है । जोनराज इसी ओर सकेत करता है ।

पाद टिप्पणी

७७० (१) ब्राह्मण जोनराज इस काल का प्रत्यक्षदर्शी है । ठीक कहता है । बडशाह की नीति के कारण मुसलमान ब्राह्मणो को त्रस्त नही कर सके । धर्म सस्कृति एव सभ्यता खतरे म हैं, उद्घोषी स्वत तिरोहित हो गये । पीडित ब्राह्मणो ने सुखनिद्रा, शान्ति एव स्थिरता का अनुभव किया । तुरुष्क शब्द महत्वपूर्ण है । उसमे यवन अर्थात् गैर काश्मीरी एव काश्मीरी दोनो वर्गों के मुसलमानो का समावेश हो जाता है । तुरुष्कदर्शन शब्द का प्रयोग इसे और स्पष्ट कर देता है । तुरुष्कदर्शन का अर्थ मुसलमान धर्म है । धर्म शब्द का प्रयोग न कर जोनराज ने दर्शन शब्द का प्रयोग किया है (श्लोक ६७०) ।

इस समय ब्राह्मण जो देश त्याग कर चले गये थे उन्हे भी बाहर से बुला कर काश्मीर मे आबाद करन का सुलतान ने प्रयास किया । ब्राह्मणो मे दो वर्ग बन गये । उनका नाम मलमासी तथा वनवासी पड गया । यह भेद अब तक प्रचलित है । प्रत्येक ढाई वर्ष के पश्चात् जब अधिक मास लगता है तो उस समय दो फाल्गुन मास मे कृष्ण त्रयोदशी पड जाती है । उस समय दो शिवरात्रियाँ पडती हैं । मलमासी लोग पहली शिवरात्रि मानते हैं । दूसरी शिवरात्रि बनवासी मानते हैं ।

(२) आश्रम जोनराज श्लोक ७६९ में राजा के न्याय की तुलना तुला से देन के पश्चात् न्याय के प्रभाव का वर्णन करता है । राजा के न्याय के कारण ब्राह्मण पीडित नहीं किये गये । यही नही, उसका राज्य ऋषि के आश्रम के समान था, जहाँ सिंह, मृग, पशु, पक्षी, भक्षक, भक्षी, सब एक समान निर्भीक निवास करते थे । जोनराज सुलतान का शासन काल और वहाँ के लोगो के जीवन की तुलना ऋषियो के आश्रम से करता है । जहाँ निर्भय प्राणी सत्वगुणी भावना से विचरते और निवास करते हैं । जोनराज के सम्मुख ये पद लिखते समय महाभारत, रामायण तथा कालिदास वर्णित आश्रम का सुन्दर काल्पनिक रूप था ।

पाद टिप्पणी

७७१ (१) दोपाकर यह शब्द यहाँ श्लिष्ट है । उसके अनुसार निम्नलिखित अर्थ ध्वनित होता है

'निशाकर चन्द्रमा द्वारा सकोचित कमल को जिस प्रकार सूर्य विकसित कर देता है, उसी प्रकार दोषयुक्त सूह द्वारा सकोचित गुणी ब्राह्मणो को राजा ने विकसित किया ।

दोपाकर का अर्थ दोषो का आकर या खान तथा दोषा अर्थात् रात्रि करने वाला, चन्द्रमा होता है ।

रन्ध्रैरधोगतिं प्राप्ता कुल्येवोद्धृत्य भूभुजा।
विद्या प्रवाहिता तेन गुणिना गुणरागिणा ॥ ७७२ ॥

७७२ रन्ध्रों के कारण अधोगति प्राप्त कुल्या सदृश उद्धार कर गुणप्रेमी गुणी उस राजा ने विद्या[1] को प्रवाहित किया।

पाद-टिप्पणी :

७७२. (१) विद्याप्रवाह : सुलतान विद्याप्रेमी एवं गुणियों का पारखी था, उनका संरक्षक था। उसके समय काश्मीर में फारसी भाषा की आशातीत उन्नति हुई। जैनुल आबदीन के समय फारसी काश्मीर में घर-घर प्रवेश करने लगी। संस्कृत का स्थान उसने ले लिया। तथापि संस्कृत का पठन-पाठन संकुचित सीमा में चलता रहा। अत्यधिक आबादी मुसलमान हो गयी थी। अतएव जनता का अरबी तथा फारसी की शिक्षा पर विशेष ध्यान आकर्षित हुआ। सुलतान स्वयं भाषा, तिब्बती, फारसी में योग्यता रखता था (नारायण कौल : पाण्डु० : ७१ ए०)।

मुल्ला, मौलवियों तथा विद्वानों को जागीरें उनके भरण-पोषण के लिए दी गई। उनके रहने का प्रबन्ध नौशहर में किया गया था (बहारिस्तान शाही : पाण्डु : ४६ बी० ४७ ए)।

राज-संरक्षण एवं सहायता के कारण परशियन विद्वान काश्मीर में प्रवेश कर राज्य प्रश्रय पाने लगे। उनमें सैय्यद मुहम्मद रूमी, काजी सैय्यद अली शिराजी, सैय्यद मुहम्मद नूरिस्तानी, सैय्यद मुहम्मद सीस्तानी, आदि अपने देशों को त्यागकर काश्मीर में निवास करने लगे थे (बहारिस्तान शाही : पाण्डु : ४८ बी०–५६ ए०)। सिन्ध से आगत काजी जमाल को सुलतान ने काजी का पद दिया था। मौलाना कबीर सुलतान के शिक्षक थे। वह ज्ञानार्जन के लिये हेरात चले गये थे। सुलतान से उन्हें बुलाकर शेखुल इसलाम बनाया। मुल्ला नादरी तथा मुल्ला फतही सुलतान के दरबारी कवि थे। मुल्ला अहमद तथा नादरी ने काश्मीर का इतिहास लिखा था। (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : ५६ए०)। इनके अतिरिक्त मुल्ला पारस बुखारी तथा सैय्यद मुहम्मद मदाइन थे।

हिन्दुओं में जोनराज एवं श्रीवर (जैन : ४ : ३८) मुख्य राज्यकवि थे। योधभट्ट वैदिक विद्वान थे। उन्हें फिरदौसी का शाहनामा भी कण्ठस्थ था (म्युनिख : पाण्डु : ७२बी० ७३ ए०)। श्रीवर से पता चलता है कि योधभट्ट ने काश्मीरी भाषा में जैनप्रकाश लिखा था। उसमें सुलतान के राज्यकाल का वर्णन किया था। नोत्थ सोम दूसरे काश्मीरी कवि थे जिन्होंने काश्मीरी में जैनचरित काव्य लिखा था। उसमें सुलतान का जीवन तथा कार्यों का उल्लेख किया गया था (श्रीवर : ४ : ३७ म्युनिख : ७२ बी०)। भट्ट अवतार ने जैन-विलास की रचना की। उसमें सुलतान के वचनों एवं कथनों का उल्लेख था (श्रीवर : ४ : ३९)।

सुभाषितावली की भी रचना की गयी। उसमें लगभग ३५० कवियों की कविताओं का संग्रह था। जगद्धरभट्ट ने स्तुतिकुसुमाञ्जलि सन् १४५० ई० में लिखी।

साहित्य के अतिरिक्त तिब आदि पर भी ग्रन्थों की रचना की गयी। मन्सूरबिन मुहम्मद अपनी विद्या के पण्डित थे। सुलतान विद्वानों के संरक्षण एवं प्रश्रय के कारण उनका भी काश्मीर में प्रवेश हुआ था। उन्होंने चित्रमय मानवशरीर व्यवच्छेद विद्या पर तशरीह लिखा। उसे उसने तैमूरलंग के पौत्र मिरजा पीर मुहम्मद को समर्पित किया था। इसी प्रकार उन्होंने भैषज्यविज्ञान पर 'किफाये मुजाहिदिया' लिखकर सुलतान को समर्पित किया।

सुलतान ने अनुवाद विभाग भी स्थापित किया था। उसमें फारसी से संस्कृत तथा संस्कृत से फारसी ग्रन्थों का अनुवाद किया जाता था (म्युनिख :

पाण्डु० : ७३ए०)। महाभारत का फारसी मे अनुवाद किया गया (नारायण कौल : पाण्डु : ७१)। श्रीवर ने प्रसिद्ध कवि जामी के युसुफ जुलेखा का अनुवाद संस्कृत मे कथाकौतुक शीर्षक से किया था। यह कार्य १५०५ ई० मे श्रीवर ने समाप्त किया था। मुल्ला अहमद ने सुलतान के आदेश पर महाभारत तथा कल्हण की राजतरंगिणी का अनुवाद फारसी मे किया था (म्युनिख : पाण्डु : ७३ ए)।

मुझे काश्मीर के मुख्यमन्त्री श्री वख्शी गुलाम मुहम्मद ने बताया था कि कुरान शरीफ का अनुवाद भी सुलतान ने संस्कृत मे कराया था। परन्तु वह ग्रन्थ अप्राप्य है। सुलतान के समय शिक्षा तथा विद्या दोनो का प्रवाह अबाध गति से चलता रहा।

शिक्षा प्रसार के लिए सुलतान ने ठोस कदम उठाया था। मुल्ला कबीर को नोशहर के समीप विद्यालय खोलकर उसका कुलपति बनाया। यह स्थान सुलतान के राजप्रासाद के समीप था। वह भी कभी कभी मुल्ला का उपदेश तथा प्रवचन सुनने जाता था। उसने विद्यालय के व्यय तथा विद्यार्थियो की सहायता के लिये एक वक्फ बनाया था। उसका ट्रस्टी मुल्ला कबीर था (हसन : पाण्डु० ११९ बी० तथा हैदर मल्लिक : पाण्डु० ११९ बी०)। एक दूसरा स्थान और भी विद्या का केन्द्र हो गया था। वहाँ का कुलपति सेख इस्माइल कुबरवी था। वह सुलतान हसन शाह के राज्यकाल मे सेखुल इसलाम बनाया गया था। हेरात तथा अन्य विदेशो से विद्यार्थी उसके यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिये आते थे (वाकियाते काश्मीर : पाण्डु : ४१ ए०) इसलामाबाद के समीप सीर मे एक बडा मदरसा कायम किया गया था। मुल्ला गाजी खा वहाँ के आचार्य थे। इसलामाबाद वर्तमान अनन्तनाग है। सीर गाँव अनन्तनाग से ७ मील उत्तर-पूर्व है।

सियालकोट मे मदरासुतुल उलूम विद्या स्थान था। उसमें सुलतान ने ६ लाख रुपया दिया था तथा उसकी रानी ने अपना कण्ठहार दान कर दिया था (सूफी : २ : ३४८)। सुलतान ने अनेक छात्रावास आदि काश्मीर मण्डल मे स्थान-स्थान पर निर्माण कराया था। जहाँ विद्यार्थियो को मुफ्त निवास तथा भोजन मिलता था।

वास्तव मे सुलतान जैनुल आबदीन के समय अरबी तथा फारसी का प्रचार हुआ। संस्कृत पीछे हटती गयी। काश्मीर मे इसी काल मे इसलाम ने अपनी जड मजबूत की। इसलामिक संस्कृति एवं सभ्यता का प्रचार हुआ। इस समय तक संस्कृत एवं काश्मीरी भाषा ही मे सब कामकाज होता था। परन्तु उसका स्थान धीरे-धीरे फारसी ने लेना आरम्भ कर दिया था। सुलतान के पूर्व काश्मीर मे अरबी तथा परशियन की पुस्तकें नाम मात्र की थी। जनता मुसलमान हो जाने पर भी संस्कृतादि पुस्तको का अवलोकन करती थी। सुलतान ने विद्वानो को भारत, ईरान, ईराक, तुर्किस्तान मे अरबी तथा फारसी की पुस्तको के खरीदने के भेजा (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ५७ बी०, हसन : पाण्डु० १२० बी०; हैदर मल्लिक : पाण्डु : १२० ए०)। यदि पाण्डुलिपियो के स्वामी पुस्तक बेचने पर प्रस्तुत न होते थे तो उन्हे आदेश दिया गया कि मुहमागा द्रव्य देकर उनकी प्रतिलिपि करा ली जाय (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ४८ ए०)। श्रीवर के वर्णन से प्रकट होता है कि संस्कृत की पाण्डुलिपियाँ जो काश्मीर से बाहर चली गयी थीं उन्हे भी काश्मीर मे पुनः ले आने का प्रबन्ध किया गया। काश्मीर मे पाण्डुलिपियो का एक पुस्तकालय बन गया था। यह पुस्तकालय फतह शाह (सन १४८६ ई० १४९३ ई०) के समय तक वर्तमान था। किन्तु कालान्तर मे गृहयुद्ध तथा विदेशी आक्रमणों के कारण पुस्तकालय नष्ट हो गया (हसन : पाण्डु० १२० बी०, हैदर मल्लिक : पाण्डु० : १२० ए०)।

सुलतान स्वयं बहुभाषाविद् था। वह हिन्दी, सस्कृत, फारसी, तिब्बती, तथा काश्मीरी भाषा जानता था (म्युनिख : पाण्डु० ७३ ए०; तबकाते अकबरी ३ · ४)। सुलतान स्वयं कविता करता था। उसका तखल्लुस 'उतबी' था। (हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ४७;

दोषच्छेदकरो राजा क्रमाद्भिषगिवानलम् ।
कश्मीरेषु सदाचारमदीपयदुपक्रमैः ॥ ७७३ ॥

७७३ दोष नाशक राजा कश्मीर में उपक्रमों द्वारा क्रम से सदाचार[1] को उसी प्रकार प्रदीप्त किया जिस प्रकार (त्रिदोषवैषम्यनाशक) भिषग् (वैद्य) (चिकित्सा द्वारा) जठराग्नि[2] को ।

नारायण कौल पाण्डु०: ७१ ए०) वह पण्डितों से संस्कृत ग्रंथों को पढ़वा कर सुनता था । श्रीवर कवि जैन राजतरंगिणी का लेखक स्वयं सुलतान को योगवासिष्ठ, ब्रह्मदर्शन तथा संहितादि भाष्यों के साथ सुनाता था ।

सुलतान के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने स्वयं फारसी में दो ग्रंथों की रचना की थी । उनमें एक ग्रन्थ 'शिकायत' प्रसिद्ध है । वह योगवासिष्ठ दर्शन से अधिक प्रभावित था । उसकी प्रेरणा पर ही उसने 'शिकायत' की रचना की थी । सुल्तान फारसी में कविता भी करता था । सुलतान ने मुल्ला अहमद को दरबारी ईर्ष्यालु व्यक्तियों के कारण एक बार निकाल दिया । पखली पहुँचने पर मुल्ला अहमद ने कविता लिखकर भेजी । सुलतान उसे पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ । मुल्ला अहमद को पुनः कश्मीर मण्डल में प्रवेश की आज्ञा दी (नारायण कौल : पाण्डु० : ७१ बी०; हैदर मल्लिक पाण्डु० : ४७) ।

सुलतान के राज्य काल में बाणासुरवध तथा महानयप्रकाश शितश्रीकण्ठ ने लिखा था । कश्मीर में शिक्षा का प्रचार तथा विद्याध्ययन की वही शैली थी जो भारत तथा समीपवर्ती मुसलिम देशों में प्रचलित थी । मदरसा स्थापित किये जाते थे । इसे पुण्यकार्य मानकर उनके चलते रहने के लिये उन पर जागीर, गाँव आदि चढ़ाये जाते थे । खनखाह, मदरसों तथा मसजिदों में शिक्षकों के रखने तथा उनके भरण-पोषण का प्रबन्ध राज्य तथा सम्भ्रान्त सामन्तों की तरफ से था (असारि कुजस्सलिकीन : ११५ बी०, वाकयाते कश्मीर पाण्डु : ४१ ए०) । बालक ५ वर्ष का होते ही मदरसा में भेजा जाता था । वहाँ उसे अरबी लिपि, कुरान शरीफ पढ़ने के लिये सिखायी जाती थी (तजकिराये मुल्ला रैना, पाण्डु० ५११ बी०) । फिकह्, (विधिशास्त्र) हदीस, तफसीर की भी शिक्षा दी जाती थी । शारीरिक उन्नति के लिए सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी । भारत, हेरात, तुर्किस्तान से शिक्षा लेने विद्यार्थी आते थे (हैदर मल्लिक पाण्डु : ११८ : वाकयाते कश्मीर ४१ ए०) । शहाबुद्दीन पहला सुलतान था जिसने मदरसा खोला था (गोहरे आलम पाण्डु : ११० बी०; सैय्यद अली, तारीखे कश्मीर : १०, नवादिरुल अखबार : पाण्डु : २९ बी०) यद्यपि बोल नहीं सकता था ।

पाद टिप्पणी :

७७३. (१) सदाचार : जैनुल आबदीन स्वयं सदाचारी था । आचार पर जोर देता था । सदाचार कानून से नहीं फैलता । निजी जीवन तथा जीवन-निर्वाह-शैली जनता के मानस को प्रभावित करती है ।

सुलतान धार्मिक व्यक्ति था । वह अपने धार्मिक कर्तव्यों का पूर्णरूपेण पालन करता था; पाँच वक्त की नमाज पढ़ता था; रोजा रखता था, रोजा के समय मांस नहीं खाता था । श्रीवर लिखता है कि जब सुलतान मृत्युशय्या पर था तो उसके होंठ हिलते थे । अनुमान लगाया गया है कि मृत्युकाल में वह कलमा पढ़ रहा था ।

सुलतान जीवन में सर्वदा सूफियों, मौलवियों, मुल्लाओं, पण्डितों एवं राज्यकाल में सेखुल इसलाम से परामर्श करता था । सुलतान परिमित मात्रा में मद का सेवन करता था । उसने सदाचारी जीवन यापन किया था । और उस पर जोर देता था । उसने कभी दासता, स्त्री या वेश्या तथा एक समय तीन से अधिक स्त्री मुसलिम शरियत के अनुसार नहीं रखा ।

(२) जठराग्नि : पेट की वह अग्नि जो भोजन पचाती है । पित्त के न्यून एवं आधिक्य के कारण जठराग्नि का वर्गीकरण चार नामों से किया गया है—मंदाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, एवं समाग्नि । शरीर

अहङ्कारागदङ्कारो राजा प्रकृतिवृद्धये।
दर्शनानां स धातूनामिवोल्वणमशीशमत् ॥ ७७४ ॥

७७४ अहकार के अगदकार[1] (वैद्य) उस राजा ने प्रकृतिवृद्धि[2] के लिये धातुओं[3] के सदृश दर्शनों का उल्वण[4] (आधिक्य) शान्त कर दिया।

कलेर्धर्मेण बलिना मात्स्यन्यायाप्रवर्तनम्।
अष्टलोकेशतेजोंऽशधारणस्यास्य लक्षणम् ॥ ७७५ ॥

७७५ अष्ट लोकपालों[1] के तेजाशधारी राजा का लक्षण है सुदृढ़ धर्म द्वारा कलि का मात्स्य न्याय[2] दूर करना।

की वृद्धि, एव स्वास्थ्य के लिए वैद्य जठराग्नि को प्रदीप्त और पाचन क्रिया को ठीक कर, शरीर को शक्ति देता है। उसी प्रकार सुलतान ने राज्य की सदाचार वृद्धि कर राष्ट्र को बढ़ाया।

पाद-टिप्पणी :

७७४ (१) अगदकार विष उतारने वाले वैद्य को अगदंकार कहते हैं। अगदकार का दर्शन करते ही सर्प दंशित व्यक्ति का विष उतरने लगता है। विष का शमन हो जाता है।

(२) प्रकृतिवृद्धि भिषगो का मत है कि राजा मे अहकार उसकी प्रकृति वृद्धि के लिये लाभकारक है।

(३) धातु . विष शमनकारी औषधियाँ जैसे धातु को ठीक कर देती हैं, उसी प्रकार राजा के दर्शन से मन शान्त हो जाता है। धातु सात प्रकार की होती है—रस, रक्त, मास, मेद, मज्जा, अस्थि एव शुक्र। उनके साम्य होने पर धातुओं की प्रवलता किंवा वृद्धि शान्त हो जाती है।

७७४ (४) उल्वण धर्मों का अतिरेक काश्मीर म हो गया था। प्रत्येक बात धर्म की तुला पर तौली जाती थी। उसका स्वभाविक परिणाम गैर मुस्लिमो पर प्रत्यक्ष किंवा अप्रत्यक्षरूप से आघात होता था। साम्प्रदायिक भावना उग्र होती थी। मुसलिम धर्म म भी शिया, सुन्नी, सूफी आदि अनेक सम्प्रदायो का उदय काश्मीर मे हो गया था। हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदायो एव मत-मतान्तरो में बँटा था। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक वर्ग अपने सम्प्रदाय की मान्यता एव आधिक्य के लिये प्रयास करता था। जनता की मानसिक स्थिति एकागी हो गयी थी। धर्म एव सम्प्रदाय के इस बाढ मे सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था विश्रृखलित हो गयी थी। धर्म लोगो को खाना नही दे सकता। माली हालत अच्छी नही कर सकता था। हिन्दुओ से लूट, मन्दिरो एव मठो पर चढी सम्पत्तियों के जब्ती आदि से जो सम्पत्ति प्राप्ति हुई थी, वह लोग खा-पका चुके थे। हिन्दू रह नही गये थे। मुसलमान को मुसलिम धर्म के नाम पर, जिहाद के नाम पर लूटा नही जा सकता था।

काश्मीरियो की शक्ति का उपयोग नही हो रहा था। जैनुल आबदीन ने अपनी नीति से शक्ति-प्रवाह को रचनात्मक कार्यों की ओर मोड दिया। धार्मिक उन्माद, सकीर्णता एव सम्प्रदायो की बहुलता पर अकुश लगाया। यह अकुश शक्ति द्वारा नही बल्कि मानसिक था। मानसिक विचारधारा अपनी नीति से मोड दिया।

पाद टिप्पणी .

७७५ (१) अष्ट लोकपाल मूलत ४ थे। कालान्तर मे उनकी सख्या ८ हो गयी। प्रत्येक दिशाओ के एक-एक लोकपाल हैं। लोक मूलत ३ हैं। कालान्तर मे १४ लोक गिने जाने लगे। सप्त लोक की गणना बहुत कम की जाती है। इन लोको से लोकपाल को मिलाना असगत है।

राजा को पाँचवाँ लोकपाल कहा जाता है। चार लोकपाल चारो दिशाओ के इस परिप्रेक्ष्य मे माने गये है। मूलत चार लोकपालो मे यम–दक्षिण, दिशा, वरुण–पश्चिम दिशा, कुबेर–उत्तर दिशा तथा वासव–पूर्व दिशा के है। राजा को मध्यम लोकपाल कहा जाता था। मध्यम का यहाँ अर्थ पृथ्वी है। ऊपर स्वर्ग, नीचे पाताल और मध्य में पृथ्वी है। पृथ्वी का रक्षक किवा पाल राजा है। अतएव उसे राजा की सज्ञा दी गयी है (आई०ई० ७–१–२, सी० . आई० : ३, ईपी० : इण्डिया : भाग ३२पृष्ठ९३)।

कालान्तर मे चारो दिशाओं तथा चारो कोणो की कल्पना कर आठ दिशायें मानी गयी। राजा को आठो दिशाओ के लोकपालो का अश माना गया। उनमे चारो कोणो अग्नि–आग्नेय दिशा, निऋति–नैऋत्य दिशा, वायु—वायव्य दिशा तथा ईशान-ईशान दिशा के लोकपाल है। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ५००।

(२) मात्स्यन्याय : भारतीय राजशास्त्र किंवा सिद्धात मे मात्स्य-याय पर बहुत कुछ लिखा गया है। राज्य के उत्पत्ति का एक कारण समाज मे मात्स्यन्याय का रोकना है। मात्स्यन्याय का अर्थ राज्य की अराजकता भी है (ई० आई० ४)। बडी मछलियाँ छोटी मछलियो को खा जाती हैं। शक्तिशाली निर्बलो को कुचल देता है। शक्ति आधारित राज्य न कर न्याय आधारित राज्य का आधार भारतीय सिद्धान्त मानता है। अति प्राचीन काल से समाज से अराजकता दूर करना राजा का प्रथम कर्तव्य माना गया है। अराजक राज्य को अविलम्ब त्याग देने का सुझाव दिया गया है (शान्ति० : ६८ . ८५०)। समाज अपने आदिम रूप मे अराजक था। बली एव शक्तिशाली शासन करते थे। निर्बलो का कोई स्थान नही था। आदिम प्राकृतिक इस जीवन से रक्षा की भावना के कारण समाज का सघटन हुआ। राजा का उदय हुआ। राजशासन का उदय हुआ और उदय हुआ मानवता का। भारतीय सिद्धान्त का यह केन्द्रबिन्दु है।

शतपथ ब्राह्मण (११ · १ · ६ : २४) मे मात्स्यन्याय से समाज रक्षा का दर्शन मिलता है। मनु लिखते हैं,—'जब अकाल पड़ता है, उस समय शक्तिशाली निर्बलो पर हावी हो जाता है,—प्रजापति ने राजा को उत्पन्न किया है ताकि वह जगत् की रक्षा करे जब कि सब लोग भयग्रस्त थे। इधर-उधर भागते थे। उस समय कोई राजा नही था (मनु० : ७ : ३)। यदि राजा दण्ड का उचितरूपेण व्यवहार नही करता तो बली निर्बलो को परेशान करेंगे, जैसे कि सिक्चे पर मछली भूनी जाती है, या जल में बडी मछलियाँ जैसे छोटी को निगल जाती हैं (मनु० : १४–२०)। राजा के अभाव मे अर्थात् अराजक राज्य मे जहाँ दण्ड का भय नहीं होता वहाँ मत्स्यन्याय का बोलबाला हो जाता है (रामा० : अयो : ६७, महा० शान्ति० : १५ : ३०, ६७ : १६, अर्थशास्त्र : १ : ९३, २२, नारद० : १८ : १५–१६)। वर्णाश्रम धर्म के विचार प्रवाह मे मात्स्यन्याय का विरोधी स्वरूप मूर्तिमान है। सम्पत्ति सिद्धान्त पूर्ण ढाचा हो मात्स्यन्याय के सिद्धान्त पर आधारित है। यदि शक्तिशाली की इच्छा ही सब कुछ है तो दुर्बल व्यक्ति सम्पत्ति रख ही नही सकता। उसकी सम्पत्ति सबल ले लेंगे। डाकू, लुटेरे अपनी शक्ति से यही करते हैं। यदि मात्स्यन्याय दूर नही होता तो जिनके पास सम्पत्ति है वे सभी सबलो द्वारा मार डाले जायेंगे। उनकी सम्पत्ति छिन जायगी धर्म, कर्म सभी नष्ट हो जायेंगे। मुसलमानो की शक्ति के कारण हिन्दू आतंकित थे। उनकी सम्पत्ति छिन जाती थी। मन्दिर नष्ट कर दिये जाते थे। धार्मिक स्वतन्त्रता नही थी। इन्हीं बातो की ओर जोनराज लक्ष्य करता है (शान्ति०, ६७ १८–१९, १८८ : १०–१४, ऋग० · १० . ९०; शतपथ० · ३ : ९ . ३ : ७)।

यदि दण्ड का प्रयोग न्यायपूर्ण ढग से किया जाता है तो वह लोक मे सुख एवं शान्ति उत्पन्न करता है। यदि उसका प्रयोग न्यायपूर्वक नही किया जाता तो वह सब कुछ नष्ट कर देता है (मनु० : ७ : १८–१९)। यदि राजा दुष्टो का दमन नही करता तो उसकी न्यायप्रिय प्रजा उस व्यक्ति की तरह

स सूहभट्टसंस्पर्शदुष्टायाः शुद्धये भुवः।
प्रतापाग्निं ध्रुवं दीप्तमहाकाशमजिज्वलत् ॥ ७७६ ॥

७७६ उस (राजा) ने सूह भट्ट के स्पर्श दोष से दूषित पृथ्वी की शुद्धि[1] के लिये ही अपने दीप्त प्रतापाग्नि से ही महाकाश को प्रज्वलित कर दिया।

राज्ञः सश्चिन्वतो मन्त्रप्रपञ्चे पञ्चधा स्थितिम्।
जिगीषयेव तस्यारिवर्गः पञ्चत्वमाश्रयत् ॥ ७७७ ॥

७७७ मन्त्र प्रपंच[1] में पांच प्रकार की स्थिति प्राप्त करने वाले उस राजा ने उस स्थिति को जीतने की इच्छा से ही मानों उसका अरिवर्ग पंचत्व प्राप्त किया।

अनित्यबाह्यविद्वेषिनिर्जयस्तुतिसंस्तवः।
नित्यान्तःस्थारिसंहर्तुस्तस्य प्रत्युत गर्हणा ॥ ७७८ ॥

७७८ अनित्य एवं बाह्य शत्रुओं के विजय करने से स्तुति प्रशंसा नित्य एवं अन्तःस्थ शत्रु संहारकर्ता उस नृपति की गर्हणा (निन्दा) ही है।

भयभीत रहती है जैसे एक कोठरी में सर्प एवं मनुष्य दोनो रख दिये जाँय (शान्ति० : १२३ : १६)। यदि राजा दण्ड नहीं देता तो प्राणी नष्ट हो जायेंगे (नारद० : १८ : १४)। यदि माझी अपनी उन्नति चाहता है तो उसे मछली पकड़कर मारना ही होगा। इसी प्रकार यदि राजा चाहता है कि उसके राज्य मे समृद्धि हो तो उसे अपराधियों को दण्ड देना ही होगा (शान्ति० : ५९ : १०६–१०८)। आततायी राजा राज्यभ्रष्ट और उसे, नरक प्राप्त होगा (मनु० : ७ : १९, याज्ञ० : १ : ३५५–४५६; शान्ति० : २०४ : १००)। दण्डदाता न्यायप्रिय राजा पवित्र होकर स्वर्ग प्राप्त करता है (शान्ति० : २६ : ३३–३५)। सन्तुलित, प्रतिहिंसाविहीन, उचित दण्ड देना राजा का कर्तव्य माना गया है।

पाद-टिप्पणी :

७७६. (१) पृथ्वीशुद्धि : जोनराज ने जैनुल आबदीन तथा सूहभट्ट का चरित्र परस्पर विरोधी चित्रित किया है। सूहभट्ट के स्पर्श के कारण पृथ्वी दोषयुक्त और जैनुल आबदीन के कारण दोषमुक्त हो गयी थी। जोनराज हिन्दू शास्त्र की मान्यता का उल्लेख करता है। अग्नि में डालने से अथवा अग्नि के कारण शुद्धि हो जाती है। पृथ्वी जड़ है। धातुएँ जड़ हैं; पृथ्वी के गर्भ से निकलती हैं। वे अग्नि मे डालने से अग्नि की ज्वाला से शुद्ध हो जाती हैं। उसी प्रकार सुलतान की प्रतापाग्नि पृथ्वी पर प्रज्वलित होने से पृथ्वी शुद्ध हो गयी। अभी तक प्रथा है कि यदि अन्त्यज धातु बर्तन में भोजन कर लेते हैं अथवा उस पर मल-मूत्र पड़ जाता है तो उसे अग्नि मे डालकर शुद्ध कर लिया जाता है।

पाद-टिप्पणी :

७७७. (१) मन्त्र प्रपंच : मन्त्र प्रपंच के आठ वर्ग हैं—(१) अ, (२) क, (३) च, (४) ट, (५) त, (६) प, (७) य तथा (८) श। 'अ'–खगेश, 'क' मार्जार, 'च' सिंह, 'ट' स्वान, 'त' सर्प, 'प' मूसक, 'य' मृग, 'श' हस्ती है। 'अ' का अर्थ खगेश अर्थात् गरुड है। 'अ' से पाँचवाँ वर्ग 'त' सर्प पड़ेगा। गरुड पक्षी सर्प का स्वाभाविक शत्रु है। 'क' मार्जार अर्थात् बिल्ली है। वह पंचम वर्ग, 'प' मूसक अर्थात् मूस की स्वाभाविक शत्रु है। 'च' सिंह है। वह पंचम वर्ग 'श' हाथी का शत्रु है।

स्ववर्गात् पञ्चमे शत्रुश्चतुर्थो मित्रसंज्ञकः।
उदासीनं तृतीयं तु वर्गसंख्याविभेदतः॥

शक्तोऽपि काश्यपीशक्रः शक्यानेवाभ्यपेणयत् ।
व्योम्नि यात्रां करोत्यर्कः सतारे न तु सोडुपे ॥ ७७९ ॥

७७९ समर्थ उस पृथ्वीन्द्र ने समर्थ शत्रुओं पर ही आक्रमण किया, सूर्य ताराओं[1] से युक्त आकाश में यात्रा करता है न कि केवल उडुप (चन्द्रमा) सहित ।

नाजिगीषत् स तेजस्वी शत्रून् विभवतृष्णया ।
हरिर्मांसादिलोभेन हिनस्ति न हि हस्तिनः ॥ ७८० ॥

७८० विभव-तृष्णा से उस तेजस्वी ने शत्रुओं को नहीं जीता था क्योंकि सिंह मांसादि के लोभ से हाथियों की हत्या नहीं करता ।

शैलेषु तद्द्विषो भानुप्रतापाधिदवश्रमैः ।
प्रायश्चित्तोचितं पञ्चतपस्त्वं ध्रुवमाश्रयन् ॥ ७८१ ॥

७८१ उसके शत्रुओं ने प्रायश्चित्त करने के लिये पर्वतों पर, सूर्य, प्रताप, आधि, दव (दावाग्नि) श्रम के द्वारा पंचाग्नि तप[1] का आश्रय लिये ।

प्रावर्तिष्ट महिष्ठोऽपि नोत्पथेन स जातुचित् ।
राकेन्दुर्न निशारम्भं विना जात्वप्युदेति यत् ॥ ७८२ ॥

७८२ पृथ्वीस्थित वह राजा कभी उत्पथगामी नहीं हुआ, क्योंकि पूर्ण चन्द्रमा भी निशारम्भ के बिना उदित नहीं होता ।[1]

मन्त्र की पंचधा स्थिति अक्षर के वर्गों के आधार पर तन्त्रशास्त्र मे वर्णन की गयी है । 'अ' वर्गादि आठ वर्ग अक्षरो के तन्त्र ग्रन्थो मे प्राप्त होते हैं । उनमे मित्र, शत्रु, उदासीन आदि विभाग पाँच प्रकार के प्राप्त होते हैं । वस्तुतः पचभूतात्मक अक्षर विशेषण मे अग्नि का जल, वायु का पृथ्वी विनाशक तत्व माना गया है । उनके सुख-दु:खादि परिणाम वही बताये जाते है, जिनके आधार पर साधक देवता एवं मन्त्र को अपने आधार पर चुनता है । अतएव मन्त्र पचधा की स्थिति महत्वपूर्ण है ।

पाद-टिप्पणी :

७७९ (१) सूर्य तारा : आकाश मे सूर्य ताराओ के साथ भ्रमण करता है नकि चन्द्रमा के साथ । चन्द्रमा के समान ज्योतिष्पिण्ड प्रभाहीन नही रह सकते अतएव सूर्य के साथ भ्रमण करने वाले को तारा कहा जायगा नकि चन्द्रमा । सूर्य के कारण तारा प्रभाहीन लगते हैं ।

पाद-टिप्पणी :

७८१ (१) पञ्चाग्नि : पञ्चाग्नि तप ग्रीष्मकाल मे तपस्वी करते है । चारो दिशाओ मे चार अग्नि रखते हैं । तथा मूर्धा पर सूर्य पाँचवी अग्नि है । पंचाग्नि तप दिन मे ही किया जाता है । मध्याह्न काल इसके लिए सबसे उपयुक्त समय है । उस समय सूर्य तपस्वी के मूर्धा पर तपता है । द्रष्टव्य : टिप्पणी : श्लोक ५५८ ।

पाद टिप्पणी :

७८२. (१) प्रशस्ति वाचन : श्लोक ७५४ से ७८२ तक कवि जोनराज ने सुलतान की प्रशस्ति वाचन किया है । उसका घटनावलियो से कोई सम्बन्ध

गर्वं प्रवृद्धा वास्तव्या हीना मैव क्षयं गमन् ।
इति नीतिविदा राज्ञा तेभ्यो बलिरगृह्यत ॥ ७८३ ॥

७८३ प्रवृद्ध प्रजा को गर्व न हो एवं हीन (गरीब) का क्षय न हो, इस प्रकार नीतिविद् यह राजा उन से बलि (कर)[1] ग्रहण करता था ।

नहीं है । बडशाह् जोनराज का आदर्श राजा था । उसे नारायण का अवतार मान लिया है (श्लोक ९७३) ।

धर्मनिरपेक्षता, उदारता, न्यायप्रियता, समत्व, धर्मों एव मतो के प्रति आदर, पुरातन व्यवस्था तथा सदाचार का पुन.प्रचलन, पुरातन काश्मीरी राजाओ के आदर्श पर चलने की भावना के कारण जनता मे जैनुल आबदीन के प्रति विश्वास उत्पन्न हो गया था। उसमे आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान लौट आया था । सुलतान इतना प्रगतिशील था कि जो लोग जबरदस्ती मुसलमान बना लिए गये थे उन्हे पुन' अपने धर्म मे लौटने की आज्ञा दे दी। यद्यपि मुसलिम कानून के यह विरुद्ध था । एक बार मुसलिम धर्म स्वीकार कर उसे छोडना अपराध माना जाता था । जिसकी सजा मौत थी ।

सुल्तान ने हिन्दुओ को उपासना की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी । उन काश्मीरियो को जो धर्मरक्षा-भय से किश्तवार एव जम्मू भाग गये थे उन्हे पुन लौटने के लिए उत्साहित किया।

राज्य मे गोहत्या बन्द कर दी गयी । उसने सती प्रथा पर से भी निषेध उठा लिया । सती प्रथा सुलतान के पिता सिकन्दर बुतशिकन ने बन्द करवा दी थी। सुलतान ने यह धर्मनिरपेक्ष नीति के कारण किया था। सती प्रथा कालान्तर मे हिन्दुओ के अत्यधिक अल्पता के कारण अज्ञात हो गई थी। (म्युनिख पाण्डु० : ७० ए०; बहारिस्तान शाही पाण्डु० ४८ बी० ४९) ।

सिकन्दर बुतशिकन के समय जो मन्दिर एव देवस्थान नष्ट हो गये थे, उनके जीर्णोद्धार के लिए सुलतान ने रोक नहीं लगाई । कोई हिन्दू मन्दिर का जीर्णोद्धार कर सकता था। कितने ही स्थानो का जीर्णोद्धार सुलतान ने स्वयं अपने व्यय मे कराया था। उसने ब्राह्मणो को माफी जमीन दी। मन्दिरो पर सम्पत्ति चढाई। पूर्व राजाओ के समय जो कुछ अग्रहारादि दिये गये थे, उन्हे पुन' नहीं लिया (म्युनिख : पाण्डु० : ७० ए०; बहारिस्तान शाही : पाण्डु : ४८ बी०) ।

श्रीनगर मे रेनवारी मे हिन्दू राजाओ के समय बाहरी यात्रियो को मुफ्त भोजन तथा निवास के लिए इमारत बनी थी। सुलतान ने वहां दूसरी इमारत यात्रियो के निवास तथा भोजन के लिए बनवा दी। (तहफातुल अहबाब - २२६-२७, फतूहाते कुबराविया : पाण्डु० २०० बी०) ।

सुलतान हिन्दू उत्सवो मे भाग लेता था। श्री जैन देवस्थान के साधुओ के उत्सव मे भाग लेकर साधुओ को भोजन कराया।

नागयात्रा पुनः आरम्भ की गई। नागयात्रा एव गण चक्र उत्सव मे वह यात्रियो, उपासको को पाँच दिन तक भात, मास, शाक सब्जी तथा फल खिलाता था। द्वादशी के दिन उन्हे शीतकालीन वस्त्र द्रव्यादि देकर बिदा करता था। त्रयोदशी के दिन श्रीनगर मे वितस्ता के दोनो तटो पर दीप-दान उत्सव देखता था। उस दिन वितस्ता जन्मोत्सव मनाया जाता था। सुलतान रात्रि पर्यन्त नाव पर बैठा सगीत, पूजा एव उत्सवो को देखता था। इसी प्रकार सुलतान चैत्रोत्सव मे भाग लेता था। उस दिन वह भिन्न-भिन्न नगरो की यात्रा करता था। उत्सव के उपलक्ष मे होते नृत्य, सगीत, गान एव पुष्पो की सजावट देखता था। उनमे रुचि लेता था।

पाद-टिप्पणी .

७८३ (१) कर : सुलतानो के समय मालगुजारी ३० प्रतिशत ली जाती थी। अकाल के समय २५ प्रतिशत लिया जाता था। कृषि उत्पादन का छठवाँ

वैरिकीर्तिर्जुहोतु स्वं विक्रमस्य वियोगतः ।
यताहीपुर्द्विपः स्वं तत्प्रतापे विरहाच्छ्रियः ॥ ७८४ ॥

७८४ उसके प्रताप में विक्रम के वियोग से, वैरियों की कीर्ति अपने को हवन कर दे (दी) और शत्रु के वियोग से श्री स्वयं को (उसी में) छोड़ दी।

दिल्लीशपीडितं जातु जस्रथं शरणागतम् ।
द्रोणीगुहासु सोऽरक्षत् तमोऽद्रिरिव भास्करात् ॥ ७८५ ॥

७८५ किसी समय दिल्लीश से पीड़ित एवं शरणागत जसरथ[1] को द्रोणी गुफा में उसी प्रकार स्थित किया जिस प्रकार पर्वत भास्कर से अन्धकार की रक्षा करता है।

तस्मिञ्शासितरि क्षोणीं विनेतरि दुरात्मनाम् ।
जयापीडपुरस्थस्य भूमिदेवस्य कस्यचित् ॥ ७८६ ॥

७८६ दुष्टों के दमन कर्ता उसके पृथ्वी पर शासन करते समय जयापीडपुर[1] में किसी भूमि देव[2] (ब्राह्मण) की—

शष्पग्रासाभिलाषाद्वा विधातुर्वा नियोगतः ।
उदाचिताप्यगाद् धेनुर्मूर्तेवाशा स्वधाभुजाम् ॥ ७८७ ॥

८७७ —धेनु जो कि देवताओं की मूर्तिमती आशा सदृश थी, वह उदाचित (परिपूरित) होने पर शस्य ग्रास की अभिलाषा से अथवा विधाता के योग से चली गयी।

गतो मडवराज्यं स तीर्थस्नानाय जातुचित् ।
स्वां परिज्ञातसङ्केतां गां परिज्ञातवान् द्विजः ॥ ७८८ ॥

७८८ किसी समय मडवराज्य[1] में तीर्थ-स्नान हेतु वह द्विज गया था, परिज्ञात संकेत वाली अपनी गाय[2] को पहचान लिया।

हिस्सा सरकार लेती थी। जैनगिर मे सातवाँ भाग लेने का आदेश दिया गया था। क्योकि वह भूमि नवीन बनाई गयी थी।

तमगा और बाज कर लिया जाता था। तमगा चुङ्गीकर था। बाज सम्भवतः व्यावसायिक कर था। शादी और घोडे पर कर लगाने का वर्णन अकबरनामा मे प्राप्त होता है। जैनुल आबदीन ने उन्हे उठा दिया (हैदर मल्लिक : पाण्डु : ३१ ४०३)।

जैनुल आबदीन ने देश के परगनों को नवीन आधार पर विभाजित कराया। परगनो मे गाँव की सीमा निर्धारित की गयी। गाँव मे खेतो को जरीब से नाप कर उन्हें लिपिबद्ध किया गया। प्रत्येक कृषकों की जमाबन्दी भूर्जपत्रों पर लिख कर उनकी भूमि का स्वामित्व निश्चय किया गया। जहा आवश्यकता पडी वहा पर ताम्रपत्रो पर भी लिखा गया।

पाद-टिप्पणी :

७८६ (१) जयापीडपुर : द्रष्टव्य : टिप्पणी श्लोक संख्या ३००।

(२) भूमिदेव : जोनराज रिश्वन के समान जैनुल आबदीन की न्यायप्रियता का वर्णन आरम्भ करता है।

पाद-टिप्पणी :

७८८ (१) मडवराज्य : प्राचीन काल में काश्मीर दो विभागो मे विभक्त था। उनका नाम मराज तथा कामराज है। मडवराज्य का अपभ्रंश

सनिश्चयो गृहं यान्तीं सायं तामनुगम्य गाम् ।
विवादमकरोद् वेश्मस्वामिना सह तत्र सः ॥ ७८९ ॥

७८९ वहा उसने निश्चय कर (मेरी गाय है) सायंकाल घर जाती हुई, उस गाय का अनुगमन करके वेश्म (गृह) स्वामी के साथ उसने विवाद किया ।

तौ लोभानिश्चयग्रस्तावशान्तकलहावुभौ ।
महीपालसभास्थाने विवादं कर्तुमुद्यतौ ॥ ७९० ॥

७९० लोभ के कारण अनिश्चय ग्रस्त तथा कलहयुक्त वे दोनो विवाद करने के लिये उद्यत होकर महीपाल (जैनुल आबदीन) के सभास्थान पर गये ।

तयोरशक्तयोर्जेतुमुपपत्तिं परस्परम् ।
शृङ्गाटानि परीक्षार्थं गोरग्रे व्यकिरन्नृपः ॥ ७९१ ॥

७९१ अशक्त उन दोनों के परस्पर उपपत्ति को जीतने के लिये नृप ने गाय के आगे परीक्षा हेतु शृङ्गाट (कमल गट्टा) को विकीर्ण कर दिया ।

सा बाल्ये ग्रसनाभ्यासाच्छीघ्रमाघ्राय सस्पृहा ।
गौरभुङ्क्त फलानीव न तु तत्संततिश्चिरम् ॥ ७९२ ॥

७९२ वह गाय बाल्य काल में खाने के अभ्यास के कारण शीघ्र ही, सूंघ कर साभिलाप फलों के समान खायी । किन्तु उसकी सन्तति देर तक नहीं खायी ।

मराज है। श्रीनगर से वितस्ता के अधोभागवर्ती परगने-कमराज भी थे। श्रीनगर से वितस्ता के ऊर्ध्व-भागीय दोनो तटवर्ती भूखण्ड मडव राज्य थे। आइने अकबरी मे दोनो राज्य को विभक्त करने वाला मध्य-वर्ती केन्द्र वर्तमान शेरगढी राज्य प्रासाद स्थान माना गया है। मराज काश्मीर उपत्यका का पूर्वीय भाग और कामराज पश्चिमी भाग था। (आइने अकबरी : २ : ६६८)। अबुलफजल ने काश्मीर को ३८ परगनो मे विभक्त किया है। श्रीनगर मराज मे था। इस समय काश्मीर राज्य तीन प्रदेशों मे विभक्त है। काश्मीर, जम्मू एवं लद्दाख (लब्धाख)। काश्मीर का तृतीयांश अनधिकृत रूप से पाकिस्तान के पास है। मडवराज्य काश्मीर उपत्यका में—खुमहोम, जैनगिर, लोलो, उत्तर, मच्छपुर, हमल तथा कुहिन परगने थे। लोकप्रकाश मे मडवराज की सीमा दी गयी है (पृष्ठ ८७)। डोगरा काल मे काश्मीर राज्य जम्मू, काश्मीर तथा सरहदी इलाको मे विभक्त था। जम्मू मे,—जम्मू, उधमपुर मीरपुर, कठुआ, पूँछ तथा चनेनी जिले थे। काश्मीर मे अनन्तनाग, बारहमूला, मुजफ्फराबाद के जिले थे। सरहदी इलाका मे लद्दाख, गिलगित तथा गिलगित आबेसी के जिले थे। पाकिस्तान के पास अनधिकृत रूप से, मीरपुर जिला का तहसील भीमवर तथा चारगाव, छम, देवा, चक तथा मनावर के अतिरिक्त शेष जिला है। पूँछ जिला मे जागीर पूँछ बाग की पूरी तहसील तथा हवेली की आधी तहसील है। मुजफ्फराबाद जिला मे मुजफ्फराबाद, उरी की आधी तहसील, तथा तीन चौथाई करनाट पाकिस्तान के पास है। गिलगित का रिट्रसी इलाका, लद्दाख सूबा मे स्कर्दू की तहसील, मासवा का थोडा भाग तथा करगिल की एक चौथाई तहसील पाकिस्तान के पास है। काश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण अक्टूबर सन् १९४७ मे आरम्भ हुआ और पहली जनवरी सन् १९४९ ई० मे विराम-सन्धि हुई।

(२) गाय : जोनराज ने रिंचन की न्यायप्रियता प्रमाणित करने के लिये उसके वानबल निवास करते

सभायां राजनैपुण्यं स्तुवत्यां कृतनिश्चयात्।
दण्ड्येनाजिग्रहद् दण्डं भाण्डं राजा द्विजन्मना ॥ ७९३ ॥

७९३ इस प्रकार निर्णय हो जाने पर, सभासदों के राजनैपुण्य की स्तुति करने पर, राजा ने दण्डनीय ब्राह्मण द्वारा दण्ड स्वरूप भाण्ड दण्ड ग्रहण कराया।

तस्य दाक्षिण्यदक्षस्य प्रजानां हितहेतुना।
पुत्रे मन्त्रिणि मित्रे वा दुष्टे नालक्ष्यत क्षमा ॥ ७९४ ॥

७९४ प्रजाओं के कल्याण हेतु दाक्षिण्य दक्ष नृपति की दुष्ट, पुत्र, मन्त्री, अथवा मित्र पर क्षमा[1] नहीं देखी गयी।

अपराधं विना जायां क्षीवो निघ्नन् प्रियोऽपि सन्।
मेरे-ष्कारोऽपि यवनो वधं भूपेन लम्भितः ॥ ७९५ ॥

७९५ विना अपराध के स्त्री (जाया) का वध करने वाले प्रिय भी मत्त यवन[1] मेरष्कार को राजा ने वध दण्ड दिया।

शत्रुपक्षे निकारं स क्षिपन् क्षितिपुरन्दरः।
अकरोदादरं नित्यं योगिनां न नियोगिनाम् ॥ ७९६ ॥

७९६ क्षिति पुरन्दर उस नृप ने शत्रु पक्ष में परिभव (अनादर) निहित करते हुए योगियों का नित्य आदर किया न कि नियोगियों का।

पराक्रमश्च नीतिश्च तस्यान्येषां च भूभुजाम्।
करुणा च विवेकश्च यस्मिन् राजनि राजति ॥ ७९७ ॥

७९७ उसका पराक्रम एवं नीति तथा अन्य राजाओं की करुणा और विवेक जिस राजा में शोभित थी।

समय अश्वी के कथानकका उल्लेख किया है। (श्लोक १८५–१९१)। जैनुल आबदीन की न्यायप्रियता प्रमाणित करने के लिये ब्राह्मण की गाय का कथानक उपस्थित करता है।

पाद टिप्पणी

७९४ (१) क्षमा जोनराज ने यहाँ कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित दण्ड के सिद्धान्त को दुहराया है—'यह दण्ड है और केवल दण्ड ही है, जब उसका प्रयोग राजा द्वारा निरपेक्ष तथा अपराध के औचित्य के साथ चाहे अपने पुत्र शत्रु मित्र आदि में समान रूप से किया जाता है तो वह लोक तथा परलोक दोनों प्राप्त कराता है' (अर्थ ३ १५०)।

पाद टिप्पणी

७९५ (१) यवन मुसलिम राज्य के कारण मुसलमान उदण्ड हो गये थे। वे अपना ही राज्य समझते थे कानून से अपने को परे मानते थे। सुलतान एवं अधिकारी उन्हें दण्ड देने में संकोच करते थे। अंग्रेजी शासन काल में भी अंग्रेज लोग अपने को कानून के परे मानते थे। किसी को मार देना साधारण बात थी। उन्हें दण्ड नहीं मिलता था। लगभग २०० वर्ष के अंग्रेजी राज में केवल लॉर्ड रीडिंग के समय प्रथम अंग्रेज को हत्या के अपराध में फाँसी की सजा हुई थी। जैनुल आबदीन ने यवन वर्ग के इस विशेषाधिकार पर अंकुश लगाया। न्याय व्यवस्था

कामो वियोगिवर्गस्य करोत्यपचितिं सदा।
निर्विकारः स्मरो योगिवर्गस्यापचितिं व्यधात् ॥ ७९८ ॥

७९८ काम वियोगी वर्ग की सर्वदा अपचिति करता है और निर्विकार स्मर (कामदेव) ने योगी वर्ग की अपचिति किया।

सौम्या भीमा गुणा यस्मिन्नवसन् नवसङ्गमम्।
क्वान्यत्र सागराद् दृष्टा विषामृतजलानलाः ॥ ७९९ ॥

७९९ सौम्य एवं भीम गुण जिस राजा में नवीन संगम प्राप्त कर रहते थे, सागर के अतिरिक्त अन्यन्त्र कहाँ विष-अमृत, जल-अनल देखे गये हैं।

चिरं स्थेयैरुपात्तोऽर्थिप्रत्यर्थिभ्यां धनग्रहः।
तेन धर्मप्रवृत्तेन सद्वृत्तेन निवारितः ॥ ८०० ॥

८०० चिरकाल से स्थेयों[1] द्वारा अर्थियों एवं प्रत्यर्थियों से धन संग्रह धर्मप्रवृत्त एवं सदाचारी राजा ने निवारित कर दिया।

केनापि हेतुना पूर्वं लोलराजद्विजन्मना।
भूप्रस्थदशकात् प्रस्थो विक्रीतो लेख्यपूर्वकम् ॥ ८०१ ॥

८०१ पहले किसी कारण से लोलराज ब्राह्मण ने लेख[1] पूर्वक दशप्रस्थ-भूमि में से एक प्रस्थ बेच दिया था।

बालानां नोनराजादिपुत्राणां तदुदीर्य सः।
विक्रयाब्दे ब्रह्मभूयं लोलराजोऽगमत्ततः ॥ ८०२ ॥

८०२ नोनराज आदि बालक पुत्रों से यह लोलराज यह बात कह कर विक्रय के वर्ष ही ब्रह्मलोक चला गया।

सुव्यवस्थित की तथा लोगों मे विश्वास उत्पन्न करने के लिए उसने अपने प्रियपात्र मीरशाह को भी स्त्री हत्या के अपराध मे वध दण्ड दिया। अपनी स्त्री की हत्या करने के कारण वह अपराध से मुक्त नहीं माना गया।

पाद-टिप्पणी :

८००. (१) स्थेय : जोनराज के वर्णन से स्पष्ट होता है कि काश्मीर के न्याय विभाग मे भ्रष्टाचार व्याप्त था। स्थेयों—न्यायकर्ताओं एवं जनता दोनों का चरित्र गिर गया था। न्याय बिकता था। जनता को न्याय की आशा शासन से नहीं रह गयी थी। बडशाह ने इस व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर कर न्याय प्रणाली को शुद्ध किया (म्युनिख पाण्डु० : ७० ए० ; तबकाते-अकबरी : ३ : ४३६)।

पाद-टिप्पणी :

८०१. (१) लेख : कल्हण ने राजा यशस्कर के समय वणिक द्वारा गणना पत्रिका मे जाल बनाकर सत्तोपान कूप हरण का कथानक राजा यशस्कर की न्यायप्रियता प्रमाणित करने के लिये उपस्थित किया है (रा० : ६ : १४-४१)। जोनराज ने यहाँ विक्रय पत्र मे जाल बना कर भूमि लेने की कथानक का वर्णन, जैनुल आबदीन की न्यायप्रियता प्रमाणित करने के लिये, कल्हण की शैली का अनुकरण से किया है। लेख का अर्थ पुराकाल मे सरकारी पत्र

नोनराजाद्यसामर्थ्यात् प्रस्थग्राहैरभुज्यत ।
अविक्रीतमपि प्रस्थनवकं बलिभिस्ततः ॥ ८०३ ॥

८०३ नोनराजादि के असामर्थ्य के कारण प्रस्थग्राही बली क्रेताओं ने अविक्रीत नव प्रस्थों पर कब्जा कर लिया ।

एवं कृते दशप्रस्थीभोगे तैर्बलिभिश्चिरम् ।
नवभोगाय कपटं कृतं विक्रयपत्रके ।
विक्रीतं प्रस्थदशकमिति वर्णानलेखयन् ॥ ८०४ ॥

८०४ चिर काल तक दश प्रस्थ का उन बली लोगों के भोग करने पर नवों के भोग हेतु विक्रय पत्र में जाल किया—'दश प्रस्थ बेच दिया'' इन वर्णों को लिखाया ।

तस्मिन् राज्ञि विचारज्ञे नोनराजस्य नन्दनः ।
बलाद्धृतां भुवं राजसभायामहमाक्षिपम् ॥ ८०५ ॥

८०५ विचार शील उस राजा के काल में नोनराज का नन्दन (पुत्र) बलात् गृहीत पृथ्वी का आक्षेप (विवाद) राज सभा में उपस्थित किया ।

प्रत्यर्थिभिरथानीतं भूर्जं राजाज्ञया नृपः ।
युक्तिज्ञः सलिलस्याऽन्तर्वाचयित्वाक्षिपत्ततः ॥ ८०६ ॥

८०६ राजाज्ञा से प्रत्यर्थियों द्वारा लाये गये भूर्ज पत्र को युक्तिज्ञ नृपति ने पढ़कर सलिल के अन्दर डाल दिया ।

नष्टेषु नववर्णेषु पुराणेषु स्थिरेष्वथ ।
भूप्रस्थमेकं विक्रीतमिति सभ्यानवाचयत् ॥ ८०७ ॥

८०७ नवीन वर्णों के नष्ट हो जानेपर और प्राचीन के स्थिर रहने पर एक भू प्रस्थ बेचा है—ऐसा सभ्यों से बचवाया ।

राजा कीर्तिमहं भूमिं कूटकृद्दण्डमद्भुतम् ।
प्रजाः सुखं खला भीतिं प्राप्तवन्तः समं ततः ॥ ८०८ ॥

८०८ राजा कीर्ति को, मैं भूमि को, तथा कूटकारी (जालिया) अद्भुत दण्ड, प्रजा सुख तथा खल भय को एक साथ प्राप्त किये ।

तथा लिखित का अर्थ निजी पत्र लगाया जाता था (लेख पद्धति गायकवाड ओरियण्टल सीरीज २१ ९७–१२८) ।

पाद टिप्पणी

८०४ (१) श्लोक सख्या ८०४ के पश्चात् बम्बई सस्करण मे श्लोक सख्या १०२९–१०३३ अधिक मुद्रित हैं । उनका भावार्थ है—

(१०२९) लेखक ने व्यजन के अग्रभाग मे स्थित एकार रूप ज्ञान के लिये व्यजनो के पश्चात् रेखा बना दिया ।

(१०३०) कालान्तर में उस समय के लोगो ने लिपिभेद से पुन व्यजनो के ऊपर 'एकार' सूचक रेखा लिखा ।

(१०३१) भूप्रस्थमेक विक्रीतमिति' के

इन्दो राहुभयं कदाऽपि कुरुते कालः कलाः पूरयन्
सिञ्चन्सञ्चिनुते तडिन्निपतनक्षोभं तरोर्वारिदः ।
वेधाः सत्पुरुषस्य सर्वजगतामाह्लादनायोदयं
कुर्वन्नामयदर्शनेन कुरुते भीतिप्रकर्षं क्षणम् ॥ ८०९ ॥

८०९ काल चन्द्रमा की कलाओं को पूर्ण करते हुये कभी राहु पैदा कर देता है, मेघ वृक्षों का सिंचन करते हुये वज्रपात (बिजली) का क्षोभ पैदा कर देता है, विधाता सब लोगों के आह्लाद हेतु सत्पुरुषों का उदय करते हुये व्याधि प्रदर्शन द्वारा क्षण भर के लिये भयाधिक्य पैदा कर देता है।

अबाधिष्टतरां कष्टो विषस्फोटः कदाचन ।
प्रकोष्ठं भूमिपालस्य प्रजानां हृदयं च सः ॥ ८१० ॥

८१० किसी समय कष्टकर विषैला फोड़ा राजा के प्रकोष्ठ (केहुनी) तथा प्रजाओं के हृदय को अत्यधिक कष्ट दिया।

माघमासीव पुष्पाणां म्लेच्छप्रालेयबाधया ।
न लाभो विषवैद्यानां देशेऽस्मिन्नभवत्तदा ॥ ८११ ॥

८११ जिस प्रकार माघ मास में प्रालेय (तुषारपात) बाधा के कारण पुष्पों का अभाव हो जाता है, उसी प्रकार म्लेच्छबाधा[1] के कारण इस देश में विषवैद्यों का अभाव हो गया था।

पूर्व 'द' तथा इस प्रकार विक्रय पत्र में लिखे गये विक्रय पत्र में 'मकार' स्थित को लिख दिया।

(१०३२) एकार बोधक रेखा पदपर भू प्रस्थ ग्राही धूर्तों ने 'द'कार लिखा लिया। शीघ्र 'म'कार को 'श'कार बनवा दिया।

(१०३३) एक प्रस्थ भू बेचा यह विक्रय पत्र पर—

पाद-टिप्पणी

८०९ (१) राहु यह पाप ग्रह है। अथर्ववेद में सूर्य को ग्रसित करने वाले दानव के रूप में इसका निर्देश प्राप्त है (अथर्व० १९ ९-१०)। इसका नामान्तर स्वर्भानु मिलता है (ऋ० ५ ४०, ब्रह्माण्ड० ३ ६ २३)। अमृतमन्थन के पश्चात् देवता अमृतपान करने लगे। राहु भी देव रूप धारण कर अमृतपान में सम्मिलित हुआ। अमृत इसके कण्ठ तक पहुँच पाया था कि सूर्य एवं चन्द्रमा ने इसे देख लिया और विष्णु को सूचना दी। भगवान् ने तुरन्त शिरच्छेद कर दिया (आ० : १७ : ४, ६)। इसका मस्तक राहु एवं धड़ केतु हो गया। अमृतपान के कारण वह मर नहीं सका। पुरातन द्वेष के कारण यह सूर्य तथा चन्द्र को ग्रसता रहता है।

पाद टिप्पणी

८११ (१) म्लेच्छबाधा : उक्त पद का भावार्थ होगा—'फोड़े के विष को अच्छा करने वाला कोई वैद्य म्लेच्छों अर्थात् मुसलमानों की बाधा के कारण काश्मीर में नहीं रह गया था।'

उक्त पद से सिकन्दर एवं अलीशाह के शासन के पश्चात् की अवस्था की एक झलक मिलती है। धर्मोन्माद इतना अधिक बढ़ गया कि वैद्यों का भी लोप हो गया था। पुरातन ज्ञान, शास्त्र, विद्यार्जन आदि जो लोग मुसलमान हो गये थे, उन्होंने त्याग दिया था। जो हिन्दू थे, वे भी अपने आपको छिपाये रहते थे। पुरातन काश्मीरी विद्याविद् कष्ट एवं विपत्ति में पड़ सकते थे। मन्त्र से सर्प का विष उतर सकता

यज्वा गारुडशास्त्रज्ञः शिर्यभट्टो नृपानुगैः।
अत्रान्विपद्भिराप्तोऽथ कूपोऽध्वन्यैर्मराविव ॥ ८१२ ॥

८१२ अन्वेषण करने वाले नृपानुरागियों ने यज्वा गारुडशास्त्रज्ञ[1] शिर्यभट्ट[2] को उसी प्रकार प्राप्त किया जिस प्रकार पथिक मरुभूमि मे कूप।

चिकित्सायां विदग्धः स म्लेच्छभीत्या व्यलम्बत।
स्फुलिङ्गदग्धः पुरुषः स्पृशत्यपि मणिं चिरात् ॥ ८१३ ॥

८१३ चिकित्सा में विदग्ध वह म्लेच्छ भय से विलम्ब[1] किया। अग्निकण से जला पुरुष मणिस्पर्श विलम्ब से करता है।

स्वयं दत्ताभयो राज्ञा प्राप्तस्तमुदमूलयत्।
शिर्यभट्टो विषस्फोटं करीव विषपादपम् ॥ ८१४ ॥

८१४ स्वय राजा द्वारा अभयप्राप्त[1] शिर्यभट्ट पहुँच कर, उस विषैले फोड़े को उसी प्रकार उन्मीलित कर दिया जैसे गज विषवृक्ष को।

है, इसे अधार्मिक मानकर सिकन्दर के पश्चात् उसका प्रयोग सम्भवतः वर्जित कर दिया गया था।

पाद-टिप्पणी :

८१२. गारुड़शास्त्र : विष इत्यादि उतारने के लिए मन्त्र तथा औषधियो का प्रयोग करने वाले विज्ञ वैद्य। गारुडिक का अर्थ विषनाशक औषधियो का विक्रेता होता है। कादम्बरी मे 'सगृहीतगारुडेन—' इसी अर्थ मे शब्द का प्रयोग किया गया है। काश्मीर की इतनी दयनीय स्थिति हो गई थी कि वैद्यो तथा शल्य चिकित्सको ने अपना उद्यम त्याग दिया था। यही कारण है कि सुलतान को जहरीला फोड़ा हो जाने पर भी कोई भिषग उसका उपचार करने का साहस नही कर सका, विचित्र स्थिति थी। लोग मरना पसन्द करते थे, परन्तु पुरातन काश्मीरी चिकित्सा द्वारा जीने से परहेज करते थे। यह धर्म-कट्टरता की चरमसीमा थी।

सुलतान की बीमारी बढती गई। उससे व्याकुल होकर सुलतान के अनुरागियो को काश्मीर का कोना-कोना छानना पडा कि कोई गारुडशास्त्र जानने वाला मिल जाय।

, सर्प का विष उतारने के लिए गरुड का नाम लेकर आह्वान किया जाता है। गरुड परम्परागत सर्प का शत्रु है। भैरव तथा शङ्कर का भी आह्वान विष-शमन हेतु किया जाता है।

(२) शिर्यभट्ट : शिर्य शब्द का शाब्दिक अर्थ शत्रुओ को तितर-बितर करने वाला होता है। शिर्य-भट्ट के कारण हिन्दुओ के शत्रु स्वतः तितर-बितर अथवा छितरा गये थे।

शिर्यभट्ट का पाठभेद शिव भी मिलता है। श्रीदत्त ने अनुवाद मे शिव नाम दिया है, श्रियभट्ट तथा श्रीभट्ट नाम मिलता है। कतिपय परशियन इतिहासकारो ने श्रीभट्ट भी नाम लिखा है (तबकाते अकबरी . ३ : ४३५, फिरिश्ता : २ : ४३२)।

पाद-टिप्पणी :

८१३ (१) विलम्ब : सुलतान की चिकित्सा करने का भी साहस शिर्यभट्ट को नही हुआ। वह भयभीत था। मुसलमान उसकी हत्या कर देंगे। चिकित्सा मे विलम्ब अर्थात् बहाना करने लगा। सुलतान को अच्छा कर देने पर भी उसे भय था। उसका प्राण खतरे मे पड सकता था। दोनो जातियो मे इतना अविश्वास हो गया था कि मानवोचित कार्य करने मे भी जीवनशङ्का होती थी।

पाद-टिप्पणी :

८१४ (१) अभय : शिर्यभट्ट ने सुलतान की

तस्य कीर्तिः सुखं राज्ञः प्रजानां हर्षसन्ततिः ।
प्ररोहंस्त्रीणि विस्फोटे तत्रैकस्मिन्विपाटिते ॥ ८१५ ॥

८१५ उस एक फोड़े के विपाटित होने पर, उसकी कीर्ति, राजा का सुख, प्रजाओंका हर्ष, ये तीन परम्पराएँ प्ररोहित हुई[1]।

तुष्टेन भूभुजा दत्तां यथेष्टमपि सम्पदम् ।
नैक्षिष्ट शिर्यभट्टः स यतात्मेव वराङ्गनाम् ॥ ८१६ ॥

८१६ उस शिर्यभट्ट[1] ने तुष्ट भूपति द्वारा प्रदत्त यथेष्ट सम्पत्ति की उसी प्रकार इच्छा नहीं की जिस प्रकार नियतात्मा वरांगना की।

चिकित्सा तब तक नही की जब तक सुलतान ने उसे अभय नहीं दे दिया। जबतक उसे विश्वास नही दिलाया कि उसके प्राण की रक्षा होगी। काश्मीर के सुलतानो पर हिन्दुओ का अविश्वास हो गया था। वे इतने ताडित किये गये थे कि राजविश्वास नामक शब्द भूल गये थे।

पाद-टिप्पणी :

८१५ (१) तबकाते अकबरी मे उल्लेख मिलता है—'श्री (शीर्य) भट्ट की प्रार्थना पर जो कि तबाबत (चिकित्सा) के ज्ञान मे अद्वितीय था और जिसे सुलतान से नाना प्रकार से आश्रय प्राप्त हुआ था अन्य ब्राह्मण जो कि सुलतान सिकन्दर के राज्यकाल मे सिपह (सूहभट्ट) के प्रयत्न के कारण निर्वासित हो गये थे लौट आये, और मन्दिरो तथा प्राचीन स्थानो पर लौट गये। उन्हे वृत्ति प्रदान की गई। सुलतान ने ब्राह्मणो से इस बात की प्रतिज्ञा करा ली कि उनकी किताबो में जो बाते लिखी हैं उनके विरुद्ध कोई बात न करेंगे। तदोपरान्त उसने उनकी जितनी प्रथाएँ थीं उदाहरणार्थ टीका लगाना तथा सती इत्यादि जिन्हें सुलतान सिकन्दर ने बन्द करा दिया था उनको पुन: आरम्भ किया (उ० तै० भा० : २ : ५१)।' 'सुलतान सिकन्दर के समय जो ब्राह्मण मुसलमान हो गये थे उनमे अधिकाश मुरतिद हो गये तथापि कोई भी आलिम उनसे रोक टोक नहीं करता था (उ० तै० भा० : २ : ५१७)।'

पाद-टिप्पणी :

उक्त श्लोक संख्या ८१६ के पश्चात् बबंई संस्करण मे श्लोक सख्या १०४६-१०७६ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(१०४६) दाह पातकवश ही मानो निर्दयी तृणाग्नि तृण को जला कर, शान्ति प्राप्त करती, मेघ की करुणा के कारण तृण की शतगुना कोमल सुन्दर कान्ति पुनः हो जाती है।

(१०४७) जिस प्रकार आषाढ पृथ्वी को अति तृप्त करते हुए, मेघ को शुष्क कर देता है, उसी प्रकार सूहभट्ट ने पृथ्वी को सतप्त करते हुए, दिशाओं को पराभूत कर दिया।

(१०४८) जिस प्रकार वायु वर्षा को लाती है, उसी प्रकार विद्या विश्वास के प्रति उत्सुक, उस पृथ्वीपति ने उन सब पण्डितो को अपने देश मे बुला लिया।

(१०४९) मुक्ताहार सदृश नायक ने कान्ति अथवा बुद्धि द्वारा वहाँ पर विद्वत् रत्नो को यथोचित स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

(१०५०) राजा ने वृत्ति प्रदान द्वारा सरोपित पण्डितो को उसी प्रकार तृप्त किया, जिस प्रकार मालाकार (माली) जल द्वारा वृक्षो को।

(१०५१) काश्मीर मण्डल में सूहभट्ट ने जो-जो नष्ट किया था, राज-प्रार्थना से वह सब योजित कर दिया।

(१०५२) भट्ट शिर्यक ने नागो की यात्रायात्रा आदि प्रवर्तित कर, तुरुष्को द्वारा अपहृत भूमि विदग्धों को दिलाया।

(१०५३) उसके द्वारा हिन्दुओं का अखण्ड उदय किये जाने पर, सब यवन दानव शीर्यभट्ट पर क्रुद्ध हो गये।

(१०५४) महापद्म फणीन्द्र के जल समेद मे बद्ध होने पर भी कुम्भक द्वारा दृति सदृश स्थित रह कर, यवनेन्द्रों को देखता रहा।

(१०५५) दिन मे जिस सूर्य का ताप जलाता है, सायंकाल आँख से देखने योग्य हो जाता है, सायंकाल समुद्र को पूर्णकर्ता चन्द्रमा दिन मे शुष्क होते, अपने चन्द्रकान्तमणि पत्थर को भी द्रवित नही कर पाता है, (इस प्रकार) महान लोक मे करुणावश अपने उत्कर्ष को दिखाकर, उस भाग्य की समाप्ति के पूर्व ही शीघ्र अन्तर्हित हो जाता है।

(१०५६) कलियुग मे पातकी पुरुषो के स्पर्श भय से विह्वल शारदादेवी, उसी समय अन्तर्धान का आश्रय ग्रहण कर ली।

(१०५७) उस समय कही पर कभी देवी के मुख मे स्वेद, भुजा मे कम्प, पादस्पर्श मे विदाहिता नहीं हुई।

(१०५८) द्रोह द्वारा अर्जित धन से प्रसन्नतापूर्वक भाग देने पर भी काश्मीर लोक पर देवी ने अनुग्रह नहीं किया।

(१०५९) देवता विशुद्ध दूर्वा मात्र से तुष्ट हो जाते हैं, मालिन्य दूषित प्राणों से कभी प्रसन्नता नही होती।

(१०६०) कलिकाल मे देवी का वह प्रभाव शान्त हो गया। कभी राजा उन (वहाँ के) यात्रियो के साथ देवी के दर्शन हेतु गया।

(१०६१) स्नान पान द्वारा नदी मधुमती को सफल करते हुए, वह शारदा क्षेत्र पहुँचा जब कि परिषद् खिन्न थी।

(१०६२) देवी भक्तो को अभय देने तथा उस (देवी) की शक्ति व्यक्त करने के लिए उद्यत, युक्तायुक्तविवेक्ता राजा ने वहाँ पर प्रवेश किया।

(१०६३) वहाँ पर भी उनकी दुष्टता से विस्मृत राजा देवी के प्रति भक्तिरहित तथा यात्रियो के प्रति कुपित हो गया।

(१०६४) हे ! देवि !! साक्षात तुम्हारा दर्शन देवो को भी दुर्लभ है। कलिकाल कलंकित हमारे लिये उसकी प्रार्थना करना उचित नहीं है।

(१०६५) अशक्त लोगो के ध्यान एवं अर्चना के लिये आपका निष्कल (निरवयव) रूप है, किन्तु भक्तों के ऊपर कृपा कर के आपने रूप ग्रहण किया है।

(१०६६) यदि इस प्रतिमा से तुम्हारी सन्निधि समाप्त नही हुई है, तो आज स्वप्न मे दर्शन द्वारा मुझे पवित्र करें।

(१०६७) इसके पश्चात् हम यथाशक्ति आपकी सेवा करेंगे और यदि मिथ्या भक्तो के दौरात्म्य से तुम (इससे) दूर चली गयी हो—

(१०६८)—तो किस लिये हिन्दू वैरियो ने प्रतिमा गर्हित की ? इस प्रकार कहकर जितेन्द्रिय वह राजा भाद्र मास की सप्तमी को—

(१०६९) शारदा क्षेत्र में प्रासादमण्डल के ऊपर शयन किया और जब स्वप्न मे सन्निधिसूचक कुछ नही देखा—

(१०७०) देवी ने ९८ वर्ष मे अपनी मूर्ति राजा के द्वारा चूर्णित करा दी। निश्चय ही म्लेच्छसंसर्ग के कारण देवी ने इसे दर्शन नहीं दिया। भृत्य अपराध के कारण स्वामी ग्रहणीय होता है। यह स्थिति है।

(१०७१) देवी दर्शन विच्छेदकर्ता उसमे कोई (दुर्गुण) नही था, क्योकि उस समय दया, सत्य, विवेक, उसी के आश्रय मे थे।

(१०७२) जिस प्रकार वारिद वनो मे वर्षण करता है, उसी प्रकार व्यावृत्त होकर हर्षोत्कर्षवश उसने यवनो पर बहुत स्वर्ण वृष्टि की।

... ... त्रयदण्डं निवार्य सः।
द्विजानां जातिरक्षार्थं रौप्यमापमकल्पयत् ॥ ८१७ ॥

८१७ उसने दण्डत्रय[1] निवारित करके, ब्राह्मणों की रक्षा के लिये एक माष[2] रौप्य निर्धारित किया।

(१०७३) जहाँ दण्डनीय दण्डित नही, अपितु चोरी के बिना दुर्बल दण्डित होते थे, वहाँ पर शिर्यभट्ट राजा का प्राडविवाक (न्यायाधीश) हुआ।

(१०७४) उस समय भट्ट ने कोशधन-विषयक प्रमाण मिलने पर—अपना गलोच्छेदन तथा मिथ्या-भाषी के विप्लव (नाश) की प्रतिज्ञा किया।

(१०७५) शास्त्रार्थभंग के कारण समुत्पन्न शब्द द्वारा चारो दिशाओं मे व्याप्त पद पद पर अब्रह्मण्य (अब्राह्मणोचित कर्म) कहने वाले—

(१०७६) उस जिष्णु ने इन्धन हेतु फल नम्र द्रुमो तथा गुण विनम्र लोको को उच्छेद होने से संरक्षा की।

८१६.(१) शीर्यभट्ट : इसने अपने अद्भुत चरित्र का परिचय दिया है। एक तरफ लोगो ने पद, अर्थ, नौकरी, स्वार्थ जीवन के लिये धर्म त्याग दिया था। दूसरी तरफ शिर्यभट्ट ने सम्पत्ति लेना त्याग दिया था। इससे यह सकेत मिलता है कि शेष हिन्दुओ मे उत्सर्ग एवं कष्ट-सहन की भावना जागृत हो गयी थी। वे समय की गति पहचानने लगे थे।

पाद-टिप्पणी :

८१७ उक्त श्लोकसंख्या ८१७ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या १०७७-१०७८ अधिक मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(१०७७) जाति रक्षा हेतु ब्राह्मणो के ऊपर से प्रतिवर्ष दो रौप्य पल उग्र वर्ष दण्ड (जजिया) था।

(१०७८) उस नरअर्यमा शिर्यभट्ट के द्वारा उस (जजिया) को निवारित कर उनका दण्ड प्रति वर्ष एक रौप्य माषा मात्र कर किया।

(१०७९) मण्डलो मे मासादि के लोभ से व्याज पूर्वक गोवध करने पर ग्राह्य आदि वारण करने से गोमास कुण्डो का निवारण कर दिया।

(१०८०) उस महामति]मान ने पति के मरने पर दूसरे पुरुष को ग्रहण करने वाली शूद्रा स्त्री के उस विप्लव को जो कि भर्तृगोत्रजो द्वारा किया जा रहा था, निवारित कर दिया।

(१०८१) अपुत्र विपन्न (मृत) के पुत्रियो का वह और्ध्वदैहिक विप्लव दूर किया जो कि लोभी उसके गोत्रजो द्वारा किया जा रहा था।

(१०८२) सूहभट्ट द्वारा नष्ट किया गया शिशुओ के शास्त्र पाठादि पुनः करने के लिये इस विद्वान ने विद्वानो को वृत्ति दान दी।

(१०८३) 'राजा ने तिलक के व्याज से सत्य एवं धर्म का विभाग कर दिया।

(१०८४) पत्तला घोष देशो (क्षत्रो) में अन्य लोगो द्वारा ग्रामो पर लगाया गया लोत दण्ड प्रथम वर्ष मे निवारित कर दिया गया।

(१०८५) शाकट (२००० पलो) भर का चिरस्थिति मूल्य निरूपण निवारित कर, वस्तुओ की प्रति मासिक मूल्य व्यवस्था करा दी।

(१०८६) देश काल की अपेक्षा से विदेश से आये अर्थों का मूल्य व्यवस्थापित (निर्धारित) कर षड्यन्त्र को दूर किया।

(१०८७) विदग्ध शीर्यभट्ट ने उत्कोचफल नही बल्कि वर्षोपकार द्वारा अविनश्वर धर्मफल प्राप्त किया।

(१०८८) उस समय ज्ञान (रस) का विज्ञाना-कांक्षी प्राणियो की देहस्थ ही इच्छासिद्धि राजा के पुण्यफल से शीघ्र ही हो जाती थी।

(१०८९) उस राजा ने महा श्री शिर्यभट्ट के द्वारा राजकाणटिक (अनुचर) को निवारित किया।

(१०९०) भावी राजाओ के निर्धारण पदाङ्कित दुर्व्यवस्था पथ मे अर्गला को उसने दूर कर दिया।

(१०९१) धर्म पर स्थित उसने प्रति पत्तन (नगर) मे सदावृत्त (सदाचार) स्थापित किया।

मुषितो ग्रामसीमायां ग्रामेभ्यः प्रापितो धनम् ।
अरण्येऽरण्यनाथेभ्यः पान्थस्तेन महीभुजा ॥ ८१८ ॥

८१८ ग्राम सीमा पर मुषित (लुटे) व्यक्ति का ग्रामों से और अरण्य में लुटे पथिक को अरण्य-स्वामियों से वह महीभुज धन प्राप्त[1] कराता था ।

---

८१७. (१) दण्डत्रय : वाक्‌दण्ड, मनोदण्ड एवं कायदण्ड अथवा शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक भी इस दण्डत्रय शब्द से अभिप्रेत है । यहाँ पर दण्ड-त्रय का अर्थ स्पष्ट नही है । ब्राह्मणो पर तीन प्रकार के दण्ड सिकन्दर बुतशिकन के समय लगाये गये थे ।

मुसलिम शरियत के अनुसार जकात भी लिया जाता था । इसे सिकन्दर ने सब पर लगाया था । इसकी वसूली भी दूसरे करो के समान होती थी । हिन्दू मुसलमान सबको देना पडता था । केवल सूफी और उलमा लोग इस कर से मुक्त थे (म्युनिख : पाण्डु० : ६४ बी०) । यूसुफ शाह मल्लाहो के अतिरिक्त सब से यह कर वसूल करता था । (हैदर मल्लिक : पाण्डु : ८२ बी०) ।

अन्य दण्डो मे तिलक न लगाना, श्मशान मे मृतको को न फूँकना आदि अनेक प्रकार के दण्ड थे । जो केवल हिन्दुओ पर लगा दिये गये थे ।

(२) एक माष = माशा : चार तोला का एक पल होता था । काश्मीरी मान्यता के अनुसार १६ माषा का एक तोला होता था । उत्तर भारत मे १२ माषा का एक तोला होता है । तीन पल का १२ तोला होता है । जजिया १९२ माषा सिकन्दर तथा अलीशाह के समय देना पडता था । सुलतान जैनुल आबदीन के समय वह घटकर १ माषा मात्र रह गया था । अर्थात् ९९ : ५ प्रतिशत घटा दिया गया था । सुलतान ने पूर्णतया जजिया इसलिये नही उठाया कि उलमा तथा मौलवी तथा कट्टरपन्थी उसका विरोध करते थे । मुसलिम कट्टरपन्थी भावना का आदर करते हुए नाममात्र कर लगाया गया था । उसकी भी वसूली नही होती थी (म्युनिख : पाण्डु० : ७० ए०; फिरिस्ता ६५७) ।

पाद-टिप्पणी :

८१८. (१) धनप्राप्त : यह आधुनिक प्युनिटिव तथा कलेक्टिव कर तुल्य है । बृटिश भारतीय सरकार ने सन् १९४२ के स्वाधीनता आन्दोलन के समय रेलो तथा डाको का तार काटने पर जहाँ तार कटता था वहा सामूहिक कर लगा देती थी । इसी प्रकार भारतीय गणतन्त्र तथा बृटिश शासन मे साम्प्रदायिक दंगो मे लूटमार तथा नष्ट की गयी सम्पत्ति का हर्जाना पूरे मुहल्ले, कस्बा तथा नगर से वसूल किया जाता था । यह प्युनिटिव टैक्स कहा जाता है । इसका सिद्धान्त उस समय तथा वर्तमान काल मे भी यही है कि जिस क्षेत्र मे दुर्घटना होती है, उस क्षेत्र के लोगो की जिम्मेदारी होती है कि अपराध को रोके यदि वे नही रोकते, तो अपने नागरिक कर्तव्यो से विरत होते हैं । उन्हे दण्ड देना ही पडेगा । अवाछित तत्वों को समाज प्रश्रय न दे और उन्हे अपराध से विरत करे वही सिद्धान्त इस कर का है । तबकाते अक-बरी मे उल्लेख है—'उसके राज्य मे जहाँ कहीं भी चोरी होती थी तो उसका तावान वह उस स्थान के धनी लोगो से लेता था । इस प्रकार चोरी का पूर्णतया अन्त हो गया (उ० तै० भा० २ : ५१६; तबकाते अकबरी ३ : ४३६) ।'

पीर हसन लिखता है—'सुलतान ने अपने मुल्क मे मशहूर कर दिया था कि चोरो के माल मसरूका को गावो के नम्बरदार और चौधरी बतौर तावान के दें । इस तरह चोरी रस्म उसकी कलमरू से खत्म हो गयी । (उर्दू अनुवाद : पृष्ठ : १७३) ।'

यदि किसी गाव मे डाका आदि पडता तो गाव के मुख्य-मुख्य व्यक्तियो को जुरमाना देना पडता था । इस प्रकार बिना चौकीदारो की ताकत और सरकारी खर्च बढाये डाका तथा चोरी आदि समाप्त

हासाः श्मशानदेवीनां सूहभट्टं प्रतीव तम् ।
प्रतिस्थानं विमानानि प्रेतानामद्युतंस्तदा ॥ ८१९ ॥

८१९ उस समय सूहभट्ट के प्रति श्मशान देवियों के हास्य सदृश प्रतिस्थान पर प्रेतों के विमान (गृह) शोभित हो रहे थे।

म्लेच्छैरुपद्रुतां क्षोणीमक्षीणकरुणो नृपः ।
उदहार्षीत्क्रमादेवं दानवैरिव केशवः ॥ ८२० ॥

८२० इस क्रम से म्लेच्छों द्वारा पीड़ित पृथ्वी का दयालु नृप ने उसी प्रकार उद्धार किया, जिस प्रकार दानव पीड़ित पृथ्वी का केशव[1] ने।

उच्छृङ्खान्स नयन् भङ्गं निम्नानापूरयन् नृपः ।
स्वकीर्तिबीजवापार्थमनुद्घातां महीं व्यधात् ॥ ८२१ ॥

८२१ उन्नतों को नमित तथा निम्नों को आपूरित करते हुये, राजा अपनी कीर्तिबीज बोने के लिये पृथ्वी को उद्घातरहित (सम) बना दिया।

भूपतेः परदारेषु निष्कौतुकमयं व्रतम् ।
अभज्यत परं तस्य परस्त्रीपरिरम्भणे ॥ ८२२ ॥

८२२ उस राजा का परस्त्री परिरम्भण के कारण, परदारविषयक निष्कौतुक व्रत टूट गया।

हो गये। जनता घरो मे सुखनिद्रा लेती थी। वे निर्भय होकर जंगलो तथा एकाकी स्थानो का भ्रमण करते थे (म्युनिख : पाण्डु० : ६९ बी०)।

पाद-टिप्पणी :

[1] ८२०. (१) केशव : केशी एक दानव था। वृन्दावन मे गोपो की गायो की हत्या कर देता था। वह कंस का अनुचर था। इसके शरीर मे दश सहस्र हाथियो का बल था। उसने अश्व की आकृति मे कृष्ण पर आक्रमण किया। वह कंस की प्रेरणा द्वारा भगवान कृष्ण को मारने आया था। किन्तु भगवान ने उसके फैले मुख मे हाथ डाल कर उसका वध किया।

इसका निवासस्थान ऋष्यमूक पर्वत था। केशी का वध करने के कारण भगवान नाम केशव पड गया (सभा : ३८; अश्व : ६९ : २३; मौसल : ६ : १०; भा० : १० : ३७ : २६; गर्ग स० : १ : ६)। जनश्रुति है कि जिस स्थान पर कृष्ण ने केशी का वध किया था वह वृन्दावन-मथुरा मे केशीघाट नाम से प्रसिद्ध है। विष्णु भगवान के चौबीस मूर्तिभेदो में एक प्रतिमा का प्रकार है। केशव का प्रियपुष्प सूर्य कमल तथा फल बेल है।

पाद-टिप्पणी :

८२१ उक्त श्लोक का भावार्थ होगा—'जिस प्रकार बीज बोने के लिए ऊँची भूमि को काट कर तथा नीची को पाटकर पृथ्वी को ऊबड़-खाबड-रहित (सम) कर बोया जाता है, उसी प्रकार राजा उन्नत को दबाकर, गिरो को उठाकर, जनता को अत्यधिक वैषम्यरहित कर अपनी कीर्ति बोने के लिये पृथ्वी को इस प्रकार बना दिया।'

सम्यग्दशबलेनाऽथ सर्वज्ञेन महीभुजा।
सौगतस्तिलकाचार्यो महत्तमपदे कृतः॥ ८२३॥

८२३ पूर्ण दशबल[1] एवं सर्वज्ञ राजा ने सौगत[2] (बौद्ध) तिलकाचार्य को महत्तम[3] पद पर कर दिया।

स शिर्यभट्टस्तिलकः स सिंहगणनापतिः।
सोपानान्यभवन्नुच्चपदारोहे द्विजन्मनाम्॥ ८२४॥

८२४ वह शिर्यभट्ट, तिलक तथा सिंहगणनापति,[1] ब्राह्मणों के उच्च पद ग्रहण में सोपान[2] बने।

मेदिन्याखण्डलस्यासीत् पिकस्येव रसश्रिया।
अखण्डं रसपाण्डित्यं ब्रह्मकुण्डलसेवया॥ ८२५॥

८२५ पृथ्वी के इन्द्र उस राजा का ब्रह्मकुण्डल सेवा के कारण रसपाण्डित्य उसी प्रकार अखण्डित था जिस प्रकार रस श्री के सेवन से पिक का।

कर्पूरभट्टो निर्दर्पः प्राणरक्षो महीभुजः।
गुणिनां शरणं चक्रे स्वगुणैः सुरभिं सभाम्॥ ८२६॥

८२६ राजा का प्राणरक्षक, निर्दर्प कर्पूरभट्ट ने गुणियों को शरण दिया तथा अपने गुणों से सभा को सुरभित किया।

पाद-टिप्पणी :

८२३. (१) दशबल : भगवान् बुद्ध का विशेषण अथवा उपाधि है। भगवान को दश बल—दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि, और ज्ञान प्राप्त थे।

(२) सौगत : सुगत (बुद्ध) धर्मानुयायी, सुगत-मत के मानने वाले को सौगत कहते हैं। सुगत शब्द का प्रयोग कल्हण ने भी किया है। चंकुण ने राजा ललितादित्य द्वारा विहार से लायी सुगत की प्रतिमा राजा से अपनी उपासना के लिये माँग लिया था। सुगत बिम्ब, सुगत, प्रतिमा, सुगत शब्द कल्हण के पूर्व तथा उसके समय और जोनराज तक काश्मीर में प्रचलित था, जब कि भारत में बौद्ध तथा बुद्ध धर्म को लोग भूल गये थे।

(३) महत्तम : यह राजकीय प्रशासन में एक पद था। परशियन इतिहासकारों ने इस पद को दिवाने-कुल जिसका काम कलको अथवा नवीसन्दह का निरीक्षक लिखा है। सम्भवतः यह गांव का मुखिया समकक्ष अधिकारी अथवा पंचायत का सभापति होता था (आई० : ई० : ८-२, ई० : आई० : २९; सी० आई०, आई० : ४)।

पाद-टिप्पणी :

८२४. (१) गणनापति : द्रष्टव्य : टिप्पणी श्लोक १२८।

(२) सोपान : अपने त्याग, विद्या तथा मानवीय गुणों के कारण शिर्यभट्ट सुलतान का विश्वासपात्र बन गया। सुलतान उसका ऋणी था। उसके कारण उसकी जान बची थी। प्रतीत होता है मुसलिम जनता में पूर्वकर्मों के प्रति प्रतिक्रिया हो रही थी। हिन्दुओं को काफिर दुश्मन की तरह न देखकर, उन्हें पड़ोसी की तरह देखने की ओर रुझान हो गया था। (म्युनिख : पाण्डु० : २९ बी०)। शिर्यभट्ट, तिलक, कर्पूरभट्ट, रूप्यभट्ट के राजपद ग्रहण करने पर अब तक

पूर्वाब्दग्रहसञ्चाराद् उत्तराब्दग्रहस्थितिम् ।
रूय्यभट्टो विदन्नासीद् विनैव गणितश्रमम् ॥ ८२७ ॥

८२७ रुय्यभट्ट बिना गणितश्रम के पूर्व वर्ष के ग्रह संचार से[1] उत्तरवर्ती वर्ष की ग्रह-स्थिति जान रहा था।

श्रीरामानन्दपादानां भाष्यव्याख्या क्षणे क्षणे ।
वीक्षते शारदाक्षोणीमिव सम्भ्रान्तमानसा ॥ ८२८ ॥

८२८ श्री रामानन्द[1] पाद की सम्भ्रान्त मानस वाली भाष्य व्याख्या प्रतिक्षण शारदा[2] भूमि को देखती थी।

हिन्दुओं को राजपद एवं कर्मचारी न बनाने की जो परम्परा पड गयी थी, वह टूट गयी। जोनराज सत्य ही कहता है, उनके कारण राजद्वार खुल गया और ब्राह्मण उच्च पद पर कार्य करने लगे।

पाद-टिप्पणी :

८२७. (१) ग्रहसंचार : एक राशि से दूसरे राशि में ग्रह के गमन का नाम ग्रह राशि संचार कहा जाता है। एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र गमन का नाम भी ग्रह नक्षत्र संचार है। पूर्व वर्ष के ग्रह संचार से रुय्यभट्ट ने अग्रिम वर्ष की ग्रहस्थिति बिना गणितश्रम के जान लिया था।

वारे रूयं तिथौ रुद्रा नाड्यां चन्द्रदलैव तु ।
जीर्णपत्रप्रमाणेन जायते वर्षपत्रिका ॥

पाद-टिप्पणी :

८२८. (१) रामानन्द : बहुमत इसी पक्ष में है कि रामानन्द गैरकाश्मीरी थे। पर्शियन इतिहास-कारों ने भी रामानन्द का उल्लेख किया है। उनके वर्णन का आधार जोनराज की राजतरंगिणी ही है। उनका मत है कि सुलतान के सम्मुख रामानन्द संन्यासी उपस्थित हुए थे। वे विद्वान थे, महाभाष्य के ज्ञाता थे।

श्रीकण्ठ कौल ने अपने पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ जोन-राजतरंगिणी की अंग्रेजी भूमिका पैरा १४९ पृष्ठ १०८-१०९ में रामानन्द को वैष्णव सुधारक संन्यासी लिखा है। काश्मीर में भक्ति सम्प्रदाय प्रवेश कराना उनका उद्देश्य माना जाता है। परन्तु प्रतीत होता है कि उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली क्योंकि ब्राह्मण उनके मिशन के विषय से अनभिज्ञ थे।

वैष्णव सम्प्रदायवादी रामानन्द स्वामी का जन्म सन् १२९९ ई० = विक्रम संवत् १३५६ माघ कृष्ण सप्तमी तथा मृत्यु वैशाख सुदी तृतीया = विक्रम १४६७ सम्वत = १४१० ई० वैष्णव मान्यता के अनुसार है। बडशाह का समय १४२० से १४७० ई० है। इससे यह प्रकट होता है कि रामानन्द का देहावसान जैनुल आबदीन के राज्यारोहण के पूर्व ही हो गया था।

रामानन्द के शिष्य कबीर साहब थे। कबीर साहब की जन्म तिथि निश्चित नहीं है। परम्परागत जन्म तिथि ज्येष्ठ पूर्णिमा, चन्द्रवार विक्रमी संवत् १४५५ = सन् १३९८ ई० के लगभग माना जाता है। एक मत है कि उनका जन्म सन् १३८० ई० में हुआ था। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में माघ सुदी एकादशी विक्रमी सम्वत १५७५ = सन् १५१८ ई०, अगहन सुदी एकादशी सम्वत १५०५ = सन् १४४८ ई० तथा दूसरी तिथि विक्रमी १५५२ = सन् १४९५ ई० रखी जाती है। कबीर साहब ने अपने गुरु का कहीं अपनी रचना में नाम स्पष्ट नहीं किया है। काशी में जनश्रुति है कि कबीर साहब बाल्यावस्था में गंगा जी के घाट की सीढी पर सोये थे। ब्राह्ममुहूर्त में रामानन्द स्नान करने जा रहे थे। उनका चरण कबीर पर अन्धकार में पड गया। उस समय कबीर साहब वयस्क नहीं थे। इससे भी प्रकट होता है, रामानन्द की मृत्यु के समय उनके जन्म की मान्यता के अनुसार कबीर

गान्धारसिन्धुमद्रादिभूभुजस्तस्य भूभुजः ।
ग्राम्या इवाभवन्नाज्ञाकारिणो जितवैरिणः ॥ ८२९ ॥

८२९ गान्धार, सिन्धु, मद्र आदि के राजा वैरि-विजेता[1] उस भूपति के ग्रामीण तुल्य आज्ञाकारी हो गये थे ।

युद्धे जितं ततो वध्यं खुःखरेन्द्रेण भूपतिः ।
मालदेवं मद्रराजमाज्ञया निरमोचयत् ॥ ८३० ॥

८३० युद्ध में खुःखरेन्द्र[1] द्वारा विजित तथा वध्य मद्रराज मालदेव[2] को राजा ने आज्ञा द्वारा मुक्त करा दिया ।

साहब की आयु लगभग १२ वर्ष की थी। किसी भी तथ्य से प्रमाणित नहीं होता कि वैष्णव स्वामी रामानन्द जी काश्मीर गये थे। जोनराज वर्णित रामानन्द कोई और ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। जो व्याकरण मे पारंगत थे।

(२) शारदा भूमि = काश्मीर ।

पाद-टिप्पणी :

८२९. (१) विजेता : जोनराज ने शिहाबुद्दीन सुलतान की तुलना ललितादित्य से की थी। शिहाबुद्दीन की विजययात्रा की तुलना ललितादित्य की विजययात्रा कल्हण वर्णित-शैली पर किया है। उसने बड़शाह को काश्मीर के सुलतानो मे सर्वश्रेष्ठ विजयकर्ता रूप मे चित्रित किया है। वह श्लोक ८२९ से ८३६ तक बडशाह के विजयो का वर्णन करता है। बडशाह की सैन्यशक्ति संघटित थी। उसके समय बारूद के हथियारो का काश्मीर मे प्रचलन हो गया था। अकबर भी अपने सुधारवादी कार्यों एवं विधियो को इसीलिये प्रचलित कर सका था कि वह शक्तिशाली था। उसकी सेना अपने समय की सबसे अधिक शक्तिशाली एवं संघटित थी अन्यथा कट्टर मुल्ला-मौलवियो एवं प्रतिक्रियावादी मुसलमानो द्वारा वह उठाकर फेंक दिया गया होता। जैनुल आबदीन की शक्ति के कारण प्रतिक्रिया वादी एवं कट्टरपंथी सर नही उठा सके थे।

पाद-पिप्पणी :

८३० (१) खुःखरेन्द्र : जसरथ = खुखुर स्वामी शब्द जसरथ के लिये श्लोक ७३० मे प्रयोग किया गया है। इस स्थान पर खुःखरेन्द्र शब्द का प्रयोग किया गया है। दोनो समानार्थक शब्द हैं।

इकबाल नामये जहांगीरी मे खुखुरी किंवा गक्कर के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है—गक्करो (खुख्खरो) के बहुत से कबीले हैं। वे झेलम और सिन्धु नदी के मध्य रहते है। काश्मीर के सुलतान जैनुल आबदीन के समय मे काबुल के अधीनस्थ मलिक किद नामक गजनी के अमीर उस स्थान को काश्मीरियों से जबरदस्ती छीन लिया (मुगलकालीन भारत : हिमायूँ : २ : ३८४ अलीगढ)।

(२) मालदेव : मालदेव के विषय मे लिखा मिलता है कि उसने चालीस वर्ष तक राज्य किया और सन् १३९९ ई० मे कांगडा मे तैमूर के साथ हुए युद्ध मे वीरगति पायी थी (डोगरी निबन्धावली पृष्ठ ११८)। निबन्धावली मे यह भी लिखा है कि मालदेव के तीन पुत्र हमीरदेव, चन्दनदेव तथा सागरदेव थे। हमीरदेव दिल्ली के सुलतान मुबारक शाह का समकालीन था।

जोनराज के वर्णन और डोगरी निबन्धमाला से मेल नहीं खाता। तैमूरलंग के युद्ध मे यदि सन् १३९९ मे मालदेव मारा गया था तो उसका जैनुल आबदीन के राज्यकाल मे जीवित रहना सम्भव नहीं प्रतीत होता। क्योकि जैनुल आबदीन ने सन् १४१९ ई० तथा द्वितीय बार सन् १४२० ई० राज्य प्राप्त किया था। यह मालदेव कोई दूसरा राजा पंजाब की किसी पर्वतीय राज्य का रहा होगा।

राजा राजपुरीराजं नयज्ञः स्वपदातिभिः ।
क्षणाद् भ्रूभङ्गमात्रेण रणसूहमलोठयत् ॥ ८३१ ॥

८३१ नीतिवेत्ता राजा ने भ्रूभंग मात्र से अपने पदातियों द्वारा राजपुरी[1] के राजा रणसूह[2] को क्षण भर में परास्त कर दिया।

उदभाण्डपुरार्धीशं सिन्धुराजोपबृंहितम् ।
स कन्दुकमिवोत्थाप्य मुहुर्मुहुरपातयत् ॥ ८३२ ॥

८३२ सिन्धुराज द्वारा उत्साहित उदभाण्डपुराधीश[1] को उसने कन्दुक की तरह बार-बार उठाकर गिराया।

भौट्टभूमौ महीन्द्रेण गोग्गदेशे कदाचन ।
बाणा गौरखरास्त्रेण गुणैर्लोकाश्च रञ्जिताः ॥ ८३३ ॥

८३३ किसी समय राजा ने भौट्टों की भूमि गोग्ग[1] देश में गौर एवं उष्ण रुधिर से बाणों को और गुणों से लोगों को रंजित किया।

पाद-टिप्पणी :

८३१. राजपुरी : राजौरी।

(२) राजा रणसूह : जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि राजौरी अर्थात् राजपुरी के राजा ने बिना संघर्ष ही बडशाह के पैदल सैनिकों को अपने राज्य में प्रवेश करने पर उसकी अधीनता स्वीकार की अथवा करद राजा बन गया। राजपुरी के इतिहास का सबन्ध काश्मीर से घनिष्ट तथा वह प्राय: काश्मीर के राजाओं के अन्तर्गत उनके शासन अथवा करद रूप में रहा है। परन्तु अवसर मिलते ही राजपुरी स्वतन्त्र हो जाता था। काश्मीर के राजा सबल होते ही पुनः राजपुरी पर अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास करते थे।

काश्मीरी में सूह का अर्थ शेर होता है। शेर को संस्कृत में सिंह कहते है। रणसूह रणसिंह नाम का अपभ्रंश है।

पाद-टिप्पणी :

८३२ (१) उदभाण्डपुर : सिन्धराज ने जैनुल आबदीन की बढती शक्ति देखकर, उदभाण्डपुर अर्थात् ओहिन्द के शासक को बडशाह की शक्ति और आगे न बढ़ने देने के लिये उत्साहित किया था, ताकि उसके राज्य के लिये भय न उपस्थित हो। इसी प्रेरणा पर बडशाह ने ओहिन्द पर बार-बार आक्रमण कर उसे पराजित किया। यहाँ संघर्ष हुआ था। यह संघर्ष कई बार हुआ था। यही ध्वनि इस पद से निकलती है। बडशाह के समय सैय्यद एवं लोदी वंशो का क्रमशः दिल्ली में राज्य था। अपेक्षाकृत वे दुर्बल बादशाह थे। उनमें स्वयं इतनी शक्ति नही थी कि वे अपने सूबों तथा राज्यो को ठीक से सघटित करते। अतएव बडशाह का बाहर कोई शक्तिशाली राजा, सूबेदार या सुलतान सामना करने वाला नही रह गया था। ओहिन्द का सरदार सिकन्दर सुलतान के समय अधीनस्थ किंवा करद हो गया था। अलीशाह के समय काश्मीर की शक्ति छिन्न एवं दुर्बल देखकर वह स्वतन्त्र हो गया था। जैनुल आबदीन ने अपने राज्य की पूर्व सीमा पर पहुँच कर सभी स्वतन्त्र तथा अर्धस्वतन्त्रो को अधिकृत किया था।

पाद टिप्पणी :

८३३ (१) गोग्गदेश : यह स्थान लद्दाख प्रदेश है। भौट्टदेश बालतिस्तान तथा लद्दाख था। भौट्टो की भूमि से स्पष्ट होता है कि वह स्थान भौट्टदेश में था।

श्री मोहिबुल हसन ने इसे 'गुंज' लिखा है।

समिज्जिते शयादेशे क्रूरादेशो महीपतिः।
सुवर्णबुद्धप्रतिमां यवनेभ्यो ररक्ष सः ॥ ८३४ ॥

८३४ युद्ध में विजित शय[1] देश में क्रूर आदेश वाले उस महीपति ने यवनों[2] से सुवर्ण बुद्ध प्रतिमा रक्षित की।

इनका मत है कि गढवाल तथा कुमायूँ के उत्तर तिब्बत का एक भाग है (पृष्ठ : ७२ नोट १)। किन्तु गुजक्षेत्र लद्दाख का पश्चिमी भाग है। गोग्ग शब्द सम्भवत. इसी गुंज अंचल के लिये प्रयोग किया गया है। गुज राज्य लद्दाख राज्य से अलग था। गुज ही जोनराज वर्णित गोग्ग देश है (ए स्टडी ऑन क्रोनोलोजी ऑफ लद्दाख ८५, ११५)। ल० द्रगूस० दग्पल० दव्स० जैनुल आबदीन के आक्रमण का उल्लेख नहीं करता। अपितु लिखता है कि सुलतान गुज से भेंट लेता था। वह एक प्रकार का करद राज्य था। राजा का भतीजा प्रतिभू के समान काश्मीर लाया गया। उसने इस्लाम कबूल कर लिया। उसका नाम अली पडा (ए स्टडी ऑन क्रोनोलोजी ऑफ लद्दाख : ११६)। सन् १४३१ ई० मे लद्दाख पर पुन. आदम खा ने जो जैनुल आबदीन का बडा लडका था आक्रमण किया था (वही. ११६)।

पाद-टिप्पणी :

८३४ (१) शय : भौट्टो के प्रसग वर्णनक्रम मे होने के कारण यह स्थान भौट्टदेश अथवा उसके कही समीप होना चाहिये। एक मत है लद्दाख-लेह के समीप दक्षिण पूर्व दिशास्थित ९ मील दूरस्थ सिन्ध तटीय, शेल ग्राम है। यह अपनी बुद्ध प्रतिमा के कारण अब भी प्रसिद्ध है। मैंने सन् १९६६ ई० मे लद्दाख यात्रा लेह से निशूल तक सडक से की है। इस नाम का ग्राम अवश्य है। परन्तु जोनराज वर्णित शय ग्राम यही है, यह अनुसन्धान का विषय है। लेह मे ऊँचाई के कारण ब्लडप्रेशर बढ जाता है। मैं अपनी यात्रा मे बहुत परीशान हुआ हूँ। मेरे लिये वहाँ अब जाना सम्भव नही है। जिस समय मैं गया था, उस समय तक जोनराज की राजतरगिणी नही पढी थी अन्यथा उस दृष्टि से यहाँ पूछता और देखता। लद्दाख की शय राजधानी थी। यहाँ एक शिलालेख मिला है। लद्दाख का सबसे दुउलची विहार यहीं पर था। मिर्जा हैदर ने भी शेह को शय लिखा है। शेह का अर्थ शहक्षेत्र तथा लद्दाख दोनो है (द्रष्टव्य : ए स्टडी ऑन दी क्रोनिकल ऑफ लद्दाख : ११५–११६)।

(२) यवन एवं स्वर्ण प्रतिमा : यवन का अर्थ यहाँ मुसलमानो से है। श्री मोहिबुल हसन ने फैन्की के इस मत की आलोचना की है कि मुसलमान बुद्ध प्रतिमा भंग करना चाहते थे। क्योकि वे वहाँ उतने शक्तिशाली नही थे। उनका मत है कि यह घटना सन् १४३०–१४४० ई० के मध्य की होगी (मोहिबु० : ७२, उर्दू : ९९ नोट ४)। जैनुल आबदीन की सेना मे गैरकाश्मीरी मुसलमान भी थे। गैरकाश्मीरी मुसलमानो के लिये यवन शब्द का प्रयोग किया गया है। यह श्लोक ८४१ से प्रकट होता है। मान भी लिया जाय तो यवन जैनुल आबदीन के समय वहाँ पहुँचे थे। मुसलमानो की तत्कालीन यह नीति थी कि जहाँ वे विजय करते थे धर्मोन्माद मे मूर्ति एव मन्दिर भंग करते थे। इस घटना का वर्णन जैनुल आबदीन के आक्रमण के समय किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि जैनुल आबदीन की सेना ही के कुछ लोगो ने स्वर्ण प्रतिमा तोडकर लाभ उठाना चाहा होगा जिसे बडशाह ने रोक दिया। सेना मे हिन्दू नही थे। बौद्ध प्रतिमा स्वय तोडते ऐसी अवस्था मे वे नही थे जोनराज के वर्णन पर अविश्वास करने को कोई कारण नही प्रतीत होता (द्रष्टव्य : इण्डियन-एण्टीक्वेरी : सन् १९०८ ई० जुलाई : ३७ : १८८–१८९)।

कपाकरङ्कपस्तस्य निकषो भौट्टतेजसाम् ।
अप्रकाशां प्रतापोऽथ सल्लूतनगरीं व्यधात् ॥ ८३५ ॥

८३५ भौट्टों के तेज का निकष कण करंकप का प्रताप सल्लूत[1] (कुल्लूत-ल्लूत ?) नगरी को आभाहीन कर दिया ।

केवलं हृदयं शून्यं भौट्टानां नाभवत्तदा ।
भूमिपालभयावेशात् कोपोऽपि चिरसञ्चितः ॥ ८३६ ॥

८३६ उस समय भौट्टों[1] का हृदय ही शून्य नहीं हो गया, अपितु भूमिपाल भय के आवेश से चिरसंचित कोप भी ।

प्रकृतीनां दददूराजा शोपाप्यायौ यथोचितम् ।
प्रत्यवेक्षामकार्षीत् स शालीनामिव कर्षकः ॥ ८३७ ॥

• ८३७ दानशील राजा प्रजाओं के शोषण एवं पोषण (वृद्धि) को उसी प्रकार यथोचित रूप से देख-रेख करता था, जिस प्रकार कृषक शालि (धान) की ।

नासहिष्टैव तच्चापं तुलां शार्ङ्गपिनाकयोः ।
दूरकार्यार्थसाधिन्या धनुष्मत्ता भ्रुवः पुनः ॥ ८३८ ॥

८३८ उसका धनुष विष्णु[1] एवं शंकर[2] के धनुष की तुलना सहन नहीं किया, धनुष्मत्ता दूर से कार्य सिद्ध करने वाली भ्रू में थी ।

पाद-टिप्पणी :

८३५. (१) सल्लूत : श्रीकण्ठ कौल का मत है कि यह ग्राम (मलवे) लद्दाख मे है (जोन० : ११० : नोट १) । एक मत उसे कुलूत तथा लूत मानने का अनुमान करता है। कुलूत वर्तमान कलू उपत्यका है । कागडा है। शारदा पाण्डुलिपि मे कुलूत शब्द नही दिया गया है। मोहिबुल हसन ने इसे कुलू उपत्यका माना है (काश्मीर अण्डर सुलतान : ७२, द्रष्टव्य इण्डियन एण्टीक्वेरी : ३७ : १८८) ।

पाद-टिप्पणी :

८३६. (१) भौट्ट : तबकाते अकबरी मे लिखा गया है कि—'तिब्बत तथा वह समस्त राज्य जो सिन्ध नदी के तट पर स्थित है, सुलतान के अधिकार मे आ गया (उ० तै० भा० : २ : ५१६) ।'

पाद-टिप्पणी :

८३८. (१) विष्णुधनुष : भगवान् विष्णु के धनुष का नाम 'शार्ङ्ग' है । महाभारत मे इसे कृष्ण का धनुष कहा गया है (सभा० : २ : १४) । कौरव सभा मे भगवान् कृष्ण की एक भुजा मे यह धनुष शोभित था (उद्योग० : १३१ : १०) । इन्द्र के विजय नामक धनुष से इसकी तुलना की गयी है (उद्योग० : १५८ : ४) । ब्रह्मा ने इसका निर्माण किया था और भगवान् विष्णु को दिया था (अनु० : १४१ : ८) ।

(२) शंकरधनुप : भगवान् शंकर के धनुप का नाम 'अजगव' है ।

अस्तं यस्तमसां कुलानि चलतो नेतुं सदा वाञ्छति
क्षीणं तं वसुनाऽभिपूर्य शशिनं संवर्धयत्यञ्जसा ।
काश्यप्यामवकाशमात्रघटनां शाखामुखै रुन्धतो
वृक्षान् वृष्टिभरैश्च योऽस्य कतमो भानोस्तुलामर्हति ॥ ८३९ ॥

८३९ जो सदा तमःपुञ्ज को बलपूर्वक अस्त कर देने की वाञ्छा करता है उस क्षीण चन्द्रमा को वसु[1] द्वारा परिपूर्ण कर तथा पृथ्वी तल पर अवकाश मात्र को शाखाओं द्वारा अवरुद्ध करते वृक्ष को वृष्टि द्वारा जो शीघ्र संवर्धित करता है, उस सूर्य की तुलना योग्य कौन है ?

लद्दराजसुतं राजा नोस्रतं यमवर्धयत् ।
अहृतद्रविणं तं स द्रोहीति निरवासयत् ॥ ८४० ॥

८४० उस राजा ने लद्दराज के पुत्र नोस्रत (नसरत ?) को जिसे कि बढ़ाया था, बिना द्रव्यहरण किये, उसे द्रोही[1] समझकर, निर्वासित कर दिया ।

पाद-टिप्पणी :

८३९. (१) वसु : अष्टवसु नाम से वसुओं की प्रसिद्धि है (तै० स० : ५ : ५ : २) । ऋग्वेद मे देवताओ का त्रिपदीय विभाजन निर्देशित है । वसु, रुद्र एवं आदित्यो को क्रमशः पृथ्वी, अन्तरिक्ष एव स्वर्गनिवासी कहा गया है । ब्राह्मण ग्रन्थो मे वसु, रुद्र एवं आदित्यो की संख्या क्रमशः अष्ट, एकादश एवं द्वादश दी गयी है ।

ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु वसुओ की प्रार्थना की जाती है । वे वासुदेव के अंश माने जाते है (भा० : २ : ३ : ३; मत्स्य० : २ : २०–२१; ९ : २९) ।पुराणो के अनुसार अष्ट वसु : (१) अनल, (२) अनिल, (३) अप्, (४) धर, (५) ध्रुव, (६) प्रत्यूष (७) प्रभास एव (८) सोम हैं । भागवतपुराण मे इनका नाम—(१) द्रोण, (२) प्राण, (३) ध्रुव (४) अर्क, (५) अग्नि, (६) दोष, (७) वसु एवं (८) विभावसु है । महाभारत मे 'अप' के स्थान पर 'अहः' तथा शिवपुराण मे 'अजयं' नाम दिया गया है । अष्ट वसुओ के नायक अग्नि है । तैत्तिरीय संहिता मे वसुओ की संख्या ३३३ दी गयी है । ब्राह्मण ग्रन्थो मे बारह वसुओ का निर्देश प्राप्त है ।

शुंभ का वध वसुओ ने किया था । जालंधर दैत्य का शंभु अनुचर था । वसुओ का कालकेयो से युद्ध हुआ था । स्कन्दपुराण मे वर्णन किया गया है कि महिषासुरमर्दिनी दुर्गा के हाथो की उगलियो की सृष्टि अष्ट वसुओ के ही तेज से हुई थी । पितृशाप के कारण एक समय वसुओ को गर्भवास सहना पडा था । उन्होने १२ वर्षों तक नर्मदा तट पर घोर तपस्या की । भगवान् शकर ने वरदान दिया । तत्पश्चात् उन्होंने वहाँ शिवलिंग स्थापित कर स्वर्गगमन किया ।

पाद-टिप्पणी :

८४० (१) द्रोह-दया : सुलतान की न्याय-प्रियता तथा प्रतिहिंसा भाव के अभाव का यहां दर्शन मिलता है । वह क्रूर नही था । विद्रोह करने पर मुसलिम सुलतान तथा बादशाह सर्वस्व हरण करने के साथ वध करा दिया करते थे, वह साधारण बात थी । जैनुल आबदीन ने लद्दराज के पुत्र नसरत के विद्रोही होने पर न तो उसका द्रव्य लिया, न सम्पत्ति हरण की ओर न उसका वध कराया । उसे केवल काश्मीर से निर्वासित कर दिया । इससे प्रकट होता है कि राजा मे प्रतिहिंसा की मात्रा अत्यन्त न्यून थी । वह पर पूर्वा एवं पूर्व सम्बन्धो का भी विचार किया करता था । लद्दराज की राजसेवा का ध्यान कर भी उसने करुणा दिखाई होगी । इससे सुलतान की महत्ता प्रकट होती है ।

सुलतान जैनुल आबदीन मृत्यु दण्ड का पक्षपाती

मक्कदेशागतो जातु पुस्तकाडम्बरं वहन्।
सैदालनामा यवनो राजेन्द्रं तमुपागमत्॥ ८४१ ॥

८४१ किसी समय पुस्तकों का ढेर वहन किये, मक्क (मक्का) देश से सैदाल[1] (सादुल्ला) नामक यवन उस नृपति के पास गया।

गुणान् विकत्थमानं तं गुणिरागी नरेश्वरः।
उपागच्छत् प्रतिदिनं दर्शनायेतरो यथा॥ ८४२ ॥

८४२ गुणिजनप्रेमी नरेश्वर सामान्य लोगों के समान प्रतिदिन उसके पास दर्शन के लिये जाता था, जो कि अपने गुणों की प्रशंसा करता था।

स तस्य पटहस्येव राजाऽपश्यत् क्रमादसौ।
अन्तःसारविहीनत्वं परीक्षायां विचक्षणः॥ ८४३ ॥

८४३ परीक्षा में दक्ष, वह राजा क्रम से पटह सदृश उसकी अन्तःसार विहीनता देख ली।

म्लेच्छमस्करिणि क्षोणिप्राणेशो निर्गुणेऽपि सः।
प्रेमाणं नामुचत् पुत्रे पितेव करुणार्णवः॥ ८४४ ॥

८४४ करुणासागर क्षोणिप्राणेश उस राजा ने निर्गुण भी उस म्लेच्छ मस्कर (फकीर) के ऊपर प्रेमभाव उसी प्रकार नहीं त्यागा जैसे पिता अपने पुत्र के प्रति।

प्रदोपस्येव तमसां दुर्घनस्येव विद्युताम्।
दोषाणां बहुता तस्य प्रजाः समुदवेजयत्॥ ८४५ ॥

८४५ रात्रि के अन्धकार तथा दुर्घन के विद्युत सदृश, उसके प्रचुर दोष प्रजाओं को उद्विग्न कर दिये।

तस्मिन्नवसरे कश्चिद्योगिराजो जितेन्द्रियः।
न्यविक्षतोन्नते स्तम्भे योगाभ्यासस्य सिद्धये॥ ८४६ ॥

८४६ उसी अवसर पर कोई जितेन्द्रिय योगिराज योगाभ्यास की सिद्धि के लिये, उन्नत स्तम्भ पर आरूढ़ हुआ।

स्तम्भोपरि नवाहानि निराहारस्त्वपश्यतः।
तस्याशिषैव महिषी राज्ञः पुत्रमजीजनत्॥ ८४७ ॥

८४७ स्तम्भ के ऊपर नव दिनों तक निराहार एवं बिना देखे, (स्थित), उसके आशीर्वाद मात्र से, राजा की महिषी ने पुत्र जन्म दिया।

नहीं था। किन्तु गम्भीर अपराधो के लिये उसे आवश्यक समझता था। साधारण अपराधो के लिये वह साधारण दण्ड देने का पक्षपाती था। पूर्वकाल मे डाकुओ, विद्रोहियों तथा चोरो को वध दण्ड तक दे दिया जाता था। उसने आदेश दिया था कि उन्हे न तो वध दण्ड दिया जाय और न कोडे लगाये जाँय। शृंखलाबद्ध कर उनसे निर्माण कार्य लिया जाता था (म्युनिख : पाण्डु०: ७२ ए०)।

८४१. (१) सैदाल : सैदाल शब्द सादुल्ला अथवा सैय्यद उल्ला दोनो मे से किसी एक का अपभ्रंश है। अधिक सम्भावना यही प्रतीत होती है कि यह सादुल्ला का ही अपभ्रंश होगा।

तपस्यतस्तथा तस्य तत्र तन्नवमं दिनम्।
राज्ञस्त्वनवमं पुत्रजन्मकालमहोत्सवैः ॥ ८४८ ॥

८४८ वहाँ उस प्रकार तपस्या करते उसका नवम दिन तथा पुत्रजन्म-काल महोत्सवों से राजा का अनवय दिन था।

अत्यर्थदर्शनद्वेषात् मदिरामदमोहितः।
स म्लेच्छसहितो योगिराजं तमवधीच्छरैः ॥ ८४९ ॥

८४९ अत्यधिक लोगों के दर्शन द्वेष के कारण, मदिरा मद से मोहित, म्लेच्छ सहित, उस (सैदाल) ने योगिराज को बाणों से मार डाला।

संतप्तैर्मलिनैः स्थूलैर्जनानां तद्विलोकनात्।
भूतले पतितं बाष्पैरपवादैश्च राजनि ॥ ८५० ॥

८५० उसे देखने से लोगों के सन्तप्त मलिन, स्थूल, बाष्प, पृथ्वी तल पर और अपवाद राजा पर पडे।

पृथ्वीनाथोऽथ तच्छ्रुत्वा शुद्ध्यर्थमिव मग्नवान्।
भीह्रीशोकक्रुधाश्चर्यकृत्यचिन्तार्णवेषु सः ॥ ८५१ ॥

८५१ यह सुन कर, शुद्धि के लिये, वह पृथ्वीनाथ, भय, लज्जा, शोक, क्रोध, आश्चर्य एवं कृत्यचिन्तार्णव मे डूब गया।

प्रथमोद्भूतपुत्रेऽपि तस्मिन्नह्नि महीभुजा।
नास्नायि नाभ्यवाहारि न व्यवाहारि नाकथि ॥ ८५२ ॥

८५२ जिस दिन प्रथम पुत्र हुआ था, उस दिन भी महीभुज ने स्नान, आहार, व्यवहार एवं बातचीत नहीं किया।

अन्येद्युर्भूपतिः पृष्टस्मृतिज्ञगुरुकोविदः।
हन्तुर्दण्डं वधं शृण्वन् करुणायन्त्रितोऽभवत् ॥ ८५३ ॥

८५३ दूसरे दिन स्मृतिविज्ञों, गुरुओं एवं कोविदों से पूछा और हन्ता का दण्ड उसका वध सुनकर भूपति करुणाधीन हो गया।

पाद-टिप्पणी :

८४८ श्लोक ८४८ के पश्चात् बम्बई संस्करण में श्लोक क्रम संख्या ११२२–११२६ और मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(११२२) हेमन्त के अन्त मे तुहिनपात होता है, फाल्गुन म दीपक का भी दाह अत्यधिक स्फुरित हो जाता है, ग्रीष्म में तुषार अति शैत्य धारण कर लेता है, प्राय वस्तुनाश का समय आने पर वह अपना धर्म प्रथित करता है।

(११२३) तप कवच का बिना स्पर्श किये बाणों से प्रहारकर्ता की भावी गति निर्दिष्ट करने के लिये ही मानो वह अधोगत हो गया।

(११२४) कुपित होवे उस राजमान्य को देखकर शान्त मानस वह वर्णी, भय के कारण निर्णय से विचलित नहीं हुआ।

(११२५) वह महामना योगी स्तम्भ एवं महाधैर्य से नहीं उतरा, जगत की दृष्टि पर ही नहीं, अपितु शीघ्र ही स्वर्ग पर आरूढ़ हो गया।

प्रतीपं खरमारोप्य प्रतिहट्टं परिभ्रमम् ।
नरमूत्राभिषिक्तस्य कूर्चस्य परिकर्तनम् ॥ ८५४ ॥

८५४ गदहा पर प्रतीप[1] (उलटे) ढंग से बैठा कर, प्रति बाजार में भ्रमण, पुरुषमूत्र से सिंचन, दाढ़ी का कर्तन—

ष्ठीवनं सर्वलोकानां प्रेतान्त्रैर्बाहुबन्धनम् ।
जीवन्मरणमादिक्षद् दण्डं तस्य कृशायतेः ॥ ८५५ ॥

८५५ सब लोगों का (उस पर) थूकना, प्रेत (मृत) की आंत से बाहु बन्धन, उस कृशायति (क्षीण महिमाशाली) को जीते हुये भी मृत्यु का दण्ड[1] दे दिया।

राजनि म्लानिहीनानि दिक्सौगन्ध्यवहानि च ।
अपतन्नाकपुष्पाणि पौराशीर्वचनानि च ॥ ८५६ ॥

८५६ राजा पर म्लानिरहित दिशाओं को सुगन्धित करने वाले स्वर्गीय पुष्प एवं पौरों (पुरवासियों) के आशीर्वचन निपतित हुए।

मद्रराजदुहित्रोः स चतुरस्तनयान् नृपः ।
यथा दशरथो राजा जनकान्तानजीजनत् ॥ ८५७ ॥

८५७ उस नृप ने मद्रराज की दो कन्याओं से, राजा दशरथ के सदृश, जनप्रिय चार पुत्रों को उत्पन्न किया।[1]

(११२६) अतिथि, योगपथिक मेरा वध मत करो—यह कहते हुए वह वर्णी म्लेच्छ मस्करी द्वारा पक्षघात से चूर्ण कर दिया गया।

(१) अनवय : जिस व्यक्ति के आशीर्वाद से राजा को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, वही योगी जब मार डाला गया तो राजा के लिये वह दिन नवीन होकर भी नवीन नही रहा।

पाद-टिप्पणी :

८५४. (१) प्रतीप : मुसलिम परम्परा एवं कानून मे इस प्रकार के दण्ड का विधान है। उसका नाम 'तश्हीर मरदन' है। यह मुसलिम देशो मे दिया जाता था। इस प्रकार का दण्ड काश्मीर मे प्रचलित था। मुख काला कर गदहे पर उल्टे बैठा कर घुमाने की अनेक कथायें मिलती हैं।

पाद-टिप्पणी :

८५५. (१) दण्ड : जोनराज ने सादुल्ला का वर्णन जैनुल आबदीन की न्यायप्रियता दिखाने के लिये किया है।

बडशाह ने सेखुल इसलाम से सलाह ली। उसने सादुल्ला को मृत्युदण्ड देने का सुझाव दिया। हिन्दू राज्य मे ब्राह्मण अवध्य थे। सादुल्ला मक्का से आया था। वह मुसलमानो का सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थान है। उसके अरब होने के कारण सुलतान ने उसका वध करना उचित नही समझा। अरब से ही मुसलिम धर्म फैला है। सुलतान ने अपने तीर्थ तथा अरब के प्रति श्रद्धा के कारण सादुल्ला को मृत्युदण्ड नहीं दिया। उसने एक प्रकार से हिन्दू राजाओं की परम्परा का अनुकरण किया। हिन्दू राज्य मे ब्राह्मणो को मृत्युदण्ड दिया ही नहीं जा सकता था। बडशाह ने विवेक सन्तुलन का परिचय दिया है। परशियन इतिहासकारों ने लिखा है कि उसने शराब के नशे की हालत म हत्या की थी अतएव उसे मृत्युदण्ड नही दिया गया।

पाद-टिप्पणी :

८५७ (१) दो कन्या : परशियन इतिहासकारों ने दो सगी बहनों से शादी की बात सुलतान

कुतुबुद्दीन के सन्दर्भ मे लिखी है। उनमें सैय्यद अली हमदानी के कहने पर उसने एक को तलाक दे दिया था।

यदि मद्रराज की दोनो कन्यायें बहन थी, तो उनका विवाह एक साथ सुलतान के साथ नही हो सकता था। शरीयत के अनुसार एक बहन की मृत्यु अथवा तलाक देने के पश्चात् ही दूसरी बहन से विवाह हो सकता था। अन्यथा विवाह गैरकानूनी माना जायगा। सुलतान शरीयत के खिलाफ काम नही कर सकता था। निष्कर्ष यही निकलता है कि वे सगी बहने न होकर राजा की विभिन्न रानियो से दो कन्याये होगी।

जैनुल आबदीन का प्रथम विवाह ताज खातून से हुआ था। वह सैय्यद मुहम्मद बैहकी की कन्या थी। श्रीवर ने उसका नाम बोधा खातून लिखा है (जैन० : रा० : ७ : ४७)। एक मत है कि बोधा शब्द मखदूम का संस्कृत रूप है। बोधा खातून का अपर नाम मखदूम भी था। दूसरा मत है कि उसका नाम 'बोद' था। बादशाह का नाम बडशाह पड गया था। सम्भव है कि प्रधान महिषी को 'बोड' या 'बोद' कहने लगे थे। काश्मीरी भाषा मे 'बोड' का अर्थ बडा होता है। इसे दो कन्यायें हुई थी। उसमे एक का विवाह सैय्यद बैहकी के साथ हुआ था (बहारिस्तान शाही . पाण्डु० . २९-३० बी०)। दूसरे का विवाह पखली के शासक के साथ हुआ था। बैहकी बेगम को कोई पुत्र नही था। उसकी मृत्यु सन् १४६५ ई० मे हुई थी। उसकी कब्र कुतबुल अलम शेख बहाउद्दीन गंज नगर नागर के बाहर हरि पर्वत के समीप है। यह आजकल रक्षित स्थान घोषित किया गया है (कशीर . १७८)। मजारे बहाउद्दीन मे उसकी कब्र के ऊपर लिखे एक शिलालेख से पता चलता है कि उसकी मृत्यु हिजरी ८७० = सन् १४६५ ई० मे हुई थी। नाम 'मखदूम खातून' लिखा गया है।

जोनराज और श्रीवर के वर्णन मे अन्तर है। जोनराज के अनुसार मद्रराज की दो कन्याओं का विवाह जैनुल आबदीन के साथ हुआ था। परन्तु श्रीवर के अनुसार मद्रराज की केवल एक कन्या का विवाह हुआ था।

वह माणिक्य किंवा मानिक देव की बहन थी। उसका पुत्र अधम खा था। वह सुलतान नही बन सका था। उसकी मृत्यु सन् १४५२ ई० मे हुई थी। उसकी कब्र अधम खा के पार्श्व मे है।

दो सगी बहनो का विवाह मुसलिम शरियत के अनुसार नाजायज माना जाता है। मद्रराज की दो विभिन्न रानियो से कन्याओ का होना सम्भव हो सकता है। वे एक ही पिता की सन्तान होने पर भी विभिन्न माताओं से जन्म ग्रहण कर सकती है। किन्तु प्रियदर्शनी पुस्तक के अनुसार जम्मू के राजा भीमदेव का पुत्र अजदेव तथा हुसेल देव थे।

एक कथा और मिलती है। राजौरी के राजा सुन्दरसेन ने अपनी कन्या राजा के विवाह के लिये काश्मीर भेजा। जैनुल आबदीन उस समय डललेक पर था। राजकुमारी के दल को आता देखकर उसने पूछा 'किस मा की वह डोली है?' उत्तर मिलने पर कि वह राजौरी की राजकन्या है उसके विवाह के लिए आ रही है। बडशाह ने उत्तर दिया—उसने मा कह दिया है अतएव विवाह नहीं करेगा। तथापि वह राजौरी वापस नही गयी। मुसलिम बना ली गयी। राजप्रासाद मे रहने लगी। उसने राजौरी कदल एक पुल मार नहर अर्थात् महासरित पर बनवाया। राजौरी के राजा ने दूसरी कन्या भेजी। उसने इसलाम कबूल कर विवाह किया। उसका नाम सुन्दर देवी था। लोग उसे सुन्दर माजी कहते थे (जे० पी० एच० एस० : २ : १४५।) किन्तु तजकिरा राजगाने-राजौरी में इस विवाह का उल्लेख नही मिलता।

तबकाते अकबरी मे केवल ३ पुत्रो का नाम दिया गया है। आदम खां, हाजी खां, बहराम खा है। बहराम खां सबसे छोटा था (उ० तै० भा० : २ : ५१९)

ज्यायानादमखानः स हाज्यखानस्तथा परः ।
खानो जस्सरथः खानो बहरामश्च संज्ञितः ॥ ८५८ ॥

८५८ ज्येष्ठ आदमखान[1] तथा हाज्यखान[2], जस्सरथखान[3] एवं बहरामखान[4] नाम थे।

पाद-टिप्पणी :

८५८. श्लोक ८५८ के पश्चात् बम्बई संस्करण श्लोक संख्या ११३७-११३९ अधिक हैं। उनका भावार्थ है—

(११३७) सूहभट्ट ने जिन हिन्दुओं को बलात् पीडित किया वे वेश परिवर्तित कर परदेश चले गये।

(११३८) अपने आचार से नित्य रत हृदय से उसके आचार के द्वेषी द्विज अपना (राजा का) आचार करने के लिये बलात् प्रेरित किये गये।

(११३९) भय से अपनी रक्षा हेतु उत्कोच देने के लिये तत्पर (लोग) मार डाले गये और उस उपद्रव के वारण करने वाले भूमिपाल द्वारा रक्षित किये गये।

(१) आदम खां : 'दिल्ली सल्तनत' में वंशावली गलत दी गयी है। उसमें जैनुल आबदीन के केवल तीन पुत्र आदम खा, हैदर खा और बहराम खां दिखाये गये है (पृष्ठ : ८३७)। आदम खा सुलतान नही बन सका। सन् १४५१ ई० मे बडशाह ने आदम खां को लद्दाख विजय करने के लिये भेजा (म्युनिश : पाण्डु० ७४ बी०, इण्डियन एण्टीक्वेरी ३७ : १८९), शाहमीरी वंश मे यह परम्परा चल पडी थी कि कनिष्ठ भ्राता को युवराज बनाया जाता था। उसने महमूद को युवराज बना दिया। आदम खां अपने पिता के अनुरूप प्रमाणित नहीं हुआ। वह शिकार और औरतो मे अपना समय व्यतीत करने लगा। वह क्रूर था। कमराज की जनता को त्रस्त करने लगा। उसके साथी भी लूटपाट तथा बलात्कार करने लगे (म्युनिश : पाण्डु० : ७५ बी०)। सुलतान ने उसे चरित्र सुधारने के लिये कहा। पुत्र आदम खां नाराज हो गया। सेना सहित पिता पर आक्रमण कर दिया। वह कुतुबुद्दीन पर पहुँच गया। अचानक जैन-गिर पहुँच गया। सुलतान ने उसे बहुत समझाया और संघर्ष बच गया।

किन्तु जैनुल आबदीन अपने पुत्र आदम खां के तरफ से शंकित था। उसने हाजी खां को वापस आने के लिये सन्देश भेजा। हाजी के आने के पूर्व ही आदम ने सन् १४५९ ई० में सोपोर पर आक्रमण कर दिया। नगर के अधिकारी ने प्रतिरोध किया परन्तु आदम ने उसे पराजित कर मार डाला और नगर को लूटा। सुल्तान ने सेना भेजी। आदम पराजित हो गया। उसके सैनिक जिस समय सोपोर पुल पार कर रहे थे पुल टूट गया। तीन सौ सैनिक पानी मे डूबकर मर गये। सुलतान स्वयं सोपोर आया और नागरिकों को सन्तोष दिया (म्युनिश : पाण्डु० : ७५ बी; तवकाते अकबरी : ३ : ४४४)। आदम को जब मालूम हुआ कि हाजी खा काश्मीर आ गया है तो वह सिन्धु उपत्यका मे चला गया। हाजी यद्यपि युवराज बना दिया गया था परन्तु सुलतान उससे उसके मद्य सेवन के कारण रुष्ट रहता था। इसका लाभ उठाकर कुछ दरबारियो ने आदम खां को श्रीनगर लौटने के लिये लिखा। आदम सिन्ध उपत्यका से और दूर पहाडियो में चला गया था। वहाँ से उसने श्रीनगर के लिए प्रस्थान किया।

जैनुल आबदीन ने मँझले पुत्र हाज्य अर्थात् हाजी खां को युवराज बनाया। सुल्तान के इस कार्य से पुत्रो मे वैमनस्य उत्पन्न हो गया। आदम खां लद्दाख जीत कर आया था। सुल्तान ने पुत्रो में संघर्ष न हो अतएव हाजी खां को लोहर का सूबेदार बना कर भेज दिया। हाजी खां और जैनुल आबदीन के संघर्ष मे पिता की सहायता आदम खां ने की थी। उसने हाजी खां को पराजित किया। वह भाग गया। सुल्तान ने आदम खां को युवराज बना दिया। आदम खां को उन लोगों की जांच करने का भार दिया जिन्होंने हाजी खां को विद्रोह करने

के लिये प्रेरित किया था। उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। आदम को सुलतान ने कमराज का सूबेदार बना दिया।

हाजी के पुन हसन ने आदम को रोकने का प्रयास किया परन्तु वह पराजित होकर भाग गया। आदम श्रीनगर पहुँच गया। वहाँ हाजी तथा बहराम दोनो ने उसका स्वागत किया। ऊपरी मेल हो गया (म्युनिख पाण्डु० ७६ बी०)। यह मेल कायम नही रहा। बहराम के कारण आदम एव हाजी में भेद बढता गया। एक दूसरे के नाश का षड्यन्त्र चलने लगा। आदम सावधान हो गया। पिता सुलतान की सहायता चाही। परन्तु सुलतान ने सहायता देना अस्वीकार कर दिया। आदम यह स्थिति देखकर शकित कुतुबुद्दीनपुर चला गया (म्युनिख पाण्डु० ७६ बी०)।

पिता की मरणासन्न अवस्था का समाचार तथा हाजी की उपस्थिति सुनकर आदम नोशहर के समीप अपनी सेना के साथ बढा। श्रीनगर पर आक्रमण करने की अपेक्षा वह रात बाहर ही पड़ा रहा। इसी समय कोशाध्यक्ष हसन कच्छी ने राजभक्ति हाजी के प्रति प्रकट की और उसे कोश दे दिया।

आदम खा हसन काच्छी के प्रेरणा से राजसिंहासन प्राप्त करना चाहता है इस साधार किंवा निराधार सूचना पर नवीन सुलतान हाजी खा किंवा हैदर शाह ने हसन काच्छी तथा उसके सात सहयोगियो को बुला कर उनका वध करा दिया। जैनुल आबदीन सुलतान के जिन मन्त्रियो ने हैदरशाह का विरोध किया था उनका भी वध करा दिया। आदम खा यह समाचार सुनते ही जम्मू भाग कर आ गया। हैदर शाह को अनन्तर सूचना मिली की आदम खा अपने मामा जम्मू के राजा मानिकदेव के पक्ष से लडता तुर्कों द्वारा हत हो गया (म्युनिख पाण्डु० ७८ ए०)। हैदरशाह सुनकर दुखी हुआ। उसके शव को जम्मू से मँगाकर पिता जैनुल आबदीन के कब्र के बगल में दफन कराया (म्युनिख पाण्डु० : ७८ ए०, तबकाते अकबरी ३ ४४७)। सम्भावना प्रतीत होती है कि जम्मू की किसी राजकुमारी से आदम खा का विवाह हुआ था। उसके पुत्र फतह खा का पालन-पोषण जम्मू के राजा के यहाँ होने लगा।

बहराम का षड्यन्त्र राज्य प्राप्ति के लिये चलता रहा। हसन भी श्रीनगर लौट आया था। बहराम ने राजा के दौर्बल्य एव अत्यधिक मद्य सेवन से बिगडते स्वास्थ्य का लाभ उठाकर सुलतान का विश्वास प्राप्त कर लिया था।

सुलतान को गठिया की बीमारी हो गयी थी। उसके नासिका से खून जाता था। एक दिन शीश-महल मे वह फिसल कर गिर गया। उसकी अवस्था बिगडती गयी। आसन्न मृत्यु देखकर मन्त्रीगण अहमद ऐतू के नेतृत्व मे बहराम के पास पहुँचे। उसे सलाह दिया कि वह अपने को राजा घोषित कर हसन को युवराज बना दे। किन्तु बहराम ने हसन को युवराज बनाने की शर्त नही मानी। इस पर अहमद ने हसन को राजा घोषित कर दिया। बहराम भाग खडा हुआ। हैदरशाह की मृत्यु १३ अप्रैल सन् १४७२ ई० को हो गयी।

(२) हाज्य–हाजी खा कनिष्ठ भ्राता महमूद युवराज की मृत्यु के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र आदम खा के स्थान पर हाजी खा को सुलतान ने युवराज बनाया (म्युनिख पाण्डु० : ७४ ए०, तारीख हसन पाण्डु० १०३ बी०)। इस कारण भाइयो मे वैमनस्य उत्पन्न हो गया। सुलतान ने वैमनस्य दूर करने के लिये जब आदम खा सन् १४५१ ई० म लद्दाख जीत कर आया तो उसने हाजी खां को लोहर का सूबेदार बनाकर सन् १४५२ ई० मे भेज दिया। वहाँ कुछ लोगो के बहकाने मे आकर यह काश्मीर पर आक्रमण कर सिंहासन पर बैठना चाहा। खसो की सहायता से हीरपुर के मार्ग से काश्मीर मे प्रवेश किया। सुलतान दुखी हुआ। पुत्र से युद्ध नही करना चाहता था। उसने एक ब्राह्मण दूत पुत्र को समझाने के लिये भेजा। किन्तु हाजी खां के आदमियो ने ब्राह्मण दूत का कान काट लिया। हाजी खां को जब यह बात मालूम हुई तो वह लज्जित हुआ।

उसने पिता से सन्धि करने का निश्चय किया। परन्तु उसके सलाहकारो ने उसकी नीति का विरोध किया। हाजी खा अपने साथियो के इतने प्रभाव मे था कि उसे युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा नही रह गया था (म्युनिख ' पाण्डु० ' ७४ बी)।

सुल्तान ने ब्राह्मण दूत की विपन्नावस्था देखी तो क्रुद्ध हो गया और युद्ध की आज्ञा दी। बुधियान समीपवर्ती करेवा जो श्रीनर से ३३ मील दक्षिण राजौरी के मार्ग पर था, पल्लशिला स्थान पर पिता-पुत्र की सेनाओ मे सघर्ष हुआ। प्रात काल से सायकाल तक युद्ध होता रहा। आधम खा पिता की ओर से लडता रहा। हाजी खा की फौज का पैर उखड गया और वह भाग खडी हुई। अधम खा अपने भाई हाजी खा को पकडना चाहता था परन्तु सुल्तान ने मना कर दिया। हाजी खा अपनी शेष सेना के साथ होरपुर पलायन कर गया। वहाँ से वह भीमकर आगया (म्युनिख पाण्डु० ' ७५ ए० बी०, तबकाते अकबरी ३ ४४२–४४३)। सुल्तान श्रीनगर लौट आया। उसने शत्रुओ के मुण्डो पर एक मीनार बनाने की आज्ञा दी। युद्ध मे बन्दी सैनिको का वध कर दिया गया (म्युनिख पाण्डु० ७५ ए०, तबकाते अकबरी ३ ४४३)। अलाउद्दीन खिलजी ने भी अपन शत्रु मगोलो के मुण्डा पर मीनार बनवाई थी। यह मीनार मैं जब दिल्ली सन् १९४६ ई० म आया था तो मौजूद थी। वहाँ जगल था। अब पूरी आबादी हो गयी है। सफदरजग से कुतुबमीनार जाने वाली सडक के वाम पार्श्व मे कुछ हटकर हौज खास चौराहा के पास थी।

सुल्तान ने हाजी खा को ज्येष्ठ पुत्र आदम खा के विद्रोही प्रवृत्तियो के कारण वापस बुलाया। सुल्तान ने कनिष्ठ पुत्र बहराम को हाजी खा का स्वागत कर लाने के लिये भेजा। वह बारहमूला के समीप पहुँच चुका था। बहराम और हाजी दोनो भाई प्रेम से मिले और पिता से मिलने चले (म्युनिख पाण्डु० ७६ ए०, तबकाते अकबरी ३ : ४४४)। सुल्तान पुत्र हाजी खा के साथ श्रीनगर लौटा और पुन युवराज घोषित करदिया गया (म्युनिख: पाण्डु० : ७६ ए०)। हाजी खा के अनुयाइयो का दोष माफ कर दिया गया और उन्हें खिलत तथा जागीर दी गयी। हाजी खा का रग गोरा था। वह उत्साही और स्फूर्तिमान था। सुल्तान उससे स्नेह करता था। किन्तु हाजी खा शराबी था। सुल्तान के मना करने पर भी पीने की आदत नही छोड सका (म्युनिख पाण्डु० ६६ ए० बी०)। सुल्तान उसकी आदत से परीशान हो गया था। हाजी खा और बहराम की मित्रता मे दरार पडने लगी। आदम एव हाजी खा के नाश का षड्यन्त्र रचन लगा। पता लगने पर आदम खा भाग कर कुतुबुद्दीनपुर चला गया। बहराम के सलाह देने पर कि पिता का अन्त समीप है। उसने कोश तथा सेना पर अधिकार करने का विचार किया। हाजी खा ने पिता को दु खी नही करना चाहा। वह राजप्रासाद म मरणासन्न पिता के समीप उसकी हितकामना के लिये भगवान् से प्रार्थना करता रहा।

आदम खा सिंहासन लेने के लिये श्रीनगर की सीमा पर पहुँच गया। हाजी खा ने शीघ्रतापूर्वक कार्य किया। सुल्तान अभी तक अचेतनावस्था म जीवित था। कोशाध्यक्ष हसन काच्छी ने हाजी के प्रति स्वामिभक्ति की शपथ ले लिया। हसन तथा बहराम ने अश्वारोही सेना अविलम्ब अधिकार मे कर लेने की सलाह दी। हाजी खा ने अश्वारोही सेना अपने अधिकार मे कर ली। आदम खा यह सुनते ही भाग खडा हुआ। उसका पीछा हाजी खा ने किया। उसके अनेक अनुयाइयो को मार डाला। हसन ने जो पूँछ का सूबेदार था, अपने पिता की सहायता के लिये श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया (म्युनिख पाण्डु० ७७ ए०)।

हाजी खा सन् १४७० ई० मे पिता की राजगद्दी पर बैठा। उसने अपना नाम हैदरशाह रखा। सिकन्दरपुर मे उत्सव मनाया गया। लोगो को इनाम, खिलत आदि दी गयी। कनिष्ठ भ्राता बहराम को नागाम की जागीर दी गयी। उसके पुत्र हसन खा को कमराज की जागीर दी गयी। उसे युवराज भी घोषित

किया गया (म्युनिख : पाण्डु० : ७७ बी०; जैन राज : २ : १५१)।

हाजी खा के सुलतान होने पर आदम खा ने पुनः राज्यप्राप्ति के लिये जम्मू से पूँछ की तरफ सेना सहित प्रस्थान किया। किन्तु जब उसने सुना कि उसके सहायक हसन काच्छी सात साथियों के सहित उसके पिता के समय के विरोधी मन्त्रियों सहित मार डाले गये तो आदम खा लौट गया। बहराम भी शंकित हो गया और भागना चाहता था। परन्तु हैदरशाह ने उसे अपने समीप इसलिये रोक लिया कि वह आदम खा के विरुद्ध उसके लिये सहायक सिद्ध होगा। सुलतान शासन में रुचि नहीं लेता था। बहिर्गिरी के राज्य जो काश्मीर के करद थे स्वतन्त्र हो गये। राजकुमार हसन सेना के साथ उन्हें पुनः अधीन करने के लिये भेजा गया। राजौरी के राजा जयसिंह ने बिना प्रतिरोध किये अधीनता स्वीकार कर ली। जम्मू तथा गक्खर के राजाओं ने भी अधीनता स्वीकार कर ली। जिन लोगों ने अधीनता स्वीकार कर ली, उन्हें छोड दिया गया। इस प्रकार ६ मास तक अभियान करने के पश्चात् हसन श्रीनगर लौट आया।

हैदरशाह पर बहराम खा का प्रभाव हो गया था। हैदर शाह अधिक मदिरा पान के कारण बुद्धि तथा शरीर दोनों से दुर्बल हो गया था। वह शीशमहल में गिरने के कारण चारपाई पकड लिया था। उसकी आसन्न मृत्यु देखकर मन्त्रिमण्डल ने अहमद ऐतू के नेतृत्व में प्रस्ताव रखा कि बहराम खा सुलतान तथा हसन को युवराज घोषित कर दें। परन्तु बहराम ने हसन को युवराज बनाना अस्वीकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि अहमद ऐतू ने हसन को सुलतान घोषित कर दिया। बहराम भयभीत होकर भारत भाग गया।

कुछ सामन्तों ने बहराम को सुलतान बनने के लिये काश्मीर आमन्त्रित किया। बहराम क्रमराज में उपस्थित हो गया। हसन शाह इस समय अवन्तीपुर में था। उसने शोपुर की ओर प्रस्थान किया। हसन शाह के मन्त्री एक मत नहीं थे। कुछ ने राय दी। सुलतान को पंजाब चले जाना चाहिए। बहराम का विरोध नहीं करना चाहिए। किन्तु सुलतान के वजीर मलिक अहमद ने सामना करने की राय दी। सुलतान ने अहमद की राय मानकर ताजभट को चाचा बहराम का सामना करने के लिये भेजा (तबकाते अकबरी : ३ : ४४८)। बहराम शीघ्रता-पूर्वक दूलीपुर पहुँच गया। दूलीपुर सोपुर सडक पर शालूरा से दक्षिण-पूर्व दो मील दूर है। वहाँ बहराम ताजभट्ट पर आक्रमण करना चाहता था। परन्तु पहुँचने पर उसने देखा कि उसे जिन सामन्तों ने आमन्त्रित किया था उनमें एक भी उसकी सहायता के लिये नहीं आया था। बहराम खा पराजित हो गया। उसे बडी निराशा हुई। वह जैनगिर आया। यहाँ पर सुलतान हसन शाह की सेना पीछा करती पहुँची। बहराम यहाँ से भी भागा। उसका पीछा सुलतान की सेना करती रही। उसे बाण लग गया और वह घायल हुआ, अपने पुत्र के साथ बन्दी बना लिया गया (तबकाते अकबरी : ३ : ४४९)। पिता-पुत्र सुलतान के समक्ष लाये गये। दोनों अपने ही प्रासाद में नजरबन्द कर दिये गये। किन्तु इस आशंका से कि कहीं वे पुनः राज्य के विरुद्ध विद्रोह का केन्द्र न बन जाँय अतएव पिता-पुत्र दोनों ही लौह शृंखला से बद्ध कर अन्धे कर दिये गये। इसके तीन वर्ष पश्चात् बहराम की मृत्यु हो गयी। बहराम अकृतज्ञ, कायर लंपट, अवसरवादी एवं षड्यन्त्रकारी था।

(३) जस्सरत : जस्सरत का उल्लेख जोनराज तथा श्रीवर दोनों ही नहीं करते। इससे अनुमान निकाला जा सकता है कि उसकी मृत्यु युवावस्था में ही हो गयी थी।

(४) बहराम : इस का प्रथम कार्य जो उसने पिता की आज्ञा से किया था वह हाजी खा ज्येष्ठ भ्राता से मिलने बारहमूला के समीप गया था; जब हाजी खा सेना लेकर राज्य प्राप्ति की आशा से काश्मीर में प्रवेश कर रहा था। जैनुल आबदीन अपने दोनों पुत्रों आदम तथा हाजी खा के विद्रोहों से

क्षीरार्णवस्य मथनात् परतः सुधादि-
रत्नानि तान्यनुपभोगनिरर्थकानि ।
यो नीतवान् सफलतां किल पात्रदानात्
स्तुत्यः स मन्दरगिरिर्गिरिराजवर्गे ॥ ८५९ ॥

८५९ क्षीरार्णव के मथनोपरान्त अनुपभोग के कारण निरर्थक, सुधादि रत्नों को सत्पात्रों मे दान करके, उन्हें जिसने सफल कर दिया, गिरि राज वर्गों मे, वह मन्दरगिरि स्तुत्य है ।

दुखी था। वह बहराम को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। परन्तु मूर्ख एव जड बहराम ने पिता की बात नही माना और न पिता के सुझाव पर ध्यान ही दिया। पिता बहराम पर स्नेह तथा कृपा अन्य पुत्रो की अपेक्षा अधिक दिखाने लगा। वह अपने दोनो विद्रोही पुत्रों से तग आ गया था। उसने बहराम को बुलाया। उससे कहा—आदम ने जो कुछ सघर्ष उसके साथ किया है, वह उसे भूल नही सकता। उसने हाजी खा के विरुद्ध भी बहराम को सावधान किया कि हाजी अपने पुत्र के राज्याधिकार के लिये प्रयास करेगा न कि तुम्हारे। किन्तु बहराम ने उत्तर दिया कि वह हाजी का साथ त्यागने के लिये उद्यत नहीं था। वह उसकी सर्वदा सहायता एव रक्षा करेगा। सुलतान अपने तीनो पुत्रो से इतना परीशान हो गया कि किसी को भी युवराज तथा अपना उत्तराधिकारी घोषित नही किया। मन्त्रियो एव दरबारियो के पूछने पर सुलतान ने उत्तर दिया—'आदम कजूस है। अवाञ्छनीय तत्वो से घिरा रहता है। हाजी मद्यप है और बहराम लपट है।' सुलतान चाहकर भी बहराम को युवराज घोषित नही कर सका। निश्चय किया कि उत्तराधिकार का प्रश्न तीनो पुत्र स्वय अपनी शक्ति के आधार पर निश्चय करेंगे।

बहराम पिता का अन्त समीप देखकर हाजी को उसने सलाह दिया कि विरोधी मन्त्रियो को राजप्रासाद पर आक्रमण कर बन्दी बना लें। अश्वारोही तथा राजकोश पर कब्जा कर लें। किन्तु हाजी ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

हैदर शाह के सुलतान होने पर बहराम को नागाम की जागीर मिली। उसके पुत्र हसन खा को कमराज की जागीर दी गयी। हसन काच्छी तथा उसके साथियो के बध पश्चात् व्याकुल बहराम भागना चाहता था परन्तु हैदर शाह ने उसे रोक लिया। राजकुमार हसन के अनुपस्थिति मे बहराम ने सुलतान का विश्वास प्राप्त कर लिया। सुल्तान उसके प्रभाव मे आ गया। हैदर शाह का अति मद्यपान के कारण स्वास्थ्य गिरने लगा था। इसका लाभ उठाकर बहराम स्वयं सुलतान बनने का षड्यन्त्र करने लगा। यह समाचार सुनते ही राजकुमार हसन श्रीनगर लौट पडा था। वह सुलतान की बिना आज्ञा लौट आया था। अतएव बहराम तथा अन्य दरबारियों ने सुलतान का कान भर दिया। वह राजसिंहासन की आकांक्षी था (म्युनिख पाण्डु० : ७८ बी०)। सुलतान ने उससे भेंट करना अस्वीकार कर दिया। सैनिक अधिकारियो के समझाने पर सुलतान ने उससे भेंट की। किन्तु उसे न तो खिलत दी गयी और न उसके विजय की प्रशसा की गयी।

हैदर शाह अपने शीशमहल मे फिसल कर गिर कर मरणासन्न हो गया। मन्त्रियो ने अहमद ऐतू के नेतृत्व मे बहराम से निवेदन किया कि वह स्वय अपने को सुलतान घोषित कर हसन को युवराज बना दे। परन्तु बहराम ने मूर्खता के कारण दूसरी शर्त नहीं मानी। अनन्तर अहमद ऐतू ने हसन को सुलतान घोषित कर दिया। बहराम पर आक्रमण की योजना बनायी गयी। समाचार मिलते ही बहराम भाग गया। बहराम वास्तव मे कायर, लपट, अव्यावहारिक था। यदि उसने सत्वर गति एव बुद्धि से कार्य लिया होता तो सुलतान बन गया होता।

पाद टिप्पणी :

८५९ (१) मन्दर : द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक

नदीरवटपातेन भुवश्चाऽम्बु विनाऽफलाः ।
संयोगात् सफलीकृत्य यशश्चित्रमजीजनत् ॥ ८६० ॥

८६० जल के विना निष्फल नदियों एव पृथ्वी को अवटपात द्वारा सयोग से सफल बनाकर आश्चर्य जनक यश प्राप्त किया ।

राज्ञोत्पलपुरक्षोण्यौ कुल्यां प्राप्य वप्रिणीम् ।
तयोर्निरर्थकत्वेन दूपणा विनिवारिता ॥ ८६१ ॥

८६१ राजा ने उत्पल [1]पुर भूमि पर, वप्रिणी (पार्श्ववर्ती) कुल्या को पहुँचा कर, उन दोनों का निरर्थकत्व दोप निवारित कर दिया ।

सख्या ६९८ । उक्त श्लोक पढने पर विल्हण के श्लोक सर्ग १८ · ६१ का स्मरण हो आता है । निश्चय ही जोनराज ने विल्हण जैसे महान कवि का जिसने कल्हण को प्रभावित किया था विक्रमाकदेवचरित को अवश्य पढा होगा । जैनुल आबदीन के चरित्र वर्णन शैली पर विक्रमाकदेवचरित की झलक दिखाई देती है ।

पाद-टिप्पणी

८६० सफल : हिन्दू राज के समाप्ति के पश्चात् काश्मीर के सुलतानो का एकमात्र प्रयास यह था कि वे किस प्रकार हिन्दु बहुल सख्यक प्रदेश मे अपना राज्य कायम रखने मे सफल होंगे । मुसलिम तथा ईसाई जिन देशो मे गये वहाँ अपने राज्य को मजबूत तथा कायम रखने के लिये वहाँ की आबादी को अपने धर्म मे दीक्षित करने का अत्यधिक प्रयास किया है । उन्हे सर्वदा भय लगा रहता था कि विरोधी धर्म वाले सघटित होकर उन्हें कही उखाड न फेंके । यही कार्य भारत म मुसलिम बादशाहो ने किया । मुसलमान जहाँ भी गये उन्होंने उस देश की जनता को अपने धर्म म दीक्षित करने का अथक प्रयास किया है । मुसलिम देश एव राज्य मे अल्पसख्यक का रहना कठिन था । उनके सम्मुख दो ही विकल्प रखे जाते थे या तो वे मुसलिम धर्म स्वीकार कर लें अथवा दण्डस्वरूप जजिया अदा करें और मुसलिम शरियत का राजनीति मे पालन करें ।

काश्मीर म इस परिस्थिति से समाजवादी विकास तथा उत्पादन के कार्मों म जडता आ गयी थी । सब बातें धर्म एव उसके प्रसार की दृष्टि से तौली जाने लगी थी । जनता ने मुसलिम धर्म जीवन भय तथा आर्थिक लाभ की दृष्टि से स्वीकार किया था । यह सक्रमण काल था । व्यवस्था विशृखलित हो गयी थी । जैनुल आबदीन ने इस स्थिति से जनता को निकालना चाहा । उसके मनमे जो खिन्नता, उदासी आ गयी थी उसे उसने तिरोहित कर सुधारवादी कार्यों मे लगा दिया । इससे जनता मे मनोबल आया । उसकी शक्ति जो विशृखलित हो गयी थी, एक तरफ लगी । जनशक्ति का प्रवाह जो रुक गया था—जड हो गया था उसमे पुन प्रवाह आया । वह प्रवाहित हो गयी भूमि को शस्य श्यामल बनाने मे । उसने कृषि के लिये जल आदि लाने का प्रबन्ध किया । अनेक योजनाये बनायी । उनसे काश्मीर मे समृद्धि लौटी । उसने सिंचाई की अनेक योजनायें बनाईं जिनके कारण देश म अन्न की उपज इतनी होने लगी जल का अभाव नही रह गया था (तबकाते अकबरी · ३ : ४३५, बहारिस्तान . पाण्डु० : ५१ बी०) ।

पाद-टिप्पणी ·

८६१ (१) उत्पलपुर वर्तमान काकपुर है । काकपुर के समीपवर्ती भूभाग के सिंचनार्थ नहर बनवा कर कृष्युपयोगी कार्य सुलतान ने किया (म्युनिख : पाण्डु० ७१ ए०, तबकाते अकबरी ३ ४३७) । द्रष्टव्य टिप्पणी . श्लोक : ३२२ ।

झेलम एव कुल्या के बीच म उत्पलपुर का मन्दिर है । यह मन्दिर तथा कुल्या अर्थात् नहर आज भी वर्तमान है ।

नन्दशैलमरौ कुल्यामवतार्य महीपतिः।
अस्मारयच्चक्रधरं सागरान्तर्निवासिनम् ॥ ८६२ ॥

८६२ महीपति ने नन्द शैल[1] मरु पर कुल्या अवतारित कर सागरान्तर्निवासी चक्रधर[2] का स्मरण करा दिया।

करालम्बः सतां बिभ्रदकरालं सितं यशः।
कुल्ययाकारयद् देशं करालाख्यं स्तुतेः पदम् ॥ ८६३ ॥

८६३ सज्जनों का करालम्ब तथा अकराल सित यश धारण करते हुये, उसने कुल्या द्वारा कराल[1] देश को स्तुत्य बना दिया।

साग्रहारा द्विजा यत्र साग्रहाराश्च योषितः।
साऽथ जैनपुरी राज्ञा कराले निरमीयत ॥ ८६४ ॥

८६४ जहाँपर साग्रहार द्विज, साग्रहार (कण्ठहार शोभित) योषितायें थीं राजा ने ऐसी जैनपुरी[1] कराल देश में निर्मित की।

इस नहर और काकपुर सर से काकपुर गाव के चारो तरफ की भूमि की सिंचाई होती थी।

पाद-टिप्पणी :

८६२ (१) नन्द शैल : कोटिली के दक्षिण-पूर्व कोटली पीर पंजाल पर्वतमाला मे नन्दमर्ग पास या दर्रा है। नन्दमर्ग से चक्रधर नहर आती थी। वह तस्कदर (चत्रधर) अधित्यका करेवा को सीचती थी।

(२) चक्रधर : तस्कदर = द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ६०१ = चत्रधर किंवा चक्रधर नहर नन्दमर्ग से निकलती थी। इससे चक्रधर के आस पास सिंचाई होती थी।

पाद-टिप्पणी :

८६३. (१) कराल : यह वर्तमान आदविन परगना है। कराल नहर निकाल कर सुलतान ने कराल देश की सिंचाई का प्रबन्ध किया। सुपियान एव रोमुदुषा वर्तमान स्थान के मध्य दक्षिण-पश्चिमीय ऊँचा पठार भूखण्ड पड़ता है। अदविन गाव सुपियान से १० मील उत्तर है। यह श्रीनगर सड़क के पश्चिम है। कराल नहर के तट पर बादशाह ने जैनपुर कसबा बसाया था।

पाद-टिप्पणी :

८६४. (१) जैनपुरी : कराल नहर पर ही सुलतान ने जैनपुर आबाद किया। मराज मण्डल के सुपियान जिला का जैनपुरी एक परगना है जो अनन्तनाग जिला में है। इसका वर्तमान नाम जेनपोर है। वह रामब्यार नदी के दक्षिण है। जैनपुर अधित्यका के पूर्व सुनमन कुल अर्थात् प्राचीन सुवर्णमणि कुल्या बहती है। यह शुपियान के उत्तर-पश्चिम है। अफगानिस्तान से काश्मीर बनिहाल तक मध्यवर्ती भूमि' मे 'ज' के स्थान पर 'च' अधिक बोला जाता है। इसी प्रकार जैनपुर या जेनपोर तथा जैननगरी का नाम बोला जाता है। अफगानिस्तान से काश्मीर और बनिहाल-गिरिमूल तक 'ज' एव 'च' अधिक बोला जाता है। जैनपुर अथवा 'जेनपोर' जैनपुर का काश्मीरी प्रचलित नाम है। हैदर मल्लिक ने सुलतान के निर्माणों में जैनपुर अथवा जीनापुर का उल्लेख किया है (पाण्डु० : ४५)। नारायण कौल नाम जीनापुर देता है (पाण्डु० : ६९ ए०) वाक्याते काश्मीर में भी जीनापुर नाम दिया गया है (पाण्डु० : ४३।५४ए०)।

पीर हसन लिखता है—'और जैनापुर मे आलीशान इमारतें और वसीअ और अरीज बागात तामीर कराये और कसबा सुपियान से पानी की एक नहर

अवन्तिपुरभूमौ च कान्तोदन्तेन भूभुजा ।
कुल्यावतारितातुल्या शालिसम्पत्तिशालिनी ॥ ८६५ ॥

८६५ कान्त उदन्त वाले भूभुज ने अवन्तिपुर[1] भूमि पर, शालि-सम्पत्ति-शालिनी कुल्या अवतारित की ।

गिरिमार्गेण गङ्गाया मानसं प्रापिते जले ।
किं पूतं मानसेनेदममुना किमु मानसम् ॥ ८६६ ॥

८६६ गिरि मार्ग द्वारा गंगा का जल मानस मे प्राप्त कराने पर, क्या मानस से जल पवित्र हुआ अथवा मानस ?

व्यडम्बयत् स्वमूर्ति या मानसे प्रतिबिम्बताम् ।
व्यधायि तत्तटे तेन नगरी सफलाभिधा ॥ ८६७ ॥

८६७ उसके तटपर उसने सफला[1] नामक नगरी निर्मित की, जो अपनी मूर्ति को मानस में प्रतिबिम्बित करती थी ।

मसदूद ,करा के जैनापुर मे जारी कराई' (अनुवाद . उर्दू : १७६)।

[1] जैनपुर पहले सुपियान मे एक परगना था । इस समय यह अनन्तनाग जिलान्तर्गत है ।

पाद-टिप्पणी :

८६५. (१) अवन्तिपुर : काश्मीरी मे उच्चारण—'वून्तिपोर' किया जाता है । सुलतान ने अवन्तिपुर मे नहर लाकर उस अंचल को धान अर्थात् शाली के कृषि उपयोगी बनाया । इस नहर का एक भाग मिदपुर और राजपुर गाँवो के मध्य आज भी वर्तमान है (एनशियण्ट मानुमेण्ट ऑफ काश्मीर : काक : पृष्ठ ३७)। राजपुर गाँव श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व १२ मील दूर पर स्थित है । यह गाँव सेवो के बागो के लिये प्रसिद्ध है । यहाँ पर बक्स म सेवो के पार्सल भर कर बाहर भेजे जाते हैं । विशेष द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ३२१, ३३१, ३३५ ।

पाद-टिप्पणी :

८६६ (१) मानस : मनसाबल = सिन्धु नदी को गङ्गा भी कहते हैं । सिन्धु का जल पर्वतीय मार्गो से नहर द्वारा मानसावल में लाया गया है ।

पाद-टिप्पणी :

८६७ उक्त श्लोक सख्या ८६७ के पश्चात बम्बई सस्करण मे श्लोक ११४९–११५१ अधिक हैं । उनका भावार्थ है—

(११४९) जिसे लाने के सुय्य की प्रज्ञा स्फुट रूप से स्फुरित नही हुई और श्री सेकन्दर शाह की भी उत्कण्ठा नितान्त कुण्ठित हो गयी ।

(११५०) श्रीमान जैनुल आबदीन ने उस महर नद को सुय्यपुर से लाकर बीस कोश मरुप्रदेश सिंचित किया ।

(११५१) दुर्भिक्ष से दु खी मन वाले मनुष्यों को विश्रान्ति देने के कारण पद-पद पर विश्रान्ति नाम से प्रसिद्ध हुई ।

(१) सफला : मोहिबुल हसन ने सफला को 'सफपुर' गाँव बताया है । यह छोटा ग्राम है । मानस बल के तट पर ग्राम है । सम्राट् अकबर ने यहाँ एक बाग बनवाया था । उसका नाम बागे-सफ था । कालान्तर मे वह मिरजा हैदर का निवासस्थान हो गया था ।

वास्तव मे मानस बल के समीप एक सफापुर

श्रीमान् सुय्यपुरात् पारेवितस्तं धरणेनृपः ।
संयोज्य पहरं तापव्यापदं स न्यवारयत् ॥ ८६८ ॥

८६८ श्रीमान् धरणीपति ने सुय्यपुर[1] से वितस्ता पारको जोड़कर, ताप व्यापद पहर[2] (नदी) को निवारित किया ।

ग्राम है । वही पूर्वकालीन सफला है । सफापुर से आगे वान्दीपुर है । केवल ध्वनि साम्य तथा भौगोलिक सामीप्य के कारण सफला को सफापुर मानने का अनुमान किया गया है । स्थानीय लोग तथा काश्मीर के ब्राह्मण इसका समर्थन करते हैं परन्तु कोई लिखित प्रमाण मुझे नही मिल सका है ।

सफपुर अथवा बाग्-ए-सफ का उल्लेख अक्बर-नामा (३ : ८४५; तारीख-ए-रशीदी ४९०) मे है। सफला नहर का नाम परशियन इतिहासकारो ने शाहकुल या सफापुर नहर दिया है । यह सिन्ध नदी का पानी जिला लार के पार ले जाती है और मनसा बल की झील के चारों तरफ की जमीन की इससे सिंचाई होती थी ।

पाद-टिप्पणी :

८६८. (१) सुय्यपुर : वर्तमान सोपोर स्थान है । यह वितस्ता के दोनो तटो पर आबाद है । ऊलर लेक से एक मील अधोभाग मे है । वितस्ता ऊलर लेक से निकल कर बारहमूला की दिशा मे प्रवाहित होती है । यह श्रीनगर से ३१ मील दूर है । यहाँ अच्छा बाजार है । पट्टू, घी, मछली तथा सूखी मछलियो के व्यापार के लिये प्रसिद्ध है । तिजारत की बहुत बडी मण्डी है । यहाँ से टिटवाल, मच्छीपुर, हिन्दवारा, वान्दीपुर के लिये मार्ग जाता है । उक्त स्थानों के उत्पादन का यह क्रय-विक्रयकेन्द्र है । यहाँ पर इस समय एक कालेज तथा एक बालिका एव बालक विद्यालय है ।

सुय्यपुर अर्थात् सोपुर नगर अग्निदाह के कारण भस्म हो गया था । बारहमूला से इमारती सामान लाकर सुल्तान ने एक राजप्रासाद निर्माण कराया था । उसने एक झूलापुल भी नदी पर बनवाया था । इस प्रकार वितस्ता के दोनो तट मिल गये थे । श्रीवर इसे सुय्य सेतु लिखता है (जैन : ५ : १२०) ।

(२) पहर : इसे लाल कुल अथवा पोहुर नहर कहा जाता है । समीपवर्ती भूमि को सींचने के लिये जल लाया गया था । यह वितस्ता की अन्तिम सहायक नदी काश्मीर उपत्यका मे है । सोपुर से ४ मील वितस्ता के और अधोभाग बहने पर यह मिलती है । मिलने के पूर्व उपत्यका के उत्तरीय-पश्चिमी क्षेत्र का जल ग्रहण करती है ।

वितस्ता माहात्म्य (२७ . २) तथा स्वयंभू माहात्म्य मे प्रहार नाम से इसका उल्लेख किया गया है । इस समय इसको पहर नाला कहते हैं ।

काश्मीरी भाषा मे पोहर को पोहरू कहते है । बुनगाम अर्थात् पोहरू मे बाध बनवाया गया था । ऊलर लेक तथा पोहर नदी के वामतट मध्यवर्ती सूखी भूमि की इसके जल से सिंचाई होती थी (बहारिस्तान शाही : पाण्डु० : ५१; मूरक्राफ्ट : २ : २३१) । इस नहर के निर्माण काल का पता आलेख जोहंखुरंम शब्द से चलता है । उसके अनुसार सन् १४५९ ई० आता है ।

पहर नदी का तटवर्ती दृश्य बडा हृदयग्राही है । आबोहवा बहुत अच्छी है । इसके तटपर अनायास बैठने की इच्छा होती है । पहर नदी में देवदार लकडी के लट्ठे पहाड पर बहा दिये जाते हैं । वे पहर नदी मे बहते आते हैं । वितस्ता मे मिलने पर लकड़ियाँ वितस्ता प्रवाह मे आ जाती हैं । वहाँ से लट्ठे के मालिक लोग अपने सुविधानुसार जहाँ वे चाहते हैं निकाल कर काम मे लाते हैं ।

पीर हसन लिखता है—'नाला पहर को इन्तहाई मिहनत और मशक्कत के साथ अपने बहाव की असली

आ प्रद्युम्नगिरिप्रान्तादमरेशपुरावधि ।
मठाग्रहारहट्टाढ्यां स जैननगरीं व्यधात् ॥ ८६९ ॥

८६९ प्रद्युम्न गिरि[1] प्रान्त से लेकर, अमरेश पुर[2] तक, जैन नगरी[3] को मठ, अग्रहार, हट्ट से समृद्ध कर दिया।

स्वर्गं जेतुमिवोदस्थादुन्नतैरश्मवेश्मभिः ।
सङ्क्रान्ता जैनगङ्गायां फणिलोकस्य यागमत् ॥ ८७० ॥

८७० जैन गङ्गा[1] में प्रतिबिम्बित जो नगरी नाग (फणि) लोक[2] के उन्नत वेश्मों द्वारा स्वर्ग लोक[3] को भी जीतने के लिये मानों उत्थित हुई थी।

जगह से बन्द करके उसकी नहरें सम्पूर्ण जैनगिर के क्षेत्र मे जारी करवा दी, (उर्दू : पृष्ठ १७५)।

लाल कुल या पोहर नहर से पोहर नदी का जल जैनगिर के क्षेत्र मे आता था। कसबा जैनगिर सुलतान जैनुल आबदीन ने बसाया था। यह नहर नदी पर बाँध और जल प्रवाह बदलकर बनायी गयी थी। इस जल द्वारा क्षेत्र मे धान की खेती खूब होने लगी थी (तारीख काश्मीर : सैय्यद अली : ३८)। जैनगिर कामराज का एक परगना है।

पाद-टिप्पणी :

८६९. (१) प्रद्युम्नगिरि : शारिका = पर्वत–कोहमारान।

(२) अमरेशपुर : अम्बुरहर। यह स्थान वर्तमान रान्येल ग्राम से ढाई मील दक्षिण है।

(३) जैननगरी : अम्बुरहर से हरि पर्वत अर्थात् प्रद्युम्नगिरि, या सारिका पर्वत तक जैननगरी विस्तृत थी। जैन गंगा पर यह नगर आबाद था। वह रणा स्वामी मन्दिर तक विस्तृत थी। अम्बुरहर सिन्ध उपत्यका की ओर श्रीनगर से सवा ६ मील दूर है। रानी सूर्यमती (सन् १०२८–८६ ई०) ने यहाँ पर दो मठो की स्थापना की थी। पुराने मन्दिरो पर जियारत फरख जाद साहिब बनी है। वहाँ ध्वंसावशेष के शिलाखण्ड इधर-उधर बिखरे मिलते हैं।

डॉ० परमू ने जैन नगर टिप्पणी मे लिखा है कि नोशहर नाम से यह स्थान नगर के मुसलिम आबादी में प्रसिद्ध है। हिन्दू इसे विचारनाग कहते हैं। वह सुलतान जैनुल आबदीन के समय जैननगर नाम से प्रसिद्ध था पर 'राजदान' अथवा राजधानी नाम से ज्ञात था जो कि मिर्जा हैदर दुगलात के समय राजधानी थी (तारीख–इ– रशीदी : ५२९; डॉ० परमू : पृष्ठ १५६ : नोट ११७)।

किन्तु पृष्ठ १७८ पर जैन डब पर नोट १२९ मे 'राजदान' के लिये लिखा है—'जैन दब को राजदान भी कहते थे (तारीख-रशीदी : २४९)।' मिर्जा हैदर की दृष्टि मे स्थान की सुन्दरता तथा निर्माण बहुत ही उत्तम था। यह १२ मंजिली ऊँची अट्टालिका थी प्रत्येक मंजिल मे ५० कोठरियाँ थीं। जिसे मिर्जा हैदर ने सन् १५३३ ई० में देखा था। गीत जो कि इसकी भव्यता के स्मृति मे गाये जाते हैं, आज तक प्रचलित हैं। प्रायः काश्मीरी युवतियाँ नाचती हुई रमजान के महीने तथा अन्य राष्ट्रीय उत्सवो पर गाती है। डॉ० परमू के वर्णन मे जैननगर एवं जैन डब एक मे मिला दिया गया है अथवा एक ही समझ लिया गया है। यदि उनका तात्पर्य है कि जैननगर मे जैन डब अट्टालिका थी तो कुछ बात ठीक बैठती है। किन्तु 'रजदान' जैनडब तथा जैननगर दोनो नही हो सकता। रजदान यदि राजधानी का अपभ्रंश है, तो वह जैन नगर के लिये और यदि 'राजभवनो' का अपभ्रंश है, तो अट्टालिका के लिये सम्बोधित किया जा सकता है।

पाद-टिप्पणी :

८७०. (१) जैन-गंगा : यह एक नहर थी। इसी पर जैननगरी आबाद थी। यह नहर रणा

जैनगङ्गां रणस्वामिप्रासादे प्रापितां कृती ।
व्यसस्मरत् स्मेरयशा हरिपादकुतूहलम् ॥ ८७१ ॥

८७१ वह यशस्वी एवं कृती जैनगङ्गा को रण स्वामी[1] प्रासाद तक पहुँचा, कर हरिपाद का कुतूहल विस्मृत कर दिया ।

स्वामी के मन्दिर तक गयी थी । सुलतान ने अपने नवीन नगर से रणस्वामी मन्दिर तक जल पहुँचाने के लिये नहर का निर्माण कराया था । जैन गंगा वर्तमान लक्षण कुल है । यह नहर सिन्धु नदी से अम्बुहर से होती हुई, नौशहर तथा संगीन दरवाजा तक पानी लाती थी । हरिपर्वत के दक्षिण संगीन दरवाजा है । जामा मसजिद तक आती है । इसका जल मार नदी में कादी कदल श्रीनगर मे गिर जाता है । इस नहर का प्रयोग लगभग अर्ध शताब्दी से होना बन्द हो गया है ।

(२) नागलोक : पाताल लोक । लोकों का दो वर्गीकरण किया गया है—ऊर्ध्वलोक एवं अधोलोक । अधोलोक में सात लोक–अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल एवं पाताल हैं । महाभारत के अनुसार नागलोक के नाभिस्थान मे एक प्रदेश पाताल है (उद्योग : ९९–१००) । नागलोक का राजा वासुकि है । वहाँ एक कुण्ड है । उसका जल पान करने से व्यक्ति एक सहस्र हाथियो का बल प्राप्त करता है (आदि० : १२७ : ६०–६८) । भूतल से सहस्रो योजन दूर है (आश्व० : ५८ : ३२–३३) । सहस्रो योजन लोक विस्तृत है । चारो ओर दिव्य परकोटा है । वह सुवर्ण इटो एव मणि-मुक्ताओ से युक्त है स्फटिकमणि की सीढ़ियाँ हैं । वहाँ वापी तथा निर्मल जल वाली अनेक नदियाँ हैं । नाना प्रकार के पक्षिसंकुल मनोरम पादप है । नागलोक का आभ्यान्तर द्वार एक शत योजन लम्बा तथा पाँच योजन चौड़ा है (आश्व : ५८ : ३७–४०) ।

(३) स्वर्ग : ऊर्ध्वलोक मे सात लोक—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक एवं सत्यलोक हैं । स्वर्गलोक को देवलोक भी कहते हैं । स्वर्गलोक का महाभारत मे सुन्दर वर्णन किया गया है । स्वर्गलोक मंगल एवं दिव्य शोभा से सम्पन्न है । उसमे वृद्धावस्था, शिथिलता, शोक नही होते । वहाँ सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की प्रभा नही होती । वहाँ के प्राणी अपनी प्रभा से ही प्रकाशित रहते हैं । माता-पिता के कारण प्राणियो की उत्पत्ति नही होती । वहाँ की दिव्य मालायें कभी कुम्हलाती नहीं । मल-मूत्र एवं पसीना का अभाव होता है ।

पाद-टिप्पणी :

८७१. (१) रणस्वामी : रणस्वामी का मन्दिर श्रीनगर मे रणेश्वर के समीप स्थित था पण्डित साहिबराम ने अपने तीर्थों मे केवल इतना ही लिखा है कि रणस्वामी का मन्दिर हरिपर्वत के पश्चिम मे था । उन्होंने किसी निश्चित स्थान का संकेत नहीं किया है । कल्हण ने इस मन्दिर का पाँच बार उल्लेख (रा० : ३ : ४५४) किया है । तरंग (रा० : ५ : २९४) मे पुनः उल्लेख चक्रवर्मा की रानी के माघ मास मे रणस्वामी के दर्शन के प्रसंग मे किया है । उक्त यात्राकाल तुषारपात का समय है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त देवस्थान का मार्ग तुषारपात के समय सुगम तथा सरल था ।

मंख ने श्रीकण्ठचरित मे वर्णन किया है कि उसके पिता इस मन्दिर मे पूजा करने के लिये जाते थे । श्री स्टीन का मत है कि रणस्वामी का मन्दिर मार तथा लक्षण कुल के कोण पर टूटा पड़ा मन्दिर है । यह अब तक इसलिये वर्तमान है कि मुसलमानो ने इस मन्दिर को जियारत पीर हाजी मुहम्मद साहब मे परिणत कर लिया है ।

श्री स्टीन एक दूसरा विकल्प और देते हैं । उनका मत है—लक्षम कुल प्राचीन समय में यदि उत्तर दिशा मे उस शाखा से मिली होगी जो इस लेन में बटबदल के पास मिल जाती है तो ऐसी अवस्था में रणस्वामी के मन्दिर का स्थाना-

पारेसुय्यपुरं जैनगिरिसंज्ञां पुरीं व्यधात्।
कैलासाचलतुल्यैर्या प्रासादैरभिभूषिता ॥ ८७२ ॥

८७२ सुय्यपुर' के पार जैन गिरि'नाम्नी पुरी बसाया, जो कि कैलाश पर्वत सदृश प्रासादों से विभूषित थी।

वशेष संगीन दरवाजा के उत्तरी भाग मे मदिन साहब की मसजिद के बिखरे प्राचीन मन्दिरो के ध्वंसावशेषो मे खोजना होगा। मैंने दोनो स्थानो को देखा है। श्री स्तीन से आगे कुछ प्रगति नही हो सकी। वृद्ध लोग जो कुछ प्रकाश डाल सकते है, प्रायः मर चुके है। आजकल के पण्डित आधुनिक रोशनी के हैं। इन्हे इस ओर कोई रुचि नही है। मैं जब इस प्रकार की बात उनसे पूछता हूँ, तो वे चकित होकर मेरा मुँह देखने लगते हैं। उन्हे आश्चर्य होता है कि काशी से आकर मैं अपना समय इस गड़े मुरदे को उखाडने मे क्यो नष्ट कर रहा हूँ।

श्री आनन्द कौल रणस्वामी मन्दिर के विषय मे लिखते हैं—(रणेश्वर) से दक्षिण-पश्चिम चलने पर एक बहुत बडा कब्रिस्तान है। उसमे अनेक प्राचीन विचित्र स्मारक है। यह देवस्थान जियारत मे बदल दी गयी है अतएव अच्छी हालत में है। इसमे एक अष्टकोणीय मन्दिर कक्ष है। जिसका अधिष्ठान तथा बगल की दिवालें अभी तक अच्छी तरह रक्षित है। इसका चौकोर प्रागण जिसमे यह स्थान है, एक पुरानी दिवाल से घिरा है। उसमे जाने के लिये अलंकृत द्वार है। शेष उन्होने श्रीस्तीन का उद्धरण दिया है। मैं इस स्थान पर दो बार जा चुका हूँ।

पाद टिप्पणी :

८७२. (१) सुय्यपुर : वर्तमान सोपोर द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक ३४० तथा ८६८।

(२) जैनगिरि : काश्मीरी मे इसे 'जैन गेर' कहते हैं। यह परगना कमराज मे है। जैनुल आबदीन ने इसकी स्थापना की थी। पोहर किंवा पहर नदी बान्धकर इसका जल इस अचल मे लाया था। इस नहर के कारण यहाँ धान की खेती सफल हो सकी थी (बहारिस्तान शाही पाण्डु० : ५१ ए० बी०; सैय्यद अली : तारीखे काश्मीर ३८)। जैनगिरि के उत्तर पश्चिम जोलुर ग्राम है। जैनगिरि को आजकल जनगेरी कहते है। यहाँ यह कथा प्रचलित है कि सुलतान जैनुल आबदीन ने इसे बसाया था।

मोहिबुल हसन ने सैय्यद अली (पृष्ठ ३८) के इस उल्लेख को सत्य नही माना है जिसमे लिखा गया है कि जैनगिरि की शाही इमारतो को खान्दान चक हुक्मरानो ने तबाह व बरबाद कर दिया। दूसरी तारीखो से तसदीक नही होती। इनकी तबाही की वजह खाना जंगी और बेरूनी हमले थे जो शाहमीर के दौर मे हुए। मिर्जा हैदर अपने जमाना मे मौजूद जैनगिरि मे किसी इमारत का जिक्र नही करता (उर्दू : १३४-१३५)।

जैनगिरि का क्षेत्र सोपुर प्रदेश से आरम्भ होता है (हैदर मल्लिक : पाण्डु० : ४५; बहारिस्तान शाही : पाण्डु० ५१ ए० ५२ बी०; नारायण कौल। पाण्डु० : ६१ ए०)। वाकयाते काश्मीर मे जैनगिरि का उल्लेख मिलता है। उसमे जैनागिर लिखा गया है। वाकयाते काश्मीर मे मिर्जा हैदर दुगलात का हवाला देते हुए लिखा गया है-जैनुल आबदीन ने जैनागिर (जैनगिर) मे महल बनवाया था। वहाँ मेवा के दरख्त लगाये गये थे। वे इतने अच्छे थे कि उनकी मिसाल विश्व के किसी देश मे नही मिल सकती।......चकों के राज्यकाल तक यह पूर्ववत स्थित था। मिर्जा हैदर ने अपनी तारीख मे इसके गुणो की प्रशंसा की है (पाण्डु० : ४३ : ५३ ए०)।

पीरहसन लिखता है-सुलतान 'जैनगिरि' मे एक बाग लगवाया था। जो २ मील के घेरा मे था। इसमे तरह-तरह के दरख्त और फूल लगवाये थे। इसके चार कोनो पर चार आलीशान इमारतें बनवाकर बाग को अज़ून रोजगार कर दिया था। इस बाग के इर्द-गिर्द उमरा व अराकीन सल्तनत की ऊँची-ऊँची

सिद्धक्षेत्रे सुरेश्वर्या प्रसिद्धो विलसद्यशाः।
राजधानीं निषिद्धारिर्व्यधात् सिद्धिपुरीमसौ ॥ ८७३ ॥

८७३ उस प्रसिद्ध एवं प्रशस्त यशस्वी शत्रु-नाशक ने सुरेश्वरी[1] के सिद्ध क्षेत्र में सिद्धपुरी[2] राजधानी बनाया।

प्रासादशिखरे राजा मार्तण्डामरनाथयोः।
राजधान्यौ व्यधात् सौधधौतदूरनभस्तले ॥ ८७४ ॥

८७४ राजा ने दोनों राजधानियों में मार्तण्ड[1] एवं अमरनाथ[2] के प्रासाद शिखर निर्मित कराये जो कि अपने भवन से दूर आकाश तल को धौत कर रहे थे।

सुभिक्षं सुय्यराजेन पूर्वमङ्कुरितं किल।
ततः प्रभृत्यतीतेषु बहुष्वपि च राजसु ॥ ८७५ ॥

८७५ सुय्यराज[1] ने पहले सुभिक्ष अंकुरित किया था, उस समय से बहुत से राजाओं के अतीत हो जाने पर भी—

कोठियाँ थी जो फूल और फुलवारी से सजी हुई थीं। ....इस बाग की तमाम पैदावार और आमदनी उलमा व फजला को बतौर जागीर बख्श दी थी। नहर जैनगिर के खुदवाने और नाला पहर के बन्द करने मे लाखो रुपये खर्च कर दिये, (अनुवाद उर्दू : पृष्ठ : १७४–१७५)।

पाद-टिप्पणी :

६७३. (१) सुरेश्वरी : सुरेश्वरी सर डल लेक का प्राचीन नाम है। श्रीवर ने डल तथा डल्ल सर का प्रथम बार उल्लेख किया है (जैन : ५ : ३२, ४ : ११८)। द्रष्टव्य : सुरेश्वरी कल्प : परिग्रहण संख्या : ३३०३१; शारदा पाण्डुलिपि : हिन्दू विश्वविद्यालय काशी।

आज कल उसे काश्मीरी भाषा मे सुयेश्वर कहते हैं। डल लेक मे एक डल दरवाजा है। यह डल लेक तथा वितस्ता के जल को जोड़ता है। जब वितस्ता का जल स्तर डल से नीचे हो जाता है तो स्वतः खुल जाता है। वितस्ता मे जल बढ़ने पर वह स्वतः बन्द हो जाता है। डल लाकि तैरते खेत को कहते हैं।

(२) सिद्धपुरी : सुरेश्वरी अर्थात् डल लेक पर नगर स्थापित किया गया था। श्रीवर के पूर्ववर्ती लेखकों ने डल सर किंवा डल लेक का नाम नहीं दिया है। श्रीवर (१ : ५ : ४३) से पता चलता है कि सिद्धपुरी नृपति का प्रसिद्ध राजगृह था।

पाद-टिप्पणी :

६७४. (१) मार्तण्ड : यह स्थानीय प्रशासकीय विभाग का केन्द्र बनाया गया था। राजधानी श्रीनगर ही थी। शाहकुल अर्थात् मार्तण्ड नहर बनाकर लिदर नदी का पानी घुमाकर मटन अर्थात् मार्तण्ड की सूखी भूमि को सींचने का प्रबन्ध सुलतान ने करवाया था (नवादरुल अखबार : पाण्डु० : ४५ ए०, ४६ ए०; गौहरे आलम : पाण्डु० : १२७ ए०)।

(२) अमरनाथ : मार्तण्ड के समान यह भी प्रदेशीय प्रशासकीय केन्द्र बनाया गया था। यह अमरनाथ का प्रसिद्ध गुहास्थित हिमलिंग नहीं है। जहाँ की यात्रा प्रतिवर्ष भारत के कोने-कोने से लोग आकर करते हैं।

पाद-टिप्पणी :

८७५ (१) सुय्यराज : अवन्तिवर्मा के समय सुय्य हुआ था। यह अपने समय का महान अभियन्ता था। उसने वितस्ता की धारा को बदल काश्मीर की भूमि को कृषोपयोगी बनाया था। काश्मीरी

जनता को नवीन जीवन दान दिया था। उसका जन्म कैसे हुआ अज्ञात है। यद्यपि वह कलियुग में उत्पन्न हुआ था। परन्तु उसके आचार के कारण उसे सत्य-युगीय मानना पड़ता है। वह अयोनिज था।

एक चाण्डाल स्त्री थी। उसका नाम सुय्य था। वह सड़क पर झाड़ू दे रही थी। घूर के पास एक नूतन मृत्तिका भाण्ड ढँका मिला। उसने पात्र का ढक्कन उठा कर देखा। उसमें एक कमलाक्ष शिशु अपनी उँगली चूस रहा था। उसने चिन्तन किया। किसी मन्दभाग्य माता ने यहाँ शिशु को त्याग दिया था। चिन्तन करते ही उसके स्तन में दूध आ गया। उसने शिशु को अपने स्पर्श से अदूषित रखते हुए उसे एक शूद्र स्त्री के यहाँ रख दिया। वह धात्री का कार्य करने लगी। सुय्य बड़ा होने लगा। चाण्डालिन के नाम पर उसका नाम सुय्य रखा गया। वह बुद्धिमान था। शिक्षित हुआ। किसी गृहपति के घर शिशुओं के अध्यापन का कार्य करने लगा। व्रत, स्नानादि, नियमपूर्वक रहने से उसकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। उसे केन्द्र बनाकर विद्वानों की गोष्ठी एकत्रित होने लगी।

एक समय लोग काश्मीर के जलप्लावन की चर्चा कर रहे थे। किस प्रकार जल प्लावन के कारण काश्मीर त्रस्त रहता था। सुय्य ने कहा—'मैं इसका उपाय निकाल सकता हूँ। परन्तु मेरे पास साधन नहीं है।' लोगों ने उसे विक्षिप्त समझा। राजा ने गुप्तचरों से उसकी बातें सुनकर उसे बुलाया। राजा ने उसमें उन्माद का लक्षण नहीं देखा। राजा ने उससे पूछा—'तुम जलप्लावन निवारण की बात करते हो।' सुय्य ने उत्तर दिया—'हाँ मुझे ज्ञान है। मैं कर सकता हूँ।' सुय्य की आकृति देखकर राजा को प्रसन्नता हुई। उसकी गम्भीरता से प्रभावित हुआ था। उसके लिये आदर का भाव उत्पन्न हुआ। 'वातुल है'—राजा के पार्षदों ने परिहास किया। सुय्य ने पुन कहा—'नहीं। मैं कर सकता हूँ।' पार्षदों ने हेलापूर्वक उस पर दृष्टिपात किया। राजा ने कहा—'तुम्हारी बुद्धि परीक्षा के लिए धन दूँगा।' पार्षद एव सभासद चिल्ला उठे—'यह वातुल है।' राजा को निश्चय से विरत करना चाहा। परन्तु राजा अपने निश्चय पर अडिग रहा। राजा ने आदेश दिया। 'सुय्य जितना धन चाहे राजकोश से दिया जाय।'

राजप्रदत्त दीनार भाण्डो सहित सुय्य नाव पर आरूढ हुआ। जल प्रवृद्ध था। नदीगर्भ मे भरा था। नाव के साथ तटो पर लोगो की भीड चल रही थी। सब देखना चाहते थे। सुय्य क्या करता था। सुय्य नन्दकारण्य ग्राम मे पहुँचा। वहाँ उसने एक दीनार भाण्ड नदी मे फेक दिया। वह नाव से लोट आया। सुय्य धन भाण्ड के साथ क्रमराज गया। वहाँ भी उसके आगमन की चर्चा सत्वर गति से व्याप्त हो गयी। जनता एकत्रित हो गयी। उसका अनुसरण करने लगी। सुय्य दाक्षधर अभिध स्थान पर पहुँचा। अधिक से अधिक भीड एकत्रित होने की राह देख रहा था। विशाल जन समूह एकत्रित होने पर वह अंजुलियो से दीनार वितस्ता मे फेकने लगा। जहाँ वह दीनार फेंक रहा था उस स्थान पर नदीगर्भ शिलाखण्डो एव बालू भर जाने के कारण भर गया था। प्रवाह अवरुद्ध हो गया था।

सुय्य लौट आया। लौटते ही दुर्भिक्ष पीडित जनता जल मे कूद पडी। प्रवाह से शिलाखण्डो एव बालुओ को निकाल-निकाल कर बाहर रखने लगी। देखते-देखते वितस्ता पुलिन नदीगर्भ-स्थित शिला-खण्डो और बालू से भर गया। शिलाओ के निकल जाने पर जल प्रवाह वेग से चलने लगा। कूडा-करकट, लकडी आदि स्वतः वेग से जल प्रवाह मे बह चले। बिना विशेष व्यय किये गरीबो के उत्साह, परिश्रम एवं लोभ भावना से जल निकल पडा। जल घटने लगा। जल प्लावन भय दूर हुआ। सुय्य सबका प्रशसापात्र बन गया।

पाषाणमय बाँध से सुय्य ने वितस्ता के तटो को बाँध दिया। ताकि जल निचले स्थानो मे न जा सके। जहा-जहां प्रवाह वेध का सुय्य ने अनुभव किया वहाँ वितस्ता मे नूतन प्रवाह किवा नदीगर्भ का निर्माण कर दिया।

प्रजानामल्पपुण्यत्वान्नावर्धत मनागपि ।
तपोबलात् पल्लवितं पुष्पितं फलितं तथा ॥ ८७६ ॥

८७६—प्रजाओं के अल्प पुण्य के कारण थोड़ा भी नहीं बढ़ा और तपोबल से पल्लवित, पुष्पित, फलित नहीं हुआ।

श्रीजैनोल्लाभदीनेन युगपत् तद्व्यधीयत ।
तपसामतिशुद्धानां किमिव ज्ञापकं परम् ॥ ८७७ ॥

८७७ श्री जैनोल्लाभदीन ने वह (सुभिक्षादि) युगपत् कर दिया, क्या वह उसके अतिशुद्ध तप का ज्ञापक नहीं था ?

पूर्वपुण्यक्षये राज्यात् पतन्त्यन्ये महीक्षितः ।
तस्य जन्मान्तरे राज्यप्राप्त्यै राज्यमभूत् प्रभोः ॥ ८७८ ॥

८७८ पूर्व पुण्य के क्षय होने पर, राज्य से अन्य राजा गिर जाते हैं, किन्तु उस राजा को जन्मान्तर से राज्य प्राप्ति के लिये राज्य था।

स नदीमातृकाः कृत्वा धरणीर्देवमातृकाः ।
अग्रहाराननु क्ष्मापो द्विजेभ्यो यददात्सदा ॥ ८७९ ॥

८७९ उस राजा ने देवमातृका[1] पृथ्वी को नदीमातृका[1] बनाकर, अनन्तर ब्राह्मणों को सदैव अग्रहार दिये।

निगामी स्थान पर वितस्ता-सिन्धु संगम था। दोनो का संगम पूर्वकाल मे वैन्यस्वामी के समीप था। वहाँ उसने वितस्ता की धारा बदल दी। परिहासपुर के ध्वंसावशेषो पर खड़े होकर देखा जाय तो आज भी प्रकट होता है कि पूर्वकाल मे प्रवाह बदल दिया गया था। महापद्मसर का जल नियन्त्रित कर जल प्रवाह को वेगमय किया गया। बारहमूला से वितस्ता जलप्लावन का जल सवेग लेकर समुद्र की ओर जाने लगा। पृथ्वी जल से बाहर निकल आयी। वहाँ ग्राम आबाद हो गये। उन्हें कुण्डल कहा जाने लगा। सुय्य ने काश्मीर मण्डलके सूखे स्थानो पर जल पहुँचाने की व्यवस्था की। ग्राम-ग्राम मे मिट्टी मँगा कर उन्हें अभिर्विचित किया। उनका गोला बनाकर रख दिया। जितने दिनो मे वे सूख गये, उतने दिनों पश्चात् उन स्थानो पर जल पहुँचाने के लिये गुणित परिमाण एवं विभाग मे परिकल्पित किया।

उसने स्थान-स्थान पर पाषाणमय सेतुओं का निर्माण कराया। सुय्य ने महापद्मसर से निर्गत स्थान वितस्ता तट पर अपने नाम पर एक सर्वोत्तम पत्तन का निर्माण किया। वही आजकल का सोपोर तथा प्राचीन काल का सुय्यपुर है। उसने अपनी माता के नाम पर सुय्यसेतु का सुय्य कुण्डल ब्राह्मणों को दानकर, निर्माण कराया। काश्मीर के इस महान् पुरुष पर भी काल ने दया न की। वह बीमार पड़ा और त्रिपुरेश पर्वतपर गया। ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रकी शरण लिया। उसने भगवद्गीता का श्रवण करते आषाढ़ शुक्ल तृतीया सन् ८८३ ई० में प्राण विसर्जन किया।

पाद-टिप्पणी :

६७९ (१) देवमातृका : देवमातृक शब्द का प्रयोग कल्हण ने (रा० : ५ · १०९) किया है। वह खेत अथवा कृषि जो केवल वर्षाजल पर ही आश्रित रहती है। जहाँ कोई सिंचाई का प्रबन्ध नहीं होता। वर्षा इतनी हो जाती है कि अन्य सिंचाई की

वाराहक्षेत्रनगरविजयेशानकादिषु ।
यवनेभ्योऽग्रहारान् स सविहारान् स्वयं ददौ ॥ ८८० ॥

८८० वाराह क्षेत्र[1] नगर एवं विजय[2] ईशानादि[3] पर उसने स्वयं यवनों को विहार सहित अग्रहार दिये।

विजयक्षेत्रवाराहक्षेत्रशूरपुरादिषु ।
सत्रदानेन स त्रासमपि गोत्रभिदो व्यधात् ॥ ८८१ ॥

८८१ विजय क्षेत्र, वाराह क्षेत्र, शूरपुर[1] आदि में उसने सत्र[2] दान द्वारा इन्द्र को भी त्रस्त कर दिया।

व्यवस्था की आवश्यकता नही होती। इसको असीच भूमि कहते हैं। यदि वर्षा नही होती तो सूखा पड जाता है। कुछ उत्पादन नही होता। फसल सूख जाती है। जैनुल आबदीन ने इस विपत्ति से बचने के लिये असीच स्थानो पर सिंचाई का प्रबन्ध कर दिया। देवमातृका सुदूर प्राचीन काल से इसी अर्थ मे प्रयोग होता रहा है (नील० : पुराण : १९)।

(२) नदीमातृका : उस स्थान को कहते है, जहाँ नदी के जल से सिंचाई की जाती है। नहर किंवा नदी की सिंचाई पर जो भूखण्ड निर्भर रहता है, उसे नदीमातृका कहा जाता है। नैषध मे इसी अर्थ मे यह शब्द प्रयुक्त हुआ है (नैषध : ३ : ३८)।

पाद-टिप्पणी :

८८०. (१) वाराह क्षेत्र : बारहमूला अचल है। द्रष्टव्य टिप्पणी : श्लोक ६०७ वाराह। उत्तर प्रदेश बस्ती जिला मे बडाचत्रा, टिलचर रेलवे स्टेशन से २ मील पूर्व कुआनो नदी के दक्षिण तटपर रेलवे पुल से आध मील दूर पर ग्राम है। जनश्रुति है कि यहाँ भगवान वराह का अवतार हुआ था। बारहमूला का वाराह मूला क्षेत्र सर्वथा भिन्न है। वही भारत मे सबसे अधिक प्रसिद्ध काश्मीर मे है।

(२) विजयेश्वर : विजब्रोर = विज बेहरा = विजयेश = विजय क्षेत्र, समानार्थक हैं। द्रष्टव्य श्लोक : १०, १२२, २५४, विजयेश्वर माहात्म्य, वयू : २३ : ४१४६; १५ : एम० बी० विजयेश्वर पुराण परिग्रहण संख्या : ३३० । ९१; शारदा पाण्डुलिपि, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी।

(३) ईशान : ईशानेश्वर = ईशावर। द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक : ६०१।

पाद-टिप्पणी :

८८१. (१) शूरपुर : शूरपुर रामव्यार नदी से सात मील दूर और ऊँचाई पर है। राजा अवन्तिवर्मा के समय मन्त्री शूरवर्मा ने इस नगर को बसाया था। वहाँ पर उसने द्वार अर्थात् द्रग स्थापित किया था। यह चुंगी चौकी थी। यह पीर पंजाल मार्ग का अन्तिम छोर है। यह मार्ग दुरहाल और रूपरी पास जाता है। इसका वर्तमान नाम हूरपुर है। यहाँपर इलाही दरवाजा है, जो कि हूरपुर से थोडी दूर पर है। हूरपुर से नदी के अधोभाग मे लगभग दो मील तक प्राचीन आबादी के चिह्न मिलते हैं। पीर पंजाल मार्ग से होने वाले यातायात, व्यापार आवागमन के सन्दर्भ मे इसका नाम मुगलो के समय तक खूब प्रचलित था। इसे हीरपुर भी कहते है। कल्हण की राजतरंगिणी मे इस स्थान का बहुत उल्लेख मिलता है (रा० : ३ : २२१, ५ : ३९; ७ : ५५८, १३४८, १ ५२, १३५५, १५२०, १६५०, ८ : १०५१, ११३४, १२६६, १४०४, १५१३, १५७७, २७९९)। श्रीवर ने भी इसका उल्लेख किया है (जैन० : १ : १०, १६४, ५ : २२, त० : ३ : ४२; ४ : ३९, ४४२, ५२६, ५३१, ५५८, ५८४, ६०६)।

(२) सत्र : अन्नसत्र आदि से अभिप्राय है। जहाँ गरीबोको मुफ्त भोजन दिया जाता है। परशियन इतिहासकारो ने भी सुलतान द्वारा चलाये सत्रो का उल्लेख किया है (म्युनिख : पाण्डु० : ७१ ए०)।

भूमिविक्रयभूर्जादि कृतचिह्नं महीभुजा।
निह्नवप्रागभावाय धर्माधिकरणं कृतम् ॥ ८८२ ॥

८८२ पूर्व विक्रय का निह्नव (छिपाव) रोकने के लिये, राजा ने भूमि विक्रय[1] का भूर्ज पत्रादि चिह्न (कर्ता) करने वाला धर्माधिकरण स्थापित किया।

यो जयापीडदेवेन प्राप्तो नागप्रसादतः।
स दण्डमिव तस्यादात्ताम्रं ताम्रकरो गिरिः ॥ ८८३ ॥

८८३ नाग के प्रसाद से जयापीड देव जिस ताम्रकर[1] गिरि को प्राप्त किया था वह (ताम्रकर पर्वत) उसे ताम्र मानो दण्ड स्वरूप देता था।

सन पाँच महायज्ञों में से एक यज्ञ है। इसे अतिथियज्ञ भी कहा जाता है। (इपीग्राफिया इण्डिका भाग ७ : पृष्ठ ४६ टिप्पणी ८)।

पाद-टिप्पणी :

८८२. (१) विक्रय : भूमि सर्वदा ही बेचने और खरीदने का क्रम भारत में चलता रहा है। कुछ मौखिक बेचे जाते थे और कुछ लिखकर। कपटी, छली तथा सबल लोग क्रय-विक्रय से लाभ उठाते थे। मालूम भी नहीं होता था कि कितने द्रव्य में कितनी भूमि बेची या खरीदी गयी। इस भ्रष्टाचार को रोकने के लिये आज के समान क्रय-विक्रय रजिस्ट्री के लिए सुलतान ने धर्माधिकरण कार्यालय आजकल के रजिस्ट्री आफिसों के समान खोला। प्रत्येक क्रय-विक्रय भोजपत्र पर लिखने का आदेश जारी किया ताकि निरर्थक वाद-विवाद एवं झगडों से जनता की रक्षा होती रहे।

पाद टिप्पणी :

८८३. (१) जयापीड : ताम्रकरगिरि : ताम्र खान से प्राप्त ताम्र की आय, जैनुल आबदीन अपने निजी व्यय में लाता था। ताम्र खानें कहाँ थीं उसका पता कल्हण तथा जोनराज ने नहीं दिया है। जनश्रुति है कि लिदर उपत्यका में ऐश मुकाम स्थान पर ताम्र द्रवित किया जाता था। यही ताम्र परिद्रावक था (लारेन्स : वैली : ६२)। मुगल काल में भी रजत एवं ताम्र मुद्रायें काश्मीर में टंकणित की जाती थीं।

तबकाते अकबरी में उल्लेख किया गया है कि सिकन्दर बुतशिकन के राज्यकाल में सुवर्ण तथा रजत प्रतिमायें नष्ट कर, उन्हें द्रवित कर मुद्रायें टंकणित करायी गयी। अतएव सुवर्ण एवं रजत का मूल्य घट गया था। सुलतान ने आदेश दिया कि जो शुद्ध ताम्बा खानों से निकलता है उनकी मुद्रायें *टंकणित की जाँय* (*उ० : तै० : भा० : २ ५१७*)

सिकन्दर बुतशिकन ने सुवर्ण तथा रजत प्रतिमायें भंग कर एवं उन्हें गलवाकर सोना तथा चाँदी धातु रूप में बनवा दिया था। उनसे मुद्रायें टंकणित की गयी। काश्मीर में उस समय सुवर्ण एवं रजत बाहुल्य के कारण उनका मूल्य घट गया था। सुलतान जैनुल आबदीन ने शुद्ध ताम्र मुद्रा टंकणित करवाई (म्युनिख · पाण्डु० : ७० बी०)।

जैनुल आबदीन की रजत मुद्रा पर हिजरी ८४२ तथा ताम्र पर हिजरी ८४१ तथा ८५१ टंकणित हैं। जैनुल आबदीन ने पीतल की भी मुद्रा टकणित कराई थी। उसकी मुद्रा पर 'जख' तथा 'काश्मीर' टकणित है। जैनुल आबदीन की मुद्रा के मुख्य भाग पर शाह के स्थान पर 'नाइब-इ-अमरुल मुममीन' तथा पृष्ठ-भाग पर 'जख-ई-काश्मीर' टकणित है। सन् अरबी लिपि में है।

जैनुल आबदीन की सभी प्राप्त रजत मुद्रा पर हिजरी ८४२ ही अंक तथा शब्द में टंकणित है। यह समय क्यों दिया गया इस पर कुछ और प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है। इसी प्रकार ताम्र मुद्राओं पर हिजरी ८४१ तथा ८५१ टंकणित है। इससे अनुमान

निकाला जा सकता है कि ८४१ तथा ८५१ हिजरी मध्य ताम्र की प्राप्ति हुई थी। वे मुद्रायें वृत्ताकार हैं। उनका तौल ७१ से १०० ग्राम तक है। मुख्य भाग पर जैनुल आबदीन का नाम तथा उसके ऊपर सुलतानुल आजम टकणित हैं। पृष्ठ-भाग पर 'जख-ई-काश्मीर' तथा अरबी लिपि मे वर्ष टंकणित है। काश्मीरी मुद्रायें दिल्ली के सुलतानो की अपेक्षा कम आकर्षक हैं। रोजर का मत है कि काश्मीरी मुद्राये विश्व मे सबसे निम्न कोटि की टंकणित हैं (जे० ए० एस० बी० : ६५ : १८९६ २२२)। काश्मीर के सुलतानो की टकणित मुद्राओ से उनके वर्ष का पता लगाना कठिन है क्योंकि वे पढे नही जाते। कभी-कभी एक ही वर्ष कितने ही राजाओ के मुद्राओ पर टंकणित है (जे० : ए० एस० बी० ५४ : १९६५ : ९५-९७)।

ताम्र मुद्रायें कसरिस् अथवा पुच्छ कही जाती है। सबसे कम दाम की मुद्रा कौडी थी। काश्मीर मे वह छोटी-छोटी चीजो के लिये क्रय-विक्रय का विनिमय माध्यम था। कौडी के अतिरिक्त दिनार, वाहगनी, पुच्छ, हथ, सासुन तथा लाख विनिमय मुद्रा के साधन थे। १२ दीनार का १ बाहगनी, २ बाहगनी का १ पुच्छ ४ पुच्छ का १ हथ, १० हथ का १ सासुन तथा १०० सासुन का १ लाख और १०० लाख का एक करोड दीनार होता था।

सुरमान की ताम्र मुद्रा हसन शाह के पूर्व तक काश्मीर मे चलती थी। उसका प्रचलन समाप्तप्राय देखकर हसन शाह ने सीसा की मुद्रा द्विदिनारी चलायी।

तौल का माप १६ मासा का एक तोला, ८० तोला एक सेर, सवा सात पल का एक सेर था। चार सेर का एक मन या तरक था। तरक आजकल के पसेरी के समान था। १६ तरक का एक खरवार, अर्थात वर्तमान काल का ८३ सेर, इसी प्रकार नाप १ गिरह, ढाई इन्च, १६ गिरह का एक गज, होता था। पशमीना नापने के लिये २० गिरह का एक गज माना जाता था।

इसी प्रकार जमीन की भी नाप निश्चित थी। काश्मीरी मे प्रत्येक प्लाट को पट्टा कहते है। ढाई पट्टा यहा के एक बीघा बराबर होता था। सुलतान ने जरीब की लम्बाई बढा दी गयी थी। (अकबरनामा ३ : ८३०-८३१) तबकाते-अकबरी : ३ : ४३६)।

जयापीड ने नाग महापद्म के प्रसाद से किस प्रकार ताम्रकरगिरि प्राप्त किया है, इसकी कथा कल्हण ने (तरंग ४ : ५९२-६१६) दी है। एक द्राविड यान्त्रिक था। रात्रि मे महापद्म नाग ने राजा से स्वप्न मे कहा कि वह राजा के राज्य मे अपने बन्धु-बान्धवो के साथ सुखपूर्वक रहता है। उसे इस समय रक्षा की आवश्यकता है। द्राविड यान्त्रिक मुझे बेचकर धन अर्जन करना चाहता है। जहाँ सूखा है और पानी की आवश्यकता है। यदि आप मेरी उससे रक्षा करेंगे तो मैं आपको आपके देश मे स्वर्ण पर्वत दिखाऊँगा। राजा ने यान्त्रिक को बुलवाया। उससे पूछा। वह इतने शक्तिशाली नाग का किस प्रकार नियन्त्रण करेगा, जो गहरे जल में रहता था। राजा को विश्वास नही हुआ। यान्त्रिक राजा को साथ लेकर महापद्मसर पर गया। यान्त्रिक ने अभिषिक्त बाण छोडकर महापद्मसर को सुखा दिया। राजा ने देखा कि मानवीय मस्तक युक्त एक नाग पक मे उछल रहा था। उसके साथ अनेक छोटे-छोटे नाग थे। यान्त्रिक ने कहा कि वह नाग को अब ले लेगा। राजा ने मना किया। कहा कि पुन महापद्मसर जलपूरित कर दे। यान्त्रिक ने मन्त्रशक्ति द्वारा पद्मसर को जलपूर्ण कर दिया। राजा ने द्राविड यान्त्रिक को धन देकर विदा किया।

नाग ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार राजा को स्वर्ण पर्वत नही दिखाया। राजा इस चिन्ता में था ही कि राजा को स्वप्न मे नाग ने कहा—'आपको किस कृपा के कारण स्वर्ण पर्वत आपको दूँ। मैं भयग्रस्त होकर आपकी शरण आया था। परन्तु आपने मेरी रक्षा नहीं की। मेरी निर्बलता प्रमाणित हो चुकी है। मैं स्त्रियों को मुख दिखाने योग्य नहीं रह गया

मणीन् खनिभ्यश्चालभ्यांस्तद्राज्ये भूरजीजनत् ।
ये जैनमणयः ख्याताः पद्मरागमदच्छिदः ॥ ८८४ ॥

८८४ उस राज्य में पृथ्वी ने खानों से जिन अलभ्य मणियों को पैदा किया वे पद्मराग मणि के मदच्छेदकारी जैन मणि प्रसिद्ध हुये ।

सरितां सैकते पीतसिकताभ्रमदं तदा ।
काञ्चनं काञ्चनच्छायां विभ्रल्लोकैरचीयत ॥ ८८५ ॥

८८५ उस समय नदियों के रेतीले तटपर लोग पीत बालू का भ्रम उत्पन्न करने वाला सुनहरी कान्ति युक्त कांचन (स्वर्ण) का चयन करते थे ।

हूँ । मेरा स्वाभिमान नष्ट हो गया है । अतएव मैं आपको स्वर्ण पर्वत न दिखाकर ताम्रकर पर्वत दिखाता हूँ ।' नाग ने उसे ताम्रकर पर्वत दिखा दिया । प्रातः राजा ने ताम्रकर पर्वत प्राप्त किया । यह पर्वत क्रमराज्य (कमराज) मे था । उसने ताम्र धातु से एक कम एक शत करोड दीनार टंकणित कराया ।

ताम्रपात्र काश्मीर मे प्राचीन काल से बनता आया है । काश्मीर उपत्यका मे ताम्र सुम्बल, कंगन तहसील, गन्दर बल, वलिस्तान (हिन्द बारह) ऐश मुकाम (अनन्तनाग) मे मिलता है ।

लद्दाख प्रदेश मे जागला, करगिल तहसील मे जान्सकार तथा जम्मू प्रदेश मे राजौरी तथा किश्त-वार तहसीलो मे ताम्बा पाया जाता है । जम्मू मे मुख्य स्थान जहाँ यह पाया गया है—सुखदल गली (रयासी), गनेटा (राजौरी), डोल और रूद नाला किश्तवार है ।

पाद-टिप्पणी :

८८४. (१) पद्मराग मणि : बृहत्संहिता के अनुसार सौगंधिक, गुरुविंद तथा स्फटिक उक्त तीन प्रकार के पत्थरों से पद्मराग का जन्म होता है । इसे हिन्दी-भाषा मे माणिक किंवा लाल कहते है ।

पाद टिप्पणी :

८८५. (१) कांचन : स्वर्ण पिपीलिका का वर्णन महाभारत मे मिलता है (सभापर्व : ५२-४) । यूनानी इतिहासकार हेरोदेतस् लिखता है कि चींटियो द्वारा स्वर्णरेत अर्थात् पिप्पलिका एकत्रित होता था (३ : १ : १०५) । काश्मीर कीउत्तर तथा पश्चिम वहने वाली नदियो मे स्वर्ण रेत मिलती है । शारदा तीर्थ के वर्णन मे कृष्णगंगा मे स्वर्ण रेत मिलने का उल्लेख मिलता है । मार्तंग ऋषि के पुत्र शाण्डिल्य ऋषि ने कठिन तपस्या देवी शारदा की प्रत्यक्ष दर्शन पाने के लिए की । वहां घोष वर्तमान गुश नामक स्थान पर देवी प्रकट हुई । ऋषि से कहा कि वह वास्तविक शक्ति रूप मे उसे दर्शन शारदावन मे देगी । देवी हयशिराश्रम मे ऋषि की दृष्टि से लोप हो गयी । हयशिराश्रम हय होंय ग्राम है । यह गुश ग्राम से चार मील उत्तर-पूर्व स्थित है । मुनि ने कृष्ण-गंगा मे स्नान किया । उसे आजकल कृष्णनाग कहते हैं ।

मुनि का आधा शरीर सुवर्ण वर्ण हो गया । यह नाग द्रङ्ग ग्राम के ऊपर है । इसे आजकल सुन द्रंग कहते हैं । मुनि के स्थान को ब्राह्मणो ने स्वर्णाधांगक कहा है । यहा से मुनि शाण्डिल्य ने उत्तरस्थित पर्वत पर आरोहण किया । रणगावटी बन मे उन्होने देवी का नृत्य देखा । वह स्थान वर्तमान रंगवोर है । वह स्थान उस दर्रे के नीचे है जहाँ द्रंग से कृष्णगंगा को मार्ग जाता है । वहाँ से मुनि गोस्तम्भन वन मे गये । वहाँ से गौतम के निवासस्थान तेजवन मे पहुँचे । वह स्थान कृष्णगंगा के वाम तट पर है । वह वर्तमान तेहजन है । वहाँ से एक पहाडी पार कर मुनि पहाडी के पूर्व मे गणेश को देखा और शारदा बन मे पहुचे । शारदा के तीनों रूप शारदा, नारदा (सरस्वती) तथा वागदेवी की वन्दना की ।

सरित्सुवर्णात् षष्ठांशो ग्राह्यो भाविभिरीश्वरैः ।
ताम्रपट्टेऽलिखद्याच्ञावाक्यमेवं नरेश्वरः ॥ ८८६ ॥

८८६ 'नदी के सुवर्ण से षष्ठांश' भावी राजाओं को ग्रहण करना चाहिए—' ऐसा याचना वाक्या नरेश्वर ने ताम्र पट पर लिखवाया।

वहाँ शारदा देवी ने उन्हें दर्शन दिया। सिन्ध अर्थात् किशनगंगा एवं मधुमती नदी के संगम पर शारदी-तीर्थ है। किशनगंगा को सिन्धु भी कहते हैं। शारदा मन्दिर समीपस्थ एक छोटा गाँव शारदी है।

सुनद्रंग नाम महत्वपूर्ण है। सुन का अर्थ सुवर्ण है। मुनि ने कृष्णगंगा में स्नान कर सुवर्ण का अर्धशरीर प्राप्त किया। वह द्रंग सैनिक चौकी थी जो शारदी तथा चिलास सड़क पर थी। सुन शब्द के विशेषण द्वारा ऐसे द्रंग को अन्य द्रंगो से अन्तर दिखाया गया है।

कृष्णगंगा में स्वर्ण सिकता मिलती है। प्राचीन इतिहास से प्रकाश पड़ता है कि कृष्णगंगा उपत्यका के दरद लोग सिन्ध नदी के ऊर्ध्व भाग मे बालू से सोना निकालते थे। कवि विल्हण भी कृष्णगंगा के बालू से सोना निकालने का वर्णन करता है। उसके अनुसार कृष्णगंगा तथा उसकी सहायक नदियो की सिकता से स्वर्ण निकाला जाता था।

काश्मीर की उत्तर-पूर्व लद्दाख की नदियो से भी स्वर्ण-रेणु निकाली जाती थी।

देव साई अधिकत्या के जल प्रवाह मे बहते सिकता किंवा बालू से सोना निकाला जाता था। अबुलफजल लिखता है कि पखली की नदियो के बालू से स्वर्ण निकाला जाता था। काश्मीर की पश्चिमी सीमान्त नदियो की बालू मे सुवर्ण रेत मिलने का वर्णन सुदूर प्राचीन काल से मिलता है।

अटक के ऊपर सिन्धु नदी की बालू से सोना निकालने का व्यवसाय अत्यन्त विकसित था। स्वात अंचल से आनेवाली नदियों में भी सुवर्ण रेत मिलती है। काबुल नदी में भी स्वर्ण रेत मिलती है। कालान्तर मे सोना निकालना बहुत महँगा पड़ गया। अतएव यहाँ व्यवसाय समाप्त हो गया। (इम्पीरियल गजेटियर : २० : ११९ पेशावर)

रावलपिण्डी की नदियो मे भी सुवर्ण रेत मिलती है (इम्पीरियल गजेटियर : रावलपिण्डी : २१ : २६९)।

जोनराज के वर्णन से प्रकट होता है कि जैनुल आबदीन के समय सिकता से स्वर्ण निकालने का व्यवसाय विकसित था। वह बालू सिन्धु महानद, कृष्णगंगा उपत्यका, पखली एवं पश्चिम सीमावर्ती नदियो के रेत से निकाला जाता था। मैं शारदी तथा सीमान्तवर्ती नदियो के तटो पर नही जा सका। वे पाकिस्तान के अधीन है, वहाँ जाना कठिन है। किन्तु सिन्धु नदी के बालू मे मैंने स्वयं स्वर्ण सदृश चमकता कण अपनी लद्दाख यात्रा के समय देखा था। वह किस प्रकार निकाला जाता था कहना कठिन है। पूछने पर मालूम हुआ कि अब बालू से सोना निकालना महँगा पड़ता है। इस व्यवसाय के नष्ट होने का एक धार्मिक कारण और मालूम होता है। मुसलिम धर्म के अनुसार सोना हराम है। काश्मीर तथा पखली, गिलगिट स्कर्दू आदि निवासियो ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया था, अतएव उनकी मानसिक रुचि इस ओर नही रह गयी थी। काश्मीर के सुलतानो की स्वर्ण मुद्राये नाममात्र को मिलती हैं। मुद्रा मे ताम्र एवं रजत का अधिक प्रयोग होता था।

काश्मीर मे सुवर्ण गिलगिट, इस्करदू, लद्दाख और दरस क्षेत्र की स्रोतस्विनियो तथा नदियों के रेत मे मिलता है। अनुमान लगाया गया है कि स्वर्ण-खानें सोनमर्ग के समीपस्थ स्थानो मे थीं। गिलगिट मे नाला बगरोत की रेत से भी स्वर्ण निकलता है। स्वर्ण रेत अर्थात् पिप्पलिका के प्राप्यक्षेत्र और नदियाँ पाकिस्तान के अधिकार में अनधिकृत रूप से हैं।

पाद-टिप्पणी :

८८६ (१) षष्ठांश : जैनुल आबदीन ने भविष्य के राजाओं के लिये सुवर्ण का षष्ठांश लेने की याचना-

नगराधिकृतः काचडामरो दुस्तरे पथि।
क्रोशमात्रं व्यधात् सेतुं नगरान्तः शिलामयम् ॥ ८८७ ॥

८८७ नगराधिकारी कांच डामर नगर के अन्दर दुस्तर मार्ग में कोशभर शिलामय सेतु निर्मित कराया।

नात्मैव सेतुदानेन तेन पङ्कात्समुद्धृतः।
सकलोऽपि जनो मध्येनगरं पुण्यशालिना ॥ ८८८ ॥

८८८ उस पुण्य शाली ने नगर के मध्य सेतुदान द्वारा केवल स्वयं को ही पंक से समुद्धृत नहीं किया अपितु सकल जन को।

विषये विषये चक्रे शिर्यभट्टो मठान् पृथून्।
अन्येऽपि सचिवा राज्ञो धर्मशाला बहूर्व्यधुः ॥ ८८९ ॥

८८९ शिर्य भट्ट ने 'विषय-विषय'[1] में मठों को बनवाया, और राजा के अन्य सचिवों ने बहुत धर्म शालाएँ बनवाईं।

वाक्य लिखाया था। अपने समय में यह कर स्वरूप कितना भाग लेता था कहीं स्पष्ट नहीं होता। सम्भावना यही है कि वह किसी अवस्था में षष्ठांश से अधिक कर नहीं लेता था (म्युनिख पाण्डु० ७२ : बी०,) तबकाते अकबरी : ३ : ४३६; फिरिस्ता ३४२)।

पाद टिप्पणी :

८८८. (१) सेतु : जोनराज सेतु का नाम नहीं देता। परशियन इतिहासकारों से पता चलता है कि उसने जैन कदल पुल का निर्माण कराया था (तबकाते अकबरी : पाण्डु० : ४५ ए०) वाक्याते काश्मीर नाम जैना कदल देती है (पाण्डु० : ४३ : ५४ बी०, नारायण कौल : पाण्डु० ६९ ए०, हैदर मलिक : पाण्डु० : ४५)।

पीर हसन लिखता है–'और नाला मार (महासरित) पर सात मजबूत पुल लोगों के आमदरफ्त के लिये कायम किया (उर्दू : अनुवाद : १७६)।' जोनराज का तात्पर्य उक्त सेतुओं अर्थात् पुलों से है क्योंकि श्रीनगर में सब पुलों का निर्माण हुआ था।

पाद-टिप्पणी :

८८९. (१) विषय-विषय : विषय विश. तथा विश्व राजतरंगिणियों में समानार्थक रूप में प्रयोग किये गये हैं। यूनानियों ने राज्य एवं 'विश' को एक ही माना है। प्रत्येक राज्य के नागरिकों को विशः की संज्ञा देते हैं। सिन्ध तथा पंजाब के सभी राज्यों के विषय में प्रायः यही कहा है। किन्तु भारतीय लेखक उन्हें जनपद तथा देश कहते हैं (पाणिनि : ४ : १ : १६८–१७७)। कल्हण ने विषय शब्द का प्रयोग देश किंवा उसके राजा के सन्दर्भ में किया है। विषय, विश्व तथा विशः की स्थिति राज्य से छोटी थी। समय-समय पर उसका अर्थ बदलता गया है।

काश्मीर उपत्यका छोटे-छोटे प्रशासकीय विभागों में सुदूर प्राचीन काल से विभाजित थी। उन्हें आजकल की भाषा में परगना कहते हैं। उनका प्राचीन नाम विषय था। लोकप्रकाश में उल्लेख मिलता है कि काश्मीर २७ विषयों में विभाजित था (पृष्ठ ७७)। लोकप्रकाश में १९ विषयों का नाम भी मिलता है।

अबुल फजल ने जिस समय आइने अकबरी लिखी, उस समय ३८ परगना थे। उसके पूर्व काजी अली के अनुसार ४१ परगना थे। सिखों के राज्य-काल में लगभग ३६ परगना थे। मूरक्राफ्ट (सन् १८२८ ई०), वाइन (सन् १८४० ई०) तथा बैरन हुगेल (सन् १८३५ ई०) ने परगनों की संख्या ३६ दी है। उनके नाम प्रायः नहीं मिलते। कोशरा काल

पद्माकरस्य मथनाय गजाधिराजा-
वभ्युद्यतौ सततमेव तदम्बुतृप्तौ।
तावत्कराकरि रदारदि चातिमत्तौ
कृत्वा क्षणादगमतां स्वयमेव नाशम् ॥ ८९० ॥

८९० पद्माकर का मथन करने के लिये दो गजराज उद्यत हुये, तब तक उसके जल से तृप्त तथा अति मत्त होकर सुण्ड-सुण्ड, दांत-दांत, से प्रहार कर क्षणभर में स्वयं ही नष्ट हो गये।

मसोदशूरौ धात्रेयौ भूपतेरेकगोत्रजौ।
द्वौ रन्ध्रान्वेषिणावास्तामन्योन्यविभवासहौ ॥ ७९१ ॥

८९१ राजा का धातृपुत्र, एक गोत्रज रन्ध्रान्वेषी परस्पर विभव को न सह सकने वाले मसोद और शूर थे।

राज्ञा तौ वारितक्रोधौ स्नेहदाक्षिण्यशालिना।
हत्वान्यतरमुत्पिञ्जसज्जावभवतां चिरम् ॥ ८९२ ॥

८९२ स्नेह दाक्षिण्यशाली राजा ने उन दोनों का क्रोध निवारित किया, एक दूसरे, किसी की हत्या कर पुनः वे दोनों षड्यन्त्र उद्यत हो गये।

कदाचिद् भूपतेरग्रे स्पृष्टः शूरेण वाक्शरैः।
मसोदठक्कुरः शस्त्रसन्न्यासं समकल्पयत् ॥ ८९३ ॥

८९३ किसी समय भूपति के समक्ष शूर के द्वारा वाक् बाणों से विद्ध होकर, मसोद ठक्कुर ने शस्त्र संन्यास (त्याग) कर दिया।

तक उनके नाम तथा उनकी सीमा घटती - बढती रही है। मेजर वाट्स (सन् १८६५ ई०) ने परगनो की संख्या ४३ दी है। तत्पश्चात् परगनों के स्थान पर काश्मीर ११ तहसीलो मे विभक्त कर दिया गया। परगनों की संख्या सुदूर प्राचीन काल से २७ से बढकर सन् १८६५ ई० मे ४३ हो गयी थी।

प्राचीन काल में विषय एक जिला के समान माना जाता था। एक राज्य अथवा क्षेत्र और कभी विषय मण्डल के अन्तर्गत और कभी मण्डल विषय के अन्तर्गत मान लिया जाता था। कभी दोनो समानार्थक होते थे (ई० आई० : ८-४)।

(२) धर्मशाला : मुख्य - मुख्य सडकों पर यात्रियों के विश्राम के लिये धर्मशालाओ का निर्माण किया गया था। उनकी सुव्यवस्था के लिये उन पर गाँव चढ़ा दिये गये। उन ग्रामो की आय से शालाओं का व्यय वहन होता था (म्युनिख : पाण्डु ७१ ए०)। धर्मशाला मे कोई भी व्यक्ति निःशुल्क निवास कर सकता था। धर्मशाला एवं सराय, यात्रियो, पर्यटको तथा व्यापारियों के निवास हेतु बनाई जाती थी जो दो-चार दिन ठहर कर अपना और प्रबन्ध कर लेते थे अथवा अपनी यात्रा पडाव देकर आरम्भ कर देते थे।

पाद-टिप्पणी :

८९३. शस्त्रसंन्यास : पहलवान लोग अच्छी कुश्ती एवं ख्याति प्राप्त कर लेने पर दंगलो की कुश्ती लड़ना छोड देते हैं। इसी प्रकार योद्धा शस्त्र रख देता है। वह शस्त्र पुनः नही उठाता। युद्ध मे अथवा साहसी कार्यों में भाग नही लेता। इसी अर्थ मे शस्त्र-संन्यास शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है।

जिस प्रकार संन्यास लेने पर किसी व्यक्ति की नागारिक मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार शस्त्र-संन्यास लेने पर मनुष्य का आयुधजीवी कर्म समाप्त

न्यस्तशस्त्रः स रजनौ गच्छन्मितपरिच्छदः ।
रन्ध्रं लब्ध्वाऽथ शूरेण मसोदठक्कुरो हतः ॥ ८९४ ॥

८९४ शस्त्र त्याग कर रात्रि में मित परिच्छद (सेवकों) के साथ जाते हुये, उस मसोद ठक्कुर को अवसर पाकर, शूर ने मार डाला ।

विन्नाद्यैठक्कुरैस्तस्य भ्रातृभिः ख्यातपौरुषैः ।
हन्तुमभ्यर्थितः शूरो भूपतेः प्रेमशालिनः ॥ ८९५ ॥

८९५ ख्यात-पौरुष विन्नादि[1] ठक्कुरों ने शूर[2] को मारने के लिये, प्रेमशाली राजा से अभ्यर्थना की ।

शूरे सानुचरे विन्नठक्कुरेण हते सति ।
प्रसादमगमत्कीर्तिठक्कुराणां च धीस्तदा ॥ ८९६ ॥

८९६ विन्न ठक्कुर द्वारा अनुचर सहित शूर के मार दिये जाने पर, उस समय (राजा की) कीर्ति फैली और ठक्कुरों की बुद्धि प्रसन्न हुई ।

तथा स योगिनां मानमदाद् भूलोकवासवः ।
तेषामग्रे यथा मद्रराजाद्यैर्लेडितं श्ववत् ॥ ८९७ ॥

८९७ उस राजा के योगियों[1] का अत्यधिक आदर करने से उनके आगे मद्रराजादि श्वानवत् क्रीड़ा करते थे ।

हो जाता है । सन्यासी का कोई नागरिक अधिकार शास्त्र की दृष्टि से नही रह जाता । उसका नाम तक बदल दिया जाता है । वह अग्नि एव धातुओ का स्पर्श नही कर सकता । साधारण लोगो के समान वस्त्र न धारण कर वह गेरुआ परिधान पहन लेता है । उसी प्रकार शस्त्र सन्यास लेने पर सैनिक किंवा योद्धा अपने शस्त्रोपजीवी कर्म एव शस्त्र धारण करना त्याग देता है ।

पाद-टिप्पणी :

८९५. (१) विन्न: विन्न के विषय मे जोनराज स्वल्प प्रकाश डालता है । उसका उल्लेख आगामी ८९६ तथा ९६९ श्लोको में और किया है ।

(२) शूर : जैनुल आबदीन ने विन्नादि ठाकुरो की अभ्यर्थना पर शूर को मारने की आज्ञा दे दी (म्युनिख पाण्डु० : ७४ ए०, तबकाते अकबरी : ४४१) ।

पाद-टिप्पणी :

८९७ (१) योगी : जैनुल आबदीन योगियों का आदर करता था । वह स्वयं योगी था । योगी के कारण उसे पुत्ररत्न हुआ था । वह योगवाशिष्ठ सुनता था । उसके दर्शन का उस पर प्रभाव था । तबकाते अकबरी मे एक कथा योगी के सम्बन्ध मे दी गयी है—एक बार सुलतान बीमार हो गया । उसकी मृत्यु आसन्न थी । लोग उसके जीवन से निराश हो गये । इसी समय काश्मीर मे एक योगी पहुँचा । उसने कहा मैं सीमिया का ज्ञान जानता हू । सुलतान को निरोग करने का और दूसरा कोई इसके अतिरिक्त उपाय नहीं है कि अपनी आत्मा को उसके शरीर में डाल दूँ । राजा के पार्षदों ने योगी तथा उसके एक शिष्य को उसके सिरहाने के जाकर अकेले छोड़ दिया । उसने अपने शिष्य से कहा—'जब मेरा शरीर आत्मा निकल जाने से बेकार हो जाय तो बाग़न की

अवस्था मे ले जाकर उसकी रक्षा करना।' जब सुल्तान की आत्मा उसके शरीर से निकल गयी तो अपनी आत्मा को अपने शरीर से निकालकर अपने ज्ञान से जो वह रखता था, उसे सुल्तान के शरीर मे प्रविष्ट कर दिया और सुल्तान निरोग हो गया (उ० तै० भा० २ . ५२०)। पीर हसन इस कथा को दूसरी तरह से कहता है।

इस प्रकार की ऐतिहासिक घटनाये मिलती है। शंकराचार्य ने दूसरे के शरीर मे प्रवेश किया था। बाबर ने अपने पुत्र हिमायू की बीमारी मे भगवान से स्वयं बीमार और हिमायूं को अच्छा करने की प्रार्थना की थी। हिमायूं ज्यो-ज्यों अच्छा होने लगा बाबर बीमार होता गया और हिमायू के अच्छे होते ही वह मर गया।

वाकयाते काश्मीर मे उल्लेख है—'सुलतान को सचाई जानने की उत्सुकता रहती थी। वह अन्दरूनी सफाई रखता था। कहा जाता है कि उसका एक छोटा लड़का था। उसकी नीयत खराब हो गयी थी। सुलतान ऊलर तालाब मे था। अपने लडके से कहा 'माला भूल गया हूँ ले आओ।' जब लडका वहाँ पहुँचा तो उसने सुल्तान को वहाँ माला फेरते हुए देखा। सुलतान की वह शक्ति देखकर उसने अपना बुरा ख्याल त्याग,दिया। (पाण्डु० : ४३,४४।५४ ए०)।

पीर हसन लिखता है—'एक दिन सुलतान जैना लेक के महल मे अकेला बैठा हुआ था। सुलतान का बेटा हाजी खाँ शैतानी व सीमिया से सुलतान को कत्ल करने का ख्याल दिल मे लाया। सुलतान ने उसकी तरफ देखकर फरमाया कि मेरी तसबीह मसजिद में गिर पड़ी है। जल्दी से जाकर लाओ। हाजी खाँ मसजिद में गया। क्या देखता है कि सुलतान वहाँ हाथ मे तसबीह लिये हुए वजीफ़ा पढ़ता है। हैरत से वापस लौटा। सुलतान ने उससे तसबीह माँगी। हाजी खाँ शरमिन्दा होकर पैरो पर गिर पड़ा। बाज मोरखीन लिखते हैं कि सुलतान इल्म सीमिया और रीमिया में बखूबी माहिर था (उर्दू : अनुवाद पृष्ठ १८०, १८१)।'

सुलतान स्वयं अपने जीवन के उत्तरार्ध मे योगी था। इस सन्दर्भ मे पीर हसन उल्लेख करता है— 'मोरखीन हिन्दू बाज अजीबो-गरीब किस्से कि अक्ल से बयोद मालूम होते है हसन एतक़ाद मे पेश नजर अपनी किताबो मे लिखते है। उनमे से सुलतान के हक मे एक अजीबो-गरीब किस्सा लिखते हैं। कि सुलतान जैनुल आबदीन बत्तीस वर्ष की हुकूमत के बाद मर्जुल मौत मे गिरफ्तार हो गया। करीब था कि मर जाता कि दो शख्स एक श्रीवट और दूसरा दोरीवट जो हमेशा सुलतान के खिदमत मे रहते थे अपने पास एक कामिल जोगी रखते थे। जो इल्म सीमिया मे बड़ा माहिर था। जब बादशाह की मौत करीब आ पहुँची तो यह दोनो मुसाहेब निहायत हैरान और परीशान हुए और इस जोगी के सामने हाथ जोडकर सुलतान की हुसूल सेहत की अर्ज की। जोगी जो मजकूर दोनो आदमियो की हुस्न खिदमात का निहायत ममनून था—कहा कि सुलतान की मौत लाजमी और हतमी है और बिल्कुल इलाजो-वजीर नही। अब मैं तुम दोनो की रियायत से अपनी रूह बादशाह के कालिब मे उतार कर उसको जिन्दा कर दूगा और अपने जिस्म को तुम्हारे हवाला कर दूगा। तुम्हें चाहिये कि उसे पूरी हिफ़ाजत से किसी अलग जगह रखकर ख्याल रखो। ऐसा न हो कि वह जाया हो जाये इन दोनो आदमियो को बड़ी चापलूसी और फरेब से उस सुलतान के सिरहाने परदे के पीछे छिपा दिया। ज्योंही कि बादशाह की रूह बादशाह के बदन से निकली जोगी की रूह उस वक्त जोगी के कालिब से निकल कर बादशाह के जिस्म मे दाखिल हो गयी। बादशाह के मुसाहबो ने फौरन जोगी का जिस्म उठाकर श्मशान के हवाला कर दिया। सुलतान सहीह व सालिम बिस्तर अलालत से उठकर हुकूमत के कारोबार मे मसरूफ हो गया। इस तरह जोगी ने अपने जिस्म से हाथ धोकर हुकूमत और सल्तनत के प्याला से लज्जत उठाई, (उर्दू अनुवाद : पृष्ठ १८२)। पीर हसन हिन्दू लेखकों एवं पुस्तकों का नाम नहीं

स ददद्योगिनां भोगं योगं तेभ्योऽग्रहीन्नृपः ।
भयं ददद्रातिभ्यो दधावभयमप्यहो ॥ ८९८ ॥

८९८ आश्चर्य है ! उस राजा ने योगियों को भोग[1] देते हुये, उनसे योग का ग्रहण किया। शत्रुओं को भय देते हुये, अभय धारण किया।

मुद्राकर्परकन्थादि वारयन् योगिनां नृपः ।
कुण्डलं हेमपात्राणि दुकूलमपि दत्तवान् ॥ ८९९ ॥

८९९ राजा ने योगियों के मुद्रा,[1] कर्पर,[2] कन्थादि[3] दूर करते हुये, उन्हें कुण्डल, हेमपात्र एवं वस्त्र दिये।

छित्त्वा पर्वतपक्षतीरपि नवाः फेनेन हत्वाप्यहिं
कृत्वा यज्ञशतं त्रिलोकविजयी कीर्त्या न तृप्तिं गतः ।
इन्द्रः पीतसितासितारुणहरिद्वर्णं विधत्ते धनु-
र्ज्योतिर्धूमसमीरनीरघटनामात्रेऽप्यसारे घने ॥ ९०० ॥

९०० पर्वतों के नवीन पक्षों[1] को काटकर तथा फेण द्वारा अहि की हत्या कर एवं शतयज्ञ करके भी त्रिलोकविजयी इन्द्र कीर्ति से तृप्त नहीं हुआ और धूम, समीर, नीर के घटना मात्र असार घन में पीत, श्वेत, कृष्ण, अरुण एवं हरित् वर्ण का धनुर्ज्योति निर्मित करता है।

देता। यदि किसी सन्दर्भ ग्रन्थ का नाम देता तो इतिहास सम्बन्धी एक और पुस्तक का पता चलता और तत्कालीन इतिहास पर कुछ और प्रकाश पडता।

पाद-टिप्पणी :

८९८. (१) भोग : जोनराज के वर्णन का समर्थन श्रीवर ने भी किया है। योगियों के प्रति जैनुल आबदीन की बडी श्रद्धा थी। उसने योगवासिष्ठ का अध्ययन किया था। योगवासिष्ठ के सिद्धान्त का उस पर प्रभाव पडा था। उसने स्वतः योगवासिष्ठ के सिद्धान्त से प्रभावित होकर एक रचना की थी। योगी के प्रति उसकी श्रद्धा का वर्णन श्रीवर ने ललित भाषा में किया है (जैन० : १ : ५ : ४६–५३)। तुहफातुल अहबाब (पाण्डु० : १३ बी०) से प्रकट होता है कि जैनुल आबदीन ने योगियों के लिये लंगर भी बनवाया था। वह पुरातन क्षेत्र भिक्षा सत्र के तुल्य थे जहाँ योगियों आदि को मुफ्त खाना मिलता था। वह लंगर जिस स्थान पर था उस मुहल्ला का नाम जुगी लंगर पड गया। वह इस समय श्रीनगर का रानीवोर स्थान है।

पाद-टिप्पणी :

८९९. (१) मुद्रा : दोनों कानों मे शंखादि की मुन्दरी पहनते हैं। कनफटे योगी आज भी उन्हें पहने दिखायी देते हैं। उन्हें बदल कर सुलतान ने कुण्डल धारण करने के लिये दिया।

(२) कर्पर : वर्तन साधू प्रायः कपाल, खोपडी, खप्पर अथवा नारियल तथा पात्रादि शरीर तथा भौतिक सुखो की उपेक्षा के कारण लिये रहते हैं। उन्हें बदल कर जैनुल आबदीन ने स्वर्णपात्र प्रदान किया।

(३) कन्था : गुदडी—पैबन्द लगा वस्त्र किंवा योगियो का परिधान यथा 'जीर्णं कन्था ततः किम्' (भर्तृहरि २७४) सुलतान ने साधुओं एवं योगियों के गुदडी तथा फटे-पुराने कपडों के स्थान पर उन्हें वस्त्र-दान किया।

पाद-टिप्पणी :

९००. (१) पर्वत पक्ष : पूर्वकाल में पर्वतों को पक्ष किंवा पंख होते थे। वे उडते थे। इन्द्र ने

भूतानां भाविनां वाऽपि यदशक्यं महीभुजाम् ।
तदिष्टसाहसो राजा कीर्तये कर्तुमिष्टवान् ॥ ९०१ ॥

९०१ भूत एवं भावी राजाओं के लिये जो अशक्य था, इस साहसी राजा ने कीर्ति हेतु उसे करने की इच्छा की ।

कर्तव्यं साहसं यद्यदचिन्तयदयं नृपः ।
कालस्यानवधित्वेन विपुलत्वेन च क्षितेः ॥ ९०२ ॥
तत्तत्सम्भाव्य साध्यं स भाविभिर्मेदिनीश्वरैः ।
दूरादब्धिरिवायातो रत्नेष्वधिकदीप्तिषु ॥ ९०३ ॥
साहसेष्वेकमादातुमपि प्राप न निश्चयम् ।
उपचारैर्दरिद्राणां संभवोदारमानसः ॥ ९०४ ॥
न तोषितः श्रुतै राज्ञामतीतानां स साहसैः ।
अगम्येष्वपि भूपालः शैलेषु च सरःसु च ॥ ९०५ ॥
शब्देष्वर्थेष्विव कविस्ततः समचरन्नृपः ।
वणिजामिव वाक्यानि व्यवहारसमुत्सुकः ॥ ९०६ ॥

९०२–९०६ इस राजा ने करणीय, जिस-जिस साहस को सोचा, काल के अनवधित्व एवं पृथ्वी की विपुलता के कारण, उन-उन साहसों में, भावी पृथ्वीपतियों द्वारा एक भी सम्भाव्य साध्य ग्रहण करने का निश्चय, उसी प्रकार नहीं कर सका, जिस प्रकार दूर से समुद्र तट पर आया व्यक्ति, अधिक दीप्तिमान रत्नों में एक को ग्रहण करने का निश्चय नहीं कर पाता है । उदारमन वह राजा, दरिद्रों के उपचारों के समान अतीत राजाओं के सुने गये, साहसों से सन्तुष्ट नहीं होता था और अगम्य शैलों एवं सरों में अगम्य शब्दों एवं अर्थों में कवि के समान विचरण करता था । व्यवहारोत्सुक व्यक्ति के वणिकों के वाक्यों के सदृश—

राजा नीलापुराणादीन् पण्डितेभ्यस्ततोऽशृणोत् ।
चिन्तान्तराणि संत्यज्य साहसैकसमुत्सुकः ॥ ९०७ ॥

९०७ एक मात्र साहस के लिये उत्सुक राजा अन्य चिन्ताओं को त्याग कर, पण्डितों से नीलपुराणादि[1] श्रवण करता था ।

दिया । यह कथा वाल्मीकि रामायण मे सविस्तार दी गयी है । शतक्रतु इन्द्र ने वज्र द्वारा लाखो उड़ने वाले पर्वतों के पंख काट डाले । जब इन्द्र मैनाक पर्वत का पंख काटने गये तो वायु ने सहसा मैनाक को समुद्र मे गिरा दिया । (सुन्दर० : १ : १२४–

पाद-टिप्पणी :

९०७. (१) नीलमतपुराण : नीलमतपुराण लौकिक पुराण है । इसे उपपुराण भी कहते हैं । पुराण की रचना काश्मीर उपत्यका मे हुई थी । इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तरपुराण के विषय मे भी मत है कि उसकी रचना काश्मीर में हुई थी । पुराण वेद के

प्राधिकार का आदर करता है। वैदिक सिद्धान्तो की व्याख्या करता है। उसे प्रमाण मानता है। नील मत-पुराणो की सनातनी परिभाषानुसार पुराण प्रमाणित होता है।

नीलमतपुराण काश्मीर का ऐतिहासिक एव भौगोलिक वर्णन करता है। लघु ग्रन्थ है। क्षेत्र व्यापक नही है। उसम राजाओ के वश का वर्णन है। कल्हण ने बहुत कुछ सामग्री नीलमतपुराण से ली है। उसकी शैली पुराणा जैसी प्राचीन है। सवाद-प्रतिसवाद रूप से घटनाओ तथा कथावस्तु का वर्णन किया गया है। उसम माहात्म्यो, तीर्थो, क्षेत्रो देव-स्थानो का वर्णन है। कतिपय विद्वानो ने उसे माहात्म्य की श्रेणी म रखने का प्रयास किया है। परन्तु कल्हण ने उसे स्वय पुराण मानकर उसका आदर किया है।

'मत' शब्द महत्वपूर्ण है। इसमे नील मुनि के मत का सग्रह है। डॉ० भण्डारकर ने इसे काश्मीर माहात्म्य की सज्ञा दी है। यह ठीक नहीं है। शीर्षक से ही पता चलता है कि नील मुनि के मतो एव कथनो का इसमे प्रतिपादन किया गया है। नीलमत के रचना काल के विषय म विद्वान एक-मत नहीं है।

उसे सन् ६००–७०० ई० के मध्य की रचना मानते हैं। उसका रचना काल यदि प्राचीन न भी हो तथापि उसम पुरातन तथ्यो का समावेश किया गया है। इसम वैष्णव, शैव एव बुद्धमत का एक-मात्र वर्णन मिलता है। नीलमतपुराण मे अन्य पुराणो के कुछ श्लोका का उद्धरण मिलता है। विष्णु-धर्मोत्तर पुराण के श्लोक नीलमत म मिलते हैं। इसका काल लगभग सन् ४४०–५५० ई० माना गया है। काश्मीर भूमि की किस प्रकार रचना हुई, सतीसर से यह कैसे काश्मीर उपत्यका बन गया। इसका उल्लेख सविस्तार नीलमत पुराण मे किया गया है। तीर्थ, देवस्थान, देश रचना आदि के विषयों का पुस्तक के दो तिहाई भाग मे वर्णन किया गया है।

इस पुराण मे अन्य पुराणो के समान सप्त द्वीप, नव वर्ष, सप्त कुलपर्वत आदि तथा तीर्थों का उल्लेख है। काश्मीर के भूगोल के साथ काश्मीर के बाहर भारतीय भूगोल का भी वर्णन उसम मिलता है। प्राचीन जातियो का भी उसमे उल्लेख किया गया है। तत्कालीन समाज की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियो तथा चारो वर्णों के कर्मों पर भी प्रकाश डाला गया है। महिलाओ की स्थिति, उनके अधिकार एव कर्तव्य का उल्लेख किया गया है। नीलमत पुराण मे वर्णसकर का उल्लेख नही मिलता। वह काश्मीर के उल्लासमय, आल्हादमय, जीवन का चित्रण है। गायक, वाद्य वादक, सूत, मागध, बन्दी, चारण, मल्ल, नट, नर्तक, खेल-कूद, आहार विहार, भुवन रचना, शृङ्गार, साज-सज्जा, फल फूल, राजपथ, हास परिहास, मूर्तिरचना, भास्कर, शिल्प, चित्रकला, अभिषेक, वस्त्र, वासा, वसन, सवत, चीनाशुक, कम्बल, आदि का वर्णन नीलमत करता है। उसम सेवा, सेना सघटन, युद्ध, मत-मतान्तर, पर्वत, सरिता, नदी-नद, कुल्या, उत्सव, पर्व, नाग, स्रोतस्विनिया, सर, तडागो का वर्णन किया गया है।

नीलमत म १३९६ श्लोक हैं। उनमे ३७५ अनुष्टुप छन्द हैं। नीलमत पुराण के प्राप्त सस्करण से प्रकट होता है कि उसके वर्तमान सस्करण-काल मे शैव मत एव शिवपूजा का विशेष प्रभाव शिव एव पार्वती सम्बन्धी व्रतो, उपवासो, उपासना तथा पूजा का प्रचलन था। विष्णुपूजा का महत्व जनता मे शिव के पश्चात् था। इसका वर्णन श्लोक ११६९-१२४८ तक म मिलता है।

इसी प्रकार तीर्थों का वर्णन श्लोक सख्या १२७१-१३७२ म किया गया है। नील नाग अर्थात् वेरीनाग वितस्ता उद्गम से भौगोलिक चित्रण से कथा का आरम्भ होकर बारहमूला की गहरी घाटी जहाँ वितस्ता काश्मीर उपत्यका को नमस्कार कर चली जाती है, समाप्त होता है। वितस्ता का उद्गम-तथा उपत्यका से निर्गमन तक का इतिहास ही नील-मतपुराण है।

कदाचिद् धरणीपालश्चिरमेवमचिन्तयत् ।
देहस्येव त्रिलोकस्य मुखवत् क्षितिमण्डलम् ॥ ९०८ ॥

९०८ किसी समय धरणीपाल ने चिरकाल तक इस प्रकार चिन्तन किया—'देह के मुख सदृश त्रैलोक्य का मुख क्षितिमण्डल है—

प्रधानं तत्र कश्मीरमण्डलं नयनं यथा ।
शैलराजशिखाः पक्ष्मतुलां यत्र वहन्ति ताः ॥ ९०९ ॥

९०९ उसमें नेत्र के समान प्रधान काश्मीर मण्डल है; जहाँ पर पर्वतराज[1] की शिखायें पक्ष्म तुल्य हैं—

तारामण्डलवत्तत्र महापद्मसरोवरः ।
महापद्मास्पदं तत्र ज्योतिर्मण्डलसोदरम् ॥ ९१० ॥

९१० उसमें महापद्मसर[1] तारामण्डल सदृश है और महापद्मास्पद[2] ज्योतिर्मण्डल का सहोदर है।

पुराने समय मे प्रायः पण्डित लोग नीलमत पुराण पढ़ते थे। इस समय इसके पाठ का अभ्यास लुप्तप्राय हो गया है। कुछ संस्कृत पढे काश्मीरी पण्डितों को ही उसका ज्ञान है।

पाद-टिप्पणी :

९०९. (१) पर्वतराज : हिमालय।

पाद-टिप्पणी :

९१०. उक्त श्लोक : संख्या ९१० के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या ११९४-११९६ अधिक हैं। उनका भावार्थ है—

(११९४) जिसमे प्रतिबिम्बित होने से मालूम होता है कि मैनाक पर्वत का अन्वेषण करने के लिये उद्यत हिमालय निरन्तर घूमता है।

(११९५) समुद्र सदृश जिसमे सूर्य प्रतिबिम्ब के ब्याज से—

(११९६)—अन्दर दीप्त बड़वानल लक्षितहोता।

(१) महापद्मसर : उल्लोल सर अथवा उल्लरलेक का देवता महापद्मनाग है (श्रीकण्ठचरित १ : ९७१)। जोनराज ने महापद्मसर नाम से ही ऊलर लेक का उल्लेख किया है। जोनराज ने सर्व प्रथम इसे उल्लोल सर नाम से अभिहित किया है १२२७)। श्रीवर ने (१ : २३५) इसे पद्मनागसर नाम से अभिहित किया है। ध्यानेश्वर माहात्म्य मे इसको उल्लोल लिखा गया है (२०·३३)। महापद्मनाग का वर्ण वैश्य है, रंग पीत है, दृष्टि खाली है, दिशा वायव्य है, उसका चिह्न शूल है।

पद्मनाग का वर्ण शूद्र है, रंग कृष्ण है, दृष्टि चंचल है, दिशा पश्चिम है, चिह्न पद्म हैं। महापद्मसर तथा पद्मसर दोनो ही शब्द ऊलर लेक के लिये अभिहित होते हैं। नीलमत पुराण तथा चीन के तंग इतिवृत्त मे महापद्मसर नाम मिलता है। योगवासिष्ठ रामायण मे महापद्म सर के साथ ही साथ पद्मसर की संज्ञा भी उलर लेक के लिये दी गयी है—'पद्मसर श्वेत कमल पंक्तियो की माला से सुशोभित है। शैवाल तरंगो से शोभित है। नील कमल की लताओ से पूर्ण है। आवर्त शीतल है (योग : स्थिति प्रकरण ३२ : ५०१०)।'

यहाँ पद्मसर का काश्मीर के जल प्रणाली तथा प्राकृतिक दृष्टि से बहुत महत्व है। यह जलप्लावन अथवा बाढ़ के समय वितस्ता के जल को ग्रहण कर उपत्यका को बाढ़ से बचा लेता है। काश्मीर उपत्यका के पश्चिमी भाग को अत्यन्त प्रभावित करता है। बाढ के समय लम्बाई एक मील और चौड़ाई दो मील बढ़ती है।

तदापूर्य कथञ्चिचेत्कियन्मात्रमपि क्रमात्।
निर्माणं शक्यते कर्तुं तदा राज्यफलोदयः ॥ ९११ ॥

९११ किसी प्रकार क्रम से कुछ मात्रा में उसे पूर्ण करके निर्माण किया जा सकता है और तभी राज्यफल का उदय होगा।

अगाधसलिलच्छन्नक्रोशाष्टाविंशतिप्रमः ।
सरोराजः स हि महानाशयो महतामपि ॥ ९१२ ॥

९१२ वह सरोराज अट्ठाइस कोश तक अगाध जल से छन्न महान लोगों के महान आशय तुल्य है।'

इसकी गहराई कहीं भी १५ फिट से अधिक नहीं है। इसमें नाव परिवहन उत्तरीय वायु के कारण प्रायः कठिन हो जाता है। यह काश्मीर का सबसे बड़ा सर है।

नीलमत पुराण में कथा दी गयी है। किस प्रकार महापद्मनाग वूलर लेक में निवास करने लगा था (नी० ९०६–१००८) प्रारम्भ में नाग सडागुल इसमें रहता था। काश्मीर की स्त्रियों को उठा ले जाता था। नील नाग ने सडागुल को दार्व में निर्वासित कर दिया। सडागुल के चले जाने पर सरोवर सूख गया। वहाँ राजा विश्वगाश्व ने एक नगर बसाया। ऋषि दुर्वासा का इस नगर में स्वागत नहीं हुआ। अतएव उन्होंने शाप दे दिया। स्थान जल से नष्ट हो गया।

कालान्तर में महापद्मनाग ने काश्मीर में शरण चाही। नीलनाग ने उसे चन्द्रपुर स्थान बता दिया। वह विश्वगाश्व के पास पहुँचा, राजा से प्रार्थना की। उसे चन्द्रपुर में रहने की आज्ञा प्रदान की जाय। राजा ने आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही ब्राह्मण रूप त्याग कर महापद्म ने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। राजा से कहा—'चन्द्रपुर जलमग्न हो जायगा।' नाग के सावधान करने पर राजा विश्वगाश्व ने चन्द्रपुर त्याग कर दो योजन और पश्चिम नवीन नगर विश्वगाश्वपुर की स्थापना की। नाग ने नगर को सरोवर में परिणत कर दिया। अपने कुटुम्ब के साथ वहाँ निवास करने लगा।' जनश्रुति है कि डूबा हुआ नगर जल में अभी तक दिखाई पड़ सकता है।

महापद्मनाग—काश्मीरियों द्वारा दूसरा कालिया माना जाता है। जिसे भगवान कृष्ण ने मथुरा में नाथा था। कालियादह की कथा पुराणों में रोचक शैली में वर्णित की गयी है। कालिया के फण पर भगवान पैर रख कर खड़े हो गये थे। फण पर पादपद्म का चिह्न हो गया। काले सर्पों के फणों पर जब वे फैला देते हैं तो यह चिह्न दिखाई पड़ता है। सपेरे ग्रामीणों में फण पर के इस चिह्न को दिखा कर पैसा वसूल करते है। जोनराज कालिया का उल्लेख श्लोक संख्या १३४ में करता है।

वितस्ता के अतिरिक्त महापद्मसर में मधुमती (वन्द पोर नाला) गिरती है। वह पर्वत हरमुख तथा नागवल समीपस्थ जल ग्रहण करती है। संगम के मुहाना पर उत्तर ओर डेल्टा-सा बन गया है। यह वह मधुमती नहीं है, जो कृष्णगंगा में शारदा तीर्थ में मिलती है। सोपुर से दो मील ऊपर दक्षिण-पश्चिम लेक के कोने से वितस्ता पुनः निकल कर बारहमूला की ओर चलती है।

(२) महापद्मास्पद : आस्पद का अर्थ आवास, स्थल, स्थान, आसन, जगह तथा ठौर होता है। जोनराज का तात्पर्य है कि महापद्म का स्थान ज्योतिर्मण्डल के समान अर्थात् उसके दूसरे भाई तुल्य है। कालिदास ने रघुवंश (३ : ३६) तथा कुमार-सम्भव (१ : ४३; ५ : १० : ४८, ६९) में इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है।

पाद-टिप्पणी :

९१२. (१) अट्ठाइस कोस : कोश की

विचिन्त्येति स विस्रष्टुं तत्रोपायं सरोवरे ।
नावास्य गतवान्मध्यं योगीवात्मानमात्मना ॥ ९१३ ॥

९१३ यह विचार कर उस सरोवर में कोई उपाय करने के लिये नाव द्वारा मध्य में उसी प्रकार गया जिस प्रकार योगी अपने आप आत्मा में प्रविष्ट होता है।

सदैवोद्धतकल्लोलं महापद्मसरो महत् ।
नागाहन्त नृपाः पूर्वे तरणीभङ्गशङ्किनः ॥ ९१४ ॥

९१४ सदैव उद्धत कल्लोल युक्त विशाल महापद्मसर में नौका भंग की आशंका करके पूर्ववर्ती नृपति नहीं प्रवेश किये।

तपः प्रभावाद्धैर्याद्वा कार्यगौरवतोऽपि वा ।
स्थलवत्सलिले तत्र स राजा व्यचरत्सुखम् ॥ ९१५ ॥

९१५ तपस्या के प्रभाव से या धैर्य से अथवा कार्यगौरववश वह राजा स्थल सदृश सुखपूर्वक उस जल में विचरण किया।

यच्चेतसा चिरतरं परिचिन्त्यमानं
चिन्तामणिः किल ददाति तदेव नान्यत् ।
चित्तस्य चापि यदगोचरतामुपैति
तत्तु प्रयच्छतितरां बत बुद्धिरत्नम् ॥ ९१६ ॥

९१६ चिरकाल तक मन से जो कुछ चिन्त्यमान होता है, चिन्तामणि[1] उसे ही प्रदान करता है, न कि अन्यत, किन्तु चित्त[2] के लिये भी, जो अगोचर है, उसे भी बुद्धिरत्न प्रदान करता है।

काश्मीरी में 'ग्रूह' कहते हैं। दो मील का कोस माना जाता है। सम्भव है आज से ६०० वर्ष पूर्व सरोवर बट्ठाइस कोस रहा होगा परन्तु इस समय वह केवल १२ मील लम्बा तथा ५ मील चौडा है। यदि काश्मीर उपत्यका में २४ घण्टा वर्षा और बरफ गलने लगे तो ऊलर का विस्तार बहुत बढकर फैल जाता है। साधारणतया वर्ष में ऊलर लेक १२ मील लम्बी तथा ६ या ७ मील चौडी रहती है। उसका क्षेत्रफल ७८·३० वर्ग मील रहता है। बाढ़ के समय १३ से ३० मील लम्बी तथा ७ से ८ मील चौडी और क्षेत्रफल १०३·३० वर्ग मील हो जाता है (लारेन्स वैली : पृष्ठ ६२)। वह भारतवर्ष की सबसे बड़ी झील है।

मुझे एक आधुनिक पढे-लिखे सोपुर के रहने वाले ने बताया कि पुराने समय दो कोस का एक मील होता था। उससे जोनराज का वर्णन ठीक मिलता है। लेकिन पूछ-ताछ करने पर यही मालूम हुआ कि २ मील का एक कोस होता है। जैसा अन्य स्थानो में प्रचलित है।

पाद-टिप्पणी :

९१६. (१) चिन्तामणि : यह एक कल्पित रत्न है। उसमें सामर्थ्य होती है कि उससे जो कुछ मागा जाय वह दे देती है। यह अभिलाषा को पूर्ण करती है। कामना की सब चिन्ताएँ चिन्तनीय प्रदत्त कर दूर कर देती है (शान्तिशतक : १ : १२, नैषध : ३ : ८१ योगवासिष्ठ : निर्वाण : प्र० : पूर्वार्द्ध : सर्ग ८८)।

(२) चित्त : द्रष्टव्य : योगवासिष्ठ रामायण-लीला तथा चुडाला उपाख्यान (योगवासिष्ठ : उ० : प्र० : सर्ग १५; ६०, तथा निर्वाण : प्र० : पूर्वार्द्ध ७७–११०)।

तस्य हि क्षितिपालस्य निरालस्यमतेः सतः ।
सरसः स्थलतां कर्तुमुपायः प्रत्यभादयम् ॥ ९१७ ॥

९१७ आलस्यरहित मतिमान उस राजा को सरोवर को स्थल बनाने के लिये यह उपाय प्रतिभासित हुआ ।

शिलापूर्णप्रवहणैरुपर्युपरि पातितैः ।
शैलशृङ्गैरिवाम्भोधिमेतदापूरयाम्यहम् ॥ ९१८ ॥

९१८ शिलापूर्ण प्रवहणों द्वारा ऊपर-ऊपर गिराये गये शैल शृंगों से सागर के समान इसे पूर्ण कर दूँगा ।

कृताभिर्लोहनद्धाभिः पट्टीभिर्देवदारुणः ।
न क्लिद्यन्ते न भिद्यन्ते शिलाप्रवहणानि यत् ॥ ९१९ ॥

९१९ देवदार लौह नद्ध पट्टियों से निर्मित शिला प्रवहण न सड़ेंगे और न टूटेंगे ।

ततः प्रत्यागतो राजा वृद्धानाबद्धकौतुकः ।
अभ्यगाच्छरणं तत्र ते चैनं नृपमभ्यधुः ॥ ९२० ॥

९२० कौतुकी राजा वहाँ से प्रत्यागत होकर वृद्धों की शरण में गया और वहाँ उन लोगों ने राजा से कहा—

द्वारिकेव शुभा तस्य पुरी सन्धिमती किल ।
सुदर्शनेन चक्रेण मनुजानां समाश्रिता ॥ ९२१ ॥

९२१ सुदर्शन[1] चक्र द्वारा द्वारिकापुरी[2] सदृश उसकी सन्धिमती पुरी मनुजों के आश्रित थी,—(वे रक्षक थे)

पाद-टिप्पणी :

९१७ (१) स्थल : सतीसर को भगवान ने जलोद्भव वध कर स्थल रूप कर दिया था। जोनराज जैनुल आबदीन को नारायण का अवतार मानता है। अतएव उसके कार्य की तुलना पूर्वकाल की दृष्टि मे रख कर करता है। सुलतान ने कुछ भूमि के अंश को स्थल बनाया था। साक्षात् भगवान ने पूर्ण सतीसर को स्थल बना दिया था। उसके अवतार जैनुल आबदीन ने कुछ अंश को ही जल से स्थल बना दिया था (रा० १ : २७)।

पाद-टिप्पणी :

९२१. (१) सुदर्शन चक्र : नारायण के चक्र का नाम सुदर्शन चक्र है। महाभारत में इसके तेजस्वी एवं दिव्य रूप का वर्णन किया गया है (आदि० : १९ : २०–२५)। अग्निदेव ने सुदर्शन चक्र भगवान कृष्ण को प्रदान किया था। अग्नि ने इसकी प्रकृति का स्वयं वर्णन किया है। (आदि० : २२४ : २३–२७)। शिशुपाल का वध भगवान कृष्ण ने सुदर्शन चक्र द्वारा किया था (सभा० ४५ : २१–२५)। सौभ विमान का विध्वंस एवं शाल्व का संहार सुदर्शन चक्र द्वारा ही हुआ था (वन० : २२ : २९–३७)। शिव मन्दिरों के कलश पर त्रिशूल और विष्णु मन्दिर कलश पर चक्र प्रतीक स्वरूप लगाया जाता है। शिव के हाथ मे त्रिशूल एवं विष्णु के हाथ मे चक्र आयुध रूप मे रहता है। शुक्रनीति के अनुसार चक्र तीन प्रकार के उत्तम, मध्यम एवं अधम होते हैं। आठ आरों वाला उत्तम, छह वाला मध्यम तथा चार आरों वाला अधम होता है। सोलह अंगुल का चक्र उत्तम माना जाता है। युद्ध

काल में उँगली पर घुमाकर फेंका जाता था। आजकल भी श्रीगुरुगोविन्द सिंह के अनुयायी अपने पगड़ी पर चक्र लगाते हैं।

(२) द्वारिका पुरी = सप्त पुरियों में एक पुरी है। चार पवित्र धामों में एक धाम है। द्वारिका का अपर नाम द्वारावती भी है। द्वारका भी नाम लिखा जाता है। द्वारका, द्वारिका, द्वारावती एक ही नाम हैं। द्वारका का एक नाम कुशस्थली भी है। द्वापर युग में कुशस्थली द्वारका में परिणत हो गयी। सोराष्ट्र में समुद्रतट पर यह स्थान है। रणछोड़ जी का मन्दिर शिल्प की दृष्टि से उत्तम है। कथा है—भगवान कालयवनों के विरुद्ध युद्ध त्याग कर द्वारका चले गये। अतएव उनका नाम रणछोड़जी पड़ा। पुराणों में उल्लेख मिलता है। मगध राज जरासंध को भगवान कृष्ण पराजित न कर सके तो मथुरा से द्वारका चले आये। वह मन्दिर ४० वर्गफुट लम्बा-चौड़ा तथा १४० फुट ऊँचा है। दोहरी दिवालों से निर्मित किया गया है। मध्य में परिक्रमा के लिये स्थान छोड़ दिया गया है। यहाँ शंकराचार्य जी की चार गद्दियों में एक गद्दी है। उक्त मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ त्रिविक्रम, कुशेश्वर तथा शारदा मन्दिर है।

ओखा बन्दरगाह के दूसरी तरफ द्वीप पर समुद्र पार बेट द्वारिका है। यह स्थान सुरम्य है। यहाँ प्राचीन भवनों तथा कुण्ड के ध्वंसावशेष हैं। उसको प्राचीन द्वारका कहते हैं। वह वर्तमान द्वारका से २० मील दूर है। द्वीप सात मील लम्बा है। प्रभास क्षेत्र के उत्तर पश्चिम है। द्वारका के समीप ही वहाँ भगवान का दाह संस्कार हुआ था। प्राचीन अनर्त देश था। किम्वदन्ती है कि प्राचीन द्वारका समुद्र में विलीन हो गयी है। नवीन द्वारका वर्तमान द्वारिका है।

द्वारका का सुन्दर वर्णन महाभारत में किया गया है। कालयवन के आक्रमण के पश्चात् भगवान कृष्ण ने यादवों की रक्षा हेतु ऐसे दुर्ग बनाने की कल्पना की कि वह दुर्गम तथा निरापद के साथ यादवों के साथ महिलायें भी युद्ध में भाग ले सकें। भगवान के बारह योजन समुद्र मध्य भूमि पर द्वारका नगर बसाया। यादव वहाँ आकर निवास करने लगे। द्वारका में श्री कृष्ण ने अश्वमेध यज्ञ किया था। यादव संहार एवं कृष्ण तथा बलराम के स्वर्गारोहण के पश्चात् द्वारका को समुद्र ने डुबा दिया। (मौसल : ७ : ४ : ४२)। श्री कृष्ण के द्वारका त्यागने का सन्देश दारुक द्वारा यादवोंको भेजा गया। अर्जुन के साथ यादव द्वारका त्याग कर चले गये (भाग० : १० : ५२ : ५; ६६ : १-३; ७६ : ८-१४; विष्णु० : ५ : २४ : २६-२७-७ : ३७-३८)।

द्वारका के दुर्ग का नाम रैवतक है। गोमान भी उसका नाम मिलता है। दुर्ग तीन योजन लम्बा था। एक-एक योजन पर सेनाओं के तीन शिविर थे। प्रत्येक योजन के अन्तर पर सौ द्वार थे जो सेनाओं द्वारा सुरक्षित थे (सभा० : १४ : ५०-५५)। दुर्ग के चारों ओर खाई किंवा प्राचीर थी। वह ऊँचे प्राकारों से वेष्ठित थी। द्वारका में नन्दन, मिश्रक, चैत्ररथ एवं वैभ्राज वन थे। द्वारका के पूर्व दिशा में रैवतक पर्वत था। दक्षिण में लताविष्ट, पश्चिम में सुकक्ष एवं उत्तर में वेणुमत्त नामक पर्वत थे। पर्वत के चारों ओर वन - उपवन थे। पुरी के पूर्व दिशा में एक पुष्करिणी थी। उसका विस्तार शत धनुष था। पुरी में पचास द्वार थे। उसमें प्रवेश हेतु आठ प्रशस्त राजपथ थे। शुक्राचार्य की परिकल्पनानुसार नगर का निर्माण किया गया था (सभा० : ३८)। वहाँ का पिण्डारक क्षेत्र पवित्र माना जाता था (वन० : ८२)।

द्वारका, प्रभास क्षेत्र, बेट द्वारिका की मैंने तीन बार यात्रा की है। महाभारत का वर्णन पढ़कर वहाँ की यात्रा करना अच्छा होगा। ओखा बन्दर गाह से देखने पर महाभारत की सत्यता प्रमाणित होती है। वहाँ से बेट द्वारिका का द्वीप एक पहाड़ी के समान लगता है। द्वारका डूबने का वर्णन मिलता है। निश्चय ही भूकम्प आदि के कारण प्राचीन द्वारिका का कुछ अंश डूब गया होगा। पुराणों के अनुसार भगवान का भवन समुद्रमग्न होने से बच

नगर्या देवता तस्या महापद्मः फणीश्वरः ।
त्वमिवैतांश्चतुर्वर्णान् पुत्रवत् पर्यपालयत् ॥ ९२२ ॥

९२२ उस नगरी के देवता फणीश्वर[1] महापद्म हैं, जिसने तुम्हारी तरह इन चतुर्वर्णों का पुत्रवत् प्रतिपालन किया है—

कलिकालबलात्तत्र दुराचारनिषेविणः ।
जनास्तद्देशवास्तव्याः प्रापुर्वृद्धिं दिनादिनम् ॥ ९२३ ॥

९२३ 'कलि काल' बल से वहाँ दुराचार सेवी तद्देश निवासी जन दिनों दिन वृद्धि प्राप्त किये हैं—

अथ वर्णाश्रमाचारविपर्यासानुबन्धतः ।
क्रोधं नागपतिर्यातो दूषणादिव सज्जनः ॥ ९२४ ॥

९२४ वर्णाश्रम आचार[1] के विपर्यासानुबन्ध के कारण नागपति दूषण के कारण, सज्जन सदृश क्रुद्ध हो गये—

गया था। महाभारत मे पुष्कारिणी का उल्लेख है। वेट द्वारिका मे पुष्कारिणी आज भी टूटी शिला-सोपानो सहित दिखाई पड़ती है। महाभारत मे पुष्कारिणी का जो परिमाण दिया है। वह मिलता है।

मुसलिम आक्रमण एवं उनकी यथेष्ट आबादी यहाँ होने के कारण, वहाँ का सब कुछ नष्ट हो गया था।

मुसलिम आबादी-बहुल होने के कारण नवीन द्वारिका निर्माण की कल्पना की गयी होगी। द्वीप पर होने के कारण वह अरब तथा मुसलिम नाविकोंके आक्रमण के कारण अरक्षित थी। द्रष्टव्य (सभा० : १४ : ५०–५५; ३८ : ८०६,८१२–८१७, आदि० : २१७-२१९,वन० : १५-२२, ८२ : ६५; अनु० : ७० : ७, मौसल : १ : १९–२१, ७ : ४१–४२)।

पाद टिप्पणी :

९२२ (१) फणीश्वर महापद्म : इसके रूप का वर्णन (रा० ४ : ६०१) किया गया है। उसका मुख मानव का था। वह एक वितस्ति अर्थात् एक बित्ता मात्र परिमाण मे था। उसके साथ अनेक छोटे-छोटे सर्प थे। नीलमतपुराण (८८४ = १०५४) मे पद्मनाग का दो बार उल्लेख किया गया है। नागो की तालिका मे इसकी क्रमसंख्या २६ वी है। इसका निवासस्थान उल्लोलसर अथवा वूलर लेक अथवा महापद्म या पद्मसर है (रा० : ४ : ५.९३)।

पाद-टिप्पणी :

९२४. (१) आचार : कल्हण आचार लुप्त होने की घटना का उल्लेख (रा० : १ : १७९–१८६) करता है। आचार लुप्त हो जाने से नाग क्रुद्ध होकर हिम वर्षा करते हैं। काश्मीर मण्डल की क्षति होने लगती है।

तृतीय गोनन्द राजा हुआ तो पूर्ववत् नागयात्रा और नागयज्ञादि होने लगे। नीलोक्त विधि पुनः प्रचलित करने पर भिक्षु तथा हिमदोष दोनो शान्त हो गये। जोनराज इसी कथा की ओर सकेत करता है। सिकन्दर तथा अलीशाह के समय आचार दूषित हो गये थे। कलियुग का रूप प्रकट हुआ था, देश पर कष्ट आया था। जैनुल आबदीनके समय आचार पुन लौटा। नाग पूजादि होने लगी। देश मे समृद्धि हो गयी।

अनुज्झितनिजाचारं कुम्भकारं स कश्चन।
स्वप्नेऽवदद् दुराचारान् पौरान् मज्जयितास्म्यहम् ॥ ९२५ ॥

९२५ वे निज आचार को न त्यागने वाले किसी कुम्भकार से स्वप्न में बोले—मैं पुरवासियों को डुबा दूँगा।

नागः प्रजादुराचारात् प्रजा व्रोडयतीति तम्।
प्रातर्वदन्तमहसन् पौरा मत्तमिवाखिलाः ॥ ९२६ ॥

९२६ प्रजा के दुराचार के कारण नाग प्रजाओं को डुबा देंगे इस प्रकार कहने वाले कुम्हार का पुरवासी उसी प्रकार परिहास करने लगे जैसे मत्त को सब लोग।

फणाशतोल्लसद्वारिधाराशब्दभयङ्करः ।
नागराजोऽथ नगरीं वैरीवावेष्टयज्जलैः ॥ ९२७ ॥

९२७ सैकड़ों फणों से वारिधारा को छोड़ते हुये भयंकर शब्द युक्त नागराज शत्रु के समान जल से नगरी[1] को परिवेष्ठित कर लिये।

पाद-टिप्पणी :

९२५. (१) कुम्भकार : कुम्भकार तथा उनकी स्त्रियों का सम्बन्ध प्रायः संस्कृत ग्रन्थों की आख्यायिकाओं में मिलता है। मिहिरकुल के समय में एक कुम्भकार की स्त्री के अलौकिक कार्य का वर्णन किया गया है। जिसके कारण अडिग शिला हट गयी थी (रा० खण्ड : १ : पृष्ठ ३३२)।

पाद-टिप्पणी :

९२६. उक्त श्लोक सख्या ९२६ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या १२१३–१२१४ अधिक है। उनका भावार्थ है—

(१२१३) उस समय आस्तिक कुम्भकार के नगर से चले जाने पर, शीघ्र ही नागराज ने जलापूर (बाढ) से समस्त नगर डुबा दिया।

(१२१४) जबतक पुरवासी हरिण समान पुर से निकलते, तबतक सामने ही दावाग्नि समान वह जल आक्रान्त कर दिया।

पाद-टिप्पणी :

९२७. (१) नगरी : नागो के रुष्ट होने के कारण नगर नष्ट करने की गाथा काश्मीर में पुरातन काल से प्रचलित रही है। राजा नर किंवा किन्नर के समय भी नाग ने रुष्ट होकर नगर नष्ट कर दिया था (रा० : २५९–२६६–३१७)। इसी प्रकार आख्यायिका है कि, विश्वगाश्व के समय चन्द्रपुर नाग के रुष्ट होने पर नगर जलमग्न हो गया था।

परशियन इतिहासकारो ने घटना प्रायः वही दी है। राजा का नाम दूसरा है।

काश्मीर के भूगोल मे भी यह घटना संक्षेप रूप मे दी गयी है—'जब राजा सुन्दरसेन काश्मीर मे राज्य करता था। यानी २५०० साल ईसा पूर्व यहाँ एक सन्दीमत नगरी आबाद थी। यह नगरी गुनाहों के सबब भूचाल से नीचे दब गयी और वहाँ झील बन गयी (जदीद ज्योग्रेफी काश्मीर जम्मू : पृष्ठ : ४६)।

मुहम्मद उद्दीन फाक ने मुकम्मल तवारीख काश्मीर (२ : ४१) मे एक विचित्र आख्यान इस सम्बन्ध मे उपस्थित किया है—'सुन्दरसेन दुराचारी राजा था। प्रजा भी दुराचारी थी। बलाल एक सन्त था। उसने राजा एवं प्रजा दोनों से दुराचार समाप्त करने के लिये कहा। उसकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। एक दिन उसने परेशान होकर उस जनाकीर्ण स्थान को त्याग दिया। उसने सावधान किया—'यदि दुराचार का अन्त नहीं होगा, तो नगर जलमग्न होकर सरोवर बन जायगा।' लोगो ने ध्यान नहीं दिया। उसकी भविष्यवाणी ठीक उतरी। नगर जल मे डूबकर उल्लोलसर बन गया।

मन्त्रान् पठत्सु विप्रेषु जनेषु प्रणमत्स्वथ ।
रुदत्स्वपि च बालेषु नास्याभूद्यमवद्दरः ॥ ९२८ ॥

६२८ ब्राह्मणों के मन्त्र पढ़ने पर, लोगों के प्रणाम करने पर, लड़कों के रुदन करने पर भी यम की तरह उसे दया नहीं हुई ।

भयाद्बालेषु पुत्रेषु कण्ठलग्नेषु योषितः ।
बाष्पमुक्ताफलैश्चक्रुः पूजां फणिपतेरिव ॥ ९२९ ॥

६२६ भय से बाल पुत्रों के कण्ठ से लिपट जाने पर स्त्रियों ने अश्रु मुक्तावली से मानो फणि पति की स्त्रियों ने पूजा की—

पादादङ्कं ततः कण्ठं ततः स्कन्धं ततः शिरः ।
प्राणा इव सुता जग्मुर्मातॄणां भयविह्वलाः ॥ ९३० ॥

६३० माताओं के पैर से अंक में, वहाँ से कण्ठ में, वहाँ से स्कन्ध पर, वहाँ से शिर पर, प्राण से समान पुत्र भय विह्वल[1] हो चढ़ गये ।

हैदर मल्लिक (पाण्डु० : ४६) ने भी इसी प्रकार का एक आख्यान अपनी तारीख मे जोडा है—'यह तालाब पुराने समय मे सुन्दर नगर था ।' इसका एक राजा था । उसका नाम सुन्दरसेन था । वह अन्यायी था । जनता स्थान त्याग कर भागने लगी । वहाँ एक 'ऊँजा' (कुम्हार ?) रहता था । उसने स्वप्न देखा—'अहले मुल्क के लोग जो कि खराब हैं, तोबा नही करते हैं । कहर इलाही आयेगा ।' उसने हरचन्द नसीहत दिया । फल कुछ नही हुआ । एक रोज इलहाम हुआ । शर्तें तुमने पूरी की । इन लोगो ने तुम्हारी बातें नही मानीं । इसलिये भूमि डूब जायगी । तुम इस शहर के बाहर चले जाओ । कुछ लोगो से उसने इस बात को कहा । वह (इस्तहरा-मन हरा ?) आया । उस स्थान के लोगो ने देखा कि रात को कुल्जागर भाग गया ।

भागकर वह एक पहाड पर जो 'कराला शकर' (कराल शिखर ?) मशहूर है उस पर आ गया । सुबह देखा कि शहर दरया हो गया है । उस शहर मे मन्दिर था । वह पत्थर का था । पानी कम हो गया तो देखा कि वह मन्दिर दिखाई पडता था ।

नारायण कौल (पाण्डु० : ६९ बी०) ने इसी प्रकार का कथानक सुन्दरसेन राजा का दिया है । वाकयाते काश्मीर (पाण्डु० : ४३।५४ ए०) मे लिखा मिलता है कि पुराने लेखको ने लिखा है कि वहाँ एक बहुत बडा मन्दिर था । पानी की कमी पर चमकता था ।

पाद-टिप्पणी :

९३०. (१) विह्वल : जोनराज जलप्लावन का सजीव वर्णन करता है । नदी मे हठात् किस प्रकार बाढ आ जाती है और जल बढने लगता है, उसका अनुभव नदीतटवासी कर सकता है । जोनराज ने जल बढने का दृश्य अवश्य देखा था । ममतामयी माता शिशुओ की रक्षा के लिये जल वृद्धि के कारण किस प्रकार सन्नद्ध एवं व्याकुल थी यही इस पद से भाव लक्षित होता है । जल पहले भूमि पर फैला । पाद तल के समीप जल आने पर माताओ ने बच्चो को जल से बचाने के लिये गोद मे ले लिया । कटि तक जल आने पर शिशु को उठाकर कण्ठ से लगा लिया । कन्धा तक जल पहुचने पर उन्हे शिर पर रख लिया । आसन्न मृत्यु देखकर शिशु भयभीत, विह्वल हो गये ।

नष्टान् योजयितुं भूयः कश्मीरानिच्छतो हरेः ।
अवतारस्त्वमेतत्ते सिध्यत्येव चिकीर्षितम् ॥ ९३५ ॥

९३५ नष्ट काश्मीर को पुनः योजित[1] करने के लिये, इच्छुक हरि[2] के तुम अवतार हो, अतः यह तुम्हारा कार्य सिद्ध ही होगा।

राजा श्रुत्वेति तत्त्वज्ञः क्षणमेवमचिन्तयत् ।
एवंविधानि कार्याणि सिध्येयुः कथमन्यथा ॥ ९३६ ॥

९३६ यह सुनकर तत्वज्ञ राजा ने क्षण मात्र यह चिन्तन किया कि इस प्रकार के कार्य कैसे सिद्ध होंगे।

प्रजाचारविपर्यासान्नाक्षमिष्ट पुरं फणी ।
नानिष्टं सहतेऽल्पोऽपि तादृशस्तु महान् कथम् ॥ ९३७ ॥

९३७ प्रजा के आचार विपर्यास के कारण उस नगर को फणी ने क्षमा नहीं की। छोटा (सामान्य) भी अनिष्ट का सहन नहीं करता है, पुनः उस प्रकार का महान् कैसे सहता?

नागराजोचितच्छत्रसगोत्रमहमत्र तु ।
स्थलमात्रं यशोरत्नघटिकारम्यमारभे ॥ ९३८ ॥

९३८ यहाँ पर मैं राजोचित छत्र का सगोत्र एवं यशोरत्न घटिका से रम्य स्थल मात्र का (निर्माण) आरम्भ करता हूँ।

उल्लोलसरसो मध्ये वर्तमाने महास्थले ।
पवित्रे विजने चात्र सिद्धिं यास्यन्ति साधकाः ॥ ९३९ ॥

९३९ उल्लोल सर[1] के मध्य में वर्तमान पवित्र एवं विजन महास्थल पर साधक लोग सिद्धि प्राप्त करेंगे।

पाद-टिप्पणी :

९३५. (१) योजन : कल्हण ने योजन शब्द का प्रयोग (रा० : १ : १८७) इसी अर्थ में किया है। जोनराज वही भाव यहाँ प्रदर्शित करता, कल्हण के शब्द को दुहराता है।

(२) हरि अवतार यहाँ जोनराज ने गीता के प्रसिद्ध श्लोक के भाव को प्रगट किया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
गीता : ४ : ७ ।

हरेः, हरि शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया गया है। हरि शब्द श्रीकृष्ण एवं विष्णु के लिये आता है। हरिकथा का अर्थ विष्णु के अवतारो की कथा का वर्णन होता है। हरिकीर्तन विष्णु नाम एवं उनके अवतारो के चरित्र का कीर्तन करना होता है। हरि अवतार लेते हैं। विष्णु पालक हैं। जैनुल आबदीन भी जनता का, काश्मीर का पालक था। अतएव हरि शब्द का प्रयोग जैनुल आबदीन के लिये किया गया है। विष्णु के अवतारो के पूर्व हरेर्नाम का प्रयोग मुख्यतः कीर्तन काल मे किया जाता है— हरे राम—हरे कृष्ण आदि।

पाद-टिप्पणी :

९३९. (१) उल्लोलसर : सम्पूर्ण एशिया में मधुर जल की ऊपर सब से बड़ी झील है। श्रीनगर से ३० मील दूर बान्दीपुर और सोपुर के समीप स्थित है। समुद्र की सतह से ५१८० फिट ऊँचाई पर है।

वितस्ता वेरीनाग उद्गम स्थान पर ६००० फिट ऊँचाई से निकलती है। इस प्रकार इसकी लम्बाई १३ मील और चौड़ाई ६ से ८ मील है। गहराई १४ फिट है। ग्रीष्म ऋतु मे झील का पाट बढ़ जाता है। बरफ गलने के कारण जल की अधिकता हो जाती है। शीत ऋतु मे पानी घटने और तटीय भूमि निकल आने के कारण उन पर कृषी होती है। यह सर काश्मीर के अन्य सरो की अपेक्षा कम गहरा है। झेलम नदी इसमे गिरती है। वह इसे सर्वदा मिट्टी तथा बालू से पाटती रहती है। हजार दो हजार वर्षों मे झील का लोप भी हो सकता है। यह निरन्तर कम गहरी होती जाती है। झेलम एक तरफ से इसमे गिर कर दूसरी तरफ से निकल जाती है। इस प्रकार यह सर झेलम का पानी, बालू आदि अपने मे ही रखकर जल फिल्टर कर निकाल देता है। यह क्रिया अनन्त काल से चली आ रही है।

सर मे झेलम अर्थात वितस्ता नदी और झील का जल स्पष्ट भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होता है। जैसा गंगा-जमुना संगम प्रयाग पर दिखाई देता है। तटीय ग्रामो की आबादी का एक मात्र सहारा और पेशा यह झील है। झील से सिंघाड़ा, निदरू, मछली, जल-कुक्कुट, आदि प्राप्त कर उनसे अपनी जीविका चलाते हैं। श्रीनगर के बाजारो मे बिकने वाली सब मछलियाँ इसी झील से पकड़ी जाती हैं। प्रतिदिन एक हजार से अधिक मछुये छोटी-छोटी नावो पर मछली मारते हैं। वे प्रायः प्रात काल एवं रात्रि मे मछलियां मारते है।

मध्याह्न काल से उल्लोलसार किंवा ऊलर लेक पर ४ बजे सायकाल तक बहुत तेज हवा चलती है। उसे काश्मीरी भाषा मे 'नाग कू' कहते हैं। उस समय नाविक इसमे नाव नही चलाते। इसके तट पर बाबा शुकरुद्दीन की जियारत है। इसके पश्चिम तथा पूर्वी भागो पर वेद के वृक्ष खूब लगे हैं। उनसे स्थानीय लोग अपने लकड़ियो की कमी पूरी करते हैं।

श्री सर्वानन्द शास्त्री भारतीय पुरातत्व विभाग दिल्ली मेरे मित्र हैं, वे काश्मीरी ब्राह्मण हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय मे शारदा पाण्डुलिपि ग्रन्थो के शोध के लिये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में नियुक्त किये गये थे। उनका विवाह सोपुर मे हुआ है। उन्होंने ऊलर लेक सैकड़ो बार नाव से आर-पार किया था। उन दिनो वे सोपुर में शिक्षक थे। सोपुर आज से ५० वर्ष पूर्व विकसित नही था। डोगरा राज था। अच्छी सड़को के अभाव मे बस केवल दिन में चलती थी। सायंकाल नहीं चलती थी। दोपहर के पश्चात् तेज हवा चलती थी। मध्य सरोवर मे जल नीचे से ऊपर निकलता दिखाई देता था।

विवाह के पश्चात् दुलहा की पगड़ी की कलगी जहाँ धरातल से जल निकलता था, वहां पगड़ी से निकाल कर डाल दी जाती थी। कई बारातें यहाँ हवा की तेजी के कारण डूब गयी हैं। कलगी इस लिये डाली जाती थी कि महापद्म नाग प्रसन्न रहे और नाव निर्विघ्न गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाय। यहाँ प्रथम बार ऊलर का प्रयोग किया गया है। ऊलर शब्द उल्लोल का अपभ्रंश है (जोन० : श्लोक संख्या ९३९, ९४०, ९४४)। इसमे उत्ताल तरंग उठने के कारण इसका नाम उल्लोल पड़ा है। उल्लोल का अर्थ अति चंचल, अत्यन्त कम्पनशील अथवा बड़ी लहर या तरंग होता है। जनश्रुति है कि जैनुल आबदीन ने तूफान से नावो के आश्रय एवं रक्षा के लिये जैन लंका का निर्माण कराया था। काश्मीर के नाविक ऊलर लेक मे नाव चलाना पसन्द नही करते। जिस समय हवा बान्दी पोर की ओर से आती है और झंझा-वात शुकरुद्दीनपुर से ऊलर के गहरे जल पर चलती हैं तो शान्त जल स्तर समुद्री लहरो का रूप धारण कर लेता है। उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं। उन पर काश्मीरी नावे जिनका पेंदा चौड़ा समथर होता है, चलाना कठिन हो जाता है।

एकबार रणजीत सिंह की ३०० नावें ऊलर लेक मे लदी-लदाई डूब गयी थी।

जोनराज जैनलका बनाने का दूसरा कारण देता है। जैनुल आबदीन योगियो का भक्त था।

चिन्तयित्वेति भूपालः शिलाप्रवहणैर्दृढैः ।
उल्लोलसरसो मध्यमप्यगाधमपूरयत् ॥ ९४० ॥

९४० यह चिन्तन कर राजा दृढ शिला प्रवहणों द्वारा उल्लोल सर का अगाध मध्य भाग पाट दिया।

सरसस्तु तलस्तस्य स्थलीभूतेऽथ भूपतिः ।
मध्यदेशे महाराजो जैनलङ्कां विनिर्ममे ॥ ९४१ ॥

९४१ अनन्तर उस सर के स्थलीभूत हो जाने पर भूपति ने उसके मध्य देश में जैन लंका[1] निर्माण कराया।

उनकी एकान्त साधना के लिये निर्जन स्थान बनाना चाहता था, जहाँ वे सिद्धि प्राप्त कर सकें।

पाद-टिप्पणी :

९४१ (१) जैन लङ्का : निर्माण काल शिला-लेख पर खुदे 'खुर्रम' शब्द से निकलता है। उसके अनुसार हिजरी ८४७ = सन् १४४३-१४४४ ईस्वी आता है। जोनराज ने जैन लंका का पुन: उल्लेख श्लोक संख्या ९४१ तथा ९५४ मे किया है।

लंका उस जजीरे को कहते हैं जो कृत्रिम द्वीप बनाया जाता है। काश्मीरी 'लाक' शब्द लंका किंवा 'लंक' का अपभ्रंश है। रूप लंक तथा सोन लंक कालान्तर मे निर्माण किये गये। रूप लंक नसीम बाग और हजरत बल के सामने सालामार मार्ग मध्य है। इसका क्षेत्रफल ४६५ गज है। जलस्तर से तीन फिट उंचा है। सोन लंक बडे डल लेक अर्थात् डल कलाँ मे है। गगरी बल और निशात बाग मध्य है। इसे अमीर खा जवांशेरने सन् १८७४ विक्रमी = सन् १८१७ ई० मे निर्माण कराया था। डल लेक के पश्चिम तटपर हजरत बल तथा नसीम बाग है। उत्तर-पश्चिम कोण पर वान्दीपुर का कसबा है।

जैन लंक या लंका इस समय छिछले जल मे है। इसका निर्माण ऊलर लेक अर्थात् उल्लोलसर मे जैनुल आबदीन ने कराया था। गरमी मे जमीन निकल आती है। इसका रूप द्वीप का नहीं रह जाता। लंका द्वीप है। उसी की परिकल्पना पर कृत्रिम लंक या द्वीपो के निर्माण की परम्परा काश्मीर मे चल पडी थी।

जनश्रुति है। उस स्थान पर एक बडा मन्दिर था। उसी मन्दिर पर बडशाह ने जैन लंका का निर्माण कराया था। इस समय जैन लंका ऊलर लेक के जल मध्य नही है। कछार मे है। बाढ़ आने पर द्वीप का रूप ले लेता है।

वितस्ता नदी जहा ऊलर मे मिलती है, उसके ठीक दूसरी दिशा मे पडता है। ऊलर के दक्षिण-पश्चिम है। जिस समय इसका निर्माण हुआ था जल गहरा था। प्रमाणित करता है। वितस्ता के मिट्टी और रेत आदि लाने के कारण उनके जमने पर भूमि निकल आयी है। उस पर गाव आबाद हो गये हैं।

जैन लंक के ध्वंसावशेष देखने से पता चलता है कि वह अपने समय अत्यन्त रम्य स्थान था। जैनुल आबदीन के समय अशाम एवं सम्बल क्षेत्र के दक्षिण तक जल पहुच जाता था। यह प्राकृतिक क्रिया है। वितस्ता काश्मीर उपत्यका की मिट्टी, बालू तथा कंकड पत्थर बहाकर ले आती है। ऊलर लेक मे आकर गिरता है। जल स्थिर हो जाता है। आजकल वाटर वर्क्स का पानी बरसात मे साफ करने के लिये नदी से जल खींचकर फिल्टरेशन तालाब में छोडा जाता है। वहाँ जल स्थिर हो जाता है। तत्पश्चात् जल और साफ कर पाइप से पूर्ति की जाती है। ऊलर का जल दूसरी तरफ वितस्ता से निकलकर बारहमूला जाता है। ऊलर लेक दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है।

गत सन् १९५७ ई० मे काश्मीर सरकार ने दो

इंजर सुम्य तथा बडशाह नामक खरीदा है। उससे ऊलर मे बहती वितस्ता का पेटा साफ किया जाता है। उसका परिणाम यह हुआ है कि ऊलर का जल बाहर निकल जाता है। काफी भूमि जल से निकल आती है। उस पर खेती होती है।

दो ठोस स्वर्ण प्रतिमाये ऊलर मे मिली थी। उन्हें निकाला गया। उनसे सोना बनाया गया। उस स्वर्ण विक्रय द्रव्य से जैन लंक निर्माण का व्यय निकल आया था। सम्भवतः दोनों स्वर्ण प्रतिमायें ऊलर स्थित मन्दिरो की थी। सिकन्दर के समय मूर्ति-भंग का उन्माद उठा। किसी ने उन्हें विनाश से बचाने के लिये जल मे प्रवाहित कर दिया था।

मिर्जा हैदर दुगलात के लेख से पता चलता है कि जैन लंका पर सुलतान ने एक मसजिद और राजप्रासाद का निर्माण कराया था (तारीख रशीदी : पृष्ठ ४२९)।

जैन लंका पर बना राजप्रासाद चार मंजिला था। पहला मंजिल पत्थर, दूसरा ईंटा, तीसरा और चौथा काष्ठ का था (सैय्यद अली तारीख काश्मीर : ३०)। जिन हाजियो, नाविको, बढई, मिस्त्री एवं श्रमिको ने निर्माण मे भाग लिया था, उन्हें परगना खुय्यहोम की आय सर्वदा के लिये दी गयी थी (हसन : पाण्डु० : ११७ बी) मिर्जा हैदर विस्तार से इसका वर्णन करते हैं। उसके समय (सन् १५३३ ई०) यह द्वीप २०० वर्ग गज था। जलस्तर से १० गज ऊँचा था (तारीख रशीदी : ५२८-५२९)। बादशाह जहांगीर ने इस स्थान की यात्रा की थी। उसके समय १०० वर्ग गज था। (तुजुकरे जहांगीरी १ : ९४)। वेट्स के समय इसका रूप वर्गाकार नहीं रह गया था। उस समय ९५ गज लम्बा तथा ७५ गज चौड़ा था। (ट्रेवल : २५४-२५५) काल के आघात और बे-मरम्मत होने के कारण यह कृत्रिम द्वीप क्षीण होता चला गया है।

हैदर मल्लिक लिखता है कि सुलतान जैनुल आबदीन ने ऊलर लेक के मन्दिर के विषय मे पूछ-ताछ की। वहाँ अन्वेषण कराया। वहाँ से कुछ चीजें निकली। वहाँ पर कोई निर्माण नही था। वहाँ पर उसने निर्माण की आज्ञा दी। जलमय भूमि भरने के लिये किश्ती के उस्तादो ने गुजरात शैली की पालदार नावो पर पत्थर तथा मिट्टी भर कर जल मे डुबाना आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् जमीन निकल आई। उस पर निर्माण कार्य आरम्भ किया गया।

वहाँ पर तारीख लगी है। तारीख का पत्थर लेक की मसजिद मे लगा है। परगना कोहयामा (खुय्योम) को उस पर चढ़ा दिया। उसकी आमदनी से सर्वदा मरम्मत का काम चलता रहा। उसके इन्तजाम के लिए माझी, वगैरह वहाँ लाकर आबाद किये गये। वे अबतक पत्थर वगैरह वहाँ पर बिखेरते और मरम्मत करते हैं (पाण्डु० : ४६)।

नारायण कौल आजिज लिखते है—'सुलतान ने ऊलर मे एक जजीरा (द्वीप) बनवाया। उस पर निर्माण कराया। वह जैन लंका है (पाण्डु० : ६१ ए०)।' नारायण कौल ने जैनुल आबदीन के सम्बन्ध में तारीख रशीदी का उल्लेख किया है।

वाकयाते काश्मीर मे उल्लेख है—लेखको ने लिखा है कि यहा एक बहुत बडा मन्दिर था। पानी की कमी के कारण चमकता था। सुलतान ने गुजरात की तरह किश्ती बनवाकर उस पर पत्थर-मिट्टी भर कर वहा डुबा दिया। एक द्वीप बन गया। उस पर वहाँ एक इमारत और मसजिद बनवाया। उसका नाम 'लंग' (लेक-लंका) रखा। लंग की मसजिद निर्माण के पश्चात् उत्सव किया गया (पाण्डु : ४३।५४ ए०)। इस पाण्डुलिपि में लिपिक ने इस प्रकार लिखा है कि 'लंग' पढ़ा जाता है। परन्तु वह होना चाहिए 'लेक'। प्रचलित नाम 'लेक', 'लाक' तथा 'लंका' है।

पीर हसन लिखता है—'सुलतान अकसर औकात झील ऊलर की सैर मे बसर करता था। इस तालाब के बीचोबीच सन्धिमत का मन्दिर था। यह मन्दिर पानी कम होने के मौका पर नजर आता था। सुलतान ने उसकी चोटी पर एक लम्बी-चौड़ी किश्ती

नसब करके और उसे ईंटों और पत्थरों से पाटकर एक वसीय और ऊँचे जजीरा की बुनियाद डाली और उसका नाम 'जैनाडैनव' रखा। उस जजीरे के ऊपर एक तीन मंजिला ऊँचा झरोखा बनवाया। पहली मंजिल पत्थर, दूसरी ईंट और तीसरी लकड़ी की थी। इसके साथ एक छोटी सी गुम्बदादार मसजिद भी तामीर की जो अभी तक मौजूद है (उर्दू अनुवाद पृष्ठ : १७५-१७६)।'

राजप्रासाद तीन मंजिला था या चार इस पर मत वैभिन्न है। काश्मीर के पुरानी तारीखों के लेखकों ने अपने समय जैसा देखा अथवा सुना था, लिखा है। लेखकों के समय में शताब्दियों का अन्तर है अतएव उनका वर्णन एक समान नहीं हो सकता। तथापि निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन काल में महापद्म किंवा उल्लोलसर के दक्षिण-पूर्व दिशा में एक द्वीप था। यह जल में डूब गया था। सुलतान ने इस डूबे द्वीप को पत्थरों और मिट्टियों से जल के सतह से ऊँचा निवास योग्य बनवाया। वह उल्लोलसर में तूफान आदि के समय नावों के आश्रयस्थान किंवा बन्दरगाह का काम करता था। जैनुल आबदीन ने इस द्वीप का अपने नाम पर 'जैनलाक' नाम रखा। हिजरी ८४७=सन् १४४३-१४४४ ई० में इस द्वीप पर राजप्रासाद तथा मसजिद का निर्माण कराया। वहाँ पर एक उद्यान भी बनवाया। द्रष्टव्य तारीख रशीदी : ४२९, जर्नल आफ दी एशियाटिक सोसाइटी बंगाल सन् १८८० ई० : पृष्ट १६।

मोहिबुल हसन सब परशियन ग्रन्थों का मन्थन कर निष्कर्ष निकाल कर लिखते हैं—'कदीम जमाने में ऊलर झील के दक्षिन-पूरब कोने में एक जजीरा था, जो जेरआब हो गया था। जैनुल आबदीन ने इस जजीरा को फिर से ऊँचा करके इसको तूफान के मौका पर किश्तियों के लिये पनाहगाह बनाने का इरादा किया। इसने झील में पत्थर डालकर बड़ी मुश्किल से इसकी सतह को पानी से बुलन्द किया और इस जजीरा का नाम 'जैनलाक' रखा और हिजरी ८४७=सन् १४४३-१४४४ ई० में यहा एक महल, एक मसजिद, एक बाग बनवाया। महल में पाच मंजिलें थी। पहली मंजिल पत्थर की थी, दूसरी ईंट और तीसरी और चौथी मजिल लकड़ी की थी। मसजिद पत्थर की थी। जिन हाजियों, बढ़इयों और राजगीरों और दूसरे लोगों ने इन इमारतों के तामीर में हिस्सा लिया था इन्हें परगना खोयाहोम (खुरमहोम) की आमदनी से हमेशा रकम मिलती रही (उर्दू अनुवाद पृष्ठ: १३५)।' श्री मोहिबुलहसन तथा पूर्व परशियन इतिहासकारों में मंजिलें तीन, चार या पाच थी, भेद मिलता है। उन्होंने अपना मत तारीख सैय्यद अली (पृष्ठ ३०) तथा हसन : (पाण्डु० : ११७ बी०) पर आधारित किया है। नाव पर पत्थर लाद कर डुबाने की बात इंजिनियरिंग कार्य की अजीब सूझ थी। मैं शिपिंग बोर्ड इण्डिया का चेयरमैन काफी समय तक रह चुका हूँ। मुझे बन्दरगाहों तथा जहाजों के निर्माण का शौक रहा है। यद्यपि उस विषय में पण्डित नहीं था। विशाखापत्तनम् बन्दरगाह बालू की गति के कारण भरता जाता था। उसे रोकने के लिये सभी प्रयास विफल गये जो निरर्थक हुए। पूर्वीय भारतीय तट पर यही प्राकृतिक पर्वतावृत समुद्री बन्दरगाह था। भारतरत्न सर श्री विश्वेश्वरैय्या भारत के गौरवशाली इञ्जिनीयर बीसवीं शताब्दी में हुए हैं। जैसा जैनुल आबदीन ने पांच शताब्दी पूर्व किया था, वही श्री विश्वेश्वरैय्या ने किया। दो बड़े सामुद्रिक जहाजों में पत्थर भरा गया। उन्हें बन्दरगाह और समुद्र के मुहाने पर दक्षिण की ओर डुबो दिया गया। वे आज तक दिखाई पड़ते हैं। लहरों का प्रभाव उन पर नहीं पड़ा। वे वहां यथावत आज भी पड़े हैं। मालूम होता है ऊलर में तरंगों के कारण मिट्टी तथा पत्थर बह जाता था। इसीलिये जैनुल आबदीन के इञ्जिनीयरों ने नावों पर पत्थर लादकर उन्हें जैनलंका के स्थान पर डुबा दिया। पत्थर एक ही स्थान पर पड़े रह गये।

अन्ते तस्यैव सरसो राक्षसेन्द्रप्रसादतः ।
जयापीडमहीपालः स्थलभावमदापयत् ॥ ९४२ ॥

९४२ उस सर के अन्त में जयापीड[1] महीपाल ने राक्षसेन्द्र[2] की कृपा से स्थल बना दिया।

हेमन्ते विसशृङ्गाटकिबुकोद्धरणादिना ।
श्रीजयापीडकोट्टस्य ज्ञायतेऽगाधवर्तिता ॥ ९४३ ॥

९४३ हेमन्त में बिस[1], शृङ्गाट[2], किबुक[3] के उद्धरण आदि से श्री जयापीड कोट की गहरायी ज्ञात होती है।

उल्लोलस्यान्तभागेषु सुय्यकुण्डलकादयः ।
दृश्यन्ते बहवो ग्रामा विशालसदनाङ्किताः ॥ ९४४ ॥

९४४ उल्लोल के अन्त भाग में विशाल सदन युक्त सुय्य, कुण्डलादि[1] बहुत से ग्राम दिखायी देते हैं।

पाद-टिप्पणी :

९४२. (१) जयापीड : द्रष्टव्य = श्लोक : ८८३।

(२) राक्षसेन्द्र : विभीषण। एक समय राजा जयापीड ने अपने सम्मुख उपस्थित एक दूत से ५ राक्षसों को लंका जाकर राक्षसेन्द्र से माँग लाने के लिये लिखित पत्र दिया। वह दूत लंका जा रहा था तो जहाज पर से समुद्र में गिर पड़ा। उसे एक मछली निगल गयी। दूत ने मछली मार कर अपना उद्धार किया और समुद्र तटपर पहुँच गया। लंकापति विभीषण ने पाँच राक्षसों को जयापीड के पास दूत के साथ भेजा। राजा ने दूत को पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न किया। राक्षसों से उसने गहरे सर को पटवा कर उसपर जयपुर कोट निर्माण कराया। राजा जयापीड ने वहाँ भगवान बुद्ध की तीन प्रतिमा, एक महाकार बिहार तथा जयादेवी का देवस्थान बनवाया। वहीं उसने शेषशायी केशव की भी स्थापना की (राज० : ४ : ५०३-५०८)। अन्दरकोट ग्राम के समीप प्रोफेसर बुहलर को जयपुर तथा द्वारावती दोनों के ध्वंसावशेष मिले थे।

पाद-टिप्पणी :

९४३. बिस : कमलनाल = काश्मीरी भाषा में नदरू कहते हैं। बीसवीं शताब्दी के पूर्व इसे बिस ही कहा जाता था।

(२) शृङ्गाट : सिंघाडा—काश्मीर भाषा में इसे 'गोर' कहते हैं।

(३) किबुक : जलीय शाक—काश्मीरी भाषा में इसे 'कैनोवोव' कहते हैं।

पाद-टिप्पणी :

९४४. (१) सुय्य कुण्डल : इस ग्राम के वर्तमान नाम का पता नहीं लग सका है। कुण्डल वृत्ताकार ग्रामवाचक शब्द है। गाँवों का घेरा है। उदयपुर—अहमदा सडक पर कुण्डल ग्राम पडता है। मैंने हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड उदयपुर के अध्यक्ष के नाते जावर माइन्स जाते समय इस ओर से गमन किया है। श्रीवर ने सुय्य कुण्डल का उल्लेख (जैन० : ५ १२०) किया है। कुण्डल कटोरे जैसे आकार के ग्राम को कहते हैं। राजस्थान में भी कुण्ड नामधारी ग्राम मिलते हैं।

गिरयोऽपि निमज्जन्ति यत्र तत्र तु स व्यधात् ।
जैनलङ्कां महाटङ्कां तं निधायाधिकारिणम् ॥ ९४५ ॥
रुय्यभाण्डपतिं शिल्पकौशलाभ्युल्लसन्मतिम् ।
राजधानीमहाद्वारं नष्टं योऽयोजयत् पुनः ॥ ९४६ ॥

९४५-९४६ उस शिल्प कौशल में प्रवीण मति रुय्य[1] भाण्डपति को अधिकारी नियुक्त कर, उसने जहाँ पर पर्वत भी निमज्जित हो जाते थे, वहाँ पर अति समृद्ध जैनलंका निर्मित की जिसने (रुय्य भाण्डपति) की नष्ट राजधानी का विशाल द्वार पुन योजित किया।

पाद टिप्पणी

९४५-९४६ उक्त श्लोक सख्या ९४५ के पश्चात् बम्बई के सस्करण म श्लोक सख्या १२३२ १२८१ तक और मुद्रित हैं। उनका भावार्थ है—

(१२३२) कारुण्य एवकीर्ति शैल से स्वय भूपति पर्वत पर वामपार्श्व म जल गिराने के लिये चिरकाल घूमता रहा—

(१२३३) पर्वत को नि सलिल देखकर, लेदरी (नदी) को लाने के लिये उत्सुक उसने वृद्धो से सुना कि उसका मूल अमरेश्वर है।

(१२३४) उसने निर्विघ्न कार्य की सिद्धि हेतु तथा ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये अभियान सदृश अमरेशाद्रि पर आरोहण किया।

(१२३५) वहाँ लूता सदृश नागो से वे म्लेच्छ भयाकुल होकर मून सदृश एक दूसरे से सलाप करते थे।

(१२३६) वन म स्थित स्वस्थ नाम सवाक रोगी सदृश तुरुष्को का दर्शन कभी सहन नहीं किये।

(१२३७) अग्निरक्षा से जड बालक जिस प्रकार निर्मल पद्मराग का स्पर्श नहीं करता उसी प्रकार धैर्यच्युत राजा उन नागो को न सह सका।

(१२३८) वह वपि के सदृश भीम म्लेच्छ दुराचार चापल्य निवारित कर दिया।

(१२३९) उनके ऊपर कोप से हो मानो गरजने चमकते, घने अविदूर मेघों से नभ आच्छन्न हो गया।

(१२४०) सागर सदृश सद्मगिरि (कुछ स्थान) से शीघ्र ही, पलायित एव नष्ट धैर्य वाले म्लेच्छो के ऊपर तत्क्षण करकापात हुआ।

(१२४१) कुलीन अभियुक्त धैर्य से अविच्युत काश्मीरेन्द्र स्वाभिमान सदृश उस शैल से नहीं उतरा।

(१२४२) तान्त्रिक सदृश मेघो की गर्जना करने पर यवन सर्पो द्वारा त्यक्त निधि सदृश वह राजा नागो द्वारा प्रशसित हुआ।

(१२४३) 'हे! देव!! यहाँ से लौट जाइये कार्यसिद्धि होगी। शम्भु को पूजोपकरण प्राप्त हो हो गया।'

(१२४४) स्वप्न म दिव्याकृत पुरुष से इस प्रकार सुनकर, गितिनायक सिद्ध कार्य होकर प्रात काश्मीर म प्रवेश किया।

(१२४५) गिरि मार्ग स लेदरी प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार राजा ने धार्मिक शिर्यभट्ट को मार्तण्ड पत्तन जाने का आदेश दिया।

(१२४६) राजा ने दयालु प्रशस्त एव निर्लोभ होने के कारण निरभिमान उस भट्ट शिर्य को नदी अवतारित करने के लिये नियुक्त किया।

(१२४७) राजा क आदेश के कारण सर्वत्र अव्याहत गामी वह (शिर्यभट्ट) पर्वत पर लोगो को लाकर नदी मार्ग निर्मित किया।

(१२४८) ऊपर पर, निकटस्थ निम्नभागों (निचली भूमि) को पाषाण पूर्ण खनियो (गड्ढों) पर पूरित कर, उस नदी का मार्ग प्रशस्त किया।

(१२४९) राजगामा सदृश सरस्वती को पोषित करती हुई वह सरित सम्पन्न म उत्पन्न पुर्षों को नष्ट कर

दी। (सम्मुख पडने वाले) तटस्थ वृक्षों को उन्मीलित कर दी।

(१२५०) वह नदी विद्वान की प्रज्ञा सदृश प्रतिबद्ध चिरकाल स्थिर रहकर तरंग भू को लोल करती शनैः शनैः प्रस्थान की।

(१२५१) राजा के तप-प्रभाव भट्ट शिर्यक की नीति तथा प्रजा के भाग्य के कारण कहीं पर इस (नदी) का विघ्न नहीं हुआ।

(१२५२) वह नदी कहीं गिरि का आश्रय लेती और कहीं दूर से छोड़ती हुई, पर रतासदृश वप्र से गिरते समय सशब्द कलह करने वाली हुई।

(१२५३) कहीं पर नवीन भूमिपाल की चित्त-वृत्ति सदृश उस नदी के दक्षिण की ओर अवट वाम भाग में विकटोपल आदि और समक्ष उन्नत एवं दीर्घ शिला दिखायी दी।

(१२५४) सामने से स्थूल गण्डशैल (विशाल चट्टान) से उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया जिससे वह कुल्या विमानिता कामिनी सदृश न ठहर सकी।

(१२५५) पूर्णप्रतिज्ञ राजा द्वारा स्वयं गण्ड-शैल विदारित कराये जाने पर वह सरिता अग्रसर हुई।

(१२५६) अग्रसर करने के लिये अभीष्ट नदी का मार्ग शिला द्वारा अवरुद्ध करने पर उस मिह (मिहिर कुल) नामक नृप ने क्रोध से लाखों स्त्रियों को वध करा दिया।

(१२५७) श्री जैनालाभदीन ने नदी का मार्गा-वरोध करने वाली शिला को शस्त्रों से विदारित कर, जनता को जीवित कर दिया।

(१२५८) जिस प्रकार भगीरथ से गिरीश-मुकुट-भ्रष्ट गंगा को समुद्र तक लाये, उसी प्रकार उसने लेदरी को समुद्र सदृश विस्तृत मार्तण्ड भूमि पर पहुँचाया।

(१२५९) घन नदी गिरि की मेखला सदृश उस राजा की अमल कीर्ति एवं भूमि की मुक्तालता सदृश परम शोभित हुई।

(१२६०) समीपस्थ भी मार्तण्ड मुझे सुखाने में समर्थ नहीं है, इसीलिये मानों वह उल्लासाम होकर निनाद करने लगी।

(१२६१) एक जैनोलाभदीन धर्मशील नृप है—अतः विधाता ने सरित प्रवाह के व्याज से (एक) रेखा खींच दी।

(१२६२) ब्रह्मचर्य से तप्त लोगों स्त्रीसंग के समान उस नदी के सेक से भूरुहों (वृक्षों) को अद्भुत सुख हुआ।

(१२६३) आवर्त रूप नाभि प्रदर्शित कर शनैः शनैः सुन्दर गमन करती फेन सहित वह सरित मार्तण्ड का उपहास करती थी।

(१२६४) सरिता के सुन्दर प्रवाह में प्रति-बिम्बित सूर्य को कलियुग में भी लोगों ने मूर्तिमान (सूर्य) जाना।

(१२६५) सामने से दीन नदी का पालन करती, वह नदी जैन धर्म नदी नाम से प्रसिद्ध हुई।

(१२६६) प्रदोष जनित सान्ध्व तिमिर निवा-रित कर विश्व प्रकाशन तत्पर दिवाकर का तेज मण्डल में स्वयं आता है, जोकि श्रेष्ठ चन्द्रमा पर चिरकालिक ऋण था।

(१२६७) कलियुग का ६५३ वर्ष व्यतीत हो जाने पर अथर्व कौशल से द्रोण ने कुरु सेनाओं से युद्ध किया।

(१२६८) कुरुओं द्वारा द्रोण (पण्डित) के निहत होने पर अथर्व वेद निराश्रय होकर पट्टु कर्णाटों का आश्रय लिया।

(१२६९) शास्त्रों में अथर्ववेद का माहात्म्य देखने वाले काश्मीरियों का मनोरथ चिरकाल से उसे प्राप्त करने के लिये था।

(१२७०) विपुल काल व्यतीत हो जाने पर सुहभट्ट के भय से आकुल गुणी स्वाभिमानी युद्ध-भट्ट देशान्तर गया।

(१२७१) यजुर्वेद पढने से प्रसन्न कर्णाटों ने उसे रहस्य सहित अथर्व (वेद) पढ़ाया और वह अपनी भूमि में लौट आया।

(१२७२) गुणी गुणानुरागी श्री जैनोलाभदीन थे। वह उपहार रूप में देकर परम तुष्टि उत्पन्न की।

(१२७३) धर्मविद् शिर्यभट्ट ने अपना अन्न वस्त्र देकर उसी के द्वारा वह अथर्व द्विजपुत्रों को पढ़ाया।

हिमाचलशिखादर्पच्छेदिप्रासादमेदुरम् ।
क्रमराज्ये स्फुरद्राज्यः सुरत्राणपुरं व्यधात् ॥ ९४७ ॥

९४७ स्फुरित राज्य वाले इसने क्रमराज्य में हिमांचल के शिखादर्प का उच्छेद करने वाले प्रासादों से युक्त सुरत्राणपुर बनवाया।

जैनकोट्टं घट्टितारिरट्टशालि समन्ततः ।
नृत्यत्पट्टपताकान्तकान्तं राजा विनिर्ममे ॥ ९४८ ॥

९४८ शत्रुनाशी उस राजा ने चारों ओर से अट्टशालाओं से युक्त एवं नर्तन करते पट्ट पताकाओं के अन्तभाग से सुन्दर जैनकोट[1] निर्मित कराया।

(१२७४) धीमान शिर्यभट्ट की वह धर्मिष्ट-शाली कर्णाटों के लिये परम स्पृहणीय हो गयी।

(१२७५) स्निग्ध विद्युत, श्रवण मधुर गर्जित अभीष्ट वृष्टि, मूर्यतापहारी छाया, मन्द-मन्द मरुत, (इन) अपने गुण समूहों से वर्षाकाल को अनुदिन वर्धित करते हुए विधि ग्रीष्मर्ति प्रजाओं पर दया दाक्षिणत्य प्रकट करता है।

(१२७६) दशा की विधुरता अथवा विपक्ष के बल से दान संस्कार मान आदि मे अनुरूप—

(१२७७) ज्येष्ठ पुत्र आदम खांन से पराङमुख एवं अप्रसन्न भूपति मूढो द्वारा चिर काल समादृत हुआ।

(१२७८) हाज्य (हाजी) खांन आदि पुत्रों पर विशेष आदर रखने वाला वह राजा के द्वारा उसी प्रकार प्रफुल्लित हुआ जिस प्रकार वसंत ऋतु द्वारा तिलक वृक्ष।

(१२७९) प्रारम्भ मे पादतल पर स्थित पश्चात् करालम्बकृत जिसे देखने के अनन्तर शीघ्र मस्तक पर स्थित किया।

(१२८०) (इस प्रकार) क्रम से ही ईश्वर ने कला निधियों को वर्धित किया उस मल्ला (मुल्ला ?) दर्याव (दरया) खां को सर्वत्र अधिकारी नियुक्त किया।

(१२८१) गुणो से भट्ट वैश्रवण (रावण) के समान था। जो ईश्वर के प्रसाद से राजाओं द्वारा प्रशंसित हुआ।

(१) रूप्य : भाण्डपति विशेषण के कारण प्रतीत होता है कि रूप्य कोई व्यवसायी था। रूप्य-भट्ट (श्लोक ८२७ तथा जैन० ३ : ५०) तथा रूप्य भाण्डपति भिन्न व्यक्ति हैं। रूप्यभट्ट गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद था। रूप्य भाण्डपति शिल्पी था। वह निर्माण कला मे प्रवीण प्रतीत होता है। आधुनिक शब्दो मे चतुर शिल्पी एवं अभियन्ता था। वर्णन से स्पष्ट होता है कि उसने विशाल द्वार को फिर से बनाया था। प्राचीन इमारतो के जीर्णोद्धार करने मे भी वह निपुण था। जैनलंका अर्थात् जल आवेष्टित द्वीप पर उसने जैनलंका की परिकल्पना कर अपनी बुद्धि विचक्षणता का परिचय दिया था।

पाद-टिप्पणी :

९४७ (१) सुरत्राणपुर : सुलतानपुर। मुझे श्री गुलाम नबी अन्तू संसद सदस्य राज्यसभा जो सोपुर के निवासी हैं, उनसे मालूम हुआ कि सुलतानपुर सोनावारी इलाका मे एक गांव है। यह पट्टन तथा तापर अंचल मे पड़ता है। श्री गुलाम नबी साहब का नाम अन्तू है। पूछने पर पता चला कि उनके पूर्वज अवन्तिवर्मा के समय सुय्य ने जब सोपुर बसाया था उस समय वहां से आये थे। उनके पूर्वज ब्राह्मण थे। समस्त काश्मीर मण्डल मे उनका वंश इस नाम का एक ही है। मैं सुलतानपुर नहीं गया हूँ।

पाद-टिप्पणी :

९४८. (१) जैन कोट : श्रीनगर से लगभग ६ मील वितस्ता के अधोभाग मे ग्राम माछुर है।

जीर्णोद्धारेषु सर्वेषु निर्माणेषु नवेषु च।
आज्ञा राज्ञो बभौ हेतू रुय्यभाण्डपतेश्च धीः ॥ ९४९ ॥

९४९ सभी जीर्णोद्धार[1] निर्माणों[2] की हेतुभूत राजा की आज्ञा तथा रुय्य भाण्डपति की बुद्धि सुशोभित हुई।

महापद्मसरस्तीरे जैनोपपदशालिनः ।
पुरमण्डपिकाघोषांस्तथा श्रीजैनकुण्डलम् ।
स जैनपत्तनं चापि विदधे धरणीपतिः ॥ ९५० ॥

९५० जैनोपपदशाली उस राजा ने महापद्मसर के तटपर पुरमण्डपिका, घोषों (गृहों) तथा श्री जैन कुण्डल[1] एवं जैन पत्तन[2] को बनवाया—

यहा से लगभग २ मील दक्षिण-पूर्व जैनाकोट है। वहां अभी भी जनश्रुति प्रचलित है। जैनाकोट का संस्थापक बडशाह जैनुल आबदीन था। श्रीनगर से पश्चिम है। वाकयाते काश्मीर में जैनाकोट का वर्णन मिलता है (पाण्डु० ४२।५४ ए०)। नारायण कौल (पाण्डु० : ६९ ए०) तथा हैदर मल्लिक ने पाण्डु० : ४५) भी जैनाकोट का उल्लेख किया है।

पाद-टिप्पणी :

९४७ (१) जीर्णोद्धार : परशियन इतिहासकारो ने जीर्णोद्धार कार्य का समर्थन किया है। किन्तु यह नही प्रकट होता कि हिन्दू मन्दिरो एव निर्माणो का भी जीर्णोद्धार किया था। प्राचीन निर्माणो का जो कला की दृष्टि से भव्य एव सुन्दर रही होगी उन्ही का जीर्णोद्धार किया गया होगा। देवस्थानो का जीर्णोद्धार तत्कालीन स्थिति देखते बड़े पैमाने पर करना सम्भव नही प्रतीत होता (मुहफातुल अहबाब पाण्डु० १३६ बी०, तारीख हसन : पृ० ५०) परशियन इतिहासकारो ने जैनुल आबदीन को जीर्णोद्धार के कारण मूर्तिपूजक करार दिया है। जैनुल आबदीन को बुतपरस्तो तथा बहुदेवपूजको का समर्थक कहा गया है। सनातनी मुसलिम समाज तथा मुख्यतः मुल्ला, मोलवी और कट्टरपन्थी मुसलमान जैनुल आबदीन के कार्यों को पुरातन काश्मीर भावना का पुनः जागरण मानते हैं। उसे काफिरो तथा मिश्ररिकों का भी समर्थक माना गया है (बहारिस्तान शाही पाण्डु० : २३ ए०)।

धर्मनिरपेक्ष नीति के कारण उसे 'वेदीन' तक परशियन इतिहासकारो ने लिख दिया है (तुहफातुल अहबाब : पाण्डु० : १०६ ए०)। दूसरी तरफ हिन्दुओ ने उसे नारायण का अवतार मान लिया था। मिर्जा हैदर का मत ठीक है कि बडशाह न तो बुतपरस्ती और न इसलाम की तरफ झुका था। उसने निरपेक्ष विवेक भाव से काम किया था (तारीख रशीदी : ४३४)।

वाकयाते काश्मीर मे हैदर मल्लिक के विचारो का समर्थन किया गया है—'हालाकि सुलतान इसलाम फैलाने मे काम नही कर सका "इल्म, हुनर में उसने—रैय्यत-परवरी मे कोशिश की"'। उसके समय मे हिन्दू मुसलमानो मे झगडा नही हुआ। सबको अपने यहाँ जगह देता था' (पाण्डु० : ४२।५३ ए०)।

(२) निर्माण : सुलतान के भिन्न-भिन्न ग्रामो एवं नगरो मे निवास हेतु विश्रामगृह बनवाया जहाँ वह राज्य मे भ्रमण करते समय निवास करता था। वर्तमान सरकिट हाउस, रेस्ट हाउस अथवा डाक बंगलो के सदृश्य थे (हसनः पाण्डु० : ११७ बी० ११८ ए०, हैदर मल्लिक पाण्डु० : ११७ ए०)।

पाद-टिप्पणी :

९५०. (१) जैन कुण्डल : बूलर लेक के दक्षिण मे बहुत से ग्राम कृत्रिम बांधो से परिवेष्टित किये गये हैं। उनका रूप कुण्डल के समान लगता है। वत्स कुण्डल तथा मर कुण्डल वितस्ता के वाम तट पर हैं। उनका नाम अभी भी कुण्डल कहा जाता है। कल्हण

भूपतेः कोमलाकारा मनोज्ञाचरणाश्रिता।
अभिरामा महोदन्ता करुणा वल्लभाऽभवत् ॥ ९५१ ॥

९५१ कोमल आकार एवं मनोज्ञ आचरण से युक्त अभिराम एवं अति उदन्त[1]शालिनी करुणा राजा की वल्लभा हुयी।

अनिघ्नन्करुणानिघ्नो नरेन्द्रो डोम्बतस्करान्।
बन्धयन्निगडैर्गाढं मृत्कर्माकारयत् सदा ॥ ९५२ ॥

९५२ करुणाधीन नरेन्द्र, डोम[1] तस्करों को बिना मारे, निगड से दृढ़तापूर्वक बँधवा कर, सदैव (उनसे) मृत कर्म करवाया (करता था)।

ने कुण्डल का उल्लेख (रा० : ५ १०३) किया है। तत्पश्चात् सुय्य कुण्डल का उल्लेख कल्हण ने (रा० : ५ : १२०) किया है। कुण्डल वृत्ताकार, कटोरा अथवा अगूठी की शकल के ग्राम समूह होने के कारण नामकरण किया गया है। कागडी में वृत्ताकार मृत्तिका पात्र जो रखा जाता है। उसे भी कुण्डल कहते हैं। कागडी का प्राचीन नाम काष्ठांगारिका है एक गाव समज कुण्डल है। यह बोतपार के समीप है। कुण्डल कटोरा जैसे गाव को कहते हैं।

(२) जैन पत्तन : पत्तन शब्द नगर, उपनगर, बडे गाव तथा बन्दरगाह के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है। समुद्रतीरवर्ती नगर जहाँ जहाज अथवा नावें आकर ठहरती हैं, नौका द्वारा व्यापार होता है उसे पत्तन कहते हैं—विशाखापत्तन, मछलीपत्तन, नागीपत्तन आदि। सम्भव है कि व्यापारिक नावो आदि के लादने-उतारने तथा आवागमन एव व्यापार के लिये ऊलर लेक पर जैनुल आबदीन ने बन्दरगाहो के समान सुविधाजनक घाट बनवाया होगा। जहाँ नावें ठहर सकती थीं। उल्लोलसर के तट पर जैनपत्तन था।

सुय्य ने राजा अवन्तिवर्मा के समय जलप्रणाली का नियन्त्रण कर नदी का गर्भ गहरा करा दिया था। परिणाम हुआ कि ऊलर का जल घट गया। तट पर पंकिल भूमि निकल आई। पालियो से जल निरुद्ध कर कुण्ड सदृश जिन्हे निर्मित किया गया था, सर्वान्न समृद्ध उन्हें कालान्तर मे कुण्डल कहा जाने लगा।

काश्मीरी भाषा मे पत्तन को 'पटन' कहते हैं।

पाद-टिप्पणी :

९५१. (१) उदन्त : वार्ता–वृत्तान्त–विवरण–होता है। द्रष्टव्य टिप्पणी : श्लोक २७८, एव ८६५।

पाद-टिप्पणी :

९५२ (१) डोम : भारतवर्ष मे सर्वत्र श्मशान मे डोम कार्य करते हैं। वही दाह कर्म के लिये अग्नि देते हैं, चिता लगाते हैं, चिता शान्त होने पर स्थान साफ करते हैं। मृतक कर्म के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे काशी मे डोमराज कहे जाते हैं। उनकी वृत्ति यजमानी होती है। जोनराज के इस वर्णन से प्रकट होता है कि डोम चोरी का कार्य करते थे। उत्तर प्रदेश आदि मे वे जरायम पेशा करने वाले माने जाते थे। आजादी मिलनेके पूर्व तक उनकी निगरानी पुलिस करती थी। डोम लोगो ने मृतक कर्म करना मुसलमान हो जाने के पश्चात् त्याग दिया था। सूहभट्ट ने हिन्दुओ को दाह क्रिया बन्द करवा दी थी। डोम बेकार हो गये थे।

पेशा त्यागने के कारण उन्होने जीविकोपार्जन के लिये चोरी का पेशा अपना लिया होगा। इससे हिन्दुओं को दाह-कार्य मे कठिनता होती थी। बादशाह ने डोमों को पुनः उनके मृतक कार्य पर लगा दिया था।

काश्मीर मे डोम अर्थात् डुम का सामाजिक स्तर कुछ ऊँचा था। वे गाव के चौकीदार होते थे। रात मे पहरा देते थे, शासन को गाव की खबर

निर्दिशन् यशसा शुभ्रा दिशो नृपतिरादिशत्।
अवधं खगमत्स्यानामनेकेषु सरःसु सः ॥ ९५३ ॥

९५३ यश से शुभ्र दिशाओं को निर्दिष्ट करते हुए, उस राजा ने अनेक सरोवर में पक्षियों एव मछलियों का वध न करने का आदेश दिया।[1]

अथ जातु हृतां चौरैर्गां परिज्ञाय कञ्चन।
क्रन्दन्तं भूमिपः पृच्छंश्चौरांश्चाथाप्यढौकयत् ॥ ९५४ ॥

९५४ कदाचिद् चोरों द्वारा अपहृत गाय[1] को पहचान कर, क्रन्दन करते किसी से पूछते हुए राजा ने चोरों को भगवाया।

वयोलक्षणसंवादं विना गोस्तुङ्गशृङ्गताम्।
सभाक्षोभणहेतुं स सत्यवाग् ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ ९५५ ॥

९५५ आयु एव लक्षण के सादृश्य के विना गाय के तुग शृङ्गता मात्र की बात उस सत्यवादी ब्राह्मण ने कहा, जो कि सभा को क्षुब्ध करने मे हेतु हुयी।

भेजते रहते थे। चौकीदारी कार्य के अतिरिक्त राज्य की ओर से कमल की भी वे निगरानी करते थे। यद्यपि डोमो का विश्वास निजी कार्यों मे करना कठिन होता था। परन्तु सरकारी खजाना आदि ले जाते, रखते अथवा रखवाली करते थे कभी एक पैसे का इधर-उधर या चोरी नही की है। कितने ही डोम अपनी वश परम्परा काश्मीर के हिन्दू राजाओ से जोडते हैं। कुछ कहते हैं कि वे तक्षक-नागवंशीय हैं। वे शासकीय पत्र बडी तत्परता से जंगलो एवं पर्वतो मे पहुँचाते थे।

पाद-टिप्पणी :

९५३ (१) हत्या निषेध : भारत मे आज भी यह प्रथा प्रचलित है कि देवस्थानीय सरोवरो के तट पर बिहार करनेवाले पक्षियो तथा मछलियों आदि का शिकार किंवा मारने का निषेध धार्मिक दृष्टि से किया जाता है। काशी मे गगा तट पर जैनियो के घाटो पर इस प्रकार के विज्ञापन अब भी लगे हैं कि वहाँ कोई मछली न मारे। प्राय भारतवर्ष के उन सरोवरों, जिनका सम्बन्ध देवालयो, देवस्थानो अथवा जो स्वत. पवित्र तीर्थादि माने जाते हैं वहाँ इस प्रकार की निषेधाज्ञा जारी की जाती है। यही-कही पक्षियो, तथा मछलियो की रक्षा के लिये भी इस प्रकार की आज्ञा प्रचारित की जाती है। पाश्चात्य देशो मे पक्षियो आदि की सेन्कचुरियाँ होती हैं। वहाँ पक्षी निर्भय होकर विचरते हैं। दाना किंवा भोज्य पदार्थ खाते और उड जाते हैं। सेन्कचुरियो पर पक्षी, पशु आदि मारने का निषेध रहता है। आस्ट्रेलिया मे मैंने अपनी यात्राकाल मे स्थान-स्थान पर पक्षियो की सेंकचुरियां देखी हैं। वहाँ खडे होने पर पक्षी निर्भय मनुष्य के मस्तक, स्कन्ध तथा हाथो पर आकर बैठ जाते है। खेलते हैं। जापान मे नारा जैसे बौद्ध स्थान पर मृग पाले जाते है। वहाँ मृगो को बिस्कुट आदि खिलाया जाता है, उन्हे मारा नही जाता। उपयोगिता की दृष्टि से यह निषेधाज्ञा इसलिये भी दी जाती है कि पक्षियो आदि का वश लोप न हो जाय। दूसरा कारण मुख्यत प्राणियो के प्रति करुणा एव अहिंसा भावना है।

पाद-टिप्पणी :

९५४ (१) गाय : जोनराज ने इसी प्रकार रिंचन की न्यायप्रियता प्रमाणित करने के लिये बत्स किशोर की कथा दी है। द्रष्टव्य : श्लोक १८९-१९२।

तिलकादिवदेवास्याः सहजा भुग्नशृङ्गता ।
राज्ञा पृष्टे वदत्येवं चौरे मूका सभाभवत् ॥ ९५६ ॥

९५६ राजा के पूछने पर, चोर के इस प्रकार कहने पर—'तिलक आदि के समान इसकी भुग्नशृंगता स्वाभाविक है।' (सुनकर) सभा मूक हो गयी।

परीक्षार्थं तिमिस्वेदे राज्ञा गोशृङ्गयोः कृते ।
कुटिलत्वं व्यपैति स्म प्राक्चौरस्याथ शृङ्गयोः ॥ ९५७ ॥

९५७ चोर के समक्ष राजा द्वारा परीक्षा हेतु गोशृङ्गों का तिमि स्वेद करने पर शृङ्गों की कुटिलता दूर हो गयी।

एवं बुद्धिप्रकर्षेण व्यवहारविमर्शतः ।
अमात्यपर्षदो हर्षश्चित्तोत्कर्षमजीजनत् ॥ ९५८ ॥

९५८ इस प्रकार बुद्धिप्रकर्षपूर्वक व्यवहार विमर्श करते आमात्य परिषद की प्रसन्नता उसके चित्त में उत्कर्ष उत्पन्न की।

प्राड्विवाकः क्षमाबुद्धियुक्तदण्डत्वरञ्जकः ।
राज्ञोऽवहत्प्रजाभारं गणनापतिर्गौरकः ॥ ९५९ ॥

९५९ प्राड्विवाक[1] की क्षमा बुद्धि युक्त उचित दण्ड[2] देने से रंजक गणनापति गौरक राजा के प्रजा भार को वहन किया।

यैर्दत्तमुपकारित्वादुत्कोचद्रविणं स्वयम् ।
कालान्तरे कृतघ्नेषु तेष्वेवास्थानमण्टपे ॥ ९६० ॥

९६० जिन लोगों ने उपकार करने के कारण स्वयं उत्कोच द्रव्य (घूस) दिया था, कालान्तर में उन्हीं कृतघ्नों के आस्थान मण्डप में—

पाद-टिप्पणी

९५९ (१) प्राड्विवाक प्रधान न्यायाधीश (मनु० ९ २३४)।

(२) उचित दण्ड निरुक्त के अनुसार 'दा' धातु से दण्ड शब्द बना है। 'दा' का अर्थ धारण भी होता है। दमन के कारण भी दण्ड कहा जाता है (निरुक्त २ २)। गौतम का मत है कि 'दमयति' क्रिया से दण्ड बना है (गौतम ११ २८)। महाभारत तथा पुराणों ने भी इसे स्वीकार किया है कि दण्ड का अर्थ दमन करना है—दण्ड देना है (शान्ति० १५ ८, मत्स्य० २२५, १७, अग्नि० २२६ १६)। यह एक ब्रह्माण्ड शक्ति रूप में भी चित्रित किया गया है (मनु० ८ १४-१७)। महाभारत में एक कथा उपस्थित की गयी है, जो दण्ड के सिद्धान्त पर प्रकाश डालती है—इन्द्र ने राजा को एक बाँस दिया। उसके द्वारा यह आदेश दिया गया कि वह न्याय एवं शान्तिप्रिय लोगों की रक्षा करे। एक वर्ष पश्चात् उस बाँस को राजा ने भूमि पर रोप दिया। उसके दाता इन्द्र की पूजा उस रोपे बाँस में होने लगी (आदि० ६३)। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि केवल दण्डभय से प्राणी सदाचारी एवं न्यायप्रिय हो सकता है (मनु० ७: २२, शान्ति० १४-३४)। दण्डभय के कारण देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, गरुड़ एवं नाग सुख समृद्धि पा

प्रकाशयत्सु तद्दानं कुपितेन महीभुजा ।
मौलानो मल्लएसाकस्तेभ्यस्तत् प्रतिदापितः ॥ ९६१ ॥

९६१ उस दान को प्रकाशित करने पर कुपित राजा ने मौलाना मल्ल एसाक से उन्हें वह (द्रव्य-घूस) वापस दिला दिया।

आदौ पादतले तिष्ठन् करालम्बीकृतस्ततः ।
अथ चाक्षुषतां गच्छन्नुत्तमाङ्गोर्ध्ववर्तिताम् ॥ ९६२ ॥
नीतो दर्यावखानोऽथ कृतज्ञेनेश्वरेण सः ।
कलानिधिर्हिमरुचिः कौमुदीं हि ततां वहन् ॥ ९६३ ॥

९६२–९६३ कृतज्ञ उस राजा ने पैर के नीचे बैठते दरयाव खान[1] को करालम्बन दिया, बाद में दृष्टि का विषय बनाया एवं अन्त में प्रिय बनते हुए उसे उत्तमांग[2] के ऊपर कर दिया, जिस प्रकार प्रचुर कौमुदी वहन करते कलानिधि चन्द्रमा को ईश्वर (उत्तमांग पर) वहन कर लेते हैं।

सकते है (मनु० : ७ । २३; नारद० : २८ : १५)। अराजक समाज को राजक बनाने के लिये राजा के सृजन के पश्चात् प्रजापति ने दण्ड को उत्पन्न किया। दण्ड के द्वारा राजा न्याय एवं सुरक्षा स्थापित कर सके। यदि वह दण्ड का आश्रय नही लेता तो मात्स्यन्याय फैल जायगा। सबल निर्बलो पर हावी हो जायेंगे (मनु० ७ : १४–२०)। राजा के अभाव में लोक दण्ड से भय नही करते और अराजकता एवं अन्याय व्याप्त हो जाता है (अयो० ६७; शान्ति० : १५ : ३०, ६७, १६; १२२ : १९, १२५)।

यदि दण्ड का उचित एवं न्यायपूर्वक प्रयोग किया जाता है तो वह लोक मे सुख एवं शान्ति सृजन करता है। यदि इसके विपरीत अनुचित ढंग से किया जाता है तो सब कुछ नष्ट कर देता है (मनु० : ७ : १८–१९)। यदि राजा उचित दण्ड द्वारा दुष्टो का दमन नहीं करता तो लोक की अवस्था एक ही कोठरी में साँप के साथ बन्द व्यक्ति के समान अत्यन्त दयनीय हो जाती है (शान्ति० : १२२ : १६)। यदि राजा दण्ड का प्रयोग नहीं करता तो प्राणी नष्ट हो जायेंगे (नारद० : १८ : १४)। यदि मछुवा अपनी समृद्धि चाहता है तो उसे मछली फँसा कर मारना ही होगा। इसी प्रकार राजा यदि राज्य मे समृद्धि चाहता है तो उसे दण्ड का आश्रय लेना ही होगा (शान्ति० : ५९ : १०६–१०८)। आततायी स्वच्छन्द होने पर राजा को राज्यभ्रष्ट कर देगा (मनु० : ७ : १९; याज्ञ : १ : ३५४–३५६ शान्ति० : १०४ : १००)। दण्डदाता न्यायप्रिय राजा पवित्र होकर स्वर्ग प्राप्त करता है (शान्ति० : २६ : ३३–३५)।

रामायण मे दण्ड के सिद्धान्त का प्रतिपादन इक्ष्वाकु के कनिष्ठपुत्र दण्ड के उपाख्यान मे दिया गया है (उ० : ७९ : १४–२०; ८० : १–१७; ८१ : १–१८)। महाभारत मे भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है (आदि० : ६७ : ४५; १८५ : १२; सभा० : ३०; कर्ण० : १८ : १६–१९; वन० : ४१।२६)।

पाद-टिप्पणी :

९६२. (१) दरयाव खाँ : इसका वर्णन श्रीवर भी करता है। वह जोनराज के पश्चात् तक जीवित था।

(२) उत्तमांग : सर।

दिनपतिर्न रसातलगं तमः शमयितुं यतते यदवेक्ष्य सः।
अतिलसद्रुचि कालघनावृतेर्हरति तत्प्रतिबिम्बमहो क्षणात् ॥ ९६४ ॥

९६४ आश्चर्य है! वह दिनपति रसातल[1] स्थित जिस तम को देखकर शान्त करने का प्रयत्न नहीं करता है, वही कालघनावृति के कारण अति कान्तिशाली उसके प्रतिबिम्ब को क्षण में हर लेता है।

राजा भूभारखिन्नोऽपि खड्गधाराध्वगोऽपि सन्।
स्वदत्तं विभवं यस्य दृष्ट्वा विश्राममाप्तवान् ॥ ९६५ ॥

९६५ भूभार से खिन्न होने पर भी, खड्ग धारा का पथिक होकर भी, राजा स्वदत्त विभव देखकर विश्राम प्राप्त करता था।

अस्तं मह्मदखानः स कलानिधिरथाऽगमत्।
अत्यन्तरमणीयानां सुचिरस्थायिता कुतः ॥ ९६६ ॥

९६६ वह कलानिधि मह्मद खान[1] अस्त हो गया, अत्यन्त रमणीय वस्तुओं की चिरकाल तक स्थिति कहाँ?

प्रत्यब्दं प्रतिहार्योयैर्यो व्यधात्प्रीतिमर्थिनाम्।
सत्यव्रतो दिवमगान्महिमश्रीः स ठक्कुरः ॥ ९६७ ॥

९६७ प्रतिवर्ष प्रतिहारों द्वारा याचकों को जो प्रसन्न करता था, वह सत्यव्रती ठक्कुर महिम-श्री स्वर्ग चला गया।

पाद-टिप्पणी :

९६४. (१) रसातल : पृथ्वी के नीचे एक लोक है। प्रलय के समय संवर्तक नामक अग्नि पृथ्वी का भेदन कर रसातल तक चली जाती है (वन० : १८८ : ६९-७०)। रसातल सातवाँ तल है (उद्योग० : १०२ : १)। दैत्यों द्वारा उत्पन्न की हुई कृत्या दुर्योधन के साथ रसातल में प्रविष्ट हुई थी (वन० : २५१:२९) वाराह भगवान ने रसातल में पहुँच कर देवद्रोही असुरों को अपने खुरों द्वारा विदीर्ण किया था। (शान्ति० : २०६ : २६)। हयग्रीव अवतार लेकर भगवान ने रसातल में पहुँच कर मधु तथा कैटभ से वेदों का उद्धार किया था (शान्ति० ३४७ : ५४-५८)। अनन्त भगवान का रसातल सनातन स्थान है। अथा-अवतार बलदेव जी मानव शरीर त्याग करने पर रसातल में प्रविष्ट हुए थे (स्वर्गा० : ५ : २३)।

पाद-टिप्पणी :

९६६ (१) महम्मद खां : जैनुल आबदीन का कनिष्ठ भ्राता था। उसे सुलतान ने युवराज पद पर आसीन किया था। महम्मद खां की मृत्यु के पश्चात् जैनुल आबदीन ने अपने पुत्र हाजी को युवराज बनाया था। किन्तु कुछ समय पश्चात् जैनुल आबदीन ने हाजी को हटाकर ज्येष्ठ पुत्र आदम खां को युवराज बनाया। आदम के विद्रोह से परीशान होकर बदशाह ने पुनः हाजी को युवराज बनाया। हाजी से परीशान होकर बहराम को जैनुल आबदीन ने युवराज बनाना चाहा परन्तु उसने युवराज बनना अस्वीकार कर दिया। बदशाह ने परीशान होकर किसी को भी युवराज न बनाने का निश्चय किया और उत्तराधिकार पुत्रों के भाग्य एवं शक्ति पर छोड़ दिया। कश्मीर के सुलतानों ने हिन्दू राजाओं की परम्परा युवराज बनाना मान लिया था।

पाद-टिप्पणी :

९६७. (१) महिम : महिम ठक्कुर था। महिम नाम शुद्ध संस्कृत है। उसके साथ श्री शब्द

तद्गोत्रजेभ्यः शङ्कित्वा गूढं तस्य वधं क्वचित् ।
यो दूत्यच्छलतो राज्ञा स्वदेशान्निरवास्यत ॥ ९६८ ॥

९६८ गुप्तरूप से उसके गोत्रजों द्वारा (उसके) वध की आशंका करके, जिसे राजा ने दूत के व्याज से स्वदेश से निर्वासित कर दिया था—

राज्ञः सैन्धवशुल्कादिस्थाने सोन्ध्याभिधे पुरे ।
प्रत्यागतः स तीर्थाध्वखिन्नो विन्नो दिवं ययौ ॥ ९६९ ॥

९६९ राजा के सैन्धव शुल्क आदि ग्रहण के स्थान सोन्ध्यपुर[1] में लौट कर आया हुआ तीर्थ-यात्रा से खिन्न, वह विन्न[2] स्वर्ग चला गया।

भी लगा है। इससे पता चलता है कि ठक्कुर महिम भी हिन्दू था। महिम का उल्लेख श्रीवर ने नहीं किया है। महिम के जीवन पर तथा उसका शासन में क्या पद था आदि पर जोनराज प्रकाश नहीं डालता। वह दानी एवं सत्यव्रती था। ये ही दो विशेषण उसके चरित्र एवं आचरण को स्पष्ट कर देते हैं।

श्री शब्द के प्रयोग से प्रकट होता है कि जोनराज को महिम के प्रति विशेष आदर था। महिम यशस्वी एवं गौरवशाली था। श्री नाम के अन्त में लगाने के कारण स्पष्ट होता है कि उसने श्री शब्द पर विशेष जोर दिया है। उसने साधारण अर्थ में नाम के साथ श्री का प्रयोग नहीं किया है। क्योंकि नाम के पूर्व श्रीशब्द सौजन्या, शिष्टता, एवं औपचारिकता के कारण लगा दिया जाता है। ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का नामान्तर पुराणों की मान्यता के अनुसार है। महिम ऐश्वर्य एवं समृद्धिशाली व्यक्ति था। यह भी श्री के इस प्रकार के प्रयोग से ध्वनि निकलती है। जोनराज का समकालीन महिम था। जोनराज उससे प्रभावित था, तथा उसके लिये उसके हृदय में बहुत आदर था।

पाद-टिप्पणी :

९६९ (१) सोन्ध्यपुर : काश्मीर के पुराने पण्डितों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह नाम उन्होंने सुना है। परन्तु स्थान कहाँ है नहीं बता सकते। सन्ध पुर का उल्लेख शुक ने (तृ० १ : २०८) में किया है। वह भी स्थान का निर्देश नहीं करता। सोन्ध्य तथा सन्ध एक ही है या दो विचारणीय विषय है।

(२) विन्न : विन्न हिन्दू था या मुसलमान इस पर जोनराज ने प्रकाश नहीं डाला है। यह शब्द संस्कृत है। इसका अर्थ प्राप्त, लब्ध, विवादित है। विन्नक अगस्त्य ऋषि का एक नाम है। श्लोक ८९५ तथा ८९६ में विन्न को ठक्कुर कहा गया है। ठक्कुर मुसलमान एवं हिन्दू दोनों होते थे। यदि वह हिन्दू था तो वह तीर्थ यात्रा करने गया था। हिन्दुओं की विपन्न अवस्था मुसलिम शासन काल में काश्मीर में वह देख चुका था। किस प्रकार मुसलिम धर्म का प्रचार राजशक्ति के आधार पर किया गया था। उसका देश की परिस्थिति को देखकर खिन्न होना स्वाभाविक था। यदि वह मुसलमान ठक्कुर था तो वह मक्का आदि गया होगा। मुसलिम देशों की परिस्थिति अच्छी नहीं थी। वंशद्रोह, गृहयुद्ध, रक्तपात दृढ़ शासन के अभाव में अराजकता फैली थी।

विन्न के चरित्र के सम्बन्ध में जो भी दो में एक श्लोक जोनराज ने लिखा है उससे वह वीर एवं साहसी व्यक्ति प्रकट होता है। वीर व्यक्ति शुद्ध हृदय, उदार एवं असहिष्णु होता है। अतएव काश्मीर तथा काश्मीर के बाहर की परिस्थितियों को देखकर उसका खिन्न होना तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

राज्ञो धर्माधिकारेषु प्रत्यवेक्षापरः सदा।
महाश्रीशिर्यभट्टोऽपि तस्मिन् काले दिवं ययौ ॥ ९७० ॥

९७० राजा के धर्माधिकारों[1] की देख-रेख में सर्वदा तत्पर महा श्री शिर्यभट्ट[1] भी उसी समय स्वर्ग चला गया।

गतेष्वप्येषु धर्मोऽस्य राज्ञो नैवाल्पतां गतः।
क्ष्मां दधानस्य शेषस्य दिग्गजा हि परिच्छदः ॥ ९७१ ॥

९७१ इन लोगों के चले जाने पर भी राजा का धर्म अल्प नहीं हुआ। दिग्गज पृथ्वी को धारण करते शेष के परिच्छद[1] ही होते हैं।

पाद-टिप्पणी :

९७० (१) शिर्यभट्ट : शिर्यभट्ट पर सुल्तान का विश्वास था। स्नेह था। शिर्यभट्ट का चरित्र उस अन्धकार युग में जाज्वल्यमान नक्षत्रतुल्य चमकता है। केवल उस एक व्यक्ति के कारण हिन्दुओ मे पुनः जीवन आया। शिर्यभट्ट गरुड शास्त्र एवं चिकित्सा का पण्डित था। उसने सर्वत्र गम्भीरता एवं बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। सुलतान की चिकित्सा करनी है। उसमे उसने उतावलापन नही किया। वह जानता था। वह सुलतान को अच्छा कर सकता था। उसे विश्वास था। तथापि वह प्रथम सुलतान से निर्भय प्राप्त कर लेना चाहता था। उसने शर्त रखी, सुलतान ने उसे स्वीकार किया। यह प्रकट करता है, शिर्यभट्ट का साहस उसने गौण रूप से प्रकट कर दिया। वह मुसलमानो पर विश्वास करने मे असमर्थ था। विश्वास का लाभ उठा कर शाहमीर काश्मीर का सुल्तान बन बैठा था। कोटा रानी की हत्या हुई थी। वह निर्लोभ था। बादशाह स्वस्थ होने पर उसे अत्यधिक सम्पत्ति देना चाहता था। परन्तु उसने उपकार को द्रव्य की तुला पर तौलना पसन्द नही किया। उसने अपने आचरण से जैनुल आबदीन को प्रभावित किया। उसे सहिष्णु नीति स्वीकार करने के लिये प्रेरणा दी। जैनुल आबदीन ने हिन्दुओ का विरोधी न होकर उनके प्रति निरपेक्ष नीति अपनाई। हिन्दुओ की शक्ति का उपयोग करने के लिये ठोस कदम उठाया। उसने हिन्दुओ का विश्वास प्राप्त किया। हिन्दुओं ने भी विश्वास का उत्तर विश्वास से दिया। शिर्यभट्ट पहला हिन्दू था जो सुलतानो के राज्य-कालमे उच्च पदाधिकारी हुआ था। उसने पद के लिये अपना धर्म, अपना विश्वास नही बदला, जो काश्मीरी ब्राह्मण का सामान्य गुण मुसलिम काल मे हो गया था। उसका चरित सुहभट्ट का सर्वथा विरोधी जोनराज ने चित्रित किया है। जैनुल आबदीन के समय तक मठ, मन्दिर, देवस्थान नष्ट होते रहे परन्तु शिर्य-भट्ट ने पुनः मन्दिर, देवस्थान एवं मठो के निर्माण की ओर हिन्दुओ को उन्मुख किया। उनमें उनके धर्म के प्रति विश्वास एवं स्वय उनमे निराशा के स्थान पर आशा एवं विश्वास उत्पन्न कराया।

सुल्तान शिर्यभट्ट से इतना स्नेह करता था कि उसकी मृत्यु पर उसने गरीबो को उसकी आत्मा की शान्ति के लिये यथेष्ट धन दान दिया था (म्युनिख : ७४ ए०)।

तबकाते अकबरी भी इसी बात का समर्थन करती है—श्री (शिर्य) भट्ट की मृत्यु पर सुलतान ने एक करोड धन जो ४०० अशर्फियो के बराबर होता था उसके पुत्रो मे दान किया (उ० तै० . भा० : ३ : ४१९)।

पाद-टिप्पणी :

९७१. (१) परिच्छद : यद्यपि शेषनाग स्वयं पृथ्वी को धारण करता है परन्तु उसके भी सहायक दिग्गज होते हैं। जोनराज ने शेषनाग की उपमा जैनुल आबदीन तथा युवराज मुहम्मद खा महिम ठक्कुर, विम ठक्कुर तथा शिर्यभट्टादि की उपमा

एकाह्न एव दीनारकोटिरेका महीभुजा।
बालेभ्यः एव दत्ताऽऽसीज्जय्यभट्टमुखेन यत् ॥ ९७२ ॥

९७२ एक ही दिन राजा ने जय्यभट्ट के द्वारा एक करोड़ दीनार बालकों को ही दे दिया।

अद्‌भुतानां पदार्थानां तद्राज्ये सङ्ग्रहोऽभवत्।
नारायणावतारोऽयं ज्ञायेत कथमन्यथा ॥ ९७३ ॥

९७३ इसके राज्य में अद्‌भुत पदार्थों का संग्रह हुआ था, नहीं तो यह नारायण का अवतार[1] कैसे जाना जाता ?

दिग्गजो से दी है। जोनराज ने लगभग २५ मुख्य व्यक्तियो का उल्लेख जैनुल आबदीन के सन्दर्भ मे किया है। उनमे जोनराज के समय अर्थात् सन् १४५० ई० तक उक्त चार व्यक्तियो के दिवंगत होने का उल्लेख मिलता है। मसोद तथा शूर मर गये थे। लद्दराज के पुत्र नोसत, सैदुल्ला, मद्रराज मालदेव, राजपुरी राजा रणशूर, रूप्य भाण्डपति, व्याकरण भाष्यकार रामानन्द, तिलकाचार्य, सिंहगणनापति, कर्पूरभट्ट एवं जयभट्ट का उल्लेख सन् १४५९ ई० के पश्चात् श्रीवर की राजतरंगिणी मे नही मिलता। दरयाव खां, मल्ल एशाक, गणितज्ञ जय्यभट्ट तथा तीनों राजपुत्र, आदम खां, हाजी खां एवं बहराम खां का पुनः उल्लेख श्रीवर की राजतरंगिणी मे मिलता है। सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है, उक्त व्यक्ति या तो जोनराज के लेखन काल मे मर गये थे अथवा वे महत्वहीन हो गये थे। उनका उल्लेख श्रीवर नही करता जो जैनुल आबदीन के समय तक जीवित थे। जैनुल आबदीन सन् १४१९ ई० मे सुल्तान हुआ था। जोनराज की मृत्यु १४५९ ई० मे हुई थी। इस प्रकार ४० वर्ष के लम्बे काल का इतिहास जोनराज लिखता है। श्रीवर ने केवल १४ वर्ष का इतिहास जैनुल आबदीन के काल अर्थात् १४५९ ई० से १४७० ई० तक लिखा है। निःसन्देह इस काल मे जैनुल आबदीन के साथ काम करने वाले अनुभवी व्यक्ति नाममात्र के रह गये थे। उसका शेष जीवन पुत्रो के साथ युद्ध करने तथा पुत्रो के परस्पर युद्ध को देखते बीता था। उसमे इतना सामर्थ्य नहीं रह गया था कि उन्हें वह रोकता। शेषनाग के समान वह निःसन्देह जीवित था। परन्तु दिग्गजविहीन था। जिन पर भार वहन करने का भार था। जैनुल आबदीन के जीवन का अन्तिम चरण औरंगजेब के समान दुखमय एवं नैराश्यपूर्ण हो गया था।

पाद-टिप्पणी :

९७३. (१) नारायण अवतार : जैनुल आबदीन के योग के सम्बन्ध मे अनेक किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं। बादशाह जहांगीर तथा मलिक हैदर चादुरा ने जैनुल आबदीन के सम्बन्ध मे एक अलौकिक घटना का वर्णन किया है—'सुलतान एक समय ऊलर लेक मे घूमने गया था। उसका ज्येष्ठ पुत्र आदम खां भी उसके साथ था। आदम खां पिता को मार कर स्वयं राज्य करना चाहता था। उसने पिता के साथ छल किया। पिता से कहा—नाव पर चलकर घूमना चाहिए। उसने निश्चय किया था कि वृद्ध पिता को नाव से उठाकर जल मे फेंक देगा। सुलतान को पुत्र की बात पर किसी प्रकार की शंका नही हुई। लगभग एक मील ऊलर लेक मे नाव के चले जाने पर जैनुल आबदीन ने पुत्र से कहा—'जाकर मेरी माला ले आओ। मैं उसे भूल गया हूँ। वह हमारे प्रार्थनागृह मे रखी है।' आदम खां नाव से उतर कर सुलतान के प्रार्थनागृह मे गया। वहां उसने देखा कि सुलतान अपने प्रार्थनागृह मे ध्यानस्थ बैठे थे। वह पिता के पास लौट आया। उसने देखा पिता पूर्ववत नाव पर बैठे हैं। उसने अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगी (हैदर मलिक चादुरा : १५२; तुजुकराते जहांगीरी इलियट एण्ड डौसन : ४ : ३०६)।'

येषां हिमांशुपीयूषप्रवाहा नित्यभिक्षवः ।
इक्षवस्तेन मार्ताण्डदेशभूमिषु रोपिताः ॥ ९७४ ॥

९७४ हिमांशु का पीयूष-प्रवाह जिनके नित्य भिक्षुक बने रहते, ऐसे इक्षुओं[1] (ईखों) को मार्तण्ड देश की भूमि मे उसने आरोपित किया ।

त्यजता योगमाहात्म्याद् वलीपलितविक्रियाम् ।
श्रीमद्दर्शननाथेन विबुधत्वं प्रकाशितम् ॥ ९७५ ॥

९७५ योग माहात्म्य[1] के कारण वली एवं पलित विकार का त्याग करते हुये श्रीमद्दर्शन नाथ[2] (जैनोलाबदीन) ने अपनी विबुधत्व (देवत्व) प्रकाशित कर दिया ।

पाद-टिप्पणी :

९७४ (१) ईख की खेती : कल्हण ने इक्षु का उल्लेख (रा० : २ : ६०) किया है । इक्षु शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद (१ · ३४ : ७) म प्राप्त होता है । तत्पश्चात् संहिताओं मे भी उल्लेख मिलता है (मै० स० : ३-७.९, ४ · २ : ९, तै० सं० : ३ : १६ : १ वा०, स० : २५ १) । वैदिक साहित्य से यह पता नहीं चलता कि इसकी खेती होती थी अथवा वह वन मे उत्पन्न होता था । काश्मीर उपत्यका किंवा वादी म ईख प्राय नही होती । काश्मीर राज्य के जम्मू प्रदेश में तहसील रणवीर सिंह पुर मे खूब खेती होती है । जम्मू के नहरी क्षेत्रो मे भी ईख की फसल होने लगी है । शर्करा अर्थात् चीनी का उत्पादन सर्वप्रथम भारत मे हुआ था । यूनानी जब भारत मे आये तो उन्हे यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि इण्ठल से मधुर निकलती थी । भारत मे माधुर्य के लिये जो महत्त्व शर्करा का है वही स्थान पाश्चात्य देशो मे मधु का है । काश्मीर उपत्यका मे इसका अभाव था । यह दुर्लभ समझी जाती थी । जोनराज के इस वर्णन म प्रतीत होता है कि जैनुल आबदीन ने ईख की खेती काश्मीर म करने का प्रयास किया था । मार्तण्ड क्षेत्र अर्थात् मटन के समीप ईख की खेती की गयी थी । यह प्रयास अभिनव एव स्तुत्य कहा जायगा । परन्तु ईख की खेती काश्मीर उपत्यका मे सफल नही हो सकी । आजभी काश्मीर उपत्यका मे ईख नहीं होती । उसका कारण यह दिया जाता है कि शीत ऋतु मे तुषारपात के कारण ईख की फसल लग नही पाती काश्मीर उपत्यका मे चीनी सुदूर प्राचीन काल से आयात की जाती रही है । आज भी आयात होती है । यद्यपि उसके सूबा जम्मू मे सफल खेती होने लगी है ।

ईख की खेती के लिये पानी शाहकुल किंवा मार्तण्ड नहर से आता था । नहर में लेदरी नदी से पानी आता था (नवादरुल अखबार : पाण्डु० : ४५ ए०, गौहरे आलम · पाण्डु, : १२७ ए०) ।

पाद-टिप्पणी :

९७५ (१) *योगमाहात्म्य* : इस तट पर सुल्तान ने योगी लगर बनवाया । वहाँ योगियो को मुफ्त भोजन दिया जाता था । रैनवारी श्रीनगर मार नहर पर यह सुन्दर स्थान था । अबुलफजल लिखता है कि सुल्तान योगी था । वह अपने शरीर से निकल कर दूसरे मे जा सकता था (आइने अकबरी : जरेट २ . ३८८, तबकाते अकबरी ४४१) । योगियो से सुल्तान का निकट सम्बन्ध रहता था । वह स्वयं योगाभ्यास करता था । एक समय सुल्तान बीमार पड़ा । उसकी जीवन रक्षा एक योगी के द्वारा हुई थी । उसने अपनी आत्मा जैनुल आबदीन के शरीर में प्रविष्ट कर उसे रोगमुक्त किया था (तबकाते अकबरी . ३ . ४४१, फिरिश्ता : २ : ३४५; तारीख बीरबल कचरू . पाण्डु : ७५) ।

(२) श्रीमद्दर्शननाथ : दर्शन शब्द का प्रयोग जोनराज ने आजकल प्रचलित धर्म शब्द के

उदीपे सस्यसम्पत्तेरुपप्लवकरीं व्यधात् ।
तूलमूलादपाकृष्य सिन्धुं भारोसगामिनीम् ॥ ९७६ ॥

इति श्रीजोनराजकृता राजतरङ्गिणी समाप्ता ।

९७६ बाढ़ के समय सस्य सम्पत्ति को नष्ट करने वाली सिन्धु[1] नदी को तूलमूल[2] से खींचकर भरोसगामिनी बना दिया ।

इति श्रीजोनराजकृत राजतरङ्गिणी समाप्त हुई ।

भाव मे किया है । उसकी दृष्टि मे जैनुल आबदीन धर्म रक्षक—धर्म-पालक था ।

पाद-टिप्पणी :

९७६. उक्त श्लोक संख्या ९७६ के पश्चात् बम्बई संस्करण मे श्लोक संख्या १३१३–१३३४ अधिक हैं । उनका भावार्थ है—

(१३१३) पूर्व वर्ष के तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति आदि एकमात्र साधन से भावी वर्ष के तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति को क्षण मे लिखने वाला—

(१३१४) राजप्रियता कारण प्रसिद्ध रुप्यभट्ट उसके राज्य मे हुआ, जिसने गणितागम खण्डखाद्य पर अनादर भाव कराया ।

(१३१५) दैववश चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर उसकी कान्ता निशा कष्ट से सूर्यकान्तमणि मे प्रविष्ट हो गयी और द्युलोक जाकर उसके धूम के व्याज से उसके तेज को पुनः प्राप्त किया जिसके कारण चन्द्रमा ने सूर्य किरण का उदय प्राप्त किया ।

(१३१६) शिशिर के साथ मत्सर सहित भी ऋतुपति अति विग्रहकर न होकर हितकर होता है । यदि शिशिर भू को (न) विनष्ट कर देता तो मधु क्या योजन करता ?

(१३१७) शास्त्रार्थमण्डित पण्डित सुहभट्ट ने दर्शन द्वेष के कारण प्रेत (शव) दाह निषिद्ध कर दिया ।

(१३१८) उस समय कुछ मृतक (प्रेतदेह) गुप्त रूप से जल मे, कुछ अरण्य मे, त्याग दिये गये और दूसरे बन्धुओं द्वारा गाड दिये गये ।

(१३१९) सूहभट्ट के मरणोपरान्त शनैः शनैः निर्भय प्रजा ने गुप्तरूप से कुछ मृतको को जलाया ।

(१३२०) राजा ने स्वयं दोषो को देखकर सैय्यद मक्क को निकाल दिया । अतः बन्धु दिन में प्रकट रूप से प्रेतदाह करने लगे ।

(१३२१) सुकृतिशाली पति का अनुसरण करने से पत्नियाँ स्वर्गाङ्गनाओ का अङ्ग संसर्ग से प्राप्त पुण्यक्षय निवारित की ।

(१३२२) उसके धारक द्वारा प्रदत्त पैतृक राज्य का भोग करने के लिये जैनुल आबदीन ठक्कुर सहित काश्मीर आया ।

(१३२३) जसरथ भी हतो के धन, वस्त्र, अस्त्र, शिरस्त्राण, आदि ग्रहण कर धन सहित सदन (धार) गया ।

(१३२४) ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष प्रतिपद ४४९६ (सप्तर्षि संवत्) को जैनुल आबदीन ने राजधानी मे प्रवेश किया ।

(१३२५) राजा ने हनूमान को सर्वस्व कर्पण ग्राम का आधिपत्य प्रदान किया ।

(१३२६) राजा ने विचार दक्ष मेर (मीर) को सत्यासत्य परीक्षा हेतु आस्थानासन संविद दिया ।

(१३२७) प्रवृद्ध यवनाधिकार प्राप्त, विप्रवीर, विट, कुटिल मार्गगामी भट्टो द्वारा प्रजा मथित एवं मोहित हुई। उसने बृहस्पति सदृश बुद्धिमान विचार-चतुर ठक्कुर मेर को विचार पद निर्णय पर नियुक्त किया।

(१३२८) राजा ने उग्र तेजस्वी वीर ठक्कुर मल्लिक नौरूज (नौरोज) को सेनाधिपतित्व प्रदान किया।

(१३२९) लेदरी नदी पर (शव्यपार) दक्षिण पार (दक्षिनपार परगना) मे खताज राज को बहुत ग्राम दिये।

(१३३०) नृपति ने यहाँ विक्रमशाली आदम को देह निर्मुक्त अर्धवन (अदविन परगना) नामक विषय प्रदान किया।

(१३३१) परमपरमेश्वर ने धीमान, वीर, मार्गपति मुहम्मद को प्रवेशपुर का अधीशत्व—

(१३३२) तथा (तुला मे) भागेल (भागिल-बागिल परगना) प्रदेश प्रदान किया और उसके अनुज ताज प्रमुख को—

(१३३३) पञ्चग्रामी एवं बहुमूल्य अश्व प्रदान कर सन्तुष्ट किया। श्रीजालोट्टाधिपत्य मेरेश्वर पद—

(१३३४) एवं महाग्राम पसला को नृपति ने ठक्कुर अहमद को प्रदान किया तथा मान्यता मे सम अन्य ठक्कुरों को भी यथेष्ट हजारो महाग्राम प्रदान किया।

(१) सिन्धु नदी : यह काश्मीरी सिन्धु नदी है। इसे सिन्धु महानद नहीं मानना चाहिए। यह बालतल और दरस पर्वतो से निकलकर, सोनमर्ग कंगन, गान्दर बल, से होती शादी पुर के स्थानपर वितस्तासे मिल जाती है। यह वेगवती नदी है, इसका जल अत्यन्त शीतल रहता है। हिमजल आता है। प्रवाह मे छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े बहते हैं। उन्हें एकत्रित कर इन्धन के काम मे लाया जाता है। शीत तथा बसन्त ऋतु मे जल कम रहता है। मछलियाँ कारी मिलती हैं।

इसको उत्तरगंगा भी कहा जाता है। यह नदी दरस उपत्यका तथा हरमुख पर्वत के उत्तरीय पर्वत-क्षेत्रों का जल ग्रहण करती है। वितस्ता की सिन्धु सबसे बड़ी सहायक नदी है। काश्मीरी सिन्धु नदी को गंगा तथा वितस्ता को यमुना माना गया है। उनके संगम का स्थान शादीपुर अर्थात् प्रयाग है। (नी० : २९४=२९७-२९८)।

द्रष्टव्य : टिप्पणी श्लोक ४४४।

(२) तूलमूल : वर्तमान ग्राम तूलमूल है। श्रीनगर से १४ मील उत्तर है। तूलमूल जलस्रोत सुदूर प्राचीन काल से बड़ा पवित्र माना जाता है। मान्यता है कि यह देवी महाराज्ञी का निवासस्थान है। ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को देवी का जन्म दिवस तथा उत्सव मनाया जाता है। महाराज्ञी देवी दुर्गा का एक रूप मानी गयी है। महाराज्ञी पूजा का विशेष महत्व है। हिन्दू यहाँ की तीर्थ यात्रा करते हैं। इसका नाम, मूलमूलक, राज्ञा, राज्ञो प्रादुर्भाव माहात्म्य मे मिलता है।

कल्हण ने इसका उल्लेख तुलमूल्य नाम से किया है (रा० : ४ : ६३८)। उन कछारो से जहाँ से होकर सिन्धु नदी प्रवाहित होती वितस्ता मे मिलती है, उसी के समीप तूलमूल स्थान है। सिन्धु नदी में अतिवृष्टि किंवा तुषारपात के कारण बाढ़ आ जाती है। कृषि की हानि होती है। जैनुल आबदीन ने सिन्धु के प्रवाह का नियन्त्रण किया ताकि नदी जल द्वारा समीपवर्ती क्षेत्रों को नुकसान न पहुँचे।

महाराज्ञी अथवा राज्ञा या का मेला किंवा उत्सव मज ग्राम सुथियान के समीप तूलमूल, गन्दरबल, सम्बल के समीप तथा टकर तीन स्थानो पर एक ही दिन होता है। तीनों ही स्थानो पर नाग है।

महाराज्ञी नाम का प्रयोग भी मिलता है। सुदूर प्राचीन काल मे ईरान म भी महाराज्ञी की पूजा होती थी। इससे स्पष्ट होता है कि ईरानी तथा भारतीय शाखा के आर्य मूलत: एक ही थे। विशेष द्रष्टव्य : पाण्डु० : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय राज्ञी स्तोत्र : २३३ : २३९४-१५, एम० आर०, पाण्डु० : राज्ञी-स्तव : २ : ४१४६. १५, एम० आर, पाण्डु० : राज्ञी स्तव : कृष्ण पण्डित : २५, ४१४६; १५; एम० बी०;

पाण्डु० : राज्ञी सुहगनाम ' तथा महाराज्ञी सवण परिग्रहण संख्या ३३०१९ पाण्डु० गुरुदेवशीतल्य कृष्ण पण्डित परिग्रहण संख्या ३२०३५११। सभी पाण्डु-लिपियाँ शारदा लिपि में हैं। राज्ञी स्तव तन्त्रग्रन्थ है।

यहाँ एक विचित्र बात देखी गयी है। यहाँ के नाग का जल बदलता रहता है। कभी हरा कभी लोहित वर्ण हो जाता है। रुद्रयामल तन्त्र में राज्ञी कवच देवी की स्तुति है। इससे स्पष्ट होता है कि यह तीर्थस्थान अत्यन्त प्राचीन है। देवी के माहात्म्य से प्रकट होता है कि मूलतः देवी लंका में थी। रावण के अवसान के पश्चात् स्थानीय जनश्रुति के अनुसार देवी हनुमानजी द्वारा यहाँ लायी गयी थी। किन्तु महाभारत तथा रामायण में इसका प्रसंग नहीं मिलता।

मुसलिम काल में यहाँ की यात्रा हिन्दुओं द्वारा बन्द हो गयी थी। लगभग ३८५ वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण पण्डित तिपलू ने इस स्थान के महत्त्व तथा तीर्थ का पुनः पता लगाया था। उस समय से यहाँ की यात्रा पुनः आरम्भ हुई है। देवी को चावल, चीनी तथा दूध चढ़ाया जाता है। उन्हें यहाँ के नाग में डाल देते हैं। नाग पर चढ़ावा के कारण सनहु जम गयी थी। सन् १८६१ ई० में दिवान नरसिंह दयाल ने यहाँ की सफाई करायी थी। उस समय हैजे की भयंकर बीमारी फैल गयी थी। वहाँ गया देवी अप्रसन्न हो गयी थी। परिणामस्वरूप यहाँ के नाग की सफाई पुनः भय के कारण नहीं करायी गयी। नाग का जल कूड़ा करकट के जम जाने के कारण बन्द हो गया था। श्री पण्डित विद्यनाल धर ने साहसपूर्वक यहाँ की सफाई पुनः करायी। सफाई के समय बीच में एक प्राचीन मन्दिर मिला। अलंकृत संगमरमर शिला मन्दिर में लगे थे। उनमें कुछ ९ फीट लम्बे और तीन फीट चौड़े थे। कुछ देवी देवताओं की मूर्तियाँ भी मिली थीं। देवस्थान का जीर्णोद्धार सार्वजनिक चन्दा से किया गया। स्वर्गीय महाराज प्रतापसिंह ने पुराने मन्दिर के स्थान पर नाग के मध्य नवीन मन्दिर का निर्माण कराया है।

मूल्यांकन द्रष्टव्य परिशिष्ट।

द्वादशी ज्येष्ठ मास शुक्रवार के दिन जोनराज की मृत्यु सन् १४५९ ई० में हुई थी। उसने जैनुल आबदीन काल के मध्याह्न सूर्य का दर्शन किया था। उक्त समय बडशाह अपनी पूर्ण गरिमा में था। जोनराज बडशाह राज्य के महान् एवं गौरवशाली काल का प्रत्यक्ष द्रष्टा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् राज्य में फूट आरम्भ हो गयी। पिता, पुत्र तथा भाइयों में शक्ति प्राप्ति के लिये संघर्ष आरम्भ हुआ। उसका वर्णन श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी में किया है। श्रीवर ने सन् १४५९ से १४७० ई० जैनुल आबदीन तत्पश्चात् हैदर शाह (सन् १४७०–१४७२ ई०), हस्सन (सन् १४७२–१४८४ ई०) तथा मुहम्मद शाह के राज्य काल सन् १४८४ से १४८६ ई० तक का वर्णन किया है।

सुल्तान जैनुल आबदीन की कब्र उसके पिता सिकन्दर बुतशिकन के बगल में है। यहीं पर इनकी माता की भी कब्र है। वह पूर्व कालीन मन्दिर था। मैं वहाँ दो बार जा चुका हूँ। मन्दिर में अभिषेक जल निकलने की प्रणाली बनी है। एक सिकड़ी भी ऊपरी शिखर से लगी झूल रही थी। इसमें घण्टा अथवा छत्र प्रतिमा पर लगाया जाता रहा। मुझसे यहाँ के मुसलमानों ने बहुत कहा कि यह मन्दिर नहीं है। परन्तु प्रणाली तथा मूर्तियों के रखने के स्थानों के कारण उनका तर्क निरर्थक हो जाता था। इस कब्रिस्तान का प्रवेश द्वार मन्दिर के प्राकार का प्रवेश द्वार है। उसके दोनों तरफ ताखों में भग्न मूर्तियाँ आज भी दिखाई पड़ती हैं। द्वार की बनावट मन्दिर के तोरण द्वार की तरह है।

रघुनाथ सिंह, सुत बटुकनाथ सिंह, जन्मस्थान पंचक्रोशी अन्तर्गत वरुणातीरस्थित ग्राम खेवली, रामेश्वरस्थान समीप तथा निवासी मुहल्ला चौहट्टा (औरंगाबाद) काशी नगरी, वाराणसी क्षेत्र ने जोनराज का भाष्य सन् १९७० ई० में लिखकर समाप्त किया।

परिशिष्ट—क

मार्तण्ड

मार्तण्ड—द्वादश आदित्यो मे आठवे आदित्य का नाम मार्तण्ड है (आ० ७ : १०; भा० : ५ : २०, ४४; ब्रह्माण्ड० : ३ : ७ : २७८–२८८)। महाभारत मे मार्तण्ड को कामधेनु का पति माना गया है (अनु० : ११७ : ११)। मार्तण्ड का शब्दश: अर्थ मृत होता है। पृथ्वी के जिस स्थान मे सात मास निवास कर आठवे मे अस्त होता है, वही उसका निवासस्थान माना गया है। अदिति के आठ पुत्रो मे एक मार्तण्ड भी था। कथा है कि सात पुत्रो के साथ देवी स्वर्ग चली गयी। अष्टम पुत्र मार्तण्ड किंवा मार्ताण्ड को त्याग दिया (ऋ० : १० : ७२ : ८–९)। ऋग्वेद मे मार्तण्ड शब्द पक्षी के लिये एक बार प्रयुक्त हुआ है (ऋ० : ३ : ३८ : ८)।

भारत वर्ष के पुराकालीन भारतीय वस्तु, मूर्ति एवं भास्कर कला मे मार्तण्ड का विशिष्ट स्थान है। उसका भग्नावशेष अभी भी प्रभावोत्पादक एव विश्व की सर्व श्रेष्ठ कला कृतियो मे माना जाता है।

इसका प्राकार २०० फुट लम्बा तथा १४२ फुट चौडा है। मिश्र के स्थापत्य की भव्यता एवं यूनानी स्थापत्य का लालित्य दोनो का अपूर्व मिश्रण मिलता है। उसके शिलाखण्ड पिरामिड की तरह मृत नही सजीव लगते हैं। उनमे जैसे वाणी है। वे ताजमहल एवं पिरामिड की तरह मूक नही हैं। वे बुझे नही लगते। उनमे कम्बोडिया के एगकोटर वाट की तरह जीवन है।

मार्तण्ड का स्थापत्य पूर्णतया काश्मीर की देन है। परन्तु उसमे गान्धार शैली मुसकराती है। उत्तर गुप्तकालीन की भास्कर्य एवं मूर्तिकला की प्रगति गान्धार कला शैली से अछूती नहीं है। उसने काश्मीर मे आगे चलकर बनने वाले सभी मन्दिरो के लिये प्रतिकृति का कार्य किया है।

मैंने मार्तण्ड एवं परिहासपुर तथा काश्मीर के प्राय: सभी भग्नावशेषो को देखा है। परिहासपुर का अपना स्थान है। उसका वर्णन परिशिष्ट मे दिया गया है। परिहासपुर, हिन्दू, बौद्ध दोनो की उपासना का केन्द्र था। मार्तण्ड का मन्दिर केवल सूर्य मन्दिर था। उसकी परिकल्पना शैली निराली है। उसे काश्मीर का साइक्लोप्स कहा जा सकता है। परिहासपुर का अधिष्ठान मात्र, नीव का आधार मात्र शेष रह गया है। किन्तु मार्तण्ड का प्राकार भग्न मन्दिर, प्रांगण सबका रूप दिखायी देता है। उनके आधार पर उसके भव्यता एवं रूप की कल्पना की जा सकती है। जिसे परिहासपुर के लिये करना कठिन है। भूतेश्वर के ध्वंसावशेष भी मानव मन को आकर्षित करते हैं परन्तु वह मन्दिरो का समूह है। उसकी अपनी शैली है। उसकी मार्तण्ड तथा परिहासपुर से समानता करना ठीक नही होगा। तीनो की तीन दिशा हैं, तीन दृष्टिकोण हैं। तीनो की तीन प्रकार की शिल्प शैली है।

मार्तण्ड मन्दिर की परिकल्पना को समझने के लिये ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक है। जिसे नक्षत्र, राशि एवं सौर मण्डल का ज्ञान नही है, उन्हें मन्दिर परिकल्पना के वास्तविक दर्शन को समझने मे कठिनता

का बोध होगा। मन्दिर मे ८४ स्तम्भ हैं। वर्ष मे १२ मास होता है। एक सप्ताह मे ७ दिन होते हैं। वर्ष के १२ मास तथा ७ दिन को गुणा करने से ८४ आता है।

प्रांगण मे तीन प्रवेश द्वार हैं।[1] उनका आकार दृष्टिगोचर होता है। मुख्य द्वार अनन्तनाग की दिशा मे पश्चिम ओर है। द्वार आयताकार है। उसमें पत्थर के मोट ६ तथा ८ फुट तथा एक ९ फुट लम्बा लगा है। वर्तमान युग के इन्जिनीयरों के सम्मुख यह समस्या उपस्थित करता है। किस प्रकार इतने भारी पत्थर को आधुनिक क्रेनो के अभाव मे एक के ऊपर दूसरे बहुत ऊँचाई तक उठाकर रखे गये होंगे? वे इतने सठीक एवं सुस्पष्ट बैठे हैं कि उन्हे देखकर आश्चर्य होता है। एंगकोर वाट मे भी शिलाखण्डों का प्रयोग किया गया है परन्तु वे इतने विशाल नहीं बल्कि छोटे हैं।

मन्दिर ६० फुट लम्बा तथा ३८ फुट चौडा है। इसके चतुर्दिक का प्रांगण अधिक महत्वपूर्ण है। यह २२० फुट लम्बा तथा १४२ फुट चौडा है। चारो ओर लगभग १ फुट जल भरा रहता था। जल के मध्य मन्दिर था। वह स्तम्भावली मूल से १ फुट ऊँचा रहता था। मन्दिर मे प्रवेश करने के लिये मुख्य द्वार से मन्दिर द्वार तक टुकडे-टुकडे पत्थर सेतु तुल्य रखे थे। उन पर होकर भक्त मन्दिर मे पहुँचते थे। इसी प्रकार शिलाखण्डो के सेतु सब द्वारो से मन्दिर पहुँचने तक बने थे। लेदरी नदी से नहर निकालकर यहाँ पानी लाया गया था। जल सर्वदा निर्मल, ताजा एवं स्वच्छ रहता था।

मार्तण्ड का प्रथम मन्दिर राजा रणादित्य ने निर्मित किया था। उसका नाम रणेश था। राजा की रानी अमृतप्रभा ने अमृतेश्वर की स्थापना किया था। रणेश के दक्षिण वह मन्दिर था। रणपुर स्वामी का भी एक मन्दिर था। कर्नल कोल के अनुसार इस प्रकार तीन मन्दिर होते है। कोल का मत है कि मुख्य मन्दिर मार्तण्ड का था। मार्तण्ड प्रांगण के उत्तर दिशा वाला मन्दिर रणपुर स्वामी का था। अमृतेश्वर का मन्दिर मार्तण्ड के दक्षिण था।

प्रांगण की स्तम्भावली राजा ललितादित्य ने निर्माण कराया था। मन्दिर के तीन खण्ड हैं। अर्धमण्डप, उतराल तथा गर्भगृह। गर्भगृह मे अधिक मूर्तियाँ नहीं थीं। किन्तु अन्तराल एवं अर्ध मण्डप में अत्यन्त सुन्दर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट मूर्तियाँ थीं। वे इस प्रकार खण्डित की गयी है कि उन्हें पहचानना कठिन है।

कर्नल कोल ने अपनी पुस्तक के पृष्ट १०–१९ तक १० मन्दिरो का चित्र दिया है। वे मन्दिर के तत्कालीन रूप एवं आकार को प्रकट करते हैं। उसमे मन्दिर का एक मानचित्र अथवा नकशा भी दिया गया है।

मन्दिर आयताकार है। उत्तर-दक्षिण चौडा तथा पूर्व-पश्चिम लम्बा है। तोरण द्वार पश्चिम मे है। मुख्य द्वार पश्चिमाभिमुख है। गर्भगृह मे ६ द्वारो को पार कर प्रवेश होता है। पूर्व-पश्चिम २६ बडी स्तम्भावली है। मध्य अर्थात् १३ स्तम्भो के पश्चात् छोटा मन्दिर दिवाल मे बना है। दो स्तम्भो के मध्य २४ लघु गवाक्ष तुल्य कोठरियाँ हैं। उनमे प्रतिमायें रखी थी। यदि स्तम्भावली के मध्य बडा गवाक्ष मान लिया जाय तो २५ गवाक्ष हो जाते है। लघु २४ गवाक्ष वर्ष के २४ पक्ष है। यही स्वरूप पूर्व-पश्चिम उत्तर दिशा वाली स्तम्भावली एवं गवाक्षो का है। पूर्व दिशा की ओर दक्षिण-उत्तर १६ स्तम्भावलियाँ हैं। उनके मध्य दक्षिण तथा उत्तर दिशा की स्तम्भावलियो के समान एक बडा गवाक्ष नहीं बना है। पश्चिम दिशा मे उत्तर-दक्षिण स्तम्भावली मध्य तोरण द्वार है। तोरण द्वार के उत्तर-दक्षिण छः स्तम्भावलियाँ तथा छः गवाक्ष हैं। दोनो ओर को जोडने पर १२ संख्या आती है। यही द्वादश अर्थात् १२ आदित्य के प्रतीक है।

तोरण द्वार मे तीन देहलियाँ तथा द्वार हैं। प्रथम द्वार बहुत चौड़ा है, मध्यवर्ती संकीर्ण है। यह द्वार सम्भवत: खोलने एवं बन्द करने के लिये कपाट युक्त था। तीसरा ओर द्वार था। यही जैसे तीन लोक या त्रैलोक्य के प्रवेश द्वार प्रतीक थे। मुझे इस समय स्मरण नही है कि तोरण तथा मध्यवर्ती द्वार मे कपाट अर्थात किवाड़ लगाने का स्थान बना था या नही। यदि स्थान बना होगा तो उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि तीनो द्वार बन्द ओर खुलते थे।

श्री वाइन ने सन् १८३५ ई० मे मार्तण्ड का स्थान देखा था। वह लिखता है—

'मार्तण्ड का हिन्दू मन्दिर पाण्डवो का भवन कहा जाता है। प्रत्येक भवन जिसके निर्माणकर्ता का पता नही चलता उसे गरीब हिन्दू पाण्डवो का निर्माण कह देते हैं। यह एकाकी ध्वसावशेष अपने एकाकी एवं विशाल भव्यता के लिये कुछ जानने की अपेक्षा करता है। काश्मीर के ध्वसावशेषो मे यह न केवल प्रथम श्रेणी का है, बल्कि वास्तुकला स्मारको मे विशिष्ट स्थान, उन ध्वन्सावशेषो मे रखता है, जो इस देश मे देखे जा सकते हैं। इसका वैभव युक्त पर्वतमूल मे खुला रूप मुझे 'इस्कुरिल' की स्मृति दिला देता है। स्पेन का 'सीरा', काश्मीर की शोभनीय हरियाली, पर्वतीय दृश्य की तुलना मे मुहूर्तमात्र के लिये नही टिक सकता है।

'काश्मीर के मन्दिरो मे चाहे जो भी शेष रह गये हैं, उनमे बौद्ध मन्दिर कोई नहीं है। वे मन्दिर नागो एवं जलाशयो के तट पर निर्मित किये गये थे। मैं समझता हूँ कि नागपूजा के लिये उनका निर्माण किया गया था। प्राय: सभी मन्दिरो मे मूर्तियाँ भग्नावस्था मे मिलेंगी। मुझे किसी भी मन्दिर मे जो इस समय तक भग्नावस्था मे शेष रह गये हैं, किसी प्रकार का शिलालेख नही मिला है।

'मैं चकित रह गया। इस मन्दिर की सामान्य साम्यता 'आर्क' के कथित वर्णन से मिलती देखकर। इसके प्राकार की दीवालें प्रतीत होता है 'यरूसलम' के मन्दिर की अनुकृति है। इसे देखकर, एक प्रश्न अनायास उठता है। काश्मीर मन्दिर के कलाकार 'यहूदी' स्थापत्य, जिन्होने यरूसलम मन्दिर की परिकल्पना निर्माण की सुविधा के कारण रखी हो।

'यह एक विचित्र घटना है। 'अबीसीनिया' जिसका प्राचीन नाम यूथोपिया है, उसे 'कुश' कहते हैं। प्राचीन 'चर्च' काश्मीर मन्दिरो से भिन्न नही मालूम होते। वे मूलत मन्दिरो की अनुकृति कर इसराइलियो द्वारा निर्मित किये गये थे। वे 'शेवा' की रानी के साथ अबिसीनिया गये थे। जिसके पुत्र ने 'कुश' का राज्य सिंहासन प्राप्त किया था। उसके वंशज आज भी अबिसीनिया के राजा है।

'बिना किसी प्रकार गर्व, बड़ाई तथा भव्यता के 'पालमैरा' के सूर्य मन्दिर की तुलना अथवा 'परसी-पोलिस' के ध्वन्सावशेषो से तुलना किये भी क्या मार्तण्ड का मन्दिर इस बात का दावा नही कर सकता कि उसकी स्थानीय स्थिति शायद हो उनसे कम रुचिपूर्ण है। मार्तण्ड इस बात का अधिकारी है कि उनके समकक्ष रखा जा सके। कारण—वह एक स्थापत्य का ज्वलन्त उदाहरण है। वह धर्म की अवनति के साथ अवनति की ओर ढलता गया। जिन्हे अनुप्राणित करने के लिये उसका निर्माण किया गया था। किन्तु वह देश की समृद्धि के साथ सुन्दरता प्राप्त नही करता गया।

'अपनी स्थानीय स्थिति के कारण यह उक्त दोनो 'पलमैरा तथा परसीपोलिस' के स्थापत्य से उत्तम कहा जायगा। 'पलमैरा' चारो ओर बालुकार्णव से घिरा है। परसी पोलिस दल दल के समीप है। किन्तु सूर्य मन्दिर मार्तण्ड विश्व मे एवं सुन्दर पर्वतमूल मे, प्राकृतिक अधिष्ठान पर स्थित निर्माण है। इसके सम्मुख यह दृश्य है, जो विश्व की सर्वश्रेष्ठ अभिरम्य उपत्यका कही जायगी।

'हम एक मृत स्मारक की ओर नहीं देख रहे है। हम यहाँ एक कब्र देखने के लिये नहीं खड़े है। अथवा यहाँ कोई मरसिया अथवा करुण काव्य सुनकर दुःखी होने के लिये नहीं खड़े हैं। सामने भूमि पर बिखरा सुन्दर शिलासमूह एक युग का प्रतीक है न कि किसी मृत्यु का दृश्य। जिस रुचि के साथ इस ध्वंसावशेष की परिक्रमा कर रहे हैं, वह कम सुखप्रद नहीं है। क्योंकि बहुत कुछ इसके विषय मे नहीं जानते कि इसका निर्माणकर्ता कौन था। यह किस हेतु मूलतः निर्मित किया गया था। इसकी प्राचीनता क्या है (वाइन : ट्रेवेल्स-इन-काश्मीर : श्रीनाइट की पुस्तक से समुधृत पृष्ठ ३५९–३६१)।

श्री जनरल कनिंघम सन् १८४८ ई० में मार्तण्ड के सन्दर्भ में लिखते हैं—'काश्मीर के समस्त ध्वंसावशेषो की भव्यता मे सबसे अधिक आकर्षक तथा परिमाण एवं वातावरणकी दृष्टि से मार्तण्ड का ध्वंसावशेष सुन्दर है।

'यह गौरवशाली ध्वन्सावशेष मटन की ऊँची अधित्यका के उत्तरी छोर पर है। इसलामाबाद (अनंतनाग) से ३ मील पूर्व है।

'निसन्देह निर्माण हेतु स्थान का यह चयन काश्मीर मे सबसे उत्तम कहा जायगा। इस समय मन्दिर ४० फीट ऊँचा है। इसकी ठोस दिवाल तथा शिलाप्राकार अलंकृत स्तम्भावलियो पर आधारित है जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

'यहां के ब्राह्मण इसे 'पाण्डवों' का घर तथा सर्वसाधारण जन मटन कहते हैं। किन्तु 'मटन' संस्कृत शब्द मार्तण्ड का अपभ्रंश है।'

कनिंघम मन्दिर का सविस्तार वर्णन करते हुए लिखते है—'बैरन वान हुगेल को भ्रम हुआ था कि मार्तण्ड के मन्दिर पर कभी छत रही होगी। मन्दिर की खड़ी दिवाल तथा समीपस्थ चारों ओर बिखरे शिलाखण्ड इस बात को प्रमाणित करते हैं कि छत अवश्य रही होगी।

'इस स्थान से काश्मीर का मनोरम दृश्य प्राप्त किया जा सकता है। यह परिज्ञात विश्व का सबसे सुन्दर दृश्य कहा जायगा। इसके नीचे ६० मील चौड़ी तथा १०० मील लम्बी काश्मीर की सुन्दर उपत्यका है।

'मार्तण्ड को देखने पर हृदय पर पहला प्रभाव यही होता है कि ग्रीस (यूनान) स्तम्भावलियों से मार्तण्ड के स्तम्भावलियों की शैली मिलती है। मन्दिर अपने बरामदा, त्रिभुजाकार तोरण, किंवा शैलपद, भारतीय शैली की अपेक्षा यूनानी शैली का अधिक स्मरण दिलाता है। यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि यह वास्तुशैली जो भारतीय वास्तुशैली से नहीं मिलती और जिसमे यूनानी शैली का साम्य है केवल एक आकस्मिक कार्य के कारण लिया गया होगा, जो कि उसमे प्रत्यक्ष साम्यता परिलक्षित करती है।

'यूनानी तथा काश्मीरी वास्तुकला मे अत्यधिक साम्यता यह है कि दोनो स्थानो पर शताब्दियो तक एक ही पुरातन शैली का अनुकरण एवं विकास शताब्दियों तक किया जाता रहा है। उनमे परिवर्तन नहीं हो सका। उन्हे देखकर यह कहना कठिन होगा, उनका विकास एक ही प्रकार के हिन्दू स्थापत्य किंवा वास्तुकला के द्वारा हुआ है।

'मैं अनुभव करता हूँ काश्मीर मन्दिर के अनेक रूप हैं। उनके अनेक विस्तार कार्य यूनानी मन्दिरों से लिये गये हैं। यद्यपि मन्दिर का आन्तरिक और तत्सम्बन्धी दूसरे खण्डो की मूल रचना हिन्दू है। उनकी मूल परिकल्पना भारतीय थी। तथापि अनेक अलंकार एवं भव्य रूपो का मूल विदेशी रहा है।

सब बातो को यदि लिया जाय तो मैं समझता हूँ कि काश्मीरी स्थापत्य अपने उत्तम अलंकृत स्तम्भो, स्तम्भावलियो, ऊँचे शैलपद अर्थात् त्रिभुजाकार तोरण, उसके परिष्कृत त्रिपण अर्थात् त्रिदल मेहराब अपनी विशेष मौलिक शैली कहलाने के लिये स्वयं परिपूर्ण है। अतएव मैंने इस स्थापत्य शैली का नाम 'एरियन आर्डर' रखा है। इस नामकरण के दो कारण हैं। पहला तो यह आर्यो अथवा काश्मीर के एरियन की शैली थी, दूसरा इसकी स्तम्भराजि सर्वत्र चार व्यासो की है। यह एक अन्तराल है, जिसे यूनानी (ग्रीक) 'एरियो स्टाइल' कहते हैं (जरनल एशियाटिक सोसाइटी भाग १७)।

पर्यटक कैप्टन नाइट सन् १८६० ई० मे लिखता है—'यह एक ईसाई 'चर्च' की तरह लगता है। यदि कुछ दूर से देखा जाय तो इस प्रकार के चर्च प्रायः 'आयरलैण्ड' मे मिलते हैं, न कि मूर्तिपूजक स्थानो मे। प्रवेश करते समय ही बहुत से अलंकृत शिलाखण्ड मिले। वे विगलित हो गये हैं।

'हमारी बुद्धि के परे उसकी परिकल्पना थी। कुछ हिन्दू देवताओं की तरह थे। दूसरे ईसाई बनावटो से मिलते थे। वे ईसाई देवदूतो किंवा फिरिस्तो के सदृश लगते थे। इसका मूल क्या था, इस बात ने हमे पूर्णतया भ्रमित कर दिया। किन्तु इसमे सन्देह नही कि वे अत्यन्त प्राचीन समय के थे। इसके रूप तथा शैली तथा इस प्रकार के और किसी देवमन्दिर के कही न मिलने पर, हमने विचार कर लिया कि यह सूर्य का मन्दिर होगा। प्राय मूर्तियाँ देवियो की मालूम होती थी। किन्तु उनमें हमे कहीं भी 'क्रास' नही मिला। किसी प्रकार का प्रतीक हमे दिखायी नही दिया। बहुत से स्तम्भ प्राकृतिक जल-वायु के कारण गल गये हैं, जैसे मालूम पड़ता था कि वे लकड़ियों के हैं। किन्तु उनके नष्ट होने का कारण मानव हाथ भी होंगे क्योंकि वे चारो ओर बिखरे हैं।'

सन् १८७५ ई० मे पर्यटक श्री डब्लू० वेकफील्ड लिखते हैं—'आयताकार मार्तण्ड मन्दिर की प्राकारस्थ स्तम्भावली का मुख मुख्य मन्दिर की ओर है। बाहर की तरफ ९० गज लम्बी तथा सामने की तरफ लगभग ५६ गज चौडी है। तीन तोरणद्वारो के द्वार प्रांगण मे खुलते हैं और मुख्य द्वार इसलामाबाद (अनन्त नाग) की ओर पूर्व दिशा मे है। अभी तक खड़ा है।'

'श्री वाइन ने जब सन् १८३५ ई० मे यहा की यात्रा की थी तो यह मन्दिर उस समय ४० फुट से भी अधिक ऊँचा था। यहाँ के एक निवासी ने उन्हे विश्वास दिलाया था कि उसने स्वयं अपनी आखो से देखा था कि वह ४० फुट से अधिक ऊँचा था। भूचाल के कारण ऊँचाई और कम हो गयी थी। क्योंकि ऊपरी निर्माण गिर गया था।'

'इसके समान हिन्दुस्तान तथा सिन्धु नदी के पश्चिम दिशा के देशो मे कोई रचना नही मिलती। स्थापत्य के एक अच्छे विद्वान् ने बताया था कि काश्मीर के मन्दिरों की शैली किसी भी अबतक विदित निर्माण तथा भारतीय शैलियो से भिन्न है। इस निर्माण तथा रोमन निर्माण मे सबसे अधिक अन्तर यह है कि इनमे हिन्दुत्व की छाप है। उनके कलाकार रोमनकला की कापी करने वाले हिन्दू थे न कि हिन्दू कला की नकल करने वाले रोमन अथवा यूनानी थे' (वेकफील्ड : हैपी वैली : २५७-५९)।

मार्तण्ड मन्दिर की शैली एव परिकल्पना का रहस्य जानने के लिये ललितादित्य के जीवन, पर्यटन एवं विजयो का अध्ययन आवश्यक है। बिना उन्हें समझे मन्दिर की मूल परिकल्पना को समझना कठिन होगा। इस परिच्छेद मे इस पर विचार करना उचित है।

ललितादित्य ने भारत-विजय करते, धुरदक्षिण, समुद्रतट, कर्णाटक, सौराष्ट्र, उत्तर पश्चिम होते हुए काश्मीर में प्रवेश किया था। अनेक प्रकार के वास्तु, भास्कर, मूर्ति, स्थापत्य आदि कलाओ का उसने दर्शन

किया था। उसने समुद्रतट पर प्रातःकाल सूर्य का समुद्र से उठना तथा सायंकाल पश्चिम में समुद्र में ही सूर्यबिम्ब का विलीन होना देखा था। उसने सूर्यबिम्ब के चतुर्दिक अथाह, विस्तृत समुद्र देखा था। उसने दक्षिण के उन मन्दिरो को भी देखा था, जो सरोवरो के मध्य बनाये गये थे। उसने इस परिकल्पना पर मार्तण्ड मन्दिर के चारो ओर जल भर कर उसे समुद्र का रूप दे दिया था। दक्षिण के मन्दिर की कल्पना उसने धुर-उत्तर काश्मीर मे साकार कर दी थी। काश्मीर मे कालान्तर मे जल किंवा सरोवर मध्य मन्दिर निर्माण की शैली चल पडी।

मार्तण्ड का स्थापत्य एव उसकी परिकल्पना पूर्व एवं पश्चिम का अनुपम कलात्मक मिश्रण है। काश्मीर पर तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, गान्धार, यूनानी तथा ईरानी स्थापत्य एवं भुवन-रचना का प्रभाव पड चुका था। गान्धार शैली यूनान से प्रभावित थी। ललितादित्य ने अनेक प्रकार के स्थापत्यो को स्वयं देखा था। उसके साथ पर्यटन करने वाले कलाकारो ने भी उन्हें देखा था। उनके पर्यटन, प्रतिमा, भुवन एवं स्थापत्यादि दर्शनो के परिणाम द्वारा नवीन शैली का उदय होना अनिवार्य था। उस पर काश्मीर का प्रभाव होना अवश्यंभावी था। मार्तण्ड का मन्दिर इसका ज्वलन्त उदाहरण है। उस पर भारतीय, गान्धार, यूनानी स्थापत्य, वास्तु एवं मूर्ति कला का प्रभाव पडा था किन्तु उस प्रभाव ने काश्मीरी आत्मा को प्रभावित नहीं किया।

काश्मीर की आत्मा पाषाणो मे मुखरित है। वह कुछ कहती है। उसे सुनने वाला सदय-हृदय व्यक्ति मूक होकर, उसे देखता रह जाता है। पश्चिम के सभी पर्यटको एव दर्शनार्थियो की यही प्रतिक्रिया हुई है। वे उसकी शोभा पर मुग्ध थे। उसकी कला मे विस्मृत हो जाते थे। भारतीय जगत ने मार्तण्ड मन्दिर का उस दृष्टि से अध्ययन नही किया है, जिससे होना चाहिये। उसके पूर्ण अध्ययन के लिये, उसे व्यक्त करने के लिये, एक सफल कवि, साहित्यिक, ज्योतिषी, स्थापत्य, वास्तु एवं भास्करकला का ज्ञाता होना आवश्यक है। जो भारतीय आत्मा के साथ ही साथ तत्कालीन भारतीय कला पर पडते विदेशी कलाविदो के प्रभाव को समझ सकने मे सफल हो सके। यह मन्दिर अभी और अनुसन्धान की अपेक्षा करता है।

काश्मीर के बाहरी पर्यटक मार्तण्ड मन्दिर का ध्वसावशेष देखने जाते हैं। परन्तु तीर्थयात्री पूजादि के लिये मटन की यात्रा करते है। वर्तमान मार्तण्ड का मन्दिर मटन मे है, सडक के किनारे पर चौकोर सरोवर है। उसमे प्राकृतिक जल निकलता रहता है। मछलिया उसमे अत्यधिक हैं। यात्री उन्हे चारा डालते हैं। वे उछलकर दाना लोक लेती है। बालको के लिये कौतूहल एवं आमोद की बात होती है। मछलियो के किलोल, उछलने तथा दौडने का दृश्य बडा अच्छा लगता है। सरोवर के ऊपर मार्तण्ड का मन्दिर है। वहा पूजा की जाती है। सडक के दूसरी तरफ चिनारो के वृक्षसमूह हैं। उनकी छाया बडी सुहावनी लगती है। चिनार की छाया मे लम्बा-चौडा मैदान है। सरोवर का जल एक प्रणाली द्वारा मैदान से बहता निकल जाता है। इस मैदान मे मैं दो सार्वजनिक सभाओ मे भाषण कर चुका हूँ।

ब्राह्मण पुरोहितो के कुछ मकान है। भारत के अन्य तीर्थों के समान वे भी बही-खाता रखते हैं। यात्रियो के नाम, ग्राम, पता आदि रखते है। यात्री अपने हाथो से ही बही पर लिखते है।

मार्तण्ड माहात्म्य के विषय मे द्रष्टव्य है: मार्तण्ड माहात्म्य : पाण्डुलिपि : १ : २ ; ४–१४; १५, एम० बी० : १ : २ ४१४६, १५ एम० एम० : शारदा लिपि : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

अबुलफजल ने यहाँ का वर्णन किया है। उस समय वह भग्नावस्था मे था। जलस्रोत का नाम मुसलमानो ने वेवलोन (बाबुल) का कुआ (कूप) रख दिया था (जरेट : ३५९)।

पीर हसन लिखता है—'सबसे पहले, मार्तण्ड-शूर के मन्दिर के मिसमार करने के लिये जो राजा रामदेव की तामीरात से मटन के टीला पर यादगार था, एक साल तक बराबर कारखाना जारी रखा। लेकिन खराब न कर सका। बिल आखिर इसकी बुनियाद से कुछ पत्थर निकाल लिये गये। बुतखाना के बीचो बीच इन्धन और लकड़ियां जमा करके आग लगा दी। मन्दिर की शकले और तसवीरें जोदीवारो पर तलाश मुलम्मा की गयी थी तबाह और बरबाद कर दी गयी। उसके आसपास की चहारदीवारी जड़ से उखाड़ फेंकी गयी। इसके खण्डरात अब भी हैरत अफजा हैं' (पर्शियन : पृष्ठ १७१ उर्दू अनुवाद - पृष्ठ १६०, १६१)।

प्रधान मन्दिर पूर्व दिशा की ओर २७ फुट चौड़ा है। इसमें अन्दर स्पष्ट अर्ध मण्डप है। वह १८ फुट १० इञ्च चौड़ा है। मन्दिर का अन्तराल १८ फुट लम्बा, ४ फुट ६ इञ्च चौड़ा है। गर्भगृह १८ फुट ५ इच लम्बा तथा १२ फुट १० इञ्च चौड़ा है। मन्दिर की भित्ति ९ फुट मोटी है।

प्रथम मण्डप की दीवाल पर त्रिमुख अष्टभुज वनमालाधारी विष्णु मूर्ति खुदी है। उनका वाम हस्त एक चामरधारिणी पर स्थित है। उत्तर दीवाल की मूर्ति के चरणो के मध्य पृथ्वी की प्रतिमा है। तीन मुखो मे एक वाराह, दूसरा सिंह तथा मध्यवर्ती मानवाकृति है। वे वाराह तथा नृसिंह अवतार को प्रदर्शित करती हैं। मध्यवर्ती स्वयं विष्णु है।

द्वितीय मडप की दीवाल पर एक ओर मगर पर आरूढ गगा की मूर्ति है। उनके वाम हस्त मे जल-पात्र तथा दक्षिण हस्त मे कमल है। पार्श्व मे छत्र एवं चामरधारिणी सेविका है। दूसरी तरफ कच्छपारूढ़ यमुना मूर्ति है। उनके दोनो पार्श्व मे छत्र एवं चामरधारिणी परिचारिकाये है। उन दोनो मूर्तियो के ऊपर दो गन्धर्वों की मूर्तिया है।

मन्दिर का आन्तरिक मच ७५ फुट है। कथा है कि रणादित्य ने उसका निर्माण कराया था। बाह्यान्तरी मंच राजा ललितादित्य का निर्माण है। आन्तरिक मच पर देवताओ की मूर्तियाँ खुदी हैं। बाह्यान्तरीय मंच पर बालकृष्ण सम्बन्धी भिन्न लीलायें खुदी हैं। उत्तरी-दक्षिणी दीवालो पर १२ मूर्तिया है। दो मूर्तिया पूर्व की ओर हैं। उनमें एक अरुण की मूर्ति है। वह सूर्य का सारथी माना गया है। वह रथ की रश्मियो को हाथ से पकड़े है।

प्रागण मे मन्दिर के चारो ओर चार लघु मन्दिरो के आसन हैं। कहा जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं दुर्गा के उन पर मन्दिर थे। मध्य मे मुख्य मार्तण्ड मन्दिर है। दीवालो पर खुदी मूर्तियो के मुखादि नष्ट कर दिये गये हैं। केवल आकारमात्र शेष है। उनका परिचय उनके आकार, वाहन तथा आयुध से मिलता है।

सूर्य त्रिमूर्ति से भिन्न देवता है। परन्तु वे त्रिमूर्ति एकता के प्रतीक हैं—'ब्रह्मा, विष्णु रुद्र स्वरूपिणे।' भारतीय परम्परानुसार पचायतन सभा की शैली पर ही मध्य मे सूर्य तथा चारो ओर चार मन्दिरो का निर्माण किया गया है। यह मन्दिर निर्माण शैली अबतक प्रचलित है।

मन्दिर में ८४ स्तम्भावलियाँ है। वे सूर्य के अश प्रतीक हैं। स्तम्भो मे ७० गोल, १० चौकोर तथा मध्यवर्ती ४ बड़े स्तम्भ हैं। गोलस्तम्भ ९॥ फुट ऊँचे हैं। वे टूटे हैं। स्तम्भ अत्यधिक भग्नावस्था मे हैं।

सम्मुख एक चौकोर सरोवर बना है। उसमे मन्दिर के पृष्ठभाग से जल आकर भरता था। मन्दिर का शिखर ७५ फुट ऊँचा, ३३ फुट लम्बा-चौड़ा है। गोपुर तुल्य दक्षिण तथा वाम पार्श्व मे रद्ध द्वार गोपुर है। वे ६० फुट ऊँचे मेहराबो पर स्थित हैं।

मुख्य मन्दिर के चारो ओर प्राकार हैं। उसमे ८४ लघु मन्दिर बने हैं। उनमे विभिन्न देवताओं की मूर्तियाँ सिंहासन पर स्थित थीं। पश्चिम दिशावर्ती प्राकार के मध्य मन्दिर का गोपुरम् द्वार है। इसीकी शैली पर अवन्तिपुर मन्दिर के द्वार का निर्माण किया गया है। यह मुख्य मन्दिर तुल्य विशाल एवं चौडा है। गोपुरम् पूर्व तथा पश्चिम दोनो ओर खुला है। एक दीवाल द्वारा आन्तरिक तथा बाह्य विभाजनो मे विभाजित है। इस द्वार के मध्य मे एक द्वार है। उसमे काष्ठद्वार लगा था। गोपुरम् का क्षत्र मुख्य मन्दिर तुल्य चौकोर है। गोपुरम् अलङ्कृत है। दण्डायमान देवता तथा कतिपय शृङ्गारिक मूर्तियाँ हैं। कुछ मूर्तियाँ बैठी हैं। पुष्प, पल्लव तथा हंसादि पक्षियों के चित्र हैं। गोपुरम् की दोनो पार्श्ववर्ती दीवालो पर त्रिमुख विष्णु की मूर्तियाँ हैं। उनके पार्श्व मे जय-विजय पुरातन शैली मे खडे हैं। गोपुरम् के दोनो भाग १७॥ फुट ऊँचे विशाल स्तम्भो पर स्थित हैं।

मन्दिर के पृष्ठभाग पर आठ पंक्तियो का एक भग्नावस्था मे निम्नलिखित शिलालेख लगा है।

१.'''हतश्चायं ''

२.'''पद्मोभहेतुत. स्वान्नाभिपद्मोद्भवाद्ब्रह्मप्रासिकृन्नोद्य''''''

३.'''स्याप्युग्रधामोत्करश्लाघ्य कर्त्तुंपि प्रजा प्रतिदिन कुर्वन्निवाशान्नवाभूवि''''''

४.'''वाद्व्यासजगत्त्रयास्ममादयः कुर्वन्नमदैवोदयम्। चक्राक्रान्ति समुज्ज्वलः परिप '''''

५.'''जो मुरारेरपि॥ क्रान्तानन्तदिगम्बरास्फुर परिव्याप्त त्रिलोकीतलाद्गोभि''''''

६.'''मतानि ज्ञानशशभृत्खण्डस्य धामप्रभुभ्रमिपन्नृत्त त्रिधाधिनोऽपि जगतो यशङ्कर''''''

७.'''प श्रियोऽस्य स्यसोपेन्द्राब्जनाना प्रसभमपहृताशेप रंघाश्रमस्यश्रीमा''''''

८.'''श्रीमूताण्डस्य बिम्बं श्रीश्रीवर्मासपर्याहित '''''

उक्त आलेख से प्रकट होता है कि यशकर्मी श्री वर्मा ने जो त्रिमूर्ति से भी बढ गये थे प्रबल शक्ति द्वारा प्रेरित होकर अपने राज्य के ७० वें वर्ष मे मार्तण्ड की मूर्ति स्थापित करायी। निष्कर्ष अनुमान आधार पर यह निकाला जा सकता है कि रणादित्य ने रणपुरस्वामी नामक सूर्य मन्दिर की स्थापना की थी। इसका प्रमाण मन्दिर के प्रथम मच तक जाता है। तत्पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड ने जीर्णोद्धार कर दूसरा मच तथा मन्दिर बनवाया। तत्पश्चात् श्रीवर्मा ने सूर्यमूर्ति की स्थापना की। यह मन्दिर ५०० वर्षों तक अछूता रहा है।

परिशिष्ट—ख

परिहासपुर

मैंने परिहासपुर का नाम सुना था, देखा नहीं था, कल्पना नहीं की थी। उसे देखने पर मार्तण्ड का ध्वंसावशेष भूल जाना पड़ेगा। मैं दो बार परिहासपुर गया। जो कुछ देखा, जो कुछ अध्ययन किया, वह वर्णनातीत है।

काश्मीर मे आकर, जिस पुरातत्व, इतिहास एवं कलाप्रेमी ने परिहासपुर नही देखा—उसने वास्तव मे कुछ नही देखा। परिहासपुर के ध्वंसावशेषो के शिलाखण्ड इतने तेजी के साथ गायब हो रहे हैं कि मुझे अपनी दूसरी यात्रा मे देखकर आश्चर्य हो गया। इस समय वहाँ की क्या अवस्था होगी नही कह सकता हूँ। मैंने वहाँ की यात्रा सन् १९६२ ई० तथा १९६६ ई० मे की थी। पूर्वकाल मे परिवहन कठिन था। प्रथम यात्रा मे पदयात्रा ही अधिक करनी पड़ी थी। दूसरी यात्रा के समय कुछ पक्की तथा कुछ कच्ची सडक का आश्रय लेना पड़ा था। जीप गाडी से ध्वंसावशेष मूल तक सुगमतापूर्वक पहुँचा जा सकता है।

पूर्व अनुभव न होने के कारण, ठीक पता न लगने के कारण, स्थानीय जनो के परिहासपुर नाम भूल जाने के कारण, कठिनाई हुई। उस समय यह स्थान रक्षित भी नहीं था। पुरातत्व विभाग वालो का दर्शन भी यहाँ दुर्लभ था।

वारहमूला सडक से मैं गाँव 'अवमनपुर' गया। गाँव सडक पर पडता है, यह छोटी सडक है। इससे एक शाखा सडक वारहमूला वाली सडक से निकल कर शादीपुर की ओर जाती है। उसी सडक पर मैं पहुँचा। इससे भी सरल मार्ग इस समय गुरेज—श्रीनगर सडक से पडता है। यह सडक अच्छी है। सैनिक दृष्टि से बनायी गयी है। शादीपुर से वारहमूला वाली सडक से भी पहुँच सकते है।

शादीपुर से दो मील चलने पर त्रिगामी ग्राम पहुचना चाहिये। शादीपुर से ढाई मील परिहासपुर पडेगा। वर्षाकाल म यात्रा ठीक न होगी।

काश्मीर राज्य सरकार से मुझे एक कार और मेरी प्रार्थना पर सबसे वृद्ध चालक मिला था। वह ब्राह्मण था। उसे प्राचीन ध्वंसावशेषो मे रुचि थी। मेरे पास श्री स्तीन द्वारा तैयार किया गया काश्मीर का मानचित्र था। उस पर प्राचीन स्थानों के नाम दर्ज थे। उससे स्थानों के पता लगाने म सुविधा होती थी। 'एंशिएण्ट काश्मीर' मानचित्र श्री स्तीन ने सन् १८५६–१८६० ई० के सर्वे के आधार पर बनाया था।

मेरी कार कीचड मे फँस गयी। मैं वारहमूला वाले मार्ग से आया था। मोटर ढकेलने लगा। अचानक कार स्टार्ट होकर आगे बढ़ गयी। मैं कच्ची सडक पर मुह के बल गिर पड़ा। समीप ही दाली का खेत था। उसमें पर्याप्त जल था। हाथ-मुँह धोया। धोती कुरता नष्ट हो गया था। जाँघिया और नमस्तीन पहने आगे चला।

गाँव से एक ऊबड़-खाबड़ नाममात्र की सड़क ध्वंसावशेषो तक जाती थी। इसका प्रयोग ध्वंसावशेषो से प्राप्त शिलाखण्डो को ढोने के लिये किया जाता था। कुछ तो ग्रामीण मकान बनाने के लिये उठा ले जाते थे और कुछ सड़क बनाने के लिये गिट्टी वही बनाकर बाहर भेजी जाती थी।

गाँव से एक आदमी साथ लिया। एक मील पैदल चलना पडा। मोटर पर धोती-कुरता सूखने के लिये फैला दिया। परिहासपुर भूमितल से १०० फुट ऊँची अधित्यका पर है। अधित्यका अथवा करेवा चोटी पर एक मील चौडा है। दक्षिण चौडा नाला है। वह अधित्यका को अन्य भूखण्ड से अलग करता है। वहाँ दिवर गाँव है।

श्री स्तीन ने अपनी राजतरंगिणी म इस स्थान का मानचित्र दिया है। उसमे प्रदर्शित ए० बी० सी० डी० ध्वंसावशेष करेवा पर है। भारत के मानचित्र मे जैसे काठियावाड दिखायी पडता है, उसी प्रकार दूसरा करेवा है। उस पर 'एफ' अक्षर द्वारा गोवर्धनधर मन्दिर का संकेत किया गया है। इसे गुदन उद्र कहते हैं।

अकमनपुर से चलने पर श्री स्तीन के मानचित्र के ई० डी० तथा ए० बी० सी० अंकित अक्षरो के मध्य पतला भूखण्ड पडता है। यही पर हमने अपनी मोटर खडी कर दी थी। इस स्थान से दक्षिण तरफ आयताकार निर्माण नीवो के पत्थर भूमितल तक दिखाई पड रहे थे। यह किसी मन्दिर एवं धर्मशाला का भित्तिमूल था। साथ के गाँव के मुसलिम साथी ने कहा—यह कबरिस्तान था। किन्तु कब्रिस्तान नही हो सकता। कब्रिस्तान का उसमे कोई लक्षण नही दिखाई दिया।

यह स्थान श्री स्तीन के मानचित्र ए० बी० तथा ई० डी० और यफ के प्राय. मध्य मे पडता है। मैं पुन. जब उतरा तो गाँव के वृद्धो से पूछा परन्तु वे नही बता सके कि उनके समय उस स्थान का वास्तविक रूप क्या था। वे केवल यह बता सके कि पहले नीव के पत्थर ऊँचाई पर थे। किन्तु पत्थर उठा ले जाने के कारण उनका वर्तमान रूप रह गया था। इस स्थान से उत्तर चलने पर ध्वसावशेष ए० बी० सी० पर पहुँचते है। यहा आने पर स्थान का महत्व प्रकट होता है।

ध्वसावशेष ए० बी० सी० से प्रकृति के अति मनोरम और सुहावने दृश्य का दर्शन होता है। राजा अवन्तिवर्मा के समय श्रीसुय्य द्वारा वितस्ता की धारा परिवर्तित की गयी थी। श्री स्तीन ने इस विषय पर विस्तार के साथ कल्हण की राजतरंगिणी के अनुवाद प्रसग मे प्रकाश डाला है। यहाँ खडे होकर सुदूर मीलो तक का विहगम दृश्य मिलता है। वितस्ता की पुरानी धारा के चिह्न दिखायी देते हैं।

अधित्यका किंवा करेवा की पूर्व दिशा मे पजनोर नम्बल है। विस्तृत मैदान ग्रीष्म ऋतु मे दिखाई पडता है। वर्षा ऋतु मे वह विशाल सर का रूप ले लेता है। उत्तर-पूर्व वितस्ता-सिन्धु प्राचीन सगम है। वितस्ता मे मिलने वाला वद्रिहेल नाला ध्वसावशेषो के उत्तर-पश्चिम पडेगा। वह परिहासपुर के पश्चिम-उत्तर प्रवाहित होता वितस्ता मे गिर जाता है। यही वितस्ता का अवन्तिवर्मा के पूर्व प्रवाह था।

नाला के पश्चिम उदन सर तथा उत्तर-पश्चिम बोनसर है। परिहासपुर के उत्तर-पूर्व फलपुर है। फलपुर तथा परिहासपुर उदर किंवा अधित्यकाओ के मध्य एक सेतु था। वह दोनों उदरो को प्राचीन काल मे जोडता था। उमे अनये सुथ कहते हैं। परिहासपुर का आकार एक द्वीप तुल्य है। उसकी चारो दिशा मे नीची भूमि है। फलपुर की भूमि पर मेनु के उत्तर-पूर्व विष्णुस्वामी तथा विष्णुस्वामी के पूर्व तथा परिहासपुर के उत्तर-पूर्व वैन्यस्वामी का मन्दिर था।

श्री स्तीन के मानचित्र मे अंकित 'एफ' अक्षर के नीचे दक्षिण दिशा मे गोवर्धनधर तथा अन्य देवस्थान थे। यह स्थान समुद्र की सतह से ५८७० फुट ऊंचाई पर है। गोवर्धनधर के पूर्व पजनोर नम्बल है। गोवर्धनधर आदि तीनो निर्माण की नीचे परिहासपुर द्वीप के दक्षिणी-पूर्वी करार पर है। वितस्ता के पार वितस्ता सिन्धु संगम परिहासपुर के पूर्व-उत्तर है। इस अंचल मे योग शायी, गयातीर्थ आदि स्थान है। वितस्ता के पश्चिम अर्थात वामतट पर परिहासपुर के धुर उत्तर अभ्यन्तर कोट, (अन्दर कोट,) जयपुर तथा द्वारावती स्थान था। पश्चिम हार तीर्थ था। पश्चिम-दक्षिण छिछली भूमि के पश्चात् सुखनाग नदी है। ललितादित्य ने परिहासपुर नगर बसाने के लिये सैनिक तथा तीर्थ दोनों दृष्टियो से काम लिया था। सामरिक दृष्टि से यह अन्दरकोट से अधिक सुरक्षित एवं उपयोगी था। पवित्रता की दृष्टि से चारो ओर से तीर्थों से घिरा था। सिन्धु-वितस्ता संगम के समीप होने के कारण नाविक परिवहन के साथ ही साथ वारहमूला-गुरेज की सडक जो काश्मीर के सीमान्त तक जाती है, जहाँ से शत्रुओ के देश मे प्रवेश का भय था, मध्य मे पडता था। स्थान जल एवं स्थल दोनो मार्गों से जुडा था। ऊंचाई पर होने के कारण जलप्लावन से, जो काश्मीर का पारम्परिक शत्रु है, बचा था। हरी पर्वत पर अकबर के दुर्ग बनाने के पूर्व काश्मीर उपत्यका के मैदान मे यह दूसरा ऊँचा स्थान था। आक्रमण काल मे सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त था। हरि पर्वत पथरीला है। जलाभाव है। सर्वोच्च शिखर पर देवी का मन्दिर है। वहाँ दो तीन होज हैं। वर्षा का जल एकत्रित कर कार्य चलाया जाता था। दीर्घकालीन घेरे के समय जलाभाव के कारण शत्रु स्थान पर अधिकार पा सकता था अथवा सेना स्वयं हथियार डाल सकती थी। परन्तु परिहासपुर मे जलाभाव का प्रश्न नही उठता था। जलाशय समीप है। करेवा पर लम्बा-चौड़ा मैदान हैं। वहां कृषि एवं फल फूलो का उत्पादन हो सकता है। विशाल सेना का शिविर लगाया जा सकता है। सैनिको के प्रशिक्षण के लिये मैदान है।

परिहासपुर से, शंकराचार्य, हरि तथा हरमुकुट पर्वत दृष्टिगोचर होते हैं। चारो ओर का जलाशय परिहासपुर की प्राकृतिक खाई बनाता है। ऊँचाई पर होने के कारण उपत्यका मे प्रवेश करते शत्रु सेना को अविलम्ब देखकर कार्यवाही की जा सकती है। सामरिक दृष्टि से पुराधिष्ठान, श्रीनगर, प्रवरसेनपुर, शारिका पर्वत से अधिक सुरक्षित तथा अभिरम्य है। यहां से सेना, जल एवं स्थल मार्ग से शीघ्रतापूर्वक काश्मीर के सीमान्त या किसी स्थान जोजिला, लार, बनिहाल, श्रीनगर, वारहमूला, गुरेज आदि स्थानो पर पहुच सकती है। ललितादित्य जैसे महान सेनानी की दृष्टि यदि इस स्थानपर पडी हो तो आश्चर्य नही है। यह उनकी सामरिक दूरदर्शिता का प्रतीत है। कोई भी आक्रामक सेना दस मील दूर से दृष्टिगत हो सकती है। ऊंचाई पर होने के कारण प्राकृतिक दुर्ग के समान शत्रु से शक्ति मे प्राथमिकता प्राप्त हो जाती है। राजा हर्ष एवं उच्चल के संघर्ष मे उच्चल ने इस स्थान पर अपना मोर्चा लगाया था (रा० : ७ : १३२६)।

ढिल्ली अर्थात दिल्ली के समान ललितादित्य ने राजधानी बनाने की नीव शुभमुहूर्त मे नहीं डाली थी। यहाँ के ध्वंसावशेषो को देखकर आंसू बहाना पडता है। परिहासपुर पर जो कुछ बीती थी, भगवान न करे दूसरे नगर पर बीते। काश्मीर इतिहास की ये अत्यन्त दुःखान्त घटनायें हैं। यहां आज एक भी घर आबाद नहीं है। कोई चिराग भी जलाने वाला नहीं है। राजा ललितादित्य ने राजधानी बनाया और उसका पुत्र वज्रादित्य वहाँ से राजधानी उठा ले गया। (रा० : ४ · ३९५) राजा अवन्ति वर्मा काल मे वितस्ता-सिन्धु संगम सुय्य के प्रयास से हटकर शादीपुर चला गया।

नगर का नव परिवहन (रा० : ५ · ९७-९९) तथा संगम समीपस्थ स्थित होने का धार्मिक महत्व भी समाप्त हो गया।

ललितादित्य के १५० वर्ष पश्चात् शंकर वर्मा काश्मीर का राजा हुआ। (रा० : ५ : १६१) उसने नवीन राजधानी पाटन मे स्थापित की। परिहासपुर मे लगे पत्थरो को नवनिर्माण के लिये उठा ले गया। राज विहार स्थित भगवान बुद्ध की ठोस प्रतिमा राजा हर्ष उठा ले गया। उसे गलाकर मुद्रा टंकणित करायी। (रा. ७ : १०९७) उच्चल स्थान मे शरण लिया है। शका कर राजा हर्ष ने विहार मे आग लगा दी। (रा० : ७ १३४८-१३४७) परिहास केशव की रजत प्रतिमा हर्ष उठा ले गया। उच्चल ने राजा होने पर पुनः प्रतिमा स्थापित की। (रा० : ८ : ७९) सिकन्दर बुतशिकन के समय वहाँ के सभी मन्दिर, विहार एवं भवन धराशायी कर दिये गये। लगभग ६०० वर्षों से स्थानीय ग्रामीण, सुलतान एवं राजा लोग वहां का पत्थर एवं सामग्री अबतक ढोते रहे है। जो कुछ बचा था, उसे सडक बनाने के सरकारी ठेकेदार ने पत्थरो को तोड कर गिट्टी बना डाली।

श्री स्तीन प्रथम समय परिहासपुर सितम्बर सन् १८९२ ई० मे आये थे। मई सन् १८९६ मे दूसरी बार वहाँ की यात्रा की थी। उस समय उन्होंने देखा कि उन्होंने प्रथम यात्रा मे जिन अलंकृत शिलाखण्डो तथा खण्डित मूर्तियो को देखा था वे गायब थे। परिहासपुर—श्रीनगर सडक के ब्याज से ठीकेदार ने सबको तोडकर गिट्टी बना डाली थी। यह सडक परसपोर उद्र के पश्चिम पार्श्व से जाती है।

श्री स्तीन को यहाँ की दुरवस्था देखकर दुःख हुआ। तत्कालीन ब्रिटिश रेजिडेण्ट श्री कर्नल सर अलवर्ट तवलोट ने स्तीन के सुझाव पर राज्य पर दबाव दिया। परिहासपुर के शिलाखण्डो का उपयोग गिट्टी बनाने के काम मे न लाया जाय। डोगरा राजा ने उनकी बात स्वीकार कर पत्थरो का तोडना बन्द करवा दिया।

मैं जिस समय इस स्थान पर पहुँचा तो मुझे भी ऐसा ही लगा। परिहासपुर के समीपवर्ती पर्वतो पर इमारती काम के पत्थर नही मिलते। वे उदर मात्र हैं। समीपवर्ती जनता, जियारतो, मसजिदो, मजारो तथा मकान बनाने के लिये पत्थर उठा ले जाती है। मैंने ध्वंसावशेष 'ए' के पूर्व ओर तोडे हुए पत्थरो का लगा विशाल चट्टा देखा। स्तीन ने जो कुछ लगभग ८७ वर्ष पूर्व देखा था उस स्थिति एव आज मे परिवर्तन हो गया है। मैं श्री स्तीन के वर्णन को पढकर आया था। यहा आनेपर दुःख ही हुआ। निराशा हुई। वैसी ही निराशा हुई जैसी सन् १९७० मे वैशाली को देखकर हुई थी। वैशाली-वैभव का बहुत वर्णन पढ़ा था। स्थान पर इस समय नाम के लिये भी कुछ नही है।

इस समय स्थान भारतीय पुरातत्व विभाग के नियन्त्रण मे आ गया है। एक चौकीदार रहता है। किन्तु उसे यहाँ रहने के लिये स्थान नहीं है। वह गाँव मे मीलो दूर रहता है। गाँव वाले अवसर पाते ही जो कुछ यहाँ से मिलता है, उठा ले जाते हैं। तथापि कुछ स्थिति मे सुधार हुआ है।

प्रश्न उपस्थित होता है। ए० बी० सी० डी० ई० एफ० ध्वंसावशेषो का नाम क्या था। कल्हण वर्णित परिहासपुर, केशव, मुक्ताकेशव, महावराह, गोवर्धनधर तथा राजविहार उनमे कौन है? गत ६ शताब्दियो से यहाँ केवल मुसलिम आबादी है। स्थानीय लोग जानते भी नहीं कि यहाँ किसका मन्दिर था? कल्हण की जन्मभूमि परिहासपुर की दुर्दशा देखकर किसका हृदय दुःखी न होगा।

गुरदन शब्द गोवर्धनधर का अपभ्रंश है। गुरदन उदर पर स्थित मन्दिर का ध्वंसावशेष गोवर्धनधर है। ललितादित्य ने पाँच देवस्थानों का निर्माण किया था। वे विष्णु मन्दिर थे। गोवर्धनधर उनमे एक है। यह स्थान स्तीन के मान चित्र में अक्षर 'ए' से दर्शित किया गया है (रा० : ४ : १९८)।

कल्हण ने वर्णन किया है। यहाँ पर ५४ हाथ ऊँचा गरुडध्वज था (रा० ४ २००)। दक्षिण भारत तथा नेपाल मे विष्णु मन्दिरो मे भगवान की मूर्ति के सम्मुख गरुडस्तम्भ लगा मिलता है। वह अन्तराल तथा तोरण द्वार के मध्य स्थापित किये जाते हैं। उस पर करबद्ध वज्र आसनस्थ गरुड अथवा देवता के उपासक एव वाहनो किंवा भक्तो की प्रतिमा बनी रहती है। नेपाल मे राजा पृथ्वीनारायण शाह की प्रतिमा स्तम्भ पर करबद्ध मन्दिर मे मैंने देखी है।

वाक़याते काश्मीरी के लेखक श्री मुहम्मद आज़िम (सन् १७२७ ई०) तथा तारीखे काश्मीर के रचनाकार श्री नारायण कौल (सन् १८३५ ई०) ने ललितादित्य के राज्य प्रसग मे परिहासपुर का उल्लेख किया है। परिहासपुर की स्थापना ललितादित्य (सन् ७०१-७३७ ई०) ने की थी। उक्त दोनो लेखको के समय परिहासपुर का कुछ अच्छा रूप उपस्थित रहा होगा। उक्त शिलास्तम्भ का खण्डित खण्ड उस समय वर्तमान था। इस समय यह स्तम्भ किंवा उसके खण्ड का अस्तित्व भी नहीं दिखायी पडता।

कल्हण ने गोवर्धनधर का वर्णन करते हुए (रा० ४ १९९) ध्वजाग्र पर दिति के पुत्र अरि गरुड का वर्णन किया है। गोवर्धनधर का मन्दिर वही है, जहाँ शताब्दियो पूर्व आज़म तथा नारायण कौल को भग्न गरुडस्तम्भ मिला था।

परिहास केशव की रजत मुक्ता, केशव की सुवर्ण, महावराह की सुवर्ण आयुध युक्त, गोवर्धन की रजत तथा बृहद बुद्ध की ताम्र प्रतिमाये थी। मन्दिर ए० बी० सी० एक पंक्ति मे है। डी० तथा ई० एक-साथ लगे मन्दिरो के ध्वसावशेष हैं। ध्वसावशेष ५ हैं, किन्तु देवताओ मे चार का नाम मिलता है। पाँचवा राज विहार हो सकता है।

श्रीनगर प्रतापसिंह सग्रहालय मे परिहासपुर की प्राप्त मूर्तियो का एक सग्रह है।

दोनो ही मन्दिर 'डी' तथा 'ई' मे केन्द्रीय प्रासाद के अतिरिक्त चौकोर प्राकार भी था। वह सब टूट कर पत्थरो के अनियमित ढेर मात्र रह गये हैं। प्राकार का आकार दिखायी पडता है। इस मन्दिरो के विशाल आकार का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि उनके पश्चिम स्थित स्तम्भावली २७५ फुट वर्गाकार है। दूसरा आयताकार २३० फुट लम्बा तथा १७० फुट चौडा है। मार्तण्ड से भी यह विशाल इस दृष्टि से है कि मार्तण्ड केवल २०० फुट लम्बा तथा १४२ फुट चौडा है। इनके उत्तर पश्चिम तथा उदर के उत्तरीय छोर तीन 'ए' 'बी' 'सी' निर्माण उनसे भी बडे हैं। सभी गिरे-पडे पत्थर के ढोको के सग्रह मात्र हैं।

उदर के तट से उत्तर से दक्षिण एक पंक्ति मे उनमे सबसे बडा धुर उत्तरीय ध्वसावशेष 'ए' है। वह इस समय एक विशाल गोलाकार खण्डहर और पत्थरो का ढेर मालूम पडता है। इस टीले का व्यास लगभग ३०० फुट होगा। इसका प्राकार ४१० फुट वर्गाकार है। इसके दक्षिण एव आयताकार ध्वसावशेष 'बी' है। यह १५२ फुट लम्बा तथा १४० फुट चौडा है। इसके मध्य मे देवस्थान नहीं बना है। धुर दक्षिण मे तीसरा ध्वसावशेष 'सी' है। यह २४० फुट वर्गाकार है। इसके मध्य मे एक २० फुट ऊँचा पत्थरो का टीला खण्डित मन्दिर का बन गया है। उनसे पता नहीं चलता कि किन ध्वसावशेषों से वे प्राप्त हुई हैं। बौद्ध मूर्तियाँ अत्यधिक मिली हैं। परिहासपुर मे बौद्ध मन्दिर किंवा विहार का निर्माण हुआ था। ध्वसावशेष 'डी' तथा 'ई' बौद्धदेवस्थान नहीं हो सकते।

कल्हण ने वर्णन क्रम मे परिहास केशव, मुक्ता केशव, महावाराह, गोवर्धनधर तथा राजविहार है। वर्णनक्रम तत्कालीन मन्दिरो की प्रतिमाओ के अनुसार होना चाहिए। यही वर्णन शैली भी है। ऐसी

परिस्थिति में तर्कसम्मत यही मालूम पड़ता है कि परिहास केशव, मुक्ता केशव एवं महावाराह का देवस्थान ध्वंसावशेष क्रम से 'ए' 'बी' तथा 'सी' है। कल्हण के अनुसार पाँचो निर्माण समान थे। सभी निर्माण केवल 'ए' के अतिरिक्त चौकोर हैं। निर्माण 'ए' प्राकार वेष्ठित है। वह मुकुलित पद्माकार है। बाहर से देखने पर चौकोर प्रकट होता है।

मुक्ता केशव की स्वर्ण प्रतिमा ८४ हजार तोला की थी। परिहास केशव की रजत प्रतिमा ८४ हजार पल तथा बृहद् बुद्ध की प्रतिमा ८४ हजार प्रस्थ की थी।

काश्मीर में ४ तोला का एक पल तथा १६ पल का एक प्रस्थ माना जाता था। एक सेर बीस पल का होता था। वाराह की प्रतिमा के विषय मे केवल यह उल्लेख मिलता है कि प्रतिमा पर कांचन कवच था।

मैं समझता हूँ कि परिहास केशव, मुक्ता केशव तथा बृहद् बुद्ध की प्रतिमा ध्वंसावशेषो 'ए' 'बी' 'सी' मे स्थापित थी। यहा वाराह की मूर्ति 'ई' तथा 'डी' के ध्वसावशेषो मे किसी एक मे थी। यदि प्रतिमाओ के मूल्य के आधारपर मूर्ति के क्रमो का अनुमान लगाया जाय तो ताम्र प्रतिमा महाबुद्ध की प्रथम अर्थात 'ए', परिहास केशव की रजत प्रतिमा 'बी' मध्यवर्ती एवं मुक्ता केशव की स्वर्ण प्रतिमा 'सी' अर्थात् तीनो ध्वंसावशेषों के धुर दक्षिण होनी चाहिए। इस प्रकार धुर उत्तरी बृहद्, मध्यवर्ती परिहास केशव तथा मुक्ता केशव का धुर दक्षिणी होने का सम्भाव्य अनुमान किया जाता है। भगवान् बुद्ध का अधिष्ठान एवं सिंहासन प्रायः स्तूप मुकलित कमल शैली पर बनाये जाते है। धुर उत्तरी निर्माण बाहर से चौकोर परन्तु अन्दर मुकुलित कमलाकार है अतएव वहाँ बृहद् बुद्ध की प्रतिमा थी। परिहास केशव के नाम पर नगर का नाम रखा गया था अतएव इस महत्व के कारण प्रतिमा का मध्य मे होना उचित है।

एक मत है कि मध्यवर्ती मन्दिर राजविहार है। मेरा मत इसके सर्वथा विपरीत है। मन्दिर 'बी' तथा 'सी' का तोरणद्वार पूर्वाभिमुख है। गर्भगृह प्रवेश द्वार भी पूर्वाभिमुख है। विष्णु मन्दिर का द्वार उत्तर तथा पूर्व ओर शिव का दक्षिण तथा पश्चिम रखा जाता है, अतएव उक्त दोनो मन्दिर केशव अर्थात् विष्णु के हैं।

बृहद् बुद्ध का ध्वंसावशेष 'ए' सबसे विशाल है। भूमितल से ३० फुट ऊँचा है। काश्मीर मे उच्कर स्थित स्तूप का मुकुलित कमल शैली पर निर्माण किया गया है। इसके चारो ओर से सीढ़ियाँ भूमि से उठकर गर्भगृह तक गयी हैं। रचना वृत्ताकार है। केवल सोपानो के कारण अष्टकोणीय दिखाई देता है। इसका व्यास ३०० फुट होगा। इस विशाल निर्माण के चारो ओर वर्गाकार ४१० फुट प्राकार है। प्रत्येक दिशा मे प्राकार एव मन्दिर के मध्य ११० फुट का अन्तर है। दो द्वारो के मध्य मुकुलित कमल की तीन पखुड़ियाँ पड़ती हैं। चारो ओर की कुल पखुड़िया मिला कर १२ हैं। प्रत्येक द्वार पर भूमितल से कुछ उठकर दोनो पार्श्वों मे मुक्त आसनस्थ ऊर्ध्वबाहु मूर्तियाँ लगी थीं। इस प्रकार की एक मूर्ति मुझे पूर्व सोपान के पार्श्व तथा दूसरी पश्चिमी सोपान के पास दिखाई दी। मूर्तियाँ चौकूटी शिला पर खुदी हैं। वे सोपानो के पार्श्ववर्ती दीवाल मे लगा दी गयी थी। उन्हे खण्डित कर उनके स्थान से निकाल लिया गया था। बर्मा तथा थाईलैण्ड की बौद्ध रचना मे इस शैली का अनुकरण किया गया है।

इस विशाल ध्वंसावशेष के उत्तर तरफ तीन पत्थरो को तोड़कर छोटे बनाये गये बड़े चट्टे दिखाई दिये। ये इस मन्दिर के विशाल शिलाखण्डो को तोड़कर बनाये गये थे। यह प्रत्येक चट्टा मध्यवर्ती मन्दिर 'बी' के आकार से भी बड़ा था। भूमि से तीन फुट ऊँचा था।

मन्दिर 'बी' तथा 'सी' एक सिधाई मे हैं। 'ए' कुछ आगे निकला बना है। इस प्रकार दो मन्दिर

एक पंक्ति मे तथा 'ए' पंक्ति से बाहर है। 'ए' ध्वंसावशेष के गर्भगृह के शिलाखण्ड ऊबड़-खाबड़ पड़े हैं। शिलाराशि के ऊपर एक साढे ८ फुट वर्गाकार तथा साढे चार फुट मोटा विशाल अधिष्ठान पूर्ववत पडा है। इसके मध्य मे पौने २ बित्ता गहरा तथा २ बित्ता वृत्ताकार छिद्र है। यह विशाल शिलाखण्ड यहा किस प्रकार लाकर ऊपर उठाकर रखा गया होगा देखकर तत्कालीन काश्मीर के निर्माणकर्ताओ की बुद्धि तथा कौशल की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

बृहद् बुद्ध की मूर्ति का गगनचुम्बी होना कल्हण ने लिखा है (रा० ४ : २०३)। उसने दूसरे श्लोक मे लिखा है कि राजा ने राजविहार मे चतु शाला तथा चैत्य निर्माण कराया था (रा० ४ : २००)। गोवर्धन-धर वर्णन के पश्चात् राजविहार का वर्णन कल्हण ने किया है। उसमे बृहच्चतु शाला, बृहच्चैत तथा बृहद् जिन-मूर्ति का निर्माण राजा ने कराया था। कल्हण ५ निर्माणो का उल्लेख करता है, परन्तु ध्वंसावशेष ६ है।

कल्हण के वर्णन-क्रम मे बृहद्बुद्ध, परिहास केशव तथा मुक्ता केशव उत्तर से दक्षिण एक पंक्ति मे है। बृहद् बुद्ध की मूर्ति लगभग १६८० मन की रही होगी। उक्त पत्थर का अधिष्ठान ध्वंसावशेष 'ए' है। यह मूर्ति उसी विशाल अधिष्ठान पर रखी गयी थी, क्योकि उसके बीच का छिद्र इस बात का प्रमाण है कि मूर्ति ढली हुई थी और हिलने डुलने अथवा न गिरने के लिये, एक भाग उस छिद्र मे बैठा दिया गया होगा। गगनचुम्बी मूर्ति इसलिये भी कल्हण ने लिखी है कि मूर्ति किसी छत अथवा गुम्बज के नीचे नही, बल्कि आकाश मे खुली थी और अपनी भव्यता तथा विशालता के कारण बहुत ऊँची दूर से दिखायी देती थी। बुद्ध की विशाल मूर्ति-रखने की यही शैली जापान, चीन, थाइलैण्ड, कम्बोडिया तथा बर्मा मे है।

बृहद् बुद्ध की मूर्ति सिंहासन पर थी। बुद्ध का आसन कमलासन है। अधिष्ठान किंवा सिंहासन की भी एक शैली प्रचलित थी और है। मुझे इस देवस्थान के प्रांगण मे कुछ पत्थर मिले। वे अर्ध गोलाकार थे, वे अधिष्ठान के पत्थर थे, उन पर धारियाँ बनी हैं। कुछ पद्माकार शिला खण्ड थ, पद्मधारियो की शैली पुरातन बौद्ध अधिष्ठान शैली है। इसी के ऊपर चौकोर उक्त ८½ फुट वाला शिलाखण्ड था। उस पर भगवान की पद्मासीन विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित थी।

विष्णु मन्दिर मे आसनस्थ प्रतिमा स्थापन की परम्परा नही है। विष्णु मूर्ति प्राय खडी मिलती है। लक्ष्मी के साथ बैठी भी विष्णु मूर्ति मिलती है परन्तु उसम दक्षिण पद प्राय आसन के नीचे तक रहता है। अतएव यह ध्वंसावशेष विष्णु मन्दिर किसी भी अवस्था मे नही हो सकता। बृहद् बुद्ध की विशाल प्रतिमा का यह स्थान था। चारो दिशाओं मे भूमि से उठती ऊपर आती सोपाने इस बात का प्रमाण है कि मूर्ति चारो ओर से खुली थी। सोपानो से चढकर मूर्ति के सिंहासन किंवा पादमूल म पहुचा जा सकता था। किसी दिशा से भी लोग उस मूर्ति के पादस्थान तक पूजा हेतु पहुँच सकते थे।

राजविहार इस विशाल मूर्ति के चारो ओर प्राकार म सटा बनाया गया था। विहार के प्रांगण मध्य बुद्ध मूर्ति स्थापित करने की परम्परा है। सारनाथ, वाराणसी म चीनी बुद्ध मन्दिर इसी शैली पर बनाया गया है। यह विहार ४१० फुट लम्बा और उतना ही चौडा वर्गाकार था। इस मन्दिर के दक्षिण परिहास केशव मन्दिर जिसमे २६ कोठरियाँ बनी थी वह केवल कोठरिया के कारण विहार नही हो सकता। कल्हण स्पष्ट कहता है कि परिहास केशव तथा मुक्ता केशव के मन्दिर थ। ऐसी स्थिति म यदि बृहद् बुद्ध प्राकार सहित राजविहार न माना जाय तो उसे रचना 'डी' तथा 'ई' म ही खोजना होगा।

श्री स्तीन के मानचित्र मे चित्रित 'सी' निर्माण परिहास केशव का मन्दिर हो सकता है। कतिपय

विद्वानो ने उसे राजविहार की संज्ञा दी है। यह समीचीन नही है। यदि निर्माण 'ए' बृहद् बुद्धस्थान है तो राजविहार भी बौद्ध रचना होगी। इस प्रकार कल्हण वर्णित ५ महान निर्माणो मे केवल २ ही विष्णु मन्दिर ठहरेंगे। किन्तु कल्हण स्पष्ट परिहास केशव, मुक्ता केशव, महावाराह तथा गोवर्धनधर, चार विष्णु विशाल निर्माणो का उल्लेख करता है। यदि निर्माण 'बी' परिहास केशव का मन्दिर न होकर राजविहार है तो निर्माण 'डी' तथा 'ई' मे परिहास केशव अथवा मुक्ता केशव का मन्दिर ढूँढना होगा। वाराह का मन्दिर 'सी' 'डी' तथा 'ई' मे एक होना चाहिए। किन्तु कल्हण के वर्णन-क्रम मे 'महावाराह' तथा 'गोवर्धनधर' का नाम एक साथ दिया गया है। इसी प्रकार परिहास केशव एव मुक्ता केशव का वर्णन-क्रम एकसाथ आता है। इन दोनो मन्दिरो को भी एक साथ होना चाहिए। इस तर्क के आधार पर 'डी' तथा 'ई' अथवा 'बी' तथा 'सी' दो समूहो मे से एक परिहास केशव एवं मुक्ता केशव का मन्दिर होगा।

परिहासपुर का नामकरण परिहास केशव नाम पर किया गया है। वही नगर देवता थे। सर्वप्रथम उन्ही का मन्दिर निर्माण हुआ होगा। कल्हण ने परिहासपुर का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम परिहास केशव का नाम लिया है। परिहास केशव का मन्दिर 'बी' मान लें तो वह आकार मे अन्य निर्माणो से छोटा पडता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि मन्दिर बडा होना चाहिए। इसका समाधान सरल है। सर्वप्रथम परिहास केशव का मन्दिर निर्माण किया गया होगा। तत्पश्चात विशाल मन्दिर की कल्पना की गयी होगी। अन्य मन्दिर एक दूसरे से विशाल बनते चले गये। परिहास केशव का मन्दिर 'बी' मान लेते है तो उसके उत्तर एव दक्षिण दोनो 'ए' तथा 'सी' विशाल बडे निर्माण है। एक ही दिशा मे होने पर भी सीधी एक रेखा पंक्ति मे नही हैं। इस बात का प्रमाण है कि तीनो मन्दिर विभिन्न समयो मे बने थे। एक साथ किसी एक परिकल्पना के परिणाम नही है।

परिहास केशव का स्थान 'बी' वर्गाकार नही है, यह १५२ फुट लम्बा तथा १४० फुट चौडा है, द्वार पूर्व दिशा की ओर है। द्वार के ठीक सम्मुख पश्चिम की दीवाल मे चौकोर मन्दिर का अधिष्ठान है। इस मन्दिर के बाँए पार्श्व मे पत्थर की विशाल जलप्रणाली है। इस प्रणाली का जल प्रागण को पार करता उत्तर दिशावर्ती दीवाल से बाहर निकल गया है। बाहर भी पत्थर की प्रणाली बनी है। उत्तर की दीवाल मे कुछ पूर्व हटकर एक दूसरी जलनाली भूमि से होती बाहर जाती है। इस प्रणाली द्वारा दीवाल के पास बने किसी कक्ष मे स्थित देवमूर्ति के चरणामृत बहने का साधन था। इन प्रणालियो का होना इस बात का प्रमाण है कि यह स्थान विहार नही बल्कि देवमन्दिर था। अर्चना, पूजन, स्नान तथा चरणामृत प्राप्त करने की परम्परा बौद्ध मन्दिरो मे नही है।

इसे विहार सम्भवत. इसलिये कहा गया है कि प्रागण के बाह्य प्राकार से सट कर कोठरियाँ बनी है। कोठरियो तथा प्रागण की चौकोर दीवाल का ध्वसावशेष हैं। उनसे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह बरामदा था। मठो तथा विहारों मे कोठरिया के सम्मुख बरामदा बनाने की पुरानी शैली है।

पूर्व दिशा की दीवाल के मध्य मे बाहर से प्रागण मे आने का तोरणद्वार बना है। उसके दोनो पार्श्वों मे तीन-तीन कोठरिया बनी हैं। दक्षिण तथा उत्तर दिशा के प्राकार से सटकर भी ६ कोठरियां दोनो ओर हैं। पृष्ठभाग अर्थात् पश्चिमी प्राकार से सटा मध्य म चौकोर मन्दिर का आकार वर्तमान है। इस मन्दिर के दोनो पार्श्वों मे भी तीन-तीन कोठरिया है। स्थापत्य कला के सौन्दर्य एवं सगरूपता की दृष्टि से भुवन-रचना शास्त्रीय मानी जायगी। द्वार के ठीक सामने मन्दिर हैं। इसमे रखी प्रतिमा का दर्शन प्रागण के बाहर वाले प्राकार तोरणद्वार से भी किया जा सकता है। इस प्रकार इस मन्दिर मे २४ कोठरियां हैं। यह २४ विष्णु

अवतार का प्रतीक हैं। सम्भव है उनमे २४ अवतारो की प्रतिमाये रखी गयी होगी। कोठरियो की संख्या २६ नही हो सकती जैसा स्तीन ने लिखा है। उन्होने मन्दिर को भी कोठरियो मे गिन लिया है।

पश्चिम दीवाल के मध्यवर्ती चौकोर बडी कोठरी का निर्माण विष्णु मन्दिर स्थान के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता। बौद्ध विहारो की यह शैली नही है। निश्चय ही इसमे परिहास केशव की मूर्ति थी। विष्णु की प्रतिमा का शृङ्गार किया जाता है, राजभोग लगता है, झाकी ली जाती है। इसके लिये मन्दिर के द्वार पर परदा लगाने की प्रथा अब भी प्रचलित है। बुद्ध मन्दिर मे समय-समय पर झाकी, शृङ्गार, रागभोग की प्रथा नही चलती। भगवान बुद्ध भी विष्णु के २४ अवतारो मे एक अवतार हैं। प्राकारस्थ २४ कोठरियो मे किसी एक मे उनकी भी प्रतिमा रह सकती है।

इस मन्दिर के उत्तर-पूर्व कोण पर मैंने शिलाखण्डो का एक ढूहा देखा। वह किसी देवस्थान का ध्वसावशेष है। विशाल मन्दिरो के प्रागण मे भी कालान्तर मे लोग छोटे मन्दिर पुण्यकार्य समझकर बना देते थे। सम्भव है यह उसी प्रकार का लघु मन्दिर रहा होगा। यहाँ खनन कार्य होने पर वास्तविकता पर प्रकाश पड सकता है।

मन्दिर की शैली मे कोई विशेषता नही है। मन्दिर समतल है। मुझे यहा गरुड का स्तम्भ तथा स्थान नही दिखाई पडा। इसकी सादगी के कारण कह सकते हैं कि परिहासपुर का प्रथम निर्माण है। कालान्तर मे अन्य भव्य तथा विशाल निर्माण की रचना क्रमश: होती गयी। श्री स्तीन ने निश्चयात्मक स्वर मे नही कहा है कि यह मन्दिर नही विहार था।

इस मन्दिर के दक्षिण मुक्ता केशव का मन्दिर श्री स्तीन द्वारा चिह्नित 'सी' निर्माण है। श्रीस्तीन ने 'ए' 'बी' 'सी' किसी ध्वंसावशेष के विषय मे निश्चयात्मक रूप से नही लिखा है कि कौन मन्दिर किसका था। श्रीस्तीन के सहायक उस समय काश्मीर के अनेक गण्यमान्य पण्डित तथा पुरातत्त्ववेत्ता थे। इससे प्रकट होता है कि उस समय भी इन मन्दिरो के विषय मे किसी प्रकार की जनश्रुति नही थी कि कौन मन्दिर किसका है। 'सी' निर्माण अन्य निर्माणो की अपेक्षा विशाल है। 'बी' निर्माण से दुगुना होगा। उसमे स्वर्ण प्रतिमा थी। स्वर्ण सदृश ही इसकी सुन्दर भुवन-रचना भी है।

मन्दिर २४० फुट वर्गाकार है। वह बीस फुट इस समय ऊँचा होगा। इसमे एक के पश्चात् तीन प्राकार हैं। एक के पश्चात् दूसरा वर्गाकार, दूसरे के पश्चात् तीसरा और तीसरे के पश्चात चौथा वर्गाकार प्राकार का आकार मात्र शेष रह गया है। चौथे खण्ड की दीवाल के पृष्ठभाग अर्थात पश्चिमी दीवाल से सटकर भगवान का चौखूटा सिंहासन किंवा अधिष्ठान है। मन्दिर का मुख पूर्व है अतएव विष्णु मन्दिर होने मे किसी को सन्देह नही हो सकता।

मन्दिर के चारो खण्ड का द्वार पूर्व की ओर एक सीध मे है। सबसे बाहरी वाले द्वार के बाहर खडा व्यक्ति भगवान का दर्शन कर सकता था। मन्दिर की बाहरी सीढ़ियाँ सुरक्षित हैं। उनकी भव्यता मन्दिर की भव्यता एव विशालता प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है। इन सीढ़ियो के सम्मुख दीवाल मे मूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिर की सबसे बाहरी दिवाल पर चौकोर पत्थर पर मूर्तियां बनी हैं। उन्हें तोडकर विकृत कर दिया गया है। मूर्तियों को देखने से तत्कालीन शिरोवेश-भूषा की झलक मिलती है। इस मन्दिर में विशाल शिलाखण्ड लगाये गये हैं। विशालता के कारण उन्हें हटाने तथा तोडने मे ग्रामीण अथवा अन्य लोग सफल नहीं हुए हैं। कुछ अलकृत शिलाखण्ड तथा खण्डित मूर्तियाँ यत्र-तत्र पडी हैं। यहाँ मुझे एक पत्थर मिला जिस पर कुछ लिखा था। मैं इसे पढ़ नहीं सका, उसकी प्रतिलिपि उतार ली। किन्तु न तो कोई पढ़ सका

और न किसी ने इस पर प्रकाश डाला कि यह क्या है ? यह अक्षर तुल्य एक भग्नशिला खण्ड पर मुझे मिला था।

बृहद् बुद्ध रचना 'ए' मार्तण्ड मन्दिर से आकार मे बडी है। रचना 'बी' परिहास केशव की रचना मुक्ता केशव की अपेक्षा छोटी है। ग्रामीणो मे जनश्रुति है। यहाँ का घनघनाता घण्टा बारहमूला तक सुनायी पडता था। मन्दिर के शिखर बारहमूला तक दिखायी पडते थे। उक्त तीनो मन्दिरो की विशालता उनके आकार से प्रकट होती है।

कल्हण वर्णित भगवान वाराह तथा गोवर्धनधर मन्दिर का स्थान निश्चय करना शेष रह गया है। 'ए' 'बी' 'सी' मन्दिर समूह से द्वितीय मन्दिर समूह 'डी' तथा 'ई' पश्चिम दक्षिण है। दिवर ग्राम के पश्चिम है। यहाँ नीव के कुछ उभडे शिलाखण्ड है। उनसे निर्माण के आकार का ज्ञान होता है। श्री स्तीन को निर्माण 'डी' के स्थान पर बडे शिलाखण्डो का ढेर लगा दिखायी दिया था। दीवाल की नीवें बिगड चुकी थी। कितने ही स्थानो पर आकार मात्र शेष रह गया था।

मन्दिर आयताकार है। उत्तर दक्षिण २३० फुट लम्बा तथा पूरब पश्चिम १७० फुट चौडा था। मार्तण्ड तथा परिहास केशव 'बी' से विस्तार मे बडा है।

निर्माण 'ई' २७५ फुट वर्गाकार अर्थात् २७५ फुट लम्बा तथा २७५ फुट चौडा है। यह मन्दिर बृहद् बुद्ध रचना 'ए' से केवल २५ फुट कम तथा अन्य सभी ध्वंसावशेषो से बडा है। विशालता एवं क्षेत्र-फल की दृष्टि से द्वितीय स्थान रखता है। मार्तण्ड का मन्दिर २२० फुट लम्बा तथा १४२ फुट चौडा आयताकार है। इससे छोटा है। इसकी विशालता देखकर अनुमान किया जा सकता है कि महावाराह का काचन कवचधारी प्रतिमा युक्त मन्दिर यही रहा होगा।

महावाराह के सम्बन्ध मे अनेक जनश्रुतिया काश्मीर मे प्रचलित हैं। बारहमूला महावाराह का स्थान है। बारहमूला प्राचीन काल मे काश्मीर मण्डल का सरल प्रवेश द्वार था और सन् १९४७ के पूर्व तक था। वाराहमूला से वितस्ता काश्मीर मण्डल से विदा लेकर सवेग समुद्र से मिलने चलती है। यदि वारहमूला के समीप पर्वत काट कर वितस्ता का मार्ग न बनाया गया होता तो काश्मीर मण्डल आज भी सतीसर होता। वाराहमूला काश्मीर के इतिहास मे प्रमुख स्थान रखता है। 'डी' तथा 'ई' निर्माण एक साथ की रचनायें नही है। यदि उनकी परिकल्पना एक साथ की गयी होती तो वे एक पक्ति मे होते। एक के पश्चात दूसरे की रचना कालान्तर मे हुई है। 'डी' तथा 'ई' की भुवन-रचना मे साम्य नही है। दोनो के प्राकार अर्थात् 'डी' के प्राकार का पश्चिम-दक्षिण कोण 'ई' के उत्तर-पूर्व प्राकार के कोण के समीप है। उक्त दोनो रचनाओ मे एक वाराह तथा दूसरा राजविहार हो सकता है।

श्री स्तीन के स्तीनमानचित्र मे गोवर्धनधर का स्थान परिहासपुर करेवा के धुर दक्षिण दिखाया गया है। गोवर्धनधर इसे गुरन उद्र के नाम से श्री स्तीन ने नाम साम्यता के आधार पर इसे निश्चित किया है। यहा की रचना 'एफ' अक्षर से दिखायी गयी है। इस स्थान के दक्षिण पंजनोर नम्बल है। 'एफ' स्थान का आकार बिल्कुल काठियावाड जैसा लगता है। पंजनोर नम्बल तट पर है। जल भरने पर यह स्थान आज से हजारो वर्ष पूर्व समुद्र जैसा लगता रहा होगा। निर्माण केवल १५० फुट वर्गाकार अर्थात् जितना लम्बा है उतना ही चौडा है। रचना का आकार मात्र नीवो के पत्थरो के कारण दिखायी पड़ता है। इसमे भी विशाल शिलाखण्ड लगे हैं। कल्हण के अनुसार गोवर्धनधर मे रजत प्रतिमा थी। परिहासपुर मे परिहास केशव तथा गोवर्धनधर की प्रतिमायें भी रजत की थी। इस रचना के दक्षिण एक पत्थरो का टीला-सा है।

श्री स्तीन ने इसे स्तूप होने का अनुमान किया है। मेरी भी प्रतिक्रिया यही हुई है। यह गोवर्धनधर का मन्दिर नहीं बल्कि राजविहार था। कल्हण ने चैत्य तथा राजविहार निर्माण का उल्लेख किया है। स्तूप तथा चैत्य वृत्ताकार होते हैं। ये प्राय विहार के बाहर बनाये जाते हैं। यदि वर्गाकार स्थान राजविहार मान लिया जाय तो इसे चैत्य किंवा स्तूप मानने की सम्भावना की जा सकती है। गुरदन उद्र इस खण्ड का नाम प्रसिद्ध है उसके आधार पर इसे गोवर्धनधर मान लेना ठीक न होगा। इसके पश्चिम एक गहरा स्थान मिलता है। यह सम्भवत प्राचीन काल मे सरोवर रहा होगा। बौद्ध स्थानो मे प्राय विशाल निर्माणो के समीप सरोवर बने देखे गये है। सारनाथ, वैशाली आदि इसके उदाहरण हैं। यदि रचना 'एफ' राजविहार मान ली जाय तो यह गोलाकार स्थान स्तूप था। इस प्रकार बौद्ध रचना शैली की पूर्णता हो जाती है।

मेरा अनुमान है कि रचना 'एफ' राजविहार तथा उसके दक्षिण स्थित टीला स्तूप है। रचना 'डी' तथा 'ई' वाराह तथा गोवर्धनधर के मन्दिर थे। विष्णु के दोनो अवतार गोवर्धनधर कृष्ण तथा वाराह की रचना तथा उनका देवस्थान एक साथ समीप-समीप रखना तर्कसम्मत प्रतीत होता है। यद्यपि काश्मीर मे बुद्ध तथा विष्णु दोनो की पूजा एव उपासना प्रचलित थी परन्तु दो विष्णु का मन्दिर एक साथ और बुद्ध चैत्य हटकर कुछ दूर बनाना विवेक की तुला पर ठीक उतरता है। विहार निवासस्थान होता है। बृहद् बुद्ध का मन्दिर परिहास केशव के पार्श्व मे था न कि विहार। यह परिहासपुर नगर के धुर दक्षिण एकाकी स्थान में पडता है अतएव निवासस्थान उचित समझ कर यहाँ निर्माण किया गया होगा। उसके दक्षिण का टीला या दूहा निश्चय ही स्तूप तथा चैत्य था। यदि उसे विष्णु मन्दिर गोवर्धनधर का गरुडस्तम्भ मान लें तो वह ठीक नही होता। गरुड या वाहन का स्थान देवता के ठीक सम्मुख होता है। देवता तथा वाहन स्थान मे किसी प्रकार का व्यवधान नही होता। शिव मन्दिर तथा विष्णु मन्दिरो मे नन्दी एव गरुड स्थित करने की यही शैली थी। रचना 'एफ' के दक्षिण मन्दिर प्राकार के बाहर गरुडध्वज किंवा स्तम्भ नही हो सकता। गरुड की ओर ही भगवान का मुख होगा और उसी दिशा म मन्दिर का द्वार होगा। यदि यह मान लिया जाय तो मन्दिर का द्वार दक्षिण दिशा मे पडेगा। दक्षिण दिशा मे विष्णु मन्दिर का द्वार नही हो सकता। वह सर्वदा उत्तर तथा पूर्व होता है। केवल शिव मन्दिर का द्वार दक्षिण तथा पश्चिम होता है। यह निर्विवाद है कि ललितादित्य ने यहाँ शिव मन्दिर की स्थापना नही की थी। बौद्ध विहार अथवा मन्दिर का मुख्य द्वार दक्षिण की ओर भी होता है। बौद्ध मन्दिर सारनाथ तथा चीनी मन्दिर सारनाथ का द्वार भी दक्षिण की ओर ही है। अतएव निर्माण 'एफ' राजविहार स्तूप सहित तथा निर्माण 'डी' एव 'ई' गोवर्धनधर तथा महावाराह के मन्दिर थे। उनमे कौन महावाराह तथा कौन गोवर्धनधर का था, इसे बिना कुछ खनन कार्य हुए निश्चित करना कठिन है।

परिहासपुर से कुछ मूर्तिया मिली हैं। कलात्मक दृष्टि से वे अध्ययन की अपेक्षा करती हैं। श्रीनगर सग्रहालय मे यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ रखी है। मूर्ति 'ए' २ भगवान बुद्ध की प्रतिमा है। एक ही शिलाखण्ड मे निर्मित मूर्तियाँ मिलती हैं। परन्तु यह मूर्ति चार शिलाखण्डो को जोडकर बनायी गयी है। यह शैली एगकोरवाट मूर्तिकला शैली कही जायगी। वहाँ भी बडी से बडी मूर्ति शिलाखण्डो को जोडकर बनायी गयी है। दक्षिण-पूर्व एशिया मे यह कला विकसित है। एक पत्थर के ऊपर दूसरा बिना चूना, गारा के इस प्रकार रखते थे कि वे एकाकार प्रतीत होते थे। दक्षिण पूर्व एशिया मे लोकेश्वर की मूर्तियाँ जो कम्बुज (कम्बोडिया) आदि मे हैं इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। यह मूर्ति इतिहास की एक समस्या का हल कर देती है। काश्मीर को सुदूर दक्षिण-पूर्व एशिया से जोड देती है। पत्थर पर पत्थर बिना चूना-गारा लगाये भुवन रचना दक्षिण पूर्व एशिया मे प्रचलित थी। वहा के सभी स्थापत्यो मे इसका दर्शन मिलता है। काश्मीर की सभी

रचनाये नष्ट कर दी गयी हैं। अतएव निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह शैली काश्मीर म प्रचलित थी या नहीं। वह शैली काश्मीर की थी अथवा दक्षिण पूर्व एशिया की अपनी देन है।

काश्मीरी राजकुमार गुणवर्मा का उल्लेख चीनी सकलन मे मिलता है। गुणवर्मा सम्बन्धी अनेक कहानियाँ तथा गाथायें दक्षिण पूर्व एशिया मे प्रचलित हैं। लोकप्रिय गुणवर्मा राज्य त्याग कर दक्षिण पूर्व एशिया मे बौद्ध धर्म प्रचारार्थ गये थे। सन् ४२४ ई० मे गुणवर्मा चीन गये। वही उनका अवसान ८५ वर्ष की अवस्था मे सन् ४३१ ई० मे हो गया। (दक्षिण-पूर्व एशिया, पृष्ठ २८०) इससे प्रकट होता है, दक्षिण पूर्व एशिया से काश्मीर का सम्बन्ध था। काश्मीर के लिये दक्षिण-पूर्व एशिया अज्ञात स्थान नही था। दोनो देशो म बौद्ध तथा हिन्दूधर्म साथ ही साथ चलते थे। काश्मीर की भी यह परिस्थिति थी। दोनो भूखण्डो म कला आदि का आदान-प्रदान होता रहा है। मिहिरकुल के समय, कल्हण के उल्लेख से पता लगता है कि श्रीलका का वस्त्र काश्मीर जाकर बिकता था। प्रवरसेन ने श्रीलका से स्थापत्यकारो को बुलाया था। यही बात काश्मीर तथा दक्षिण पूर्व एशिया मे हुई होगी।

उक्त मूर्ति के कारण स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीरियो को दक्षिण पूर्व एशिया अथवा दक्षिण-पूर्व एशिया के लोगो को काश्मीर का ज्ञान था। कला एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती रही। इस मूर्ति के कारण पुरानी गाथा की पुष्टि होती है। उसकी सत्यता पर पूर्ण विश्वास के लिये उस पर और प्रकाश डालने के लिये धैर्यपूर्वक गम्भीर अनुसन्धान की आवश्यकता है।

सग्रहालय मे मूर्तियाँ 'ए' ३ तथा ४ बोधिसत्व की दण्डायमान प्रतिमाये हैं। उनके मूर्धा पर मुकुट है, अभय मुद्रा है, हृदयदेश पर श्रीवत्स लक्षण है। इससे स्पष्ट है कि परिहासपुर बौद्ध तथा हिन्दू धर्मस्थानो के शुभ मिलन का परिणाम यह हुआ कि उनसे एक नवीन कला तथा विचार ने जन्म लिया। भगवान बुद्ध विष्णु के अवतार मान लिये गये। उक्त मूर्तियाँ इस मिलन, तत्कालीन विचारधाराओ की प्रतीक है। कला मे बौद्ध तथा हिन्दू दोनो का समन्वय विचारो के साथ कर दिया गया।

मूर्ति 'ए' ७ यक्ष की मूर्ति है। काश्मीर मे उष्कर से प्राप्त मूर्तियो की मुखाकृतियो पर गान्धार-शैली की झलक मिलती है। पण्डरेथन से प्राप्त मूर्ति की मुखाकृति पर गान्धार एव भारतीय मुखाकृति कला की छाया मिलती है।

परिहासपुर मे प्राप्त मूर्तियो का शरीर विन्यास मुख्यत मुखाकृति काश्मीर के उष्कर तथा पण्डरेथन से प्राप्त मूर्तियो से सर्वथा भिन्न है। उन पर पाश्चात्य भारतीय मुखाकृति की अनुहार नही है। उनमे पूर्ण आर्य एव पर्वतीय मुखाकृतियो का रूप झलकता है। प्रतीत होता है कि आर्य एव पर्वतीय जनो के रक्त-मिश्रण प्रभाव के कारण कलाकार ने नवीन कलाशैली का विकास पत्थरो म किया था।

—:o:—

परिशिष्ट—ग

लोहर (लोह) कोट

विल्हण, कल्हण, जोनराज, श्रीवर, शुक सभी इतिहासकारों ने लोहर कोट का उल्लेख किया है। काश्मीर इतिहास मे लोहर कोट की महत्ता पर विस्तृत व्याख्या भी उपस्थित की है।

अल्बेरुनी ने लोहर (लोहूर) का उल्लेख किया है (इण्डिया : २०८, ३१७)। परशियन इतिहासकार लोहर पर कुछ लिखने मे संकोच करते हैं। हिन्दू राज्यकाल मे लोहर भारत का सुदृढ दुर्ग था। उसका इतिहास मेवाडस्थ चित्तौर के इतिहास से कम गौरवशाली नही रहा है। चित्तौर की बिरुदावली एवं गौरव-गाथा को चारणो, भाटो, इतिहास, नाटक एवं उपन्यासकारो ने लिखकर अमर किया है। लोहर की गाथा सोती रही है, उसे किसी ने जगाने का प्रयास तो दूर रहा, किसी ने उस पर दो बूँद श्रद्धाञ्जलि के आँसू गिराने का भी कष्ट नही किया है। उसका इतिहास अन्धकार मे रहा है। उसमे, उसके इतिहास मे, गौरव करने वाले, रखने वाले न रहे। वह गत शताब्दियो तक उनके अधिकार मे रहा जिनके विरुद्ध सिंहनाद करने वालों की कहानी गुंथी रही है।

चित्तौर स्वतन्त्र रहा; उसके लिये लडने वाले थे; जौहर करने वाले थे, उसकी गाथा गाने वाले थे। वह गान जनता को प्रिय था। लोहर की गाथा वहाँ की जनता को प्रिय न थी। काल की विडम्बना के कारण उनके लिये कलंक की बात थी। वे लोहर को भारतीय इतिहास रंगमंच पर से विस्मृत करा देना चाहते थे। वे इसमे सफल भी हुये।

लोहर दुर्ग प्रकृति के थपेडो से उजडता गया। ईंटें खिसकती गयी। खण्डहर होता गया। चित्तौर पर ईंटो पर ईंटें अबतक रखी जा रही है, वह खण्डहर की अपेक्षा तीर्थ हो गया है, वहाँ लोग आते है, प्रेरणा लेने के लिये।

लोहर की ओर, वहाँ के रहने वाले, वहाँ के राज्याधिकारी, आज भी कुटिल दृष्टि से—संकुचित दृष्टि से देखते हैं, विचार करते है। अभी वह बचा है, खडा है। पर्वत को कोई उखाड नही सकता था। प्रकृति ने उसे बनाया था—जिसने मनुष्य को बनाया है। मनुष्य ने उसे जो दिया था, उसे अपने उन्माद मे छीन लिया। किन्तु प्रकृति उसे जो दे चुकी थी, वह ले न सकी। वह आज भी अपनी चिरविस्मृत गाथाओ के साथ अनजाने, एकाकी भारत से बिछुडा सो रहा है।

महमूद गजनी महान विजेता था। भारत को उसने रौंद डाला था, उसने लूटा। परन्तु वह हारा—बुरी तरह हारा, दो बार हारा, काश्मीर के वीरो द्वारा, लोहर कोट के मोर्चे पर। लोहर कोट विदेशी आक्रमणो से काश्मीर की स्वतन्त्रता की रक्षा तीन शताब्दियो तक करता रहा। जब भारत मे गुलाम, खिलजी, तुगलक वंश शासन कर रहे थे—जिन्होने विदेशी मुसलिम सैन्य पर गर्व किया था, जिनकी शमशीर के आगे कोई ठहर नही सका—वह शमशीर लोहर कोट से लगभग छ शताब्दि तक टकराती और टूटती रही है।

जब काश्मीर के निवासी ही आक्रमको के भाई-बन्धु बन गये, जब आक्रमक एव रक्षक मे भेद नही रह गया, सब एक ही मत के झण्डे के नीचे आ गये, तो लोहर कोट की ईंटें खिसकने लगी। खिसकती खसकती उन ईंटो ने उसे खण्डहर बनाकर पाकिस्तान की गोद में रख दिया।

लोहर, लोह कोट्ट, लोहर कोट, लोह दुर्ग, लौहुर, ये एक नाम के विभिन्न रूप हैं। प्राय लेखको ने लाहौर, लहर को लोहर कोट मानकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। श्री विलसन ने हिन्दू हिस्ट्री ऑफ काश्मीर मे इसी भ्रम के कारण लोहर कोट को लाहौर समझ लिया था। इस भ्रम को श्री स्तीन ने सर्वप्रथम दूर किया है। वर्तमान लोहर दुर्ग का स्थानादि निश्चित करने का श्रेय स्वनामधन्य श्री स्तीन को प्राप्त है। उनके पूर्व लेखको ने लाहौर को ही लोहर माना है।

कल्हण ने लोहर कोट्ट का भौगोलिक वर्णन किया है। जोनराज, शुकादि लेखको ने भी लोहर कोट के भौगोलिक वर्णन को उपस्थित किया है। उनसे निष्कर्ष निकलता है। वह एक दुर्ग था, वह दुर्ग पर्वतीय था, पर्वतीय अचल मे स्थित था। काश्मीर की सीमा पर था। काश्मीर के प्रवेशद्वार पर था।

अल्बेरूनी ने लोहर तथा इस अचल का उल्लेख किया है। अल्बेरूनी मुहम्मद बिन कासिम (सन् ७११–७१२ ई०) को सिन्ध विजय के पश्चात् काश्मीर की सीमा पर पहुचाता है (अल० १ २१–२२)। परन्तु अब यह प्रमाणित हो चुका है कि वह मुलतान से आगे सम्भवत नही बढ सका था। अल्बेरूनी ने महमूद गजनी के आक्रमणो का सविस्तर वर्णन किया है। महमूद गजनी का प्रथम काश्मीर आक्रमण सन् १०१५ ई० मे हुआ था।

उस समय काश्मीरेन्द्र सग्रामराज (सन् १००३–१०२८ ई०) था। कहा जाता है कि महमूद गजनी तुषारपात के कारण बिना दुर्ग विजय किये लौट गया (गरदिजी ७२–७३)। आश्चर्य है कि अल्बेरूनी ने इस आक्रमण का किंचित मात्र उल्लेख नही किया है कि यह आक्रमण काश्मीर पर हुआ था।

कल्हण काश्मीर पर तुर्कों के आक्रमण का उल्लेख करता है। तुर्कों के लिये उसने तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया है। आक्रमक का नाम हम्मीर (रा० ४ ५३) दिया है। हम्मीर का अरबी शुद्ध शब्द अमीर है। अमीर का अर्थ सरदार, नेता होता है। पाश्चात्य इतिहासकारो ने 'हम्मीर' की पहचान महमूद गजनी से की है (जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी . ९ १९०)।

श्री थामस ने उक्त पत्रिका मे हम्मीर की परिभाषा अमीरुल मूमनीन किया है। यह शब्द गजनवी सुलतानों की मुद्राओ पर टकणित पाई गयी है। श्री रेनाउद ने (मेम्वायर सुर० ल० इण्डी) भी स्पष्ट एव बलवती भाषा म कल्हण वर्णित तुरुष्को को महमूद गजनी के (रा० ४ ५१–५६) सैनिको का होना प्रमाणित किया है।

श्री इलियट के अनुसार यह महमूद का भारत पर ९वॉ आक्रमण था। आक्रमण का काल सन् १०१३ ई० था (२ ४५०)। तारीख यामिनी म इस युद्ध का उल्लेख किया गया है। उससे प्रकट होता है कि महमूद ने काश्मीर सीमावर्ती किसी एव उपत्यका म विजय प्राप्त की थी। यह उपत्यका झेलम से काश्मीर की ओर जाती थी। कुछ सीमावर्ती राजाओ ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस समय महमूद ने हिन्दुओ को मुसलिम धर्म मे भी दीक्षित किया (इलियट २ ३७)।

कल्हण उल्लेख करता है। लोहर के राजा त्रिलोचनपाल ने मुसलिम आक्रमणो के विरुद्ध काश्मीर राज्य से सहायता मॉगी थी। मार्गशीर्ष मास म सग्रामराज ने त्रिलोचनपाल की सहायता के लिये सेना भेजी थी। उस सेना म, राजपुत्र, महामात्य, सामन्तादि थे (रा० : ७ : ४८)। सोधी बार प्रथम मुसलिम

सैनिक अभियान कर्ताओ से युद्ध हुआ। वहाँ त्रिलोचनपाल ने 'हम्मीर' की सेना को पराजित कर दिया था। त्रिलोचनपाल का उल्लेख अल्बेरुनी करता है।

महमूद गजनी को यहाँ सफलता नही मिली। भारतवर्ष मे महमूद गजनी की यह प्रथम पराजय थी। महमूद ने कभी स्वप्न में भी नही सोचा था कि काश्मीर जैसे छोटे प्रदेश की सेना से वह पराजित होगा। कल्हण त्रिलोचनपाल के वीरता का इस अवसर पर वर्णन करता थकता नहो (रा० : ७ : ६०–६५)।

प्रथम पराजय के दो वर्ष महमूद ने पुनः काश्मीर पर आक्रमण किया। परन्तु लोहर अर्थात लोहकोट मे उसे पुनः पराजित होकर लौटना पडा।

अल्बेरुनी ने लोहर कोट का उल्लेख करते हुए जो कुछ लिखा है, वह एतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अल्बेरुनी ने काश्मीर के भूगोल का वर्णन करते, राजधानी के दक्षिण कुलार्जक शिखर का उल्लेख किया है। दुनबवन्द अथवा हूमावन्द का वर्णन करते लिखता है—'वहाँ हिम कभी नही गलता। वह ताकेशर स्थान तथा लौहावर स्थान से दृष्टिगोचर होता है। इस शिखर तथा काश्मीर की अधित्यका मे दो फरसख का अन्तर है। राजगिरी का दुर्ग इसके दक्षिण है। लहूर का दुर्ग इसके पश्चिम है। मैंने अब तक जितने स्थान देखे हैं उनमे उक्त दोनो स्थान सबसे अधिक मजबूत मिले है। राजवारी का नगर तीन फरसख शिखर से है' (अल्बेरुनी : इण्डिया : १ : २०७)।

अल्बेरुनी के वर्णन से प्रकट होता है कि उक्त पर्वत तरकुटी है। वह पीर पञ्जाल पर्वतमाला के मध्य १५५२४ फुट ऊँचा है। काश्मीर के दक्षिणवर्ती पर्वत शृङ्खला मे यह सबसे उत्तुङ्ग पर्वत है। एकाकी शिखर तथा विशालता के कारण दक्षिण दिशा के दर्शक का स्वभावत. ध्यान आकर्षित करता है। इसके चारो ओर विस्तृत तुषारमण्डित स्थल हैं। वह वर्ष पर्यन्त श्वेत हिम से ढँका रहता है। उसके दक्षिण एक छोटी हिमानी है। सियालकोट तथा गुजरानवाला जिला से यह हिमाच्छादित शिखर चनाव नदी के पूर्व दिशा मे दृष्टिगोचर होता है। वायुमण्डल एव आकाश स्वच्छ होने पर यह शिखिर लाहौर से भी दिखायी पडता है (ड्रयू : जम्मू : २०५)। तकेशर का उल्लेख कल्हण ने टक्कदेश नाम से किया है। ह्वेनत्सांग ने उसे स्सेहु-किया लिखा है।

कल्हण ने राजगिरि (रा० . ७ : १२७०) का उल्लेख किया है। यह उस समय राजपुरी के राजा के अधिकार मे था। इसे पर्वत तरकुटी के दक्षिण होना चाहिए। यह सुरन उपत्यका के ऊर्ध्वभाग मे है।

अल्बेरुनी ने लहूर कोट को कुलार्जक पर्वत के पश्चिम रखा है। यह लोहर कोट के अतिरिक्त और कोई दूसरा स्थान नही हो सकता (अल्बे० १ : ३१७)। दूसरे स्थान पर अल्बेरुनी ने लोहर कोट और लोहर कोट तथा श्रीनगर के मध्य का अन्तर भी दिया है। तोश मैदान पास की तरफ से लोहरिन लगभग ६० मील पडता है। उसमे २० मील काश्मीर उपत्यका का मैदान पडता है। अल्बेरुनी लिखता है कि श्रीनगर से लोहर कोट का मार्ग आधा पर्वतीय तथा आधा मैदानी है।

महमूद गजनी के लोहर आक्रमण का समय परशियन इतिहासकारो ने भिन्न-भिन्न दिया है। फिरिश्ता आक्रमण का समय हिजरी ४०६ = सन् १०१५ ई०, तबकाते अकबरी हिजरी ४१२ = सन् १०२१ ई० तथा सन् १०१७ भी होने का अनुमान लगाया गया है (इलियट २ . ४५५, ४६६)। फिरिश्ता लिखता है—'लोहर कोट अपनी ऊँचाई तथा मजबूती के कारण असाधारण था। कुछ समय पश्चात् तुषारपात होने लगा। ऋतु अत्यन्त शीतल हो गयी और शत्रु ने काश्मीर से सहायता प्राप्त कर ली तो सुल्तान (महमूद गजनी) ने अपनी योजना त्याग दी और गजनी लौट गया।'

यह स्थान लोहरिन उपत्यका म प्रत्त अर्थात् प्राचीन पर्णोत्स मे है। यह जन-धन-सम्पन्न तथा समृद्धिशाली पर्वतीय उपत्यका उन स्रोतस्विनियो के मध्य है जो पीर पजाल पर्वत की दक्षिणी ढाल किंवा निम्न भूमि को तत्कुटी शिखर तथा तोश मैदान के अचल का जल बहाकर ले जाती है। लोहरिन नदी इन स्रोतस्विनिया से बनती है। वह मण्डी के समीप गागरी उपत्या की स्रोतस्विनी से मिलती है जो कि लोहरिन के उत्तर-पश्चिम मिलती है। आठ मील और बहने पर यह सरन नदी से मिल जाती है। दोनो मिलकर पुन्त की ताही किवा तोषी नदी बन जाती है। इस क्षेत्र की सबसे उपजाऊ भूमि मण्डी से आठ मील ऊर्ध्वभाग मे है। यहाँ पर बडे गाव तात्रावन्द, जेगावन्द, और डोयीबन्द मिलकर लोहरिन कहलाते है। ऊर्ध्वभाग उनका नाम उनके कबीलो पर पडा है। वे जिले के केन्द्र माने जा सकते है।

मुख्य लोहरिन उपत्यका उसके पश्चात् पार्श्व की उपत्यका जो उत्तर मे पर्वतमाला से नीचे आती है वहाँ से मार्ग तोपी मैदान दर्रे की ओर जाता है। यह अत्यन्त प्राचीन काल से काश्मीर से पश्चिमी पजाब की ओर जाने वाला मार्ग था। इस मार्ग का महत्व सरल आवागमन के कारण है। लोहर तथा काश्मीर का सम्बन्ध काश्मीरी आबादी होने के कारण और हो गया है। राजपुरी अर्थात् राजोरी के उत्तर-पश्चिम लोहर अचल है। वहाँ का राजवश काश्मीर के राजसिहान पर बैठा था। उसके पश्चात् काश्मीर एवं लोहर एक ही राजवश के आधीन हो गये थे। लोहर का दुर्ग काश्मीर के इतिहास मे ख्याति-प्रसिद्ध है।

लोहरिन तथा काश्मीर का निकटतम सम्बन्ध दोनो राजवशो मे उस समय स्थापित हो गया जब सिंहराज की कन्या रानी दिद्दा का विवाह काश्मीर के राजा क्षेमगुप्त के साथ हो गया। सिंहराज का स्वय विवाह उदभाण्डपुर वैहुण्ड तथा काबुल के शक्तिशाली शासक भीमशाही की कन्या के साथ हो गया था। इससे प्रकट होता है कि लोहरिन का राज्य केवल लोहरिन तक सीमित नही था। पीर पजाल के दक्षिणी उपत्यका मण्डी, सुरन, सदरून तथा सम्भवत प्रत् भी उसमे सम्मिलित थे। रानी दिद्दा ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात काश्मीर पर स्वय सन् ९८० से १००३ ई० तक राज्य किया था। भाई उदयराज के पुत्र सग्रामराज को अपना दत्त्त पुत्र बना लिया था। तथापि लोहर विग्रहराज के अन्तर्गत था। संभवत' वह उदयराज का एक और पुत्र रहा होगा।

विग्रहराज रानी दिद्दा के समय म ही राज्य का उत्तराधिकारी होना चाहता था। सग्रामराज को मृत्यु (सन् १०२८ ई०) के पश्चात् उसने काश्मीर राज्य प्राप्त करने के लिए द्वितीय बार असफल प्रयास किया था। लोहर स सैन्य श्रीनगर के लिए आषाढ मास म अभियान किया। काश्मीर सीमास्थित द्वार अर्थात् द्रेग को फूक दिया। ढाई दिन चलकर राजधानी श्रीनगर की सीमा पर पहुँच गया। वहा पराजित हुआ और मार डाला गया। इस काल म सबसे नजदीक मार्ग लोहर से काश्मीर का तोपी मैदान द्वारा पड़ता था। यह पास या दर्रा १३५०० फुट ऊँचा है। मई से नवम्बर तक आवागमन के लिए खुला रहता है।

विग्रहराज का पुत्र क्षितिराज था। उसका उल्लेख लोहर राजा के रूप मे बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित म किया है। क्षितिराज न राज्यसिंहासन राजा उत्कर्ष (जो राजा अनन्त का पौत्र था) के लिये त्याग दिया था। यह काश्मीर राजा हर्ष का कनिष्ठ भ्राता था। राजा कलश की मृत्यु (सन् १०८९ ई०) के पश्चात् काश्मीर पर राज्य करने क लिए उत्कर्ष जब लाया गया तो वह काश्मीर के राज्य के साथ लोहर का राज्य मिलाकर दोनो का राजा बन गया। आने वाले उथल-पुथल के समय म लोहर काश्मीर की रक्षा क लिए महत्त्वपूर्ण सैनिक स्थान प्रमाणित हुआ। राजा हर्ष ने राजपुरी वर्तमान राजोरी पर सैनिक अभियान किया था। सेना तोपी मैदान दर्रा तथा लोहर होती हुई राजोरी पहुँची थी।

लोहर राजवंशी उच्चल राज्य का उत्तराधिकारी बनना चाहता था। उसने प्रथम अभियान राजपुरी से काश्मीर की ओर किया। अपनी छोटी सैनिक टुकडी लोहर के राज्यपाल के क्षेत्र से ले आया। उसने द्वार के द्वारपति को अपने अभियान से चकित कर दिया। पर्णोत्स (पुछ) मे शत्रु को पराजित करता, काश्मीर के पश्चिमी अंचल क्रमराज मे पहुँच गया। उच्चल का आक्रमण वैशाख मास के आरम्भ मे हुआ था। इस समय तोष मैदान का दर्रा केवल पैदल ही पार किया जा सकता था। राजा हर्ष को पराजय से बचाने के लिए मन्त्रियो ने सलाह दी कि लोहर पर्वतमाला की ओर पलायन कर जाय परन्तु उसने उनकी सलाह पर ध्यान नही दिया।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर तथा लोहर का राज्य पुन अलग-अलग हो गया। लोहर तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र सुस्सल के भाग मे मिल गया। काश्मीर का राजा उच्चल बन गया। लोहर से सुस्सल ने उच्चल पर आक्रमण किया। किन्तु श्रीनगर आक्रमण अभियान मे वह सल्यपुर मे पराजित हो गया। सल्यपुर दुन्त परगना मे वर्तमान गाव सिलपोर है। वह श्रीनगर मार्ग पर पडता है। उच्चल की मृत्यु पौष सुदी छठ सन् १११२ ई० मे हो गयी। सुस्सल के सौतेले भाई सल्हण ने काश्मीर ले लिया। उसने अपने शत्रु सम्बन्धियो को लोहर के मजबूत किले मे बन्द रखा। भिक्षाचर से खतरा उत्पन्न होने पर उसने ग्रीष्म ऋतु सन् ११२० ई० मे अपने कुटुम्ब को लोहर भेज दिया और स्वय हुष्कपुर होता मार्गशीर्ष मे उनके पास पहुच गया। वसत ऋतु मे भिक्षाचर ने राजपुरी होते सेना भेजी, ताकि वह सुस्सल पर आक्रमण करे। यह सेना दक्षिण से बढती हुई पर्णोत्स पहुँची। जहाँ सुस्सल द्वारा पराजित हो गयी। सुस्सल के समय लोहर का नाम केवल एक बार और सुनायी पडता है। जयसिंह तीन वर्ष लोहर मे निवास करने के पश्चात काश्मीर मे आया और पिता सुस्सल से वाराहमूला मे भेंट की थी।

लोहर कोट की पहचान के लिये कल्हण का वर्णन सहायक होता है। उसने स्पष्ट तोषी नदी का उल्लेख किया है। पंत अर्थात् पर्णोत्स अर्थात् पूछ क्षेत्र म तोषी प्रवाहित होती है। यह बहती वितस्ता मे झेलम नगर के ऊपर मिलती है। पूछ की उपत्यका से बहती लोहर कोट पहुचती है। इसे लोहरिन उपत्यका भी कहते हैं। यहाँ से तोष मैदान दर्रे का मार्ग मिलता है। प्राचीन काल मे काश्मीर प्रवेश का यह सुगम मार्ग था। महमूद ने इस स्थान से काश्मीर मे प्रवेश करने का प्रयास किया था।

महाकवि बिल्हण ने विक्रमाकदेवचरित महाकाव्य की रचना ११ वीं शताब्दी मे की थी। उसके पश्चात् बारहवी शताब्दी (सन् ११४८–११५० ई०) म कल्हण ने राजतरंगिणी लिखी थी। कवि बिल्हण ने महाकाव्य के अट्ठारहवें सर्ग मे काश्मीर का वर्णन किया है। उससे काश्मीर के इतिहास, भूगोल तथा जनजीवन पर प्रकाश पडता है। बिल्हण और कल्हण दोनो के भौगोलिक वर्णनो के कारण लोहर कोट का स्थान निर्णय करने मे सहायता मिलती है।

बिल्हण के अनुवादको ने लोहर कोट किंवा लोहर शब्द का प्रयोग श्लोक (१८–४७) मे लोहर-खण्ड नाम से किया है।

क्षितिराज को वहा के अधिपति रूप मे उपस्थित किया है (विक्रमाकदेवचरित ३८, ४८, ६७)। क्षितिराज ऐतिहासिक व्यक्ति है। कल्हण ने उसका उल्लेख (रा० : ७ : २५१, २५५) किया है। वह राजा कलश (सन् १०६३–१०८९ ई०) का भातृपुत्र था। बिल्हण इस क्षितिराज के प्रसग मे दर्वाभिसार, तथा पर्वतीय क्षेत्र का उल्लेख करता है (विक्रमां० १८ : ३२)। बिल्हण क्षितिराज के दुर्ग का भी उल्लेख करता है (विक्रमां० १८ : ६७)। इस प्रकार बिल्हण एवं कल्हण के वर्णन से स्पष्ट है कि लोहर-खण्ड, लोहर दुर्ग

काश्मीर देश तथा दर्वाभिसार के समीप था। वह पर्वतीय प्रदेश था। लाहौर से सैकड़ो मील दूर उत्तर तथा पश्चिम है। हिमालय के समीप वह कही है। अतएव वह लाहौर नही हो सकता। लोहर पर्वतीय दुर्गम दुर्ग था।

कल्हण के अनुसार लोहर प्रुत्त किंवा पर्णोत्स उपत्यका मे था। यह वर्तमान लोहरिन उपत्यका है। कल्हण ने तरंग आठ की घटनाओ और मुख्यतः राजा जयसिंह के काल का विशद वर्णन किया है। जयसिंह ने ११२८ ई० से ११५५ ई० तक काश्मीर पर राज्य किया था। कल्हण ने ११४८–११५० मे राजतरंगिणी लिखकर समाप्त की थी। शेष ५ वर्षों का इतिहास कवि जोनराज ने लिखकर समाप्त किया। कल्हण वर्णित वन स्थान वणिका वास है (रा० : ८ : १८७७)। कौलिन्य कालेनक है। जयसिंह की सेना वणिका वास से लौटी थी। यह अति सकीर्ण लोहरिन नदी के और कुछ नही हो सकता। पलेरा पहुँचने के पूर्व इसके द्वारा होकर जाना पड़ता है। लगभग २ मील तक नदी के साथ ऊँचे पहाड़ से लगा मार्ग ऊँचाई से जाता है।

लोठन के सन्दर्भ मे कल्हण (रा० : ८ : १९४१) ने लोहर कोट का उल्लेख किया है। मल्लार्जुन ने लोहर को लोठन की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर ले लिया। लोठन लौटकर आया। परन्तु उसने सुलह कर ली। विद्रोही डामरो की सहायता से काश्मीर पर आक्रमण किया (रा० : ८ : १९८९, १९९६, २०१०)। उसने पर्वत पार कर कर्काट द्वार (द्रंग) पर अधिकार कर लिया। यह वर्तमान मैदान की अधित्यका के नीचे दुर्ग था। जयसिंह ने लोहर पर पुनः अधिकार कर लिया और मल्लार्जुन भाग गया (रा० : ८ : २०२१)। तत्पश्चात सार्वणिका 'स्थान पर लोहर जाते हुए कोट पर राजा ने अधिकार कर लिया। यह गाव तोषी उपत्यका मे वर्तमान सुरन गाव है। जयसिंह ने अपने जीवन मे ही अपने ज्येष्ठ पुत्र गुल्हण को लोहर का अधिकारी बना दिया (रा० : ८ : ३३०१, ३३७२)।

कल्हण के पश्चात् काश्मीरी संस्कृत लेखको ने लोहर कोट नाम का उल्लेख तो किया है किन्तु उसका भौगोलिक वर्णन कोई नही करता जिससे लोहर कोट का ठीक पता लगाया जा सके। सम्भव है कि वह इतना प्रसिद्ध हो गया था कि उसका वर्णन इस दृष्टि से करना उपयुक्त न माना गया होगा। (जोन : १६७, १६८, ४६६, ४६८, ४६९, ४७२, ४७४, श्रीवर १ : ८२, ३ : ४७६, ४ : १३६; शुक : १ : १२४, १३४, १३५, २३५, २ : ३९, ४१)। लोहर वंश का काश्मीर पर दसवी से बारहवी शताब्दी तक राज्य था। अतएव उसका कुछ महत्व बना रहा। परन्तु राजधानी श्रीनगर होने के कारण लोहर के उन्नति एवं विकास की ओर लोहर वंश के राजाओ ने कम ध्यान दिया है।

लोहर का इस प्रकार काश्मीर के इतिहास में महत्व है कि उसके वंश ने काश्मीर पर तीन शताब्दियो तक अक्षुण्ण राज्य किया था। मुसलिम काल मे इसके प्रति आदर, गौरव तथा किसी प्रकार का रक्त सम्बन्ध न होने के कारण यह खण्डहर बनने के लिये छोड दिया गया। तथापि व्यापार यहाँ से होता रहा। 'मुहम्मदशाह लोहर जाकर और उपरैदो के समान द्रगा शुल्क आदि ग्रहण किया' (शुक० : २ : ३९)। मुहम्मदशाह ने काश्मीर मे राज्यच्युत होने और राज्य पुनर्प्राप्ति कर सन् १४९७ ई० से १५३४ ई० तक शासन किया था।

मुसलिम काल मे बादशाहो तथा राजाओ के बन्दी बनाने मे उपयोग मे लोहर कोट उसी प्रकार काम मे लाया गया जिस प्रकार ग्वालियर के दुर्ग को दिल्ली के सुलतानो तथा बादशाहो ने राजबन्दीगृह का रूप

दे दिया था। मुस्लिम काल मे इसका शासन श्रीनगर से सीधा होता था। मुहम्मदशाह इस दुर्ग मे बन्दी बनाकर रखा गया था।

शुक ने लोहर का उल्लेख अनेक युद्धो तथा सैनिक अभियानो के प्रसंग मे किया है। मुहम्मदशाह, फतहशाह, के गृहयुद्ध तथा मुगल सेना और काश्मीरी सेना के युद्ध स्थल तथा तुरुष्को के संघर्ष होने के कारण इसका सैनिक महत्व बना रहा (शुक १२४, १३४, १३५, २३५; २ : ४१)।

आधुनिक काल मे राजा रणजीतसिंह ने सन् १८१४ ई० के ग्रीष्म मास मे लोहरिन उपत्यका मे स्वयं सेना का एक भाग लेकर प्रवेश किया था। तोषी मैदान द्वारा वह काश्मीर मे प्रवेश करना चाहते थे। यहाँ जिस प्रकार महमूद गजनी को पीछे हटना पडा था, उसकी पुनरावृत्ति राजा रणजीतसिंह के समय मे हुई।

मैं लोहर कोट नही जा सका हूँ। यह इस समय अनिधिकृत रूप से पाकिस्तान क्षेत्र मे है। पूंछ से युद्ध विराम रेखा तक गया हूँ। राजनीतिक कारणो से जाने और देखने की इच्छा होने पर भी सम्भव नही हो सका है। जो कुछ यहाँ प्रस्तुत किया गया है, श्री स्तीन तथा अन्य लेखको के वर्णनो के आधार पर है। पाकिस्तान से अनुमति प्राप्त करने का भी प्रयास किया परन्तु सर्वदा यही सलाह मिलती रही कि वहाँ जाना खतरे से खाली नहीं है। मेरी बहुत इच्छा थी कि चित्तौर के समान देश के लिये प्राणोत्सर्ग एवं देश का गौरव वृद्धि करने वालो की कर्मभूमि का पवित्र दर्शन कर, जीवन सफल करूँ परन्तु इस जीवन मे यह सम्भव नहीं है।

लोहर मे जनश्रुति है। यहाँ प्राचीन काल से ही किला था। वह एकाकी पर्वत बाहुमूल पर है, जो उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर बहिर्वर्ती, लोहरिन नदी के दक्षिण तट की ओर स्थित हुए है। वह गेग-बन्द गाव के ऊपर है। सर्वे मानचित्र मे यह 'गज्जन' नाम से लिखा गया है। इसके धुर दक्षिण-पूर्व की ओर पर्वत बाहुमूल के नीचे पथरीले भाग मे मिल जाता है। उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम की ओर ढालुआ होता ऊँचाई से नदी स्तर तक पहुँच जाता है। यह नदी ताम्र बन्द तथा गेगबन्द गाँवो से होकर प्रवाहित होती है। लोहर कोट पहाडी भूमि के तल से ३०० फुट ऊँचाई पर है। वह एक संकीर्ण अधित्यका का रूप एक चौथाई मील लम्बा ले लेता है। इस अधित्यका के दक्षिण-पूर्व की सीमा से एक छोटी पहाडी उठती है। स्थानीय गाव वालो ने यही स्थान स्तीन को कोट बताया था। पुत्त के मुसलिम राजाओं के बहुत पूर्व से यहाँ कोट मौजूद था।

इस समय दुर्ग या कोट रूप नही रह गया है। पहाडी पर उबड-खाबड दीवालो तथा अनेक स्थानो पर सिवाय पत्थरो के ढेर के और कुछ नही है। अधित्यका बहुत दिनो से कब्रिस्तान के रूप मे प्रयोग की जाती रही है। अतएव उसमे किले के शिलाखण्ड लगा दिये गये है। गाव वालों मे जनश्रुति व्याप्त है। यहा बहुत धन गडा है। पर्वत बाहुमूल स्वयं एक संकीर्ण मार्ग से सम्बन्धित है। उत्तर मे पीछे से पहाडी खण्ड को जोडता है। इस मार्ग के दोनो ओर दो छोटे किले सुरक्षा दृष्टि से बनाये गये हैं।

चित्तौर देखने की मेरी इच्छा ४० वर्षो के पश्चात पूरी हुई थी। दैव ने हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड सरकारी प्रतिष्ठान का अध्यक्ष बनाकर उदयपुर मे तीन वर्ष निरन्तर रहने दिया और मुझे राजस्थान तथा मेवाड की पवित्र भूमि और देशभक्तो के तीर्थ चित्तौर, हल्दीघाटी आदि का दर्शन करने का सुअवसर मिला। नहीं कह सकता, उत्तर के चित्तौर स्वरूप लोहर कोट का दर्शन मुझे या भारतियों को प्राप्त हो सकेगा। लोहर

कोट तथा लोहरिन उपत्यका मे एक भी हिन्दू शेष नही रह गया है, जिसे लोहर कोट के इतिहास तथा उसकी प्राचीनता मे रुचि होती। लोहर कोट पर अति स्वल्प लिखा गया है। यदि कभी कोई इतिहासप्रेमी इस बिछुडे, भारत के गौरवशाली स्थान के इतिहास तथा वहाँ की गाथाओ का अनुसन्धान कर लिपिबद्ध करेगा तो निःसन्देह यह अकिंचन, इस लोक एवं परलोक मे जहाँ कही होगा, उसे शत-शत प्रणाम करता, लोहर कोट का स्मरण करता रहेगा, जिसके कारण शताब्दियो तक भारत के पराधीन होने पर भी, काश्मीर स्वतन्त्र रहा, जहाँ के वीरो की पवित्र गाथाएँ भूत के गर्भ मे हैं उन्हें वर्तमान मे लाकर, उसे प्रकाशित कर, भारत की सेवा के साथ उन अज्ञात वीरो की स्मृति जागृत करेगा, जिन्हें जगत भूला बैठा है।

परिशिष्ट—घ

प्रमुख देवस्थान

नाम	आधार
अक्षपाल नाग	रा : १ : ३३८
अक्षवल	अचबल
अघेश्वर	४ : ५१।
अच्युतेश	जैन : १ : ५ : ९७
अनन्त नाग	वर्तमान अनन्त नाग
अनन्त	नी : ११६०
अन्दर कोट मन्दिर समूह	अन्दर कोट (पीरहसन : पृष्ठ १७६)
अभिमन्यु स्वामी	रा : ४ : २९९
अमरनाथ	जो : ८७५
अमरेश्वर	रा : १ : २६७
अमरेश	रा : ८ · १८३ नी · १३२१
अमृत केशव	जै : ४ : ६५९
अमृतेश्वर	रा : ३ : ४६३
अर्धनारीश्वर	रा : ५ : ३७
अवन्ति स्वामी	रा : ५ : ४५
अवन्तीश्वर	रा : ५ . ४५
अवलोकितेश्वर	शारदा लेख सं : ५
अशोकेश्वर	रा : १ . १०६
अश्वशीर्ष	नी : ११६१
आदि वाराह	रा : ६ : ८८६
आश्रम स्वामी	नी ११६३, ११९१
इन्द्रनील	नी : १२३०
इषेश्वर	रा : २ : १३४
ईशान	जो : १०१, ८८०
इष्ट पार्थेश्वर	नी : १०६०
इष्टिका पथ	नी : ११८
उद्योग श्री	नी : १०१३, १०१५
उमेश	रा : १ : ३४८

नाम	आधार
उत्पल स्वामी	रा : ४ : ६९५
उष्कार मन्दिर	गुपकर
कदम्बेश	नी : ११८
कट्ट	नी : ११५२
कपटेश्वर	रा : १ : ३२
कपिल	नी : ११६०
कपिजंली	नी : १०१३
कमला केशव	रा : ४ : २०८
कम्बलेश्वर	अमसर ग्राम स्थित
	रा : ८ : २५१
कय्य स्वामी	रा : ४ : २०९
कल्याण स्वामी	रा : ४ : ६९७
कश्यप स्वामी	नी : १०१९, १०२०
कश्यपेश	नी : १०२०, १०२६
कश्यपेश्वर	नी · १०२०, १०२६
कार्तिकेय	रा : ४ : ४२२
काल शिल	नी : १०१३
काली धारा	शुक : १३६, जैन : २ : १४६
	रा : ४ : २१८
काली श्री	खानकाह मौला समीपस्थ
काम्य देवीश्वर	रा : ५ . ४१
कालाग्नि रुद्र	रा : १.३४
काली श्री	किपुल = पयार
कुटीपादीश्वर	जै : २ : १५३
कुण्डनीय	नी : १२७१
कुमार	रा · २ : ३४
कूर्म	नी : ११६१
कुलन मन्दिर	पीर हसन : पृष्ठ ४०२
केशव	रा : ४ : ५०८

नाम	आधार	नाम	आधार
केशव	नी : ११५२	गौतम	नी : ११५२
केशव (दर्पितपुर)	रा : ४ : १८३	गौतम स्वामी	नी : १००७–८
केशवेश	नी : १०२०–१०२६	गौतमेश्वरी	नी : १०१३
क्षीर भवानी	क्षीर भवानी स्थान	गौरी	नी : १०१३, १०१५
क्षेम गौरीश्वर	रा : ६ : १७२	गौरीश	रा : ५ : १५९
खण्डपुच्छ नाग	नी : १३०४	गौरीश-गौरीश्वर	रा : ७ : १८०, २०७
खोन मुख मन्दिर	शारदा लेख सं० ७	चामुण्डा	रा : ३ : ४६
चंगलेश्वर	नी : १२२	छजित स्वामी	रा : ४ : ८१
चतुरात्मा	रा : ४ : ५०८	छागलेश्वर	नी : १२६६
चण्डिका	रा : ३ : ३३, ४०, ५२,	जनार्दन	नी : ११५७
	नी : १०१३–१०१५	जयादेवी	रा : ४ : ५०७
चक्रधर	रा : १ : ३८ जो : ८६२,	जयभट्टारिका	रा : ६ : २४३
	रा : ४ : ९१	जय स्वामी	रा : ३ : ३५०; ५ : ४४९
चक्रभृत	जो : ६०१	जयेश्वर	रा : ४ : ६८१; जो : ४३७
चक्रस्वामी	नी : १०१६, १०२०,	जल वास	नी : ११६२
चक्रिण	जो : २३१,	जिन प्रतिमा	रा : ४ : २००
चक्रेश	नी : १२३०	जेयर	रा : १ : ३७१
चक्रेश्वर	रा : ४ : २७६	जेवन	रा : १ : २२०
चक्रेश्वरी	नी : १०२०, १०२६	जेष्ठा देवी	जेयर स्थान
चन्द्रेश्वर	नी : ,, ,,	ज्येष्ठ रुद्र	रा : १ : ११३, १०४
			२८९, ४ : १९०
गग निर्मित	शारदा लेख सं० ९	ज्येष्ठ रुद्र गिरि	शु : ब० : ८०८
,, ,,	शारदा लेख सं० ९	ज्येष्ठेश	रा : १ : ११३
,, ,,	शारदा लेख सं० ९	ज्येष्ठेश्वर	रा : १ : १२४
गजेन्द्र मोक्ष	नी : ११५८	ज्येष्ठेश्वर–त्रिपुरेशसमीपस्थ	रा : ५ : १२३
गणेश	रा : ३ . ३५२	तापर मन्दिर	रा० : ४ : १०; ८ : ८२०
गणेश	लिदर मध्य		पीर हसन : पृष्ठ १७६
गणेश्वर	नी : १०२०–१०२६	ताम्र स्वामी	रा : ७ : ३९६, ७०९
गम्भीर स्वामी	रा : ४ : ८०	तारा पीड मन्दिर	जामा मस्जिद श्रीनगर
गरुड	रा : ४ : १९९; नी : ११६२	तुङ्गेश्वर	रा : २ : १४, ६ : १९०
गवाक्षी	नी : १०१३, १०१५	तूल मूल	जो : ९७६७, रा : ४ : ६३८
गुपकर मन्दिर	गुपकर	त्रिपुरेश्वर	रा : ५ : ६९; ६ : १३५
गुह्येश्वर	नी : ११८		जैन : १ : ५ : १५, ३५
गोकर्णेश्वर	रा : १ : ३४६	त्रिभुवन स्वामी	रा : ४ : ५५, ८ : ८०,
गोकुल	रा : ५ : २३	त्रिभुवन स्वामी केशव	रा : ४ : ७८; ८ : ८०
गोपाल केशव	रा : ५ : २४४	थ्युन मन्दिर समूह	थ्युन ग्राम
गोवर्धनधर	रा : ४ : १९८; ८ : २४३८		

नाम	आधार
दण्डकर स्वामी	नी ११५७
दिद्दा स्वामी	रा ६ ३००
दिवाकर	नी १०१७-१०१८
दुर्गा (मधुमती तीर)	नी १२३१
दुर्गा	नी १०१३, १०१५
दुर्लभ स्वामी	रा ४ ६
देवसर (विष्णु)	नी ११५१
देवी	शारदा जै स १४
धनदेश्वर	नी १०२०-१०३६
धनेश्वर	नी १००७-८
धम स्वामी	रा ४ ६९७
धौमेश	नी १०२०-१०२६
नरस्थान	उलर क्षेत्र
नन्द केशव	रा ५ २४५
नन्दीश	रा १ ३६
नन्दीश्वर	नी १०२ १०२८ अनु० २५ ६१
नरसिंह	नी ११५९
नरसिंह	नी १२९३
नरसिंहेश	नी १०२०-१०३१
नरेन्द्र स्वामी	रा ३ ३८३
नरेन्द्रेश्वर	रा ४ ३८
नारायण स्थान	नी ८७ ११५८ १३१२
नृसिंह (उलर के उत्तर)	नी ११५३
पद्मपाणि बोधिसत्व	शारदा लेख स० ६
पद्म स्वामी	रा ४ ६५९ ६ २२२
पयार मन्दिर समूह	पयार
परिहास केशव	रा ४ १०७
पर्णोत्स मन्दिर समूह	पूछ
पर्ण गुप्तेश्वर	रा ४ १३७
पाण्डु चक्र	रा १ १०६
पिंगलेश	नी १३०४
पिंगलेश्वर	नी १०२०-२०२६
पीठ देवी	रा ५ ४७४
पामपुर मन्दिर	पामपुर
पम्पासर	रा ७ ९४०
परिहास केशव	रा ४ १९२
पुराधिष्ठान	रा १ १०४
पुराण तक्षक स्थान	जैन ४ २५१
पुलस्त्य निर्मित	नी १००३-१००६
प्रताप गौरीश	रा ७ १६३८
प्रभाकर स्वामी	रा ५ ३०
प्रवरेश	रा ३ ९९
प्रवरेश्वर	रा ३ ३५०
पचानल गिर	शु व ७३३
फतेहगढ मन्दिर	फतेह गढ
फल्गुण स्वामी	रा ६ १६९
फिरोजपुर मन्दिर समूह	फिरोजपुर
बकेश	रा १ ३२९
वनिता	नी ११५२
बराहमूल	रा ६ १८६ जो० ६०२
बर्धनस्वामी	रा ६ १९१
बहुख्यात केशव	सातवा पुल श्रीनगर
बहुरूप	नी ११५९
बाण लिंग	रा १३१रा ७ १८५
बान्दीपुर मन्दिर समूह	बान्दीपुर
बालकेश्वर	रा ८ २४३०
बालदेवी	(बाल होम ग्राम)
बालखिल्लेश्वर	नी १०२०-१०२३
बालखिल्य	नी ११६१
बावन (मातण्ड तीथ)	मरन
बाहुसर	नी ११५१
मा देर	बुनियार
बितस्तारा	विथवतूर ग्राम
बिन्दु नादेश्वर	नी १०२०-१०२६
बिपुल केशव	रा ४ ४८४
बिम्बेश्वर	रा ३ ४८२
बिरह नाग	बेरी नाग
बुद्ध	रा ३ ५५५
वृद्ध त्रय	रा ४ ५०७

नाम	आधार
बुद्ध बुद्ध	रा : ३ : ३५५
बृहद् बुद्ध	रा : ४ : २०३
बुहत्‌चक्र	तस्कदर
ब्रह्मचारिणी	नी : १०१३–१०१६
भट्टगोविन्द प्रतिष्ठित प्रतिमा	शारदा : लें० : ४
भद्रेश्वर	नी : १०२०–१०२६
भद्रेश्वरी	नी : १००३
भप्पटेश्वर	रा : ४ : २१४
भवेश	नी : १०२०–१०२६
भवेश	नी : १०२०–१०२६
भीम केशव	रा : ६ : १७८
भीम स्वामी	रा : ३ : ३५२ जेन० : ३
भीमा देवी	पीर हसन : ३९७
भीम द्वीप	(वामजू गुफा)
भुजं स्वामी	नी : ११५४–११६२
भुट्टेश्वर	रा : ८ : २४२३
भूतेश	रा :१:१०७,१०२०,१०२६
भूतेश्वर	नी : १०२७–१०२८
भूतेश्वर	रा : ५ : ४०
भेदा देवी	रा : १ : ३५; नी० : २ : १३५
भैरव	रा : ५ : ५५, ५८
भृगु स्वामी	नी : ११५४–११६३
मक्षिका स्वामी	रा : ४ : ८८
मणिभद्र	नी : १०१०
मत्स्य	नी : ११६१
मम्म स्वामी	रा : ४ : ६९९
मम्मेश्वर	रा : ८ : ३३६०
मल्हण स्वामी	रा : ४ : ४
महावाराह	रा : ४ : १९७
महाराज्ञी	रा : ४ : ६३८
महा श्री	जामा मसजिद समीपस्थ
महास्वामी	नी : ११५४–११६३
महोदय स्वामी	रा : ५ : २८
माक्षिक स्वामी	रा : ८ : ११७१
मार्गीश्वर	पीरहसन पृष्ठ ४०२

नाम	आधार
मार्तण्ड	रा : ४ : १९२; जो० : ६०१, ८७४
मार्तण्ड (सिंहरोत्सिका)	रा : ३ : ४६२
मातृगुप्त स्वामी	रा : ३ : २६३
मान्त्रिक मन्दिर समूह	मालिनपुर
माहेश्वर	रा : ३ : ४५३
मिश्रेश्वर	रा : ४ : २०९
मिह्रिरेश्वर	कोहगारान
मुक्ता केशव	रा : ४ : १९६
मुक्ता स्वामी	रा : ४ : १८८, १९६
मेरुवर्धन स्वामी	रा : ३ : ९९९,२६७
मंगला देवी	जैन : २१,१४७
यशस्कर स्वामी	रा : ६ : १४०
योगशायी हृषीकेश	रा : ५ : १००
योगेश	रा : ८ : ७८, ११६०
रक्षा जयदेवी	रा : ५ : ४२६
रवछटेश लिंग	रा : ४ : २१४
रणपुर स्वामी	रा : ३ : ४६२
रणारम्भा स्वामी	रा : ३ : ४६०
रणारम्भा देवी	" "
रणास्वामी प्रसाद	जै० : ८७१
रणेश	रा : ३ : ४५३,४६३,४६०
रणेश्वर	रा : ३ : ४३९, ६ : ७१
रण स्वामी	रा : ३ : ४५४,४५७; ५ : ३९५
रणा स्वामी विष्णु	हरिपर्वत=साहिबराय तीर्थ
रत्नवर्धनेश	रा : ५ : १६३
रत्न स्वामी	रा : ४ : ७११
रवी	नी : १०१७–१०१८,
राज्ञी चक्र	रा : १ : १२२
राजदेव कालमूर्ति	शारदा : ले ख : ११
राज बास	नी : ११७१
राजेश्वर	रा : १०२०–१०२६
राजस्वामी	रा : ८ : १८२२
रामस्वामी	रा : ४ : २७५, ३२७

नाम	आधार
रिल्हणेश्वर	रा ८ २४०९
रुद्रेश्वर	रा ८ ३३९०
रुपेश्वर हर	लुडाव मंदिर
रुद्रेश	रा ८ ३३९०
लक्ष्मण स्वामी	रा ४ २७६, ६४१
लोक भवन मन्दिर समूह	लारिक्पुर
लोक श्री	सिकन्दर के मा की कब्र
वराह प्रतिमा	रा ६ २०६
वरुणेश्वर	नी १०२०–१०२६
वर्धमानेश	रा २ १३३
वर्धमानस्वामी	रा ३ ३५७ ६ १९१
वशिष्ठेश	,, , ,,
विक्रमेश्वर	रा ३ ४७४
विचार नाग	ध्वसावशेष
विजयेश	रा १ ३८
विजयेश्वरमें ३०० मंदिर	पीर हसन पृष्ठ १७९
विपुल केशव	रा ४ ४८४
विशोहित	नी १०२०–१०२६
विश्वकर्मा	रा ३ ३५७
विष्णु पद	नी १२६९
विष्णु स्वामी	रा ३ ३६३
विष्णु स्वामी	रा ५ ९९
वैन्यस्वामी	रा ५ ९७, ९९
वैवत्तिलेश्वर	नी १०२५
शक्ति	रा १ १२२
शत कपालेश	रा १ ३३५
शतशृङ्ग गदाधर	नी ११५४–११६२
शम्वेश्वर	रा ५ २९६
शम्भु	नी १०२०–१०२६
शरमन्दिर	जियारत खिच
शाङ्गिण	नी ११८९
शारदा	रा १ ३७
शारिका	रा ३ ३४९
शिव मंदिर	रत्नवर्धन निर्मित
शिव त्रिमुख	गरूर
शूरवर्म स्वामी	रा ५ २३

नाम	आधार
शरी लिंग	शेरी
शंकर गौरीश	रा ५ १४८
शंकर गौरी	रा ५ १५८
शेषशायी	रा ४ ५०८
शंकराचार्य मंदिर	शंकराचार्य पर्वत
श्रीकण्ठ	रा ८ ३३५४
शृङ्गारभट्ट मठ	रा ८ २४२६
सकुनी	नी १०७–१००८
सतमुख	नी ११८
सद्भाव श्री	रा ३ ३५३
सदा शिव	रा ५ ४१
सदाशिव	रा ५ १६३
सन्ध्या	रा ७ १
सन्धीश्वर	रा २ १३४
सप्तर्षि	नी १२६३
सप्तर्षि (सुमुखसमीपस्थ)	नी ११५९
समरस्वामी	रा ५ २५
समेश	नी १०२२
सरस्वती	रा, १ ३५
ससानक	नी १००९
सहस्रधारा	नी १२६८
साम्वेश्वर	रा ५ २९६
सुदर्शन हर	नी १०२०–१००९
सिंहराज	रा ६ १७६
सिंहराज (लहर)	रा ८ १८२२
सिंहस्वामी	रा ६ ३०४
सुगत	रा ४ २५९
सुगन्धेश	रा ५ १५८
सुचक्रेश	नी १०१७–१०१८
सुचन्देश	सुतलका मन्दिर
सुमन मन्दिर	रा ८ ३३५९
सुध्यस्वामी	रा ३ २६३
सुरभि स्वामी	नी १०१८
सुरेश्वर	नी १०२४
सुरेश्वर	रा ५ ३८
सुविजय	नी १०१४

नाम	आधार
सुरेश्वरी	रा : ५ : ३७, जो० : ६०५, ८७३
सूरजमुखी	रत्नापुर
सुर्यमती गौरीश	रा : ७ : ६७३
सोमेश्वर	रा : ७ : १६३५
सोमुख	नी : १०१३–१०१४
स्वयंभू	नी : १०२०–१०२६
स्वेदनाग मन्दिर	आइने अकबरी
संखेश	नी : १०२०–१०२६
हरवान	रा : १ : १७३
हरदोश्वर	नी : १०३
हरी स्वामी	नी : १०१९–१०२०
हर्षेश्वर	जो : ५१८,७३
हाटक स्वामी	शुक ब० : ५५१
हिमाचलेश	नी : १०२०–१०२३
हुताश	जोन : बम्बई : ७७०

हुष्कर मन्दिर-विहार समूह

सोलहवी शताब्दी सन् १५४० ई० का लेखक हैदर मल्लिक केवल श्रीनगर मे मन्दिरो की सख्या १५० देता है। सन् १८३४ ई० मे पर्यटक वाइन श्रीनगर आया था। उसने संख्या ७०–८० दी है। मैंने उक्त मन्दिरो की तालिका केवल राजाओ, सामन्तो, मन्त्रियो आदि विशेष पुरुषो द्वारा जो निर्मित किये गये थे तथा जिनका ऐतिहासिक महत्व एवं प्रमाण है, दिया है। प्रत्येक गृह मे गृहदेवता, ग्राम मे ग्रामदेवता, नगर मे नगर या पुरदेवता थे। सरोवर, कुण्ड, नाग तटो पर मन्दिर थे। मन्दिर स्वयंभू तथा प्रतिष्ठित दोनो थे। प्रतिष्ठित मन्दिरो मे गढ़ी प्रतिमायें थी, जिनमे लेप्य एवं लेख्य भी सम्मिलित थे। सार्वजनिक एवं पुरातन मन्दिरो के अतिरिक्त प्रायः निजी व्यक्तियो के निर्मित मन्दिर थे, उनका उल्लेख इतिहास मे किंवा ग्रन्थो मे नही किया गया है। जिन राजाओ, सामन्तो, मन्त्रियो या राजवंशियो ने निर्माण किया था उन्हे ऐतिहासिक प्रसंग मे वर्णन किया गया है। उन्ही के आधार पर तथा नीलमत वर्णित देवस्थानो सहित उक्त तालिका बनायी गयी है। उनका जहाँ उल्लेख किया गया है, आधार ग्रन्थो का नाम दिया है। जिनका नाम नही मालूम है, जिन स्थानो पर खण्डित है, वहाँ मन्दिरो के स्थानो का नाम दिया है।

अबुलफजल के अनुसार १३५ विभिन्न देवताओ के देवस्थान थे। उनके अतिरिक्त ७०० स्थानो पर नागमूर्तियों की पूजाएँ होती थी। प्रत्येक देवस्थान तथा मूर्तियो के साथ कोई न कोई गाथा जुटी थी। यह अवस्था उस समय थी जब उसके काश्मीर आगमन के लगभग २५० वर्ष पूर्व मूर्तियाँ भंग तथा देवस्थान अपवित्र किये जा चुके थे। अबुलफजल के २५० वर्ष पूर्व काश्मीर मे कितने मन्दिर तथा देवस्थान थे उक्त आँकडो से अनुमान लगाया जा सकता है।

पीर हसन (पृष्ठ १७९) स्वयं स्वीकार करता है कि केवल विजयेश्वर मे ३०० से अधिक मन्दिर थे। वे सब तोड दिये गये थे।

परिशिष्ट—ङ

आश्रम

नाम	आधार
अनन्त आश्रम	नी १८२
अप्सराश्रम	नी १८६
कश्यप आश्रम	नी १८०
कालिका आश्रम	नी १०५
कीचाश्रम	शुक २ १२९
कृत्याश्रम	रा १ १४७
खण्ड पुच्छाश्रम	नी १३०४
खूयाश्रम	रा ८ ७६९८ जैन ४-६२७ शुक २ ९७३ लोकप्रकाश ७६
गन्धर्वाश्रम	नी १८६
गुह्यक आश्रम	नी १८६
दुग्धाश्रम	जैन ४ १०९
धौमाश्रम	नी १२९५
निशाकर	नी १८३
नृसिंहाश्रम	नी १८४
वालाश्रम	लोकप्रकाश २६
महादेव आश्रम	नी १८१-१८३
मक्षाश्रम	नी १८६
मोक्षाश्रम	लोकप्रकाश ३७
रामाश्रम	नी ११४९
वशिष्ठाश्रम	वगथ
विष्णुपद (कामसर)	नी १८०
विष्णवाश्रम	नी १२९३
सूर्याश्रम	लोकप्रकाश २८
हायाश्रम	रा ८ २९३७

परिशिष्ट—च

क्षेत्र

नाम	आधार
तुंगेश्वर क्षेत्र	नी १३५१
नन्दि क्षेत्र	रा १ ३६ ८ २३६५
नन्दीश क्षेत्र	रा १ ११३
वाराह क्षेत्र	रा ६ १८६ जो० ८८१
विजयेश्वर क्षेत्र	रा १ २७५
विश्वैश्वसर क्षेत्र	रा ५ ४४
सुरेश्वरी क्षेत्र	जो० ५२ ५ ३७
शारदा क्षेत्र	रा १ ३७

परिशिष्ट—छ

पीठ

शारदा पीठ :

विजयेश्वर पीठ :

शिवधारिणी (अच्छोद)   तन्त्र साहित्य में वर्णित

प्रारम्भ में केवल ४ पीठ थे। कालान्तर में उनकी संख्या १८, ५२, १०८ तक हो गयी है। अच्छोद पर शिवधारिणी देवी का स्थान था।

—∞—

परिशिष्ट—ज

विहार

नाम	आधार	नाम	आधार
अनंग भवन विहार	रा० : ४ : ३	जयदेवी विहार	रा : ४ : ५०७
अमृत भवन	रा : ३ : ९	जयमती विहार	रा : ८ : २४६
इन्द्र भवन	रा : ३ : १३	जयेन्द्र	रा : ३ : ३५५, ६ : १७१
इशान	रा : ४ : २१६	जालौर विहार	रा : १ : ९८
उदय विहार	रा : ८ : ३३५२	जुष्कपुर	रा : १ : १६९
कय्य	रा : ४ : २१०,२१६	टानरुद्र मर्ग विहार	शारदा लेख स० : ८
किन्नर ग्राम	रा : १ : १९९	दिद्दा विहार	रा : ६ : ३०३
क्रीडाराम	रा : ४ : १८४	धर्मारण्य	रा : १ : १०३
कोट विहार	लोकप्रकाश : ३९	नदवन विहार	रा : २ : ११
कृत्या	रा : १ : १४६ शु० : २४४	नरेन्द्र भवन	रा : १ : ९३
कृत्याश्रम विहार	रा १ : १४७	निष्पालक	रा : ५ : २६२
खादना विहार	रा : ३ : १४	प्रकाशिका	रा : ४ : ७९
चंकुण विहार	रा : ४ : २११	भलेरक	रा : ८ : २४१०
चंकुण विहार श्रीनगर	रा : ४ : २१५	भिक्षा विहार	रा : ३ : ४६४
चिन्ता विहार (वितस्तातट)	रा : ८ : ३३५२	भुट्टपुर	रा : ८ : २४३१
जय विहार	रा : ३ : १८०	महाकार विहार	रा : ४ : ५०७

नाम	आधार
रत्नदेवी	रा : ८ : २४०२, २४३३;
रत्नावली	रा : ३ : ४७६
राज विहार	रा : ४ : २००, ७ : १३३
रुद्र विहार	जैन : ४ : ३१५
लुद्र भट्ट विहार	जैन : ४ : १७५
लोष्ठा विहार	जैन : ४ : १६९
वैवेल्लदेव	शारदा लेख सं० : ३
सम्मा विहार	रा : ३ : १४
सुल्ला विहार	रा : ८ : ३३१८
सौरस	रा : १ : ९४
सर्वरत्न	रा : ३ : १८०
स्कन्दभवन	रा : ३ : ३८०
हुष्कपुर विहार	रा : ४ : १८८

प्रत्येक ग्रामों में विहार थे। बुद्ध एवं शिव दोनों की मान्यता थी, दोनों की पूजा होती थी। विहार तथा मठ दोनों साथही साथ बने थे। अशोक के समय काश्मीर में ५०० स्तूप थे। विहार और चैत्यों की गणना इसके अतिरिक्त है। हुयेन्त्सांग १०० विहारों का उल्लेख करता है।

परिशिष्ट—ञ

मठ

नाम	आधार
अधिष्ठान मठ	रा ६ : ६९६
अन्ध मठ	रा : ७ : १४९
अनन्त मठ	रा : ७ : १४२; विक्रमांक : १८ : ३९
अनन्त मठ	रा० : ७ : १८३
अलंकार मठ	रा : ८ : २४२३
आयुक्त मठ	जैन : ४ : २५८
आर्यं देशीयमठ	रा : ६ : ८७
उदय मठ	रा : ८ : २४३१
कलश मठ	रा : ७ : १४२
क्षेम मठ	रा : ६ : १८६
खेरी मठ	रा : १ : ३३५
गंगा मठ	रा : शु० : ६२
गोपाल मठ	रा : ५ : २४४
चक्र मठ	रा : ५ : ४०४
जयपुर मठ	रा : ४ : ५१२
जयमती मठ	रा : ८ : २४६
जयसिंह मठावली	रा : ८ : २४०८
जुहिला मठ	रा : ७ : १६९२०, जैन : ४ : ६७
तिलोत्तमा मठ	रा : ७ : १२०
थेडा मठ	रा : २ : १३५
दिद्दा मठ	रा : ६ : ३००, जैन : ३ : १७१, १८४
धम्य पत्नी मठ	रा : ८ : २४१९
नन्दा मठ	रा : ५ : २४५
नव मठ	रा : ८ : २४७
नाग मठ	रा : ८ : ६७३
नोन मठ	रा : ४ : १२
पाशुपत मठ	रा : ४ : ४६०
पंचालधारा मठ	क्षेमेन्द्र
वलाठ्य मठ	जै : २ : १४, ३ : १९३
वल्गा मठ	रा : ६ : ३०८
बल्ला मठ	जो : ५५३
ब्रह्म मठ	रा : ३ : ४७६
भगवान मठ	रा : ७ : १६७८
भट्टारक मठ	रा : ६ : २४०, ८ : २४२६; विक्रमांक : १८ : ११
भीमा मठ	रा : २ : १३५
भुट्टपुर मठ	रा : ८ : २४३१
भूतेश्वर मठ	रा : ८ : ३३५६

नाम	आधार	नाम	आधार
भेदा देवी मठ	रा १ १३५	शूर मठ	रा ५ ३९,४०,२२३
मेखक मठ	रा ८ ३३५४	श्वश्रु मठ	जोन ११५
मठ (कलश निर्मित)	रा ७ ६०८	श्रीकण्ठ मठ	रा ६ १८६
मध्यदेशीय मठ	रा ६ ३००	शृंगार मठ	रा ८ २४२२
मध्य मठ	रा १ २००	शृंगारभट्ट मठ	रा ८ २४२६
मंख मठ	रा ८ २४३	सचट मठ	क्षेमेन्द्र वर्णित
मेघ मठ	रा ३ ८	संग्राम मठ	रा ६ ९९, ८ ६०९
रत्नदेवी मठ	रा ८ ४३९		१८ २४ विक्रमांक
रत्नपुर मठ	रा ८ २४३४	समुद्र मठ	जोन १११, शुक ३
राजधानी मठ	रा ७ ९६१		रा १२ ,६२०
लोष्ठिका मठ	रा ७ १२०८ ४३५	सिल्हन मठ	रा ७ १८३
वटेश्वर लिंग मठ	रा १ १९५	सिंहपुर मठ	रा ८ २४४२
वितस्ता सिंधु संगम मठ	रा ६ ३०५	सिंहराज मठ	रा ६ ३०४
,, ,, अनन्त निर्मित	रा ७ २१४	सुभटा मठ	रा ७ १८०८ २१८३
विजयेश्वर मठ	रा ४ ६९६		रा १८ ४४ विक्रमांक
विद्या मठ	१८ २१ (विक्रमांक देवचरित)	सुमन मठ (भूतेश्वर)	रा ८ ३३५५
		सुमन मठ त्रिगामी	रा ८ ३३५६
वैकुण्ठ मठ	रा ८ २४३३	सुमन मठ श्रीनगर	रा ८ ३३५९
शुल्क लेत्र मठ	रा १ ७०	सूर्यमती मठ	रा ८ ३३२१

परिशिष्ट—ट

तीर्थस्थान

नाम	आधार	नाम	आधार
अक्षिपाल नाग	नी ८९७	उतक स्वामी	नी १३५१
अंगिरस	नी १३३९ १३५२	एक पत्र	नी ८८२
अग्नितीर्थ	नी १५३ १२८३	कपटेश्वर	रा १ ३२, कपटेश्वर मा
अनन्त	नी १३५०	कपिञ	नी १०७० १४२६
अप्सरा	नी १०६७ १३१४	कपाल मोचन	नी १३१४
अमरेश्वर	७ १८३ १८५ अमरनाथ मा अमरेश्वर कल्प	काश्मीर मण्डल	वन १३० १०
		कुशेश्व	अनु० २५ ६१
अर्धनारीश्वर	अर्धनारीश्वर मा०	कोटि तीर्थ	नी ११३ कोटि तीर्थ मा
अश्वतीर्थ	नी १५३०	कद्र स्वामी	नी १२८५
अष्टावक्र तीर्थ	अनु० २५ ४१	गया (शादीपुर)	गया मा०
ईशेश्वर	रा २ १३४ईशालय मा	गो तीर्थ	नी १२४९ गया मा
उचेश	नी १३२२		भृगीश स०

नाम	आधार	नाम	आधार
गोदावरी	गोदावरी मठ	वाराह तीर्थ	नी : १३४४
चक्रतीर्थ	नी : १२४९,१३१७	वहुरूप	नी : २५२; नी:९२८,
चक्रधर	नी : ९००,११४९		११२९, १३३७
चन्द्र	नी : १३१७	बिन्दु नादेश्वर	नी : १३५१
चन्द्रभागा	अनु० : २५ : ७	भगवती तीर्थ	ध्रुव : १ : १ : ७
चीर मोचन	रा : १ : १४९	भद्रकाली (वदर वन)	नी: ५८५, ६५०, ६५१,
जटा गंगा	जटागंगा मा०		७८६
ज्येष्ठेश्वर	१ : १२४ ज्येष्ठा देवी मा०	भूर्ज स्वामी	नी : १३३८
तुंगेश	नी : १३५१; रा : २ : १	भृगु	नी : १३३९
त्रिपुर	५ : ४६ त्रिपुरा प्रादुर्भाव	भृगु तीर्थ	नी . १३
त्रिसन्ध्या	त्रिसन्ध्या मा : आदिपुराण	मत्स तीर्थ	नी : १३१८
	नन्दीश्वरावतार श्रीशिव	महादेव पर्वत	नी १३२०
	स्वामी	मारुत	नी : १३३९
दुग्ध गंगा (विस्तृत वर्णित)		मार्तण्ड	रा . ४ : १९२
देवतीर्थ	नी : १२४९, १२९८	माहेश्वर कुण्ड	नी . १७८, आदि
देविरा	नी . ११५	राज्ञी (तूलमूल)	नी : १३१२, १३५२
ध्यानेश		रामाश्रम रामतीर्थ	नी : १३१२
नन्दिकुण्ड	नी : १२४५	रुद्र तीर्थ	नी : ११०-११४, १३३९
नन्दि क्षेत्र	रा : १ . ३६	ऋषि तीर्थ	नी: १३१५; जोन० ८८१
नन्दि रुद्र	रा १ : १२७	वह्नि तीर्थ	नी : १३१७
नन्दि रुद्रतीर्थ	रा : १ : १२७	वर्धमानेश	रा २ : १२३
नन्दीश (नन्दि कुण्ड—नन्दि पर्वत, नन्दीश्वर)	रा . १ ११३ अगिरा वर्णित	वरुण तीर्थ	नी : १३१६
		वसुतीर्थ	नी : १३३९
नाग तीर्थ	नी : १३१७	वामन	नी : १३१७
नील कुण्ड	नी : १२८८	विजयेश्वर	१ २८, नी : १०५६,
नौबन्धन	नी ४१, १४६, १६१	वितस्ता कुण्ड	नी १२८८
पाण्डव तीर्थ	नी . १३२२	वितस्ता तीर्थ	रा १ . २८, २९, १०२,
पात्र तीर्थ	नी १३३३		४ : ३०१
पिंगलेश्वर	नी : १३०४, १०२०-	वन	८२ : ८९-९१
	१०२६	विनत्त स्वामी	नी : १२८५
पुष्कर	नी : ८३, ५९७, ६००	विश्वेश	नी : १३३९
	१००१, १३४३	वृद्ध तीर्थ	नी २२०
प्रभास	नी : १३१६	वैश्रवण तीर्थ	नी . १३१३, १३३८
प्रयाग (घादीपुर)	रा ४ : ३९१	शतशृङ्ग	नी : १३३८
बडव-तीर्थ	वन : ८२ : ९०-९६	शारदा	रा . १ : ३७
ब्राह्मण कुण्डिका	नी : १२४९	शारिका	रा : ३ : ३३९,-३४९

नाम	आधार
शुण्डिका	नी : १२४६
शूल घात	नी : १२८८
सन्ध्या	नी : १३३९
सप्तर्षि	नी : १३१८
सिन्धु नदी	अनुपर्व : २५ : ८
सुरेश्वरी	४ : ४०, ४१; जो : ५१; नी . १३१८
सोदर	रा : १ : १२३, १२४, २ : १०९
सोमतीर्थ	रा : ८ : ३३६०; नी : १३३०, १३५१
स्कन्द	नी : १३१८
स्वयम्भू	रा : १ : ३४; नी० : २५२
हरमुकुट	रा : १ : १०७

अबुलफजल ने महाभारत के समान समस्त काश्मीर मण्डल को तीर्थ माना है। उसके अनुसार ४५ महादेव, ६४ विष्णु, ३ ब्रह्मा तथा २२ देवस्थान दुर्गा के थे।

महाभारत मे अंगिरा, धौम्य, लोमश तथा पुलस्त्य ने तीर्थों की तालिका दी है। उनके देखने से प्रकट होता है कि सर्वाधिक तीर्थ ऋषि तथा पितरो के थे। उसके पश्चात नदी तीर्थ थे। देवताओ मे शिव अर्थात् रुद्र के सर्वाधिक तीर्थों का नाम मिलता है। अंगिरा की तालिका मे ६२ तीर्थ है। उनमे ऋषि तथा पितर के २४, नदियो के २१, पर्वतो के ५ एवं शिव के २ ब्रह्मा के ३ तथा विष्णु के एक भी नही है। धौम्य की तालिका मे ८३ तीर्थों का उल्लेख है, उनमे ३९ ऋषि तथा पितर, नदी १७, पर्वत ४, शिव २, ब्रह्मा ४, तथा विष्णु के २ है। लोमश की तालिका मे तीर्थों की संख्या ८९ है। उनमे ऋषि तथा पितर ३४, नदी २१, पर्वत ५, शिव १, ब्रह्मा ३ तथा विष्णु का एक भी नाम नही है। पुलस्त्य की तालिका मे तीर्थों की संख्या ३२२ है। उनमे ऋषि-पितरो के ७७, नदी ५४, पर्वत ५, शिव ३१, ब्रह्मा १६ तथा विष्णु के ८ तीर्थों का उल्लेख मिलता है। उत्तर दिशा मे सर्वाधिक तीर्थ थे। अंगिरा के तालिकानुसार उत्तर १४, पूर्व २, दक्षिण २, पश्चिम मे ६ तीर्थ हैं। धौम्य के अनुसार, उत्तर ८, पूर्व ७, दक्षिण ११, पश्चिम मे १३ तीर्थ थे। लोमश के अनुसार उत्तर १५१, पूर्व १५, दक्षिण १, पश्चिम मे ७ तीर्थ हैं। पुलस्त्य के अनुसार उत्तर ७०, पूर्व २३, दक्षिण १२ तथा पश्चिम मे ९ तीर्थ हैं। यह तीर्थ संख्या समस्त भारत की है। काश्मीर मण्डल मे प्रत्येक महत्वपूर्ण जलस्रोत, जलाशय, आश्रमादि तीर्थ थे। उनकी संख्या पूर्ण नहीं है। ग्रन्थों तथा स्थानीय लोगो से जो कुछ मालूम हुआ है, उसी के आधार पर तीर्थादि की तालिकायें बनाई गयी हैं।

सारिताओं, जलस्रोतो, नदियो के उद्गमस्थान, घाट, यज्ञस्थलो की गणना तीर्थों मे वैदिक काल से की जाती रही है। तीर्थों मे पवित्र जलाशय किंवा जलस्थान को महत्व दिया गया है (ऋ० : ८ : ४७ : ११; १ : ४६ : ८; १ : १७३ : ११; १ : १६९ : ६; ८ : ७२ : ७; १० : ३१ : ३; ९ : ९७ : ५३; १० : ११४ : ७–८; अथर्व : १८ : ४ : ७; वाज० सं० ३० : १६; तैत्तिरीय ब्रा० : ३ : ४ : १ . १२) । जल में देवताओ का निवास सुदूर प्राचीन काल से माना जाता रहा है। काश्मीर मे प्रत्येक नाग किंवा जलस्रोतो मे नाग का निवास माना जाता है। ऋग्वेद मे नदियो की प्रार्थना की गयी है (ऋ० : १० : ६४ : ९)।

वैवलोन की प्राचीन सभ्यता काल मे तीर्थ-यात्रायें होती थी। नदियो के सगम तक यात्रायें की जाती थी। इंगलैण्ड मे ईशापूर्व केल्टिक मन्दिरो की यात्रायें की जाती थी। आयर्लैण्ड मे सरिता, नदी, कूप मे दैवत्व की भावना मानी जाती थी। कुर्दिस्तानी, मेसोपोटामिया, अल्जीरिया, मोरक्को तथा मिस्र के लोग प्राग् ईसा काल मे स्मारको की यात्रा करते थे। कालान्तर मे नदी तट पर बने पवित्र स्थान, संगम, समुद्र संगम, समुद्रतटीय विशिष्ट स्थान भी तीर्थ की श्रेणी मे आ गये।

तीर्थ स्वयंभू एवं कृत्रिम दोनो थे। मन्दिर, आश्रम, यज्ञस्थल आदि कृत्रिम थे। भूमि से अग्नि निकलना, पर्वतो पर चमत्कारिक स्थान भी तीर्थ की श्रेणी मे

गिन लिये गये। कालान्तर में नाग, यक्ष, किन्नर के स्थान, वन, आश्रम आदि भी तीर्थ हो गये। उत्तर वैदिक काल में पितरों के श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान आदि के स्थान भी तीर्थ मान लिये गये। स्वयंभू लिंग भी तीर्थों की तालिका में आ गये। महापुरुषों के जन्म-स्थान एवं कर्म स्थानों को भी तीर्थ माना जाने लगा। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि के जन्म, कर्म तथा निर्वाण स्थानों की गणनाःतीर्थों में होने लगी। वहा की यात्रा करना पुण्य माना जाने लगा। यह बाते ईसाई तथा मुसलिम धर्मों म प्रवेश कर गयी। महात्मन् ईसा तथा पैगम्बर साहब के जन्म, कर्म तथा मृत्यु स्थान तीर्थ बन गये।

एक ही नाम से अनेक देवस्थान एवं तीर्थ बन गये। काशी में भारतवर्ष के सभी तीर्थस्थानों के प्रतीक स्वरूप मन्दिरो, स्थानादि का निर्माण किया गया। काश्मीर से निकलकर समस्त भारत की यात्रा कठिन थी। अतएव भारतवर्ष के प्रत्येक तीर्थ एवं देवस्थानों के नाम से वहां तीर्थ एवं देवस्थान बना दिये गये। यहीं तक नहीं, श्रीनगर से मूल सोदर तीर्थ दूर था अतएव उसे श्रीनगर में बनाया गया। इसी प्रकार शारदा तथा भेदा तीर्थ को सुगम्य स्थान पर बनाया गया। उनकी यात्रा का माहात्म्य वही रखा गया, जो मूल तीर्थयात्रा का माना जाता था। यही कारण है कि समस्त काश्मीर मण्डल को तीर्थ मान लिया गया। क्योंकि पग-पग पर, वहा मन्दिरो, मठों, विहारों, स्तूपों, चैत्यों, आश्रमों, की अवलियाँ परिलक्षित होती थी। तीर्थों में भी अवान्तर तीर्थ बनने लगे। एक ही तीर्थस्थान में शैव, वैष्णव, शाक्त गाणपत्य, पाशुपत, तान्त्रिक आदि मतों, सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न तीर्थ बन गये। अनन्तर उप-सम्प्रदायों के तीर्थ भी बनने लगे। इसी प्रकार ऋषियों के स्थान, आश्रमों में एवं गुरुकुल विद्यापीठों में परिणत हो गये। पुण्यार्जन हेतु तीर्थों में कल्पवास एवं मृत्यु की भावना प्रबल होती गयी। इसका अनुकरण विश्व के सभी धर्मों ने किया है।

परिशिष्ट—ठ

जियारतों आदि में परिणत देवस्थान

नाम देवस्थान	नवीन रूप	नाम देवस्थान	नवीन रूप
सुन लका मन्दिर	जैनदव	रणस्वामी	जियारत
प्रवरेश्वर	जियारत बहाउद्दीन साहब	तारापीड मन्दिर	जामा मसजिद
महाश्री	जामामसजिद समीपस्थ	नरेन्द्र स्वामी	जियारत नरपीरस्तान
काली श्री	खनखाह सैय्यदअली हमदानी	मठ अम्बुरहर	जियारत फखरुद्दीन साहब
ज्येष्ठ सेन भैरव	कब्रिस्तान	लोकेश्वरी	मजार ए सलातीन
विशक सेन भैरव	कब्रिस्तान	सुपकर	जियारत
सद्भाव श्री	जियारत पीरहाजी मुहम्मद	खोन मुख	जियारत
स्कन्दभवन	जियारत पीर मुहम्मद बसूर	सूर्यकण्ठ (गुरु लल्लेश्वरी)	जियारत
त्रिभुवन स्वामी	थग बाबा साहब	पद्म स्वामी	जियारत मीर मुहम्मद हमदानी
दिद्दा मठ	मजार मलिक साहब	मन्दिर पामपुर	जामा मसजिद
विश्वेश्वर	मसजिद	शर मन्दिर	जियारत ख्वाजा खिज्र
अमृतभवन	जियारत और कब्रिस्तान	भीम स्वामी गणेश	जियारत मखदूम शेख हमज्वा
रणेश्वर	मदनी साहब की मसजिद	देवस्थान	चरारे शरीफ

परिशिष्ट—ड

भग्नावस्था में देवस्थान

देवस्थान	दस्तगीर साहेब	विजयेश्वर	जागा मसजिद
देवस्थान	पटमल्लू साहेब	भीममेशव	जियारत बाबा बामदीन
ऋषी	ऋषी साहेब	मन्दिर	रुकनुद्दीन ऋषी।
नारी श्री	नर पोरस्थान		

परिशिष्ट—ढ

भग्नावस्था में आज स्थित कुछ मन्दिर एवं देवस्थान

१ मन्दिर—बादी
२ बुनयार
३ शेरी—लिंग
४ मन्दिर फतेहगढ
५ नारायण स्थल
६ नरेन्द्रेश्वर = तापर
७ शकर गोरीश
८ मुगन्धेश्वर = पाटन } पाटन
९ शिव मन्दिर = रत्नवर्धन निर्मित } पाटन
१० लका = सुन लक
११ द्रेग मन्दिर समूह = फिरोजपुर
१२ मन्दिर = मनसा बल
१३ मुक्ता केशव } परिहासपुर = परसपोर
१४ परिहास केशव } परिहासपुर = परसपोर
१५ महावाराह } परिहासपुर = परसपोर
१६ गोवर्धनधर } परिहासपुर = परसपोर
१७ राज विहार } परिहासपुर = परसपोर
१८ वैन्य स्वामी = परसपुर उदर एकमनपुर
१९ मन्दिर = मलिकपुर
२० मन्दिर = परसपुर
२१ जयदेवी } अन्दर कोट
२२ मन्दिर समूह } अन्दर कोट
२३ शिव त्रिमुख = पकूर
२४ क्षीर भवानी = पुन निर्मित तथा जीर्णोद्धार
२५ शकराचार्य = जीर्णोद्धार शकराचार्य पर्वत
(पसपहर—बौद्ध नाम)
(तख्त सुलैमान—मुसलिम नाम)
२६ बहुस्यातकेश्व भैरव = सातवा पुल, दुग्ध गगा, वितस्ता सगम
२७ क्षेम गोरीश्वर = सातवा पुल, दुग्ध गगा, वितस्ता सगम
२८ थ्युन मन्दिर समूह = सिन्ध उपत्यका, थ्यून ग्राम
२९ भूतेश्वर मन्दिर समूह बुतसर
३०. वशिष्ठाश्रम = बगथ
३१ ईशेश्वर = ईशावर
३२ पुराधिष्ठान = पण्डरेथन
३३ जेवन कुण्ड (बिल्हण वर्णित) = श्रीनगर से ७ मील दक्षिण पूर्व
३४ ज्वाला ख्यू
३५ अवन्ति स्वामी } अवन्तीपुर
३६ अवन्तीश्वर } अवन्तीपुर
३७ नारायण स्थान = नरस्थान
३८ पयार मन्दिर समूह = पयार
३९ किपुल = अवन्तिपुर—पयार मध्य
४० मम्मेश्वर = मामल, लिदर उपत्यका
४१ गणेश = त्रिदर मध्य स्थित
४२ मार्तण्ड
४३ लोकभवन मन्दिर समूह = लारिकपुर
४४ कपटेश्वर मन्दिर समूह = कुथर
४५ विरह नाग = वेरीनाग
४६ वितस्तारा = वियवतूर

परिशिष्ट—ण

जैनुल आबदीन

जैनुल आबदीन की तुलना भारतसम्राट अकबर से की जा सकती है। ललितादित्य का समय काश्मीर इतिहास का स्वर्ण युग है। काश्मीर के शाहमीर तथा चक-वंशजो मे जैनुल आबदीन जैसा एक भी प्रतिभाशाली व्यक्ति दिखायी नही देता, जिसे लोग स्मरण कर सकें। सुलतान ने ललितादित्य के समान दिग्विजय नही की थी; तथापि उसने काश्मीर को उठाने मे ललितादित्य से कम प्रयास नही किया। इस दिशा मे दोनो को सफलता मिली थी। दोनो को उनके देशवासियो का सहयोग प्राप्त था। मुसलिम सुलतानो मे एक भी ऐसा चरित नहीं मिलता, जिसकी तुलना जैनुल आबदीन अथवा ललितादित्य से की जा सके। उसे दिवंगत हुए, शताब्दियाँ बीत गयी परन्तु उसका नाम काश्मीर के प्रत्येक नर-नारी की जिह्वा पर आज भी है।

सम्राट अकबर से एक शताब्दी पूर्व हुए जैनुल आबदीन ने अकबर के सुधारवादी कार्यों एवं धर्म निरपेक्ष भावना के लिये मार्ग प्रशस्त किया था। दोनो शासक धर्म निरपेक्ष थे। परन्तु अपने धार्मिक विचारो मे दृढ थे; दोनो सहिष्णु किन्तु दृढव्रती थे, दोनो ही उदार किन्तु पराक्रमी थे, अपने देश एवं प्रदेश के भाग्य-विधाता थे। दोनो ने देश को उसके भाग्य पर नही छोडा था। बल्कि देश के भाग्य का निर्माण किया था। दोनो ने अर्धशताब्दी तक शासन किया था। दोनो जनमत को अपने साथ लेकर चले थे। किन्तु जनमत-प्रवाह मे स्वयं प्रवाहित नही हुए थे। प्रवाह को अपने इच्छानुसार मोडा था। दोनो परम उत्साही—परन्तु गम्भीर थे।

दोनो ने विद्वानो का आदर किया था। दोनो ललितकला के प्रेमी थे। कलाविदो का चारो ओर से संग्रह किया था। दोनो ने दबे लोगो को उठाया, प्रोत्साहित किया और प्रेरणा दी थी। दोनो ने हिन्दुओ मे आशा संचार किया था, उनकी स्थिति उठाने का प्रयास किया था। उनका आदर किया था। दोनो ने धर्म के मौलिक सिद्धान्तो को समझा था। दोनो मानवता को उन्नत पथ की ओर ले चले थे। दोनो ने मानवता को धर्म के स्थान पर प्राथमिकता दी थी। दोनो ने मानव-मानव मे धर्म-सम्प्रदाय, जाति पाँत एव वर्ण के कारण भेद नही माना था। दोनो ने कुसंस्कारो मे जकडी जनता को मुक्त कराने का प्रयास किया था। दोनो ने कट्टर साम्प्रदायिकता के उभार को देखा था। उसके पाखण्ड को देखा था। उससे उत्पन्न होने वाली भयंकर विभीषिका को देखा था। दोनो ने उसके खोखले रूप को देखा था। दोनों ने उसे दूर से ही नमस्कार किया। ये सभी बातें तत्कालीन धर्मप्रवर्तक, मुल्ला, मौलवियो, शासकों, नवाबो तथा मुसलिम शासकों मे मिलनी असम्भव थीं।

उन्होंने असम्भव को सम्भव किया, समाजसुधार के लिये ठोस कदम उठाया, कठिनाइयाँ मार्ग में आयीं। किन्तु वे झंझावात की तरह उड गयीं। समाज उनका ऋणी हुआ और उसने उन्हें नमस्कार किया।

दोनों ने जनता के आर्थिक स्तर को उठाने का प्रयास किया। भूमि का सर्वेक्षण कराया। कृषकों के स्वामित्व अधिकार को सुरक्षित रखने के लिये व्यवस्थायें कीं, जो गत शताब्दी तक चलती रहीं। विवाद निराकरण के लिए पत्रादि अर्थात् रिकार्डों के रखने की समुचित सुरक्षित व्यवस्था की। दोनों ने विदेशी विद्वानों, कलाकारों का स्वागत किया। विदेशों के सम्पर्क से कला तथा व्यवसाय में उन्नति हुई। देश में नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना का उदय हुआ।

अकबर ने जजिया माफ किया था,—जैनुल आबदीन ने उसे नाममात्र के लिये रहने दिया। उसकी वसूली नहीं होती थी। अकबर मुसलिम धर्मप्रचारक नहीं था। उसने कभी हिन्दुओं को अपना धर्म त्यागने के लिये प्रोत्साहित नहीं किया। जैनुल आबदीन भी यदि कोई स्वतः मुसलिम धर्म में दीक्षित होता तो उसका स्वागत करता था। किन्तु दोनों ने मुसलिम धर्म त्याग कर, हिन्दूधर्म ग्रहण करने वालों को पूर्ण स्वतंन्त्रता दी थी।

अकबर साक्षर नहीं था। जैनुल आबदीन पठित विद्वान था। छवों दर्शनों का ज्ञाता था (श्रीवर : १ : २८) जैनुल आबदीन लेखक था। काव्यकार था (श्रीवर १ : ६ : ११)। वह संस्कृत का ज्ञाता था (श्रीवर : १ : ५ : ६४)। अकबर लेखक नहीं था। लेखकों का आदर करता था।

जैनुल आबदीन चरित्रवान था। आइने अकबरी के अनुसार अकबर की मुसलिम शरह के खिलाफ आठ पत्नियां थीं। जैनुल आबदीन की केवल तीन पत्नियों का ही उल्लेख मिलता है। उसकी प्रथम पत्नी बोधखातून किंवा ताज खातून थी। वह सैय्यद मुहम्मद बैहकी की कन्या थी। अन्य दो हिन्दू स्त्रियां थी। वह परायी स्त्री की ओर आख उठाकर देखता भी नहीं था। अकबर के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

अकबर राज्यकोष का मुक्तहस्त व्यय अपने ऊपर करता था। जैनुल आबदीन ने अपना व्यय ताम्र-खान की आय तक ही सीमित रखा था। अकबर शिकार खेलता था। जैनुल आबदीन ने काश्मीर में शिकार खेलना बन्द करा दिया था। प्राणिहत्या का वह प्रकृतितः विरोधी था। उसकी प्रवृत्ति अहिंसक थी। उसने अनेक सरोवरों, जलाशयों पर पक्षियों तथा मछलियों के मारने या शिकार खेलने का निषेध करा दिया था।

जैनुल आबदीन ने निरपेक्ष धर्म नीति के कारण सती प्रथा बन्द नहीं करवाई थी। (श्रीवर १ : ५ : ६१) किन्तु वह स्वतः काश्मीर में बन्द होती चली गयी। अकबर ने सती प्रथा प्रारम्भ से ही बन्द करा दी थी। अकबर ने अपने राज्यकाल के नवे वर्ष जजिया उठा दिया था। जैनुल आबदीन ने राज्य प्राप्त करते ही, उसे नाममात्र के लिए नगण्य कर दिया था।

दोनों ने प्रेरणा मुसलिम आदर्शों तथा कानूनों से न लेकर, काश्मीर तथा भारत की राजतंन्त्रीय परम्परा से ली थी। उनके प्रेरणास्रोत खलीफा नहीं थे। उन्होंने अपनी मान्यता कभी खलीफाओं से प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। उनका प्रेरणास्रोत पाश्चात्य किंवा मुसलिम जगत, अरब ईरान, ईराक, तुर्किस्तान नहीं था। दोनों ने यदि अनुकरण किया, तो ईरान के बादशाहों की परम्परा का। ईरान की भाषा, साहित्य तथा लिपि अपनाकर, उसे प्रोत्साहित किया। वे अपनी धर्मभाषा अरबी की ओर आकर्षित नहीं हुए। काश्मीर तथा भारत दोनों स्थानों पर एक ऐसे समाज का उदय हुआ, जो काश्मीर तथा भारतीय परम्परा से प्रभावित था।

जैनुल आबदीन के समय काश्मीर की जनता मुसलिमबहुल थी। नवमुसलिमों का प्रभाव था। तथापि काश्मीर से बाहर गये, हिन्दुओं को पुनः स्वदेश में लौटकर, आबाद होने के लिये सुलतान ने प्रोत्साहित किया। अकबर के सम्मुख यह प्रश्न ही नहीं उपस्थित हुआ था। दोनों ने धर्म एवं जाति के आधार पर राजसेवा

देने मे दुराव नही किया था। उनके समय सभी को अपनी कला, बुद्धि एवं विचक्षणता प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

श्रीवर ने जैनुल आबदीन को महादेव का अवतार माना है। एक स्थान पर उसे विष्णु का अवतार भी माना है (श्रीवर : ५ : १०४)। जोनराज उसे नारायण का अवतार मानता है। हिन्दुओ ने अकबर को अवतार नही माना है। अकबर ने स्वयं दीनइलाही मजहब चलाया था। जैनुल आबदीन कोई मत न चलाकर सनातन मुसलिम धर्म का अनुयायी अन्त तक बना रहा। अकबर योद्धा था, साहसी था, पराक्रमी था, साम्राज्य परिश्रम से बनाया था, युद्ध संचालन करता था। जैनुल आबदीन को जो परम्परागत राज्य मिला था उसी पर उसने सन्तोष किया था। कर्म की विचित्र गति है। अकबर तथा जैनुल आबदीन दोनो के विरुद्ध उनके पुत्रो ने विद्रोह किया। अकबर का कोई भाई नही था। अतएव उसे गृहयुद्ध तथा उत्तराधिकार के लिए संघर्ष नही करना पडा। जैनुल आबदीन अपने जीवन के अन्तिम दशक मे खिन्न व्यक्ति था। अपने पुत्रो के कारण उसने उत्तराधिकार एवं सब कुछ उनके भाग्य पर छोड दिया। अकबर के सम्मुख यह समस्या उपस्थित नही हुई, केवल एक पुत्र जहागीर होने के कारण।

यदि कल्हण का आदर्श राजा मेघवाहन एवं ललितादित्य थे, तो जोनराज का आदर्श राजा जैनुल आबदीन था। कल्हण तथा जोनराज दोनो ने अपने आदर्श राजाओ के गुण-वर्णन, उनके चरित्र-चित्रण मे अपनी काव्य-बुद्धि लगा दी थी। आदर्श से आदर्श प्रमाणित करने मे कुछ उठा न रखा।

जोनराज राजकवि था। अतएव उसके शब्दो मे कल्हण की निरपेक्ष एवं मुक्त भाव व्यंजना का दर्शन नही होता। जोनराज का कार्य कुछ कठिन था। कल्हण ने पूर्व राजाओ का वर्णन किया है। वे उससे शताब्दियो पूर्व हो चुके थे। जोनराज जीवित राजाओ का चरित्र लिख रहा था। जिसके आश्रय मे वह रह रहा था, जिसकी रचना लोग पढ़कर, उस पर आलोचनादि कर सकते थे, असंगत बातें लिखने पर वह राजा का कोपभाजन हो सकता था। अतएव कल्हण एवं जोनराज के वर्णनो मे अन्तर होना स्वाभाविक है।

जोनराज प्रशंसा के स्थान पर राजा की आलोचना कर नही सकता था। अतएव वह उसे नारायण का अवतार कहने मे भी नही संकोच करता। श्रीवर ने उसकी तुलना राम, युधिष्ठिर, विदयवर्मा, गोरक्ष, नागार्जुन, कर्ण तथा धर्मराज यम से की है (श्रीवर १ १ . १८, २२, ३०, ३१)।

जैनुल आबदीन ने स्वयं सेनाओ का नेतृत्व कर अभियान नही किया। किन्तु उसने सेना का पुनर्गठन वैज्ञानिक शैली पर किया। उसने आग्नेयास्त्रो का प्रयोग काश्मीर सेना मे किया। उसके समय मे तोप का प्रयोग काश्मीर मे किया गया (श्रीवर १ . १ ७२, ७३, ७७)। उसके सेनापती काशतिस्तान एवं लद्दाख मे आक्रमण करने गये थे। सिन्ध, हिन्दूवाट तथा भोट्ट विजय किया था। (श्रीवर १ १ ५१) उसकी ख्याति बंगाल, मालवा, आमीर, गौड, कर्नाट तक फैल गयी थी (श्रीवर १ . १ . २५)। जैनुल आबदीन सौम्य प्रकृति का व्यक्ति और स्वभाव से स्नेही था। वह क्रोध कम करता था, वह लोगों के ऋण से उऋण होना जानता था, अहसानमन्द था, अहसान फरामोशी उसकी प्रकृति के विरुद्ध थी। अपने पुत्रों के विरोध एवं विद्रोह करने पर भी उसने उन्हें दण्ड नहीं दिया। जसरथ गोक्कर के कारण उसने काश्मीर पर विजय प्राप्त कर राज्य पाया था। उस ऋण को वह भूला नहीं था। सौराष्ट्र, गिलान, मिस्र, मक्का, दिल्ली, खुरासान, गुर्जर से उसका सम्पर्क था (श्रीवर : १ : ६ : ३५)। जसरथ पर दिल्ली के बादशाह का कोप

हुआ तो दिल्ली की शत्रुता उसने मोल ली, अपने ऊपर आनेवाले संकट की चिन्ता न कर जसरथ को शरण दी और उसकी सहायता की।

सुलतान धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी धार्मिक था। दूसरे धर्मों का आदर करते हुए, अपने धर्मनिर्वाह मे कट्टर था। वह नियमित रूप से पाँचों वक्त की नमाज पढ़ता था। रमजान के मास मे रोजा रखता था। इस काल मे वह मांस भक्षण नहीं करता था। उसने मुल्ला, मौलवियों, ऋषियो के साथ विद्वान ब्राह्मणों को भूमिदान पूर्व राजाओ के अग्रहारो के समान किया था (म्युनिख : ७१ ए०)। वह अपने राजकार्य मे शेखुल इसलाम से परामर्श लेता था। वह इस्लाम-विधि-विरोधी कार्य करने मे हिचकता था। वह शराब का सेवन यदा-कदा कर लेता था। परन्तु उसमे मदमस्त नहीं होता था।

यदि कोई मुसलमान किसी गैरमुसलिम को सताता या ताड़ित करता था—मारता था, तो सुलतान उसे केवल मुसलिम होने के नाते क्षमा नही करता था। सादुल्ला मक्का से आया था। सुलतान उसके पास जाता था, उसका आदर करता था, उसके पास मुसलिम धर्म सम्बन्धी पुस्तकों का ढेर था। किन्तु जब उसने योगी को मारा, तो सुलतान बड़ा दुःखी हुआ और उसे अविलम्ब दण्ड देकर अपनी न्यायप्रियता का परिचय दिया। उस समय मुसलमान हिन्दुओं को काफिर समझते थे। उन्हें दण्ड देना, उन्हें परेशान करने मे रुचि लेते थे। हिन्दू त्रस्त थे। सुलतान की न्यायप्रियता के कारण मुसलमान आततायी भी नियन्त्रित हुए। उसने अनुचित कार्य करने पर पुत्रो, मन्त्रियो, राज्य कर्मचारियो तथा मित्रो को भी क्षमा नहीं किया। उसकी न्यायतुला सर्वदा सन्तुलित रहती थी। उसकी सहिष्णुता विश्व इतिहास मे आदर्श कही जायगी। जब कि तत्कालीन मुसलिम जगत मे, तथा ईसाई जगत मे, गैरमुसलिमो तथा सुधारक ईसाइयो का उत्पीडन समय का फैशन हो गया था। उस समय भी जैनुल आबदीन ने अपनी सहिष्णुता एवं धर्म निरपेक्ष भावना का त्याग नहीं किया। ईसाई एवं मुसलमान परस्पर विरोधी सम्प्रदायो पर अत्याचार, सम्पीडन एवं उपद्रव करने मे गर्व का अनुभव करते थे, उस समय सुलतान ने मत मतान्तरो के दर्शनो के उल्वण को अपनी अहिंसक एक सहिष्णु नीति से शान्त किया था (श्रीवर : १८३ - १२ १ . १ - ४१)।

उसके पिता के ताडन एवं अत्याचार के कारण जो हिन्दू स्त्रियां विधवा किंवा निरावलम्ब हो गयी थीं, उनके लिये उसने निवास हेतु आवास बनवाकर, उन्हे सहायता दी।

सुलतान का आचरण शुद्ध था। वह बात का धनी था। उसने कभी दास औरतें नही रखी। वेश्यागामी नहीं हुआ। उसने मुसलिम धर्म के अनुसार तीन से अधिक पत्नियाँ कभी नही रखी। मुसलिम सुलतानो मे लोक कल्याणकारी कार्य सुलतान जैनुल आबदीन से अधिक और किसी ने नही किया था। वह स्वयं अपने राज्य मे राज्य शासन व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करने के लिये परिभ्रमण करता था। राज्य पदाधिकारियो के कार्यों पर नियन्त्रण रखता था। वह वेष बदल कर, वास्तविक स्थिति जानने के लिये सडको पर विचरण करता था (हसन, - ११२ ए०, हैदरमल्लिक १२१ बी०)। उसका गुप्तचर विभाग सुसंगठित था। वह दैनिक समाचार उनसे प्राप्त करता था। (श्रीवर १२१ - ३६) उसने इस प्रकार अधिक मनमाना दण्ड, कर तथा घूस जो राज्य कर्मचारी लेते थे, उन्हे हटाया। घूस लेने वालो का पता लगने पर, उनसे लिया धन वापस दिलाता था। उसने मौलाना मल्ल एवाक जैसे व्यक्ति से भी घूस का धन देने वाले को वापस दिलाया था। काश्मीर मे अकाल पड़ा। बहुत से लोगो ने भोजपत्र पर बैनामा लिखाया, अकाल के पश्चात् उसने ऋण को मान्यता नही दी। (श्रीवर : १ २ - ९, ३४) वह अकाल एवं बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रो का नावों द्वारा तथा पैदल यात्रा करता था (श्रीवर : १ ३ : १७-२६)

उसने कर-पद्धति मे सुधार किया। घूस लेने वाले कर्मचारियो को निसंकोच, पक्षपातहीन दण्ड दिया (म्युनिख : ७० ए०)। उसने जमाबन्दी, खसरा, खतौनी, ग्रामीण रिकार्डों मे जाल न हो इसलिये विक्रय पत्र लिखित, होने का कानून बनाया। उसने बटखरो को ठीक तौल कर रखवाया। उसने सम्राट अशोक के समान राजनियमो को ताम्रपत्रो पर टकणित करवाकर, राज्यो मे जनता की जानकारी के लिये लगवा दिया (म्युनिख ; ६९ बी० श्रीवर . १ : ७ : ३७–३९)। उसने भिन्न-भिन्न क्रय-विक्रय की वस्तुओ का मूल्य ताम्रपत्रो पर खुदवा कर बाजारो तथा प्रमुख स्थानो पर लगवा दिया था (म्युनिख : ६९ ए०, ७० ए०)। उसने जैन गिर मे केवल सातवा अंश कृषिकर लेने की व्यवस्था की। उसे ताम्रपत्रो पर खुदवा कर भविष्य के सुलतानो को उन्हे मानने के लिए निवेदन किया। उसने भूमि की फिर तशखीश कराया और उपज का चतुर्थांश कर लगाया।

जैनुल आबदीन ने ध्वंसावशेषो से बिखरे खण्डहरो को पुनः सुहावना बनाने का प्रयास किया। उसने उद्योग-धन्धो के विकास के लिये ठोस कदम उठाया। उसने ठीक तौल, माप और बाटो को प्रचलित किया। व्यापारियो एवं व्यवसायियो से सौगन्ध लिया कि वे धोखाधड़ी से दूर रहेगे। उसने व्यवसाय आचरण सहिता पर जोर दिया। उसने शाल व्यापार को नवीन जीवन दिया। काश्मीर मे कागज बनाने का कारखाना खुलवाया। रेशम के व्यापार को प्रोत्साहन दिया। समरकन्द एव बुखारा का व्यापार काश्मीर के सम्मुख फीका पड गया था। शाल बीनने की नवीन शैली काश्मीर मे चलायी (श्रीवर : १ : ६ : ३०) उसने देश का उत्पादन तिगुना कर दिया था। भूमिहीनो को भूमि दी (श्रीवर १ १ . ४०) चोर चाण्डालो को भूमिकार्य मे लगा कर उन्हें पेशावर बनाया (श्रीवर १ . १ : ३९)।

उसने संगीत का प्रचार किया। सिकन्दर के समय सगीत तथा वाद्य, गान निषेध कर दिया गया था। जैनुल आबदीन ने उसे पुनः प्रचलित किया। खुज्य (खोजा) अब्दुल कादिर का शिष्य था। वह राग एवं ताल मे प्रवीण था। खुरासानवासी जादक कूर्म वीणा वादन मे प्रवीण था। मुल्ला जमाल तुरुष्क संगीत से सुलतान तथा लोक का रंजन करता था। जाफर आदि दुरुष्क तुरुष्क सगीत पारगत का सानिध्य उसे प्राप्त था (श्रीवर १ : ४ : ३१–३५)। वह नृत्य, गीत, वीणा सुनता था (श्रीवर १ : १ : ३३)।

उसके समय मे तारा तथा उत्सवा नामक सगीतपारगत, गीत गायिकाये थी। उनकी ख्याति चारो ओर फैली थी (जैन० . १ : ४ : १०)। वे अपने नृत्य एव गानो से उनचास प्रकार के भावो को प्रकट कर सकती थी। मुल्ला उदी खुरासानी ऊद वादन मे पारगत था। मुल्ला (ऊद) वाद्य मे प्रवीण था (श्रीवर : २ : २ : ५६)। उनके वाद्य को सुनकर सुलतान प्रसन्न होता था।

बहलोल से रबाब सुनता था (श्रीवर . २ . ५९)। इसी प्रकार अब्दुलकादिर गीत मे प्रवीण था। (श्रीवर : १ · ४ : ३१) सुलतान के संगीतप्रेम की कथा काश्मीर से बाहर भी फैल गयी थी। ग्वालियर के राजा ने संगीतशास्त्र के अनेक ग्रन्थो को जिसमे संगीत चूडामणि भी था, सुलतान के पास भेजा था। सिकन्दर के समय नाटक तथा उत्सव बन्द हो गये थे। उन्हें सुलतान ने प्रोत्साहन देकर पुनः प्रचलित किया। नट तथा नटी एव नाटककार काश्मीर मे आकर सुलतान का प्रश्रय पाने लगे। (श्रीवर . ४ : ८, १०; ७ . २) पामपुर, विजयेश्वर, (विजबिहरा) अनन्तनाग, बारहमूला एव श्रीनगर आदि मे उत्सव तथा मेले होने लगे। आतिशबाजियाँ होती थी। सुलतान उनमे स्वय भाग लेता था। जैनुल आबदीन के समय प्रथम पत्थर मिश्रित लकडी का पुल झेलम पर बनाया गया था। उसका नाम जैना कदल पड गया। वह दरद गाँव से दशवा पुल वितस्तापर था। मिरजा हैदर मल्लिक के अनुसार सुलतान ने बारह

मंजिला ऊँचा लकडी का रजदन प्रासाद निर्माण कराया। इसी प्रकार जैन दव अर्थात जैनगिरमे भी उसने भव्य भवन बनवाया।

जैनुल आबदान न्यायप्रिय था। न्याय व्यवस्था सघटित की थी। उसकी न्यायव्यवस्था आज-कल के समान मँहगी नही थी। कोई भी अपराधी चाहे वह कोई भी क्यो न हो उसे दण्ड देने मे हिचकता नही था (म्युनिख : ७४ ए०)। उसकी दण्ड सहिता उदार थी। फाँसी तथा सूली की सजा का वह पक्षपाती नही था। अत्यधिक भयकर अपराध करने पर ही मृत्युदण्ड दिया जाता था। उसका प्रयास यही होता था कि मृत्युदण्ड न दिया जाय, तो अच्छा है। साधारण अपराध के लिये हलका दण्ड दिया जाता था। मुसलिम शासन पद्धति के अनुसार चोरो का हाथ काट लिया जाता था। डाकुओ को मृत्युदण्ड दिया जाता था। उसने चोर, डाकुओ को कठोर दण्ड देने के स्थान पर, उनको बेडीबद्ध कर, सार्वजनिक उपयोगी एवं निर्माण का कार्य लिया था (म्युनिख : ७२ ए०)।

सुलतान म प्रतिहिंसा की भावना नही थी। वह किसी का अनायास कष्ट नही देना चाहता था। लद्दराज के पुत्र नसरत ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया था, परन्तु सुलतान ने तत्कालीन परम्परा के अनुसार उसकी सम्पत्ति का हरण कर, उसके कुटुम्ब को दण्डित करना उचित नही समझा। केवल नसरत को देश से निर्वासित कर दिया।

डोम लोग प्रायः चोरी किया करते थे। उनके चरित्र मे सुधार करने का प्रयास सुलतान ने किया। वे कारागार मे भेजे जाने की अपेक्षा कृषि मे लगा दिये जाते थे। जो लोग बेकारी के कारण चोरी करते थे उन्हे वह अन्न एव धन देकर सन्तुष्ट करता था। उसने गरीब जनता के लिए सत्र, अस्पताल तथा धर्मशालाओ का निर्माण कराया। यदि किसी ग्राम मे चोरी होती थी, तो वहा वह प्युनिटिव टैक्स लगा देता था। इससे गाव वाले चोरो को प्रश्रय देने से विरत हो गये थे। चोरो का वे स्वय सामना करते थे। जानते थे कि चोरी होने पर उन्हे ही दण्ड भोगना पडेगा। इस प्रकार सुलतान ने देश को चोरो तथा डाकुओ से निर्भय बना दिया था। कोई भी जगल मे कही भी स्वतन्त्रतापूर्वक एकाकी स्थान मे गमन कर सकता था, निवास कर सकता था, चैन से सो सकता था (म्युनिख . ६९ बी०)।

जैनुल आबदीन के काल म हिन्दुओ म विश्वास लौटा, भरोसा लौटा। उसकी नीति देखकर, उनमे पूर्वकालीन काश्मीर राजाओ की स्मृति जागृत हो उठी। जिन्होने काश्मीर के लिये कार्य किया था। काश्मीर के लिये प्राणोत्सर्ग किया था। सुलतान ने पूर्व सुलतानो की व्यवस्था, जिन्हे धार्मिक उन्माद मे काश्मीर मे लगाया गया था, उन्हे हटाकर, परम्परागत व्यवस्थाओ को नवीन रूप मे लगाया। उसने राज्य के शक्ति सिद्धान्त के स्थान पर मन्त्र अर्थात् विवेक सिद्धान्त नीति का वरण किया। यदि मन्त्र असफल होता था, तो वह शक्ति का आश्रय लेकर, समस्याओ का निराकरण करता था।

जैनुल आबदीन व्यर्थ दण्ड नही देता था। वह कष्ट देने वालो को भी, विद्रोह करने वालो को भी, यदि वे अपना विचार बदलकर, ठीक मार्ग पर आजाते थे, तो क्षमा कर देता था।

अबुलफजल उसका मूल्याकन करता लिखता है—'वह गुणी राजा था। वह दर्शनो का अध्ययन करता था। उसका वह भाग्य ही था कि उसने सर्वतोमुखी शक्ति का भोग किया था। वह बडे और छोटे दोनो से विशेष कर ईश्वर भक्त एव सन्त के रूप मे श्रद्धापूर्वक देखा जाता था। कहा जाता है कि वह अपने शरीर से अलग हो जाने की क्षमता रखता था। उसने भविष्यवाणी की थी कि चक राजवंश के समय काश्मीर पर हिन्दुस्थान के राजा का अधिकार हो जायगा। प्रजानुराग तथा दानी प्रवृत्ति के कारण उसने गैरमुसल्मानो

पर लगने वाले कर को माफ कर दिया था। उसने राज्य मे गोवध वन्द करा दिया था। उसने कृषको की भलाई के लिए जरीब का नाप बढा दिया था। उसकी निज की आय ताम्बे की खानो से होती थी। वह स्वयं व्यक्तियो को नीरोग करने के लिये औषधि आदि देता था। बड़े से बड़े काम को आसानी से कर देता था। उसके करुण स्वभाव के कारण लोगों ने शिकार खेलना छोड दिया था। वह स्वयं मांस नही खाता था। उसने अनेक ग्रन्थों का अरबी, फारसी, काश्मीरी तथा संस्कृत मे अनुवाद कराया था। उसके समय ईरान तथा तुर्किस्तान से संगीतज्ञ लोग दरबार मे उपस्थित हुए थे। उसके समय मुल्ला उदी खुराशानी उदवादक और ख्वाजा अब्दुला कादिर के शिष्य खुरासान से आये थे। मुल्ला जमील अपने समय संगीत, एवं चित्रकारी मे प्रसिद्ध था। अरबी के विद्वान मौलाना कबीर, मुल्लाहाफिज बगदादी, मुल्ला जमालुद्दीन, तथा काजी मीरअली उसके दरबार मे थे।

'सुलतान अबूसईद मिरजा ने उसे अरबी घोडे आदि खुरासान से भेट भेजा था। दिल्ली का सुलतान बहलोल लोदी तथा गुजरात का सुलतान महमूद से उसकी मैत्री एवं सन्धि थी (जरेट० : २ : ३८८-३८९)।' आज से ४०० वर्ष पूर्व अबुलफज्ल ने जैनुल आवदीन का जो मूल्याकन किया था, वह आज भी सत्य है। श्रीवर के शब्दो मे भोजन बनाने वाली स्त्रियां तथा कुम्भकारिन भी कवयित्री थी, संस्कृत भाषा बोलती थीं।

जैनुल आवदीन को काश्मीर का शाहजहा कहा जा सकता है। शाहमीर के पश्चात् निर्माण एवं भुवन रचनाये वन्द हो गयी थी। जैनुल आवदीन के लम्बे राज्य काल मे अनेक भुवन रचनाये हुई थी। सिकन्दर ने प्रसिद्ध जामा मसजिद के निर्माण मे हाथ लगाया परन्तु जैनुल आवदीन ने उसे पूर्ण किया था।

सिकन्दर ने सन् १४०४ ई० मे तारापीड (सन् ६९६ से ७०० ई०) के मन्दिर को विनष्ट कर उसके सामानो से मसजिद का कार्य आरम्भ किया था। इस मसजिद के चारो ओर अनेक मन्दिरो के निर्माण के चिह्न मिलते हैं। मसजिद का स्थान बौद्ध भी पवित्र मानते हैं। लद्दाखी यात्री उसे उसके प्राचीन नाम स्सुवलक से पुकारते हैं। ख्वाजा आजम ने लिखा है कि बादशाह ने पुरुष तथा स्त्री नर्सो को समरकन्द से बुलाकर प्रसूती तथा रोगी की सुश्रुषा के लिये योजना बनायी थी। भारत मे यह प्रथा प्राचीन काल मे प्रचलित थी। परन्तु मुसलिम शासन स्थापित होने पर व्यवस्था बिगड गयी थी। परदा प्रथा के कारण स्त्री धात्री खुलकर सेवा नही कर सकती थी।

सुलतान ने धाइयों को बाहर से बुलाकर, भारत मे यह प्रथा पुन: चलायी। उसने हकीमो और वैद्यो को भी बुलाकर, अपने यहाँ रखा। हकीमो ने इतनी उन्नति की कि काश्मीर के हकीम लखनऊ, दिल्ली, बनारस तक पहुँचते थे।

सुलतान सिकन्दर बुतशिकन के समय पुस्तकें घास की तरह फुकवा दी गई थी। जैनुल आवदीन ने परशियन पठन-पाठन को प्रोत्साहित किया। सप्रू ब्राह्मणो ने सर्वप्रथम काश्मीर म परशियन पढकर, उसमे योग्यता प्राप्त की थी। पाकिस्तान विचार के जनक सर मुहम्मद एकबाल सप्रू ब्राह्मण थे। उनके कुटुम्ब ने इस्लाम औरंगजेब के समय कबूल किया था (तारीखे—अकवामे काश्मीर : फाक : १ : ४३)।

जैनुल आवदीन संस्कृत का विद्यार्थी था, वह संस्कृत पढता और समझता था। मोक्षोपम संहिता श्रीवर से सुनता था (श्रीवर १ : १ : ३२)। स्वयं श्लोक कहता था (श्रीवर १ : ७ : ३८) उसने काश्मीर मे लुप्त मीमांसा, पुराणादि को बाहर से मँगवाया। उसके समय तिर्यभट्ट ने योधभट्ट को महाराष्ट्र अथर्ववेद का अध्ययन करने के लिये भेजा था। उसने वहाँ से लौटकर वेद का प्रचार किया तथा उसकी प्रतिलिपियाँ

बनवाई। स्वर्गीय शंकर पाण्डुरंग पण्डित जो योधभट्ट से ५०० वर्ष पश्चात् हुए थे, अथर्ववेद का सम्पादन करने लगे तो उन्होंने योधभट्ट की प्रति को ही आधार माना (रा० रणजीत सीताराम पण्डित ३५)।

उसने हिन्दू विद्यार्थियों को दक्षिण काशी संस्कृत पढ़ने के लिए भेजा (हमदर्द श्री नगर २५-१ १९४२)।

सुलतान ने दशावतार, राजतरंगिणी, बृहत्कथासरित्सागर, हाटकेश्वर आदि ग्रन्थों का पर्शियन में अनुवाद कराया। (श्रीवर १ ५ ८३-८८) पर्शियन म अनुवाद हो जाने के कारण मुसलमान भी उन्हें पढ़ने लगे। सुलतान श्रीवर से गीतगोविन्द तथा योगवासिष्ठ रामायण पढ़वाकर सुनता था, स्वयं पढ़ता था, मनन करता था (श्रीवर १ ५ ८०)। श्रीवर से संस्कृत ग्रन्थों म वर्णित मोक्ष मार्ग सुनता था। (श्रीवर १ ५ १८१) फारसी भाषा म उसने 'शिकायत' नामक पुस्तक की रचना की उसमें योगवशिष्ठ के सिद्धान्तों का प्रायः समावेश किया गया था (श्रीवर १ ७ १४६)।

जैनुल आबदीन ने मौलिक रचनाकारों को भी प्रोत्साहित किया था। संस्कृत म उत्सोम ने जैन चरित्र, योधभट्ट ने जैनप्रकाश नाटक, भट्ट अवतार ने जैनविलास लिखा था (श्रीवर १ ४ ३७-३९)।

सुलतान ने सेना का नवीनीकरण किया था। वह जब राजसिंहासन पर बैठा था, उस समय एक लाख पदातिक तथा तीस हजार अश्वारोही सैनिक उसकी सेना म थे। उसने सेना का इतना अच्छा संघटन किया था कि किसी का साहस काश्मीर पर आक्रमण करने का नहीं हुआ।

शासन पद्धति जो पूर्णतया पूर्वकालीन परम्परा विरोधी थी, उसे देशोपयोगी साँचे म ढाला गया। इस कार्य मे सुलतान का बन्धु मुहम्मद खां अधिक सहायक हुआ था। मुहम्मद अन्त तक भ्रातृभक्त बना रहा। दोनों भाइयों ने धर्मोन्माद के कारण देश की जो दुर्व्यवस्था हो गयी थी, उसे दूर करने का प्रयास कर सक्रिय पग उठाया। इस नीति परिवर्तन के कारण जनता मे विश्वास पुनः लौटा। अल्पसंख्यक लोग राज्य तथा समाज मे भाग लेने के लिये उद्यत हो गये। जनता के जागरूक हो जाने के कारण सुलतान ने द्रोहियों को दण्ड देने का संकोच एवं भय नहीं किया।

सुलतान की प्रकृति हो गयी थी। वह साम्य भंग किसी भी परिस्थिति म नहीं करता था। फल हुआ कि मुसलमान जो ब्राह्मणों को परेशान करते थे, उन्हें पीडित करने से विरत हो गये। आततायी राजाश्रय न पाने पर अपनी कुवृत्ति से दण्ड भय के कारण विरत हो गये थे। उसने देश मे विद्या को प्रोत्साहित किया। सदाचार का युग जैसे पुनः लौट आया था।

हिन्दुओं के समान मुसलमानों मे अनेक मत मतान्तर एवं सम्प्रदाय हो गये थे। उनका परस्पर संघर्ष होता था। वे एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या एवं द्वेषाग्नि मे जलते रहते थे। प्रदेश को साम्प्रदायिकता की लहर जैसे डुबाने जा रही थी। सुलतान ने अपने उदात्त विचारों द्वारा उन्हें धर्म एवं सम्प्रदायों के मौलिक सिद्धान्तों की ओर प्रेरित किया। जहाँ तक मिल सके, मिलकर चलने की ओर प्रेरित किया। सुलतान मत्स्य न्याय को रोक कर काश्मीर मण्डल मे न्यायपूर्ण एवं न्यायप्रिय शासन दण्ड के आधार पर नहीं अपितु सद्भावना एवं चरित्रबल के आधार पर चलाना चाहता था। सूहभट्ट के कारण धार्मिक उन्माद अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था, एक धर्म दूसरे के कट्टर विरोधी हो गये थे। सुलतान ने इस दोष से दूषित काश्मीर के उद्धार का प्रयास किया। वह अपने कार्य म कभी उत्पथगामी नहीं हुआ था। उसने गरीबों की रक्षा के लिये कर प्रणाली मे सुधार किया।

उसने न्याय के लिये अपने बड़े से बड़े प्रियपात्र का भी वध करा देने मे संकोच नहीं किया था।

उसने न्याय विभाग मे व्याप्त भ्रष्टाचार को रोक कर जिन लोगों ने घूस लिया था, उनसे घूस वापस कराकर एक नयी परम्परा कायम की थी।

शाहमीर से अलीशाह तक हिन्दुओं की दशा गिरती ही गयी। वे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टियों से पगु तुल्य हो गये, उनमे निराशा व्याप्त थी। उन्हे चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखायी देता था, वे दब गये थे। उन पर होने वाले अत्याचार की सुनवायी नहीं होती थी, सुलतान ने इस स्थिति को समझा। अवसर आते ही उसने इस स्थिति से काश्मीर को निकालना चाहा। उस समय मुसलिम साम्प्रदायिकता इतनी प्रबल थी कि हिन्दुओं का समर्थन करना राज्य सिंहासन के लिए खतरा मोल लेना था। अवसर आते ही जैनुल आबदीन ने हिन्दुओं को उठाया। मारी नदी तथा वितस्ता संगम पर श्मशान था। श्रीवर अपनी घटना का इस प्रसग मे उल्लेख करता है। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। श्मशान मे फूँकने के कारण कर देना पडता था, मुसलिम आबादी दाहक्रिया का विरोध करती थी। सुलतान ने कर उठा दिया। मुसलमानो के विरोध की चिन्ता नही की। शिर्यभट्ट के कारण वह रोगमुक्त हुआ था, उसका ऋणी था। जनता भी इसका अनुभव कर रही थी। उसने शिर्यभट्ट को पद दिया। कोई चाहकर भी विरोध नहीं कर सका। फल यह हुआ कि शिर्यभट्ट के द्वारा हिन्दुओ के लिए पद एवं राजद्वार दोनो खुल गये।

हिन्दुओं में नवचेतना आयी। वे जागृत हुए, उनमे त्याग तथा उत्सर्ग की भावना लौटी, उन्होंने स्थिति की गम्भीरता का अनुभव किया। वे पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य एवं मत मतान्तरो के झगडों से ऊपर उठे। उसने चोरो तथा लुटेरो से ग्रामीणो की रक्षा करने का उपयोगी उपाय निकाला। लगभग एक शताब्दी पश्चात् साम्प्रदायिक दगो को रोकने तथा लूट पाट करने एवं सम्पत्ति की रक्षा तथा उन्हे पूरा करने के लिये उसने प्युनिटिव टैक्स लगाया। कर की इस प्रणाली म वह अपने समय से ५ शताब्दी पूर्व था। उसका तत्काल परिणाम हुआ कि ग्रामीणो ने अपने उत्तरदायित्व का अनुभव किया और चोरी तथा डाके स्वत बन्द हो गये। ग्रामीणो मे स्वावलम्बन तथा स्वरक्षा की भावना का उदय हुआ।

इस विश्वास लौटने के साथ शिर्यभट्ट, तिलक, सिंह गणना पति आदि हिन्दुओं को उच्चपद पर मुसलमान के साथ आसीन कर हिन्दू एवं मुसलमान दोनो को देश की प्रगति, उन्नति तथा विकास की ओर लगाया। उनकी शक्ति, उनका उत्साह, उनकी बुद्धि को उसने रचनात्मक प्रवाह मे प्रवाहित किया। फल अवश्यम्भावी था। कुर्यंटभट्ट ने सुलतान की प्राणरक्षा अपने प्राणो की बाजी लगा कर की थी। अल्पसख्यक सर्वदा देश मे शक्तिशाली न्यायप्रिय शासन चाहते है। वे अपनी रक्षा के प्रति बहुसख्यको से सतर्क रहते हैं। यही भावना तत्कालीन काश्मीरी हिन्दुओ मे उदय हुई। सुलतान की रक्षा से उनकी रक्षा होगी। सुल्तान ने भी अनुभव किया, उसे भय था। मुसलिम समाज से। मुसलिम समाज गृहयुद्धो, सघर्षो से एक को हटाकर दूसरे को राजसिंहासन पर बैठाने के षडयन्त्र में लगा रहता था। ऐसी परिस्थिति मे सुलतान ने हिन्दूजाति का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया। मुसलिम समझ गये। आपत्ति पडने पर हिन्दू जाति सुलतान के लिये उत्सर्ग करने के लिये उद्यत थी। परिणाम हुआ। मुसलिम उग्रवादी षड्यन्त्रकारी, आततायी सोचने लगे। सुलतान के विरुद्ध होने का परिणाम क्या हो सकता था। सुलतान के विरुद्ध हथियार उठाने वाले उसके पुत्रो के साथ मुसलिम थे। हिन्दू सुलतान के साथ थे। फल हुआ। सुलतान मृत्यु पर्यन्त शक्तिशाली बना रहा। उसकी मृत्यु शैय्या के समीप उसके विश्वासपात्र हिन्दू मुसलमान दोनो ही थे।

जैनुल आबदीन की वैदेशिक नीति सहअस्तित्व की थी। उसने सीमा एवं निकटवर्ती राज्यो से सहयोग

सांस्कृतिक अदान प्रदान को नीति अपनायी। खुरासान के तैमूर वंशीय मिर्जाअबू सईद (सन् १४५५–६७ ई०) से उसका दौत्य सम्बन्ध था (नवादरुल अखबार : ४६ बी० ४७ ए०)।

बलख तथा अरब के अश्व उसके पास भेंट के लिये भेजे जाते थे। तिमूर के पुत्र शाहरुख (सन् १४०४-१४४७ ई०) ने जैनुल आबदीन को रत्न तथा हाथी उपहार स्वरूप भेजा था। मक्का के शरीफ तथा गिलान के राजा तथा मिस्र से उसके पास भेंट आता था (म्युनिख : ७३ ए० तारीख हसन : ३ : ४४०) सुल्तान उनके बदले, केसर, कस्तूरी, कागज, शाल आदि भेजता था। (म्युनिख ७३ ए०; तारीख हसन : ३ : ४४०) ग्वालियर के राजा डुगरसिंह ने सुल्तान के पास तीन ग्रन्थ तथा संगीतज्ञ के भेजे। डुगरसिंह की मृत्यु के पश्चात् किरातसिंह सुलतान से मैत्री भाव बनाये रखा। (म्युनिख : ७३ ए० तारीख हसन ४३५) तिब्बत, बंगाल, सिन्ध, गुजरात के महमूद, मालवा के महमूद प्रथम, तथा बहलोल लोदी के साथ सुलतान का दूत सम्बन्ध था (तारीख हसन : ३ : ४४० तथा श्रीवर) राजपुरी के राजा रणसूह तथा मद्र के राजा उसके मुखापेक्षी थे। उसने देश विजय कर वहाँ निरपेक्ष नीति अपनायी थी।

मालदेव राजा मद्र को जसरथ खोखर ने जीत लिया था। सुलतान ने उसे मुक्त कराकर, उसे अपने राज्य मे भेज दिया। जैनुल आबदीन अपने शत्रु जो उसके सामने मस्तक झुका देते थे। उनपर दया करता था तथापि जिन्होंने उसके विरुद्ध हथियार उठाया, उनसे वह हथियार से ही निपटता था। उदभाण्डपुर के राजा को उसने बार-बार पराजित किया था।

सुलतान ने हिन्दुओ तथा बौद्धो की रक्षा की थी। उसकी दृष्टि अपने और इतरो पर सम थी। उसने अपने जीवन मे तुला के पलडो के समान किसी प्रकार साम्य भंग नही किया। मुसलमानो से हिन्दू तथा बौद्ध पीडित नही किये जा सके। जिनकी स्थिति सिकन्दर एव अलीशाह के समय संकुचित कर दी गयी थी, जैनुल आबदीन ने उन्हें विकसित किया। उसने लुप्तप्राय सदाचार को पुनः प्रदीप्त किया। उसके समय शताब्दियो से होता मत्स्य न्याय तिरोहित हो गया। हिन्दू और मुसलमान के लिये भिन्न न्याय प्रणालिया नही थी। कानून सबके लिए एक बन गया।

उसके समय मूर्ति भंग की घटनायें नही मिलतीं। उसने मूर्तियो की रक्षा की थी। शयदेश मे जब मुसलमान बुद्ध प्रतिमा भंग करने गये तो सुलतान ने प्रतिमा की रक्षा कर बौद्धो की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली थी। उसने हिन्दू तथा बौद्धो को उपासना की पूर्ण स्वतन्त्रता दी थी। जो लोग अपने धर्म की रक्षा के लिये जम्मू तथा किश्तवार चले गये थे, उन्हें पुनः बुलाकर काश्मीर मे आबाद किया। उन्हे अपने धर्म उपासना एव विश्वास की पूर्ण स्वतन्त्रता दी। भय या जबरदस्ती जो मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिये थे, उन्हे पुनः अपने पुराने धर्म म लौटने की स्वतंन्त्रता दी। उसने मन्दिरो के निर्माण के साथ उन्हे मरम्मत कराने की आज्ञा दिया। मुसलिम कानून के अनुसार मुसलिम देश मे नवीन मन्दिर निर्माण नही हो सकता। परन्तु जैनुल आबदीन ने उसकी भी आज्ञा दी। राजाओ ने ब्राह्मणो को जो अग्रहार दिये थे उन्हे उसने पुनः लौटा दिया। (म्युनिख : ७० ए० बहारिस्तान शाही : ४८ बी० ४९ ए०) सुलतान ने कतिपय मन्दिरो का स्वय जीर्णोद्धार कराया था। वह हिन्दुओ के पर्वों, उत्सवो तथा मेलो मे स्वयं भाग लेता था। सगम त्रिपुरेश्वर एव वाराह क्षेत्र में गरीबो को भोजन कराता था। वितस्ता पर प्रति दिन भात और मछली खाने को दी जाती थी। उसने शंकरपुर के तट पर छाया के लिए वृक्षो को लगाया था। वे फल नही देते थे। आश्रम, पद्मपुर, विजयेश्वर मे उसने अन्नसत्र खुलवाया था (श्रीवर : १ : ५ : १५–२१) नागयात्रा तथा गणचक्र उत्सव पर भक्तो को सुलतान पाच दिन तक भोजन कराता था। उन्हें द्वादशी के

दिन रजायी, धन, कम्बल आदि देकर विदा करता था। वितस्ता के जन्मोत्सव पर वितस्ता के दोनों तटों पर दीप मालिका सजती थी। (श्रीवर : १ : ३ : ५३–५८)

नाव पर बैठा वह समस्त रात्रि संगीतादि में व्यतीत करता था। उन दिनों भारत में बंगाल, सिन्ध तथा काश्मीर में नावों का अधिक प्रचलन था। वे परिवहन का मुख्य साधन थीं। किन्तु काश्मीर की नावें सबसे अच्छी मानी जाती थीं। आज भी काश्मीर का शिकारा भारत में प्रसिद्ध है। इसी प्रकार चैत्र मास में मदव राज्य में पुष्पों के उत्सव में भाग लेता था। (श्रीवर : १ : ४ : २) नौबन्धन तीर्थ, विजयेश तथा शारदी की यात्रा करता था। (श्रीवर : १ : ५ : ८८–१०८) गीत गोविन्द सुनता था। (श्रीवर : १ : ५ : १००)

यद्यपि बडशाह श्रद्धालु मुसलमान था, तथापि वह काश्मीर की सनातन परम्परा से विरत नहीं हो सका। उसका योगियों पर विश्वास था, योगी के आशीर्वाद में उसे पुत्ररत्न हुए थे। वह योगियों पर श्रद्धा रखता था। (श्रीवर : १ : ३ : ४६–५२) उसने यदि यवनों को बिहार सहित अग्रहार दिया था, तो ब्राह्मणों को भी अग्रहारादि देकर पुण्य अर्जन किया था। उसने मुसलमान होते हुए भी विजय क्षेत्र (विजविहरा–विजब्रोर), वाराह क्षेत्र (वारहमूला), शूरपुर आदि पवित्र स्थानों में सत्र खोला था, जहाँ बिना जातिभेद कोई भी अन्न ग्रहण कर सकता था। (श्रीवर : १ : ५ : १५–२३) सुलतान की इस योग भक्ति के कारण मद्रादि के हिन्दू राजा सुलतान के भक्त बन गये थे। सुलतान ने केवल योगियों का दान पुण्य द्वारा ही आदर नहीं किया, बल्कि उसने स्वयं योगाभ्यास आरम्भ किया था। योगियों से योगिक शिक्षा ग्रहण करता था। वह मुसलिम मुल्लाओं, मौलवियों तथा कट्टर पन्थियों की किंचित् मात्र परवाह किये बिना, हिन्दू ग्रन्थों को पढ़ता था। वह स्वयं संस्कृत जानता था। वह पण्डितों से नीलमतपुराण सुनता था। (श्रीवर : १ : ५ : ७९–८८) वह काश्मीर के पुरातन संस्कारों एवं कुसंस्कारों में सामान्य जन तुल्य विश्वास करता था। महापद्मसर का देवता महापद्म नाग है, तथा नागों में प्राण है, यह धारणा आज भी मुसलमानों में बनी है। यही धारणा जैनुल आबदीन की थी। (श्रीवर : १ : ५ : १४) जोनराज स्पष्टतया इस ओर संकेत करता है। जोनराज के शब्दों में उसने उलरोल्सर अर्थात ऊलर में जैन लंका का निर्माण साधक लोगों के लिये कराया था। एकान्त में वे अपनी साधना सफल कर सकें। हिन्दुओं की सुविधा का भी यह ध्यान रखता था। डोमों को जो मुसलमान हो गये थे और मृतक कर्म करना त्याग दिये थे, जिसके कारण हिन्दुओं के दाहसंस्कार में महान कष्ट होता था, सुलतान ने उन्हें मृतक कर्म कराने के लिये बाध्य कर दिया। (श्रीवर : १ : ५ : ५३–६०)

जैनुल आबदीन ने कृषि तथा खनिज व्यापार को प्रोत्साहित किया। नदियों एवं नागों को नियन्त्रित कर, जहाँ जल नहीं था, अथवा जहाँ सिंचाई की आवश्यकता हुई, वहाँ उसने कुल्या किंवा नहर निकाल कर जल पहुँचाया। (श्रीवर : १ : ५ : २४) पूर्वकाल में डल तथा वितस्ता का सम्बन्ध नहर न था। सुलतान ने डल तथा अंचर लेक को नहर से जोड़ दिया। उत्पलपुर, अवन्तिपुर, कराल आदि स्थान उसी कारण कृषोपयोगी हो गये थे। उसने सरोवरों में भी ताजा जल लाने का प्रबन्ध किया। मनमा सर में पहाड़ी मार्ग द्वारा जलस्रोत को नियन्त्रित कर जल लाया गया। सुलतान जहाँ जाता था, वृक्षारोपण करता था। उसने उद्यानों की शृंखला से काश्मीर मण्डल को भर दिया था। उसने नगर निर्माण पर बहुत जोर दिया। जैनपुरी, जैनडगर, जैन लंका, जैनकोट, जैन पत्तन, जैन नगरी, जैनगिरि, सुरनाणपुर, जैनकुल्या, जैनडिम्बर, जैनवाटिका आदि की स्थापना कर काश्मीर मण्डल को नगरी मण्डल में परिणत करने का प्रयास किया था। उसने मठ, अग्रहार एवं हाटों से नगरों को समृद्ध किया। उसने वास्तु भुवन रचना का विकास किया। जैनदब तथा जैनगिर में राजप्रासाद निर्माण कराया था। राजा के मन्त्रियों शिर्यभट्ट आदि ने स्थान-स्थान पर मठ तथा धर्मशालाओं का निर्माण

कराया। श्रीनगर मे मार्गो पर शिलायें रखकर उन्हें समथर बनाया गया। वर्षा ऋतु में भी उनके कारण बिना कष्ट जनता सुगमता पूर्वक बिना कीचड लगे चल सकती थी। तारीख रशीदी में मिर्जा दुघलात लिखता है कि सुलतान का रजदन राजभवन पूर्वं एशिया मे अतुलनीय भुवन रचना थी। वह बारह मंजिल था। उसमे अनेक कक्ष, हाल, बारन्दे तथा सीढ़ियाँ थी। वह सर्वश्रेष्ट नक्काशी तथा भित्तिचित्र का एक प्रकार से संग्रहालय माना जाता था। उसने काश्मीर की बन्द खानो को खुलवाया तथा जहाँ खानो का पता लग सका, वहाँ उसने उन खानो को खुदवा कर, धातु एवं रत्नादि प्राप्त करने की योजना बनायी। सुवर्ण खान उत्तर भारत मे नही थी। सिन्धु, लद्दाख, कृष्णगंगा, तथा काश्मीर के उत्तर एवं पश्चिम सीमा पर बहने वाली नदियो के बालू मे बहते, सुवर्ण सिकता को प्राप्त कर, उनसे सुवर्णं द्रवित करने के लिये व्यापारी एवं व्यवसायियो को प्रोत्साहित किया।

आज कल भी खानो से राजशुल्क लिया जाता है। उस समय सुलतान ने सुवर्ण का राजशुल्क षष्ठांश निश्चय किया। आज भी भारत की खानो से लगभग इतना ही राजशुल्क भारत तथा प्रदेशीय सरकारें लेती हैं।

सुलतान के अन्तिम दिन अच्छे नही बीते थे। जोनराज सुलतान के जीवन सन् १४५९ ई० तक का ही वणन करता है। शेष जीवन के ११ वर्षों का आँखो देखा वर्णन श्रीवर पण्डित ने तृतीय जैन राजतरंगिणी मे किया है। सुलतान के साथी मुहम्मद खाँ, ठक्कुर महिम, बिन्न, शिर्यभट्ट आदि जिनकी एक टीम थी, जो सुलतान के आधार स्तम्भ थे, जिनकी स्वामिभक्ति एव देश भक्ति मे सन्देह नही था, दिवगत हो गये। उनके अभाव मे नवीन लोग आये। परन्तु परिस्थिति मे सुधार नहीं हुआ। उसके पुत्रो ने राजसत्ता हस्तगत करने के लिये परस्पर संघर्ष आरम्भ कर दिया। मुहम्मद खा की मृत्यु के पश्चात् मझले भाई हाजी को सुलतान ने युवराज घोषित किया। आदम इससे चिढ गया। सुलतान ने आदम खा को लद्दाख विजय करने के लिये भेजा। आदम विजयी होकर लौटा। सुलतान ने हाजी को लोहर का सूबेदार बनाया। हाजी ने पिता पर सेना सहित लोहर से आक्रमण किया। मल्लशिला (सुपियान समीपस्थ करेवा) के समीप पिता पुत्र की सेना मे युद्ध हुआ। हाजी पराजित हो गया। आदम की सेना ने उसका पीछा किया। हाजी हीरपुर होता भीमवर भागा। सुलतान ने हाजी के स्थान पर आदम को युवराज बना कर, उसे क्रमराज का सूबेदार नियुक्त किया। सन् १४६० ई० मे भयंकर अकाल पडा। शाली का भाव ३०० दीनार खरवार से १५०० दीनार हो गया। (श्रीवर : १ : २ : २५) उस मूल्य पर भी वह प्राप्त नही था। व्यापारियों ने समय का लाभ उठाकर लाभ उठाना आरम्भ किया। सुलतान ने राजभण्डार से शाली दिया। अकाल समाप्त होने पर जिन लोगो ने ऋण लेकर शाली खरीदा था। उन सबका ऋण समाप्त कर दिया। (श्रीवर : १ : २ : ३४) लोगो ने अपना आभूषण गिरो रखकर अन्न क्रय किया था। सुलतान ने आज्ञा दिया कि आभूषण वापस कर दिये जायें और अपने अन्न का दाम राजकोश से ले ले, जो आभूषणो के बदले मे दिया गया था। (म्युनिख . ७५ बी श्रीवर : १ : २ : ३२)।

दो वर्ष पश्चात् भयंकर वर्षा के कारण जलप्लावन से काश्मीर पीडित हो उठा। मानव तथा पशु दोनो ही नष्ट होने लगे। हजारो मकान गिर गये। सौभाग्य से शाली की कृषि को नुकसान नही पहुँचा। सुलतान ने जलप्लावन की भयंकरता का अनुभव कर, वितस्ता के तटपर अन्दर कोट के समीप ऊँचाई पर एक दूसरा नगर जैन तिलक आबाद किया। (श्रीवर : १ : ३ : २९–३४)

आदम खाँ दुश्चरित्र था। वह अपने पिता का विरोधाभास था। रातदिन शराब और स्त्रियो के साथ मस्त रहता था। उसने जनता का धन अपहृत करना आरम्भ किया। उन ग्रामो पर अधिकार कर लिया

जो दान में दिये गये थे (म्युनिख : ७५ बी)। सुलतान सुनकर बहुत दुःखी हुआ। उसने पुत्र को अपनी प्रवृत्ति बदलने के लिए कहा, परन्तु वह सेना लेकर पिता को दण्ड देने के लिये चल पड़ा। उसने जैन गिर में पिता के ऊपर आक्रमण किया। परन्तु लोगों के समझाने पर पिता पुत्र में सन्धि हो गयी। उसने हाजी को वापस आने के लिए कहा। हाजी के आने के पूर्व सन् १४५९ ई० में आदम ने सोपोर पर आक्रमण कर वहा के सूबेदार को मार डाला। सुलतान की सेना उसे दण्ड देने के लिये पहुँची, युद्ध हुआ। आदम पराजित हो गया। उसकी सेना भाग निकली। सेना सोपोर के पुल से भाग रही थी कि पुल टूट गया। तीन सौ सैनिक वितस्ता में डूब मरे। हाजी बारहमूला तक पहुँच गया था। बहराम उसे जाकर लिवा लाया।

सुलतान का जीवन अत्यन्त दुःखी हो गया। अपने पुत्रों के परस्पर विरोध तथा उनकी अकृतज्ञता के कारण बहुत दुःखी रहने लगा। उसकी प्रिय पत्नी ताज खातून भी मर गयी थी। (श्रीवर : १ ७ : ४) उसके परिचित, सहयोगी, सेना नायक एवं मन्त्री भी मर चुके थे। (श्रीवर : १ . ७ : ५२-५५) उसके नवीन दरबारी चापलूस थे। राज्य से अत्यधिक लाभ उठाना चाहते थे। (श्रीवर : १ : ७ : १४९-१५४) सुलतान इतना दुःखी हो गया था कि अपनी मृत्यु के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगा। सुलतान मानसिक सन्तुलन खो रहा था। उसकी स्मरण शक्ति भी साथ छोड़ रही थी (श्रीवर : १ : ७ : १८०-१८२)। उसने राजकीय कार्य पूर्णतः मन्त्रियों पर छोड़ दिया (श्रीवर १ : ७ : १६९)। वह भयग्रस्त हो गया था (श्रीवर : १ : ७ : १३१)। यह वहम उसमें समा गया था कि उसे विष दे दिया जायगा। बहराम ने हाजी को सलाह दी कि राजप्रासाद पर आक्रमण कर, उसपर अधिकार कर लिया जाय। परन्तु मरणासन्न पिता को कष्ट देना हाजी ने उचित नहीं समझा (श्रीवर : १ : ७ . १८९-१९३)। सुलतान शुक्रवार ज्येष्ठ द्वादशी मध्याह्नकाल तदनुसार १२ मई सन् १४७० ई० को ६९ वर्ष की अवस्था में दिवंगत हो गया। ज्येष्ठ मास में ही उसने राज्य प्राप्त किया था। उसी समय सूर्य उत्तरायण से दक्षिणायन जाने वाले थे (श्रीवर : १ : ७ : २२४)। श्रीवर उसकी मृत्यु के समय उपस्थित था। उसने उस समय का मार्मिक वर्णन किया है। सुलतान मृत्युशय्या पर पड़ा था। उसके होंठ हिल रहे थे। उसकी काली दाढ़ी हिल रही थी। मालूम पड़ता था वह कलमा पढ़ रहा था। (श्रीवर : १ : ७ : २१३-२२६)

शरीर की समस्त श्री बटुर कर उसके मुख पर आ गयी थी। मृत्यु की छाया घनी होती गयी। सांस टूट गया। फिर भी सुलतान के मुख पर पसीना चुहचुहा आया था। नेत्रों से आँसू बहते गये। उस दिन काश्मीर के किसी घर में चूल्हा नहीं जला और न घरों में धुयें निकले। वह गया अपने साथ काश्मीर की अनोखी कहानी छोड़ता गया। (श्रीवर : १ . ७ : २१७-२२४)

आज वह अपने पिता सिकन्दर बुतशिकन की कब्र के पार्श्व में मजारसलातीन जैना कदल में पत्थर की धनी कब्र के नीचे शान्त विश्राम कर रहा है। मैं उसकी कब्र पर तीन बार गया हूँ। बहुत समय सोचता रहा। पिता पुत्र अगल-बगल चिर काल के लिये सो रहे हैं। मिट्टी ने उनमें अन्तर नहीं किया परन्तु समय ने उनके जीवन में कितना अन्तर कर दिया था।

परिशिष्ट—त

इसलाम का प्रसार

पश्चिम से एक नयी विचारधारा उठी। वह एकेश्वरवादी थी। प्रवर्तक थी। उसने शस्त्र एवं शास्त्र दोनो का आश्रय लिया। उसने मध्यवर्ती मार्ग का अनुकरण नही किया। वह एकांगी थी। विचार-स्वातंत्र्य, दर्शन, मत,–मतान्तर, सम्प्रदाय, जात–पांत के लिये उसमे स्थान नही था। वह केवल एक ग्रन्थ एक दर्शन, एक पैगम्बर मे विश्वास करती थी। जो उसमे नही था, वह उसका नही था। वह दारुल हरब था। दारुल इसलाम से बाहर था। दारुल अमन भी नही था। इसलामी जगत मे धर्म एवं राज्य दोनो मिश्री और पानी की तरह घुल गये थे।

धर्म एवं राज्य की सत्ता भिन्न नही थी। धर्मनिरपेक्ष राज्य नही था। देवाधिराज था। खलीफा धर्म एव राज्य दोनो का शीर्षस्थ व्यक्ति था। मुसलिम जगत के प्रथम खलीफा अबूबकर ने कहा था—'धार्मिक विश्वास मे भाई, युद्धोपार्जन मे साझी तथा शत्रु के विरुद्ध हम मित्र हैं'। हदीस कहती है—'मुसलिम जाति उस दीवार की तरह है, जिसमे अनेक ईंटें लगी हैं' (धर्मनिरपेक्ष . ७२)।

जगत को इस विचारधारा, इस अभिनव अभियान के समझने मे देर लगी। वह उठा मक्का से और रावी से मोरक्को तक फैल गया। उसे जब लोगो ने समझा, लोगो की पुरातन संस्कार, पुरातन अगडाई से नीद खुली, तो वह जहातक पहुँचा था वही रुक गया। सन् ७३२ मे चार्ल्स मार्टेल ने यूरोप मे मुसलिम प्रसार रोक दिया। परन्तु भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया मे यह प्रसार कर पूरी शक्ति के साथ सत्रहवी शताब्दी तक चलता रहा।

काश्मीर का मुसलिम जगत से एक शताब्दी के अन्दर ही सम्पर्क स्थापित हो गया। यवन, पख्तून, ईरानी, एव तुर्क काश्मीर के सीमावर्ती देश थे। पजाब तथा सीमात पश्चिमोत्तर प्रदेश काश्मीर तथा भारतीय सीमावर्ती प्रदेश थे। सीमान्त से प्रत्येक देश किवा प्रदेश प्रभावित होता है। काश्मीर इसका अपवाद नही था।

सीमावर्ती तथा समीपवर्ती देशो से काश्मीर का व्यापार था। आयात-निर्यात होता था। विचारो का आदान प्रदान होता था। उन देशो किवा प्रदेशो के लोगो की काश्मीर मे स्वल्प आबादी थी। सीमावर्ती एव दक्षिणी प्रदेशीय स्थानो मे इसलाम फैल जाने पर, काश्मीर से व्यापार एव यातायात बन्द नही हुआ। परन्तु दृष्टिकोण बदल गया। प्रत्येक इसलाम धर्मावलम्बी स्वत ही धर्मप्रचारक है। वह काश्मीर को धार्मिक लोभ दृष्टि से देखने लगा। सोचने लगा। यह सुन्दर, हरा-भरा, प्रसन्न जनो का भू-स्वर्ग, किस प्रकार सहधर्मी होगा। मुहम्मद तुगलक भी इस दिशा मे अपनी लौकिक राजनीति के किंचित सम्मान के साथ ही साथ अपने समय के मुल्ला एव मौलवियो को प्रेरित करता था कि वे काश्मीर जायें। वहा इसलाम का प्रचार करें। उस समय भी काश्मीर मे हिन्दूराज्य था। काश्मीर चारो ओर से मुसलिम बहुल देशो एव प्रदेशो से घिर गया था। उसे अपनी रक्षा के लिये चाहकर भी भारत अथवा चीन से सहायता किंवा प्रेरणा नही

मिल सकती थी। चीन तथा भारत में इसलाम जोरो से फैलाया जा रहा था। इस प्रकार काश्मीर एकाकी रह गया। तथापि वहा के राजा लडभिड कर मेवाड तुल्य अपनी स्वतन्त्रता चौदहवी शताब्दी तक रखने में सफल हुए, जब भारत मे मुसलिम राज पताका सुदूर दक्षिण मे खिलजियो के समय मे ही लहरा उठी थी।

सन् ५७० ई० पैगम्बर मुहम्मद साहब का जन्म मक्का मे हुआ। वह ६२२ ई० म मक्का से मदीना गये। सन् ६२९ ई० म मदीना से मक्का आये और सन् ६३२ मे उनका स्वर्गवास हुआ। सन् ६३६ ई० मे मुसलमानो ने सीरिया विजय की। सन् ६४७ ई० म अरबो ने ईरान मे प्रवेश किया। सन् ६५० ई० मे मुसलमान आमूदरया तक पहुँच गये। सन् ६४४ ई० म प्रथम बार अफगानिस्तान पर आक्रमण किया।

ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध है कि प्रथम अरब आक्रामक मुहम्मद बिन कासिम के समय काश्मीर को भारतीय स्थिति तथा मुसलिम धर्मप्रचार कार्यवाहियो का ज्ञान हो गया था। सिन्धराज दाहिर के पराजित होने पर दाहिर पुत्र जयसिय (सिह) काश्मीर राज के पास १० रमजान, बृहस्पतिवार, हिजरी ९३ = सन् ७१२ ई० म सहायतार्थ उपस्थित हुआ था। जयसिह के साथ सीरिया का एक व्यक्ति और था। उसका नाम हमीम और पिता का नाम साम था। काश्मीर के राजा ने जयसिह को एक क्षेत्र निवास हेतु दिया। यह स्थान वर्तमान साल्ट रेंज माना जाता है।

जयसिह शाकल मे दिवगत हो गया। जयसिह के मरते ही हमीम जिसके साथ जयसिह काश्मीर आकर साल्ट रेंज क्षेत्र मे पहुचा था, वहा का स्वय राजा बन गया। उत्तराधिकार जयसिह तथा उसके वशजो को नही मिला। काश्मीर की सीमा पर स्थापित यह प्रथम मुसलिम राज्य था। हमीम ने वहा पर मसजिद का निर्माण कराया। काश्मीर तथा उसके समीपवर्ती अचल मे यह पहली मसजिद थी। पहला मुसलिम धर्मप्रचार केन्द्र था। यह निर्माण, यह आबादी, यह प्रचार हिन्दू राज्य के अन्तर्गत उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार ट्रावनकोर एव कोचीन मे ईसाई धर्म का प्रचार तथा केन्द्र हिन्दू राजाओ के प्रश्रय में ही हुआ था। हिन्दू दर्शन धर्मसहिष्णुता मे विश्वास करता है। अतएव भारत मे कहीं भी, किसी स्थान पर, किसी को धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता प्राप्त थी और आज भी है।

मुहम्मद अल्लाफी एक पेशेवर बनू उसमान का सैनिक था। वह अरब था। उसने अब्दुर्रहमान के पुत्र अशफ को मार कर जीवनभय स देश त्याग दिया। उसने अपने ५०० अश्वारोही सैनिको के साथ भागकर सिन्ध मे प्रवेश किया। उसने सिन्धराज दाहिर की सेवा ग्रहण कर ली। दाहिर ने अल्लाफी को निकाल दिया। मुहम्मद बिन कासिम ने उसे लौट जाने के लिये मार्ग दे दिया। डा० सूफी का अनुमान है कि हमीम भी अल्लाफी के साथ सिन्ध आया था। वह प्रथम सीरिया का मुसलमान था, जिसने काश्मीर म प्रवेश किया था (सूफी : पृष्ठ ७६)।

दाहिर के पराजित होने पर मूलस्थान (मुल्तान) का मन्दिर नष्ट किया गया। वहा जामा मसजिद का निर्माण किया गया। भारत म सम्भवत मन्दिर एव प्रतिमा भग का यह प्रथम ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है।

मुहम्मद बिन कासिम ने अबू दाऊद कासिम को आदेश दिया कि काश्मीर की सीमापर पचमाहियार पहुँचे। इस समय मुसलिम जगत के खलीफा वलीद प्रथम (सन् ७०५-७१५ ई०) थे (इलियट एण्ड डासन मुसलिम काल भाग १ पृष्ठ १३१-२०७ संस्करण १८६७)।

ललितादित्य (सन् ७२५-७३३ ई०) काश्मीर की सीमा पर बढते मुसलिम प्रभाव से चकित हो गया। उसने चीन सम्राट से अरबो के विरुद्ध युद्धार्थ सहायता मांगी। अरब अथवा मुसलिम अपने केन्द्र सिंध

तथा मुलतान से काश्मीर की ओर बढ़ रहे थे। अरब काश्मीर की शक्ति जानते थे। मुक्तापीड का नाम अरबों में प्रसिद्ध था। ललितादित्य का ही अपर नाम मुक्तापीड था। उन्होने उसे 'मत्ता पीर' लिखा है। मुसलिम इतिहासकारो के अनुसार यह काल हिजरी १०७–१३६ था।

अरवो ने गिलगिट तथा अन्य क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया। इसका काल मुसलिम इतिहासकारो ने हिजरी १२४=सन् ७५१ ई० दिया है (इण्डियन एण्टीक्वेरी : जुलाई : सन् १९०८ ई० पृष्ठ १८१)।

ललितादित्य के पश्चात् एक वर्ष कुवलयापीड तत्पश्चात वज्रादित्य वप्पिय राजा हुआ। इसका काल फारसी इतिहासकारो ने हिजरी १३७–१४४=सन् ७५४–७६१ ई० एवं स्तीन ने लौकिक सम्वत ३८१४ से ३८२१ दिया है। इस समय उल्लेख मिलता है कि राजा ने बहुत काश्मीरियों को म्लेच्छो के हाथो बेचा।

दासप्रथा भारत तथा काश्मीर मे नही थी। कल्हण जोनराजादि ने म्लेच्छ शब्द का प्रयोग तुर्कों तथा मुसलमानो के लिये किया है। मुसलमानो मे दास प्रथा प्रचलित थी। वे मनुष्यो को खरीदते बेचते थे। युद्ध मे पकड़े लोग दास बना लिये जाते थे। इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि राजा वज्रादित्य के समय गुलाम व्यापार करने वाले मुसलिम अन्य व्यापारियो के समान काश्मीर मे उपस्थित थे। उन्होने दासो को मुसलिम धर्म मे दीक्षित किया। क्योकि उस समय स्वामी का धर्म ही दासो का धर्म माना जाता था।

राजा हर्ष (सन् १०८९–११०८ ई०) के समय काश्मीरी राजसेना मे मुसलिम सैनिक थे। वे प्रायः सीमान्तवर्ती प्रदेशो एवं अंचलो के नव मुसलिम थे। हर्ष की सेना मे नायक एवं सेनानायक जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर वे रखे जाते थे। उनका भी एक वर्ग काश्मीर मे हो गया था।

मार्को पोलो काश्मीर मे मुसलिम आबादी तथा उनके प्रभाव का वर्णन करता है। (ट्रेवेल्स आफ मार्को पोलो पृष्ट ६४ : न्यूयार्क : सन् १९३९ ई०)।

राजा सहदेव के समय बुलबुलशाह ने काश्मीर मे प्रवेश किया। उसका मूल नाम सैय्यद अब्दुल रहमान था। कुछ विद्वानो का विचार है कि इसका नाम सर्फुद्दीन था। कुछ उसे शर्फुद्दीन सैय्यद अब्दुर्रहमान तुर्किस्तानी कहते है।

वह बगदाद मे निवास कर चुका था। हाजी मुइनुद्दीन मिशकीन का विचार है कि वह मुल्ला मुहम्मद अल्लामा के मुरीद थे। मुल्ला के साथ स्वयं बुलबुल शाह ने काश्मीर की यात्रा की थी। (तारीखे कबीर : २८९) यह भी लिखता है कि सुलतान शमशुद्दीन के समय वह सेखुल इसलाम था। किन्तु इस मत का अनेक फारसी इतिहासकार समर्थन नही करते। (बुलबुल शाह साहेब ' मुफ्ती मुहम्मदशाह शादात : पृष्ठ ३६-३९) मुफ्ती का मत है कि मुल्ला अहमद बुलबुल शाह का नायब था। शिहाबुद्दीन के समय उसकी मृत्यु हुई थी। वह बुलबुल शाह की बगल मे दफन किया गया था। 'कतावये साहिबी' तथा 'सिहावे साकिब' का लेखक था। स्तीन का मत है कि सिन्धु तटीय घाटी निवासी बौद्ध तथा दरद जो दर्दिस्तान मे रहते थे, वे सब मुसलिम धर्म मे अपने पडोसी तुर्कों द्वारा दीक्षित कर लिये गये थे।

सबसे विचित्र घटना रिंचन काल (सन् १३२०–१३२३ ई०) मे घटी। भौट्ट रिंचन बौद्ध था। उसने काश्मीर पर अपना राज्य स्थापित किया। विदेशियो का राज्य स्थापित करने मे काश्मीरस्थ विदेशी तथा दैशिक मुसलमानो ने सहायता की थी। वे काश्मीर की सेना मे थे। रिंचन काश्मीर मे रहकर, काश्मीर का शैव धर्म स्वीकार करना चाहता था। वह तत्कालीन शैव धर्माचार्य देव स्वामी से दीक्षा लेना चाहता था। परन्तु उसे शैव धर्म मे दीक्षित नही किया गया। एक मत है कि बुलबुल शाह से इसलाम धर्म मे दीक्षित

हुआ। फारसी तथा मुसलिम इतिहासकार उसे काश्मीर का प्रथम सुलतान मानते हैं। उसने तथा कथित रिंचन मसजिद श्रीनगर मे बनवायी। वहाँ नव तथा विदेशी मुसलमानो के साथ नमाज पढने लगा।

एक मत है कि रिंचन के साथ १० हजार काश्मीरियो ने मुसलिम धर्म ग्रहण किया। रिंचन का कथित साला रावण चन्द्र ने भी मुसलमान धर्म की दीक्षा ले ली। (बुलबुल शाह साहेब . श्रीनगर : संस्करण : १९४१ पृष्ठ २३, ऋषी नामा : मुल्ला शहाबुद्दीन मुद्दट्ट) मुसलिम धर्म का केन्द्र तथा उपासनास्थान बुलबुल लंकर बन गया। इसी समय काश्मीर मे पहली मसजिद भी बनी। वह इस समय नष्ट हो चुकी है। बुलबुल लंकर मुहल्ला मे थी। बुलबुल शाह की मृत्यु सन् १३२७ ई० मे हो गयी थी। उस समय काश्मीर का राजा उदयन देव था।

तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, इराक मे सुल्तानो तथा खलीफा आदि से वैमनस्य तथा विरोध होने पर शरणार्थी प्राण रक्षा एवं आवास हेतु काश्मीर आकर शरण लेने लगे। काश्मीर मे कट्टर, उग्र पन्थी विदेशी उत्पाटित मुसलिमो की यथेष्ट आबादी हो गयी। उन्हें उपेक्षापूर्वक नहीं देखा जा सकता था। शाहमीर उनका सरदार बन गया।

मुसलमान हिन्दू सम्भ्रान्त कुलो मे अपनी कन्यायें देकर, घरो मे घुसने लगे। इसे काश्मीरी उदयन देव राजा रोक नही सका। फल यह हुआ कि कोटा रानी को राज्य से हाथ धोना पड़ा और राज्य मुसलिम सुलतानो के हाथो मे चला गया।

काश्मीर मे शाहमीर के मुसलिम हुकूमत स्थापित करने पर इसलाम ज्वालामुखी की तरह शक्तिशाली हो गया। हिन्दू जाति, तन्त्र, मन्त्र, जाति-पाँति, मत-मतान्तर एवं अनेक सम्प्रदायो मे बँटी थी। वे किसी को आत्मसात नही कर सकते थे। स्वयं मुसलिमो द्वारा आत्मसात् होने लगे।

मुसलिम धर्मप्रचारको ने त्याग, तपस्या से काम लिया। वे दिलो जान से धर्म प्रवर्तन मे लग गये। इस ज्वालामुखी मे जिसमे जात-पाँत, मत-मतान्तर—कौटुम्बिक ईर्ष्या द्वेष भस्म होकर एकाकार हो गया। यह पिछडे वर्गो अस्पृश्यो, दासो को मिलाकर, उन्हें सुलतान के साथ जमात मे खड़ा कर देता था। ऊपरी भिन्नता का लोप हो जाता था। एक नवीन धर्म एवं संस्कार का उदय नवजीवन के साथ होता था।

हिन्दू धर्मप्रवर्तक धर्म नहीं रह गया था। वह एक ऐसे व्यक्तियो की संस्था थी अथवा ऐसा बैंक था जिसमे से सर्वदा कुछ निकलता ही जाता था। उसमे कुछ बाहर से आता नहीं था। कुछ जमा नहीं होता था। वह बैंक भला कितने दिन तक चल सकता था?

प्रारम्भिक इसलाम धर्म की सादगी, तथा मौलवियो एवं मुल्लाओ की मिशनरी भावना से प्रचारित भाई चारे के भाव ने राज्याश्रय पाकर, साधारण जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। अन्त्यज तथा अस्पृश्य वर्ग जो उच्च वर्गो से उत्पीडित था, उसमे समानता का भाव उदय हुआ। सुरक्षा का भाव उदय हुआ। एक भाई ने इसलाम ग्रहण किया। दूसरा हिन्दू बना रहा। काश्मीर मे ही काश्मीरियो के दो वर्ग सम्मुख खड़े हो गये।

भोजन, खान, पान, विवाह आदि का पुराना उलझन पूर्ण बन्धन टूट गया। उसमे सादगी आयी। मानवीय असमानताओं को तत्काल इसलाम ने खत्म कर दिया।

इसलाम कार्य में विश्वास करता था। हिन्दू धर्म निरपेक्ष थे। शान्त थे। मुसलिम दरवेश, उनका फकीर तथा सूफियों का धर्मावलम्बियो से अनवरत होता परिश्रम फल देने लगा।

भारत मे हिन्दू राज्य होने पर, समय पड़ने पर, पड़ोसी प्रदेश अथवा क्षेत्रो से सहायता भी काश्मीरी ले सकते थे, परन्तु काश्मीर के हिन्दू तीन ओर से मुसलिम देशो से घिर गये थे। उनकी राजनीति सबल नही रह गयी थी। काश्मीर से बाहर वह सामूहिक रूप से जा भी नहीं सकते थे, जो सुविधा भारत के हिन्दुओ को प्राप्त थी। यदि काश्मीर किसी से सहायता की तत्काल अपेक्षा रख सकता था, तो वे मुसलिम बहुल प्रदेश किंवा देश थे। इस विषम परिस्थिति मे काश्मीर पिंजरबद्ध पक्षी की तरह हो गया। काश्मीरी अपने स्वामी पर, अपने जीवन के लिये आश्रित हो गये थे। दूसरी ओर प्रत्येक मुसलिम मिशनरी कार्यभार ग्रहण करने के लिये उत्सुक था। अपने धर्म मे अन्ध विश्वास रखकर, उसका प्रचारक था। जीवन का पवित्र कार्य समझता था। एक मिशनरी तब तक शान्त नही बैठा रहता, जब तक अपने मत मे दूसरो को मनसा, वाचा, कर्मणा द्वारा परिवर्तित नही कर लेता।

बुलबुल शाह के पश्चात् सैय्यदो का आगमन काश्मीर मे हुआ। वे तीन वर्गों मे आये। प्रथम वर्ग सैय्यद जलालुद्दीन बुखारा के साथ आया। वह शेख रुकनुद्दीन आलम के मुरीद थे। हिजरी ७४८ मे काश्मीर प्रवेश किया था। कुछ समय काश्मीर मे रहकर, वापस चले गये।

द्वितीय सैय्यदो का वर्ग सैय्यद ताजुद्दीन का था। वह सैय्यद अली हमदानी के शिष्य थे। कथा है कि सैय्यद अली हमदानी ने उन्हे काश्मीर मे इसलाम प्रचार के लिये भेजा था। वह सुल्तान शिहाबुद्दीन के राज्य काल मे आये थे। उनका आगमन काल हिजरी ७६० माना जाता है।

तृतीय वर्ग सैय्यदो का काश्मीर मे सैय्यद हुसेन सिमनानी का था। वह उक्त ताजुद्दीन के कनिष्ठ भ्राता थे। वह भी रुकनुद्दीन आलम के शिष्य थे। इनका आगमन काल हिजरी ७७३ माना जाता है।

काश्मीर मे अत्यधिक विदेशी मुसलमानो के प्रवेश का कारण तैमूर लग का उदय था। तैमूर लग राजनीतिक कारणो से तुर्किस्तान मे सैय्यदो का दमन करना चाहता था। तैमूर से रक्षा हेतु सैय्यद लोग भागकर काश्मीर मे शरण लिये। तैमूर लग भारत की तरफ बढ रहा था। अतएव सैय्यद लोग भारत न आकर काश्मीर मे प्रवेश किये।

तैमूर के आक्रमण से त्रस्त अनेक सम्भ्रान्त कुल तुर्किस्तान, ईरान तथा अफगानिस्तान से प्राणरक्षा हेतु काश्मीर मे आकर शरण लिये। सैय्यदो का प्रथम मुख्य स्थान अनन्त नाग तथा अवन्ती पुर जैसे स्थानो मे हुआ, जो श्रीनगर से दूर थे। अनन्त नाग तहसील के कुलगाम मे सैय्यद हुसेन की मजार है। दूसरे भाई की कब्र अवन्तीपुर के समीप अनन्त नाग सडक पर है। तैमूर के उत्पीडन के कारण सैय्यदो का प्रवेश काश्मीर मे हुआ था अतएव वे अपनी रक्षा हेतु श्री नगर से दूर अपना शरणार्थी शिविर बनाये। यदि तैमूर उनके कारण श्रीनगर पहुँच भी जाता, तो वे सुगमतापूर्वक अपनी प्राणरक्षा हेतु और आगे किस्तवार जम्मू अथवा लद्दाख जा सकते थे।

सैय्यद अली हमदानी को भी तैमूर लग के कारण अपना जन्मस्थान त्याग कर काश्मीर मे शरण लेनी पडी। उन्होने सुलतान शिहाबुद्दीन के काल हिजरी ७७४=सन् १३७२ ई० मे काश्मीर प्रवेश किया। शिहाबुद्दीन ओहिन्द के शासक के विरुद्ध युद्धार्थ गया था। अतएव भविष्य का सुलतान कुतुबुद्दीन स्वय अली हमदानी का स्वागत करने गया और श्रीनगर लाया। सैय्यद अली हमदानी का स्थान काश्मीर मे शाह हमदान के नाम से प्रसिद्ध है।

अली हमदानी चार मास श्रीनगर मे निवास के पश्चात् मक्का चले गये और कुतुबुद्दीन के सुलतान

बनने पर पुनः हिजरी ७८१ = सन् १३७९ ई० में काश्मीर प्रवेश किये। ढाई वर्ष काश्मीर में मुसलिम धर्म प्रचार कर हिजरी ७८३ = सन् १३८१ ई० में तुर्किस्तान लौट गये।

अली हमदानी के काल में ही उसके सहयोगी मुसलिम धर्म प्रचारक (१) मीर सैय्यद अहमद, (२) सैय्यद जमालुद्दीन (३) सैय्यद कमाल सानी (४) सैय्यद जमालुद्दीन अलाई (५) सैय्यद रुक्नुद्दीन (६) सैय्यद मुहम्मद तथा (७) सैय्यद अली जुला काश्मीर आये।

उक्त मुसलिम धर्म प्रचारकों ने सुल्तान कुतुबुद्दीन के आश्रय में समस्त काश्मीर में खानकाह तथा मसजिदों का निर्माण कराया। उन्होंने अपने मुरीदों, विदेशी नवमुसलिमों के सहयोग तथा पूरे उत्साह के साथ इसलाम का प्रचार आरम्भ किया। अली हमदानी लेखक भी थे। उन्होंने 'जाहिरातुल मुल्क' पुस्तक की रचना की। वह फारसी भाषा में है। उसकी अन्य रचनायें 'कयाफत नामा', तथा 'फिक्रकयाफा' है।

कथा है कि जहाँ अली हमदानी का इस समय खानकाह बना है, वहीं ब्राह्मणों और हमदानी में शास्त्रार्थ हुआ था। अली हमदानी बहस में जीत गया था। जिस स्थान पर उसे शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त हुई थी, उसी स्थान पर मसजिद एवं खानकाह स्मारक स्वरूप बनाया गया था। कथा है कि अली हमदानी ने अपने काश्मीर निवास काल में ३७००० सैंतीस हजार काश्मीरियों को मुसलमान बनाया था।

प्रथम चार सुल्तानों के समय मुसलिम धर्म प्रचार का श्रेय मौलवियों आदि धर्म प्रचारकों को है। सुलतान धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। परन्तु सिकन्दर बुतशिकन के समय स्थिति तथा नीति में आमूल परिवर्तन हो गया। राजयन्त्र पूरी शक्ति के साथ काश्मीर का मुसलिमीकरण करने में तत्पर हो गया।

सिकन्दर बुतशिकन केवल ८ वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर सन् १३८९ ई० में बैठा था। प्रारम्भ में वह अपने पूर्वजों के समान धर्म निरपेक्ष था। परन्तु सन् १३९३ ई० में जब वह २२ वर्ष की उम्र का हुआ तो सैय्यद मीर मुहम्मद हमदानी ने जो अली हमदानी का पुत्र था, तुर्किस्तान से ३०० सैय्यदों के साथ काश्मीर में प्रवेश किया। इसके पूर्व ७०० सैय्यद उसके पिता के साथ काश्मीर आये थे। इस प्रकार तुर्किस्तानी सैय्यद १००० की संख्या में श्रीनगर में उपस्थित थे, जिन्होंने इसलाम प्रचार अपने पीर हमदानी के आदेश पर करना आरम्भ किया। काश्मीर उपत्यका में प्रति २ मील में एक सैय्यद की आबादी हो गयी थी। उनके साथ उनका कुटुम्ब भी था।

सैय्यद मीर मुहम्मद हमदानी भी युवक था। उसकी आयु २२ वर्ष से अधिक नहीं थी। राजा युवक था। वह मीर मुहम्मद हमदानी को अपना पीर मानता था। उसके आदेश पर कार्य करता था। इसलाम प्रसार की भावना सिकन्दर के दिमाग में मीर मुहम्मद हमदानी ने बैठा दी। सैय्यदों के प्रभाव में सुल्तान आ गया।

सिकन्दर का मन्त्री सूह (सिंह) भट्ट था। उसे मुसल्मान धर्म में दीक्षित किया गया। सूहभट्ट ने अपनी कन्या का विवाह मीर मुहम्मद हमदानी के साथ कर दिया। कन्या का धर्म परिवर्तन होने पर नाम बीबी बारआ रखा गया। मरने पर वह कोथर में कलार पीर में गाड़ी गयी। सूहभट्ट का मुसलिम नाम सैफुद्दीन पड़ गया। नवमुसलिम कट्टर होता है। काला पहाड़ के समान इस नवमुसलिम ने समस्त काश्मीर को मुसलिम बनाने की कल्पना की। उस कल्पना को उसने साकार भी किया। सुल्तान ने कुछ सरकारी मशीनरी उसके हवाले कर दी। जोनराज ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

मीर मुहम्मद हमदानी ने काश्मीर मे २२ वर्ष निवास करने के पश्चात् हज के लिए हिजरी ८१७ मे प्रस्थान किया। उसकी मृत्यु मुलतान मे सन् १४५० ई० = हिजरी ८५४ मे हो गयी। रबीउल अव्वल १७ वी को अपने पिता अली हमदानी की बगल मे दफन किया गया। सिकन्दर बुतशिकन महान अत्याचारी हुआ है। प्राय देखा गया है कि अन्याय एव अत्याचार की परिस्थिति मे मानवीय प्रवृत्ति रहस्यवाद एवं एकाकी-पन की ओर झुक जाती है।

मुसलिम ऋषि, बाबा, फकीरो की परम्परा काश्मीर मे चली। उनकी सादगी, उनका सरल, शाकाहारी जीवन, ब्रह्मचर्यमय जीवन सार्वजनिक कार्यों, जैसे फलदार वृक्षो आदि का लगाना, इन सब बातो ने जनता का ध्यान सहज ही उनकी ओर आकर्षित किया। अबुलफजल लिखता है कि उसके समय मे इस प्रकार के लोगो की सख्या २००० से कम नही थी।

हिन्दुओ की प्रवृत्ति थी कि वे प्राकृतिक सुन्दर स्थानो पर देवस्थान बनाते थे। इन ऋषियो ने भी सुन्दर एव रम्य स्थानो पर जियारतें बनवानी शुरु की। उनके चरित्रो के कारण इसलाम प्रचार का कार्य कटकाकीर्ण नही हो सका। उनके चरित्रो के प्रभाव के कारण इसलाम प्रसार मे सुविधा हुई। यदि एक तरफ सिकन्दर बुतशिकन का भयकर क्रूर अत्याचार था, तो दूसरी तरफ ऋषियो एव फकीरो के स्थानो पर जनता को शान्ति मिलती थी। वे उत्पीडित जनता को शान्ति और सन्तोष देते थे।

सहजानन्द हिन्दू थे। वह मुसलमान बन गये। उनका नाम नन्द ऋषि पड गया। विद्वान, गुणी, योगी, सन्त आदि जिन्होने मुसलमान धर्म किसी कारण ग्रहण किया, वे अपनी परम्परा, अपना रीति-रिवाज छोड नही सके। परिणाम यह हुआ कि काश्मीर के इसलाम का रूप भारत तथा विश्व के अन्य स्थानो से कुछ भिन्न रहा।

सिकन्दर बुतशिकन की मृत्यु के पश्चात् अलीशाह सुलतान हुआ। सूहभट्ट उसका भी मन्त्री था। निःसन्देह सिकन्दर के समय से भी अधिक अत्याचार अलीशाह के समय हिन्दुओ पर हुआ। जो कुछ हिन्दू शेष थे, वे भी मुसलमान बना लिये गये। सूहभट्ट के नाम पर सुहयार मसजिद, सुहयार बल तथा सुहयार मुहल्ला आबाद हुआ।

सुलतान जैनुल आबदीन के समय परिवर्तन हुआ। हिन्दुओ का दमन कम हुआ। सहिष्णु नीति का वरण किया गया। उसके समय भी झेलम नदी के दक्षिण तरफ रहने वाले खक्खा हिन्दू राजपूत मुसलमान धर्म मे दीक्षित हुए। राज्यशक्ति के स्थान पर इसलाम का प्रसार इसलाम धर्म ग्रहण करने वाले अपने धार्मिक उत्साह से करते रहे।

जैनुल आबदीन के पश्चात् उसका द्वितीय पुत्र हैदर शाह (सन् १४७०–१४७२ ई०) काश्मीर का सुलतान बना। उसके राज्यकाल मे हिन्दुओ का दमन पुन आरम्भ हुआ। सुलतान ने अपने ब्राह्मण राज-भृत्यो अजर, अमर एव बुद्ध का भी हाथ तथा नाक कटवा ली। ब्राह्मण लूटे जाने लगे। प्रतिमा भग करने के लिये राजाज्ञा दी गयी। जैनुल आबदीन ने जिन ब्राह्मणो को भूमि आदि दी थी, सब छीन ली गयीं। सिकन्दर बुतशिकन के समय जिस प्रकार प्राणरक्षा के लिये ब्राह्मण चिल्लाते थे 'मैं भट्ट नही हूँ, 'मैं भट्ट नही हूँ चारो ओर से यही आवाज उठने लगी। आतकित हिन्दू धर्म परिवर्तन के लिये बाध्य किये जाने लगे (श्रीवर २ १२१–१२८)।

हैदर शाह का पुत्र हसन शाह (सन् १४७२–१४८४ ई०) सुलतान हुआ। काश्मीरी यद्यपि मुसलिम धर्म ग्रहण कर लिये थे, परन्तु गोहत्या एव गोमास से विरत थे। उनकी धारणा थी, जब कभी काश्मीर मे

गोहत्या होगी, देश पर विपत्ति आयेगी। श्रीनगर में कुछ विदेशी मुसलिम व्यवसायी थे। भारत में गोहत्या मुसलिम काल में साधारण बात थी। श्रीनगर में इस समय प्रथम बार गोहत्या विदेशी मुसलिमों द्वारा की गयी। जिस भाग में गोहत्या हुई थी, वहाँ आग लग गयी, सब कुछ भस्म हो गया। काश्मीरी मुसलमानों ने इसे गोहत्या के पाप का परिणाम माना।

हसन शाह का पुत्र मुहम्मद शाह (सन् १४८४–१४८६ ई०) सुलतान हुआ। गैरकाश्मीरी सैय्यदों का प्रभाव काश्मीर में बढ़ने लगा था। सैय्यद बाहरी थे, गोमांस खाते थे, गोहत्या करते थे। गोहत्या के कारण साधारण जनता में भय व्याप्त हो गया। सैय्यद उग्र कट्टरपन्थी थे।

सैय्यदों की प्रेरणा पर प्रतिमा भंग पुनः आरम्भ हो गया। सैय्यदों के कारण गृहयुद्ध की स्थिति काश्मीर में उत्पन्न हो गयी। हिन्दुओं को परेशान करने के लिए सैय्यद कहने लगे—'हम इस देश से नहीं जायेंगे। चाहे हमें भूखा ही क्यों न मरना पड़े। काश्मीरी मुसलमानों को क्या आपत्ति है। हम सब प्रकार का मांस खाते हैं। हम यहाँ तबतक रहेंगे, जबतक पशु तथा गायें खाने के लिये मिलती रहेंगी।'

सैय्यद वर्णाश्रम धर्म के घोर विरोधी थे। परिणाम यह हुआ कि काश्मीरी मुसलमान, जो अबतक हिन्दू रीति-रिवाज, परम्परा, पुराण-विहित कार्यों को करते थे, बाप दादों की परम्परा दिन पर दिन भूलने लगे। उन पर नया रंग चढ़ने लगा। पुरातन संस्कार की जो छाया एवं परम्परा बाकी थी, वह भी लुप्त हो गयी। नौबत यहाँ तक पहुँची कि कुछ गैरकाश्मीरी मुसलमान व्यापारी खुलेआम श्रीनगर में गोहत्या करने लगे।

शाहमीर वंश के पश्चात् चकों के राज्यकाल (सन् १५६१–१५८८ ई०) से अकबर अर्थात् मुगलों के काश्मीर में आने के पूर्व तक, एक हजार गायें नित्य काश्मीर में काटी जाती थीं। यह गोवध अकबर के शासनकाल में बन्द हुआ। (चतुर्थ राज: श्लोक ८९५ ब० संस्करण, श्लोक ८९३ कलकत्ता संस्करण)।

काश्मीर में सनातन काल से चली आती गाय के प्रति आदर की भावना लुप्त हो गयी। काश्मीर के मुसलमानों की एक कोमल कड़ी जो उन्हें अतीत के संस्कारों से जोड़े थी, अनायास टूट गयी (दत्त: २: २३५, २७९, २८६, २९२, ३०२, ३१९, ४२१)।

फतह शाह (सन्: १४८६–१४९३ ई०) प्रथम बार, मुहम्मद शाह (सन् १४९३–१५०५ ई०) द्वितीय बार तथा फतह शाह (सन् १५०५–१५१४ ई०) द्वितीय बार अर्थात् सन् १४८६ से १५१३ ई० तक के २७ वर्षों के इतिहास का प्रत्यक्षदर्शी लेखक प्राज्यभट्ट है। उसकी राजतरंगिणी अप्राप्य है। अतएव साधिकार नहीं लिखा जा सकता कि उक्त काल में मुसलिमीकरण के सम्बन्ध में राज्य की क्या नीति थी।

शुक ने सन् १५१३ ई० से सन् १५३७ ई० तक का इतिहास चौथी राजतरंगिणी में लिखा है। फतह शाह के द्वितीय राज्यकाल में मूसा रैना मन्त्री था। उसने ईराक देशीय मीर शमसुद्दीन की प्रेरणा पर देवालयों पर चढ़ी भूमि ब्राह्मणों से ले ली। उसे अपने मुसलिम सेवकों को दे दिया। जजिया लगा दिया गया।

विदेशी मुसलमानों का काश्मीर में आना जारी रहा। सन् १४८७ ई० में शेख शमसुद्दीन मुहम्मद अल इस्फहानी जिसे मीर शमसुद्दीन इराकी भी कहते हैं, तालिश का धर्म प्रचारक था, धर्म प्रचार की दृष्टि से काश्मीर में प्रवेश किया। उसने हजारों हिन्दुओं को जो काश्मीर वापस आ गये थे, इसलाम धर्म में दीक्षित किया। वह सैय्यद मुइनुद्दीन का शिष्य था।

शमशुद्दीन के शिष्य मूर्तिपूजकों के मन्दिरों को नष्ट करने लगे। उनके इस कार्य में राज्य भी सहायता करता था। इस प्रकार राज्य की सक्रिय सहायता के कारण उनके कार्यों (मूर्तिभंग) का कोई विरोध नहीं कर सका। (फिरिस्ता ४८६) पीर हसन लिखता है—'इस काल में जजिया वसूल किया गया और २४ हजार हिन्दू जबरदस्ती मुसलिम मजहब में दाखिल कर लिये गये, (पृष्ठ : २१३)। तवक्काते अकबरी में उल्लेख है—'उसके सूफी मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे और कोई उन्हें रोक नहीं सकता था (उ० : तै० : भा० : २ : ५२७ : अलीगढ)।'

फतह शाह के पश्चात् मुहम्मद शाह (सन् १५१४–१५१५ ई०) तृतीय बार सुलतान बना। तत्पश्चात पुनः फतह शाह तृतीय बार (सन् १५१५–१५१६ ई०) में सुलतान हुआ। हिन्दुओं को अस्थि-प्रवाह का अधिकार नहीं था। फतह शाह ने बहुत समय के पश्चात् हरमुकुट गंगा में अस्थि-प्रवाह की आज्ञा दी। दस सहस्र से अधिक हिन्दू अस्थिप्रवाह करने के लिए अपने पूर्वजों की अस्थियाँ लेकर गये। अस्थियों का प्रवाह कर लौटते समय मार्ग में आँधी-पानी आ जाने के कारण, सभी मर गये (शुक : १ : १०९–११२)।

फतह शाह के पश्चात् मुहम्मद शाह (सन् १५१६–१५१७–१५२८ ई०) चौथी बार काश्मीर का सुलतान हुआ। उसके समय हिन्दुओं का उत्पीडन पुनः आरम्भ किया गया। निर्मल कण्ठादि ब्राह्मण लोग मार डाले गये। शुक निष्कर्ष निकालता लिखता है—'मुसलमानों का उपद्रव सैय्यदकाल में आरम्भ हुआ था। मूसा रैना अर्थात् मोसचन्द्र ने उसे व्यंजित किया तथा काजीचक ने प्रफुल्लित किया (शुक १ : १६१)।'

बहारिस्तान शाही इस काल की घटना का वर्णन करती है—'काजीचक ने मीर शमशुद्दीन मुहम्मद ईराकी की प्रेरणा पर हिन्दुओं की हत्या करवायी। घटना इस प्रकार घटी कि मूसा रैना के समय प्रायः सभी हिन्दू लोग मुसलिम धर्म में दीक्षित कर लिये गये थे। तत्पश्चात् अपने नेताओं के कारण, नवमुसलिम पुनः हिन्दू धर्म ग्रहण कर मूर्तिपूजा में लग गये। यह देखकर शमशुद्दीन ईराकी ने काजीचक को बुलाया। जोर दिया कि एक बार मुसलिम धर्म ग्रहण करने पर पुनः कोई हिन्दू के समान व्यवहार नहीं कर सकता। यदि वे पुनः मुसलमान की तरह व्यवहार करने के लिये उद्यत नहीं होते तो अच्छा है कि वे काश्मीर त्याग कर चले जाँय। काजीचक ने ८०० हिन्दू नेताओं का वध सन् १५१८ ई० में करा दिया। इस प्रकार तलवार के जोर से काश्मीर के हिन्दू मुसलमान बनाये गये (पाण्डु : ८८ बी० : ८९ बी०)।'

जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक चारों राजतरंगिणियों के लेखक सन् १३८९ ई० से १५३७ ई० के १४८ वर्षों के इतिहास के प्रत्यक्षदर्शी हैं। प्राज्यभट्ट के विषय में कुछ कहना नहीं है। उसकी रचना प्राप्त नहीं है परन्तु जोनराज, श्रीवर तथा शुक सुलतानों के राजकवि थे। उनका वर्णन प्रत्यक्षदर्शी का वर्णन है। उसकी सत्यता में सन्देह करना उचित नहीं है। परशियन इतिहासकारों ने काश्मीर के मुसलिमीकरण को बड़ा महत्व दिया है। बहुत बढा-चढा कर लिखा है। किन्तु यह निर्विवाद है कि १४८ वर्षों के अन्दर काश्मीर का मुसलिमीकरण हो गया था। बहुत ही थोड़े हिन्दू यत्र-तत्र काश्मीर उपत्यका में शेष रह गये थे।

शेख हमजा मखदूम, दाऊद खाकी, सैय्यद जमालुद्दीन बुखारी आदि ने धर्म परिवर्तन का कार्य जारी रखा। शेख हमजा मखदूम का सहयोगी धर्म प्रचारक ख्वाजा ताहिर रफीक था। वह याकूब शाहचक (सन् १५८६–८८ ई०) के समय में मराज पर्वत में रहता था। वह अदरसूह जो अपने समय का श्रेष्ठ ब्राह्मण परगना वेरीनाग का था उसके आश्रय में था उसे इसलाम धर्म में दीक्षित किया गया सुलतानों के निर्बल होने पर, उनके

पारस्परिक कलह तथा गृहयुद्धों में फँस जाने पर, समस्त काश्मीर में फैले ऋषि, फकीर दरवेश आदि स्थान-स्थान पर, जहाँ हिन्दुओं की आबादी थी, बैठ गये। अपने धर्म का प्रचार करने लगे। उनके अथक उत्साह में कमी नहीं आयी। शेख हमजा ने जहाँ मसजिदें और जियारतें नहीं थी, वहाँ उनका निर्माण कराया। उसकी मृत्यु सन् १५७६ ई० में हुई थी।

शाहमीर वंश का राज्य सन् १५६१ ई० में समाप्त हो गया। चक वंश का शासन काश्मीर में स्थापित हुआ। चक वंश के शासन काल में निरन्तर गोवध के साथ ब्राह्मणों को परेशान किया जाता था। धर्म निरपेक्ष नीति को तिलाजलि दी गयी थी। इसमाइल शाह का मन्त्री दौलतचक था। उसने जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया। कथा है कि तूल मूल में एक सन्त अभिमन्यु रहता था। दौलतचक ने एक दिन सन्त के पास जाकर पूछा कि शिलावृष्टि के आतंक से काश्मीर का छुटकारा कैसे होगा ? सन्त ने उत्तर दिया—'यदि ब्राह्मणों पर लगा जजिया उठा दिया जाय, तो तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति हो जायगी।' दौलतचक ने उत्तर दिया—'महात्मन् ! ध्यान से सुनिये ! जो मैं कहता हूँ। मैं आपको तूलमूल ग्राम दे सकता हूँ। मैं जो एक मुसलमान हूँ, कैसे ब्राह्मणों पर से जजिया उठा सकता हूँ (चतुर्थ राजतरंगिणी : श्लोक ५२९-५३४ ब० संस्करण; कलकत्ता संस्करण श्लोक ५२७-५३२)।' चकों के समय ब्राह्मण अपनी जाति एवं यज्ञोपवीत की रक्षा के लिये प्रति वर्ष ४० पण जजिया कर चक बादशाहों को देते थे। बहुत ब्राह्मण काश्मीर त्याग कर चले गये। गरीब ब्राह्मणों ने अपना धर्म त्याग कर मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण अपने मित्रों से मिलने भी नहीं जा सकते थे। वे रात्रि में शोक प्रकट करते थे। उनका भोज्य पदार्थ मुसलमान ले लेते थे। युसुफ शाह के समय (सन् १५७८-१५८९ ई०) में जजिया उठाया गया परन्तु कुछ समय पश्चात् पुनः लगा दिया गया।

अकबर ने काश्मीर विजय सन् १५८७ ई० में की तो काश्मीर जाकर ब्राह्मणों की दुर्दशा देखी। उसने जजिया उठा दिया (चतुर्थ राजतरंगिणी : श्लोक : ८८६-८९३ बम्बई संस्करण, कलकत्ता श्लोक ८८४-८९१)। धर्मनिरपेक्ष नीति काश्मीर में चलायी गयी। अकबर के समय गोहत्या बन्द हो गयी। ब्राह्मणों को पुनः भूमि दान आदि राज्य की ओर से दिया जाने लगा (दत्त : ३८२, ४२०-४२१)।

काश्मीर उपत्यका में मुसलिम धर्म प्रचार के पश्चात् धर्म प्रचारक काश्मीर से बाहर निकले। इसी समय पुनः विदेशी मुसलिम धर्म प्रचारक औरंगजेब की हिन्दू विरोधी एवं धर्म प्रवर्तक नीति की बात सुनकर काश्मीर में प्रवेश किये। उनमें एक सैय्यद शाह करीमुद्दीन बगदाद निवासी था। किश्तवार का राजा जयसिंह था। करीमुद्दीन किश्तवार पहुँचा। धर्म प्रचार शनैः शनैः वहाँ के निवासियों में करने लगा। उसने किश्तवार के राजा जयसिंह को सन् १६७४ ई० में इसलाम में दीक्षित किया। राजा का मुसलिम नाम बख्तियार खाँ रखा गया। सन् १६८७ ई० में जयसिंह का उत्तराधिकारी किरात सिंह ने भी इसलाम ग्रहण किया। उसका नाम सादत यार खाँ रखा गया।

काश्मीर उपत्यका के पश्चात् किश्तवार में भी मुसलिम धर्म का प्रचार तेजी से काश्मीरी धर्म प्रचारकों द्वारा किया जाने लगा। हिन्दू कानून तथा प्रथा के स्थान पर मुसलिम कानून तथा शरह जारी किया गया। हाजी मुहम्मद कुरेशी अकबराबादी किश्तवार का शेखुल-इसलाम नियुक्त किया गया। सन् १७१७ ई० में मुसलिम बने कीरत की बहन भूपदी का विवाह दिल्ली के बादशाह फरुखसियर से कर दिया गया। कीरत के कनिष्ठ भ्राता ने भी इसलाम ग्रहण कर लिया। उसका मुसलिम नाम मियाँ मुहम्मद खाँ था। नगर के मध्य

स्थित मन्दिर मसजिद में परिणत कर दिया गया। उसमें शाह फरीमुद्दीन की मजार है। साथ ही उसका कनिष्ठ पुत्र अनयरुद्दीन भी दफन है।

जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब के समय काश्मीर में हिन्दुओं की संख्या अतिन्यून हो जाने तथा धर्म-प्रचार करने के लिये क्षेत्र न होने के कारण सीमावर्ती पर्वतीय राज्यों एवं स्थानों में धर्मप्रचारक काश्मीर से पहुचने लगे। किश्तवार के मुसलिमकरण के पश्चात् वे अन्य स्थानों पर गये।

मुगल शासन के पश्चात् अफगानो का शासन काश्मीर पर स्थापित हुआ। अब्दुल रशीद वैहकी से कुछ ब्राह्मणो ने सन् १७६६ ई० में इसलाम धर्म की दीक्षा ली। अफगान समय में भी हिन्दुओं को मुसलिम बनने के लिये प्रेरित किया जाता था। सिख तथा डोगरा काल में सहिष्णु नीति के कारण स्थिति बदली।

परिशिष्ट—थ

तीर्थ-सूची

श्री डॉ० पाण्डुरग वामन काणे ने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' (हिन्दी सस्करण लखनऊ) मे भारत के २१९४ तीर्थों की सूची दी है। (पृष्ठ १४००–१५०५) उसमे काश्मीर के १२४ तीर्थों का उल्लेख है। परिशिष्ट 'ट' मे तीर्थस्थानो की सूची दी गयी है, उसमे ९८ तीर्थ है। श्री काणे की सूची मे इसके ६० तीर्थ नही है। इसी प्रकार श्रीकाणे की सूची के ८४ नाम परिशिष्ट 'ट' की सूची मे नही हैं। श्रीकाणे ने नीलमत पुराण लाहौर सस्करण सन् १९२४ ई० तथा प्रस्तुत पुस्तक मे श्रीवीज सस्करण सन् १९३६ ई० को आधार माना है। लाहौर सस्करण के परिशिष्ट 'आई' पर मुख्य तीर्थ तथा नदियो की सख्या १५४ दी गयी है। उसमे तीर्थों की संख्या केवल ३० है। इस कारण कुछ त्रुटियाँ सन्दर्भ के सम्बन्ध मे मिलेंगी। श्रीकाणे ने श्रीनगर, प्रवरपुर, परिहासपुरादि तथा नदियो को भी तीर्थ मान लिया है। प्रस्तुत पुस्तक मे देवस्थान, आश्रम, क्षेत्र, पीठ, विहार एव मठो का वर्गीकरण किया गया है। पुनरुक्ति को बचाया गया है। श्रीकाणे ने एक ही नाम के अपर नामोको भी तीर्थ मान लिया है जिससे एक ही स्थान की पुनरावृत्ति हो गयी है। श्रीकाणे की सूची मे निम्नलिखित नाम अधिक है—अचला, आपगा, इरावती, कम्बलाश्वतरनाग, कालिकाश्रम, इन्द्रकील, कनकवाहिनी, काल विमल, कालोदक, कुमारिल, कृपाण, केदार, क्रमसर, गोपाद्रि खण्डपुच्छ नाग, खोनमुख, गंगा मानुप सगम, उत्तर गगा, उत्तर मानस, गौतम नाग, गम्भीरा, गौरीशिखर, चन्द्रवती, जयवन, तक्षक नाग, त्रिकोटि, त्रिशूल गगा, दामोदर नाग, देवह्रदा, देवदारु वन, नलिनी, नृसिंह आश्रम, नील नाग, नौबन्धनपुर, पर्णोत्स्वर, परिहासपुर, पापसूदन, पुष्कर, प्रवरपुर, पौष्क, प्रद्युम्नगिरि, पृथूदक, वराह पर्वत, बिलपथ, ब्रह्मयोनि, भीमा देवी, भीम स्वामी, भूतेश्वर, भेदागिर, भेदादेवी, मडवातनाग, मधुमती, मलद महापद्मनाग, मानस, माजग्रास, मुण्डपृष्ठ, रामह्रद, वज्रेश्वर, वारहमूला, वाराह, वशिष्ठाश्रम, वर्धनप्रभ, वाटिका, विजयेश, वितस्ता गम्भीरा, वितस्ता मधुमती और वितस्ता सिन्धु सगम, विमल, विशोका, विश्रान्ति, विश्ववती, शाण्डिली, शाण्डिली मधुमती सगम, श्रीनगर, सप्तपुष्करिणी, श्रीमादक, बडगुल, हसद्वार, हरमुण्ड, हरिपर्वत, हर्षपथा। श्री काणे ने हरिचरित चिन्तामणि, गूढकूट विक्रमाकदेव चरित नीलमत तथा राजतरङ्गिणी को अपना आधार माना है। परिशिष्ट 'ट' मे जहाँ तीर्थ का स्पष्ट उल्लेख है उसे ही तीर्थ मानकर आश्रमादि का अलग परिशिष्टो मे वर्गीकरण कर दिया गया है।

श्लोकानुक्रमणिका

प

आधार ग्रन्थ

(उल्लिखित)

वैदिक साहित्य :

अथर्ववेद : सातवलेकर, पारडी

ऋग्वेद = चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी

उपनिषद :

छान्दोग्योपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर

बृहदारण्यकोपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर

ब्राह्मण :

ऐतरेय ब्राह्मण : आनन्दाश्रम, पूना

कौशीतकी ब्राह्मण :

शतपथ ब्राह्मण : वेबर संस्करण

सूत्र :

गोभिल गृह्यसूत्र : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

संस्कृत :

अग्निपुराण : आनन्दाश्रम, पूना

आध्यात्म रामायण :

अर्थशास्त्र : कौटिल्य : वाचस्पति शास्त्री गैरोला

अष्टाध्यायी : पाणिनि

काव्यमाला : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९३१

अनुशासन पर्व :

अमरकोश : मास्टर खेलाड़ी लाल, काशी

आदिपर्व :

आश्वमेधिकपर्व :

उत्तररामचरित् : भवभूति

उद्योगपर्व :

कथासरित्सागर : सोमदेव

कल्किपुराण : कलाप्रसन्न विद्यारत्न, कलकत्ता

कादम्बरी : बाणभट्ट

कामसूत्र : वात्स्यायन, संस्कृत सीरीज, काशी

काव्यादर्श : दंडी

देवीभागवत : पंडित पुस्तकालय, काशी

द्रोणपर्व :

नवबन्धन माहात्म्य :

नीलमत पुराण : लाहौर

नीलमत पुराण : ब्रिजे के० डी० लीडेन

पद्मपुराण : श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

पंचतन्त्र : विष्णुशर्मा: पंडित पुस्तकालय, काशी

पृथ्वीराजविजय : जयानक : टिप्पणी—जोनराज

वनपर्व :

ब्रह्माण्ड पुराण : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

बृहद् संहिता . वराहमिहिर

भर्तृहरिशतक : भर्तृहरि

भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर

भीष्म पर्व :

मत्स्य पुराण : आनन्दाश्रम, पूना

महादेव माहात्म्य :

महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर

मारकण्डेय पुराण : जीवानन्द, कलकत्ता

मालतीमाधव : भवभूति

याज्ञवल्क्यस्मृति : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

योगवाशिष्ठ रामायण : अच्युत ग्रन्थमाला, काशी

योगदर्शन : गीता प्रेस, गोरखपुर

रघुवंश : कालिदास

राजतरंगिणी : कल्हण : सं० विश्वबन्धु, होशियारपुर

राजतरंगिणी (दि रिवर आफ किंग्स) प० रणजीत सीताराम
क्रानिकल्स आफ दि किंग्स आफ काश्मीर स्तीन० एम० ए०
राजतरंगिणी ट्रोयर एम० ए० (फ्रेन्च)
राजतरंगिणी जोनराज, श्रीकंठ कौल होशियारपुर
राजतरंगिणी श्रीवर, शुक, होशियारपुर
रामायण वाल्मीकि गीता प्रेस, गोरखपुर
लोकप्रकाश क्षेमेन्द्र—प० जगद्धर जाडू शास्त्री
लैस पद्धति
वायु पुराण श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वामन पुराण सर्व भारती काशिराज न्यास, काशी
विक्रमांकदेव चरित विल्हण
विराटपर्व
विष्णुधर्मोत्तर पुराण वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वेणीसहार चौखम्बा संस्कृत सीरीज काशी
वैजयन्ती
शक्तिसंगमतंत्र
शान्तिपर्व
शल्यपर्व
शिशुपालवध माघ चौखम्बा संस्कृत सीरीज
शुक्रनीति
श्रीकंठचरित टिप्पणी जोनराज
सभापर्व
स्वर्गारोहणपर्व
साहित्यदर्पण चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
स्कन्दपुराण मोर कलकत्ता, प्रथम पांच खण्ड, वेंकटेश्वर प्रेस दो खण्ड
हरचरित चिन्तामणि राजानक जयद्रथ
हरिवंश पुराण चित्रशाला प्रेस, पूना
हर्षचरित बाणभट्ट

फारसी

असरारुल अबरार = दाउद मिशकाती रिसर्च विभाग, श्रीनगर
आइने अकबरी अ० जरेट (सन् १८९१)
खुलासातुल मनाकिब = नुरुद्दीन जफर बदख्शी तुबिनजेन विश्वविद्यालय, जरमनी
गुलदस्तए काश्मीर पण्डित हरगोपाल 'खस्ता'
गौहरे आलम बदीउद्दीन अबुल कासिम
जफरनामा सरफुद्दीन अली याज्दी
तजकिराते मशाइखे काश्मीर बाबा नसीब
तबकाते अकबरी अलीगढ़ वि०
तारीखे फिरिश्ता मुहम्मद कासिम फिरिश्ता
तारीखनामये हेरात सैफबिन मुहम्मद बिन याकूब अलहरवी
तारीखे काश्मीर आजम
तारीखे काश्मीर नारायण कौल आजिज
तारीखे काश्मीर हसन बिन अली काश्मीरी
तारीखे हसन पीर गुलाम हसन खोयहामी
तारीखे काश्मीर सैयद अली रिसर्च विभाग, श्रीनगर
तारीखे काश्मीर हैदर मल्लिक चादुरा (पाण्डु) रिसर्च वि० श्रीनगर
तारीखे काश्मीर म्युनिख पाण्डुलिपि
तारीख रशीदी मिर्जा हैदर दूगलात, लण्डन
तुजुक जहाँगीरी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
तोफतुल अहबाब ले० अज्ञात
नफहातुल उंस अब्दुल रहमान बिन अहमद, जामी (सन् १८५८ ५९)
नवादिरुल अखबार अबू रफीउद्दीन अहमद ब्रिटिश म्यूजियम परिग्रहण सं० २४०२९
मजमूये तवारीख बीरबल काचरू
मलफूजाते तिमूरी ए० एस० बी० सं० ८५
बहारिस्तान शाही लेखक अज्ञात ब्रिटिश म्युजियम परिग्रहण १६,७०६
फुतूहाते कब्रव्या अब्दुल वहाब नूरी
मआसिरे रहमानी ए० एस० बी०
मजमूआ दर अंसाब मशायरय काश्मीर ले० अज्ञात
मुन्तखब उत तवारीख बदायूनी अब्दुल कादिर
रियाजुल आफरीन = रिजाकुली खान हिदायत तेहरान १३०५ सन् १८८७–१८८८ ई०
वाक्रियाते काश्मीर ख्वाजा मुहम्मद आजम

हबिबुस्सियार : ख्वान्दमीर गयासुद्दीन बम्बई :
हिलायतुल आफरीन : ख्वाजा इसहाक (ब्रिटिश म्यु०)

अरबी :

हुदुदुल आलम : ले० अज्ञात

अंग्रेजी :

अल्बेरुनी : सचाऊ एस० सी० (लण्डन)
इण्डियन एण्टीक्वेरी : भाग : ५
इण्डियन मुसलिम : मुहम्मद मुजीब
इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका : ग्यारहवाँ सं०
इण्डियन इपिग्राफिकल ग्लोसरी : डी० सी० सरकार
एण्टीक्विटी ऑफ चम्बास्टेटस : वोगेल एच०
इम्पीरियल गजेटियर पेशावर :
एण्टीकेरी ऑफ इण्डिया एण्ड तिब्बत : ए० एच० फ्रेन्की
ए सिक्रेट आफ तिब्बत :
ए स्टडी ऑन दी क्रोनिकल ऑफ लद्दाख : पिटेच लुसियानो
एन्शिएण्ट ज्योग्रेफी ऑफ इण्डिया : ए० कनिंघम संस्करण १९६३
एन्शिएण्ट हिस्टोरियन ऑफ इण्डिया : पाठक वी० एस०
काश्मीर अण्डर दी सुलतान : मोहिबुल हसन
कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया :
काश्मीर : जी० डी० एम० सूफी (सन् १९४९)
कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : भाग ३, ४
क्रोनोलोजी ऑफ काश्मीर हिस्ट्री रिकन्स्ट्रक्टेड : वेंकटाचलम
क्वाइन्स ऑफ सुलतान ऑफ काश्मीर : रोजर्स
क्वाइन्स ऑफ मिडीवल इण्डिया : जनरल कनिंघम
गजेटियर : बेटस (१८७३)
गाइड टू कारोनेशन : ऐविस ब्रोड
जम्मू एण्ड काश्मीर टेरिटोरीज : ड्रयू० फेडरिक
ट्रेवेल : वाइन (सन् १८४२ ई०)
,, वान हुगेल (सन् १८४५ ई०)
,, वेक फील्ड इम्पू
,, मूर क्राफ्ट (सन् १८४२ ई०)
डाटर्स ऑफ वितस्ता : बजाज
तुर्किस्तान : बर्टहोल
तुगलक डाइनेस्टी : आगामुहम्मद हुसन
दि जर्नल ऑफ पंजाब हिस्टॉरिकल सोसाइटी
दि वैली ऑफ काश्मीर : डब्लू० आर० लारेन्स
दि सिक्रेट ऑफ लद्दाख
दिल्ली सल्तनत : मजमूदार आर० सी
ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी ऑफ एंशिएण्ट एण्ड मीडिवल इण्डिया = नन्दलाल दे।
डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया : एच० सी० राय

बाइबिल :

मार्कोपोलो : यूल हेनरी
मिडीवल रिसर्चेज फ्रॉम इस्टर्न एशियाटिक सोर्सेज ब्रेट्स चेण्डीयर ई० लण्डन सन् १८८८
मुसलिम वर्ल्ड : एच० ए० वाल्टर सन् १९१४
किंग्स ऑफ काश्मीर : जे० सी० दत्त
साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन्स : भाग १
साउथ इण्डियन टेम्पुल इन्सक्रिप्शन्स : टी० एन० सुब्रमन्यम्
स्टडीज इन इण्डो-मुसलिम हिस्ट्री : शापुरशाह होरमस जी होडी वाला
स्टडीज इन दि ज्याग्रफी ऑफ एन्शिएण्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया : डी० सी० सरकार
हिन्दू ला डी० एफ० मुल्ला
हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान : कर्नल जी० मेल्लीसन लण्डन १९४०
हिस्ट्री ऑफ काश्मीर . पमज्जाई पृथ्वीनाथ कौल
हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्र : काणे
हिस्ट्री ऑफ मुसलिम रूल इन काश्मीर : डा० परमू आर० के०
हिस्ट्री ऑफ मंगोल : एच० एच० होवर्थ
हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न तिब्बत रीजन : शाट्ली (लण्डन १९०७)

हिन्दी

उत्तर तैमूरकालीन भारत अलीगढ वि०
तुगलककालीन भारत अलीगढ वि०
दक्षिण पूर्व एशिया रघुनाथ सिंह
धर्म निरपेक्ष राज्य रघुनाथ सिंह
पृथ्वीराज रासो चन्दबरदाई
ग्यारहवीं सदी का भारत जयशकर मिश्र

उर्दू

कश्मीर सलातीन के अहद मे मोहिबुल हसन
तारीख हसन पीर हसन शाह
बुलबुल शाह साहेब सादत मुफ्ती मुहम्मद शाह

(सहायक ग्रन्थ)

संस्कृत

कवि कठाभरण क्षेमेन्द्र
कर्ण सुन्दरी विल्हण
कल्कि पुराण
काश्मीर राजवश साहिब राम
काश्मीर शब्दामृत ईश्वर कौल
गउडबहो वाक्पति राज
चौर पचाशिका विल्हण
तीर्थसग्रह साहिब राम
देश व्यवस्था पुस्तिका काश्मीर
पुराण विषयानुक्रमणी राजबली पाण्डेय
पचस्तवो धर्माचार्य—श्रीराम शैव (त्रिक) आश्रम फतेह कदल, श्रीनगर
भारत मजरी क्षेमेन्द्र
राजतरंगिणी सग्रह साहिब राम
रामायण मजरी क्षेमेन्द्र
लल्लेश्वरी वाक्यानि राजानक भास्कर
सुवृत्त तिलक क्षेमेन्द्र
स्तुति कुसुमाजलि जगधरभट्ट

फारसी

अकबरनामा शेख अबुलफजल
अहवाले मुल्क किश्तवार शिवजी दर
इकबालनामए-जहाँगीर मुहम्मद शरीफ बिन दोस्त मुहम्मद
खमसा बहाउद्दीन बहाउद्दीन
खवारिकुल सालकीन अहमद बिन अलसुबूर काश्मीरी
गुल्जार कश्मीर दीवान कृपाराम
गुलशने इब्राहिमी मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह
जखीरतुल मुल्क सैय्यद अली हमदानी
तजकिरातुल आफरीन मुल्ला अली रैना
तहकीकाते अमीरी असीरुद्दीन पखली वाले
तारीखे अलफी मुल्ला अहमद थट्टवी (तलवी)
तारीखे कबीर मुइउद्दीन मिशकीन
तारीखे खान जहानी ख्वाजा नियामतुल्ला हरवी
तारीख जम्मू व रियासतहाये मलहका हशमत अली खान, लखनवी
तारीखे राजगान राजौरी मिर्जा जफरुल्ला खा
तारीखे हिदायतुल्ला मतो
तारीखे फिरोजशाही जियाउद्दीन बरनी
तारीखे मुबारकशाही येहया बिन अब्दुला सिरहन्दी
तारीखे शायक अब्दुल वहाब शायक
तारीखे शाहनामा शाहमुहम्मद तौफीक
तारीखे हादी मुहम्मद हयात
दस्तूर असलाकीन शेख बाबा दाउद खा
नूरनामा बाबा नसीबुद्दीन गाजी
पज मसनवी सलीम कलील खुशाल
बागे सुलेमान मीर सादुल्ला शाहाबादी
मआसिरुल उमरा शमसुद्दौला
मआसिर रहीमी ख्वाजा अब्दुल बकी निहावन्द
मजमूआ सैदा गुलाम रसूल
मजलिस उस् सलातीन मुहम्मद शरीफ—अनजाफी
मकबतुल जवाहिर नुरुद्दीन जफर बदख्शी
लबुल तवारीख बहाउद्दीन
वजीज उत्-तवारीख अब्दुल नबी
वकाय निजामिया या निजामुल बका हजरत मुल्ला निजामुद्दीन
हफ्तइक्लीम अमीन अहमद राजी
हशमते काश्मीर अब्दुल कादिर खान (बनारस)

अंग्रेजी :

अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ काश्मीर : राय, सुनीलचन्द्र
अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया : चट्टोपाध्याय, एस०
आर्किटेक्चर ऑफ काश्मीर : कैसे, टी० एस०
आर्कियोलोजिकल सर्वे १९०६–७
इन दि लैण्ड ऑफ लल्लारुख : वाडिया, ए० एस० लण्डन
इंगलिश ट्रान्सलेशन आफ फिरिस्ता : ब्रिगस्
इलस्ट्रेशन फ्रॉम ऐन्शिएण्ट बिल्डिंगस् इन काश्मीर कौल : एच० एच०
एक्रोश दी रुफस ऑफ दी वर्ल्ड : विल्फोर्ड, रेड, एस० के०
ऐन इन्ट्रोडक्सन टू काश्मीर इट्स जियोलॉजी एण्ड ज्योग्राफी—पिट्ठावाला, एम० पी०
ए परसनल नरेटिव ऑफ ए विजिट टू गजनी, काबुल इन अफगानिस्तान : ब्राउन, जी० टी०
ए पीप थ्रू दी काश्मीर : मोरिसन
ए रेसियल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : चक्रवर्ती
ए लोनली समर इन काश्मीर : मोरिसन, मार्गरेट कोल्टर
एंशेष्ट इंडिया : मजूमदार, आर० सी०
एंशेष्ट मानुमेण्ट इन काश्मीर : काक, आर० सी०
कल्हण पोयेट हिस्टोरियन ऑफ काश्मीर : धर, सोमनाथ
ऑन एंशेष्ट सेण्ट्रल एशियन ट्रैक्ट्स : स्तीन, एम० ए०
काफिर्स ऑफ हिन्दूकुश : रोबर्टसन, जी० एल०
काश्मीर थ्रू दी एजेज : कौल, जी० एल०
काश्मीर इन सनलाइट एण्ड शेड्स : टाइंडेल, विसकोई इ०
काश्मीर इन स्टोरीज : धर, सोमनाथ
काश्मीर : सर यंग हासिब हसबैंड
काश्मीर क्रोनिकल : वैशम (लेख : हि० ई० प०)
काश्मीर एण्ड काशगर : विल्यू एच० वालर
काश्मीर एंटीक्विटीज : काक, रामचन्द्र
काश्मीर पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट : कौल, घीसालाल
काश्मीर शैविज्म : चैटर्जी, जे० सी०
केटलॉग ऑफ दी क्वाइन्स इन दी इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता
क्वाइन्स ऑफ एन्शियेण्ट इण्डिया : कनिंघम, ए०
क्वाइन्स ऑफ मीडिवल इण्डिया : कनिंघम, ए०
गजेटियर काश्मीर, किश्तवार, भद्रवा, जम्मू, नौशेरा, पुंछ एण्ड वैली ऑफ कृष्ण गंगा : वेट्स, कैप्टन सी० ई०
जोसफ इन काश्मीर : हजरत मिर्जा गुलाम कादियान
ज्योग्राफी ऑफ जम्मू एण्ड काश्मीर : कौल, ए०
ट्राइब्स ऑफ हिन्दू कुश : बिड्डोल्फ, जे०
टेम्पुल्स : कनिंघम, ए० जनरल
डाइनेस्टिक क्रोनोलॉजी ऑफ काश्मीर : घोषाल, यू० एन०
डिक्सनरी ऑफ काश्मीर प्रॉपर नेम्स : नोल्स, जे० एच०
तिब्बत, तातार एण्ड मंगोलिया : प्रिंसेस, एच० सी०
तुर्कीस्तान : बर्टहोल
थर्टी इयर्स इन काश्मीर : नील० ए०
दी काश्मीर : कौल, पं० आनन्द
दी गार्डेन्स ऑफ ग्रेट मुगल्स : स्टुअर्ट मिसेस बिल्ली० एस०
दी ग्रीक्स ऑफ बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया : हार्न डब्लू० डब्लू०
दी कापर क्वायन्स ऑफ दी सुल्तान ऑफ काश्मीर : जे० ए० एस० बी०, १८८५ ई०
दी गोल्ड क्वायन्स ऑफ काश्मीर : ह्वाइट हेड आर० बी०
दी फाउण्डेसन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : हबीबुल्ला ए० बी० एम० (१९४५), लाहौर
दी मुस्लिम वर्ल्ड : वाल्टर, एच० ए० (१९१४)
दी लैंग्वेजेज एण्ड रेसेज ऑफ दर्दिस्तान : लीनर, जी० डब्लू०
फॉक टेल्स ऑफ काश्मीर : नोल्स, जे० एच०
फ्लड लीजेण्ट इन संस्कृत लिटरेचर : सूर्यकान्त
नरेटिव ऑफ ए मिशन टू बोखारा : जोसफ रेवरेण्ड,

नार्दर्न बैरियर ऑफ इण्डिया ड्यू फ्रेडरिक
नोट्स आन दी टूर इन दी फारेस्ट ऑफ
जम्मू एण्ड काश्मीर विलमाण्ट, एस०
नोट्स ऑन ओकुग स्तीन, एम० ए०
नोट्स ऑन पीर पजाल स्तीन, एम० ए०
रेयर काश्मीर क्वाइन्स जे० ए० एस० बी० सन् १८९६ ई० भाग ६५ पृष्ठ २२३-२२५
रेसेज ऑफ अफगानिस्तान बेल्यूस यच० डब्लू०
लल्ला वाक्यानि ग्रियर्सन, जी० सर
लास्ट ट्राइबस जार्ज मूर,
लेटर्स आन ए जर्नी फ्राम बगाल टू सेन्टपीटर्स बर्ग जार्ज फास्टर
विट्वीन दी आक्सस एण्ड दी इडस स्कीमबर्ग आर० सी० यफ०
विद पेन एण्ड राइफल्स इन काश्मीर रायफील
मैनुस्क्रिप्ट मेड इन काश्मीर राजपूताना, ब्युहलर्स रिपोर्ट आफ ए टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया (सन् १८७७ ई०)
स्केच ऑफ मुहम्मडन हिस्ट्री ऑफ काश्मीर जे० ए० एस० बी० सन् १८५४ ई०
स्टडीज इन इण्डियन एण्टीकेरी रायचौधरी, एस० सी०
स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराण पुसलकर, ए० डी०
हिस्ट्री ऑफ काश्मीर कौल, पृथ्वीनाथ बमजायी
हिस्ट्री ऑफ काश्मीरी पण्डित किरम जैलान जे० एल०
हिस्ट्री ऑफ पजाब हिल स्टेट्स हचिसन, जे० तथा वोगेल, जे० एफ०
हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न तिब्बत फ्रेन्की, ए० एच०
हिस्टोरियन ऑफ इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड सीलोन फिलिप, सी० एच०
हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑफ एन्शेण्ट इण्डिया ला० बी० सी०
हिस्ट्री ऑफ दी राइज ऑफ दी मोहम्मडन पावर इन इण्डिया ब्रिगस्
हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस इलियट एण्ड डौसन
हिस्ट्री ऑफ बुखारा वेम्बरी ए०

हिन्दी

अकबरी दरबार अ०—रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
आचार्य क्षेमेन्द्र मनोहर लाल गौड़
काश्मीर कीर्ति कलश रघुनाथ सिंह
किन्नौर राहुल सांकृत्यायन
गिलगित मैनुस्क्रिप्ट देवनागरी
जागृत नैपाल रघुनाथ सिंह
पाणिनिकालीन भारतवर्ष वासुदेवशरण अग्रवाल
पुराण विमर्श बलदेव उपाध्याय
बुद्धकथा रघुनाथ सिंह
भारत का भाषा सर्वेक्षण ग्रियर्सन अनुवादक डा० उदयागिरि तिवारी
मध्यएशिया का इतिहास राहुल सांकृत्यायन
मुगल दरबार अनु० ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
योगवासिष्ठकथा रघुनाथ सिंह
राजतरङ्गिणी कोश रामकुमार राय
वेदकथा रघुनाथ सिंह
सलातीन दिल्ली के मजहबी रुझानात खलील अहमद निजामी
संस्कृत काव्यकार हरिदत्त शास्त्री
संस्कृत सा० का इतिहास बलदेव उपाध्याय

डोगरी

डोगरी निबन्धावली केदारनाथ शास्त्री
डोगरी भाषा और व्याकरण बंसीलाल गुप्त
डोगरी लोकगीत शर्मा तथा 'मधुकर', जम्मू
त्रिकूट जम्मू सन् १९६३ ई०
त्रिवेणी शक्ति एवं श्याम लाल शर्मा
निबन्धावली जम्मू सन् १९६५ ई०

व्यक्तिवाचक नामानुक्रम[1]

१. जो अंक कोष्ठक में दिये गये हैं, उन शब्दों को प्रस्तावना के पृष्ठ पर देखिए।

ख

ल

मानचित्र

परिहासपुर - वितस्ता
सिन्धु संगम
श्री स्तीन के मानचित्र पर आधारित
उ
प
पू
द
आरामपुर
जयपुर
करेपुर
वितस्तासिन्धु
संगम
त्रिगामी
परिहासपुर

प्राचीन श्रीनगर
भू-सर्वेक्षण सन् १८५८ ६०
१ ० १
मील

कश्मीर
ग्रन्थ वर्णित कुछ मुख्य स्थान
मील १० ५ ० १० मील
क श्मी र
घा टी
डल झील
श्रीनगर

जम्मू एवं कश्मीर
(१ इंच = ३९ ४६ मील)
सीमा, अन्तर्राष्ट्रीय, राज्य सन् १९५०
पश्चिमी पाकिस्तान में छावनी...
युद्ध विराम रेखा
जम्मू एवं कश्मीर
पाकिस्तान